कल्हणकृत

राजतरंगिणी

भाष्यकार
रघुनाथ सिंह
एम० ए०, एल० एल० बी०, पी-एच० डी०

हिन्दी प्रचारक संस्थान
(व्यवस्था : कृष्णचन्द्र वेरी एण्ड सन्स)
पो० बॉक्स नं० १०६, सी० २१/३० पिशाचमोचन, वाराणसी–१

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

प्रथम आवृत्ति १९७०
मूल्य ७५.००

प्रकाशक
विजयप्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बॉक्स नं० १०६,
सी० २१/३० पिशाचमोचन वाराणसी–१

मुद्रक : विक्रम पंचाङ्ग प्रेस, भदैनी, वाराणसी–१

काश्मीराभिजननिरतिशयानुरागरञ्जितान्तःकरणानां, सार्वभौमप्रभुता-
सम्पन्नगणतन्त्रभारतप्रथमप्रधानमन्त्रिणां, सम्प्रातिशतक्रतुपुरप्रसाधनपराणां,
पण्डितश्रीजवाहरलालनेहरूमहानुभावानां;
अङ्गरसपरिपाकसमुत्पन्नायाः, भारतप्रधानमन्त्रिपदस्य तृतीयालङ्कारस्व-
रूपायाः, श्रीमत्या इन्दिरागान्धीमहा ागायाः,
करकिसलयोः
हार्दः स्नेहोपहारः

उद्गम

मैं शिशु था। शिशुओं के साथ सड़कों पर दौड़ता था। खेलता था। सफेद घोड़ों की जोडी आती। 'राजा राजा' कोलाहल होता। हम रुक जाते। देखते—राजा। लोग कह उठते—जम्मू के राजा, काश्मीर के राजा।

श्वेत पगड़ी। नाटा कद। कुछ कम गोरा रंग। किन्तु मर्यादा की झलक। स्वाभिमान की कान्ति। स्थिर चित्तवृत्ति। वे अनायास आकर्षित करते—लोगों को। काशी निवासियों के कर बद्ध होते। मस्तक नत होते। गाडी को मार्ग देते। पीछे हट जाते। राजा हाथ उठाकर, मुस्कराकर, अभिवादन का उत्तर देते। लोग होते सन्तुष्ट। हमें लगता आश्चर्य।

उनके सामने बैठते—सुन्दर- गौरवर्ण, श्वेत पगड़ी धारी, दो सज्जन। उनमें एक के कानों में होती, स्वर्ण तरकी। दोनों के भ्रू मध्य लगा रहता केसर चन्दन का तिलक। काशी में जहाँ लोगों का रंग गेंहुआ और साँवला होता है उनके सर्वाङ्ग गौरवर्ण को देखकर आश्चर्य होता। प्रायः यह घटना प्रति वर्ष होती। यह बात लगभग ५८ वर्ष पुरानी होगी।

हम बढ़ते गये। राजा की उमर ढलती गयी। बिलासपुर के राजा भी उन दिनो काशी आते थे। उनका विलास भवन मामूरगंज वाराणसी में अब भी है। यह बाग नेपाली कोठी के पूरब-उत्तर ओर है। नेपाल के राजा लोग, राणाओं द्वारा नेपाल से निर्वासित होने पर, यही जीवन व्यतीत किये थे। नेपाली कोठी के पश्चिम ओर सड़क के पार नेपाल की रानी लक्ष्मी देवी का बगीचा है। वहीं वे जीवन व्यतीत की थीं। नेपाल की राज्य क्रान्ति के पूर्व, नेपाल के राजा, राणाओं के एक प्रकार से बन्दी थे। काशी नेपाल के राजा तथा राणाओं दोनो को प्रिय थी।

बिलासपुर राजा के पास गाड़ी और घोड़ा जोडी थी। उनके बगीचा से सटा पूर्व ओर अस्तबल था। उन दिनों मोटरों का दर्शन दुर्लभ था।

बिलासपुर के राजा का भी नाटा कद था। वे प्रतिदिन गङ्गा स्नान करते थे। वे मेरे बैठका के सम्मुख दशाश्वमेध घाट पर आते थे। उनकी वेश-भूषा काशिराज से भिन्न थी। जिनको राजसी ठाट में देखने के हम आदी थे।

महाराज काश्मीर का स्वर्गीय आनरेबुल सर राजा मोतीचन्द्र से बहुत स्नेह था। मेरे पिता के मामा स्वर्गीय ठाकुर विश्वनाथ सिंह उनके यहाँ कार्य करते थे। उनका परिचय राजा साहब के माध्यम से स्वर्गीय काश्मीरराज प्रताप सिंह से हो गया था। श्री प्रताप सिंह को एक पुत्र हुआ था। वह असमय में ही काल कवलित हो गया। वे पुत्र के इच्छुक थे। काशी के पण्डितों ने उनकी इस स्थिति से लाभ उठाया। उन्हें विश्वास दिलाया—पूजापाठ, दान पुण्य से सब कुछ हो सकता हैं। महाराज उनकी बातो में आ गये। यह काम गुप्त ढंग से करना था। राज्य में यह समाचार न फैले। इसकी विशेष सतर्कता रखी गयी। हमारे मामा के द्वारा पूजा पाठ आदि का प्रबन्ध हो जाता था।

दशाश्वमेघ घाट, मेरे मकान और जम्मू हाउस के बीच एक फर्लाङ्ग का फासला था। अपने खानदानी मकान औरङ्गाबाद से दशाश्वमेघ रोज जाया करता था। जम्मू हाउस की भवन रचना हमें आकर्षित करती थी। जम्मू हाउस के दक्षिण तरफ दशाश्वमेध को सड़क और उत्तर टेढ़ी नीम की गली थी। मैं बाल्यावस्था में अपनी मामी के साथ गंगा स्नान करने जाता था। जिस दिन गली में भिखमंगों का विशाल जन समूह एकत्रित रहता, हम समझ जाते थे। महाराज काश्मीर आ गये थे।

मेरा कुटुम्ब प्रारम्भ से ही अंग्रेजों का द्रोही रहा है। मेरे पिता के दूसरे मामा स्वर्गीय श्री बैजनाथ सिंह कांग्रेस स्थापना के दो वर्ष पश्चात् कांग्रेस में सम्मिलित हुए। वे बंग भंग तथा स्वदेशी आन्दोलन में जेल यात्रा कर चुके थे। हमारे जन्म के पूर्व दो बार आन्दोलन में कारागार की सजा भुगत चुके थे। कलकत्ता उनका कार्य क्षेत्र था। वही कार्य करते थे। कवि थे। कविता करते थे। पुरानी शैली के थे। कविता लिखकर फाड़ देते थे। कभी कविता उन्होंने प्रकाशित करने का प्रयास नहीं किया।

काश्मीर के राजा थे। उनकी सेना थी। उनका राज्य था। उस समय यह बातें स्वाधीनता आन्दोलन काल में बहुत भली लगती थीं। भारत के मानचित्र पर काश्मीर, राजस्थान तथा अन्य भारतीय रियासतों का पीला रंग देखता तो मन में उत्साह उत्पन्न होता।

काशी एवं काश्मीर का नाम समध्वनि होने के कारण रुचता था। दोनों राजाओं को देखकर मन प्रसन्न होता था। भारत की पुरानी स्मृति स्मरण हो आती थी। काशिराज प्रभुनारायण सिंह जी संस्कृत के उद्भट विद्वानों में थे। काशी के विद्वानों में उनकी गणना की जाती थी। संस्कृत के उच्च कोटि के लेखक थे। एक समय काशी विश्वविद्यालय के स्व० उपकुलपति एवं गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री आनन्द शंकर बापूभाई ध्रुव उनके यहाँ गये। ध्रुव जी संस्कृत के विद्वान् थे। उन्होंने अकस्मात् कुछ पृष्ठ लिखित देखे। उठाकर पढ़ा। उन्हें आश्चर्य हुआ। वे नाटक के कुछ पृष्ठ थे। पद, अलंकार, उपमा आदि समन्वित थे। काव्य रचना कालिदास से कम नहीं थी। पद सरस थे, मधुर थे। ओजपूर्ण शैली थी। पुरानी शैली में मौलिक नूतनता थी। ध्रुव जी ने कहा—'महाराज आप इसे छपाते क्यों नहीं ?' उन्होंने हँस कर कहा—'यह मेरा काम नहीं है। ब्राह्मणों का काम है।' और सब पृष्ठ फाड़ दिया।

राजागण उस समय परम्परा का पालन करने में गौरव का अनुभव करते थे। महाराज काश्मीर गंगा स्नान करते थे। हमारे बैठका के ठीक सामने। दशाश्वमेध घाट पर। वे कभी-कभी दशाश्वमेध घाट से पंचगंगा घाट नाव से जाते थे। उनके सरल स्वभाव की सब प्रशंसा करते थे। साधारण जनता के साथ घाटों पर स्नान करते थे। जबकि छोटे-छोटे राजा आते थे तो अपने मिथ्या अभिमान के कारण अलग प्रबन्ध कराते थे। काश्मीरराज अपनी सरलता एवं नम्रता के कारण काशी में लोकप्रिय थे।

मैं हिन्दू स्कूल का विद्यार्थी था। हिन्दू स्कूल में काशीनरेश हाल है। भव्य भवन रचना है। उसके ऊपर काश्मीर नरेश श्री रणवीर सिंह के नाम पर संस्कृत पाठशाला थी। संस्कृत पाठशाला के अध्यापक खूब बड़ी पगड़ी बाँधते थे। उस समय उधर आबादी नहीं थी। पंडित

लोग शहर से तर्क वितर्क करते चलते थे। हम लोग यहाँ के विद्यार्थियों की फहराती लम्बी शिखा और पीली धोती देख कर कभी-कभी उनका मजाक उड़ाते थे—'काश्मीर से केसर आई है। उसी से रंग कर धोती पहने हैं।'

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया। मैंने स्कूल त्याग दिया। आन्दोलन में भाग लिया। उस समय मेरी ११ वर्ष की अवस्था थी। मेरी सजा और फैसला तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट श्री खरे घाट आई. सी. एस. ने किया था। वे कालान्तर में काश्मीर में किसी उच्च पद पर चले गये थे।

सन् १९२१ में ही श्री विश्वनाथ सिंह को दो गोलियाँ लगी। उन्होंने मारने वालों से बन्दूक छीन ली। राजा बिलासपुर की कोठी समीप ही थी। वे फाटक कूद कर डाक गये। उन्हें खून से लथपथ देखकर बिलासपुर राजा के स्थानीय दीवान तत्काल मर गये।

मेरे कुटुम्ब में सभी लोग राजनीतिक आन्दोलन में जेलयात्रा कर चुके थे। श्री बैजनाथ सिंह छः बार और श्री विश्वनाथ सिंह तीन बार। श्री मूडी आइ. सी. एस. जो कालान्तर में भारत के होम मेम्बर और पंजाब के गवर्नर थे उन दिनों काशी में ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट थे। उन्होने फैसला सुनाया। विश्वनाथ सिंह तिलक स्वराज्य फंड का रुपया एकत्रित कर रहे थे, डाकुओं ने उन पर हमला किया और उल्टे उन्ही के ऊपर दूसरा मुकदमा चला दिया। यह मुकदमा श्री दयाल, जो कालान्तर में इलाहाबाद के जज तथा काश्मीर के चीफ जस्टिस हो गये थे, इजलास में चला। श्री विश्वनाथ सिंह छूट गये। सन् १९३० में उन्हें नमक सत्याग्रह में अढ़ाई वर्ष का जेल हुआ। उनका स्वास्थ्य ढलता गया और सन् १९४४ में उनकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार काश्मीर किसी न किसी प्रकार अपनी स्मृति मुझमें हरी रखता था। मैं आन्दोलन में पड़ गया। फिर भी जब कभी काश्मीर के राजा आते तो मैं उन्हें अवश्य देखता। बहुत सी बातें याद आती है। अखबारों में काश्मीर का समाचार रुचि से पढ़ता।

मेरे घर में काश्मीरराज ने जो पत्र श्री विश्वनाथ सिंह को लिखे थे उनकी एक पूरी फाइल थी। सैकड़ों पत्र थे। हिन्दी नागरी में लिखे थे, मैं कभी-कभी उनको पढ़ता था। मैं उस ओर से उदासीन था। मेरे निवास स्थान की तलाशी राजनैतिक कार्यकर्त्ता होने के कारण वर्ष में दो तीन बार होती थी। उन पत्रों में राजा सर मोतीचन्द के नाम लिखे पत्र थे। उन्हें बाँधकर रख दिया था। एक बार तलाशी आई। मै घर पर नही था। अचानक तलाशी हुई। गंगा जी खूब बढ़ी थी। मेरे बैठके की पहली मंजिल तक पानी आ गया था। हल्ला हुआ—पुलिस आई। नौकर ने कागजों का बंडल तीसरी मंजिल से धारा में फेंक दिया। उनमें वे पत्र भी समाप्त हो गये। उस समय तक श्री प्रताप सिंह तथा राजा सर मोतीचन्द का देहान्त हो चुका था।

मैंने वकालत शुरू की। मेरे साथ श्री राजेशदत्त पाण्डेय तथा चतुर्भुज दास पारिख, जज हाईकोर्ट इलाहाबाद, कार्य करते थे। हम लोग फौजदारी के वकील थे। एक साथ सभी मुकदमें में काम करते थे। राजेशदत्त पाण्डेय के पिता रमेशदत्त पाण्डेय महाराजा काश्मीर के यहाँ तीस वर्षों तक उच्च पदों पर कार्य किये थे। स्वर्गीय डॉ० श्रीमती एनिबेसेन्ट ने रमेशदत्त जी को राजा के आग्रह पर भेजा था। उनकी श्रीनगर में पाण्डेय बिल्डिंग थी। राजेशदत्त जी का काश्मीर में ही अध्ययन हुआ था।

सन् १९४० से मुस्लिम लीग का आन्दोलन प्रवल होता गया। स्व० जिन्ना साहब काश्मीर पहुँचने लगे। भविष्य ठीक न देखकर उन्होंने अपनी श्रीनगर की इमारत बेच दी। श्री राजेश दत्त जी के साथ प्रायः काश्मीर सम्बन्धी बातें हुआ करती थी।

मैं सन् १९५२ में संसद् में आया। श्री पंडित जवाहर लाल से पूर्व परिचय था। सन् १९२२ में आनन्द भवन से साइक्लोस्टाइल से इनडिपेन्डेन्ट अखबार निकलता था। वह पहले छप कर निकलता था। अंग्रेजी सरकार ने उसे सन् १९२२ में बन्द करा दिया था। मैं उसकी एक प्रति इलाहाबाद से काशी लाता था। उसी के आधार पर पुनः साइक्लोस्टाइल करके बेचा जाता था। किसी भी काश्मीरी कुटुम्ब में प्रवेश का यह मेरा पहला अवसर था। संसद् में काश्मीर स्टॅज ग्रुप संसद् सदस्यों का बना। मैं उसका संयोजक सन् १९५४ से १९६३ तक था। इस समय के नेताओं तथा काश्मीर के लोगों से निकट सम्बन्ध हो गया। मैं चार बार संसद् सदस्यों का स्टडी ग्रुप लेकर काश्मीर गया। काश्मीर भ्रमण किया। बाल्यावस्था में स्वर्गीय विश्वनाथ सिंह कहा करते थे जाना हो तो काश्मीर जाओ। मैं अध्ययन काल में गर्मियों की छुट्टी में दार्जिलिंग, नैनीताल, मंसूरी और शिमला जाया करता था। किन्तु काश्मीर का अपना ही स्थान है। वह सचमुच नन्दन कानन है।

सन् १९६० में प्रथम बार विचार उठा कि काश्मीर की राजतरंगिणियों के मूल संस्कृत का हिन्दी में अनुवाद करूँ। श्री स्तीन के राजतरंगिणियों से मुझे विशेष प्रेरणा मिली। सन् १९६७ का संसद् चुनाव हार जाने के कारण खाली था। अतएव इस कार्य में हाथ लगाया। इस समय मेरे एक मात्र सहायक एवं मित्र श्री पशुपतिप्रसाद द्विवेदी ही थे।

सर्व श्री लल्लनजी गोपाल काशी हिन्दूविश्वविद्यालय, उपेन्द्र ठाकुर मगध विश्वविद्यालय तथा कृष्णदत्त बाजपेयी सागर विश्वविद्यालय ने राजतरङ्गिणी सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये हैं, उसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

यह पुस्तक मैंने स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू तथा उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरागांधी को भेंट की है। उनका सम्पर्क मेरे परिवार से रहा है। काश्मीर को इस बात का गर्व होना चाहिए कि यदि उसने मेघवाहन, ललितादित्य, प्रवरसेन, जयापीड़, अवन्तिवर्मा जैसे महान् व्यक्तियों को उत्पन्न कर काश्मीर का मुख उज्ज्वल किया है तो उसी प्रकार स्व० पंडित मोतीलाल एवं श्री जवाहरलाल ने भारत का जीवन स्तर उठाने का कम प्रयास नहीं किया।

काश्मीर की महिलाएँ यशोवती, सुगन्धा, दिद्दा केवल काश्मीर की शासिका थी। किन्तु श्रीमती इन्दिरा गांधी को समस्त भारतवर्ष का शासन करने का गौरव प्राप्त हुआ है।

निःसन्देह मेघवाहन ललितादित्य ने दिग्विजय किया था। परन्तु मोतीलाल ने सर्वस्याग किया। पंडित जवाहरलाल ने महात्मा गांधी के आशीर्वाद के साथ भारतीय आजादी प्राप्त कर एक पराधीन देश को स्वाधीन बनाया है। पंडित मोतीलाल जी सेन्ट्रल एसेम्बली (वर्तमान लोकसभा) के नेता थे। पंडित जवाहरलाल भी उसके नेता थे। श्रीमती इन्दिरा गांधी भी उसकी नेता हैं। विश्व के किसी भी संसद् को यह गौरव नहीं प्राप्त है कि तीन पीढ़ियों तक एक ही कुटुम्ब के लोग एक के बाद दूसरे नेता होते गये हों। काश्मीर के दिग्-

विजय कर्ताओं का कार्य क्षेत्र काश्मीर तक सीमित था। किन्तु पंडित मोतीलाल, उनके पुत्र पंडित जवाहरलाल और जवाहरलाल की पुत्री इन्दिरा गांधी का कार्य क्षेत्र समस्त भारतवर्ष था। वे भारत के भाग्य विधाता बने हैं। नि:सन्देह काश्मीर भूमि उनके जैसी दूसरी सन्तान उत्पन्न नही कर सकी है। भारतवर्ष का तिलक काश्मीर है। उस काश्मीर को शत-शत प्रणाम।

कल्हण ने किसी राजाश्रय में किसी संरक्षण में किसी प्रश्रय में किंवा अर्थलाभ की दृष्टि से राजतरंगिणी की रचना नही की थी। मैंने भी किसी राजाश्रय, किसी-संरक्षण तथा किसी प्रश्रय, अर्थ लोभ किंवा किसी भी स्वार्थ लोभ से यह पुस्तक नही लिखी है। अपनी अभिलाषा केवल इतनी ही है कि मेरा प्रयास कुङ्कुम-केसर की उत्पत्ति भूमि काश्मीर की मन्जुल यशः सुगन्धि का अनुभव सहृदयजन को कराने में सफल हो। अपने परिश्रम, अपने अर्जित धन से पुस्तक संग्रह कर लिखा है। कल्हण की वाणी को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। यदि मैं अर्थ लोभ किंवा किसी भी प्रकार की मुखापेक्षी भावना से लिखता तो मेरी लेखनी कुण्ठित हो जाती। मैं शब्दजाल का व्यापारी हो जाता। मेरा पुरस्कार अथवा सन्तोष इसी में है कि मैं यह कार्य कर सका। मैं केवल इतने का ही आकांक्षी हूँ कि सहृदयजन इसे समझने की कृपा करें। यह कार्य ज्ञात अज्ञात काश्मीर की उन महाविभूतियों के बिना आशीर्वाद के सफल नही होता जिनकी सुरभि से काश्मीर एवं जगत् आज भी सुरभित है। काश्मीर के उन महात्माओं तथा जनता को अंजली बद्ध नमस्कार करता हूँ। धर्म के प्रति आस्था होने के कारण कहना चाहता हूँ—ॐ नमः शिवाय—नमो बुद्धाय !!

काश्मीरमयान्तः करण

—रघुनाथ सिंह

प्राक्कथन

भारत विभाजन के पश्चात् भारत एवं पाकिस्तान के बीच काश्मीर विवाद का विषय बन गया। काश्मीर का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय जगत तथा संयुक्त राष्ट्र संघ मे चर्चा का विषय हो गया। काश्मीर विधान-सभा तथा भारतीय संसद मे भी विभिन्न दलों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाता रहा है। अतएव उसका व्यापक अध्ययन अनिवार्य हो गया था। मुसलमानों के कादयान सम्प्रदाय ने कश्मीर का सम्बन्ध हजरत मूसा, सुलेमान, ईशा आदि बाइबिल एवं कुरान वर्णित धार्मिक महात्माओं से जोड़ कर काश्मीर को भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं इतिहास से अलग करने का प्रयास आरम्भ किया। काश्मीर का नाम बदल कर 'बाग-ए-सुलेमान' रख दिया गया। पाकिस्तानी लेखकों ने यह प्रतिपादित करने के लिए पुस्तक ही लिख डाली कि वास्तव में नाम 'कशीर' है न कि 'काश्मीर'। काश्मीर शब्द का पुराण, महाभारत तथा अन्य प्राचीन प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों में उल्लेख है, अतएव पुरातन परम्परा से काश्मीर को अलग करने का अथक परिश्रम किया जाने लगा। इस विषय पर पुस्तकें तथा पैम्फलेट लिखे गये। शंकराचार्य पर्वत का नाम 'तख्तए-सुलेमान' तथा अनन्त नाग का नाम 'इसलामाबाद' रख दिया गया। इसी प्रकार पुराने स्थानों के नाम बदल कर उनके स्थान पर जियारत शरीफ, मजार पीर आदि रख दिये गये।

काश्मीर के कांग्रेस संसदीय दल ने काश्मीर प्रश्न का अध्ययन करने के लिये दल के संसद सदस्यों का एक स्टडी ग्रूप बनाया। मैं इस स्टडी ग्रूप का दस वर्षो तक संयोजक रहा। इस काल में काश्मीर में अनेक बार जाने का अवसर मिला। सुरक्षा विभाग के क्षेत्रों मे जो स्थान पड़ गये थे वहाँ सुरक्षा विभाग की सहायता से पहुँच कर उनका अध्ययन किया। संसद में भाषणों, चर्चाओं तथा बाहर काश्मीर इतिहास सम्बन्धी विवादों का उत्तर-प्रत्युत्तर तथा वास्तविकता पर प्रकाश डालने के लिए हमें वक्तव्य देना पड़ा है।

संसद तथा बाहर आक्षेपों एवं विवादों का उत्तर देने के लिये काश्मीर के प्राचीन इतिहास एवं भू-परिचय का ज्ञान आवश्यक हो गया। काश्मीर की यात्रा प्रतिवर्ष अध्ययन तथा जानकारी प्राप्त करने के लिये आवश्यक हो गयी थी। इस काल में पाँच बार संसदीय सदस्यों के शिष्टमण्डल के नेता के रूप में काश्मीर जाना पड़ा। किन्तु काश्मीर का बड़ा भूभाग अनधिकृत रूप से पाकिस्तान के पास है। काश्मीर की उत्तरीय एवं पश्चिमीय सीमा पर भारतीय सेनाएँ पड़ी है। उन स्थानों का हमने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है। सैनिक छावनी तथा सैनिक प्रभाव क्षेत्र मे जाने की सुविधा हमें मिल गयी थी। अतएव हमने उस क्षेत्र के स्थानों तथा जातियों का वर्णन किया है। तरंगिणी काश्मीर का भूगोल उपस्थित करती है। उसमें वर्णित स्थानों तथा जातियों के क्षेत्र में गया हूँ। उनमें जिनका वर्णन नही है उन्हें भी देखा है। काश्मीर के पुराने लोगों तथा विद्वानों से सम्पर्क स्थापित कर सन्देहास्पद प्रश्नों के हल करने का प्रयास किया है।

श्री स्तीन के समय और आज के समय में बहुत अन्तर पड़ गया है। स्थानों का रूप बदल गया है। उन्हें पहचानना भी कठिन है। पुराने स्थानों पर नवीन निर्माण हो गये हैं। मैं प्रत्येक वर्णित स्थानों पर गया हूँ। उनमें श्री स्तीन काल से अब तक जो परिवर्तन हो गया है उनका उल्लेख किया है ताकि उनके पहचानने में कठिनता उत्पन्न न हो सके।

ध्वंसावशेषों के शिला एवं प्रस्तर खण्ड उठाकर नवीन निर्माणों में लगा दिये गये हैं। कितने ही तोड़कर गिट्टी बनाने के काम में लाये गये हैं। परिहासपुर, कल्हण की जन्मभूमि का ध्वंसावशेष इसका

ज्वलन्त उदाहरण है। साम्प्रदायिक उत्तेजना में कितनी ही मूर्तियां हटा दी गयी हैं। कितने ही स्थानों पर कब्जा कर उनके अस्तित्व का लोप कर दिया गया है। डोगरा राज्य काल में पुराने स्थानो के संरक्षण में जो प्रगति हुई थी उसका आजादी के पश्चात् लोप हो गया। कुछ स्थानों को पुरातत्व विभाग के आधीन कर उनकी रक्षा का प्रबन्ध निस्सन्देह किया गया है। अनेक स्थानों से शिला खण्ड तथा प्राचीन ईंटें निकाल ली गयी हैं। श्री स्तीन वर्णित परिचय में और वस्तुस्थिति में अन्तर मिलने का यही कारण है। तथापि हमने स्थानों पर जाकर अध्ययन कर वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डाला है। स्थानों के निवासी वृद्धों के द्वारा कुछ बातें मालूम हो सकी हैं। उन्हें यथास्थान लिख दिया है।

दशवर्ष के संयोजकत्व काल तथा लम्बे काल तक कांग्रेस संसदीय दल के मन्त्री होने के कारण काश्मीर की दैनिक घटनाओं तथा अनुसन्धानों से सम्पर्क रखना पड़ा है। पाश्चात्य लेखकों ने काश्मीर के भूपरिचय तथा स्थानों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जिस समय उन्होंने लिखा था उस समय साधन कम थे। उनमें तथा प्रस्तुत वर्णन में क्या अन्तर है, तथा वास्तविक स्थिति क्या है, उस पर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर हमने प्रकाश डाला है। कई स्थलों पर हमने नवीन स्थानों की खोज एवं निष्कर्षों का प्रमाण भी उपस्थित किया है।

पाद-टिप्पणियों में स्थानों का परिचय उनका मूल तथा विकृत दोनों रूप दिया है। यह कार्य बिना स्थानों का प्रत्यक्ष दर्शन किये सम्भव नहीं था। जिस समय का इतिहास है उस समय काश्मीर की सम्पूर्ण जनता हिन्दू थी। उनके धार्मिक एवं दैनिक जीवन से स्थानों का सम्बन्ध था। स्थानों का इतिहास वहाँ के निवासियों के वंशीय इतिहास से मिल गया था। आज काश्मीर की ९० प्रतिशत जनता मुसलिम है। जो हिन्दू हैं वे प्रायः नगरों के निवासी हैं। वे स्वयं काश्मीर के अनेक स्थानों का इतिहास एवं नाम भूल गये हैं। गुफायें, मन्दिर, मठ, शाला, जनाश्रय, बिहार आदि जियारत, मसजिद, मजार तथा अन्य स्थानों में प्रायः परिणत कर लिये गये हैं। वे कभी हिन्दू स्थान थे, यह विचार वहाँ के लोगों को पसन्द नहीं आते। इसका मैंने पद-पद पर अनुभव किया है। वहाँ की मुसलिम जनता की प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होती। प्राचीन गाथाओं के स्थान पर नवीन गाथायें उनके साथ जोड़कर, उनके पुराने रूप को बदलकर, उन्हें नवीन जामा पहना दिया गया है। उनके मूल रूप का पता संस्कृत-साहित्य से ही मिलता है। इस समय रहन-सहन, समाज एवं रुचि इतनी शीघ्रता से बदलती जा रही है कि लोग कुछ दिनों में बहुत कुछ भूल जायेंगे; अतएव उन्हें लिपिबद्ध कर देना ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से परम आवश्यक है।

काश्मीर की सीमा पर, रामायण, महाभारत, पुराण, नीलमत तथा राजतरंगिणी में वर्णित अनेक जातियां रहती थी। उन्हें कालान्तर में लोकोत्तर जातियां किंवा व्यक्ति मान लिया गया। यहाँ हमने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर उनका स्थान निर्णय तथा परिचय दिया है। उनका उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है। मैं जिन क्षेत्रों में रहते थे वहाँ मैं गया हूँ। उनमें समय व्यतीत किया है। परन्तु धर्म परिवर्तन के साथ अपना इतिहास भूल गया है। अभी तक प्रचलित कुछ रीति-रिवाजों के आधार पर हमने उनकी जानकारी प्राप्त की है। पाकिस्तान अधिकृत भू-भाग का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सका है। उनका वर्णन ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। वह ज्ञान अप्रत्यक्ष है।

मुझे प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के औचित्य के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। स्तीन ने भौगोलिक नामों एवं ऐतिहासिक उल्लेखों को स्पष्ट करने का प्रयास किया था किन्तु सांस्कृतिक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन को भी समुचित महत्व तथा अवसर न दे सके। आश्चर्य है कि स्तीन के बाद भी किसी ने

राजतरंगिणी की सांस्कृतिक सामग्री के भंडार का समुचित शोधपूर्वक अध्ययन नही किया। इस प्रकार सभी दृष्टिकोणों को लेकर एक समग्र अध्ययन की आवश्यकता थी। इसीलिये मैंने यह ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एव तुलनात्मक अध्ययन किया है।

कल्हण की पूर्ण जीवनी नहीं मिलती। 'कल्हण' शीर्षक विवरण में हमने कल्हण की जीवनी उपस्थित करने का प्रयास किया है। इसी सन्दर्भ मे हमने कल्हण के कवि और इतिहासकार दोनों रूपों का विवेचन भी किया है। इन दोनों रूपों में ही किन पुराकालीन प्रभावों की छाप उन पर पडी, कल्हण का आदर्श एवं लक्ष्य क्या था और उन्हें इन क्षेत्रों में कितनी सफलता मिली आदि प्रश्नों का भी विचार हुआ है। प्राचीन भारत मे ऐतिहासिक साहित्य की परम्परा में राजतरंगिणी का स्थान और महत्व निर्धारित करने का भी प्रयास हुआ है। राजतरंगिणी के तरंग प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय जिसे गाथा कालीन काल कहते है उनका यहाँ समावेश किया गया है। रामायण, महाभारत, पुराण, तथा तत्कालीन ग्रन्थो के आधार पर राजतरंगिणी के वर्णित इतिहास को क्रमबद्ध करने का प्रयास किया है। कल्हण का प्राचीन कालीन वर्णन रामायण, महाभारत, पुराण एवं अन्य प्राप्य ग्रन्थों से कहाँ तक मेल खाता है और कहाँ तक प्रामाणिक है इसका विवेचन पाद-टिप्पणी में किया गया है। सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित सामग्री और ऐतिहासिक एवं भौगोलिक सूचनाओं की अद्भुत रत्नराशि राजतरंगिणी में मिलती है। पाद-टिप्पणी में इनका यथास्थान विशद विवेचन किया गया है। भूमिका रूप वाले इस अंश में हमने इस अमूल्य सामग्री को विषय-क्रम से एकत्रित किया है जिससे कि इस अमूल्य ज्ञान-भण्डार का कुछ आभास हो सके और राजतरंगिणी के ऐतिहासिक महत्व को प्रस्तुत किया जा सके।

रत्नाकर पुराण की कपोल-कल्पना जो हसन की तारीख तथा लुप्त राजाओं की तालिका का आधार है, उसे तर्क की तुला पर तौल कर उसकी अप्रामाणिकता सिद्ध की है। काश्मीर के इतिहास के सम्बन्ध में हिन्दू राज्य की समाप्ति से अब तक जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न की गयी हैं, और इतिहास को एक नया रंग क्यों दिया गया है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए वास्तविकता को प्रकट किया है।

कल्हण द्वारा वर्णित घटनाक्रमों के साथ धार्मिक विकास, ह्रास, क्रान्ति, विप्लवों आदि का संक्षिप्त वर्णन कर, यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि घटनायें तत्कालीन जनता की मानसिक स्थिति को प्रकट करती है तथा जनता की मनःस्थिति के कारण किस प्रकार घटनायें घटती है।

भावानुवाद, छायानुवाद, सारानुवाद, शब्दानुवाद, अर्थानुवाद, भाषान्तर, रूपान्तर, अनुकरण, पुर्नसर्जन आदि अनेक अनुवाद की शैलियाँ प्रचलित है। हिन्दी में प्रथम अनुवाद 'प्रबोध चन्द्रोदय' (सन् १५४४) मल्ह कवि का मिलता है। यह सारकथन एवं आख्यान शैली का अनुवाद है। मध्ययुग के परवर्ती अनुवाद भाषान्तर है। आधुनिक काल में कतिपय अनुवादो में मूल रचना का रूपान्तर किया गया है। स्व० श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कर्पूर मंजरी' (सन् १८७६ ई०) का साधारण रूपान्तर किया है। पराश्रयी रचनायें भी हिन्दी में की गयी है। यथा हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' (सन् १६२३ ई०) तथा बदरीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' (सन् १९१२ ई०) है।

यूरोप में मध्ययुग में शब्दानुवाद शैली प्रचलित थी। बाइबिल का अनुवाद इसका एक उदाहरण है। अंग्रेजी के कवि श्री जान ड्राइडन ने शब्दानुवाद, भावानुवाद तथा अनुकरण (इमिटेशन) अनुवादों का वर्गीकरण किया है। महा कवि गेटे ने अनुवादों को परिचयात्मक (लूथर कृत बाइबिल) रूपान्तर (एडाप्टेशन) तथा पुनः सर्जन तीन वर्गों में विभाजित किया है। समीक्षक बेनेडेट्टो क्रोचे का कहना है कि कामिनी के

समान यदि अनुवाद सुन्दर है तो सच्चा नही हो सकता और सच्चा है तो सुन्दर नही हो सकता। उसने उत्तम अनुवाद को मौलिक रचना के समान माना है। यह मौलिकता फिट्जेराल्ड के रुबाइयात उमर खय्याम में परिलक्षित होती है। इसी प्रकार स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनूदित राखाल दास वन्द्योपाध्याय के 'करुणा' में मौलिकता का दर्शन होता है। श्री रामचन्द्र वर्मा का अनुवाद हिन्दू राजतन्त्र' श्री जायसवाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' का अनुवाद है। श्री जायसवाल ने स्वय स्वीकार किया था कि अनुवाद उनकी मूल पुस्तक से भी उत्तम है। क्रोचे कहता है कि अनुवाद मूल का पुनः सर्जन नही है; किन्तु मूल की अभिव्यक्ति के सदृश अभिव्यक्ति का सृजन हो सकता है। विश्व मे सबसे अधिक अनूदित पुस्तक बाइबिल है। उसका अनुवाद दूसरी शताब्दी ईसवी से अब तक विश्व की अनेक भाषाओ में होता चला जा रहा है। बाइबिल की शैली धार्मिक ग्रन्थो में अपनायी जा सकती है। परन्तु राजतरंगिणी महाकाव्य है, ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसके अनुवाद की शैली काव्यमय एवं ऐतिहासिक होनी चाहिये।

स्वर्गीय सर्वश्री योगेशचन्द्र दत्त, स्तीन तथा रणजीत सीताराम पण्डित का अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। श्री योगेश दत्त का अनुवाद सारानुवाद है। सर्वश्री स्तीन तथा पण्डित ने प्रत्येक श्लोक का अलग-अलग अनुवाद किया है। कही-कहीं अनुवाद को स्पष्ट करने के लिये तीन-चार श्लोकों का अनुवाद एक साथ कर दिया है। श्री स्तीन का अनुवाद शब्दानुवाद तथा अर्थानुवाद के साथ बोधगम्य है। श्री पण्डित का अनुवाद साहित्यिक है। उसमें भाषा का प्रवाह है। कल्हण के अलंकारों, उपमा एवं रसो को अंग्रेजी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अनुवाद शैली में प्रत्येक पद जिसमें क्रिया मिल गयी है उसका अनुवाद एक ही पद में किया गया है। यदि क्रिया दूसरे पद में मिली है तो पद तोड़कर अनुवाद किया गया है। जहाँ कल्हण ने युग्मम्, तिलकम् एवं कुलकम् लिखा है वहाँ दो, तीन तथा चार श्लोकों का भाव, अर्थ एवं अनुवाद एक साथ रखने का प्रयास किया गया है। उसमें भी प्रायः प्रत्येक श्लोक का अनुवाद अलग ही रखने का प्रयास किया गया है। श्लोक संख्या ९३ तक भावानुवाद, शब्दानुवाद तथा अर्थानुवाद का मिश्रण मिलेगा। उसके पश्चात् अनुवाद की शैली बदल दी गयी है। शब्दों के क्रिया, वचन एवं लिंग का मूल रूप ही अनुवाद मे रखा गया है। प्रत्येक शब्द का अर्थ भाव के साथ किया गया है। अनेक संस्कृत शब्द जिनका हिन्दी में अनुवाद सम्भव नहीं था उन्हें यथावत रखकर उसका अर्थ पाद-टिप्पणी मे स्पष्ट किया गया है।

भारतीय भाषाओ की जननी संस्कृत है। कितने ही संस्कृत शब्द अप्रचलित हो गये हैं। कितनों का अर्थ आज वह नही है जो पूर्व काल में था। कितने ही अप्रचलित शब्दो का प्रयोग कल्हण ने किया है। शब्दो का अर्थ जो कल्हण के रचना काल में था उन्हें रखने का प्रयास किया है। किसी भी मौलिक ग्रन्थ के अनुवाद के लिये लेखक के वातावरण, निवास स्थान, समाज, तत्कालीन भूपरिचय, इतिहास, कुल, विचार तथा कथा-प्रसंग का ज्ञान होना आवश्यक है। इनका अध्ययन करने पर ही लेखक के मूल भाव की झलक मिल सकती है, उसकी आत्मा का दर्शन हो सकता है। कल्हण के निवास स्थान एवं जिन स्थानो का उसने वर्णन किया है उन्हें हमने स्वयं देखा है। वहाँ का अध्ययन किया है। अतएव अनुवाद करते समय सरलता का बोध हुआ है।

जिन स्थलों पर सर्वश्री स्तीन तथा पण्डित के अनुवादों से अनुवाद भिन्न किया है अथवा शब्दों का अर्थ भिन्न किया है, उसका उल्लेख पाद टिप्पणी में कर दिया है। इस प्रकार यह अनुवाद अर्थानुवाद, भावानुवाद तथा शब्दानुवाद के साथ वाक्यार्थ प्रधान हो गया है। अनुवाद की रोचकता बढ़ाने के लिये अपनी

ओर से कुछ जोड़ने का प्रयास नहीं किया है। अर्थ खोलने के लिये जहाँ शब्दों की आवश्यकता पड़ी है वहाँ उन्हें कोष्ठ में दे दिया है। रचनासौष्ठव अक्षुण्ण रखने के लिये कल्हण की रचना-शैली का अनुकरण किया है। प्रसाद गुण को यथावत रखने का प्रयास किया है। प्रसाद गुण का अनुवाद में महत्वपूर्ण स्थान है। दुरूह स्थल तथा जहाँ भाव एवं अर्थ समझने में कठिनाई हुई है अथवा जिस पद के दो अनुवाद हो सकते थे, उन्हें भी पाद टिप्पणी में दिया है। मैं स्वयं संस्कृत का अधिकारी विद्वान नहीं हूँ। कठिनता का बोध होने पर संस्कृत के विद्वानों से सहायता ली है। अनुवाद तथा मूल संस्कृत श्री विश्वबन्धु के सम्पादकत्व में हुये राजतरंगिणी के होशियारपुर संस्करण (सं० १९६० ई०) पर आधारित है। पाठभेद भी उसी संस्करण से लिये गये हैं।

संक्षेप में, पाद टिप्पणी में हमने पाठ भेद देने के बाद ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की सभी सामग्रियों का विवेचन किया है। प्रयुक्त शब्द का अर्थ, उसकी उत्पत्ति एवं अन्य ग्रन्थों में उसके उपयोग के विवरण देने के बाद हमने उनके वर्तमान रूप तक का इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस संबंध में हमने पुरातत्व की सामग्री, स्थानीय परंपराओं एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों का विधिवत उपयोग किया है। इन विवरणों में हमने सदैव ही ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण को अपनाने का प्रयत्न किया है। जिन विषयों के विवेचन में विस्तार की अपेक्षा थी उन्हें सुविधा की दृष्टि से हमने परिशिष्ट में रख दिया है।

आभार प्रकाश

इस शोध प्रबन्ध के लिये अनेक महानुभावों और पुस्तकालयों की सहायता प्राप्त हुई है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश आवश्यक है। संसदीय पुस्तकालय, नयी दिल्ली ने काश्मीर सम्बन्धी पुस्तकों का संग्रह किया है। कितनी ही अप्राप्य पुस्तकें हमारे सुझाव पर विदेशों से मँगायी गयी हैं। कांग्रेस संसदीय दल के पुस्तकालय में प्रायः सभी आधुनिक पुस्तकें खरीदी गयी हैं। उनसे विशेष सहायता मिली है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा संस्कृत विश्व विद्यालय, काशी में पुरानी तथा हस्तलिखित पुस्तकों को देखने तथा अध्ययन करने का अवसर मिला है। मैं सप्ताह में दो दिन कलकत्ता रहता था। उस समय वंग परिषद् पुस्तकालय में राजतरंगिणी के बंगला मूल तथा अनुवादों के साथ ही पुराणों के भी मूल तथा अनुवाद देखने तथा अध्ययन करने का अवसर मिला है। 'बम्बई सेन्ट्रल लाइब्रेरी' में राजतरंगिणी की मराठी अनुवाद के साथ काश्मीर सम्बन्धी कुछ पुस्तकें मिली। वहाँ मास में एक बार नेशनल शिपिंग बोर्ड तथा मझगाँव डाक के सम्बन्ध में जाने का अवसर मिलता था। इस अवसर को मैंने उक्त पुस्तकालय में लगाया है।

नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी में बंगला, अंग्रेजी तथा हिन्दी में काश्मीर सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन किया है। उक्त स्थानों के अतिरिक्त श्री काशी विद्यापीठ पुस्तकालय में कुछ दुर्लभ पुस्तकें प्राप्त हुईं। अडयार लाइब्रेरी अडयार, मदरास में भी कुछ पुस्तकें देखने को मिली हैं। उदयपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय में भी, जहाँ हिन्दुस्तान जिंक का चेयरमैन होने के कारण जाना पड़ता था, पुस्तकों का अध्ययन किया है। रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय में काश्मीर सम्बन्धी हस्तलिखित ग्रन्थों का उत्तम संग्रह है। वहाँ से तथा श्रीनगर राजकीय रिसर्च विभाग के संग्रह से भी सहायता ली है। काश्मीर सम्बन्धी ग्रन्थों का वहाँ उत्तम संग्रह है। प्रताप सिंह संग्रहालय, श्रीनगर में काश्मीर में उत्खनन कार्य में प्राप्त मूर्तियों का अच्छा संग्रह है। वहाँ की मूर्तियों के अध्ययन से काश्मीर की मूर्तिकला पर प्रकाश पड़ता है। श्री टी. एन. खजांची, पुरातत्व विभाग श्रीनगर का सहयोग प्राप्त होता रहा है।

संकेत-सूची

अ० = अध्याय
अ० = वेद; अथ० = अथर्ववेद
अनु० = अनुशासन पर्व (महाभारत)
अग्नि = अग्निपुराण
अर० = अरण्य काण्ड (रामायण)
अलबीरुनी = अलबेरुनीज इण्डिया,
आ० = आदि पर्व (महाभारत)
आश्व० = आश्वमेधिक पर्व (महाभारत)
उ० = उद्योग पर्व (महाभारत)
ऋ० = ऋग्वेद
क० = कर्ण पर्व (महाभारत)
कनिंघम = कनिंघमकृत एन्शेण्ट ज्योग्रेफी
कि० = किष्किन्ध्या काण्ड (रामायण)
कोल्स० = कोलकृत इलस्ट्रेशन आफ एन्शेन्ट बिल्डिंग आॅफ काश्मीर
कोनो० = नोट्स आॅन— टेम्पुल्स आॅफ काश्मीर
गणेश० = गणेश पुराण
गो० गृ० = गोभिल गृह्य सूत्र,
जादू० = नीलमत पुराण जादू, संस्करण, लाहौर
जोन० = जोन राजतरंगिणी
जैन = जैन राजतरंगिणी (श्रीवर कृत)
जै० ब्रा० = जैमिनीय ब्राह्मण
ट्रोयर = ट्रोयरकृत राजतरंगिणी अनुवाद
ड्र्यू = ड्र्यूकृत दी जम्मू एण्ड काश्मीर
तीर्थ० = तीर्थ संग्रह (साहिबरामकृत)
तै० आ० = तैत्तिरीय आरण्यक
तै० स० = तैत्तिरीय संहिता
दत्त० = जोगेशचन्द्र दत्त कृत किंग्स आॅफ काश्मीर
दे० भा० = देवी भागवत्
द्रो० = द्रोण पर्व (महाभारत)
नन्दि० = नन्दि पुराण
नील० = नीलमत पुराण
नागरी अंक = जादू संस्करण
रोमन अंक = ब्रोज संस्करण
पद्म० = पद्म पुराण
पंच विंश = पंच विंश ब्राह्मण
पण्डित०=रणजीत सीताराम पण्डित कृत रा० अ०
पाणिनी = अष्टाध्यायी
वन० = वनपर्व (महाभारत)
बर्नियर=बर्नियर कृत ट्रेवेल्स इन मोगल इम्पायर
वा० रा० = वाल्मीकीय रामायण
अ०=अरण्यकाण्ड
उ०=उत्तरकाण्ड
कि०=किष्किन्धा काण्ड
यु०=युद्ध काण्ड
वाइन०=वाइन कृत ट्रेवेल इन कश्मीर लद्दाख इस्कार्ड
बेट्स० = बेट्स कृत ए गजेटियर आफ काश्मीर
ब्रह्म०=ब्रह्म पुराण
ब्रह्म० वै०=ब्रह्म वैवर्त पुराण
बृ० उ० = बृहदारण्यकोपनिषद्
भ० = भविष्य पुराण
भा० = भागवत पुराण
भी० = भीष्म पर्व (महाभारत)
म०; महा०=महाभारत
मनु० = मनुस्मृति
माहा० = माहात्म्य
मार्क० = मार्कण्डेय पुराण
मूर क्राफ्ट० = मूर क्राफ्ट कृत ट्रेवेल इन हिमालयन प्रोविन्सेज आॅफ हिन्दुस्तान
मो०=मौसल पर्व (महाभारत)
याज्ञ०=याज्ञवल्क्य स्मृति
योग०=योग वाशिष्ठ रामायण
रा० त०=राजतरंगिणी (कल्हण कृत)
लारेन्स० = लारेन्सकृत दी वैली आफ काश्मीर

लि० = लिंग पुराण
वराह = वराह पुराण
वा० सं० = वाजसनेयिसंहिता
वायु० = वायु पुराण
विलसन० = विलसनकृत हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर
वोज० = नीलमत पुराण रोमन, वोज संस्करण
विष्णु० = विष्णु पुराण
विष्णु० ध० = विष्णु धर्मोत्तर पुराण
व्हुलर० = रिपोर्ट जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बम्बे सं० १४:१८७७
श० = = शल्यपर्व (महाभारत)
श० ब्रा० = शतपथ ब्राह्मण
शा० = शान्तिपर्व (महाभारत)
शि० = शिवपुराण
शि० सं० = शिव शत रुद्र संहिता
शु० = शुक्रनीति
शुर० =
स० = सभापर्व (महाभारत)
सं० गु० = संस्कृत गुलोरव मा[illegible]
संहिता० = बृहद् संहिता
स्कन्द० = स्कन्द पुराण
स्टीन० = स्टीन एम० ए० द्वारा अनूदित कल्हण की राजतरंगिणी
हरिवंश० = हरिवंश पुराण
हि० = हिन्दी
ह्यूगेल० = ह्यूगेल कृत काश्मीर एण्ड दस रीच [illegible] सीक
ह्वेनसांग० = दी लाइफ आफ ह्वेनसांग

कल्हण

रचना : कल्हण के सम्बन्ध में जो कुछ सामग्री बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक प्राप्त हुई है, उससे अधिक इस दिशा में प्रगति नहीं हो सकी है। राजतरंगिणी, अर्धनारीश्वर स्तोत्र तथा जयसिंहाभ्युदय काव्य कल्हण से सम्बन्धित किये जाते हैं। राजतरंगिणी निस्सन्देह कल्हण की रचना है। अर्धनारीश्वर स्तोत्र के १८ श्लोकों में सात श्लोक राजतरंगिणी के सात तरंगों के मंगलाचरणों से लिये गये हैं। जयसिंहाभ्युदय काव्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है।

राजतरंगिणी के इतिपाठ तथा स्तोत्र के इतिपाठ में मौलिक अन्तर है। राजतरंगिणी के इतिपाठ में कल्हण ने अपने को महाकवि नहीं लिखा है। केवल अष्टम तरंग के इतिपाठ में महाकवि शब्द आता है। परन्तु इसका पाठभेद अनेक प्राचीन प्रतियों में मिलता है। जिनमें महाकवि शब्द नहीं दिया गया है। प्रतीत होता है किसी श्रद्धालु लिपिक ने महाकवि शब्द उसके काव्य के विशाल रूप को देखकर अन्त में दे दिया है। सुयोग्य, विनयी एवं प्रतिभाशाली कवि चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वह अपनी लेखनी से अपने लिए महाकवि पद का प्रयोग नहीं करेगा। यह आत्मश्लाघा हो जाती है। अर्धनारीश्वर स्तोत्र उसकी स्वतन्त्र रचना है अथवा उसके श्लोकों का संग्रह मात्र है अथवा किसी ने उसके पदों का संकलन कर उसे अर्धनारीश्वर स्तोत्र की संज्ञा दे दी है। यह विचारणीय विषय है।

जयसिंहाभ्युदय काव्य उपलब्ध नहीं है। केवल रत्नाकर के सार-समुच्चय में कल्हण की इस रचना का उल्लेख मिलता है। कल्हण की सूक्तियों के संग्रह का भी उल्लेख मिलता है। किन्तु वह राजतरंगिणी के आठों तरंगों के सुभाषितों का संग्रह मात्र है। यदि जयसिंहाभ्युदय काव्य प्रकाश में आ जाय तो कल्हण के जीवन पर और प्रकाश पड़ सकता है। स्तोत्र तथा सूक्ति संग्रह का मूल स्रोत राजतरंगिणी है। स्तोत्र में दिये गये इतिपाठ में चम्पक महामात्य का नाम नहीं है। राजतरंगिणी के आन्तरिक लेखों के आधार पर अनुमान एवं निष्कर्ष निकाल कर, कल्हण के जीवन पर कुछ और प्रकाश डाल सकते हैं।

वंश : राजतरंगिणी के इतिपाठ से कल्हण के पिता का नाम महामात्य चम्पक प्रभु होना सिद्ध होता है। यद्यपि अर्धनारीश्वर स्तोत्र के इतिपाठ में कल्हण के वंश, पिता, पद, देशादि का नाम नहीं दिया गया है। इतिपाठ के अतिरिक्त कल्हण के वर्णन (रा० त० ७ : ९५४, १११७, १११८, ८ : २३६५) से प्रमाणित हो जाता है कि चम्पक कल्हण का पिता था। वह महामात्य था। राजमन्त्री था। समाज में उच्च स्थान प्राप्त था।

कल्हण अपने चाचा कनक के विषय में भी सूचना देता है। (रा० त० १११७-१११८) वह चम्पक का कनिष्ठ भ्राता था। कनक काश्मीर राज हर्ष का प्रियपात्र था। शिष्य था। राजा से सपरिश्रम गान विद्या सीखा था। राजा हर्ष सर्वश्रेष्ठ गायक, गीतकार एवं संगीत शास्त्र पारंगत था। कनक के परिश्रम एवं संगीत में श्रेष्ठता प्राप्त करने के कारण, राजा हर्ष ने उसे एक लाख स्वर्ण मुद्रा दिया था। कनक का राजा पर स्नेहयुक्त प्रभाव था।

कल्हण का गृह, गान-वादन, राग-रागिनी, ताल-लय समन्वित पदों एवं गीतों से गुंजित रहता था। कल्हण के पदों में माधुर्य एवं ताल-लय की एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहित मिलती है। उसका पद

कहीं भी पद लालित्य से रहित नही है। उसके शब्दों का चयन, संकलन, निवन्धन एवं उनकी ध्वनि श्रोत-प्रिय है। कही भी इस गति में अवरोध किवा विशृंखलता नही मिलती।

जन्मस्थान : कल्हण का जन्म परिहासपुर में हुआ था। उसका कुल परिहासपुर निवासी था। कल्हण ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। जिस समय राजा हर्ष परिहासपुर के प्रसिद्ध विहार-स्थित बुद्ध की विशाल प्रतिमा खण्डित करना चाहता था, तो परिहासपुर के कनक तथा एक श्रमण कुशलश्री के कारण अपने अनुचित कार्य से विरत हो गया। प्रतिमा की रक्षा हो गयी। (रा० त० ७ : १०९७) इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं। कनक परिहासपुर निवासी था। कल्हण का कुटुम्ब परिहासपुर मे रहता था। अतएव कल्हण का जन्म परिहासपुर में होना मानना उचित होगा।

कल्हण ने परिहासपुर का स्पष्ट और विस्तृत प्राकृतिक वर्णन किया है। यह वर्णन वहाँ का निवासी ही कर सकता है। परिहासपुर समीपस्थ वितस्ता-सिन्धु संगम प्रयाग (शादीपुर) का विशद वर्णन भावमयी भाषा में कल्हण ने किया है। वहाँ के स्थान, मन्दिर आदि का सुस्पष्ट, वास्तविक विस्तृत वर्णन प्रसंग आते ही किया है। दूसरों के लिये यह सम्भव नहीं था। (रा० त० ४ : १९४, २०४; ७ : १३२६, १३४४; ५ : ९७–१००) परिहासपुर, प्रयाग तथा शादीपुर मैं बार बार जा चुका हूँ। वहाँ का जो वर्णन राजतरंगिणी मे मिलता है वह अक्षरशः सत्य है।

जाति : कल्हण की जाति ब्राह्मण थी। उसे अपने ब्राह्मणत्व का गर्व था। कल्हण ने अपनी जाति स्वयं कही नही लिखी है। वह ब्राह्मण था। यह प्रश्न विवादास्पद इसलिए नही रह जाता कि द्वितीय राजतरंगिणी के लेखक जोनराज ने उसे 'कल्हण द्विजः' लिखा है। (जो० रा० ५) जोनराज ने कल्हण के वंशजों के लिए पुनः 'ब्राह्मणान्' 'ब्राह्मण्यान्' 'ब्राह्मण्यात्' विभिन्न पाठभेदों के साथ उल्लेख किया है। (जो० रा० ९९)

शुक ने अपनी राजतरंगिणी में 'श्री कल्हण द्विज' लिखा है। (शुक : रा० ५) कल्हण ने सन् ११५० ई०, जोनराज ने सन् १४४६ ई०, तथा शुक ने सन् १५८६ ई० में अपनी रचनाओं का लेखन-कार्य समाप्त किया था। इस प्रकार कल्हण के रचना काल से आगामी ४३६ वर्षों तक कल्हण तथा उसके वंशजो को द्विज किंवा ब्राह्मण माना जाता रहा है।

द्विज शब्द ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य यज्ञोपवीतधारी के लिए निर्देश किया गया है। किन्तु द्विज के साथ ब्राह्मण शब्द का प्रयोग कल्हण की जाति निश्चित कर देता है। आजकल द्विज शब्द ब्राह्मणो के लिए रूढ़ हो गया है। कल्हण को काश्मीरी ब्राह्मण होने का इतना गर्व था कि (रा० १ : १६०) उसने गान्धार ब्राह्मणों को द्विजाधम तक लिखा है (रा० १ : ३०७, ४३६, ११५०) तथापि उसने आर्यदेशीय ब्राह्मणों के लिए आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया है। वह ब्राह्मणों को पवित्र तथा सनातनी देखना पसन्द करता था। ब्राह्मणो के अनुचित कार्यों की उसने निन्दा की है। (१ : १५८)

जन्म वर्ष : कल्हण के पिता चम्पक का सन् ११३६ ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है। कल्हण ने सन् ११४८-११४९ ई० में राजतरंगिणी की रचना प्रारम्भ किया था। कल्हण ने स्वयं, अथवा मंख अथवा किसी अन्य तत्कालीन अथवा परवर्ती लेखक ने इस विषय पर प्रकाश नही डाला है। राजतरंगिणी के आन्तरिक साक्ष्य से ही उसका सम्भाव्य जन्म वत्सर निकालना होगा।

कल्हण की शैली से प्रकट होता है, वह तरंगिणी रचना काल में प्रौढ़ व्यक्ति था। उसका मस्तिष्क प्रौढ़ था। उसका विचार प्रौढ़ था। उसका शरीर प्रौढ़ था। राजा सुस्सल के पुनर्राज्य प्राप्ति के पूर्व

भिक्षाचर के सैनिकों के विश्वासघातक कार्यों का प्रत्यक्षदर्शी था। 'यह घटना सन् ११२१ ई० की है। (रा० ८ : ९४१) उसने राजा सुस्सल (सन् १११२–११२० ई०) के पूर्ववर्ती तीन राजाओं का आँखों देखा वर्णन किया है। यहाँ उसकी शैली घटना-क्रमों को एक के पश्चात् दूसरे को इस द्रुत गति से रखती है, जैसे कोई उन घटनाओं को स्वतः देखकर लिख रहा था। वह किंचित् मात्र कहीं भी अपनी लेखनी को ठहरने नहीं देता। शब्द नहीं खोजता। कड़ी नहीं जोड़ता। वह शीघ्रातिशीघ्र सब कुछ वर्णन कर देने के लिए उतावला हो उठता है। घटनायें जैसे स्वतः एक के पश्चात् दूसरी उसकी लेखनी से प्रसूत होती गयी है। घटना-क्रमों के मूल को जान लेता है। परिस्थितियों का रहस्य समझ जाता है।

कल्हण का पिता चम्पक सन् १०९८ ई० में० द्वारपति के पद पर था। राजा हर्ष ने उसे मण्डलेश भी बनाया था। निःसन्देह चम्पक इस समय प्रौढ़ व्यक्ति था। दोनों पद काश्मीर में सर्वश्रेष्ठ उत्तरदायित्व के थे। वे अनुभवी तथा प्रौढ़ बुद्धि वाले व्यक्ति को दिये जाते थे, जो उनकी गुरुता का अनुभव कर सकता था। यदि चम्पक का अवसान काल सन् ११३६ ई० मान लिया जाय तो यह समय सन् १०९८ ई० के लगभग पड़ता है। अर्थात् वह ३८ वर्ष की आयु तक द्वारपति एवं मण्डलेश हो चुका था। श्री स्तीन का मत है कि कल्हण का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रखा जा सकता है।

चम्पक किसी युद्ध में हत नहीं हुआ था। यदि वह अकाल मृत्यु किंवा किसी संघर्ष में हत किंवा आहत होता तो कल्हण उसका अवश्य वर्णन करता; क्योंकि कल्हण ने उसे राजनीति एवं संघर्षों में सक्रिय भाग लेते हुए चित्रित किया है। निश्चय ही चम्पक अपनी मृत्यु से दिवंगत हुआ था। यदि सन् १०९८ ई० में उसकी आयु ३८ वर्ष कम से कम मान ली जाय तो सन् ११३६ ई० में उसकी आयु ६८ वर्ष की ठहरती है। इस आन्तरिक साक्ष्य के अनुसार कल्हण का जन्म सन् १०१८ ई० के समीप रखा जा सकता है। श्री स्तीन के मत में तथ्य है कि कल्हण का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रखा जा सकता है।

कनक : उच्चल तथा सुस्सल भ्राता द्वय काश्मीर राज्य प्राप्ति हेतु कृत-संकल्प हो गये थे। उच्चल के कारण राजा हर्ष की अमानुषिक क्रूरता को भी लज्जित करने वाली हत्या की गयी। (रा० ७ : १७११, १७१२) राजा हर्ष का मुण्ड काटकर उच्चल के पास भेजा गया। मुण्ड को लगुडा पर खोसकर चारों ओर घुमाया गया। (रा० ७ : १७२१, १७२३) राज्य प्राप्ति के प्रश्न को लेकर दोनों भाई उच्चल तथा सुस्सल में भी संघर्ष आरम्भ हो गया। उस समय सभी अनुचर सात दिनों तक मार्ग में रोक दिये गये। कल्हण का संगीतज्ञ चचा कनक भी उसी रुके समुदाय में था। अवसर पाते ही वह समुदाय से निकल भागा। कनक अपने गुरु तथा राजा हर्ष के दुःखद अन्त से इतना खिन्न हो गया कि काश्मीर मण्डल त्याग दिया। वाराणसी में काशीवास करने लगा। (रा० ८ : १२, १३) काशी किंवा वाराणसी के इस सम्बन्ध के कारण कल्हण ने राजतरंगिणी में काशी का अत्यधिक वर्णन किया है।

चम्पक : प्रथम तरंग से षष्ठ तरंग के इतिपाठ के अतिरिक्त कल्हण ने प्रथम बार चम्पक का सहसा उल्लेख नन्दि क्षेत्र यात्रा के प्रसंग में किया है। कल्हण की यह शैली है। जब वह किसी व्यक्ति का उल्लेख करता है तो उसके पद, वंश आदि का उल्लेख करता है। यहाँ चम्पक का बिना किसी पक्ष आदि के वर्णन करना महत्व रखता है। वह मान लेता है कि लोग उसके पिता के सम्बन्ध में जानकारी रखते थे। कुछ विद्वानों का यह मत है कि यह वर्णन इस बात का प्रतीक है कि उसने अपने समय के लोगों के लिए राजतरंगिणी लिखी थी।

कल्हण स्वयं अपने पिता के साथ नन्दि क्षेत्र की यात्रा में प्रतिवर्ष जाता था। (रा० ७ : ९५४) वहाँ उसके पिता प्रचुर धन दान करते थे। (रा० ८ : २३६५) कल्हण के पिता निःसन्देह सन् ११३६ ई० तक जीवित थे। कल्हण ने जून सन् ११४८ ई० में रचना-कार्य आरम्भ किया था। सन् ११५० ई० में राजतरंगिणी का रचना-कार्य समाप्त किया। मालूम होता है, पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने रचना में हाथ लगाया था।

कल्हण ने तरंग सात की सामग्री पिता चम्पक तथा चाचा कनक से प्राप्त की थी। वे तत्कालीन घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे। राजा जयसिंह ने सन् ११२८ से ११५६ ई० तक राज्य किया था। राजा जयसिंह के जीवन काल में उसने रचना समाप्त की थी। (रा० ८ : ३४४४–३४४६) वह स्वयं २२ वर्षों के राज्य काल तथा घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था। वह उस समय युवक नहीं था। उसने रचना-काल स्वयं शक सम्वत् १०७१ दिया है। यह काल सप्तर्षि किंवा लौकिक सम्वत् से ४२२४ वर्ष होता है। इसी से शक तथा लौकिक सम्वत् की गणना का सूत्र मिलता है। सन् ईस्वी के अनुसार यह समय सन् ११४८ ई० आता है। लेकिन समाप्ति लौकिक सम्वत् ४२२० में किया था। यह समय सन् ११४९–११५० ईस्वी होता है। (रा० त० १ : ४४–५३; ८ : ३४०४) कल्हण ने जिस समय रचना-कार्य समाप्त किया था, उस समय राजा जयसिंह के राज्यकाल का २२ वाँ वर्ष था। राजा जयसिंह के शेष ९ वर्षों का वर्णन द्वितीय राजतरंगिणी के लेखक जोन राजा ने किया है। जयसिंह फाल्गुन वदी १५ लौकिक सम्वत् २४०३ में राज्यारोहण किया था।

मान लिया जाय कि रचना के समय कल्हण की आयु ४० वर्षों की थी, तो निःसन्देह उसने तरंग आठ की घटनाओं का आँखों देखा वर्णन किया है। तरंग आठ का समय केवल ४८ वर्षों का है। तरंग सात का काल लौकिक संवत् ४०७९ से आरम्भ होकर लौकिक संवत् ४१७७ में समाप्त होता है। यह मध्यवर्ती समय ६८ वर्ष होता है। कल्हण ने पिता चम्पक का वर्णन राजा हर्ष के काल में सक्रिय कार्य करते हुए किया है। इसी समय कनक भी राजनीति में सक्रिय दिखाई देता है। तरंग सात की समस्त सामग्री उसने पिता चम्पक तथा कनक तथा तत्कालीन जीवित प्रत्यक्षदर्शी वृद्धों से लिया है। यही कारण है कि तरंग सात में वह छोटी-छोटी घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करता है। तरंग आठ में और भी छोटी-से छोटी घटनाओं और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बातों का विस्तृत वर्णन करता है।

तरंग सात के ९८ वर्षों का इतिहास कल्हण ने १७३२ श्लोकों में किया है, किन्तु तरंग आठ के ४८ वर्षों का इतिहास ३४४९ श्लोकों में करता है। राजतरंगिणी में कुल ७८२६ श्लोक हैं। इसमें प्रथम से षष्ठ तरंगों का वर्णन ३०४५ श्लोकों में किया गया है। केवल दो तरंगों सात एवं आठ का वर्णन ५१८१ श्लोकों में किया जाता है। महाभारत काल से षष्ठ तरंगों का वर्णन उसने तत्कालीन प्राप्य ग्रन्थों प्रशस्ति पत्रों, जन-श्रुतियों, प्राचीन कथानकों, परम्पराओं आदि के आधार पर किया है।

चम्पक साधारण व्यक्ति नहीं था। वह महामात्य था। द्वारपति था। मण्डलेश था। अपने उत्तरदायित्वों का जिम्मेदारी के साथ निर्वाह किया था। दुग्धघात दुर्ग दरदों के अधिकार में था। दरदों ने दुर्ग को केन्द्र बनाकर काश्मीर मण्डल के अनेक ग्रामों पर अधिकार कर लिया था। महत्तम सहेल ने राजा को सलाह दिया कि दुर्ग घेर लिया जाय। द्वारपति चम्पक को दुर्ग घेरने और विजय करने का भार सौंपा गया। चम्पक प्रस्थान करने ही वाला था कि वातगण्ड, जिसे राजा ने द्वारपति के पद से हटा दिया था और जो चम्पक से ईर्ष्या करता था राजा हर्ष को अभियान से विरत कर दिया। तथापि चम्पक ने मधुमती नदी पार कर अपने सैनिकों को दुर्ग में प्रवेश करा दिया। (रा० त० ७ : ११७६-११७९)

अन्य स्थान पर राजा हर्ष को मन्त्रणा देते हुए चम्पक का उल्लेख किया गया है। उसने राजा हर्ष को सलाह दिया—'या तो युद्ध कीजिये अन्यथा लोहर रक्षा की दृष्टि से चले जाइये।' राजा के अनुचर प्रयाग ने राजा को मन्त्रणा दी कि वह युद्ध की अपेक्षा लोहर रक्षा हेतु चला जाय। राजा हर्ष स्वयं उच्चल से युद्ध करता वीरगति प्राप्त करना चाहता था। राजा के कायर पदाति सैनिक राजा के इस विचार के विरोधी थे। अनन्तपाल आदि राजपुत्रों की मन्त्रणा पर राजा अग्रसर होता था परन्तु दण्डनायक मार्गावरोध कर देते थे। चम्पक युद्ध का पक्षपाती था। राजभक्त था। चंपक की बात राजा ने नहीं मानी। परिणाम राजा का दु:खद अन्त हुआ।

युवराज भोजदेव जब प्रस्थान कर गया तो राजा उसके वियोग में दु:खी हो गया। राजा हर्ष ने चंपक को युवराज का पता लगाने के लिए कहा। राजा का आदेश सुनकर चंपक स्तब्ध हो गया। लंबी साँस लेकर कहा—'मेरे चले जाने पर आपका एकमात्र अनुचर प्रयाग आपके साथ रह जायगा। ऐसी परिस्थिति में आप मुझे अपने पास अपनी रक्षा के लिए रहने दीजिये।'

राजा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से चंपक की ओर देखा। राजा जानता था। चंपक एवं युवराज भोजदेव में एक अश्वनी को लेकर विवाद हो गया था। राजा ने व्यंगपूर्वक—उत्तर दिया—'चंपक तुम कृतघ्न नहीं हो। ऐसे काल में तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यों करते हो?' इस स्थान पर राजा ने चंपक का संबोधन मंत्री रूप से किया है। इससे प्रतीत होता है कि चंपक ने मंत्री पद पर भी कार्य किया था। राजा की बात सुनकर चंपक लज्जित हो गया। उदास मन युवराज भोज का पता लगाने के लिए चल पड़ा।

चंपक ने जिस समय प्रस्थान किया उस समय उसके साथ दो भाई, भृत्य, शेपराज आत्मज के साथ पचास अश्वारोही थे। किन्तु नदी पार पहुँचते-पहुँचते यह संख्या केवल पाँच रह गयी। उसके दोनों भाई शेपराज आत्मज तथा अश्ववार सड़क पर घोड़ों के मरने के कारण गिर गये। वहाँ चंपक केवल धानक के साथ घूमने लगा। युवराज भोजदेव का बिना पता लगाये वह लौटना नहीं चाहता था। वह भ्रमण करता सायंकाल वितस्ता सिन्धु के संगम पर पहुँच गया।

इस उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं। चम्पक के दो भाई थे। वह मन्त्री था। कुशल सैनिक था। साहसी था। राजा का विश्वासपात्र था। कृतघ्न नहीं था। कल्हण ने अपने पिता चम्पक के दोनों भाइयों का नाम नहीं दिया। केवल कनक का अपनी रचना में उल्लेख किया है। श्रीनगर का राज्य हर्ष ने त्याग किया तो उसके साथ उसका पुराना भृत्य प्रयाग रह गया था। राजा के शरीर पर केवल एक वस्त्र था। वह अत्यन्त हीन एवं विपन्नावस्था में था। राजा की यह करुण ने स्थिति देखकर, चम्पक का भृत्य जेलक भी राजा के साथ हो गया। राजा के अन्तिम काल में स्वामिभक्त चम्पक क्यों नहीं उपस्थित था इसका स्पष्टीकरण कल्हण ने स्वयं किया है। राजा ने उसे युवराज को खोजने के लिए भेज दिया था।

जेलक के उद्धरण से यह बात प्रकट होती है। कल्हण का समस्त परिवार सभृत्य स्वामिभक्त था। उसके कुटुम्ब तथा राजा के कुटुम्ब का घर जैसा पारस्परिक व्यवहार था। वे एक कुटुम्ब के प्राणी दु:ख-सुख दोनों में थे। (रा० त० ७ : १५८६–१५९२)

कल्हण का कुल अभिजात था। राज्य में प्रतिष्ठा प्राप्त था। राजवंश का विश्वासपात्र था। अतएव तरंग सात में वर्णित राजाओं का इतिहास सप्रमाण है। चम्पक, कनक तथा उसका कुटुम्ब उसके प्रत्यक्षदर्शी थे। इतिहास लिखने की समग्र सामग्री उसे राज्य के कागज-पत्रों के साथ सरलता पूर्वक उपलब्ध थी। इतिहास लिखने के लिए साधन सम्पन्न था। उसने अपने को इस प्रकार उस समय का व्यक्ति प्रमाणित किया है।

धर्म : कल्हण शैव था। शिव भक्त था। काश्मीरी सामान्यतः शिव उपासक एवं पूजक होते हैं। कल्हण उसका अपवाद नहीं था। किन्तु बौद्ध धर्म का भी वह प्रशंसक था। बुद्ध-दर्शन का उसपर प्रभाव था। शिव भक्ति तथा मत का अत्यधिक वर्णन कल्हण ने किया है। उसके पश्चात् उसने बुद्ध धर्म को ही स्थान दिया है। उसके पिता प्रतिवर्ष नन्दिक्षेत्र की तीर्थ यात्रा के लिए जाते थे। कल्हण भी पिता के साथ जाता था। वहाँ नन्दि पुराण भक्ति के साथ सुनता था। भूतेश्वर के पवित्र वातावरण में, मन्दिरों की सुन्दर शृंखलाओं के मध्य, सोदर तीर्थ का जल सेवन करते, प्रकृति के शान्त, गम्भीर, सुरम्य, हरित वातावरण में वह शैवदर्शन एवं शिव सम्बन्धी कथादि सुनता था। इस वातावरण का संस्कार बाल्यकाल से ही उस पर पड़ा था। उसने शैव दर्शन के आचार्य भट्ट कल्लट का नाम आदर एवं श्रद्धा के साथ लिया है। कल्लट ने काश्मीर में शैव शास्त्र का प्रचार किया था। (रा० ५ : ६६)

शिवभक्त राजाओं का जहाँ भी वही कल्हण ने वर्णन किया है उसकी लेखनी से उनके लिए श्रद्धा-भक्ति प्रकट हुई है। जलौक (रा० स० : ३३५-३३८) विजय (रा० २ : १) सन्धि मति (रा० २ : ६५) इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उन्होंने शैव मत का प्रचार किया था। शिव-पूजक थे। कल्हण ने स्वर्ग प्राप्ति किंवा किसी पुण्य लोक में जाने की अपेक्षा शिव सायुज्यता को प्राथमिकता दी है। (रा० १:१५२) शिव मन्दिरों में शिव के सम्मुख नृत्य-गान का वर्णन ललित पदों में किया है। (रा० : १ : १५१, १५४, २७१, २८०)

रावण शिव भक्त था। शेष भारत में वह अत्याचारी, कुमार्गी एवं राक्षस रूप में चित्रित किया गया है। किन्तु कल्हण शिव भक्त होने के कारण रावण के लिए अशोभनीय शब्दों का प्रयोग नहीं करता। भारत में शायद ही कोई रावण नाम अपने पुत्र का रखता है। काश्मीर में रावण नाम के अनेक राजा हुए है। शिव उपासक होने के कारण रावण के प्रति शिवभक्त काश्मीर की जनता ने घृणा नहीं प्रकट किया है। शिव की रावण पर कृपा थी। इस मान्यता की वृद्धि के लिए रामायण कालीन रावण द्वारा पूजित शिव-लिंग काश्मीर में स्थापित करने की चर्चा कल्हण करता है। (रा० ३ : ४४,)

शिव का प्रतीक शिव लिंग है। शिवलिंगों की स्थापना एवं उनकी पूजा का उल्लेख करते, कल्हण थकता नहीं। राजा सन्धि मति ने महालिंगो, महा वर्नों, महा वृक्षों तथा महा त्रिशूलों से काश्मीर मण्डल को आच्छादित कर दिया था। इस स्थल का वर्णन अतीव श्रद्धा एवं वन्दनामय वाणी में किया गया है। (रा० २ : १३३)। शिव भक्त का रूप भी कल्हण ने खींचा है। भस्मस्मेर जटाजूट धारी, अक्ष सूत्र धारी, एवं रुद्राक्ष अंकित उन्हें चित्रित किया है। (रा० २ : १२७-१७६)

स्मशानेश्वर शिव है। योगीश्वर शिव है। कल्हण स्मशान का वर्णन करते हुए वहाँ सन्धीश्वर स्थापना का उल्लेख करता है। (रा० २ : १३४) प्रतिमा लिंगों की स्थापना की भी चर्चा करता है। (रा० २ . १३५) शिव की अर्चना (रा० २ : ११४, १३८) भूतभावन को प्रसन्नता (रा० २ : १५३) भूतभर्ता अर्थात् भूतेश किंवा नन्दीश पूजा तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करता है। (रा० २ : १६६) शिव-भक्तो के वर्णन में वह तल्लीन हो जाता है। वह कहता है—'पशुपति के पाद मूल में जो जाता है, उसे भस्म मिलता है। और जो शिव उपासक वृषभ की सेवा करता है, उसे सुवर्ण की प्राप्ति होती है।' कल्हण यहाँ पर शिवभक्तो का स्थान बहुत ऊपर उठा देता है। (रा० ३ : १९९)

कल्हण ने सम्पूर्ण राजतरंगिणी में भगवान् बुद्ध के प्रति अनुपम आदर एवं श्रद्धा प्रदर्शित की है। अशोक से लेकर उसके काल तक जिन राजाओं ने बुद्ध विहार, स्तूप तथा चैत्यादि निर्माण कराया था उनका

नाम एवं स्मरण श्रद्धा-भक्ति के साथ कल्हण ने किया है। उसने उक्त निर्माणों को कश्मीर मण्डल में खोज-खोजकर, शिव मन्दिरों के समान लिखा है। राजाओं के अतिरिक्त यदि किसी अन्य व्यक्ति ने भी विहार, चैत्य, स्तूपादि का निर्माण कार्य किया था तो उसका भी सादर उल्लेख किया है। उनपर चढ़ाये अग्रहारों एवं दान कर्मों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

धर्म विश्वास में कल्हण ने कट्टरता कहीं नहीं प्रदर्शित की है। उसने शैव एवं बौद्ध धर्म को परस्पर विरोधी नहीं माना है। दोनों का उपासक होने के कारण उन्हें एक दूसरे का पूरक माना है। सहायक माना है। बुद्ध को अन्य अवतारों के समान अवतार मान कर वन्दना की है। बौद्धों के प्राबल्य को रोककर जलौक ने शैव धर्म के पुनर्स्थापन के लिए प्रयास करते हुए विहारों तथा बौद्ध धर्म-स्थानों को क्षति पहुँचाने का प्रयास किया तो जलौक का विचार नाटकीय ढंग से कल्हण बदल देता है। उसने शिव के साथ बोधिसत्व के प्रति भी रुचि राजा में उत्पन्न होने की कथा कही है। जलौक से विहार-निर्माण भी करा देता है।

धार्मिक रुचि कल्हण की इससे प्रकट होती है कि वह मेघवाहन को आदर्श किंवा अनुकरणीय राजा मानता है। मेघवाहन विश्वविजय द्वारा अहिंसा का प्रचार करना चाहता था। उसने धुर दक्षिण भारत तक विजय कर राजाओं से अहिंसक होने की प्रतिज्ञा करायी थी। दिग्विजय के स्थान पर मेघवाहन धर्म-विजय किया था। मेघवाहन पशुबलि के स्थान पर, पशु की रक्षा के लिए स्वयं अपनी बलि चढ़ाने के लिए बारंबार उद्यत हो गया था। कल्हण ने अहिंसा व्रत का ओजमयी भाषा में वर्णन किया है। कल्हण प्रतीत होता है, शाकाहारी था। उसने प्याज तथा लहसुन भोजी ब्राह्मणों की निन्दा की है।

अहिंसा व्रत एवं अहिंसक भावना का अवसर मिलते ही सबल भाषा में उल्लेख करता है। भगवान् बुद्ध की प्रतिमा राजा हर्ष जिस समय परिहासपुर में खण्डित करना चाहता था तो उसके चाचा कनक ने राजा को इस अनुचित कार्य से विरत किया था। बौद्धमतानुयायी दूसरों का मारा मांस निःसंकोच खा लेते हैं। परन्तु कल्हण इसको उचित नहीं मानता। वह एक शुद्ध ब्राह्मण के समान शाकाहारी था। यद्यपि काश्मीर में आमिष भोजियों की संख्या सर्वाधिक सर्वदा से रही है।

कल्हण ने बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। इससे प्रकट होता है कि उसने त्रिपिटकों का अध्ययन किया था। कल्हण ने बौद्ध दर्शन, परम्परा, शासन तथा उसकी पद्धतियों का पूर्णतया अध्ययन किया था। अन्यथा वह साधिकार विश्वास के साथ लिखने में सफल न होता।

समकालीन व्यक्ति : कल्हण ने तत्कालीन समाज तथा व्यक्तियों का वर्णन बड़ी निष्ठा के साथ किया है। रिल्हण राजा जयसिंह का अमात्य था। (रा० ८ : २४०३) वह राजा सुस्सल का भी विश्वासपात्र था। कल्हण राजा जयसिंह को विद्या का संरक्षक कहता है। रिल्हण, उसके भ्राता, उसकी पत्नी के दान तथा स्थान-स्थान पर उसके सैन्य चातुर्य और वीरता का वर्णन किया है। (रा० ८ : २४०५–२४१८) सुरेश्वरी क्षेत्र में रिल्हण ने अनेक पुण्य-कार्य किये थे। कल्हण उसका विशद वर्णन करता है। उसकी प्रशस्ति सरल भाषा में किया है। प्रतीत होता है कल्हण का उससे व्यक्तिगत स्नेह था। (रा० ८ : ३३६४–७०)।

दूसरा प्रमुख व्यक्ति अलंकार था। वह राजा जयसिंह के उत्तरार्ध राज्य काल में गंजाधिप था (रा० ८ : २४२३)। उसका भी कल्हण ने आदर के साथ उल्लेख किया है। कवि मंख का वर्णन कल्हण ने एक काव्यकार की दृष्टि से नहीं बल्कि राजा जयसिंह के सन्धि-विग्राहक के रूप में किया है। (रा० ८ : ३३५४)

गंजाधिप अलंकार का मंख भ्राता था। मंख ने अपने काव्य में अपने भाई को विद्वानों तथा कलाविदों का संरक्षक कहा है। मंख का केवल एक बार उल्लेख कल्हण ने किया है। यह भी श्रीकण्ठचरित काव्य के रचनाकार के रूप में। (रा० ८: ३३५४) कल्हण ने द्वारपति उदय का भी उल्लेख किया है। किन्तु उसके प्रति विशेष आदर प्रकट नही करता। एक व्यक्ति का नाम उसने और आदर के साथ लिया है। उसका नाम है, राज वदन। (रा० ८ : २६९८) राज वदन ने राजा जयसिंह के विरुद्ध विद्रोह किया था। अन्य नामों का भी उसने उल्लेख किया है, परन्तु उनका विशेष महत्त्व नही है।

कल्हण और मंख : तत्कालीन लेखकों मे कल्हण का उल्लेख केवल मंख ने कल्याण नाम से किया है। जबकि कल्हण ने 'मंख' शुद्ध और प्रचलित नाम लिखा है। यह एक विचित्र बात है। लेखकों, कवियों तथा विद्वानों का उनके जीवन-काल में कम आदर-सत्कार देखा गया है। कल्हण इसका अपवाद नहीं था। डाक्टर व्हूलर के अनुसार मंख ने श्रीकण्ठचरित महाकाव्य की रचना सन् ११२८-११४४ ई० के मध्यवर्ती काल मे किया था। सन् ११४४ ई० के दो प्रमाणों से निश्चित हो जाता है। अलंकार के निवास-स्थान पर एक सभा हुई थी। अतिथियों में कन्नौज के राजा गोविन्द चन्द्र का दूत सुहले भी उपस्थित था। राजा गोविन्द चन्द्र का काल सन् ११२०-११४४ ई० है। कल्हण ने अलंकार का उल्लेख दो स्थानों पर राज स्थानीय पदाधिकारी के रूप में किया है। (रा० ८ : २५५७, २६१८) उसने अलंकार का उल्लेख पुनः वृहद्गंज के रूप में किया है। (रा० ८ : २४२३)

मंख ने भ्राता अलंकार को राज्य का सन्धि-विग्राहक लिखा है। इससे कोई उलझन नही पैदा होती। मंख ने स्वयं लिखा है। राजा सुस्सल ने अलंकार को सन्धि विग्राहक पद पर रखा था। उसका द्वितीय पद 'स्थानीय' तथा 'वृहद् गंज' राजा जयसिंह के काल का हो सकता है। कल्हण स्वयं लिखता है। मंख ने अपने भाई अलंकार के सन्धि विग्राहक पद को प्राप्त किया था। (रा० : ८ : ३३५४) मंख ने जयसिंह को अपना राजा स्वीकार किया है। मंख ने कोंकन के राजा अपरादित्य का उल्लेख किया है। वह सन् ११८६ ई० तक राज्य करता रहा। इससे इस बात की पुष्टि होती है। काश्मीर के लेखकों को तत्कालीन भारतीय राजाओ एवं देश-काल का ज्ञान था।

कल्हण का घटना-क्रम वर्णन एवं नामों का उल्लेख मंख के श्रीकण्ठचरित से मिलता है। वह कल्हण की सत्यता प्रमाणित करता है। यदि सन् ११४४ ई० श्रीकण्ठचरित की रचना का काल मान लिया जाय तो राजतरंगिणी की रचना के पूर्व मंख अपना महाकाव्य समाप्त कर चुका था। श्रीकण्ठचरित में मुख्यतः पच्चीसवाँ अध्याय उच्चकोटि की काव्य रचना है।

मंख अपने भाई अलंकार के निवास-स्थान पर हुई सभा का उल्लेख करता है। उस सभा में उसने अपने काव्य को विद्वानों के सम्मुख उपस्थित किया था। उपस्थित व्यक्तियों तथा विद्वानों का परिचय उनके पदो के साथ दिया है। उसमें ३० कवियों एवं विद्वानों का उल्लेख है। इस तालिका में कल्हण का नाम नही है। यद्यपि कल्हण ने अलंकार एवं मंख दोनों का नाम सादर लिया है। मंख ने कल्याण के सन्दर्भ में तीन पद लिखे है। उनमें उल्लेख किया गया है कि अलक दत्त ने कवि के रूप में कल्याण को चुना था। वह उसके मनोवाञ्छित कार्य को पूरा कर सकता था। उसने पुनः लिखा है कल्याण की कविता महाकवि बिल्हण की प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है। राजतरंगिणी सन् ११४९–११५० ई० में समाप्त हुई थी। श्रीकण्ठ-चरित सन् ११४४ ई० में समाप्त हुआ था। अतएव श्रीकण्ठचरित में राजतरंगिणी का उल्लेख नहीं हो सकता। मंख के श्रीकण्ठचरित का इसलिए उल्लेख राजतरंगिणी में है कि वह उस समय लिखी जा चुकी थी। उपलब्ध थी।

कल्हण और कल्याण : द्वितीय राज तरंगिणी के रचनाकार जोन राज ने मंख के श्रीकण्ठ चरित पर वार्तिक लिखा है। उसने लिखा है अलक दत्त कल्याण का संरक्षक था। वह सन्धि विग्राहक के पद पर था। किन्तु कल्याण के विषय में जोन राज कुछ प्रकाश नहीं डालता। उसने भाष्य किंवा वार्तिक लिखते समय यह नही लिखा है कि मंख वर्णित कल्याण ही कल्हण है। जोन राज अपनी रचना में कल्हण का उल्लेख करता है। कल्हण के छोडे कार्य को वह अपने समय तक के राजाओं एवं बादशाहों का वर्णन कर पूरा करता है। आश्चर्य है उसने मंख एवं स्वतः वर्णित कल्याण को कही कल्हण नही माना है।

कल्हण ही मंख वर्णित कल्याण है ? अथवा और कोई व्यक्ति है ? इस पर विचार करना आवश्यक है। श्री स्तीन का मत है कि कल्हण शब्द प्राकृत 'कल्लाण' तथा 'संस्कृत' 'कल्याण' का अपभ्रंश है। स्तीन अपने मत की पुष्टि में जयापीड की रानी का उदाहरण उपस्थित करते है। जयापीड की रानी का नाम 'कल्याण' देवी था। 'कल्याण', 'कल्लणा' तथा 'कल्हणिका' एक ही शब्द किंवा नाम के भिन्न रूप है। 'कल्हणिका' शब्द संस्कृत 'कल्याणिका' है। राजवंश एवं अभिजात कुल की महिलाओ के लिये नाटकों तथा उपाख्यानों में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। राजवंश की स्त्रियां राजा कलश तथा जयसिंह के समय तक इसी सम्बोधन से सम्बोधित की जाती थी। संस्कृत नाटकों तथा काव्यों में सम्भ्रान्त महिलाओ तथा रानियों के लिये 'कल्याणी' शब्द का प्रयोग सम्बोधन के लिये किया जाता रहा है। (रा० ४:४६१, ४६७, ७:२१३, ८:१६४८, ३०६९)

कल्हण ने स्वयं राज तरंगिणी में सहदेव के राजपुत्र कल्हण का उल्लेख किया है। (रा० ८ : ६२६) इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कल्हण नाम उस समय प्रचलित था। लोगों का नाम कल्हण रखा जाता था। सल्हण, रल्हण, बिल्हण, मल्हण आदि नाम तुल्य ध्वनि करते है। प्रश्न है। मंख ने प्रचलित नाम कल्हण न देकर उसका शुद्ध संस्कृत अप्रचलित नाम 'कल्याण' क्यो दिया ? कल्हण ने स्वतः कही भी अपने कल्याण नाम की ओर गौण रूप से भी संकेत नही किया है। मंख ने राजतरंगिणी में वर्णित अनेक नामों को अक्षरशः रूप अपने काव्य में दिया है। क्या कारण है कि कल्हण का नाम ही बदलकर उसने कल्याण क्यों लिख दिया ? आदर के लिये कल्हण का शुद्ध संस्कृत नाम कल्याण मंख ने दिया है। यह एक तर्क उपस्थित किया जाता है।

कल्हण ने राजतरंगिणी में सर्वदा प्रचलित नाम दिया है। शुद्ध संस्कृत रूप में नाम देने का प्रयास नही किया है। कल्हण ने प्रचलित नाम 'गग्ग' 'गर्ग' के स्थान पर 'गगन चन्द्र' देने का प्रयास नही किया है। उसने व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप को परिवर्तित करने का प्रयास नही किया है। (रा० ८ : ३३, ३८, ४३, १८२, १९६, ३४८, ३७६, ३८०, ३९०, ४१५, ४३०, ५०२, ५१५, ५८१, ५९५, ६०५, ६१५, ३४४४)

दूसरा उदाहरण 'लोठन' नाम है। कल्हण ने 'लोठन', 'लोठक' आदि प्रचलित अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया है। उसने शुद्ध 'लोष्टक' शब्द नही दिया है। 'लोष्टक' शब्द का प्रयोग एक स्थान पर किया हैं। (रा० ८ : २०२) मंख का वर्णित कल्याण ही कल्हण है इस पर और अनुसन्धान की आवश्यकता है। श्री जोनराज का कल्याण शब्द के साथ कल्हण न लिखना, शान्त रह जाना, जबकि वह स्वयं कल्हण के छोडे कार्य को पूर्ण कर रहा था विषय को सन्देहास्पद बना देता है। सम्भव है। मंख के समय कल्याण नाम का ही कोई कवि रहा हो जिसका ग्रन्थ लुप्त हो गया हैं। क्योंकि जिस समय मंख ने अपना काव्य लिखकर समाप्त किया उसके ४ वर्ष पश्चात् कल्हण ने लिखना और ६ वर्ष पश्चात् रचना समाप्त किया

गंजाधिप अलंकार का मंख भ्राता था। मंख ने अपने काव्य में अपने भाई को विद्वानों तथा कलाविदों का संरक्षक कहा है। मंख का केवल एक बार उल्लेख कल्हण ने किया है। यह भी श्रीकण्ठचरित काव्य के रचनाकार के रूप में। (रा० ८: ३३५४) कल्हण ने द्वारपति उदय का भी उल्लेख किया है। किन्तु उसके प्रति विशेष आदर प्रकट नहीं करता। एक व्यक्ति का नाम उसने और आदर के साथ लिया है। उसका नाम है, राज वदन। (रा० ८ : २६९८) राज वदन ने राजा जयसिंह के विरुद्ध विद्रोह किया था। अन्य नामों का भी उसने उल्लेख किया है, परन्तु उनका विशेष महत्व नहीं है।

कल्हण और मंख : तत्कालीन लेखकों में कल्हण का उल्लेख केवल मंख ने कल्याण नाम से किया है। जबकि कल्हण ने 'मंख' शुद्ध और प्रचलित नाम लिखा है। यह एक विचित्र बात है। लेखकों, कवियों तथा विद्वानों का उनके जीवन-काल में कम आदर-सत्कार देखा गया है। कल्हण इसका अपवाद नहीं था। डाक्टर ब्हुलर के अनुसार मंख ने श्रीकण्ठचरित महाकाव्य की रचना सन् ११२८-११४४ ई० के मध्यवर्ती काल में किया था। सन् ११४४ ई० के दो प्रमाणों से निश्चित हो जाता है। अलंकार के निवास-स्थान पर एक सभा हुई थी। अतिथियों में कन्नौज के राजा गोविन्द चन्द्र का दूत सुहले भी उपस्थित था। राजा गोविन्द चन्द्र का काल सन् ११२०-११४४ ई० है। कल्हण ने अलंकार का उल्लेख दो स्थानों पर राज स्थानीय पदाधिकारी के रूप में किया है। (रा० ८ : २५५७, २६१८) उसने अलंकार का उल्लेख पुनः बृहद्गंज के रूप में किया है। (रा० ८ : २४२३)

मंख ने भ्राता अलंकार को राज्य का सन्धि-विग्राहक लिखा है। इससे कोई उलझन नहीं पैदा होती। मंख ने स्वयं लिखा है। राजा सुस्सल ने अलंकार को सन्धि विग्राहक पद पर रखा था। उसका द्वितीय पद 'स्थानीय' तथा 'बृहद् गंज' राजा जयसिंह के काल का हो सकता है। कल्हण स्वयं लिखता है। मंख ने अपने भाई अलंकार के सन्धि विग्राहक पद को प्राप्त किया था। (रा० : ८ : ३३५४) मंख ने जयसिंह को अपना राजा स्वीकार किया है। मंख ने कोंकन के राजा अपरादित्य का उल्लेख किया है। वह सन् ११८६ ई० तक राज्य करता रहा। इससे इस बात की पुष्टि होती है। काश्मीर के लेखकों को तत्कालीन भारतीय राजाओं एवं देश-काल का ज्ञान था।

कल्हण का घटना-क्रम वर्णन एवं नामों का उल्लेख मंख के श्रीकण्ठचरित से मिलता है। वह कल्हण की सत्यता प्रमाणित करता है। यदि सन् ११४४ ई० श्रीकण्ठचरित की रचना का काल मान लिया जाय तो राजतरंगिणी की रचना के पूर्व मंख अपना महाकाव्य समाप्त कर चुका था। श्रीकण्ठचरित में मुख्यतः पच्चीसवां अध्याय उच्चकोटि की काव्य रचना है।

मंख अपने भाई अलंकार के निवास-स्थान पर हुई सभा का उल्लेख करता है। उस सभा में उसने अपने काव्य को विद्वानों के सम्मुख उपस्थित किया था। उपस्थित व्यक्तियों तथा विद्वानों का परिचय उनके पदों के साथ दिया है। उसमें ३० कवियों एवं विद्वानों का उल्लेख है। इस तालिका में कल्हण का नाम नहीं है। यद्यपि कल्हण ने अलंकार एवं मंख दोनों का नाम सादर लिया है। मंख ने कल्याण के सन्दर्भ में तीन पद लिखे हैं। उसमें उल्लेख किया गया है कि अलक दत्त ने कवि के रूप में कल्याण को चुना था। वह उसके मनोवांछित कार्य को पूरा कर सकता था। उसने पुनः लिखा है कल्याण की कविता महाकवि बिल्हण की प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है। राजतरंगिणी सन् ११४९-११५० ई० में समाप्त हुई थी। श्रीकण्ठ-चरित सन् ११४४ ई० में समाप्त हुआ था। अतएव श्रीकण्ठचरित में राजतरंगिणी का उल्लेख नहीं हो सकता। मंख के श्रीकण्ठचरित का इसलिए उल्लेख राजतरंगिणी में है कि वह उस समय लिखी जा चुकी थी। उपलब्ध थी।

कल्हण और कल्याण : द्वितीय राज तरंगिणी के रचनाकार जोन राज ने मंख के श्रीकण्ठ चरित पर वार्तिक लिखा है। उसने लिखा है अलक दत्त कल्याण का संरक्षक था। वह सन्धि विग्राहक के पद पर था। किन्तु कल्याण के विषय में जोन राज कुछ प्रकाश नही डालता। उसने भाष्य किंवा वार्तिक लिखते समय यह नही लिखा है कि मंख वर्णित कल्याण ही कल्हण है। जोन राज अपनी रचना में कल्हण का उल्लेख करता है। कल्हण के छोडे कार्य को वह अपने समय तक के राजाओं एवं बादशाहों का वर्णन कर पूरा करता है। आश्चर्य है उसने मंख एवं स्वतः वर्णित कल्याण को कहीं कल्हण नहीं माना है।

कल्हण ही मंख वर्णित कल्याण है? अथवा और कोई व्यक्ति है? इस पर विचार करना आवश्यक है। श्री स्टीन का मत है कि कल्हण शब्द प्राकृत 'कल्लाण' तथा 'संस्कृत' 'कल्याण' का अपभ्रंश है। स्टीन अपने मत की पुष्टि में जयापीड की रानी का उदाहरण उपस्थित करते हैं। जयापीड की रानी का नाम 'कल्याण' देवी था। 'कल्याण', 'कल्लणा' तथा 'कल्हणिका' एक ही शब्द किंवा नाम के भिन्न रूप हैं। 'कल्हणिका' शब्द संस्कृत 'कल्याणिका' है। राजवंश एवं अभिजात कुल की महिलाओं के लिये नाटकों तथा उपाख्यानों में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। राजवंश की स्त्रियाँ राजा कलश तथा जयसिंह के समय तक इसी सम्बोधन से सम्बोधित की जाती थी। संस्कृत नाटकों तथा काव्यों में सम्भ्रान्त महिलाओं तथा रानियों के लिये 'कल्याणी' शब्द का प्रयोग सम्बोधन के लिये किया जाता रहा है। (रा० ४:४६१, ४६७, ७:२६३, ८:१६४८, ३०६९)

कल्हण ने स्वयं राज तरंगिणी में सहदेव के राजपुत्र कल्हण का उल्लेख किया है। (रा० ८: ९२६) इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कल्हण नाम उस समय प्रचलित था। लोगों का नाम कल्हण रखा जाता था। सल्हण, रल्हण, विल्हण, मल्हण आदि नाम तुल्य ध्वनि करते हैं। प्रश्न है। मंख ने प्रचलित नाम कल्हण न देकर उसका शुद्ध संस्कृत अप्रचलित नाम 'कल्याण' क्यों दिया? कल्हण ने स्वतः कहीं भी अपने कल्याण नाम की ओर गौण रूप से भी संकेत नही किया है। मंख ने राजतरंगिणी में वर्णित अनेक नामों को अक्षरशः रूप अपने काव्य में दिया है। क्या कारण है कि कल्हण का नाम ही बदलकर उसने कल्याण क्यों लिख दिया? आदर के लिये कल्हण का शुद्ध संस्कृत नाम कल्याण मंख ने दिया है। यह एक तर्क उपस्थित किया जाता है।

कल्हण ने राजतरंगिणी में सर्वदा प्रचलित नाम दिया है। शुद्ध संस्कृत रूप में नाम देने का प्रयास नही किया है। कल्हण ने प्रचलित नाम 'गग्ग' 'गर्ग' के स्थान पर 'गगन चन्द्र' देने का प्रयास नहीं किया है। उसने व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप को परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। (रा० ८ : ३३, ३८, ४३, १८२, १९६, ३४८, ३७६, ३८०, ३९०, ४१५, ४३०, ५०२, ५१५, ५८१, ५९४, ६०५, ६१५, ३५४४)

दूसरा उदाहरण 'लोठन' नाम है। कल्हण ने 'लोठन', 'लोठक' आदि प्रचलित अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया है। उसने शुद्ध 'लोष्ठक' शब्द नही दिया है। 'लोष्ठक' शब्द का प्रयोग एक स्थान पर किया है। (रा० ८ : २०२) मंख का वर्णित कल्याण ही कल्हण है इस पर और अनुसन्धान की आवश्यकता है। श्री जोनराज का कल्याण शब्द के साथ कल्हण न लिखना, शान्त रह जाना, जबकि वह स्वयं कल्हण के छोड़े कार्य को पूर्ण कर रहा था विषय को सन्देहास्पद बना देता है। सम्भव है। मंख के समय कल्याण नाम का ही कोई कवि रहा हो जिसका ग्रन्थ लुप्त हो गया है। क्योंकि जिस समय मंख ने अपना काव्य लिखकर समाप्त किया उसके ४ वर्ष पश्चात् कल्हण ने लिखना और ६ वर्ष पश्चात् रचना समाप्त किया

था। कल्याण चाहे कल्हण हो या नहीं कल्हण की ऐतिहासिकता जोनराज, श्रीवर, शुक आदि राजतरंगिणी-कारों के कारण प्रमाणित है। वह ऐतिहासिक व्यक्ति है।

कल्हण वंशज : कल्हण की ख्याति राजतरंगिणी लेखक के रूप में दिन पर दिन बढ़ती गयी। काश्मीर में दूसरे इतिहास के अभाव में कल्हण का एकमात्र इतिहास शेष रह गया था। अतएव हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने कल्हण के इतिहास का अध्ययन किया। इस अध्ययन के कारण उसकी ख्याति बढ़ती गयी। उसके वंशजो का नाम 'काल्हण' तथा 'कल्हणेय' पड़ गया। जोनराज ने उसके वंशजों को 'कल्हण नन्दन' लिखा है। (जो० रा० ९४)। जोनराज ने उसके वंशजों को पुनः 'काल्हणीन' लिखा है। (जो० रा० ९९)। इसका पाठभेद 'काल्हणान' तथा 'कल्हणीन' भी मिलता है। (जो० रा० १०१)। जोनराज ने 'काल्हण' तथा 'कल्हणात्मजै' शब्द का प्रयोग उसके वंशजों के लिए किया है। (जो० रा० १०२)

श्रीवर ने 'कल्हण' शब्द का प्रयोग किया है। (जैन० राज : २ : १४९) अन्य स्थानों पर कल्हण के सम्बन्ध में और उल्लेख नहीं मिल सका है।

अध्ययन : कल्हण पुरातन शैली का विद्वान् था। उसका पठन-पाठन अभिजात कुलीन ब्राह्मण बालक के समान हुआ था। उसने महाभारत और रामायण की घटनाओं का अत्यधिक उल्लेख किया है। दोनों ग्रन्थों के कथानकों का प्रचुर वर्णन राजतरंगिणी में मिलता है। उनकी घटनाओं की तुलना राज-तरंगिणी की घटनाओं से किया है। कल्हण ने पुराण विशेषकर नन्दी और नीलमत पुराण का अध्ययन किया था। उसने कालिदास के रघुवंश, मेघदूत, बाण के हर्ष चरित, तथा वराह मिहिर के बृहद् संहिता का अध्ययन किया था। वेद, योग वाशिष्ठ रामायण और विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी पढा था। पुरानी शैली के पण्डित किंवा ब्राह्मण ज्योतिष, वेद, पुराण, इतिहास, व्याकरण, साहित्य, अर्थशास्त्र, स्मृति, आयुर्वेद का एक साथ अध्ययन करते थे। कल्हण ने स्मर शास्त्र, कामशास्त्र, कुट्टनीमतम् तथा भरत के नाट्य शास्त्र का अध्ययन किया था। उसने विज्ञान का भी अध्ययन किया था। उसने सूर्य ज्योति (रा० ३ : ४९२) तथा जल (रा० ३ : २०२) का वर्णन एक वैज्ञानिक की तरह किया है। कल्हण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र विद्वान् था। इस प्रकार के विद्वानो को यह उपाधि दी जाने लगी थी।

ज्योतिष का उसने ज्ञान प्रकट किया है। उसने हर्ष की कुण्डली भी राजतरंगिणी मे दे दिया है। उसके ग्रहो'की तुलना धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन से करता है। उसके लेख से प्रकट होता है उसने पतंजलि के महाभाष्य का विषद अध्ययन किया था। चान्द्र व्याकरण भी उसने पढा था। रस, छंद, अलंकार आदि के समस्त अंगो में पारंगत था। (रा० २ : ८९, ३ : ४४०) बाण के हर्ष चरित का उसने अध्ययन ही नही किया था बल्कि उसके २६ श्लोकों का उद्धरण राजतरंगिणी मे दिया है। राजतरंगिणी लेखन में वह बाण के हर्षचरित तथा विल्हण के दशकुमार चरित से अत्यधिक प्रभावित था।

कल्हण ने लौकिक रीति-रिवाज, संस्कार, कुसंस्कार, अन्धविश्वास, जनश्रुतियों, परम्परा, शुभ-अशुभ, शकुन-अपशकुन, आदि का उल्लेख प्रसंग आते ही किया है। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उसने शुभाशुभ लक्षणों से, शकुन-अपशकुन से भविष्य की घटनाओं की ओर संकेत किया है। इस प्रकार प्रकट होता है, उसे फलित ज्योतिष का गहन अध्ययन था। दैव विद् तुल्य उसकी लेखनी चली है। (रा० २ : १४९; १ : ५५; ७ : १७२०; ८ : ७१५; ३ : ४३३ तथा ३ : ४४०)। कल्हण ने भवभूति एवं वाक्पति राज का उल्लेख आदर के साथ किया है। (रा० ४ : १४४) उसने इसी सन्दर्भ में यशो वर्मा का उल्लेख किया है जहाँ कवियों का आदर एवं सत्कार होता था।

कल्हण का समय : कल्हण तथा राजतरंगिणी के समझने के लिए कल्हणकालीन परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है। वह काल भारतीय तथा काश्मीर राजनीति में उथल-पथल का समय रहा है। लेखक पर उसकी परिस्थितियों, वातावरणों एवं घटना-क्रमो का जाने-अनजाने प्रभाव पड़ता रहता है। वह प्रभाव उसकी रचना में परिलक्षित होता है।

राजतरंगिणी के रचना-काल से ४३६ वर्ष पूर्व सन् ७१२ ई० में सिन्ध पर प्रथम मुसलिम आक्रमण हो चुका था। मुहम्मदबिन कासिम मुलतान तक पहुँच गया था। सन् १००० ई० अर्थात् राजतरंगिणी के रचना-काल से १४८ वर्ष पूर्व महमूद गजनी का भारत पर आक्रमण हो चुका था। महमूद गजनी ने सन् १०१५ ई में काश्मीर पर आक्रमण किया था। सन् १०२६ ई० तक सोमनाथ पहुँच गया था। सन् १०३० ई० में अल्बेरूनी स्पष्ट लिखता है 'मुसलिम आक्रमणों के कारण हिन्दू काश्मीर चले गए। उन दिनों वाराणसी तथा काश्मीर हिन्दू विद्या के सर्वश्रेष्ठ स्थान थे।' (पृष्ठ १७६–१७७)

काश्मीर में विद्वानों का भाग कर आने का एक कारण और था। काशी अलप्तगीन के आक्रमण से लूटी जा चुकी थी। जीवन भयापन्न हो गया था। मन्दिर टूट चुके थे। विद्वानों ने काशी को सुरक्षित नही समझा, किन्तु काश्मीर में महमूद गजनी दो बार हार चुका था। काश्मीर में मुसलमानो का प्रवेश नही हो सका था।

काश्मीर की उत्तरी एवं पश्चिमी सीमा पर मुसलिम राज्य स्थापित हो चुके थे। प्रबल हो गए थे। धर्म-प्रचार का उन्माद व्याप्त था। इसलाम की ताकत के सम्मुख जनता इसलाम कबूल कर अपने पुरातन बौद्ध तथा हिन्दू धर्म को परित्याग कर चुकी थी। तथापि अभी तक भारत पर मुसलिम राज नहीं स्थापित हो सका था। सन् ११९४ ई० में कन्नौज में गहड़वाल राजाओं का राज था। सन् ११४८ ई० तक सोलंकी राजा कुमार पाल शक्तिशाली था। महमूद गजनी एक आँधी की तरह आया और चला गया। सन् ११९२ ई० में अर्थात् राजतरंगिणी की रचना के ४४ वर्ष पश्चात् मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण कर मुसलिम राज स्थापित किया।

कल्हण के काल में भारत पर मुसलिम राज्य स्थापित नही हुआ था। परन्तु कल्हण ने तरंग ६ से ८ तक गौण रूप से मुसलिम प्रभाव का उल्लेख किया है। काश्मीर पर मुसलिम संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा था (रा० ७ : ११४९)। भारत पर मुसलिम आक्रमण का परिणाम भयावह हुआ। धर्म तथा जीवन की रक्षा के लिए ब्राह्मण तथा विद्वान, नैपाल, काश्मीर तथा दक्षिण भारत भागने लगे। काश्मीर में उत्तर-पश्चिम भारत से पण्डितो का समूह पहुँच गया। वे अपने साथ ग्रन्थों का भण्डार लेते आये। उस समय काश्मीर मण्डल विद्वानों से भर गया था।

मुसलिम आक्रमण की एक और प्रतिक्रिया हुई। गुरुकुल टूटने लगे। आश्रमों का लोप हो गया। वेद पूर्व काल में लिपिबद्ध नही थे। गुरुकुल तथा आश्रमों मे वे स्मरण रखे जाते थे। उनको लुप्त होने से बचाने के लिए सर्वप्रथम काश्मीर में वे लिपिबद्ध किए गए। अलबेरूनी के अनुसार वे बारहवी शताब्दी में लिपिबद्ध किए गए थे। काश्मीरी ब्राह्मण तथा शुक ने लिखने तथा व्याख्या का कार्य किया था। (पृष्ठ १०७ ; १ : १२६–१२७)

बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध काश्मीर मे वंशानुगत संघर्षो, विद्रोहो, षड्यन्त्रों, क्रान्तियो एवं रक्त-रंजित घटनाओ का काल था। उनके कारण काश्मीर मंडल को प्रगति अवरुद्ध हो गयी थी। काश्मीर

दुर्बल हो गया था। राजा हर्ष (सन् १०८९–११०१ ई०) के जीवन, उसके दुःखद अन्त, विश्वासघात, नैतिक पतन का जो चित्रण कल्हण ने किया है, उसे पढ़कर रोमाच हो जाता है। जमीन्दार तथा जागीरदारों के समान काश्मीर में कुलीन डामरो का एक वर्ग विशेष अस्तित्व में आ गया था। उनके रक्तरंजित कार्यों से भविष्य की चार शताब्दियाँ त्रस्त रही हैं।

उच्चल तथा सुस्सल के नेतृत्व में डामरो ने राजा हर्ष को त्रस्त करना आरम्भ किया। हर्ष ने उनके कारण राज त्याग दिया। फिर भी उसकी क्रूरतापूर्वक हत्या की गई। उच्चल और सुस्सल ने काश्मीर राज्य को संघर्ष से बचाने के लिए परस्पर बाँट लिया। ज्येष्ठ भ्राता उच्चल काश्मीर तथा सुस्सल ने लोहर का राज लिया। उच्चल डामरो को परस्पर लड़ाता उनकी शक्ति क्षीण करने लगा। कुछ समय तक गर्गचन्द्र, जो लहर का सरदार था राजसूत्र हाथ में रखने में सफल रहा। उसका राज्यकाल (सन् ११०१–११११ ई०) सर्वदा हर्ष के उत्तराधिकारी राज लोलुपों तथा भाई सुस्सल के भय के कारण संघर्ष मय रहता था। अन्ततोगत्वा अपने पदाधिकारियों के षड्यन्त्र का शिकार बन कर मार डाला गया। तत्पश्चात् रड्डु एक दिन के लिए राजा बन बैठा। (सन् ८–१२–११११ ई०)

गर्ग चन्द्र विद्रोहियों को दबाकर शक्तिशाली हो गया। वह राजाओं को बनाने और बिगाड़ने वाला बन गया। (रा० ८ : ४२५) सल्हण गर्ग चन्द्र की सहायता से राजा बन गया। इसके पश्चात् काश्मीर के अत्यन्त दुःखान्त रक्तपात पूर्ण इतिहास का अध्याय खुलता है। सुस्सल का भिक्षाचर आदि के साथ गृह युद्ध सन् ११११ से ११२८ ई०) तक चलता रहा। अन्त में राजा जयसिंह सन् ११२८ ई० में राजा बनकर काश्मीर में शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ।

चम्पक, कनक तथा कल्हण का काल इन भयंकर परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। क्रान्तियों, रक्तपातों, अराजकताओं, गृह-कलहो, संघर्षों, राज विप्लवों में काश्मीर भस्म हो रहा था। उसका सामाजिक ढाँचा बिगड रहा था। वैदिक, सनातन, पौराणिक, बौद्ध धर्मों के स्थान पर तन्त्रों का प्राबल्य हो रहा था। काश्मीर मण्डल स्वतः विघटित हो रहा था। इन सबका प्रभाव कल्हण पर पड़ना स्वाभाविक था।

राज्य प्रासादीय षड्यन्त्र, अकाल, जलप्लावन, अग्निदाह, जनपीड़ा, मूर्तियों-मन्दिरों, बिहारों का नाश करना आदि दुःखद घटनायें कल्हण को दुःखित कर रही थी। वह स्वय कुछ कर नही सकता था। परिस्थितियाँ उसे एकाकी बना दी थी। वह अपने देश की भयावह परिस्थितियो से दुःखी था। उसने अपना समय काटने, कुछ करने, अपने देशवासियों के चरित्र को उठाने तथा राजाओ को शिक्षा देने लिए काव्य को साधन बनाया। उसी साधन का फल राजतरंगिणी है। उसमें उस काल की झलक मिलती है। कवि कल्हण की मानसिक वेदनाओं का उसके पदो में दर्शन मिलता है।

राजतरंगिणी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों का सजीव चित्रण है। वह चित्रण सप्रमाण है। सत्य है। विषम परिस्थितियों, मानवीय दुर्बलताओं, घृणास्पद कर्मों को देखकर कल्हण की भाषा उपदेशात्मक हो गयी। परिस्थितियो ने उसमें नैराश्य एव विराग उत्पन्न कर दिया था। जयसिंह के काल में स्थिति अधिक सुधरी नही। दोष बीज अंकुरित होता गया। वह अंकुर ही कालान्तर में वृद्धि करता महान पादप बना। उस पादप का फल राजतरंगिणी की रचना है।

हर्ष के पतन के कारण कल्हण का कुल प्रभावित हुआ था। राजा हर्ष के प्रिय पात्र उसके पिता तथा चाचा थे। हर्ष के विश्वासपात्र होने के कारण हर्ष के पश्चात हुए अन्य राजाओ के प्रिय पात्र कल्हण,

उसके कुल के लोग नहीं हो सके। कुल का जीवन एकाकी हो गया था। कल्हण तथा उसके कुल का कोई व्यक्ति राज अनुग्रह प्राप्त दिखायी नहीं पड़ता। कल्हण के पूर्व तथा परकालीन वंशजो का आठवें तरंग में उल्लेख बिल्कुल नहीं मिलता। राजा जयसिंह के सुझाव पर कल्हण की लेखनी उठी थी, इसकी झलक कहीं नहीं मिलती।

समुद्र-ज्ञान : कल्हण ने काश्मीर मण्डल तथा समीपवर्ती स्थानों का भ्रमण किया था। वह काश्मीर के कण-कण से परिचित था। उसका भौगोलिक ज्ञान अद्‌भुत है। जिस प्रकार उसने भूगोल उपस्थित किया है, उससे प्रतीत होता है कि उसने भारत का भ्रमण किया था। समुद्र तट तक पहुँचा था। उसने समुद्र का जो वर्णन उपस्थित किया है, उसे बिना समुद्र देखे, कोई कवि केवल पुस्तक-ज्ञान से नहीं लिख सकता। ताल वृन्त, नारियल वृक्ष की छाया, डाभ, आदि का पान, अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमे प्रकट होता है कि इतिहास लिखने के पूर्व उसने इतिहास-सामग्री एकत्रित करने के लिए भारत-भ्रमण किया था।

आधुनिक वैज्ञानिकों के समान कल्हण पृथ्वी को समुद्र मेखला धारिणी लिखता है। पृथ्वी समुद्र से वेष्ठित है। यह निर्विवाद है। कल्हण समुद्र की मर्यादा का उल्लेख करता है। यह बात समुद्र तटवर्ती निवासी या वहाँ गया पर्यटक ही समझ सकता है। (रा० : १: २५३, १ : २९६) कल्हण दक्षिण समुद्र, पश्चिम समुद्र, पूर्व समुद्र आदि (रा० ३ : ४७९, ४८०) तथा लवण समुद्र का उल्लेख करता है। भारत के दक्षिण मे भारतीय सागर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में अरब सागर है। काश्मीर समुद्र से सहस्रो मील दूर पर्वत-मालाओं से वेष्ठित है। कल्हण ऐसा सप्रमाण ऐतिहासिक ग्रन्थ बिना भारत-भ्रमण, काश्मीर के राजाओं के दिग्विजय-मार्ग तथा उनके द्वारा विजित प्रदेशों को देखे नहीं लिख सकता था।

मेघवाहन की सेना दक्षिण भारतीय समुद्र तट पर विश्राम कर रही थी। उस पार द्वीप था। (रा० ३ : ३०) यह स्थान रामेश्वरम् तथा धनुष्कोटि है। चारो धाम की यात्रा करना पुनीत कर्म माना गया है। पुरी, रामेश्वरम् तथा द्वारिका समुद्र तट पर है। कल्हण ने उत्कल किंवा कलिंग, कर्णाट एवं सौराष्ट्र का उल्लेख किया है। वहाँ का वर्णन भी किया है। उसने या तो यात्रा अथवा ज्ञानार्जन के लिए भारत-भ्रमण किया था। वह काश्मीर से कन्नौज, काशी, गया होते पुरी, वहाँ से रामेश्वरम् और लौटते समय गोकर्ण, द्वारका सौराष्ट्र होता अवन्ति से उत्तरापथ में प्रवेश कर, काश्मीर लौटा होगा।

कल्हण ने चार समुद्रो का उल्लेख किया है (रा० ४ : ३१०) सप्त-सिन्धु की पुरानी धारणा है। कल्हण ने उसे न मानकर शिव की चार भुजाओं की उपमा चार समुद्रो से दी है। आजकल पाँच महा समुद्रो की गणना की जाती है। प्राचीन काल में भी चार ही महा समुद्र की गणना की जाती थी। भारतीय सागर बाद का दिया गया नाम है।

भारतीय सागर प्रशान्त तथा अटलांतिक के मध्य तथा अण्टार्कटिक के उत्तर में पडता है। यदि भारतीय समुद्र को उन समुद्रो का मध्यवर्ती स्थान मान ले तो कल्हण का वर्णन ठीक बैठता है। भारत महा-सागर को उसने दक्षिण सागर कहा है जो दक्षिण ध्रुव तक चला गया है। (रा० ३ : १२६) रघुवंश मे कालिदास ने भी चार समुद्रों का ही उल्लेख किया है। राजा रणादित्य के सन्दर्भ मे कल्हण ने चोल राजा रतिसेन को समुद्र की पूजा करते हुए चित्रित किया है। चोल राज्य सुदूर दक्षिण में पूर्वीय तथा सौराष्ट्र पश्चिमी समुद्रतट पर था। कल्हण का यह वर्णन सत्य है। (रा० : ३ : १२६)

भारत पर्यटन : काशी, कन्नौज, अवन्ति, मथुरा के अतिरिक्त और जिन स्थानों का कल्हण

उल्लेख करता है, वे ठीक अपने स्थानों पर मिल जाते हैं। इनमें गलती नहीं हो सकी है। उसके वर्णनों से उनका ठीक पता लग जाता है।

कल्हण का महत्वपूर्ण योगदान पुरातन भूपरिचय वर्णन है। पुराण, महाभारत, रामायण एवं कल्हण की वर्णन-शैली में अन्तर हैं। पुराण केवल नामों का उल्लेख कर छोड़ देते हैं। उनका भौगोलिक परिचय नहीं देते। महाभारत तथा रामायण कहीं-कहीं दिशाओं का भी संकेत करते हैं। यह संकेत रामायण में मुख्यतः सुग्रीव के सम्वाद और महाभारत में रण अभियान एवं दिग्विजयों के सन्दर्भ में मिलता है। परन्तु कल्हण पता एक भौगोलिक की तरह देता है। भारतीय पुराकालीन लेखकों में कल्हण सबसे अधिक सच्चा भौगोलिक स्थिति का वर्णन करता है। भारत के क्षेत्रों का इस प्रकार सर्वांगीण ज्ञान किसी रचनाकार ने उपस्थित नहीं किया है। उसने सिन्धु तट, कालिन्दी पुलिन (रा० १ : ६०) का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है।

कल्हण ने देशों का भी वर्णन किया है। जिन देशों तथा नगरों का उसने उल्लेख किया है, उनकी सम्भवतः उसने यात्रा भी की थी। काश्मीर के अतिरिक्त शेष भारतवर्ष को उसने आर्य देश की संज्ञा दी है। गान्धार देश, त्रिगर्त देश (रा० ३ : १००) दर्वाभिसार (रा० १ : १८०) चोल, कर्णाट, लाट सीमान्त, दरद देश, भोट्ट, आदि का उल्लेख किया है। उसने सिंहल (रा : १ : २९४) लंका (रा : १ : २९८) प्राग् ज्योतिष (रा० २ . १५२) गौड़ बंगाल आदि का भी उल्लेख किया है। राजाओं में उसने कन्नौज नरेश यशोवर्मन्, सिंहल नरेश विभीषण, अवन्ति नरेश विक्रमादित्य, एवं प्राग ज्योतिषेन्द्र का वर्णन किया है। उसने चन्द्रभागा, गंगा, यमुना, नर्मदा का दर्शन तथा उनमें स्नान अवश्य किया था। इसी प्रकार उत्तर मानस की यात्रा की भी ध्वनि उसके लेख से निकलती है। ईक्षुरस तथा इक्षु में फल न होना वही जान सकता है, जिसने काश्मीर के बाहर जाकर उसका रसास्वादन किया होगा। (रा० : २ : ५८)

दिग्विजय-स्थान निरूपण : कल्हण ने राजा जलौक मिहिर कुल, मेघ वाहन, प्रवरसेन, ललितादित्य के दिग्विजय का विस्तृत वर्णन किया है। जलौक ने कान्यकुब्ज अर्थात् कन्नौज विजय किया था। काश्मीर के बाहर श्रीकृष्ण के मथुरा तथा गान्धार में हुए संघर्षों के लगभग ग्यारह सौ वर्षों के पश्चात् प्रथम बार काश्मीरी सेना काश्मीर के बाहर निकली थी (रा १ : ११७, ३३६)। दूसरी बार काश्मीर से मिहिर कुल के नेतृत्व में दक्षिण समुद्र तक पहुँची थी। समुद्र तट से लौटते हुए उसने चोल, कर्णाट, लाट आदि देशों का अतिक्रमण किया था। तीसरे दिग्विजय का अभियान मेघवाहन ने किया था। मिहिर कुल के समान यह भी श्रीलंका समुद्र-तट तक पहुँचा था (रा : २७, ७२)। चौथी दिग्विजय प्रवर सेन ने किया था। अवन्ति में प्रवेश कर राजा विक्रमादित्य द्वारा अपहृत काश्मीर का राज सिंहासन पुनः लौटा लाया था। पाँचवीं दिग्विजय ललितादित्य ने किया था। उसने वाक्पति राजा एवं भवभूति सेवित कन्नौजपति यशोवर्मन् को जीता था। कन्नौज के दक्षिण में प्रवाहित एवं गंगा से मिलने वाली कालिका नदी और यमुना के मध्यवर्ती भूखण्ड को घर के प्रांगण सदृश बना लिया था। (रा० ४ . १४४, १४६) यह भौगोलिक वर्णन सत्य हैं।

अनन्तर वह कलिंग, गौड, कर्णाटक पहुँचता है। इस स्थल पर कल्हण ने 'दक्षिणापथ' शब्द का उल्लेख किया है। पुरातन काल से दक्षिणापथ से जिन क्षेत्रों का सम्बोधन होता था, उन्हें ही कल्हण ने लिखा है। ललितादित्य ने मलय पर्वत, कोकण, द्वारिका, अवन्ति के पश्चात उत्तरा पथ में प्रवेश किया था।

उत्तरा पथ का अर्थ उत्तरीय भारत प्राचीनकाल से लगाया जाता था। उत्तरा पथ के पश्चात् कम्बोज, तुखार, उत्तरकुरु, जालन्धर, लोहर आदि मार्गों का जो भौगोलिक वर्णन कल्हण उपस्थित करता है, वह प्रायः ठीक मिलता है। (रा० ४ : १३३-१८०) ललितादित्य के पश्चात् भारतीय राजाओं के लिये दिग्विजय के आदर्श का पालन संभव नहीं रहा। कारण स्पष्ट है। इसके काल के पश्चात् मुसलिम शक्ति प्रबल होने लगी थी। भारत की सीमा पर उनके राज्य स्थापित हो गये थे। उन्हीं का भारत पर आक्रमण होने लगा था। इसके पश्चात काश्मीर ही नहीं समस्त भारत की राजनीति का लक्ष्य प्रमुखतः रक्षात्मक हो जाता है।

कल्हण ने राजाओं के दिग्विजय मार्ग एवं यात्राओं के जो उल्लेख किये हैं वे वर्तमान भौगोलिक वर्णनों से साधारणतया मिलते हैं। यह इसलिये भी महत्व की बात है कि उन दिनों मानचित्र वर्तमान काल की तरह उपलब्ध नहीं थे। देश का सर्वेक्षण नहीं किया गया था। केवल जनश्रुति तथा परम्परा के आधार पर कार्य किया जाता था।

इसका समर्थन अल्बेरूनी के लेखों से भी मिलता है। उसने कल्हण के रचना काल से ११८ वर्ष पूर्व काश्मीर के मार्गों का वर्णन किया है। उससे प्रकट होता है कि काश्मीर का सम्बन्ध समस्त भारत से था। अल्बेरूनी के अनुसार एक मार्ग कन्नौज से काश्मीर जाता था। दूसरा मार्ग कन्नौज से पानीपत, अटक काबुल होता, गजनी पहुँचता था। तीसरा मार्ग बब्रहान से अधिष्ठान (पुराधिष्ठान) काश्मीर पहुँचता था। चौथा मार्ग कन्नौज, शिरशारह, दहमाल (जालन्धर की राजधानी) बल्लावर होता लद्द् अर्थात् लिदर घाटी काश्मीर पहुँचता था। काश्मीर का उन दिनों इतना महत्व था कि उसका सम्बन्ध समस्त भारत से था। अतएव इस अनुमान में तथ्य है कि कल्हण ने भारत-भ्रमण तथा समुद्र-तट की यात्रा की थी। अन्यथा इस प्रकार का वर्णन करना केवल ग्रन्थों के आधार पर सम्भव नहीं था।

काश्मीर का भौगोलिक वर्णन : कल्हण ने काश्मीर का स्थान निरूपण किया है। भूपरिचय दिया है, पर्वतों, नदियों, स्रोतस्विनियों, कुल्याओं, मार्गों, सरों, वनों, क्षेत्रों, तीर्थ-स्थानों का वर्णन सच्चाई के साथ किया है। पर्वतों में, अन्तर्गुही, बहिर्गिरी, हिमालय और लोका लोक का उल्लेख किया है। (रा० १ : १३७) उसने काश्मीर की जल-वायु (रा० १ : ४०-४२) तीर्थों में भेदा देवी, पाप सूदन, स्वयंभू, (रा० १ : १३६) सन्ध्या देवी, शारदा, सोदर (रा० १ : १३४) चीर मोचन (रा० १ : १४९) नन्द शिला (रा० ३ : ४६७) तथा अरिष्टो सादन (रा० ३ : ४८२) का उल्लेख कर उनके स्थानों का निश्चित पता दिया है। क्षेत्रों में नन्दि क्षेत्र, (रा० १ : ११३), विजय क्षेत्र (रा० १ : २७५) तथा इष्टिका पथ (रा० ३ : ४६७) तथा सुरेश्वरी क्षेत्र (रा० ५ : ४५४) का वर्णन किया है। यात्राओं में अमरेश्वर यात्रा (अमरनाथ) (रा० १ : २६७) नन्दि क्षेत्र यात्रा (रा० १ : ११३) तथा तक्षक नाग यात्रा (रा० १ : २२०-२२ १) का उल्लेख किया है। अटवी में रमण्याटवी, (रा० १-२६५) तथा वाक् पुष्टाटवी (रा० २ : ५७) का वर्णन किया है।

सुश्रवा सरोवर (रा० १ : २०३) शेषनाग (रा० १ : २६१) जामातृसर (रा० १ : २६९) उल्लोल सर (रा० ४ : ५९३) उत्तरमानस (रा० ३ : ४) एवं सुरेश्वरी सर अर्थात् डललेक का उल्लेख किया है। नगरों में नरपुर (रा० १ : २४४) पुराधिष्ठान (रा० ३ : ९९) स्कन्दपुर (रा० १ : ३४०) पद्मपुर (रा० ४ : ६९५)। मन्दिरों में घात कपालेश, (रा० १ : ३३५) भूतेश, विजयेश,

वर्धमानेश (रा० २ : १२३) एवं ज्येष्ठेश आदि का उल्लेख करता है। (रा० १ : १२४)

अग्रहार : उसने अनेक अग्रहारों, विहारों, चैत्यो, शालाओं एवं स्तूपों का उल्लेख किया है। उनमें अधिकांश का पता लगाया जा चुका है। कल्हण उनके स्थानों का ठीक पता देता है। इससे पता चलता है कि कल्हण ने स्थानों को खोजकर उनकी तालिका बनायी थी। वे समस्त काश्मीर मण्डल में फैले थे।

कल्हण ने तीन अग्रहारों का वर्गीकरण किया है। राजकीय अग्रहार (रा० ३ : १००) द्विज परिषद अग्रहार (रा० १ : १८७) तथा व्यक्तिगत पुण्य कार्य के लिये किये गये अग्रहार। कुछ अग्रहार गान्धार देशीय तथा कुछ काश्मीरी ब्राह्मणो को दिये गये थे। राजा कनिष्क ने समस्त काश्मीर का दान कर दिया था। (रा० १ : २५७) मिहिरकुल जैसे क्रूर राजा ने भी एक सहस्र अग्रहारों का दान किया था। (रा० १ : ३१४)

कल्हण ने तरंग १-३ में राजाओं द्वारा दिये गये अग्रहारों का उल्लेख किया है। राजा लव ने लेवार (रा० १ : ८७), कुश ने कुरुहार (रा० १ : ८८), खगेन्द्र ने खोनमुष, खागी (रा० १ : ९०) गोधर ने गोधर, हस्तिशाला, जालोर (रा० १ : ९६) शचीनर ने समांगासा तथा सनार (रा० १: १००) जलौक ने वारवल (रा० १ : १२१) अभिमन्यु ने कण्टकोत्स (रा० १ : १७४) गोपादित्य ने खोल, खागिका, स्कन्दपुर समाजस (रा० १ : ३४०), तथा गोप (रा० १ : ३४१) वश्चिक (रा० १ : ३४३) रानी वाक्पुष्टा ने कनीमुष, रामुष (रा० २ : ५५) तथा मेघवाहन ने मेघवन (रा० ३ : ८) अग्रहार का दान किया था।

विहार : राजाओं ने जितने अग्रहारो का दान इस काल में किया था, उससे कम विहारों की स्थापना नहीं की थी। इस काल में सनातन धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों की मान्यतायें प्रायः समान थी। लोग दोनो धर्मो की बातें मानते थे। राजा सुरेन्द्र ने नरेन्द्र भवन विहार (रा० १ : ९३) सौरस विहार (रा० १ : ९४), जनक ने जालोर (रा० १ : ९८), अशोक ने धर्मारण्य, (रा० १ : १०३), जलौक ने कृत्याश्रम (रा० १ : १०७), जुष्क ने जुष्कपुर (रा० १ : १६९), अमृतप्रभा ने अमृत भवन विहार (रा० ३ : ९), खादना रानी ने खादना विहार (रा० ३ : १४), सम्मा रानी ने सम्मा विहार (रा० ३ : १४), रानी भिन्ना ने भिन्ना विहार (रा० ३ : ४६४), रत्न ने रत्नावली विहार (रा० ३: ४७६) निर्माण कराया था। इनके अतिरिक्त सहस्रों विहार काश्मीर में थे। इसी काल में अनेक राजाओं ने चैत्य एवं स्तूपों का भी निर्माण कराया था। अशोक ने शुष्कलेत्र तथा वितस्तात्र में स्तूप निर्माण कराया था। (रा० १ : १०२), रानी अमृत प्रभा ने स्तोन्पा स्तूप (रा० ३ : १०) तथा इन्द्र देवी ने इन्द्रभवन स्तूप का निर्माण कराया था। (रा० ३ : १३) अशोक तथा कनिष्क ने स्तूपों तथा चैत्यो की शृंखलाओं से काश्मीर मण्डल को आच्छादित कर दिया था।

चतुर्थ बौद्ध परिषद : सम्राट कनिष्क के समय में चतुर्थ
होने का उल्लेख बौद्ध पर्यटकों तथा ग्रन्थों द्वारा मिलता है। .
थो। सम्पूर्ण त्रिपिटक को ताम्र-पत्रों पर लिपिबद्ध कर, ...
हरवान के प्रसंग में करता है। परन्तु उसने इस ऐतिहा...
है कि बौद्ध धर्म की मान्यता शनै. शनै. क्षीण होती ...
हासादि भूल गये थे।

शाला, जनाश्रय, विद्यावेश्म : कल्हण ने आरोग्यशाला (रा० ३ : ४६१) तथा जनाश्रय (रा० ३ : ४८०) का उल्लेख किया है। प्रथम वर्त्तमान काल के अस्पतालों तथा द्वितीय धर्मशालाओं के सदृश थे। चतु.शाला (रा० ३ : १३) का भी उल्लेख किया गया है। उसका निर्माण बौद्ध संघ तथा भिक्षुओं के निवास हेतु किया गया था। बौद्ध उपासकों के लिए भी विहार बने थे। विद्यावेश्म आजकल के छात्रावास सहित विद्यालयों के समान थे। वहाँ विद्वानों, विद्यार्थियों के निवास के साथ पढने तथा भोजनादि का प्रबन्ध था।

मठ, अक्षयिणी, प्रतिष्ठान, सत्र : कल्हण ने मठों का उल्लेख बहुत किया है। साधु-सन्तों के लिए मठ-निर्माण किया जाता था। दुष्कलेत्र क्षेत्र में मठ (रा० १ : १७०), चतुःशाला मठ (रा० १ : १९१) पाशुपत मठ (रा० ३ : ४६०) ब्रह्ममठ (रा० ३ : ४७६) मध्यमठ (रा० १ : ३००) सेरी मठ (रा० १ : ३००) येडा, भीया मठ (रा० २ : १३५) मेघ मठ (रा० ३ : ४६०) राजाओं द्वारा स्थापित किये गये थे। कालान्तर में मठ बनाने का प्रचलन बहुत हो गया था। दिद्दा मठ आदि अपने समय के प्रसिद्ध मठ थे। मठों के निर्माण का सम्बन्ध तृतीय तरंग तक केवल शैव सम्प्रदाय से था। कल्हण ब्रह्म मण्डप का रानी रण रम्भा द्वारा स्थापित होने का उल्लेख करता है। (रा० ३ : ४५९) यह ब्रह्मविदों के लिए निर्माण किया गया था। राजा तथा धनी जन आप अक्षयिणी (रा० १ : ३४७) प्रतिष्ठान (रा० १ : ३४७) तथा सत्र (रा० २ : ५८) पथिकों, यात्रियों तथा भूखो के लिए स्थापित कराते थे। जीर्णोद्धार कराने का भी उल्लेख मिलता है। सम्राट अशोक ने विजयेश्वर के नवीन पाषाण प्राकार का निर्माण कराया था। (रा० १ : १०५), कल्हण ने यागोत्सव (रा० १ : ३३१) तथा लिंग अर्चनोत्सव (रा० २ : १३५) का उल्लेख किया है।

नगर निर्माणादि : कल्हण काश्मीर के नगरों तथा ग्रामों का वर्णन कर उनके स्थानों का ठीक पता देता है। तरंग प्रथम से तीन तक कम-से-कम १७ नगर निर्माणों का उल्लेख किया गया है। राजा लव ने लोलोर (रा० १ : ८६) सुरेन्द्र ने सोरक पत्तन, (रा० १ : ९३) अशोक ने श्रीनगर (रा० १ : १०४) जलौक ने उज्झट डिम्ब (रा० १ : ११६) हुष्क ने हुष्कपुर, जुष्क ने जुष्कपुर, जय स्वामीपुर, (रा० १ : १६९), सम्राट कनिष्क ने कनिष्कपुर (रा० १ : १६८), अभिमन्यु ने अभिमन्युपुर, वितस्ता पुलिन में नगर (रा० १ : १७५-२०२), हिरण्याक्ष ने हिरण्याक्षपुर (रा० १ : २८७), मिहिर कुल ने हिरण्यपुर, मिहिरेश्वर (रा० १ : ३०६), वक ने लवणोत्स (रा० १ : ३२९), तुंजीन ने कतिका पत्तन, (रा० २ : १४) विजय ने विजयेश्वर को नगर से घिरवाया था। (रा० २ : ६२)। नगरों के लिए पुर तथा पत्तन शब्द समानार्थक है। तीनों शब्दों का प्रयोग कल्हण ने किया है।

ग्रामों का भी उल्लेख किया गया है। उनके स्थानों का पता कल्हण के वर्णनों से मिल जाता है। राजा अक्ष ने अक्षवल (रा० १ : ३३८) मेघ वाहन ने मयुष्ट ग्राम (रा० ३ : ८) तथा भेडर ग्राम (रा० ३ : ४८१) का दान किया था।

मन्दिरों से काश्मीर मण्डल मण्डित था। प्रत्येक ग्राम तथा जनस्थान में मन्दिर थे। राजा अशोक ने अशोकेश्वर (रा० १ : १०५), जलौक ने ज्येष्ठेश्वर भूतेश (रा० १ : ४८), अभिमन्यु ने शशांक शेखर, (रा० १ : १७५) मिहिर कुल ने मिहिरेश्वर (रा० १ : ३०६), वक ने वकेश (रा० १ : ३२६), गोपादित्य ने गोपाद्रि पर ज्येष्ठेश्वर, (रा० १ : ३४१) गोकर्ण ने गोकर्णेश्वर (रा० १ : ३४६), उग्र ने उग्रेश (रा० १ : ३४८), तुंग ने तुंगेश्वर (रा० २ : १४), सन्धिमति ने सन्धीश्वर, इशेश्वर

(रा०२ : १३४), रणादित्य ने माहेश्वर रणेश्वर (रा० : ३ : ४३९-३५४) रानी रणा रम्भा ने रणा स्वा
(रा० ३ : ४५४), रानी अमृत प्रभा ने अमृतेश्वर (रा० ४६३) विक्रमादित्य ने विक्रमेश्वर (रा० ३
४७४) एवं उसको रानी बिम्बा ने बिम्बेश्वर (रा० ३ : ४८२) का निर्माण कराया था। निर्माणकर्त्ता
ने अपना नाम चिरस्थायी करने के लिए अपने नामो पर मन्दिरो का नाम रखा था। कुछ मन्दिरो के ध्व
सावशेष आज भी दिखायी पड़ते हैं। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

विष्णु मन्दिर : प्रथम तथा द्वितीय तरंग में किसी विष्णु मन्दिर के निर्माण का उल्लेख नही मिलता
महाभारत काल किंवा लौकिक सम्वत् ६२८ से रणादित्य के काल लौकिक सम्वत् ३२९९ अर्थात् २६७
वर्षों तक विष्णु मन्दिर बनने अथवा पूजा का उल्लेख सार्वजनिक रूप मे नहीं मिलता। तृतीय तरंग के अन्ति
चरण में रानी रणारम्भा द्वारा विष्णु मन्दिर निर्माण का प्रथम उल्लेख मिलता है। विष्णु प्रतिमा का भ
प्रथम बार उल्लेख यहीं किया गया है। (रा० ३ : ४४६) यह विष्णुपूजा एवं विष्णु मन्दिरो के निर्मा
के इतिहास की ज्ञात बातों से सर्वथा सम्मत है। रानी रणा रम्भा दक्षिण समुद्र तट से काश्मीर में आयं
थी। समुद्र तट पर राम के सेतुबन्ध, लंका विजय तथा रामायण की गाथायें अत्यधिक प्रचलित थी औ
आज भी है। दक्षिण-पूर्व एशिया तक रामायण पहुँच चुकी थी। उसकी गाथायें लोकप्रिय हो गयी थी
दक्षिण से सम्बन्धित होने के कारण ही रानी रणारम्भा विष्णुपूजा से प्रभावित थी। काश्मीर में विष्
मन्दिर बना कर उसने अपनी रुचि तथा मत का परिचय दिया।

शिवलिंग : कल्हण ने शिव मन्दिरो के साथ ही साथ शिव लिंगो की स्थापना का वर्णन किया है
(रा० २ : १२८-१३२)। शिव लिंग के अतिरिक्त प्रतिमा लिंग की भी चर्चा कल्हण करता है। भेडा
भेदा, (रा० २ : १३५) हिमलिंग (रा० २ : १३७) शैललिंग (रा० ३ : ४१९) रत्नलिंग (रा०
३ : ४४६) तथा प्रजापति पूजित लिंग (रा० ३ : ४४६) अर्चना का विस्तृत उल्लेख करता है।

जातियों का ज्ञान : भारत भ्रमण काल, सीमावर्ती ज्ञान तथा भारत पर मुसलिम आक्रमण होने
के कारण अनेक जातियो के काश्मीर में आ जाने के कारण उसमे कल्हण को जातियो के रीति-रिवाज,
धर्म आदि का पर्याप्त ज्ञान हो गया था। जो जातियाँ महाभारत पुराण, रामायण मे अलौकिक मालूम होती
है वे वास्तव में मानव जातियाँ थी। भारत निवासी थी। कल्हण ने इसे अपने उल्लेखों तथा उनके कर्मों से
सिद्ध किया है। उनका चित्रण अलौकिक मानव की अपेक्षा चलते-फिरते साधारण जनों के समान किया है।
यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, गुह्यक, शवर किरात, राक्षस को पुरातन ग्रन्थकारों ने जाति लोकोत्तर मान
लिया था। महाभारत से अपने काल तक की ज्ञात जातियों का कल्हण ने उल्लेख किया है। (द्रष्टव्यः
परिशिष्ट) दक्षिणा पथ के चोल, कर्णाट, कोकण, लाट, सौराष्ट्र, जातियों का भी वर्णन किया है। (रा०
१ : ३००, ३ : ४३२)

कल्हण ने विशेष उल्लेख जमुना से गान्धार प्रदेश तथा काश्मीर की सीमान्त जातियों का किया है।
श्रीकृष्ण-गोनन्द युद्ध के सन्दर्भ में वृष्णि तथा यादवो का उल्लेख किया गया है। काश्मीर की उत्तर दिशा में
गुह्यक, यक्ष तथा दरद थे। (रा० १५६, १५६, ३१२) दक्षिण दिशा में गान्धार, शक एवं दर्द थे।
(रा० १ ६६, ३१७) पूर्व-उत्तर दिशा में भोट्ट थे। (रा० १ ३१२) पूर्व-दक्षिण दिशा में
किन्नर थे। (रा० १ १९९) पश्चिम दिशा में यवन, म्लेच्छ एवं आर्यों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ थीं।
आर्य का अर्थ कल्हण ने हिन्दुओं से लगाया है। म्लेच्छों मे मुसलमानो के साथ ही साथ अफगान, ईरान
तथा तुर्किस्तान की जातियाँ थीं। (रा० १ : ३१२) किरात पर्वतीय जंगलों मे रहने वाली जाति

थी। (रा० ३ : ३९) राक्षस लंका निवासी थे। (रा० ३ : ७४) वे मनुष्यों जैसे थे। स्थापत्य एवं निर्माण कार्यों में चतुर थे। शवर (रा० ३ : ३३) तथा निशाचर (रा० ३ : ३९) जंगली थे। वे पौराणिक जातियाँ थी। उनके स्थान तथा क्षेत्र विस्मृति-सागर में डूब गए हैं। पिशाच तथा नाग जातियाँ काश्मीर की मूल निवासी थी। इसी प्रकार सिद्ध गणों (रा० ३ : ४५६) की भी एक जाति थी। खेचर (रा० ३ : ४५०) जाति का भी मालूम होता है पुराणों के आधार पर कल्हण ने वर्णन किया है। (रा० १ : ६३, ६६, ६७, १५३, १५९, १९९, २९८, ३००, ३१२, ३१७, २ : १६५) कल्हण ने बेकाल जाति का भी उल्लेख किया है। (रा० ३ : ४८०) एक मत है। बंकाल शब्द बंगाल का अपभ्रंश है।

धर्म : कल्हण कट्टरपंथी नहीं था। वह उदार था। सहिष्णु था। भारत के अन्य भागों के समान काश्मीर में भी सम्प्रदाय, मत-मतान्तरों तथा पूजा-पाठ की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। भारत में बौद्धधर्म का लोप हो चुका था। परन्तु काश्मीर में उसकी मान्यता थी। शैव, वैष्णव, तान्त्रिक सभी बुद्ध को अवतार मानकर पूजा करते थे। बौद्धधर्म काश्मीर में तेरहवी शताब्दी तक रहा। आज भी काश्मीर के एक सूबा लद्दाख का वह धर्म है। कवि क्षेमेन्द्र ने कल्हण के एक शताब्दी पूर्व बुद्ध को अवतार मानकर वन्दना किया था। काश्मीर की जनता शुद्ध वैदिक धर्म के स्थान पर मत-मतान्तरों-तन्त्रों के चक्कर में पड़ गयी थी। काश्मीर में शैव मत की प्रधानता थी। वह प्रधानता आज भी हिन्दू काश्मीरियों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कल्हण इन सबका अपवाद नही था। वह शिव एवं बुद्ध दोनों की वन्दना करता है।

महाकवि होते हुए भी कल्हण पुरानी परम्परा का अनुकरण कर मंगलाचरणों में गणेश एवं सरस्वती की वन्दना नहीं करता। तत्कालीन संस्कृत लेखकों की परम्परा को तोड़कर उसने अपनी मानसिक स्वतंत्रता के साथ प्रगतिशीलता का परिचय दिया है।

शिव के उस रूप की वन्दना की है जो एकांगी नहीं है। केवल पुरुष या नारी मात्र नहीं है। केवल पुरुष एवं प्रकृति मात्र दार्शनिक शब्दों में नही है। वह पुरुष, प्रकृति, नर-नारी, पिता-माता दोनों का समन्वय है। अतएव वह अर्धनारीश्वर रूप है। अर्धनारीश्वर की कल्पना अद्भुत है। उसका दार्शनिक स्वरूप अत्यन्त भावोत्पादक है। आकर्षक है। तथ्यमय है। जो पुरुष एवं प्रकृति के रूप में जगत को चलाता है, सृजन का जो मूल स्रोत है, जहाँ संहार एवं लय होता है, साथ ही जो माता स्वरूप पार्वती हैं, पिता स्वरूप शिव हैं, जहाँ शिव का योग है, जहाँ देवी पार्वती का स्नेह है, जहाँ शिव त्रिभुवन गुरु है, पार्वती माता है; जहाँ वह शिवभक्ति का वर्णन करता है वहाँ उसकी आन्तरिक भावना, उसकी अटूट श्रद्धा अपनी पूर्ण गरिमा में निखर आती है। (रा० २ : १२१–१७१)

तन्त्र : कल्हण प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अनुयायी था। वह शैव था। तन्त्र-मन्त्र में विश्वास करता था। किन्तु उसने तत्कालीन तान्त्रिकों की दुष्ट प्रवृत्तियों की आलोचना की है। तन्त्र साहित्य का अध्ययन किया था। सर्व प्रथम उसने मातृ चक्र का उल्लेख जलौक की पत्नी ईशान देवी के सन्दर्भ में किया है। इससे ध्वनित होता है कि कल्हण के अनुसार अशोक के समय में बौद्धधर्म काश्मीर में प्रवेश कर वृद्धि प्राप्त किया और उसके पुत्र के समय में तन्त्रों का भी प्रचार हुआ। इस प्रकार बौद्धधर्म तथा तन्त्र एक साथ काश्मीर में जड़ जमाने लगे। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह दोषपूर्ण है। तंत्र का आरम्भ यद्यपि आधुनिक शोधों की सहायता से बहुत पहले ले जाया गया है किन्तु उसे अशोक के काल से संबंधित करना उचित नहीं लगता। कदाचित् समकालीन बौद्धधर्म में तंत्रों के व्यापक प्रसार के कारण ही कल्हण की ऐसी

धारणा बनी हो । बौद्धधर्म एवं तंत्र दोनों चौदहवीं शताब्दी तक काश्मीर में थे । नि:सन्देह तन्त्र का प्रचार बौद्धधर्म की अपेक्षा अधिक हो गया था और हिन्दू राज्य की समाप्ति के साथ दोनों का लोप भी काश्मीर में हो गया ।

कल्हण ने मातृचक्र का पुनः उल्लेख प्रवरसेन के प्रसंग में पुराधिष्ठान के सन्दर्भ में किया है । (रा० २ : ९९) कृत्या उपासना का भी वह उल्लेख (रा० १ : १३७, १४७; ३ : ३३) करता है । यहीं यह निर्देश कर देना आवश्यक है कि तन्त्र तथा तन्त्री दो विभिन्न वर्ग थे । तन्त्री काश्मीर का एक सामाजिक वर्ग डामरों के समान था । तान्त्रिक लोग तन्त्र-क्रिया करते थे ।

तन्त्र की अत्यधिक दुरूह पद्धति मत्स्यायूप याग कल्हण के समय तक प्रचलित था । उसका वर्णन कर तन्त्र ज्ञान का कल्हण परिचय देता है । (रा० ६ : ११) इसी प्रकार वह गुरुदीक्षा प्रथा का उल्लेख करता है : (रा० ६ : १३) राघवानन्द ने पद्धति रत्नमाला में काश्मीरी तान्त्रिकों के इस संस्कार क्रिया पद्धति का उल्लेख किया है । काश्मीर में महिलायें भी तान्त्रिक गुरु होती थी

कल्हण ने मत्स्य यज्ञ, अपूप याग विधि के प्रचारकों तथा पोषकों के लिए 'मूर्ख गुरु' शब्द का निन्दनीय प्रयोग किया है । वे आगम ग्रन्थों का कपोल कल्पित अर्थ, भाष्य एवं टिप्पणी करते थे । राजा कलश के गुरु प्रमदकण्ठ ने धार्मिकता की आड़ लेकर रति सुख की ओर प्रेरित कर उसे कामी बना दिया था । कल्हण ने उसकी खुलकर निन्दा की है । (रा० ७ : २७८) अपने गुरु के साथ तान्त्रिक क्रियाओं में, अर्ध रात्रि में सम्पन्न की जाने वाली 'महासमय रात्रि' में राजा मद्यपान करता था । (रा० ७ : ५२३) राजा कलश से उसके तान्त्रिक गुरु ने अनुचित कार्य कराया था । (रा० ७ : ७१·) कल्हण ने इन तान्त्रिकों का उपहास करते हुए उन पर व्यंग किया है ।

कल्हण अभिचार क्रिया में विश्वास करता था । अभिचार के कारण राजा का देव मोहित होना लिखा है । वह लोगों के अन्ध-विश्वास तथा भूत-प्रेत विश्वास का समर्थक नहीं था ।

मन्त्र शक्ति देवी पूजा : तन्त्र के अतिरिक्त देवी एवं शक्ति पूजा का भी प्रचार कल्हण के समय में था । सिंह वाहिनी देवी (रा० ३ : ४ १२) भ्रमर वासिनी देवी (रा० ३ : ४१६ दुर्गा । रा० :८९· ९३) योगिनी । रा० २ : १००) और महायोगिनी (रा० १ : १३१) का उल्लेख कल्हण ने किया है । अशोक ने म्लेच्छों के नाश हेतु तपस्या किया था । तपस्या किया था । तपस्या की शक्ति से उसे जलौक पुत्र प्राप्त हुआ था । (रा० १ : १०७) मन्त्र सिद्धि में कल्हण विश्वास करता था । तारकेश्वर मन्त्र तथा षष्ठी मन्त्र का प्रभाव वर्णन किया गया है । (रा० ३ : ४६५, ४६६)

बलि प्रथा : बलि प्रथा काश्मीर में प्रचलित थी । देवी के सम्मुख बलि दी जाती थी । नर बलि भी होती थी । मैं काश्मीर के ग्रामों में घूम रहा था । एक स्थान की ओर संकेत किया गया । बताया गया कि वहाँ नरि बलि दी जाती थी । उस गाँव के निवासी सभी मुसलमान थे । पुरातन जनश्रुति लोगों को स्मरण थी । राजा मेघवाहन के सन्दर्भ में नरबलि की बात कही गयी है । (रा० ३ : :) चण्डिकायतन में देवी के सम्मुख बलि दी जाती थी । (रा० ३ : ३३) योगेश्वरी भट्टा द्वारा राजा वक तथा उसका समस्त कुटुम्ब देवी चक्र पर उपहार स्वरूप चढ़ा दिया गया था । (रा० १ . ३३२) कल्हण ने उपहार एवं बलि दोनों शब्दों का प्रयोग किया है । दोनों के अर्थों में भेद है ।

धार्मिक क्रान्तियाँ : राजतरंगिणी काश्मीर में समय-समय पर हुए धार्मिक विकास, परिवर्तन एव

क्रान्तियों का इतिहास प्रस्तुत करती है। यदि महाभारत काल से बारहवीं शताब्दी तक के काश्मीर राजाओं की राजकथा कल्हण ने लिपिबद्ध की थी तो उसने इसी काल के धार्मिक उथलपथल तथा उनके जनता, समाज और राज्य पर पड़ते हुए प्रभावों का भी वर्णन किया है। इस दृष्टि से विश्व के किसी भी इतिहास-कार ने इतिहास नहीं लिखा है। कल्हण ने इतिहास को राजाओं किंवा राज्य के तिथिवार घटना-क्रम का संकलन नहीं माना है। उसने इतिहास में जनता के मानसिक विचारों, उनके विकास, वृद्धि एवं ह्रास की क्रमबद्ध घटनाओं को लिखा है। उनका देश की राजनीति एवं समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है और पड़ सकता है, इसका विषद वर्णन किया है। अस्तु राजतरंगिणी का महत्व राजनीतिक इतिहास के साथ-हो-साथ धर्म एवं विचारों के विकास के इतिहास के लिये भी है। विश्व के पुरा कालीन इतिहासकारों ने राजनीति के साथ देश की मनःस्थिति पर कम प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से पुरानी शैली के इतिहास-कारों के सम्मुख कल्हण ने नवीन शैली उपस्थित की है जिसमें प्रेरणा है, तथ्य है, स्फूर्ति है।

प्रथम धार्मिक क्रान्ति : काश्मीर में चार धार्मिक क्रान्तियाँ हुई हैं। ये शान्तिपूर्ण थीं, अहिंसक थीं, पश्चिम के रक्तमय उन्माद की कहानी उनमें नहीं मिलेगी। उनका साधन शक्ति नहीं था। वह वर्ष की ऋतुओं के सदृश आयी और चली गयी। उन्होंने विघटनात्मक, द्वेषात्मक एवं उन्मादात्मक प्रचारात्मक प्रवृत्तियों एवं इतिहासों का सृजन नहीं किया। कल्हण ने इन क्रान्तियों का प्रारम्भ यक्ष विप्लव, भिक्षु विप्लव आदि नामों से अभिहित किया है। उसने क्रान्ति के स्थान पर विप्लव शब्द का प्रयोग किया है।

काश्मीर में सर्व प्रथम नील मुनि द्वारा प्रचारित नाग पूजा प्रचलित थी। नील मत पुराण द्वारा प्रतिपादित धर्म काश्मीर का धर्म था, पूजा पद्धति थी। सम्राट अशोक के समय में सर्वप्रथम बौद्ध धर्म का जोर काश्मीर में हुआ। राजाश्रय प्राप्त कर वह वृद्धि कर गया। अशोक ने विहारों, चैत्यों, स्तूपों से काश्मीर-मण्डल को भर दिया था। बौद्ध शासन का प्राबल्य हो गया। काश्मीर का पुरातन सनातन धर्म पीछे पड़ गया।

प्रथम क्रान्ति का प्रणेता अशोक का पुत्र जलौक था। उसने भिक्षु विप्लव को रोका। इसका पहला साधन शास्त्रार्थ था। राजा जलौक का गुरु एक अवधूत था। गुरु अवधूत ने बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। (रा० १ : ११२) राजा जलौक अपने पुण्य-कार्यों एवं पुरातन धर्म की पुनर्स्थापना एवं बौद्धों के दलन के कारण नन्दीश्वर का अवतार काश्मीर में मान लिया गया। (रा० १ : १३०) उस समय काश्मीर मण्डल में बौद्धों का प्राबल्य था। बौद्ध धर्म की मान्यता थी। (रा० १ १०४) कल्हण ने भगवान बुद्ध को उनके मूल वंशीय नाम महाशाक्य से सम्बोधित किया है। (रा० १ : १४१) राजा जलौक के समय में भी बौद्ध धर्म के दलन की झलक मिलती है। विहारों का निसन्देह दलन किया गया था। (रा० १ : १४०-१४४)

राजा जलौक स्वतः अहिंसक था। कृत्या के मांस माँगने पर उसने अपना मांस काट कर देना उचित समझा था। उसने बोधिसत्व के शासन एवं कर्मों की स्वयं जिज्ञासा कर शान्ति पूर्वक सुना था। तथापि उसने सहिष्णुता का परिचय दिया था। उसे बोधिसत्व स्वरूप हो मान लिया गया था।

ज्येष्ठेश की पूजा के समय नृत्य-गीत कुशल एकसौ अन्त.पुर की महिलाओं को मन्दिर में नृत्य, गान एवं सेवा के लिये नियुक्त किया था। काश्मीर के इतिहास में यह प्रथम अवसर था जब मन्दिरों में नृत्य गान-शील महिलाओं का देव सेविका के रूप में प्रवेश हुआ था। वह प्रथा कालान्तर में देवदासी की कुप्रथा में परिणत हो गयी।

द्वितीय धार्मिक क्रान्ति : राजा अभिमन्यु के समय में द्वितीय क्रान्ति हुई थी। इस समय भी बौद्ध अत्यन्त प्रबल हो गये थे। (रा० १ : १७१) भिक्षु विप्लव से काश्मीर ग्रस्त था। (रा० १ : १७२-१८१) प्रसिद्ध दार्शनिक प्रचारक नागार्जुन इस समय काश्मीर मण्डल में वर्तमान था। उसकी तुलना बोधिसत्व से की जाती थी (रा० १७३-१७७) नीलमत विहित धर्मकाण्ड, नाग यात्रा, नाग-पूजा, यज्ञादि जो प्राचीन काल से होते चले आते थे बन्द हो गये। संस्कृत भाषा भी पालि के सम्मुख दब गयी थी। पाली मुसलमानों को अरबी की समान बौद्धों की धार्मिक भाषा थी।

बौद्ध वेद द्वेषी थे। उन्होंने शास्त्रार्थ में पण्डितों को परास्त कर नील मत विहित मत का उच्छेद कर दिया था। आतंकित राजा छ मास तक काश्मीर मण्डल त्याग कर, दर्वाभिसार में समय व्यतीत करता था। पुरातन धर्म की रक्षा हेतु काश्यप गोत्रीय चन्द्रदेव ब्राह्मण ने तपस्या की। नील नाग उसकी तपस्या से प्रसन्न हो गये। (रा १ : १८२) पुरातन काल में आद्य चन्द्रदेव विद्वान ने यक्ष विप्लव शान्त किया था। *दूसरे चन्द्र देव ने बौद्ध विप्लव शान्त किया।* (रा० १ : १८४-१८६)

तृतीय धार्मिक क्रान्ति : तृतीय क्रान्ति बौद्ध प्राबल्य को पुनः रोकने के लिये राजा किन्नर, सिद्ध, गोपादित्य, सन्धि मति के काल में हुई थी। बौद्ध विहारों को भस्म करने का भी उल्लेख इस समय मिलता है। (रा० १ : २००) राजा सिद्ध ने शैव मत को पुनःस्थापित किया था। (रा० १ : २७६) *गोपादित्य ने वर्णाश्रम धर्म परिपालन हेतु ठोस कदम उठाया था। तथापि अहिंसा व्रत का त्याग नहीं किया* गया। बलिप्रथा का सक्रिय विरोध होता रहा। (रा० १ : ३४४) सन्धिमत के समय शैव भक्ति का पूर्णरूपेण काश्मीर मण्डल में प्रचार हो गया। (रा० २ : १३२)

कल्हण ने विष्णु का सर्वप्रथम उल्लेख प्राग्ज्योतिष के सन्दर्भ तथा राजा मेघवाहन के विवाह-सम्बन्ध में किया है। (रा० २ : १४७) विष्णु पूजा का प्रवेश बाहरी प्रभाव के कारण काश्मीर में हो सका था। मेघवाहन की रानी अमृतप्रभा थी। बंगाल तथा आसाम में वैष्णव मत का प्रभाव था। एतदर्थ विष्णु का प्रवेश काश्मीर में रानी अमृत प्रभा तथा रानी रणा रम्भा के कारण हुआ। परन्तु वह शिवपूजा तथा उपासना के समान सर्वमान्य नहीं हो सका।

चतुर्थ धार्मिक क्रान्ति : चतुर्थ धार्मिक क्रान्ति राजा मेघवाहन के समय में हुई थी। इस काल में बौद्ध मत का प्रचार पुन. हुआ। परन्तु शैव मत का विरोध इस बार नहीं हो सका। शैव तथा बौद्ध मतावलम्बी समझ गये थे। दोनों को एक साथ काश्मीर में रहना था। अतएव दोनों मत बहुत समीप आने लगे। मेघवाहन ने शैव उपासना का विरोध नहीं किया। उसका एकमात्र उद्देश्य था जगत में भगवान् बुद्ध के आदेशानुसार जीव हिंसा बन्द करना।

मेघवाहन अपने उत्तम आचरण तथा कर्मों से बोधिसत्वों के कार्यों से भी आगे बढ गया था। उसने भिक्षुओं तथा उपासकों के लिये नद वन विहार स्थापित किया। भगवान् बुद्ध जेतवन, आम्रवन, तथा वेणु वन आदि विहारों में निवास करते थे। प्रतीत होता है उसी का अनुकरण कर मेघवाहन ने नदवन विहार स्थापित किया था। (रा० ३ : १२) उसके समय में अहिंसा मर्यादा का पटह घोष किया गया था। उसकी रानी अमृत प्रभा के पिता का गुरु स्तुन्पा था। वह लोट अर्थात् लद्दाख दिशा से आया था। उसने लो स्तुन्पा स्तूप स्थापित किया। (रा० ३ . १०)

राजा ने विश्व के इतिहास का एक अभिनव अभियान आरम्भ किया। उसने दिग्विजय कर विश्व

में प्राणि हिंसा निषेध करने का निश्चय किया। (रा० ३ : २७) दक्षिण समुद्र तट पर मेघवाहन का शिविर पड़ा था। एक शबर चण्डिकायतन में नरबलि करने के लिये सन्नद्ध था। उस समय राजा ने स्वयं अपना शरीर अर्पित कर हिंसा से शबर को विरत किया था (रा० ३ : ५७) उसने ब्राह्मण बालक की रक्षा के लिये स्वयं अपना शरीर बलि के लिए अर्पित कर प्राणि रक्षा का स्तुत्य प्रयास किया था। (रा : ३ : ८८) राजा ने राक्षसो से भी अहिंसा व्रत लेकर उन्हें हिंसा कर्म से विरत किया था। (रा० ३ : ७८-७९) राजा ने अपने राज्य तथा भारत वर्ष में महाघोष कराया कि कोई भी प्राणी क्यों न हो वे सब अवध्य हैं। (रा० ३ : ८८)

मेघवाहन ने सर्व प्रथम काश्मीर में बुद्ध प्रतिमा अपनी पत्नी भिन्नो के विहार में स्थापित किया था। (रा० ३ : ४६४) मेघवाहन का जन्म गान्धार में हुआ था। गान्धार प्रदेश में महायान सम्प्रदाय का प्राबल्य था। कनिष्क के कारण अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तक बौद्ध धर्म पहुँच गया था। गान्धार शैली का स्थापत्य विकसित हो चुका था। मेघवाहन गान्धार में रहने के कारण उनसे प्रभावित था, अतएव मेघवाहन ने भगवान् बुद्ध की प्रतिमा काश्मीर में स्थापित की। इस प्रकार उसने प्रतिमा स्थापन की परम्परा चलायी। वह सम्राट् अशोक तथा कनिष्क के पश्चात् तीसरी महान भारतीय आत्मा था जिसने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु सक्रिय पग उठाया था। उसने प्रचार के लिए राजशक्ति का आश्रय लिया था।

कल्हण ने विस्तार के साथ इस काल के क्रान्तिकारी धार्मिक परिवर्तनो का उल्लेख किया है। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तो को भी संक्षेप में देने का प्रयास किया है। कल्हण के इस व्यापक ज्ञान से प्रतीत होता है कि उसने तत्कालीन मत-मतान्तरों एवं सम्प्रदायों का गहन अध्ययन किया था। उसने तन्त्र, योग, धर्म, मतादि के विषय में जहाँ भी लिखा है, साधिकार लिखा है। उसने चार हजार वर्षो के धार्मिक इतिहास को भी राजनीतिक इतिहास के साथ लिपिबद्ध किया है।

निरपेक्ष चिन्त विद् : कल्हण रूढवादी नही था। मौलिकता उसके छन्दों मे, उसके विचारों मे परिलक्षित होती है। वह लकीर का फकीर नही था। वह रचना के लिये रचना नही कर रहा था। वह जगत को कुछ नवीन स्फूर्तिदायक, सजीव विचार देना चाहता था। इसमे वह सफल हुआ है।

कल्हण ने मंगलाचरणो मे अन्य कवियों के समान प्रार्थना किंवा याचना नहीं किया है। उसका मंगलाचरण उसके मौलिक विचारो एवं मनोभावनाओं का परिचायक है। वह कर्म पर विश्वास करना चाहता है। पाठको को कर्मशील बनाकर उन्हें यशस्वी देखना चाहता है। प्रथम तरंग के मंगलाचरण में वह पाठकों के 'यश' की कामना करता है। द्वितीय तरंग के मंगलाचरण में अर्धनारीश्वर के शरीर निर्माण की 'जय' करता है। तृतीय तरंग में पाठको की 'रक्षा' की कामना करता है। चौथे तरंग में वह 'कल्याण' की कामना करता है। पंचम तथा षष्ठ तरंग में पुनः पाठकों की 'रक्षा' की कामना करता है। सप्तम तरंग में जगत की 'प्रसन्नता' और अष्टम तरंग मे 'पापों के नष्ट' करने की कामना करता है।

मंगलाचरणों मे उसने अपने लिये कुछ याचना नहीं किया है। वह पाठको के 'यश', 'जय', 'रक्षा' 'कल्याण', 'प्रसन्नता' एवं 'पापक्षय' की कामना करता है। वह कर्म पर विश्वास करना चाहता है। परन्तु-घटना-क्रमो ने, उनके अनहोनेपन ने, उसे दैववादी बना दिया। वह दैवी शक्ति में, भाग्य में, विश्व के तत्कालीन लेखकों के समान विश्वास करने लगा था। (रा० १ : ३२४, २ : ७६, ७७, ७८, ९२, ९३, ३ : १९६, १९७, ४८७, ४९१, ४९३)

विधाता के विधान के औचित्य की उसने खुलकर आलोचना की है। वह क्षण मात्र के लिये भी भयभीत नही हुआ था कि वह उसी की आलोचना कर रहा था। उसे अप्रसन्न कर रहा था, जो उसका भी विधाता था। विधाता क्यो अन्याय होने देता है? पुण्यात्मा क्यो कष्ट पाता है? निर्दोष प्राणी क्यों दु.खों, यातनाओं का पात्र बना दिया जाता है? मानव क्यो मानव पर क्रूरता करता है? पाशविक वृत्ति का क्यों आश्रय लेता है? आदि प्रसंगों को उठाकर भगवान की कटु आलोचना करने में वह संकोच नही करता। (रा० ५ : ५४५; ६ : २७५, २७७, १३२९, १४३९; ८ : १६७, २३७, १२७५, १७९०)

विधाता की आलोचना करते-करते कल्हण की लेखनी उपदेशात्मक हो जाती है। जब वह किसी घटना के औचित्य का कोई कारण नही दे सकता है तो यह कह कर छुट्टी ले लेता है कि सब विधाता की इच्छा से होता है। (रा० २ : ९२; ३ : ४९२; ७ : ९१६, १०७०, १७३९, १६२९; ८ : २२०, ६०७, १०३६, १२७४) इन स्थानों पर पुराणों एवं महाभारत में मापोपुर को नाग कन्या, परीक्षित, कच, तार्क्ष्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, आदि का उदाहरण उपस्थित कर, विधाता के विधान की पुष्टि कर देता है। *अलौकिक एवं विचित्र घटनाओ के घटना का स्पष्टीकरण शब्द प्रमाण से देता है।*

भाग्यवादी किन्तु कर्म में विश्वास : कल्हण कर्मवाद का समर्थन करते-करते अन्त में भाग्यवादी बन जाता है। *उसने शुभा-शुभ कर्मों और तदनुसार उनके परिणामों में दृढ विश्वास प्रकट किया* है। वह कहता है—प्राणी अपने भाग्य की गति बदलने के लिये जिन साधनों का आश्रय लेता है वे ही उसकी भाग्य गति के साधन हो जाते है।' इसका उदाहरण उसने जयसिंह, सन्धिमति, कलश, मिहिर कुल तथा उन्मत वन्ती से दिया है। (रा० ८ : ३४०५, २ : ७७; २ : ६५; ७ : ५०६, १ : ३२५; ५ : ४४८; ७ : ९५९, १२८८, १३७२)

कल्हण जिस प्रकार प्राणियो को उनके विपत्तियों का कारण प्राक्तन एवं इस जन्म का किया पाप मानता है, उसो प्रकार देश किंवा जनता पर विपत्ति आने का कारण जनता का पाप कर्म मानता है। (रा० १ . ८७ ४ ३९) *तथापि जयापीड का उदाहरण देकर वह यह मत उपस्थित करता है कि पुरुषार्थ एवं* आत्मविश्वास द्वारा भाग्य पर, दैव पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। (रा० ४ : ४१३) वह इस मत का भी प्रतिपादन करता है 'बली अपने बल पर, विश्वास करता है और उसे करना चाहिये।
(रा० ■ · १२८८)

कर्म तथा पुनर्जन्म में कल्हण विश्वास करता है। मनुष्य के शरीर का तिल जिस प्रकार उसका साथ शरीर भस्म होने तक नही त्यागता उसी प्रकार सस्कार एवं कर्म मानव का साथ नही त्यागते। मानव अपने पूर्व जन्म के पाप, पुण्य एवं कृते का फल भोगता है। वह अपने पूर्व कर्म का परिणाम ही है। कर्म के *कारण, वासना के कारण मानव पुनर्जन्म ग्रहण करता है। (रा० ३ : १३१, ४२४, ४३०)*

भाग्य, कर्म, पुरुषार्थ, आत्म विश्वास सबका निष्कर्ष निकालकर, कल्हण सन्देश देता है—'चाहे कोई भी भाग्य कैसा क्यों न हो, विधाता ने चाहे जो लिख रखा हो केवल आत्म विश्वासी एवं सबल राजा काश्मीर की रक्षा कर सकता है।'

धर्म भीरुता : कल्हण को धार्मिक प्रवृत्ति थी। उसने जहाँ भी कही देव स्थान, पूजा, उपासना, वन्दना, देव शृंगार, अर्चना का वर्णन किया है, वहा उसकी भाषा पवित्र प्रभावोत्पादक तथा साफ सुथरी निखरी है। कल्हण गुरु परम्परा में विश्वास करता है। परन्तु अपने गुरु का नाम नही देता। हिन्दू परम्परा

के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को गुरुमुख, गुरुमन्त्र किंवा गुरु दीक्षा के लिये गुरु चयन कर लेना चाहिए। गुरु-पूर्णिमा का पर्व ही गुरु पूजा के लिये अभिहित है। कल्हण अपने किसी शिक्षक का भी नाम नहीं देता। किन्तु गुरु शब्द का जहां भी कहीं उसने प्रयोग किया है अत्यन्त श्रद्धा के साथ किया है। बुद्ध, वर्ण, त्रिभुवन, उग्र, आदि के लिये गुरु का प्रयोग कर अपनी श्रद्धा का परिचय दिया है।

कल्हण धर्म भीरु था। परिहासपुर के पवित्र वातावरण, विशाल मन्दिरों की शृंखला, परिहास, केशव, बुद्ध मन्दिरों आदि में होते पूजा-पाठ, राग-भोग, सेवा-सुश्रूषा, संगीत, नृत्य, वन्दना, प्रवचन, कथा, नाटक, उत्सवों एवं यात्राओं का उस पर बाल्यावस्था से ही प्रभाव पड़ता आया था। धार्मिक वातावरण में रहने के कारण उसका संस्कार धार्मिक हो गया था। वह हिन्दू तथा बौद्ध दोनों विद्वानों के सम्पर्क में आया था। साधु-संत, योगियों, भिक्षुओं आदि के सान्निध्य के कारण उसमें जगत के प्रति विराग की भावना परिलक्षित होती है। वह सर्वदा संसार की निस्सारता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है।

कल्हण ने राजाओं को उनके पाप के कारण दण्डित होने का क्रमबद्ध उदाहरण उपस्थित किया है। दण्ड देनेवाले राजा को भी दण्ड देने वाली अव्यक्त शक्ति है, इसका उसने उत्तमता के साथ प्रतिपादन किया है। अधर्म द्वारा अर्जित सम्पत्ति पुण्य कार्यों में व्यय करने पर अधर्म का निवारण होता है, कल्हण ने इसका ध्यान सर्वदा राजा तथा जनता को दिलाया है। (४ : ७०१)

क्षण-भंगुरता : कल्हण के वर्णन में जगत की क्षण-भंगुरता की भावना पद-पद पर परिलक्षित होती है। (रा० १ : २३) वह जगत की क्षण भंगुरता के कारण भाग्यवादी बन जाता है। तत्कालीन समाज में सुधार तथा गिरते चरित्र को उठता न देखकर वह निराश हो जाता है। भविष्य की घटनाओं पर नियन्त्रण न होने के कारण ने उसे भाग्यवादी बना दिया था। राजनीतिक उथल-पथल, उलट-फेर, पद-प्राप्ति एवं पदच्युत होना, सांसारिक वैभवों की असारता ने उसे क्षण भंगुरता के सिद्धान्त की ओर आकृष्ट कर दिया था। राज सुख की अनिश्चितता, लक्ष्मी की चंचलता, मानवों की पराश्रयता, पद लोलुपता, विश्वासघात, कृतघ्नता, अकारण क्रूरता, नैतिक नियमों का किंचित स्वार्थ के लिये उल्लंघन, स्वार्थसिद्धि हेतु उत्पीडन, घटनाओं का अनजाने घटना, होनी का अनहोनी होना आदि के उदाहरणों के कारण वह क्षणभंगुरता की ओर खिंचता गया है। जीवन का ठिकाना न होना, अल्पायु, अकाल मृत्यु, स्वस्थ का अकस्मात रोग के कारण कालकवलित होना, सभी वस्तुओं का नाश, उनका क्षण-क्षण परिवर्तन, परिस्थितियों से बाधित समस्याओं का विचित्र रूप से खड़े हो जाना आदि का प्रभाव उसके सरल मस्तिष्क पर उसकी शैली में दिखायी देता है। (रा० ५ : ७)

जगत की क्षणभंगुरता का रहस्य अवसर आते ही पाठक पर प्रकट करता है। भगवान बुद्ध का उपदेश—जिसका जन्म हुआ है उसका अन्त होगा और जिसका अन्त होगा उसका पुनः जन्म होगा, जिसका उदय होता है उसका अस्त होगा और सभी धर्मों का कारण कोई हेतु होता है, गर्भ का बालक, युवा होगा, प्रौढ़ होगा। वृद्ध होगा, जन्म जरा, व्याधि एवं अवसान से कोई बच न सकेगा—उसे विराग के साथ ही साथ क्षण भंगुरता की ओर उन्मुख कर दिया है। क्षण भंगुरता का यह दर्शन कल्हण के तात्कालिक जीवन कठोर जीवन के अनुभवों को बताता है।

देश-प्रेम : कल्हण की आत्मा काश्मीर के कण-कण में व्याप्त थी। उसने जहां भी कहीं कश्मीर का उल्लेख किया है वहां देश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति अपनी पूर्ण गरिमा में प्रकट हुई है। जहां भी कहीं उसने सम्राट कनिष्कादि से काश्मीर भूमि को प्रणाम कराया है वह स्थल संस्कृत साहित्य में भाव-व्यंजना की दृष्टि

से अत्यन्त उच्चकोटि का हुआ है। (रा० १ : २६-७२) राजा युधिष्ठिर तथा उसकी रानियाँ काश्मीर भूमि का अन्तिमदर्शन कर विदा होती हैं तो देश प्रेम, देश वियोग का जो करुण चित्रण कल्हण ने किया है वह विश्व-इतिहास के किसी भी साहित्य की अमूल्य निधि मानी जायगी। (रा० १ : ३६६-६७३) काश्मीर के लिये कल्हण ने माता शब्द का प्रयोग किया है। (रा० ३ : ८६) उसने काश्मीर मण्डल के लिये 'काम्य' शब्द का उल्लेख किया है। उसने काश्मीर देश तथा भूगोल वर्णन आध्यात्म से मिला दिया है। पुण्यभूमि काश्मीर की गरिमा इतनी श्रद्धाभक्ति के साथ प्रकट की है कि उसे पढ़कर रोमांच हो जाता है। (रा० १ : ४३) उसकी देश भक्ति उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब भगवान श्रीकृष्ण के मुख से एक पुरातन पुराण वचन उद्धृत कराया है—'कश्मीर पार्वती स्वरूप है और वहाँ का राजा हर का अंश है।' (रा० १ : ७२) कृष्ण गोनन्द तथा दामोदर युद्ध का वर्णन, कश्मीर सेना का अभियान प्रेरणा एवं स्फूर्तिप्रद पद कहे जायेंगे। (रा० १ : ५७-५८)।

काश्मीर की अजेय शक्ति पर गर्व करता कल्हण कहता है—'कश्मीर पर बल द्वारा नहीं केवल पुण्य द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। वहाँ के निवासी केवल परलोक से भयभीत होते हैं न कि शस्त्रधारियों से।' उसने विश्व को चुनौती दी है। चार सहस्र वर्षों से स्वाधीनता का भोग करने वाले काश्मीरी कभी बाहरी शक्ति के सम्मुख न झुकने वाले काश्मीरी, शत्रो के सम्मुख कभी मस्तक नहीं झुकाये थे। (रा० १ : ३९)।

किन्तु उसने काश्मीरियों के उत्तरकालीन भीरुता, पक्षपात, दुराग्रह, कलह, अर्थहीन, संघर्ष क्षुद्रता, हृदयदौर्बल्य, सैनिकों की कायरता, विश्वासघात आदि का निःसंकोच वर्णन एवं निन्दा की है। ब्राह्मण के दोषों की खुलकर निन्दा तथा राजपूतों के वीरता की प्रशंसा की है। (रा० ७ : ४२५) देश के चरित्र की राष्ट्रीय दुर्बलताओं का ध्यान रखते हुए भी उसे विश्वास था कि उसका काव्यमय इतिहास तत्कालीन एवं भविष्य के राजाओं, देशभक्तों को काश्मीर के महान राजाओं का, महान व्यक्तियों में तथा महान पूर्वजों की श्रेणियों में बैठाने योग्य बनायेगा।

काश्मीर की सुरक्षा भावना के प्रति कल्हण विशेष जागरूक था। उसने यही संदेश दिया था—'काश्मीर यदि अरक्षित हो गया तो सब कुछ नष्ट हो जायगा।' अशोक जैसे सम्राट ने काश्मीर की म्लेच्छों से रक्षा हेतु जलौक पुत्र की प्राप्ति के लिये तपस्या की थी। (रा० १ : १०७) जलौक ने उज्जट डिम्ब स्थान पर म्लेच्छों का संहार किया था। (रा० १ : ११६) कश्मीर ने यह सतर्कता त्याग दी तो उसे सबकुछ से हाथ धोना पड़ा।

इतिहास : इतिहास की महत्ता प्राचीन काल से रही है। वेदों का भाष्य करते समय ऋषियों ने बार-बार प्राचीन 'ऐतिह्यों' पर ध्यान आकृष्ट किया है। विश्व के विद्वानों ने संस्कृत वाङ्मय की सर्वांग परिपूर्णता से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा की है। किन्तु श्री कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने 'ऐतिह्य' बुद्धि का भारतीयों में अभाव होना लिखा है। उनका मत है, प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा नहीं थी। इतिहास के रूप में लोग इतिहास से अपरिचित थे। किन्तु भारत में इतिहास का लक्षण कुछ अपना था। उसके अनुसार इतिहास का प्रणयन होता रहा है।

छान्दग्योपनिषद में नारद : सनत्कुमार संवाद में इतिहास, पुराण पंचम वेद है। इस संकेत से इतिहास अध्ययन की बात सुस्पष्ट कही गयी है। यास्क ने निरुक्त में 'इति ऐतिहासिका' कहकर पुरा वृत्तियों का स्मरण किया है।

वेदों के आख्यानों में ऐतिहासिकता है। तिथि तथा वर्ष के अभाव में उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। प्राचीन काल में 'ऐतिह्य बुद्धि की सत्ता स्वीकार की गयी है। वही कालान्तर में परिवर्तित होकर इतिहास के रूप में आज वर्तमान है।

प्राचीन भारत मे इतिवृत्त को रस के अनुकूल परिवृत्त कर काव्य के रूप में प्रथित करने की प्रथा थी। उनके परिणामस्वरूप अनेक ऐतिहासिक नाटक एवं महाकाव्यों की रचना की गयी। कौमुदी महोत्सव से गुप्त कालीन इतिहास पर प्रकाश पडता है। बाण प्रणीत हर्षचरित में हर्ष के इतिहास का निर्विवाद निर्णय प्राप्त होता है। प्रवरसेन का प्राकृत भाषा मे प्रथित ऐतिहासिक महाकाव्य सेतुबन्ध प्रख्यात काव्य है। कान्यकुब्जाधिपति आश्रित वाक्पति राज ने ऐतिहासिक काव्य गउडवाहो लिखा है। वादिराज ने यशोधर चरित लिखा है। वह ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से सुन्दर काव्य है। कल्हण ने स्वयं शंकुक कृत भुवनाभ्युदय का उल्लेख किया है। यह अप्राप्य ग्रन्थ है। उसमे मम्मोत्पल के युद्ध का सुन्दर वर्णन है। पद्मगुप्त परिमल का नव साहसांक चरित ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। हेम चन्द्र का 'द्वयाश्रय' काव्य ऐतिहासिक है। मंखक का श्री कंठ चरित तथा जल्हण प्रणीत सोमपाल चरित इतिवृत्त परक काव्य है। रामपाल चरित, विक्रमांकाभ्युदय चरित, पृथ्वीराज विजय, जयन्त विजय, सुकृत संकीर्तन, हम्मीर मद मर्दन, वसन्त विलास, सुरत्सोत्सव, कीर्ति कौमुदी, भोट्टपराज, चन्द्रप्रभा आदि ग्रन्थो मे प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। इस प्रकार इतिहास को आधारभित्ति बनाकर काव्य की रचना करने वाले कवियों की एक विशाल परम्परा है। ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेताओं में महाकवि बिल्हण का नाम उल्लेखनीय है। उसने चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य षष्ठ को अपने महाकाव्य का नायक बनाकर अमर कर दिया है।

इतिवृत्त मिश्रित काव्यकर्ता अनेक हुये है। किन्तु इतिवृत्त को प्रधान बनाकर रचना करने वाले और तिथि वर्ष का सम्यक् उल्लेख करने वाले कवियों की परम्परा कुछ क्षीण रही है। जो थे उनके ग्रन्थ अबतक प्रकाश में नहीं आये है। उनका केवल नाम मात्र अवशिष्ट है। राजतरंगिणी एक सच्चे इतिहासकार की कृति है। कल्हण सहृदय कवि है। उसने इतिहास को भी पूर्ण रूपेण काव्यमय बनाने का प्रयास किया और सफल हुआ है। यदि कवि की प्रतिभा का मूल्यांकन किया जाय कि वह कहाँ तक कवि है और कहाँ तक इतिहासकार तो किसी एक निश्चय पर पहुँचना कठिन प्रतीत होता है। कवि एवं इतिहासकार जिस दृष्टि से विचार किया जाय कल्हण को दोनों में पारंगत पाते है। वह ऐतिहासिक एवं महाकाव्यकार दोनों है। उसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। उसने राजाओ के काल, समय एवं स्थानो को जो अस्थिर थे, अनियमित थे, निश्चित नही थे, उन्हें निश्चित एवं स्थिर किया है। पाठकों की उदात्त भावनाओं को जागृत किया है। उसने नीति वचनो का प्रयोग कर काव्य को हलका बनाने की अपेक्षा गम्भीर एवं उपदेशात्मक बना दिया है।

कल्हण ने वेद की इस महत्त्वपूर्ण परंपरा मे रचना का उत्तरदायित्व उठाया था। उसकी आरम्भ की गयी परम्परा आगामी पाँच शताब्दियो तक चलती रही। उसने जिस तरंगिणी को जीवन दिया था उसे जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट एवं शुक काश्मीर मे प्रथम बार विदेशी मुगल शासन स्थापित होने तक कायम रखे। विश्व इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता कि इतिहास लिखने की परम्परा एक ही पुस्तक या लेखन-क्रम पाँच शताब्दियो तक अविच्छिन्न गति से चलता रहा। यह तरंगिणी उसी समय सूखी जब काश्मीर की स्वाधीनता भी सूख गयी।

कौटिल्य की परिभाषानुसार राजतरंगिणी इतिहास है। कौटिल्य ने इतिहास मे पुराण, इतिवृत्त,

से अत्यन्त उच्चकोटि का हुआ है। (रा० १ : २६-७२) राजा युधिष्ठिर तथा उनकी रानियाँ काश्मीर भूमि का अन्तिमदर्शन कर विदा होती हैं तो देश प्रेम, देश वियोग का जो करुण चित्रण कल्हण ने किया है वह विश्व-इतिहास के किसी भी साहित्य की अमूल्य निधि मानी जायगी। (रा० १ : ३६६-६७१) काश्मीर के लिये कल्हण ने माता शब्द का प्रयोग किया है। (रा० ३ : ८६) उसने काश्मीर मण्डल के लिये 'काश्य' शब्द का उल्लेख किया है। उसने काश्मीर देश तथा भूगोल वर्णन अध्यात्म से मिला दिया है। पुण्यभूमि काश्मीर की गरिमा इतनी श्रद्धाभक्ति के साथ प्रकट की है कि उसे पढ़कर रोमांच हो जाता है। (रा० १ : ४२) उसकी देश भक्ति उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब भगवान श्रीकृष्ण के मुख से एक पुरातन पुराण वचन उद्धृत कराया है—'कश्मीर पार्वती स्वरूप है और वहाँ का राजा हर का अंश है।' (रा० १ : ७२) कृष्ण गोनन्द तथा दामोदर युद्ध का वर्णन, कश्मीर सेना का अभियान प्रेरणा एवं स्फूर्तिप्रद पद कहे जायेंगे। (रा० १ : ५७-५८)।

काश्मीर की अजेय शक्ति पर गर्व करता कल्हण कहता है—'कश्मीर पर बल द्वारा नहीं केवल पुण्य द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। यहाँ के निवासी केवल परलोक से भयभीत होते हैं न कि शस्त्रधारियों से।' उसने विश्व को चुनौती दी है। चार सहस्र वर्षों से स्वाधीनता का भोग करने वाले काश्मीरी कभी बाहरी शक्ति के सम्मुख न झुकने वाले काश्मीरी, शस्त्रों के सम्मुख कभी मस्तक नहीं झुकाये थे। (रा० १ : ३९)।

किन्तु उसने काश्मीरियों के उत्तरकालीन भीरुता, पक्षपात, दुराग्रह, कलह, अर्थहीन, संघर्ष क्षुद्रता, हृदयदौर्बल्य, सैनिकों की कायरता, विश्वासघात आदि का निःसंकोच वर्णन एवं निन्दा की है। ब्राह्मण के दोषों की खुलकर निन्दा तथा राजपूतों के वीरता की प्रशंसा की है। (रा० ३ : ४२५) देश के चरित्र की राष्ट्रीय दुर्बलताओं का ध्यान रखते हुए भी उसे विश्वास था कि उसका काव्यमय इतिहास तत्कालीन एवं भविष्य के राजाओं, देशभक्तों को काश्मीर के महान राजाओं का, महान व्यक्तियों में तथा महान पूर्वजों की श्रेणियों में बैठाने योग्य बनायेगा।

काश्मीर की सुरक्षा भावना के प्रति कल्हण विशेष जागरूक था। उसने यही संदेश दिया था—'काश्मीर यदि अरक्षित हो गया तो सब कुछ नष्ट हो जायगा।' अशोक जैसे सम्राट ने काश्मीर की म्लेच्छों से रक्षा हेतु जलौक पुत्र की प्राप्ति के लिये तपस्या की थी। (रा० १ : ०७) जलौक ने उज्झट डिम्ब स्थान पर म्लेच्छों का संहार किया था। (रा० १ : ११६) कश्मीर ने यह सतर्कता त्याग दी तो उसे सबकुछ से हाथ धोना पड़ा।

इतिहास : इतिहास की महत्ता प्राचीन काल से रही है। वेदों का भाष्य करते समय ऋषियों ने बार-बार प्राचीन 'ऐतिह्यों' पर ध्यान आकृष्ट किया है। विश्व के विद्वानों ने संस्कृत वाङ्मय की सर्वांग परिपूर्णता से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा की है। किन्तु श्री कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने 'ऐतिह्य' बुद्धि का भारतीयों में अभाव होना लिखा है। उनका मत है, प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा नहीं थी। इतिहास के रूप में लोग इतिहास से अपरिचित थे। किन्तु भारत में इतिहास का लक्षण कुछ अपना था। उसके अनुसार इतिहास का प्रणयन होता रहा है।

छान्दग्योपनिषद में नारद : सनत्कुमार संवाद में इतिहास, पुराण पंचम वेद हैं। इस संकेत से इतिहास अध्ययन की बात सुस्पष्ट कही गयी है। यास्क ने निरुक्त में 'इति ऐतिहासिका' कहकर पुरा वृत्तियों का स्मरण किया है।

वेदों के आख्यानों में ऐतिहासिकता है। तिथि तथा वर्ष के अभाव में उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। प्राचीन काल में 'ऐतिह्य बुद्धि की सत्ता स्वीकार की गयी है। वही कालान्तर में परिवर्तित होकर इतिहास के रूप में आज वर्त्तमान है।

प्राचीन भारत में इतिवृत्त को रस के अनुकूल परिवृत्त कर काव्य के रूप में प्रथित करने की प्रथा थी। उनके परिणामस्वरूप अनेक ऐतिहासिक नाटक एवं महाकाव्यों की रचना की गयी। कौमुदी महोत्सव से गुप्त कालीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। बाण प्रणीत हर्षचरित में हर्ष के इतिहास का निर्विवाद निर्णय प्राप्त होता है। प्रवरसेन का प्राकृत भाषा में ग्रथित ऐतिहासिक महाकाव्य सेतुबन्ध प्रख्यात काव्य है। कान्यकुब्जाधिपति आश्रित वाक्पति राज ने ऐतिहासिक काव्य गउडवाहो लिखा है। वादिराज ने यशोधर चरित लिखा है। वह ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से सुन्दर काव्य है। कल्हण ने स्वयं शंकुक कृत भुवनाभ्युदय का उल्लेख किया है। यह अप्राप्य ग्रन्थ है। उसमें मम्मोत्पल के युद्ध का सुन्दर वर्णन है। पद्मगुप्त परिमल का नव साहसांक चरित ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। हेम चन्द्र का 'द्वयाश्रय' काव्य ऐतिहासिक है। मंखक का श्री कंठ चरित तथा जल्हण प्रणीत सोमपाल चरित इतिवृत्त परक काव्य है। रामपाल चरित, विक्रमाकाभ्युदय चरित, पृथ्वीराज विजय, जयन्त विजय, सुकृत संकीर्तन, हम्मीर मद मर्दन, वसन्त विलास, सुरतोत्सव, कीर्ति कौमुदी, मोहपराज, चन्द्रप्रभा आदि ग्रन्थों में प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। इस प्रकार इतिहास को आधारभित्ति बनाकर काव्य की रचना करने वाले कवियों की एक विशाल परम्परा है। ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेताओं में महाकवि विल्हण का नाम उल्लेखनीय है। उसने चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य षष्ठ को अपने महाकाव्य का नायक बनाकर अमर कर दिया है।

इतिवृत्त मिश्रित काव्यकर्त्ता अनेक हुये हैं। किन्तु इतिवृत्त को प्रधान बनाकर रचना करने वाले और तिथि वर्ष का सम्यक् उल्लेख करने वाले कवियों की परम्परा कुछ क्षीण रही है। जो थे उनके ग्रन्थ अबतक प्रकाश में नहीं आये हैं। उनका केवल नाम मात्र अवशिष्ट है। राजतरंगिणी एक सच्चे इतिहासकार की कृति है। कल्हण सहृदय कवि है। उसने इतिहास को भी पूर्ण रूपेण काव्यमय बनाने का प्रयास किया और सफल हुआ है। यदि कवि की प्रतिभा का मूल्यांकन किया जाय कि वह कहाँ तक कवि है और कहाँ तक इतिहासकार तो किसी एक निश्चय पर पहुँचना कठिन प्रतीत होता है। कवि एवं इतिहासकार जिस दृष्टि से विचार किया जाय कल्हण को दोनो मे पारंगत पाते हैं। वह ऐतिहासिक एवं महाकाव्यकार दोनों है। उसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। उसने राजाओं के काल, समय एवं स्थानो को जो अस्थिर थे, अनियमित थे, निश्चित नही थे, उन्हें निश्चित एवं स्थिर किया है। पाठकों की उदात्त भावनाओं को जागृत किया है। उसने नीति वचनों का प्रयोग कर काव्य को हलका बनाने की अपेक्षा गम्भीर एवं उपदेशात्मक बना दिया है।

कल्हण ने वेद की इस महत्त्वपूर्ण परंपरा में रचना का उत्तरदायित्व उठाया था। उसकी आरम्भ की गयी परम्परा आगामी पाँच शताब्दियों तक चलती रही। उसने जिस तरंगिणी को जीवन दिया था उसे जोनराज, श्रीवर, प्रज्ञाभट्ट एवं शुक काश्मीर में प्रथम बार विदेशी मुगल शासन स्थापित होने तक कायम रखे। विश्व इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता कि इतिहास लिखने की परम्परा एक ही पुस्तक का लेखन-क्रम पाँच शताब्दियो तक अविच्छिन्न गति से चलता रहे। यह तरंगिणी उसी समय सूखी जब काश्मीर की स्वाधीनता भी सूख गयी।

कौटिल्य की परिभाषानुसार राजतरंगिणी इतिहास है। कौटिल्य ने इतिहास में पुराण, इतिवृत्त,

आख्यायिका, उदाहरण, धर्म एवं अर्थशास्त्र का समावेश किया है। जैन आदि पुराण इतिहास की परिभाषा करता है—जो हुआ है वही इतिहास है। हर्ष चरित, गउड वाहो, नव साहसाक चरित, विक्रमांक देवचरित, कुमारपाल चरित आंशिक इतिहास हैं। कल्हण के पश्चात् पृथ्वीराज विलास, सोमपाल विलास, कृति कौमुदी, प्रभावक चरित, सुकृत संकीर्तन तथा प्रबन्ध चिन्तामणि, इसी प्रकार की रचनायें हैं। इनमें कुमारपाल, वस्तुपाल, रामपाल, विक्रमादित्य, सिन्धुराज का उल्लेख है। हिन्दी ग्रन्थों में पृथ्वीराज रासो, बीसल देव रासो आदि भी आंशिक इतिहास ग्रन्थ हैं।

पूर्व महाभारत कालीन इतिहास ग्रन्थ नहीं मिलते। कल्हण इसलिए अपना इतिहास महाभारत काल से आरम्भ करता है। काश्मीर में आर्यों के पूर्व नाग एवं पिशाच रहते थे। कल्हण जलोद्भव असुर के वध की कथा पौराणिक शैली से देकर, काश्मीर उपत्यका को बारहमूला के समीप से जल निकालकर, उसके सूखी भूमि हो जाने के समय तथा तुरन्त उसके पश्चात् गोनन्द प्रथम का उपाख्यान आरम्भ कर देता है। (रा० १ २६-२७; ४९-७३)

इतिहास प्रयोजन: कल्हण इतिहास रचना का कारण उपस्थित करता है। पूर्व कालीन इतिहास-ग्रन्थों का नाम नहीं देता। केवल कहता है—पूर्व कालीन इतिहास ग्रन्थ विस्तृत थे। सुव्रत ने विस्तृत इतिहास ग्रन्थ को संक्षिप्त किया। (रा १ : ११–१२) अतएव प्राचीन इतिहास लुप्त हो गये, छिन्न हो गये। गोनन्द तृतीय के परवर्ती ५२ महीपति, जो कलियुग में कौरव एवं पाण्डवों के समकालीन थे, उनका लेखा लुप्त हो गया है। (रा० १ : १६, ४४) कवि क्षेमेन्द्र ने नृपावली की रचना की। वह काव्य रचना है। किन्तु अनवधानता के कारण उसमें इतनी त्रुटियाँ रह गयी हैं कि उसका कोई भी अंश निर्दोष नहीं कहा जा सकता था। (रा० १ : १३) यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। पाशुपत व्रती हेला राज ने १२ सहस्र श्लोकों की 'पार्थिवावली' लिखी। (रा० १ : १७) तत्पश्चात् पद्ममिहिर ने हेलाराज की रचना का अध्ययन कर अशोक के पूर्ववर्ती आठ राजाओं का वर्णन किया है। (रा० १ : १८) इस इतिहास का कल्हण नाम नहीं देता। श्री छविल्लाकर ने अशोक के पश्चात् जिन पाँच राजाओं का वर्णन किया है वे लुप्त बावन राजाओं में से हैं। (रा० १ : १६) श्री छविल्लाकर के इतिहास का नाम कल्हण नहीं देता। गोनन्दादि चार राजाओं का वर्णन नीलमत पुराण से लिया गया है। (रा० १ : १६) कल्हण के समय तक राजकथा विषयक ग्यारह ग्रन्थ थे। (रा० १ ' १४) कल्हण उन ग्रन्थों का नाम नहीं देता। कल्हण ने सुव्रत के इतिहास का भी नाम नहीं दिया है।

कल्हण ने अपने रचना-स्रोत का भी उल्लेख किया है। (रा० १ : १५) प्रारम्भिक तरंग अनुश्रुतियों पर आधारित है। ललितादित्य की मृत्यु का वर्णन उसने अनुश्रुति के आधार पर किया है। (रा० ४ : ३६७-३७१) यशस्कर की मृत्यु का उल्लेख भी अनुश्रुति के आधार पर किया है। (रा० ६ : ६०, ११३) वह अपने इतिहास लिखने का उद्देश्य स्वयं देता है—'इस ग्रन्थ को लिखने की मेरी यह योजना है कि मैं सर्वांगीण, पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ जहाँ पुरातन इतिहास-लेखकों की रचनायें विशृंखलित हैं।' (रा० १ : १०)

काश्मीर महाभारत काल से कल्हण तथा उसके पश्चात् अकबर के समय तक किसी विदेशी सेना से पदाक्रान्त नहीं हुआ था। सन् १३३९ ई० में अन्तिम हिन्दू शासिका कोटा रानी को हटाकर शाह मीर काश्मीर का राजा बना, काश्मीर मुसलमान धर्म में परिवर्तित हो गया परन्तु काश्मीर में काश्मीरी मुसलमानों का ही शासन रहा। काश्मीर प्रकृति की सुषमा में सुरभित रहा। यदि कल्हण के मन में ४२२५ वर्षों

के गौरवमय इतिहास लिखने की कल्पना उदय हुई तो कोई आश्चर्य की बात नही है। उसने कारण भी दिया है। उसने अनुभव किया था कि कितने ही काश्मीर के राजा विस्मृति सागर में डूब गये थे। कवियो की कृति के कारण कुछ की स्मृति शेष रह गयी थी। कवि या रचनाकार अपनी रचनाओं के कारण स्वयं जीवित रहता है और दूसरो को भी जीवित रखता है। राजकीय पद एवं चकाचौंध मे रहने वाले महामात्यों, मन्त्रियों, सेनानायकों की असंख्य संख्या लोप हो चुकी है। किन्तु कल्हण स्वयं जीवित रहना चाहता था। इसमें निःसन्देह वह सफल हो पाया है। वह इसलिये भी जीवित रह पाया है कि संस्कृत साहित्य में सवा चार हजार वर्षों का एक मात्र उसका इतिहास प्राप्य है। उसने विश्व मे भारतीयों को इस कलंक से मुक्त किया है कि भारतीयो को इतिहास लिखने का ज्ञान नही था। और भारतीय साहित्य में कोई इतिहास नही है।

कुछ अभाव : कल्हण की राजतरंगिणी में कुछ अभाव खटकता है। आश्चर्य है उसने भारत पर सिकन्दर के आक्रमण, पोरस के साथ युद्ध, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्र गुप्त, स्कन्द गुप्त, शशांक, नरेन्द्र गुप्त, पुलकेशी तथा बाणभट्ट जैसे महान भारतीय आत्माओं का उल्लेख नही किया है। दार्शनिकों में शंकराचार्य का भी उसने उल्लेख नही किया है। इसी प्रकार लिच्छवी, वज्जी, पंजाब के अनेकानेक गणतन्त्र, मालव, यौधेय, आदि का राजतरंगिणी में उल्लेख न होना एक समस्या उपस्थित कर देता है। सीमान्त प्रदेश पर यूनानियों के साथ संघर्ष, अफगानिस्तान आदि में यूनानियो की राज्य स्थापना, ईरान, अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान में पुराने धर्म के स्थान पर मुसलिम धर्म का उदय, उन देशो मे पुरातन राजवंशों का पतन तथा नवीन सल्तनतो का कायम होना, ये ऐसी घटनायें है जिनके ज्ञान की अपेक्षा पाठक कल्हण से करता है। ललितादित्य तथा जयापीड ने भारतवर्ष मे क्या महत्वपूर्ण कार्य किया, इस पर कल्हण शान्त है। वह अपना ज्ञान अवन्ती तथा कन्नौज के राजाओं तक एक प्रकार से सीमित कर देता है। अन्य राजाओं का केवल उल्लेख मात्र उसने किया है। इसके दो ही स्पष्टीकरण हो सकते है : कल्हण को कोई तत्कालीन प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ प्राप्त नही था। काश्मीर मे जो लोग मुसलिम आतंकों से भागकर आये, उनके पास शास्त्रीय एवं काव्य-ग्रन्थ थे। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि सहस्रों वर्ष की घटनायें लोग भूल गये थे। वे लिपिबद्ध नही थे। इसमें से कुछ घटनाओ एवं व्यक्तियों के विषय मे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पूरे भारत के इतिहास के लिए उनका महत्व स्पष्ट है, केवल काश्मीर के सीमित दृष्टिकोण से देखने पर उनका कोई भी स्थान नही निर्धारित किया जा सकता। संभवत इसी कारण कल्हण इनके विषय मे मौन है।

दृष्टिकोण: कल्हण प्रगतिशील था। जड़ता से दूर था। रूढियों में बँधा नही था। धार्मिक संकीर्णता, जातीय असहिष्णुता से ऊपर उठा था। उसका दृष्टिकोण आधुनिक जैसा था। उसने एक मनोरंजक कालक्रम से ऐतिहासिक तालिका प्रस्तुत किया है। उसने घटनाक्रमो से व्यापक निष्कर्ष निकाल कर, व्यापक सिद्धान्तों को काव्यमयी भाषा मे प्रस्तुत किया है।

कल्हण का दृष्टिकोण स्थानीय लगेगा। यह काश्मीरियों की प्रवृत्ति उनके प्रदेश के एकाकीपन के कारण हो गयी है। काश्मीर का समस्त जीवनक्रम ही जैसे एकाकी जीवनवृत्त है। उसकी दृष्टि जैसे काश्मीर उपत्यका को घेर कर खड़ी पर्वत-मालाओं से बाहर नहीं जाना चाहती। काश्मीरियों की यह मानसिक स्थिति पुराकाल में भी थी और आज भी है।

कल्हण की दृष्टि बाहर भी गई है। भारतीय साहित्यिक कृतियों के साथ साथ उसे समकालीन भारतीय इतिहास का भी ज्ञान था। उसने काश्मीर के बाहर की घटनाओं एवं राजाओं का उल्लेख किया है।

उनकी न तो प्रशंसा की है और न आलोचना। यह पुराणों तथा महाभारत के समान समकालीन राजाओं की तुलना नही करता।

राजतरंगिणी गिबन के डिक्लाइन एण्ड फाल ऑफ रोमन इम्पायर तथा वाल्टेयर के इतिहास तुल्य नही है। यह काव्य है। होमर का तथा अश्चाइलस की रचनाओं के तुल्य अमर काव्य है। कल्हण ने काश्मीर को लुप्त होने से बचा लिया है। पुराकालीन इतिहास को लुप्त होने से बचाया। उसने काश्मीर को अन्धकार युग की गाथा मात्र उसी प्रकार होने नही दिया है जिस प्रकार होमर ने यूनान को। उसने पूरा काल को सुनिश्चित इतिवृत्त से मिश्रित किया है। उस दृष्टि से संस्कृत का कोई अन्य लेखक किंवा आलोचक इतिहासकार नही कहा जा सकता। सहस्रो वर्षों के पूर्व कालीन इतिहास को उसने जीवित रखा है।

मत्त के शब्दों में कल्हण कथा उपाख्यान उत्साह से पढ़ता था। उत्साह से उसने उनका वर्णन भी किया है। मम्मट के अनुसार काव्य का उद्देश्य लोगों को व्यवहारविद् बनाना है। काव्य की वाणी आत्मा है। काव्य का भाव रस है। विद्या का प्रयोजन विनय है। कल्हण के पदो में विनय परिलक्षित होता है। उसने अपने इतिहास काव्य में कथा, उपाख्यान, चमत्कारादि का मिश्रण कर महाकाव्य के साथ उसे रोचक बना दिया है। पुरा कालीन लेखक चाहे पश्चिम के हों अथवा पूर्व के वे पुरावृत्त, गाथा, कथाओं तथा इतिहास के बीच कोई विभाजन रेखा नही खीच सके थे। कल्हण ने इन बातों से हटकर वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास रचना का प्रयास किया है। वह आधुनिक शैली एवं पुरानी शैली के बीच की कड़ी है। राजतरंगिणी शुष्क ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। वह रसमय है। उसके पढ़ने से मन ऊबता नही। वह घटना-क्रमो का संग्रह मात्र नही है। उसमें इतिहास के साथ रामायण, महाभारत जैसे कथा प्रसंगों के सहित पुराणों जैसी धार्मिक झुकाव एवं रोचकता है।

प्रचार एवं उपदेशात्मक ग्रन्थ : कल्हण ने काश्मीर की शोचनीय दशा एवं अव्यवस्थित व्यवस्था ठीक करने के लिये राजतरंगिणी की रचना की थी। वह लिखता है—यह भूमि जो कुलवधू के समान थी वह वेश्या के समान दुष्टो के हाथो मे पड़ गयी है। अब से जो कुचक्रो में निपुण होगा वही इस हतप्रभ राज्य को प्राप्त करने की आशा करेगा। (रा० ७ : १४१६, १४२०) वह जब काश्मीर के पुराकालीन इतिहास की तत्कालीन इतिहास से तुलना करता था तो उसका हृदय रो उठता था। अतएव उसने मानव प्रवृत्ति को अप्रत्याशित रूप से चित्रित किया है। (७ : ७९२)

कल्हण अपने इतिहास की परम्परा काश्यप ऋषि से जोड़ता है। उनके समय से अपने समय की तुलना करता है। वह दु खी होकर कहता है—'यह पृथ्वी काल की बलवत्ता के कारण शीघ्रतापूर्वक संकुचित हो रही है।' उसका स्वर्ण युग भूतकाल में था। वह करुण शब्दो में कहता है—कोई प्राचीन राजाओ के समान नही हो सकता।' (रा० ४ : ४०७) कल्हण काश्मीर के राजा को 'हराशज' कह चुका था अतएव उसने काश्मीर के राजाओं के दोषो का कारण उनके पूर्व जन्म के दोषो को दिया है। (रा० ३ : ४२४) जयसिंह जिसके राज्यकाल में वह अपनी रचना कर रहा था उसे कल्हण ने पुराकालीन राजाओं के तुल्य माना है।

कल्हण काश्मीर में शक्तिशाली एवं उदार राजा चाहता था। जो बिगड़े घर को सुधार सके और बने घर को बढा सकें। जनता के प्रति स्नेह एवं सहानुभूति प्रदर्शन कर सकें। उसने यह विचार देवी वाक्पुष्टा तुजीन तथा मेघवाहन के प्रसंग में प्रकट किया है। (त० २ : ३१-४९) वह कहता है, राजाओं को पृथ्वी का पालन नववधू तुल्य करना चाहिए। (रा० २ : ८)

राजतरंगिणी के विषय में कल्हण स्वयं लिखता है—'राजाओं के विकास एवं ह्रास के समय मेरी कथा देशकाल के अनुसार उनके लिये उत्साह किंवा शान्तिवर्धक तुल्य उपयोगी सिद्ध होगी। कौन ऐसा चेतन हृदय व्यक्ति होगा जो अनंत व्यवहारो से पूर्ण मेरे इस ग्रन्थ को हृदयंगम नही करेगा।' (रा० १ : २१, २२) उसने अपने समय के लोगो के पठन-पाठन हेतु काव्य लिखा था। जो स्वतः काश्मीर की परम्पराओ, घटनाओं, प्रचलनों आदि से परिचित थे। कल्हण ने उनके मार्ग-दर्शन हेतु अपने विचारो को स्वतंत्र रूप से राजनीतिज्ञ राजा, जनता, राजन्य वर्ग, कर्म स्थानीय जन, मंत्री, पुरोहित, अमात्य, सचिव सबके लिए लिखा था। उसे विश्वास था कि उसके इतिहास के पठन-पाठन से भविष्य के राजाओ की परम्परा अच्छी होगी। वे आदर्श राजा होंगे। जनता का मनोबल उठेगा।

आदर्श सम्राट एवं राजा : कल्हण के आदर्श शासक अशोक, कनिष्क और मेघवाहन थे। अशोक उदार सम्राट था। कनिष्क जन हितैषी राजा था। मिहिरकुल क्रूर राजा था। मेघवाहन आदर्श राजा था। भिक्षाचर, कलश तथा हर्ष कल्हण के समय महान पुरुषों के समान स्मरण किये जाते थे। (७ : ५६९, १०६६) कश्मीर के भूपाल पृथ्वीपति पृथ्वीपाल कल्हण की दृष्टि में सामान्य लघु पर्वतीय राजा नही थे। वे अपने लघु साधनों द्वारा साम्राज्य नही बना सके थे किन्तु कल्हण काश्मीर के राजाओं को शक्तिशाली राष्ट्र का राजा मानता था जिसके राजा पूर्व काल में भारत विजय दिग्विजय किये थे। (रा० १ : २९७, ३३९, ३ : ३५०, ४ . १३१७) कल्हण का आदर्श सार्वभौम राज्य था। (रा० ३ : ८०, ८१)

जनता का अधिकार : काश्मीर में गणतन्त्र नही था। भारत में गणतन्त्रों का लोप अन्ततोगत्वा समुद्रगुप्त के साम्राज्य प्रसार के साथ हो गया था। यूरोप में भी गणतन्त्र उन दिनो नही थे। तथापि राजा निरंकुश नही था, स्वेच्छाचारी नही था। यदि राजा क्रूर, अन्यायी, अत्याचारी एवं दुष्ट था तो जनता को अधिकार था, वह राजा को हटा सकती थी। क्योंकि दुष्ट राजा का होना कल्हण की दृष्टि में जनता के भाग्य विपर्यय का कारण था। जनता के कुकर्मो के कारण, नैतिक पतनों के कारण, कायरता के कारण देश में अवांछनीय राजा राज्य करते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगता है, उसी प्रकार जनता भी भोगती है। कल्हण कहता है—'प्रजा के पुण्य के कारण समय-समय पर ऐसे नृपों का जन्म सम्भव होता है जो अत्यन्त छिन्न-भिन्न हुए राज्यों का योजन करते है। (रा० १ : १८) कर्म गति से यदि व्यक्ति नहीं बच सकता तो जनता भी नही बच सकती। कल्हण का यह अभिनव राजनीति दर्शन है। (रा० १ : १८७)।

जनता का राज्य-व्यवस्था में स्थान था। आवश्यकता होने पर जनता राजा का चयन करती थी। काश्मीर की जनता ने सन्धिमति को अपना राजा स्वीकार किया था। (रा० २ : ११६) जनता ने गान्धार से मेघवाहन को लाकर कश्मीर के सिंहासन पर बैठाया था। रा० ३ : २) राजा वक को जनता ने राजा चुना था। (रा० १ : ३२५) विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को काश्मीर का राजा बनाने का विचार किया तो उसने प्रकृति जनो अर्थात् जनता के पास दूत भेजा था। कोई निश्चय करने के पूर्व वह जनता का मत जान लेना चाहता था। (रा० ३ : १८८) कल्हण ने यूनानी लेखकों के समान नगर की जनता का चित्रण किया है। वह जनता के प्रति, उसकी भावनाओं के प्रति, उसके कल्याण के प्रति अत्यधिक जागरूक था। वह आनुवंशिक राजाओं के परिवर्तनों के प्रति उदासीन था।

राजा और प्रजा : कल्हण ने राजा को हरांशज कहा है। परन्तु पश्चिमी राजनैतिक दार्शनिकों के समान वह राजा के दैवी सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता। राजा दैव नहीं था। वह सर्वसत्ता सम्पन्न

अधिनायक नही था। वह प्रजा के लिए पिता तुल्य था। (रा० ५ : ३५०) साधारण व्यक्तियों के समान राजा भी मानवीय दुर्बलताओं का सरलतापूर्वक शिकार हो जाता था। (रा० ८ : १५५२) राज्य के आध्यात्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुये कल्हण बलवती भाषा मे कहता है अन्यायी राजा कष्ट पाता है। (रा० ७ : १५८२; ८ : १९५१) दुष्ट राजा को उसको जीवन काल हो में दुर्गति होती है। राजा को कल्हण प्रजा से सर्वथा भिन्न नही मानता। राजा एवं प्रजा दोनो एक ही शरीर के पुरजे है। एक शरीर तुल्य है। उसने यहाँ पर यूनान के नगर राज्यों के दर्शन तुल्य विचार किया है। कल्हण ने राजा को दार्शनिक ढंग से केवल प्रजा से ही नहीं प्राणिमात्र से मिला दिया है। (रा० : २४६-२६६, ३ : ८१-२, ५०) कल्हण कहता है—'जो प्रजा पीडक राजा होते है वे कुल सहित नष्ट हो जाते है। और जो नष्ट राज्य को सुव्यवस्थित करते है उनके वंश की अनुगामिनी श्री होती है।' (रा० १ : १८८)

पुरोहित एवं द्विज परिषद : कल्हण दो परिषदो का उल्लेख करता है। द्विज परिषद का प्रथम उल्लेख राजा लव के सन्दर्भ मे किया है। (रा० १ : ८७) मन्दिरों पर चढ़ायी देवोत्तर सम्पत्ति, अग्रहार, ग्राम तथा अन्य दान कालान्तर में परिषद को मिल जाते थे (रा० २ : १३२)

राजा का चयन परिषद करती थी। उत्पल वंश का जब अन्त हो गया तो ब्राह्मण एकत्रित हुए। राजा चुनने का उसने निश्चय किया। कमलवर्धन के कहने पर द्विज-मण्डली एकत्रित हुई थी। कमलवर्धन स्वयं राजा बनना चाहता था। द्विज गण कुछ निश्चय न कर सके। इसी समय पुरोहित परिषद ने यशस्कर को राजा घोषित कर दिया। (रा० ५ : ४५६-४६६)

इसी प्रकार ब्राह्मण सभासदों ने तुंग के पतन हेतु ब्राह्मण तथा पुरोहित परिषद् को प्रेरित किया। कि वे परिहास पुर मे प्रायोवेशन आरम्भ करें। (रा० ७ : १३) कालान्तर में परिषदों का रूप बदल गया था। ब्राह्मण लोग परिषद् तथा प्रायोवेशन को साधन बनाकर अर्थ सिद्धि करने लगे। (रा० ७ : १४, २३) भीम केशव का मन्दिर बहुत दिनों तक परिषद् के सदस्यों के पारस्परिक संघर्ष के कारण बन्द रहा। (रा० ७ : १०८२) पुरोहित परिषद् ने इसी प्रकार प्रायोवेशन को साधन बनाकर राजा हर्ष को उन्हें रुद्र भारोठी से मुक्त करने लिए बाध्य कर दिया। (रा० : ७, १०८८) इसी प्रकार राजा सुस्सल के समय पुरोहित परिषद् प्रायोवेशन किये थे। (रा० ८, ७०९) राजा भिक्षाचर के समय में भी पुरोहित परिषद् ने इसी प्रकार प्रायोवेशन द्वारा अपनी बातें मनवायी थी।

पुरोहित एवं द्विज परिषद् चार हजार वर्षों तक राजा लव के समय से कल्हण काल तक दिखायी देती है। विश्व की यह सबसे पुरानी, जागरूक एवं शक्ति सम्पन्न संस्था थी।

कल्हण को अपने ब्राह्मणत्व एवं अभिजात कुलोत्पन्न होनेका गर्व था तथापि उसने पुरोहित तथा परिषद् के अनुचित व्यवहारों की निन्दा की है। राजा तथा राज्य को स्थिति संकटापन्न होती थी, तो ऐसा ही समय प्रायोवेशन के लिए अधिक से अधिक उपयुक्त समझा जाता था। प्रायोवेशन पुरातन काल में एक नैतिक अस्त्र था। दुर्बल सबलों के विरुद्ध उसका प्रयोग करते थे। किन्तु काश्मीर में द्विजो ने उसे उपहासास्पद बना दिया था। राजनीति स्वार्थ सिद्धि एवं धन ऐंठने का साधन हो गयी थी। प्रायोवेशन का इतना दुरुपयोग होने लगा था कि राज्य ने एक प्रायोवेशन अधिकारी नियुक्त किया था। (रा० ६ : १४) राजा चन्द्रापीड ने स्वयं मार्गदर्शन के लिए मन्दिर में प्रायोवेशन किया था। (रा० ४ : ९९) कल्हण ने पुरोहित परिषद् तथा पुरोहितो की खूब खिल्ली उड़ाई है। उनके इस कार्य को कायरता माना है। (रा० ४:८२, ९९;५:४६८,

६:२५, ३३६, ३४३, ८ : ५१, ११०, ६०९, ७०७, ७६८, ८८८, ९३९, २२२४, २७३३, २७३९) किन्तु कल्हण ने पुण्यात्माओं द्वारा किये गये प्रायोवेशन में श्रद्धा प्रकट की है। (रा० ४ : ६३२; ८ : २२४२)

मन्त्रि परिषद : काश्मीर की तीसरी प्राचीन मन्त्रि परिषद थी। यह संस्था का महाभारत काल से कोटारानी (सन् १३३९ ई०) तक कायम थी। यह संस्था पुरोहित परिषद से भी पुरातन थी। कम से कम ४ सहस्र वर्षों से इसका अविच्छिन्न अस्तित्व मिलता है। मन्त्रि परिषद एवं द्विज तथा पुरोहित परिषदों में कौन विशेष शक्तिशाली था यह कहना कठिन है। दोनों ने ही समय समय पर राजाओं को चुनकर सिंहा-पर बैठाया और उतारा है।

मन्त्रि परिषद का क्षेत्र राजनीतिक था। परन्तु द्विज एवं पुरोहित परिषद का क्षेत्र धार्मिक एवं राज-नीतिक समयानुसार हो जाता था। मन्त्रि परिषद की शक्ति राजबल था। पुरोहित एवं द्विज परिषद की शक्ति उनका आध्यात्मिक बल काश्मीरी जनता की धर्मभीरुता थी। अतएव द्विज एवं पुरोहित परिषद की शक्ति कालानुसार श्रेष्ठ मानी गयी थी।

मन्त्रि परिषद भगवान श्री कृष्ण के सम्मुख रानी यशोवती के सन्दर्भ में उपस्थित थी। बाल गोनन्द द्वितीय के समय राजा के नाम से मन्त्रि परिषद शासन करती थी। वह उस समय सर्व सत्ता सम्पन्न थी। (रा० १ : ७८–८१)

काश्मीर की मंत्रि परिषद विश्व की सबसे प्राचीन और सबसे अधिक लम्बे जीवन काल की संस्था थी। इसकी धारा कभी सूखी नहीं थी। छिन्न नहीं हुई थी। राजाओं के अभाव एवं अस्तित्व दोनों कालों में यह संस्था अबाध गति से अपना काम करती रही है। मन्त्रि परिषद इतनी शक्तिशाली थी कि सेना से राजभवन तक घेर लेती थी। (रा० १ : ३६६, ३६७) राजा को बन्दी बनाती थी (रा० २ : ४); राजा को पदच्युत कर दूसरे को राजा बनाती थी (रा० २ : ५)। काश्मीर की मन्त्रि परिषद की ख्याति बाहर भी थी। राजा विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को राजा बनाने का आदेश मन्त्रिपरिषद को ही दिया था। (रा० ३ : २२४, २३५)

मन्त्रियों ने मेघवाहन को काश्मीर का राज्य सिंहासन ग्रहण करने लिये कहा था। (रा० २ : १५१) राजा दुर्लभ वर्धन को मन्त्रियों ने राजा मनोनीत किया था। (रा० ३ : ५२८)

काश्मीर में जनता, मन्त्रि परिषद, पुरोहित एवं द्विज परिषद ने अनेक अवसरों पर बिना एक दूसरे की सलाह लिये स्वयं अपने निर्णय से राजा चुना है।

अभिषेक : राजतरंगिणी से हमें काश्मीर के इतिहास में अभिषेक प्रणाली के प्रचलन के कई महत्व-पूर्ण एवं अनोखे उल्लेख मिलते हैं। यह द्विजो, पौर जनों तथा मन्त्रियों द्वारा समयानुसार होता रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने द्विजों द्वारा रानी यशोवती का अभिषेक कराया था। (रा० १ : ७०) राजा गोनन्द द्वितीय का अभिषेक द्विजेन्द्रों ने किया था। (रा० १ : ७५) राजा सन्धिमति का अभिषेक द्विजों ने किया था। (रा० २ : ११७) राजा वक का अभिषेक पौर जनों ने किया था। (रा० १ : ३२५) मातृ गुप्त का अभिषेक प्रकृति अर्थात् प्रजा ने किया था। (रा० ३ : २३९) राज्याभिषेक की प्रक्रिया शास्त्रानुसार होती थी। राजा की मूर्धा पर कनक घट से तीर्थों का जल डाला जाता था। उसके पश्चात् अन्य औपचारिक क्रियायें होती थी। (रा० ३ : ५२८)

सभा : काश्मीर में सभा थी। उसके सदस्यों को सभ्य कहा जाता था। (रा० ३ : १४८) सभा का सर्वप्रथम उल्लेख सन्धिमति के समय में मिलता है। (रा० २ : १२७) सन्धिमति राज्य त्याग करने लगा तो उसने सभा एकत्रित की। उसने काश्मीर का राज्य सभा को लौटा कर वनगमन किया। (रा० २ : १५९) कल्हण ने विक्रमादित्य की सभा का उल्लेख मातृगुप्त के प्रसंग में किया है। (रा० ३ : १३९, १४६) मातृगुप्त के प्रसंग में ही कल्हण ने सभा का पुनः उल्लेख किया है। (रा० ३ : २०४) सभा का सभापति होता था। जयापीड की सभा का सभापति भट्टोद्भट था। (रा० ४ : ४९५) सभा में संगीत भी होता था। (रा० ५ : ३६१) काश्मीर की सभा का कार्य क्या था इस पर कल्हण प्रकाश नहीं डालता।

शासन पद्धति पर भी कल्हण प्रकाश डालता है। राजा जलौक के पूर्व अन्य राज्यों के समान काश्मीर में व्यवस्था थी। (रा० १ : ११८) राज्य की सप्त प्रकृतियाँ थीं। (रा० १ : ११९) जलौक ने शासन पद्धति में सुधार किया। उसने महाराज युधिष्ठिर के राज्य में महाभारत के समय की प्रचलित शासन व्यवस्था काश्मीर में चलायी। (रा० १ : १२०)

दण्ड प्रथा प्रचलित थी। कारागार होते थे। उन्हें कारा वेश्म कहा गया है। राजा युधिष्ठिर दुर्ग गलिका में बन्दी बनाकर रखा गया था। (रा० २ : ७४) राजा हिरण्य ने अपने भ्राता तोरमाण को बन्धन में रख दिया था। (रा० ३ : १०४) शूल देने की प्रथा थी। स्मशान में शूली दी जाती थी। (रा० २ : ७९) समाज में क्रूरता भी होती थी। किन्तु वह अच्छा नहीं समझा जाता था। क्रूरता की कल्हण ने घोर निन्दा की है। क्रूरता के स्थान पर, उदारता, सहिष्णुता, दान, क्षमादि उदात्त गुणों की प्रशंसा की गयी है।

न्याय पर कल्हण अत्यधिक बल देता है। उसने स्वयं लिखा है कि तरंगिणी की रचना उसने एक स्थेय किंवा न्यायकर्ता तुल्य सब बातों को तौलकर एक निष्कर्ष पर पहुँचकर लेखनी उठायी है। कल्हण शान्ति प्रिय था। शान्त रस को प्राथमिकता दी है। उसके समस्त काव्य में शान्त रस की धारा अबाध्य गति से प्रवाहित मिलती है।

समाज : कल्हण ने तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण किया है। उसने अपने समय के नर-नारियों के आहार-विहार, आमोद-प्रमोद, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, संस्कार-कुसंस्कार, अन्ध विश्वास, परम्परा, रूढ़ियाँ उनकी जड़ता, नैतिक चरित्र, सबको एक मनोवैज्ञानिक के समान काव्यमयी भाषा में उपस्थित किया है। नर-नारियों की धार्मिक एवं कामुक प्रवृत्तियों और तज्जन्य समस्याओं के निराकरण का मौलिक हल भी स्थान-स्थान पर दिया है। ग्रामीणों तथा नागरिकों के व्यंग-विनोद, हास-परिहास के वर्णन में उसकी काव्य कला अपनी उच्चतम अभिव्यक्ति पर पहुँच जाती है। इस प्रकार वह प्रमाणित करता है कि वह कवि प्रथम तत्पश्चात् इतिहासकार था।

कल्हण लेखन-कला में परिपक्व बुद्धि का प्रौढ़ व्यक्ति था। युवक लेखक कल्पना सागर में तैरने का अधिक प्रयास करता है। कल्हण ने घटना सागर में गोता लगाकर एक प्रौढ़ सन्तुलित व्यक्ति के समान रत्नों को निकालकर घटनाओं को क्रमबद्ध किया है। अत्याचार, अनाचार, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गृहसंघर्ष, अराजकता आदि कटु किन्तु वास्तविक घटनाओं के मध्य गुजरने के कारण उसका उर्वर मस्तिष्क राजतरंगिणी जैसे काव्य को प्रस्तुत करने के लिए परिपक्व हो गया था। उसने अपने समय की अनुभूतियों को गाथा में पिरो दिया है।

कल्हण ने तत्कालीन समाज का वर्णन करते हुए समाज की आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। टंकणित मुद्रा, दीनार, कर-प्रणाली, करों का नाम, राजस्व, कृषि, उद्योग-धन्धा, वाणिज्य, व्यवसाय, के वर्णनों के साथ अकाल, उपल वृष्टि, तुहिनपात, उनका काश्मीर के समाज पर पड़ते प्रभाव का मर्मस्पर्शी भाषा में वर्णन किया है।

कल्हण ने उत्सवों, यात्राओं, परम्पराओं आदि का संक्षिप्त वर्णन किया है। समाज में पुराण पाठ, कविता पाठ एवं नाटक होते थे। नट, चारण, (रा० १ : २२२) कुम्भदास (पानी भरने वाले) (रा० ३ : ४५६) मुण्ड (रा० १ : २३३) शस्यपाल (रा० १ : २३२) मान्त्रिक (रा० १ : २३४) नैष्ठिक (रा० १ : २३६) कंचुकी (रा० १ : २९१) चर (रा० १ : २५०) गुप्तचर (रा० ३ : १५६) विज्ञदूत (रा० ३ : १५६) भृत्य (रा० १ : २४७) धात्री, (रा० १ : ७७) कुम्भकार, यामिक (रा० ३ : १७३) दूत (रा० ३ . १८८) राजीव जीवी (रा० ३ : १९८) राजदासी (रा० ३ : १५६) अश्वघास कायस्थ (रा० ३ : ४८९) कुट्टनी, विट, गायक, नर्तक आदि का वर्णन उनके कर्मों के साथ किया है।

वाद्यों में वीणा, (रा० २ : १२६) पटह (रा० २ : १६८) वेणु (रा० २ : १६७) मृदंग, संख, घण्टा, सुगन्धियों में, चन्दन, कर्पूर, धूप, केसर, का प्रयोग किया जाता था। पाणि स्पर्श द्वारा आशीर्वाद, साधुवाद एवं कृतज्ञता प्रकट करने की प्रथा थी। (रा० ३ : १८२) प्रतिज्ञा पालन, वचन-बद्धता पर जोर दिया जाता था। (रा० १ : २४३, ३ : १८२, ४२५) कल्हण ने विटो की बहुत निन्दा की है। (रा० २ : ६७–७०)

कृषि मुख्य उद्यम था। अरघट, कुल्या (नहर) आदि से सिंचाई होती थी। अरघट अर्थात् रहट काश्मीर में अति प्राचीन काल से प्रचलित था। जिससे विश्व अपरिचित था। यह प्रथा परसियन व्हील के ऐतिहासिक काल से भी प्राचीन थी।

कल्हण यन्त्र का उल्लेख करता है। यह वर्तमान काल के क्रेन के समान शिला उठाने का यन्त्र था। (रा० १ : ३६३) कूप यन्त्र का भी कल्हण ने उल्लेख किया है। (रा० १ : २८४) यह रस्सी का बना होता था। रस्सी चक्र के ऊपर से आती जाती थी। लोग कागड़ी अर्थात् हसन्ती किंवा अंगार धानी का आज के समान उपयोग करते थे। (रा० ३ : १७१)

महिलायें नील निचोल (रा० २ : २४७) तथा कंचुकी (रा० २ : २९४) पहनती थी। मूर्धा पर शीर्षांशुक रखती थी। (रा० १ : २४७) बालक काक पच्छ लगाते थे। (रा० १ : ८१) स्त्रियाँ नूपुर, स्वर्ण सूत्र, धारण करती थी। पुरुष गण मस्तक स्थित मणि, (रा० २ : १६५) मुकुट में मुक्ता (रा० ३ : ५२९) धारण करते थे। महिलायें यावक अर्थात् आलता लगाती थी। (रा० ३ : ४१४) वे शृंगार करती थी। शृंगार में केसर, चन्दन, चूर्ण, पुष्प एवं सुगन्धियों का उपयोग किया जाता था।

पुरुष उष्णीष धारण करते थे। धौत वस्त्र पवित्रता का प्रतीक था। (रा० २ : १६१) रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों का प्रचलन था। रुई के वस्त्रों का उल्लेख कम मिलता है। काश्मीर में रुई नहीं होती थी। रुई का वस्त्र भारत के अन्य भागों से काश्मीर में आता था। हेम पादाङ्कित (रा० २ : ३००) मार्तण्ड प्रतिमांकित यमुपदेव वस्त्रों (रा० १ : २९९) का उल्लेख मिलता है। वे सिंहल से काश्मीर में आते थे।

सभा : काश्मीर में सभा थी। उसके सदस्यों को सभ्य कहा जाता था। (रा० ३ : १५८) सभा का सर्वप्रथम उल्लेख सन्धिमति के समय में मिलता है। (रा० २ : १२७) सन्धिमति राज्य त्याग करने लगा तो उसने सभा एकत्रित की। उसने काश्मीर का राज्य सभा को लौटा कर वनगमन किया। (रा० २ : १५९) कल्हण ने विक्रमादित्य की सभा का उल्लेख मातृगुप्त के प्रसंग में किया है। (रा० ३ : १३९, १४६) मातृगुप्त के प्रसंग में ही कल्हण ने सभा का पुनः उल्लेख किया है। (रा० ३ : २०४) सभा का सभापति होता था। जयापीड की सभा का सभापति भट्टोद्भट था। (रा० ४ : ४९५) सभा में संगीत भी होता था। (रा० ५ : ३६१) काश्मीर की सभा का कार्य क्या था इस पर कल्हण प्रकाश नहीं डालता।

शासन पद्धति पर भी कल्हण प्रकाश डालता है। राजा जलौक के पूर्व अन्य राज्यों के समान काश्मीर में व्यवस्था थी। (रा० १ : ११८) राज्य की सप्त प्रकृतियाँ थीं। (रा० १ : ११९) जलौक ने शासन पद्धति में सुधार किया। उसने महाराज युधिष्ठिर के राज्य में महाभारत के समय की प्रचलित शासन व्यवस्था काश्मीर में चलायी। (रा० १ : १२०)

दण्ड प्रथा प्रचलित थी। कारागार होते थे। उन्हें कारा वेश्म कहा गया है। राजा युधिष्ठिर दुर्गा गलिका में बन्दी बनाकर रखा गया था। (रा० २ : ७४) राजा हिरण्य ने अपने भ्राता तोरमाण को बन्धन में रख दिया था। (रा० ३ : १०४) शूल देने की प्रथा थी। श्मशान में शूली दी जाती थी। (रा० २ : ७९) समाज में क्रूरता भी होती थी। किन्तु यह अच्छा नहीं समझा जाता था। क्रूरता की कल्हण ने घोर निन्दा की है। क्रूरता के स्थान पर, उदारता, सहिष्णुता, दान, क्षमादि उदात्त गुणों की प्रशंसा की गयी है।

न्याय पर कल्हण अत्यधिक बल देता है। उसने स्वयं लिखा है कि तरंगिणी की रचना उसने एक स्थेय किंवा न्यायकर्ता तुल्य सब बातों को तौलकर एक निष्कर्ष पर पहुँचकर लेखनी उठायी है। कल्हण शान्ति प्रिय था। शान्त रस को प्राथमिकता दी है। उसके समस्त काव्य में शान्त रस की धारा अबाध्य गति से प्रवाहित मिलती है।

समाज : कल्हण ने तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण किया है। उसने अपने समय के नर-नारियों के आहार-विहार, आमोद-प्रमोद, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, संस्कार-कुसंस्कार, अन्ध विश्वास, परम्परा, रूढ़ियाँ उनकी जड़ता, नैतिक चरित्र, सबको एक मनोवैज्ञानिक के समान काव्यमयी भाषा में उपस्थित किया है। नर-नारियों की धार्मिक एवं कामुक प्रवृत्तियों और तज्जन्य समस्याओं के निराकरण का मौलिक हल भी स्थान-स्थान पर दिया है। ग्रामीणों तथा नागरिकों के व्यंग-विनोद, हास-परिहास के वर्णन में उसकी काव्य कला अपनी उच्चतम अभिव्यक्ति पर पहुँच जाती है। इस प्रकार वह प्रमाणित करता है कि वह कवि प्रथम तत्पश्चात् इतिहासकार था।

कल्हण लेखन-कला में परिपक्व बुद्धि का प्रौढ़ व्यक्ति था। युवक लेखक कल्पना सागर में तैरने का अधिक प्रयास करता है। कल्हण ने घटना सागर में गोता लगाकर एक प्रौढ़ सन्तुलित व्यक्ति के समान रत्नों को निकालकर घटनाओं को क्रमबद्ध किया है। अत्याचार, अनाचार, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गृहसंघर्ष, अराजकता आदि कटु किन्तु वास्तविक घटनाओं के मध्य गुजरने के कारण उसका उर्वर मस्तिष्क राज-तरंगिणी जैसे काव्य को प्रस्तुत करने के लिए परिपक्व हो गया था। उसने अपने समय की अनुभूतियों को गाथा में पिरो दिया है।

कल्हण ने तत्कालीन समाज का वर्णन करते हुए समाज की आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। टंकणित मुद्रा, दीनार, कर-प्रणाली, करों का नाम, राजस्व, कृषि, उद्योग-धन्धा, वाणिज्य, व्यवसाय, के वर्णनों के साथ अकाल, उपल वृष्टि, तुहिनपात, उनका काश्मीर के समाज पर पड़ते प्रभाव का मर्मस्पर्शी भाषा में वर्णन किया है।

कल्हण ने उत्सवों, यात्राओं, परम्पराओं आदि का संक्षिप्त वर्णन किया है। समाज में पुराण पाठ, कविता पाठ एवं नाटक होते थे। नट, चारण, (रा० १ : २२२) कुम्भदास (पानी भरने वाले) (रा० ३ · ४५६) मुण्ड (रा० १ : २३३) शस्यपाल (रा० १ : २३२) मान्त्रिक (रा० १ : २३४) नैष्ठिक (रा० १ : २३६) कंचुकी (रा० १ : २९४) चर (रा० १ : २५०) गुप्तचर (रा० ३ : १५६) विज्ञदूत (रा० ३ : १५६) भृत्य (रा० १ : २४७) धात्री, (रा० १ : ७७) कुम्भकार, यामिक (रा० ३ : १७३) दूत (रा० ३ : १८८) राजीव जीवी (रा० ३ : १९८) राजदासी (रा० ३ : १५६) अश्वघास कायस्थ (रा० ३ : ४८९) कुट्टनी, विट, गायक, नर्तक आदि का वर्णन उनके कर्मों के साथ किया है।

वाद्यों में वीणा, (रा० २ : १२६) पटह (रा० २ : १६८) वेणु (रा० २ : १६७) मृदंग, संख, घण्टा, सुगन्धियों में, चन्दन, कर्पूर, धूप, केसर, का प्रयोग किया जाता था। पाणि स्पर्श द्वारा आशीर्वाद, साधुवाद एवं कृतज्ञता प्रकट करने की प्रथा थी। (रा० ३ : १८२) प्रतिज्ञा पालन, वचन-बद्धता पर जोर दिया जाता था। (रा० १ : २४३, ३ : १८२, ४२५) कल्हण ने विटो की बहुत निन्दा की है। (रा० २ : ६७–७०)

कृषि मुख्य उद्यम था। अरघट्ट, कुल्या (नहर) आदि से सिंचाई होती थी। अरघट्ट अर्थात् रहट काश्मीर में अति प्राचीन काल से प्रचलित था। जिससे विश्व अपरिचित था। यह प्रथा परसियन व्हील के ऐतिहासिक काल से भी प्राचीन थी।

कल्हण यन्त्र का उल्लेख करता है। यह वर्तमान काल के क्रेन के समान शिला उठाने का यन्त्र था। (रा० १ : २६३) कूप यन्त्र का भी कल्हण ने उल्लेख किया है। (रा० १ : २८४) यह रस्सी का बना होता था। रस्सी चक्र के ऊपर से आती जाती थी। लोग कागड़ी अर्थात् हसन्ती किंवा अंगार धानी का आज के समान उपयोग करते थे। (रा० ३ : १७१)

महिलायें नील निचोल (रा० २ : २४७) तथा कंचुकी (रा० २ : २९४) पहनती थी। मूर्धा पर शीर्षांशुक रखती थी। (रा० १ : २४७) बालक काक पच्छ लगाते थे। (रा० १ : ८१) स्त्रियाँ नूपुर, स्वर्ण सूत्र, धारण करती थी। पुरुष गण मस्तक स्थित मणि, (रा० २ : १६५) मुकुट में मुक्ता। रा० ३ : ५२९) धारण करते थे। महिलायें यावक अर्थात् आलता लगाती थी। (रा० ३ : ४१५) वे श्रृंगार करती थीं। श्रृंगार में केसर, चन्दन, चूर्ण, पुष्प एवं सुगन्धियों का उपयोग किया जाता था।

पुरुष उष्णीष धारण करते थे। धौत वस्त्र पवित्रता का प्रतीक था। (रा० २ : १६१) रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों का प्रचलन था। रुई के वस्त्रों का उल्लेख कम मिलता है। काश्मीर में रुई नही होती थी। रुई का वस्त्र भारत के अन्य भागों मे काश्मीर मे आता था। हेम पादांकित (रा० २ : ३००) मार्तण्ड प्रतिमांकित यमुपदेव वस्त्रों (रा० १ : २९९) का उल्लेख मिलता है। वे सिंहल से काश्मीर में आते थे।

खान-पान ऋतु तथा जलवायु के अनुसार होता था। सत्तू, कच्चगुच्छ, घृत, मधु, दुग्ध, शाली, गोधूम, तथा विभिन्न अन्नों के पकवान बनते थे। साधारण जनता शाली, शाक, कमल जड़ तथा सस्ती तरकारी खाती थी। ब्राह्मणों के अतिरिक्त जनता आमिष भोजी थी। भूना मांस खाने की प्रथा थी। व्यापारी वर्ग मदिरा का आदी था। पर्वों तथा त्योहारों पर मदिरा पान होता था। मदिरा विक्रय का वर्णन उत्सवों पर मिलता है। हलकी सुरा बर्फ के साथ शीतल कर पी जाती थी। फलों में प्रायः वे सभी फल होते थे जो आज कल वहाँ होते हैं। शहतूत, अनार, बादाम, सेव, खुबानी, सतालू, बम्बू गोशा, नाशपाती, अखरोट खूब मिलते थे। आम का अभाव था। ब्राह्मणों के लिये लहसुन एवं प्याज का प्रयोग वर्जित था। (रा० १ : ३४७)

राजकीय चिह्न, छत्र (रा० ३ : ६२) ध्वजा, (रा० ३ : ७७) तथा पारध्वज (रा० ३ : ७८) थे। राजा मुकुट धारण करते थे। काश्मीर में भुवन रचना लकड़ी तथा पाषाण से होती थी। पाषाण वेश्म का अत्यधिक उल्लेख मिलता है। (रा० १ : ८६) काश्मीर के ध्वंसावशेषों में लगे विशालकाय शिला-खण्डों को देखकर आश्चर्य होता है। उनके उठाने तथा रखने के लिए यन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। भवनों के अनेक वर्ग थे। विद्या वेश्म आधुनिक स्कूल एवं कालेजों के समान थे। सौध (रा० १ : २४६) नाग भवन (रा० १ : २५७) हर्म्य (रा० २ : १३५) गुहागृह (रा० २ : १६५) नदवन (रा० ३ : ११) के निर्माण आदि का उल्लेख मिलता है। राजभवन के अन्तःपुर का नाम शुद्धान्त था, जहाँ रानियाँ रहती थी। (रा० ३ : ४३६, ५०६)

सार्वजनिक निर्माणकार्यों को बहुत महत्व दिया जाता था। कृषि उपयोगी भूमि, सिंचाई व्यवस्था के लिए कुल्या बनाने का कई स्थलों पर वर्णन किया गया है। सुवर्ण मणि कुल्या (रा० १ : ९७) चन्द्र कुल्या (रा० १ : ३१८) अपगा (रा० १ : ३२९) के अतिरिक्त सेतु एवं बाँध बनाने का उल्लेख मिलता है। जल की गति तथा स्रोतस्विनियों की गति नियन्त्रित करने के लिए सेतु निर्माण किये जाते थे। दामोदर सूद (रा० १ : १५७) गुड्सेतु (रा० १ : १५६) पाषाणमय सेतु (रा० १ : १५९) उनके कुछ उदाहरण हैं।

ब्राह्मण उपनिवेश : अस्पृश्यता काश्मीर में नहीं थी। जाति-पाँत का बन्धन अत्यन्त शिथिल था। परस्पर विवाह संबंध होते थे। राजाओं ने डोम्ब कन्या तथा वैश्य जाति की महिलाओं से विवाह किये थे। डोम्ब कन्या भी काश्मीर की महारानी हुई हैं। (रा० ५३८) काश्मीर के सिंहासन को इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तानों ने सुशोभित किया है। राजा भी काश्मीर में निम्न वर्ग कल्पपाल तक हुए हैं। (रा० ३ : ४८८; ४ : ६७९; ७१६) उनका विवाह भी राजकुलों में हुआ था। ब्राह्मण वर्ग ने निस्सन्देह अपना अभिजात कुल बनाये रखा था। काश्मीर में जाति-पात का बन्धन अत्यन्त कुंचनीय था। प्रत्येक नागरिक समाज का उसी प्रकार अंग था जैसे अन्य।

जन्मना वर्ण के आधार पर किसी पर कभी आक्षेप काश्मीर में नहीं किया गया था। उसने सहिष्णुता का सर्वदा परिचय दिया है। जो जाति काश्मीर में आयी वह वहाँ आत्मसात हो गयी। केवल मुसलमान इसके अपवाद थे।

ललितादित्य का तुखार तुर्क) मन्त्री था। (रा० ४ . २१) गैर काश्मीरी होने के कारण किसी का कभी अविश्वास किंवा अनादर नहीं किया गया था। मेघवाहन का गुरु स्तोन्पा गैर काश्मीरी था। परन्तु उसके लिए अत्यन्त आदर एवं श्रद्धालु शब्दों का प्रयोग कल्हण ने किया है। (रा० ३ : १०)

मिहिरकुल हूण था। कनिष्क कुषाण था। किन्तु उनकी जाति के कारण उनसे भेदभाव नहीं किया गया था। काश्मीर के हिन्दू इस दिशा में शेष भारत से जात-बन्धन में कुंचनीय, उदार एवं सहिष्णु थे। इसका कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव था, जो जाति-पाँत एव वर्णाश्रम मे विश्वास नही करता था।

ब्राह्मणों में नि.सन्देह अपनो जाति के एवं वर्ग के लिए कट्टरता थी। कल्हण काश्मीरी ब्राह्मण था। उसके लिए उसे गर्व था। वह अपना रक्त शुद्ध रखना चाहता था। दूसरे ब्राह्मणों मे भी यही अपेक्षा करता था। काश्मीरी ब्राह्मणों की इस कट्टरता के कारण वहाँ ब्राह्मणो के चार उपनिवेश बन गये थे।

राजा मिहिर कुल ने आर्य देशीय ब्राह्मणो को काश्मीर में लाकर आबाद किया था। (रा० १ : ३१३) इसी प्रकार राजा मेघवाहन ने देशीय भिक्षुओं के भोग हेतु अनेक पुण्य कार्यों को किया था। (रा० ३ : ९) काश्मीर में वर्ण-व्यवस्था बौद्ध प्रभाव के कारण लुप्त हो गयी तो राजा जलौक ने कान्यकुब्ज प्रदेश से व्यवहारविद् चातुवर्ण के लोगो को काश्मीर लाकर आबाद किया था। (रा० १ : ११७)

कल्हण ब्राह्मणों के चार उपनिवेशों का उल्लेख करता है। राजा गोपादित्य ने आर्य देशीय द्विजों को अग्रहार दानकर गोपाद्रि के मूल में गोप अग्रहार स्थापित किया था। (रा० १ : ३४१) दूसरा उपनिवेश पुण्य देशीय ब्राह्मणों का था। यह वचिक नामक स्थान मे था। (रा० १ : ३४३) तीसरा उपनिवेश भूक्षीर वाटिका में था। यहाँ पर गोपादित्य ने लहसुन भोजी ब्राह्मणो को समस्त काश्मीर मण्डल से एकत्रित कर उनका एक अलग उपनिवेश बना दिया था। उन्हें समाज से एक प्रकार से वहिष्कृत कर दिया गया था। चौथा ब्राह्मणो का उपनिवेश खासटा स्थान में था। यहाँ पर आचरणहीन ब्राह्मणों को बसाया गया था। (रा० १ : ३४२-३४३)

महिलाओं का स्थान : कल्हण ने सती नारियों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा एवं असतियों के प्रति घृणा प्रकट की है। (रा० १ : २७२, ३२०, ३२१) काश्मीर में सती प्रथा प्रचलित थी। प्रथम सती रानी वाकपुष्टा थी। (रा० २ : ४४, ५५, ५६) सती प्रथा को कल्हण प्रोत्साहन नही देता। कालान्तर में यह प्रथा जोर पकड़ गयी और उसका दुरुपयोग होने लगा। (रा० ५ : २२५७ : १०३, ४७८)

कल्हण महिलाओं के अधिकार तथा कर्तव्य पर जोर देता है। वह स्त्रियो को जननी मानता है, माया मानता है, प्रकृति का एक अंग मानता है। वह विष्णु की विशेष प्रशंसा इसलिये नहीं करता कि उनका स्वरूप एकांगी है। वह केवल पुरुष शक्ति के प्रतीक है। वह अर्धनारीश्वर की सर्वदा वन्दना इसलिए करता है कि वे नर एवं नारी, किंवा पुरुष एवं प्रकृति दोनों के प्रतीक है। कल्हण पुरुष एवं स्त्री दोनों का समाज में समान स्थान मानता है। (रा० ३ : ४४४)

काश्मीर में महिलाओं ने शासक, अभिभावक एवं रानी के रूप में सिंहासन को सुशोभित किया है। (रा० १ : ७०—७२) कल्हण उन्हें 'प्रजानाम् मातरम्' जैसे आदर एवं पूजनीय शब्दों से सम्बोधित करता है। वे जगत् को, राज्य की माता हैं। कल्हण उन्हें पूज्य एवं आदर की दृष्टि से देखता है। (रा० १ : ७२) राजा एवं रानी का जहाँ कल्हण ने नाम लिया है वहाँ गौरी-शंकर, राधा-कृष्ण के समान स्त्रियो का नाम पुरुषों के पूर्व रखा है। यह शैली स्त्रियो के प्रति अत्यन्त आदर प्रकट करने के लिए कल्हण ने अपनायी है। (रा० २ : ११)

के चांचल्य की निन्दा है। जहाँ नारी जाति के कारण उत्तम कार्य हुये हैं वहाँ कल्हण ने उनकी प्रशंसा की है। कितने ही स्थानों पर नारी का चित्रण बड़ा ही मार्मिक हो गया है। राजा युधिष्ठिर के देश त्याग करते समय नारी की मनोभावनाओं का अत्यन्त कारुण्यपूर्ण दृश्य खीचा है। (रा० १ : ३६७-३७३)

महाकाव्य : महाकवि कालिदास ने रघुवंश में राजा दिलीप से प्रारम्भ कर रघुवंश के समस्त राजाओं का क्रमशः वर्णन कर सुन्दर महाकाव्य प्रस्तुत किया है। यही बात कल्हण के इस महाकाव्य के विषय में कही जायगी। दोनों में अन्तर इतना ही है कि रघुवंश एक वंश का और राजतरंगिणी एक देश के कई वंशों का वर्णन करती है। यह बहुनायक महाकाव्य है। महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण इस काव्य में मिलते हैं। शान्त रस इसका अंगी रस है। अन्य रस अंगभूत होकर आये हैं।

काव्य का नाम सारगर्भित होना चाहिए। कल्हण ने राजतरंगिणी नाम रखा है। यह युक्तिपूर्ण है। तरंगों का आवागमन कभी समाप्त नही होता। राजा भी सागर की तरंगों के तुल्य आते-जाते रहते हैं, उठते-गिरते रहते हैं। तरंगें कभी उत्ताल होती हैं, कभी गर्जन करती हैं और कभी शान्त हो जाती हैं। यही दशा राजाओं की है। काव्य के सभी गुण, रस, अलंकार, छन्द, पद लालित्य का समावेश इस उत्कृष्ट महाकाव्य में हो गया है।

कल्हण अपने काव्य में केवल कल्पना पर उड़ा नही है। वह उस पंछी की तरह नही उड़ता, जो डार-डार, पात-पात उठता-बैठता रहता है। वह अनन्त में, ओर-छोर हीन विश्व में, कल्पनामय जगत में अनायास नही उड़ता। वह इस जगत में, इस लोक में, साशय उड़ान लेता है। उसने काव्यमय इतिहास में कल्पना के स्थान पर लौकिक घटनाओं का नियन्त्रण किया है (रा० १ : ४६, ४७)

उसके पद में लालित्य से आरम्भ होता है। उसमें सरलता है। प्रचलित शब्दों का प्रयोग है। वह जैसे-जैसे रचना करता अग्रसर होता है, उसके काव्य मे सरलता लुप्त होने लगती है। अप्रचलित शब्दों की प्रचुरता बढ़ जाती है।

वह सरल, हृदय कवि था। उदार था। उसके हृदयस्थल में कवियों के लिए आदर था। कवि उत्तम रचना करता है। पुरुष वर्णन नहीं करता इसे उसने वलवती भाषा में लिखा है। (रा० १ : ३, ४, ५, ४५-४७) प्रसंग आते ही काश्मीर के कवियों का और भारत के अन्य प्रदेशों के कवियों का नाम आदर के साथ लिया है। उसने अनेक राजाओं, उनके समय में हुए कवियों, उनके काव्यों, तत्कालीन विद्वानों, दार्शनिकों का वर्णन उनके अनुरूप आदर के साथ किया है। उसने भारत एवं काश्मीर की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया, उनके रचना-काल का निर्णय किया और उन्हें यथास्थान रखकर काश्मीर के साहित्यिक इतिहास के साथ राजनीतिक इतिहास को प्रस्तुत किया है। (रा० १ : १७८; २ : १६; ४ : १४४, ४४८, ४९५, ७०५, ५ : २८-३२; २०४)

राजतरंगिणी के रूप में कल्हण कोरे इतिहास के स्थान पर एक सुन्दर महाकाव्य उपस्थित करता है। रसों का सुन्दर परिपाक होने के कारण पाठक उसे पढ़ता श्रान्त नहीं होता। उसके वर्णन मे नवीनता प्राप्त होती है। अलंकारों की छटा यथास्थान देखने को मिलती है। उपमा एवं अलंकारों का प्रयोग ठीक लगता है। पाठक उनमें नवीनता एवं मौलिकता का बोध करते काव्य-वीथियों में रमता है। उसने उपमाओं को शब्द-जाल में लपेट कर, सुन्दर किन्तु प्राञ्जल पदों में पाठक को नहीं उलझाया है। उसने यथाशक्ति इस महाकाव्य में आख्यान एवं नवीन विचार रखने की शैली का अनुकरण किया है। (रा० ३ : ४१६)

अलंकारों के प्रयोग में उसने संयम का परिचय दिया है, नियन्त्रण रखा है। गुणहीन पदावलियों से वह विरत रहा है। किस अवसर पर, किस प्रकार, किस अलंकार को उत्कृष्टतापूर्वक एक कुशल कवि के समान प्रयोग करना चाहिये, इसमें उसने अधिक कुशलता प्राप्त की है। उसने विषयानुरूप भाषा एवं छन्दो का प्रयोग किया है। शृङ्गार वर्णन में, ऋतु वर्णन में, उसने प्रकृति के साथ मानव-प्रकृति को मिलाते हुए; आध्यात्म एवं दर्शन का अद्भुत समन्वय किया है। (रा० १ : ६, २८, २०६; ३ । ४१४, ५ : ३४३, ३६१; ७ : ९२८, १५५७; ८ : ८४२, ९४७, १३३४)

कल्हण लौकिक वर्णन करता है। काश्मीर के बाहर का वर्णन उसने केवल ऐतिहासिक घटनाओं की शृङ्खला को विशृङ्खलित न होने देने के लिये किया है। लौकिक वर्णन होते भी उसका काव्य कहीं एक सुरा नहीं होने पाया है। उसने अलंकारों की पुनरावृत्ति नही की है। यदि वही अलंकार पुनः आता है, तो कुछ दूसरा ही रूप धर कर। इसलिये उसके काव्य का प्रत्येक चरण, प्रत्येक पद ताजी हवा की तरह सर्वदा स्फूर्तिमय, प्राणमय रहता है।

काव्य अलकारमय होते हुए भी अलंकारो से बोझिल नही है। अलंकारों का उपयोग वर्ण्य विषय को सुस्पष्ट तथा उसमें और बल लाने के उद्देश्य से किया गया है। अस्पष्टता का नितरा अभाव है। पदों में, शब्द गठन में, गतिशीलता है। वे अत्यन्त संक्षिप्त न होकर सरल एवं वर्णनात्मक हैं। उनमें सौन्दर्य एवं कला का प्रभाव चिर नूतन, निर्मल, अक्लान्त, स्रोत जल कण तुल्य है। वह श्रान्त मन, मलिन मन, उदास मन में स्फूर्ति उत्पन्न करता है।

पुरातन कवि काव्य-परम्परा का अनुकरण करता, आरम्भ एवं अन्त में छन्द बदल देता है। महा-काव्यों का यह लक्षण है। अन्त में छन्द का परिवर्तन कर देना चाहिये। दृश्य, रस एवं घटनाओं के अनुरूप कल्हण छन्द बदल देता है। महाकवि बाण तथा विल्हण में यत्र-तत्र प्राप्त होती कृत्रिमता का किसी स्थल पर बोध नहीं होता। उसने लम्बे-लम्बे समासों में जैसे तरंगों को बाँध रखा है।

कल्हण की दृष्टि निरपेक्ष है। उसे आलोचनात्मक प्रखर बुद्धि प्राप्त थी। किन्तु उसने राग-द्वेष रहित होकर, ग्रन्थ-रचना की है। कल्हण जैसा इतिहासकार अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्व विश्व में नहीं हुआ है। उसके समस्त काव्य में शान्त रस की धारा प्रवाहित होती, पाठक के मानस को शान्त करती है। उसके काव्य में वही स्फूर्ति दिखायी देती है, जो वाल्मीकि की रामायण एवं व्यास के महाभारत में है। उसके पदों में क्षण-क्षण नवीनता, मौलिकता प्रवेश करती रहती है।

बाण का हर्ष चरित, विल्हण का विक्रमांक देव चरित, राजाश्रय में पुष्पित काव्य है। कल्हण का काव्य एक स्वतंत्र चिन्तक का काव्य है जिसे उसने देश-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर लिपिबद्ध किया था। उसके काव्य का प्रयोजन किसी राजा, किसी दाता को प्रसन्न करना नहीं था। किसी राजसभा में, किसी प्रासाद में बैठकर उसने चिन्तन नहीं किया था। उसकी कल्पना, उसका चिन्तन श्रीनगर से दूर, राज्याश्रय से दूर, राज छाया से दूर, परिहास की प्राकृतिक सुषमा में, अपने घर में, अपने ही साधनों से, अपने अर्जित धन से, जीवन यापन करते लिखी गयी जगत की, सरस्वती के एक एकान्त उपासक, स्वावलम्बी मानव की स्वाभिमानी मानव की रचना है। कालिदास, भवभूति, विल्हण, बाण सबको राज्याश्रय प्राप्त था। सबने राज्यान्न खाकर काव्य रचना की थी। कल्हण एक मात्र महान काव्यकार है, जो राजान्न द्वारा वर्धित नही हुआ था। इस दिशा में वह कालिदास आदि से बहुत आगे है। उसका उद्देश्य अपने देश में स्वर्ग

युग लाना था, जन-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना था, राजाओं का सुधार करना था, उन्हें जन-जीवन से मिला देना था।

कल्हण की रचना में सहज सौन्दर्य है, जिसका विल्हण की रचना में अभाव खटकता है। ठीक कहा गया है कि कल्हण ने अपने काव्य दर्पण को इतना निर्मल, स्वच्छ एवं रमणीय रखा है कि उसमें विल्हण की प्रौढ़ शैली स्वतः प्रतिबिम्बित होती है। कल्हण की शैली सौन्दर्य पूर्ण है। प्रकृति का उसमें प्राकृतिक चित्रण है। वह चित्रांकन सुश्लिष्ट है। (रा० ८ : ३१६१-६२, १३३४-१३३८)

चरित्र चित्रण में कल्हण ने क्षमता का परिचय दिया है। आलोच्य स्थान पर निष्पक्ष आलोचना की है। जनजीवन से सम्पर्क बनाये रखा है। किसी के स्नेह एवं घृणा से अपने को दूर रखा है। एक स्थैर्य तुल्य वह चरित्र चित्रण करता है। उसका यह चित्रण, जलौक, मिहिरकुल, हर्ष, कलश, सन्धिमति, दिद्दा एवं देवी वाक्पुष्टा में निखर उठा है। उसके काव्य में वैदिक, बौद्ध एवं संस्कृत महान रचनाकारों की संवाद-परिसंवाद शैली का दर्शन मिलता है। (रा० ३ : १६१, १८३ : ७ : ४२३, १२८१, १४१६, १३-८६; ८ : २६१३, ३२१६)

काव्य के माध्यम से कल्हण ने इतिहास लिखा है। (रा० १ : ६) उसने इतिहास एवं काव्यकार को मिला दिया है। उसने कथावस्तु के विस्तार के कारण अलंकार की विचित्रता का अनेक स्थलों पर प्रयोग नहीं किया है। युधिष्ठिर का राज्य त्याग, जयापीड का अन्त, चक्र वर्मन का प्रवेश, अनन्त की शव यात्रा, राजा हर्ष का राज्य त्याग, हर्ष का अन्तिम काल, सुस्सल का श्रीनगर आगमन एवं भिक्षाचर का अन्तिम युद्ध इसके उदाहरण हैं। (रा० १ : ३६६; ४ : ६४०; ५ : ३४१; ७ : ४६१; १३००-१७१४; ८ : ९४७, १७४०)

कल्हण के पदों में संस्कृत-गद्य का रस मिलता है। पद्यात्मक होते भी कहीं-कहीं गद्यात्मक शैली हो गयी है। उसकी करुणात्मक शैली अत्यन्त नाटकीय एवं सशक्त है। राजा जयापीड का अन्त एवं वार्तालाप नाटकीय शैली का उदाहरण है। (रा० ४ : ६४०) ऐतिहासिक काव्य को नीरसता से बचाने के लिये कल्हण ने अलंकार, व्यंग तथा उक्तियों का आश्रय लिया है। उसके अधिकांश रूपक मौलिक हैं, संस्कृत साहित्य को उसकी देन है। (रा० ६ : २०९, ७ : १०६६, १२२४, ८ : १३४, २५८६, २६३५, २५२०, २५६०, २०४७)

महाकाव्य राज तरंगिणी में दुरूह स्थल भी है। दुरूहताओं एवं जटिलताओं का कुछ कारण शैलीगत भी है। जैसे दुर्लभ लौकिक एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग है। काव्यात्मक सन्दिग्धता ऐसे स्थलों पर बढ़ गयी है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में जटिल राजनीतिक परिस्थितियों तथा उनके वर्णन में इस प्रकार के स्थल मिलेंगे। उसने राज कुचक्र, दरबारी जीवन, घटनाओं के वर्णन का जितना प्रयास किया है, उतना ही उन स्थलों पर उसके अभिप्राय को समझना कठिन हो गया है। ऐसे स्थल अलंकृत काव्य शैली में वर्णित है। सप्तम तथा अष्टम तरंग में ऐसे स्थल बहुत मिलते है। कारण स्पष्ट है। उन में उल्लिखित व्यक्ति या तो उस समय जीवित थे अथवा कुछ ही वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके थे, जिन्हें लोग उनकी जीवन घटनाओं के साथ जानते थे। कल्हण ने इन स्थलों पर व्यंगात्मक शैली का आश्रय लिया है। (रा० ३ : १८१, ४ : ६३५-६३७, ७ : ११२३)

पुनरुक्ति दोष से अपने काव्य को बचाने का प्रयास कल्हण ने किया है। तथापि भूल से कहीं-कहीं पुनरुक्तियाँ आ गयी हैं। ग्रन्थ के अन्तिम चरण के छन्द उच्चकोटि के नहीं हैं। उनमें साधारण पुनरुक्तियाँ परिलक्षित होती हैं। स्थान-स्थान पर पाठकों का शैथिल्य दूर करने के लिए अलंकृत एवं आकर्षक पदों की रचना की गयी है।

कल्हण ने यह महाकाव्य विशेष रूप से अपने समकालीन जनों के लिए लिखा था। इसीलिये कुछ स्थलों पर उसने नवीन पात्रों का प्रवेश लम्बे षडयन्त्र, विद्रोहादि का चित्रण बिना उचित पृष्ठभूमि के कर दिया है। ऐसे स्थलो को बिना पूर्वापर का ज्ञान हुये, समझने मे कठिनता होती है। कल्हण का पट इतिहासात्मक काव्य साधारण जनता की अपेक्षा संस्कृत के विद्वानों एवं पण्डितों के लिए विशेषतः लिखा गया था। कल्हण भूतकाल का सुस्पष्ट वर्णन करता है। उसने भविष्य के इतिहास-लेखक एवं विचारकों के लिए उपदेशक का कार्य किया है।

कल्हण स्वयं स्वीकार करता है कि उसने विचित्र घटनाओं का विस्तृत समावेश कथा-विस्तार के कारण न कर यत्र-तत्र रुचिकर कथानकों को लिखा है। (रा० १ : ६) राजतरंगिणी राजकथा महाकाव्य है, इसमें रोचक, विचित्र तथा चमत्कारिक कथाओं का समावेश किया गया है। इस खण्ड में वर्णित रोचक कथानक है—नाग भार वहन (रा० १ : ११४) वटेश्वर लिंग (रा० १ : १९४) सुश्रवा नागकन्या (रा० १ : २०७) ब्राह्मण बालक (रा० ३ : ९३) भ्रमर वासिनी (रा० ३ : ३९४) रणारम्भा (रा० : : ४३१) गिरिसुता विवाह (३ : ४४३) और रावण पूजित लिंग (रा० ३ : ४४७)। पौराणिक शैली पर वर्णित कथायें—दैत्य रमणियो से भोग (रा० ३ : ४६९) जलभेदन (रा० ३ . ४८८) नागों की अलौकिक शक्ति (रा० १ : २५८) है। चमत्कारिक कथायें—वितस्तावतरण (रा० १ . १६०–१६६) चन्द्रावती का शिला हटाना (रा० १ : ३२१) सूखा में भी वृक्षों का हरित होना, (रा० २ : १५) गतप्राण कपोत पात (रा० २ : ५०) सन्धि मति का पुनरुत्थान (रा० २ : १०५) समुद्र स्तम्भन (रा० ३ : ६९) रणस्वामी, रणेश्वर स्थापना (रा० ३ : ४५७) है। विचित्र कथायें—रणारम्भा का भ्रमरी रूप धारण (रा० ३ : ४३८) गर्भ मण्डूक (रा० ३ : ४४२) खेचरो का स्मरण (रा० ३ : ४५०) हैं। चमत्कार, विचित्र एवं रोचक मिश्रित कथायें—नाग द्वारा हिम वर्षा (रा० १ : १७९) अश्व पर पाणि प्रहार (रा० १ : २४९) नगर सहित राजा का नाश (रा० १ : २५६) पाषाण वृष्टि (रा० १ : २६५) वरुण आगमन (रा० ३ : ५२) तल्प पर स्त्री स्वरूप बना देना आदि (रा० ३ : ४३८) हैं।

कथानको के कारण राजतरंगिणी महाकाव्य के साथ सामान्य जनता के लिए भी रुचिकर, मनोरंजन-सामग्री बन गयी है। कल्हण ने काव्य को सर्वप्रिय बनाने के लिए ग्रन्थ में अलौकिक कथाओं के अतिरिक्त अन्य कथाओं का भी समावेश किया है। उनमें नाग-मेघ (रा० ३ : २१) कामिनी स्त्री (रा० ३ : ५०१) काम संगम ज्ञान (रा० ३ : ५०८) *नारी भर्त्सना (रा० ३ : ५०१–५२१) तथा वैराग्य* (रा० ३ . ५२५) आदि है।

काल गणना : कल्हण की काल गणना एक समस्या है। अनेक विद्वानों ने उसे सुलझाने का प्रयास गत शताब्दी के प्रारम्भ से किया है। सर्वश्री विलसन, कनिंघम, स्तीन, ट्रायर, एस० पी० पण्डित आदि ने हल निकालने का स्तुत्य प्रयास किया है। परन्तु अभी तक सफलता नही मिली है। मैंने काशी में विद्वानों से निकट सम्पर्क स्थापित किया। परन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका। तरंग प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा कुछ तरंग चतुर्थ की गणना त्रुटिपूर्ण है। चतुर्थ तरंग में जयापीड के पश्चात् काल गणना सुधरती दिखायी देती है। जयापीड का समय लौकिक सम्वत् ३८७९ तथा कल्हण का समय लौकिक सम्वत् ४२२५ अर्थात् सन् ११४९–११५० है। तरंग पंचम और षष्ठ की काल गणना के साथ घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। षष्ठ तरंग के उत्तरार्ध से कल्हण को काल गणना ठीक होने लगी है। वह राजाओ का अभिषेक

एवं अवसान के साथ ही साथ मुख्य घटनाओं का लौकिक सम्वत् देना आरम्भ करता है। तरंग सप्तम एवं अष्टम् की काल गणना सर्वथा ठीक है। कल्हण शक सम्वत् १०७० तदनुसार लौकिक सम्वत् ४२२४ देता है। इससे लौकिक तथा शक सम्वत् की गणना मिल जाती है।

आधुनिक सिद्धान्त है कि सप्तर्षि चलते नही। कल्हण कहता है कि युधिष्ठिर के शासन काल में मुनि मघा नक्षत्र पर थे। सप्तर्षि एक शत वर्ष में मघा नक्षत्र पर आते है। (रा० १ : ५३–५६) यह स्वतः अध्ययन एवं अनुसन्धान का विषय है। कल्हण अपने इतिहास की रचना महाभारत कालीन गोनन्द प्रथम के समय से आरम्भ करता है। कल्हण ने कलि तथा लौकिक सम्वतों का प्रयोग किया है। मालूम होता है कि कल्हण ने अपनी काल गणना सुनिश्चित एवं स्थिर करने के लिए महाभारत काल अपनी काल सीमा ग्रन्थ प्रारम्भ करने के लिए निर्धारित कर लिया था।

महाभारत के पूर्व काश्मीर में क्या सम्वत् प्रचलित था पता नही चलता। कल्हण के समय में कलि, लौकिक एवं शक तीनों सम्वत् प्रचलित थे। लौकिक सम्वत् को आधार मानकर वह काल-क्रमानुसार इतिहास रचना आरम्भ करता है। एक मत है कि द्वापर के अन्त में महाभारत हुआ था। दूसरा मत है कि कलियुग के ६५३ वर्ष पश्चात् महाभारत हुआ था। कलि सम्वत् के २५ वर्ष पश्चात् लौकिक सम्वत् आरम्भ होता है।

पुराकालीन लेखकों में कल्हण एक ऐसा महाकाव्यकार है जिसने राजाओं एवं घटनाओं के इतिवृत्त के साथ सम्वत् वर्ष, मास एवं दिन दिया है। रामायण एवं महाभारत में संवत्सरों का प्रयोग नही किया गया है। कल्हण का इस दिशा में भारतीय ही नही विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। शामी अर्थात् सेमेटिक जाति इतिहास लिखने में निपुण मानी गयी है। परन्तु बाइबिल म जहाँ राजाओ का उल्लेख किया गया है, वंशावली दी गयी है। वहाँ भी काल गणना नही की गयी है।

राजतरंगिणी का इतिहास गोनन्द प्रथम से आरम्भ होता है। इस समय स कल्हण क्रमबद्ध इतिहास लिखता है। कलि सम्वत् ६५३ तदनुसार लौकिक सम्वत् ६२८ होता है। गोनन्द प्रथम से अभिमन्यु प्रथम का राज्य काल १२६६ वर्ष अर्थात् लौकिक सम्वत् ६२८ से १८६४ वर्ष तक होता है। इस काल में ३५ लुप्त राजाओं के अतिरिक्त कल्हण ·७ राजाओ का नाम तथा इतिहास देता है।

गोनन्द वंश में गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर तक का राज्य काल १००२ वर्ष कल्हण देता है। वह समय १८६४ से २८९६ लौकिक सम्वत् वर्ष होता है। इस काल में २१ राजाओं के इतिहास का संक्षिप्त उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है। द्वितीय तरंग में ६ राजाओ का इतिहास है। उनका राज्य काल १९२ वर्ष आता है। यह लौकिक सम्वत् २८९६ से ३०८८ तक होता है। तृतीय तरंग मे १० राजाओ का इतिहास है। उनका राज्य काल लौकिक सम्वत् ३०८८ से ३६७७ मध्य तक ५८९ वर्ष १० मास १ दिन होता है। इससे केवल राजा रणादित्य का ही राज्य काल ३०० वर्ष दिया है जो स्पष्ट त्रुटिपूर्ण है। चौथे तरंग कर्कोट वंश का काल लौकिक सम्वत् ३६७७ से ३९३१ अर्थात् २५४ वर्ष पाच मास सत्ताइस दिन होता है। पचम तरंग उत्पल वंश का आरम्भ राजा अवन्ति वर्मा लौकिक सम्वत् ३९३१ से होता है। इस वंश के १५ राजाओ में ९ राजाओं के राज्याभिषेक का मास तथा दिन देता है। उनमे पाँच राजाओं का सम्मिलित राज्य काल मिलाकर पाच वर्ष से अधिक नही होता। इस प्रकार पंचम, षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम तरंग के राजाओ का वर्ष, दिन मास तक देकर वह अपनी काल गणना सिद्ध करता है।

सम्राट् कनिष्क का समय देते समय कल्हण लिखता है कि उस समय भगवान शाक्यसिंह का परि-निर्वाण हुए १५० वर्ष हो गये थे। (रा० १ : १७२) कल्हण की काल गणना इस समय से मिलायी जाय तब भी ऐतिहासिक काल गणना को तुला पर ठीक नहीं उतरती है। कम-से-कम ४०० वर्षों का हेर-फेर उसकी काल-गणना में हो जाता है। कल्हण ने तत्कालीन प्राप्य ऐतिहासिक सामग्रियों एवं जनश्रुतियों के आधार पर अनुमान से समय दिया है। काल की ओर या तो कल्हण ने ध्यान नहीं दिया है अथवा उसने जो कालक्रम दिया है और अब तक इतिहास से जो बातें सिद्ध होती हैं उनमें क्या दोष एवं त्रुटियाँ हैं यह स्वतः विशेष अनुसंधान का विषय है। कल्हण की काल-गणना के अनुसार और अशोक की मान्यता प्राप्त काल-गणना में शताब्दियों का अन्तर पड़ जाता है। हिरण्य एवं तोरमाण हूण थे परन्तु उन्हें कल्हण ने गोनन्द की वंशावली से जोड़ा है।

आश्चर्य है। कल्हण को ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान था। उसने अपने अध्ययन के स्थान-स्थान पर ज्योतिष सिद्धान्तों एवं काल गणना का उल्लेख किया है। तथापि उसकी काल गणना कैसे त्रुटिपूर्ण रह गयी है इस पर अध्ययन अपेक्षित है। उक्त दोष के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संस्कृत साहित्य में कल्हण ने महाभारत काल से सुसंगत इतिहास उपस्थित किया है।

राजतरंगिणी : राजतरंगिणी के तरंगों का तीन वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है। श्री स्तीन ने प्रथम वर्ग में तरंग एक, दो, तीन, द्वितीय वर्ग में तरंग चार तथा तृतीय वर्ग में पाँच, छ, सात एवं आठ रखा है। श्री डाक्टर ए० एल० बैशम ने प्रथम वर्ग में तरंग एक, दो, तीन, द्वितीय वर्ग में तरंग चार, पाँच, छ तथा तृतीय वर्ग में सात एवं आठ रखा है।

श्री स्तीन का वर्गीकरण काल गणनानुसार है। चतुर्थ तरंग के उत्तरार्ध से कल्हण की काल गणना क्रमबद्ध होती है। तरंग पंचम एवं षष्ठ का भाग गाथा एवं ऐतिहासिक दोनों कालों का मिश्रण है। सातवें तथा आठवें तरंग की काल गणना सुनिश्चित है। श्री बैशम ने वर्गीकरण ऐतिहासिक तथ्य पर किया है। प्रथम वर्ग को वे परम्परा पर आधारित इतिहास कहते हैं। कल्हण ने इस काल के लिए कोई साक्ष्य उप-स्थित नहीं किया है कि किस आधार पर उसका वर्णन सत्य माना जाय। कल्हण ने कश्मीर के इतिहास का जिससे महाभारत से किंचित मात्र सम्बन्ध नहीं है गौरवपूर्ण पौराणिक घटनाओं के काल्पनिक समय से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है।

श्री बैशम द्वितीय वर्ग में तरंग चार, पाँच तथा छ अर्थात् कर्कोट एवं उत्पल वंश रखते हैं। इसे कल्हण ने पूर्वकालीन इतिहासकारों के आधार पर लिखा है, जो घटनाओं अथवा राजाओं के समकालीन थे। तृतीय वर्ग में श्री बैशम ने सप्तम तथा अष्टम तरंग रखा है। जिसका ज्ञान उसे प्रत्यक्षदर्शियों से प्राप्त हुआ था। तरंग आठ का वह स्वयं प्रत्यक्षदर्शी था। दोनों ही वर्गीकरण काल एवं प्रमाण की दृष्टि से उचित प्रतीत होते हैं।

प्रथम तीन तरंग इस समय प्रतिपाद्य विषय है। सर्वश्री स्तीन तथा बैशम दोनों एक मत हैं कि यह काल गाथा कालीन है। तरंग चार में पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में इतिहास की झलक अधिक मिलती है। तरंग पाँच से इतिहास वर्णन आरम्भ होता है। यह काल राजा अवन्ति वर्मा (सन् ८५५-८५६ ई०) के समय से आरम्भ होता है। प्रथम तीन तरंग ऐतिहासिक सामग्री न होने के कारण छोटे हैं। परम्परा एवं जनश्रुतियों पर आधारित हैं। कुछ पौराणिक गाथाओं पर आधारित हैं, और कुछ काल्पनिक हैं।

एवं अवसान के साथ ही साथ मुख्य घटनाओं का लौकिक सम्वत् देना आरम्भ करता है। तरंग सप्तम एवं अष्टम् की काल गणना सर्वथा ठीक है। कल्हण शक सम्वत् १०७० तदनुसार लौकिक सम्वत् ४२२४ देता है। *इससे लौकिक तथा शक सम्वत् की गणना मिल जाती है।*

आधुनिक सिद्धान्त है कि सप्तर्षि चलते नहीं। कल्हण कहता है कि युधिष्ठिर के शासन काल में मुनि मघा नक्षत्र पर थे। सप्तर्षि एक शत वर्ष में मघा नक्षत्र पर आते हैं। (रा० १ : ५३–५६) यह स्वतः अध्ययन एवं अनुसन्धान का विषय है। कल्हण अपने इतिहास की रचना महाभारत कालीन गोनन्द प्रथम के समय से आरम्भ करता है। कल्हण ने कलि तथा लौकिक सम्वतों का प्रयोग किया है। मालूम होता है कि कल्हण ने अपनी काल गणना सुनिश्चित एवं स्थिर करने के लिए महाभारत काल अपनी काल सीमा ग्रन्थ प्रारम्भ करने के लिए निर्धारित कर लिया था।

महाभारत के पूर्व काश्मीर में क्या सम्वत् प्रचलित था पता नहीं चलता। कल्हण के समय में कलि, लौकिक एवं शक तीनों सम्वत् प्रचलित थे। लौकिक सम्वत् को आधार मानकर वह काल-क्रमानुसार इतिहास रचना आरम्भ करता है। एक मत है कि द्वापर के अन्त में महाभारत हुआ था। दूसरा मत है कि कलियुग के ६५३ वर्ष पश्चात् महाभारत हुआ था। कलि सम्वत् के २५ वर्ष पश्चात् लौकिक सम्वत् आरम्भ होता है।

पुराकालीन लेखकों में कल्हण एक ऐसा महाकाव्यकार है जिसने राजाओं एवं घटनाओं के इतिवृत्त के साथ सम्वत् *वर्ष, मास एवं दिन दिया है। रामायण एवं महाभारत में संवत्सरों का प्रयोग नहीं किया* गया है। कल्हण का इस दिशा में भारतीय ही नहीं विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है। शामी अर्थात् सेमेटिक जाति इतिहास लिखने में निपुण मानी गयी है। परन्तु बाइबिल म जहाँ राजाओं का उल्लेख *किया गया है, वंशावली दी गयी है। वहाँ भी काल गणना नहीं की गयी है।*

राजतरंगिणी का इतिहास गोनन्द प्रथम से आरम्भ होता है। इस समय स कल्हण क्रमबद्ध इतिहास लिखता है। कलि सम्वत् ६५३ तदनुसार लौकिक सम्वत् ६२८ होता है। गोनन्द प्रथम से अभिमन्यु प्रथम का राज्य काल १२६६ वर्ष अर्थात् लौकिक सम्वत् ६२८ से १८६४ वर्ष तक होता है। इस काल में ३५ लुप्त राजाओं के अतिरिक्त कल्हण [illegible] राजाओं का नाम तथा इतिहास देता है।

गोनन्द वंश में गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर तक का राज्य काल १००२ वर्ष कल्हण देता है। वह समय १८६४ से २८९६ लौकिक सम्वत् वर्ष होता है। इस काल में २१ राजाओं के इतिहास का संक्षिप्त उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है। द्वितीय तरंग में ६ राजाओं का इतिहास है। उनका राज्य काल *१९२ वर्ष आता है। यह लौकिक सम्वत् २८९६ से ३०८८ तक होता है। तृतीय तरंग में १० राजाओं का* इतिहास है। उनका राज्य काल लौकिक सम्वत् ३०८८ से ३६७७ मध्य तक ५८९ वर्ष १० मास १ दिन होता है। इससे केवल राजा रणादित्य का ही राज्य काल ३०० वर्ष दिया है जो स्पष्ट त्रुटिपूर्ण है। चौथे *तरंग ककोर्ट वंश का काल लौकिक सम्वत् ३६७७ से ३९३१ अर्थात् २५४ वर्ष पाच मास सत्ताइस दिन* होता है। पचम तरंग उत्पल वंश का आरम्भ राजा अवन्ति वर्मा लौकिक सम्वत् ३९३१ से होता है। इस वंश के १५ राजाओ मे ६ राजाओ के राज्याभिषेक का मास तथा दिन देता है। उनमे पाँच राजाओ का *सम्मिलित राज्य काल मिलाकर पाच वर्ष से अधिक नहीं होता।* इस प्रकार पंचम, षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम तरंग के राजाओं का वर्ष, दिन मास तक देकर वह अपनी काल गणना सिद्ध करता है।

सम्राट् कनिष्क का समय देते समय कल्हण लिखता है कि उस समय भगवान शाक्यसिंह का परिनिर्वाण हुए १५० वर्ष हो गये थे। (रा० १ : १७२) कल्हण की काल गणना इस समय से मिलायी जाय तब भी ऐतिहासिक काल गणना की तुला पर ठीक नही उतरती है। कम-से-कम ४०० वर्षों का हेर-फेर उसकी काल-गणना में हो जाता है। कल्हण ने तत्कालीन प्राप्य ऐतिहासिक सामग्रियों एवं जनश्रुतियों के आधार पर अनुमान से समय दिया है। काल की ओर या तो कल्हण ने ध्यान नही दिया है अथवा उसने जो कालक्रम दिया है और अब तक इतिहास से जो बातें सिद्ध होती हैं उनमें क्या दोष एवं त्रुटियाँ हैं यह स्वतः विशेष अनुसंधान का विषय है। कल्हण की काल-गणना के अनुसार और अशोक की मान्यता प्राप्त काल-गणना में शताब्दियों का अन्तर पड़ जाता है। हिरण्य एवं तोरमाण हूण थे परन्तु उन्हें कल्हण ने गोनन्द की वंशावली से जोड़ा है।

आश्चर्य है। कल्हण को ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान था। उसने अपने अध्ययन के स्थान-स्थान पर ज्योतिष सिद्धान्तों एवं काल गणना का उल्लेख किया है। तथापि उसकी काल गणना कैसे त्रुटिपूर्ण रह गयी है इस पर अध्ययन अपेक्षित है। उक्त दोष के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संस्कृत साहित्य में कल्हण ने महाभारत काल से सुसंगत इतिहास उपस्थित किया है।

राजतरंगिणी : राजतरंगिणी के तरंगों का तीन वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है। श्री स्तीन ने प्रथम वर्ग में तरंग एक, दो, तीन, द्वितीय वर्ग में तरंग चार तथा तृतीय वर्ग में पाँच, छ, सात एवं आठ रखा है। श्री डाक्टर ए० एल० वैशम ने प्रथम वर्ग में तरंग एक, दो, तीन; द्वितीय वर्ग मे तरंग चार, पाँच, छ तथा तृतीय वर्ग में सात एवं आठ रखा है।

श्री स्तीन का वर्गीकरण काल गणनानुसार है। चतुर्थ तरंग के उत्तरार्ध से कल्हण की काल गणना क्रमबद्ध होती है। तरंग पंचम एवं षष्ठ का भाग गाथा एवं ऐतिहासिक दोनों कालों का मिश्रण है। सातवें तथा आठवें तरंग की काल गणना सुनिश्चित है। श्री वैशम ने वर्गीकरण ऐतिहासिक तथ्य पर किया है। प्रथम वर्ग को वे परम्परा पर आधारित इतिहास कहते हैं। कल्हण ने इस काल के लिए कोई साक्ष्य उपस्थित नहीं किया है कि किस आधार पर उसका वर्णन सत्य माना जाय। कल्हण ने कश्मीर के इतिहास का जिससे महाभारत से किंचित मात्र सम्बन्ध नहीं है गौरवपूर्ण पौराणिक घटनाओं के काल्पनिक समय से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है।

श्री वैशम द्वितीय वर्ग में तरंग चार, पाँच तथा छ अर्थात् कर्कोट एवं उत्पल वंश रखते हैं। इसे कल्हण ने पूर्वकालीन इतिहासकारों के आधार पर लिखा है, जो घटनाओं अथवा राजाओं के समकालीन थे। तृतीय वर्ग में श्री वैशम ने सप्तम तथा अष्टम तरंग रखा है। जिसका ज्ञान उसे प्रत्यक्षदर्शियों से प्राप्त हुआ था। तरंग आठ का वह स्वयं प्रत्यक्षदर्शी था। दोनों ही वर्गीकरण काल एवं प्रमाण की दृष्टि से उचित प्रतीत होते हैं।

प्रथम तीन तरंग इस समय प्रतिपाद्य विषय है। सर्वश्री स्तीन तथा वैशम दोनों एक मत हैं कि यह काल गाथा कालीन है। तरंग चार में पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में इतिहास की झलक अधिक मिलती है। तरंग पाँच से इतिहास वर्णन आरम्भ होता है। यह काल राजा अवन्ति वर्मा (सन् ८५५-८५६ ई०) के समय से आरम्भ होता है। प्रथम तीन तरंग ऐतिहासिक सामग्री न होने के कारण छोटे हैं। परम्परा एवं जनश्रुतियों पर आधारित हैं। कुछ पौराणिक गाथाओं पर आधारित हैं, और कुछ काल्पनिक हैं।

जैसे-जैसे तृतीय तरंग के पश्चात् कल्हण लिखता बढ़ता गया है वैसे-वैसे उसका इतिहास प्रामाणिक होता गया है।

प्रथम तीन तरंगों का वर्णन अस्पष्ट है। प्रणय कथानकों, असम्भव तिथियों एवं पौराणिक नामों को नि.संकोच कल्हण ने लिखा है। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण पुराणों तथा उसकी गाथाओं में कल्हण का अन्ध विश्वास था। पुराना विश्वास है कि काल अर्थात् कलि का काल द्वापर युग में लागू नहीं होता। अतएव कल्हण ने काल भी कलियुग के समय से आरम्भ किया है। कल्हण की शैली वैज्ञानिक है। उसने अनुसंधान एवं प्राप्य सामग्रियों को संग्रह कर अपना विचार एक स्थेम की तरह स्वयं निश्चित किया है। ऐतिहासिक निष्कर्षों को उपस्थित करने में अपनी कला का अद्भुत परिचय दिया है।

कल्हण पर पौराणिक प्रभाव होने का आक्षेप विद्वान् करते हैं। परन्तु यूनान जैसे देश में हिरोदोरस तथा थूसाडाइस के अनुसार उस युग में भी जो वहाँ का स्वर्ण युग था, रण अभियान सूर्य तथा चन्द्र की स्थिति से नियन्त्रित होता था। ग्रहण के कारण पोलो पेनिनियन युद्ध में यूनानी असफल हो गये थे। एनक्सा गोरस को थयेन्स की साधारण सभा ने इसलिये मृत्यु दण्ड दिया था कि सूर्य तथा चन्द्रमा यूनानी कवियों की दृष्टि में देवता थे। ज्योतिष ज्ञान का प्रचार वर्जित था। सुकरात को इसलिये मृत्युदण्ड दिया गया था कि वह देवी-देवताओं की पूजा में विश्वास न कर बुद्धिवादी था।

कल्हण ने सम्राट् अशोक एवं कनिष्क जैसे महान् व्यक्तियों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है। इस प्रकार हुविष्क एवं जविष्क का वर्णन किया गया है। इतिहास एवं पुराण में जैसे अन्तर नहीं किया गया है। प्रारम्भिक वर्णन इतिहास की दृष्टि से अशुद्ध, अविश्वसनीय, कल्पना तथा जन-श्रुतियों पर आधारित है। वह पुराण तुल्य पौराणिक शैली से लिखा लगता है। इसमें कल्हण का दोष नहीं है। उसने रामायण, महाभारत तथा पुराणों से सामग्रियाँ एकत्रित कर, काश्मीर के इतिहास को काल क्रमानुसार क्रमबद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया है। साहित्यिक दृष्टि से इस काल में निहित वर्णन उपमा, अलंकार, विचित्र एवं रोचक घटनाओं के संग्रह लगेंगे। बाण के हर्ष चरित के समान कल्हण ने भी दुर्लभ शब्दों का प्रयोग किया है। तथापि किसी प्रकार के इतिहास के अभाव में कल्हण की राजतरंगिणी काश्मीर का आदर्श इतिहास हो गयी है। यह अनुपम कृति है। दोषपूर्ण वास्तविक वैज्ञानिक इतिहास लिखने का यह अपनी शैली का प्रथम प्रयास भारत में कहा जायगा।

अनेक दोषों के होते हुए प्राचीन जगत इतिहास का आदर करने में पीछे नहीं था। भारतीय रचनाकारों ने इतिहास-रचना की परम्परा स्थापित की थी। उनकी शैली तथा विचार अपना था। कल्हण की रचना शैली से यह स्पष्ट प्रतीत होता है। समुद्र का ज्ञान भारतीयों के ऐतिहासिक ज्ञान का परिचायक है, उसे पुरातन भारतीय जान चुके थे। कल्हण समुद्र का बहुत वर्णन करता है। भारतीयों की श्रेष्ठता अन्य दिशाओं में बहुत बढ़ गयी थी। यदि उसका कोई अपवाद है तो कल्हण के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक युग है। पुरातन भारतीयों में सच्चे इतिहास का नितान्त अभाव नहीं था। उनके दृष्टिकोण एवं बौद्धिक विकास में दोष नहीं था।

भारत के इतिहास के अभाव में राज तरंगिणी को स्थानीय, लौकिक किंवा प्रदेशीय इतिहास कह सकते हैं। भारतीय प्रवृत्ति की यह विशेषता है कि वह आध्यात्म की ओर अधिक झुकी थी। कहा जाता है, विदेशी आक्रमणों के कारण राष्ट्रीय भावनायें उमड़ती हैं और शक्तिशाली इतिहास लिखने के लिए अनुप्राणित करती हैं। भारत पर सिकन्दर के पूर्व विदेशी आक्रमण नहीं हुआ था। कभी कल्पना नहीं की

यी थी कि राजविप्लव होगा। आक्रमणों के कारण व्यवस्था एवं राज-परम्परा अस्त-व्यस्त हो जायगी हिन्दुस्तान में भारतीय धर्म के स्थान पर अन्य विदेशी धर्मों का प्राबल्य हो जायगा। उस समय इतिहास लिखकर पूर्वकाल की स्मृति को सुरक्षित रखने का विचार नही उठा था।

यूनानी नगर राष्ट्र सर्वदा संघर्षशील थे। रोम का इतिहास सैनिक अभियानों का इतिहास है। अतएव पश्चिम में इतिहास रखने एवं लिखने को विशेष रुचि हुई थी। कह सकते है, पश्चिम में नव-जागरण के कारण आयी आधुनिकता से पूर्व कल्हण जैसा प्रतिभाशाली महान ऐतिहासिक विश्व साहित्य में अन्यत्र भी दुर्लभ है। उसे नि:सन्देह पोलाइवियस तथा थुसाडाइड की पंक्ति में गौरव पूर्वक बैठाया जा सकता है।

कल्हण के उद्धरणों से प्रतीत होता है कि काश्मीर में इतिहास लिखने की परम्परा प्राचीन-काल से प्रचलित थी। यह परम्परा भारत के अन्य स्थानों में नही मिलती। काश्मीर ने अपनी एकाकी भौगोलिक स्थिति के कारण अपना एक अलग व्यक्तित्व एवं चरित्र विकसित कर लिया था। अपने देश के गौरव तथा इतिहास को लिपिबद्ध करने की भावना सर्वदा काश्मीर में जागरूक थी। इसका एक और कारण हो सकता है। काश्मीर की सीमा पर लड़ाकू विदेशी राष्ट्र थे। काश्मीर का सम्बन्ध अन्य देशों से था। उनमें इतिहास लिखने और रखने की भावना भारत की अपेक्षा अधिक जागरूक थी। सेमेटिक अर्थात् शामी जाति के प्रभाव से प्रभावित होना असम्भव बात नही थी। अतएव काश्मीरियों ने भी अपने देश में इतिहास लिखने की कल्पना की।

काश्मीर में संस्कृत साहित्य का यह एक मात्र इतिहास शेष रह गया था। जब कि मुसलिम काल में सभी कुछ नष्ट कर दिया गया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अस्तित्व गत शताब्दी के पूर्व विश्व नहीं जानता था। किन्तु राजतरंगिणी का अध्ययन, अध्यापन, अनुवाद उसके अस्तित्व काल से ही आरम्भ हो गया था। उसके अस्तित्व से लोग परिचित थे। फिरदौसी के शाहनामा की तरह राजतरंगिणी गाथादि का संकलन मात्र नही है। काश्मीर के हिन्दू और मुसलमान दोनों को अपने पूर्वजो का इतिहास होने के कारण गर्व था और है।

राजतरंगिणी के अध्ययन का इतिहास : सन् ११५० ई० से अबतक राजतरंगिणी के लगभग ४९ अनुवादों तथा संस्करणों का पता लग सका है। ऐसी कोई शताब्दी नही व्यतीत हुई है, जिसमें तरंगिणी का कोई न कोई संस्करण अनुवाद अथवा प्रतिलिपि न की गयी हो। सन् ११५० से १३३९ ई० का मध्यवर्ती काल काश्मीर का अत्यन्त संघर्षमय समय रहा है। उस समय यदि राजतरंगिणी पर कुछ लिखा भी गया होगा तो पुरानी पुस्तकों के नष्ट करने तथा फूकने के उन्माद में सिकन्दर बुत शिकन के समय में अपना अस्तित्व लुप्त कर चुका है। सन् १३३९ ई० में मुसलिम शासन काश्मीर में स्थापित हुआ। उस समय से जैनुल आब्दीन के काल सन् १४४६ ई० तक का समय काश्मीर के लिए अत्यन्त उथल-पथल का रहा है। काश्मीर की जनता केवल ११ घरों को छोड़कर मुसलिम धर्म स्वीकार कर चुकी थी। मन्दिर, मठ, जनाश्रय, शाला, विद्य वेश्म तथा विहार ध्वंशावशेष रह गये थे। पुस्तकें नष्ट की जा चुकी थी। जैनुल आब्दीन (सन् १४४६–१४७२ ई०) के समय श्री जोनराज ने कल्हण के कार्य को अपने समय तक लाकर अपनी राजतरंगिणी लिखी।

जोनराज के पूर्व अथवा उसका समकालीन मुल्ला अहमद था। उसने जैनुल आब्दीन के आदेश

सी. कलकत्ता ने प्रकाशित किया। श्री एम. ए. ट्रोयर ने (सन् १८४०-१८५२ ई०) में राजतरंगिणी का फ्रेन्च अनुवाद तीन भागों में किया। वहालुद्दीन ने सन् १८६८ मे लवुल तवारीख लिखा। श्री दीवान कृपाराम ने सन् १८७१ में गुलजार-ए. काश्मीर की रचना की। चारो राजतरंगिणियों का अंग्रेजी मे सारानुवाद श्री जोगेशचन्द्र दत्त ने किंग्स आफ काश्मीर के नाम से सन् १८७९ में किया। श्री हर गोपाल खस्ता ने गुलदस्तये काश्मीर लिखा। श्री मुल्ला अतुल नवी ने सन् १८८४ में वजीवुल तवारीख लिखा।

राजतरंगिणी के पाठों के शुद्धीकरण तथा प्रकाशन का कार्य महामहोपाध्याय दुर्गा प्रसाद ने सन् १८९२ ई० मे किया। राज तरंगिणी मूल तीन भागों में प्रकाशित की गयी। वैज्ञानिक शैली से अध्ययन तथा शोध का कार्य श्री स्तीन ने किया है। सन् १८९२ ई० में उन्होंने मूल संस्कृत का पाठशोधन कर मुद्रित करवाया। इसका पुनर्मुद्रण सन् १९६० में हुआ है। पीर गुलाम हसन खुरहमी ने सन् १८९८ई० में तारीखें लिखा जो हसन की तारीख के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उर्दू अनुवाद श्रीनगर से प्रकाशित हो चुका है। श्री स्तीन का प्रसिद्ध ऐतिहासिक अंग्रेजी अनुवाद सटिप्पण प्रथम बार सन् १९०० ई० में प्रकाशित हुआ था। श्री गोविन्द कौल ने राज तरंगिणी वर्णित स्थानों का पता लगाया था। श्री स्तीन ने उनकी सहायता से शेष स्थानों का और पता लगाया। इसका पुनर्मुद्रण सन् १९६१ में मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली के यहाँ से हुआ है। श्री निवारण चन्द्र विद्यारत्न ने सन् १९०४ ई०, में संस्कृत से बंगला अनुवाद कर प्रकाशित किया। सन् १९१० ई० में प्रथम तरंग से छठवें तरंग का बंगाली लिपि में मूल तथा अनुवाद हितवादी तथा मनोरंजन कलकत्ता से बंगला सम्वत् १३१७ में प्रकाशित हुआ। इसमें अनुवादक का नाम नहीं दिया गया है। सातवें तरंग का अनुवाद बंगला में दुर्गानाथ शास्त्री ने सन् १९११ ई० बंगला सम्वत् १९१८ में किया। आठवें तरंग का बंगला अनुवाद सर्व श्री राम चरन तथा दुर्गानाथ शास्त्री ने सन् १९१२ई० में चटगाँव निवासी हीरा लाल चट्टोपाध्याय ने कल्हण की राज तरंगिणी का अनुवाद बंगला में प्रकाशित किया। इसका अनुवाद श्लोकानुसार नही है। एक मत है कि यह जोगेश चन्द्रदत्त के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित है।

सन् १९२९ में श्री माधव वेंकटेश लेले श्री स्तीन के अनुवाद के आधार पर मराठी में अनुवाद पूना से प्रकाशित किया। श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने आठो तरंग का अंग्रेजी अनुवाद सन् १९३५ में किया। इसका पुनर्मुद्रण सन् १९६८ मे हो गया है। श्री विश्वबन्धु शास्त्री ने सर्वश्री भीम देव, के. एम. रामास्वामी शास्त्री तथा ए. भास्करन् नायर के सहयोग से सम्पादित कर प्रथम से सप्तम तरंग मूल, पाठभेद के सहित प्रथम खण्ड सन् १९६३ ई० में विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान से प्रकाशित किया। यही पाठ प्रस्तुत ग्रन्थ का रखा गया है। इसका दूसरा खण्ड अर्थात् आठवाँ तरंग वही से प्रकाशित किया गया है। श्री गोपी कृष्ण शास्त्री ने सन् १९४१ ई० में प्रथम से सात तरंगो का हिन्दी अनुवाद किया है। यह अनुवाद काशी से प्रकाशित हुआ है। सन् १९६० में श्री राम तेज शास्त्री पण्डित पुस्तकालय, काशी ने मूल के साथ हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। श्री नीलम अग्रवाल ने हिन्दी अनुवाद सन् १९६८ ई० में किया है। सन् १९६९ ई० इस लेखक ने काश्मीर कीर्तिकलश शीर्षक प्रथम से तीन तरंगों का अनुवाद किया है। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ने इसे प्रकाशित किया है। द्वितीय खण्ड तरंग ४ से ७ का हिन्दी अनुवाद भी मुद्रण की स्थिति में है। अन्य सभी ग्रन्थों का आधार एक मात्र कल्हण की राजतरंगिणी है। इस प्रकार गत ९ शताब्दियों से राज तरंगिणी का अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन कभी बन्द नही हुआ है और जबतक इतिहास की ओर जगत् को रुचि रहेगी कभी बन्द नहीं होगा।

शुद्धि-पाठ

पृष्ठ	शुद्ध पाठ	अशुद्ध पाठ	पृष्ठ	शुद्ध पाठ	अशुद्ध पाठ
४३	जलोद्भवम्	जलोतूभवम्	४४०	ययो	ययो
७४	भेडगिरेः	भेदगिरेः	४६८	वेष्टिताः	वेष्टिता
८३	तिलांशोऽपि	तिलाशोऽपि	४८५	शर्म	सम
९१	कौरव	कोरव	५०७	यितुं	यितु
१०९	विवाहोत्का	विवाहात्का	५११	र्ऽयिनः	ऽयिनः
११३	रङ्कुरं	रङ्कुरं	५१४	निर्गर्वः	निगर्वः
१२४	घुर्यः	भुर्यः	५१९	ददर्शाग्रे	ददार्शाग्रे
१७८	यौधिष्ठिरी	योधिष्ठिरी	५२३	द्रुतम्	द्रतम्
१८०	धार	धार	५२६	प्राहिणोत्	प्राहिणात्
१८६	संस्पर्धा	संस्पर्ध	५३१	आचख्यावश्व	आचख्यावश्च
१९१	संचयम्	सचयम्	५३२	गणोऽयं	गणोऽयं
१९४	क्रोधा	क्रोधा	५४०	भवादृशैः	भवादृशौः
२२३	दृष्ट्वैना	दृष्ट्वना	५४२	गृह्णातु	गृह्णातु
२५४	देशं	देश	५४२	सर्वमौचित्यं	सर्वमौचित्य
२६९	सरलात्मना	सरलात्मनः	५४६	क्षीणं	क्षीण
३३४	जलौघो	जलौधा	५४९	नामाङ्कं	मामाङ्क
३३५	बकेशं, बकश्वभ्रे,	वकेशं, वकश्वभ्रे	५५१	दुर्लभम्	दुलभम्
	बकवत्यापगां	वकवत्यापगा	५५१	सेतुमेतं	सेतुमेत
३४३	द्विजाः	द्विजः	५६४	जयन्ताख्यो	जयन्ताख्या
४०६	राज्यग्नि	राज्ञयग्नि	५७७	परस्पराङ्गेषु	प्रस्पराङ्गेषु
४१०	तावद्व्यक्तं	तावव्यक्तं	५७९	त्वं	त
४३०	कुम्भाम्भः	कुम्भाम्म	५७९	शान्तोत्सुकयाः	शान्तोत्सुवया
४३१	सर्वतोऽप्यपि	सर्वतोद्याऽपि	५९८	कालम्व्याख्यो	कालम्वाख्यो

काश्मीर का इतिहास

अथ

श्रीकल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

प्रथमस्तरङ्गः

श्रीगणेशाय नमः[1]

भूपाभोगिफणारत्नरोचिस्सिचयचारवे ।
नमः प्रलीनमुक्ताय हरकल्पमहोरुहे ॥ १ ॥

मङ्गलाचरण

१. उन भगवान् शिव[2] को नमस्कार है जो सर्पों के आभूषण से आभूषित हैं; जिनका शरीर सर्पों के फणों में स्थित रत्नों की दीप्ति द्वारा प्रदीप्त है। जो कल्पतरु स्वरूप हैं, और जिनमें मुक्त जन प्रलीन[3] होते हैं।

पाठ भेदः

श्रीगणेशाय नमः ; ओं श्रीकृष्णाय नमः ; ओं सरस्वत्यै; ओं श्रीगणेशाय नमः ; ओं नमोः नारायणाय ; ओम् , ओं भगवते वासुदेवाय; ओं स्वस्ति ; अथ राजतरंगिणी आदि पाठों का भेद मिलता है।

वाराणसी, पूना, इण्डिया आफिस लाइब्रेरी तथा श्रीनगर की पाण्डुलिपियों में श्रीगणेशाय नमः मिलता है।

प्रथम श्लोक के शब्द 'भूपाभोगि' का पाठ-भेद 'भूपाहीन', 'मुक्ताय' का 'मुकुटा' तथा 'हर' का 'पुरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१. (१) श्री गणेशाय नमः—कल्हण सनातन काव्य रचना एवं कवि परंपरा का अनुकरण करता हुआ, राजतरंगिणी का प्रारंभ 'श्री गणेशाय नमः' से करता है। श्री शब्द जब नाम के साथ लगाया जाता है, तो उसका अर्थ पवित्र किंवा शुभ सौभाग्यशाली, भाग्यवान्, पूजनीय तथा महाभाग समझा जाता है।

गणेश के नाम आदि की विस्तृत व्याख्या गणेश पुराण स्वयं करता है। वेद में गणपति शब्द मिलता है 'गणाना त्वा गणपतिं'—ऋग्वेद २:२३:१। गणपति किंवा गणेश शब्द का अर्थ गणों का अध्यक्ष अथवा लोकतंत्र का राष्ट्रपति लगाया जाता है। भारत गणतंत्र है। गण का पति अथवा राजा, गणपति, गणेश, शाब्दिक अर्थ से ठीक है। प्राचीन काल से गण राज्यों के अधिपति को गणेश किंवा गणपति कहते थे। भारत में प्रचलित राष्ट्रपति शब्द में गणपति किंवा गणेश का भाव आ जाता है। गणेश का नाम ज्येष्ठराज भी है। महाभारत लिखने के समय व्यास ने गणेश को अपना लिपिक बनाया था।

गणेश का विद्वान् तथा पंडित और गोबर गणेश का अर्थ मूर्ख के लिये कालान्तर में जाने लगा है। संत ज्ञानेश्वर ने अपनी गीता की टीका के प्रथम चरण में ही गणेश का बहुत सुंदर रूपक खींचा है।

गणेश बुद्धि के अधिदेवता हैं। विघ्नविनाशक तथा मंगलमूर्ति माने जाते हैं। इनकी मूर्तियों में 'नाग' यज्ञोपवीत देखा जाता है। अत: नाग जाति से इनको किसी न किसी रूप से जोड़ा जा सकता है। उनका विशाल मस्तक हाथी का मुख स्वरूप, हाथों में परशु, पाश, माला तथा पुस्तक है। लंबोदर अर्थात् पेट तुंदिल दिखाया जाता है।

अग्नि-सोम—मीठा लड्डू उन्हें प्रिय है। यह उनकी माधुर्यप्रियता का परिचायक है। इसलिये उन्हें ढुंढिराज कहा जाता है। उनकी पत्नियाँ ऋद्धि तथा सिद्धि हैं। कहीं कहीं इनकी पत्नी बुद्धि के होने का वर्णन मिलता है। शिव पार्वती की संतान गणेश हैं। शिव पार्वती के सम्मिलित रूप की कल्पना अर्धनारीश्वर है। शिव उसमें अग्नि स्वरूप तथा पार्वती सोम है। अग्नि में सोम की आहुति डालने का नाम यज्ञ है। अग्नि अंश से कुमार किंवा स्कंद तथा सोम अंश से गणेश अपने पिता-माता शिव-पार्वती के पुत्र कहे गए हैं।

(२) हर—काश्मीर में शैव मत, शैव सिद्धांत आदि का व्यापक प्रचार था। काश्मीरी अपने को शिव भक्त कहते हैं। शिव को विश्वात्मा के रूप में देखते हैं। उनकी एकांत कामना शिव में सायुज्य प्राप्त करने की होती है। यह भावना काश्मीरी पंडितों में रूढ़ हो गई है।

शिव का रुद्र प्राथमिक रूप है। यह प्राकृतिक शक्ति का द्योतक है। शैव दर्शन विकसित होकर सभी देवताओं को अपने में मिलाता कालान्तर में बहुदेववादी धार्मिक सिद्धांत के स्थान पर एकेश्वर-वाद में परिणत हो जाता है। वह बुद्ध के आचार किंवा नैतिक दर्शन का स्थान भी ले लेता है। हलाहल विषपान करने के कारण उनका कंठस्थान नीला पड़ गया है। अतएव उनका एक नाम नीलकंठ हो गया।

शिव का नाम त्रिनेत्र है। उनका तृतीय नेत्र भाल पर दोनों भृकुटि मध्य में है। उनका तृतीय नेत्र खुलता है। सब कुछ भस्म हो जाता है। इसी नेत्र के खुलने के कारण काम भस्म हो गया। उसका नाम अनंग पड़ा। इस त्रिनेत्र रूपक की एक और व्याख्या की जा सकती है। शिव योगी हैं। योग सिद्धांत उनसे आरंभ होता है। यह दृष्टि भ्रू मध्य होती है। यहाँ योनि मुद्रा करने पर साधारण साधक को भी प्रकाश दिखाई पड़ता है। दृष्टि यहाँ स्थिर होने पर ज्ञानचक्षु खुलते हैं। ज्ञानचक्षु के खुलने पर मायाजाल, बंधन तथा सांसारिक व्यवधान ज्ञानाग्नि में भस्म हो जाते हैं। अतएव शिव को त्रिनेत्र उनके योगी होने के कारण कहा गया है।

शिव के शरीर पर विषधर सर्पादि आभूषण हैं। भूतप्रेत अनेक योगिनियाँ आदि उन्हें घेरे रहती हैं। योगी पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता। *उस पर अदृश्य कहीं जानेवाली शक्तियों का प्रभाव* नहीं पड़ता। उसे योगिनियाँ अर्थात् नारी का सुंदर रूप मोह नहीं सकता। पिशाचिनियाँ अर्थात् नारी के विकृत रूप से वह भय भीत नहीं हो सकता। सब स्थानों में वह समरूप रहता है। यह है मुक्तावस्था। यही मुक्ति है। इस अवस्था के प्राप्त करने पर शिव में सायुज्य हो जाता है।

(३) प्रलीन = विशेषण भूयाभोग तथा प्रलीन दोनों शब्दों का प्रयोग शिव तथा कल्पतरु के लिये किया जाता है। प्रलीन यहाँ शिव के साथ सायुज्य के अर्थ में आया है। सालोक्य तथा सायुज्य में अन्तर है। सालोक्य का अर्थ है शिव के लोक की प्राप्ति। सायुज्य माने होता है स्वयं शिव में मिलकर एक हो जाना। बाण के हर्षचरित्र में (१.१) इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

भालं वह्निशिखाङ्कितं दधदधिश्रोत्रं वहन् संभृत-
क्रीडत्कुण्डलिजृम्भितं जलधिजच्छायाऽच्छकण्ठच्छविः ।
वक्षो बिभ्रदहीनकञ्चुकचितं बद्धाङ्गनाऽर्धस्य वो
भागः पुङ्गवलक्ष्मणोऽस्तु यशसे वामोऽथवा दक्षिणः ॥ २ ॥

२. जिनका वामांग नारी (पार्वती का) है। जिनका ललाट केसर तिलक से सुशोभित है। जिनके कानों मे दोलायमान कुण्डल क्रीड़ा करते हैं। जिनका कंठ शंख वर्ण उज्ज्वल है। जिनके वक्षस्थल का दक्षिणांग नर (शिव[1] का) है। जिनके भाल पर वह्निशिखा अंकित है। जिनके कानों के निकट केलित सर्पवृंद मुख खोलते रहते है। जिनके कंठ की छवि विषपान करने के कारण मलिन नहीं होकर कांतिपूर्ण है। जिनका वक्षस्थल शेषनाग कवच से वेष्टित है। वे अर्धनारीश्वर वृषभध्वज, चाहे दक्षिण अथवा वाम अंग हो, आपका कल्याण करें।

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दाऽऽस्कन्दी स सुकवेर्गुणः ।
येन याति यशःकायः स्थैर्यँ स्वस्य परस्य च ॥ ३ ॥

३. सुधा[1]धारा को भी मात करनेवाले सुकवियों का गुण वंदनीय है; जिनके कारण उनकी तथा दूसरों की यशःकाया स्थिर हो जाती है।

प्राक्कथन

कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥ ४ ॥

४. प्रजा[1]पति के समान रम्य निर्माणशील कवियों के अतिरिक्त और किसमें इतनी क्षमता है, जो भूतकाल की बातें प्रत्यक्ष मूर्तिमान आँखों के संमुख उपस्थित कर सके।

पाठभेदः

श्लोक संख्या दो में 'सम्भृत' का पाठभेद 'सम्भृतं' 'जृम्भितं' का 'जृम्भित' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२. (१) शिव—शिव की यहाँ वंदना अर्द्धनारीश्वर के रूप में की गई है। शिव का दक्षिण अंग शिव तथा वाम अंग पार्वती का माना जाता है।

पाठभेद.

श्लोक संख्या ३ में 'सुधा' का 'स्वधा' और 'येन' का 'येना' मिलता है ॥ ३ ॥

पादटिप्पणियाँ

३. (१) सुधा—सुधा अर्थात् अमृत पान करनेवाला ही अमृतत्व प्राप्त करता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति अमृत पान करे तो उसका फल अपने को नहीं मिल सकता। किंतु कवि अपने काव्यामृत एवं लेखनी द्वारा अमर होकर, जिसके विषय में अपनी लेखनी उठाता है, उसको भी उसके यश-वर्णन द्वारा अमर बना देता है। काया अस्थिर है। उसका नाश होता है। परंतु यशःकाया अपने यश के कारण स्थिर हो जाती है। यदि वाल्मीकि कवि नही होते, तो, राम की कथा और उनका यश कैसे आज तक स्थिर रहता ?

पाठभेदः

श्लोक संख्या ४ में 'पतीं' का पाठभेद 'पती' मिलता है ॥ ४ ॥

न पश्येत्सर्वसंवेद्यान् भावान् प्रतिभया यदि ।
तदन्यद्दिव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापकं कवेः ॥ ५ ॥

५. यदि कवि में सर्व संवेद्य भावों के प्रकट करने की प्रतिभा न होती तो और किस प्रकार माना जा सकता था कि उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है।

कथादैर्घ्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते ।
तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत् प्रीतये सताम् ॥ ६ ॥

६. विचित्र घटनावलियों का विस्तृत समावेश कथा विस्तार के कारण इसमे नहीं किया जा सका है, तथापि सत्पुरुषों को यत्र तत्र किंचित् रुचिकर कथानक भी मिलेंगे।

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ ७ ॥

७. वही गुणवान् श्लाघनीय है जिसकी वाणी राग-द्वेषों का बहिष्कार कर एक न्यायमूर्ति के समान भूतकालीन घटनावलियों को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करती है।

पादटिप्पणियाँ

४. (१) प्रजापति—सृष्टि के सर्जक परम पितामह ब्रह्मा के लिये प्रजापति शब्द का प्रयोग किया गया है। सृष्टि के सर्जन काल मे ब्रह्मा ने १० लोककर्ताओं को उत्पन्न किया था। अ० वेद : ३:१०: १३, ४.२५ १; ८:१ १७, ९ १:२४, ३०:७'७, वाजसनेयि संहिता माध्यदिन शाखा : ८:३६, शतपथ ब्राह्मण १.४:२१, तैत्तिरीय ब्राह्मण २:२ १०, मत्स्य पुराण १:१ २५, प्रजापति की परिभाषा करता है— 'विश्वेप्रजाना पतयो येभ्यो लोका विनि सृताः'।

वेद मे प्रजापति शब्द प्रजापालक, सविता, अग्नि, आदि देवों के लिये भी आया है। ऋग्वेद ४.५५:२, ६:५'६, १०:८५.४३, अथर्ववेद; १० १'२१।

प्रजापतियों की संख्या कितनी थी, इस संबंध में मतैक्य नहीं है। कहीं ७, कही ११, कही १३, कही १४ और कहीं २१ संख्या उनकी दी गई है। महाभारत मे २१ प्रजापतियों का उल्लेख मिलता है। यह संख्या सबसे अधिक—ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, ..., कर्दम, क्रोध और विक्रीत, महाभरत में दी गई है। (आदि पर्व १:२९, ३३; ३१.२६ २१; शांति पर्व ३३४:१५, २७)। निम्नलिखित प्रजापतियों के नाम सभी तालिकाओं मे पाए जाते हैं—मरिचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, वशिष्ठ, भृगु, नारद।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ५ में 'दन्यद्दिव्य' का पाठभेद 'दन्यदिव्य' मिलता है॥ ५ ॥

श्लोक संख्या ६ मे 'चित्र्ये' का 'चित्ये', 'तदत्र' का 'तन्मात्र' तथा 'दस्त्येव' का पाठभेद 'दस्त्यत्र' मिलता है।

श्लोक संख्या ७ में 'ष्कृता' का पाठभेद 'ष्कृतः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७. (१) स्थेय—कल्हण ने स्थेय शब्द का प्रयोग न्यायाधीश, न्यायकर्ता के अर्थ मे किया है। उसने अपने को न्याय दृष्टि से एक न्यायकर्ता की तरह परिस्थितियों के बीच रखा है। प्राचीन प्राप्त पुस्तकों, अप्राप्य ग्रंथों के उद्धरणो, सभी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्रियों का निरीक्षण, अवलोकन तथा विवेक तुला पर एक न्यायकर्ता की तरह तौलकर अपने मत तथा विचार को राजतरंगिणी में लिपिबद्ध किया है।

पूर्वैर्बद्धं कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति ।
प्रयोजनमनाकर्ण्य वैमुख्यं नोचितं सताम् ॥ ८ ॥

८. पूर्वकालीन रचनाकारों द्वारा जो कथा वस्तुएं निबद्ध कर दी गई हैं। उनका मैं क्यों पुनर्लेखन कर रहा हूँ, इस प्रयोजन के हेतु को बिना समझे सत्पुरुषों का मुझसे विमुख होना उचित नहीं है।

दृष्टं दृष्टं नृपोदन्तं बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम् ।
अर्वाक्कालभवैर्वार्ता तत्प्रबन्धेषु पूर्यते ॥ ९ ॥

९. जिन लेखको ने अपने समय के [1]नृपों का इतिहास[2] लिपिबद्ध किया है, उनके पश्चात् अर्वाचीन काल के कवि के लिये और क्या ऐसी बातें शेष रह गई हैं, जो अपने नूतन प्रबंध के कारण पूर्ण करेंगे ?

दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन् भूतार्थवर्णने ।
सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः ॥ १० ॥

१०. अतएव इस ग्रन्थ के लिखने की मेरी योजना यह है कि मैं सर्वांगीण पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ। जहां पुरातन इतिहास लेखकों की रचनाएं विशृंखलित हैं।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ८ में 'मुख्यम्' का पाठभेद 'मुख' मिलता है। श्लोक संख्या ९ तथा १० युग्मक है।

श्लोक संख्या ९ में 'बद्ध्वा' का पाठभेद 'बद्धा' ('बुद्ध्वा') तथा 'प्रमय' का 'प्रथम' मिलता है।

श्लोक संख्या १० में 'कारं' का 'कार' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

९. (१) नृप—अमरकोशकार ने राजा के सात नाम दिए हैं—(१) राजन् (२) राज्, (३) पार्थिव, (४) क्ष्माभृत्, (५) नृप, (६) भूप और (७) महीक्षित्। क्षत्रिय वर्ग ८ : १।

नृप का शाब्दिक अर्थ होता है 'मनुष्यों की रक्षा करनेवाला।' राजा तथा नृप के अर्थों में किंचित् भेद है। कल्हण ने यहाँ भूपति, राजा, महीपालादि शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। वैदिक साहित्य में भी यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेदः २:१:१ ७, ४:२०:१, ७:६ ९:१, १०:४४: २–३; अथर्ववेद ५:१८:१–१५; तैत्तिरीय आरण्यक : ६:३:२।

(२) इतिहास प्रयोजन—कल्हण अपने पूर्व लेखको के इतिहास क्रम को जारी रखना चाहता है। उसके इस कथन का अर्थ यह है कि इतिहास लिखने की प्राचीन परंपराएँ रही है। यदि आज भारतीय इतिहास ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो रहे है, तो इसका अर्थ यह न लगाया जाए कि भारत में इतिहास लिखने की परंपरा थी ही नहीं। कल्हण का यह संकेत स्पष्ट है कि वह इतिहास लेखको की परंपरा को जारी रखना चाहता है, ताकि अपने समय तक के राजाओं का इतिहास जहाँ तक पूर्वलेखक लिख चुके है, उनमें जोड़कर टूटी शृंखला के इतिहास के टूटे क्रम को पुनः क्रमबद्ध कर दिया जाय।

राजतरंगिणी नाम कल्हण के उर्वर मस्तिष्क की मौलिक उपज है। उसके पूर्व ग्रंथ नृप तथा राजाओं के नाम से संबंधित थे। उनका नाम ग्रंथ के उद्देश्य का बोधक हो जाता था। परंतु राजतरंगिणी एक ऐसा नाम है जो राजा

और सरिता किंवा तरंगिणी का मेल नही खिलाता। राजा मनुष्य है। तरंगिणी एक नदी है। वह प्रकृति की देन जड पदार्थ है। कल्हण ने राजाओं के चरित्र किंवा इतिहास का नूतन नामकरण राजतरंगिणी नाम से किया है। कल्हण के पश्चात् आनेवाले इतिहास लेखकों ने इस नाम को अपनाया है। काश्मीर के इतिहास को कल्हण के पश्चात् लिखकर इतिहास शृंखला को कायम रखा है" जोनराज, श्रीवर तथा शुक आदि सन् ११४८ से १५५६ ई० तक अर्थात् मुगल काल के प्रारंभ तक कल्हण के पश्चात् राजतरंगिणी लिखकर कल्हण द्वारा आरंभ किए महाप्रयास को आनेवाली चार शताब्दियों तक जारी रखा। इस तरंगिणी की धारा को सूखने नहीं दिया।

तरंगिणी अर्थात् नदी की धारा अविच्छिन्न गति से बहती रहती है। तरंगिणी का पेटा एक सा रहता है। परंतु उसमें सर्वदा नवीन जल आता रहता है। प्रवाह के साथ बहकर गया जल पुन लौटकर नही आता। तथापि धारा की गति तथा जलस्रोत की शृंखला टूटती नही।

तरंगिणी के समान देश मे राजा आते रहते है जाते रहते है परंतु राज्य सिंहासन खाली नहीं रहता। देश मे नदी की धारा की तरह राजपरंपरा अनवरत गति से अविशृंखल क्रम मे चलती रहती है। राज्य के शासन का क्रम टूटता नही। राजा मरने के साथ ही दूसरे व्यक्ति के रूप मे जीता रहता है। इंगलैंड के राजा के जीवन, अभिषेक तथा मृत्यु के समय--- भगवान् राजा की रक्षा करे, राजा चिरंजीवी हो— कहा जाता हैं। अर्थात् देश का राजा नही मरता, बल्कि देश में राजा पदवीधारी व्यक्ति मरता हैं। नदी के जलबिंदुओं के समान राजपरंपरा काल प्रभाव के साथ चलती रहती है। उसमें जल बिन्दुओं के तुल्य नामधारी राजा आते रहते हैं। प्रवाह के साथ वह जाते हैं। उनके पीछे पुनः जल-बिंदु आकर प्रवाह को पूर्ववद् जारी रखते हैं।

राज सिंहासन नदी के पेटा के समान हैं। वहाँ राजा तुल्य जलबिंदु आते हैं और चले जाते है। राज्य सिंहासन नदी के पेटा के समान कभी जलतुल्य राजा से विहीन नही होता। राज्य तथा शासन का क्रम नही टूटता। सिंहासन पर नदी मे आते नवीन जल के समान राजाओं को परंपरा आती रहती हैं। यह प्रवाह कभी सूखता नही। अनादिकाल से चला आया हैं। चला जायगा। हमारा रहना और न रहना महत्त्वहीन है। नदी प्रकृति के उषाकाल से जल बहाती समुद्र में मिलने चली जा रही हैं। राजा सभ्यता के उदय काल से होता आया हैं। काल प्रभाव से होता रहेगा। उसकी यह आने जाने की परंपरा नही टूटेगी। कितनी उदात्त कल्पना थी कवि कल्हण की। उसने इतिहास की एक नवीन व्याख्या की है। यह व्याख्या उतनी ही आधुनिक कही जायगी जितने आधुनिक हम अपने होने का गौरव अनुभव करते हैं।

तरंगिणी में लोल लहरियाँ उठती है। उत्ताल तरंगें उठती हैं। भँवरें चक्कर खाती हैं। उनका निर्मल जल गदले वर्षाकालीन जल में परिणत हो जाता है। कलकल करती लहरियाँ जलप्लावन का रूप धारणकर गरजने लगती हैं। जल दूषित होता हैं। शरद ऋतु आती हैं। जल पुनः निर्मल हो जाता है। शीत ऋतु मे वे ही लहरियाँ जम जाती हैं। तुषारपात के कारण ठंडी श्वेत ओढ़नी ओढकर सब कुछ ठंढा कर देती है। पादपों के पत्ते गिर जाते है। कुसुम-झाडियाँ ठूंठ लगने लगती है। वसंत आता हैं। तुषारपात का अवसान होता है। जमा बर्फ गलने लगता हैं। धारा में गति आती है। पादपों में नवकिसलय निकलते हैं। कुसुम-झाड़ियों मे कलियाँ मन ही मन मुसकुराने लगती हैं। ग्रीष्म काल आते ही जल धारा क्षीण होने लगती हैं। उसकी यह क्षीणता उसकी महत्ता बढ़ा देती

है। वह तृष्ण बुझाने में, पादपो को विकसित करने में, पुष्पों को सुरभि फैलाने में, उन्हें जल से सीचकर उनमें उत्साह उत्पन्न करती है। शाति प्रदान करती है।

पुनः घूमती वर्षा ऋतु आती है। नदी अपना सुहावना रूप बदलकर हुँकार उठती है। किनारों को काटती, वृक्षों को बहाती, जलप्लावन करती, गरजती, मलिन रूप धारण करती, महार्णव से मिलने चल देती है। ये ही बातें राजाओ तथा राज्यों के विषय में कही जा सकती है। वर्षा-कालीन नदी का जलप्लावन राज्यों की क्रांतियां, शरद् ऋतु की निर्मलता राज्यो की स्थिरता, शीत ऋतु की ठंड राज्यो की जड़ता, वसंत ऋतु की सुरभि राज्यों का विकास, ग्रीष्मकालीन जल की उपयोगिता राज्यों के शांतिकाल का द्योतक है। नदी राज्य है। जल राज्य की जनता है। वर्षा-कालीन मटमैला जल राज्य के दोषो को प्रकट करता है। निर्मल धारा राज्य के गुणों को प्रकट करती है। ग्रीष्मकालीन शीतल धारा जनता के दुःख निवारणार्थ श्रेष्ठ कार्यों का रूपक प्रस्तुत करती है। आततायियों के आतंक से सरिता जल जनता को शीतलता प्रदान करता है। शांति देता है। नदी के तट पर गर्मी से व्याकुल व्यक्ति जैसे शीतलता, शाति, सुख का बोध करता है, उसी प्रकार पीडित प्राणी राज्याश्रय प्राप्त करते ही दुःख से पीड़ा से, त्राण पाता है।

नदी वर्षा मे दूषित होती है। काव्यकारो ने वर्षा ऋतु में नदियों का रजस्वला होना कहा है। उस समय दोष के कारण उनका कोई स्पर्श नही करता। ठीक उसी प्रकार राज्य में दोष आ जाने पर कोई राज्य के पास आना नही चाहता। इसी नदी का निर्मल जल पान करने वाला उसमें स्नान तक करना नापसंद करता है।

राजा मे दोष उत्पन्न होने पर राजा अपना तो सर्वनाश करता ही है, दूसरो के भी नाश का साधन बन जाता है। उफनती वर्षा कालीन तरंगिणी की प्रबल वेगधारा अपने ही दोनो तटो को काटती है, अपने ही तटवर्ती फलप्रद छायाप्रद वृक्षो को उखाड़ती बहाती नष्ट करती है; भूमि के पादपों को सीचने के स्थान पर उन्हें गलाती, गिराती; बहाती, अपनी सीमामर्यादा लाँघती देश को जलप्लावित करती है। उसी प्रकार राजा अपनी मर्यादा अपनी सीमा उल्लंघन करने पर क्रांति किंवा विप्लव का रूप उपस्थित करने के कारण नष्ट हो जाता है। कल्हण ने इसी लिये इतिहास, गाथादि शब्दो के स्थान पर तरंगिणी शब्द का प्रयोग राज्यो के इतिहास के लिये किया है।

कल्हण कवि था। कुलीन कवि था। एक राजमन्त्री का पुत्र था। कवि हृदय प्रकृति के अंक में बैठकर सौंदर्य संचय करता है। कवि हृदय प्रकृति से मूक वार्ता करता है। वह प्रकृति की प्रतिभा से अपनी प्रतिभा का भंडार भरता है। कवि सरस, अलंकृत, भाषा में अपना उद्देश्य तथा विचार प्रकट करना चाहता है। उसकी सुप्त चेतना कृति के साथ मिलते ही जागृत हो जाती है। कवि कल्हण इसका अपवाद नहीं था।

कल्हण सफल इतिहास लेखक कवि था। उसने एक सफल कवि की तरह तरंगिणी की उपमा राज्य से दी है। राज्य शृंखला इस तरंगिणी के जल विंदु है। जल की धारा राज का प्रवाह है, जो कभी सूखता नही। तरंगिणी की यह धारा अविच्छिन्न रूप से बहती रही है। राजतरंगिणी की इस धारा को सोलहवीं शताब्दी तक जोनराज, श्रीवर, शुकादि जैसे ऐतिहासिक कवि विद्वानों ने सूखने नहीं दिया है। तरंगिणी आज भी सूखी नहीं है। उसमें जल रहा है। आता रहेगा, चाहे इस जलधारा में देश काल पात्र के अनुसार उसके रूप रंग एवं स्वाद में क्यों न अन्तर पड़ गया हो?

विस्तीर्णाः प्रथमे ग्रन्थाः स्मृत्यै संक्षिपतो वचः ।
सुव्रतस्य प्रबन्धेन च्छिन्ना राजकथाऽऽश्रयाः ॥ ११ ॥

११. पूर्वकालीन इतिहास ग्रन्थ विस्तृत थे। उन्हें स्मरण रखने के लिये सुव्रत ने उनका संक्षिप्त संस्करण कर दिया था। अतएव वे छिन्न[१] अर्थात् लुप्त हो गए।

पादटिप्पणियाँ

११. (१) विच्छिन्न = लुप्त-आज भी विद्यालयों में विस्तृत इतिहास ग्रंथ के स्थान पर नोटों से पढ़ने की प्रथा चल निकली है। विद्यार्थी विशाल पाण्डित्यपूर्ण विस्तृत इतिहास ग्रंथों के चक्कर में नहीं पड़ते। परीक्षाएँ पास करने के लिये नोटों का आश्रय लेते हैं। विस्तृत इतिहास ग्रंथों का केवल संदर्भ के लिये उपयोग किया जाता है। सुव्रत के संक्षिप्त इतिहास का नाम कल्हण नहीं देता है। पूर्व कालीन इतिहास ग्रन्थों का नाम भी कल्हण नहीं देता है। प्रतीत होता है कि उसके समय में मौजूद नहीं थे। प्रतीत होता है कि सुव्रत ने विद्यार्थियों तथा पाठकों की सुविधा के लिये सरल बोधगम्य तथा स्मरण रखने योग्य प्राचीन इतिहासों को संक्षिप्त तथा वर्गीकृत कर दिया था। सुव्रत का यह संक्षिप्त इतिहास प्रचलित तथा ख्यातिप्राप्त हो गया। कल्हण इस बात का स्पष्ट उल्लेख करता है। अतएव पूर्वकालीन विस्तृत इतिहासों की प्रतिलिपि कर उन्हें रखना अथवा उसका पाठ बंद हो गया था। उन दिनों आजकल जैसे प्रकाशन तथा मुद्रण का साधन उपलब्ध नहीं था।

काश्मीर में काफी भोजपत्र के वृक्ष हैं। जोजिला पास के मार्ग में बहुत वृक्ष मैंने देखा। उनसे कुछ भोजपत्र उखाड़कर ले भी आया। भोजपत्र काफी चौड़े और लम्बे होते हैं। परतों पर परतें जमी रहती हैं। उन्हीं पर पुस्तक काली स्याही से लिखी जाती थी। सुव्रत का इतिहास छोटा था। अतएव उसी की प्रतिलिपियाँ पठन पाठन के लिये बनने लगी होंगी। पुरातन इतिहास ग्रंथ केवल संदर्भ, अनुसंधान तथा शोभा के लिये रह गए होंगे। उनका स्वतः अप्रामाणिक तथा अनुपयोग होने के कारण लोप हो जाना जैसा कल्हण स्वयं स्वीकार करता है, कोई आश्चर्य की बात नहीं मालूम होती।

कल्हण के समय सुव्रत द्वारा उल्लिखित इतिहास ग्रंथ उपलब्ध नहीं थे। सुव्रत का इतिहास भी अभी तक कहीं प्राप्त नहीं है, जो कल्हण के समय प्रचलित था। संभव है, कल्हण की राज तरंगिणी अधिक पूर्ण होने के कारण इसका प्रचलन हो गया और सुव्रत का इतिहास उसी प्रकार राजतरंगिणी लिखने के पश्चात् स्वतः लुप्त हो गया, जिस प्रकार सुव्रत के इतिहास के कारण प्राचीन इतिहास ग्रंथ स्वतः लुप्त हो गए थे।

कल्हण के इस उद्धरण से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में इतिहास लिखने की स्वस्थ परंपरा भारत में प्रचलित थी। गवेषणापूर्ण अनुसंधान के आधार पर रचनाकारों ने गाथा अथवा काव्य नहीं, अपितु इतिहासों की रचना की थी। पाश्चात्य विद्वानों की धारणा कि भारत में इतिहास लिखने की परंपरा नहीं थी, आमूल मिथ्या प्रमाणित होती है।

ऐतिहासिक ग्रन्थों का धार्मिक महत्व नहीं होता था। संस्कृत कल्हण के समय में भारत के अनेक स्थानों में राजभाषा थी। संस्कृत में पत्र व्यवहार तथा लिखा पढ़ी होती थी।

इस समय बहुधा धार्मिक ग्रन्थ इसीलिये भारत में पाए जाते हैं कि उन्हें धार्मिक मान लिया गया था। वे धर्म से संबंधित कर दिए गए थे। उन्हें

या प्रथामगमन्नैति साऽपि वाच्यप्रकाशने ।
पाश्वं दुष्टवैदुष्यतीव्रा सुव्रतभारती ॥ १२ ॥

१२. यद्यपि सुव्रत की रचना ने ख्याति प्राप्त कर ली थी तथापि पांडित्याभिमान के कारण उसकी रचना शैली दोषपूर्ण हो गई थी। अस्तु विषय प्रतिपादन में निपुणता प्राप्त नहीं कर सकी।

केनाऽप्यनवधानेन कविकर्मणि सत्यपि ।
अंशोऽपि नास्ति निर्दोषः क्षेमेन्द्रस्य नृपावलौ ॥ १३ ॥

१३. यद्यपि क्षेमेंद्र[1] की नृपावली[2] काव्य रचना है तथापि अनवधानता के कारण उसमे इतनी त्रुटियाँ रह गई हैं कि उसका कोई भी अंश निर्दोष नहीं कहा जा सकता।

मंजो कर रखने की परंपरा चल पड़ी थी। ऐतिहासिक तथा राजाओं के चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थों को, यद्यपि वे संस्कृत में लिखे गए थे, धार्मिक रूप नहीं दिया गया। ऐतिहासिक घटनाएँ तथा राजाओं के चरित्र राजवंशावली किंवा प्रशस्ति मात्र रह गए थे।

पूर्व काल में हुए राजाओं की वंशावली तथा उनका चरित्र उनके हजारों वर्ष पश्चात् होनेवाले राजवंशों किंवा जनता के लिये महत्त्वहीन हो गए थे। उनके पढने लिखने से न तो पुण्यार्जन हो सकता था और न धनार्जन। यह मनोभावना बलवती हो गई होगी। अस्तु रामायण, पुराण तथा महाभारत में वर्णित यत्र तत्र इतिहास की एक आंशिक झलक मिल जाती है। उन्हें धार्मिक ग्रन्थ की मान्यता देकर, उनका धर्म में समावेश कर लिया गया।

मुसलमानी शासन काल में संस्कृत ग्रंथो पर विपत्ति आ गई। उन्हें फूँकने, उन्हें नष्ट करने का धार्मिक उन्माद उत्पन्न हो गया। उन्हें पढ़ना कुफ्र समझा जाता था। कितने ही ग्रंथ लोगों ने स्वतः भय से फूँक दिए वा उन्हें जल समाधि दे दी। काश्मीर में यह बहुत बड़े पैमाने पर हुआ। इस काल में जिन्होंने अपना धर्म नहीं त्यागा, उन्हें धार्मिक ग्रंथों की रक्षा की विशेष चिंता हुई। एतदर्थ जो कुछ इतिहास ग्रन्थ शेष रह गये थे वे भी अनायास समाप्त हो गये।

मध्येशिया के लोग पूर्व मुस्लिम काल में बौद्ध या हिन्दू धर्मानुयायी थे। रूसी पुरातत्त्व विभाग के अनुसंधानों तथा खनन कार्यों से इस पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। वहाँ मुसलमान पहुँचे। मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य किया गया। बौद्ध भिक्षुओं ने ग्रन्थों को गुफाओं में खोदकर गाड़ दिया। वे ही प्राप्त होने वाले ग्रन्थ विश्व इतिहास की इस समय सामग्री बन रहे हैं। यही काम भारत में मुस्लिम शासन के सत्तारूढ़ होने के पश्चात् हुआ। मिस्र, ईरान तथा एशिया माइनर के देशों में प्राचीन ग्रन्थों का सर्वथा लोप हो गया। वहाँ के इतिहास को पिरामिडों, ध्वंसावशेषों और प्राप्त होने वाले बिखरे शिलालेखों को पढ़कर जाना जा रहा है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३ में 'कर्मणि' का पाठभेद 'कर्माणि' मिलता है।

पाद टिप्पणियाँ :

१३ (१) क्षेमेंद्र—कवि क्षेमेंद्र का एक नाम व्यासदास भी है। कवि क्षेमेंद्र काश्मीर के राजा अनन्त देव (सन् १०२८-१०६३ ई०) और

दृग्गोचरं पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाऽऽश्रयाः ।
मम त्वेकादश गता मतं नीलमुनेरपि ॥ १४ ॥

१४. मैंने अपने पूर्वगामी विद्वानों द्वारा रचित राजकथा विषयक ग्यारह ग्रन्थों तथा नील मुनि[१] के मत का निरीक्षण किया है।

उसके पुत्र राजा कलश (सन् १०६३–१०८९ ई०) का समकालीन था। क्षेमेंद्र संस्कृत साहित्य का ख्यातिप्राप्त कवि हुआ है। उसकी पुस्तक 'नृपावली' का उल्लेख कल्हण करता है। अभी तक वह प्राप्त नहीं हो सकी है।

क्षेमेन्द्र प्रसिद्ध संस्कृत परिहास कथा लेखक है। प्रकाशेन्द्र इनके पिता का नाम था। पितामह का नाम निम्नाशय था। प्रपितामह का नाम सिन्धु था। इसके पूर्व पुरुष काश्मीर में अमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। उसने तंत्र तथा आलोचक विद्वान् अभिनवगुप्त से साहित्य तथा शास्त्रों का अध्ययन किया था। इन्होंने 'समय मातृका' की रचना सन् १०५० ई० में की थी। 'दशावतारचरित' की रचना सन् १०६६ ई० में की थी। रामायण, महाभारत तथा बृहत्कथा का संक्षेप में रोचक वर्णन, क्रम से रामायण मंजरी, भारत मंजरी तथा बृहत्कथा मंजरी में किया है। 'बोधिसत्वावदान कल्पलता' में पारमिता सूचक आख्यानों का वर्णन है। वह पद्य में लिखी गयी है। 'औचित्य विचार चर्चा' में औचित्य को काव्य का मूल भूत तत्त्व स्वीकार किया है।

'नर्ममाला' तथा 'देशोपदेश' परिहास कथा की संस्कृत में अनुपम रचना है। उसमें उन्होंने तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण करते हुए उसकी मीठी चोट की है। उनकी रचना का उद्देश्य विशुद्ध चरित्र चित्रण के साथ-साथ चरित्र निर्माण भी है। इन्होंने कलाविलास, चतुर्वर्ग संग्रह, चारुचर्या, समय मातृकादि, लघु काव्य की रचना की है। भाषा के सुबोध सरस विन्यास में क्षेमेन्द्र ने सफलता प्राप्त की है। भावों की उदात्त व्यंजना में वह सिद्ध हस्त है। पाण्डित्य का अनावश्यक प्रदर्शन तथा शब्द के चमत्कारों से दूर रहने का प्रयास किया है। लोक प्रकाश में क्षेमेन्द्र स्वयं अपना नाम 'व्यास दास' देता है। अपनी वंशावली देता है। उसके अनुसार नरेन्द्र के पुत्र भोगीन्द्र थे। भोगीन्द्र के पुत्र सिन्धु थे। सिन्धु के पुत्र प्रकाशेन्द्र थे। प्रकाशेन्द्र के पुत्र क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्र का पुत्र सोमेन्द्र था।

(२) नृपावली:—कल्हण ११ ग्रन्थों का नामोल्लेख यहाँ नहीं करता। उसने क्षेमेन्द्र की 'नृपावली' तथा हेलाराज की 'पार्थिवावली' का नाम स्पष्ट रूप से दिया है। यह दोनों ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं। सुव्रत, पद्ममिहिर और श्रीच्छविल्लाकर के ग्रन्थों का नाम कल्हण यहाँ नहीं देता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४ में 'दृग्गोचरं पूर्व' का पाठभेद 'दृष्टश्च पूर्व' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४ (१) नीलमुनि—नीलमत पुराण नील मुनि की रचना है। काश्मीर मंडल का यह एक प्रकार से आद्य ग्रन्थ है। काश्मीर किस प्रकार किसी समय जलपूर्ण सतीसर था, बारहमूला के पास पर्वत भेदकर, किस प्रकार पानी निकाला गया, काश्मीर की महाभारत काल में क्या अवस्था थी, काश्मीर की परम्परा, पूजा, पर्व, तीर्थ, त्योहार, धर्म, रीति और रिवाज पर, यथेष्ट प्रकाश नीलमत पुराण डालता है। इसका विस्तृत वर्णन यथास्थान किया गया है।

नीलमत पुराण और राजतरंगिणी

राजतरंगिणी का श्लोक संख्या १६ में वर्णित प्रथम ४ राजाओं तथा श्लोक संख्या ५०-८२ से नीलमत के श्लोकों को मिलाया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि कल्हण ने उन्हें नीलमत पुराण

से लिया है। निष्कर्ष निकलता है। कल्हण ने, जैसा वह स्वयं लिखता है, नीलमत पुराण का गंभीर अध्ययन किया था।

कल्हण ने नील का पुनः उल्लेख प्रथम तरंग की श्लोक संख्या २८,१८२ में, नील कुड का १८३, १८९ में, कर्मकाण्ड, पंचम तरंग संख्या ९१ में नीलजा (वितस्ता) नदी, नीलभू. सरिता अर्थात् वितस्ता या झेलम नदी का नीलकुण्ड में पूजा का तरंग ८:३३५, में उल्लेख किया है।

नीलमत पुराण कथन का उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी के तरंग १:१४ में, लुप्त राजाओं का उल्लेख १:३६ में; नीलमत पुराण के श्लोक का उद्धरण १:७२ में, किया है। ज्येष्ठेश की कथा १:११३ में, सोदर तीर्थ का वर्णन उद्धरण १:१२३ में, बौद्धों द्वारा नील पुराण के कर्मों का बन्द करना १:१७८ में, पिशाचो की कथा १:१८४ में, काश्मीर के तीर्थों तथा सतीसर की कथा आदि नीलमत पुराण से लिया है।

नीलमत पुराण उपलब्ध है। कल्हण ने नीलमत पुराण, नील मुनि तथा नील सम्बन्धी जिन बातों का उल्लेख राजतरंगिणी में किया है, वे सब नीलमतपुराण में मिलते है। नीलमत पुराण के श्लोकों का उद्धरण राजतरंगिणी में मिलता है। कल्हण ने इसे स्वयं राजतरंगिणी में स्वीकार किया है। उन्हे उसने नीलमत पुराण से लिया है। कल्हण नीलमत पुराण की सत्यता तथा प्राचीनता सिद्ध करता है। प्राप्य नीलमत पुराण कल्हण की मान्यता भी सिद्ध करता है। साथ ही साथ नीलमत पुराण से जो लेना स्वीकार करता है, वे नीलमत पुराण में मिलते है।

नीलमत पुराण का अध्ययन करने पर मेरी प्रथम प्रतिक्रिया यह हुई कि नीलमत पुराण वास्तव में काश्मीर का भूगोल है। काश्मीर के पर्वतों, नदियों, जलाशयों, तीर्थो, देवस्थानों, उपत्यकाओं, झरनों आदि, का विशद वर्णन पुराण करता है। उसमें वर्णित स्थान, नदियाँ, स्रोतस्विनियाँ, पर्वतशिखर, पर्वतमालाएँ, जलाशय, तीर्थ तथा देवस्थान आज भी अपने मूल अपभ्रंश किंवा परिवर्तित नामों के साथ जहाँ जिस स्थान पर उनका होना कहा गया है, मिलते है। उनकी दिशा, उनके समीप के वर्णित प्राकृतिक भौगोलिक स्थान, यथास्थान मिलते है।

मैंने स्वयं भ्रमण कर स्थानों का पता लगाया है। बहुत से स्थान लोप हो गये है। लोग भूल गये है। कुछ को मैंने इन्हे नीलमत के आधार पर खोजा है। उन्हे यथास्थान पाया है। यद्यपि लंबे काल और मुस्लिम प्रभाव के कारण पुराने नामो तथा ख्याति को लोग भूल गये है। नीलमत पुराण के रचनाकार ने काश्मीर मंडल का भ्रमण कर आँखो देखा वर्णन किया है।

दूसरी बात और उल्लेखनीय है। नीलमत पुराण काश्मीर की प्राचीन परम्परा, इतिहास, धर्म, आचार, विचार, मतमतांतर, कर्मकाड, सामाजिक जीवन, पूजा-पाठ, रहन-सहन, का सजीव चित्रण करता है। निस्संदेह तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्र आँखो के सम्मुख आ जाता है। नीलमत पुराण में वर्णित स्थानों, उपस्थानों को, मूल श्लोकों से मिलाकर अध्ययन करने से वास्तविकता पर प्रकाश पड़ता है। हुएन सांग और नीलमत पुराण पर द्रष्टव्य है परिशिष्ट।

चीनी पर्यटक हुएनसांग ने काश्मीर की यात्रा की थी। कल्हण से शताब्दियों पूर्व आया था। उसने नीलमत द्वारा वर्णित काश्मीर के इतिहास तथा कथाओं का उल्लेख किया है। निस्संदेह तत्कालीन काश्मीर में नीलमत पुराण के प्रचलित होने की पुष्टि करता है। कल्हण के वर्णन की सत्यता सिद्ध करता है। कल्हण ने यथेष्ट ऐतिहासिक सामग्री राजतरंगिणी की रचना में नीलमत पुराण से ली है।

कल्हण द्वारा उल्लिखित कम से कम दो बातें हुएनसांग के पर्यटन वर्णन में मिलती है। हुएनसांग ने उन्हे तत्कालीन प्रचलित संस्कृत ग्रन्थों से लिया

स्वर्गीय प्रोफेसर श्री ब्हूलर को इस प्रकार के शिलालेख सुन मुह (सोन मुख) तथा बारहमुला (वाराह क्षेत्र) में मिले थे। उसी प्रकार के शिलालेख स्वर्गीय श्री स्तास्तीन को विजबोर (विजयेश्वर) बावन (मार्तंड) तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त हुए थे। कल्हण के समय मंदिर, विहार, मठ, देवस्थानादि अपने पूर्व रूप में मौजूद थे, उसे इस स्रोत से यथेष्ट सामग्री इतिहास रचना और विशृंखलित कड़ियों को जोड़ने के लिये मिली थी।

मैंने काश्मीर के खंडित मन्दिरों, देवालयों, विहारों आदि में खूब भ्रमण किया है। शिलालेखों की खोज की। कुछ मिल नहीं सका। संभव है। वे कहीं भूमि में गड़े पड़े होंगे।

(२) पूर्व भूभृत वस्तु—राजा अपने शासन काल में व्यक्ति, मंदिरों, सार्वजनिक स्थानों तथा दान पत्रों के लिये शिलालेखों, ताम्रपत्रों पर अपना नाम, राज्य काल, दान लेने वाले का नाम-पता, दान का प्रयोजन, मंदिर किंवा सार्वजनिक निर्माण-शाला की स्थापना का समय, उद्घाटन, जीर्णोद्धार आदि खुदवाता था। नाम, समय, स्थान, दान का प्रयोजन, कभी-कभी व्यय द्रव्य की संख्या, देवस्थान, मन्दिर एवं सार्वजनिक स्थानों के नाम, उनकी व्यवस्था, जागीर, भूमिदान किंवा अग्रहार दान, आदि लिखवाता था। कभी-कभी अपनी वंशावली के लेख के साथ, शिला, ताम्र किंवा किसी धातु-पत्र, लकड़ी, अलंकृत पट्ट अथवा पट्टिका, गृह-कार्य योग्य वस्तुओं, जैसे बरतन, रजत पात्रादि, पर नामादि खुदवा कर सम्मानार्थ देता था। इसी प्रकार विशिष्ट नागरिक, सामंत, अमात्य तथा अन्य नागरिक अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने नाम, ग्राम, पद के साथ लेख खुदवाते थे, कल्हण इन्हें पूर्व भूभृत वस्तु कहता है। राजतरंगिणी की लेखन-सामग्री में उसने इन लेखों का संग्रह किया था। जिनके कारण राजाओं, उनके सामंतों, तत्कालीन लोगों के काल, स्थान, राज काल, और दान की गई वस्तुओं को देखकर, उस समय की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति का पता लगाया जा सकता था। उस समय की कलाकृतियों को देखकर, तत्कालीन कला का प्रकार तथा उसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाकर, कल्हण ने इस ग्रन्थ की रचना की है।

(३) प्रशस्तिपट्ट—मन्दिरों तथा सार्वजनिक स्थानों में प्रशस्तिपट्ट, राजाओं, विशिष्ट व्यक्तियों तथा स्थानों की स्तुति में लगाया जाता था। तीर्थ, देवस्थान, राजादि के गौरव अथवा सम्मान में काव्य-मय पद्य में स्तुति उत्कीर्ण की जाती थी।

प्रशस्ति का मूल स्रोत वैदिक साहित्य है। स्तोत्रों द्वारा प्रशस्ति गीत तथा काव्य दोनों निकले हैं। स्तोत्रों में देवताओं की प्रशस्ति किंवा स्तुति की जाती है। प्रशस्ति गान से गौरव गान निकला है। पूर्व काल में केवल देवताओं तक यह सीमित था। तत्पश्चात् लौकिक पुरुष विशेष की प्रशस्ति किंवा कीर्ति लिखी और गायी जाने लगी। पहले उन लौकिक पुरुष विशेष तथा मानवों की प्रशस्ति गायी तथा लिखी जाती थी जिन्होंने देवत्व प्राप्त कर लिया था। इस श्रेणी में साधु, महात्मा, योगी एवं आध्यात्मिक पुरुष थे। अनन्तर राजाओं आदि के प्रशस्ति गीत लिखे और गाये जाने लगे। कालान्तर में राज कवि होने लगे। वे अपने स्वामी की प्रशंसा में प्रशस्ति गीत और काव्य की रचना करने लगे। प्रशस्ति काव्य के कवि राजाश्रित होते थे। आज-कल अभिनन्दन ग्रन्थ देने की प्रथा चल निकली है। यह किसी को भी समर्पण किया जा सकता था। उसमें व्यक्ति विशेष की प्रशस्ति होती है।

पट्ट का अर्थ महीन वस्त्र होता है। लिखने की पटिया, धातु पत्र, चर्म-पत्र, भोज-पत्र की होती थी। जिस पर जन्मपत्री के समान किसी राजा अथवा किसी की वंशावली, वंश के कार्यों का उल्लेख, वंश में उत्पन्न हुए लोगों के जन्म तथा मृत्यु की तिथि आदि लिखी जाती थी। पुरोहित, चारण, भाट, बंदी,

दृष्टैश्च पूर्वभूभर्तृ प्रतिष्ठावस्तुशासनैः ।
प्रशस्तिपट्टैः शास्त्रैश्च शान्तोऽशेषभ्रमक्लमः ॥ १५ ॥

१५ पूर्व काल के भूपतियों द्वारा मंदिरों के प्रतिष्ठाकालीन एवं दान संबंधी प्रतिष्ठा[1] तथा वस्तु[2] प्रशस्तिपट्टों[3] और शास्त्रों[4] के अवलोकन द्वारा जो कुछ भ्रम मुझमे शेष रह गया था उसकी भी शांति हो गई है।

था। प्रथम यह कि पुरा काल में काश्मीर विशाल सरोवर अर्थात् सतीसर था। जल बह जाने के कारण रमणीय भूमिमय उपत्यका बन गयी थी। नाग जाति यहाँ की संरक्षक थी। जल बह जाने पर सरोवर काश्मीर राज्य के रूप में परिणत हो गया। उस समय भी नाग जाति वहाँ पर थी।

ह्वेनसांग मिहिर कुल का वर्णन करता है। वह काश्मीर का राजा था। घोर अत्याचारी था। बौद्ध धर्मानुयायियों का शत्रु था। उसे लोगों के हत्या की कुख्याति प्राप्त थी। वह बाल अबला वृद्ध सबको ताड़ित करता था।

राजतरंगिणी में कल्हण ने पहली घटना का वर्णन १.०४-३१ में किया। दूसरी घटना-मिहिर कुल के शासन और उसके नृशंस प्रवृत्तियों-का वर्णन (तरंग १ के २८९-३२५) मिलता है। मिहिर कुल के राज्यकाल के संदर्भ में इस विषय पर और प्रकाश डाला गया है।

काश्मीर में मुसलिम शासन हो जाने पर भी नीलमत पुराण की मान्यता थी। मुसलिम बादशाह नीलमत पुराण का आदर करते थे। नीलमत पुराण की प्राचीनता तथा उसके अस्तित्व का समर्थन श्रीजोन राज द्वितीय राजतरंगिणी में करते हैं। श्री जोनराज के समय में नीलमत पुराण का पाठ होता था। काश्मीर के प्रसिद्ध बादशाह बडशाह जैनुल आबदीन (सन् १४२०-१४७० ई०) पण्डितों से नीलमत पुराण सुनता था। उसके आधार पर उसने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन जगत् में किया था। (दन ९१)

पाद टिप्पणियाँ :

१५. (१) प्रतिष्ठाशासन—इस शब्द का प्रयोग कल्हण ने उन शिलालेखों के लिये किया है जो मंदिरों, मठों, विहारों, देवस्थानों, स्मारकों, प्रतिमाओं के पीठस्थानों, सिंहासनों, राजप्रासादों, भवनों पर, स्मृति तथा परिचय निमित्त उत्कीर्ण किये जाते थे। मन्दिरों तथा मूर्तियों के प्रतिष्ठा के समय शिला लेखादि लगाने की प्रथा आज भी प्रचलित है।

राजाओं के राज्याभिषेक के समय शासन प्रसारित किये जाते थे, जैसे—बंदियों की कारागार से मुक्ति, करों की छूट, बलि के लिये पशुहत्या पर प्रतिबन्ध। राजा अपने शासन काल में किस नीति का अवलंबन करेगा, कितने दोषपूर्ण राजनियम अप्रचलित किये जायेंगे, कौन से सुधार एवं संशोधन प्रचलित राज नियमों में किये जायेंगे आदि। राजाओं के राज्याभिषेक के अवसर पर कुछ प्रतिष्ठा शासन प्रसारित किये जाते थे। कितने दोषपूर्ण राजनियम अप्रचलित किये जायेंगे, कितने प्रचलित राज नियमों में संशोधन, परिवर्धन, किये जायेंगे, इसकी तालिका प्रतिष्ठा शासन में होती थी। राज्याभिषेक उत्सव के उपलक्ष में मंदिरों, व्यक्तियों, विहारों, मठों को क्या दान दिया जायेगा, इत्यादि बातें प्रतिष्ठा शासन में आती थी। यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

इस प्रकार की सामग्रियाँ काश्मीर में आज भी खण्डित बिखरी पड़ी है। मुस्लिम शासन काल में सभी मंदिर, देवस्थान, आदि तोड़ दिये गये थे। उनके पत्थर मस्जिदों, मजारों, जियारतों तथा मकानों में लग गये हैं। कल्हण के पूर्व हुई, रानी दिद्दा का एक शिलालेख मिला है। वह लाहौर के संग्रहालय में सुरक्षित है।

स्वर्गीय प्रोफेसर श्री ब्हूलर को इस प्रकार के शिलालेख सुन मुह (सोन मुष) तथा बारहमूला (वाराह क्षेत्र) में मिले थे। उसी प्रकार के शिलालेख स्वर्गीय श्री स्तास्तीन को विजब्रोर (विजयेश्वर) वावन (मार्तंड) तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त हुए थे। कल्हण के समय मंदिर, विहार, मठ, देवस्थानादि अपने पूर्व रूप में मौजूद थे, उसे इस स्रोत से यथेष्ट सामग्री इतिहास रचना और विशृंखलित कड़ियों को जोड़ने के लिये मिली थी।

मैंने काश्मीर के खंडित मन्दिरों, देवालयों, विहारों आदि में खूब भ्रमण किया है। शिलालेखों की खोज की। कुछ मिल नही सका। संभव है। वे कहीं भूमि में गड़े पड़े होंगे।

(२) पूर्व भूभृत वस्तु—राजा अपने शासन काल में व्यक्ति, मंदिरों, सार्वजनिक स्थानों तथा दान पत्रों के लिये शिलालेखों, ताम्रपत्रों पर अपना नाम, राज्य काल, दान लेने वाले का नाम-पता, दान का प्रयोजन, मंदिर किंवा सार्वजनिक निर्माण-शाला की स्थापना का समय, उद्घाटन, जीर्णोद्धार आदि खुदवाता था। नाम, समय, स्थान, दान का प्रयोजन, कभी-कभी व्यय द्रव्य की संख्या, देवस्थान, मन्दिर एवं सार्वजनिक स्थानों के नाम, उनकी व्यवस्था, जागीर, भूमिदान किंवा अग्रहार दान, आदि लिखवाता था। कभी-कभी अपनी वंशावली के लेख के साथ, शिला, ताम्र किंवा किसी धातु-पत्र, लकड़ी, अलंकृत पट्ट अथवा पट्टिका, गृह-कार्य योग्य वस्तुओं, जैसे बरतन, रजत पात्रादि, पर नामादि खुदवा कर सम्मानार्थ देता था। इसी प्रकार विशिष्ट नागरिक, सामंत, अमात्य तथा अन्य नागरिक अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने नाम, ग्राम, पद के साथ लेख खुदवाते थे, कल्हण इन्हें पूर्व भूभृत वस्तु कहता है। राजतरंगिणी की लेखन-सामग्री में उसने इन लेखों का संग्रह किया था। जिनके कारण राजाओं, उनके सामंतों, तत्कालीन लोगों के काल, स्थान, राज काल, और दान की गई वस्तुओं को देखकर, उस समय की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति का पता लगाया जा सकता था। उस समय की कलाकृतियों को देखकर, तत्कालीन कला का प्रकार तथा उसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाकर, कल्हण ने इस ग्रन्थ की रचना की है।

(३) प्रशस्तिपट्ट—मन्दिरों तथा सार्वजनिक स्थानों में प्रशस्तिपट्ट, राजाओं, विशिष्ट व्यक्तियों तथा स्थानों की स्तुति में लगाया जाता था। तीर्थ, देवस्थान, राजादि के गौरव अथवा सम्मान में काव्यमय पद्य में स्तुति उत्कीर्ण की जाती थी।

प्रशस्ति का मूल स्रोत वैदिक साहित्य है। स्तोत्रों द्वारा प्रशस्ति गीत तथा काव्य दोनों निकले हैं। स्तोत्रों में देवताओं की प्रशस्ति किंवा स्तुति की जाती है। प्रशस्ति गान से गौरव गीत निकला है। पूर्व काल में केवल देवताओं तक यह सीमित था। तत्पश्चात् लौकिक पुरुष विशेष की प्रशस्ति किंवा कीर्ति लिखी और गायी जाने लगी। पहले उन लौकिक पुरुष विशेष तथा मानवों की प्रशस्ति गायी तथा लिखी जाती थी जिन्होंने देवत्व प्राप्त कर लिया था। इस श्रेणी में साधु, महात्मा, योगी एवं आध्यात्मिक पुरुष थे। अनन्तर राजाओं आदि के प्रशस्ति गीत लिखे और गाये जाने लगे। कालान्तर में राज कवि होने लगे। वे अपने स्वामी की प्रशंसा में प्रशस्ति गीत और काव्य की रचना करने लगे। प्रशस्ति काव्य के कवि राजाश्रित होते थे। आजकल अभिनन्दन ग्रन्थ देने की प्रथा चल निकली है। यह किसी को भी समर्पण किया जा सकता था। उसमें व्यक्ति विशेष की प्रशस्ति होती है।

पट्ट का अर्थ महीन वस्त्र होता है। लिखने की पटिया, धातु पत्र, चर्म-पत्र, भोज-पत्र को होती थी। जिस पर जन्मपत्री के समान किसी राजा अथवा किसी की वंशावली, वंश के कार्यों का उल्लेख, वंश में उत्पन्न हुए लोगों के जन्म तथा मृत्यु की तिथि आदि लिखी जाती थी। पुरोहित, चारण, भाट, बंदी,

सूत के पास पट्टा, मुट्ठे अर्थात् तालिका होती थी। राजवंशो के पट्ट अलंकृत रखे जाते थे। विशेष पर्वो पर उन्हें निकाला जाता था। उनका पाठ होता था।

मिथिला मे मैथिल ब्राह्मणो के पास उनके यजमानो की पूरी वंशावली रहती हैं। ब्राह्मण लोग विवाहादि उसे देखकर ठीक करते हैं। पट्टो के आधार पर वे पता लगा लेते हैं। किस वंश मे कितने पुत्र तथा कन्याएँ हैं। उनका संख्या बैठाकर वे विवाह निश्चय करते है। ग्रामो में आज भी वह प्रथा प्रचलित है। पाश्चात्य देशो जैसा प्रेम-विवाह भारत मे नगण्य था। आजकल कुछ प्रचलित हो रहा है।

सूत, बंदी, भाट, चारण, उत्सव पर उन्हे गाते थे। कुटुंबो में प्रशस्तिपाठ करने की रीति थी। राज्याभिषेक, युद्ध, विजय, के समय उनके पुण्य कार्यो, उनकी वीरता और विशिष्ट कार्यो का गुणगान किया जाता था। इस प्रकार के कवि राजस्थान, गुजरात के राजवशो से अब भी सबन्धित है। उन्हें राजकवि कहा जाता है। उन्हे चारण अथवा वही कहते है। भारत की रियासतो, तालुकेदारो तथा बड़े जमीदारो के यहाँ भी कवि रहते थे। वे कविता-पाठ करने के साथ ही साथ वंश का इतिहास कविता मे बना दिया करते थे। मंदिरो तथा कुटुम्बों में चैत्र सुदी प्रतिपदा को इनका पाठ पढ़ा जाता था। कुछ कुटुम्बो में विवाह एवं श्राद्ध के अवसर पर पढा जाता था।

मैं भारतीय नव परिवहन मडल के अध्यक्ष की हैसियत से गुजरात के बंदरगाहो को देखने गई सन् १९६५ ई० में गया था। बड़ौदा संग्रहालय में शिलालेखों पर उत्कीर्ण मुझे प्रशस्ति मिली। देशी राज्यों में भिन्न भिन्न रूप से प्रशस्तियाँ लिखी जाती थी। किन्तु उनका विषय वस्तु प्रायः एक ही रहा है।

विजय दशमी, शस्त्रपूजा तथा यात्रा के समय संमेलनो अथवा जलूस के आगे आगे उच्च स्वर में चारण, भाट, बंदो, सूत गाते थे। आज भी बारात में आगे आगे वे गाते चलते हैं। बारात में वर और कन्या पक्षों के प्रशस्तिवाचक अपने अपने वंशगौरव की कथा सुनाते हैं। यह प्रथा भारत में प्रायः लोप हो रही है।

(४) शास्त्र—कल्हण ने यहाँ पर शास्त्र शब्द का प्रयोग संस्कृत में लिखे ग्रन्थों के लिए किया है। स्वर्गीय प्रोफेसर श्री ब्लूलर कल्हण के 'शास्त्र' शब्द का अर्थ धर्मशास्त्र एवं संस्कृत में लिखे गाथा, विधि पुस्तको से केवल नही लगाते। उनका मत है। शास्त्र शब्द के अन्दर संस्कृत के उन सभी ग्रन्थों का समावेश हो जाता है, जिनमें लेखक ग्रन्थ की समाप्ति अर्थात् अन्त में अपना नाम, रचना काल, लिखकर ग्रन्थ की इति लिखता है।

हुएनसाग ने अशोक और कनिष्क की बौद्ध परिषदों का उल्लेख करते समय अभिधर्म शास्त्र शब्द का प्रयोग किया है। इसमें निबन्ध तथा सिद्धान्त ग्रन्थो का समावेश हो जाता है। कल्हण ने शास्त्र शब्द का व्यापक अर्थ लगाया है। आज भी संस्कृत में लिखे ग्रन्थो को जनता शास्त्र समझती है। प्रसिद्ध व्यक्तियों के संस्मरणो, जीवनियों, ऐतिहासिक चरित्रचित्रणो, निबंधो, सिद्धान्त ग्रन्थों, जिनमें कुछ भी ऐतिहासिक सामग्री कडी जोड़ने के लिए मिल सकती थी, कल्हण ने शास्त्र स्रोत माना है।

प्राचीन समय में ग्रन्थ लिखने की एक प्रचलित शैली थी। ग्रन्थ के अन्त, प्रत्येक सर्ग के अन्त, ग्रंथ के आरम्भ में पुस्तक का नाम, अध्याय प्रसग, लेखक का नाम, किस राजा के काल में और किस समय रचना की गयी है, इसका उल्लेख किया जाता था। कल्हण ने राजाओं का काल निर्णय करने में इस अमूल्य स्रोत का उपयोग किया था। इससे प्रकट होता है। कल्हण ने राजतरंगिणी लिखने के लिए

द्वापञ्चाशतमाम्नायभ्रंशाद्यान् नाऽस्मरन् नृपान्।
तेभ्यो नीलमताद् दृष्टं गोनन्दादिचतुष्टयम् ॥ १६ ॥

१६ पूर्व रचनाकारों को बावन राजाओं के इतिवृत्त का प्रमाणों के अभाव मे अज्ञान था। उनमें से गोनंदादि चार राजाओं[1] का वर्णन नीलमत पुराण से लिया गया है।

अपनी पैनी दृष्टि के साथ ही साथ, परिश्रम से सामग्री एकत्रित कर, इस ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना में हाथ लगाया था।

कीर्ति स्तंभ—विजय स्तंभ—कल्हण ने काश्मीर में कीर्ति-स्तंभ का उल्लेख नहीं किया है। मन्दिर, धर्मशाला, विहार, तड़ाग, वापी, चैत्य, मठादि के शिलालेखों में राजाओं तथा महान् व्यक्तियों किंवा निर्माणकर्ताओं की कीर्ति के पद लिखे जाते हैं।

राजा लोग विजय, राज्यारोहण, यज्ञ, किसी विशेष घटना के स्मरणार्थ कीर्ति-स्तंभों का निर्माण कराते है। मिस्र, बेबीलोन, असीरिया तथा ईरान के प्राचीन राजाओं ने अपनी कीर्तियो को स्तंभों पर खुदवाया था। भारत के गुप्त सम्राटों ने यह प्रथा चलाई थी। अशोक के स्तंभ कीर्ति स्तंभ न होकर प्रचारार्थ धर्म स्तंभ कहे जायेंगे। चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि राजाओं ने इस प्रकार के स्तंभ का निर्माण कराया था। मन्दसोर तथा महरौली (दिल्ली) के कीर्ति स्तंभ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कल्हण ने संभव है, इस प्रकार के अभिलेखों को, प्रशस्ति-पट्ट वर्ग में रखा हो। कीर्ति और विजय स्तम्भ में अन्तर है। विजय स्तम्भ किसी विजय के उपलक्ष्य म लगाया जाता था। प्रत्येक विजय स्तम्भ कीर्ति स्तम्भ होता है। परन्तु प्रत्येक कीर्ति स्तम्भ का विजय स्तम्भ होना सम्भव नही है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६ में 'गोनन्दादि' का पाठभेद 'गोनर्दादि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६ (१) चार राजा—(१) गोनंद, (२) दामोदर, (३) यशोवती, तथा (४) गोनंद द्वितीय है। नीलमत ६-९।

इस तरंग की श्लोक-संख्या १६ तथा ४५ में कल्हण ने स्पष्ट कहा है। पूर्ववर्ती ५२ राजाओं के इतिहास का किसी समय अस्तित्व था। काश्मीर में वे ग्रंथ थे। परन्तु उनका लोप हो गया है। कल्हण ने उन्हें खोजने का यथाशक्ति प्रयास किया।

काश्मीर का इतिहास क्रमबद्ध तिथियों तथा वर्षों तक में वर्णित किया गया है। कल्हण से सहस्रों वर्ष पूर्व लुप्त राजाओं का काल आता है। सामग्री अप्राप्य देखकर कल्हण ने कारण भी उपस्थित किया है। उन ग्रन्थों के लोप होने का क्या कारण था? उनकी जब कोई उपयोगिता नही रह गई तो उन्हें कौन पढ़ेगा? अफगानिस्तान तथा भारत के पश्चिम उत्तर सीमांत में वेदों तथा संस्कृत ग्रन्थों की रचना हुई थी। वहाँ के लोग मुसलमान हो गए। अतएव पुरातन वैदिक साहित्य तथा संस्कृत ग्रन्थो की उपयोगिता नष्ट हो गई। वे लुप्त हो गए, उनके स्थान पर अरबी, फारसी तथा नवीन लिपी आई। इसका अर्थ यह नहीं है। आज से १५ सौ वर्ष पूर्व अफगानिस्तान आदि में संस्कृत तथा वैदिक साहित्य का अस्तित्व नही था। यह प्रकृति का गुण है। जिन वस्तुओं की उपयोगिता नष्ट हो जाती है उन्हें त्याग दिया जाता है। शरीर भी जब क्षीण, रोग-ग्रस्त और जर्जर हो जाता है तो आत्मा भी इसका साथ त्याग देती है।

यद्वा द्वादशभिर्ग्रन्थसहस्रैः पार्थिवावलिः ।
प्राङ्महाव्रतिना येन हेलाराजाद्विजन्मना ॥ १७ ॥

१७ पाशुपतव्रती ब्राह्मण हेलाराज[१] ने पूर्वकाल में बारह हजार श्लोको की पुस्तक 'पार्थिवावलि' की रचना की थी ।

तन्मतं पद्ममिहिरो दृष्ट्वाऽशोकादिपूर्वगान् ।
अष्टौ लवादीन् नृपतीन् स्वस्मिन् ग्रन्थे न्यदर्शयत् ॥ १८ ॥

१८ पद्ममिहिर ने हेलाराज की कृति का अध्ययन कर अपनी रचना में अशोक के पूर्ववर्ती आठ राजाओं का और वर्णन अंकित किया है । वे लव तथा उसके क्रमशः उत्तराधिकारी थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७ मे 'पार्थिवाद' का पाठभेद 'या नृपाव' मिलता है ।

श्लोक संख्या १८ 'पद्ममि' का 'पूर्वमि', पूर्वगा' का 'पूर्वजा तथा 'युगलकम्' का 'युग्मम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१७ (१) हेलाराज काश्मीरी ब्राह्मण थे। उनका काल ९वीं तथा १०वीं शताब्दी के मध्य माना जाता है । उन्होंने 'वाक्यपदीय' पर एक भाष्य लिखा है । राजा लव से शचीनर तक के राजाओं का उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी के प्रथम तरंग की श्लोक संख्या ८४ से १०० तक में किया है ।

हेलाराज पाशुपत पंथ के अनुयायी थे। शैव सिद्धांत के आधार आधारित एक पथ था । यह शिव रूप में ईश्वर की कल्पना करता है । शिव को जगत् का सर्जक तथा चलाने वाला मानते है। परन्तु जगत् उत्पत्ति का उन्हें भौतिक कारण नही बताते। सांख्य दर्शन के 'प्रधान' सिद्धान्त को मानते हुए वे इस सिद्धान्त में विश्वास करते है कि ईश्वर का अस्तित्व है । पशुपति किंवा पशुपतिनाथ का मंदिर वागमती नदी के तट पर काठमाण्डू नेपाल मे स्थित है । मैं यहाँ का दर्शन तथा भ्रमण कर चुका हूँ। पशुपति मूर्ति के विषय में अपनी पुस्तक 'जाग्रत नेपाल' मे प्रकाश डाल चुका हूँ ।

(२) द्विजन्मना :–कल्हण ने हेलाराज को द्विज कहा है । हेला शब्द नाम के लिये सुसंस्कृत और परिष्कृत नहीं कहा जा सकता । वह शब्द स्त्रीलिंग है । राज शब्द अन्त में लगा देने से हेलाराज होकर इसे पुंलिंग रूप प्राप्त हो गया है । हेला का अर्थ होता है, तिरस्कार, अपमान, आसानी, सौलभ्य, सरवरों एवं उत्कट मैथुनेच्छा। हिन्दी भाषा में हेला शब्द मल उठाने वाले भंगियों के लिये आता है । यह निसनर शूद्र जाति मानी जाती थी । द्विजन्मना विशेषण हेला शब्द मे लगाकर हेला शब्द को उच्चस्तरीय बनाने का सुन्दर प्रयास कल्हण ने किया है। काश्मीर मे डोम गायक होते थे । कुछ तो राज परिवार की शोभा तक बढा चुके है । काशी में प्रसिद्ध शहनाई-वादकों का कुटुम्ब हेला था । इस पीढी में कुछ मुसलमान हो गये है । हेला शब्द का काश्मीर की लौकिक भाषा में उस समय क्या अर्थ था । गवेषणा का विषय है । हेलाराज शुद्ध ब्राह्मण थे इसमें किसी प्रकार का सन्देह नही है । इसी बात को पाठकों के मन पर जमाने के लिये कल्हण ने द्विज शब्द का प्रयोग हेलाराज के नाम के साथ बलवती भाषा में किया है ।

द्विज के लिये कहा गया है–'द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्या जायते' दो बार उत्पन्न किंवा जन्म धारण करने वाले को द्विज कहते हैं । ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य द्विज कहे गये हैं । संस्कार के कारण उनका द्वितीय जन्म माना जाता है । धारणा है । यज्ञोपवीत

येऽप्यशोकादयः पञ्च श्रीछविल्लाकरोऽब्रवीत् ।
तान् द्वापञ्चाशतो मध्याच्छ्लोकस्तस्य तथा ह्ययम् ॥ १९ ॥

१९ श्रीच्छविल्लाकर[1] ने अशोक के पश्चात् के जिन पांच राजाओं का वर्णन किया है। वे लुप्त बावन राजाओं में से हैं, क्योंकि उसका निम्नलिखित श्लोक वह बात स्वतः स्पष्ट कर देता है।

"आऽशोकादभिमन्योर्ये प्रोक्ताः पञ्च महीभुजः ।
ते द्वापञ्चाशतो मध्यादेव लब्धाः पुरातनैः ॥" २० ॥

२० प्राचीन रचनाकारों ने अशोक से आरम्भ कर अभिमन्यु तक जिन पांच महीभुजों का वर्णन किया है, उसे उन्होंने बावन राजाओं की तालिका में से ही लिया है।

के पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य द्विज कहे जाते हैं। प्रथम जन्म माता देती है। दूसरा जन्म उन्हें संस्कार देता है।

अंडज प्राणी द्विज कहे जाते हैं। पहला जन्म अंड रूप में माता देती है। दूसरा जन्म अंडा फूटने पर होता है। पक्षी, सर्प, मछली आदि अंडज द्विजन्मा होने के कारण द्विज कहे जाते हैं। दांत को भी द्विज कहते हैं। मनुष्य का दांत दोबार मुख में पैदा होता है। पहला दांत बाल्यावस्था के पश्चात् टूट जाता है। तत्पश्चात् दूसरा दांत मुख मे पुनः उत्पन्न होता है।

आज कल भारतवर्ष में द्विज शब्द केवल ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त होता है। राजतरंगिणी के सभी अनुवादकर्ताओं ने द्विज का अर्थ यहाँ पर ब्राह्मण दिया है। श्री स्तीन तथा श्री आर एस. पण्डित दोनों ने यहाँपर द्विज का अनुवाद ब्राह्मण किया है। मैंने द्विज शब्द को ही रख दिया है। द्विज शब्द प्रचलित है। साधारण है। उसका अर्थ सभी समझते हैं।

द्विजन्म प्रथा ईसाइयों मे भी प्रचलित है। वपतिस्मा के, पश्चात् दूसरा जन्म होना माना जाता है। यहूदी और मुसलमान जबतक खतना नहीं हो हो जाता, वे यहूदी तथा मुसलमान नहीं माने जा सकते। प्राचीन यूनान में डस्टनाइ डियो नैमम पन्थ में द्विज प्रथा प्रचलित थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९ में 'तान्द्वाप' का पाठभेद 'तान् स्वाप' मिलता है।

श्लोक संख्या २० में 'आशोका' का 'अशोका' और 'शतो' का 'शतौ' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९ (१) श्रीच्छविल्लाकर के विषय में अभी तक कुछ भी साधिकार बातें नहीं जानी जा सकी है। कल्हण ने अशोक के पश्चात् के ५ राजाओं का उल्लेख राजतरंगिणी में छविल्लाकार के आधार पर किया है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से कालगणना में अंतर पड जाता है। इसके लिये कल्हण की अपेक्षा पूर्वलेखक अधिक उत्तरदायी है, जिनके आधार पर कल्हण ने लिखा है। इस प्रकार ५२ राजाओं में कल्हण ने १७ राजाओं का पता तत्कालीन ग्रन्थों के आधार पर लगाया है। उनका उल्लेख और वर्णन इन्हीं के आधार पर किया है।

इससे यह भी प्रकट होता है। कल्हण ने उन्हीं सामग्रियों का उपयोग किया है, जो काश्मीर में उपलब्ध थी।

कल्हण का लेखन काल सन् ११४८-११५० ई० है। सन् ७१२ में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया था। सिंधराज दाहिर पराजित हो चुका था। उन दिनों सिंध के ब्राह्मणों तथा बौद्धों के मतभेद के कारण अरबों को सफलता मिली थी।

इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः ।
भैषज्यभूतसंवादिकथा युक्तोपयुज्यते ॥ २१ ॥

२१ राजाओं के विकास एवं ह्रास के समय मेरी कथा[१] देशकाल के अनुसार उनके लिये उत्साह किंवा शांतिवर्धक तुल्य उपयोगी सिद्ध होगी।

संक्रान्तप्राक्तनानन्तव्यवहारः सुचेतसः ।
कस्येदृशो न संदर्भो यदि वा हृदयङ्गमः ॥ २२ ॥

२२ कौन ऐसा चेतन हृदय व्यक्ति होगा जो अनंत व्यवहारों से परिपूर्ण मेरे इस ग्रन्थ को हृदयंगम नहीं कर सकेगा ?

मुलतान विजय करता मुहम्मद बिन कासिम उत्तरी पंजाब तक पहुँच गया था। सन् ९३३ ई० में समानी बादशाह अलप्तगीन ने हिन्दुओं के राज गजनी पर अधिकार कर लिया था। सन् ९७७ ई० में अलप्तगीन के पिता के गुलाम ने गजनी पर अधिकार कर लिया। सन् ९९७ ई० में महमूद गजनवी राज्य सिंहासन पर बैठा। भारत पर सन् १००१ ई० में आक्रमण किया। उसका आक्रमण होता रहा। उत्तरी भारत में अव्यवस्था फैल गई। यद्यपि कल्हण के रचना-काल में मुसलमानों का अधिकार भारत पर नहीं स्थापित हुआ था, तथापि उनका आक्रमण होता रहता था। अतएव कल्हण ने काश्मीर से बाहर जाकर इतिहास सामग्री एकत्र करने का सम्भवतः प्रयास नहीं किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२ में 'प्रावतना' का 'प्रार्थना' और 'सुचेतसः' का 'सचेतसः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ।

२१ (१) कथा—कथा का शाब्दिक अर्थ होता है कहानी, किस्सा, कल्पित कहानी, वृत्तान्त, वर्णन, वार्तालाप—कथोपकथन, आख्यायिका शैली का गद्यमय निबन्ध। कथा पद्य और गद्य दोनों प्रकार का साम्य होता है।

कथा साहित्य का मूल स्रोत ऋग्वेद है। ऋग्वेद में ३५ कथाएँ हैं। उन्हें कथा का रूप बृहद्देवता में देने का प्रयास किया गया है। वेद की कथाएँ अत्यन्त संक्षिप्त हैं। पुराणों तथा रामायण, महाभारत में उन्हें विस्तृत कर, लिखा गया है। व्यक्ति विशेष अथवा किसी घटना के आदि और अंत से युक्त वर्णन को कथा कहा गया है।

कथाएँ ऐतिहासिक तथा कल्पित होती हैं। भारत में कथा साहित्य विकसित था। रामायण और महाभारत में वर्णित कथाओं की शैली पर कथा साहित्य भारत में प्रचलित हुआ। 'बृहत्कथा', 'जातक कथा', 'पंचतंत्र' आदि उनके उदाहरण हैं। 'कुमार'-सम्भव', 'कादम्बरी', 'दश कुमार चरित', 'प्रबन्ध चिन्तामणि' 'भविसयत्त कहा' 'लीलावाई कहा' आदि कथा काव्य हैं। 'हितोपदेश', 'कुवलयमाला', 'मलय सुन्दरी कथा', 'भोज प्रबन्ध' कथा साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। मैंने भी 'रामायण कथा', 'योग वासिष्ठ कथा' और 'वेद कथा' लिखा है। मैं कथा साहित्य का प्राचीन चाहे जो रूप रहा हो, आज कथा शब्द से प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में निहत जीवन चरितों, घटना विशेषों के वर्णनों से लिया जाता है। उन्हें पढ़ना तथा सुनना पुण्य कार्य माना जाता है।

कालान्तर में कथा का सम्बन्ध पौराणिक महाभारत तथा रामायण कथाओं से हो गया। उन्हें धार्मिक रूप दे दिया गया। एकादशी, पूर्णमासी तथा अनेक पर्वों पर मन्दिरों, जलाशयों, नदी तटों, अथवा घरों में कथा कहने की परिपाटी चल निकली। सत्यनारायण की कथा का आयोजन प्रायः पूर्णमासी को सम्पन्न घरों में होता है। मन्दिरों में प्रातः

तथा सायं प्रति दिन नियमित रूप से कथा कहने की रीति है। कथावाचक पण्डित या तो नौकर रख लिए जाते है, अथवा कथा-सुनने वाले श्रोतागण उन्हें कुछ दे दिया करते हैं।

कथा शब्द से सम्बोधन होता है—कहना अथवा वह जो कहा जाय। कल्हण ने राजतरंगिणी इस लिए लिखी थी कि लोग उससे लाभ उठावें। उसे सुना जाय। उसके पात्रों तथा उसमें वर्णित चरित्रों को लोग सुनें। उन्हें स्मरण रख कर लाभ उठायें। यह धार्मिक नही राजनीतिक किंवा ऐतिहासिक कथा है। कल्हण सम्भवतः इसे श्रव्य ग्रन्थ बनाने की कल्पना कर रहा था। किन्तु वह अपने इस उद्देश्य मे सफल नहीं हुआ। राजतरंगिणी धार्मिक ग्रन्थ नही बन सकी। उसका श्रवण पुराण, रामायण तथा महाभारत के समान धार्मिक रूप नहीं ले सका। उसे वह पवित्रता तथा आध्यात्मिक महत्त्व नही प्राप्त हो सका, जो धार्मिक ग्रन्थो की श्रेणी में रख दिये कथा काव्यों को मिला था।

निःसन्देह धार्मिक कथाओं में चरित्र, उससे सम्बन्धी घटनाओं, उनका उतार चढाव, आदि, अन्त सब कुछ देकर उसे पूर्ण बनाया जाता है। राजतरंगिणी मे राजाओं आदि के चरित्र का सुन्दर वर्णन दिया गया है। परन्तु राजा देवत्व भाव नही प्राप्त कर सके। इसलिए राजतरंगिणी की कथा धार्मिक कथाओं के समान महत्त्व नही प्राप्त कर सकी। वह जनसाधारण में घर नही कर पायी। यद्यपि राजाओं ने अपने नाम पर विष्णु तथा शिव की मूर्तियाँ स्थापित करवाईं। मन्दिर बनवाये। नगर बनवाये। अपने नाम जीवित रखने के लिए उनपर दान चढाये। अग्रहार दिये। तथापि यह स्वीकार करना पडेगा कि कल्हण की भावना उदात्त थी। धार्मिक कथा के कारण जैसे चरित्र सुधरता है, उसी प्रकार इस राजनीतिक कथा के कारण राजाओं तथा देश का चरित्र सुधार होगा, यही कल्हण की उदात्त कल्पना थी। इसी लिए यहाँ पर कथा शब्द का उसने प्रयोग किया है। किन्तु उसकी यह आशा सफल न हो सकी कि राजतरंगिणी को कथा रूप मे स्वीकार कर उसका पाठ किया जाय।

(२) भेषज—कल्हण यहाँ अपने इतिहास लिखने का उद्देश्य उपस्थित करता है। उसका एकमात्र लक्ष्य काश्मीर के राजाओं तथा काश्मीर राज्य की राजनैतिक व्याधियों के लिये देशकाल-पात्र के अनुसार औषध प्रस्तुत करना था। उसका उद्देश्य अर्वाचीन ऐतिहासिकों के समान वैज्ञानिक इतिहास नही लिखना था। उसने इतिहास को 'काव्य की क्रांति' के अंग्रेजी लेखक तुल्य इतिहास को गप्पों का परिणाम नहीं माना है।

रोम साम्राज्य के ह्रास और पतन के प्रसिद्ध लेखक श्री गिबन की तरह इतिहास को मूर्खताओं, दुर्दशाओं के कथानक के रूप में नहीं देखा है। महान् सेनानी नेपोलियन कहा करता था—'इतिहास कथानकों के अतिरिक्त और है क्या ?'

कल्हण कथानक को इतिहास का एकमात्र हेतु नही मानता। उसने इतिहास को दार्शनिक श्री इमरसन के शब्दों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवनचरित्रों का संग्रह नहीं माना है। जर्मन दार्शनिक श्री हीगल ने इतिहास रचनाकारों की तुलना उन मनीषियो से की है, जो भूतकाल की ओर आँखें फेरकर देखते हैं। कल्हण ने राजाओं का इतिहास लिखा है। उसने पीछे फिरकर झाँका है। उसमें फँस नही गया है। श्री एच. जी. वेल्स ने इतिहास को मानव के विचारों का इतिहास माना है।

आधुनिक इतिहास लेखक श्री टायन्बी ने इतिहास से तात्पर्य माना है कि सभ्यताओं के अन्दर एक प्रक्रिया चलती रहती है। वह उसकी उत्पत्ति, विकास, ह्रास और विघटन को उपस्थित करता है। उसके अनुसार 'इण्डिक' सभ्यता काल ईसापूर्व १७०० से ईसा पश्चात् ५०० वर्ष रही है। विकास का समय वह वेद से बुद्ध काल तक मानता है। उसका मत जहाँ तक काश्मीर के इतिहास का सम्बन्ध है, काश्मीर 'इण्डिक' तथा 'हिन्दू' दोनों सभ्यता काल में

क्षणभङ्गिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते ।
मूर्धाऽभिषेकः शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम् ॥ २३ ॥

२१ क्षणभंगुर प्राणियों के स्फुरण के विषय में जब परिचिन्ता करता हूँ तब यही परिणाम निकलता है कि रसों में शांत रस[1] श्रेष्ठ है। अतएव ग्रंथ में शांत रस की प्रमुखता है।

आ जाता है। यहाँ पर घोर अशिव लिखना अप्रासंगिक होगा। यह विषय विवादास्पद है।

कल्हण इतिहास को सिद्धान्त नहीं मानता। उसका उद्देश्य उन पाश्चात्य लेखकों की अपेक्षा अधिक व्यापक है, जिनके विचारों से जगत् मात्र प्रभावित होता है। वह इतिहास की शृंखला जोड़कर उन्हें तरंगिणी रूप में प्रस्तुत करता है। नदियाँ ऋतु परिवर्तन के अनुसार विभिन्न रूप धारण करती हैं। उनसे मनुष्य तृप्त होता है। प्यास बुझाता है। उसमें डूबकर मर भी सकता है। नदी बाढ़ लाकर विप्लव उपस्थित कर सकती है, परन्तु उसके बँधे जल से सिंचकर हरी भरी भूमि और लहलहाते खेत प्राणियों को जीवन-दान देते हैं।

कल्हण की दृष्टि में इतिहास विषम परिस्थितियों में राजाओं के लिये औषधि प्रस्तुत करता है। उसने राजाओं के प्रशस्तिवाचन के लिये लेखनी नहीं उठाई थी। इसमें रोचक कथाओं का वर्णन है। विचारों का वर्णन है। राजाओं तथा उनके अधिकारियों की मूर्खताओं, दुष्टताओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाली दुर्दशाओं का वर्णन है। उत्तम चरित्रांकन है। जीवन के अंधकारमय पहलू के साथ प्रकाश का उल्लेख है। आशा के साथ निराशा की झलक मिलती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३ में 'चिन्तिते' का पाठभेद 'चिन्तिनि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२३ (१) शांत रस—अलंकार ग्रंथों के नव रसों में शांत एक रस है। काश्मीरी विद्वान् द्वारा लिखित काव्यप्रकाश के अनुसार आठ रस होते हैं। 'यावत् रसात्मकं काव्यं' साहित्य दर्पण कहता है। शांत रस मानसिक शांति प्रदान करता है। यद्यपि राजतरंगिणी में सभी रसों का रसास्वादन पाठक कर सकते हैं, परंतु कल्हण ने शांत रस को प्रधान माना है। सम्पूर्ण राजतरंगिणी का किंचित् मात्र ज्ञान होगा, उसे कल्हण के काव्य में शांत रस की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित मिलेगी। ऐतिहासिक लेखक के लिए शांत रस ही उत्तम माध्यम है। राष्ट्रों के उत्थान पतन, राजनीतिक प्रवाह, घटनाक्रमों के वर्णन में यदि कवि शांत रस का आश्रय न ले तो भावावेग में भटक सकता है। भावनाविष्ट होने पर निर्णय उचित नहीं हो सकेगा। अतः घटनावलियों, गुण-दोष, पुण्य-पाप, उत्थान-पतन, गौरव-निंदा आदि का यथास्थिति सचाई से वर्णन करने के लिये मन को संतुलित रखना आवश्यक है। शांत होने पर मन संतुलित होता है। अतएव शांत रस काव्य का प्रधान रस रखकर कल्हण ने इतिहास रचना की शैली के साथ न्याय किया है।

काव्य की अनेक परिभाषाएँ की गयी हैं। अलंकारशास्त्र के पंडित किसी एक परिभाषा पर सहमत नहीं होते। तथापि स्वीकार करते हैं कि रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं। सामान्य, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतम लक्षणों की दृष्टि से काव्य देखा जा सकता है।

काव्य कवि की प्रतिभा का द्योतक है। वह प्रतिभा कहीं वरदान, आशीर्वाद अथवा जन्मजात गुण और कहीं व्युत्पत्ति तथा अभ्यास द्वारा परिलक्षित होती है। कल्हण का यह काव्य सूक्ष्म है। उसके पिता कुलीन तथा सुपठित थे। उसमें काव्य-कारण जन्म-

जात तथा अभ्यास दोनों से कहा जायगा। उसका यह काव्य लक्षण तथा कारण की दृष्टि से किस वर्ग में आता है। उसने स्वयं कहीं नहीं लिखा है।

चार वर्गों में काव्यों का भेद विभाजित किया गया है, उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम। कल्हण की राजतरंगिणी प्रथम वर्ग में रखी जायगी। उत्तमोत्तम काव्य ध्वनि के पाँच भेद होते हैं। ध्वनि दो प्रकार की होती है—अभिधामूलक तथा लक्षणा-मूलक। अभिधामूलक ध्वनि के तीन प्रकार होते हैं—रस ध्वनि, वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि। कल्हण स्वयं कहता है कि उसके काव्य में शांत रस प्रधान है। कुछ विद्वान् शांत रस को नाटक के लिए ठीक नहीं मानते।;

- नव रस शृंगार, करुण, शांत, रौद्र, वीर, अद्भुत, हास्य, भयानक तथा वीभत्स है।

शांत रस का स्थायी भाव 'निर्वेद' है। 'निर्वेद' का लक्षण दिया गया है—'नित्यानित्यवस्तु-विचार-जन्मा विषयविरागाख्यो निर्वेदः।' शांत रस का विरोधी 'शृंगार' रस है। राजतरंगिणी इतिहास है। वह काव्य प्रबंध, नाटक, उपाख्यान, उपन्यास, कथा, गीत आदि के तुल्य नहीं है। घटनानुसार सभी रसों का समावेश इसमें मिलेगा। कल्हण का आशय इतिहास लिखकर राजाओं तथा राज्य की बीमारी के लिये उपयुक्त औषध का निदान करना था। सभी राजाओं, जिनका काल लम्बे चार हजार वर्षों का है, उनके चरित्र का चित्रण कर, उनके गुण-अवगुण, उनके उत्थान-पतन, राज्य की समृद्धि तथा ह्रास आदि पर निष्पक्ष वैद्य की तरह, रोगी की भावनाओं से अलग रहकर, निःस्पृह, निष्काम, निर्वेद तुल्य औषध चुनना था। अपना मत प्रकट करना था। इसके लिये शान्त मन, स्थिर बुद्धि और स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक था। यह केवल शांत द्वारा ही हो सकता था।

राजतरंगिणी को कल्हण ने शांतरसप्रधान रखा है। यदि राजा तथा राज्य की बात छोड़ दी जाय, तो भी समकालीन तथा पूर्वकालीन समाज, लोक, रीति, कुरीति, अधोगति, उन्नति, आचार-विचार और सभी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक प्रश्नों पर स्वानुभव तथा अर्जित और प्राक्तन ज्ञान के आधार पर निर्णय देना था। यह शांत, प्रबुद्ध, स्थिरचित्त द्वारा ही सम्भव हो सकता है। सबसे अलग रहकर, ऊपर उठकर, न्यायाधीश की तरह निर्णय दे सके।

काव्य को आत्मा रस है। रसों में शान्त रस को कल्हण ने श्रेष्ठ माना है। संकल्प सूर्योदय नाटक ने इसे स्वीकार करते हुए तथ्य पूर्ण तर्क उपस्थित किया है।

अन्यपरिपाटिकामधिकरोति शृंगारिता
परस्परं तिरस्कृतिं परिचिनोति वीरायितम्।
विरुद्धगतिरद्भुतस्तदलमल्पसारैः परैः
शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः॥

(सं० सू० १ अंकः १९)

शृंगार रस असभ्यों के व्यवहार का प्रतीक है। वीर रस परस्पर तिरस्कार का परिचायक है। अद्भुत रस विरोधी बातों का आश्रय लेता है। अन्य रस वाले को अन्य रसों से क्या लाभ हो सकता है। चित्त के खेद को शान्त करने में केवल शान्त रस ही शेष रह जाता है।

मम्मट ने काव्य प्रकाश में—निर्वेदः स्थायि-भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः' कहा है। (४।३५) भरत ने 'नाट्य शास्त्र' में केवल आठ रसों को मान्यता दी है। शान्त रस को मान्यता नहीं देता। अध्यात्म भावना की इस रस द्वारा उत्पत्ति होती है। स्यात् इसीलिए भरत ने अन्य रसों की श्रेणी में शान्त रस को नहीं रखा है। नाट्यशास्त्र में उल्लेख मिलता है। शान्त रस द्वारा रति आदि आठ स्थायी भावों की उत्पत्ति होती है।

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य, शान्ताद्भावो प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते। (६।१०८)

काश्मीरी पण्डित अभिनवगुप्त ने शान्त रस को जिन विद्वानों ने रस नहीं माना है, उनका तर्कसम्मत

उत्तर दिया है। शान्त रस की तुलना सभी रसों से करते हुए, मम्मट ने उसे पूर्ण रस माना है। तत्व ज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार करता है।

अग्निपुराण ने शान्त रस की उत्पत्ति 'रति' का अभाव माना है। रुद्रट ने 'सम्यक् ज्ञान', आनन्द वर्धन ने 'तृष्णा क्षय सुख' को शान्त रस का स्थायी भाव माना है। विद्वानों ने अन्य रसों के समान शान्त रस का भेद-प्रभेद करने का प्रयास नहीं किया है। 'रसकलिका' ने (१) वैराग्य, (२) दोष निग्रह (३) सन्तोष, (४) तत्व साक्षात्कार—चार भेद शान्त रस का किया है।

हिन्दी के काव्याचार्यों ने शान्त रस की परिभाषा की है। कुलपति मिश्र कहते हैं :

तत्व ज्ञान तें कविता में जहँ प्रगटे निर्वेद।
कहं सान्त रस जासु को सो है, नौमो भेद।
(रसरहस्य : २८)

यहाँ पर मम्मट के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। पद्माकर कहते हैं :

सुरस शान्त निर्वेद है जाको थाई भाव।
(जगद्विनोद : ७२०)

कवि केशव दास जी कहते हैं :

सबते होय उदास मन बसै एक ही ठौर।
ताही सो समरस कहत केशव कवि सिरमौर।
(रसिक प्रिया १४:३७)

हास्य रस द्वारा मनुष्य में हास्य रस की अधिकता होती है। हँसी आती है। करुण कविता का पाठ करते समय करुणा उत्पन्न होती है। हृदय भर आता है। वीर रस काव्य सुनने पर उत्साह उत्पन्न होता है। अंग फड़कने लगते हैं। शान्त रस की कविता पाठ के समय मन शान्त रहता है। कल्हण के शब्दों में 'स्थैर्य' भाव अर्थात् न्याय दृष्टि उत्पन्न होती है। वह इतिहास को तौलने लगता है। भावातिरेक में स्वयं बह नहीं जाता। काश्मीरी आचार्य काश्मीरी पण्डित अलंकारशास्त्र के आलोचक श्री आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वन्यालोक (सन् ८५५—८८४ ई०) तृतीय उद्योत में (२५-२७) में शान्त रस पर प्रकाश डाला है। तृष्णा का प्रध्वंसा-भाव शान्तरस कहा गया है। एक अच्छा उदाहरण उक्त पुस्तक की तारावती टीका में उपस्थित किया गया है।

मनुष्य को पूर्ण तृप्ति हो जाती है तो उसे एक प्रकार का आनन्द होता है—जैसे स्वादिष्ट भोजन के पश्चात् एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। ठीक इसी प्रकार तृष्णा क्षय के सुख में भी एक प्रकार के आनन्द का बोध होता है। यही आनन्द शान्त रस का स्थायी भाव है।

शान्त एक प्रकार की प्राकृतिक चित्त वृत्ति होती है। रति आदि वैकृत चित्तवृत्तियाँ हैं। सभी रसों की शान्त अवस्था को शान्त रस कह सकते हैं। तृष्णा सुख का जहाँ परिपोष होता है, वहीं शान्त रस का उदय होता है। विषयों की अभिलाषा से निवृत्ति प्राप्त करना निर्वेद है। उसे वैराग्य भी कहते हैं। यही निर्वेद शान्त रस का स्थायी भाव है।

'शान्तश्च तृष्णाक्षयसुखस्य यः
परिपोषस्तल्लक्षणो रसः प्रतीयत एव।
(ध्वन्यालोकः ३:२६)

कल्हण ने सभी रसों का समावेश राजतरंगिणी काव्य में किया है। शान्त को उसने प्रधान माना है। शृंगार से शान्त रस तक पहुँचने के लिए बीच में वीर रस का माध्यम लेना पड़ता है। शृंगार का विरोधी रस शान्त रस है। अतएव सीधे शृंगार से शान्त रस पर नहीं जाया जा सकता। इसी प्रकार शान्त रस से शृंगार रस पर आने के लिए बीच में अद्भुत रस का माध्यम लेना पड़ता है। कल्हण ने इस प्राचीन परम्परागत काव्य पद्धति का अनुसरण किया है।

एक मत शान्त रस का अन्तर्भाव बीभत्स रस में मानता है। कारण दिया जाता है। शान्त रस के लिए विषयों से घृणा होती है। यह तर्क सम्मत

तदमन्दरसस्यन्दसुन्दरेयं निपीयताम् ।
श्रोत्रशुक्तिपुटैः स्पष्टमङ्ग राजतरङ्गिणी ॥ २४ ॥

२४ सुहृद्वर ! शांत सुंदर रसधार युक्त इस राजतरंगिणी का अपने कर्णशुक्तिपुटों[१] (सुतुहियों) द्वारा आनंदपूर्ण उन्मुक्त भाव से परिपूर्ण रसास्वादन कीजिए ।

नहीं है । शान्त रस का स्थायी भाव घृणा नहीं हो सकती । वह शान्त रस का व्यभिचारी भाव हो सकता है ।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य भारतीय विचारधारानुसार मोक्ष प्राप्ति है । सभी विद्या, धर्म, मत-मतान्तर एवं सिद्धान्त मनुष्य को इसी दिशा की ओर ले जाते हैं । प्रश्न उपस्थित होता है । राजनीति और मोक्ष से क्या सम्बन्ध है । राजतरंगिणी इतिहास ग्रन्थ है । उसका सम्बन्ध तत्कालीन काश्मीर की राजनीति से है ।

भारत में राजनीति साध्य नहीं साधन मात्र समझा गया है । देश में शान्ति रखकर अराजकता को दूर हटाना है । शान्तिमय वातावरण तथा समाज से ही मानव अपने चरम उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है । चाणक्य ने उसे सूत्रवत् योग-क्षेम शब्द में रखा है । इस योगक्षेम का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है । राज्य इसमें सहायक होता है ।

मोक्ष प्राप्ति सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना गया है । इस पुरुषार्थ की तरफ शान्त रस बढ़ाता है । अतएव शान्त रस काश्मीरी साहित्यशास्त्री अभिनवगुप्त (सन् ९५०-९९० ई०) के शब्दों में अन्य रसों की अपेक्षा श्रेष्ठ रस है । कल्हण ने अपने पूर्व के अलंकार शास्त्री तथा काव्याचार्यों के मत के अनुसार शान्त रस को श्रेष्ठ रस मानकर काश्मीर के पूर्व विद्वानों के मतों का अनुकरण किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४ में 'स्यंद' का 'स्पंद', 'मंग' का 'संग' 'सांग' और 'राज' का 'राजा' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२४ (१) शुक्ति पुट—इस शब्द का साधारण अर्थ होता है, सीप की खाल या सुतुही । शुक्ति पुट तरल पदार्थ पीने के काम में आता है । श्री आर० एस० पण्डित इस श्लोक पर टिप्पणी लिखते हैं । 'कल्हण प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक हिराक्लीटस की तरह जीवन को शाश्वत माना है । तरंगिणी के जल के समान जीवन का क्रम टूटता नहीं है । वह सतत चलता रहा है । भारतीय और यूनानी दोनों जीवन की अविच्छिन्नता में विश्वास करते थे । सुरा पीने के लिए शुक्ति पुट के गिलास कल्हण के समय प्रचलित रहे होंगे । वह तरंग ६:३६६ के सन्दर्भ में इसकी पुष्टि करता है । कुलीनों में इस प्रकार के पानपात्र प्रचलित थे । बरनियर का उदाहरण उन्होंने दिया है—"औरंगजेब काश्मीर में आया था तो उसे तिब्बती हरित मणि भेंट किया गया था । जिसका मुगलों के दरबार में बड़ा मूल्यांकन था । उसका रंग हरापन लिये था। उसपर उज्ज्वल शिराएँ थी । वह इतना सख्त था कि हीरे के चूर्ण से ही उसे बनाया जा सकता था । इस प्रकार के पत्थरों से प्याले और अलंकृत पात्र बनाये जाते थे ।"

श्रोत्रशुक्तिपुटैः—यह शब्द काश्मीरमें बहुत प्रचलित था । कल्हण के पश्चात् महाकवि जगद्धर भट्ट ने स्तुति कुसुमाञ्जलि में इस शब्द का प्रयोग किया है । उस समय काश्मीर में मुसलिम राज स्थापित हो चुका था । उनका अनुमानित काल सन् १३५०ईस्वी है । कल्हण से २०२ वर्ष पश्चात् हुए थे।"

पीता सुधा श्रवण शुक्ति पुटैः समक्ष-
मास्वादिता पुनरियं शिवभक्तिरेव ॥

(नवम स्तोत्र : ३५)

पुरा सतीसरः कल्पारम्भात् प्रभृति भूरभूत्।
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट् ॥ २५ ॥

काश्मीर वर्णन

२५ कल्प का प्रारंभ था। छः मन्वन्तर बीत चुके थे। उस पुरा काल में हिमाद्रि कुक्षि[1] में अर्णवपूर्ण सतीसर[2] था।

जीवन और तरंगिणी की उपमा भारतीय दार्शनिक विचार की ओर लक्ष्य करती है। भारतीय आत्मा को अमर मानते हैं। जीवन कभी नष्ट नहीं होता। वह चलता रहता है। चलता रहेगा। जीवन की यह धारा कभी विच्छिन्न होने वाली नहीं है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५ में 'पुरा' शब्द का पाठभेद 'पुरः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२५. (१) हिमाद्रि कुक्षि—हिमाद्रि शब्द का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है। 'हिमाद्रि कुक्षि' शब्द काश्मीर के लिये नीलमत पुराण तथा राजतरंगिणी दोनों में मिलता है। कुक्षि का अर्थ कोख होता है। माता की कोख में जिस प्रकार शिशु सुरक्षित तथा आराम से रहता है, उसी प्रकार काश्मीर हिमालय की गोद में सब प्रकार से रक्षित सुखपूर्वक है। माता शिशु को अपने बाहु से घेर कर कोख में रखती है। हिमालय काश्मीर को शिशु तुल्य अपने शैल बाहु से घेरकर माता की तरह गोद में रखे हुए है। शिशु माँ के पीन पयोधर से चिपका रहता है। बिना प्रयास दुग्ध पान करता रहता है। ठीक इसी प्रकार काश्मीर में जलधारा चारो ओर शैल शृंग से स्रवित होकर बिना प्रयास काश्मीर की प्यास बुझाती रहती है।

कुक्षि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में अनेक काव्यों में महान् भारतीय साहित्यकारों ने किया है। अश्वघोष ने कपिलवस्तु नगर को—'कुक्षिः हिमगिरेरिव' कहा है (१ ३५२:३५५)। ऋग्वेद में—'कुक्षि सोम पातमा.'—कोख के लिये कुक्षि शब्द का प्रयोग किया गया है (१:८.७)। अथर्ववेद १:८:७ तथा ९:१२, शतपथ ब्राह्मण (७:५:१:३८) में कुक्षिका का अर्थ भरा पुरा, रक्षित होना, किया गया है। ऋग्वेद (२:११:११) तथा १०:८६:१४, अथर्व वेद २:५:४,२:३३:४, ४:१६:३, ९:५:६० या ६०१, १०:९:१७ एवं ऋग्वेद में एक स्थान पर और कुक्षि का प्रयोग मिलता है। 'इव कुक्षयः सोम धानाः' अर्थात् दूध के समान कुक्षियाँ सोम गाथन हैं (३.३६:८)।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने कुक्षि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है—'पुंनाग गहनं कुक्षि बकुलोद्दालसंकुलम्।' वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड ४२:७।

हिमाद्रि कुक्षि शब्द का प्रयोग बड़े अच्छे ढंग से नीलमत पुराण तथा राजतरंगिणी में किया गया है। इसमें हिम बर्फ के लिये और अद्रि शैल के लिये व्यवहृत किया गया है। हिमाद्रि का अर्थ होता है बर्फ का पहाड़। कुक्षि का अर्थ कोख है। महाभारत में सागर तट के देशों के लिये भी कुक्षि शब्द का प्रयोग किया गया है यथा—'ततः सागरकुक्षिस्थान्......' सभापर्व ३२:१६। अतः हिमालय शैल की कोख में स्थित प्रदेश काश्मीर है। इसका संकेत हिमाद्रि कुक्षि शब्द करता है। हिमालय के अंक में स्थित काश्मीर माता की कोख में शिशु की तरह रक्षित है।

हिमाद्रि शब्द का प्रयोग विशाल किंवा विग्रहराज (सन् १०५६-१०६४ ई०) 'चमन वंश' अजमेर तथा शाकम्बरी के सम्बन्ध में किया गया है। (इण्डियन एण्टीक्वेरी १९:२१५ अप्रकाशित)

हिमाद्रि शब्द का प्रयोग हिमालय के लिये नीलमत पुराण तथा राजतरंगिणी दोनों ने किया है।

प्राचीन काल में हिमालय का नाम, हिमवान् हिमांचल, हिमवंत, हैमवत, हिम शैल, पर्वतराज, नगाधिराज आदि था और आज भी है।

भारतवर्ष का एक नाम हैमवत वर्ष है। वह हिमालय के नाम पर रखा गया है। हिमालय पर्वत इस प्रकार वर्ष पर्वत है। हैमवत क्षेत्र को किन्नर खण्ड भी कहीं-कहीं कहा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण २:१५:३१, वायु पुराण ३४:२८)।

काश्मीर के साहित्य में हिमवंत शब्द का प्रयोग हिमालय पर्वत के लिये किया गया है। काश्मीर के उत्तर में उत्तरकुरुओं तथा मद्रों को इसके मूल अर्थात् दक्षिण निवास करने का उल्लेख है। हिमवंत शब्द में हिमालय की पर्वतमालाओं के अतिरिक्त आधुनिक नामधारी कराकोरम (कृष्ण गिरि), सुलेमान पहाड (अंजन पर्वत), हिंदू कुश (निषध), अलताई (चंडीरण) या माल्यवान् पर्वतमालाएँ आ जाती हैं। कराकुरम पर्वत के पूर्वीय शैलबाहु को 'विद्युत्' पर्वत कहा जाता है। सुलेमान पर्वत अर्थात् अंजन पर्वत के दक्षिणी भाग को 'कीर्तहर' पर्वत कहते हैं। (हरिवंश पुराण : १:१८ मत्स्य पुराण अ० १३, महाभारत वनपर्व २५३:१३५, १०, ६९४, ६९५; सभापर्व ३:५८–६०)।

क्षुद्र हिमवंत पश्चिमी तथा महा हिमवंत हिमालय की पूर्वीय पर्वतमालाओं के लिये व्यवहृत किया गया है। विशेष द्रष्टव्य परिशिष्ट 'हिमालय' है।

२. सती सर—नीलमत पुराण में सतीसर का निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

इदं च शिखरं पश्य देशेऽस्मिन्नृप पश्चिमे। ६२।
नौबन्धनम् इति ख्यातं पुण्यं पापभयापहम् ॥41॥
कृतयुगे तदा काले व्यतीते तु मनुन्तदा। ६३।
विदधाति प्रजासर्गं यथापूर्वम् अरिन्दम ॥42॥
नौदेहन सती देवी भूमिर् भवति पार्थिव। ६४।
यांस्त तु भूमौ भवति सरस तु विमलोदकम् ॥43॥
षड्योजनायतम् रम्यं तदर्धेन च विस्तृतम्। ६५।
सतीदेशम् इति ख्यातं देवाक्रीडं मनोहरम् ॥44॥
आकाशम् इव गम्भीरं जलजैस् तु विवर्जितम् ॥६६।
शीतलामलपानीयम् सर्वभूमिमनोहरम् ॥45॥
अस्मिन् वैवस्वते प्राप्ते राजन् मन्वन्तरे किल। ६७।
मारीचाय ददौ दक्षः कश्यपाय त्रयोदश ॥46॥

अबुल फजल सतीसर को उमासर कहता है—काश्मीर पेश अज अन्नत सती सर नाम अस्त सती• नाम ईजा अस्त व सर नाम ए हौज फता।

फारस के लोग प्रायः हिंदू गाथा को मानते हैं। इतिहासकार बदेउद्दीन केवल अपवाद है। वह कहता है 'आदम शरन दीप अर्थात् लंका से काश्मीर में आये। सेथ के वंश में काश्मीर का राज्य ११०० वर्ष रहा। हजरत सुलेमान ने काश्मीर को आबाद किया। उसने अपने भतीजा इसीन को काश्मीर का राजा बनाया।

'हिंदुओं ने राजा हरीनंद के नेतृत्व में काश्मीर पर विजय प्राप्त की। उसका वंश जलप्लावन तक राज्य करता रहा। जलप्लावन के पश्चात् तुर्किस्तान की एक जाति काश्मीर में आकर आबाद हो गयी।

'काश्मीर निवासियों को एकेश्वरवाद का उपदेश हजरत मूसा ने दिया। वे काश्मीर की भूमि पर दिवंगत हुए। उनकी मजार अथवा कब्र काश्मीर में है। उसका अभी पता लगाना बाकी है। कालांतर में काश्मीरियों ने हिंदुओं की बुतपरस्ती स्वीकार कर ली। काश्मीरियों के इस दोष के कारण काश्मीर में जलप्लावन हुआ था।'

वाकयाते काश्मीर में उल्लेख है—'काश्मीर प्रदेश जल से भरा था। दैत्य जलदेव वहाँ रहता था। वह मनुष्यों को खाता था। आसपास जो कुछ मिलता था, खा जाता था।' विस्तृत वर्णन जलोद्भव के प्रसंग में किया गया है।

सम्राट् अकबर के समय में प्रथम बार काश्मीर पर काश्मीर के अतिरिक्त अन्य काश्मीर वंशीय मुसलमान का राज्य स्थापित हुआ। सम्राट् अकबर जिस समय काश्मीर पहुँचे, तो अबुलफजल को काश्मीरियों ने एक पुस्तक, जिसका नाम 'राज-तरंगिणी' था, समर्पित की। उसमें चार हजार वर्ष पूर्व से काश्मीर के राजाओं का इतिहास लिखा था। यह पुस्तक संस्कृत में थी। सम्राट् अकबर ने आदेश दिया कि पुस्तक का फारसी में अनुवाद किया जाय।

अबुल फजल अकबर का प्रियपात्र था। उसके नवरत्नों में एक था। आइने अकबरी में एक अध्याय सूबा काश्मीर पर लिखा गया है। वह राजतरंगिणी तथा तत्कालीन स्थिति पर आधारित है। मंत्री होने के कारण अबुल फजल साधनसंपन्न था। उसका वर्णन साधिकारिक माना जायेगा। वह लिखता है—

'इस इतिहास में कहा गया है कि काश्मीर का अधिकांश भाग प्रारंभिक काल में केवल उसके पर्वतों को छोड़कर जलमग्न था। उसे सतीसर कहते थे। सती महादेव की पत्नी है। सर का अर्थ सरोवर अर्थात् जहाँ जल एकत्र रहता है, किया जाता है।

'ब्रह्मा का एक दिन १४ मन्वन्तरों का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में ७० कल्प होते हैं। सत्तर चतुर्युग मिलकर एक कल्प होता है। यह वर्ष सम्राट् अकबर के राज्य काल का चौदहवाँ वर्ष है। काश्मीर में जिस समय आबादी हुई उसे बीते सातवें मन्वन्तर का २७वाँ कल्प है। तीन युग २८वें मन्वन्तर का बीत चुका है। चौथे युग का ४७०१वाँ सौर वर्ष व्यतीत हो चुका है।'

बरनियर अपने नवें पत्र में लिखता है : 'प्राचीन काल में काश्मीर जल से भरा था। कश्यप ने बारहमूला के पास जल बहने के लिये मार्ग बनाया था। यह जहाँगीर काल के ऐतिहासिक श्री हैदर मल्लिक वल्द हसन मल्लिक बिन मल्लिक मुहम्मद नजी छदवराह [१६१७-१६१९] के इतिहास में मिलता है। छदवराह श्रीनगर के पास एक गाँव है। वह काश्मीर का एक कुलीन था। यह इतिहास प्राचीन काल से अकबर के काश्मीर विजय तक का संक्षिप्त इतिहास है। उसका आधार राजतरंगिणी है। बडशाह जैनुलआबदीन की आज्ञा पर इसका फारसी में अनुवाद किया गया था। इसका नाम 'बहसुला असमर' रखा गया था। सन् १५९४ में बदायूंनो को अकबर ने आज्ञा दी थी कि वह उसका अनुवाद करे।'

बरनियर लिखता है : 'निस्संदेह यह क्षेत्र कभी जल से भरा था। थेसली की भी पूर्व काल में यही अवस्था थी। वह भी कभी जल से भरा था। किंतु मैं यह नहीं विश्वास करता कि जहाँ काटकर जल बहना (बारहमूला) बताया जाता है वहाँ पत्थर काटा गया है। यह आदमी का काम नहीं हो सकता। वह पर्वत बहुत ऊँचा है। मैं समझता हूँ कि यहाँ पर्वत बैठ गया है। यह भूकंप के कारण हुआ होगा। क्योंकि काश्मीर में भूकंप बहुत आते हैं।'

सतीसर और काश्मीर—शुक ने चौथी राज-तरंगिणी में काश्मीर को सतीसर कहा है। सतीसर देश शब्द काश्मीर के लिए व्यवहृत होता रहा है। शुक लिखता है—मिरजा हैदर मुहम्मद वाक्पटु नौशेरवा के समान है। इस जगत् में पूर्वकालीन राजाओं के उन कार्यों को कहने के लिए पैदा हुआ है जो सतीसर में बहुत दिनों से बुरे हालत में थे। (दत्त ३११)

काश्मीर पर मुगलों के आक्रमणों की चर्चा करते हुए पुनः लिखता है—इस प्रकार सतीसर देश के पापियों पर वज्रपात हुआ। आकाश में धूमकेतु निरन्तर पूर्व और पश्चिम दिखाई देते रहे। (दत्त २७३)

मुगलो के आक्रमण के पूर्व काश्मीर को सतीसर कहा जाता था। मैं समझता हूँ। सतीसर शब्द काश्मीर उपत्यका के लिए प्रयुक्त होता रहा है। इसमें वह भूखण्ड आता है जो कभी जल मग्न था। बारहमूला से वीर नाग तक का भूखण्ड वास्तव, में सतीसर था। अतएव काश्मीर मण्डल, काश्मीर राज्य तथा सतीसर शब्दों के अर्थ में भिन्नता है। काश्मीर मण्डल और काश्मीर राज्य के अन्दर सतीसर देश किंवा भूखण्ड का समावेश हो जाता है। सतीसर में काश्मीर मण्डल अथवा काश्मीर राज्य का समावेश नही होता। सतीसर काश्मीर मण्डल अथवा राज्य का एक भूखण्ड था।

क्षेमेन्द्र ने लोक प्रकाश में तीन स्थानों पर सती सर का उल्लेख किया है। उससे मेरे मत की पुष्टि होती है :

> श्रीमत्सतीसरासार्ं शारिकाशैलभूषितम्।
> श्रीजैननगरादस्माकानोपवनविभूषितम् ॥ २ ॥
> अस्ति त्रिभुवनाख्या १मुत्तमं भूषणं भुवः।
> श्रीकश्मीरपुरं रम्यं नानोपवनशोभितम् ॥३॥
> (पृष्ठ ३४)

सतीसर में शारिका शैल, जैन नगर, तथा काश्मीर पुरं का उल्लेख किया गया है। शारिका पर्वत सूखे सतीसर में है। जिस समय सतीसर में जल भरा था उस समय द्वीप की तरह इसका शिखर दिखाई पडता था। सतीसर के जल की गहराई ३०० से ४०० फीट तक थी। इस पर अकबर द्वारा निर्मित दुर्ग आज वर्तमान है। जैन नगरो का उल्लेख जोनराज श्रीवर तथा शुक की राजतरंगिणियों में है। (दत्त ४७, १२१, १३८, २०६, ३७१)

कश्मीर पुर शब्द यहाँ श्रीनगर किंवा प्रवरसेनपुर के लिये आया है। श्रीनगर शब्द लोग भूल गये थे। कश्मीर पुर शब्द श्रीनगर के लिए व्यवहृत होने लगा था। प्रवरसेनपुर का भी उल्लेख लोक प्रकाश (पृष्ठ ३५) में किया गया है। श्रीनगर शब्द का उल्लेख जोनराज, श्रीवर और शुक की राज तरंगिणियों में प्राय:, नही मिलता है। प्रवर पुर (द० २८, २०१, ४२६) तथा प्रवरेश पुर का (द० २३२) उल्लेख मिलता है।

लोक प्रकाश में पृष्ठ ६० पर पुन: सतीसर का उल्लेख किया गया है :

> त्रिविष्टपस्य सारं तत्पार्थिवं क्षेत्रमीश्वरम्।
> तत्रापि सारं हिमवांस्तत्र सारं सतीसर: ॥२॥

सतीसर और काश्मीर मण्डल में स्पष्ट भेद किया गया है :

> मनुवारजमित्यूचुः पूवनात्कथ्यते किल।
> सतीसरसि ग्रामाणां यत्प्रमाणमुदीरितम्।
> षष्टिग्रामसहस्राणि षष्टिग्रामशतानि च।
> षष्टि ग्रामास्त्रयो ग्रामा क्षेत्रकश्मीरमण्डलम् ॥३॥

शुक की चौथी और अन्तिम राजतरंगिणी है। जिसे शुक काश्मीरी पंडित ने प्राचीन शैली पर लिखा है। तत्पश्चात् काश्मीर में पुरानी शैली पर संस्कृत में इतिहास लिखने की परम्परा लोप हो गयी। मुगल शासन के साथ मुसलमान लेखकों का काल आता है। उन्होंने परसियन अर्थात् फारसी मे अधिकतर लिखा है। काश्मीरी पण्डित भी फारसी में विद्वत्ता प्राप्त कर, प्रथम फारसी में लिखे तत्पश्चात् उर्दू में और अब अंग्रेजो में लिखने लगे है।

जनरल ए. कनिंघम भूगर्भीय चिह्नों के अध्ययन से इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि काश्मीर उपत्यका जल से भरी थी। वे लिखते है :

'एक पर्वतीय चट्टान (क्लिफ) तन्तमूल तथा बारहमूला के १६ मील अधोभाग में समकोण बनाती झेलम नदी से ऊपर उठी है। उसकी ऊँचाई करीब ३ या ४ सौ फीट होगी। कुछ स्थानों पर मैंने देखा

महासागर के धरातल तथा समुद्र के नीचे से निकली हैं। मूल झील का नमकीन जल क्रमशः अनेक मीठे चश्मों तथा स्रोतस्विनियों के आते जलों की बाढ़ के कारण लोप हो गया। उसी समय बारहमूला के समीप पर्वत जो कि जल के उस स्थान पर रोक रखा था फट कर अलग होगया। दूसरे जल के अवरोध मलोढ़ मिट्टी (एल्लूवियन) के जमा होने में सहायक हुए जोकि बाढ़ों के कारण पहाड़ी की मिट्टी लाने लगे। वे मिट्टी को बाहर जाने से रोकने लगे और यही कारण है कि अपनी पड़ोसी भूखण्डों किंवा प्रदेशों की अपेक्षा काश्मीर उपत्यका में अधिक मिट्टी जम गयी। क्रमशः इस नवीन बनी हुई झील में जल के कारण स्वतः गहरी प्रणाली अपने लिए बना लिए और समय-समय पर वे अचानक पानी के स्तर के घटाव के कारण कुछ जल रोकने वाले बारहमूला के पास वाले व्यवधानों को अपने साथ बहाता गया। इस बात का प्रमाण कुछ भागों में मिलता है जहाँ कि चूने के पत्थरों पर क्रमशः जल के घटाव के कारण किनारों के जल के कारण घिसते हुए ढालू हो गये हैं। जैसे जैसे समय बीतता गया और क्रमशः झील के जल का स्तर नीचा होता गया। पानी जो पहले झील में था वह झेलम नदी के गति के स्तर में आ गया। और झेलम नदी ने स्वयं एक नाली का रूप उपत्यका के सब से निचले भाग में धारण कर लिया और इस प्रकार वहाँ बारहमूला पास के बचे हुये पानी रोकने वाले व्यवधानों को घिसने लगी और द्रुतगामी गतिशील नदी का रूप धारण कर लिया जैसा कि हम उसे आज उपत्यका को त्याग कर जाते हुए देखते हैं। चारों तरफ के पर्वतों से आता हुआ बढ़ता पानी झेलम के कारण बाहर निकलता जाता है और उपत्यका को अपना पुराना झील का रूप बनने नहीं देता।" ट्रेवेल इन काश्मीर—७१-७३

कनिंघम द्वारा वर्णित स्थानों को मैंने स्वयं सन् १९६४ में जाकर देखा। बामजू की गुफा के अन्दर एक मन्दिर बना है। गुफा अँधेरी है। लगभग २१० फीट लम्बी है। आगे चलते-चलते पतली हो जाती है। इसके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। इस गुफा में पानी टपकता रहता है। मक्खी के छाता की तरह जल टपकने से छत बन गयी है। एण्ड्रू विलमन वहाँ जिस समय आये थे। यहाँ पर मनुष्यों की हड्डियाँ पड़ी थीं। मालूम होता है मन्दिर के दर्शनार्थ कोई यात्री आया रहा होगा और मर गया था। गुफा में मशाल की रोशनी से जाया जाता है। यहा पर्वत सीधा उठता है। ढाल कम है। उस पर भूगर्भीय चिन्ह आज भी वर्तमान हैं जिनसे कनिंघम के तर्क की पुष्टि होती है।

पामपुर तथा समीपवर्ती करेवा पर यदि व्यक्ति खड़ा हो जाय तो उसे चारों ओर ऊँचा पर्वत मिलेगा। जमीन भूरी और कुछ बलुई है। यहीं केसर होती है। बनिहाल श्री नगर की सड़क कुछ करेवा के समीप से जाती है। वहाँ पर करेवा की बनावट स्पष्ट बताती है कि उसमें तीन तरह की मिट्टी का स्तर है। कोई भी यात्री बस अथवा मोटर से यात्रा करते समय इसे लक्ष्य कर सकता है।

गुहा निवासियों की जो खुदाई बर्जहोम काश्मीर में हुई है वह भी एक टीले पर है। वहाँ पहुँचने के लिए कच्ची सड़क बनाई गयी है। सड़क बनाने में ढाल की कुछ जमीन काटी गयी है। मेरी दृष्टि में यह बात थी। मैंने वहाँ भी टीले अर्थात् करेवा की बनावट में भूमि के स्तरों की मिट्टी में अन्तर पाया। श्री खजाची केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग का, जो इस समय वहाँ टेण्ट लगाकर खनन कार्य कर रहे थे, मैंने ध्यान आकर्षित कराया। मैंने अपने शिपिंग बोर्ड के चेयर-मैन के काल में भारत के पत्तनों का भ्रमण किया है। जल की गति तथा उनके द्वारा भूमि पर पड़े चिह्नों का अध्ययन किया है। यहाँ की खोदाई से स्पष्ट प्रतीत होता है कि टीले के निचले भाग में कभी जल था। उस जल का चिह्न खुले हुए स्थान पर प्रकट होता है।

है कि पर्वतीय चट्टानें ८ सौ फीट ऊँचाई से कम नहीं है। तन्तमूल के समीप झेलम समुद्र की सतह से ५ हजार फीट ऊँचाई पर है। समस्त काश्मीर उपत्यका जलमय रही होगी। जब तक वह चट्टान घिसकर पतली नहीं हो गई होगी। काश्मीर की झील का जल स्तर समुद्र की सतह से ५८०० फीट ऊँचा है। उपत्यका में इस समय तक के बचे करेवा और बिखरी एलूवियल (कछारी) समतल भूमि से ५० या १०० फीट ऊँचाई पर जल रहा होगा। मारतण्ड की ऊँची भूमि जल के नीचे नहीं रही होगी। बामजू की गुफा के चूने के पत्थरों के चट्टान के ऊपर समयर तटवर्ती पानी की सतह का चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है। इसी प्रकार वामन के पवित्र जलस्रोत के ऊपर इस प्रकार के चिह्न दिखाई देते हैं। शुपियान नदी पर स्थित रामू के सराय के ऊपर करेवा एक किनारा बनाता है। उसकी ऊँचाई १०० फीट है। उसके क्षैतिज परतों में विभिन्नता है। सबसे ऊँचाई पर २० फीट की जमीन एलूवियल है। उसके पश्चात् २० फिट का परत गोले-गोले पत्थरों और भुरभुरी मिट्टी का बना है। सबसे नीचे का परत कड़ी नीली मिट्टी का है। यह परत निश्चय ही झील के जल की निश्चल स्थिति के कारण बन गया होगा। किन्तु मध्यवर्ती मिट्टी की परत उस समय बनी होगी जब उपत्यका का जल बड़े वेग के साथ तन्तमूल के नीचे वाली चट्टान के अवरोध के हट जाने के कारण निकला होगा। यह जलावरोध चट्टान के अकस्मात् टूट जाने के कारण हुआ होगा। सबसे ऊपर की मिट्टी उस समय जमी होगी जबकि पानी घटता-घटता अपनी वर्तमान स्थिति पर आ गया होगा। तत्पश्चात् चट्टान का अवरोध अथवा पानी रोकने वाली पथरीली नदी का नदीगर्त क्रमशः जल प्रवाह के कारण घिसता-घिसता क्षीण हो गया होगा तो विभिन्न नदियों ने झील के पुराने गर्त में नवीन धाराओं में अपने को परिणत कर लिया होगा। जब तक कि नोनार, पामपुर तथा सानपुर के करवा घटते पानी के कारण द्वीप तुल्य लगते होंगे। और कालान्तर में लम्बे चौपटे शिखरीय पहाड़ियों के रूप में खुले मैदान में रह गये जैसे आज दिखाई पड़ते हैं।' (लट्टास)

डब्लू वेकफील्ड लिखते हैं: कोई प्रामाणिक प्रमाण इस बात का नहीं मिलता कि काश्मीर उपत्यका झील से अकस्मात् अपनी वर्तमान दशा में किस समय परिवर्तित हो गयी है जैसा कि आज दिखाई देती है। न तो हमें यह प्रमाण मिलता है कि वह झील कब सूख गयी। अथवा यह प्रक्रिया बारहमूला दर्रा के समीप हठात एक मार्ग बन जाने के कारण हो गया अथवा इसका पानी कालान्तर में निकलता गया।' (हैपी वैली ६९, ६०)

बाइन के इस सिद्धान्त पर कि वह कभी समुद्री जल की झील थी और समुद्र का पानी निकल जाने पर प्राकृतिक मीठे पानी के झरनों के कारण नमकीन जल समाप्त होकर काश्मीर उपत्यका ने वर्तमान रूप प्राप्त किया है। वेकफील्ड लिखता है– इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता कि उपत्यका का जल हठात् बाहर निकल गया और उसने वह रूप प्राप्त कर लिया है जिसे हम आज देखते हैं। बातों की जाँच करने और जैसा कि एक योग्य भूगर्भ-शास्त्रीय करता है। बात उलटी साबित होती है। बाइन ने उन्हें स्वयं सम्मुख रखा है। वह योग्य तथा निपुण पर्यवेक्षक था। वह यहाँ के निवासियों की परम्परा में विश्वास करता है कि उपत्यका अपने मूल रूप में ३०० या ४०० फीट गहरी झील थी। किन्तु वह कहता है कि समय प्रभाव के कारण पानी बहकर बाहर निकल गया। अपने पर्यवेक्षण में वह इस नतीजे पर आगया है कि वहाँ गहरी हरी अथवा बादामी चट्टानों की पहाड़ियाँ को जो काश्मीर के चारों तरफ है वे विशाल

महासागर के धरातल तथा समुद्र के नीचे से निकली हैं। मूल झील का नम छोन जल क्रमशः अनेक मीठे चश्मों तथा स्रोतस्विनियों के आते जलों की बाढ़ के कारण लोप हो गया। उसी समय वारहमूला के समीप पर्वत जो कि जल के उस स्थान पर रोक रखा था फट कर अलग होगया। दूसरे जल के अवरोध मलोह मिट्टी (एल्लूवियन) के जमा होने में सहायक हुए जोकि बाढ़ों के कारण पहाड़ी की मिट्टी लाने लगे। वे मिट्टी को बाहर जाने से रोकने लगे और यही कारण है कि अपनी पड़ोसी भूखण्डों किंवा प्रदेशों की अपेक्षा काश्मीर उपत्यका में अधिक मिट्टी जम गयी। क्रमशः इस नवीन बनी हुई झील में जल के कारण स्वतः गहरी प्रणाली अपने लिए बना लिए और समय-समय पर वे अचानक पानी के स्तर के घटाव के कारण कुछ जल रोकने वाले बारहमूला के पास वाले व्यवधानों को अपने साथ बहाता गया। इस बात का प्रमाण कुछ भागों में मिलता है जहाँ कि चूने के पत्थरों पर क्रमशः जल के घटाव के कारण किनारों के जल के कारण घिसते हुए ढालू हो गये हैं। जैसे जैसे समय बीतता गया और क्रमशः झील के जल का स्तर नीचा होता गया। पानी जो पहले झील में था वह झेलम नदी के गति के स्तर में आ गया। और झेलम नदी ने स्वयं एक नाली का रूप उपत्यका के सब से निचले भाग में धारण कर लिया और इस प्रकार वहाँ बारहमूला पास के बचे हुये पानी रोकने वाले व्यवधानों को घिसने लगी और द्रुतगामी गतिशील नदी का रूप धारण कर लिया जैसा कि हम उसे आज उपत्यका को त्याग कर जाते हुए देखते हैं। चारों तरफ के पर्वतों से आता हुआ बढ़ता पानी झेलम के कारण बाहर निकलता जाता है और उपत्यका को अपना पुराना झील का रूप बनने नहीं देता।" ट्रेवेल इन काश्मीर—७१-७२

कनिंघम द्वारा वर्णित स्थानों को मैंने स्वयं सन् १०६४ में जाकर देखा। वामजू की गुफा के अन्दर एक मन्दिर बना है। गुफा अँधेरी है। लगभग २१० फीट लम्बी है। आगे चलते-चलते पतली हो जाती है। इसके विषय में अनेक किंवदंतियाँ हैं। इस गुफा में पानी टपकता रहता है। मक्खी के छाता की तरह जल टपकने से छत बन गयी है। एण्डरू विलसन वहाँ जिस समय आये थे। यहाँ पर मनुष्यों की हड्डियाँ पड़ी थी। मालूम होता है मन्दिर के दर्शनार्थ कोई यात्री आया रहा होगा और मर गया था। गुफा में मशाल की रोशनी से जाया जाता है। यहा पर्वत सीधा उठता है। ढाल कम है। उस पर भूगर्भीय चिन्ह आज भी वर्तमान है जिनसे कनिंघम के तर्क की पुष्टि होती है।

पामपुर तथा समीपवर्ती करेवा पर यदि व्यक्ति खड़ा हो जाय तो उसे चारों ओर ऊँचा पर्वत मिलेगा। जमीन भूरी और कुछ बलुई है। यही केसर होती है। बनिहाल श्री नगर की सड़क कुछ करेवा के समीप से जाती है। वहाँ पर करेवा की बनावट स्पष्ट बताती है कि उसमें तीन तरह की मिट्टी का स्तर है। कोई भी यात्री बस अथवा मोटर से यात्रा करते समय इसे लक्ष्य कर सकता है।

गुहा निवासियों की जो खुदाई बर्जहोम काश्मीर में हुई है वह भी एक टीले पर है। वहाँ पहुँचने के लिए कच्ची सड़क बनाई गयी है। सड़क बनाने में ढाल को कुछ जमीन काटी गयी है। मेरी दृष्टि में यह बात थी। मैंने वहाँ भी टीले अर्थात् करेवा की बनावट में भूमि के स्तरों की मिट्टी में अन्तर पाया। श्री खजाची केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग का, जो इस समय वहाँ टेण्ट लगाकर खनन कार्य कर रहे थे, मैंने ध्यान आकर्षित कराया। मैंने अपने शिपिंग बोर्ड के चेयरमैन के काल में भारत के पत्तनों का भ्रमण किया है। जल की गति तथा उनके द्वारा भूमि पर पड़े चिह्नों का अध्ययन किया है। यहाँ की खोदाई से स्पष्ट प्रतीत होता है कि टीले के निचले भाग में कभी जल था। उस जल का चिह्न खुले हुए स्थान पर प्रकट होता है।

अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्।
द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा ॥ २६ ॥

२६ वैवस्वत मन्वन्तर[1] का प्रारम्भ था। सतीसर में जलोद्भव असुर निवास करता था प्रजापति कश्यप ने द्रुहिण, उपेन्द्र, रुद्र से प्रार्थना की। देवताओं के साथ जलोद्भव वध निमित्त उतरे।

वूलर लेक काश्मीर उपत्यका का सबसे निचला स्थान और पूर्व सतीसर का अवशेष समुद्र की सतह से ५१८७ फीट ऊँचा है। श्रीनगर ५२३५ फीट समुद्र की सतह से ऊँचा है। वावन जिसके समीप वामजू गुफा है वह भूमि समुद्र की सतह से ५८९६ फीट ऊँचा है। अवन्तीपुर तथा बिज बेहरा अर्थात् विजयेश्वर ५४०० फीट समुद्र की सतह से ऊँचा है। श्रीनगर तथा अवन्तीपुर और बिज बेहरा के बीच अनेक करेवा तथा पामपुर हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस समय काश्मीर उपत्यका में जल भरा होगा उस समय वामजू पामपुर आदि जो ऊपर लेक की सतह से ऊँचाई पर हैं सर के तट होंगे। वहाँ पर पानी का चिह्न बन जाना स्वाभाविक है।

काश्मीर में सन् १५५२, १६८०, जून २६ सन् १८२८ तथा सन् १८८५ में भयंकर भूकंप आया था। सन् १८८५ के भूकंप से १३०,००० वर्ग मील क्षेत्र प्रभावित हुआ था। लगभग ५०० वर्ग मील में तो महाभयंकर विनाश हुआ था। लगभग २०,००० मकान, ३०,००० जानवर, ३००० मनुष्य, मर गये थे। बारहमूला में सबसे भयानक असर हुआ था। वहाँ एक किला, यात्री निवास तथा शहर के लगभग तीन चौथाई मकान नष्ट हो गये थे।

पादटिप्पणियाँ :

२६ (१) वैवस्वत मन्वन्तर—नीलमत पुराण तथा अन्य पुराणों में वर्णित मनुओं के नाम तथा तालिका में अंतर है—

मत्स्य पुराण	विष्णु पुराण	नीलमत पुराण
१. स्वायंभुव	,,	१. स्वायंभुव
२. स्वारोचिष	,,	२. स्वारोचिष
३. उत्तम, औतम	,,	३. औतम
४. तामस	,,	४. तामस
५. रैवत	,,	५. रैवत
६. चाक्षुष	,,	६. चाक्षुष
७. वैवस्वत	,,	७. वैवस्वत
८. सावर्णिक	,,	८. अर्क सावर्णि
९. दक्ष सावर्णि	रुचि	९. ब्रह्म सावर्णि
१०. ब्रह्म सावर्णि	भौम	१०. महादेव (इन्द्र दोनों पाठ हैं)
११. धर्म सावर्णि		११. दक्ष सावर्णि
१२. रुद्र पुत्र सावर्णि		१२. रौच्य
१३. देव सावर्णि		१३. भौत्य
१४. इन्द्र सावर्णि		

नीलमत में भूतकालीन छः तथा वर्तमान सातवें मनु वैवस्वत का नाम मिलता है परन्तु भविष्य के मनुओं के नामों में भिन्नता है :

कालकल्पायुधौ पूर्व्यौ मनवश्च चतुर्दश।
अतीताश्च भविष्यश्च तेषाम् नामानि ये शृणु ॥
—568/ ६०

स्वायंभुवो मनुः पूर्वम् मनुः स्वारोचिषस्तथा।
औतमस्तामसश्चैव रैवतश्चक्षुषस्तथा ॥
—561/६९१

वैवस्वतोऽर्कसावर्णिर्ब्रह्मसावर्ण्य एव च।
महेश दक्ष सावर्णो रौच्य भौतस्तथैव च ॥
—570/६९२

संपूजनीया देवेन्द्रस्तथा महाश्चतुर्दश।
—571/६९३

भागवत पुराण : ३:१:५२–५६, ५:१.२२, ८:१:१९, ८:१:२३, २७, ८:५:२, १३:१०, ११, १८, २४, २७, ३०, ३३, ८.७:५ ब्रह्माण्ड पुराण : २:१४.४, वायु पुराण : ६२, मनुस्मृति : १:६१–६३, विष्णु पुराण : ३:२–३ ऋग्वेद : १:८०:१६, २:३३:१३, ८:३०:३, ८:६३:१, ८:५१:१, १०:१००:५

तैत्तिरोय संहिता १:५:१:३ शतपथ ब्राह्मण ७:५.१५:३, २:२:१०:२, ७·" ६:१, २:३:८:३ जैमिनो उपनिषद्

ब्राह्मण : ३:१५:१, ऐतरेय ब्राह्मण ५:१४:८:२ ३:१:९:४, अथर्ववेद ८:१०:२४, ३:३:२:१ १४:२:४१

५:४:१०:५ पंचविंश २३:१:६७।

नीलमत पुराण के अनुसार १२ सौर मास का एक वर्ष होता है। दो मास का एक ऋतु, ६ ऋतुओं का एक अयन, २ अयनों का एक वर्ष और ४३२००० वर्षों का एक कलियुग होता है। कलियुग का दूना (८६४००० वर्ष) द्वापर, कलियुग का तिगुना (१२९६०००) त्रेता काल और चौगुना (१७२८००० वर्ष) सतयुग किंवा कृत युग काल होता है। एक मन्वंतर ७१ चतुर्युगों का होता है। मन्वंतर के अंत में सब कुछ नष्ट हो जाता है। सब कुछ जलमय हो जाता है। युग का प्रमाण ४३२००० वर्ष तथा मन्वंतर का प्रमाण १७२८००० वर्ष है। केवल हिमालय, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवत्, गंधमादन, मेरु, माल्यवान्, महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष, विंध्य, पारियात्र का नाश नहीं होता। जम्बूद्वीप का सर्वथा विनाश हो जाता है।

प्रलय के पश्चात् स्वयं महादेव जल स्वरूप स्थित रहते हैं। देवोसती एक नाव का रूप तत्काल धारण कर लेती हैं।। मनु उस नाव पर सर्व प्रकार के बीज रख देते हैं। मत्स्य रूप धारण कर विष्णु उस नाव को एक शृङ्ग की ओर खींच लाते हैं। उसे पर्वत के मस्तक पर लाकर बांध देते हैं। वह पर्वत शिखर काश्मीर को पश्चिम दिशा में स्थित नौबंधन शिखर है। शिखर पुण्यदायक है। पाप तथा भय को हरता है। कृतयुग के इतना समय वीत जाने पर मनु पुनः प्रजावर्ग की यथापूर्व रचना आरम्भ करते हैं।

नावस्वरूप देह धारण की हुई सती देवी स्वयं भूमि का रूप धारण करती है। छः योजन लम्बा तथा ३ योजन चौड़ा रम्य विमलोदक सर वन जाता है। यहाँ देवगण मनोहर क्रीड़ा करते हैं। इस देश की ख्याति सती देश (काश्मीर) हो जाती है। जलजों से विवर्जित शीतल अमल जलपूर्ण देश की सब भूमि मनोहर हो जाती है। वैवस्वत मन्वंतर के प्रारंभ में दक्ष अपनी १३ कन्याओं का विवाह मरीचि के पुत्र कश्यप ऋषि से कर देते हैं। नीलमत पुराण ५०–६७ (क्रीज) ३३–५५ (जादू)। नौबंधन तीर्थ का शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है १:८ : १:१।

बाइबिल में जलप्लावन किंवा जलप्रलय तथा नाव और उस पर सब प्रकार के बीज तथा सब प्रकार के प्राणियों का एक जोड़ा रखने का वर्णन मिलता है। उस नाव को 'हज़रत नूह का आर्क' कहते हैं। वह पर्वत शिखर पर जाकर रुक जाती है। कुरान शरीफ और बाइबिल में यह गाथा दी गयी है।

हिमालय और हेमकूट :

प्रलय काल में हिमालय तथा हेमकूट पर्वतों के बच जाने की बात नीलमत पुराण मानता है। हिमालय तथा हेमकूट दो भिन्न-भिन्न पर्वत माने गए हैं। हेमकूट पर्वत हिमालय के दक्षिण में है। बाण ने हर्षचरित के अध्याय ७ में कहा है कि अर्जुन ने राजसूय यज्ञ के समय हेमकूट पर अधिकार किया था। विक्रमोर्वशीय नाटक के प्रथम अध्याय में हेमकूट, तथा हेमकूट शिखर का उल्लेख आया है।

यहाँ पर हिमालय के लिये उसका प्रयोग किया गया है। हेमकूट क्षेत्र को पुरुष वर्ष तथा हिमवन् क्षेत्र को किन्नर खंड कहा गया है। किन्नर खंड आधुनिक हिमालय प्रदेशका किन्नौर-अंचल है। किम्पुरुष एक वर्ष है। इसे हिमालय के दूसरी तरफ पुराणों के अनुसार मानते है।

(भागवत पुराण ५:१९: मत्स्य पुराण ११३:२९, ११४:५९:६३–६५, १२१:४९, वायु पुराण ३४.२८, विष्णु पुराण २:२;१२।)

किंपुरुष प्रियव्रत-का पौत्र और आग्नीध्र के नव पुत्रों में एक था। आग्नीध्र ने अपने पुत्रों के लिये जम्बू द्वीप के वर्षों को विभाजित किया था। (विष्णु पुराण २ १:१७ तथा १९)। किंपुरुष वर्ष को उसने अपने पुत्र हेमकूट को दिया था। किंपुरुष-वर्ष का राजा द्युम्न था। कृष्ण तथा जरासंध के संघर्ष में द्युम्न ने जरासंध का पक्ष लेकर कृष्ण के विपक्ष में युद्ध किया था। जरासंध ने गोमन्त आक्रमण के समय पश्चिम पार्श्व में आक्रमणार्थ द्युम्न को नियुक्त किया था। भागवत पुराण (१:६:१२ तथा १०:५२:११) के अनुसार परीक्षित ने उत्तर के देशों के विजय काल में किंपुरुष देश को जीता था।

वैदिक साहित्य में किंपुरुष के लिये घृणास्पद शब्दों का प्रयोग किया गया है। कुछ विद्वानों ने इन्हें जंगली, कुत्सित तथा कहीं बंदरों-जैसे मनुष्यों की नकल करने वाला कहा है। (ऐतरेय ब्राह्मण २:८, शतपथ ब्राह्मण १:२:३:९ तथा ७:५:२:३२; ऐतरेय ब्राह्मण ३:१:१२.१।)

जगत् सृजन कर्ता ब्रह्मा है। उनकी आयु १०० वर्षों की है। पूर्वार्द्ध काल ब्रह्मा का व्यतीत हो चुका है। अर्थात् अपने जीवन का ५० वर्ष वे व्यतीत कर चुके है। ब्रह्मा के उत्तरार्द्ध काल के चारों महायुगों के प्रथम मास के प्रथम पक्ष के प्रथम दिन को ३ घडी तथा ४२ पल अब तक वीत चुका है।

चारों युगों के महायुग का काल ४३२०००० सौर वर्ष है। ब्रह्मा का एक दिन एक सहस्र महायुगों का होता है। इस एक दिन को १ कल्प कहते है। सतयुग का समय मान १७,२८,००० सौर वर्ष है। त्रेता का समय मान १२,९६,००० सौर वर्ष है। द्वापर-का मान वर्ष ८,६४,००० वर्ष है। कलियुग का ४,३२,००० मान वर्ष है। सृष्टि वर्ष या आदि-काल आज से ७,१४,४०,४१,४६,२५६ वर्ष पूर्व हुआ है।

ब्रह्मा की एक सहस्र वर्ष आयु जितनी विष्णु की एक घड़ी होती है। बारह लाख विष्णुओं की आयु के जितनी, रुद्र की आधी कला होती है। रुद्र की एक अर्बुद आयु के काल का समय अक्षर ब्रह्म का समय होता है।

मनुस्मृति के अनुसार कालपरिमाण में १८ निमेष की एक काष्ठा; तीस काष्ठाओं को एक कला; तीस कलाओं का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है। अहोरात्र का विभाग सूर्य के उदय अस्त के कारण होता है। मानव के दो पक्ष पितरों का एक अहोरात्र होता है। कृष्ण पक्ष पितरों के कर्म करने तथा शुक्लपक्ष शयन निमित्त है। इसी प्रकार भूतों अर्थात् प्राणियों के लिये दिन चेष्टा तथा रात्रि शयन निमित्त निश्चित किया गया है।

मानव का एक वर्ष देवताओं का एक अहोरात्र होता है। उत्तरायण देवताओं की चेष्टा तथा दक्षिणा-यन रात्रिकाल माना जाता है। चालीस हजार वर्ष का सतयुग होता है। चार सहस्र वर्षों की संध्या तथा संध्यांश होता है। त्रेतायुग तीन सहस्र वर्षों का होता है। तीन सौ वर्षों की संध्या तथा संध्यांश होता है। द्वापर दो सहस्र वर्षों का होता है। दो सौ वर्षों का संध्यांश होता है। कलियुग एक सहस्र वर्षों का होता है। एक सौ वर्षों की संध्या तथा संध्यांश होता है।

चारों युग मिलकर देवताओं का एक युग होता है। देवताओं के सहस्र युग मिलकर ब्रह्मा का एक दिन होता है। सहस्र युगों की एक रात्रि होती है। इस प्रकार देवताओं के एक सहस्र वर्ष दिन तथा रात्रि मिलकर ब्रह्मा का अहोरात्र होता है। देवताओं के इकहत्तर गुने वर्षों का एक मन्वंतर होता है (मनुस्मृति १:६४-७९)।

इस समय श्वेत वाराह कल्प के छ: मन्वंतर बीत चुके हैं। राजतरंगिणी तथा नीलमत पुराण में इसी ओर संकेत किया गया है। सातवाँ वैवस्वत मन्वंतर चल रहा है। उसके २८वें महायुग के कलियुग का प्रथम चरण संधि में है। कार्तिक शुक्ल ९ के प्रथम प्रहर में श्रवण नक्षत्र, वृद्धियोग में सतयुग का जन्म हुआ था। सतयुग में, (१) मत्स्य (२) कच्छप, (३) वाराह और (४) नृसिंह अवतार हुए हैं।

वैशाख शुक्ल तृतीया सोमवार को रोहिणी नक्षत्र, शोभन योग के द्वितीय प्रहर में त्रेता की उत्पत्ति हुई है। त्रेता में (१) वामन, (२) परशुराम एवं (३) रामचन्द्र के अवतार हुए हैं।

माघ कृष्ण अमावस्या, शुक्रवार को धनिष्ठा नक्षत्र, परिघ योग; वृष लग्न में द्वापर की उत्पत्ति हुई है। इसमें (१) कृष्ण तथा (२) बुद्ध दो अवतार हुए हैं।

भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी, रविवार, अश्लेषा नक्षत्र, व्यतीपात योग में अर्धरात्रि काल के मिथुन लग्न में कलियुग का जन्म हुआ है। विष्णु पुराण (अंश ४ अध्याय २४, श्लोक ११०–११३) के अनुसार भगवान् कृष्ण के स्वर्गारोहण के दिन से कलियुग आरम्भ होता है। कृष्ण के स्वर्गारोहण के साथ ही युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ राजत्याग किया था। इस युग में केवल कल्कि नामक एक अवतार होगा। कलिगताब्द संवत् इस समय ५०६८ तथा काश्मीर का सप्तर्षि संवत् ५०४३ तथा विक्रम संवत् २०२४ तथा शक संवत् १८८९ तथा सन् १९६७ ई०; हिजरी सन् १३८६-८७ और फसली सन् १३७४—७५ है।

इस सनातन तथा प्रचलित संवत्सर गणना के अनुसार द्वापर में कृष्ण का अवतार ग्रहण करना ठीक बैठ जाता है। भगवान बुद्ध का समय २५०० वर्ष ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है। यह अवतार द्वापर काल में नहीं पड़कर कलियुग में पड़ता है।

नीलमत पुराण ने बुद्ध को एक अवतार माना है। एक विचित्र पहेली है। ज्योतिषियों का इसका समाधान करना आवश्यक है। नीलमत पुराण में बुद्धपूजा का वर्णन है। बुद्ध को भगवान् का अवतार माना गया है।

विशार्द्धेयो जगन्नाथ प्राप्ते ब्रह्मना कलियुगे।
अष्टाविंशतिमे भाविबुद्धो नाम जगद्गुरुः।८०९।

शास्त्रीय धारणा के अनुसार इस मन्वंतर के अवतार बुद्ध नहीं वामन हैं। सप्तर्षि: (१) अत्रि (२) कश्यप (३) गौतम (४) जमदग्नि (५) भरद्वाज (६) वशिष्ट (७) विश्वामित्र हैं।

वैवस्वत मन्वंतर के देवगण—१० अंगिरस, २ अश्विनी, १२ आदित्य, १० भृगुदेव, ४९ मरुत, ११ रुद्र, ८ वसु, १० विश्वदेव और १२ साध्य हैं।

इस मन्वंतर के इंद्र का नाम—उर्वस्विन्, किंवा महाबल है।

मनु के पुत्र; अरिष्ठ, इक्ष्वाकु, इल, करुष, कुशनाभ, घृष्ट, नभ, नृग, पृषध्र, प्रांशु, वसुमति तथा शर्याति हैं।

काश्मीर किंवा कश्मीर

काश्मीर किंवा कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। सनातन मत है। कश्यप ऋषि ने सतीसर को सुखा जाने पर आबाद किया था। सतीसर का नाम कश्यपपुर पड़ गया। कश्यपपुर का अपभ्रंश कश्मीर किंवा काश्मीर शब्द है।

पुर, नगर, पत्तन तथा क्षेत्र शब्दों के अर्थों में अन्तर है। नगर तथा पत्तन शहरी क्षेत्र का द्योतक है। किसी संज्ञा के अन्त में जोड़ देने पर नगर किंवा पत्तन स्थान विशेष का परिचायक होता है। पुर शब्द इससे भिन्न है। किसी व्यक्ति वाचक संज्ञा के साथ पुर जोड़ा जाता है। किसी स्थान को बसाने वाले व्यक्ति के साथ पुर शब्द जोड़ कर बसाने वाले की स्मृति चिरस्थायी की जाती है। काश्मीर में अवन्तीपुर, सूरपुर, जयपुर, प्रवरसेनपुर, जौनपुर, प्रतापपुर, हिरण्यपुर, कनिष्कपुर, जुष्कपुर, शिवपुरी, ब्रह्मपुरी, विष्णुपुरी, अभिमन्युपुर, आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। श्रीनगर किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर नहीं बसाया गया था। उसका नाम श्रीनगर पड़ा। परन्तु श्रीनगर में ही प्रवरसेन ने नगर बसाया तो उसका नाम प्रवरसेनपुर हो गया। नागरिक शब्द देशीय किंवा राष्ट्रीयता का बोधक है। सम्पूर्ण देश के व्यक्तियों के लिए नागरिक शब्द व्यवहृत होता है। पौरजन किंवा पौर शब्द स्थानीय निवास स्थान का परिचायक है। वह किसी एक नगर में रहने की ओर संकेत करता है। नागरिक शब्द का समावेश अंग्रेजी सिटिजेन शब्द में हो जाता है। काश्मीर में पुर शब्द व्यक्ति विशेष के नाम के साथ जोड़कर नगर वाचक बना दिया जाता था। आजकल पुर के स्थान पर व्यक्तियों के साथ नगर शब्द जोड़ने की प्रथा चल निकली है जैसे—टाटानगर, मोदीनगर गंगानगर, सरदारनगर आदि।

पत्तन शब्द नगर तथा शहर के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह शब्द नदी तथा समुद्रतटीय नगर तथा बन्दरगाहों के लिये विशेष रूप से व्यवहृत हुआ है। पत्तन व्यापार का केन्द्र होता है। विशाखा पत्तन, ममली पत्तन आदि इसके उदाहरण हैं। समुद्र तटीय नगरों के अतिरिक्त अन्य स्थानों के नगरों के लिए नगर अर्थ में पत्तन शब्द का बहुत कम व्यवहार किया गया है।

चाणक्य पत्तन शब्द की यही परिभाषा देता है—वारिस्थल पथ पत्तनानि च निवेशयत। (अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण १ अध्याय १ प्रकरण १९)

क्षेत्र शब्द का अपभ्रंश खेत शब्द है। अन्नोत्पादक भूमि, समतल भूमि, उत्पत्ति स्थान, प्रदेश तथा तथा तीर्थ स्थान के लिए क्षेत्र शब्द का व्यवहार किया गया है। क्षेत्र भूखण्ड विशेष की निर्धारित सीमा के लिए आता है। क्षेत्र के अन्तर्गत नगर, पुर, पत्तन, ग्राम आदि सब आ जाते हैं। काश्मीर में क्षेत्र शब्द तीर्थ स्थानों की सीमा के लिए व्यवहृत किया गया है। वाराह क्षेत्र, मडव क्षेत्र, उत्तर मानस क्षेत्र, विजयेश्वर क्षेत्र, नन्दिक्षेत्र, आदि इसके उदाहरण हैं।

कुछ विदेशी विद्वानों ने एक और मत प्रकट किया है। 'कशप' नाम कश्यप ऋषि का है। 'मर' शब्द का अर्थ 'मठ' है। 'कशपमर' प्राचीन नाम था। कशपमर बिगड़ कर कश्मीर हो गया है।

शुद्ध शाब्दिक अर्थ भी लगाया गया है। 'क' का अर्थ जल है। 'समीर' का अर्थ वायु किंवा हवा है। 'क' + 'समीर' दोनों शब्द मिलकर कसमीर हो गया है। कश्मीर का जल-वायु सर्वश्रेष्ठ है। अपनी जल वायु की उत्तमता के कारण भूखण्ड का नाम कश्मीर पड़ गया है।

और अर्थ लगाया गया है। वायु के कारण जल सतीसर के बाहर निकल गया। अतएव भूखण्ड का नाम कश्मीर पड़ गया।

डा० सूफी ने एक मत का प्रतिपादन किया है। उनका मत है। 'कम' का अर्थ होता है ओंठ 'मीर' का 'अर्थ' पर्वत है। कश्मीर चारों ओर पर्वत से घिरा है। कठौता जैसा लगता है।' इसलिए इस भूखण्ड का नाम कश्मीर पड़ गया।

कुछ विद्वानों ने कश्मीर शब्द की व्युत्पति को तोड़ मरोड़ कर एक विचित्र मत का प्रतिपादन किया है। उनका मत है। 'कश' एक शामी अर्थात्

सेमेटिक जाति या ट्राइब थी। उस जाति ने 'कश' नगर बसाया। यह नगर बुखारा में है। उसे अब 'शहर-ए-सब्' कहते है। वह दक्षिण, पश्चिम और पूर्व दिशाओं में पर्वत से घिरा है। वह शहर सातवीं शताब्दी में आबाद हुआ था। यहीं से काश्मीर में सेमेटिक लोग आये। यहूदियों का काश्मीर में आबाद होना सिद्ध होता है। हिन्दूराज काल में काश्मीर में कोई बाहरी आबाद नहीं हो सकता था। यहूदी इसके अपवाद थे। यहूदी सेमेटिक अर्थात् शामी जाते हैं। अतएव अनुमान लगाया गया है कि इसका नाम 'कश' के आधार पर कश्मीर पड़ गया।

उक्त वर्ग के लेखकों ने एक और अनुमान लगाया है। 'काशान' या 'काशगर' शब्द का अपभ्रंश कश्मीर हो गया। 'काशान' इराक में शहर है। तेहरान से १५० मील तथा इस्फहान से ९० मील ईशान दिशा में पड़ता है। देश भर में सबसे अधिक यहाँ गरमी पड़ती है।

'काशगर' चीनी तुर्किस्तान में उसकी पश्चिमी सीमान्त पर शहर है। काश्मीर के रहने वाले मुसलमान काश्मीर को 'कशीर' कहते हैं। स्थानीय मुसलिम जनता कश्मीर को 'कशीर' कहती है। इसलिए कश्मीर शब्द को 'काशगर' 'काशान' तथा 'कश' नगरी से जोड़ने का प्रयास किया गया है। श्रीनगर के स्थान पर कश्मीर शब्द श्रीनगर के लिए मुसलिम काल में प्रयुक्त होता रहा है। सिखों के काश्मीर में आधिपत्य स्थापित हो जाने पर श्रीनगर और कश्मीर समानार्थक माने जाते थे। उक्त तीनों शहर हैं। श्रीनगर को कश्मीर कहा जाता था। अतएव 'कशीर' शब्द ही कश्मीर शब्द का मूल है।

श्री स्तीन ने कश्मीर शब्द का अपभ्रंश 'कशीर' शब्द को माना है। उर्दू तथा फारसी में 'ब्राह्मण' शब्द को 'बरहमन' अबतक लिखते हैं। इसी प्रकार 'कश्मीर' को अगर उर्दू तथा फारसी के लेखक 'कशीर' लिखने लगे हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं मानी जा सकती है

जिस प्रकार मुसलमान होने पर पुराना नाम बदलकर मुसलिम नाम रख दिया जाता है। उसी प्रकार काश्मीर मुसलिम बहुल आबादी तथा मुसलिम राज होने के कारण 'कश्मीर' के स्थान पर उसे 'कशीर' और काश्मीरी भाषा को 'कौशुर' कहा जाने लगा।

इसी प्रकार १४ वीं शताब्दी में शाह हमदान ने जो काश्मीर उपत्यका के रक्षक सन्त मुसलमानों द्वारा माने जाते हैं। काश्मीर का नाम 'बाग-ए-सुलेमान' रख दिया था। शंकराचार्य पर्वत का नाम भी बदलकर 'तख्त-ए-सुलेमान' रखा गया। 'अनन्त' नाग शहर का नाम इसलामाबाद पड़ा। यद्यपि आज भी अनन्त नाग एक जिला है।

'कश्मीर' या 'काश्मीर' शब्द महाभारत, पुराणादि सभी ग्रन्थों में मिलते हैं। उनका अस्तित्व आज से ४ या ५ हजार वर्ष पूर्व था। उस समय 'बाइबिल' जिसमें 'हजरत सुलेमान' का नाम आता है का अस्तित्व ही नहीं था। मुसलिम काल का इतिहास चौदह सदी से अधिक तथा बाइबिल काल ईसा पूर्व २ हजार वर्ष से ऊपर नहीं जाता। कश्मीर शब्द प्राचीन शब्द है। यही प्रचलित है। निश्चयात्मक रूप से 'कश्यप' से इस शब्द को जोड़ना उचित प्रतीत होता है।

कम से कम २ हजार वर्षों से इतिहास इस बात का साक्षी है कि 'काश्मीर' शब्द सर्वदा प्रयुक्त होता रहा है। पतंजलि ने काश्मीर शब्द का उल्लेख किया है। उसके पश्चात् पाणिनि ने काश्मीर शब्द का उल्लेख किया है। प्तोलमी (सन् १५० ई०) यूरोपियन लेखक ने काश्मीर का नाम 'कस्पीरा' दिया है। वराहमिहिर (५वीं शताब्दी) के बृहद् संहिता में काश्मीर का उल्लेख किया है। ह्वेन साग (स० ५४१ ई०) चीनी पर्यटक ने काश्मीर को 'किया शि मिलो' लिखा है। रत्नावली नाटक (७ वी सदी) ('काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुमकुमम् पद्मवेदितन्-)' 'काश्मीर' शब्द का स्पष्ट उल्लेख है।

काश्मीरी लेखक क्षेमेन्द्र (सन् ९९० ई०) ने समयमातृका में कंकाली से काश्मीर का वर्णन कराया है। इसी समय प्रथम बार 'पंचाल धारा' अर्थात् पीरपंजाल या पीरपैन्तुसल का उल्लेख किया गया है। विल्हण (१०६३-१७) ने विक्रमांक देव चरित के अन्तिम अध्याय में काश्मीर का वर्णन किया है।

देशी, विदेशी, काश्मीरी सभी लेखकों ने काश्मीर किंवा कश्मीर शब्द का प्रयोग किया है। 'कश' काशीर' 'काशगर' 'काशान' आदि नामों से कश्मीर शब्द को सम्बन्धित करना मौलिक इतिहास को दूसरे रंग में रंगना कहा जायगा।

राजतरंगिणी के लेखक कल्हण (रचना काल ११४८-११४९) द्वितीय राजतरंगिणी के लेखक जोनराज (रचना काल १४४६—१४५९) जोनराज तरंगिणी के लेखक श्रीवर (रचनाकाल १४५९-१४८६) राजावली पिटक के लेखक प्रजाभट्ट (सन् १५१३-१५१४) तथा श्री शुक (सन् १५८६) ने काश्मीर शब्द का ही प्रयोग किया है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि सोलहवी शताब्दी तक 'कशीर' 'कश' आदि शब्दों का पता नही था। इसके पश्चात् संस्कृत लेखकों की परम्परा का लोप होता है। उनका स्थान परसियन तथा उर्दू लेखक लेते है। इस काल में 'कश' 'कशीर' आदि शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनसे काश्मीर शब्द को जोड़ने का प्रयास किया जाने लगा।

शक्तिसंगम तंत्र (भाग ३:७:९) में कश्मीर की सीमा का वर्णन किया गया है। इस तंत्र में भारत के लगभग ५६ देशों का वर्णन मिलता है। काश्मीर के सीमा निर्धारण में सहायता मिलती है। इसके अनुसार शारदामठ से कुंकुमाद्रि अर्थात् पामपुर तक का क्षेत्र काश्मीर कहा जाता था।

शारदामठमारभ्य कुङ्कुमाद्रितटांतकम्।
तावत्काश्मीर देशः स्यात्पञ्चाशद्योजनान्तकः ॥

एक विचार है। उत्तर कुरु के लोग काश्मीर में आबाद थे। काश्मीर की सीमा के लिए कहा गया है। वह शारदा मठ अर्थात् वर्तमान शारदी तीर्थ जो कृष्णगंगा तथा कनकोरी नदी के संगम पर स्थित है; वहाँ से लेकर कुंकुमाद्रि अर्थात् पामपुर के केसर उत्पादक पहाड़ियों तक विस्तृत था। उसका विस्तार ५० योजन था पामपुर में चार बार जा चुका हूँ। यह छोटा कस्बा है। ऊनी वस्त्र उत्पादन का बहुत बड़ा केन्द्र है। श्री गांधी आश्रम उत्तर प्रदेश का ऊन उत्पादन केंद्र है।

केसर की खेती तथा उपज के लिये पामपुर प्रसिद्ध है। पामपुर के समीप कोई बड़ा पर्वत नहीं है। बानिहाल से श्रीनगर आने वाली सड़क के दक्षिण पार्श्व में पर्वतमालाएँ काफी दूर पड़ती है। पामपुर क्षेत्र में छोटी छोटी मिट्टी की पहाडियाँ बहुत मिलती हैं। दूर पर वितस्ता नदी बहती है। समतर भूमि अधिक नही है। भूमि का रंग भूरा है। सेब, बादाम बगूगोशा के बाग प्रायः मिलते हैं।

कुंकुमाद्रि का अर्थ केसर का पहाड़ होता है। पामपुर की मृतिका पहाड़ियों से इसका अर्थ लगाया जा सकता है। सुदूर स्थित पर्वतमाला शीत ऋतु में तुषार पात से ढक जाती है। पामपुर का विस्तृत भूरा भूखण्ड दोनों ओर हिमाच्छादित पर्वतों के मध्य अत्यंत सुंदर दिखाई पड़ता है। अक्टूबर मास में दोनों ओर की पर्वतमालाओं पर तुषारपात आरंभ हो जाता है।

मैं यह दृश्य देख कर मुग्ध हो गया था। लगभग एक घण्टा चुपचाप एक सेब के बाग में बैठा रहा। इस नगर के अतीत को स्मरण करता रहा। नवंबर मास सन् १९६३ की काश्मीर यात्रा में वर्णन की सत्यता देखकर चकित हो गया।

इसी तंत्र में देवी के वर्णन के साथ उल्लेख है।

काश्मीरात् समारभ्य कामरूपाच्च पश्चिमे ।
भोटान्तदेशो देवेशि मानसेशाच्च दक्षिणे ॥
श्लोक ३० पृष्ठ ७

औपधा (औरसा ?) श्चानि भद्राश्च
किरातानां च जातयः ।
तोमरा हंसमार्गश्च काश्मीरास्तंगणास्तथा ॥

मार्कण्डेय, वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में 'काश्मीरास्तंगणास्तथा' उल्लेख आया है। मार्कण्डेय पुराण में एक स्थान पर सौराष्ट्र के साथ 'काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च' वर्णन मिलता है।

यहाँ भोटात देश के संबन्ध में कहा गया है कि वह काश्मीर से आरम्भ होकर कामरूप के पश्चिम तक फैला था। उसके पश्चिम में मानसरोवर, पूर्व में काश्मीर अर्थात् उत्तर में कामरूप तथा मानस में है। वर्तमान भूटान पूर्वकालीन भोट्ट देश का एक खंड मात्र है।

पुराणों से प्रकट होता है। प्राचीन काल में भोट शब्द तिब्बत निवासियों के लिये प्रयुक्त होता था। भूटान से लेकर काश्मीर अर्थात् हिमालय के उत्तर का भूखंड तिब्बत का भाग रहा है। मानसेश का अर्थ शिव का निवास स्थान अर्थात् मानसरोवर है। विष्णु पुराण (अंश ४:१९) में वर्णन है। चन्द्रभागा और काश्मीर आदि देशों पर व्रात्य, म्लेच्छ, शूद्रादि राजागण राज्य का भोग करेंगे।

काश्मीर के प्राचीन गौरव पर विचार करने लगा। उसे यादकर दुःख और उमड़ते हुए मन के अतिरिक्त और कुछ मुझे नहीं मिला।

शक्तिसंगम तंत्र ३:८:१२–१४ में कूर्मप्रस्थ का वर्णन किया गया है।

कूर्मप्रस्थं महेशानि कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥१२॥
गोकर्णे दक्षभागे कामाख्या पूर्वगोचरः ।
उत्तरे मानसेशः स्यात् पश्चिमे शारदा भवेत् ॥१३

शारदा शब्द के विषय में कह चुका हूँ। काश्मीर के लिये अनेक ग्रंथों तथा स्थानों पर शारदा शब्द प्रयोग किया गया है। यह बात सिद्ध होती है। कूर्मप्रस्थ की सीमा के सन्दर्भ में कहा गया है। कूर्मप्रस्थ के उत्तर में (मानसेश मानसरोवर), दक्षिण में गोकर्ण (नेपाल), पूर्व में कामाख्या (कामरूप), पश्चिम में शारदा (काश्मीर) है। मैंने गोकर्ण महादेव का मन्दिर नेपाल में देखा है। उसका वर्णन अपनी पुस्तक 'जाग्रत् नेपाल' में किया है। देवस्थान मुझे बहुत सुन्दर, दिव्य तथा जाग्रत् प्रतीत हुआ।

'परेण हिमवन्त' उत्तरकुरु को कहा गया है। श्री जिमर ने वैदिक इंडेक्स १:८४ में काश्मीर को उत्तरकुरु कहा है। पाली साहित्य में उत्तरकुरु का स्थान सुमेरु के उत्तर बताया गया है। काश्मीर को को उत्तरकुरु के दक्षिण दिखाया गया है। उत्तरकुरु को समुद्र से आवृत बताया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (८:१४:४) में उत्तरकुरु हिमालय के पार बताया गया है। वाल्मीकीय रामायण (४:५३:५६) में उत्तर में समुद्र का होना कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (८:२३) में वसिष्ठ सात्यहव्य ने उसे देव-क्षेत्र कहा है।

काश्मीर का उल्लेख वीर पुरुषदत्त के नागार्जुनी कोण्डा लेख में आया है। पाणिनि ने उसका उल्लेख (४.२:१३३) किया है। पतंजलि ने (३:२:२ पृष्ठ १८८, १८९) तथा (१:१:६ पृष्ठ २७६) महाभारत और बृहत्संहिता में इसका देश रूप में उल्लेख किया है (१४:२९)।

रामायण में काश्मीर

आनंद रामायण में काश्मीर का वर्णन मिलता है। आनंद रामायण के याग कांड सर्ग ३:३२:३४ 'श्लोकों' में काश्मीर का उल्लेख आया है। अश्वमेध यज्ञ का आयोजन भगवान् श्री रामचन्द्रजी ने किया था। यज्ञ का अश्व छोड़ा गया। वीर शत्रुघ्न, मंत्री, सामंत, सेना सहित अश्व की रक्षा के लिये साथ भेजे गये थे। शूरसेन, पांचाल, कुरुक्षेत्र, कुरुजांगल, देश होते हुए अश्व ने काश्मीर

में प्रवेश किया। तत्पश्चात् भिल्ल देश, गौड़ देश, शकदेश, यवनदेश, ताम्रदेश होता अश्व करतोया तट पर पहुँचा। वहाँ से चलता ज्वालामुखी के पर्वतीय क्षेत्रों में अश्व ने प्रवेश किया।

आनंद रामायण ने काश्मीर तथा उसके चारों ओर के देशों का वर्णन किया है। यह भौगोलिक वर्णन अंशत. ठीक है। काश्मीर के सीमावर्ती देशों यथा, गांधार, कांबोज, शिवि आदि देशों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। मालूम होता है कि आनंद रामायण के लेखक के समय में उन देशों की गणना यवन किंवा शक देश में होने लगी थी।

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने उत्तरी दिशा की तीर्थ यात्रा की थी। उसका वर्णन यात्रा कांड, आनंद रामायण (सर्ग ९।१–३१) में किया गया है। उसमें उनका ज्वालामुखी, देवप्रयाग, अलकनंदा के तट से होते हुए, श्रीबदरी आश्रम पहुँचना दिखाया गया है। श्रीबदरी आश्रम के पश्चात् श्रीराम केदारेश्वर गये। वहां से हिमाद्रि पर गये। वहाँ से महापथ होते हुए मानसरोवर की यात्रा की। मानसरोवर से बिंद सरोवर गये। वहाँ से हिमालय होते हुए मेरु पर्वत गये। तत्पश्चात् कैलाश पर गये। वहाँ से भागीरथी के तट से होते हुए हरिद्वार आए। हरिद्वार से कुरुक्षेत्र होते हुए इंद्रप्रस्थ पहुँचे। इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) से मधुवन (मथुरा), वृन्दावन, गोकुल तथा गोवर्धन होते हुए अवंतिका अर्थात् उज्जैन गये।

मानसरोवर के पश्चात् देव, गंधर्व, किन्नर जातियों का उल्लेख आता है। प्रतीत होता है। भगवान रामचन्द्र काश्मीर के ऊपर अर्थात् उत्तरीय सीमा स्पर्श करते हुए, मेरु तक पहुँचे थे। भगवान् श्रीराम वहाँ से कैलाश गये। इससे स्पष्ट होता है। उन्होंने पश्चिम की तीर्थ यात्रा यथा जालंधर, मूलस्थान, गांधार, कांबोज अथवा शिवि देश की नहीं की। मेरु के दक्षिण काश्मीर का स्थान निर्विवाद रूप से सभी प्राचीन ग्रन्थों ने स्वीकार किया है।

वाल्मीकीय रामायण में काश्मीर का नाम मुझे कहीं पर मिल नहीं सका। संभव है। अपने दृष्टिदोष के कारण उसे न देख सका हूँ। परन्तु मैं समझता हूँ कि काश्मीर का स्पष्ट रूप से उल्लेख रामायण में नहीं है।

योग वासिष्ठ रामायण में काश्मीर का सबसे अधिक ऐतिहासिक और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया गया है। काश्मीर इतिहास पर उससे विशेष प्रकाश पड़ता है। उस स्थान का वर्णन श्लोक २६ टिप्पणी में किया गया है।

राज तरंगिणी में श्रीराम के काश्मीर आने की बात तथा उसका क्या प्रमाण है, आदि पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है। राम ने काश्मीर में एक मंदिर का निर्माण करवाया था।

महाभारत में काश्मीर

महाभारत सभा पर्व (२७:१७) और भीष्म पर्व (९:५३-६७) में उल्लेख मिलता है। काश्मीर भारतीय जनपद था। अर्जुन ने इसे दिग्विजय के समय जीता था। सभा पर्व (३.४:१२:५२) तथा वन पर्व (५१.२६) के अनुसार काश्मीर निवासी महाराज युधिष्ठिर के लिये भेंट लाये थे। द्रोण पर्व (११:१६ तथा ७०:११) में उल्लेख आता है। काश्मीर को भगवान् श्रीकृष्ण तथा परशुराम ने विजय किया था। अर्जुन ने अपने दिग्विजय के समय काश्मीर को जीता था।

सत. काश्मीरकान् वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
व्यजयल्लोहितं चैव मण्डलैर्दशभिः सह॥
—सभापर्व २७:१७

तिलभारा समीराश्च मधुमत्ताः सुकन्दकाः।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारादर्शकास्तथा॥
—भीष्मपर्व ९:५३-६७

द्राविडाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ।
कुन्तिभोजो महातेजाः पार्थिवो गौरवाहनः ॥
—सभापर्व : ३४:१२

काश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंसकायनाः ।
शिवि त्रिगर्त यौधेया राजन्या मद्र केकयाः ॥
—सभापर्व : ५२:१४

केकयान् मालवाश्चैव तथा काश्मीरकानपि ।
अद्राक्षमहमाहूतान् यज्ञे ते परिवेषकान् ॥
—म० :-वनपर्व ५१.२६

आवन्त्यान् दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयान् दर्शेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान् पिशाचांश्च समुद्गलान् ॥
—द्रोणपर्व ११:१६

भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमा ।
ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥
—द्रोणपर्वः ७०:११

काश्मीर मंडल के विशेष महत्व का उल्लेख महाभारत में मिलता है। काश्मीर मडल में उत्तर के ऋषियों यथा नहुष, ययाति, अग्नि तथा कश्यप का परस्पर विचार विनियम हुआ था।

काश्मीरमण्डलं चैतत् सर्वपुण्यमरिंदम ॥
महर्षिभिश्चाध्युषितं पश्येदं भ्रातृभिः सह ॥ १० ॥
यत्रोत्तराणां सर्वेषामृषीणां नाहुषस्य च ।
अग्नेश्चैवात्र संवादः काश्यपस्य तु भारत ॥११॥
—वन पर्व : १३०

काश्मीर मंडल के चंद्रभागा तथा वितस्ता नदियों में सात दिन नित्य स्नान करने पर कहा गया है, मनुष्य निर्मल हो जाता है।

सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तां भूमिमालिनीम् ।
विगाह्य वै निराहारो निर्मलो मुनिवद् भवेत् ॥७॥
काश्मीरमण्डले नद्यो या. पतन्ति महानदम् ।
ता नदीः सिन्धुमासाद्य शीलवान् स्वर्गमाप्नुयात्॥९॥
अनुशासन पर्व : २५:७०९

उत्तर दिशा में कश्यप का निवास बताया गया है। काश्मीर उत्तर दिशा में है :

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥३८॥
ऋचीकतनयश्चोग्रो जमदग्निः प्रतापवान् ।
धनेश्वरस्य गुरवः सप्तैते उत्तराश्रिताः ॥
—अनुशासन पर्व : १५०:३८-३९

कश्यप की पत्नियाँ दक्ष की कन्याएँ अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि, कद्रू थी।

ते भार्ये कश्यपस्यास्तां कद्रूश्च विनता च ह ।
प्रादात् ताभ्यां वरं प्रीतः प्रजापतिसमः पतिः ॥
—आदि पर्व १६:६

दितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा ।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनि ॥१२॥
कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत ।
एतासां वीर्यसम्पन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥१३॥
—आदि पर्व : ६५:१२

सुर, असुर दोनों के पूर्वपुरुष कश्यप हैं।

मरीचेः कश्यप. पुत्रः कश्यपस्य सुरासुराः ।
जज्ञिरे नृपशार्दूल लोकानां प्रभवस्तु सः ॥
—आदि पर्व : ६६:३४

ज्येष्ठ पत्नी अदिति से १२ जनों का जन्म हुआ था :

त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा ।
मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान् समजीजनत् ॥
— आदि पर्व : ७५:१०

कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से भगवान् वामन का अवतार हुआ था।

कश्यपस्यात्मजः श्रीमनदित्या गर्भधारितः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ॥

बौद्धसाहित्य

बौद्ध ग्रंथों में काश्मीर का बहुत वर्णन मिलता है। दिव्यावदान शतक, बोधि सत्वावदान, कल्पलता, में उल्लेख मिलता है। काश्मीर के निवासी नाग जाति के थे।

काश्मीर राज्य के विषय में चीनी यात्रियों ने लिखा है 'राज्य ७००० ली आवर्त में फैला है। चारो ओर ऊँची पर्वतमालाओं से परिवेष्ठित है। राजधानी वितस्ता के पश्चिम तट पर स्थित है। देश की भूमि अत्यंत उर्वरा है। अन्न, फल, तथा पुष्प अत्यधिक उत्पन्न होते है। वनस्पतियाँ तथा औषधियाँ यथेष्ट रूप से मिलती है। जलवायु ठंडी है। तथा रूक्ष है। मनुष्य अत्यंत रूपवान होते है। उनका रंग साफ है। वे विद्यानुरागी है। उनमें अधार्मिक (बौद्ध धर्म नही मानने वाले) तथा बौद्ध धर्मानुयायी दोनों है। स्तूप तथा संघाराम देश में मिलने है।'

पर्यटक युवान च्वांग लिखता है "काश्मीर पूर्व काल में गांधार देश मे सम्मिलित था। तृतीय बुद्ध परिषद् के पश्चात् मोग्गलि पुत्र तिस्स काश्मीर मे धर्म प्रचारार्थ भेजे गये थे। अशोक के समय काश्मीर मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत था। गंधार जातक मे काश्मीर तथा गंधार का उल्लेख मिलता है।"

बौद्धग्रंथों में १६ जनपदों में काश्मीर और गंधार को सम्मिलित किया है। इनका विवरण पुक्राति तथा महाकपिन की कथाओं से प्राप्त होता है। जातकों से पता लगता है। बुद्ध काल में व्यापारीगण विदेश से काश्मीर और गधार तक व्यापार करते थे।

मिलिन्द प्रश्न (मिलिन्दपञ्हो) में 'कासिकोसलेऽपि कस्मीरे गंधारे ऽपि'—का उल्लेख मिलता है। काश्मीर का गंधार के साथ उल्लेख किया गया है। युवान-च्वांग ने लिखा है—'कभी गधार के अंतर्गत काश्मीर था' कल्हण की राजतरंगिणी, महाभारत तथा किसी सूत्र से पता नही चलता कि कभी किसी ऐतिहासिक युग में काश्मीर गंधार के अंतर्गत था। राजतरंगिणी काल से लेकर कोटा रानी के लंबे चार हजार वर्षों में कहीं संकेत नही मिलता कि काश्मीर गांधार में सम्मिलित था। भौगोलिक दृष्टि से काश्मीर तथा गांधार सीमांत देश थे। अतएव काशी, कोशल के समान बौद्ध साहित्य में गंधार काश्मीर का नाम से लिया गया है।

महावंश में उल्लेख आता है। स्थविर यौतिक राजा मिलिंद [मिनाण्डर] के समय काश्मीर गांधार में बौद्ध धर्म प्रचारार्थ आये थे।

भूरिदत्त जातक से मालूम होता है। कृमियों, फतिंगों, सर्पों, मेढ़कों, कीड़ों, मक्खियों आदि की हत्या कम्बोज जनपद के लोग करते थे। इन हत्याओं के कारण मनुष्य अशुद्ध हो जाता था। यूवान च्वांग ने [सातवीं शताब्दी] काश्मीर राज्य के दक्षिण स्थित राजपुरी अर्थात् वर्तमान राजौरी के लिये लिखा है—यहाँ के लोग कीडों मकोडों की हत्या करते थे।

मुझे ऋग्वेद मे काश्मीर का उल्लेख नही मिला। 'वैदिक कथा।' पुस्तक लिखते समय मैंने वैदिक साहित्य को अध्ययन किया उस समय इस पर विशेष ध्यान रखा कि काश्मीर का वर्णन वेद में है या नहीं।

एक दिन श्री डा० ज्वाला प्रसाद सिंघल अपनी नव प्रकाशित पुस्तक 'स्फिनिक्स स्पीक्स' लेकर मेरे निवास स्थान १५ कैनिंगलेन नई दिल्ली में आये। उन्होंने वेद मे काश्मीर के उल्लेख की चर्चा उठायी। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ।

निसन्देह ऋग्वेद में 'वितस्ता' नदी का नाम है। वितस्ता काश्मीर से निकल कर पंजाब में बहती है। वैदिक पुरुषों को वितस्ता नदी का ज्ञान था। इससे अनुमान लगाया गया है कि काश्मीर मण्डल का ज्ञान वैदिक पुरुषों को था। इस बात को प्रमाणित करने के लिये डा० सिंघल ने अपनी पुस्तक मे तर्क उपस्थित किया है।

मैंने पुस्तक पढ़ने के लिये समय मांगा। इसी बीच उनके पुस्तक के विषय की चर्चा समाचार पत्रों में

मे छपी। उसमें उन्होंने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कुछ समय पश्चात् वे पुन: आये। इस प्रयोग मे उन्होंने स्वीकार किया कि श्री ए. सी. दास के 'ऋगवेदिक इण्डिया' पुस्तक से वे प्रभावित हुए हैं। उनका सिद्धान्त उक्त पुस्तक से मिलता है।

उनके काश्मीर विषयक सिद्धान्त को मैं यहाँ संक्षेप मे उद्धृत कर देना उचित समझता हूँ। उनके सिद्धान्त को स्वीकार करने के पूर्व काश्मीर के भूगर्भीय ज्ञान का विशेष अध्ययन आवश्यक है।

काश्मीर मे गुहा निवासियों के स्थानों पर खनन कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा हुआ है। उनसे काश्मीर उपत्यका के भूगर्भीय रचना पर प्रकाश पड़ता है। मैंने इन गुफाओं तथा उनमे प्राप्त सामग्रियों को सन् १९६२ तथा सन् १९६६ मे काश्मीर जाकर देखा तथा अध्ययन किया है।

भूगर्भीय स्तर के अध्ययन से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर उपत्यका जल से कभी पूर्ण थी। पानी कभी निकल गया। सूखी भूमि हो गयी। डा० सिंघल द्वारा प्रतिपादित अन्य सिद्धान्तों को, जब तक कुछ और अनुसन्धान न हो जाय और प्रमाण न मिल जाय, स्वीकार करने मे कठिनता होगी। वेद की जिन ऋचाओं का उल्लेख डा० सिंघल ने किया है और जो अर्थ उन्होंने लगाने का प्रयास किया है वे अत्यन्त विवादास्पद है।

'त्रित' के सम्बन्ध में मैंने अपनी पुस्तक 'वैदिक कथा' (२७–३३) में विस्तृत प्रकाश डाला है। मै डा० सिंघल की विवृति का समर्थन करने मे असमर्थ हूँ। यहाँ स्थानाभाव से विशेष विवृति करना अप्रासंगिक होगा। 'भेद' का अर्थ जो डा० सिंघल ने लगाया है वह काश्मीरी परम्परा तथा इतिहास से मेल नही खाता। 'गंगोद्भेद' तीर्थ तथा 'भेदादेवी' 'भेद पर्वत' के प्रसंग में श्लोक संख्या ३४ की टिप्पणी तथा परिशिष्ट द्रष्टव्य है। तथापि डा० सिंघल के मत को यहाँ पर संक्षेप में उद्धृत कर देना मैं उचित समझता हूँ।

'यह कहा जाता है कि काश्मीर की भूमि एक झील थी। वह १६००० वर्ग मील क्षेत्र में फैली थी। यह २००० फीट गहरी थी। चारों ओर पर्वतों से घिरी थी। तिब्बत उत्तर में, कैलास पूर्व में, और सप्तसिन्धु का भूमि खण्ड दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में था। हमने देखा है कि जिन्दावेस्ता में इस चतुर्कोणीय भूमि का नाम 'वरण' अर्थात् 'वरुण' का देश कहा गया है। उसका उल्लेख 'हप्त हिन्द' अर्थात् 'सप्त सिन्ध' के पूर्व किया गया है। 'नागा जाति' चीनी तुर्किस्तान तथा उसके आस पास रहती थी। उनके देश के साथ 'गरुड़' का देश मिला था। दोनों जातियों मे संघर्ष होता रहता था। अतएव नागा जाति ने काश्मीर में गरुड जाति के भय के कारण शरण लिया।

'कहा जाता है कि काश्मीर में एक भेद पर्वत था। उस पर देवी सरस्वती अपने वाहन मोर पर रहती थी। यह पर्वत भी तोड़ा गया और सरस्वती तथा पार्वती ने सरिताओं का रूप धारण कर लिया।

'ऋग्वेद' इस कथानक को अर्थयुक्त रूप से उपस्थित करता है। 'इन्द्र' का प्रथम कार्य यह था कि उसने अहिदस्यु 'वृत्र' तथा उसकी माता संहार किया। जिन्होंने मेघ से गिरते जल को नागाओं द्वारा रक्षित गुहा में बन्द कर रखा था। इन्द्र ने भेद का भी निर्धन कर वध कर दिया। दस्युओं का जो वहाँ पर रहते थे उनका संहार किया। उसने वज्र प्रहार द्वारा पर्वत तोड डाला। वह जल वह कर 'सप्तसिन्ध' की सात नदियाँ हुई। और समुद्र में जाकर मिल गयी।

'त्रित' को वाराह भी कहते है। अर्थात् बारहमूला के समीप वह मारा गया था। सरस्वती उनमे से मुख्य नदी थी। जो मुक्त की गयी थी। दस्यु लोग 'अनासो' अर्थात् नासिका रहित थे। अर्थात् वे चिपटी नाक वाले थे। ऋग्वेद में यह भी वर्णन आता है कि

अनार्य शिव, अजस, यक्ष, आदि ने यमुना के तटपर भेद के नेतृत्व में युद्ध किया था जहां इन्द्र ने उन्हें पराजित किया था। 'ऋग्वेद' उन अनार्यो का भी वर्णन करता है जो शिश्नदेव की पूजा करते थे। उन्हें भी इन्द्र ने पराजित किया था।

'जिस समय काश्मीर में 'अहिवंशीय दस्यु' लोग जिनका स्वामी वृत्र रहता था, उन दिनों आर्य हिन्दूकुश तथा पामीर के गिरिपाद में रहते थे। हिमालय के उत्तर में तेथीस सागर था। वह क्रमशः सिकुड़ता गया। और पृथ्वी के शिखर की गति के कारण चीन में तथा तिब्बत में भूमि का स्तर ऊंचा कर दिया। चीन में भूमि सूख गयी और तिब्बत अधित्यका अर्थात् प्लेटो बन गया। इसलिए तिब्बत को त्रिविष्टप् अर्थात् तीन बार परत किया हुआ कहा जाता है।

'भूगर्भीय गति का प्रभाव काश्मीर पर भी पड़ा जो तिब्बत की पश्चिम सीमा से सम्बन्धित है। पर्वत टूट गया और काश्मीर का जल बाहर निकल गया। नाग लोग प्राकृतिक उथल पुथल में विनष्ट हो गये। इस प्रकार जल निकल जानेपर गिरिपाद से आर्य लोग उतर कर आये और काश्मीर उपत्यका में आबाद हो गये। उस समय नई नदियाँ सिन्धु में आकर मिली। गान्धार सप्तसिन्धु का एक भाग बन गया।

'वृत्र काश्मीर में मारा गया था। इसका प्रमाण 'भेद' तथा वाराह के वर्णन से प्रकट होता है, जिनका वर्णन काश्मीर के साहित्य में मिलता है। भेद के पराजय की बात यमुना तट पर कही गयी है। काश्मीर के इतिहास में यह कहा गया है कि सरस्वती देवी भेद पर खड़ी थी। यह बात निर्विवाद है कि सरस्वती तथा यमुना का उद्गम एक ही शैल से होता है। भेद मालूम होता है कि उन लोगों का राजा था जो भेद पर्वत पर रहते थे। उनका विनाश शायद काश्मीर उपत्यका का जल निकल जाने के कारण हुआ अथवा राजा सुदास द्वारा इन्द्र की सहायता से मारे गये थे।

'इन्द्रको वहाँ देवतारूप नहीं बल्कि प्रकृति की प्रमुख शक्ति मानना चाहिए। एक 'त्रित' देवता का वर्णन वेदों में मिलता है। उसने वृत्र का वध किया था। वृत्र यहाँ वराह कहा गया है। वैदिक ऋचाओं से यह बात प्रमाणित होती है कि वराह वृत्र का निवास बारहमूला में था।

'त्रित' ने वृत्र दैत्य को मारा था जिन्दावेस्ता के प्रथम अध्याय वेन्दीदाद के १८वें पद में आता है। वहाँ 'त्रित' को 'थ्रेतिन' कहा गया है। 'त्रित' प्राकृतिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। उसे 'त्वस्तर' का पुत्र माना गया है। त्वस्तर को इन्द्र का पिता माना गया है। त्वस्तर को इन्द्रके वज्र तथा देवों के अन्य अस्त्रों का निर्माता माना गया है।

'वरुण, त्रित, इन्द्र के साथ कहा गया है कि वृत्रको मरुत् ने भी मारा था। भूमि की गति के कारण जब काश्मीर का जल बारहमूला के पास से वह निकला होगा तो सम्भव है कि, आन्धी, पानी, भूचाल तथा वज्रपात हुआ हो। मरुत् से वृत्र वध को सम्बन्धित करने से यह प्रकट होता है कि प्राकृतिक उथल-पुथल के कारण काश्मीर का जल बह गया और आर्यों को काश्मीर तथा वहाँ रहने वाली जातियों का ज्ञान था।

'मालूम होता है कि ऋग्वैदिक आर्यों ने काश्मीर भूखण्ड का कोई नाम नहीं रखा था। उनके लिए यह 'दस्युओं' का देश था। वे अपने स्थानों से आकर आर्यों को परेशान करते थे। पौराणिक काल में इन्द्र और वृत्र के संघर्ष की बात कथानक रूप में चलाई गयी। आर्यों ने कालान्तर में शिवपूजा स्वीकार कर ली। उस समय 'सती सर' तथा उसमें जल निकलने की घटना को गाथा का रूप दे दिया गया। नागलोग शिव के भक्त थे अतएव 'जलोद्भव' नाम के एक दैत्य की कल्पना कर ली गयी। क्योंकि शिव के भक्त नागाओं को आर्य जिन्होंने शिव की उपासना स्वी-

कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोद्भवम् ।
निर्ममे तत्सरो भूमौ कश्मीरा इति मण्डलम् ॥ २७ ॥

२७ असुर जलोद्भव का वध किया गया। सतीसर के उस भूमि स्थान पर काश्मीर मण्डल की स्थापना हुई।

कार कर ली थी दैत्य नाम नहीं दे सकते थे। काश्यप जो मानव जाति के आदिपुरुष माने जाते है उन्हें लाकर बारहमूला के समीप पर्वत विदारण का आख्यान रच लिया गया। सतीसर इस प्रकार 'काश्यप सर' हो गया। और कालान्तर में काश्मीर हो गया।

'प्राचीन काल के पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रमाणों पर अपने सिद्धान्त की पुष्टि करता लेखक कहता है: 'इन्द्रने दस्युओं को काश्मीर उपत्यका में नष्ट किया। इन्द्र ने उनके ९९ दुर्गों को नष्ट किया। काश्मीर के पूंछ क्षेत्र के सोहन नदी में कहा जाता है कि इन पाषाण युगीय लोगों के पाषाण यान्त्रिक उपकरण मिले है। उनका समय ६,००,००० वर्ष पूर्व माना जाता है। इस प्रकार आदिकालीन लोग काश्मीर उपत्यका मे रहते थे इसका प्रमाण ४वें मण्डल के सूक्त ४५ ऋचा ६ पर आधारित किया है। उसमें 'विशिशिप्र' शब्द को वृत्र माना गया है। वहाँ कहा गया है कि गऊ की शाला खोदी गयी है। और उससे जल बाहर निकल गया। यहाँ इन्द्र के स्थान पर माता अथवा प्रकृति के लिए कहा गया है कि प्रकृति के कारण काश्मीर उपत्यका का जल बह गया और भूमि निकल आयी। 'विशिशिप्र' शब्द महत्त्व-पूर्ण है क्योंकि दस्युओं के प्रारम्भिक पाषाण युग को उपस्थित करता है।

'यह बात इससे और प्रमाणित होती है कि वृत्र तथा उसके दस्यु साथियों के लिए 'इलीवश' शब्द का प्रयोग मण्डल १ सूक्त ३३ ऋचा १२ में किया गया है। जिसका अर्थ गुहा में रहने वाले लोग होते है। इससे प्रकट होता है कि दस्यु लोग पाषाण युगीय गुफा में रहने वाले थे। इन बातों से प्रकट होता है कि ऋग्वेदीय आर्य उनके सम-कालीन थे।'

लेखक ने श्री स्टूअर्ट पिगॉट के 'प्रिहिस्टारिक इण्डिया' का उल्लेख करते हुए कहा है: 'सोअन सभ्यता सोहन नदी का उपत्यका सिन्धु, पूंछ, झेलम के समीप तथा साल्ट रेंज तक विस्तृत थी।

पाठभेद :

'कश्मीर' का 'काश्मीरा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७ (१) जलोद्भव : नीलमत पुराण जलोद्भव गाथा का वर्णन करता है। जलोद्भव का अर्थ है, जल से उद्भव अर्थात् जन्म लेनेवाला। काश्मीर में अत्यधिक ठंड पड़ती थी। कुछ लोगों का अनुमान है। जलोद्भव शब्द का अर्थ "तैरता हुआ" हिमखंड है।

नीलमत पुराण में निम्नलिखित जलोद्भवाख्यान का वर्णन दिया गया है:

कृपया सः शिशुर्नागैर्जले तस्मिन्विवर्धितः ।
यस्मादयं जले जातस्तस्मादेष जलोद्भवः ॥
—77।११८, ११९

आराध्य तपसा लेभे वरं देवात्पिता महान् ।
जलेऽमरत्वं मायाश्च विक्रमं चातुलं तथा ॥
78।११९, १२०

लब्धमायस्तु दैत्येन्द्रो भक्षयामास मानवान् ।
समीपे सरसस्तस्य नानादेशेष्ववस्थितान् ॥
79।१२०, १२१

दर्वाभिसार-गान्धार-जुहुण्डर-शकान् खसान् ।
तंगणान् माण्डवान् मद्रानन्तर्गिरिबहिर्गिरि ॥
80।१२१, १२२

ते हन्यमानाः पार्श्वं देशान् संश्रावयन् भयात् ।
शून्येषु तेषु देशेषु विचचार स निर्भयः ॥
8।।१२२, १२३

भगवन्विदितं सर्वं यथार्थं मया शिवः ।
पालितः संग्रहसुतो दैत्यो नाम्ना जलोद्भवः ॥
13।।१०९

जलोद्भव असुर का वर्णन वामनपुराण (८०।१४-३३) में किया गया है। ब्रह्मा से वर-लाभानन्तर सर्वतापकारी असुर जलोद्भव का वध शिव तथा विष्णु के द्वारा हुआ था। यह कथा नीलमत पुराण में वर्णित कथा से मिलती है। शक्र सरसोर पर पौलोमी के साथ क्रीडारत थे। परमदुर्जय संग्रह नामक दैत्येन्द्र वहीं रहता था। शची को देखते ही काममोहित दैत्य का वीर्य सलिलाशय में पतित हो गया। कामोन्मत्त दैत्य ने शची के अपहरण की लालसा की। शक्र तथा संग्रह में तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। इन्द्र का युद्ध एक वर्ष तक चलता रहा। संग्रह युद्ध में हत हो गया।

उस दुरात्मा के रेतस् से जलोद्भव शिशु उत्पन्न हुआ। जलोद्भव का नागों ने कृपापूर्वक विवर्धन किया। जल से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम जलोद्भव पड़ा।

जलोद्भव देश का वर्णन महाभारत में आया है। हिमालय समीपस्थ इस देश का होना मिलता है। इस देश पर भीमसेन ने विजय प्राप्त की थी। मैं समझता हूँ कि वह देश काश्मीर है। (सभा पर्व : ३० । ४)

पितामह ब्रह्मा की तपस्या तथा आराधना द्वारा जलोद्भवने तीन वर प्राप्त कर लिये थे। जल में अमरत्व, अतुलनीय विक्रम तथा मायाशक्ति की प्राप्ति। उस दैत्येंद्र ने समीपवर्ती दार्वाभिसार, गाधार, जहुंडर, शक, खस, तगण, माडव, मद्र, अंतर्गिरि और बहिर्गिरि के निवासियों का भक्षण आरम्भ कर किया। काश्मीर के समीपवर्ती सीमान्त देशों को नष्ट करने लगा। उस दानव के कारण देश जनशून्य हो गया। वह निर्भय हो गया (नीलमत पुराण श्लोक 70-81 ११८-१३३)

बहारिस्ताने काश्मीरी में उल्लेख है: 'जलोद्भव के कारण काश्मीर जनशून्य हो गया था। एक समय मरीचि के पुत्र काश्यप ने जिन्हें कुछ लोग ब्रह्मा का पौत्र कहते हैं, काश्मीर की यात्रा की। कुछ काल तक पवित्र सुमेरु पर्वत पर निवास करने के पश्चात् काश्मीर भूमि की दुरवस्था की तरफ उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने दुरवस्था का कारण पूछा। लोगों ने कहा 'जलदेव' 'सतीसर' में निवास करता है। वह इन लोगों को नष्ट करता रहता है।

'काश्यप का हृदय करुणापूर्ण हो गया। वह हरीपुर में समीप नौबंधन में निवास करने लगा। वहीं उन्होंने एक सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की। महादेव प्रकट हुए। जलदेव को मारने की प्रार्थना स्वीकार की। महादेव ने विष्णु और ब्रह्मा को जलदेव को हटाने के लिये भेजा। विष्णु और जलदेव का युद्ध सौ वर्षों तक संघर्ष होता रहा।

'विष्णु ने देखा कि जलदेव जल तथा पंक में रहकर अपनी रक्षा करता है। उन्होंने बारहमूला के समीप एक जलप्रणाली बनवायी। जल निकल गया। दैत्य दृष्टिगोचर होने लगा। वह पकड़कर मार डाला गया। प्रदेश आबाद हो गया। इस लिये काश्मीर को 'कशिपसर' कहते है।'

रत्नाकर पुराण का अनुवादकर्ता लिखता है,— 'पहले वक्तों में जमजार काश्मीर में देव और राक्षस वास किया करते थे। इनमें से एक देव जलोद्भव नामी था। वह बड़ा जालिम और सरकश था। बहुत अरसा तक उसकी लड़ाइयाँ तीन कारणों यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ रहीं। उसके फना होने के बाद मम्लूक खुदा ने इत-

मोनान का साँस लिया। आहिस्ता आहिस्ता इंसान इस सर जमीन में बसने लगे। लेकिन फिर भी काफी मुद्दत तक देवों और राक्षसों के हाथ तकलीफ उठाते रहे। इस दरमियान में गर्मियों में लोग हिन्दुस्तान से यहाँ आते। जरायत व खेती बाडी करते और सर्दियों के मौसम में कुछ सर्दी की शिद्दत और कुछ देवों के खौफ से फिर अपने वतन को वापस लौट जाते। बिल आखीर रफ्त रफ्तः यह बला टल गई और लोगों ने मुस्तकिल तौर पर आबाद होकर हुकूमत के कवानीन और रस्म वो रवाज बना लिये।'

तारीख कश्मीर हसन, पृष्ठ १०–११

स्कन्द पुराण में ७५ देशों तथा उनके ग्रामों की संख्या दी गई है। काश्मीर का नाम उन ७५ देशों की तालिका में ३२वाँ आता है। काश्मीर के ग्रामों की संख्या ६८००० दी गयी है। श्री स्ताइन ने अपने समय में काश्मीर के ग्रामों की गणना कर उनकी संख्या ६६०६३ दी है। अबुल फजल ने भी आइने अकबरी में ग्रामसंख्या ६६९७१ दी है। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि पुराणों में वर्णित काश्मीर संबन्धी बातें कपोलकल्पित नहीं हैं।

२ कश्यप—कश्यप ऋषि का उल्लेख ऋग्वेद (९ : ११४ : २) में मिलता है। सामवेद, (१.१, २.४, १०, १:४:२:२,) में प्रजापति रूप में उनका वर्णन किया गया है। अथर्व वेद (१:१४.४, २:३३:७, ४:२०:७ ४.२९:३, ४:३७.२) तथा मैत्रायणी संहिता एवं वाजसनेय संहिता शाखा (३:६२) में उन्हें प्राचीन पुरुष कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (८ : २१) तथा शतपथ ब्राह्मण (१३ : ७ : १ : ५) के अनुसार उन्होंने विश्वकर्मन् भौन राजा का अभिषेक किया था। बृहदारण्यक उपनिषद् (२:२:६), जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (४ : ३ : १) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (७:२७) में जनमेजय के संदर्भ में उनका उल्लेख किया गया है। बृहद्देवता कश्यप का उल्लेख (३:५७.५:१५३ १४५), (२ : १५७ और ८:१८) में आता है। कुछ विद्वान् कश्यप का समय ईसा पूर्व ५६९६ वर्ष अर्थात् आज से ७ हजार ८ सौ वर्ष पूर्व मानते हैं। किंतु किसी ठोस प्रमाण पर यह गणना आधारित नहीं है। कश्यप का उल्लेख ऋग्वेद में है। उनका ऋग्वैदिककालीन अथवा उससे भी पूर्वकालिक होना अनिवार्य है।

कश्यप नागाओं के आदि पुरुष हैं। नीलमत पुराण में कश्यप तीर्थ यात्रा का वर्णन संग्रहपुत्र जलोद्भव दैत्य वध प्रसंग में, (श्लोक २०९ से २२७) आता है। कल्हण ने नीलमत से यह प्रसंग लिया है। नील नाग ने जलोद्भव के उत्पात का वर्णन निम्नलिखित रूप से नीलमत पुराण में किया है।

सद्यो लब्ध्वा वरान् पापो ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः।
न मां गणयति दुष्टो न चाहं तस्य निग्रहे॥
समर्थो वरदानेन त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोः।
—137।१८०, १८१

तेनेदं सकलं शून्यं मद्देशे कृतम् प्रभो।
खादता नरमांसानि दुष्टेनाकृतबुद्धिना॥
—138।१८१, १८२

दार्वाभिसारगांधारजालन्धरशकाः खसाः।
संगणामाण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिबहिर्गिरिः॥
—139।१८२, १८३

एते वै मुख्यतस्तेन देशाः शून्यीकृताः प्रभो।
निग्रहे भगवन् तस्य कुरु बुद्धिं जगद्धिताम्॥
—140।१८३ : १८४

एवमुक्त्वा तथेत्युक्त्वा स्नात्वा तीर्थेषु कृत्स्नतः।
आजगाम सतीदेशं विमलं तत्सरोत्तमम्॥
—141।१८७, १८८

तत्र स्नात्वा जगामासौ ब्रह्मलोकं सदातनम्।
पद्भ्यां च क्रमणं त्यक्त्वा स्वशक्त्यैव नरोत्तमः॥
—142।१८८, १८९

नीलेन सहितः प्रायान्नागराजमहात्मना ।
तौ गत्वा ब्रह्मसदनं ववन्दतुररिन्दम ॥
—143।१९०

देवं कमलयोनिं च संगत्यासनमास्थितौ ।
वासुदेवेश्वरौ देवावनन्तं च महामतिम् ॥
144।१९१, १९२

तैस्तु संपूजितौ तत्र जलोद्भवविचेष्टितम् ।
कथयामासतुरुभौ ततो देवः पितामहः ॥
145।१९४

संक्षीयमाने सरसस्तु तोये
चकार मायां स जलोद्भवाख्यः ।
अथान्धकारं ससृजे समन्ता-
दहश्यमासीद्भुवनं नृवीर ॥
—170।२२२ : २२३

जलोद्भवासृजा भक्तस्तदा चक्रः सुदर्शनः ।
चभ्राम देवं शून्यं तं तं च जग्राह शंकरः ॥
188।२४२

ऋषयो देवता नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
द्रष्टुं सर्वे समाजग्मुर्जलोद्भवसरस्तथ ॥
197।२५९

जलोद्भव भयंकर क्रूरकर्मा हो गया था । प्रजापति कश्यप तीर्थयात्रा पर निकले थे । कश्यप से कनखल में आकर नील नाग मिला । उनकी पूजा की । काश्मीर की तीर्थयात्रा निमित्त निवेदन किया । जलोद्भव के अत्याचार को करुण कथा सुनाई । सतीसर के विमल सरोवर की तीर्थयात्रा निमित्त कश्यप उद्यत हो गये । नीलमत पुराण में निम्न-लिखित उल्लेख इस सम्बन्ध में आता है ।

कश्यप ऋषि ब्रह्मलोक में नील नाग के साथ गये । वहाँ से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ सरावित नौबंधन तीर्थ की ओर प्रस्थान किये। उनका अनुकरण देवताओं ने किया । असुरों ने किया । वे अपने-अपने वाहनों के साथ चले । नौबंधन पहुचे । केशव दृढतापूर्वक वहां स्थित हो गये । सुर और असुर दोनों की सेना नौबंधन पहुँची । इस महान् वाहिनी की तुमुल ध्वनि जलोद्भव दैत्य ने सुनी, व दहल गया । सुरक्षा निमित्त जल में छिप गया । शत्रु दैत्य जल से बाहर नहीं निकल रहा था । उसे जल से बाहर निकलता नहीं देखकर मधुसूदन नौबंधन में प्रवेश किये । नौबंधन पहुँचकर (कासर नाग अथवा क्रमसर के) तीनों शिखरों के मध्य में शिव, दक्षिण हरि तथा उत्तर शिखर पर ब्रह्मा ने स्थान ग्रहण किया ।

नौबन्धनमथासाद्य केशवो वै व्यवस्थितः ॥
देवानुयात्रनिनदं श्रुत्वा दैत्योऽपि दुर्मतिः ।
जले स्वयच्यमात्मानं विदित्वा न विनिर्गतः ॥
—162।२१३, २१४

अनिर्गतं तं च तदा विज्ञाय मधुसूदनः ।
नौबंध एवमुदितो विवेशाथ सुरैः सह ॥
—163।२१५,

नौबन्धशिखरे रुद्रो दक्षिणे शिखरे हरिः ।
उत्तरे शिखरे ब्रह्मा तेषामनुसुरासुरः ॥
—164।२१६

एवं ते विविशुः नीले ततो देवो जनार्दनः ।
अनन्तमाह धर्मात्मा यथार्थं दानवस्य तु ॥
—165।२१७

जलोद्भव जल में था । विचलित नहीं हुआ । बिना जल निकले दैत्य दृष्टिगत नहीं हो सकता था । अतएव भगवान् अनत ने पर्वतराज को विदारित कर दिया । जल वेग से निकलने लगा । जल निकल जाने पर जल स्थित सभी भूत संज्ञाहीन हो गये ।

जलोद्भव ने अंधकार का सृजन किया । घोर अंधकार में नौबंधन आवृत हो गया । शंभु ने अपने दोनों करो में सूर्य तथा चन्द्रमा को लिया । अंधकार तिरोहित हो गया । विष्णु ने दैत्य को देखा । विष्णु और जलोद्भव का युद्ध आरम्भ हुआ । भीषण

युद्ध के पश्चात् भगवान् के चक्र द्वारा जलोद्भव का मुंड छिन्न हो गया।

नीलमत पुराण में बारहमूला के पास जल निकालने की तरफ संकेत किया गया है।

नीलाम्बरः काञ्चनबद्धमौलिः संपूज्यमानस्त्रिदशैः समेतैः।
विदारयामास स लांगलेन हिमाचलं शैलवरं पृथिव्याम्॥
—168।२२०

विदारिते पर्वतराजराजे विनिर्ययौ तज्जलमाशुवेगात्।
वेगेन शब्देन च सर्वभूतान् सन्त्रासयानं कुटिलैस्तरंगैः॥
२२१

हिमाचलाभैर्गगनम् स्पृशद्भिः सप्लावमानम् गिरिमस्तकानि ॥ —161।२२१, २२२

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते राजन् मन्वन्तरे किल।
मारीचाय ददौ दक्षः कश्यपाय त्रयोदश॥
—46।६७–७०

एतस्मिन्नेव काले तु कश्यपो भगवान् ऋषिः।
तीर्थयात्राप्रसंगेन चचार सकलां महीम्॥
—81।१२३–१२४

तीर्थयात्रागतं श्रुत्वा कश्यपं पन्नगाधिपः।
नीलो जगाम तं द्रष्टुं तीर्थे कनखले तथा॥
—96।१३९

उपविष्टस्तदा नागो ध्यज्ञापयत कश्यपम्।
पितरं तपसां स्थानं यत्तच्छृणु नराधिप॥
—99।१४२

उत्तीर्य च महाभागो विपाशां पापनाशिनीम्।
दृष्टवान् सकलं देशं तदा शून्यं स कश्यपः॥
—133।१७६

ऋद्ध्यैव कश्यपः प्रायाच्छ्रुतवांस्तत् पुरन्दरः।
ततो देवगणैः सार्धं यात्यस्मिन्केशवान्तिकम्॥
—149।२०१

तस्योदगाश्रमं चक्रे ब्रह्मा देववरः स्वयम्।
पश्चार्धे चाश्रमं चक्रे कश्यपो भगवानृषिः॥
—180।२३३–२३४

देवर्षिनागमुख्येष्वधितिष्ठितेष्वथ कश्यपः।
उवाच वरदं विष्णुं हस्तौ बद्ध्वा पुरः स्थितः॥
—198।२६०

वसतां रमणीयश्च पुण्यश्च भविता तथा।
कश्यपं ब्रुवतीत्येवं नागा वचनमब्रुवन्॥
—199।२६३–२६४

न वय मानुषैः सार्धं वसामो मुनिपुंगव।
तानुवाच तथा क्रुद्धः कश्यपो वै प्रजापतिः॥
— 201।२६६–२६

एवं उक्ते कश्यपेन नीलः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
एते क्रोधवशा ब्रह्मन्नाभिजानन्ति किंचन॥
—202।२६८–२६९

कश्यपस्तमुवाचाथ ऋषिः परमधार्मिकः।
वालुकार्णवमध्ये तु द्वीपः षट्योजनायतः॥
—203।२७६–२७७

कः प्रजापतिरुद्दिष्टः कश्यपश्च प्रजापतिः।
तेनेदं निर्मितं देशं काश्मीराख्यं भविष्यति॥

—218।२९१–२९२

एवं निविष्टान् काश्मीरान्दृष्ट्वा हृष्टस्तु कश्यपः।
आराध्य शंकरं देवमुमां देवीमचोदयत॥
—228।३०५

अदितिर्देवमाता च कश्यपेन प्रचोदिता।
त्रिकोटिर्नामतो भूत्वा नदीदेशे प्रसर्पति॥
—231।३०८

शक्रपत्नी शची या च सा च कश्यपचोदिता।
नाम्ना हर्षं यथा याता देशेऽस्मिन् पापसूदनी॥
—232।३०९

एवं कश्यपवाक्येन देवदानवमातरः।
देवपत्न्यस्तथा पुण्याः सरिद्रूपत्वमागताः॥
—234।३११

तत्र कश्यपवाक्येन तीर्थसागरनिम्नगाः।
काश्मीराय तदा जग्मुः सान्निध्यं पुण्यवृद्धये॥
—235।३१२

कदाचित्कश्यपं द्रष्टुं ययुर्देव्यः प्रकीर्तिताः।
तास्तत्र चोदयामास कश्यपो भगवानृषिः॥
—239।३१६–३१८

आराधयामास तदा मन्यर्थेन तु शंकरम्।
तदोवाच हरो भार्यां कुरु कश्यपभाषितम्।
—242।३२३–३२८

रसातलं जगामासौ पुनस्तामेव कश्यप।
प्रसार्योन्माज्जयामास पञ्चहस्त समीपतः॥
—255।३४५–३४६

सा च दृष्ट्वा कृतघ्नेन तिरोधानं गता पुनः।
भूयः कश्यपवाक्येन चोदिता निम्नगोत्तमा॥
—257।३४७–३४८

भूयः कश्यपवाक्येन नरसिंहाश्रमे शुभा।
उन्मज्जिता नदी विप्रैस्तूयमाना सहस्रशः॥
—259।३४९–३५०

क्रोशमात्रे ततो दृष्ट्वा ब्रह्मघ्नेन महानदी।
अन्तर्धानं जगामासौ ततस्तामाह कश्यपः॥
—260।३५०–३५१

एवं प्रसादिता भक्त्या कश्यपेन महात्मना।
उवाच कश्यपं देवी तं तथावादिनं तदा॥
—266।३५७

एवं सशोको विज्ञाय कश्यपस्त्वब्रवीत् पुनः।
त्वमेव परमा शक्तिर्ऋषिभिर्मन्त्रिभिः स्तुता।
क्षीरोदकन्ये विरजे पवित्रे मङ्गलास्पदे॥
—273।३६७–३६८

पुनस्तां तु महाभागां ऋषिः प्रोवाच कश्यपः।
अवश्यं हलमार्गेण गन्तव्यं सुभगे त्वया॥
—300।३९९–४००

अन्यथा देश एवायं मरस्त्वमुपयास्यति।
भूयो भूयश्चोदमाना कश्यपेन मद्द्विरा॥
—301।४००–४०१

एषा हि पापशमनी वितस्ता निम्नगोत्तमा।
कश्यपस्य ॥ वाक्येन सद्म्या महगता क्षितिम्॥
—321।४२२

प्रजापतिः कश्यपो हि सर्वभूतपिता प्रभो।
त्वया तु शोभतेऽप्यर्थं पुत्रेणात्यन्तधार्मिकः॥
—352।४५५

कार्तिक्यां समतीतायां संप्राप्ते प्रथमेऽहनि।
कश्मीरा निर्मिता पूर्वं कश्यपेन महात्मना॥
—450।५६१

ब्राह्मणं कश्यपं वह्निं वायुं गगनमेव च।
माल्यैर्गन्धैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैश्च पृथक् पृथक्॥
—542।६६४

ऋषयो बालखिल्याश्च कश्यपागस्त्यनारदाः।
तथैवाप्सरसः पुण्याः पूज्या देवाश्च सोमपाः॥
—605।७२७

आषाढ्यां समतीतायां यदा स्याद् द्विजरोहिणी।
तदा तु कश्यपः पूज्यो देशस्यास्य प्रवर्तकः॥
—710।८४७

दिवाकरेण सौम्येन वह्निना पवनेन च।
कश्यपेनाथ भृगुना पुलस्त्येन तथात्रिणा॥
—1155।१३६६–१३६७

रामोऽपि तपसा दीप्तो वाजिमेधे महाक्रतौ॥
दत्वा महीं कश्यपाय महेन्द्रं पर्वतं गतः॥
—1225।१४३८–१४३९

नीलमत पुराण से मालूम होता है कि काश्मीर में कश्यप स्वामी, कश्यपेश तथा कश्यपेश्वर के देवस्थान थे।

कश्यपस्वामी:

कार्तवीर्यार्जुनस्वामी दृष्ट्वा तं च दिवाकरम्।
मार्तण्डं कश्यपस्वामिं विष्वगश्वकृतं रविम्॥
—1017।११८९

ब्रह्माणं वरदं दृष्ट्वा शैलरूपधरं स्वयम्।
विष्णुस्वामिं हरस्वामिं कश्यपस्वामिनस्तथा॥
—1019।११९१

कश्यपेश:

चक्रेश्वरं सचन्द्रेशं कश्यपेशं विलोहितम्।
कामेशं स वसिष्ठेशं भूतेशं सगणेश्वरम्॥
—1023।११९४–९५

कश्यपेश्वरः

हिमाचलेशं शंखेशं देशं चैवतिलेश्वरम् ।
महानन्दीश्वरं शम्भुं वरदं कश्यपेश्वरम् ॥
—1025।११९७

शम्भुस्तथा चन्द्रदिवाकरौ द्वौ जग्राह देवोऽथ करद्वयेन।
प्रकाशमासीज्जगतो निमेषाद्ध्वस्तं तथा सर्वमथान्धकारम् ॥ 171।२२३–२२४

ध्वस्तेऽन्धकारे हरिरप्रमेयः योगेन कृत्वा स्वपरं शरीरम्
दैत्येन युद्धं स चकार माघं देहेन चान्येन स युद्धमैक्षत् ॥—172।२२४

विष्णोश्च दैत्येन बभूव युद्धं घोरं द्रुमैः पर्वतमस्तकैश्च
युद्धं च ते देवगणाः समस्ताः प्रहृष्टचित्ता ददृशुः समन्तात् ॥ 173।२२५–२२६

जल निकल जाने के कारण सतीसर सुंदर आनंद कानन में परिणत हो गया। अबुल फजल आइने अकबरी में लिखता है—'जब जल घट गया, तो कश्यप जो अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे, ब्राह्मणों को इस देश में आबाद करने के लिए लाये। आदमियों की तादाद बहुत बढ़ गयी, तो शासन करना आवश्यक हो गया।

'सभा में एक मत से लोगों ने जो उनमें गुणी था, राजा चुन लिया। उस समय से काश्मीर में राजतंत्र स्थापित हो गया। राजा गोनन्द के समय तक चलता रहा। उसे आज अर्थात् १४ वर्ष अकबर के शासन काल से ४४४४ वर्ष हो चुके है।'

कश्यपपुर (मुलतान) मुलतान का प्राचीन नाम था। तत्पश्चात् हंसपुर, वेगपुर, शांबपुर तथा अंत में इसका नाम मूलस्थान हुआ। वर्तमान मुलतान शब्द मूलस्थान का अपभ्रंश है।

लगभग ३००० वर्ष ईसा पूर्व मुलतान का निश्चित नाम क्या था, कहना कठिन है महेनजोदारो तथा हरप्पा से इस नगर का संबंध जल और स्थल दोनों मार्गों से था। यह निर्विवाद है। मुलतान का नाम ई० पू० ६०० वर्ष में प्रकाश में आया है।

ऊपर लिख चुका हूँ। मुलतान का प्राचीन भारतीय नाम कश्यपपुर था। फारसी तथा प्राकृत भाषा में मुलतान को कश्यपपुर नाम से संबोधित किया गया है। हेकालोरस ने इसका यूनानी नाम 'कशपापैरोस' दिया है। यह यूनानी शब्द निस्संदेह कश्यपुर का अपभ्रंश है।

प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस ने 'कशपतेरोस' नाम का उल्लेख किया है। अलकक्षेंद्र अर्थात् सिकंदर के ऐतिहासिकों ने मुलतान को 'मोल्लियों' की राजधानी बताया है। प्तोलिमी ने 'कसपुर' नाम दिया है। यह शब्द कश्यपपुर का अपभ्रंश है।

सन् ६४१ ई० में ह्वेनसाग भारत आया था। पर्यटन काल में इस स्थान की यात्रा की थी। मुलतान के विशाल सूर्य मंदिर तथा नगर का अद्भुत वर्णन करता है।

आठवीं शताब्दी के पश्चात् मूलस्थान का अपभ्रंश मुलतान हो गया। एक प्राचीन गाथा है। भगवान् नरसिंह ने यहाँ अवतार लिया था। नरसिंह भगवान् ने हिरण्यकश्यप राक्षस का वध किया था। हिरण्यकश्यप राक्षसों का राजा था। हिरण्य शब्द के साथ कश्यप शब्द इस बात का बोध कराता है कि हिरण्यकश्यप का संबंध कश्यप वंश तथा कश्यपपुर से था।

कश्यप राक्षसों के आद्य पुरुष थे। हिरण्यकश्यप का पुत्र विष्णु का उपासक था। राक्षस, पिशाच तथा नाग जाति शिव की उपासक थी। हिरण्यकश्यप संभवतः विष्णु पूजा का विरोधी था। उसका यह विरोध विष्णु भक्ति की ओर आकर्षित प्रह्लाद के प्रति उग्र हो उठा। अनुमान किया जा सकता है। नरसिंहावतार की कथा शैव तथा वैष्णव मत के संघर्ष का एक रूपक है।

कश्यपपुर का नाम मूलस्थान किस प्रकार पड़ गया। विचारणीय विषय है। मैं समझता हूँ, जहाँ भगवान् के अवतार लेने के स्थान का संकेत

प्राचीन काल मे मिलता रहा होगा। उस स्थान का नाम मूलस्थान रख दिया गया। मुसलिम काल मे प्रथम बार काशी का मंदिर जहाँ तोड़ा गया था उसी के समीप मे 'आदि विश्वेश्वर' की स्थापना हो गयी। दूसरे विश्वनाथजी के मंदिर का निर्माण अकबर काल मे हुआ था। आदि विश्वेश्वर के नाम से काशी में एक मुहल्ला भी है। मथुरा में भगवान् श्रीकृष्ण का जिस स्थान पर जन्म हुआ था उसे जन्मभूमि कहते है। वहाँ पर इस समय मसजिद है। मसजिद के पृष्ठभाग मे जन्मस्थान का स्मारक निर्माण कर दिया गया है।

यही बात मुलतान के विषय में हुई होगी। आदि अर्थात् मूल मंदिर जिस स्थान पर रहा होगा उसे 'मूलस्थान' कहा गया। तीर्थस्थान होने के कारण नाम प्रचलित हो गया। हिंदू काल मे मूलस्थान तथा मुसलिम काल मे अपभ्रंश होकर मुलतान नाम पड़ गया।

पुरासंस्कृत साहित्य मे मूलस्थान का उल्लेख मिलता है। रावी नदी के मध्य दो द्वीपो पर उसके बसने का वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध चीनी पर्यटक युवान च्वांग ने इस नगर की यात्रा की थी। उसने मूलस्थान का स्थान सिंध के पूर्व ९० मील बताया है। जनरल कनिंघमने उसे मुलतान माना है।

सौवीर सिंधु नदी के पूर्व तथा सिंधु और वितस्ता के मध्यवर्ती भाग को माना गया है। यह देश, प्रदेश किंवा क्षेत्र मुलतान तक विस्तृत था। सिंधु देश को युआन च्वांग ने सिंध नदी के पश्चिम का भूखंड बताया है।

मार्कंडेय, ब्रह्मांड, वायु तथा मत्स्य पुराण के अनुसार सौवीर में मुलतान तथा झरावार क्षेत्र सम्मिलित थे। झरावार क्षेत्र वितस्ता (झेलम) तथा चंद्रभागा (चेनाव) के संगम से ५० मील अधोभाग पर स्थित था। मुलतान सौवीर प्रदेश के उत्तर में था।

स्कंदपुराण ने भारत को ९ खंड तथा ७१ विभेदों में बाँटा है। किंतु नाम ७५ का दिया है। मूलस्थान क्षेत्र की क्रमसंख्या तालिका में ७ वी है। उसमे २५ हजार ग्राम थे। ग्रामों की संख्या स्वल्प होने के कारण अनुमान लगाया जा सकता है। मुलतान क्षेत्र बहुत बड़ा नही था।

वाराह क्षेत्र—सोमदेव भट्ट 'कथासरित्सागर' में उल्लेख करता है कि भगवान् विष्णु ने स्वयं वाराह क्षेत्र को पवित्र किया था।—'वाराहं यत्र च क्षेत्रं ये पूतश्चक्रपाणिना—।'(७ . ५ : ३७) क्षेमेन्द्र ने लोक प्रकाश मे वाराह क्षेत्र का उल्लेख करते लिखता है 'वाराह क्षेत्र—कोट विहार समीपे—'

मैं यहाँ दो शब्द वाराह क्षेत्र माहात्म्य के विषय मे लिखना चाहता हूँ। वारहमूला के 'खादनयार' गाँव के आगे से वितस्ता की धारा में तेजी आ जाती है। इसके पश्चात् वितस्ता मे नाव चलना संभव नही होता। इस स्थान पर दोनो पार्श्व में पर्वत हैं। पर्वतों के मध्य सबसे अधिक संकुचित यह स्थान है। यहाँ से वितस्ता वेगवती हो जाती है। स्पष्ट प्रतीत होता है। जल दौड़ता नीचे की ओर भागा जा रहा है। यहाँ यदि पानी रोक दिया जाय तो समस्त काश्मीर उपत्यका के पानी का स्तर ऊपर उठ जायेगा। समस्त काश्मीर मंडल पूर्वकालीन वर्णित सतीसर तुल्य हो जायगा। केवल सारिका पर्वत तथा उसका स्थान जल में द्वीप के समान प्रकट होगा।

यही पर पर्वत काटकर संकीर्ण जल मार्ग विस्तृत किया गया था। नदी की सतह की चट्टानो को खोदकर नदी का पेटा गहरा किया गया था। यही वितस्ता द्वारा पानी निकालकर काश्मीर उपत्यका सूखी भूमि बनाई गई थी। इस स्थान तथा उपत्यका का भूगोल समझ लेने पर प्राचीन कथा की सत्यता सिद्ध हो जाती है।

मैंने इस स्थान को देखा है। वितस्ता नदी में इस समय भी एक चट्टान जल में टकराती, तटीय

पर्वत के वाम पार्श्व में लगी खड़ी है। इससे कुछ आगे चलकर द्रंगवल नाला वितस्ता के दक्षिणी तट पर आकर मिलता है। नाले की दो शाखाएँ हो जाती हैं। मूलत एक ही स्थान पर उनका उद्गम है। यह नाला पहाड़ से शिलाखंड, रेत तथा पंकराशि लाकर नदी के गर्त को पाटता रहता है। नदी का गर्त किंवा पेटा साफ करने के लिए यहाँ पर बाढ़ विभाग की तरफ से इस समय कार्य हो रहा है। दो बुलडोजर काम कर रहे थे। नदी से पंकराशि निकाल कर बाहर फेंक रहे थे।

बारहमूला में दो श्मशान भूमियाँ हैं। मैंने यहाँ की बार बार यात्राएँ की हैं। सन् १९६० में आया था तो चिता पर शव जल रहे थे। एक सिखों का श्मशान है दूसरा हिंदुओं का है। यदि इस संकुचित स्थान पर शिलाखंड, रेत तथा पंकराशि भर जाय तो वितस्ता की जलधारा अनायास रुक जायेगी। काश्मीर उपत्यका का जल वेग से बाहर नहीं निकल पायगा। काश्मीर उपत्यका में जल रुककर काश्मीर उपत्यका का जलस्तर ऊपर उठा देगा। ऊलर तथा डल आदि सरों का जल उठकर उपत्यका को एक विशाल सर में परिणत कर देगा। उसे आप्लावित करने लगेगा। एतदर्थ प्राचीन काल से इस स्थान पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। नदी का जल वेग से बाहर निकलता जाय। इसके लिए समय समय पर योजनाएँ बनाई गई हैं। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

यहाँ पर एक पुराना 'द्रंग' अर्थात् चौकी था। स्थान इतना संकुचित है कि काश्मीर मंडल प्रवेश द्वार का कार्य करता है। सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्व रखता है। प्राचीन द्रंग के कारण नाला का नाम द्रंगबल पड़ गया है। इस स्थान पर हिन्दू काल में द्वारपति अर्थात् उच्च सेनाधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। काश्मीर के सैनिक इतिहास में द्वारपति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान तथा योगदान रहा है। इसका पद सेनापति के समान समझा जाता था।

नारायण स्थान :

इस नाला से नदी के अधोभाग की ओर बढ़ने पर नारायण मंदिर मिलता है। इसे नीलमत में *नारायण स्थान कहा गया है।* यह मंदिर वितस्ता के दक्षिण तट पर स्थित है। बारहमूला से एक मील दूर होगा। पुरानी बारहमूला मुजफ्फराबाद रोड पर है। यह पहाड़ों के मूल में है। वर्तमान बारहमूला सड़क के निर्माण के पूर्व यह सड़क खूब चलती थी।

मंदिर सवा तेरह वर्ग फुट में है। मंदिर में केवल एक द्वार तीन फुट चौड़ा है। मंदिर के समीप एक नाग अर्थात् जलस्रोत है। नारायण मंदिर पूर्व काल में एक सुन्दर निर्मल सरोवर के मध्य में स्थित था। इस समय मंदिर के पृष्ठभाग का सरोवर स्थान रेत तथा पंक से पट गया है। मंदिर पूर्णतया खंडहर की हालत में है। मंदिर का एक भाग भूमि के अंदर है। मंदिर द्वार के सम्मुख कुछ सरोवर का भाग अपनी पूर्व स्थिति का स्मरण कराता है। करुण गाथा सुनाता है। यात्रियों से अपनी दशा पर सहानुभूति के लिए याचना करता है। जलस्रोत आँसुओं की तरह निकलता रहता है।

मंदिर के पृष्ठ भाग में एक कब्रिस्तान है। कुछ दिनों में सरोवर का शेष भाग रेत और पंक से पट जायगा। मंदिर का अस्तित्व केवल पुस्तकों में शेष रहेगा। मंदिर में मूर्ति नहीं है। शायद कोई उठा ले गया है। किंवा कब्रिस्तान के किसी कब्र में लगी होगी। अथवा किसी के मकान की नींव में पड़ी सो रही होगी। मंदिर में लगे कुछ पत्थर ९½ फुट लम्बे तथा १३ इंच मोटे हैं। मंदिर के भग्नावशेष यत्र-तत्र पड़े दिखाई देते हैं।

मैं अन्तिम बार यहाँ आया था सन् १९६४ में। उस समय यहाँ के बहुत वृक्ष कट चुके थे। स्थान की अभिरामता नष्ट हो रही थी। दो,तीन शहतूत के पेड़ सरोवर के तीर पर लगे थे। उन्हें भी काटा जा रहा था। किसी समय का सुरम्य देवस्थान कब्रि-

स्तान के सम्पर्क में रहने के कारण सचमुच श्मशान हो गया है ।

इस स्थान में वितस्ता की धारा में वेग आ जाता है । एक मील और धारा के साथ जाने के पश्चात् वितस्ता नदी अपना शांत स्थिर रूप त्याग कर हर-हर करती गर्त में प्रवेश करती है । चट्टानों और ढोकों से टकराती उरी तक चली जाती है । नीलमत पुराण में नारायण स्थान का उल्लेख आता है ।

नारायणस्य च स्थानं सपुण्यं बदिराश्रमम् ।
सुगन्धां शतकुम्भां च कालिकाश्रममेव च ॥
—87 : १२८, १२९

देवं नारायणं स्थाने पश्चिमे तु वरप्रदम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं देवं वराहस्य समीपगम् ॥
—1158 : १२९९, १३००

स्नात्वा नारायणस्थाने विष्णुलोके महीयते ।
रामतीर्थे भवोन्मे च फलमेतद् प्रकीर्तितम् ॥
—1312 : १५२६

स्नात्वा नारायणस्थाने वितस्ताम्भसि पार्थिव ।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरो नाम्यत्र संशयः ॥
—1345 : १५६०

नीलमत पुराण में नारायण स्थल का दो स्थानों पर तीर्थरूप में वर्णन किया गया है । मालूम होता है, दो नारायण स्थान थे । श्लोक संख्या १३४५, १५६० तथा १५०८ में वाराह क्षेत्र का उल्लेख है । परन्तु श्लोक संख्या १३१२,१५२६ में वाराह क्षेत्र का उल्लेख नहीं है ।

महाभारत वन पर्व (८३ १८-१९) में वराहावतार स्थान के विषय में उल्लेख मिलता है । पुरुक्षेत्र सीमा के अन्तर्गत यह एक तीर्थ है । भगवान् विष्णु ने यहाँ वाराह रूप में अवतार लिया था । इस तीर्थ में स्नान करने पर स्नानार्थी को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है । वाराह क्षेत्र के विषय में यथा स्थानपर प्रकाश डाला गया है ।

वाराह अवतार—वाराह भगवान् का अवतार मालूम होता है । इसी क्षेत्र में हुआ था । कल्हण ने तरंग २ के श्लोक १९२ में वराह वार्त शब्द का प्रयोग किया है । यह स्थान वर्तमान वराहग्राम के समीप होना चाहिए । वराह ग्राम बीरु परगना में है । इस से तीन मील पूर्व होगा । आदिवराह का यहाँ अवतार लेना कहा जाता है । वारहमूला अर्थात् मूल वाराह किंवा वराह नाम से इसलिए संबोधित किया गया है ।

वनियर का अभिभावक दानिशमद खाँ था जिसके साथ वह कश्मीर गया था । वह एक रोचक कहानी उपस्थित करता है—'दानिशमंद खाँ ने मुझे वारहमूला जाकर एक अलौकिक घटना देखने के लिए कहा । तात्पर्य यह था कि मैं इस दैवी चमत्कार को देखकर अपना धर्म परिवर्तन कर दूँ और मुसलमान हो जाऊँ । यहाँ पर एक मसजिद है । एक दरवेश की कब्र है । यह कब्र एक मसजिद में है । यद्यपि दरवेश मर चुके हैं । अलौकिक ढंग से बीमार तथा पशुओं को अच्छा करते हैं । चाहे मैं इस चमत्कार पर विश्वास न करूँ परंतु यहाँ एक दूसरी चीज और है । उस दरवेश के कारण यह चमत्कार होता है । यहाँ एक गोल पत्थर है । उसे मजबूत से मजबूत आदमी नहीं उठा सकता । यदि ११ आदमी दरवेश की प्रार्थना कर अपनी एक-एक उंगली उसमें लगाकर उठाएँ तो वह मुर्गे तिनके की तरह हलका उठ जाता है ।

'मुझे वारहमूला अच्छा लगा । दरवेश की जियारत और यह कीमती सामान से सजी थी । उसे घेर कर बहुत से लोग बैठे थे । वे कहते थे कि वे बीमार थे । अच्छे होने के लिए आये थे । मसजिद की बगल में एक बावर्ची खाना था । वहाँ डेग चढ़ा था । उसमें चावल तथा गोश्त पक रहा था । मैं समझ गया । इस ढंग के चुम्बकीय भोज पदार्थ के आकर्षण के कारण गरीब तथा बीमार एकत्र हो गये थे । मसजिद की दूसरी तरफ खुन्दा का मकान था । बाग था । यहाँ से आमदनी करता था । उसकी तारीफ

करने में लोग होड़ लगाए थे। जब तक मैं वहाँ था, एक भी बीमार आदमी अच्छा होते नहीं देखा।

'वह पत्थर जो मुझे मुसलमान धर्म में दीक्षित करने के लिए वहाँ पड़ा था, उसे ११ मुल्ला घेर कर खड़े थे। वे इस प्रकार उसे घेर कर खड़े थे कि मैं कठिनता से अन्दर देख सकता था। मैंने इस धोखे की बात को किसी प्रकार देख लिया। मुल्ला लोग एक उँगली की जगह अपना अँगूठा तथा उँगलियाँ पत्थर से लगाए थे। वे उसे उठाये। वहाँ खड़े लोग चिल्लाने लगे—करामात-करामात। मैंने उन्हें एक रुपया देकर कहा। क्या ग्यारह उठाने वालों में वे मुझे भी एक शामिल कर लेंगे। उन्होंने अनिच्छा प्रकट की। परन्तु मैंने श्रद्धा भक्ति दिखाते हुए एक रुपया और दिया तो एक मुल्ला हट गया। मैंने उसमें अपनी केवल एक उँगली लगाई थी। अतएव पत्थर उठाते समय मेरी तरफ झुका आता था। मुल्ला मेरी ओर बुरी निगाह से देखने लगे। अंत में मैंने इसमें बुद्धिमानी समझी कि उँगली तथा अँगूठी दोनों लगाया जाय। पत्थर मुश्किल से उठा। मैं भी करामात करामात कहने लगा। मैं एक रुपया और फेंककर चुपचाप वहाँ से चल दिया। मैंने कुछ जल-पान नहीं किया था। दरवेश को मर्यादा के लिए नमस्कार किया। मैंने बारहमूला का वह स्थान देखा। जहाँ तंग रास्ते से पानी बहता चला जा रहा था (पृष्ठ ५५-२१२-४१६)।'' बर्नियर ने यहाँ किसी मन्दिर आदि का वर्णन नहीं किया है। संभव है। वैरी नाग की तरह औरंगजेब के समय मन्दिर नष्ट कर दिए गये हों।

संदर्भ : वाराह वैदिक देवता तथा पौराणिक अवतार हैं। उनका उल्लेख ऋ० १:६१:७, १:८८:५; १.२१:११; १:१४६:५; १०:८६.४' ८:७७:१०, ९:९७:७; १९०:२८:४; १०:८६:४; १०:९९:६; काठक संहिता ८:२:२५:२; मैत्रायणी संहिता ३:१४:१९, तैत्तिरीय संहिता ६:२.४:१; ७.२:५:१, तैत्तिरीय आरण्यक १:९:४; शतपथ ब्राह्मण ५.४:३:; तैत्तिरीय ब्राह्मण १:१:३; १:१:३६; १:७.९:४, में मिलता है।

पुराण : मत्स्य : ४७:४७ भागवत : १:३:२७; ३:१३, लिंग १.९४, वायु २:३५, हरिवंश १:४१, पद्म . उ०: ६९,२३७, वराह १३७:१४० मत्स्य १७३, तथा महाभारत : सभापर्व : २८:२९, वनपर्व ८३: ८-१९ में उल्लेख मिलता है।

बारहमूला—वारिमूल : वारिमूल शब्द का अपभ्रंश बारहमूला हो सकता है। वारिमूल चाक्षुष मन्वंतर काल के एक देवता हैं। वार् किंवा वारि शब्द का अर्थ जल होता है। मूल शब्द का अर्थ उद्गम् स्थान अर्थात् जड़ होता है। जहाँ से कोई चीज उत्पन्न होती है। काश्मीर जिस समय सतीसर के रूप में जलमग्न रहा होगा, उस समय इसी स्थान से जल स्रोत के रूप में जल निकाला गया होगा। उसका उद्गम अर्थात् मूल यही स्थान था। देवता तथा मनकार दोनों दृष्टियों से इसका नाम आज से सहस्रों वर्ष पूर्व 'वारिमूल' दिया गया होगा। कालांतर में वारि शब्द वार हो गया। उसमें मूल शब्द जोड़ देने में उसका पूर्ण नाम वारमूल हो गया। वराह अवतार का नाम कालांतर में वहाँ वारिमूल के साथ जोड़ दिया गया। वारिमूल बारह-मूला हो गया होगा। इसी को उलटने पर मूलवाराह नाम पकड़ लिया होगा। यह मेरा अनुमान मात्र है। इस पर और अनुसन्धान की आवश्यकता है।

बारहमूला शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग शुक ने चौथी राजतरंगिणी में किया है। उस समय काश्मीर का बादशाह फतह शाह (सन् १४८६-१५१४ई०) था। बारहमूला में मार्गेश इबराहीम अपने मार्थी ममूद शाह के साथ सेना लेकर आया था। (दत्त ३४५)

बारहमूला शब्द का दूसरी बार उल्लेख श्री शुक ने चक्रेश के बारहमूला में श्रीनगर जाने के प्रसंग में किया है। (दत्त ३६२) इसके पूर्व सब स्थानों पर वाराह क्षेत्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

अबू रिहान ने उष्कर को बारहमूला का नगर कहा है जो नदी के दोनों तटो पर बना आबाद था। (फ्रेगमेन्टस आफ अरबस पृष्ठ ११६)

बारहमूला पहले वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर आबाद था। इस समय दोनों तटों पर आबाद है। उष्कर (हुष्कर) का स्थान वितस्ता के वाम तट पर है। बारहमूला के वर्तमान नगर विकास की सीमा में उष्कर आ गया है। प्राचीन काल से ही बारहमूला नगर तथा हुष्कपुर को जोड़ने के लिए वितस्ता पर पुल बँधा है। इस समय वह पुल और विशाल तथा आधुनिक शैली का बना दिया गया है। वह पुल हिन्दुओं के तीर्थ वाराह क्षेत्र तथा बौद्धो के तीर्थ हुष्कपुर दोनों को मिलाता था। यात्री एक साथ दोनो तीर्थों की यात्रा कर सकते थे।

काश्मीर में शिव, विष्णु, तथा बुद्ध तीनों की पूजा एक साथ चलती थी। इससे प्रकट होता है। बारहमूला के दक्षिण तट पर हिन्दुओ को विशेष और उत्तर तट पर बौद्धों की आबादी थी। बाराहमूला का इसलिए और महत्त्व बढ़ गया था कि वह बौद्ध तथा हिन्दू दोनों का समान रूप से तीर्थ स्थान था। (जोनराज १५६-१६७)

वाराह क्षेत्र माहात्म्य में वाराह क्षेत्र तथा उससे सम्बन्धित अनेक तीर्थस्थानो का उल्लेख मिलता है। कल्हण ने वाराह मन्दिर का कई बार वर्णन किया है। जनश्रुति के अनुसार बारहमूला नगर के पश्चिम, वितस्ता तटपर, कोटि तीर्थ के समीप वाराह का मन्दिर था। कोटि तीर्थ में प्राचीन काल की मूर्तियाँ तथा शिव लिंग मिला है। वह सब खण्डित मूर्तियाँ वाराह मन्दिर की रही होंगी।

वाराह का मन्दिर काश्मीर के सुलतान सिकन्दर बुत शिकन (सन् १३८९-१४११ ई०) ने तुड़वाया था। उस समय इस मन्दिर के साथ ही साथ काश्मीर के मार्तण्ड, विजयेश, ईशान, चक्रभृत (चक्रधर) त्रिपुरेश्वर, शेष, सुरेश्वरी, के प्रसिद्ध मन्दिर भी तोड़े गये थे। (जोनराज : श्लोक ६००; दत्त पृष्ठ ६०)

श्री जोनराज (सन् १४४६ ई०) वाराह क्षेत्र में बडशाह जैनुल आबदीन द्वारा दान सत्र खोलने का उल्लेख करता है। (दत्त ८८) बादशाह ने वाराह क्षेत्र में इतने चावल का दान किया था कि उसके भार से अनन्त नाग का मस्तक झुक गया था। इन्द्र का मस्तक भी इस दान को देखकर लज्जा से नत हो गया था। (दत्त १३९)

श्री शुक अन्तिम और चौथी राज-तरंगिणी में एक अद्भुत घटना का वर्णन करता है—

'आश्विन मास लौकिक संवत् ४६३० (सन् १५५२ ई०) सुलतान इस्माइल शाह के समय में भयंकर भूकम्प आया था। लोग इतने भयभीत हो गये थे कि पुत्र, स्त्री, सज्जनों, दयालुओं तथा किसी के लिए सहानुभूति नहीं रह गयी थी। तथापि वाराह क्षेत्र के नागरिकों में किसी प्रकार की चिन्ता व्याप्त नहीं थी। वहाँ पर लोगो ने भूकम्प का अनुभव किया ही नहीं।' (दत्त : ३८१) राज-तरंगिणी में अन्तिम बार बारहमूला का उल्लेख सम्राट् अकबर की सेना के अभियान के समय आता है। काश्मीर के सुलतान यूसुफ शाह ने मन्दिर में शरण ली थी।

वितस्ता : गंगा नदी का वर्णन वेदो के केवल दो बार आया है। वितस्ता का नाम ऋग्वेद में एक बार आया है। ऋग्वेद के नदी सूक्त के प्रसंग (१०,७५,५) तथा निरुक्त (९,२६,) में वितस्ता का उल्लेख किया गया है।

वितस्ता नदी का ज्ञान वैदिक पुरुषो को था। गंगा की पूर्व दिशावर्ती नदियों का नाम वेद में नहीं मिलता है। उनका ज्ञान वैदिक रचनाकारों को नहीं था। उनके वितस्ता ज्ञान तथा वर्णन मे प्रकट होता है। वितस्ता का महत्व वैदिक युग में था।

भागवत पुराण (५:१९:१८) में वितस्ता का उल्लेख मिलता है। पाणिनि की काशिका वृत्ति

(१:४.३१) में वितस्ता का वर्णन किया गया है। अलकसुन्दर अर्थात् सिकन्दर के इतिहासकारों ने इसका नाम हदसपेज और प्तोलेमो ने इसका बिदसपेस नाम दिया है। काश्मीर में इसको विरंग, अदपल, गंदरन तथा झेलम कहते हैं।

पाली साहित्य में वितस्ता को वितमसा की संज्ञा दी गयी है। उसकी गणना उत्तरापथ की नदियों में की गयी है। (धम्मपदट्ठकथा भाग २, पृष्ठ ११६, मिलिंद प्रश्न हि०, पृष्ठ १४४, अवदान, पृष्ठ २७७, तथा २९१)

महाभारत कर्ण पर्व (अ० ४४) में वितस्ता का उल्लेख मिलता है।

चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरः।
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान्व्रजेत् ॥

सभा पर्व (९:१९) में उल्लेख है कि वितस्ता वरुण की सभा में उपस्थित रहती है। उनकी उपासना करती है। वन पर्व (८२: ८९-९१) के अनुसार वितस्ता में स्नान करने से वाजपेय यज्ञ की फलप्राप्ति होती है। काश्मीर में नागराज तक्षक का प्रसिद्ध भवन है।

उद्योग पर्व में वर्णन मिलता है। इसकी धारा में ब्राह्मणों के ४०० श्यामकर्ण अश्व बह गये थे। भीष्म पर्व (९: १६) में उल्लेख मिलता है कि इसका जल भारतीय पान करते हैं। अर्थात् वह भारत में बहती है। अनुशासन पर्व (२५: ७८) तथा (१४६: १८) के अनुसार सात दिन इसमें स्नान करनेवाला मुनितुल्य निर्मल हो जाता है। पार्वती ने वितस्ता के संदर्भ में शंकर से स्त्री धर्म की चर्चा की थी। इसी पर्व में (८ : ६) एक वितस्त्य ऋषि का वर्णन है। वह सार्वजस ऋषि के पुत्र थे।

सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर में वितस्ता को जाह्नवी के समकक्ष माना है :—"धत्ते नाम वितस्तेति वहन्ति यत्र जाह्नवी" ७:५:३७

बनिहाल गिरिपथ से कश्मीर उपत्यका का सुन्दर मनोहारी, अभिराम दृश्य मिलता है। वहाँ से धुँधला वेरी नाग का अंचल दृष्टिगत होता है। बनिहाल से काश्मीर उपत्यका में उतरते ही एक पक्का अलकतरा का सुन्दर राजपथ श्रीनगर के मुख्य मार्ग को छोड़ता है। पूर्व दिशा में वेरीनाग की तरफ बढ़ता है। तिमुहानी से उतरने पर वीर नाग ग्राम पड़ता है। गाँव का नाम यहाँ के निर्झर वार या वेरी के नाम पर पड़ा। 'वीर नाग' शब्द 'विरह नाग' का अपभ्रंश है। नाग का अर्थ जलस्रोत, निर्झर, झरना, चश्मा तथा सोता है। विरह का अर्थ वियोग, बिछुड़ना अथवा छोड़कर चले जाना है। विरह नाग शब्द का अपभ्रंश वीरनाग या वेरीनाग हो गया है।

वितस्ता देवी इस स्थान में जन्म लेना चाहती थीं। वहाँ शंकर विराजमान थे। उन्हें वहाँ देखकर देवी ने सांतस्विनी का रूप वितस्तात्रा (विठवतुर) ग्राम में लिया। यह ग्राम वेरीनाग से एक मील उत्तर-पश्चिम स्थित है। इस स्थान को वितस्ता वार्तिक नाम की भी संज्ञा दी गई है। कल्हण के समय यह स्थान वितस्तात्रा नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पर अशोक ने स्तूपों का निर्माण कराया था।

वर्तमान कुंड अठपहला है। प्रत्येक पहल का विस्तार ४७ फुट है। मैं यहाँ चौथी बार १९६४ में आया था। प्रथम यात्रा मैंने सन् १९५६ ई० में की थी। आज तथा उस समय के वातावरण तथा स्थिति में बहुत अन्तर हो गया है। सन् १९५७ ई० में तोरणद्वार, सन् १९६० ई० में डाक बंगला तथा अब एक प्रकार से समस्त स्थान का जीर्णोद्धार कर दिया गया है। भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा जीर्णोद्धार का कार्य उसके मूल रूप को अक्षुण्ण रखते हुए, किया गया है।

संवत् १९९९ विक्रमी में कुंड के ऊपर वाम पार्श्व में खननकार्य किया गया था। यह स्थान वर्तमान प्रवेश द्वार के दक्षिण पार्श्व में ऊँचाई पर है। यहाँ प्राचीन मूर्तियाँ एक के ऊपर एक रखी और गड़ी हुई मिली थीं। मूर्तियाँ पत्थर की हैं। विष्णु भगवान्

आदि की है। इस समय श्रीनगर के राज्य संग्रहालय में रखी है। मैं इन्हें कितनी ही बार ध्यानपूर्वक देख चुका हूँ। उन्हें देखकर न जाने क्यो मुझे रुलाई आने लगी। उनसे जैसे अपना निकटतम संबंध मालूम होता था। सोचता था। उनका क्या अपराध था! वे खंडित कर गाड़ दी गईं। केवल इसलिए कि उनकी कभी हिंदू पूजा करते थे। वे मूर्तिपूजक हिंदू अब मुसलमान हो गये हैं। मूर्तियों के शत्रु बन गये हैं। जिनकी कभी पूजा करते थे। उन्हें खंडित करने लगे। धर्म की यह विचित्र विडंबना देखकर, वे किस प्रकार कभी राजकीय सम्मान पाती रही होंगी, स्मरणकर, मन अनायास भर आया। यद्यपि मूर्ति पूजा का मैं कायल नहीं हूँ तथापि मनुष्यों की गति पर, उनकी दुर्बलता पर, मुझे ग्लानि अवश्य उत्पन्न हुई।

अठपहले कुंड के अठपहल अर्थात् जलतट के पश्चात् समतल चबूतरा काफी चौडा है। उसके पश्चात् सन् १६२० ई० में जहाँगीर द्वारा छोटे-छोटे कोठरीनुमा बरामदे निर्माण कराये गये थे। चबूतरे से बरामदे की ऊँचाई काफी है। मध्यवर्ती महराबो पर हिंदू शैली की पाषाण की नक्काशीदार घुडियाँ लगी हैं। सन् १६२७ ई० में शाहजहाँ ने यहाँ बाग लगवाया था। नहरादि का निर्माण कराया था। इस बाग में चिनार के हरे-भरे काफी ऊँचे वृक्ष लगे हैं। अनेक तरुवर अपनी अपनी हरियाली तथा छाया से स्थान की अभिरामता बढाते हैं। कुंड से बाहर बाग में नहर सीधी निकलती है।

नहर के दक्षिण पार्श्व मे कुछ पुराना शिवालय है। कुंड स्थल में प्रवेश करते ही वाम पार्श्व में एक मिहराबदार कोठरी में देवो तथा देवताओ की मूर्तियाँ रखी गयी हैं। यहाँ एक पुजारी रहता है। देवी को देवी वितस्ता कहा जाता है।

मन्दिर के दक्षिण पार्श्व में कुछ दूर आगे चलने पर भूमि से पानी वेगपूर्वक निकलता दिखाई पड़ता है। यह जलस्रोत मुख्य नहरवाले जलस्रोत में जाकर मिल जाता है।

नीलनाग अर्थात् वेरीनाग कुंड का जल स्थिर है। उसमे जल निकलने का उस समय तक अनुभव नही होता है, जब तक कि कुंड के बाहर नहर में वेग से जल गिरता न देख लिया जाय। कुंड के जल की स्थिरता का मुख्य कारण कुंड की गहराई है।

कुंड को गहराई के तीन खंड हैं। कुंड चौवन फुट गहरा है। कुंड की पहली सीढी का चबूतरानुमा घेरा १८ फुट गहराई के बाद मिलता है। पुनः दूसरी गहराई पहले खंड के पश्चात् अट्ठारह फुट बाद मिलती है। वहाँ भी चारो ओर चबूतरा बना है। अट्ठारह फुट गहरा और जाने के पश्चात् कुंड का तीसरा खंड अर्थात् धरातल मिलता है। यहीं से पानी कई स्रोतो द्वारा भूमि से निकलता है। कुंड में ५४ फुट ऊँचाई का जल भार होने के कारण जलस्रोत का उफान तथा वेग दिखाई नही पड़ता।

जल की गहराई के कारण जल का रंग गहरा नीला दिखाई देता है। जल जहाँ जितना गहरा होगा वहाँ उसमें उतना ही नीलापन अधिक होगा। कुंड की गहराई का कारण क्या है। विचारणीय है। मैने अभी तक कही भी इतने गहरे कुण्ड से जल निकलते नही देखा है। सभी निर्झर तथा स्रोत भूमि की सतह से निकलते दिखाई देते हैं। जहाँ जल कम निकलता है, वहाँ जल एकत्र करने के लिये तथा उपयोग निमित्त कुंड बनाकर संग्रह कर लिया जाता है। चश्मा शाही तथा अन्य पर्वतीय स्थानों के निर्झरों, स्रोतों के समीप इस प्रकार के कुंड की रचना नही की जा सकी है। काश्मीर मे एक दूसरा स्थान है। जहाँ इसी प्रकार के कुंड बने मैने देखे है। उसका यथा स्थान वर्णन करूँगा।

पूर्व काल में किसी हिन्दू राजा ने इस कुंड का निर्माण कराया था। जहाँगीर के समय भग्नावस्था में था। उसका धार्मिक महत्व लोगों के मुसलमान हो जाने के कारण लुप्त हो गया था।

उग्रद्धतस्तन्निष्यन्ददण्डकुण्डाऽऽतपत्रिणा ।
यत् सर्वनागाऽधीशेन नीलेन परिपाल्यते ॥ २८ ॥

२८. पवित्र वितस्ता[1] मृणाल दंड तथा विशालकुंड[2] कमल पत्र तुल्य था । उसके[3] कमल पत्र छत्र तथा मृणाल दंड धारी नागाधीश नील द्वारा वह मंडल परिपालित हुआ ।

अबुल फजल ने आइने अकबरी में इसका वर्णन किया है । उस समय इसकी गणना पवित्र स्थानों में की जाती थी । कुंड को पूर्व दिशामें स्थित वह पत्थर के बने हिंदू मन्दिरों का होना लिखता है । जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में नवीन निर्माण करने के पूर्व कुंड का चौकोर तथा उसके ऊपर आश्रमों का होना लिखा है ।

सन् १३३९ ई० के पश्चात् काश्मीर में मुस्लिम शासन स्थापित हुआ । मुगल सम्राट् अकबर के पूर्व काश्मीर में गैर काश्मीरी मुसलिमों का शासन नहीं हुआ था । काश्मीरी मुसलिम शासन में काश्मीर लगभग ३०० वर्षों तक रह चुका था । काश्मीरी जनता इस्लाम धर्म ग्रहण कर चुकी थी । हिंदुओं की आबादी नगण्य थी । सभी तीर्थस्थान एवं मंदिर नष्ट भ्रष्ट हो चुके थे । मंदिरों के स्थान पर जियारतें तथा मसजिदें बन चुकी थी । नील कुंड इसका अपवाद नहीं था ।

संवत् १९९९ विक्रमीयमें खनन द्वारा यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ इस बात की प्रमाण है कि यह स्थान महत्वपूर्ण तीर्थ था । कुंड अत्यंत प्राचीन काल से वर्तमान था । जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने उसका मुगल शैली पर जीर्णोद्धार किया था । इस स्थान पर हिंदू शैली का किस प्रकार का मंदिर अथवा निर्माण था अनुमान लगाना कठिन है । मूर्तियाँ यहाँ से प्राप्त जो हुई है उस पर गान्धार शैली की अपेक्षा भारतीय मूर्तिकला शैली का अधिक प्रभाव है । वितस्ता नदी की वरनियर फ्रान्स की सीन नदी से और काश्मीर के पर्वतों की तुलना अलाइम्पस से करता है ।

पाठभेद :

'निष्पद' शब्द का पाठभेद 'निष्यन्द' तथा 'नि स्पन्द' मिलता है । इसी प्रकार 'धीशेन' का पाठ भेद 'देशेन' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

२८ (१) **वितस्ता :** वर्तमान झेलम नदी । अनुशासन पर्व महाभारत के २५वें अध्याय में पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को अंगिरा ऋषि के वचनों का उल्लेख करते हुए कहा कि चन्द्रभागा और वितस्ता में स्नान करने से लोग पापमुक्त हो जाते है । वितस्ता का दूसरा नाम पार्वती है । भादों शुक्ल त्रयोदशी को वितस्ता जन्मोत्सव मनाया जाता है ।

(२) **कुंड :** वीर नाग, वेरी नाग, नील नाग, किंवा नील कुंड से यहाँ तात्पर्य है । नील कुंड का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है ।

नीलकुण्डं वितस्ताख्यं शूलघातं तथैव च ।
तीर्थं त्रिनामकं दृष्ट्वा स्वर्गलोके महीयते ॥
1288 : १५००

तथा विनयनं प्राप्तं फले वाजपेयफलं लभेत् ।
ब्राह्मणकुण्डिकायां च नीलकुण्डे च पार्थिव ॥
1289 : १२८९

(३) **कमल पत्र और मृणाल दण्ड :** कल्हण की यह उपमा उपत्यका का प्राकृतिक सुरम्य दृश्य उपस्थित करती है । शंकराचार्य शिखर से उपत्यका देखी जाय तो वह भूमि पर रखे मृणाल-युक्त पद्म पत्र तुल्य सुशोभित दिखाई देगी । कल्हण ने कुंड शब्द का प्रयोग किया है । डल लेक को कुंड मान लिया जाय तो उपमा ठीक बैठती है । छत्र मंगरात नाग

का चिह्न है। कमल पद्मनाग का चिह्न है। कल्हण इन चिह्नों की उपमा देकर कश्मीर में नागों के महत्त्व की ओर संकेत करता है।

राजधानी अहिच्छत्र नगर के संबंध में शंका की जाती है। विदेशी विद्वानों ने नाना प्रकार की कल्पना इस संबंध में की है। मेरा विचार है—'अहि' शब्द नाग के लिए प्रयुक्त किया गया है। संखपाल नाग का छत्र चिह्न है। अहिच्छत्र नाग राजा की राजधानी था। 'छत्र' का अर्थ छाता है। परंतु यह प्रतीक भी है। 'अहिच्छत्र' का शाब्दिक अर्थ नाग का छत्र होता है। यहाँ एक किला है। उसे आदिकोट कहते हैं। यह पाचाल देश का एक नगर था।

नीलमत के अनुसार द्वीपों का निम्नांकित विभाजन किया गया है।

> इन्द्रद्युम्नः कशेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
> नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वो वारुणस्तथा॥
> 591 : ७१२

> अयं च मानवो द्वीपस्तथा सागरसम्भृतः।
> चत्वारः सागराः पूज्यास्तथा पातालसप्तकम्॥
> –512 : ७१३

नीलमत पुराण के अनुसार ९ द्वीप, ४ सागर तथा ७ पाताल हैं। द्वीप—इन्द्रद्युम्न, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व, वरुण तथा मानव हैं। सात पाताल—रुक्म भौम, शिला भौम, नील मृत्तिका, समभौम, पीतभौम, श्वेत तथा कृष्णक्षिति हैं।

४ नीलनाग : जनश्रुति है। काश्मीर की जनता का विश्वास है। काश्मीर के नागों, अर्थात् जलस्रोतों, प्रपातों एवं निर्झरों के इष्टदेव नाग हैं। वे किसी न किसी रूप में जीवित हैं। नीलमत पुराण उनकी विशेष पूजा का उल्लेख करता है।

> एतेषां पूजनं कृत्वा पूजनीया विशेषतः।
> अहो नागस्तथा मासः यः स्यात्संवत्सरः प्रभुः।
> अहो भविष्यद्वर्षश्च तथा मासस्य वारकः॥
> 625 : ७४६,७४७

नील नाग पौराणिक गाथाओं के अनुसार प्रजापति कश्यप का पुत्र है। उसका निवास स्थान समीपस्थ वेरी नाग ग्राम किंवा नील कुंड है। यह वितस्ता का मूल स्रोत है। यह कुंड बनिहाल पास के पर्वत मूल में है। शाहाबाद परगना में है। वितस्ता का उद्गम है। पर्यटकों का पर्यटन, यात्रियों की यात्रा बिना इस क्षेत्र के दर्शन के अधूरी रहेगी।

जहाँगीर ने कुंड को अठपहला पक्का निर्माण कराया था। कुंड का जल स्थिर है। वेग से उद्यान में नहर के द्वारा निकलता है। जल का रंग नीला प्रतीत होता है। किंतु नहर में जहाँ गिरता है वहाँ उज्ज्वल तथा निर्मल दिखाई देता है। यह जल की गंभीरता तथा स्थान की हरियाली का प्रभाव है। कुंड पर बनी इमारत की छत पर देखने पर प्रतीत होता है, जैसे अष्टकोणीय नीलम का एक बड़ा टुकड़ा भूमि पर पड़ा है।

काश्मीर उपत्यका से सतीसर का जल बाहर निकालने के लिए नीलमत पुराण के अनुसार भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम हल का प्रयोग किया था। भगवान् शिव के त्रिशूल के आघात से भगवती पार्वती सरिता वितस्ता के रूप में प्रकट हुई थी। नीलमत में वितस्ता के उद्भव का सुंदर वर्णन मिलता है :

> रसातलेनादिरूपं करिष्यामि जगद्गुरो।
> कुरु शूलप्रहारं त्वं नीलवेश्मसमीपतः॥
> 248 : ३२६,३२७

> यत्रासील्लांगलमुखं प्राग्प्रभो शैलदारणे।
> तेन शूलप्रहारेण निष्कस्याहं रसातलम्॥
> 249 : ३२६,३२८

> शूलमार्गेण यास्यामि यावत्सिन्धुर्महानदः।
> तत्र चक्रे हरो देवस्तथा चक्रे सती शुभा॥
> 250 : ३२८,३२९

> तस्या नाम वितस्तेति कृतवान् शंकरः स्वयम्।
> वितस्तिमात्रं गर्तं तु शूलेन कृतवान् हरः।
> 251 : ३२९,३४०

रसातलगता येन निष्क्रान्ता सा सरिद्वरा ।
तस्माद्वितस्तेति कृतं नामैतस्याः स्वयंभुवा ॥
252 : ३४०,३४१

हरिचरितामृत अध्याय १२ में वितस्ता अवतरण का वर्णन किया गया है। इस तीर्थ का तीन नाम नील कुंड, वितस्ता तथा शूलघाट प्रसिद्ध हैं। वितस्ता माहात्म्य इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। नीलमत पुराण इसके माहात्म्य के विषय में उल्लेख करता है।

अक्षयं सर्वमुद्दिष्टं दानं श्राद्धं तथा तपः ।
वितस्तोन्मज्जने स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥
1290 : १५०१,५१०२

ततस्तु सर्वदेवेषु जनः शुश्राव पार्थिव ।
सती देवी नदी भूत्वा काश्मीराया विनिर्गता ॥
253 : ३४२,३४३,

महापातकसंयुक्तस्तस्यां स्नातुं तदा जनः ।
आजगाम भयात्तेषां शूलस्रातनियोजनात ॥
254 : ३४४,३४५

मैं जिस समय प्रथम बार यहाँ आया तो इसकी अनुपम भव्य सुंदरता देखकर स्तब्ध हो गया था। निर्देशक जहाँगीर तथा शाहजहाँ का नाम लेकर उनके निर्माण की प्रशंसा कर रहा था। मेरी धारणा हो रही थी। कुंड का पुरा काल में अवश्य अस्तित्व रहा होगा। जीर्ण हो जाने पर जहाँगीर ने उसे मुगल स्थापत्य का जामा पहना दिया है। नीलमत के कुंड शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है। इसमे पक्का घाट या पक्का पहल बना था। हिंदुओं का तीर्थ था। हिंदू मुसलमान हो गये। उनके लिए स्थान महत्त्वहीन हो गया। बिना मरम्मत गिरता पड़ता खंडहर बन गया। जहाँगीर सहिष्णु था। कट्टर मुसलिम धर्मानुयायी नही था। उसने यहाँ की शोभा देख हिंदुओं का तीर्थ होने पर भी जीर्णोद्धार कराया।

आइने अकबरी में अबुलफजल, जिसने जहाँगीर के वर्तमान इमारत बनाने के पूर्व वीर नाग को देखा था, वर्णन करता है, वीर सर वेहत अर्थात् वितस्ता का उद्गम स्थान है। इसके कुंड का क्षेत्रफल एक जरीब होगा। बहुत गहरा है। इससे जल जोर से आवाज के साथ निकलता है। इसका नाम वीरमर है। इसमें पत्थर के बार्डर लगे हैं। इसके पूर्व दिशा में मन्दिर है।

जिस समय इस कुंड पर मैं आया था, उस समय कश्मीर के इतिहास लिखने की कल्पना मैंने नहीं की थी। इस ओर अभिरुचि नही थी। नील कुंड के प्रथम दर्शन से प्रथम प्रतिक्रिया जो हुई उसका वर्णन किया है। कश्मीर के इतिहास के संबन्ध में गवेषणा करना आरम्भ किया तो मेरी धारणा को बल मिलता गया। इसी स्थान के विषय में नही अन्य स्थानों को देखकर प्रथम प्रतिक्रियाएँ जो होती रही वे प्राय: ठीक उतरी हैं।

बर्नियर यहाँ आया था। जहाँगीर ने यहाँ का बाग सन् १६१२–१६१६ ई० के बीच में बनवाया था। वह लिखता है :—

'कहा जाता है कि नूर महल अर्थात नूरजहाँ के इच्छानुसार यह बाग बनवाया था। यहाँ के कुंड की पाली गई मछलियाँ इतनी सीधी हैं। पुकारने पर अथवा रोटी का टुकड़ा कुंड में छोड़ देने पर पास आ जाती है।'

औरंगजेब के समय जैसा बर्नियर के लेख से प्रकट होता है वहाँ किसी प्रकार का मन्दिर अथवा उसका ध्वंसावशेष नहीं रह गया था। किंतु जहाँगीर अपने पिता के साथ कश्मीर आया था। उस समय उसने कश्मीर के दर्शनीय स्थानों को देखा था। द्वितीय जलूसी वर्ष अर्थात् सन् १६०७ ई० में यहाँ जहाँगीर आया था। वह अपनी आत्मकथा में लिखता है—

'झेलम नदी का स्रोत काश्मीर में वीर नाग नामक एक चश्मा है। हिंदीभाषा में नाग सर्प को कहते हैं। ज्ञात होता है उस स्थान मे पहले सर्प रहा

होगा। अपने पिता के जीवन काल में हम दो बार उस चश्मे तक गये थे। काश्मीर नगर से बीस कोस पर है। यह चश्मा चौकोर है पर २० गज लम्बा और २२ गज चौड़ा है। इसके आस पास तपस्वियों के बहुत से आश्रम अवशेष हैं। पत्थरों की अनेक गुफाएँ हैं। इसका जल अत्यन्त निर्मल है। यद्यपि इसकी गहराई का हम अनुमान नहीं कर सके पर यदि एक पोस्ते का दाना उसमें छोड़ा जाय तो वह जब तक तह तक नहीं पहुँच जाता तब तक दिखाई पड़ता है। इसमें मछलियाँ बहुत हैं। हमने सुना है कि इसकी गहराई अगाध है। पत्थर बाँध कर डोरी डालने की आज्ञा दी। डोरी के नापने पर केवल डेढ़ पुरसा निकला। अपनी राजगद्दी के अनन्तर हमने आज्ञा दी कि उस चश्मे के किनारों को पत्थर से बाँध दिया जाय। इसके चारों ओर उद्यान लगाकर नहर निकालें। साथ ही उसके आस पास प्रासाद तथा गृह निर्माण कर उसे ऐसा स्थान बना दे जैसा यात्रीगण संसार भर घूमने पर भी उसके जैसा दूसरा न बतला सकें।" पृष्ठ १६९।

'गहराई चौदह गज था। इसका जल पहाड़ की हरियाई तथा पौधों की छाया से हरित रंग का ज्ञात होता था। इसमें मछलियाँ बहुत थीं। इसके चारों ओर दालान बुर्जियाँ सहित बने थे। इसके आगे उद्यान निर्मित किया गया था। तालाब के किनारे से उद्यान के फाटक तक एक नहर चार गज चौड़ी, एक सौ अस्सी गज लम्बी तथा दो गज गहरी बनाई गई। इस तालाब के चारों ओर प्रस्तर निर्मित मार्ग बना था। इस नहर का जल इतना साफ था कि चार गज की गहराई होने भी अगर एक दाना गिरे तो दिखाई पड़े। पानी के नीचे उगी हुई घास आदि में वह ऐसा सुशोभित था कि क्या लिखा जाय। यहीं [illegible] प्रकार की सुगन्धित जड़ी बूटियाँ तथा पौधे [illegible] हुए थे। और इसमें एक बूटा ऐसा दिखाई [illegible] था जो टीक मोर की पूंछ की तरह रंजित [illegible] की धारा से हिलता था। फूल भी स्थान स्थान पर खिले हुए थे। संक्षेप में सारे कश्मीर में ऐसा रमणीक तथा चित्ताकर्षक स्थान दूसरा नहीं था। हमें ऐसा प्रतीत होता है। कश्मीर के ऊपरी भाग का दृश्य निम्न भाग की तुलना में बढ़कर है। हर एक को इस देश में कुछ दिन ठहरकर तथा चारों ओर भ्रमण कर यहाँ का दृश्य देखकर खूब आनंद लेना चाहिए।

'हमने आज्ञा दी कि नहर के दोनों तरफ चिनार के वृक्ष लगाए जायें।'—पृष्ठ ६७७, ६८२, ६८३।

जहाँगीर पन्द्रहवें जलूसी वर्ष में पुन: कश्मीर गया।

उसने वीर नाग के विषय में दिनांक सोमवार १२ को लिखा है—

'इसका (वितस्ता) स्रोत वीर नाग कहलाता है। जो चौदह कोस (श्रीनगर से) दक्षिण है। हमारी आज्ञा से सोते के पास एक इमारत तथा उद्यान निर्मित हुआ है।'—पृष्ठ ६५२

उसने दिनांक शुक्रवार २७ को वीर नाग की यात्रा के लिए प्रस्थान किया था। उसके सदर्भ में लिखता है—

'पाँच कोस ऊपर (नदी से) जाकर हम नाव से पामपुर में उतरे। शनिवार २८ वीं को हमने साढ़े चार कोस कूच किया। काकापुर से आगे बढ़कर इस नदी के तट पर पहुँचे। काकापुर की भाँग प्रसिद्ध है। यह नदी के किनारे स्वत पैदा होती रहती है। रविवार २९ को बजबरोर (विजयेश्वर) पहुँचा। सोमवार ३० को इस का जलप्रपात देखा। यह ग्राम हमारे पिता (अकबर ने रामदास कछवाहा को दिया था। उसने यहाँ इमारत और जलाशय बनवाया है। बुधवार २८ वीं मिल्ह की वीर नाग के जलाशय के किनारे पड़ाव डाला। गुरुवार २ को इसी जलाशय के तट पर मदिरोत्सव मनाया गया। यह सोता झेलम नदी का स्रोत है। यह एक पहाड़ के नीचे है। जिसकी भूमि वृक्षों की

अधिकता, हरियाली तथा घास होने कारण दिखाई नहीं देती। जब हम शाहजादा थे तभी हमने आज्ञा दी थी कि इस स्थान के उपयुक्त वहाँ एक इमारत बने। वह अब पूरी हो गयी है। इसमें एक अठपहला तालाब बना था।'

कद्रू : दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम कद्रू था। वे नाग जाति की जननी थी। प्रजापति कश्यप की पत्नी थी। कथा है। कश्यप के वरदान के कारण कद्रू ने एक सहस्र नाग पुत्रों को जन्म दिया था। वर प्राप्ति के लगभग पाँच सौ वर्ष के पश्चात् कद्रू को एक पुत्र प्राप्त हुआ। कश्यप की दूसरी पत्नी विनता को अरुण तथा गरुड दो पुत्र हुए।

सूर्य के रथ का अश्व किस रंग का है? इस प्रश्न पर कद्रू तथा विनता में विवाद हो गया। विनता ने अश्व का रंग श्वेत बताया। कद्रू ने अश्व की पूछ काले रंग की बतायी। दोनों ने एक दूसरी की दासी होने का शर्त लगाया। कद्रू ने अपने नाग पुत्रों को आदेश दिया। वे अश्व की पूछ में लिपट जाएँ। पूंछ का रंग काला दिखाई पड़े। कुछ नागों ने माता का आज्ञा स्वीकार नहीं की। उन्हें जनमेजय के नागयज्ञ में भस्म होने का माता ने शाप दिया। भुजंग कर्कोट ने माता को आश्वासन दिया। वह पूँछ में लिपट जायगा। रंग काला प्रतीत होगा। माता जीतेंगी। विमाता को हारकर दासव्रत स्वीकार करना होगा।

काश्मीर के कर्कोट वंश के राज्य का यथास्थान वर्णन किया जायेगा। महाभारत आदिपर्व के ३५ वें अध्याय में कद्रू के प्रमुख नाग संतानों की नामावली दी गयी है।

कपटाचार के कारण कद्रू को विजय हुई। विनता ने दासी वृत्ति स्वीकार की। छल द्वारा विजय प्राप्त करने तथा माता को सपत्नी अर्थात् सौत की दासी होने के कारण विनता का यशस्वी पुत्र गरुड क्रुद्ध हो गया। कद्रू संतान नाग तथा विनता के संतान गरुड में संघर्ष आरंभ हो गया।

इस संघर्ष की मेरी समझ में धार्मिक पृष्ठभूमि और है। कश्यप की कद्रू से उत्पन्न नाग जाति शिव की उपासक थी। विनता की संतान गरुड विष्णु के उपासक थे। शिव मंदिर में नाग पूजा तथा विष्णु मन्दिर में गरुड़ पूजा होती थी। उनकी मूर्तियाँ मंडप अथवा गर्भगृह के बाहर प्रतिमा के सम्मुख रखी जाने लगी। शैव तथा वैष्णव संप्रदायों के संघर्ष का वह एक कारण बन गया। कालान्तर में एक पिता की सन्तान होने पर भी वे विभिन्न शाखाओं में विभाजित हो गये।

नील एक पर्वत है। यह पर्वत उत्तर दिशा में गंधमादन तथा मंदराचल पर्वतों के बाद पड़ता है। नील नाग इन्हीं नागों में से एक था। (वनपर्व १८८ . ११३)

नील पर्वत का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है।

एकार्णवं जगत् सर्वं तदा भवति भूपते।
हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः॥
34 : ५५, ५६

गंगाद्वारं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम्।
तथा कनखलं तीर्थं तीर्थान्यन्यानि पार्थिव।
१५,१३

श्वेतश्च शृङ्गवानेष माल्यवान् गन्धमादनः।
महेन्द्रो मलयः सत्यः शक्तिमान् ऋक्षवानपि॥
35 : ५६,५७

पुण्यं च नैमिषारण्यं गंगाद्वारमतः परम्।
स्थानेश्वरात्कुरुक्षेत्रं ततो विष्णुपदं शुभम्॥
1054 : १२३८

विष्णुपद—

दिल्ली की कुतुबमीनार एक पहाड़ी पर बनी है। उस पहाड़ी का नाम विष्णुपद था। वहाँ पर विष्णु का मंदिर था। विष्णुपद पर स्थित विष्णु

गुहोन्मुखा नागमुखापीतभूपियया रुचिम् ।
गौरी यत्र वितस्तात्वं याताऽप्युज्झति नोचिताम् ॥ २६ ॥

२६. उसका छत्र नीलकुंड तथा दंड वितस्ता नदी है।[1] गुहाश्रिता देवी गुहोन्मुखी नागों को जलपान करानेवाली नागपीत पयस्वरूप गौरी ने अपने दोनों कार्य गुणों तथा नागपीत पय को त्यागकर गुहोन्मुखत्व तथा नागपीत पयत्व दोनों धर्मों का पालन करती है।

मंदिर तोड़कर मसजिद कुवते इसलाम कुतुबुद्दीन ऐबक के समय बनाई गई थी। उसे अल्तमश ने और बढ़ाया था। अलाउद्दीन खिलजी ने इस मसजिद को और बड़ा रूप देने का प्रयास किया था। उसके ठीक दूसरी तरफ मसजिद के वाम पार्श्व में कुतुबमीनार जैसी मीनार बनाना चाहता था। उसका नाम अलाई मीनार है। यह पूरी बन नहीं सकी। ध्वंसावस्था में आज भी देखी जा सकती है। अलाउद्दीन ने यहाँ पर अलाई दरवाजा भी बनवाया है। यह आज तक सुरक्षित है। अलाउद्दीन खिलजी तथा अल्तमश दोनों की मजारें यहाँ पर बनी हैं।

चंद्रगुप्त के लौहस्तंभ पर खुदे अभिलेख से पता लगा है कि वही स्थान नीलमतवर्णित विष्णुपद है।

यहाँ गंगाद्वार का उल्लेख हरद्वार के समीपवर्ती क्षेत्र के लिये किया गया है। कनखल का उल्लेख नील पर्वत तथा गंगाद्वार का स्थान स्पष्ट कर देता है।

गंगाद्वार में एक नील पर्वत का वर्णन मिलता है। कहा गया है कि वहाँ स्नान करने पर मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं

गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ॥

—म० अनुशासन पर्व २८:१३

जैन उत्तराध्ययन सूत्र (११:२८.४९) के अनुसार सीता नदी का उद्‌गम स्थान नील पर्वत है। नील पर्वत के दक्षिण में हिमालय पर्वत का स्थान माना गया है। इस नदी को गंभीर अर्थात् गहरी तथा दुरतिक्रम मार्कंडेय पुराण ने बताया है। कुछ विद्वान् सीता नदी को झारकंद किंवा अरफमा नदी बताते हैं। सीता नदी वास्तव में सीर दरया है। सीता नदी का प्राचीन भौगोलिक वर्णन सीर दरया से मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने सीर दरया को सीता नदी माना है।

विष्णु पुराण (२ २:१०) के अनुसार नील पर्वत की गणना वर्ष पर्वत में की गई है। उसकी स्थिति सुमेरु के उत्तर में है। उत्तर में ही श्वेत श्रृंगी वर्ष को बताया गया है।

तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णोः मतिम्।
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः ॥

आश्चर्य है कि नीलमत पुराण में मुझे इंद्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर का नाम नहीं मिला। विष्णुपद पर्वत के वर्णन से प्रतीत होता है कि नीलमत पुराणकार को इंद्रप्रस्थ किंवा दिल्ली का ज्ञान था। पांडवों का वर्णन, कृष्ण का वर्णन, मथुरा आदि का नाम आने पर भी इंद्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर का न होना इस बात का प्रमाण है कि दिल्ली का महत्त्व केवल विष्णुपद पर्वत के कारण था। द्वितीय चंद्रगुप्त के कुतुबमीनार किंवा महरौली के विष्णोध्वज स्तंभ में इन्द्रप्रस्थ आदि का नाम नहीं दिया गया है।

पाठभेद :

श्लोक २६ में 'नागमुखा' का 'नागमुखी' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६ (१) छत्र और दंड : कल्हण ने यहाँ पुनः सुंदर तथ्यपूर्ण उपमा दी है। यदि नीलकुंड की इमारत के ऊपर खड़ा होकर प्राकृतिक दृश्य देखें तो अठपहला नीलकुंड वास्तव में छत्र तुल्य तथा

शङ्खपद्ममुखैर्नागैर्नानारत्नावभासिभिः ।
नगरं धनदस्येव निधिभिर्यन्निषेव्यते ॥ ३० ॥

३०. विविध रत्नभांडों से विभूषित शंख पद्मादि नागों का कश्मीर मंडल कुबेर पुरी तुल्य आश्रय स्थान है।

उससे समुद्रयात्रा निमित्त निकली जल स्रोत रेखा छत्रदंड तुल्य लगेगी। इस समय नील कुंड किंवा वेरीनाग का जल जहाँगीर तथा शाहजहाँ द्वारा निर्मित सीधी नहर जैसा बहता निकलता है। प्राचीन काल में जल निकलने की अवश्य कोई नहर किंवा प्रणाली रही होगी। कल्हण उसी जल रेखा का दंड तथा अष्टकों में नील कुंड की उपमा छत्र से यहाँ देता है।

(२) नाग : कश्मीर में नाग जलस्रोत तथा जलप्रपात को कहते हैं। कश्मीर के जलस्रोतों तथा सरोवरों का देवता नाग तथा नागी हैं। ये देवता जलाशयों तथा जलस्रोतों में निवास करते हैं। बड़े जल स्रोत को नाग तथा छोटे को नागी कहा जाता है। नीलमत पुराण में अत्यधिक देवस्थानों तथा तीर्थों का स्थान जलस्रोतों तथा जलाशयों के समीप है। उनसे संबंधित है। नागरूप से उनकी पूजा अनादि काल से होती आई है। कश्मीर उपत्यका की मुसलिम जनता में विश्वास व्याप्त है। नाग जलस्थानों में रहते हैं। मुसलमान होने पर भी वे नागों के प्रति आदर प्रकट करते हैं। चाहे उसकी पूजा करने से विरत भले ही हो गये हैं। निर्झरों तथा चश्मों से निकलती टेढ़ी मेढ़ी उज्ज्वल जल धारा नागों के रेंगने की तरह लगती है। अतएव उनके देखने से अनायास नागकी कल्पना मन में उठ आती है।

आइने अकबरी से प्रकट होता है कि जिस समय अकबर १६ वीं शताब्दी में आया था कश्मीर में ७०० स्थानों में नागपूजा होती थी। इस समय तक यह विश्वास तथा संस्कार लोगों में जमा है कि नाग सर्प के रूपमें निवास करते हैं। वे जलस्रोतों अथवा जलाशयों में रहते हैं। जलाशयों की रक्षा करते हैं। राजतरंगिणी के वर्णन (४:६०१, ७:१७१) से प्रकट होता है कि हजारों वर्षों से इस प्रकार का संस्कार लोगों के हृदयों में बैठ गया था।

यह भी धारणा व्याप्त थी। नाग मानवरूप धारण कर प्रकट होते थे। राजतरंगिणी में नाग सुश्रुवा तथा उसकी कन्या के कथानक से यह बात सिद्ध होती है। वे मेघ, महाशिला किंवा हिमवृष्टि का रूप (रा० त० १.१७९, २२९, २.१६) धारण कर लेते थे। लोगों को त्रस्त करते थे। भयभीत करते थे।

पादटिप्पणियाँ :

३० (१) शंख तथा पद्म नाग का वर्णन नीलमत पुराण में किया गया है। कश्मीर के नागाओं की महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखते हैं। परम्परा से नीलमत पुराण में नागाओं की तालिका के क्रम में उनका १२ वाँ स्थान आता है।

शंखाक्षः कमलाक्षश्च मणिनागो वहैवकाः ॥
994 । १०९१

पद्म नाग का नीलमत पुराण (श्लोक 884: १०५४) में दो बार उल्लेख आया है। दो महापद्म नागों के अतिरिक्त इनकी क्रमसंख्या २६ वीं आती है।

शंख नाग का स्थान कश्मीर में कहाँ पर है उसका वर्तमान परिवर्तित नाम क्या है ? अभी तक पता नहीं चल पाया है। शंखपाल नाग शंखनाग से भिन्न है। पद्म नाग को प्रोफेसर बह्लर महापद्म नाग मानते हैं। यह ऊलर लेक का नामधारी देवता है। इसका उल्लेख राजतरंगिणी (४:५९३)

में आया है। श्रीकण्ठचरित (३.९) तथा जोनराज ने महापद्म नाम से ही ऊलर लेक का सम्बोधन किया है।

स्तीन ने पद्म नाग को महापद्म नाग माना है। वह प्रमाण देते हैं। श्रीवर ने (१ ७३५) क्रमराज के बाढ़ के समय पद्मनागसर से पानी प्राप्त करने का उल्लेख किया है। यह पद्मनागसर ऊलर लेक के अतिरिक्त दूसरा कोई भिन्न सर नहीं हो सकता है। राजतरंगिणी, तरंग ४, श्लोक ८५ में पद्मनाग का उल्लेख भवतुग के समीप हुए युद्ध के प्रसंग में आया है। भवतुग ग्राम बोतुंग गाँव है। जैनगिर परगना में ऊलर लेकके पश्चिमी तट पर स्थित है। वितस्ता माहात्म्य (१४ ३५) में रत्नचूड़ नाग का उल्लेख है। पद्म सर के समीप आर्येश के पास है। यह खुई होम परगना में मलुस ग्राम से ऊलर लेक के उत्तर-पश्चिम स्थित है। ऊलर लेक को महापद्म सर कहते हैं। भविष्य पुराण के ब्राह्म खण्ड में नाग जाति का उल्लेख है। महापद्म नाग तथा पद्मनाग दो भिन्न नाग हैं। दोनों के रंग, दृष्टि, दिशा तथा चिह्नों में भिन्नता है। उनके कारण दोनों को पहचाना जा सकता है।

महापद्म नाग का वर्ण वैश्य है। रंग पीत है। दृष्टि खाली है। दिशा वायव्य है। उसका चिह्न शूल है।

पद्म नाग का वर्ण शूद्र है। रंग कृष्ण है। दृष्टि चचल है। दिशा पश्चिम है। चिह्न पद्म है।

शखपाल किंवा शखनाग का वर्ण क्षत्रिय है। रग आरक्त है। दृष्टि निश्चेष्ट है। दिशा उत्तर है। चिह्न छत्र है। महापद्म तथा पद्म सर दोनों शब्दों का प्रयोग कालांतर में ऊलर लेक के लिये किया जाने लगा।

कद्रू तथा विनता के पारस्परिक संघर्ष के कारण कद्रू की नाग संतानों ने विनता के पुत्र गरुड के भय से सतीसर में जाकर शरण ली। भगवान् विष्णु ने उन्हें शरण दी। काश्मीर उपत्यका के उत्तरी तथा दक्षिणी पर्वतमालाओं की उपमा नागों के बाहुओं से दी गई है। विशेष विवरण परिशिष्ट में द्रष्टव्य है।

शंख नाग :

ऋद्धिं वृद्धिं तथा निद्रां धनेशो नदकूवरम्।
शंखपद्मौ निधी पुण्यौ भद्रकाली सरस्वती ॥
—585 : ७०१

धुलिका श्वेतगन्धी च पालाशः शंखिनी वृद्धिः।
—880

हिलिहाल. शंखपाली नागौ चन्दननन्दनौ ॥
—883 : १०५३

शंख, शंखपाल तथा शंखाश तीनों नाग भिन्न हैं।

ह्रीं पद्मौ ह्रीं महापद्मौ ह्रीं काली ह्रीं च कच्छपी।
ह्रीं समुद्रौ समुद्राणी ह्रीं गर्जा ह्रीं च तक्षकी ॥
—884 : १०५४, १०५५

कश्यप तथा कद्रू द्वारा शंख नाग की उत्पत्ति हुई थी।

सुमनास्यो दधिमुखस्तथा विमलपिण्डकः।
आप्तः कर्कोटकश्चैव शंखः कालशिलस्तथा ॥
—आदिपर्व ३५ : ८

भगवान् नारद ने मातलि को शंख नाग का परिचय दिया था।

सुमनो मुखो दधिमुखः शंखो नन्दोपनन्दकौ।
आप्तः कोटरकश्चैव शिखि निष्ठूरिकस्तथा ॥
—उद्योगपर्व १०३ : १२

बलराम के स्वर्ग गमन के अवसर पर शंख नाग के आने का उल्लेख मिलता है।

कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च पृथुश्रवा अरुणः कुंजरश्च।
मिश्री शंखकुमुदः पुण्डरीकस्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा॥
—म० मौसलपर्व ४ : १७५

शंख तीर्थ : सरस्वती नदी के तट पर एक प्राचीन तीर्थ था। कश्मीर में लार परगना के धरिन्थ लेक के समीप शंख नाग का स्थान माना गया है।

उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् विप्रेभ्यो विप्रदाय सः ।
नीलवासास्तथा गच्छेच्छंखतीर्थं महायशः ॥१९

तत्रापश्यन्महाशंखं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
श्वेतपर्वतसंकाशं ऋषिसंघैर्निषेवितम् ॥२०

सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ।
यत्रा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥२१

—म० शल्यपर्व ३७ : १९–२६

योगवाशिष्ठ रामायण मे महापद्म सर का उल्लेख कश्मीर के संदर्भ में किया गया है। कल्हण ने महापद्मसर अर्थात् वुलर लेक का उतना सुन्दर वर्णन नहीं किया है जितना योगवाशिष्ठ जैसे महान् ग्रन्थ में उपलब्ध है। जिन लोगो ने महापद्मसर को देखा है, यदि वे योगवाशिष्ठ का वर्णन पढें तो उन्हे प्रतीत होगा, जैसे कोई लेखक आज के लेक का आँखों देखा वर्णन लिख रहा है। वर्णन किया गया है : 'महापद्मसर कमल दल द्वारा पूर्ण रहता है। उसमे मछलियाँ होती है। ग्रीष्म काल मे सारस विहार करते है।'

योगवाशिष्ठ में महापद्म के साथ ही साथ पद्मसर की भी संज्ञा महापद्म के लिये दी गयी है। महापद्म तथा पद्मसर दोनों एक ही है।

स्तीन का अनुमान सत्य है महापद्म सर पद्मसर है। स्तीन योगवाशिष्ठ नही देखा था। अन्यथा उसका उल्लेख करता। स्तीन ने कितना गहन अध्ययन कश्मीर के सम्बन्ध में किया था। यह इसी एक बात से अनुमान लगाया जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि योगवाशिष्ठ में महापद्मसर का वर्णन करते है, "पद्मसर श्वेत कमल पंक्तियों की माला से युक्त है। शैवाल, तरंगो से अत्यन्त सुशोभित है। नील कमल की लताओं से पूर्ण है। आवर्त्त शीतल है।" (योगवाशिष्ठ स्थिति प्रकरण ३२ : ५०१०) निस्संदेह यह वर्णन आज भी महापद्मसर का जीता जागता रूप उपस्थित करता है। पद्मसर में सारस, नील कमल, उज्ज्वल कमल तथा पर्वती शीतल मंद मंद समीरण में, हलकी लहरें, कश्मीर की अभिरामता बढा देती है जिसे कोई पर्यटक भूल नही सकता।

नाग एक जाति थी। वे मनुष्य थे। उनका यथास्थान विस्तृत वर्णन परिशिष्ट में किया गया है। भारतवर्ष में नागों के दो राज्य थे। मथुरा मे सात नाग राजाओं ने राज्य किया था। इसी प्रकार चम्पावती मे नव नाग राजाओं ने राज्य किया था।

—वायु पुराणः ९८ : ४५३, ९९ : ३८२; ब्रह्माण्ड पुराण ३ : ७४ : १९४–५ २६७।

नवद्वीपो में इंद्रद्वीप, कसेरुमान, ताम्रवर्णी, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य द्वीप, गन्धर्व द्वीप तथा कुमारी द्वीप है। इसमे नाग द्वीप का उल्लेख किया गया है। इससे प्रकट होता है। नाग जाति का एक देश था। वहाँ उनकी आबादी थी।

राजशेखर ने काव्य मीमांसा में सम्राट् तथा चक्रवर्ती के अवधारणा के संदर्भ मे विचार करते हुए नाग द्वीप का उल्लेख किया है।

नागद्वीप का उल्लेख महाभारत (भीष्मपर्व ६ : ५५) में है। उसे सुदर्शन द्वीप के अन्तर्गत एक द्वीप माना गया है। वह शशिमंडल की शशाकृति में कानस्वरूप दृष्टिगोचर होता है। नागद्वीप का उल्लेख पुराणो में विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। (भागवत ५:१६:२६; पद्मपुराण, सृष्टिखंड ३१) विष्णुपुराण अंश ४६३ मे पद्मवतीपुरी में नाग लोगो के उपभोग करने का वर्णन किया गया है।

अमरकोशकार ने नाग शब्द की परिभाषा की है—'अधो भुवन पाताल-वलिसद्म-रसातलम्। नागलोकोऽथ कुहरं सुषिरं विवरं बिलम्।' पाताल, रसातल और वलि का घर नाग लोकांतर्गत है। अमेरिका को कुछ लेखक पाताल देश मानते है। इस विवाद मे न पड़कर यही कहना अलम् होगा। अमेरिका के मूल निवासी रेड इंडियनों में नाग पूजा प्रचलित थी। नाग की आकृतियाँ शिलाओं पर उत्कीर्ण मिली हैं।

यत्तार्क्ष्यभीत्या प्राप्तानां नागानां गुप्तये ध्रुवम् ।
प्रसारितभुजं पृष्ठे शैलप्राकारलीलया ॥३१॥

३१. काश्मीर मंडल की प्राकार-स्वरूप पर्वतमालाएँ जैसे भुजाएँ उठाये गरुड़ द्वारा ताडित शरणागत नागों की रक्षा कर रही हैं।

भुक्तिर्मुक्तिफलप्राप्तिः काष्ठरूपमुमापतिम् ।
पापसूदनतीर्थान्तर्यत्र संस्पृशतां भवेत् ॥३२॥

३२. पापसूदन[१] तीर्थ में काष्ठ-स्वरूप उमापति के दर्शन एवं स्पर्श द्वारा भोग तथा मोक्ष दोनों फलों की प्राप्ति होती है।

अफगानिस्तान का एक वर्ग नागवंशी कहा जाता है। बंगाल में एक वंश का पद्मगोत्र नाग है। वे अपने को नागवंशीय कहते हैं। बंगाल के नाग महाशयों का गोत्र वासुकी नाग है। वासुकी नाग का स्थान कश्मीर का भद्रवा अंचल है। विशेष अध्ययन के लिए 'नाग' परिशिष्ट द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३२ में 'काष्ठरूपम्' का 'कपटेश्वरम्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२ (१) पापसूदन तीर्थ : वेरी नाग के लगभग १० मील दूर अरपथ उपत्यका में पापसूदन तीर्थ स्थित है। पापसूदन तीर्थ का पवित्र जलकुंड कपटेश्वर नाम से पूजित होता है। काकर ग्राम के निकट, परगना कुथर अर्थात् कपटेश्वर में एक अत्यन्त निर्मल जलपूर्ण कुंड है। वह एक जलस्रोत को बाँधकर बनाया गया है। भगवान् शिव की कपटेश्वर नाम से यहाँ पूजा होती है। वे यहाँ कपट अर्थात् लकड़ी के रूप में जल पर तैरते प्रकट होते हैं। कपटेश्वर के सम्बन्ध में एक पुरानी गाथा है—

'शिव दर्शन के इच्छुक ऋषि तथा मुनिगण दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में प्रस्थान किए। रात्रि में उन्हें शिव ने स्वप्न दिया। नील के निकास स्थान कश्मीर में वे जाँय। आनेपर उन लोगों ने वहाँ केवल लकड़ी के टुकड़े देखे। उसे उन्होंने इधर उधर फेंक दिया। कुछ समय पश्चात् कपटेश्वर में जल वेग से निकलने लगा। उन्होंने उसमें स्नान किया। स्नान करते ही ऋषि रुद्र हो गये।

केवल वसिष्ठ अर्थात् गौरपराशर को कुछ कौतूहल हुआ। उन्होंने स्नान नहीं किया। वे उपवास करने लगे। उनका शरीर सूख गया।

शिव ने स्वप्न में उन्हें दर्शन दिया। उनसे वर माँगने के लिये कहा। वसिष्ठ ने निवेदन किया—'आप सर्वदा इस पवित्र जलाशय में काष्ठ के टुकड़े तथा जल के रूप में निवास कीजिए। कलियुग में लोग काष्ठ रूप आपका दर्शन तथा स्नान कर पाप मुक्त हो जाँय।' शिव ने वर दिया। उसीके फल स्वरूप कपटेश्वर में जल पूर्ण रहता है और काष्ठ रूप में भगवान् प्रकट होते रहते हैं।

मालवराज राजा भोज ने पुष्कल धन व्यय कर कपटेश्वर के कुंड का निर्माण कराया था। राजा यहाँ के पवित्र जल द्वारा नित्य मार्जन करते थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी। काँच कलश में कपटेश्वर का जल प्रतिदिन कश्मीर से मालवा भेजा जाता था। तत्कालीन कुंड निर्माण के भग्न विशाल शिला खंड यहाँ यत्र-तत्र पड़े हैं।

गोलाकार कुंड है। शिला प्राकार द्वारा परिवेष्टित है। उन्नीस वर्गगज क्षेत्रफल होगा। इस तीर्थ का उल्लेख नीलमत पुराण तथा हरिचरितामृत दोनों में है। उसी के आधार पर कपटेश्वर माहात्म्य की रचना की गई है।

अलबेरुनी कुंड के विषय में अपनी पुस्तक (भाग २ पृष्ठ १८१) में एक गाथा का उल्लेख करता है। काश्मीरियों से सुनकर लिखा था। उसने स्वयं इस स्थान की यात्रा नहीं की थी। अन्यथा वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से यहाँ के प्राकृतिक दृश्य का इतना सुन्दर वर्णन करता कि वह स्वयं एक ऐतिहासिक काव्य हो जाता। वह कहता है—'महादेव द्वारा प्रेषित लकडी के टुकडे प्रतिवर्ष कुंड में उतराते हैं। इस कुंड का नाम कुडेशह किंवा कवडेश्वर है। यह वितस्ता नदी के उद्गम स्थल के वाम दिशा में स्थित है। यह आश्चर्यजनक घटना वैशाख मास के मध्य काल में होती है।'

हरचरितामृत (अध्याय १४:१२२) में इस स्थान का उल्लेख मिलता है। यहाँ का वर्णन तथा तीर्थ यात्रा का जो समय अलबेरुनी ने दिया है वह माहात्म्य में दिये गये समय तथा वर्णन से मिलता है। अलबेरुनी ने जिन सूत्रों के आधार पर यहाँ का वर्णन लिखा है वह सत्य प्रतीत होता है।

अबुल फजल आइने अकबरी में कपटेश्वर के विषय में लिखता है–'अलबेरुनी का कवडेश्वर शब्द कपटेश्वर का अपभ्रंश है। कोटेहर ग्राम में एक गहरा झरना है। उसके चारों ओर मंदिर बने हैं। इसका पानी जब घटता है तो चंदन की लकड़ी के रूप में महादेव प्रकट होते हैं।"

कल्हण ने (रा० त० ७:१९०) कपटेश्वर का उल्लेख किया है। राजा मुचकुंद यहाँ के जल से स्वस्थ हो गये थे। स्थानीय जनश्रुति है। जल में विलक्षण स्वास्थ्यप्रदायक शक्ति है। कथासरित्सागर में सोमदेव भट्ट ने कश्मीर में जाकर शिव पूजा के माहात्म्य का वर्णन किया है। कपटेश्वर में शिव पूजा का उल्लेख करते हुए लिखता है—

'सुरेश्वर्याद्रिषु तथा विजये कपटेश्वरे'

(९: १: ४८)

नीलमत पुराण में कपटेश्वरके संबंध में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

दृष्ट्वा धनेश्वरं देवं वितस्ताशसमीपतः।
कपटेश्वरपार्श्वे च दृष्ट्वाऽगस्त्येन निर्मितम्॥
—100 : ११७८

तोयमध्यगतं दृष्ट्वा संप्राप्तं कपटेश्वरम्।
गोसहस्रमवाप्नोति संपूज्याभीप्सितां गतिम्॥
920—१०२९:१२०२

कपटेश्वर इत्युक्तं देवदेवस्य शूलिनः।
पुण्यमायतनं तस्य समुत्पत्तिं वदस्व मे॥
—1125 : १३२९

रुद्रलोकमवाप्नोति स्नात्वा तु कपटेश्वरे।
त्रिश्वलिंगहृदे स्नात्वा रुद्रलोके महीयते॥
—1302 : १५१६

नीलमत पुराण में कपटेश्वर माहात्म्य के विषय में निम्नलिखित वर्णन मिलता है।

गौरपराशर उवाच :

वरश्च दीयते देव मम कामांगनाशन।
ऋषिभिस्त्वं यथा दृष्टः काष्ठरूपी महेश्वरः॥
—1143 : १३४८, १३४९

महेश्वर उवाच :

द्रक्ष्यन्ति ये जनाः सर्वे काष्ठरूपं समास्थितम्।
कदाचिद् द्विजशार्दूल सर्वकालं तु न द्विज॥
—1143 : १३५०, १३५१

अयं च सततं नन्दी काष्ठरूपी गणो मम।
दर्शनं दास्यते नृणां सदनुग्रहकाम्यया॥
—1144 : १३५३

मां च दृष्टा न यास्यन्ति स्वशरीरेण रुद्रताम्।
कपटेन च दास्यामि नराणां दर्शनं यदा
—1145 : १३५४, १३५५,

तदा संज्ञामवाप्स्यामि कपटेश्वर इत्यतः।
तोयस्य बहुलीभावो देशेऽस्मिन् ब्राह्मणोत्तम॥
—1146 : १३५५, १३५६

कपटेश्वर तीन ओर से अत्यन्त हरित उत्तुंग देवदार तथा चीड वृक्षों को अवलियों से आवृत है। उत्तुंग हरित सुन्दर शिखर हैं। ऊपर निर्मल नील गगन है। गाँव की दिशा को ओर पृष्ठ भागों में बहुत दूर हिमाच्छादित शिखर सूर्य किरणों के प्रतिबिंब में रंग बदलता दिखाई पडता है। यदि आँखें नीचे उठ गयी, तो विस्तृत हरी-भरी उपत्यका, उनमें यत्र-तत्र बिखरे ग्राम छाया तुल्य दिखाई देते हैं।

स्थान की परिकल्पना अद्‌भुत है। विचित्र है। आज खंडहर है। इन खंडहरों में किंचित् कल्पना का आश्रय लेने पर स्थान की भव्यता का अनुभव होगा। मध्य में वृत्ताकार कुंड के चारों ओर पत्थर की सीढियाँ हैं। जल के नीचे तक सीढियाँ चली गयी हैं। जल के स्तर से दो-तीन फीट ऊपर २० छोटी-छोटी मन्दिराकार मढियाँ कुंड के तटपर बनी हैं। चारो दिशाओं से चार सीढियाँ भूमि स्तर से जल तक आती हैं। प्रत्येक दो सीढियों के मध्य उल्लिखित ५ मढ़ियाँ मन्दिराकार बनी हैं। मंडयों की छतें प्रस्फुटित कमल के चौकोर पत्थर से ढँकी है। मढियाँ चौकोर हैं। इस प्रकार की मढियों के निर्माण की प्रथा काशी तथा अन्य तीर्थ स्थानों में जलाशयों के तटों पर है। उनमें विभिन्न देवताओं को मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। कहीं-कहीं मढ़िया स्नान के पश्चात् वस्त्र परिवर्तन करने, साधुओं के निवास किंवा पूजापाठ करने के लिए काम में लाई जाती हैं। कपटेश्वर की मढिया लगभग ३ फुट ऊँची तथा उतनी ही चौड़ी होंगी। प्रायः वर्गाकार हैं।

मढिया केवल देवस्थान एवं मूर्ति स्थापन के लिए बनाई गई थीं। एक मढी में पत्थर का सिंहासन नष्ट होने से बच गया है। गाँववालों से मढियो के विषय में पूछने पर पता चला। उन्होंने अपने पूर्वजों से सुना था। मढ़ियों में विभिन्न देवताओं की मूर्तियाँ थीं। मुसलिम काल में उन्हें उठाकर फेंक दिया गया। मन्दिर गिरा दिए गए। इस प्रकार कुफ्र एक का गढ़ नष्ट हो गया। ईमान की विजय हुई।

मढ़ियों के ऊपर भूमि का विस्तृत ऊपरी स्तर है। यह चौड़ा स्तर चारों ओर चौकोर है। स्तर के मूल से भूमि बाँध की तरह उठती गयी है। उस ऊँची भूमि पर चारो दिशाओं में चार भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया गया था। इस समय केवल एक का आकार शेष रह गया है। शेष तीन मंदिर तोड दिए गए हैं। खँडहर बन गए हैं। उनके पत्थर ग्रामीण उठा ले गये है। ऊपरी चारों मन्दिरों के द्वार से जल तक पहुँचने के लिए चारो दिशाओं से उतरती सीढियाँ कुंड में जाकर लोप हो जाती हैं। ऊपरी मंदिर जलस्तर से लगभग एक सौ फुट ऊँचाई पर होगा।

ग्राम की तरफ जल एक प्रणाली से निकलता है। प्रणाली के तल में कुछ खंडित देवताओं की मूर्तियाँ तथा शिवलिंग रखे हैं। वे तोडकर छोड़ दिये गये थे उनकी दयनीय स्थिति जगत् को दिखाने के लिए उन्हें नालियों में ईंटों की तरह रख दिया गया है। इस स्थान से जल लेकर आचमन किया जाता है।

ग्राम तथा कुंड की मध्यवर्ती भूमिपर इस समय मंदिरों के विशाल ध्वंसावशेष मिलेंगे। एक छोटा मंदिर गाँव की ओर वाली ऊँची भूमि तथा सरोवर की दीवार के मध्य स्थित है। तीनों मंदिरों के मुख किंवा द्वार सरोवर की तरफ हैं। दोनों विशाल मन्दिरों का अधिष्ठान भूमि से १५ फुट ऊँचाई पर हैं। मन्दिर के अन्तराल तक पहुंचने के लिए ९ सीढ़ियाँ चढनी होंगी। उक्त दोनों विशाल मन्दिरो की पट्टिका के ऊपर का ढांचा बिल्कुल लोप हो गया है। भित्तियों का कहीं पता नहीं है। केवल चारों भित्तियों का मूल आकार मात्र शेष रह गया है।

मन्दिरों के पत्थर ग्रामीण तोड़-तोड़कर उठा ले गये हैं। केवल भूमि से अन्तराल तक पहुँचनेवाली

दर्शनस्य महीश पूर्णत्वं भविष्यति।
इत्येतत्कथितं पुण्यं कपटेश्वरमंजनम्॥
—1147 : १३५९, १३५,

कपटेश्वर प्रसन्न होकर जाना चाहिए। वेरीनाग से होते हुए कपटेश्वर जाना पहले चाहे सुविधाजनक रहा हो, परन्तु सड़कों तथा परिवहन के साधना के कारण, अनन्त नाग तथा अच्छबल होकर जाना अधिक सरल तथा सुविधाजनक हो गया है। अच्छबल के डाक बंगला के दक्षिण पार्श्व से एक पक्की सड़क कपटेश्वर जाती है। उससे कुछ आगे जाने पर एक कच्ची सड़क मिलती है। संभव है कुछ समय पश्चात् यह सड़क भी पक्की बन जाय। यह सड़क देवदार के सुरम्य वनों द्वारा होकर ग्राम पहुँचती है। मार्ग की वन-श्री सुन्दर है। मन करता है। चुप-चाप यहीं बैठकर प्रकृति की अभिरामता देखते रहें।

सड़क चढ़ाव-उतराव से होकर गुजरती है। कुछ ऊपर जाने पर दूसरी ओर की उपत्यका का मनोरम प्राकृतिक दृश्य मिलता है। सड़कें होकर गाँव तथा कपटेश्वर पर्वत के पादमूल तक पहुँच जाती है। ग्राम में सड़क के दाहिनी तरफ अखरोट, विलो की हरित झूमती सघन तरु पंक्तियाँ मिलेंगी। ऊपर से किंचित् कल-कल ध्वनि के साथ उतरता निर्झर दिखाई देगा। यह जल पापसूदन कुंड द्वारा निकला निर्मल उज्ज्वल शीतल जल है। निर्झर प्रणाली पर दो एक लकड़ी के बने स्नानगृह अर्थात् 'स्नान गृह' रखे थे। काश्मीरी जलाशयों के समीप सर्वत्र लकड़ी निर्मित महिलाओं के स्नान निमित्त स्नानखुट रखे मिलते हैं।

सड़क त्यागकर पगडण्डी पकड़नी पड़ती है। लगभग २ फर्लांग की सरल चढ़ाई है। पाँच मिनट की चढ़ाई के पश्चात् पापसूदन तीर्थ का मनोरम दर्शन मिलता है।

वेरीनाग अर्थात् नीलकुंड के समान यहाँ एक त्रिभुज कुंड किंतु गंभीर है। वेरीनाग से बड़ा पड़ता है। जल वेरी नाग की तरह निर्मल, शान्त तथा शीतल भय है। जल में एक प्रकार की चंचलता दिखाई पड़ती है। जैसे कुंड की धारा जल ऊपर चढ़ रही हो। एक कोना से जल और गति द्वारा बाहर निकलता रहता है। वहीं से जल त्रिभुज वराह का रूप धारण करता है। ग्राम के जल प्रणाली का रूप ले लेता है। ग्राम की सतह से लगभग २०० फीट की ऊँचाई पर पापसूदन तीर्थ का पवित्र कुंड स्थित है।

स्थान आकृष्ट है। चारों ओर वन देखकर मन पुलकित हो जाता है। यहाँ की प्रकृति सुषमा में ओज है। चेतना का अनुभव होता है। बहुधा स्थानों के सुंदर होने पर भी उनमें चेतना का अनुभव नहीं होता। यहाँ मुझे ओज तथा चेतना का बोध प्रकृति के शान्त वातावरण में होने लगा। जिस समय यह स्थान अपनी पूर्ण गरिमा में रहा होगा उस समय वेरीनाग इसके सम्मुख तुच्छ प्रतीत होता होगा। इसकी सुंदरता की कल्पना में नीलनाग किंवा वेरी नाग की सुन्दरता नगण्य मालूम होगी।

कपटेश्वर धार्मिक तीर्थ था। मन्दिरों का अद्भुत समूह था। मूर्तिपरस्ती का एक बड़ा मरकज होने के कारण इसके विकास अथवा इसे सुन्दर बनाने का प्रयास हिंदू राजाओं के पश्चात् मुसलिम राजाओं ने नहीं किया। यह स्थान श्रीनगर से दूर है। मुख्य राजपथ से दूर है। यहाँ आना कठिन है। अतएव इसका महत्त्व घटता गया। वेरीनाग सुगम होने के कारण महत्त्व प्राप्त करता गया। मुगलों के कारण, राजकीय संरक्षण के कारण, विकास की सुनियोजित योजना के कारण, वेरीनाग ने सुन्दरता का परिधान पहन लिया है। वितस्ता का उद्गम स्थान होने के कारण साधारण जनता की दृष्टि में इसका मान बढ़ता गया। चाहे वे हिन्दू हो अथवा मुसलमान।

कपटेश्वर तीन ओर से अत्यन्त हरित उत्तुंग देवदार तथा चीड वृक्षों की अवलियों से आवृत है। उत्तुंग हरित सुन्दर शिखर है। ऊपर निर्मल नील गगन है। गाँव की दिशा की ओर पृष्ठ भागों में बहुत दूर हिमाच्छादित शिखर सूर्य किरणों के प्रतिबिंब में रंग बदलता दिखाई पड़ता है। यदि आँखें नीचे उठ गयीं, तो विस्तृत हरी-भरी उपत्यका, उनमें यत्र-तत्र बिखरे ग्राम छाया तुल्य दिखाई देते हैं।

स्थान की परिकल्पना अद्भुत है। विचित्र है। आज खंडहर है। इन खंडहरों में किंचित् कल्पना का आश्रय लेने पर स्थान की भव्यता का अनुभव होगा। मध्य में वृत्ताकार कुंड के चारो ओर पत्थर की सीढ़ियाँ है। जल के नीचे तक सीढ़ियाँ चली गयी है। जल के स्तर से दो-तीन फीट ऊपर २० छोटी-छोटी मन्दिराकार मढ़ियाँ कुंड के तटपर बनी हैं। चारों दिशाओं से चार सीढ़ियाँ भूमि स्तर से जल तक आती हैं। प्रत्येक दो सीढ़ियों के मध्य उल्लिखित ५ मढ़ियाँ मन्दिराकार बनी हैं। मंडपों की छतें प्रस्फुटित कमल के चौकोर पत्थर से ढँकी है। मढ़ियाँ चौकोर हैं। इस प्रकार की मढ़ियों के निर्माण की प्रथा काशी तथा अन्य तीर्थ स्थानों में जलाशयों के तटों पर है। उनमें विभिन्न देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती है। कहीं-कहीं मढ़िया स्नान के पश्चात् वस्त्र परिवर्तन करने, साधुओं के निवास किंवा पूजापाठ करने के लिए काम में लाई जाती है। कपटेश्वर की मढ़िया लगभग ३ फुट ऊँची तथा उतनी ही चौड़ी होंगी। प्रायः वर्गाकार हैं।

मढ़िया केवल देवस्थान एवं मूर्ति स्थापन के लिए बनाई गई थी। एक मढ़ी में पत्थर का सिंहासन नष्ट होने से बच गया है। गाँववालों से मढ़ियों के विषय में पूछने पर पता चला। उन्होंने अपने पूर्वजों से सुना था। मढ़ियों में विभिन्न देवताओं की मूर्तियाँ थी। मुसलिम काल में उन्हें उठाकर फेंक दिया गया। मन्दिर गिरा दिए गए। इस प्रकार कुफ्र एक का गढ नष्ट हो गया। ईमान की विजय हुई।

मढ़ियों के ऊपर भूमि का विस्तृत ऊपरी स्तर है। यह चौड़ा स्तर चारों ओर चौकोर हैं। स्तर के मूल से भूमि बाँध की तरह उठती गयी है। उस ऊँची भूमि पर चारों दिशाओं में चार भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया गया था। इस समय केवल एक का आकार शेष रह गया है। शेष तीन मंदिर तोड़ दिए गए हैं। खँडहर बन गए हैं। उनके पत्थर ग्रामीण उठा ले गये हैं। ऊपरी चारों मन्दिरों के द्वार से जल तक पहुँचने के लिए चारों दिशाओं से उतरती सीढ़ियाँ कुंड में आकर लोप हो जाती हैं। ऊपरी मंदिर जलस्तर से लगभग एक सौ फुट ऊँचाई पर होगा।

ग्राम की तरफ जल एक प्रणाली से निकलता है। प्रणाली के तल में कुछ खंडित देवताओं की मूर्तियाँ तथा शिवलिंग रखे हैं। वे तोड़कर छोड़ दिये गये थे उनकी दयनीय स्थिति जगत् को दिखाने के लिए उन्हें नालियों में ईंटों की तरह रख दिया गया है। इस स्थान से जल लेकर आचमन किया जाता है।

ग्राम तथा कुंड की मध्यवर्ती भूमिपर इस समय मंदिरों के विशाल ध्वंसावशेष मिलेंगे। एक छोटा मंदिर गाँव की ओर वाली ऊँची भूमि तथा सरोवर की दीवार के मध्य स्थित है। तीनों मंदिरों के मुख किंवा द्वार सरोवर की तरफ है। दोनों विशाल मन्दिरों का अधिष्ठान भूमि से १५ फुट ऊँचाई पर है। मन्दिर के अन्तराल तक पहुँचने के लिए ९ सीढ़ियाँ चढ़नी होंगी। उक्त दोनों विशाल मन्दिरों की पट्टिका के ऊपर का ढाँचा बिल्कुल लोप हो गया है। भित्तियों का कहीं पता नहीं है। केवल चारों भित्तियों का मूल आकार मात्र शेष रह गया है।

मन्दिरों के पत्थर ग्रामीण तोड़-तोड़कर उठा ले गये हैं। केवल भूमि से अन्तराल तक पहुँचनेवाली

सीढ़ियाँ शेप रह गयी हैं। यह दोनों मन्दिर दीवार तथा कुंड के मध्यवर्ती भूमि की सीढ़ियों के दक्षिण में स्थित हैं। लघु मन्दिर वाम पार्श्व में हैं। लघु मन्दिर में दो साधू अपना सामान रखते हैं। उसमें प्रतिमा किंवा शिवलिंग नहीं है। लगभग तीन वर्षों से वे यहाँ निवास करते हैं। समीप फौज की छावनी है। फौज के सिपाहियों ने अपने प्रयास से एक तिरपाल डालकर अस्थायी टेंट बना दिया है। टेंट में बाबाजी भोजन बनाते हैं। रात्रि में सोते हैं। उनमें एक हरिद्वार तथा दूसरा प्रयाग का साधु था।

बाहरी दीवाल की मध्यवर्ती सीढ़ियों के दोनों पार्श्व में १० गवाक्ष की तरह मढ़ियाँ बनी हैं। इस प्रकार एक दिशा की दीवाल में २० ताखा थे। चारों ओर की दीवालों में कुल ८० मढ़ियाँ रही होंगी। शेप तीन तरफ की दीवालों में कोई मढ़ी शेप नहीं रह गयी है। दीवालों का आकार तथा रूप समाप्तप्राय है। इन मढ़ियों की छतें पत्थर पर खुदे उत्फुल्ल कमल की बनी हैं। एक ओर लघु मन्दिर उक्त छोटे मन्दिर के सम्मुख कुछ हटकर है। भग्नावस्था में है। दोनों छोटे मन्दिर ऊँचे अधिष्ठान पर बने हैं।

मैंने साधुओं से बहुत देर तक बातें कीं। उनका कहना था। दो वर्ष पूर्व तक यहाँ बहुत पत्थर थे। शनैः शनैः सब चोरी हो गये हैं। लोग उठा ले गये। गाँववाले मकान बनाने तथा कब्रों में लगाने के लिए ले जाते हैं। रक्षा के अभाव में प्रतीत होता है, यहाँ के सब ध्वंसावशेष समाप्त हो जाएँगे।

उसी भूमि पर एक ओर एक और मन्दिर शेष रह गया है। मैंने गाँववालों से यहाँ की बातें जाननी चाहीं। पूछने पर पता चला। पचास-साठ वर्ष पूर्व उनका चिह्न था। किंतु वे गिरते ही गए। कोई मरम्मत नहीं होती थी। मंदिरों में देवता नहीं थे। अतएव हिंदू डोगरा राज काश्मीर में होने पर भी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। पत्थर ले जाने वालों को कोई रोकने वाला नहीं था। इसलिए पत्थर आदि गायब होने लगे। मन्दिरों के स्थान पर मढ़ियों के ढूहे रह गये हैं। कुछ समय पश्चात् ढूहे जो पुराने चूनों और सुर्खियों के अवशेष थे, उन्हें गचों तथा छतों में लगाने के लिए लोग ढो ले गये।

चैत्र तृतीया को यहाँ मेला लगता है। स्थानीय मुसलमानों से इस मन्दिर तथा स्थान के विषय में सर्वदा कुछ न कुछ विवाद रहता है। ग्राम में पीने तथा सिंचाई का एक मात्र स्रोत इस तीर्थ का जल है। जब से यहाँ साधु लोग रहने लगे हैं, स्थान की सुरक्षा होने लगी है। टेंट लगने के पहले साधु लोग वृक्षों के नीचे बैठकर तुषारपात जैसे भयंकर काल को काट देते थे।

साधुओं की कोई आमदनी नहीं है। मुसलमान कभी कुछ देते नहीं। यात्री आते नहीं। कभी कोई भूला भटका आ गया तो दो-चार पैसा दे दिया। लकड़ियाँ वृक्षों से तोड़ लेते हैं। धूनी सतत जलती रहती है। साग-पात मिल गया। पका लिया। नहीं मिला तो चुपचाप पड़े रहे। उनका सन्तोष, उनकी शांति मुझे पसन्द आई। इस विरोधी वातावरण में, आकाश के नीचे, बिना किसी साधन के, बिना किसी आशा के, अपने घरों से हजारों मील दूर पड़े रहना, उनकी धार्मिकता, उनकी कठोर लगन का ज्वलन्त उदाहरण था।

मेरा मन यहाँ उदास हो गया। स्थान जितना सुन्दर था, उतना ही उपेक्षित था। प्रकृति ने उसे सुषमा दी। मनुष्यों ने उसे सजाया। और मनुष्यों ने ही उसे नष्टकर खंडहर बना दिया। मानव कंकाल-तुल्य अपनी करुण गाथा सुनाने के लिए उसे छोड़ दिया। मैं मन मारे चुपचाप कल-कल नाद करते जल प्रणाली के साथ गाँव की ओर उतर चला। इस स्थान को सर्वदा के लिए नमस्कार कर, इसके रचनाकारों के प्रति श्रद्धा प्रकट कर, और इसके नष्ट करने वालों की मानवीय दुर्बलता पर अफसोस करते।

सन्ध्यादेवी जलं यस्मिन् धत्ते निस्सलिले गिरौ ।
दर्शनं पुण्यपापानामन्वयव्यतिरेकयोः ॥ ३३ ॥

३३. कश्मीर मण्डल के निःसलिल गिरि पर सन्ध्या देवी के जल धारण द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि वहाँ पुण्य का अस्तित्व तथा पाप का अभाव है।

मैं गाँव में आकर ठहर गया। इन ग्रामीणों के पूर्वज कभी इन मंदिरों के उपासक थे। उनके पुरोहित लेकिन आज उस ओर उलट कर देखने में हिचकते हैं। उपासकों के वंशज कहलाने में संकोच करते हैं। बल्कि नापसन्द करते हैं।

स्त्रियाँ काम कर रही थीं। मैं खड़ा हो गया। वे मक्के की बालों से दाने निकाल रही थी। ओखली होती है। लम्बे मूसल होते हैं। ओखली में बाल डालकर कूटती है। मक्के के दाने तथा खुलडी अलग हो जाते है। वे हमें चकित होकर देखने लगी। खेलते बच्चे कुछ सहम कर खड़े हो गए। हमारा मन यहाँ से हट जाने के लिये कहने लगा।

गाँव में अखरोट के वृक्षों की बहुलता है। ग्रामीणो का सीधा सादा सरल जीवन अच्छा लगा। वे शहरी वातावरण से दूर थे। उनकी जीविका अखरोट, शाली तथा मक्का की उपज पर निर्भर थी। अखरोट का मौसम था। अखरोट घाम में सूखने के लिये फैलाए गए थे। मुझे देखकर बच्चे अखरोट के पास खड़े हो गये। बालजन्य दुर्बलता उनमें आ गई। कहीं मैं अखरोट, उनकी एकमात्र सम्पत्ति उठा न लूँ। मैं उन्हें देखकर मुसकराया। चुपचाप उन्हें देखने लगा। मूसल चलाती स्त्रियाँ जैसे कुछ समझ न पाकर मूसल चलाना रोक कर मेरी ओर देखने लगी। मैं कुछ बोलना चाहा। बोल न सका। अपनी राह पकड़ा।

स्थान रम्य है। सुहावना है। विकास करने पर आदर्श पर्यटन केन्द्र बन सकता है। केन्द्र होने पर स्थानीय निर्धन ग्रामीणो की आर्थिक दशा सुधर सकती है। पर्यटकों को कश्मीर का, कभी का भूला, एक तीर्थस्थान दर्शनार्थ मिलेगा।

पाठभेद :

श्लोक ३३ मे 'धत्ते' की जगह 'दत्ते' पाठ भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३ (१) सन्ध्या देवी : सन्ध्या देवी ब्रह्मा की मानस कन्या कही जाती हैं। यहाँ सन्ध्या देवी प्रसिद्ध त्रिसन्ध्या निर्झर रूप में प्रकट होती है। वह उपत्यका के एक तरफ है। देवल गोम ग्राम के दक्षिण दिशा में यह निर्झर है। यहाँ के एक लघु ग्राम का नाम सुन्दबार है। बार का अर्थ देवी होती है। यह शब्द सन्ध्या का अपभ्रंश है। ग्राम अब निर्झर के निकट है। इस निर्झर के समीप ही एक छोटा और झरना सप्तर्षियों के नाम से सम्बन्धित है। किन्तु चमत्कार के कारण त्रिसन्ध्या को ही विशेष महत्त्व दिया गया है।

सन्ध्या माहात्म मे वर्णन मिलता है कि भद्रेश्वर वतु के पुत्र माया वतु ने सन्ध्या गंगा को अपने आश्रम देवल ग्राम के समीप लाया था।

चमत्कार :

यह निर्झर ज्येष्ठ तथा आषाढ मास मे तीन बार दिन तथा तीन बार रात्रि में चलता है। त्रैकालिक सन्ध्या की उपमा करने से दी गई है। निर्झर का त्रिसन्ध्या नामकरण किया गया है। अत्यन्त प्राचीन काल से यह कश्मीर का पवित्र तीर्थस्थान रहा है। इसका उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है। त्रिसन्ध्या माहात्म्य मे उत्पत्ति उद्गमादि का वर्णन मिलता है। झरना वर्ष में अधिक दिनो तक सूखा रहता है। कश्मीर उपत्यका में यह एक आश्चर्यजनक चमत्कार माना जाता है। कल्हण कपटेश्वर के पश्चात् इसका वर्णन करता है।

डाक्टर श्री बरनियर ने सन् १६६५ ई० में अपने संरक्षक दानिशमन्द खाँ के साथ यहाँ की यात्रा की थी। उनका वर्णन प्राचीन शास्त्रीय वर्णन से मिलता है। उसने यहाँ की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया था। इस चमत्कार के कारण देने का भी प्रयास किया है। वह लिखता है—"मई मास में जब बर्फ गलती है तो वह झरना ५ दिन तक दिन में तीन बार चल कर बन्द हो जाता है। वह उषाकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल चलता है। लगभग ४५ मिनट झरना चलता है। उसमें से काफी पानी निकलता है। वह १० या १२ फुट वर्गाकार और उतने ही गहरे कुण्ड को भरने के लिए काफी होता है। वह झरना बन्द हो जाता है। वर्षा ऋतु में अन्य झरनों के समान निस्सन्देह इसमें पानी आ जाता है।"

कुण्ड के समीप हिन्दुओं का एक मंदिर है। उसमें देवी की मूर्ति है। अतएव इस स्थान को सेंड कहते हैं। लोग पूजा निमित्त आते हैं। यहाँ के सम्बन्ध में अनेक गाथाएँ तथा कपोल कल्पनाएँ हैं। बरनियर लिखता है। मैं यहाँ ६ दिन इस चमत्कार को देखने के लिए रहा। मैंने यहाँ के पर्वत का अच्छी तरह अध्ययन किया। पर्वत मूल में वह झरना स्थित है। मैं इस चमत्कार का कारण जाँचने के के लिए चारों तरफ कदम कदम देखता पर्वत के ऊपर पहुँचा। यह पर्वत उत्तर से दक्षिण फैला है। दूसरे पहाड़ों से अलग है। इसका रूप गधे की पीठ की तरह है। यह लम्बा अधिक है। चोटी कठिनाई से १०० पद चौड़ी होगी। पूर्व की तरफ यह पहाड़ घासों से ढँका है। पश्चिम की तरफ वृक्ष तथा झाड़ियाँ हैं। दूसरी तरफ पहाड़ होने के कारण सूर्य की रोशनी इस पर आठ बजे प्रातः काल के पहले नहीं पड़ती।

मैंने विचार किया। संभव है। सूर्य की गरमी के कारण यह चमत्कार उत्पन्न होता है। मैं समझता हूँ। शीत काल में समस्तोभूमि तुषाराच्छादित हो जाती है। पर्वत के उस भागमें जम जाती है जहाँ प्रातः कालीन उगते सूर्य की किरणें पड़ती हैं। बर्फ पिघलती है। जल झरने में जाता है। इसी प्रकार मध्याह्न काल में बर्फ पिघल कर धीरे-धीरे झरने में पहुँच जाती है। इसी प्रकार सूर्य की किरण जब पश्चिम की ओर झुकती हैं तो बर्फ गल कर दूसरे स्रोत से पहुँचती है। इस प्रकार सायंकालीन जल झरने में आ जाता है। सायंकालीन जल झरने में इसलिए कम आता है कि पश्चिमी तरफ वाले पहाड़ पर वृक्ष तथा झाड़ियाँ लगी हैं। उसके कारण सूर्य की किरणें इस तरफ बरफ पिघलाने के लिए अधिक नहीं पहुँच सकती। पानी पन्द्रह दिनों में इसलिए समाप्त होकर बन्द हो जाता है कि पहले दिनों में पानी ज्यादा चलता है। धीरे-धीरे कम होता हुआ पन्द्रहवें दिन बन्द हो जाता है। बर्फ जो पर्वत में जमी रहती है वह धीरे-धीरे गलकर समाप्त होती रहती है। जल का आना एक-सा नहीं रहता। कभी दोपहर में अधिक आता है। कभी देखा गया है कि प्रातः काल अधिक आता है। कभी प्रातः काल अधिक तथा मध्याह्न काल में कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि किसी दिन ज्यादा ठंडक होती है और किसी दिन कम। किसी दिन बादल आ जाने के कारण ठंडक बढ़ जाती है। और गर्मी असमान रूप से पड़ने लगती है।"—Berneirs Travels in the Mogul Empire, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४१०-४१३

हरचरितचिन्तामणि में वर्णन मिलता है। यदि कोई पापी इस स्थान पर आ जाय तो उसे निर्झर का आश्चर्यजनक कार्य नहीं दिखाई पड़ेगा (४ ५०)।

सिख गवर्नर कर्नल मियान सिंह यहाँ आये थे। निर्झर का चलना बंद हो गया था। उन्होंने लम्बा उपवास किया। विचित्र निर्झर पुनः चलने लगा।

नीलमत पुराण में संध्या शब्द एक स्थान पर नदी और दूसरे पर पुष्करिणी के लिए व्यवहृत किया गया है। अतएव उन्हें एक नहीं मानना

स्वयम्भूर्यत्र हुतभुक् भुवो गर्भात् समुन्मिषन् ।
जुह्वतां प्रतिगृह्णाति ज्वालाभुजवनैर्हविः ॥ ३४ ॥

३४ स्वयम् अग्निज्वाला पृथ्वी गर्भ से निकल कर जैसे अपनी भुजाओं द्वारा होताओं की हवि प्रतिग्रहण करती है।

चाहिए। नीलमत पुराण उनमें स्पष्ट भेद करता है।

सन्ध्या नदी :

मउथायां नरः स्नात्वा गोसहस्रम् फलम् लभेत् ।
सन्ध्याम् नाम नदीम् दृष्ट्वा मुच्यते सर्वकिल्पिषैः ॥
—1252 : १४७१

सन्ध्या पुष्करिणी :

सन्ध्या पुष्करिणी रम्या पूर्वतुल्यफलप्रदा ।
अवगाह्य नरो भक्त्या पुण्याम् ब्राह्मणकुण्डिकाम् ॥
—1287 : १४९९

पादटिप्पणियाँ :

३४ (१) स्वयंभू—यह ब्रह्मा के पुत्र है। इनसे प्रजा की उत्पत्ति हुई है। (मत्स्य पुराण : ३:३१) इनका शरीर अर्धनारी का था। एक भाग नारी तथा दूसरा नर का था। ब्रह्मा ने एक ही शरीर के दोनों भागों को अलग करने का आदेश दिया। उन्ही से मानव जगत् में नर एवं नारी का सृजन हुआ है। नारी शरीर से सतरूपा तथा नर शरीर से स्वयंभू हुए है। (मारकण्डेय पुराण : ५०; विष्णु : ७:६; भागवत : ३:१२:५३)

बाइबिल में वर्णित आदम तथा होवा की कथा इसमें मिलती है। उसमें भी वर्णन मिलता है। भगवान् ने पहले आदम को पैदा किया। आदम की एक पसली से होवा स्त्री पैदा हुई। इस प्रकार आदम नर तथा होवा अर्थात् ईव नारी हुई। उन्हीं से सृष्टि चली।

स्थानीय ग्रामीण स्थान को 'सुयम' कहते हैं। यह स्थान 'नीच होम' ग्राम से आधा मील दक्षिण पश्चिम दिशा में स्थित है। मच्छीपुर परगना में है। यहाँ पर ज्वालामुखी का प्रतिभास एक नीची भूमि में बालू तथा भूमि के मध्य होता है। किसी वर्ष इसमें से उष्ण वाष्प निकलने लगती है। स्थान इतना गरम हो जाता है कि यात्री श्राद्ध की वस्तु उस पर रख देते हैं। वह पक जाती है।

श्री स्तीन सन् १८९२ में इस स्थान पर आये थे। वहाँ वालों से उन्हें मालूम हुआ कि वाष्प अथवा ज्वाला गत १५ वर्षों से नहीं निकली है। श्री स्तीन ने देखा। वहाँ के छिछले स्थान की भूमि ईंट की तरह चमकीली तथा लाल थी। वह जली मिट्टी की तरह थी। वह संकीर्ण विवर हल चला जैसा मालूम होता था।

सन् १८७६ में पण्डित गोविन्द कौल यहाँ की तीर्थ यात्रा करने आये थे। उस समय इसकी यह क्रिया लगभग दस मास तक चलती रही।

वाइन ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है। यह आश्चर्यजनक प्रतिभास इस शताब्दी के आरम्भ में देखा गया था।

अबुलफजल ने आइने अकबरी (२:३६५) में लिखा है—सुरंगो के समीप एक दर्रा है। उसे सोयुम कहते है। उसके छोर पर एक स्थान लगभग १० जरीब के क्षेत्रफल में होगा। जिस समय बृहस्पति सिंह राशि मे प्रवेश करता है उस समय लगभग एक मास तक भूमि इतनी गरम हो जाती है कि समीपवर्ती वृक्ष सूख जाते है। यदि कोई पशु या पक्षी इस भूमि पर रख दिया जाय तो भुन जायगा। इस स्थान के समीप आबादी है। कमराज से जो दर्रा इस तरफ आता है वह दूसरी तरफ कासगर से जाकर मिल जाता है। इसके पश्चिम तरफ पकते है। वहाँ सोना मिलता है।

मै सन् १९६४ में इस स्थान पर आया था। उस समय यहाँ की भूमि गरम नहीं थी। स्थानीय लोगों में यहाँ के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं।

डाक्टर श्री बरनियर ने सन् १६६५ ई० में अपने संरक्षक दानिशमन्द खाँ के साथ यहाँ की यात्रा की थी। उनका वर्णन प्राचीन शास्त्रीय वर्णन से मिलता है। उसने यहाँ की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया था। इस चमत्कार के कारण देने का भी प्रयास किया है। वह लिखता है—"मई मास में जब बर्फ गलती है तो वह झरना १५ दिन तक दिन में तीन बार चल कर बन्द हो जाता है। वह उषाकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल चलता है। लगभग ४५ मिनट झरना चलता है। उसमें से काफी पानी निकलता है। वह १० या १२ फुट वर्गाकार और उतने ही गहरे कुण्ड को भरने के लिए काफी होता है। वह झरना बन्द हो जाता है। वर्षा ऋतु में अन्य झरनों के समान निस्सन्देह इसमें पानी आ जाता है।"

कुण्ड के समीप हिन्दुओं का एक मंदिर है। उसमें देवी की मूर्ति है। अतएव इस स्थान को सेंड कहते हैं। लोग पूजा निमित्त आते हैं। यहाँ के सम्बन्ध में अनेक गाथाएँ तथा कपोल कल्पनाएँ हैं। बरनियर लिखता है। मैं यहाँ ६ दिन इस चमत्कार को देखने के लिए रहा। मैंने यहाँ के पर्वत का अच्छी तरह अध्ययन किया। पर्वत मूल में वह झरना स्थित है। मैं इस चमत्कार का कारण जाँचने के के लिए चारों तरफ कदम कदम देखता पर्वत के ऊपर पहुँचा। यह पर्वत उत्तर से दक्षिण फैला है। दूसरे पहाड़ों से अलग है। इसका रूप गधे की पीठ की तरह है। यह लम्बा अधिक है। चोटी कठिनाई से १०० पद चौड़ी होगी। पूर्व की तरफ यह पहाड़ घासों से ढँका है। पश्चिम की तरफ वृक्ष तथा झाड़ियाँ हैं। दूसरी तरफ पहाड़ होने के कारण सूर्य की रोशनी इस पर आठ बजे प्रातः काल के पहले नहीं पड़ती।

मैंने विचार किया। संभव है। सूर्य की गरमी के कारण यह चमत्कार उत्पन्न होता है। मैं समझता हूँ। शीत काल में समस्त भूमि तुषाराच्छादित हो जाती है। पर्वत के उस भाग में जम जाती है जहाँ प्रातः कालीन उगते सूर्य की किरणें पड़ती हैं। बर्फ पिघलती है। जल झरने में जाता है। इसी प्रकार मध्याह्न काल में बर्फ पिघल कर धीरे-धीरे झरने में पहुँच जाती है। इसी प्रकार सूर्य की किरण जब पश्चिम की ओर झुकती है तो बर्फ गल कर दूसरे कोन से पहुँचती है। इस प्रकार सायंकालीन जल झरने में आ जाता है। सायंकालीन जल झरने में इसलिए कम आता है कि पश्चिमी तरफ वाले पहाड़ पर वृक्ष तथा झाड़ियाँ लगी हैं। उसके कारण सूर्य की किरणें इस तरफ बरफ पिघलाने के लिए अधिक नहीं पहुँच सकतीं। पानी पन्द्रह दिनों में इसलिए समाप्त होकर बन्द हो जाता है कि पहले दिनों में पानी ज्यादा चलता है। धीरे-धीरे कम होता हुआ पन्द्रहवें दिन बन्द हो जाता है। बर्फ जो पर्वत में जमी रहती है वह धीरे-धीरे गलकर समाप्त होती रहती है। जल का आना एक-सा नहीं रहता। कभी दोपहर में अधिक आता है। कभी देखा गया है कि प्रातः काल अधिक आता है। कभी प्रातः काल अधिक तथा मध्याह्न काल में कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि किसी दिन ज्यादा ठंडक होती है और किसी दिन कम। किसी दिन बादल आ जाने के कारण ठंडक बढ़ जाती है। और गर्मी असमान रूप से पड़ने लगती है।"—Berneirs Travels in the Mogul Empire, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४१०-४१३.

हरचरितचिन्तामणि में वर्णन मिलता है। यदि कोई पापी इस स्थान पर आ जाय तो उसे निर्झर का आश्चर्यजनक कार्य नहीं दिखाई पड़ेगा (४:५०)।

सिख गवर्नर कर्नल मियान सिंह यहाँ आये थे। निर्झर का चलना बंद हो गया था। उन्होंने लम्बा उपवास किया। विचित्र निर्झर पुनः चलने लगा।

नीलमत पुराण में संध्या शब्द एक स्थान पर नदी और दूसरे पर पुष्करिणी के लिए व्यवहृत किया गया है। अतएव उन्हें एक नहीं मानना

स्वयम्भूर्यत्र हुतभुक् भुवो गर्भात् समुन्मिषन् ।
जुह्वतां प्रतिगृह्णाति ज्वालाभुजवनैर्हविः ॥ ३४ ॥

३४ स्वयम् अग्निज्वाला पृथ्वी गर्भ से निकल कर जैसे अपनी भुजाओं द्वारा होताओं की हवि प्रतिग्रहण करती है ।

चाहिए। नीलमत पुराण उनमें स्पष्ट भेद करता है।

सन्ध्या नदी :

मडवायां नरः स्नात्वा गोसहस्रम् फलम् लभेत् ।
सन्ध्याम् नाम नदीम् दृष्ट्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥
—1252 : १४७१

सन्ध्या पुष्करिणी :

सन्ध्या पुष्करिणी रम्या पूर्वतुल्यफलप्रदा ।
अवगाह्य नरो भक्त्या पुण्याम् ब्राह्मणकुण्डिकाम् ॥
—1287 : १४९९

पादटिप्पणियाँ :

३४ (१) स्वयंभू—यह ब्रह्मा के पुत्र हैं। इनसे प्रजा की उत्पत्ति हुई है। (मत्स्य पुराण : ३:३१) इनका शरीर अर्धनारी का था। एक भाग नारी तथा दूसरा नर का था। ब्रह्मा ने एक ही शरीर के दोनों भागों को अलग करने का आदेश दिया। उन्ही से मानव जगत् में नर एवं नारी का सृजन हुआ है। नारी शरीर से सतरूपा तथा नर शरीर से स्वयंभू हुए हैं। (मारकण्डेय पुराण : ५०; विष्णु ७:६; भागवत : ३:१२:५३)

बाइबिल में वर्णित आदम तथा हौवा की कथा इसमें मिलती है। उसमें भी वर्णन मिलता है। भगवान् ने पहले आदम को पैदा किया। आदम की एक पसली से हौवा स्त्री पैदा हुई। इस प्रकार आदम नर तथा हौवा अर्थात् ईव नारी हुई। उन्ही से सृष्टि चली।

स्थानीय ग्रामीण स्थान को 'सुयम' कहते हैं। यह स्थान 'नीच होम' ग्राम से आधा मील दक्षिण पश्चिम दिशा में स्थित है। मच्छीपुर परगना में है। यहाँ पर ज्वालामुखी का प्रतिभास एक नीची भूमि में बालू तथा भूमि के मध्य होता है। किसी वर्ष इसमें से उष्ण वाष्प निकलने लगती है। स्थान इतना गरम हो जाता है कि यात्री श्राद्ध की वस्तु उस पर रख देते हैं। वह पक जाती है।

श्री स्तीन सन् १८९२ में इस स्थान पर आये थे। वहाँ वालों से उन्हें मालूम हुआ कि वाष्प अथवा ज्वाला गत १५ वर्षों से नहीं निकली है। श्री स्तीन ने देखा। वहाँ के छिछले स्थान की भूमि ईंट की तरह चमकीली तथा लाल थी। वह जली मिट्टी की तरह थी। वह संकीर्ण विवर हल चला जैसा मालूम होता था।

सन् १८७६ में पण्डित गोविन्द कौल यहाँ की तीर्थ यात्रा करने आये थे। उस समय इसकी यह क्रिया लगभग दस मास तक चलती रही।

वाइन ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है। यह आश्चर्यजनक प्रतिभास इस शताब्दी के आरम्भ में देखा गया था।

अबुलफजल ने आइने अकबरी (२:३६५) में लिखा है—पुरंगो के समीप एक दर्रा है। उसे सोयुम कहते हैं। उसके छोर पर एक स्थान लगभग १० जरीब के क्षेत्रफल में होगा। जिस समय बृहस्पति सिंह राशि में प्रवेश करता है ... समय लगभग एक मास तक भूमि इतनी गरम हो ... ती है कि समीपवर्ती वृक्ष सूख जाते हैं। यदि ... या पक्षी इस भूमि पर रख दिया जाय तो ... । इस स्थान के समीप आबादी है। कश्मी... दर्रा इस तरफ आता है वह दूसरी तरफ ... जाकर मिल जाता है। इसके पश्चिम ... यहाँ सोना मिलता है।

मैं सन् १९६४ में ... पर आया था। उस समय यहाँ की भूमि ... । स्थानीय लोगों में यहाँ के सम्बन्ध ... नयी है।

देवी भेदगिरेः शृङ्गे गङ्गोद्भेदशुची स्वयम् ।
सरोऽन्तर्दृश्यते यत्र हंसरूपा सरस्वती ॥ ३५ ॥

३५. गंगा के स्रोत से पावन भेदगिरि[1] पर स्थित सरोवर में देवी सरस्वती हंस रूप में दिखायी देती हैं।

सोमदेव भट्ट कथासरित्सागर में स्वयम्भू का वर्णन करता है। वह लिखता है कि कश्मीर में बहुत-से स्वयम्भू तीर्थ हैं वहाँ जाकर पूजा करना चाहिए—'काश्मीरेषु स्वयंभूनि गत्वा क्षेत्राणि पूजय।' (९:१ ४५)

निस्सन्देह स्वयम्भू एक प्राचीन तीर्थस्थान है। नीलमत पुराण में इसका उल्लेख मिलता है।

सप्तर्षीणाम् तथैवाथां सुसुम्नस्य समीपतः ।
सुंगवागं च परदं च स्वयंभुवम् ॥१२७१॥
स्वायंभुवं चक्रिष्णं तथा वै विजलेश्वरम् ।
विन्दुनादेश्वरं देवं देवं अंकेश्वरं तथा ॥१९३१॥

नीलमत पुराण काल में भी स्वयंभू के सम्बन्ध में अग्नि का उल्लेख किया गया है। अग्नि के कारण भूमि तप्त होती है। यह स्थान सर्वदा पवित्र कश्मीर में माना गया है। कश्मीर के राजा उच्चल ने (सन् ११०१ ई०) स्वयंभू की तीर्थ यात्रा की थी। (रा० त० ८ : २४०)

स्वयंभू माहात्म्य से प्रकट होता है कि देवता लोग असुरों से त्रस्त किये गये थे। उनके निवेदन करने पर भगवान् शिव ने यहाँ कालाग्नि रुद्र का रूप धारण किया था।

स्वयंभू का अर्थ होता है जो स्वयं पैदा हो जाता है। स्वयंभू मनु से तथा पुराणों के वर्णित अन्य स्वयंभू देवताओं से कश्मीर के स्वयंभू को मिलाना नहीं चाहिए। (मत्स्य पुराण ४ : २६, २ : २७, २ : ३०; तथा वायु पुराण ४ : ४४)

पादटिप्पणियाँ :

३५ (१) —गंगोद्भेद तीर्थ : इस अत्यन्त प्रा... स्थान को लोग भूल गये थे। यह विपुल ज्योतिष तीर्थ स्थान है। श्री स्टीन ने इसका पता लगाया था। काश्मीर के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में इस स्थान का बहुत महत्व रहा है।

'परिशिष्ट' में विस्तृत वर्णन इस स्थान का किया है। श्री स्टीन ने जो कुछ यहाँ देखकर लिखा है उसमें बहुत कुछ अन्तर पड़ गया है। स्वयं इस स्थान पर बड़ी कठिनाई से पहुँच पाया था।

श्री स्टीन ने लिखा है : गिरि शिखर पर लगभग २० फीट चौकोर का एक जलकुण्ड है। उसमें पत्थर की सीढ़ियाँ चारों तरफ बनी हैं। वे जीर्ण शीर्ण हो गयी हैं। कुण्ड से ६ फीट दूर पर प्राचीन प्राचीर का चिह्न मिलेगा। यह उत्तर पूर्व तथा उत्तर पश्चिम अच्छी हालत में है। (यह लोप हो चुकी है) उत्तर पूर्व की ओर एक द्वार बना है। द्वार पर उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। (यह भी लोप हो चुका है) निर्माण में लगे शिला खण्ड अलंकृत हैं। द्वार के निम्न भाग में एक जल-स्रोत है। यह कुण्ड के जल को बहाता रहता है। द्वार के समीप एक भद्रपीठ पर २ शिवलिंग हैं। (यह भी लोप हो चुका है) इस रुद्र पीठ पर मूर्तियाँ भी बनी हैं। यहाँ से सौ फीट की ऊँचाई पर एक खुला सीढ़ीनुमा मैदान है। उस पर कुछ ऊँचा ढूहा है। उसपर प्राचीन काल की कुछ लाल ईंटें बची पड़ी हैं। (मैंने केवल चार ईंटें वहाँ देखीं)। दीवाल का चिह्न ८० वर्ग गज में दिखाई देगा।

श्री स्टीन को यहाँ के गूजरों से मालूम हुआ था। 'आज से १५० वर्ष पूर्व यहाँ ब्राह्मण लोग आते थे। नाग में स्नान कर श्राद्ध करते थे। वे अब यहाँ श्राद्ध करने नहीं आते।'

एक वृद्ध गूजर से श्री स्तीन को मालूम हुआ था। कुण्ड न तो कभी जमता है और न उसका जल बढता या घटता है।' स्तीन का मत है—बुदब्रार ही भेदा देवी का स्थान है। कुण्ड का नाम गंग भेद है। यह स्थान ७८०० फीट समुद्र की सतह से ऊँचा है। यहां की दुर्गम यात्रा से बचने के लिए एक दूसरे स्थान पर भेदा देवी की मूर्ति स्थापित कर दी गयी है। बुदब्रार से द्राव गाँव तथा पीर पंजाल दर्रा को मिलाता है। यह मार्ग बुदब्रार के दक्षिण पार्श्व से पहाडी पर चढ़ता है। यह आगे चलकर पीर पंजाल के मुख्य मार्ग से दुबजी के पास जाकर मिल जाता है।

श्रीवरने जैन तरंगिणी में भेद वनपथ का वर्णन किया है। उसमे श्री स्तीन का वर्णन मिलता है।

गंगोद्‌भेद माहात्म्य की कथा है। पुलस्त्य ऋषि ने सती की भूमि में लम्बी तपस्या की। उनके यज्ञ के लिये गंगा नदी हिमवंत पर्वत से चलकर यहाँ निकल पड़ीं।

तपस्या के पश्चात् ऋषि पुलस्त्य जल यथावत् प्रवाहित रहने देना चाहते थे। उसी समय सरस्वती देवी की आकाशवाणी श्रवण गत हुई 'गिरि शिखर पर जिस स्थान से भेद अरण्य में जल उद्‌भूत हुआ है उस तीर्थ का नाम गंगोद्‌भेद होगा। पर्वत के ऊपर जहाँ दश धनुष परिणाम लम्बा चौडा स्थान है वहाँ एक बडा कुण्ड शुद्ध जल का बन जायगा। पर्वत के पूर्वीय मूल भाग से एक सरिता 'अभय' निकलेगी। वह सब पापों को धोएगी। गंगा जी इसी रूप से यहाँ प्रकट होगी। इसका जल कभी समाप्त नही होगा। सरिता 'अभय' पर्वत से उछलती नहीं गिरेगी। गंगा का यह जल वर्ष के तृतीयाश काल में ही प्रवाहित रहेगा।' शेष काल में गंगा का जल स्वर्ग तथा नरक में बहता रहेगा।'

पुलस्त्य ऋषि ने निवेदन किया—देवी, पर जल यहाँ वर्ष पर्यन्त बनता रहना चाहिए।' देवी ने सर्वदा जल प्रवाहित रहने का वचन दिया।

एक सहस्र वर्ष और पुलस्त्य ने यहाँ तपस्या की। आकाश में राजहंस रूप से देवी सरस्वती ने दर्शन दिया।

चैत्र शुक्ल अष्टमी तथा नवमी को पूजा प्राप्त कर देवी ने वहाँ अपनी ६ प्रकृतियों का वर्णन किया। प्रकृतियों के भेद वर्णन करने के कारण देवी का नाम 'भेद' दिया गया।

ऋषि पुलस्त्य ने देवी सरस्वती की पूजा देवी वागेश्वरी भेद रूप से प्रारम्भ की। पूजा चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को आरम्भ की। अतएव स्थान का नाम गंगोद्‌भेद तीर्थ पडा। चार दिन पूजा होने लगी।

'भेद' देवी माहात्म्य का वर्णन कर माहात्म्य सहसा समीपवर्ती तीर्थ स्थानो का वर्णन करने लगता है। गोवर्धनधर विष्णु उल्लेख करता कहता है कि वहाँ पर १२५ हस्त परिणाम में कभी तुषार-पात नही होता।

माहात्म्य से एक बात स्पष्ट होती है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य का उसने जो वर्णन किया है वह अक्षरशः मिलता है। कुण्ड का माप भी जो दिया गया है वह ठीक है। अतएव निस्सन्देह कहा जा सकता है कि श्री स्तीन ने इस स्थान को मूल गंगोद्भेद माना है वह ठीक है।

नील मत पुराण में गंगोद्भेद तीर्थ का वर्णन मिलता है।

तावत्क्षेत्रं समं पुण्यं प्रयागेण नराधिप।
गंगोद्‌भेदे नरः स्नात्वा भेदा देवी मर्चयेत ॥
—1522

यहाँ पर यम की देवी मूर्ति जिसे औजम कहते है ऋषियों के निमित्त स्थापित की गयी थी। इसकी पूजा आश्वयुज अर्थात् आश्विन बदी चतुर्दशी को होती है। माहात्म्य वहाँ के समीपस्थ तीर्थ रामाश्रम, रामुसा, सप्तर्षि आश्रम तथा वैतरणी नदी का वर्णन करता है। तात्पर्य यह है कि गंगोद्भेद की यात्रा के समय उनकी भी यात्रा करनी चाहिए।

नन्दिक्षेत्रे हरावासप्रासादे द्युचरार्पिताः ।
अद्याऽपि यत्र व्यज्यन्ते पूजाचन्दनविन्दवः ॥ ३६ ॥

३६ हर के आवास के प्रासाद स्वरूप नन्दि क्षेत्र में देवताओं द्वारा अर्पित पूजा के चन्दन विन्दु दिखाई पड़ते हैं।

महाभारत में गंगोद्भेद तीर्थ का वर्णन मिलता है। यह स्थान 'भेदा' देवी कश्मीर का स्थान है या दूसरा इसपर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है। वनपर्व में तीर्थों की महिमा का वर्णन ऋषि पुलस्त्य ने किया है। उसमें भारत के प्रसिद्ध तीर्थों के साथ गंगोद्भेद का भी उल्लेख किया है।

गंगोद्भेदं समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत् सदा ॥
वनपर्व : ८४ : ३५.

'गंगोद्भेद तीर्थ में तीन रात उपवास करने वाला मनुष्य वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। सर्वदा के लिये ब्रह्मीभूत हो जाता है।'

रामतीर्थ का उल्लेख नीलमत पुराण करता है :

स्नात्वा नारायणस्थाने विष्णुलोके महीयते ।
रामतीर्थे भवोत्से च फलम् एतत् प्रकीर्तितम् ॥
1312

वैतरणी का उल्लेख मिलता है :

ऋषितीर्थे नरः स्नात्वा निर्मलो मुनिविद् भवेत् ।
वैतरण्याम् नरः स्नात्वा न दुर्गतिम् अवाप्नुयात् ॥
—1315

गंगोद्भेद का उल्लेख नीलमत में आता है :

मणिभद्रम् तथा दृष्ट्वा धनवान् अभिजायते ।
पुलस्त्यनिर्मिता देवी भुवि भेदेति विश्रुता ॥
—1010

गंगोद्भेदे नरः स्नात्वा भेदे देवीसमीपतः ।
गंगास्नानफलम् प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥
—1309

सप्तर्षि आश्रम का भी उल्लेख नीलमत करता है :

विगाह्य पुष्करम् तीर्थम् अतिरात्रफलम् लभेत् ।
तीर्थे सप्तर्षीणाम् च अह्निस्तोमफलम् लभेत् ॥
—1343

(विशेष द्रष्टव्य 'भेदादेवी' परिशिष्ट)

पाठभेद :

श्लोक ३६ में 'हरावास' का 'सुरावास' पाठ भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६ (१) नन्दि क्षेत्र :—इसका उल्लेख नील मत तथा हरमुकुट माहात्म्य में है। हरमुकुट माहात्म्य में नन्दि क्षेत्र संज्ञा उस भाग की दी गयी है, जो एक उत्तुंग पर्वतीय उपत्यका हरमुख शिखर के पूर्वीय हिमानी अर्थात् ग्लेसियर मूल में है। उसी स्थान पर कालोदक सरोवर है। उसे नन्द कुल कहा जाता है। स्थान १२ हजार फीट ऊँचाई पर स्थित है। गंगासर किंवा उत्तर मानस तीर्थ यात्रा मार्ग के मुख्य पड़ाव पर है। नीलमत पुराण कालोदक का वर्णन करता है।

तस्य शृङ्गस्य पूर्वार्धे सरोऽस्ति विमलोदके ।
कालोदकमिति ख्यातम् सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥
1048 : १२३२, १२३३

अत्रैव देवदेवेशः समाप्ते ब्रह्मणः क्रतौ ।
सर्वैर् देवगणैः सार्धम् ययौ कालोदकम् नरः॥
1099 : १२९७, १२९८

वालखिल्ये कृतेऽगस्त्ये तुल्यतेजा महर्षिभिः ।
कालोदकं नन्दिकुण्डम् शङ्खचक्रौ गदाम् तथा ।
—1243 : १४५८, १४५९

कालोदकम् यत्र याति नदी मानससंभवा ।
ततः स्नातस्य दृश्यन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥
—1247 : १४६१

नन्दी सर्वदा भूतेश्वर में रहते हैं। भगवान् शिव भी नन्दी के कारण वहाँ निवास करते हैं।

नीलमत पुराण में उपाख्यान का निम्नलिखित रूप मिलता है :

शिलादो नाम विप्रोऽभूत् पुरा पुत्रविवर्जितः।
तेन वर्षशतं भुक्त्वा शिलाचूर्णम् नराधिप।
नन्दिपर्वतमासाद्य महादेवप्रसादतः॥
1033। १२०५, १२०६

पुत्रार्थे तु तदा तस्य देवदेवो अनुकम्पया।
पुत्रत्वे नन्दिनम् प्रादात् स्वगणेशम् महाबलम्॥
1033। १२०६, १२०७

दीयमानस्तु पुत्रत्वे नन्दी प्रोवाच शंकरम्।
अनुग्रहाद् द्विजस्यास्य पुत्रोऽहं भविता प्रभो॥
1034। १२०८, १२०८

किं त्वयोनिभवो देव भवेयं त्वस्य पुत्रकः।
चिरम् च न च वत्स्येऽहं मानुषे त्वद्विनाकृतः॥
1035। १२०८, १२०९

तमुवाच हरो देवः प्रहसन्ननुकम्पया।
उमाविवाहे शप्तोऽसि भृगुणा त्वम् गणोत्तम॥
1036। १२०९, १२१०

अपूजितेन मानुष्ये तेनापि भविता ध्रुवम्।
तेन चैव शरीरेण मत्समीपमुपेष्यसि॥
1037। १२१०, १२११

ततः प्रभृति मानुष्ये वत्स्यसि त्वम गणोत्तम।
वत्स्यसे मत्समीपे च प्राकाम्येण यथा सुखम्॥
1038। १२११, १२१२

वत्स्यसे किम् च मानुष्ये भृगुशापबलाकृतः।
तत्रापि तेऽहं वत्स्यामि प्राकाम्येन गणेश्वर॥
1039। १२१२, १२१३

एवम् भूतेश्वरे नन्दी नित्यम् वसति पार्थिव।
प्राकाम्येन हरो देवस्तथा त्वदनुकम्पया॥
1040। १२१३, १२१४

३६ (२) हरमुकुट : हरमुख पर्वत का शिखर हरमुकुट है। मुकुट मस्तक पर धारण किया जाता है। तुषाराच्छादित हिमालय शिखर की उपमा कवियों ने भारत माता के किरीट से दी है—तुषार किरीट धारिणीम्।

अलबेरूनी ने इस पर्वत के विषय में लिखा है। (२:३६३)

बुधखुट पास की पूर्वीय दिशा में पर्वतमाला उठते उठते हरमुख शिखर में परिणत हो जाती है। यह शिखर लगभग १७ हजार फीट ऊँचा है। इसके चारों तरफ हिमानी अर्थात् ग्लेशियर है। कश्मीर उपत्यका से हरमुकुट पर्वत का सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। पर्वत के मूल में स्थित सरोवर सुदूर प्राचीन काल से पवित्र तथा पुण्य स्थल माना जाता है।

भगवान् शिव का हरमुकुट शिखर आवास है। पर्वत के समीपवर्ती तीर्थों की गाथाएँ भगवान् शिव से सम्बन्धित की गयी हैं। हरचरित चिन्तामणि में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। नीलमत पुराण हरमुकुट के विषय में लिखता है।

हरमुकुटमिति ख्यातम् श्रंगम् हिमवतः शुभम्।
जगाम सहसा नन्दी तपसे कृतनिश्चयः॥
1047

तस्यैव सरसोऽभ्यासे श्रंगं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
हरिमुकुटमिति ख्यातं आरुरोह मुदान्वितः॥
1118। १२२१

कश्मीर में एक जनश्रुति बहुत प्रचलित थी और है। हरमुकुट शिव का आवास है। मानव पद वहाँ नही पड सकता। आजकल भी कश्मीर के हिन्दू तथा मुसलमान दोनों वहाँ जाने से हिचकते हैं।

३६ (३) चन्दन विन्दु : श्री स्तीन सितम्बर मास सन् १८९४ में इस शिखर पर पहुँचे थे। लौटने

आलोक्य शारदां देवीं यत्र संप्राप्यते क्षणात् ।
तरङ्गिणी मधुमती वाणी च कविसेविता ॥ ३७ ॥

वहाँ देवी शारदा की तीर्थयात्रा के समय यात्री कवि पूजित तरंगिणी मधुमती एवं सरस्वती दोनों के समीप पहुच जाता है।

पर लोगों से उन्होंने अपनी यात्रा का वर्णन किया। परन्तु कश्मीरियों ने उसपर विश्वास नहीं किया। उनका कहना था। जिस शिखर पर श्री स्तीन पहुँचे थे। वह हरमुकुट नहीं था। वहाँ किसी प्राणी का पहुँचना कठिन है। श्री स्तीन के साथ एक मुसलमान कुली था। उससे पूछा गया। शिखर पर पहुँचे थे या नहीं। उसने शिखर पर चढने की बात पूर्णतया अस्वीकार कर दी। वह शिखर पर चढने की कल्पना भी नहीं कर सकता था।

कह्लण वर्णित चन्दन बिन्दु के सम्बन्ध में श्री स्तीन ने श्लोक की टिप्पणी में लिखा है कि उन्हें किसी पुस्तक तथा स्थानीय जनश्रुति परम्परा से इसका समर्थन नहीं मिल सका। श्री स्तीन सितम्बर मास में शिखर पर पहुँचे थे। उन्होंने विस्तृत वर्णन नहीं लिखा है। कश्मीर में यह महीना श्रेष्ठ समझा जाता है। बरफ गिरने का भी यह समय नहीं है।

मैं भूतेश्वरादि स्थानों तथा हरमुख पर्वत के मूल तक पहुँचा था। शिखर १७ हजार फीट की ऊँचाई पर है। मैं हाईब्लड प्रेसर का मरीज हूँ। पैदल इतनी ऊँचाई पर चढना मेरे लिए असम्भव था। मैंने जो वर्णन लिखा है उसका मुझे गौण ज्ञान है। श्री स्टाइनादि लेखकों तथा स्थानीय लोगों द्वारा सुनी बातों के आधार पर लिखा है।

किसी युवक अनुसन्धानप्रिय विद्वान् को यहाँ की यात्रा कर वास्तविकता का पता लगाना चाहिए। कह्लण ने जो बातें लिखी हैं वे प्रायः सत्य सिद्ध हुई हैं। चन्दन बिन्दु किस रूपक के आधार पर लिखा था। इन्हें जानना चाहिए। पर कथानक कपटेश्वर में तैरते काष्ट टुकड़ों से मिलता है।

३७ (१) जनश्रुति है। आद्य श्री शंकराचार्य का कश्मीर में आगमन हुआ था। वे शारदा मन्दिर में जाना चाहते थे। उन्हें मन्दिर प्रवेश करने की आज्ञा तत्कालीन पण्डितों ने नहीं दी। शारदा पीठ प्राचीन काल में काशी की तरह विद्या की राजधानी थी। वहाँ के विद्वानों का समस्त भारत में आदर तथा सम्मान किया जाता था।

शारदा पीठ के विद्वानों ने पुरानी परम्परा के अनुसार शंकराचार्य के सम्मुख एक शर्त रखी। वे यदि शारदा पीठ के विद्वानों के प्रश्नों का उत्तर दे दें तो उनका प्रवेश मन्दिर में हो सकता था।

कश्मीर का एक पुराकालीन नाम शारदा पीठ अथवा शारदा क्षेत्र था। शारदी का स्थान पठन पाठन तथा विद्याध्ययन के लिये प्रसिद्ध था। विद्या का केन्द्र माना जाता था।

बौद्ध जगत् के तक्षशिला तथा नालन्द विद्या-केन्द्र थे। हिन्दू जगत् में यह धर्म तथा विद्या का केन्द्र था। कश्मीर में उसे वही स्थान प्राप्त था जो उत्तर भारत में काशी, पूर्व में नवद्वीप तथा दक्षिण में काची को था।

इस स्थान के विषय में श्रीनगर स्थित वृद्ध ब्राह्मणों से मैंने कुछ जानकारी प्राप्त करनी चाही। एक आस्तिक वयोवृद्ध पण्डित ने बताया। पुरानी पद्धति के अनुयायी पण्डितों में अब भी प्रथा प्रचलित है। जिस दिन शारदा में स्नातकों को प्रमाण पत्र दिया जाता था उसे ही किसी न किसी रूप में प्रचलित देखने के लिये आज भी सनातन धर्मावलम्बी ब्राह्मण अपने विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र देते हैं। अथवा विद्यार्थी को स्नातक बना देते हैं।

ने मधुमती नदी का उल्लेख किया है। यह वर्तमान नदी (मोहर) है।

पिपीलिका का वर्णन महाभारत में मिलता है।

तद् वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः।
जातिरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पञ्चशो नृपः॥
(सभापर्व : ५२-४,)

हिरोडोटस भी पिपीलिका का वर्णन करता है जो चीटियों द्वारा एकत्रित किया जाता था। (३'१:१०५)

परशुराम भगवान् ने क्षत्रियों का २१ बार संहार कर, मधुमती के तटपर केशव की मूर्ति स्थापित की थी। यहाँ पर बलि के साथ पूजा की जाती थी। परशुराम ने गृद्धकूट पर्वत पर भी विष्णु की प्रतिमा स्थापित की थी। नीलमत पुराण परशुराम को भगवान् का अवतार नहीं मानता।

इन्द्रकीलम् समारुह्य गोसहस्रफलम् लभेत्।
तथा मधुमतीतीरे शाण्डिल्येन निवेशितम्॥
—1230 : १४४३, १४४४

शाण्डिलीमधुमत्योश्च स्नातो यः संगमे नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोक स गच्छति॥
—1233 : १४४६

मधुमत्यास्तयोश्चैव स्नातस्य नृप संगमे।
कथितं मुनिभिः पुण्यमश्वदानस्य यत्फलम्॥
—1239 : १४५२, १४५३

ततः प्रभवमासाद्य मधुमत्या मनोहरम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते॥
—1240 : १४५३, १४५४

काश्मीर में एक दूसरी मधुमती का वर्णन मिलता है। यह वितस्ता नदी में मिलनेवाला वन्द पोर नाला है।

कृष्णावितस्तासंयोगे गोसहस्रफलम् लभेत्।
वितस्तामधुमत्योश्च संगमे त्रिदिवम् व्रजेत्॥
—1229 : १४४२

कुलारणी पापहरा च कृष्णा
नदीसुपुण्या मधुमत्यथापि।
नदी परुष्णी च तथात्र पुण्या
प्रयान्ति दिव्या वरदां वितस्ताम्॥
—1390 : १६०८

(३) सरस्वती : शारदा तीर्थ के ठीक दूसरी तरफ उत्तर में तुषारमण्डित पर्वतमाला है। विलास से वहीं एक बड़ी नदी कृष्णगंगा में आकर मिलती है। इस नदी को कनकोतरी कहते हैं। यही शारदा माहात्म्य में वर्णित सरस्वती नदी है। यह नदी पंजाब की सरस्वती नदी नहीं है। एक और नदी शान्दिली का उल्लेख मिलता है। मधुमती तथा दुर्गा मन्दिर के समीप इसका स्थान माना गया है।

नीलमत पुराण में पंजाब की सरस्वती तथा काश्मीर दोनों का उल्लेख मिलता है :

यमुनां यमपाशघ्नीं शतद्रुं द्रुतगामिनीम्।
सरयूं यूपसंपन्नां तथा देवीं सरस्वतीम्॥
—91 : १३२, १३३

उत्तीर्य यमुनां देवीं तथा देवीं सरस्वतीम्।
कुरुक्षेत्रं तथा दृष्ट्वा सन्निहितिर्यत्र विश्रुता॥
—126 : १६९

मकरेण यथौ गंगा कूर्मेण यमुना नदी।
वृषारूढा शतद्रुश्च महिषेण सरस्वती॥
—153 : २०४, २०५

ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा निद्रां धनेशं नदकूवरम्।
शंखपद्मौ निधी पूज्यौ भद्रकाली सरस्वती॥
—585 : ७०६

सरस्वत्योघनाशा च सुवेरुः विमलोदका।
पुष्करादानि तीर्थानि वितस्ताद्याश्च निम्नगाः॥
—600 : ७२१, ७२२

शुद्धा सरस्वती चैव संयोगं यत्र गच्छतः।
तत्र स्नातस्य रामस्य कृतौ शुद्धिमुपागतौ॥
—1183 : १३९५

चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूपिते
तिलाऽग्रोऽपि न यत्राऽस्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्बहिष्कृतः ॥३८॥

३८. चक्रभृत्[1], विजयेश[2], आदिकेशव[3] तथा ईशान द्वारा विभूपित इस भूमि पर तिल मात्र ऐसा स्थान नहीं है, जो तीर्थों से वहिष्कृत हो।

नदी सरस्वती नाम यस्यां स्नातो दिवं व्रजेत् ।
पूर्वं दक्षिणभागे तु स्थिता देवसरस्यपि ॥
—1084 : १४९९

पादटिप्पणियाँ :

कल्हण ने यहाँ शैव तथा वैष्णव दोनों मतानुयायियों की समानता का ध्यान रखा है। चक्रधर अर्थात् विष्णु उसके पश्चात् शिव विजयेश पुनः विष्णु आदिकेशव तथा अन्त में शिव ईशान से समाप्त करता है। विष्णु पालक है। रक्षक है। शिव प्रलय, संहार, समाप्ति के देवता हैं। अतएव उनके नाम के साथ वह देवों का क्रम समाप्त करता है।

३८ (१) चक्रभृत् चक्र चक्रवर्ती राजा का चिह्न तथा विष्णु एवं कृष्ण का आयुध है। वायु पुराण (७ : ६८) तथा महाभारत स्वर्गारोहण पर्व (४ : १२७) के अनुसार चक्र के धारण करने के कारण विष्णु का नाम चक्रधर रखा गया है। चक्रभृत्, केशव तथा चक्रधर भगवान् विष्णु के पर्यायवाची नाम हैं।

वैदिक साहित्य में चक्र रथ के पहिए के लिए प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वेद में दो-तीन तथा आठ चक्रों के रथ का उल्लेख मिलता है। कुम्भकार के चाक को भी चक्र कहते हैं।

चक्रधर विष्णु तथा विजयेश शिव दोनों का मन्दिर पास ही पास था। यहाँ पर चक्रधर के स्थान पर कल्हण ने 'चक्रभृत्' शब्द का प्रयोग किया है।

चक्रधर एक अधित्यका (उदर) पर स्थित था। उसे अब तस्कदर कहते हैं। राजतरंगिणी के प्रथम तरंग २६१ में नागराज सुश्रवा के प्रसंग में चक्रधर मन्दिर का उल्लेख आता है। राजतरंगिणी (४ : १९१) में इसका वर्णन पुनः मिलता है। ललितादित्य ने वितस्ता नदी पर रहट लगवाया था। इसका उल्लेख पुनः (रा० त० ८ : ९७१) मिलता है।

चक्रतीर्थ—

सन्नीतिं तां तथा दृष्ट्वा चक्रतीर्थं तथैव च ।
यदर्थं नारदोद्गीता गाथा चरितभूतले ॥
129 : १७२

अहो लोकस्य निर्बन्ध आदित्यग्रहणं प्रति ।
चक्रतीर्थेन पर्याप्तं ग्रहाद् दशगुणं फलम् ॥
130 : १७३

तं दृष्ट्वा चक्रतीर्थाख्यं तथा तीर्थं पृथूदकम् ।
दृष्ट्वा विष्णुपदं पुण्यं तथा चमरपर्वतम् ॥
131 : १७४

ब्रह्मणो यागभूमिश्च तत्र पुण्या महीपते ।
चक्रतीर्थं देवतीर्थं तीर्थं ब्राह्मणकुण्डिकाम् ॥
1449 : १४६२

वह्नितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामनं च गोप्रदानफलं लभेत् ॥
1317 : १५३१

चन्द्रधर का मन्दिर हस्तिकर्ण से १ मील दक्षिण वितस्ता नदी एक बड़ा मोड़ लेती है। इस प्रकार बने Renemsula में एक छोटा उदर बन गया है। वह सबसे अलग और ऊँचाई पर होने के कारण इस क्षेत्र में अनायास लोगों का ध्यान आकर्षित करता है। यहीं पर विष्णु चक्रधर का प्राचीन मन्दिर था।

चक्रधर मन्दिर का वर्णन माहात्म्य, जोनराज राजतरंगिणी (७६३), मख कवि के श्रीकंठ चरित (३:१२) तथा नीलमत पुराण (११७०) में उल्लेख मिलता है। इसके समीपवर्ती नरपुर नगर के अग्निकाड के सम्बन्ध में भी इसका उल्लेख किया गया है।

राजा उच्चल (११०१–१११)ने चक्रधर क्षेत्र के देवस्थान का जीर्णोद्धार कराया था। उसके समय में स्थान अत्यन्त जीर्णावस्था में था। (रा० त० ८:७८)

राजा सुस्सल (सन् ११२१–११२८ ई०) के समय हुए भयंकर गृहयुद्ध के प्रसंग में चक्रधर मन्दिर का उल्लेख मिलता है। मन्दिर उद्र के समतल भूमि पर बना था। विजयेश्वर किंवा विजब्रोर में राजकीय सेना ने लोगों से स्थान खाली करा लिया। वहाँ उद्वासित तथा समीपवर्ती ग्रामों के लोग चक्रधर मन्दिर में शरण लिये थे। ऊँचाई पर होने के कारण सुरक्षा की दृष्टि से स्थान उपयुक्त माना गया है। विद्रोही सैनिकों ने मन्दिर में स्थित पराजित सैनिकों तथा नागरिकों को घेर लिया।

मन्दिर की चहार दिवारी (प्राकार) मोटी लकडी की बनी थी। मालूम होता है यहाँ पत्थर के अभाव में लकड़ी का उपयोग किया गया था। उसमें द्वार बने थे। विद्रोहियों ने उसमें आग लगा दी। पहले लकडी की चहार दिवारी जलने लगी तत्पश्चात् आग प्रांगण में फैली। लोग अग्नि से घिर कर भाग भी नहीं सके और वहीं जलकर मर गये। लकडी का घेरा वगैरह था अतएव मन्दिर का भग्नावशेष यहाँ नहीं मिलता। प्रोफेसर बूल्हर को उद्र उत्तरीय छोर पर जो एक निचली भूमि के कारण शेष भूखण्ड से अलग है। यहाँ एक आयताकार घेरा का चिह्न मिला था। वह घेरा ४० वर्गगज में था। उसमें negular गड्ढों के चिह्न थे। वह गड्ढे मालूम होता है कि चहार दिवारी के भस्मावशेष के चिह्न रह गये थे। उच्चल द्वारा जीर्णोद्धार के बाद मन्दिर में आग काण्ड हुआ था। कालान्तर में मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया था।

विजब्रोर (विजयेश्वर) के अधोभाग में वितस्ता के वाम तट पर एक मील दूर एक (उद्र) अधित्यका पर यह देव स्थान था। इस अधित्यका का नाम आज भी तस्कदर उद्र है। कल्हण ने प्रायः चक्रधर पहाड़ी तथा मन्दिर का उल्लेख किया है। आपत्ति काल में सुरक्षा के लिये स्थान उपयोगी है। (रा० त० १: २६१, २७०; ४:१९१, ७:२५८, २६१,२६६, ८७:८, ८:९७१, ९९१, १००४, १०६४ में) इसका उल्लेख किया गया है।

नीलमत पुराण चक्रधर को विष्णु का रूप मानता है। इस स्थान के सम्बन्ध में एक गाथा का वर्णन करता है। (नीलमत ९००, ११६६, ११४९ : १३५९) हरचरितचिन्तामणि (८:६१) में भी उल्लेख मिलता है। इसकी भौगोलिक स्थिति एवं स्थान का पता (रा० त० ८:९७१) श्लोक द्वारा मिलता है। यह तीर्थ यात्रा में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

३८ (२) **विजयेश्वर :** विजयेश्वर अत्यन्त प्राचीन काल से कश्मीर का प्रसिद्ध तथा पवित्र तीर्थ स्थान रहा है। विजयेश, ईशान तथा विज्यभाड शब्द शिव का वाचक है। विजयेश्वर नाम पर नगर को संज्ञा दी गयी थी। विजयेश्वर का अपभ्रंश विजब्रोर है। काश्मीर शब्द ब्रोर संस्कृत भट्टारक शब्द का अपभ्रंश है। उसका अर्थ ईश्वर है। काश्मीरी शब्द ब्रोर का अर्थ देवी है। सम्राट् अशोक के समय मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था इसका वर्णन कल्हण करता है। यहाँ कुछ ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं। विजयेश्वर माहात्म्य तथा हरचरित-चिन्तामणि में भिन्न-भिन्न गाथाएँ इसके सम्बन्ध में दी गई हैं। कुछ अंग्रेजी पुस्तकों में पंजाबी के आधार पर इसे विजविहार का अपभ्रंश कहा गया है। यह गलत है। नीलमत पुराण में उल्लेख आता है :

विशोका विजयेशं च वितस्तासिन्धुसंगमम्।
एतान् सर्वानतिक्रम्य प्रययौ भरतं गिरिम्॥
1056 : १२७०

विजयां माघतः स्नात्वा वितस्तायां महीपते।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकम्॥
9303 : १५१६

विजयेश्वर होकर मैं दो-तीन बार गया हूँ। परन्तु कभी नगर के अन्दर नहीं गया था। उस समय मुझे इस पवित्र स्थान का महत्त्व मालूम नहीं था। यह वनिहाल श्रीनगर की सड़क पर श्रीनगर से २९ मील पर स्थित है। नगर वितस्ता के वाम तट पर है। नगर में बिजली तथा पाइप द्वारा पानी दिया जाता है। इस समय वहाँ पर एक नवीन पुल का और निर्माण हो गया है। पुराना डोगराकालीन पुल भी कायम है। पुराने पुल से गाड़ियाँ नहीं जा सकती। नवीन पुल द्वारा गाड़ी बड़ी ट्रक, बस तथा सभी कुछ का परिवहन हो सकता है। इस समय यहाँ ग्रामीण औद्योगिक स्टेट राजकीय विभाग द्वारा बनाया गया है।

नगर बड़ा है। पुरानी शैली का है। गलियों में पत्थर के फर्श लगे हैं। पक्की सड़कें हैं। शहर की जमीन बहुत ऊँची-नीची है। समभूमि पर नगर नहीं आबाद है। पुराने पुल द्वारा नगर का अभूतपूर्व दृश्य मिलता है। शहर वितस्ता तट पर ऊँचे कगार किंवा करार पर बसा है।

यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से पुरानी शैली का संस्कृत विश्वविद्यालय था। संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता था। शारदा पीठ के पश्चात् संस्कृत शिक्षा का काश्मीर में यह दूसरा केन्द्र था। इस समय कुछ घर ब्राह्मणों के बचे खुचे रह गये हैं। काश्मीर के इतिहास में विजयेश स्थान का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन मिलता है। यथास्थान उसका उल्लेख किया गया है।

विजबेहरा या विजब्रोर में अशोक ने दो मन्दिर निर्माण कराये थे। इनका उल्लेख राजतरङ्गिणी में मिलता है। मन्दिर का नाम अशोकेश्वर राजा अशोक के नाम पर रखा गया है। यहाँ के खनन द्वारा प्राप्त मूर्तियाँ खंडित कर इतनी विरूप कर दी गयी है कि उनके विषय में साधिकार कुछ कहना कठिन है।

अशोकेश्वर संज्ञा से प्रकट होता है कि अशोक द्वारा शिव मन्दिर की स्थापना की गयी थी। यहाँ से प्राप्त खण्डित मूर्तियाँ अशोक काल की है या नहीं कहना कठिन है। सम्भव है कि यदि कुछ और खनन कार्य किया जाय तो तत्कालीन स्थिति तथा इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ेगा।

श्रीनगर संग्रहालय की मूर्ति ए जी १ गुप्तकालीन मूर्तिकला मालूम पड़ती है। सम्भवतः देवी की मूर्ति है। केश विन्यास सुन्दर है। मूर्ति अलंकृत है। कानों के वृत्ताकार कुण्डल कपोल के नीचे तक झूलते हैं। मूर्ति खण्डित कुरूप है। पादविहीन है। विष्णु मूर्ति ए जी ४ भी खण्डित है। ललाट पर मुकुट है। मूर्ति ए सी ३० विष्णु की है। वह विरूप कर दी गयी है। उसे बुरी तरह से नष्ट किया गया है। तोड़ने वाले ने अपने पूरे क्रोध का प्रदर्शन किया है। मूर्ति वक्षस्थल तक प्राप्त है। उसके सम्बन्ध में कोई मत निर्धारित करना कठिन है। विजयेश्वर से महाराज अशोक से सम्बन्धित तत्कालीन बौद्ध कला-कृतियाँ तथा मूर्तियाँ मिलनी चाहिए थी परन्तु वे अब तक नही प्राप्त हो सकी है। सम्भव है किसी मसजिद, जियारत अथवा कब्र के अन्दर पड़ी होगी।

खनन कार्य इसलिए कठिन मालूम होता है कि जहाँ मन्दिर किंवा देवस्थान नष्ट किए गए थे। उन स्थानों पर जियारतें, मसजिदें तथा कब्रिस्तानो का निर्माण कर दिया गया है। मूर्तियाँ खण्डित कर गाड़ दी गयीं या उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया गया। इस समय उन्हें ढूँढ़ निकालना कठिन प्रतीत होता है।

विजयेश माहात्म्य में अनेक तीर्थस्थानो का वर्णन मिलता है। उनकी यात्रा विजयेश की यात्रा

के साथ करने की बात लिखी गयी है। इस समय चक्रधर तथा गम्भीर संगम के अतिरिक्त और किसी तीर्थ स्थान का पता नहीं लगता।

नये पुल के समीप एक नवीन मन्दिर का निर्माण किया गया है। मैं जिस समय यहाँ आया था। पानी बरस रहा था। मै कीचड़ों से गुजरता एक मन्दिर में पहुंचा। इस मन्दिर में एकादश लिंग एक ही अरघा में स्थापित किये गये हैं। प्रवेश द्वार के दोनो पार्श्वों में किसी पुराने मन्दिर की खण्डित मूर्तियों के पत्थर लगे है। यहाँ के प्राचीन मन्दिर के कलश का आमलक मन्दिर के वाम पार्श्व में भूमि पर पड़ा था। इस पत्थर को लड़के तथा लोग कौतूहल से देखते हैं। यदि ग्यारह व्यक्ति उँगली लगाकर उठायें तो वह उठ जाता है। एक आदमी यदि पूरा जोर लगाये तो भी।दोनों हाथो से नहीं उठता। मैंने वहाँ खड़े बालकों को बुलाया। उन्हें मिलाकर ग्यारह की संख्या पूरी हो गयी तो उँगली लगाया। बच्चे क-क-क कहने लगे और पत्थर उठ गया। मन्दिर में ग्यारह शिवलिंग है। अतएव ग्यारह व्यक्ति के उँगली लगाने की बात शिवलिंग से सम्बन्धित कर दी गयी है।

पुराने पुल के समीप एक दूसरा मन्दिर नगर में है। नवीन निर्माण है। इसके साथ एक धर्मशाला बनायी गयी है। 'विजयेश्वर सुधार कमेटी' विजयेश्वर तीर्थों के सुधार तथा उन्नति निमित्त गठित की गई है। इस कमेटी के कार्यकर्त्ताओं से बातचीत हुई थी।

यहाँ के हिन्दू मुसलमान दोनों से बातें की। मालूम हुआ कि नगर पूर्वकाल में मन्दिरों से भरा था। किन्तु कालान्तर में वे नष्ट हो गये। नगर में ऊँचे नीचे बहुत स्थान मिलेंगे। इनके होने का एक यह भी कारण हो सकता है कि मन्दिरों के अधिष्ठान ऊँचे बनाये जाते थे। उनके आसपास की भूमि समतल कर दी जाती थी। मन्दिरों के नष्ट होने पर उनके स्थान पर दूसरी इमारतें बन गयीं अथवा मन्दिर के मलवों को पाटकर उन पर रहने आदि के स्थान बना लिये गये। अतएव मकान प्रायः ऊँची नीची भूमि पर बने मिलेंगे। समभूमि नगर में कठिनता से मिलेगी। नगर के बाहर चारों ओर समभूमि है।

विजयेश्वर मन्दिर के ध्वंसावशेष की खोज में लग गया। नगर मे घूमता हुआ बाबा साहब की जियारत मे पहुँचा। यह बड़ा भारी घेरा है। कब्रिस्तान घेरा के बाहर और भीतर दोनो जगहों पर है। जियारत के लगभग दो-तिहाई स्थान पर बड़ी-बड़ी कब्रें बनी हैं। शेष में छोटी छोटी कब्रें हैं। जियारत चौकोर है। इस जियारत में एक मसजिद है। जियारत तथा मसजिद के पत्थर मन्दिरों के ध्वंसावशेष हैं। जियारत की परिक्रमा करते चला जियारत के दाहिनी तरफ मुझे मन्दिर का विशाल आमलक तथा कलश एक ओर लुढका मिला।

मन्दिरों के अलंकृत पत्थर बहुत दिखाई पड़े। *मन्दिरों के शिखर पर कलश लगाने की प्रथा बौद्धों* की अपेक्षा हिन्दू मन्दिरों में अधिक थी। यह विजयेश्वर किंवा अशोकेश्वर दो में से एक का मन्दिर होना चाहिए। किसका था कहना कठिन है। यहाँ पत्थर के सुन्दर खम्बे गोले चौपहले पड़े मिले। स्तम्भ का अधिष्ठान जियारत तथा बाहर दोनों जगहों पर लगा दिखाई पड़ेगा। कुछ यन्त्रों के पत्थर मन्दिर के अधिष्ठान के शिलाखण्ड मे थे। अतएव यह निश्चय है कि वह स्थान प्राचीन मन्दिर था।

रतन हाजी की मसजिद के बाहर भद्रपीठ का बड़ा शिला खण्ड पड़ा मिला। मसजिद के अन्दर स्तम्भ लगे है। मसजिद के आस-पास प्राचीन पत्थरों के टुकड़े बिखरे पड़े थे।

विजयेश्वर की इस समय काफी उन्नति हो रही है। प्राचीन विजयेश्वर नगर से आबादी उठकर श्रीनगर-बनिहाल सड़क पर आकर आबाद हो रही है। मैं नगर में घूम रहा था। पानी बरस चुका था। कुछ झीसी पड़ रही थी। नव निर्मित मन्दिर का द्वार बन्द था। स्वयं सिक्डी खोलकर अन्दर गया। यहाँ चारों ओर मुस्लिम आबादी है। एक मुसलमान सज्जन ने यहां के पुजारी को बुला दिया।

विजीयते पुण्यबलैर्बलैर्यत्तु न शस्त्रिणाम् ।
परलोकात् ततो भीतिर्यस्मिन् निवसतां परम् ॥ ३९ ॥

३९. उसपर पुण्य बल द्वारा ही विजय प्राप्त किया जा सकता है। अतएव वहाँ के निवासी केवल परलोक से भयभीत रहते हैं न कि शस्त्रधारियों से।

मन्दिर के आगन के एक तरफ गीता अध्ययन के लिए स्थान बना है। जिस समय मैं गलियों में घूम रहा था तो खिड़कियों से औरतें तथा बच्चे कौतूहल पूर्वक भाँक कर मुझे देखते थे। मैं धोती, चट्टी, तथा कुरता पहने था। मैं टोपी नहीं लगाता। कश्मीर के हिन्दू धोती नहीं पहनते ? धोती पहनना अपवाद माना जायेगा। सर पर टोपी अथवा पगडी अवश्य होगी। मैं एक कौतूहल की सामग्री था। मुझे स्मरण होकर रोमाच हो जाता था। यहाँ के लोग कभी हिन्दू थे। हमारे जैसे धोती पहनते थे। उनके लिए धोती आज कौतूहल की वस्तु बन गई है।

मरहोम ग्राम प्राचीन मदवाश्रम के समीप विसाड तथा रामव्यार नदियों के संगम पर है। यह संगम वितस्ता संगम के कुछ ऊपर है। दोनों की मिली धारा को गम्भीर नदी कहते हैं। संगम स्थान को गम्भीर संगम कहा जाता है। गम्भीर नदी बहुत गहरी है। विजयेश्वर तथा श्रीनगर मार्ग पर होने के कारण इसका सैनिक महत्त्व है। एक गम्भीर नदी और है। वह राजस्थान में चित्तौर दुर्ग के समीप बहती है। उसे लौकिक भाषा मे गम्भीरा नदी कहते हैं।

(३) आदि केशव : आदि केशव का स्थान कश्मीर में कहाँ था कहना कठिन है। मैंने पता लगाने का प्रयास किया। कुछ स्थान बताये गये परन्तु वे ऐतिहासिक तुला पर ठीक उतरे नहीं।

विष्णु के रूप केशव है। केशव के अनेक नाम तथा रूप है। आदि शब्द प्रारम्भ मे जोडने से मूल केशव का अर्थ वराह मूल किंवा मूल वराह की तरह प्रकट होता है। केशव के और भी मन्दिर कश्मीर में थे। अतएव सबसे प्राचीन केशव के मन्दिर अथवा मूर्ति का नाम आदि केशव रख दिया गया होगा। आदि शब्द देवताओं तथा पुस्तकों में लगा देने से उनके मौलिक रूप की ओर संकेत हो जाता है।

काशी में आदि विश्वेश्वर तथा आदि केशव के मन्दिर है। आदि विश्वेश्वर उस स्थान को कहते हैं जहाँ प्रथम विश्वनाथ जी का मन्दिर अलप्तगीन के समय में तोडा गया था। काशी में मुसलिम राज्य समाप्त होने पर पार्श्व में एक मन्दिर बना दिया गया।

वाराणसी प्राचीन काल में वरुणा गंगा के संगम से प्रारम्भ होकर अस्सी गंगा के संगम पर समाप्त होती थी। वरुणा गंगा के संगम पर आदि केशव का मन्दिर है। यही वाराणसी का आदि किंवा आरम्भ है। काशी में केशव तथा विश्वेश्वर के अनेक मन्दिर है। परन्तु आदि शब्द से यही प्रतीत होता है कि सबसे प्राचीन मन्दिर को आदि का विशेषण दे दिया गया। यही बात काश्मीर मण्डल के साथ भी हुई होगी।

(४) ईशान : यह शब्द रुद्र किंवा शिव के लिये आता है। पारस्करगृह्यसूत्र (३ : १३ : ४) में समिति के सभापति के लिये इस शब्द का व्यवहार किया गया है—'अस्या . पर्षद : ईशान :—'। अमर कोष (१ : ३२–३६) कार ने शिव के अड़तालीस नामों में 'ईशान' भी एक नाम दिया है।

ईशान सन्धि-मति के गुरु थे। उनकी स्मृति में ईशेश्वर नामक एक मन्दिर निर्मित किया गया था। ईशेश्वर तथा इशाबर स्थान को ईशान स्थान से मिलाना गलत होगा। विशेष प्रकाश रा० २ : १३४ श्लोक में डाला गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९ में 'पुण्य' का पाठभेद 'मुख्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

इस श्लोक द्वारा कल्हण कश्मीरियों की वीरता

सोष्मस्नानगृहाः शीते सुस्थतीराऽऽस्पदा रये ।
यादोविरहिता यत्र निम्नगा निरुपद्रवाः ॥ ४० ॥

४०. यहाँ जल जन्तुओं से विहीन निरुपद्रव सरिताओं के रम्य¹ तीर पर हैं और शीत ऋतु में स्नान निमित्त उष्ण² स्नानगृह बने हैं।

तथा धर्मभीरुता दोनों आचरणों पर प्रकाश डालता है। वास्तव में काश्मीर इस दृष्टि में अपने गौरव का सानी नहीं रखता। भारत के पराधीन होने पर भी लगभग तीन शताब्दी तक हिन्दू राज्य काश्मीर में कायम रहा। काश्मीर को विदेशी अथवा विदेशी मुस्लिम आक्रामकों ने नहीं जीता था। अन्तर्देशीय झगड़ों के कारण अपने ही लोगों के कारण हिन्दू राज्य हटाकर काश्मीरी मुस्लिम राज्य कायम किया। चौदहवीं शताब्दी अर्थात् लगभग तीन शताब्दी तक यहाँ का शासन काश्मीरी मुस्लिम बादशाहों के हाथों में रहा। वे काश्मीरी मुस्लिम सेना का सर्वदा सामना करते रहे। अकबर के समय बाहरी मुस्लिम शासन काश्मीर में स्थापित हुआ था। महमूद गजनी जैसे योद्धाओं को काश्मीरियों ने लोह कोट के पीछे हटाया था साथ ही वे बड़े धार्मिक भी थे। हिन्दू और मुसलमान काश्मीरी आज भी बहुत धर्म प्रिय हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४० में 'सुस्थतीरा' का पाठ भेद 'स्वस्थतीरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४०(१) सुस्थ तीर पद : वितस्ता नदी तीर-स्थित तीर्थस्थानों, जलाशयों पर स्नान, पूजन, मार्जन, अभिषेक निमित्त पत्थर के घाट प्राचीन काल से बनाये जाते रहे हैं। काशी, मथुरा, नासिक, हरद्वारके घाट प्रसिद्ध हैं। नगर के लोग स्नान निमित्त घाटों पर आते हैं। काश्मीरी भाषा में घाट को यारबल कहते हैं। जहाँ यार अर्थात् मित्र मिलते हैं।

घाट नगर के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। घाटों पर कथा वार्ता, पूजा-पाठ, सन्ध्या वन्दन, श्राद्ध, क्षौरकर्म, स्नान, वस्त्र प्रक्षालन, दीप दान, पुण्यदान, धर्मदान, सभी शुभ दैनिक, दैविक, भौतिक कर्म किये जाते हैं।

४० (२) स्नानगृह : कल्हण ने नदियों के पुरी युक्त रचना का भी उल्लेख (रा० ८ : ७०६) राजतरंगिणी में किया है। उन्हें काष्ठ मण्डप कहा जा सकता है। वे नदी तट पर बने रहते थे। काशी में काष्ठ मण्डप के स्थान पर स्नान के पश्चात् स्त्रियों के वस्त्र बदलने के लिए घाटों पर पत्थरों मढ़ियों के बनाने की प्रथा थी। और है। नवीन घाट निर्माण के समय उनके रचना पर विशेष ध्यान रखा जाता है। कहीं-कहीं पर स्त्रियों के वस्त्र बदलने तथा जल में स्नान के लिए लकड़ियों के मण्डप बनाये जाते हैं। काशी में आज कल टिन तथा लोहे के स्नानगृह पीपा पर बनाये जाते हैं जो पानी पर तैरते रहते हैं। और नदी के उतार चढ़ाव के समय भी स्वयं ऊपर नीचे उठते रहते हैं।

कल्हण के समय स्नान निमित्त काष्ठ मण्डप बनाने का संकेत प्रमाणित करता है कि बन्द स्थान में लज्जा तथा शील की रक्षा करते हुए, स्नान की व्यवस्था थी। काश्मीरियों के विकसित सांस्कृतिक जीवन का यह द्योतक है। तत्कालीन सामाजिक जीवन काफी विकसित हो चुका था। कल्हण स्नान गृह का पुनः उल्लेख तरंग आठवें में करता है।

सरित्स्नानगृहे स्नान्तो वृद्धाः क्षीणनियोगिनः ।
राजवेश्मान्यगणिता नाम मात्र भूपात्मजाः ॥

—रा० : ८ : ७०६

गर्म स्नानगृह अथवा हमाम कश्मीर के शीतकालीन सामाजिक जीवन में विशेषस्थान रखता है। स्नान किंवा मार्जन के लिए केवल

असंतापार्हतां जानन् यत्र पित्रा विनिर्मिते ।
गौरवादिव तिग्मांऽशुर्धत्ते ग्रीष्मेऽप्यतीव्रताम् ॥ ४१ ॥

४१. भगवान् भुवन भास्कर अपने पिता काश्यप के प्रति आदर प्रकट करने के कारण उनके द्वारा निर्मित काश्मीर मण्डल को कष्ट न मिले, एतदर्थ ग्रीष्म[1] ऋतु की गरिमा काल में भी किरणों में तीव्रता नहीं लावे ।

विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्कुमं सहिमं पयः ।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ॥ ४२ ॥

४२. उत्तुंग विद्या वेश्म,[1] कुकुंम[2], हिम जल, द्राक्षादि[3] पदार्थ जो स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं। यहाँ साधारण सुलभ हैं ।

उसका उपयोग नहीं किया जाता अपितु शीतकालीन निवास में परिणत कर काम में लाया जाता है। गरीब मुसलमान प्रायः मसजिदों के हमामों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के हमामों का निर्माण बड़ी मसजिदों में है। बहुत से हमाम घाटों के किनारों पर बने रहते हैं। वहाँ गरम पानी स्नान निमित्त पहुँचाया जाता है। मालूम होता है। आजकल जैसी प्रथा कल्हण के समय में प्रचलित रही होगी। यही कारण है कि नदियों के वर्णन के साथ कल्हण ने इनका वर्णन दैनिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण किया है।

मैंने कश्मीर के ग्रामों में बहुत भ्रमण किया है। सभी सरोवरों, तड़ागों, पुष्करिणियों, नागों अथवा जलाशयों के पास लकड़ी का चौकोर शिवालय नुमा बन्द स्नान-गृह रखा रहता है। वह हटाया-बढ़ाया जा सकता है। प्रथा अत्यन्त प्राचीन है।

इतिहास लेखक प्रायः ग्रीस और रोम को स्नान प्रथा को श्रेय देते हैं। मुख्यतः हमाम शैली के स्नान को। भ्रम के कारण कुछ लेखक इस प्रथा का जनक उन्हें बताते हैं। टर्किश बाथ किंवा हमाम प्रथा का श्रेय तुर्कियों को दिया जाता है। वस्तु स्थिति यह नहीं है। कुस्तुनतुनियाँ को जब तुर्कों ने विजय किया तो वहाँ रोम तथा ग्रीक शैली के गर्म जल द्वारा परिचालित स्नानगृह थे। तुर्कों ने उनका नाम हमाम रख दिया। टर्किश बाथ, टर्किश बाथ सोप इत्यादि स्नान सम्बन्धी प्रसाधनों के नाम प्रचलित हो गये। किन्तु कश्मीर में यह प्रथा बहुत समय पूर्व से प्रचलित थी। यह रोमन बाथ, टर्किश बाथ की नकल नहीं थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१ में 'असन्तापार्हताम्' का पाठ भेद 'न्तापहताम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४१(१)कल्हण यहाँ पर कश्मीर मण्डल की रचना काश्यप द्वारा हुई थी उस ओर पुनः संकेत करता है। कश्मीर में कभी गरमी नहीं पड़ती यह निर्विवाद है। ग्रीष्म ऋतु में जब समस्त भारत तपने लगता है। पृथ्वी प्यासी रहती है। सभी स्रोत बरफ गलने से पूर्ण रूप से चलने लगते हैं। उस समय कश्मीर में पुष्प खिलते हैं। और वर्षा ऋतु में फल लग जाते हैं। गर्मी वहाँ क्यों नहीं पड़ती उसपर कल्हण ने उत्प्रेक्षा द्वारा एक प्राचीन पौराणिक धार्मिक गाथा की ओर संकेत किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४२ में 'यत्र सा' का पाठ भेद 'यत्रासा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४२ (१) विद्या वेश्म : उत्तुंग विद्या वेश्म के उल्लेख से प्रकट होता है कि कश्मीर में विद्याध्ययन

त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या तस्यां धनपतेर्हरित् ।
तत्र गौरीगुरुः शैलो यत् तस्मिन्नपि मण्डलम् ॥ ४३ ॥

४३. त्रैलोक्य में रत्नसूवा भूलोक श्लाघ्य है। भूलोक में कुबेर की उत्तर दिशा श्लाघ्य है। यहाँ की पर्वत मालाओं में गौरी[1] पिता हिमाचल श्लाघ्य है, और उसमें भी पर्वतों द्वारा आवृत कश्मीर मण्डल श्लाघ्य है।

पर यथेष्ट ध्यान दिया जाता था। विद्यालयों तथा उनके विद्या भवनों का महत्त्वपूर्ण स्थान सामाजिक जीवन में था। कल्हण राज्य प्रासाद, राजभवन किंवा नगर के अन्य धनी मानी नागरिकों के अथवा नगर के भवनों का वर्णन नहीं करता। केवल उत्तम विद्या वेश्म का उल्लेख करता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कश्मीर की इमारतों में सर्वश्रेष्ठ इमारतें विद्यालयों की थीं। यह कश्मीर की जनता का विद्याप्रेम तथा सरस्वती के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का द्योतक है। देव मन्दिरों की भव्यता की ओर संकेत नहीं किया गया है। यह अभाव खटकता है। महत्त्वपूर्ण है। इस बात का प्रमाण है कि कश्मीर में विद्या वेश्म को मन्दिरों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती रही होगी।

(२) कुंकुम : केशर भारत में केवल कश्मीर में होती है। विश्व में केशर की सर्वश्रेष्ठ खेती स्पेन में होती है। स्पेन की केशर दुनिया में सबसे अच्छी होती है। केशर किश्तवार तथा कश्मीर के अन्य स्थानों में होती है। कश्मीर में केशर की खेती के लिए पद्मपुर अर्थात् पामपुर प्रसिद्ध है।

कश्मीर तथा अन्य देशों के कुंकुम अर्थात् केशर का वर्णन भावप्रकाश में मिलता है।

> काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुंकुमं यद्भवेद्धि तत् ।
> सूक्ष्मकेशरमारक्तपद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥
> वाह्लीकदेशसंजातं कुंकुमं पाण्डुरं भवेत् ।
> केतकीगन्धयुक्तं यत् तन्मध्यं सूक्ष्मकेसरम् ॥
> कुंकुमं पारसीके यत् मधुगन्धि तदीरितम् ।
> ईषत्पाण्डुरवर्णं तदधमं स्थूलकेसरम् ॥
>
> —भावप्रकाश

काश्मीर के केशर तथा अन्य स्थानों में उत्पन्न होने वाले केशरों की विशेषता तथा रूप का वर्णन भावप्रकाश करता है। कश्मीर का केशर आरक्त रंग, सूक्ष्म तथा उसकी गन्ध पद्म अर्थात् कमल की तरह होती है। यह उत्तम होती है। वाह्लीक अर्थात् बलख देश की केशर पाण्डु रंग की होती है। उसकी गन्ध केतकी की सुगन्ध की तरह होती है। उसके फूल के बीच में सूक्ष्म केशर होता है। पारसीक अर्थात् ईरान के केशर की सुगन्ध मधु अर्थात् शहद की तरह होती है। उसका रंग पाण्डु वर्ण का होता है। वह सूक्ष्म नहीं स्थूल होती है। कश्मीर तथा वाह्लीक के केशर की पंखुड़ी पतली तथा ईरान की मोटी होती है।

(३) द्राक्षादि : यहाँ स्पष्ट तात्पर्य, फलों से है। कश्मीर का अंगूर बहुत प्रसिद्ध नहीं है। सेव, अम्बूगोशा, और अखरोट की ख्याति है। कश्मीर का अम्बरी सेव विश्वविख्यात है। इसका अपना एक विचित्र मधुर स्वाद है। अखरोट जितना अच्छा काश्मीर में होता है उतना शायद ही विश्व में कहीं प्राप्त हो सके। अम्बूगोशा कश्मीर की खास चीज है। कश्मीर फल और पुष्पों का आगार है। जल कश्मीर में सर्वत्र शीतल मिलता है। बर्फ गलने से स्रोतों में जल निरन्तर आता रहता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३ में 'रत्नसूः' का 'रत्नभूः', 'गुरुः' का 'गिरिः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४३ (१) कल्हण ने गौरी शब्द का प्रयोग यहाँ अत्यन्त पवित्रता एवं श्रद्धा की दृष्टि से किया है। गौरी एवं

तत्र कौरवकौन्तेयसमकालभवात् कलौ ।
आ गोनन्दात् स्मरन्ति स्म न द्वापञ्चाशतं नृपान् ॥ ४४ ॥

४४. कौरव एवं पाण्डवों के कलियुग[1] समकालीन तृतीय गोनन्द के पूर्व हुए कश्मीर मण्डल के राजाओं का इतिहास लुप्त हो गया है।

तस्मिन् काले ध्रुवं तेषां कुकृत्यैः काश्यपीभुजाम् ।
कर्तारः कीर्तिकायस्य नाभूवन् कविवेधसः ॥ ४५ ॥

४५. उन राजाओं के पूर्व कुकृत्यों के कारण काश्यपी[1] में कोई कृती कवि नहीं हुआ जो उनकी कीर्ति काया निर्माण निमित्त लेखनी उठाता।

गिरिजा देवी पार्वती का नाम है। हिमाचल की कन्या मानी जाती है। किन्तु गौरी उस कन्या को कहते हैं जो आठ वर्ष की होती है। कुमारी होती है। क्वारी कन्या देवी स्वरूप होती है। प्राचीन हिन्दू प्रथा के अनुसार इस प्रकार की कन्याओं को नवरात्र की नवमी को भोजन कराया जाता है। उनकी पूजा होती है। पूर्वीय उत्तर प्रदेश में इसको 'छोहरो' खिलाना कहते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४ में 'भवात्कलौ' का पाठभेद 'भवान् कलौ' तथा 'गोनन्दात्' का 'गोनर्दात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४४ (१) कलियुग : उपोद्घात, कश्मीर वर्णन के पश्चात् कल्हण इतिहास लिखने का प्रारम्भ इस श्लोक से करता है। इसका प्रारम्भ वह कश्मीर के बावन लुप्त राजाओं से करता है। उनका कोई सूत्र कल्हण को नहीं मिल सका। इतिहास सामग्री भी वह अपने समय में उनके विषय में नहीं प्राप्त कर सका। अतएव वह स्पष्ट कहता है कि गोनन्द (तृतीय) के पूर्व के बावन राजाओं की स्मृति लुप्त हो गयी है।

कल्हण ने यहाँ 'गोनन्दात्' शब्द का प्रयोग किया है। गोनन्द प्रथम का उल्लेख उसने श्लोक संख्या १:१६ में किया है। गोनन्दात् शब्द यहाँ पर तृतीय गोनन्द के लिये प्रयुक्त किया गया है। ज्ञात राजाओं का नाम गोनन्द तृतीय से आरम्भ होता है।

कल्हण ने अपने इतिहास का प्रारम्भ काल (वराहमिहिर के वृहद् संहिता से) युधिष्ठिर के राज्यकाल से आरम्भ किया है। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक तथा कथित समय का आधार कल्हण ने नीलमत पुराण को माना है। गोनन्द प्रथम काश्मीर का ऐतिहासिक पुराकालीन राजा रूप में चित्रित किया गया है। नीलमत पुराण के अनुसार गोनन्द पाण्डवों का सम कालीन था।

राजा जनमेजय ने ऋषि वैशम्पायन से आश्चर्य चकित होकर पूछा कि नाना देश के राजाओं ने महाभारत में भाग लिया। क्या कारण है कि कश्मीर के राजा महाभारत युद्ध में किसी पक्ष की तरफ से भाग नहीं लिया। ऋषि वैशम्पायन ने राजा जनमेजय की शंका का समाधान किया है। उसी प्रसंग में काश्मीर के इतिहास का वर्णन किया है। वही कथोपकथन नीलमत पुराण का वर्तमान स्वरूप है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५ में 'कुकृत्यैः' का पाठभेद 'कुकृतैः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४५ (१) काश्यपी : काश्यपी का यहाँ अर्थ कश्मीर है। अन्यथा पृथ्वी के सताइस नामों में एक

नाम कश्मीर भी है। यहाँ काश्यपी का पृथ्वी भी अर्थ लगाया जाय तो अर्थ के भाव में विशेष अन्तर नहीं पड़ता। वह अधिक व्यापक अवश्य हो जाता है। कश्मीर मण्डल के कवियों के स्थान पर पृथ्वी पर कोई कवि नहीं हुआ। यह अर्थ हो जायगा।

श्लोक ४५ से ४७ तक संस्कृत साहित्य तथा कवियों की प्रशस्ति में कहे गये श्रेष्ठ पद हैं। उनके माधुर्य, पद लालित्य तथा भाव का अनुवाद करना कठिन है। कवि तथा लेखक अपनी लेखनी द्वारा व्यक्तियों को महान् तथा अमर बना देता है। कवि कल्हण ने उसे अत्यन्त संक्षिप्त तथा स्पष्ट रूप में रखा है। अंग्रेजी के महान् कवि कारलाइल ने भी इसी प्रकार भावोद्रेक 'हीरोज् ग्रेएट' में किया है।

कल्हण राजतरंगिणी १ : १३ से २० तक श्लोकों में कश्मीर के इतिहास लिखने का हेतु उपस्थित करता है। वह स्वीकार करता है। इतिहास का पुनर्लेखन उचित नहीं है। तथापि लोग इतिहास लिखते हैं। नवीन सामग्रियों की प्राप्ति, नवीन अनुसन्धान, त्रुटि पूर्ण भ्रामक एकांगी घटनावलियों तथा मतों को निराकरणार्थ और नवीन कल्पना, संकल्प और अनुभूति द्वारा लेखक इतिहास लिखने के लिए अनुप्राणित होता है। कल्हण ने कश्मीर के तत्कालीन इतिहासों में व्याप्त त्रुटियों के निवारणार्थ लेखनी उठाई थी।

पूर्व काल में कश्मीर का अत्यन्त विस्तृत इतिहास था। राजाओं का व्यापक वर्णन किया गया था। इतिहासकार सुव्रत ने कश्मीर का संक्षिप्त इतिहास लिखा था। डाक्टर स्टून का मत है कि सुव्रत ने विद्यालयों तथा पाठशालाओं में अध्यापन तथा अध्ययनार्थ विद्यार्थियों के लिए इतिहास का संक्षिप्त नोट बनाया था। उस नोट के कारण कालान्तर में इतिहास का विस्तृत वर्णन विस्मृत हो गया।

सुव्रत के संक्षिप्त इतिहास के प्रयोग तथा प्रचलन के कारण प्राचीन इतिहास ग्रन्थ लुप्त हो गये। सुव्रत की रचना कठिन थी। समझने के लिए व्याख्या तथा भाष्य की आवश्यकता पड़ती थी। सर्व साधारण को इतिहास का वास्तविक ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता था। इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सुलभ सामग्री प्राप्त नहीं थी।

कवि क्षेमेन्द्र ने नृपावली नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की थी। इतिहास की अपेक्षा उसे काव्य कहना अधिक संगत होगा। निस्सन्देह काव्य दृष्टि से श्रेष्ठ होने पर भी कल्हण के विचार से उसमें इतनी त्रुटियां रह गयी थी कि उसमें निहित इतिहास सामग्री को निर्दोष कहना कठिन था। क्षेमेन्द्र का उपनाम व्यासदास था।

कश्मीर मण्डल में कवि क्षेमेन्द्र राजा अनन्त (१०२८–१०६३ ई०) तथा राजा कलश (१०६३–१०८९ ई०) के राजत्व काल में समय व्यतीत किया था। उसका जन्म शारदा अर्थात् शारदी में हुआ था। शारदी भारत में विद्या का केन्द्र था। उसने वहां शिक्षा प्राप्त की थी। उसे हर प्रकार की ज्ञानार्जन की सुविधा थी। वातावरण पाण्डित्यपूर्ण था। अनेक विचारधाराओं के संगम में उसने स्नान किया था। उस समय का इतिहास कश्मीर की राजनीतिक, राजवंशीय, प्रासादीय, दलीय, षड्यन्त्रों, असंतोषों, नैराश्य एवं रक्तरंजित घटनाओं से भरा पड़ा है। उसके ग्रन्थ 'समयमातृका' का रचना-काल सन् १०५० ई० तथा अंतिम ग्रन्थ 'दशावतार चरित' का सन् १०६० ई० है। क्षेमेन्द्र के पूर्वज कश्मीर राजा की राजसेवा में अमात्य पद पर थे। क्षेमेन्द्र के पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था। पितामह का नाम 'निम्नाशय' था। प्रपितामह का नाम 'सिन्धु' था। उसने साहित्य शास्त्र 'अभिनव गुप्त' से सीखा था। उसके दीक्षा गुरु 'सोमपाद' थे। गुरु के विचारों से प्रभावित था। इसके ग्रन्थ 'रामायण मंजरी' और 'भारत मंजरी' में रामायण, और महाभारत की कथाओं का और 'बृहत्कथा मंजरी' में मौलिक कथाओं संक्षिप्त संग्रह है। महाकवि 'गुणाढ्य' ने पैशाची

भुजवनतरुच्छायां येषां निषेव्य महौजसां
जलधिरशना मेदिन्यासीदसावकुतोभया ।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे ॥ ४६ ॥

४६. उन महत्त्वशाली कवि कृति को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके अनुग्रह बिना उन प्रतापशाली राजाओं को जिनकी बलवती भुजा की छाया से समुद्र वेष्ठित मेदिनी वनच्छाया तुल्य निर्भय थी। कोई स्मरण भी न करता।

येऽप्यासन्निभकुम्भशायितपदा येऽपि श्रियं लेभिरे
येषामप्यवसन् पुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिकाः ।
तांल्लोकोऽयमवैति लोकतिलकान् स्वप्नेऽप्यजातानिव
भ्रातः सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्धं जगत्त्वां विना ॥ ४७ ॥

४६. जिनके पदों द्वारा हस्त मस्तक पद दलित होता था; जिन प्रसिद्ध प्राप्त के प्रासादों में कमनीय कामिनियाँ दिवा शशि के समान विहरती थीं; उन लोक तिलकों के अस्तित्व का स्वप्न में भी भला कवि कृति के बिना कौन स्मरण रखता ? ओ! कवि बन्धु!! जिनके बिना यह जगत् अन्धकार में रहता उन आपकी शत-शत स्तुति क्यों न करूँ।

भाषा में 'वड्डकहा', (संस्कृत वृहत्कथा) लिखा था। ग्रन्थ अनुपलब्ध है। उसका संस्कृत अनुवाद उपलब्ध है। क्षेमेन्द्र ने उसकी कथाओं को संस्कृत पद में संक्षिप्त कर लिखा है। इसके अतिरिक्त 'बोध-सत्त्वावदान' नामक अवदान की रचना भी इन्होंने की थी। क्षेमेन्द्र की 'नृपावली' अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। उसके मिलने पर कश्मीर के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ सकता है।

क्षेमेन्द्र कुलीन था। उसका समय सन् ९९० से १०९५ ई० तक था। उसकी शिक्षा बहुत अच्छी हुई थी। उसने विदेश भ्रमण किया था। शैव सम्प्रदाय का अनुयायी था। सोमपाद किंवा भागवत के साथ अध्ययन करने के कारण उसका झुकाव वैष्णव मत की ओर हो जाना स्वाभाविक था।

क्षेमेन्द्र ने बौद्ध धर्म का गम्भीर अध्ययन किया था। बौद्ध धर्म के विषय में उसकी धारणा ऊँची थी। 'नरमाला' संस्कृत साहित्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। क्षेमेंद्र ने अपने समकालीन कायस्थ कर्मचारियों की कटु आलोचना की है।

समयमातृका में वर्णित स्थलों का पता आज भी कश्मीर में लगाया जा सकता है। क्षेमेन्द्र कवि रंगमंच का प्रेमी तथा नाटक देखने का शौकीन था। मुसलिम काल में भारतीय रंगमंच का अराजकता, धार्मिक उन्माद तथा संरक्षण के अभाव में लोप हो गया। भारतीय कलाकार कश्मीर में आश्रय निमित्त आने लगे। नाट्यकला तथा रंगमंच कश्मीर में विकसित होने लगे। कश्मीर में भी हिन्दू राज्य की समाप्ति तथा मुसलिम राज्य के उदय के साथ नाटक तथा रंगमंच संरक्षणहीन हो गये। वे स्वतः लोप हो गये। कश्मीर की जनता के मुसलिम हो जाने पर धार्मिक नाटकादि में रुचि नहीं रह गयी थी। 'कवि-कण्ठाभरण' में क्षेमेन्द्र लोगों को रंगशाला में जाने की सलाह देता है।

अष्टपष्टयधिकाब्दशतद्वाविंशतिं नृपाः ।
अपीपलंस्ते कश्मीरान् गोनन्दाद्याः कलौ युगे ॥ ४८ ॥

४८. कलियुग काल में गोनन्द तथा उसके उत्तराधिकारी राजाओं ने दो हजार दो सौ छियासी वर्षों तक काश्मीर मण्डल का राज्य किया।

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥ ४९ ॥

४९. इस काल गणना को भ्रम के कारण कतिपय इतिहासकार इसलिये ठीक नहीं मानते। उनकी धारणा है कि महाभारत का युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ था।

लब्धाऽऽधिपत्यसंख्यानां वर्षान् संख्याय भूभुजाम् ।
भुक्तात् कालात् कलेः शेषो नास्त्येवं तद्विवर्जितात् ॥ ५० ॥

५०. यदि उन राजाओं का राज्य काल जिनको वर्ष काल ज्ञात है योग किया जाय तो कलियुग के व्यतीत हुए काल में से कुछ शेष नहीं बचता, जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से ज्ञात होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६ में 'भुजवनतरु' का पाठभेद 'भुजतरुवन' मिलता है।

श्लोक संख्या ४७ में 'स्वप्नेऽप्य' का पाठभेद 'सर्वोऽप्य' मिलता है।

श्लोक संख्या ४८ में 'कश्मारान्' का पाठभेद 'काश्मीरान्' मिलता है।

श्लोक संख्या ४९ में 'भारतम्' का पाठभेद 'युद्धम्' मिलता है।

श्लोक संख्या ५० में 'नास्त्येवम्' का पाठ 'नास्त्यैव' मिलता है। 'वर्जितात्' तथा 'वर्जनात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५० (१) कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों के ११ ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उसे नीलमत के विचारों का अध्ययन किया था। देव मन्दिरों, नगरों, ताम्रपत्रों, भाजापत्रों, प्रशस्ति पत्रों एवं अन्यान्य शास्त्रों के अध्ययन से अपना भ्रम दूर कर, उसने राजतरंगिणी लिखने में हाथ लगाया था। उक्त ग्यारह ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध नही हैं। कल्हण ने उनके नाम का उल्लेख नही किया है। केवल ग्रंथ-संख्या दी है।

ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में प्राचीन ग्रन्थकारों को कश्मीर के ५२ राजाओं के चरित्र तथा इतिहास का ज्ञान नही था। गोनन्द आदि चार राजाओं का वर्णन कल्हण ने नीलमत पुराण के आधार पर किया है।

महाव्रती पाशुपत संप्रदायवादी कवि हेलाराज द्विज ने १२ सहस्र श्लोकों की 'पार्थिवावली' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। हेलाराज वाक्यपदीय भाष्य के लेखक हैं। उनका काल प्रामाणिक तौर पर निश्चित नही कहा जा सकता है। अनुमान लगाया जाता है। ये नवीं अथवा दशवीं शताब्दी में हुए थे। हेलाराज ने गाथाओं, लोकोक्तियों तथा जनश्रुतियों के आधार पर राजाओं के वृत्तान्त का संकलन किया था। राजाओं के नामों का सम्बन्ध किसी न किसी मन्दिर, मूर्ति, अग्रहार, तथा ग्रामों से रहा होगा। उनके साथ कोई न कोई गाथा जोड़ दी गयी होगी, अतएव हेलाराज ने इतिहास उन आधारों पर लिखा होगा।

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः ॥ ५१ ॥

५१. कलियुग के छः सौ तिरपन वर्ष व्यतीत हो गये तो इस भूतल पर कौरव एवं पाण्डव हुए थे।

पद्ममिहिर ने अशोक के पूर्व कालीन ५२ राजाओं तथा लव के पश्चात् ८ राजाओं का और वर्णन किया है। पद्म मिहिर ने इन आठो नामों को हेलाराज की पुरानी पुस्तक 'पार्थिवावली' से लिया था।

इतिहासकार छविल्लकार ने बावन राजाओं में अशोक से अभिमन्यु तक के पाँच राजाओं का और वर्णन किया है। इस लेखक के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। अशोक, जलौक, दामोदर, हुष्क, जुष्क, कनिष्क का वर्णन कल्हण ने इसी कवि के आधार पर राजतरंगिणी में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१ में 'मभूवन्' का पाठभेद 'मभवन्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५१. क्षेमेंद्र के लगभग एक शताब्दी पश्चात् अर्थात् सन् ११४८-११४९ ई० में कवि कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना की थी। कल्हण के लगभग ३०० वर्ष पश्चात् जोनराज ने (सन् १४७१-१४७२ ई०) में मुसलिम शासन-काल में राजतरंगिणी लिखी। श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी सन् १४८६ ई० में कश्मीर के बादशाह जैनुल आबदीन के समय में लिखी थी। प्रज्ञाभट्ट ने सन् १५१२ ई० में राजावली पटक लिखा। कश्मीर के संस्कृत इतिहासकारों में शुक ने अपनी राजतरंगिणी सन् १५९६ ई० में लिखी थी। वह प्राचीन शैली का अन्तिम लेखक था। उसके पश्चात् किसी प्रसिद्ध किंवा अप्रसिद्ध इतिहासकार का पता नहीं चलता। जिसकी लेखनी वैज्ञानिक ढंग से कश्मीर का वास्तविक इतिहास लिखती। इसके पश्चात् मुसलिम इतिहास लेखकों का काल आता है। वे प्राचीन भारतीय शैली परम्परा तथा संस्कृत ज्ञान से अनभिज्ञ थे। अतएव उनका लेखन भ्रामक हो गया है।

सुलतान सिकन्दर बुतशिकन (१३९३-१४१६ ई०) के समय में प्रायः सभी प्राचीन तथा हिन्दू धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ जलवा दिये गये। शेष को जल समाधि दे दी गयी। अथवा किसी प्रकार नष्ट कर दिये गये। सुलतान जैनुल आबदीन ने १५ राजतरंगिणियों का पता लगाया था। परन्तु आज वे प्राप्त नहीं हैं। उनके नाम का पता अभी तक नहीं चल सका है। यदि वे मिल जाँय तो कश्मीर के इतिहास पर कुछ और प्रकाश पड़ सकता है।

कल्हण ने लौकिक संवत् ४२२४ तदनुसार सन् ११४८-११४९ ई० में राजतरंगिणी लिखी। सन् १३३९ ई० में कोटा रानी के पश्चात् मुसलिम शासक कश्मीर में हुए। मुसलिम अधिकार में कश्मीर रणजीत सिंह के समय तक रहा। सिकन्दर बुतशिकन (सन् १३८९-१४१६ ई०) का समय कश्मीर के इतिहास का भयंकर काल था। सभी मन्दिर नष्ट कर दिये गये। पुस्तकें फूँक दी गयी। केवल ११ ब्राह्मण घरों के अतिरिक्त सभी मुसलमान हो गये थे। कुछ भी इतिहास सामग्री शेष नहीं रह गयी। जैनुल आबदीन बादशाह (सन् १४२०-७० ई०) के समय जोनराज ने (१४७१-१४७२ ई०) राजतरंगिणी लिखना आरम्भ किया।

कल्हण की मृत्यु के ३२१ वर्ष पश्चात् पुनः राजतरंगिणी की शृंखला जोड़ी गई। उसने सन् प्रायः ११५० से जैनुल आबदीन के काल तक का इतिहास लिखा। जैनुल आबदीन के जीवन काल

लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य सांप्रतम् ।
सप्तत्याऽभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥ ५२ ॥

५२. लौकिक संवत् का चौबीसवाँ वर्ष है; इस प्रकार संवत् के एक हजार सत्तर वर्ष अब तक व्यतीत हो चुके हैं।

श्रीवर ने तृतीय राजतरंगिणी लिखी। इसमें जैनुल आबदीन से मुहम्मद शाह (सन् १४८४ ई०) तक का वर्णन मिलेगा। उसने अपनी आँखों देखा वर्णन किया है। श्रीवर के पश्चात् श्री प्रज्ञाभट्ट ने राजावली पिटक लिखा। उसने सन् १४८५ से सन् १५१३ ई० अर्थात् लौकिक संवत् ६१ से ८९ तक अर्थात् २८ वर्ष का मुहम्मद शाह (सन् १४८४-१४८६) तथा फतह शाह (सन् १४८६-१५२४ ई०) का इतिहास दिया है। तत्कालीन अराजकता से ऊबकर प्रज्ञाभट्ट ने आगे नहीं लिखा। प्रज्ञाभट्ट ने जहाँ तक लिखा था उसके पश्चात् बुध्याश्रय के पुत्र शुक ने मुगल शासन काल तक का इतिहास लिखा है। इसी को चौथी राजतरंगिणी की संज्ञा दी गयी है। उसने फतह शाह (सन् १४८६-१५१४ ई०) के समय से लेकर मोमरा खाँ (सन् १५७८-१५८६) तक अर्थात् किस प्रकार जलालुद्दीन अकबर ने कश्मीर को अपने राज्य में मिलाया। लगभग १०० वर्षों की घटनावली का वर्णन किया है।

शुक ने अपनी राजतरंगिणी में मंगलाचरण के पश्चात् कल्हण के प्रावकथन की शैली अपनायी है। उसने अपने पूर्व के इतिहासकारों का वर्णन किया है। भारतीय संस्कृत साहित्य तथा कश्मीर का यह अन्तिम इतिहास ग्रन्थ है। चारों राजतरंगिणियों की विशेषता यह है कि निष्पक्ष रूप से विचारों को व्यक्त किया गया है। इसके पश्चात् मुसलिम इतिहासकारों का उदय होता है। सबका आधार राजतरंगिणी है। परन्तु उसे तोड़-मरोड़ कर रखने का प्रयास किया गया है।

साधिकारिक कश्मीर के इतिहास का वर्णन पुनः अकबर के राज्यकाल में मिलता है। अकबर के नवरत्न तथा मन्त्री अबुल फजल ने आइने अकबरी में 'सूबा कश्मीर' पर एक अध्याय लिखा है। उसमें कश्मीर के हिन्दू राजाओं और मुगलों तक हुए मुसलिम राजाओं की तालिका दी गयी है। उनका संक्षिप्त वर्णन लिखा गया है। कश्मीर की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, रीति-रिवाज, तौल, बाट, शासन और दर्शनीय स्थानों का वर्णन निष्पक्ष भाव से किया गया है। आज तक लिखे इतिहासों का मूल साधिकारिक स्रोत, उक्त ग्रन्थ है। अतएव मैंने भी उनका ही आश्रय लिया है। मध्यकालीन तथा कुछ आधुनिक लेखकों ने जिस तरह कश्मीर के इतिहास को तोड़-मरोड़ कर उसे दूसरे रंग में ढालने का प्रयास किया है। उसका मैंने उदाहरण देकर आलोचना की है। सर्व साधारण में उनके लेखों के कारण भ्रम उत्पन्न हो गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ में 'त्याभ्यधि' का पाठभेद 'त्याद्यधि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ।

५२ (१) लौकिक संवत् : कश्मीरी संवत् को लौकिक किंवा सप्तर्षि संवत् कहते हैं। अलबेरुनी ने अपने पर्यटन वर्णन में काश्मीरी संवत् का उल्लेख किया है। कश्मीर में शताब्दी छोड़कर लिखने की प्रथा है। अतएव शताब्दी न देकर केवल चौबीस का उल्लेख कल्हण ने किया है। सन् ईसवी लिखते समय आज भी प्रथा है कि १९६८ न लिखकर केवल ६८ लिखा जाता है। अतएव लौकिक वर्ष २४ का अर्थ है २४२४ लौकिक वर्ष। वह जिस समय राजतरंगिणी लिख रहा था उसका लौकिक संवत् देता है। इस प्रकार उसका राजतरंगिणी का रचना काल साधिकारिक रूप से प्रकट हो जाता है।

प्रायस्तृतीयगोनन्दादारभ्य शरदां तदा ।
द्वे सहस्रे गते त्रिंशदधिकं च शतत्रयम् ॥ ५३॥

५३. प्रायः[1] गोनन्द तृतीय के राज्याभिषेक से अबतक २३३० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

वर्षाणां द्वादशशती षष्टिः षड्भिश्च संयुक्ता ।
भूभुजां कालसंख्यायां तद्द्वापञ्चाशतो मता ॥ ५४ ॥

५४. उन बावन लुप्त राजाओं का राज्य काल ऐसा मत है कि १५६६ वर्ष होता है।

ऋक्षादृक्षं शतेनाब्दैर्यात्सु चित्रशिखण्डिषु ।
तच्चारे संहिताकारैरेवं दत्तोऽत्र निर्णयः ॥ ५५ ॥

५५. सप्तर्षि एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र पर एक सौ वर्षों में जाते हैं। इस प्रकार की गति के के कारण संहिताकार ने इस समस्या के निराकरण निमित्त हल निकाल दिया है।

कलि संवत् पच्चीस चैत्र सुदी एक को ईसापूर्व ३०७५—७६ होता है। शक संवत् सन् ईस्वी से ७८ वर्ष पश्चात् आरम्भ होता है। कल्हण ने 'राजतरंगिणी की रचना शक संवत् १०७० में आरम्भ की थी। यह काल लौकिक संवत् का ४२२४ वाँ वर्ष होता है। यह कश्मीरी संवत् अबतक कश्मीर तथा उसके आस पास पर्वतीय क्षेत्र में चलता है। लौकिक संवत् २५ कलि संवत् से आरम्भ होता है। शक संवत् का आरम्भ ३१५४ वर्ष में होता है। कल्हण के और शक संवत् के समय में १०७० वर्ष का अन्तर होता है। इस प्रकार ३१५४+१०७० वर्ष मिलकर ४२२४ वर्ष हो जाते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३ में 'गोनन्दादा' का पाठभेद, 'गोनर्दादा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५३ (१) प्राय —प्रायःशब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। वह निश्चित रूप से समय निर्धारित नही कर सका है। उसके समय जो कुछ सामग्री प्राप्त थी उसी पर उसने मोटे तौर पर हिसाब लगाया था।

श्लोक संख्या ४८ में दिया गया वर्ष काल २२६८ वर्ष है। कल्हण के दिये 'राजत्व के वर्ष कालों का योग तरंग दो से आठ तक का ११२८ वर्ष मोटे तौर पर होता है। इस २२६८ वर्ष में तरंग एक के राजाओं का १२६६ वर्ष दिया काल श्लोक सं० ५४ का घटा दें तो १००२ वर्ष आता है। यह काल गोनन्द तृतीय मे युधिष्ठिर प्रथम का राजत्व काल होता है। यदि वर्ष काल १३२८ + १००२ का योग कर दिया जाय तो २३३० वर्ष काल आता है। यही काल गोनन्द तृतीय से कल्हण तक का राज्य काल होगा।

५४ (१) मत : कल्हण ने मत शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। उसने काल गणना स्वयं की थी। तत्कालीन प्राप्त सामग्रियों के आधार पर वह एक निश्चित 'मत' पर पहुँचा होगा। अतएव इस श्लोक में उसने अपना मत प्रकट किया है। किसी प्राचीन काल गणना के आधार पर निश्चयात्मक बात नहीं कहा है। मत में विभिन्नता हो सकती है। कोई मत नही मान सकता। अथवा भविष्य मे यह मत गलत हो सकता है। किन्तु एक बात निश्चयात्मक रूप से कह देने से वह प्रमाण मान लिया जाता है। कल्हण स्पष्ट संकेत करता है कि यह काल गणना स्वतः प्रमाण नहीं किन्तु मत मात्र है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५५ में 'तच्चारे' का पाठभेद 'उच्चारे' मिलता है।

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥ ५६ ॥

५६. जिस समय राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर शासन कर रहे थे उस समय मुनि[1] मघा[2] पर थे । युधिष्ठिर[3] का राज्य काल शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व था ।

पादटिप्पणियाँ :

५५ (१) संहिता : यहाँ पर संहिताकार से तात्पर्य बृहत्संहिताकार से है । कल्हण यहाँ बृहत् संहिता का (१२:३) उल्लेख करता है ।

कल्हण ने उक्त श्लोक संख्या ५१ में जिस मत का प्रतिपादन किया है । उसके प्रमाण में बृहत् संहिता का उल्लेख करता है । इस प्रकार कुरु पाण्डव और गोनन्द प्रथम का काल शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व है । यह समय कलि संवत् ६५३ होता है ।

५६ (१) मुनि का अर्थ यहाँ सप्तर्षि से है ।

(२) मघा से तात्पर्य मघा नक्षत्र से है ।

(३) युधिष्ठिर : युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का समय कल्हण प्रथम गोनन्द का प्रथम वर्ष राजत्व काल देता है । यही समय उसने अपनी काल गणना के लिये आधार माना है ।

राजतरंगिणी श्लोक १:८२ में कल्हण गोनन्द प्रथम का पौत्र गोनन्द द्वितीय को कहता है । कल्हण गोनन्द द्वितीय को महाभारत काल का समकालीन मानता है । इसमें कोई विरोध नहीं मालूम होता । युधिष्ठिर के अभिषेक तथा महाभारत युद्ध काल के आरम्भ में वर्षों का अन्तर है । इस मध्यवर्ती काल में एक राजा का और हो जाना कोई असम्भव नहीं बात मालूम पड़ती ।

महाराज युधिष्ठिर के काल निर्णय के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव से श्रीमद्भागवत (एकादश स्कन्ध) में कहा है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् कलियुग का प्रवेश होगा ।

कल्हण कहता है कि मघा नक्षत्र पर जब सप्तर्षि थे । उस समय युधिष्ठिर राज्य कर रहे थे । श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के द्वितीय भाग में उल्लेख है कि जब सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर होंगे तब कलियुग का प्रवेश होगा । जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण का स्वर्गारोहण होगा उसी दिन कलियुग का आरम्भ होगा । कल्हण वराहमिहिर की तिथि मानता है । युधिष्ठिर शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व हुए थे । अर्थात् कलि संवत् ६५३ था । दूसरे यह मानते हैं कि गोनन्द कलियुग के आरम्भ में हुआ था । इस मत के मानने वाले कहते हैं कि महाभारत द्वापर के अन्त में हुआ था । कल्हण और नीलमत पुराण दोनों गोनन्द से काश्मीर का इतिहास प्रारम्भ करते हैं ।

कलि संवत् का आरम्भ ३१०१ वर्ष ई० पू० से माना जाता है । यहोल के जैन शिलालेख से प्रकट होता है कि यहोल मन्दिर का निर्माण राजा पुलकेशिन् द्वितीय चालुक्य वंशीय ने महाभारत के ३७३५ वर्ष पश्चात् अर्थात् वर्तमान प्रचलित शक संवत् ५५६ में कराया था । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इस समय के प्रचलित शक संवत् के ३१९७ वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ था ।

आइने अकबरी में अबुलफजल लिखता है कि विक्रमादित्य से ३०४४ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर राजा हुए थे ।

राजतरंगिणी के प्रथम तरंग के श्लोक ४४ तथा ४९ से प्रकट होता है कि महाभारत द्वापर के अन्त में हुआ था । मिताक्षरा की भूमिका में श्री बापूदेव शास्त्री लिखते हैं कि कलियुग की प्रथम शताब्दी में परीक्षित् का जन्म हुआ था । राजा

कश्मीरेन्द्रः स गोनन्दो वेल्लद्गङ्गादुकूलया ।
दिशा कैलासहासिन्या प्रतापी पर्युपास्यत ॥ ५७ ॥

५७. वह दिशा[1] जिसका तुषार मण्डित जाज्वल्यमान कैलास हास था, जिसका दुकूल कल्लोलिनी गंगा थी[2], प्रतापी काश्मीरेन्द्र गोनन्द[3] की उपासना करती थी ।

जनमेजय के समय कलियुग के १२५ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति का मत है कि कलियुग के ८० वर्ष बीतने पर राजा परीक्षित का जन्म हुआ था ।

ज्योतिष ग्रंथ खंड-खाद्य के रचनाकार ब्रह्मगुप्त थे। (शक ५२० संवत्) उसने प्राचीन ज्योतिष आर्यभट के आधार पर गणना की है कि विक्रमादित्य के समय कलि के ३०४४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।

निर्णय सिन्धु से मालूम होता है कि शक संवत् में यदि ३१७९ वर्ष और जोड़ दिया जाय तो कलियुग का आरम्भ तथा युधिष्ठिर के राज्यकाल का ज्ञान हो जायगा ।

नीलमत पुराण में गोनन्द का उल्लेख आता है । कल्हण ने गोनन्द सम्बन्धी सामग्री नीलमत से ली होगी । यहाँ नीलमत का कुछ श्लोक उद्धृत करना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित होगा ।

इममर्थं पुरा जातु गोनन्दाख्यो नृपोत्तमः ।
तीर्थयात्राप्रसंगेन बृहदश्वमुपागतम् ॥
28 : ४८

गोनन्द उवाच :

मन्वन्तरेषु पूर्वेषु नासीद्देशमिमं किल ।
काश्मीराख्यं यभूवास्मिन्कथं वैवस्वतेऽन्तरं ॥
29 : ५०

एवमुक्त्वा स गोनन्दो बृहदश्वेन भूभुजा ।
372 : ३५८

एवमुक्तोऽपि गोनन्दो बृहदश्वेन भूमिप ।
प्रावर्तयत् समुच्छिन्नानाचारान् कालदोषतः ॥
875 : १०४६

काश्मीरकस्तु गोनन्दो बृहदश्वेन भाषितम् ।
श्रुत्वा स्वकीयम् आचारम् किमपृच्छदतः परम् ॥
778 : १०४९

वैशम्पायन :

काश्मीरकस्तु गोनन्दो बृहदश्वेन भाषितम् ।
श्रुत्वोवाच मुनिश्रेष्ठं बृहदश्वं नराधिपः ॥
879 : १०४९

वैशम्पायन उवाच :

एवमुक्त्वा स गोनन्दं बृहदश्वो नराधिपम् ।
धर्मात्मा तीर्थयात्रार्थं जगामाभीप्सितां गतिम् ॥
1366 : १५८२

बहु मेने तथात्मानम् गोनन्दः समरप्रियः ।
स प्रशशास वसुधां राजा धर्मानुसारतः ॥
1379 : १५८३

गोनर्द और गोनन्द दो भिन्न नाम हैं । गोनर्द एक प्रदेश का नाम है । हेमचन्द्र ने गोनर्द को योगसूत्र तथा महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि मुनि का निवास स्थान माना है । गोनर्द उत्तर प्रदेश के गोण्डा जिला का प्राचीन नाम है । गोनर्द व्यक्ति विशेष का नाम भी हो सकता है ।

पाठभेद :

'कश्मारेन्द्रा' का 'काश्मीरेन्द्रा'; 'नन्दा' का नर्दो' तथा 'दुकूलया' का 'दुगूलया' पाठभेद मिलता है ।

दटिप्पणियाँ :

५७ (१) दिशा : यहाँ दिशा का अर्थ उत्तर दिशा होगा । कैलास तथा गंगा दोनो उत्तर दिशा मे है । कश्मीर स्वतः उत्तर दिशा में है । कश्मीर की सीमा का भी वर्णन परोक्ष रूप से कल्हण ने किया है।

विहाय देहं शेषाहेर्विषाश्लेषभयादिव ।
भूर्गारुत्मतरत्नाङ्के भेजे तस्य भुजे स्थितिम् ॥ ५८ ॥

५८. पृथ्वी शेषनाग के विष के भयभीत होकर शेष नाग के शरीर का त्याग कर गरुड़ के पवित्र रत्नों द्वारा आभूषित राजा की भुजाओं का आश्रय थी ।

काश्मीर के उत्तर पूर्व निस्सन्देह कैलास है । गंगा पूर्व में पड़ती है । वह कश्मीर की कभी सीमा नहीं हो सकती । किन्तु कश्मीर में गंगा से अभिप्राय सिन्धु नदी से भी लिया जाता रहा है । नीलमत पुराण के पद–'गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा' से प्रतीत होता है कि यहाँ उस सिन्धु से तात्पर्य है जो दरस उपत्यका से प्रवाहित होती काश्मीरी प्रयाग के समीप वितस्ता में आकर मिलती है । जोनराज भी सिन्धु से मनमावल सरोवर में नहर लाने की बात का उल्लेख करता है । प्राचीन लेखकों ने सिन्धु का उद्गम गंगा झील अर्थात् गंगबल के उत्तर पूर्व हरमुख शिखर के हिमानी को माना है । कश्मीर में अनेक जल स्रोतों को गंगा नाम दिया गया है । यहाँ दुकूल अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र से अर्थ इसी नदी से लगाना चाहिए । मैं जोजिला पास से श्रीनगर लौट रहा था । मार्ग में सड़क सिन्धु के तट से जाती है । मुझे कल्हण का यह श्लोक याद था । सिन्धु का जल पाषाण शिलाओं से टकराता उछलता इस प्रकार चलता है कि मालूम पड़ता है उज्ज्वल महीन दुकूल हवा में भर कर उड़ने की कोशिश कर रहा है । यह मत मान्य नहीं किया जा सकता कि इस श्लोक द्वारा कश्मीर मण्डल की सीमा गोनन्द के समय कैलास तथा वर्तमान गंगा नदी अर्थात् उत्तर प्रदेश तक थी ।

(२) गंगा : काश्मीरी साहित्य में सिन्धु को गंगा अर्थात् उत्तर गंगा नाम से सम्बोधित किया गया है । यह हरमुख शिखर के ईशान कोणीय हिमानी अर्थात् ग्लेशियर के अधोभाग में है । सिन्धु नदी द्रस उपत्यका तथा हरमुख पर्वत के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों के जल को ग्रहण करती है । वितस्ता की सिन्धु सबसे बड़ी शाखा नदी है ।

काश्मीरी सिन्धु नदी को गंगा तथा वितस्ता का यमुना कहा गया है । नीलमत पुराण का उल्लेख यहाँ संगत होगा ।

गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा ।'
—294 : २९७–२९८

५७ (३) गोनन्द : गोनन्द काल से सीमा का अनुमान किया जा सकता है । नीलमत पुराण में इस काल का उल्लेख है :

कुरुपाण्डववेलायां भूमिर्भगवता स्वयम् ।
पाचिताभूद्दितिसुतानवतीर्णान् जघान यद् ॥
10 : १०

तस्मिन् कालेऽत्र समभूत् राजा विशदकीर्तिमान् ।
काश्मीरान् पालयन् सौम्य गोनन्द इति संज्ञया ॥
11 : ११

युधिष्ठिर तथा अर्जुन के नामों का उल्लेख मुझे नीलमत में नहीं मिला । कश्मीर के प्रसिद्ध नागों में युधिष्ठिर तथा अर्जुन का नाम आता है । महाभारत के राजा तथा उसके पात्र के रूप में वर्णन नहीं मिलता ।

इवोत्सवः शठः शाण्यः शत्रुघ्नौ रामलक्ष्मणौ ।
महादेवः कामपालो गोशिराः सयुधिष्ठिरः ॥
913 : १०७९ : १०८०

पानीयश्चाप्यनीकश्च कनकाख्यः कलिंककः ।
अर्जुनः पौण्डरीकश्च धनदो नदकूबरः ॥
886 : १०५६

पाठभेद :

श्लोक स० ५८ में 'देहम्' का 'दिशम्'; 'विनाश्ले' को 'र्होर्वषादिले' तथा 'रत्नाङ्के' का 'रत्नाङ्के' पाठभेद मिलता है ।

साहायकार्थमाहूतो जरासन्धेन बन्धुना ।
स संरुरोध कंसारेर्मथुरां पृथुभिर्बलैः ॥ ५९ ॥

५९. अपने बन्धु जरासन्ध[1] के सहायतार्थ आवाहन पर राजा गोनन्द ने[2] कंस के शत्रुओं को मथुरा नगर में अपनी सेना से घेर लिया।

पादटिप्पणियाँ :

५८ गरुड़प्रियरत्न : गरुड का प्रिय रत्न मरकत किंवा हरिन्मणि। यहाँ कल्हण अत्यन्त सुन्दर रूपक खींचा है। इससे ज्ञात होता है। कल्हण ने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

रत्नका गुण उसकी चमक किंवा ज्योति है। रत्न गरुड़ का आभूपण है। नाग तम है। उनका अति भयंकर विषैला रूप काला है। तम का रंग काला होता है। ज्योति एवं तम का संघर्ष विश्व का मूल है। गरुड़ तथा सर्पो किंवा नागों के परम्परा गत संघर्ष का यही आधार है। इसकी लाक्षणिक मूर्तियाँ कुषाण काल की मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत है।

गरुड का रूप विग्रह है। पुरुष एवं पक्षी का मिश्रित आकार नरसिंह के समान है। विष्णु के वाहन है। पक्षियों के राजा है। गरुड़ का मुख्य लक्षण गति है। यह गति छंद युक्त कही गयी है। भागवत में छंदोमय गरुड़ कहा गया है। बिना दो पंखो के गति नही होती। इसी प्रकार बिना दो पदो के छंद नही होता। गति एक छंद किंवा ताल युक्त क्रिया मानी गयी है। पंखो के सिकुड़ने और फैलनेसे पक्षी गतिशील होता है। वैदिक पुरुष इसी को संकुचन और प्रसारण कहते है। ऋग्वेद में गरुड को, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि के समकक्ष रखा गया है।

शेष नाग अर्थात् अन्धकार से पृथ्वी भयभीत होती है। अन्धकार ज्योति से दूर होता है। गरुड़ को देखते ही अन्धकार किंवा नाग भागते हैं। कल्हण गोनन्द की भुजाओं पर गरुड़प्रिय रत्नों का उल्लेख कर बताना चाहता है कि राजा की भुजाओं में अमित बल था। वे पृथ्वी को भयहीन, अन्धकार हीन करने को भुजबल से सामर्थ्य रखते थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५९ में 'स संरु' का पाठभेद 'समं रु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५९ (१) जरासध : जरासध का पिता वायु पुराण के अनुसार नभस् था। भागवत, विष्णु तथा मत्स्य पुराणों के मतानुसार वह बृहद्रथ का पुत्र था। अतएव जरासंध को बार्हद्रथि भी कहते है। हरिवंश पुराण के अनुसार उसके पिता का नाम संभव था।

काशीराज की दो युगल कन्याएँ थी। उन दोनो मे वृहद्रथ ने विवाह किया था। उन्हें बहुत दिनों तक सन्तान नही हुई। काक्षीवत पुत्र चन्द्रकौशिक ने राजा को पुत्रप्राप्ति निमित्त एक आम का फल दिया। राजा ने दोनो पत्नियों को आधा आधा फल खिला दिया। कालान्तर में दोनो रानियों के गर्भ से आधा आधा शरीर के बालक उत्पन्न हुए। उन्होने नवजात शिशु के चौराहा पर रखवा दिया।

जरा नामक राक्षसी ने उन्हें जोड़ दिया अर्थात् दोनो टुकड़ों को सन्धि में मिला दिया। शिशु जी उठा। राक्षसी उसे ले जाना चाहती है। बालक रोने लगा। रुदन सुनकर राजा बाहर आया। राक्षसी ने बालक राजा को दे दिया। बालक का नाम जरासंध पडा। (महाभारत सभापर्व १६-१७ तथा मत्स्य पुराण)

भागवत के अनुसार बृहद्रथ के एक ही पत्नी के बालक के दो अलग अलग भाग पैदा हुए। जरा राक्षसी ने मन्त्र बल से उन्हें जोड़ दिया। अतएव उसका नाम जरासंध पड़ा। (भागवत :९:२२:८)

विहाय देहं शेषाहेर्विषास्लेपभयादिव ।
भूर्गारुत्मतरत्नाङ्के भेजे तस्य भुजे स्थितिम् ॥ ५८ ॥

५८. पृथ्वी शेषनाग के विष के भयभीत होकर शेष नाग के शरीर का त्याग कर गरुड़ के पवित्र रत्नों[1] द्वारा आभूषित राजा की भुजाओं का आश्रय थी ।

काश्मीर के उत्तर पूर्व निस्सन्देह कैलास है । गंगा पूर्व में पड़ती है। वह कश्मीर की कभी सीमा नहीं हो सकती । किन्तु कश्मीर में गंगा से अभिप्राय सिन्धु नदी से भी लिया जाता रहा है । नीलमत पुराण के पद–'गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा' से प्रतीत होता है कि यहाँ उस सिन्धु से तात्पर्य है जो दरस उपत्यका से प्रवाहित होती काश्मीरी प्रयाग के समीप वितस्ता में आकर मिलती है। जोनराज भी सिन्धु से मनसावल सरोवर में नहर लाने की बात का उल्लेख करता है । प्राचीन लेखकों ने सिन्धु का उद्‌गम गंगा झील अर्थात् गंगबल के उत्तर पूर्व हरमुख शिखर के हिमानी को माना है । कश्मीर में अनेक जल स्रोतों को गंगा नाम दिया गया है । यहाँ दुकूल अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र से अर्थ इसी नदी से लगाना चाहिए। मैं जोजिला पास से श्रीनगर लौट रहा था। मार्ग में सड़क सिन्धु के तट से जाती है । मुझे कल्हण का यह श्लोक याद था । सिन्धु का जल पाषाण शिलाओं से टकराता उछलता इस प्रकार चलता है कि मालूम पड़ता है उज्ज्वल महीन दुकूल हवा में भर कर उड़ने की कोशिश कर रहा है । यह मत मान्य नहीं किया जा सकता कि इस श्लोक द्वारा कश्मीर मण्डल की सीमा गोनन्द के समय कैलाश तथा वर्तमान गंगा नदी अर्थात् उत्तर प्रदेश तक थी ।

(२) गंगा : काश्मीरी साहित्य में सिन्धु को गंगा अर्थात् उत्तर गंगा नाम से सम्बोधित किया गया है । यह हरमुख शिखर के ईशान कोणीय हिमानी अर्थात् ग्लेशियर के अधोभाग में है । सिन्धु नदी इस उपत्यका तथा हरमुख पर्वत के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों के जल को ग्रहण करती है। वितस्ता की सिन्धु सबसे बड़ी शाखा नदी है ।

काश्मीरी सिन्धु नदी को गंगा तथा वितस्ता को यमुना कहा गया है । नीलमत पुराण का उल्लेख यहाँ संगत होगा ।

गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा ।'
—294 : २९७–२९८

५७ (३) गोनन्द : गोनन्द काल से सीमा का अनुमान किया जा सकता है । नीलमत पुराण में इस काल का उल्लेख है :

कुरुपाण्डववेलायां भूमिर्भगवता स्वयम् ।
पाविताभूद्दितिसुतानवतीर्णान् जघान यत् ॥
10 : १०

तस्मिन् कालेऽत्र समभूत् राजा विशदकीर्तिमान् ।
काश्मीरान् पालयन् सौम्य गोनन्द इति संज्ञया ॥
11 : ११

युधिष्ठिर तथा अर्जुन के नामों का उल्लेख मुझे नीलमत में नहीं मिला । कश्मीर के प्रसिद्ध नागों में युधिष्ठिर तथा अर्जुन का नाम आता है । महाभारत के राजा तथा उसके पात्र के रूप में वर्णन नहीं मिलता ।

हयोत्सवः शठः शाण्यः शत्रुघ्नौ रामलक्ष्मणौ ।
महादेवः कामपालो गोशिराः सयुधिष्ठिरः ॥
913 : १०७९ : १०८०

पानीयश्चाप्यर्नाकश्च कनकाख्यः कलिकः ।
अर्जुनः पौण्डरीकश्च धनदो नदकूवरः ॥
886 : १०५६

पाठभेद :

श्लोक सं० ५८ में 'देहम्' का 'दिशाम्'; 'विषास्ले' को 'र्होर्वपास्ले' तथा 'रत्नाङ्कं' का 'रत्नाङ्गे' पाठभेद मिलता है ।

साहायकार्थमाहूतो जरासन्धेन बन्धुना ।
स संरोध कंसारेर्मथुरां पृथुभिर्बलैः ॥ ५९ ॥

५९. अपने बन्धु जरासन्ध[1] के सहायतार्थ आवाहन पर राजा गोनन्द ने[2] कंस के शत्रुओं को मथुरा नगर में अपनी सेना से घेर लिया।

पादटिप्पणियाँ :

५८ गरुड़प्रियरत्न : गरुड़ का प्रिय रत्न मरकत किंवा हरिन्मणि । यहाँ कल्हण अत्यन्त सुन्दर रूपक खींचा है। इससे ज्ञात होता है। कल्हण ने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

रत्नका गुण उसकी चमक किंवा ज्योति है। रत्न गरुड का आभूषण है। नाग तम है। उनका अति भयंकर विषैला रूप काला है। तम का रंग काला होता है। ज्योति एवं तम का संघर्ष विश्व का मूल है। गरुड तथा सर्पों किंवा नागों के परम्परागत संघर्ष का यही आधार है। इसकी लाक्षणिक मूर्तियाँ कुषाण काल की मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

गरुड का रूप विग्रह है। पुरुष एवं पक्षी का मिश्रित आकार नरसिंह के समान है। विष्णु के वाहन हैं। पक्षियों के राजा हैं। गरुड़ का मुख्य लक्षण गति है। यह गति छंद युक्त कही गयी है। भागवत में छंदोमय गरुड़ कहा गया है। बिना दो पंखों के गति नहीं होती। इसी प्रकार बिना दो पदों के छंद नहीं होता। गति एक छंद किंवा ताल युक्त क्रिया मानी गयी है। पंखो के सिकुडने और फैलनेसे पक्षी गतिशील होता है। वैदिक पुरुष इसी को संकुचन और प्रसारण कहते है। ऋग्वेद में गरुड़ को, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि के समकक्ष रखा गया है।

शेष नाग अर्थात् अन्धकार से पृथ्वी भयभीत होती है। अन्धकार ज्योति से दूर होता है। गरुड़ को देखते ही अन्धकार किंवा नाग भागते हैं। कल्हण गोनन्द की भुजाओं पर गरुड़प्रिय रत्नों का उल्लेख कर बताना चाहता है कि राजा की भुजाओं में अमित बल था। वे पृथ्वी को भयहीन, अन्धकार हीन करने की भुजबल से सामर्थ्य रखते थे।

पाठभेद।

श्लोक संख्या ५९ में 'स संरु' का पाठभेद 'समं रु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५९ (१) जरासंध : जरासंध का पिता वायु पुराण के अनुसार नभस् था। भागवत, विष्णु तथा मत्स्य पुराणों के मतानुसार वह बृहद्रथ का पुत्र था। अतएव जरासंध को बार्हद्रथि भी कहते है। हरिवंश पुराण के अनुसार उसके पिता का नाम संभव था।

काशीराज की दो युगल कन्याएँ थीं। उन दोनों से बृहद्रथ ने विवाह किया था। उन्हें बहुत दिनों तक सन्तान नहीं हुई। काक्षीवत पुत्र चन्द्रकौशिक ने राजा को पुत्रप्राप्ति निमित्त एक आम का फल दिया। राजा ने दोनों पत्नियों को आधा आधा फल खिला दिया। कालान्तर में दोनों रानियों के गर्भ से आधा आधा शरीर के बालक उत्पन्न हुए। उन्होंने नवजात शिशु के चौराहा पर रखवा दिया।

जरा नामक राक्षसी ने उन्हें जोड़ दिया अर्थात् दोनों टुकड़ों को सन्धि में मिला दिया। शिशु जी उठा। राक्षसी उसे ले जाना चाहती है। बालक रोने लगा। रुदन सुनकर राजा बाहर आया। राक्षसी ने बालक राजा को दे दिया। बालक का नाम जरासंध पड़ा। (महाभारत सभापर्व १६–१७ तथा मत्स्य पुराण)

भागवत के अनुसार बृहद्रथ के एक ही पत्नी के बालक के दो अलग अलग भाग पैदा हुए। जरा राक्षसी ने मन्त्र बल से उन्हें जोड़ दिया। अतएव उसका नाम जरासंध पड़ा। (भागवत [illegible])

तेनोपकूलं कालिन्द्याः स्कन्धावारं निवध्नता ।
यादवीहसितैः सार्धं योधानां मीलितं यशः ॥ ६० ॥

६०. कालिन्दी पुलिन[1] में काश्मीरी सेना ने जिस समय अपना शिविर स्थापित किया उस समय यादवीय सेना का गौरव यादवो-ललनाओं की स्मित रेखाओं के साथ लुप्त हो गया।

एकदा सर्वतो भग्नाः स्वसेनास्त्रातुमुद्यतः ।
तं संरुरोध योद्धारं संगरे लाङ्गलध्वजः ॥ ६१ ॥

६१. एक समय पलायनोन्मुख भग्न यादवी सेना की रक्षा निमित्त लांगलध्वज[1] उस योद्धा (गोनन्द) से युद्ध में रत हुए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६० में 'स्कन्धावारम्' का पाठभेद 'स्कन्दावारम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६० हरिवंश पुराण (२ : ३५) के अनुसार कश्मीराधिपति गोनन्द मथुरा के पश्चिमी घेरे की ओर अपनी सेना सहित युद्ध निमित्त तत्पर था।

जरासंध के नेतृत्व में मथुरा चारों ओर से महा विशाल सेना द्वारा घेर ली गयी थी। निम्न रूप से चारों दिशाओं से घेरा डाला गया था।

पूर्वीय मोर्चा और घेरे पर उलूक, केतव, अंशुमान राजा का पुत्र एकलव्य, वृहत्क्षत्र, बृहद्धर्मन्, जयद्रथ, उत्तमौजस, शल्य, कौरव, कैकेय, वैदेशि, वामदेव, तथा शिनि देश का राजा साकृति था।

पश्चिमी मोर्चों पर—मद्रराज, कलिंगपति, चेकितान, बाल्हिक, काश्मीर राज गोनन्द करूपेश द्रुमराज, किम्पुरुष, तथा पर्वतीय राज अनामय था।

उत्तरीय मोर्चों पर—पुरुकुलोत्पन्न, वेणुदारि, विदर्भाधिपति सोमक राज, भोजेश्वर रुक्मिन्, सूर्याश तथा मालवेश, अवन्ति देश के विंद तथा अनुविंद, दन्तवक्त्र, छागलि, पुरमित्र, विराट्, कौरव्य, मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण एवं पंचनद के राजा एवं योद्धा गण एवं दक्षिणी मोर्चों पर-दरद, चेदिराज तथा स्वयं जरासंध था।

राजाओं तथा योद्धाओं की यह तालिका अपूर्ण है। उनके नामों में भी विभिन्नता है। किन्तु गोनन्द कश्मीरराज का नाम सभी सूचियों में है। (हरिवंश पुराण २ : ३४) अतएव यह प्रमाणित और निर्विवाद हो जाता है कि नीलमत पुराण तथा कल्हण वर्णित यह बात साधिकार प्रमाणित है कि गोनन्द कश्मीरराज जरासंध का पक्ष लेकर मथुरा के आक्रमण में सम्मिलित था।

श्री कृष्ण की ओर से युद्ध में भाग लेने वाले राजाओं का नाम स्पष्ट नहीं मिलता। महाभारत सभा पर्व (१४ : ३५) से इतना ही मालूम होता है कि १८ कुलों ने मिलकर जरासंध के आक्रमण का सामना करने की योजना बनायी थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१ में 'भग्ना' का 'मग्ना' तथा 'स्वसेना' का पाठभेद 'स्वसेवा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६१ लांगल ध्वज—इसका शब्दिक अर्थ हलध्वज होता है। यहाँ बलराम किंवा बलभद्र के लिये आया है। बलभद्र आयु में श्री कृष्ण से तीन मास ज्येष्ठ थे। पिता वसुदेव तथा माता रोहिणी थी। इस प्रकार श्री कृष्ण विमातृ भाई थे। वे अत्यन्त सुन्दर थे। एतदर्थ इनको राम कहा जाता था। अत्यन्त बली थे। इसलिए 'बलराम' नाम पड़ गया। इनका नाम 'हली' 'हलायुध' 'सीरपाणि' 'मूसली' 'मुसलायुध' 'हलधर' आदि है।

तयोस्तुल्यौजसोर्युद्धे चिराय करवर्तिनी ।
मम्लौ विजयसंदेहे वरणस्रग्जयश्रियः ॥ ६२ ॥

६२. दोनों तुल्य बलशाली योद्धाओं के संघर्ष से विजय सन्देहात्मक हो गया और विजय देवी के करपल्लवों की वैजयन्ती अधिक समय तक हाथ में रहने के कारण म्लान हो गयी ।

बलराम सर्वदा नील वस्त्र धारण करते थे । कमल की माला पहनते थे । गदा युद्ध में अत्यन्त प्रवीण थे। जरासंध वध निमित्त तपस्या द्वारा 'संवर्तक' नामक हल तथा 'सौनद' नामक मुसल प्राप्त किया था । महाभारत के युद्ध मे यह किसी पक्ष से भाग नही लिये थे ।

पाचरात्र शास्त्रों के अनुसार बलभद्र भगवान् वासुदेव के व्यूह किंवा रूप हैं । शुंग कालीन बलराम की मूर्तियाँ मिली हैं । बलराम शेष के अवतार माने गये हैं । अतएव उनकी मूर्तियों के पृष्ठ भाग में शेष की मूर्तियाँ किंवा श्राभोग बना दिखाया रहता है । मूर्तियाँ हल, मूसल, युक्त कहीं द्विभुज और कहीं चतुर्भुज मिलती है । उनके कर्णों में एक ही कुण्डल कहीं कहीं दिखाया गया है । एक कुण्डलधारी होना 'बृहत्संहिता' द्वारा समर्थित है । कुषाण तथा गुप्त कालीन बलराम की मूर्तियाँ सिंह कुण्डल युक्त दिखायी गयी हैं । बलराम का विवाह रैवत की कन्या रेवती से हुआ था ।

बूमरैंग तथा हल—आस्ट्रेलिया के भ्रमण काल में (सं० १९५०) मैंने बूमरैंग का चलाना देखा था । बूमरैंग का रूप हलमदृश हो जाता है यदि उसके हरीस का लम्बा भाग छोटा कर दिया जाय । बलराम ने तपस्या द्वारा यह अस्त्र पाया था । *अतएव यह अस्त्र वास्तव में हलाकार रहा होगा ।* आस्ट्रेलिया के संग्रहालय में मैंने एक प्राचीन गणेश की मूर्ति भी देखी थी । उसी समय मैंने सोचा था कि कभी आस्ट्रेलिया और भारत से निकट का सम्बन्ध था जो भारतीय पराधीनता के कारण टूट गया । यह एक कल्पना मात्र है । यदि यह अस्त्र था तो तो वह बूमरैंग की तरह हो रहा होगा कि आजकल के बड़े हल के समान जिसका उठाना और चलाना कठिन है । । (विशेष द्रष्टव्य 'आस्ट्रेलिया' काशी)

लांगलध्वज, वृषभध्वज, हनुमानध्वज, गरुड़-ध्वज आदि झण्डों पर लगे चिह्न को भी कहते हैं । बलराम के ध्वज पर लागल अर्थात् हल का चिह्न अंकित रहा होगा अतएव उन्हें लागलध्वज कहा गया है ।

पुराण से प्रकट होता है । यादव सेना अल्प संख्या में थी । तथापि बलराम तथा श्री कृष्ण के रण चातुरी एवं वीरता के कारण रण में विजय प्राप्त की थी । (हरिवंश पु० २ : ३६)

श्री रणजीत सीताराम पण्डित इस श्लोक की टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि बलराम सर्व साधारण जनता में से उठे थे । उन्होंने हल को जो परिश्रम-शील जनता का प्रतीक था अपना प्रतीक बनाया ।

बलराम श्री कृष्ण के भाई थे । राजवंशी थे । राजपुत्र थे । कुलीन थे । मथुरा राज्य का अधिकार प्राप्त किया था । तत्कालीन कुलीनों ने तुल्य राज्य में भाग लिया था । हल कृषक वर्ग का निश्चय प्रतीक हो सकता है परन्तु समस्त जनता का नहीं हो सकता । सन् १९४८ में कृषक मजदूर प्रजा दल का संघटन हुआ था तो हल और दानेदार चक्र उसका प्रतीक था ।

निस्सन्देह कल्हण ने लागलध्वज शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । उसका अर्थ जैसा ऊपर लिखा गया है ध्वजा पर अंकित किंवा बना हल प्रतीक है । वृषभध्वज शिव के समान उनका भी नाम हल प्रतीक के कारण लांगलध्वज पड़ गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२ में 'वरणस्र' का पाठभेद 'कि जयस्र, मिलता है ।

अथ शस्त्रतरङ्गैरालिलिङ्ग रणाङ्गणे।
भुवं काश्मीरको राजा यादवस्तु जयश्रियम्॥ ६३॥

६३. अन्ततः युद्धभूमि में दोनों योद्धाओं के अंग परस्पर प्रहार द्वारा आहत हो गये थे। काश्मीरराज ने समर भूमि का आलिंगन किया और यादवराज का आलिंगन किया विजय ने।

पादटिप्पणियाँ :

६२. प्रतीत होता है। दोनों योद्धा बलराम तथा गोनन्द समान बलशाली थे। यादव सेना पलायनशील थी। उसमें बलराम के युद्ध में जमने के कारण नव शक्ति आ गयी थी। बलराम तथा गोनन्द का द्वन्द्व युद्ध बहुत समय तक चलता रहा।

इस युद्ध वर्णन से यह मालूम होता है कि प्रथम बलभद्र ने जरासंध पर आक्रमण किया था। वह दक्षिणी मोर्चा पर था। बलराम के द्वारा जरासंध का वध सम्भव नहीं था। अतएव वह पश्चिमी मोर्चा पर आक्रमण किया, जहाँ कश्मीरी वाहिनी राजा गोनन्द के नेतृत्व में युद्ध निमित्त सन्नद्ध थी।

विजयमाला को वैजयन्ती कहते हैं। हाथियों के दाँतों पर माला भारतीय स्थापत्यों में लगी दिखायी पड़ती है। यह माला गाथानुसार हाथी किसी व्यक्ति के गले में डाल देता था। वह व्यक्ति राजा चुन लिया जाता था। राजा चुनने की यह अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन एवं केन्द्रीय मन्त्रालय के भवनों पर हाथी के मस्तकके बिना ही दांतों पर माला लिपटा पत्थरों में खोदकर दिखाया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६३ में 'काश्मीरको' का पाठभेद 'कश्मीरको' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६३. नीलमत पुराण गोनन्द के पराजय का कारण देता है —'राजा गोनन्द ने नील मुनि द्वारा निर्धारित कुछ अनुशासनों का पालन नहीं किया था अतएव मथुरा में बलभद्र द्वारा पराजित हो गया था। यदि कश्मीर के राजा नील द्वारा निश्चित आदेशों का पालन करेंगे तो उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। कश्मीर मण्डल में कभी भय उत्पन्न नहीं होगा।' श्लोक संख्या (८१५,८७६)।

वृष्णि अर्थात् यादव सेना ने निस्सन्देह विजय पायी थी। कश्मीरराज ने वीर गति पायी। किन्तु जरासंध जीवित रहा। अपनी शेष सेना के साथ मगध लौट गया। इस युद्ध पर महापुराणों तथा महाभारत के आधार पर और विशेष लिखना अप्रासंगिक होगा।

इस युद्ध के बीस वर्ष पश्चात् महाभारत का युद्ध हुआ था।

गिरिव्रज में जरासंध तथा भीम का गदा युद्ध प्रारम्भ में आरम्भ हुआ। यह युद्ध कार्तिक शुक्ल को प्रारम्भ हुआ था। गदा टूट जाने पर मल्ल युद्ध हुआ। यह युद्ध महाभारत सभा पर्व (२१·१७,१८) के अनुसार १४ दिन, पद्मपुराण (उ० २७९) के अनुसार २५ दिन, भागवत (१०:७२) के अनुसार ४० दिनों तक चलता रहा। जरासंध को भीम ने बीच से चीर दिया था। संधि खुल गयी। जिस रूप में वह जन्मा था उसी रूप में मर गया।

आइने अकबरी में अबुल फजल गोनन्द का नाम आगनन्द देता है। वह कहता है—कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम द्वारा गोनन्द मारा गया। वह मेहतरा (मथुरा) तथा (विहार) के राजा जरासंध के बीच हुआ था।

हसन गोनन्द को आदि गोनन्द कहता है। गोनन्द के वंश के विषय में वह लिखता है—इस राजा ने मराकीने सल्तनत की मरजी से सन् कल जुग की इब्तदा से बीस साल पेश्तर तख्त कश्मीर पर जलवागिरी फरमाई। बाज मुवरखों के नजदीक

गतिं प्रवीरसुलभां तस्मिन्सुक्षत्रिये गते ।
श्रीमान्दामोदरो नाम तत्सूनुरभूत क्षितिम् ॥ ६४ ॥

६४. जब उस सुक्षत्रिय ने प्रवीर सुलभ गति[1] प्राप्त कर ली तो उसका यशस्वी पुत्र श्रीमान् दामोदर क्षिति की रक्षा में तत्पर हुआ।

भोगयोगोर्जितं राज्यं प्राप्तवानपि भूपतिः ।
ध्यायन्पितृवधं मानी नोपलेभे स निर्वृतिम् ॥ ६५ ॥

६५. यद्यपि उस भूपति ने भोग सम्पत्ति सम्पन्न राज्य अर्जित किया था तथापि पितृ वध का ध्यान उदय होते ही उस मानी को शान्ति दुर्लभ हो जाती थी।

यह भी राजा जम्मू के खान्दान में था। और बाज ने इसे मथुरा का पोता खयाल किया है। उसने हकूमत का नज्म व नस्क निहायत खूबी से सरंजाम दिया। उन दिनों हिन्दुस्तान में जरासन्ध राजा की हकूमत को उसने श्रीकृष्ण जी महाराज के साथ बिनाय मुखासमत डाली हुई थी। राजा आदि गोनन्द अपनी करीबी रिश्तादारी के पेश नजर एक बड़ी भारी फौज कश्मीर से लेकर राजा जरासन्ध की मदद को रवाना हुआ। अपना लाव लश्कर लेकर उनके साथ मसरूफ पैकार था। दरया जमुना के किनारे फरीकों की फौजों के मावैन में बड़ा भारी रण पड़ा। आखिर में किसी वजह से राजा आदि गोनन्द की फौज में भगदड़ पड़ गयी। खुद राजा मजकूर साबिक कदम रहा। और दाद सुजाअत देता हुआ बलभद्र जी बिरादर श्री कृष्ण जी महाराज के हाथों मैदान कार जार से काम आया। मुद्दत हकूमत सत्तरह साल।'

हरिवंश पुराण विष्णु पर्व ४१:२८ में स्पष्ट उल्लेख है कि अन्य राजाओं के साथ कश्मीर राजा ने जरासन्ध का पक्ष लेकर मथुरा पर आक्रमण कर कृष्ण से युद्ध किया था।

मद्रः कलिंगाधिपतिश्चेकितानश्च वाह्लिकः ।
कश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥

पादटिप्पणियाँ :

६४ (१) गति : कल्हण यहाँ पर भारतीय वीर परम्परा की ओर संकेत करता है। क्षत्रियों को स्वर्ग प्राप्ति युद्ध स्थल में होती है। प्रासादों में बैठकर जीवन व्यतीत करना और मर जाना यह क्षत्रियों किंवा आयुधधारियों का कभी भारतवर्ष में आदर्श नहीं रहा और न इस प्रकार के जीवन को भारतीय कभी अच्छा मानते थे। विजय दशमी के दिन अर्थात् चातुर्मास के पश्चात् विजय यात्रा का मुहूर्त माना जाता था। इस दिन प्रतापी राजा विजय यात्रा निमित्त निकलते थे। सन् १९४७ के पूर्व प्रायः सभी भारतीय राजाओं के यहाँ सुसज्जित सेना प्रयाण करती थी। अस्त्र-शस्त्र की पूजा होती थी। समरांगण में वीर गति प्राप्त करने से बढ़कर क्षत्रियों के लिये और कोई श्लाघनीय मृत्यु नहीं मानी जाती थी।

६५. जरासंध मगध का सम्राट् था। उसके पुत्र का नाम सहदेव था। उसकी दो कन्याएँ अस्ति तथा प्राप्ति का विवाह मथुरा के राजा कंस के साथ हुआ था। महाभारत में कहा गया है कि जरासंध ने सम्राट् का पद प्राप्त किया था। चेदि का राजा शिशुपाल उसका सर्वप्रधान सेनाध्यक्ष था। जरासंध एक संघ का सम्राट् था। महाभारत में प्रमाण मिलता है कि बहुत से राजा मिलकर एक सम्राट् का निर्वाचन करते थे। उसे उस पद पर अभिषिक्त करते थे। राजाओं ने एकता की दृष्टि से यह प्रथा चलाई थी। जरासंध ने मालूम होता है सम्राट् होने पर इस सिद्धान्त की अवहेलना की थी। (सभापर्व अ० १८; आदिपर्व अ० १०० : ७) मथुरा का बड़ा महत्त्वपूर्ण इतिहास है। रामायण,

अथोपसिन्धु गान्धारैः सज्जे कन्यास्वयंवरे।
निमन्त्र्य शुश्रावाऽऽनीतान् वृष्णीन् दर्पोष्णदोर्द्रुमः ॥ ६६ ॥

६६. जिसकी भुजाएँ वृक्ष तुल्य शक्तिशाली थी। जो दर्प की गर्मी से गर्वित था, उस राजा ने सुना-सिन्धुतट पर गान्धारों[१] ने कन्या स्वयंवर सज्जित कर वृष्णियों को विशेष रूप से आमन्त्रित किया था।

पुराण तथा महाभारत के आधार पर गाथा कहती है। मधु का पुत्र लवण था। लवण को पराजित कर राम के कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी की स्थापना की थी। दानवों के आक्रमण के कारण वृष्णि तथा अन्धक लोगों ने मथुरा त्याग दिया। द्वारिका में आबाद हो गये। (हरिवंश पुराण विष्णु पर्व ३८ . ४०)

कृष्ण द्वारा कंस का वध हुआ था। उसने समाचार सुना कंस के पुत्र को शूरसेन का राजा घोषित किया। जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया। इस कार्य के लिए उसकी दोनों विधवा पुत्रियाँ उसे प्रोत्साहित करती रहती थी। परन्तु जरासंध पराजित हुआ। उसने १७ बार मथुरा पर आक्रमण किया था। (हरिवंश पुराण ३७.४४)। उसकी सहायता हिमालय के पर्वतीय चेकितान, वाह्लीक, कश्मीर, करूष, किन्नर, दरद आदि राजाओं ने की थी। पुराण इस बात का समर्थन करते हैं। जरासंध तथा कृष्ण का युद्ध हुआ था। उसकी सहायता पर्वतीय राजाओं ने की थी। गोनन्द का जरासन्ध की सहायता निमित्त आना असंभव नहीं प्रतीत होता। पुराणों ने भी इसकी पुष्टि होती है।

श्रीकृष्ण, भीम तथा अर्जुन ने मिलकर कालान्तर में जरासंध को मारने के लिए योजना बनायी। ब्राह्मण वेश धारण कर उसके नगर में गये थे। भीम के साथ जरासंध का द्वन्द्व युद्ध हुआ। जरासंध शक्तिशाली प्रतीत हुआ। पर कृष्ण ने संकेत किया। भीम ने जरासंध का एक पैर अपने पैर के नीचे दबाकर दूसरा पैर उठाकर चीर दिया। इस प्रकार जरासंध का शरीर अपने पूर्व जन्मकालीन रूप दो खण्डों में हो गया। शरीर की सन्धि छिन्न हो गयी। यह निर्विवाद है। जरासंध शक्तिशाली राजा था। उसका खुला सामना कर उसे पराजित करना सरल नहीं था। अतएव तत्कालीन युद्ध प्रचलित परम्परा तथा नीति का अतिक्रमण कर उसकी छल द्वारा हत्या की गयी। संभव है। कंस की हत्या के प्रश्न को लेकर विवाद खड़ा हुआ होगा। उसमें जरासंध का पक्ष न्यायोचित जानकर कश्मीर के राजा गोनन्द तथा भारत के अन्य राजाओं ने लिया होगा। कृष्ण के विरुद्ध उसकी सहायता किये होंगे।

सम्राट् जरासंध की मृत्यु के पश्चात् मगध का साम्राज्य नष्ट हो गया। पाडवों का चक्रवर्ती राजा होना निष्कंटक हो गया। जरासंध वध महाभारत सभापर्व का एक अवान्तर पर्व है। अध्याय ३०-२४ तक में वर्णन मिलेगा।

(पुराण विष्णु : ४:१९.९९; भागवत :९:२२:७-८, १०.५०, १०:७२,१५-४६,हरिवंश : ३२.९६-९६, ३७, वायु : ९९:२२५-२२६)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६६ में 'शुश्रावा' का पाठभेद 'शुश्रुवा' तथा 'दर्पोष्ण' का 'दर्पोष्म' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६६. (१) गान्धार : गान्धार प्रदेश के उल्लेखों से भारतीय वाङ्मय भरा है। तक्षशिला से काबुल तक की भूमि गान्धार नाम से प्रख्यात थी। इसी प्रकार सिन्धु महानद से शतद्रु अर्थात् सतलज नदी के मध्यवर्ती भाग किंवा अन्तर्द्रोणी को वाहीक कहते थे। उसमें उशीनर, मद्र तथा त्रिगर्त के क्षेत्र सम्मिलित थे। गान्धार तथा वाहीक प्रदेशों का सम्मिलित नाम उदीच्य था। प्राच्य तथा उदीच्य की मध्यवर्ती सीमा शरावती नदी थी। गान्धार का उल्लेख नीलमत पुराण में आता है :

प्राचीन कपिशा नगरी अफगानिस्तान में थी। उसका वर्तमान नाम बेग्राम है। यहाँ कपिशा नामांकित शिलालेख प्राप्त हुए हैं। कपिशा के उत्तर कंबोज है। यह पामीर की मध्येशिया स्थित अधित्यका है। कम्बोज के पूर्व तारिम नदी है। उसी के समीप कुचा प्रदेश है।

गान्धार से प्राच्य तक के क्षेत्र में पाणिनि काल में संस्कृत भाषा प्रचलित थी। गान्धार, कपिशा, वाह्लीक एवं कम्बोज महाजनपद पाणिनि काल में भारत के उत्तर पश्चिम में थे। कम्बोज काशगर के दक्षिण का प्रदेश था। हिन्दूकुश के दक्षिण पूर्व में गाधार, दक्षिण-पश्चिम में कपिशा, उत्तर-पश्चिम वाल्हीक तथा उत्तर-पूर्व में कंबोज जनपद थे।

गांधार को यूनानियों ने 'गन्दराई' नाम दिया है। उस समय यह प्रदेश तक्षशिला से कुनड़ नदी तक विस्तृत था। पश्चिमी गाधार की राजधानी पुष्कलावती थी। उसका सम्बोधन यूनानियों ने 'पिउकलाउती' से किया है। वह स्थान तथा कायुल नदी का संगम स्थान वर्तमान चारसद्दा है। मार-कण्डेय पुराण (५७ : ३९) में 'पुष्कला' जनपद का उल्लेख आया है।

दार्वाभिसार गान्धार जुहुण्डर शकान् रत्मान्।
तङ्गणान् माण्डवान् मन्त्रान्तर्गिरिर्वहिर्गिरीन्॥
80 : १२१, १२२

यह श्लोक नीलमत में किंचित् पाठभेद से पुनः मिलता है।

दार्वाभिसार गान्धार जुहुण्डर शकाः खसाः।
संगणा माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिवहिर्गिरिः॥
139 : १८२, १८३

गान्धार का एक नाग रूप से वर्णन मिलता है।

उरूचः शंकर्णो वायुः शुक्रो वैश्रवणो यमः।
मण्डूकनासो गान्धारी नागः शूर्पारकिध्वनिः॥
894 : १०६४

गांधार देश के राजा आरब्ध का नाम भागवत पुराण में, सेतुपुत्र का नाम विष्णु पुराण में, शरद्वान का नाम वायु पुराण में आया है। शकुनी भी गाधार के राजा थे। शकुनी दुर्योधन के मामा तथा महा-भारत युद्ध में शल्य के पश्चात् कौरव सेना के सेनापति हुए थे।

गान्धार राज : शकुनी : पार्वतीय : उद्योग पर्व ३० : २७ में उल्लेख मिलता है। गान्धार का राजा दुर्योधन का मामा शकुनी था। गान्धार के एक नग्नजित् राजा का एतरेय ब्राह्मण (७ : ३४) में उल्लेख आता है। उससे सोमविषयक ज्ञान प्राप्त हुआ था।

सुबल राजा की कन्या गान्धारी थी। वह धृतराष्ट्र की पत्नी तथा दुर्योधन की माँ थी।

गान्धारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभा।
इति शुश्राव तत्त्वेन भीष्मः कुरुपितामहः॥
आदिपर्व : १०९ : ११

ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत।
अचक्षुरिति तत्रासीत् सुबलस्य विचारणा॥
११० : १२

गान्धार-जातक तथा कुम्भकार जातक तथा बौद्धधर्म-ग्रन्थों में गान्धार का विशेष उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेद १:१२६:७ तथा अथर्व वेद ५ २२·१४ में गांधार का उल्लेख आया है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल से गान्धार का ऐतिहासिक महत्त्व था। इसकी प्रसिद्धि थी।

वाल्मीकि रामायण में वाह्लीक, कम्बोज, दरद, चीन आदि हिमालय के पर्वतीय जनपद कहे गये हैं। गान्धार का स्पष्ट उल्लेख रामायण में नहीं किया गया है। सम्भव है कि उस समय गाधार कम्बोज, शक, वाह्लीक, आदि क्षेत्रों के अन्तर्गत समझा जाता रहा होगा अन्यथा रामायण उसका उल्लेख करने में न चुकता।

तत्र म्लेच्छान् पुलिंदाँश्च, शूरसेनाँस्तथैव च।
प्रस्थलान् भरताँश्चैव कुरूँश्च सह मद्रकैः॥
काम्बोजान्यवनांश्चैव शकानारट्टकानपि।
वाह्लीकानृषिकाश्चैव पौरवानथ टंकणान्॥

ततस्तस्यातिसंरम्भात् तानदूरस्थितान् प्रति ।
यात्राऽभूद् ध्वजिनीवाजिरेणुग्रस्तनभस्तला ।। ६७ ।।

६७. वृष्णि जब बहुत दूर नहीं रह गये थे तो क्रोध जर्जरित राजा ने सवेग उनके विरुद्ध इस प्रकार अभियान किया कि उसके अश्वारोही दल के टापों की उड़ी धूल से आकाश भर गया।

चीनान्यपरचीनांश्च नीहारांश्च पुनः पुनः ।
अन्विष्य दरदाँश्च हिमवन्तम् तथैव च ॥

—वाल्मीकि रामायण
अरण्य काण्ड 43 : १०, १२

बौद्ध ग्रन्थों में गान्धार जनपद का उल्लेख अनेक स्थलों पर आया है। मोग्गलिपुत्त स्थविर ने तृतीय संगीति को समाप्त कर मध्यान्तिक स्थविर को कश्मीर तथा गांधार राष्ट्र में धर्म प्रचारार्थ भेजा। गान्धार जनपद की राजधानी तक्षशिला थी। प्राचीन काल में पुक्कुसाति वहाँ का राजा था। बुद्ध भारत का प्रधान शिक्षा तथा व्यापारिक केन्द्र था। तक्षशिला में बौद्ध विद्वान् जीवक, बन्धुल मल्ल, प्रसेनजित, महालि आदि की शिक्षा हुई थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६७ में 'संरम्भात्' का पाठभेद 'संभारात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६७ (१) ध्वजिनी का अर्थ होता है ध्वजाधारी दल। आज से डेढ़ शताब्दी पूर्व तक सेना में अश्वारोही ध्वजाधारी होते थे। वे सेना के आगे चलते थे। ध्वजा की रक्षा करना सैनिकों का परम कर्तव्य होता था। ध्वजा पकड़ जाने पर एक प्रकार से हार मानी जाती थी। मानी सेनानायक पराजय के समय या आत्मसमर्पण के समय ध्वजा स्वयं नष्ट या भस्म कर देते थे ताकि वह शत्रु के हाथों में पड़ कर अपमानित न की जा सके। सिक्ख ध्वजा को इतना महत्त्व देते हैं कि उसकी पूजा करते हैं। प्रत्येक गुरुद्वारा पर उसे सम्मान स्थापित किया जाता है।

हनुमान जयन्ती कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को हनुमान जी की पूजा होती है। उस दिन नवीन ध्वजा तैयार की जाती है। उसकी विधिवत् पूजा होती है। झण्डाभिवादन सैनिक समारोह का एक विशेष महत्त्वपूर्ण संस्कार है। ध्वजा देश के गौरव का प्रतीक माना जाता है।

२. कृष्ण दामोदर युद्ध : नीलमत पुराण (श्लोक सं० ६) में मिलता है।

कल्हण ने यह प्रसंग नीलमत पुराण से लिया है। नीलमत पुराण इस प्रश्न से यह विषय आरम्भ करता है। क्या कारण है। महाभारत के युद्ध में भारत के सभी राजाओं ने भाग लिया था। काश्मीरराज राजाओं की तालिका में दिखायी नहीं पडते। उसका उत्तर नीलमत देता है। कश्मीर राजा शिशु थे। इसलिये कश्मीर राजा और कश्मीर की सेना महाभारत युद्ध में भाग नहीं ले सकी।

मथुरा युद्ध में गोनन्द प्रथम ने वीर गति प्राप्त की। केवल शिशु गोनन्द उस समय देवी यशोवती के गर्भ में था। वह उत्पन्न हुआ। शिशु था। महाभारत मथुरा युद्ध के केवल बीस वर्ष पश्चात् हुआ था। इस काल में दामोदर राजा था। उसके वीर गति प्राप्त करने पर शिशु गोनन्द द्वितीय राजा हुआ।

नीलमत पुराण (श्लोक सं० ६) में स्पष्ट उल्लेख है कि माधव अर्थात् श्रीकृष्ण से युद्धार्थ दामोदर चतुरंगिणी सेना के साथ अभियान किया था। यादव सेना श्रीकृष्ण सहित स्वयंवर निमित्त गान्धार जा रही थी। नीलमत (श्लोक संख्या ७) में स्पष्ट प्रकट होता है कि दोनों राजाओं में युद्ध हुआ और राजा दामोदर वीर गति प्राप्त किया।

जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा :

महाभारतसंग्रामे नानादेश्या नराधिपाः ।
महाशूराः समायाताः पितॄणां मे महात्मनाम् ॥ 3:३

तदाहवे विवाहोत्का विघ्न्यते स्म पतिंवरा।
आसीत्तु द्युपुरन्ध्रीणां गान्धारेषु स्वयंवरः॥ ६८॥

६८. समरांगण में जब विवाहोत्सुक गान्धारकन्याएं पति वरण निमित्त उदास होने लगीं तो उसी समय स्वर्ग रमणियां [१] युद्ध स्थल में वीरों का स्वयं स्वयंवर करने लगीं।

कथं कश्मीरको राजा नायातस्तत्र कीर्तय।
पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रैश्च न वृतः स कथं नृप॥
4 : ४

काश्मीरमण्डलं चैव प्रधानं जगति स्थितम्॥
5 : ५

अथोपस्मिन्नुगान्धारविषयेऽभूत्स्वयंवरः।
यत्राहूताः समाजग्मू राजानो वीर्यशालिनः॥
33 : २४

तत्रागतं समाकर्ण्य वासुदेव स्वयंवरं-।
जगाम माधवं योद्धुं चतुरंगबलान्वितः॥
6 : २५

तत्र तस्याऽभवद्युद्धं वासुदेवेन धीमता।
यादवां वासुदेवस्य नरकेन सहाऽभवत्॥
7 : २६

ततः स वासुदेवेन सुयुद्धे विनिपाततः॥
8 : २७

अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नीं वासुदेवोऽभ्यषेचयत्।
भविष्पुत्रराज्यार्थं तस्य देशस्य गौरवात्॥
9 : २७–२८

नीलमत पुराण में नाम बालगोनंद दिया गया है।

ततः सा सुषुवे पुत्रं बालगोनन्द संज्ञिनम्।
बालभावान् पाण्डुसुतैर्नानीतः कौरवैर्न वा॥
10 : २८-२९

हसन लिखता है—'बाप के इन्तकाल के बाद व मशविरह अराकीन सलनत सन कलजुग से तीन साल पहले यह शख्स तख्त हकूमत पर बैठा। रैयत को अदल व अहसान के जरिए गुलाम बनाकर अकसर व बेशतर राजे अपने मुतईम बनाये। इन्हीं दिनों राजा कन्दहार की लडकी की शादी का शोहरा दूर दराज के मुल्कों में फैल गया। बडे शान व शौकत वाले राजे महाराजे उसके स्वयंवर में कन्दहार हाजिर हो गये। श्रीकृष्ण जी ने भी किसी वजह से इसमें शमूलियत जरूरी समझी। यह खबर सुनकर दामोदर जो अपने बाप के खून का प्यासा था एक भारी फौज लेकर श्रीकृष्ण जी के मुकाबला के लिए कन्दहार रवाना हो गया। और साथ जंग व जदल की बुनियाद डाली। राजा मजकूर श्रीकृष्ण के हाथों कतल हुआ। उसकी रानी जसोमती जो उन दिनों हामला थी मशविरह श्रीकृष्णजी महाराज अपने खाविन्द की जानशीन हुई। मुद्दत हकूमत १३ साल।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६८ में 'विघ्न्यते' का 'विघ्नति' तथा 'सीत्तु' का 'आसीत्त' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६८(१) यह एक प्राचीन गाथा है। आर्य जाति में प्राचीन काल से पायी जाती है। सुरबालाएँ रणस्थल में वीर योद्धाओंका वीर गति प्राप्त करने पर वरण करती थीं। हिन्दू परम्परा के अनुसार वीर गति प्राप्त योद्धा स्वर्ग जाता है। अतएव उसे वरण करने के लिए स्वर्ग की बालाएँ उत्सुक रहती हैं। कल्हण इस ओर संकेत करता है।

यूरोप में स्केण्डेनोवियन गाथा के अनुसार युद्ध भूमि में वीर गति प्राप्त वीर को लेने के लिये रथों पर सुरबालाएँ आती थी। उन्हें साथ लेकर स्वर्ग जाती थीं।

उक्त पद का प्रथम आधा पद विरोधाभास प्रकट करता है।

तदाऽऽक्रान्तासुहृच्चक्रः स चक्रायुधसङ्गरे ।
चक्रधाराऽध्वना धीरश्चक्रवर्ती दिवं ययौ ॥ ६९ ॥

६९. तब वह चक्रवर्ती राजा शत्रुओं की चक्र पंक्ति द्वारा परावृत चक्रधर के चक्रधारपथ गति-द्वारा उस समरांगण में गमन किया।

अन्तर्वर्त्नी तस्य पत्नीं तदा यदुकुलोद्वहः ।
राज्ये यशोवतीं नाम द्विजैः कृष्णोऽभ्यषेचयत् ॥ ७० ॥

७०. यदु कुलोद्भव श्री कृष्ण ने दामोदर की गर्भवती पत्नी यशोवती[१] देवी का द्विजों से अभिषेक करा दिया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६९ में 'तदा' का 'तथा', 'सचक्रा' का 'सञ्चक्रा' तथा 'राध्वना' का 'राधुना', राधना, 'राध्यना' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६९ (१) चक्रधर से यहाँ अर्थ श्री कृष्ण से है। वह यादव सेना सहित गान्धार में स्वयंवर में भाग लेने जा रहे थे। मार्ग में दामोदर ने कश्मीरी सेना के साथ उनपर आक्रमण किया। युद्ध में दामोदर का वध श्रीकृष्ण के चक्र द्वारा हुआ था। पिता का ज्येष्ठ भ्राता बलराम ने तथा पुत्र का कनिष्ठ भ्राता श्री कृष्ण ने वध किया था।

'चक्रधाराध्वना' शब्द श्रोत्र प्रिय है। कश्मीर के पंडितों को श्री स्तीन के शब्दों में यह वाक्य बहुत प्रिय था। इसका सरल अर्थ होता है। 'चक्रधार पथ' से दामोदर दिवंगत हुआ और स्वर्ग गया था। यह वाक्य 'चक्रधर. कृष्णः एव पन्थास्तेन' भी स्तीन के मत में हो सकता है। उस समय अर्थ हो जायगा 'श्रीकृष्ण चक्रधर द्वारा मार्ग खोला गया'। कल्हण की कल्पना यह भी हो सकती है कि भगवान् कृष्ण द्वारा आहत होने पर दामोदर निश्चय ही स्वर्ग गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७० में 'यशोवती' का 'यशोवन्ती' तथा 'षेचयत्' का पाठभेद 'भूचयत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७०(१) यशोमती : नीलमत पुराण में रानी का नाम यशोमती नहीं दिया गया है। उक्त श्लोक सं० २७ में 'तस्य पत्नी' अर्थात् 'उसकी पत्नी' शब्द ही का उल्लेख है।

अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नीं वासुदेवोऽभ्यषेचयत् ।
भविष्यत्पुत्रराज्यार्थं तस्य देशस्य गौरवात् ॥
९ : २७

कल्हण ने यशोमती का नाम किसी अन्य पूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ से लिया है। कल्हण ने रा० त० १ : ७१ तथा ८ : ३४०८ में यशोमती के नाम का स्पष्ट उल्लेख किया है। वह राजा दामोदर की पत्नी थी।

हसन के अनुसार—'रानी सन् १० क० में तख्त सल्तनत पर बैठी। बादशाहों के काम मर्दों की तरह इन्तहाई बहादुरी और खुश असलूबी से अंजाम दिये। पहले मालूम हो चुका है कि यह अपने खाविन्द राजा दामोदर से हामिला थी। इसलिए मुकर्रर वक्त गुजरने पर बाल गोनन्द इससे पैदा हुआ। मुद्दत हकूमत १५ साल।'

(२) गर्भवती का अभिषेक : भगवान् के मंत्री गर्भवती रानी यशोमती के अभिषेक से प्रसन्न नहीं थे। भगवान् ने इसकी शंकाओं का समाधान पौराणिक प्रमाणों का उद्धरण देकर कर किया था।

यह विषय हिन्दू उत्तराधिकार के मौलिक प्रश्न को उठाता है। प्रचलित हिन्दू कानून के अनुसार

तस्मिन्काले स्वसचिवान् सासूयान्विन्यवोवरत् ।
इमं पौराणिकं श्लोकमुदीर्य मधुसूदनः ॥ ७१ ॥

७१. मधुसूदन[1] के सचिव गण स्पृहणीयता से भुनभुना रहे थे, उस समय भगवान् ने निम्नलिखित पुराण[2] पद का उल्लेख कर उन्हें शान्त किया।

"कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयः शिवांशजः ।
नाऽवज्ञेयः स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ॥" ७२ ॥

७२. काश्मीर[1] की भूमि पार्वती है। वहाँ का राजा हर[2] का अंश है। कल्याणेच्छुक विज्ञ जनो के लिये वह दुष्ट होने पर भी अवज्ञा का पात्र नहीं है।

गर्भधारण के समय से ही गर्भ स्थित सन्तान का उसी माता-पिता अथवा जहाँ भी कहीं उसके उत्तराधिकार का हक मिलता है अथवा उत्तराधिकार मिलने वाला होता है—(मरवाडवरशिप) विधि के अनुसार उसे अधिकार प्राप्त हो जाता है। सम्भव है कि विधवा का अभिषेक तत्कालीन प्रचलित विधि तथा सहिताओं व आचारों के विरुद्ध रहा हो।

भगवान् श्रीकृष्ण का कार्य विधि तथा धर्म सम्मत दोनों था। भगवान् ने माता के गर्भ में स्थित पुत्र का अभिषेक किया था। ऐसी स्थिति में प्रश्न नहीं उठता कि स्त्री विधवा है अथवा मधवा। सम्भव है कि भगवान् ने उस अनुचित प्रचलित रूढि पर अपने इस कार्य द्वारा आघात किया हो, जिसमें विधवा को अशुभ मान लिया जाता है। भगवान् ने पुराण का उल्लेख—'कश्मीर पार्वती तुल्य है। वहाँ का राजा हरांशज किंवा शिव का अंश है' इस प्राचीन स्मृति का प्रमाण देकर तथा स्त्री का सम्मान कर पुरानी स्मृति पर अपनी मुहर लगायी है। उसे राज्य कार्य के योग्य तथा सिंहासन की अधिकारिणी, अपने अधिकार से नहीं सही पुत्र के संरक्षक के अधिकार के कारण माना है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७१ में 'वीवरत्' का पाठभेद 'वारयत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ।

७१ (१) मधुसूदन विष्णु का नाम है। यहाँ पर श्रीकृष्ण के लिये आया है। मधु तथा कैटभ दो राक्षस थे। उन्हें एक साथ "मधु-कैटभ" नाम से पुकारा जाता है। मधु की त्वचा कोमल थी। इसलिये उसका नाम मधु पड़ा था। गाथा है कि भगवान् के नाभि कमल पर दो जल बिन्दु गिरे थे। वे रजोगुण तथा तमोगुण के प्रतीक थे। भगवान् ने उन बूँदों की तरफ देखा। एक मधु तथा दूसरा कैटभ हो गया (मेरु शान्ति पर्व . ३५५–२२–२३) एक और गाथा है। उनकी उत्पत्ति भगवान् विष्णु के कान के मैल से हुई थी। (दे० भा० १ ४)। पद्म पुराण (मृ : ४०) के अनुसार ब्रह्मा के तमोगुण से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कालान्तर में दोनों आततायी राक्षस हो गये थे। ब्रह्मा के सुझाव पर विष्णु ने उनका वध किया था। अतएव उनका नाम 'मधुसूदन' पड गया। (म० शा० २०० : १४–१६)

(२) पुराण : कल्हण ने पुराण का नाम नहीं दिया है। नीलमत में यह श्लोक मिलता है परन्तु शब्दावली में किंचित् भेद है। कल्हण ने पुराण शब्द का प्रयोग प्रायः नीलमत पुराण के लिये किया है। उसने बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री नील मत पुराण से ली है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७२ में 'कश्मीराः' का पाठभेद 'कश्मीराः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७२ (१) नीलमत पुराण में यह श्लोक निम्न लिखित रूप में मिलता है।

पुंसां निर्गौरवा भोज्य इव याः स्त्रीजने दृशः ।
प्रजानां मातरं तास्तामपश्यन्देवतामिव ॥ ७३ ॥

७३. मनुष्यों की जो दृष्टि स्त्री जनों को निर्गौरव एवं भोग्य पदार्थ समझती थी, वही उसे *प्रजा की माता*[1] *तथा देवी स्वरूप समझने लगी ।*

कश्मीरायां तथा राजा त्वया ज्ञेयो हरांशजः ।
तस्यावज्ञा न कर्तव्या मततं भूतिमिच्छता ॥
—237 : ३१४

लोक प्रकाश मे श्लोक का उद्धरण निम्नलिखित रूप मे दिया गया है ।

'सती च पार्वती ज्ञेया राजा ज्ञेयो हरांशजः ।' जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में कल्हण के इस पद का उद्धरण दिया है ।

(२) हरांशज : यहां पर भगवान् ने 'देवाधिराज' अर्थात् 'डिवाइन राइट' के सिद्धान्तको ओर एक प्रकार से संकेत किया है । भारत मे एक मत राजा को देवांश मानता है । यूरोप के मध्ययुग में तथा मुसलिम खिलाफत काल मे इस सिद्धान्त को मान्यता दो गयी थी। वर्तमान लोकतंत्र इस सिद्धान्त को मान्यता को समाप्त कर पश्चिम मे उदय हुए हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने कश्मीर मण्डल को पार्वती का रूप माना है । समर्थन में एक प्राचीन उद्धरण दिया है । राजा को हरांशज कहा है । कश्मीर मण्डल तथा राजा दोनों को इस प्रकार मान्यता देकर पवित्र किया है । उसे दूसरे शब्दो में कह सकते है । कश्मीर भूमि यदि मातृ भूमि है, तो यहाँ का राजा पिता है। यह अनुपमेय उपमा भगवान् ने अनोखे ढंग से दी है ।

भगवान् ने किस पुराण से उद्धरण दिया था। कल्हणने उसका उल्लेख नहीं किया है । किन्तु इस सिद्धान्त, भाव तथा शब्दावली की पुष्टि नीलमत पुराण के श्लोक से मिलती है। सम्भव है। नीलमत पुराण में यह श्लोक किसी अन्य पुराण से उद्धृत किया गया हो । अथवा उसका भाव ले लिया गया हो । कल्हण केवल पुराण शब्द का उल्लेख करता है । उसे नीलमत पुराण का ज्ञान था अतएव नीलमत शब्द का न लिखना अर्थपूर्ण है । यह तर्क सम्मत मालूम होता है । उसका अभिप्राय यहाँ नीलमत पुराण के अतिरिक्त किसी अन्य पुराण से नही था ।

७३ (१) 'प्रजानां मातरम्': भगवान् ने यहाँ एक आदर्श सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कल्हण के श्लोक से ध्वनि निकलती है । पूर्व काल में स्त्री केवल भोग्य पदार्थ मानी जाती थी । उनका राज काज में विशेष हाथ नहीं था। रानी पर भी उनकी स्थिति में विशेष अन्तर नही आता था ।

भगवान् ने इस मत का खण्डन कर नवीनमत जगत् के सम्मुख रखा । राजा यदि देश का पिता है, तो रानी देश की माता है । राजतन्त्र में नागरिक होते है । उनकी लोकतन्त्रीय परम्परा के अनुसार स्वतन्त्र नागरिक की स्थिति नहीं होती अतएव यहाँ प्रजा की माता शब्द का प्रयोग किया गया है । यदि काश्मीर गणराज्य होता तो भगवान् निस्सन्देह राजमाता शब्द का प्रयोग न करते ।

भारत में राजमाता पद इसी समय से ऐतिहासिक तथ्य के साथ चलता मालूम होता है । आज भी भारत में रानी को राजमाता कहते है। यह उदात्त भावना थी, राजा-प्रजा में, रानी-प्रजा में, वात्सल्य भाव उत्पन्न करती है । संकेत करती है । राजा एवं रानी का कर्तव्य है । अपनी सन्तान तुल्य प्रजा का पालन करे ।

पृथ्वी को सर्वत्र स्त्री माना गया है। पृथ्वी माता, भारत माता, आदि शब्दों का व्यवहार किया गया है । पृथ्वी किंवा भूमि एक प्राचीन आख्यायिका के अनुसार राजा की पत्नी मानी गयी है । अतएव

अथ वैजनने मासि सा देवी दिव्यलक्षणम् ।
निर्दग्धस्यान्वयतरोरङ्कुरं सुषुवे सुतम् ॥ ७४ ॥

गोनन्द

७४. दग्ध वंश वृक्ष में अंकुर तुल्य उस देवी ने समय पर दिव्य लक्षणो[१] से युक्त पुत्र प्रसव किया।

तस्य राज्याभिषेकादिविधिभिः सह संभृता ।
द्विजेन्द्रैर्निरवर्त्यन्त जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥ ७५ ॥

७५. द्विजेन्द्रों ने राज्याभिषेक[१] के साथ जातकर्म तथा अन्य सम्बन्धित संस्कार विधिवत् कराया।

पृथ्वी माता, भूमि माता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

मालूम होता है। भगवान् देवी यशोवती से प्रभावित थे। गर्भवती होने पर भी रानी अपने पति कश्मीरराज के साथ वृष्णियों के विरुद्ध गान्धार युद्ध में गयी थी। भगवान् ने उसका अभिषेक वहीं किया था। कोई प्रमाण नहीं मिलता। श्री कृष्ण कश्मीर में आये थे। कश्मीर भूमि पर यशोवती का अभिषेक किया था।

गीता जैसे उदात्त दार्शनिक सिद्धान्तों के रचनाकार श्री कृष्ण से राजनीतिक सिद्धान्तों पर भी इसी प्रकार के विचारों को प्रकट करने की अपेक्षा की जा सकती है।

कश्मीरराज को पराजित करने पर भी श्रीकृष्ण ने कश्मीर पर शासन नहीं किया। उसे लेने तक की कल्पना नहीं की। राज्य जिसका था, उसे लौटा दिया। दामोदर के पिता गोनन्द ने मथुरा में उनसे युद्ध किया था। वे वैर भाव भी भूल गये। उन्होंने उपनिवेश बनाने, साम्राज्य बनाने की कल्पना नहीं की। इस प्रकार के राजनीतिक उदात्त उदाहरण भारतवर्ष जैसे देश में ही सम्भव हो सकते हैं।

७४ (१) लक्षण : महापुरुषों तथा राजाओं में भारतीय ज्योतिष के अनुसार शरीर पर कुछ स्पष्ट चिह्न होते हैं। उनकी महत्ता, विशेषता के कारण उन लक्षणों में कमी किंवा अधिकता होती है।

भगवान् रामचन्द्र में, कृष्ण में इस प्रकार के लक्षण थे। भगवान् बुद्ध में महापुरुषों के ३२ लक्षण थे। उनके अग्रश्रावकों में कुछ लक्षणों के होने का उल्लेख मिलता है।

ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक लक्षण का प्रभाव भिन्न-भिन्न होता है।

७५ (१) राज्याभिषेक : शिशु गर्भ से निकलते ही पूर्ण सत्ता सम्पन्न राजा हो गया। इस सिद्धान्त की ओर कल्हण संकेत करता है। भगवान् ने दिव्य दृष्टि द्वारा गर्भ का रहस्य जान लिया था। गर्भ में पुत्ररत्न स्थित है। अतएव यशोवती का अभिषेक गान्धार में किया था।

पुत्र का जन्म होते ही यशोवती की सत्ता समाप्त हो गयी। पुत्र पूर्ण राजा हो गया। उसका अभिषेक भगवान् ने गर्भ में ही कर दिया था। उत्तराधिकार के विवाद का प्रश्न नहीं उठता था। भगवान् ने एक विषम समस्या का अत्यन्त चतुराई के साथ समाधान किया था। किसी भी सम्बन्धी तथा गोत्री को किसी प्रकार के विवाद करने का अधिकार नहीं था। विजेता ने राज्य पुनः गर्भ स्थित उत्तराधिकारी को लौटा दिया था।

यदि पुत्र न होता तो कम से कम कुछ मासों का समय यशोवती को इसलिये दिया कि देश में

स नरेन्द्रश्रिया सार्धं लब्धवान्बालभूपतिः ।
नाम गोनन्द इत्येवं नप्ता पैतामहं क्रमात् ॥ ७६ ॥

७६. उस बाल भूपति ने राजश्री के साथ ही साथ समय पर अपने पितामह का नाम[1] गोनन्द भी प्राप्त किया।

आस्तां बालस्य संनद्धे द्वे धात्र्यौ तस्य वृद्धये ।
एका पयःप्रस्रविणी सर्वसंपत्प्रसूः परा ॥ ७७ ॥

७७. बालक के वार्धक्यपरिचर्या निमित्त दो धात्रियाँ सन्नद्ध रहती थीं। एक पयःप्रस्रविणी धात्री तथा दूसरी सर्वसंपत्प्रसूता पृथ्वी थी।

अराजकता रोककर, स्थिति सुदृढ़ कर ले। अपने विरोधियों का इस काल में कंटक शोधन करे।

राजा के मन्त्री थे। उसकी सेना थी। उसकी अभिभाविका उसकी माँ थी। राजा की संरक्षिका थी। केवल माता यशोवती नहीं अपितु मन्त्रिमण्डल प्रत्येक कार्यों के लिए, राजकार्य के लिए, उत्तरदायी था।

राजमाता यशोवती केवल अभिभाविका तथा संरक्षिका मात्र थी। वह कश्मीर मण्डल की विधिपूर्वक राजा नहीं थी। उसका प्रत्येक कार्य मंत्रिमण्डल के मन्त्रणानुसार होना आवश्यक था। यशोवती को मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणाओं को टालने किंवा मानने का अधिकार था या नहीं इस सूक्ष्म विवेचन पर कहीं प्रकाश नहीं डाला गया है। शिशु राजा के वयस्क होने तक यशोवती देवी का राज्यानुशासन एवं राज्य कार्यों के विषयों को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७६ मे 'नरेन्द्र' का पाठभेद 'नगेन्द्र' तथा 'गोनन्द' का 'गोनर्द' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७६ (१) नामकरण संस्कार : कश्मीर में प्रचलित संस्कार के अनुसार जातकर्म संस्कार के एक दिन पश्चात् नामकरण संस्कार अर्थात् शिशु का नाम रखा जाता है।

कल्हण का वर्णन यहाँ पूर्ण प्रामाणिक तथा युक्तिसंगत प्रतीत होता है। जरासन्ध के साथ मथुरा में गोनन्द सम्मिलित हुआ था। उस समय उसका पुत्र दामोदर युवक था। युवराज था। उसकी पत्नी यशोमती को कोई सन्तान नहीं थी। केवल एक सन्तान गर्भ में थी। भगवान् कृष्ण मथुरा युद्ध के पश्चात् गान्धार स्वयंवर में गये थे। युवक राजा दामोदर ने उनपर आक्रमण किया। पिता गोनन्द युद्ध में कृष्ण के भाई बलराम द्वारा तथा पुत्र दामोदर स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया था। इससे प्रकट होता है कि गोनन्द युद्ध करने योग्य था। वह वृद्ध नहीं था। उसका पुत्र दामोदर उनके साथ मथुरा सम्भवतः नहीं गया था। यदि वह गया होता तो शायद वह भी वही वीरगति प्राप्त करता।

मालूम होता है कि मथुरा में जरासन्ध के आह्वान पर जाते समय गोनन्द अपने वयस्क पुत्र को कश्मीर की राज्य-व्यवस्था के लिए छोड़ गया था। दामोदर की अवस्था मैं समझता हूँ उस समय २० से २५ वर्ष की और गोनन्द की ५० वर्ष के भीतर रही होगी। यशोमती से एक ही सन्तान के वर्णन से सिद्ध होता है, कि यशोमती युवती मात्र थी। गोनन्द के मथुरा युद्ध में हत होने के कुछ ही समय पश्चात् दामोदर भगवान् कृष्ण से युद्धार्थ गान्धार गया होगा। यह बात राजतरंगिणी के ८२ वें श्लोक से और स्पष्ट हो जाती है कि बालक होने के कारण कौरव-पाण्डवों ने उसे युद्धार्थ आमन्त्रित नहीं किया था। बालक राजा द्वितीय गोनन्द की अवस्था महाभारत काल में कठिनता से तीन या चार

तस्यावन्ध्यप्रसादत्वं रक्षन्तः पितृमन्त्रिणः ।
पार्श्वगेभ्यो , ददुर्वित्तमनिमित्तस्मितेष्वपि ॥ ७८ ॥

७८. उस बालक के अधरों पर अकारण स्मित रेखा देखकर उसके पिता के मन्त्रिगण उसकी प्रसन्नता[1] को सफल देखने की अभिलाषा से पार्षदों को पुरस्कार दिया करते थे।

अबुद्ध्वाऽननुतिष्ठन्तस्तस्याव्यक्तं शिशोर्वचः ।
कृतागसमिवात्मानममन्यन्ताधिकारिणः ॥ ७९ ॥

७९. अबोध शिशु की वाणी का आशय एवं आदेश समझने एवं पालन करने में असमर्थता का अनुभव कर वे मन्त्रीगण अपने को स्वयं अपराधी मानते थे।

पितुः सिंहासनं तेन क्रामता बालभूभुजा ।
नोत्कण्ठा पादपीठस्य लम्बमानाङ्घ्रिणा हृता ॥ ८० ॥

८०. पिता के सिंहासन[1] पर स्थित बालक नरेश का पद पादपीठ पर छोटा होने के कारण नहीं पहुँच पाता था अतएव स्पर्श सुख का उत्कण्ठी पादपीठ निराश हो जाता था।

वर्ष की रही होगी। अर्थात् गान्धार युद्ध के ५ से १२ वर्ष पश्चात् ही महाभारत आरम्भ हो गया था। बाल्यकाल से मैं समझता हूँ ५ से १२ वर्ष की अवस्था का बोध होना चाहिए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७७ में 'प्रस्रविणी' का पाठभेद 'प्रसविनी' मिलता है।

श्लोक संख्या ७८ में 'ददु' का पाठभेद 'दधु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७८ (१) प्रसन्नता : राजा प्रसन्नता का प्रदर्शन कुछ देकर करता है। सेवक इसलिए उसे प्रसन्न रखने का सर्वदा प्रयास करते हैं। अप्रसन्न होने पर राजा का दण्ड स्वरूप उग्ररूप प्रकट होता है। जिसका अन्त किसी के दुःख किंवा दण्ड में होता है। किसी के कार्य से प्रसन्न होने पर राजा उसे पदवी, जागीर किंवा पुरस्कार देते हैं।

शिशु अबोध था। वह किसी कार्य से प्रसन्न होता था। मुसकुराता था। उसकी प्रसन्नता राजकीय परम्परानुसार व्यर्थ न हो, एतदर्थ मन्त्रिगण उस परम्परा को कायम रखने के लिये पुरस्कार देते थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७९ में 'अबुद्ध्वाऽननुतिष्ठन्त.' का पाठभेद 'अबुद्धमनुतिष्ठन्तः' मिलता है।

श्लोक संख्या ८० में 'हृता' का पाठभेद 'कृता' तथा 'हृता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८० (१) सिंहासन : इस श्लोक से कल्हण का मन्तव्य यह मालूम होता है कि शिशु राजा सिंहासन पर आसीन होता था। उसका पैर इतना छोटा था कि पादपीठ तक नहीं पहुँच सकता था। मन्त्रीगण शिशु के अबोध होने पर भी प्रतीक स्वरूप उसे सिंहासन पर बैठाते थे। ताकि सिंहासन सूना न रहे। वे राजा की ओर से राजकार्य करते थे। उसी प्रकार जैसे देवता के नाम से धर्मदाय भूमि सम्पत्ति तथा अन्य कार्यों का शासन तथा संचालन किया जाता है।

मिलता है कि माधव अर्थात् श्री कृष्ण से युद्ध निमित्त दामोदर चतुरंगिणी सेना लेकर गया था। जिस समय यादव सेना स्वयंवर निमित्त गान्धार आ रही थी।

तं चामरमरुल्लोलकाकपक्षं नृपासने।
विधाय मन्त्रिणोऽशृण्वन्प्रजानां धर्मसंशयम् ॥ ८१ ॥

८१. चामर मरुत् द्वारा बालक के काक[1]पक्ष उल्लोलित होते थे। उसे नृपासन पर बैठाकर मन्त्रीगण विवादों को सुनकर धर्म संशयों[2] का सविधि निर्णय करते थे।

इति काश्मीरको राजा वर्त्तमानः स शैशवे।
साहायकाय समरे न निन्ये कुरुपाण्डवैः ॥ ८२ ॥

८२. अस्तु यही कारण है। कौरव एवं पाण्डव दोनों पक्षों ने कश्मीर के राजा को शिशु जानकर महाभारत[1] युद्ध में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित नहीं किया था।

श्लोक सं० ७ स्पष्ट उल्लेख करता है कि दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। उसमें काश्मीर राजा पराजित हुआ। वीर गति प्राप्त किया।

८१ (१) काक पक्ष : मस्तक के दोनों पार्श्व में बच्चों तथा क्षत्रिय युवकों में कुछ बाल छोड़ दिये जाते थे। मेरी बाल्यावस्था में मेरे घर में मस्तक के ऊपर लगभग एक चौथाई चमवाकर दोष बाल छोड़ देते थे। यह बाल रखने की प्रथा लुप्त हो गयी है। पठान तथा सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रान्त के पुराने कुलीन लोग अब भी इस प्रकार से बाल रखते हैं। मैंने अफगानिस्तान की अपनी यात्रा में प्रायः लोगों को इस प्रकार का बाल रखे देखा था। भारत में काबुली लोग अब भी इस प्रकार का बाल रखते हैं। ईरान में इस फैशन को 'काकुल' कहते हैं।

(२) धर्मसंशय : यहाँ धर्मसंशय से अर्थ है—विवाद। दो पक्षों में अधिकार, अपराध, दण्ड आदि के विषयों में जब संशय उत्पन्न होता था और प्रचलित विधि के विषय में शंका उत्पन्न होती थी तो वह विषय अन्तिम निर्णय हेतु राजा के सम्मुख उपस्थित होता था। राजा को प्रतीक मानकर मन्त्रीगण राजा के नाम से राजा के सम्मुख निर्णय देते थे। राजा न्याय का स्रोत था। न्याय का संरक्षक था। अतएव राजा को सम्मुख रखकर मन्त्रीगण निर्णय लेते थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८२ में 'निन्ये' का 'नीत.' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८२ (१) महाभारत और कश्मीर राज : नीलमत पुराण का आरम्भ राजा जनमेजय की इस जिज्ञासा से होता है। महाभारत युद्ध स्थल में सभी देशों के राजा उपस्थित थे। किन्तु क्या कारण है कि कश्मीर मण्डल के राजा ने युद्ध में किसी पक्ष से भाग नहीं लिया। इस प्रश्न का उत्तर वैशम्पायन ने कश्मीर का राजा बालक होना दिया है :

जनमेजय उवाच :

महाभारतसंग्रामे नानादेश्या नराधिपाः।
महाशूराः समायाताः पितॄणां मे महात्मनाम् ॥
3 : ३

कथं काश्मीरिको राजा नायातस्तत्र कीर्तय।
पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रैश्च न वृतः स कथं नृप ॥
4 : ४

कश्मीरमण्डलं चैव प्रधानं जगति स्थितम्।
कथं नासौ समाहूतस्तत्र पाण्डवकौरवैः ॥
5 : ५

किंनामाऽभूत राजा च कश्मीराणां महाशयः।
कथं वासौ निशम्यैतन्नायातश्चात्मना तदा ॥
6 : ६

आम्नायभङ्गान्निर्नष्टनामकृत्यास्ततः परम् ।
पञ्चत्रिंशन्महीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे ॥ ८३ ॥

पैंतीस राजा

८३. तत्पश्चात् हुए पैंतीस महीपालों के नाम तथा कर्म परम्परा गत लेखादि के नष्ट होने के कारण विस्मृति सागर में डूब चुके हैं।

स्वर्गसोपानपंक्तिर्हि भव्यानां समभूदिदम् ।
भारतं नाम युद्धं यज्जिगीषूणां महात्मनाम् ॥
7 : ७

अकारणमिदं नाम न भवेद्यदसौ तदा ।
नायातो भारतं युद्धं राजा काश्मीरिको महान् ॥
8 : ८

वैशम्पायन उवाच :

सत्यमेतन्महाराज त्वया प्रोक्तं महीपते ।
यथा नासौ समायातस्तन्निशामय सुव्रत ॥
9 : ९

कुरुपाण्डववेलायां भूमिर्भगवता स्वयम् ।
पाविताभूद्दितिसुतानवतीर्णोऽघान यत् ॥
10 : १०

तस्मिन्कालेऽत्र समभूद्राजा विशदकीर्तिमान् ।
कश्मीरान् पालयन् सौम्य गोनन्द इति संज्ञया ॥
11 : ११

असौ प्रतापकलितो दिशं सौम्यां समाश्रितः ।
शुशुभे विक्रमोदग्रो मानी कलितसंस्थितिः ॥
12 : १२

अथोत्थिते किल महाविरोधे दैत्यबन्धुना ।
वृष्णीनां कृष्णमुख्यानां जरासंधेन भूभृता ॥
13 : १३

अनेन बन्धुना मानस्थानमेष महीपतिः ।
काश्मीरिकोऽभ्यर्थनयाहूतः साहाय्यकाम्यया ॥
14 : १४

गत्वासौ बन्धुगृह्यत्वाज्जरासंधस्य भूपतेः ।
चक्रे साहाय्यकं धीमान् जरासन्धस्य भूपतेः ॥
15 : १५

रुरोधाथ च कंसारेर्मथुरां मधुराकृतिः ।
बलैः स्वैर्बलवान् राजा श्रेयसुस्ते यत्र यादवाः ॥
16 : १६

भूरिशोऽथ बले भग्ने यादवानां बलोद्धतः ।
बलो बलेन रुरुधे महता तं जिगीषया ॥
17 : १७

अतीव तुमुले तस्मिन् युद्धेऽन्योन्यजिगीषया ।
काश्मीरिकोऽसौ क्रुद्धेन बलेन बलवान् बलात् ॥
18 : १८

रुद्धोऽभूत्पतितो भूमौ शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहः ।
इत्यस्मिन् वीरकलितां गतिमाप्ते महात्मनि ॥
19 : १९

दामोदराभिधस्तस्य सूनू राजाऽभवत्सुधीः ।
विभूतिकलितेनाऽथ समृद्धेन महात्मना ॥
20 : २०

येन काश्मीरभूः राज्ञाऽन्विता सौम्या जहास ह ।
स राजबीजो सत्कीर्तिवीर्यशाली महाभुजः ॥
21 : २१

अतश्चिन्तातुरो जातु न लेभे निर्वृतिं पराम् ॥
अहो महात्मा राजा ▪ कथं नाम हतो बलात् ।
द्वीपान्तर्वासिना तातो बलेन बलवान् मम ॥
22-23 : २२-२३

हसन गोनन्द द्वितीय को बाल गोनन्द लिखता है। अराकीन दैलत के मशविरह से यह शख्स सन् २५ क० बाद-अज वलगत तख्त नशीन हुआ। एक सासी मुद्दत नेकनामी के साथ हुकूमत के चलाने में गुजारी। बिल आखिर हरणदेव के हाथ कत्ल हुआ। मुद्दत सल्तनत चालीस साल।

हसन का यह कयास है कि द्वितीय गोनन्द मारा गया। इसका कोई प्रमाण नही है। कोई कारण नही देता कि गोनंद की हत्या क्यों की गयी। हत्याकारी हरणदेव का गोनंद से क्या सम्बन्ध था।

८३ (१) लुप्त राजा : कल्हण ने ३५ राजाओ का नाम तथा समय नहीं दिया है। इस प्रसंग में एक रोचक बात रत्नाकर पुराण की है उसका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक है।

कश्मीर का बड़शाह अर्थात् बादशाह जैनुल आबदीन (सन् १४२०-७० ई०) ने प्राचीन पुस्तकों का अन्वेषण कराया था। उसने १५ राज-तरंगिणियों का पता लगवाया था। सिकन्दर बुत शिकन (१३६३-१४१६ ई०) के समय केवल ११ ब्राह्मणो के कुटुम्ब कश्मीर में रह गये थे। उनके अतिरिक्त हिन्दू या तो मुसलमान हो गये या विनष्ट कर दिये गये या कश्मीर त्याग कर भाग गये। देवस्थान तथा मन्दिर नष्ट कर दिये गये। पुस्तकें आदि भस्म कर दी गयीं। उनका या तो नदियों में प्रवाह कर दिया गया अथवा भस्म कर दी गयी। बहुतो ने राज्य भय से स्वयं वितस्ता मे उनका जल प्रवाह कर दिया।

बड़शाह के समय कल्हण की राजतरंगिणी जो प्रायः एक सौ वर्ष तक लुप्त थी प्राप्त हुई। उसमे ३५ विस्मृत राजाओ का उल्लेख नही था।

कुछ समय पश्चात् भोजपत्र पर लिखी एक पुस्तक और मिली। उसका नाम 'रत्नाकर पुराण' था। रत्नाकर पुराण मे ३५ लुप्त राजाओ का वर्णन था। बादशाह जैनुल आबदीन ने रत्नाकर पुराण तथा राजतरंगिणी का अनुवाद फारसी मे कराया। पुराण मे कलियुग के प्रारम्भ से होने वाले राजाओं का वर्णन था। दोनो ही मूल ग्रन्थ अर्थात् रत्नाकर पुराण तथा उसका अनुवाद इस समय अप्राप्य है।

कश्मीर के इतिहासकार पीर हसन शाह का कहना है कि उन्हें रत्नाकर पुराण के अनुवाद की एक प्रति रावलपिण्डी में किसी काश्मीरी सज्जन से प्राप्त हुई थी। उसमें जिन ३५ राजाओं का वर्णन कल्हण ने नही किया है, उनका उल्लेख था।

हसन वितस्ता में एक दिन रत्नाकर पुराण के अनुवाद वाली पुस्तक के साथ नाव पर जा रहे थे। नाव डूब गयी। वे स्वयं बच गये पुस्तक डूब गयी। हसन ने नहीं लिखा है कि वह पुस्तक रावलपिण्डी में किससे मिली थी।

हसन के अनुसार २२ राजाओं का शासन काश्मीर में एक हजार वर्ष तक था। उन्हें वह पाण्डववंशीय कहता है। कश्मीर की परम्परा चली आती है कि प्रत्येक स्मारक तथा गाथा को पाण्डव से जोड़ते हैं। उन्हें पाण्डव लारेह किंवा पाण्डव स्मारक कहते हैं।

हिमाल तथा लोलार की प्रेमगाथाएँ इसी काल की कही जाती है। हिमाल का प्रेमी नागराय तथा लोलार का प्रेमी बोम्बरे था। कश्मीर के ग्राम्य गीतों में उनका नाम अभी तक प्रचलित है। बोम्बरे उन विस्मृत राजाओं में से एक था। बोम्बरे लोलार पर इतना आसक्त था कि उसने राज्य त्याग दिया। हिमाल-नागराय की एक प्रचलित कहानी है। नागराय को भी उक्त ३५ लुप्त राजाओं में रखा गया।

हसन के अनुसार हरणदेव पाण्डव वंशज था। वह गोनन्द द्वितीय के यहाँ सेवावृत्ति करता था। कालान्तर मे वह राजमन्त्री हो गया। गोनन्द की हत्या कर स्वयं राजा बन गया।

रामदेव हरणदेव के पश्चात् राजा हुआ। उस प्रतापी राजा ने भारतवर्ष के ५०० राजाओं को परास्त कर अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक राज्य कायम किया। उसने उपज का १० प्रतिशत राजकर निश्चित किया। किन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने उसे बढ़ाकर २० प्रतिशत कर दिया था।

यदि रामदेव इतना प्रतापी राजा होता तो कश्मीर के इतिहास तथा तत्कालीन कश्मीर साहित्य में उसके सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहानी तथा कोई न कोई घटना अवश्य लिखी मिलती। उसका कोई न कोई स्मारक, मन्दिर अथवा भवन के रूप में अवश्य होता। उसका किसी न किसी काश्मीरी साहित्य में उल्लेख मिलता। कह्लण के समय तक कुछ बात उसके सम्बन्ध में अवश्य प्रचलित रहती।

हसन के अनुसार पाण्डव वंश का बाईसवाँ राजा सुन्दरसेन था। उसके समय में भयंकर भूकम्प आया। भूकम्प राजधानी के सन्धिमत नगर के मध्य में हुआ। समस्त नगर, राजा, नागरिक, जीव-जन्तु इसके शिकार हो गये। नगर जिस स्थान पर था वहाँ उलर झील हो गयी।

हसन ने बाइबिल तथा कुरान शरीफ वर्णित जल प्लावन के आधार पर इस कथा का वर्णन किया है। राजवंश के निर्मूल होने पर, कश्मीर के उत्तर-पूर्व स्थित अत्यन्त रमणीय, उर्वरा लोलह किंवा लोलाव अथवा आधुनिक लोव उपत्यका के सामन्त लव को कश्मीर के लोगों ने राजा निर्वाचित किया। उसे कश्मीर के सिंहासन पर बैठाया। सम्भव है कि भूचाल तथा जलप्लावन के कारण जो कश्मीर में प्रायः हुआ करते हैं, लुप्त राजाओं से संबंधित पुस्तिकाएँ तथा सामग्रियाँ नष्ट हो गयी हों।

जिस रत्नाकर पुराण के आधार पर हसन ने इतिहास लिखा है, उसके विषय में कहता है कि वह पुस्तक के साथ वितस्ता नदी में नाव पर जा रहा था। तूफान आया। पुस्तक नदी में डूब गयी।

नीलमत पुराण तुल्य रत्नाकर पुराण का होना सम्भव हो सकता है। नीलमत के समान उसमें भी ऐतिहासिक वर्णन रहा होगा। किन्तु अभी तक रत्नाकर पुराण तथा उसका अनुवाद नहीं मिल सका है।

मैंने हसन द्वारा वर्णित राजाओं का वर्णन परिशिष्ट ३ में दे दिया है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व भविष्य के गर्भ में है। वस्तुस्थिति तथा घटना क्रम जो प्रकाश में आये हैं, उनके आधार पर उसका ऐतिहासिक महत्त्व नगण्य है।

मैं यहाँ मुल्ला अहमद के 'वाकये कश्मीर' का 'दीवाचा' दे देना उचित समझता हूँ जिससे बहुत बातें साफ हो जायेंगी। पता चलेगा कि रत्नाकर पुराण की कहानी सर्व प्रथम कैसे आरम्भ हुई या गढ़ी गयी। लुप्त राजाओं को किस प्रकार एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास किया गया है। हसन ने दीवाचा अपनी पुस्तक में उद्धृत की है। उसे अविकल रूप में यहाँ देना अच्छा होगा।

मुल्ला अहमद 'वाकये कश्मीर' के दीवाचा में रकम तराज है—'यह हकीर पुर तकसीर जब आला हजरत शहन्शाह मुअजम यानी जैनुल आबदीन के 'वाजिबुल अजा' के मुताबिक किताब महाभारत के फ़ारसी तरजुमे से फारिग हुआ तो इसके फौरन बाद ही कश्मीर के राजों-महाराजों की तारीख नवीसी पर मुकर्रर हुआ। चुनांचः इस इरशाद के मिलते ही मैंने संस्कृत जबान के उन 'पुरानों' और 'तरंगिनियों' की तलाश शुरू की जो तुरकी लुटेरे कश्मीर पर हमलावर होने और बाज सुलतान सिकन्दर बुतशिकन की मजहबी ना रवादारी के वायस जाया हो चुकी थी। और जो बाक़ी थी वह बहुत थोड़ी और नायाब थी। बकौल शख्से जो-इन्दा या बिन्दा बड़ी मशक्कत और मिहनत के बाद मैं उनके पाने में कामयाब हो गया। इनमें से क़ाबिले जिक्र किताबें कल्हन पण्डित, क्षेमेन्द्र, छविल्लकार और पद्ममिहिर की राजतरंगिनियाँ हैं। लेकिन उसे छोड़कर कह्लण पण्डित की राजतरंगिनी के तरजुमा की तरफ मुतवज्जह हुआ जो बहमदुल्लाह बहुत जल्द इख्तनाम पजीर हो गया।

'इसके थोड़े अरसा बाद ही पण्डित रत्नाकर की पुरानी तारीख के कुछ अजज़ा पण्डित प्रजा को

तवज्जो और इनायत से हासिल हो गये। ये तारीख भोज के पत्तों पर लिखी हुई थीं। मुतालह करने से पैंतीस राजाओं के नाम जो सन् कलयुग शुरू होने से कवल कश्मीर में हुए थे और जिन्हें कल्हन पण्डित ने ब वजह अदम वसूक तर्क कर दिया था मालूम हुए। बादशाही हुक्म के मुताबिक इस किताब का तरजुमा भी किया गया और बतौर जमीया अपनी किताब के आखिर में मिलाकर दोस्त अहबाव के लिये सामाने मुसर्रत बनाने की कोशिश की।' हसन कहता है—'राकुमउल हरूफ ने मुसन्निफ 'वाकए कश्मीर' के तरजुमा के मुताबिक उन राजाओं के अहवाल से अपनी तारीख शुरू की हैं। जिन्हें कल्हन पण्डित ने अपनी राजतरंगिनी में तर्क कर दिया था। यहाँ गोविंद सानी तक जो तजकिरा किया गया है सबका सब मुल्ला अहमद की 'वाकये कश्मीर' से माखौज है।'

(पृष्ठ १४–१५)

तारीख हसन कश्मीर के मुसलमानों में बहुत प्रचलित है। इसलिए कश्मीर के इतिहास का वास्तविक ज्ञान कश्मीर उपत्यका की मुसलिम जनता को कम प्राप्त हो सका है। लुप्त राजाओं के विषय में हसन का वर्णन उनके शब्दों में देना अच्छा है।

'मुसन्निफ ने कश्मीर की यह तारीख चार जिल्दों में मदून की है। जिल्द अव्वल में जुगराफिया का बयान है। उसमें इवत सादियात पैदावार आसार करीमा और शहराए सवका मुफस्सल और निहायत दिल आवेज हाल मिलता है। हक तो यह है कि यह अपनी नवैयत का पहला कारनामा है और अपनी अफाहियत की वजह से बड़ी ही अहम तालीफ है। जिल्द दोयम में जिसका उर्दू तरजुमा इन औराक के साथ कारहन है। कदीम हिन्दू राजाओं सलातीन व मल्कत मुतल्लिकाएँ कश्मीर सलातीन चुगताइया, अफागना, सिख और डोगरा हुक्मदानों के हालात हैं। जिल्द सोयम और चहारम सूफिया औलिपाए कराम उलमा और शोहरा के हाल पर मुस्तमिल हैं।

'जिल्द अव्वल एक मशरकी तर्ज के मुख्तसर मुकदमा से शुरू होती है। औवल्लन अकातीन आलम और जुगराफिया फलकी व लवई का बयान है। यह हिस्साए अलमी नुक्ता निगाह से ज्यादह वकी नहीं। और गालिबन इब्तदाई दरसी किताबों से मासूज है। हिस्साए मावद पूरे तौर पर कश्मीर से मुतअल्लिक है। अगर ये इसमें ओरेल स्टाइन के कदीम जोगराफिया कश्मीर या कनिंघम की एक ऐसी (दिक्कत) नजर नहीं मिलती ताहम इसकी वफादियत से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। जिल्द दोयम में मयासी मदो जजर का बयान है। वकौल मुसन्नफ उसमें मुन्दरजः जैल मासौजों से इस्तफादा हासिल किया गया है।

(२) वाकये कश्मीर : मुसन्निफा अल्लामा अहमद काश्मीरी—इसके मुतल्लिक सतूर बाला में इशारा हो चुका है। इस किताब की मदद से मुसन्निफ ने उन पैंतीस राजाओं का तजकिरा मुरतन किया है जिनके हालात कल्हण की राजतरंगिणी में भी नहीं मिलते।

अलावा अजई उन ६ राजाओं का तजकिरा भी इस किताब का रहोने मिन्नत है। जिन्होंने १९१ सन् से ४१४ ईसवी तक और फिर रानादित्य के अहद हकूमत ४१४–४७४ के बाद ५७१ ई० तक काश्मीर पर हुक्मदानी की। यहाँ इस चीज का जिकर दिलचस्पी से खाली न होगा कि कल्हण को जब इन सात राजाओं के हालात दस्तयाव न हो सके तो उसने रानादित्य के अहदे हकूमत ३०० वर्ष मुतैय्यन करके इस खला को पूरा करने की कोशिश की। जाहिर है कि अक्ले सलीम इसके मानने से कासिर है और कल्हण का यह कौल महज वर वजन सुखन है। हमारे मुसन्नफ की इस दरयाफ्त ने तारीख कश्मीर को मुकम्मल कर दिया और यह एक बडी ही अहम कडी है जो तारीख हसन के अलावा कहीं और दस्तयाव नहीं होती। कारेन की दिलचस्पी के लिए इन राजाओं की फिहरिस्त दर्ज जैल है।"

अथाभवत् लवो नाम भूपालो भूमिभूषणम् ।
वेल्लद्यशोदुकूलायाः प्रीतिपात्रं जयश्रियः ॥ ८४ ॥

लव[1]

८४. अनन्तर जयश्री[2] का प्रिय पात्र उल्लोलित दुकूल धारी भूमिभूषण लव राजा हुआ ।

यस्य सेनानिनादेन जगदौन्निद्र्यदायिना ।
निन्यिरे वैरिणश्चित्रं दीर्घनिद्राविधेयताम् ॥ ८५ ॥

८५. उसके सेना का निनाद जिसने दुनिया की नींद हराम कर दी थी, आह ! आश्चर्य है !! वैरियों को लम्बी नींद में सुला दिया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८४ में 'दुकूलायाः' का पाठभेद 'दुगूलायाः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

८४ (१) लव : मुसलिम इतिहासकारों ने लव का नाम लू अथवा लू-लू लिखा है । उसने लोलार नगर बसाया था ।

आइने अकबरी में अबुल फजल ने लिखा है । लोलार कश्मीर का पश्चिमी अंचल था । वहाँ उसके निर्माण की साक्षी वहाँ के एक करोड़ शिलाखण्ड व स्मारक दे रहे थे । आइने अकबरी के अनुसार नगर का आकार सम्राट् अकबर के समय तक देखा जा सकता था ।

इतिहासकार हसन ने लव का निर्वाचन होना लिखा है । कल्हण ने केवल ४ श्लोकों में इस राजा का वर्णन किया है । कल्हण ने अन्य राजाओं तुल्य लव का वर्णन नहीं किया है कि उसने किस प्रकार राज्य पाया । स्पष्ट है कि लव पूर्वकालीन राजवंश से भिन्न वंश अथवा कुल का था । उसने अपने राजवंश की नवीन परम्परा चलाया ।

कल्हण ने लव, कुश, खगेन्द्र, सुरेन्द्र, गोधर सुवर्ण जनक और सचीनर का नाम पद्मामिहिर के आधार पर लिखा है । पद्ममिहिर की तालिका विवादास्पद है । लोलार के साथ लव का नाम व्यर्थ जोड़ दिया गया है । डाक्टर श्री हुल्तसेह ने आलोचना की है । स्थानीय नाम लवादि राजाओं के साथ वह इस लिये जोड दिया गया है कि स्वरविज्ञान किंवा साम्य ध्वनि पर आधारित मालूम होता है । स्थानीय नामों के अर्थ लगाने में प्राय यह प्रवृत्ति देखी गयी है कि उसे किसी न किसी राजा के नाम के साथ जोड दिया जाता है । वे राजा चाहे काल्पनिक किंवा सत्य क्यों न रहे हो । कश्मीर के स्थानों के नामों को इस बात ने बहुत प्रभावित किया है । (विलसन द्वारा उल्लिखित पृष्ठ १७)

श्री स्तीन उक्तमत का समर्थन करते हैं । उनका भी मत है कि यह-बात पद्ममिहिर की तालिका के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करती है ।

(२) जयश्री : विजय देवी का चित्र भारत तथा पश्चिम देशों में तूर्य सहित आकाश में उड़ते हुए वस्त्रों के साथ दिखाया गया है । उनके पृष्ठ भाग में मेघ रहता है । वह बहती वायु का प्रतीक है । श्रीदेवी के दुकूल किंवा वसन में भरती हवा अभिराम, उत्साह, उमंग एवं उल्लास पूर्ण चित्र उपस्थित करती है । विजय देवी पश्चिम में जैतून शाखा का मुकुट किंवा केवल पल्लव युक्त शाखा लिये दिखाई गयी है । वह शान्ति, सन्धि, मैत्री, तथा वीरता की प्रतीक मानी जाती है । भारत में जैतून के पल्लव एवं शाखा के स्थान पर माला एवं पुष्प चित्रित किया जाता है ।

तेन षोडशभिर्लक्षैर्विहीनामश्मवेश्मनाम् ।
कोटिं निष्पाद्य नगरं लोलोरं निरमीयत ॥ ८६ ॥

८६. उसने पाषाण वेश्म[1] बनवाकर लोलोर[2] नगर का निर्माण कराया।

दत्त्वाऽग्रहारं लेदर्यां लेवारं द्विजपर्षदे ।
स द्यामनिन्द्यशौर्यश्रीरारुरोह महाभुजः ॥ ८७ ॥

८७. लेदरी[1] स्थित अग्रहार[2] लेवार[3] द्विज परिषद् को दान देकर महाभुज अनिन्द्य शौर्यशाली राजा ने स्वर्गारोहण किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८६ में 'लक्षै' का पाठभेद 'लक्ष्यै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८६ (१) वेश्म : रत्नाकर पुराण में ८४ लाख के स्थान पर केवल ८० हजार मकानों का उल्लेख है। उसी के अनुसार राजा ने ६० वर्ष राज्य किया।

(२) लोलार : कश्मीर में प्रचलित परम्परा से प्रतीत होता है कि राजा लव ने लोलो (लोलाव) परगना कमराज में स्थापित किया था। पुराना संस्कृत नाम (त० रा० ७:१२४१) लोलाट है। लोक प्रकाश में इसे 'ललव' कहा गया है। पण्डित साहिब राम ने 'लोलाह' का वर्तमान नाम 'ललव' दिया है। हसन इसका नाम 'लो लो' देता है—इलाका लोलाव के बीचो बीच एक शहर 'लो लो' नाम का भी था जिसमें निहायत उम्दा किस्म की दुकानें और मकानात थे तामीर कराया।

उक्त प्राचीन नगर किस स्थान पर था निश्चय नहीं किया जा सका है। लोलार से मिलता कोई स्थानीय नाम श्री स्टीन को नहीं मिल सका था। वह कहते हैं कि परम्परा लव का नाम कमराज के परगना 'लोलाऊ' किंवा 'लोलाव' से जोड़ती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८७ में 'पर्षदे' का पाठभेद 'षट्पदे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८७ (१) लेदरी : इसे लेदर्य तथा लम्बोदरी भी कहते हैं। आधुनिक नाम लिदर नदी है। यह वितस्ता की एक मुख्य सहायक नदी है। उर्ध सिंध उपत्यका के दक्षिणी क्षेत्र के जल को बहाकर ले जाती है। वितस्ता में अनन्त नाग तथा विजब्रोर के मध्य में आकर मिलती है। नदी तट पर पर्यटकों का प्रिय प्रसिद्ध नगर पहलगाव इस समय बसा है। स्थान रम्य तथा चित्ताकर्षक है। भारतीय स्वाधीनता तथा कश्मीर में लोकतन्त्रीय शासन स्थापित होने के पश्चात् पहलगाव की अभूतपूर्व उन्नति हुई है। यहीं से यात्री-श्री अमरनाथ की यात्रा करते हैं। मैंने इस यात्रा का दृश्य देखा है। सर्व प्रथम छड़ी चलती है। उसके पीछे हजारों यात्री पैदल तथा टट्टुओं पर चलते हैं। भारत के कोने कोने से तीर्थ यात्री आकर यात्रा में सम्मिलित होते हैं। नीलमत में इसका उल्लेख है :

खेडः शपालः रंरीशो लाहुरो लेदिरस्तथा ।
रेंडश्च फरडाडश्च जयन्तश्च समस्तथा ॥
887 : १०५७

(२) अग्रहार : यह एक प्रकार की जागीर थी। किसी राजा की ओर से ब्राह्मणों के निर्वाहार्थ भूमि दान को अग्रहार कहते थे। अग्र का अर्थ प्रथम आहार एवं भोजन है। सर्व प्रथम भोजन के लिए दिया गया है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है। भूमि, क्षेत्र अथवा ग्राम की आमदनी किसी परिषद्, मन्दिर, देवस्थान अथवा व्यक्ति को अर्पण किया जाता था।

कुशेशयाक्षस्तत्पुत्रः प्रतापकुशलः कुशः ।
कुरुहाराग्रहारस्य दाताऽभूत्तदनन्तरम् ॥ ८८ ॥

कुश

८८. उसके पश्चात् उसका कुशेशयाक्ष प्रताप कुशल पुत्र कुश[1] जिसने कुरुहार[2] अग्रहार दान किया था राजा हुआ ।

जागीर देने की वर्तमान प्रथा पुराने अग्रहार प्रथा पर आधारित है । मुसलिम, सिख तथा डोंगरा काल में भी यह प्रथा प्रचलित थी ।

(३) लेवार : लिदर नदी के दक्षिण तटपर वर्तमान ग्राम लिवर है । इसे लेवरा भी कहते हैं । लिदर नदी वितस्ता नदी में अनन्त नाग तथा विज-ब्रोर के मध्य में मिलती है । वितस्ता की सहायक नदी है । सिंधु उपत्यका के ऊर्ध्वभाग का पर्वतीय जल लाती है ।

नीलमत पुराण में इस ग्राम का उल्लेख है ।

भूर्जस्वामी हिडिम्बेषु लोमारः श्रीविनायकः ।
उर्सकेषु गुहावासी भीमेषु सौमुखस्तथा ॥
992 : ११९२

जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी मे लेद्री किंवा लेदरी का उल्लेख किया है । उसका कहना है कि वितस्ता लेद्री, सिन्धु, तथा क्षिप्रिका नदियाँ परस्पर अपने समीपवर्ती ग्रामो एवं भूमिखण्ड को जल प्लावित करने मे स्पर्धा करती थीं । (जो० १०६, ११८)

श्रीवर एक युद्ध के प्रसंग में वर्णन करता है । चक्रेश के नेतृत्व में मार्ग पति से चक्रवर को ओर से आकर वामतट से नदी पार कर बादशाह से मिल गये । (श्लोक : २२२)

मुझे लेवार, लोलोव ग्राम तथा लोलोव का उल्लेख जोनराज, श्रीवर, शुक की राजतरंगिणियों में नहीं मिला । इन पुस्तकों में नामानुक्रमणिका उपलब्ध न होने के कारण और कठिनाई पड़ी है ।

निस्सन्देह नीलमत वर्णित लोमार का अपभ्रंश ,लोलार'हो सकता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८८ में 'कुशेशयाक्ष' का 'कुशेश-याक्ष्य' तथा 'कुरुहाराग्रहार' का पाठभेद 'कुलर' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

८८(१) कुश : राजतरंगिणीकारने लव, कुश का क्रम कश्मीर के राजाओं में एक के बाद दूसरा रखा है। लव निर्वाचित राजा कश्मीर का था । अतएव वह बाहरी व्यक्ति था । राम के पुत्र लव से लवकुश को मिलाना ठीक नहीं होगा। पुराणों के आधार पर लव कुश के भाई तथा उत्तरकोसल के राजा थे । इनकी राजधानी श्रावस्ती थी । (पुराण भागवत ९:११:११; पुराण ब्रह्माण्ड ३:६३:१९८; पुराण वायु ८८:२००)

आइने अकबरी में राजा का नाम किशेन तथा राज्यकाल ७ वर्ष दिया गया है । हसन ने राजा का नाम 'कोशिशो' दिया है । राज्य काल १३ वर्ष लिखा है । कुश नाम के कई व्यक्ति हुए हैं । राम के पुत्र कुश थे । कुश के पुत्र अतिथि थे । कुशस्थली को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया था । (पुराण वायु ८८:१९८, विष्णु पुराण ४:४:४७, भागवत पुराण ९:११:११, मत्स्य पुराण १२:५१; ब्रह्माण्ड पुराण ३६३:१९८ ।) राम ने उत्तरकोसल का राज्य कुश को दिया था । उसकी राजधानी श्रावस्ती थी ।

विदर्भराजा के तीन पुत्रों में एक पुत्र कुश का उल्लेख भागवत पुराण ९:२४:१ में आता है । कुश नामक एक जाति का उल्लेख मिलता है । (ब्रह्माण्ड पुराण ३:७४:१६८; मत्स्य पुराण २७४:७२)

भागवत पुराण के अनुसार सुहोत्र राजा के तीन पुत्रो में दूसरा कुश था ।

ततस्तस्य सुतः प्राप रिपुनागकुलान्तकः ।
भूर्यः शौर्यश्रियः श्रीमान् खगेन्द्रः पार्थिवेन्द्रताम् ॥ ८९ ॥

खगेन्द्र

८९. कुश के पश्चात् उसका पुत्र रिपुनाग कुलान्तक पार्थिवेन्द्र श्रीमान् खगेन्द्र[1] राजा हुआ। यह शौर्यशाली और जननेता था।

स खागिखोनमुषयोः कर्ता मुख्याग्रहारयोः ।
हरहाससितैः कृत्यैः क्रीताँल्लोकान्क्रमाययौ ॥ ९० ॥

९०. वह खोनमुष[1] तथा खागी[2] अग्रहारों का कर्ता था। शिव के हास तुल्य उज्ज्वल अपने शुभ कर्मों द्वारा उसने स्वर्ग लोग क्रय कर स्वर्ग गमन किया।

एक दूसरी कुशस्थली अनर्तदेश की राजधानी थी। पुण्यजन नामक राक्षसों ने रैवत राजा के समय इसे लूट लिया था। (पुराण विष्णु ४:१:१९, वायु ८६·२४:२४, भागवत १·१०:२७; ब्रह्माण्ड ३·६१.२०)

कुशद्वीप का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है। कुसमाल समुद्र को कुशद्वीप से मिलाने की चेष्टा की गयी है। अफ्रीका के उत्तरी पूर्वीय तट नुबिया के समीपवर्ती समुद्र को इसकी संज्ञा दी गयी है।

(सुधारक जातक भाग ४ पृष्ठ १४०)

जम्बुः शाकः कुशः क्रौंचः शाल्मलिर्द्वीप एव च ।
गोमेधः पुष्करश्चैव द्वीपाः पूज्या पृथक्-पृथक् ॥
587 : ७०८

कुशपुर किंवा कुशभयनपुर नाम जनश्रुति के अनुसार राम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया है। यह तीन तरफ गोमती नदी से घिरा है। उत्तर प्रदेश में है।

कुशावती वर्तमान कुशीनारा अथवा कुशीनगर है। जहाँ भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। यह मल्लों की राजधानी थी। (जातक ५:२७८; दीघनिकाय २:१७०)

कुश वैदिक साहित्य में कुशा के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। मट सरकंडी अथवा धातु के बोझ... में भी प्रयुक्त किया गया है। (शतपथ ब्राह्मण २ १; १४:२:२५; ३:१:२:१६; ५:१३:२:७; मैत्रायणी संहिता ४:५:७, तैत्तिरीय ब्राह्मण १:५.१०:१)

(२) कुरुहार : वर्तमान कुलर है। लिदर नदी की पश्चिम दिशा में लगभग ४ मील उत्तर लिदर उपत्यका में स्थित है। यह एक बड़ा गांव है। पण्डित दयाराम कौल का मत है कि यह दक्षिणपुर परगना में है।

८९ (१) खगेन्द्र : आइने अकबरी ने खगेन्द्र का नाम कहेगुन्दर दिया है। खगेन्द्र का अर्थ गरुड़ होता है। हसन ने इसका राज्यकाल ३० वर्ष दिया है।

खगेन्द्र का शाब्दिक अर्थ गरुड होता है। नाग का अर्थ सर्प है। गरुड तथा सर्प में वंशपरम्परागत शत्रुता है। गरुड़ सर्प किंवा नाग का संहार करता है। कल्हण ने वही उपमा यहाँ दी है। गरुड खग अर्थात् पक्षियों का राजा है। तात्विक दृष्टि से खगेन्द्र ज्योति तथा नाग तम के प्रतीक हैं। ज्योति एवं तम अर्थात् अन्धकार एवं प्रकाश का संघर्ष ही खगेन्द्र एवं नागों का चिरकालीन संग्राम है। खगेन्द्र जिस प्रकार पक्षियों का नेता है। उसी प्रकार मानव नामधारी खगेन्द्र जनता का नेता है। गरुड़ विष्णु का वाहन है। वेगमान है। शौर्यशाली है। इस प्रकार गरुड़ के नाग विध्वंसक, तथा नेतृत्व, एवं शौर्य की तुलना मानवीय खगेन्द्र से कल्हण ने की है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९० में
' मिलता है।

अनर्घमहिमा दीर्घमघवत्तावहिष्कृतः ।
अथ साश्चर्यचर्योऽभूत् सुरेन्द्रस्तत्सुतो नृपः ॥ ९१ ॥

सुरेन्द्र

९१. उसके पश्चात् उसका पुत्र सुरेन्द्र[1] राजा हुआ। वह पापों से बहुत दूर था। उसमें असीमित महानता थी। उसके कार्यों से जगत् आश्चर्यित था।

पादटिप्पणियाँ :

९० (१) खोनमुष : यह प्रसिद्ध वर्तमान ग्राम खुनमोह है। पामपुर के उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम लगभग ३ मील पर है। यह केसर की खेती के लिए प्रसिद्ध है। विक्रमांकदेवचरित्र के लेखक कवि विह्लण की जन्म-भूमि है। (वि० १८.७०:७) विक्रमादित्य त्रिभुवन मल्ल ने कल्याण में सन् १०७६ से ११२७ ई० तक राज्य किया था। यहाँ के मन्दिरों को मुसलिम जियारतों में परिणत कर दिया गया है।

विह्लण जैसे महान् कवि का यहाँ स्मारक नहीं है। यह देखकर दुःख हुआ। स्थानीय ग्रामीणों से बातचीत की। किसी ने विह्लण का नाम जैसे यहाँ सुना ही नहीं है। यह नाम उनके लिए अपरिचित सा लगा। इस स्थान की क्यों प्रसिद्धि है किसी को कुछ मालूम नहीं। प्राचीन इतिहास लोग भूल गये हैं।

श्रीनगर आने वाली सड़क के बाईं तरफ सटा एक नाग है। सड़क के नीचे पुस्ता बांधा गया है। सड़क के एक ओर उठता पहाड़ है। दूसरी तरफ नीचे के कुण्ड बने हैं। सड़क के पुस्ता के लगभग १५ फुट नीचे चौखटा कुण्ड बनाया गया है। जल सड़क के नीचे नली से सरोवर होकर कुण्ड में पहुँचता है। जल दूसरी तरफ वाली पहाड़ी से आता है।

जलस्रोत का जल उपयोगी बनाने के लिये दो कुण्ड चौकोर बने हैं। पहला कुण्ड सड़क के पुस्ता से सटा है। उसके दक्षिण कोण पर कुछ शिवलिंग तथा ठोस मन्दिराकार शिलाखण्ड रखे हैं। दूसरे कुण्ड में उतरने के लिए सीढ़ियाँ नाग की बाईं तरफ से बनी हैं। उन सीढ़ियों के बाईं तरफ फर्श पर कुछ ठोस शिलाखण्ड मन्दिराकार रखे थे।

स्नान करने के लिए एक स्त्री तथा एक पुरुष के लिए लकड़ी के स्नान गृह बने रखे थे। ग्राम की जनता मुसलिम है। मुसलिम स्त्रियाँ कुण्ड में वस्त्र धो रही थी। कुण्ड का जल गन्दा हो गया था।

शहतूत के वृक्ष आस पास काफी हैं। बादाम के पेड़ इस ओर बहुत मिलेंगे। बादाम के बाग, शाली तथा केशर यहाँ की मुख्य कृषि है। स्थान रम्य है। ग्रामीण जनता सरल तथा भावुक है। कुण्ड के दक्षिण पार्श्व के बाग में मसजिद तथा जियारतें हैं।

(२) खागी : वर्तमान ग्राम खाडा है। यह एक बड़ा ग्राम है। वीरू परगना में है। इसका उल्लेख रा० त० १:३४० में पुनः किया गया है। गोपादित्य ने खोंगिका अग्रहार स्वरूप इसका दान किया था।

हैदर मलिक तथा नारायण कौल के इतिवृत्त के अनुसार काकपुर ग्राम है। यह ग्राम पामपुर के ऊपर स्थित है। इसे खागी कहा गया है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

खागी से ३६ मील उत्तर एक शैलबाहु बाहर निकला है। इसे पोष्कर कहते हैं। यह पीर पंजाल पर्वतमाला से मैदान की तरफ निकलता है। इसके पूर्व ओर पुष्कर नाग है। नीलमत तथा माहात्म्यों में इसकी संज्ञा तीर्थ की दी गयी है। लोग यहाँ की यात्रा करते हैं। कश्मीर में कई पुष्कर तीर्थों का वर्णन है। एक सुरेश्वरी तीर्थ से सम्बन्धित सम्भवतः फाख में था।

९१ (१) सुरेन्द्र : आइने अकबरी में सुरेन्द्र नाम दिया गया है। सुरेन्द्र का अर्थ इन्द्र होता है। हसन ने इसका शासन-काल ४७ वर्ष लिखा है।

मुसलिम इतिहासकारों ने लिखा है कि राजा की एक कन्या सतपनभानु थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता, यौवन तथा शालीनता की ख्याति सुनकर इस्फेन्दियर का पुत्र बहमन उस पर मोहित हो गया। उसने भानु से विवाह कर लिया। अर्दशीर दिरजदेस्त के नाम से ईरान का बादशाह हुआ।

वैदुद्दीन इतिहासकार के अनुसार—यह सम्बन्ध सुखकर नहीं हुआ। राजपुत्री के पिता, कश्मीर के राजा सुरेन्द्र के सम्बन्ध में बादशाह ने अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया। काश्मीर राजपुत्री की प्रेरणा पर बहमन मार डाला गया।

हसन एक और विचित्र कहानी पेश करता है—'राजा सिर्फ एक लड़की रखता था। कनालू नामी जो शक्ल व सूरत और इल्म व फन में मशहूर रोजगार थी। एक दिन एक ईरानी ताजिर कीमती जवाहरात लेकर बराए फरोख्त राजा की खिदमत में हाजिर हुआ। नावाकिफियत की वजह से राजा को इनमें से एक भी पसन्द न आया। जिससे बेचारा बहुत ही शिकस्त. दिल हुआ। इन्तहाई मायूसी के पेशनजर नाजिर मजकूर कनालू की खिदमत में गया। कनालू जो हर शनास थी, लिहाजा उसने एकदम तमाम जवाहरात ताजिर से खरीद लिए।

'वापसी पर सौदागर ने इस लड़की के हुस्न व जमाल और सलीक: की तारीफ अपने मुल्क के बादशाह बहमन असफंदयार से की। असफंदयार लड़की ना नादीद: माशिक हो गया। हकीम तानास्य को खवास्तगारी के लिए राजा के पास भेजा। राजा ने कनालू की मरजी को मुताबिक बहमन की दरख्वास्त मंजूर की और कीमती तुहफे व तहायफ के साथ अपनी लड़की उसके रजायी भाई लोलो हमराह बहमन के पास भेज दिया।

बहमन पारजानी के साथ दाद ऐश देने में मशरूफ था कि कुछ बरस बाद अपने बीवी के रजाई भाई लोलो की गद्दारी से इस दुनिया से रुखसत हो गया। लोलो भी अपने फेल बद को सजा भुगतने से न बच सका।

हसन का बयान किसी आधार पर आधारित नहीं है। बिलकुल बनावटी है। कश्मीर में मुसलिम शासन स्थापित होने पर बहुत से मुसलिम इतिहास-कारों ने कश्मीर का सम्बन्ध गैर हिन्दुस्तानी देशों से जोड़ने तथा हिन्दुओं को नीचा दिखाने का प्रयास किया है। उसी का यह एक नमूना है।

कल्हण स्पष्ट लिखता है कि राजा सुरेन्द्र सन्तानहीन था। यदि हसन तथा मुसलिम इतिहास लेखकों की बात मान ली जाय कि राजा को एक कन्या थी और उसका विवाह ईरान के राजा से कर दिया गया था तो यह स्वाभाविक था कि कश्मीर *मण्डल* के *राज्य का उत्तराधिकारी* उसकी कन्या अथवा कन्या की सन्तान होती। ईरान का राजा तथा कश्मीर की राजकुमारी अपने अधिकार का अवश्य दावा करती।

यदि राजकुमारी का पति उसकी अनुमति से मार डाला गया था तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राजकुमारी का ईरान के राजनीतिक जीवन में प्रभाव था। अन्यथा राजा के वध-षड्यंत्र में सम्मिलित तथा सफल नहीं होती। राजा के वध के पश्चात् उसका ईरान की राजनीति में प्रबल हाथ होता। वह अपने निःसन्तान पिता का राज्य लेने का अवश्य प्रयास करती। किसी मुसलिम इतिहास-कार ने राजकुमारी का मारा जाना नहीं लिखा है। केवल हसन ने लिखा है कि राजपुत्री के रजाई अर्थात् धात्री भाई ने ईरान के राजा की हत्या की और वह मारा गया।

इसका एक दूसरा पहलू है। कल्हण कहता है। सुरेन्द्र का राज्य दूसरे कुल में चला गया। ऐसी स्थिति में राजा सुरेंद्र अपनी एक मात्र सन्तान

शतमन्युः शान्तमन्योर्गोत्रभिद्गोत्ररक्षिणः ।
लेभे यस्य सुरेन्द्रस्य सुरेन्द्रो नोपमानताम् ॥ ९२ ॥

९२. इन्द्र सुरेन्द्र[1] की इस सुरेन्द्र से तुलना नहीं हो सकती क्योंकि सुरेन्द्र शतमन्यु अर्थात् शतक्रोधी था और सुरेन्द्र शान्त मन्यु अर्थात् शान्त क्रोध था। यह सुरेन्द्र गोत्र अर्थात् पर्वत रक्षक था और वह सुरेन्द्र गोत्रभिद अर्थात् पर्वत सहारक था।

कश्मीर के बाहर विदेश नहीं भेजता। कश्मीर में हिन्दू धर्म का प्रभाव था। सुरेन्द्र स्वयं धार्मिक राजा था। उसके लिए यह संभव नहीं हो सकता था कि वह अपनी एक मात्र सन्तान का विवाह एक विधर्मी से कर देता। ईरान के राजा ने उस पर आक्रमण नहीं किया था। एक सौदागर के कहने और एक हकीम से संदेश सुनकर, राजपुत्री को विवाह के लिए भेज देना तर्क सम्मत नहीं मालूम होता। यदि वह अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकार करता तो दो राज्यों के विवाह सम्बन्ध के अनुसार पिता किंवा वर स्वयं एक दूसरे के यहाँ आकर करते। कश्मीर मण्डल के चारों ओर हिन्दू राज्य था। कन्या के लिए वर मिलना कठिन नहीं था। राजा सुरेन्द्र अपना राज्य कैसे दूसरे कुल में, अपनी कन्या ईरान के राजा को देकर, जाना पसन्द करता, कुछ बात दिमाग में बैठती नहीं। हसन अथवा मुसलिम इतिहासकारों के दिमाग में मुसलिम काल की बातें याद आई होंगी। जहाँ लड़कियाँ छोटे राजाओं के यहाँ से *खूबसूरती की सुहरत सुनने पर मँगा ली* जाती थी। उनका धर्म परिवर्तन कर विवाह कर लिया जाता था। यह सब मनगढन्त और इतिहास पर दूसरा रंग देने का विचित्र प्रयास किया गया है, जो कल्पना तथा मानव-प्रवृत्ति के परे की बात है।

(२) दीर्घवहिष्कृतः—इसका श्री स्तीन ने दो प्रकार से अनुवाद किया है।—उसका एक अनुवाद उन्होंने किया है—'जिसने कि इन्द्र के राज्य को भी मात कर दिया था—।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९२ में 'सुरेन्द्रो नोपमानताम्' का पाठभेद 'न सुरेन्द्रः समानताम्' तथा 'यस्य' का 'तस्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९२(१) सुरेन्द्र—सुरेन्द्र का अर्थ यहाँ इन्द्र है। दोनों सुरेन्द्रों के आचरणों की तुलना कल्हण ने की है। उसने राजा सुरेन्द्र को 'शान्तमन्यु' अर्थात् शान्त क्रोध और इन्द्र को 'शतमन्यु' अर्थात् 'सैकड़ों से क्रुद्ध' कहा है। इन्द्र को पर्वत नाशक अर्थात् गोत्रभिद् और सुरेन्द्र राजा को गोत्र रक्षक अर्थात् पर्वत का रक्षक कहा है। कश्मीर मण्डल पर्वतीय क्षेत्र है। पर्वत द्वारा आवृत है। अतएव कल्हण ने सुरेन्द्र को पर्वतीय काश्मीर का रक्षक कहा है।

उत्तर वैदिक साहित्य में वर्णन है। पर्वतों को पंख होते थे। वे उड़ते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़कर बैठ जाते थे। जनता तथा भूमि नष्ट हो जाती थी। इन्द्र ने पर्वतों का पंख काट दिया। उस समय से पर्वतों का उड़ना बन्द हो गया। पूर्व वैदिक साहित्य के अनुसार इन्द्र को गोत्रभिद् कहा गया है। वैदिक कथानक के अनुसार गोत्रपर्वत का भेद किया था जिससे जल मुक्त होकर निकला। इन्द्र का निवासस्थान स्वर्ग है। राजधानी अमरावती है। नन्दन उद्यान है। ऐरावत श्वेत हाथी है। अश्व उच्चैः श्रवा है। सारथि मातलि है, धनुष शक्र-धनुष है। तलवार का नाम परेज है।

क्षत्रिय राजाओं की उपमा प्रायः इन्द्र से दी *जाती है। भारतीय राजतन्त्र का सिद्धान्त इन्द्र की* कल्पना पर आधारित है। इन्द्र स्वर्ग का राजा है। पृथ्वी का राजा क्षत्रिय है, मनुष्य है। अतएव इन्द्र की तुलना पृथ्वी के श्रेष्ठ राजाओं से की जाती है।

दरद्देशान्तिके कृत्वा सोरकाख्यं स पत्तनम् ।
श्रीमान्विहारं विदधे नरेन्द्रभवनाभिधम् ॥ ९३ ॥

९३. उसने दरद देश[१] के समीप सोरक[२] नामक पत्तन बसाया और उस श्रीमान् ने[३] नरेन्द्र भवन विहार का निर्माण कराया।

तेन स्वमण्डलेऽखण्डयशसा पुण्यकर्मणा ।
विहारः सुकृतोदारो निर्मितः सौरसाभिधः ॥ ९४ ॥

९४. उस अखण्ड यशशाली पुण्यकर्मा राजा ने अपने मण्डल में सौरस[१] विहार की स्थापना की जो सुकृत तथा उदारता के लिये प्रसिद्ध था।

यहाँ कल्हण ने सुरेन्द्र शब्द का अच्छा निर्वाह किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९३ में 'सोरकाख्यं' का पाठभेद 'सरोकाख्यं' तथा 'सौरसाख्यं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

९३ (१) दरद देश : इसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में आता है। यह अंचल कश्मीर का आज भी एक भाग है। कश्मीर प्रदेश के उत्तर में है। इसको दर्दिस्तान कहते हैं। जातकों में इसकी स्थिति हिमवा अर्थात् हिमालय में बतायी गयी है। हिमालय की शाखा हिन्दुकुश में है। मार्कण्डेय पुराण में दर्दुर पर्वत का उल्लेख है। इस अंचल के पर्वत को दर्दुर कहा जाना ठीक है। यूनानियों ने दरदाई नामक जाति का उल्लेख किया है। जातकों में उपचर के पाँचवें पुत्र के दद्दरपुर नगर बसाने का उल्लेख मिलता है। (चेतिय जातक : जातक भाग १:६७ ३:१५-१६। विशेष परिशिष्ट दरद जाति में देखिये)।

(२) सोरक : दरद अर्थात् दर्दिस्तान के साथ कल्हण के स्वमण्डल शब्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि यह स्थान कश्मीर के बाहर था। इस स्थान का पता अभी तक नहीं लग सका है। एक मत है कि दर्दिस्तान की सीमा पर वह स्थान है।

(३) नरेन्द्र भवन : कल्हण ने भवन शब्द का प्रयोग विहारों के लिए किया है। नरेन्द्र-भवन-तुल्य स्कंद भवन, अमृत भवन, मोराक भवन आदि विहारों का वर्णन मिलता है। भवन शब्द का *साधारण अर्थ निवास स्थान होता है।*

रोरक तथा नरेन्द्र भवन विहार स्थानों के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये कहाँ थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९४ में 'सुकृतोदारः' का पाठभेद 'स्वकृतोदारे' और सुरतोदारे' तथा 'सौरसाभिधः' का पाठभेद 'सोरसाभिधः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९४ (१) सौरस : पंडित पी० गोविन्द कौल ने सौरस विहार का स्थान वर्तमान ग्राम सुरस बताया है। यह नागाम परगना के संगराफेद (चतस्कनो) पर स्थित है। यह स्पष्ट है कि नाम सौरस स्थान का सुरस शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर रखा गया है।

(२) विहार स्थापना : विहार शब्द का राजतरंगिणी एवं कश्मीर के इतिहास में यहाँ प्रथम बार उल्लेख मिलता है। मालूम होता है कि राजा सुरेन्द्र के समय बौद्ध धर्मावलम्बी कश्मीर में आए और राजा ने उस धर्म की ओर आकर्षित होकर *विहारों की स्थापना की थी। विहार की स्थापना* भिक्षुओं के लिए की जाती है। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बौद्ध धर्म के प्रचारक कश्मीर मंडल में पहुँच चुके थे। उनका प्रभाव कश्मीर में बढ रहा था।

तस्मिन्निःसन्ततौ राज्ञि प्रशान्तेऽन्यकुलोद्भवः ।
बभार गोधरो नाम सभूधरवरां धराम् ॥९५॥

गोधर

९५. राजा सुरेन्द्र जब सन्तान हीन स्वर्ग गमन किया तो अन्य कुलोद्भव गोधर[1] राजा हुआ। उसने सुरम्य पर्वतों सहित पृथ्वी का भार उठाया।

गोधराहस्तिशालाख्यमग्रहारमुदारधीः ।
स प्रदाय द्विजन्मभ्यः पुण्यकर्मा दिवं ययौ ॥९६॥

९६. उस उदारधी राजा ने गोधर[1] हस्तिशाला[2] अग्रहार द्विजन्मों को प्रदान किया और पुण्य कर्म करते हुए स्वर्ग गमन किया।

. विहार शब्द रहने तथा कोठरी जिसमें भिक्षु-निवास करते हैं दोनों के लिये आता है। संघाराम के अन्दर अनेक कोठरियाँ होती हैं। उनमें एक कोठरी का नाम विहार पड़ता है। मूलगन्धकुटी विहार भगवान् बुद्ध के रहने को कोठरी थी। बौद्ध मठों के लिये कालान्तर में विहार शब्द को संज्ञा दी जाने लगी। विहारों की अधिकता के कारण विहार प्रदेश का नाम पड़ा है। विहार शरीफ एक स्थान पटना से लगभग ३० मिल दक्षिण पूर्व पचानन नदी पर स्थित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९५ में 'वरां धराम्' का पाठभेद 'वसुन्धराम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९५ (१) आइने अकबरी में गोधर नाम दिया गया है। हसन इस राजा का राज्य-काल ३२ वर्ष देता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९६ में 'गोधराह' का पाठभेद 'गोधरोह' तथा 'गोधर अस्ति हिल्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९६ (१) गोधर दिवसर परगना के वर्तमान ग्राम गोधर, अस्तैल प्राचीन गोधर तथा हस्तिशाला अग्रहार है। गोधर विशोका नदी के तट पर ग्राम है। यह विशोका में मिलने वाली स्थानीय नदी गोदावरी के संगम पर है। गोदावरी माहात्म्य में गोदर नाम से गुदर ग्राम का उल्लेख आया है। उसे गोदावरी उद्भव गाथा से सम्बन्धित करता है।

अस्मिन् गिरौ महादेवी गौतमेन महात्मना।
गौर्वा विदारिता प्रोक्तो गौदरो गिरिसत्तमः ॥

यह गोदावरी नदी दक्षिणापथ की सबसे लम्बी बड़ी और प्रसिद्ध नदी नहीं है। कश्मीर की साधारण एक स्रोतस्विनी है। नीलमत पुराण में उल्लेख है।

नदी चित्ररथा पुण्या मृगनन्दा मृगा तथा।
गोदावरी वैतरणी तथा मन्दाकिनी शुभा ॥

1254 : १४६६,१४६७

गोदावरी माहात्म्य में उल्लेख आता है।

यस्मिन्गिरौ महादेवि गौतमेन महात्मना।
कृत्वा गौर्दारिता प्रोक्तो गोदरः सः गिरिर्महान् ॥
यस्मिन् ग्रामे गोदराख्यः पर्वतः संप्रतिष्ठितः।
स ग्रामो प्रथितः क्वापि गोदराख्यो महेश्वरि ॥
गौर्वा विदारिता यत्रोत्थिता गंगा जलोच्छिता।
सैव गोदावरी नाम गंगा परमपावनी ॥
(रघुनाथ मन्दिरजम्मू: सं० ३६६४।३६ बी०)

श्री स्तीन यहाँ आये थे। उन्हें यहाँ के मियां, जागीरदार तथा स्थानीय पुरोहितों से मालूम हुआ था कि एक जनश्रुति-प्राचीन काल से सुनाई पड़ती चली आती है कि इस स्थान पर राजा गुदर ने एक नगर

तस्य सूनुः सुवर्णाख्यस्ततोऽभूत्स्वर्णदोऽर्थिनाम् ।
सुवर्ण   सुवर्णमणिकुल्यायाः   कराले   यः   प्रवर्तकः ॥९७॥

९७. उसके पश्चात् याचकों का सुवर्ण[1] दाता उसका पुत्र सुवर्ण राजा हुआ। उसने कराल[2] में सुवर्ण मणि कुल्या[3] लाया।

बसाया था। यहाँ कोई ध्वंसावशेष नहीं मिलता। बड़ा नगर आबाद होने योग्य स्थान नहीं है। सम्भव है प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक उथल-पुथल में उनका प्राचीन रूप नष्ट हो गया तथा बचे-खुचे ध्वंसावशेषों का उपयोग कहीं और हो गया हो।

(२) हस्तिशाला : गुदर से लगभग १ मील उत्तर-पूर्व विशोका नदी के बलुए द्वीप पर हस्तिशाला स्थित है। इसे अस्ति हेल कहते हैं। मालूम होता है कि हेलराज द्वारा उल्लिखित राजा गोधर के कारण कल्हण तथा पद्ममिहिर का ध्यान इस ग्राम की ओर गया होगा। यहाँ गोधर राजा सम्बन्धी कुछ गाथा प्रचलित है। गोधर का अर्थ होता है। गाय का स्थान गोशाला।

९७(१) सुवर्ण : आइने अकबरी सुरेन नाम देती है। हसन लिखता है कि सन् ११९६ ई० में राजा सुवर्ण गद्दी पर बैठा। उसने आडोन का परगना आबाद किया। राज्य-काल ३५ वर्ष कहता है।

(२) कराल : जौन राज (८६१-६२) तथा श्रीवर ने (३:१९४) अपनी राजतरंगिणियों में कराल का उल्लेख किया है। वहाँ बडशाह जैनुल आबदीन ने जैनपुरी परगना कराल विषय में बसाया था। जैनपुरी (दत्त ४७,२४८) वर्तमान जैनपुर है। यह आदिन अर्धवन परगना की अधित्यका में रामप्यार नदी के दक्षिणी क्षेत्र का बाधक है। यही क्षेत्र कराल है। हैदर मल्लिक ने भी राजा सुवर्ण के कार्य स्थान का सम्बन्ध इससे जोड़ा है।

(३) सुवर्ण मणि कुल्या : कुल्या शब्द वैदिक है। ऋग्वेद में यह उस नहर के लिए व्यवहृत किया गया है जो किसी झील किंवा ह्रद में गिरती अथवा मिलती है। (ऋग्वेद ३:४५:३; १०:४३:७;) कश्मीर की अनेक कुल्याएँ डल लेक तथा ऊलर लेक में मिलती हैं या उनसे निकाली गयी हैं।

पुराणों में कुल्या का उल्लेख मिलता है :

त्रिसामा ऋषिकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या।
लांगलिनी वंशधरा महेन्द्र-तनया स्मृता॥

ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
क्रिया पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः॥

त्रिसामा ऋषिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः।
ऋषिकुल्या कुमार्याद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः॥

मार्कण्डेय पुराण में 'पितृ सामपि कुल्या; 'वायु पुराण में 'त्रिसामा ऋषिकुल्या,' 'त्रिसामा ऋतु कुल्या,' ब्रह्माण्ड पुराण में 'त्रिसामा ऋषिकुल्या,' विष्णु पुराण में 'त्रिसामा ऋाष्यकुल्याद्याः,' 'ऋषि कुल्या कुमार्याद्या', ब्रह्माण्ड पुराण में 'त्रिसाम्य-ऋषि कुल्याद्या,' 'त्रिमाया ऋषिकुल्याद्या' तथा 'ऋषिकुल्या कुमाराद्या' का उल्लेख आया है। कूर्म पुराण में 'ऋषिकुल्या त्रिसामा', मत्स्य पुराण में 'त्रिभागा ऋषिकुल्या' का उल्लेख मिलता है।

ऋषिकुल्या नामक एक धारा बरहमपुर के दक्षिण पूर्वी रेलवे स्टेशन पर स्थित गंजाम जिला उत्कल प्रदेश के समीप बंगाल की खाड़ी में गिरती है। एक दूसरी ऋषिकुल्या और धारा है। उसे छोटा नागपुर में कोइल कहते हैं। कुल्या का अपभ्रंश कोइल हो गया। तीसरी ऋषिकुल्या गंगा की एक सहायक नदी कियुल है। कियुल शब्द भी कुल्या शब्द का अपभ्रंश है।

कुल्या शब्द वैदिक काल से अब तक जलधारा के लिए मुख्यत. वे धाराएँ जो जल सिंचन निमित्त निकाली गयी हैं, प्रयुक्त होता रहा है। नाला शब्द

तत्सूनुर्जनको नाम प्रजानां जनकोपमः ।
विहारमग्रहारं च जालोराख्यं च निर्ममे ॥९८॥

जनक :

९८. प्रजागण के लिये जनक तुल्य उसका पुत्र जनक[1] राजा हुआ। उसने जालोर[2] विहार तथा अग्रहार निर्मित किया।

शचीनरस्तस्य सूनुः क्षितिं क्षितिशचीपतिः ।
ततः श्रीमान्क्षमाशीलो ररक्षाऽक्षतशासनः ॥९९॥

शचीनर

९९. उसके पश्चात् उसका पुत्र शचीनर[1] जो पृथ्वी पर शचीपति तुल्य था, पृथ्वी की रक्षा किया। उस श्रीमान् क्षमा शील के शासन का कोई स्वेच्छया उल्लंघन नहीं करता था।

कुल्या के तत्सम रूप से प्रयुक्त होता है। कुल नाला के लिए व्यवहार किया गया है। सम्भव है किसी रूप में कुल्या का अपभ्रंश नाला शब्द हो गया है। नलिका शब्द छोटी धारा के लिए प्रयुक्त किया गया है। नलिका का अपभ्रंश नाली है।

ऋषिकुल्यामथासाद्य देवकुल्यां तथैव च ।
अश्वतीर्थं प्रभासं च वारुणं तीर्थमेव च ॥
1316 : १५३०

सुवर्ण मणि कुल्या को स्वप्नमय नादी कहते है। यह वर्तमान सुम्रमन कुल है। जैनपुरी अधित्यका के पूर्वीय अंचल में निल्लू, परगम, कुजरू, आदि गाँवों में बीम मिल बहती आदविन गांव से थोड़ी दूर पर विशोका अर्थात् विमावू नदी में पुनः मिल जाती है। यह विशोका नदी से ही लागू ग्राम के समीप निकाली गयी है।

९८(१) जनक : आइने अकबरी ने जन्नेक नाम दिया है। बँदुद्दीन इतिहासकार कहता है कि जनक ने अपने पुत्र को ईरान पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उस समय ईरान का राजा होमाई था। बहमन के पुत्र दरब द्वारा आक्रमणकारी राजपुत्र मार डाला गया।

(२) जालोर : हसन ने जालोर तथा जालोर बाग का दान देना लिखा है। विहार का अर्थ उसने गांव लगाया है। यह गलत है। हसन को इतना भी ऐतिहासिक ज्ञान नहीं है कि विहार बौद्धों के देवस्थान को कहते है। यदि रत्नाकर पुराण से अथवा अन्य किसी ग्रन्थ से यह लिया गया है तो विहार का अर्थ सर्वदा बौद्ध स्थान के रूप में किया गया है। इस राजा का राज्य-काल वह ३२ वर्ष देता है।

पं० गोविन्द कौल जालोर को वर्तमान ग्राम जोलुर बताते हैं। यह जैनगिर परगना मे है। हैदर मल्लिक 'जालुरः' को 'विहू' अर्थात् 'वीही' परगना में होना बताते है। इस पर कुछ और अन्वेपण की आवश्यकता है।

९९ (१) शचीनर : आइने अकबरी में नाम सजीनीर दिया गया है। हसन ने राजा शचीनर का राज्य-काल ४० वर्ष दिया है। यह केवल अनुमान है। वैदिक साहित्य में शची शब्द का प्रयोग शक्ति, सामर्थ्य के अर्थ में किया गया है। इंद्र का नाम शचीपति है। यहाँ शचीपति का शाब्दिक अर्थ होगा इन्द्र। (ऋग्वेद १:१७:४. १:६२:१२; १:१०३:२; १:१०९:७, ३:६० ६ शाखायन गृह्यसूत्र १:१२, वाजसनेयि संहिता १९:८१ तथा ऐतरेय ब्राह्मण ७:३२)।

कल्हण (तरंग ८:३४११) ने शचीनर की माता का नाम शची दिया है।

राजाग्रहारयोः कर्ता शमाङ्गासाशनारयोः ।
साऽभूदपुत्रः सुत्रामविष्टरार्धसमाश्रयी ॥१००॥

१००. यह राजा राजकीय अग्रहार शमांगासा तथा शनार को स्थापना किया। राजा निःसन्तान था उसने इन्द्र का आधा सिंहासन प्राप्त किया।

प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य भूपतेः प्रपितृव्यजः ।
अथावहदशोकाख्यः सत्यसन्धो वसुंधराम् ॥१०१॥

अशोक

१०१. तत्पश्चात् सत्यसंघ[१] अशोक[२] जो भूपति के प्रपितृव्य तथा शकुनी[३] का प्रपौत्र था, वसुंधरा पर राज्य किया।

१०० (१) समांगासा : यह वर्तमान सागस ग्राम है। यह एक बड़ा ग्राम है। कोठार अथवा कुठहार परगना के अरपथ नदी के वाम तट पर स्थित है। हैदर मल्लिक लिखता है 'शमाल काश' नामक गाव कुठहार परगना में राजा ने बसाया था। समागासा का उल्लेख पुनः कल्हण ने रा० त० ८:६६ में किया है।

(२) शनार : वीहो परगना में सार नाम ग्राम है। यह रत्नू के दक्षिण पूर्व एक मील पर होगा। हैदर मल्लिक के अनुसार राजा शचीनर ने वीही परगना में 'शरार' ग्राम आबाद किया था। सार लोहे के कारबार का केन्द्र था। सार का अर्थ लोहा होता है। यह पूर्व काल में लोहा बनाने का केन्द्र था। स्टीन ने यहा की यात्रा सन् १८९१ मे की थी। यहाँ के गाँव के मध्य की जियारत 'ख्वाजा खिज्र' में प्राचीन ध्वंसावशेष के विशाल पत्थर लगे हैं। यह जियारत सन् १५८० ई० को बनी है। एक नाग अर्थात् निर्झर के समीप कुछ अलंकृत स्तम्भ पड़े हैं। श्री वाइने ने अपने यात्रा-वर्णन (ट्रेवेलस २:३५) में इसका उल्लेख किया है।

हसन ने शनार को शारक्ष गांव माना है।

१०१ (१) सत्यसंध का अर्थ होता है सत्य-प्रतिज्ञ, सत्यवादी, सत्य संकल्प, वचन पालक तथा ईमानदार। निःसन्देह अशोक सच्चरित्र था। सत्य-प्रिय था। सत्य प्रतिज्ञ था।

मालूम होता है। कल्हण के समय अशोक नाम से सम्बन्धित प्रसिद्ध विशेषण 'देवानाम् प्रिय' 'प्रियदर्शी' जनता विस्मृत कर गयी थी। सम्भव है अशोक कालीन लिपि, भाषा तथा पालि भाषा विज्ञ उस समय कोई नहीं रह गया था। अशोक सम्बन्धी ऐतिहासिक स्वल्प किंवा प्रचुर सामग्री कल्हण को नहीं प्राप्त थी। अतएव उसने विस्तार के साथ अशोक जैसे महान् राजा के विषय में नहीं लिखा है।

अशोक का जन्म ईसा पूर्व २९७ में हुआ था। वह सिंहासन पर ईसा पूर्व २७२ में बैठा। उसकी मृत्यु ईसा पूर्व २३२ में हुई थी। इस प्रकार कल्हण और अशोक के काल में १३८० वर्षों का अन्तर पड़ता है।

कल्हण के समय देवानाम् प्रिय एवं प्रियदर्शी विशेषण लोग भूल गये थे। कल्हण ने अशोक जैसे सम्राट् का राज्य काल एवं समस्त वर्णन केवल ७ श्लोकों (१ : १०१–१०७) में समाप्त कर दिया है। स्पष्ट है कि उस समय कश्मीर में अशोक सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं थी। उसके निर्मित चैत्य, विहार जिन पर पालि भाषा तथा ब्राह्मी लिपि आदि में शिलालेख अंकित रहे उनका पढ़ना तथा अर्थ लगाना लोग भूल गये थे। अन्यथा अशोक द्वारा निर्मित विहारों, चैत्यों

एवं स्तूपों के स्थान, कालादि के वर्णन द्वारा कल्हण अशोक का पूर्णतया वर्णन करता। उनके कारण इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ता। यदि कश्मीर में अशोक सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती तो कल्हण जैसी पैनी दृष्टि वाला इतिहास लेखक, इस प्रकार को दुर्लभ सामग्रियों की उपेक्षा नहीं कर सकता था।

तथापि सत्यसंध शब्द देवानाम् प्रिय तथा प्रियदर्शी से कम महत्त्व नहीं रखता। सम्भव है इस विशेषण का उल्लेख किसी भूगर्भ स्थित शिलालेखादि में कभी प्राप्त हो जाय। यह भी सम्भावना हो सकती है। कश्मीर के किसी शिलालेख किंवा ग्रन्थ में अशोक के नाम के साथ सत्यसंध विशेषण लगा कल्हण को मिल गया हो, जो अब लुप्त हो गया है। मुझे इसकी सम्भावना अधिक मालूम होती है।

कल्हण ने अपने पूर्व इतिहासकारों के अशोक सम्बन्धी उल्लेखों से लेखन सामग्री प्राप्त की थी। शिलालेखादि यदि मिला होता, उन्हें पढ लिया होता और अशोक जैसे महान् सम्राट् पर उन आलेखों के आधार पर बहुत कुछ लिखता।

कल्हण ने स्वयं लिखा है। उसने तत्कालीन प्राप्त शिलालेखों आदि का अध्ययन किया था। उनके आधार पर इतिहास लिखा था। अतएव अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भों, स्तूपों तथा चैत्यों के अभिलेखों पर अशोक का प्रसिद्ध विशेषण, देवानाम् प्रिय मिलना सम्भव था। क्योंकि अशोक के समस्त साम्राज्य में लिखने की यह शैली प्रचलित थी।

कल्हण ने स्तूपों, चैत्यों तथा स्तम्भों के आलेखों का अपनी इतिहास सामग्री में उल्लेख नहीं किया है। उन्हें अपना स्रोत नहीं माना है। उनकी गणना अपने इतिहास सामग्री में नहीं की है।

कल्हण से सात शताब्दी पूर्व हुएनसांग ने भारत की यात्रा की थी। उसके समय में बुद्ध धर्म ह्रास की ओर कश्मीर में था। यही प्रतिक्रिया समस्त भारतवर्ष में हो रही थी। कश्मीर उसका अपवाद नहीं था। हुएन सांग स्वयं लिखता है। कश्मीर में किसी एक धर्म विशेष की ओर जनता की आस्था नहीं थी।

कश्मीर में सनातन धर्म एवं शैव सिद्धान्त की प्रबलता उत्तरोत्तर होती गयी। लोग भारतवर्ष के समान कश्मीर में बुद्ध धर्म को बारहवीं शताब्दी में प्रायः भूल चुके थे। कश्मीर में कुछ उत्सव बुद्ध धर्म सम्बन्धी पूर्व काल से होते चले आये थे। वे किसी रूप में कुछ होते रहे। वे पूर्व काल की केवल धुंधली स्मृति मात्र थे।

कश्मीर के राजा नव निर्माण निमित्त पुरानी सामग्रियों का भी उपयोग करते थे। मन्दिरों, चैत्यों, स्तूपों, मठों, शाला तथा विहारों के ध्वन्सावशेषों, शिलाखण्डों, पत्थरों, ईंटों का प्रयोग मुक्तहस्त करते थे। भारत में भी सारनाथ के धर्मराजिक स्तूप के पूरे स्तूप के ईंटों तथा शिलाखण्डों का उपयोग तत्कालीन काशी के राजा तथा उनके कुटुम्बियों ने किया था। उस विशाल स्तूप की केवल नींव मात्र रह गयी है।

भगवान् ने सारनाथ में प्रथम उपदेश किंवा धर्मचक्र प्रवर्तन जहाँ किया था वहाँ बहुत बड़ा स्तूप था। वर्तमान धमेक स्तूप जैसा बना था। वह धर्मराजिक स्तूप था। अज्ञान के कारण लोगों ने उसे ईंटों का खदान या पहाड़ समझ लिया था। उस स्तूप में से भगवान् की धातु मिली थी। भ्रम के कारण उसे अस्थि समझ कर गंगा में प्रवाह कर दिया गया था।

भारत ही केवल इसका अपवाद नहीं है। इसराइल की यात्रा में मैंने देखा कि क्रुसेड के समय निर्मित गिर्जाघरों, उपासना स्थानों तथा प्रासादों में लगे स्तम्भों तथा पत्थरों का उपयोग 'केसरिया' (हैफा के समीप) के बन्दरगाह तथा घाटों के बनाने में किया गया था। भारत में इसी प्रकार

मन्दिरों को खण्डित कर उनके पत्थरों से मसजिद तथा जिमारत बनाना साधारण बात हो गयी थी। काशी विश्वनाथ का मन्दिर, मथुरा तथा अयोध्या का जन्म स्थान, महरौली दिल्ली में विष्णु पर्वत पर, विष्णु मन्दिर के स्थान पर, कुतुबमीनार तथा मसजिद, कुवते इसलाम आदि का बन जाना अनेक उदाहरण हैं।

कश्मीर में राजाश्रय न मिलने के कारण बुद्ध धर्म तथा उससे सम्बन्धित इमारतों की उपेक्षा हो गयी। बुद्ध धर्म के प्रति रुचि न होने के कारण तत्सम्बन्धी धार्मिक स्थान क्षीणता को प्राप्त होते होते लुप्त हो गये।

कल्हण अशोक के १६ शताब्दी पश्चात् हुआ था। इतने लम्बे काल तक बिना जीर्णोद्धार किंवा मरम्मत के किसी भी रचना का कायम रहना कठिन था। कश्मीर का प्रत्येक राजा किंवा रानी अपने काल में अपने नाम से किसी न किसी नवीन इमारत की रचना अपना नाम कायम रखने के लिए करता था। मेरी समझ में यही कारण है। बौद्ध भुवन रचना सामग्रियाँ जो प्राय: उस समय जीर्णावस्था में थी, बिखरी थी और जिनका जन जीवन में विशेष महत्त्व नहीं रह गया था। कल्हण ने उनका प्रयोग नहीं किया। इसलिये 'देवानाम् प्रिय' 'प्रियदर्शी' शब्दों का अभाव कल्हण के साहित्य में मिलता है।

जीर्णोद्धार कराया। कालान्तर में उसने जैन शासन चलाया। राजा जैनेह का अशोक भतीजा था। उसके काल में ब्राह्मण संस्कार के स्थान पर जैन शासन कश्मीर में चलाया गया। राजा जैनेह कौन था इसपर अबुल फजल आइने अकबरी में कोई प्रकाश नहीं डालता।

हसन लिखता है—'राजा शचीनर वल्द शकुनी के पोतों में से अशोक था। कलयुग संवत् १६५५ में अपनी इख्तादिहश से तख्त कश्मीर को जीनत देकर परगना लादर भारत में एक शहर आलीशान और दिलपसन्द महलात वाला बनाया। पिछले मुवर्रखीन इन मकानों की तायदाद ६ लाख लिखते हैं। शहर के आस-पास एक निहायत ऊँची और पायदार फसील बनवायी। पनगलवा और पतेल के गाँव आबाद करके बरहमनों को बखशिश दिये और मजहब जैन यानी बुद्ध मजहब जिसका जिक्र पहले हिस्सा में आ चुका है, अपने लिए पसन्द किया। उसकी इशाअत और तबलीग में दिल व जान से कोशिश की और सारे मुल्क में उसके अहकाम जारी कर दिये। कसबा बिजबारह में पिछले तमाम मन्दिर तबाह व बरबाद करके उनकी जगह अपने मजहब के इबादतखाने निहायत आलीशान और पुख्तगी से बनवाये। बिजबारह के मुतसिल ही एक और मन्दिर बनवाया जिसका नाम अपने नाम पर अशोकेश्वर रखा। मौजा हुँगलतरो और मौजा वतरहेल में के बहुत से मन्दिर बनवाये। दिल आजोर अक्षुनों की मुखालिफत और उनकी आक्रमाणों से पेशनजर तारिकुल दुनिया होकर पहाड़ बदेशर की तलहटी में नारायण नाग के चश्मा पर भूतेश्वर का मन्दिर जिसके निशानात ताहाल मौजूद हैं बनवाया। यहाँ अपनी बकिया उम्र इबादत बसर हकूमत करके इस दारेफानी से रुखसत हुआ।'

हसन का यह कहना है कि ५१ वर्ष अशोक ने राज्य किया सर्वथा मिथ्या है। अशोक का वह स०

यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम् ।
शुष्कलेत्रवितस्तात्रौ तस्तार स्तूपमण्डलैः ॥१०२॥

१०२. यह नृप जिसके पाप शान्त हो गये थे, जिन[1] शासन स्वीकार किया। शुष्कलेत्र[2] तथा वितस्तात्र[3] स्थानों को स्तूप मण्डलों से आच्छादित कर दिया।

१६५५ संवत् में राज्यारोहण तथा उसके पश्चात् जलौक का राज्यारोहण क० १७२६ संवत् में बताता हैं। इस प्रकार अशोक का राज्य काल ७१ वर्ष होता है न कि एकावन वर्ष। वह अशोक तथा जलौक के बीच किसी और राजा को नहीं रखता। अशोक के पश्चात् जलौक का होना स्वीकार करता है।

ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि राज्य उत्तराधिकार का संघर्ष २७० वर्ष ईशा पूर्व आरम्भ हुआ था। अशोक २७४ वर्ष ई० पू० राज सिंहासन पर बैठा था। उसकी मृत्यु ई० पू० २३२ वर्ष में हुई। (परिशिष्ट ए० 'अशोक' ले० राधाकुमुद मुकर्जी, १९६२ संस्करण)।

इस प्रकार उसका राज्यकाल केवल ३८ वर्ष ठहरता है। अतएव हसन का राज्यारोहण, राज्यकाल आदि सब भ्रामक, परस्पर विरोधी तथा अप्रमाणित उसकी अन्य बातों की तरह होता है। अशोक ने कितने दिनों तक शासन किया, इस पर कोई प्रकाश कह्लण नहीं डालता। उसका सम्बन्ध मौर्य वंश से भी नहीं जोड़ता है।

रत्नाकर पुराण की बात केवल कपोलकल्पना है। इसका लाभ उठाकर हसन ने अनुमान से समय निश्चित किया है।

अशोक के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर तिथि-वार प्रकाश डाल देने से इतिहास समझने में सुविधा होगी। कश्मीर के इतिहास पर प्रकाश पड़ेगा। इसका उल्लेख परिशिष्ट 'अशोक' में किया गया है।

अशोक कश्मीर का राजा था। इसपर विस्तृत विवेचन मैंने परिशिष्ट 'अशोक' में किया है। अशोक का एक राज्यपाल तक्षशिला में रहता था।

इतिहास का यह वह काल है जब रोम और कार्थेज युनिक युद्ध में रत थे। बुद्ध धर्म का कश्मीर में प्रवेश करने के कारण बौद्धधर्मानुयायियों को कष्ट सहने का आदत पड गयी थी। सहिष्णुता की भावना बढ गयी थी। भूकम्प विसूचिका तथा महामारी आदि का स्थिरतापूर्वक सामना करना चाहिये यह भावना बढ़ने लगी थी। उन्हें केवल दैवी प्रकोप मानकर चुप बैठने की पुरानी आदत बुद्ध धर्म के व्यावहारिक रूप और ज्ञान के कारण बदल रही थी। नास्तिक बुद्ध धर्म के वैज्ञानिक तर्क ने पुराने विचारों में एक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी। कर्म, आचरण, और शील की ओर लोगो को उन्मुख किया था। अन्ध विश्वास, निष्क्रियता, केवल सैद्धान्तिक आकाशीय उड़ान के स्थान पर भूमि पर चलने की ओर लोगों को प्रवृत्त किया था।

अशोक के कारण कश्मीरियों के चरित्र निर्माण में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि कश्मीर की मसजिदें बौद्ध पगोड़ा तुल्य दिखायी पड़ती है। यद्यपि नूरजहाँ ने सर्व प्रथम अपने मसजिद के निर्माण द्वारा सैमेटिक स्थापत्य एवं वास्तु कला का प्रवेश कश्मीर में कराया था।

बुद्ध धर्म कह्लण के समय तक कश्मीर में किसी न किसी रूप में अत्यन्त लघु पैमाने पर प्रचलित था। कह्लण स्वयं शैव था। 'अशोक' परिशिष्ट में विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। अन्यथा टिप्पणी स्वतः बहुत बड़ी हो जाती।

जोनराज, श्रीवर, प्रज्ञाभट्ट एवं शुक को राज-तरंगिणियों में अशोकेश्वर तथा अशोक का उल्लेख मैं प्राप्त नहीं कर सका। उनका किसी सन्दर्भ में भी वर्णन नहीं मिलता।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०२ के 'वितस्तात्र' का पाठभेद 'वितस्ताद्रौ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०२ (१) जिन-शासन : कल्हण यहाँ स्पष्ट उल्लेख करता है कि राजा ने जिन-शासन स्वीकार कर लिया था। यह मगध सम्राट् 'देवानाम् प्रिय', 'प्रियदर्शी' अशोक था इसमें सन्देह नहीं रह जाता। अशोक जन्मजात बुद्धधर्मावलम्बी नहीं था। कलिंग युद्ध के पश्चात् इतिहास को प्रचलित धारणाओं के अनुसार बुद्ध धर्म स्वीकार किया था। उसका व्यापक प्रचार किया था।

शंकराचार्य ने 'बौद्ध-शासन' शब्द का प्रयोग किया है। 'धर्म' के स्थान पर 'शासन' शब्द का प्रयोग वस्तुस्थिति में अन्तर नहीं उत्पन्न करता।

कल्हण के 'जिन-शासन' शब्द का कुछ लेखकों ने अर्थ 'जैन धर्म' लगाया है। यह गलत है। उस समय हिन्दू अथवा सनातन धर्म शब्द प्रचलित नहीं थे। एक ही धर्म था। वह था भारतीय धर्म। उसमें अनेक सम्प्रदाय एवं पन्थ थे। उसी प्रकार 'बुद्ध शासन' भी कश्मीर में तथा भारत में एक पन्थ, सम्प्रदाय किंवा शासन था। धर्म शब्द आधुनिक काल की देन है। जैसे सिख पन्थ है। राजनीतिक कारणों से सिख धर्म को धर्म की संज्ञा देकर उन्हें भारतीय हिन्दू धर्म से अलग करने का प्रयास किया गया है। काशी में श्री गुरु तेगबहादुर देव जी की संगत है। श्री गुरु नानक देव जी का बाग है। मुझे अच्छी तरह याद है। हम लड़कपन में एक बैनर लेकर चलते थे। उस पर लिखा रहता था 'हिन्दू धर्म रक्षक श्री गुरु गोविन्द सिंह की जयन्ती।' मैं कितने ही वर्षों तक इस उत्सव में सम्मिलित होता रहा। परन्तु पचास वर्षों में सब कुछ बदल गया है।

अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। कल्हण के वर्णन की सत्यता प्रमाणित करता है। इस श्लोक में स्तूपों के स्थापित करने का उल्लेख मिलता है। अशोक ने समस्त भारत में स्तूपों तथा स्तम्भों की शृंखला स्थापित की थी। भगवान् के धातुओं पर चारों ओर धर्मराजिक स्तूपों का निर्माण कराया था।

कल्हण अशोक द्वारा स्तूप मण्डलों की स्थापना का उल्लेख करता है। यह अशोक के राज्यकाल एवं जीवन की विशेषता थी। कल्हण इस अकाट्य सत्य का समर्थन करता है।

इस तरंग के श्लोक संख्या १०३ से बातें और साफ हो जाती हैं। अशोक ने चैत्य तथा विहार शब्द की स्थापना करायी थी। चैत्य एवं विहार शब्द शुद्ध बौद्ध धर्म सम्बन्धी शब्द हैं। उनके द्वारा पूजनीय स्थान चैत्य तथा प्रव्रजितों के निवासस्थान विहारों का बोध होता है। उनका निर्माण कराना बुद्ध धर्म के प्रति श्रद्धालु भक्त का कर्तव्य माना जाता है। धार्मिक पुण्य कर्म उसी प्रकार है जिस प्रकार हिन्दू मन्दिर, धर्मशाला, मठ और मुसलमान मस्जिद, जियारत, तथा सराय का निर्माण कराता है। कल्हण अशोक के जीवन से इस पहलू पर प्रकाश डालता है। जिसकी साक्षी भारतीय इतिहास स्पष्ट और बलवती भाषा में करता है।

(२) शुष्क लेत्र : श्री स्तीन ने सन् १८९१ में पं० काशीराम को इस स्थान की जाँच के लिये भेजा था। यह स्थान हुखलेत्रो कहा जाता था। यह वर्तमान ग्राम हुखलित्तर है। इसे हकलित्री भी कहते हैं। श्री स्तीन द्वारा प्रस्तुत मानचित्र में इसे हकलिट्री नाम से दिखाया गया है। दुत परगना में है। श्री काशीराम को इस स्थान पर प्राचीन भग्नावशेष तथा चिह्न नहीं मिले।

मैं यहाँ आया था। आधुनिक विकास के कारण ग्राम का पुराना रूप बदलता जा रहा है। मुझे दो चार शिला खण्ड अवश्य मिले। उनके देखने से किसी समय यहाँ किसी इमारत के होने का अनुमान किया जा सकता है। वर्तमान समय में पत्थर लाना और उनसे निर्माण कराना प्रायः समाप्त हो गया है। कश्मीर

धर्मारण्यविहारान्तर्वितस्तात्रपुरेऽभवद् ।
यत्कृतं चैत्यमुत्सेधावधिप्राप्त्यक्षमेक्षणम् ॥१०३॥

१०३. वितस्तात्र पुर में धर्मारण्य विहारान्तर्गत राजा द्वारा निर्मित एक चैत्य[1] था। वह इतना ऊँचा था कि आँखें उसके शिखर तक नहीं पहुँच पाती थीं।

में इतने मन्दिर, देवालय एवं विहार पत्थरों से बने थे कि लगभग सात या आठ शताब्दी से पत्थर कहीं से लाने की आवश्यकता ग्रामों तथा छोटे स्थानों में नहीं थी। पुराने पत्थरों से काम चल जाता था। कश्मीर में शायद ही कोई ऐसी जियारत या दरगाह मिलेगा जिसमें प्राचीन ध्वंसावशेषों के शिला खण्ड न लगे हों अथवा वे मन्दिरों तथार विहार के स्थान पर न निर्मित किये गये हों। कल्हण ने इसका उल्लेख पुनः तरंग १:१७० में किया है।

(२) वितस्तात्र : यह स्थान बनिहाल पर्वत मूल में वेरी नाग के वायव्य दिशा में लगभग एक मिल पर विथवत्रो ग्राम है। इस ग्राम का वर्तमान नाम विथवुतुर है, गाँव छोटा है।

ग्राम के समीप एक सरोवर है। उसमें एक बड़ा जलस्रोत है। यह झरना वितस्ता नदी का मुख्य उद्गम कहा जाता है। बनिहाल नाम का मूल वितस्तात्र ग्राम ही था। उसी का अपभ्रंश तथा बिगड़ता रूप बनिहाल एक मत के अनुसार हो गया है।

स्थानीय हिन्दू इसे एक तीर्थ मानते है। बाइन ने अपने भ्रमण में इसका उल्लेख किया है। वितस्ता माहात्म्य (२ : ४०) में इसे 'वितस्ता वर्तिका' कहा गया है।

राजा अनन्त के समय में कल्हण ने (७:३६४) वितस्तात्रपुर का उल्लेख किया है। महाराज सुस्सल के राज्य काल (सन् ११२१–११२८ ई०) में कल्हण ने 'वितस्ता' स्थान का उल्लेख (८ : १०७३) किया है। कल्हण के निम्नलिखित उद्धरण इस स्थान के सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। (१ : १०२; १०३; १:१७० ७:३५४, ८:१०७३–७४)

नील नाग किंवा वेरी नाग की यात्रा के समय इस स्थान की यात्रा की जा सकती है। यह स्थान किसी बड़े नगर के लिये उपयुक्त स्थानाभाव के कारण नहीं है। इसका महत्त्व प्राचीन काल में पूर्वीय पंजाब से आवागमन मार्ग के कारण था। रावलपिण्डी तक रेलवे लाइन और वहाँ से राजपथ द्वारा उरी होते बारहमूला सड़क से पहुँचा जाता था। यह सड़क सर्वदा खुली रहती है। हिमपात के कारण मार्गावरोध नहीं होता। भारतीय स्वाधीनता और कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के कारण यह मार्ग बन्द हो गया है। रावलपिण्डी पाकिस्तान की राजधानी इसलामाबाद नाम से हो गया है। अतएव बनिहाल मार्ग का महत्त्व बढ़ गया है। भारत और कश्मीर को सम्बन्धित करने वाला यही एक मात्र मार्ग शेष रह गया है। सन् १९६३ के पूर्व बनिहाल के पास का मार्ग शीतकाल में तुषारपात के कारण अवरुद्ध हो जाता था। अब वहाँ बहुत नीचे दूसरी सुरंग खोद कर मार्ग बनाया गया है। इससे यह मार्ग अब पूर्णतया खुला रहता है।

कश्मीर आने वालों को प्रथम दर्शन बनिहाल से वितस्तात्र ग्राम तथा नील कुण्ड किंवा वेरी नाग का मिलता है। इस स्थान का महत्त्व अब बढ़ गया है।

इस स्थान पर स्तूपों के ध्वन्सावशेष नहीं मिलते। कुछ स्थानों में प्राचीन इमारतों के आकार मात्र भूमि में मिलते हैं। वहाँ गढे और अनगढ पत्थर भी कुछ पड़े हैं। परन्तु स्थान का रूप आधुनिक प्रगति के साथ बदलता जा रहा है। कुछ वर्षों में यह सब भी लुप्त हो जायगा। पत्थरों का प्रयोग स्थानीय जनता मुक्तहस्त करती है।

स पण्णवत्या गेहानां लक्षैर्लक्ष्मीसमुज्ज्वलैः ।
गरीयसीं पुरीं श्रीमांश्चक्रे श्रीनगरीं नृपः ॥१०४॥

१०४. उस श्रीमान् ने श्रीनगरी[1] की स्थापना की जिसका महत्त्व उसके लक्ष्मी द्वारा समुज्ज्वल छानवे लाख गेहों के कारण थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०३ में 'भक्तुतं' का पाठभेद 'पारकतं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०३ (१) चैत्य : कश्मीर में चैत्यों की शृंखला थी। प्रत्येक ग्राम तथा महत्त्वपूर्ण स्थानों में चैत्य निर्मित थे। उनकी पूजा बौद्ध तथा हिन्दू दोनों करते थे। धर्मारण्य विहार तथा चैत्य दोनों का लोप हो गया है। कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय विहार तथा चैत्य दोनों का अस्तित्व था। कश्मीर में हिन्दूराज के लोप तथा जनता के मुसलिम धर्म ग्रहण करने के कारण विहारों तथा चैत्यों का कोई महत्त्व नहीं रह गया। वे गिरते-पड़ते खँड़हर हो गये। उनके पत्थर लोग उठा ले जाने लगे। जब केवल आकार मात्र शेष रह जाता था तो उन पर इमारत बना दी जाती थी, इस प्रकार प्राचीन स्थानों का अस्तित्व लोप हो जाता था। यह बात केवल हिन्दू अथवा बौद्ध धर्मस्थानों के सम्बन्ध में ही नहीं लागू होती। बड़ी-बड़ी जियारतें तथा मजारें इसी तरह लोप की जाती हैं। मैं सन् १९४८ में दिल्ली आया था तो सफदरजंग से महरौली तक बिलकुल आबादी नहीं थी। चारों ओर कब्रिस्तान, मजार तथा जियारतें थीं आज वहाँ कुछ भी नहीं है। बदायूँ में बहुत बड़ा कब्रिस्तान है। वहाँ पर ऊँची पक्की कब्र के चारों ओर जमीन खोद देते हैं। दो-चार वर्षों के पश्चात् कब्र स्वतः गिर जाती है। पत्थर तथा ईंट बेच दिये जाते हैं। जमीन समथर हो जाती है। उन पर नवीन इमारत बन जाती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०४ में 'लक्षैं' का पाठभेद 'लक्ष्यैं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०४ (१) श्रीनगरी : अशोक ने दो नगरियों का निर्माण कराया था। कश्मीर में श्रीनगर तथा नेपाल में देवपत्तन। नेपाल में अशोक की कन्या चारुमति गयी थी उसका विवाह देवपाल से हुआ हुआ था। पति-पत्नी दोनों नेपाल में धर्म प्रचारार्थ आबाद हो गये थे। अशोक की नेपाल यात्रा के स्मरणार्थ नगर बसाया गया था। देवपत्तन नगर के नाम से अनुमान किया जा सकता है कि देवपाल ने अपने श्वसुर अशोक की यात्रा की स्मृति में नगर बसाया होगा।

ऋग्वेद में श्री शब्द सम्पदा के अर्थ में व्यवहृत किया गया है (८:२:१९; अथर्ववेद ६:५४:१, ६:७३:१, ९:५:३१, १०:६:२६, ११:१:१२ २१, १२:१:६३, १२.५:७)

श्री शोभा, सम्पन्न, वृद्धि, विभूति, कीर्ति, यश, प्रभा, सिद्धि, विष्णुपत्नी लक्ष्मी, सरस्वती तथा वाणी के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। शतपथ ब्राह्मण में (११:४.३) श्री को देवी माना गया है।

अतएव श्रीनगरी का अर्थ संपदा, वृद्धि, यश, कीर्ति तथा सरस्वती नगरी हुआ। श्रीराज्य वर्तमान मैसूर राज्य का पुराना नाम था। दक्षिण-पूर्व एशिया में श्रीविजय साम्राज्य स्थापित था।

जनरल कनिंघम ने वर्तमान ग्राम पाण्ड्रेथन अर्थात् पुराणाधिष्ठानपुर को अशोक निर्मित श्रीनगरी की संज्ञा दी है। वह वितस्ता के वाम तट पर है, वर्तमान श्रीनगर से २ मील ऊपर श्रीनगर अनन्त-नाग सड़क पर स्थित है। कनिंघम ने कल्हण के रा० त० १-१२४ तथा रा० त० ३:९९ के आधार

पर इसका निर्धारण किया है। क्योंकि जलौक ने ज्येष्ठ रुद्र देवस्थान की स्थापना श्रीनगरी में की थी। इस देवस्थान को शंकराचार्य पर्वत पर स्थित मन्दिर से सम्बन्धित करते हैं। पर्वत मूल में दक्षिण-पूर्व २ मील दूर पर पाण्डरेन्थन है। किन्तु प्रोफेसर बुहलर ने इस मत को ठीक नहीं माना है। वर्णनों से प्रतीत होता है कि जलौक का मन्दिर या तो पर्वत पर था अथवा उसके समीप कहीं आसपास होना चाहिए।

पुराधिष्ठान शब्द का अर्थ पुरानी राजधानी है। सोदर जलस्रोत समीप होने (रा० त० १:१२४) के कारण इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। योग वासिष्ठ में राजा यशस्कर के सन्दर्भ में अधिष्ठान नगर का उल्लेख किया गया है। वास्तव में नगर का नाम अधिष्ठान था। नगर प्राचीन होने पर उसमें पुरा अर्थात् प्राचीन शब्द विशेषण की तरह जोड़ दिया गया था। यह नगर राजा यशस्कर के समय तक समृद्धशाली था। योग वासिष्ठ में कहा गया है कि वृक्षों तथा पर्वतों से सुशोभित पुराधिष्ठान कश्मीर के मध्य में स्थित है। यह वर्णन आज की परिस्थितियों में भी मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में उल्लेख आता है। उत्कल जनपद के अधिष्ठान नगर के तपस्सु और मल्लिक व्यापारी थे। भगवान् को बुद्धत्व प्राप्त होने के पश्चात् उरुवेला में राजयतन वृक्ष के नीचे प्रथम बार भोजन उन लोगों ने दिया था। उक्त नगर कश्मीर में नहीं उड़ीसा में था।

गुप्त काल में छोटे राज्यों की राजधानियों को अधिष्ठान कहा जाता था। उड़ीसा में अधिष्ठान नामक एक आबादी है।

नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर है। प्रवरसेन द्वितीय ने उसका निर्माण कराया था। वह वर्तमान श्रीनगर है। उसे प्रवरपुर कहा गया है। श्रीनगर का नपुंसक लिंग में कल्हण ने सब स्थानों पर वर्णन किया है। वह केवल इस स्थान पर उसका स्त्री रूप में प्रयोग किया है।

हैदर मल्लिक तथा मुहम्मद अजीम आदि इतिहास लेखक अशोक-द्वारा निर्मित राजधानी को लिदर नदी के वाम तटपर 'शीर' स्थान को बताते है जो खादरयार परगना में है। प्रोफेसर बुहलर ने एक स्थान पर कहा है कि कुछ काश्मीरी पण्डितों का मत है कि यह नगर इस्लामाबाद अर्थात् अनन्त नाग के समीप था।

पण्डरेथन में खनन कार्य किया गया है। जिस सरोवर में पण्डरेथन का मन्दिर निर्माण किया गया था उसका जल निकाल कर उसके नीव तक खनन कार्य किया गया था। मन्दिर १८ वर्ग फीट क्षेत्रफल में स्थित है। मन्दिर का निर्माण कश्मीर के राजा पार्थ ने सन् ९२१ ई० में कराया था।

जहाँगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है :

'नगर का नाम श्रीनगर है। झेलम नदी इसके बीच से बहती है। इसका उद्‌गम वीरनाग कहलाता है। जो चौदह कोस दक्षिण है। हमारी आज्ञा से सोते के पास एक इमारत तथा बाग बनवाया गया है। नगर में पत्थर तथा लकड़ी के बड़े मजबूत चार पुल बने हुए हैं। जिनसे लोग आते जाते हैं। इस देश की भाषा में पुल को कदल कहते हैं। नगर में एक बड़ी ऊँची मसजिद है। जो सुलतान सिकन्दर के चिह्न स्वरूप वर्तमान है। और हिजरी सन् ७९५ई०में बनी थी। कुछ दिनों के बाद यह जल गयी। और तब पुनः सुल्तान हुसेन ने इसे बनवाया। यह पूरी नहीं हुई थी कि उसके जीवन का प्रासाद ढह गया॥सन् ९०९ हिजरी के सुलतान के वज़ीर इब्राहीम माकरी ने इसे सुंदरता के साथ पूर्ण किया। उस समय से अब तक १२० साल से यह बनी हुई है। मेहराब से पूर्वी दिवाल तक एक सौ पैंतालीस गज है और चौड़ाई एक सौ चौआलीस गज है। इसमें चार ताक हैं और चारों ओर दालान तथा खंभे हैं। संक्षेप में कश्मीर के शासकों का इससे अच्छा स्मारक और कोई नहीं है। मीर सैय्यद

हमदानी कुछ दिन इस नगर में रहा था। इसका स्मारक यहाँ एक खानकाह है। नगर के पास दो झीलें हैं जो वर्ष भर जल से भरी रहती हैं। इनके जल का स्वाद कभी बिगड़ता नहीं। मनुष्यों के आने जाने और अन्न ईंधन आदि लाने के लिए नावें काम में आती हैं। नगर तथा परगनों में सत्तावन सौ नावें तथा चौहत्तर सौ नाविक हैं। कश्मीर प्रान्त में अड़तालीस परगने हैं। यह दो भागों में विभक्त है। और नदी के ऊपरी भाग को कमराज कहते हैं। वहाँ भूमि का कर या व्यापार के लेन-देन में सोना चाँदी देने की प्रथा नहीं है। केवल कुछ सायर कर में दिया जाता है। ये वस्तुओं का मूल्य चावल के खरवारों में करते हैं और हर खरवार तीन मन आठ सेर वर्तमान तोल से होता है। कश्मीरियों में २ सेर का एक मन होता है और चार मन अर्थात् आठ सेर का एक तर्क होता है। कश्मीर की आय तीस लाख तिरसठ हजार पचास खरवार ग्यारह तर्क है। यह नगदी में सात करोड़ छियालीस लाख सत्तर सहस्र दाम होता है। साधारणतः यहाँ आठ सहस्र सवार रहते हैं।' (पृष्ठ ६५३)

बरनीयर लिखता है—'कश्मीर प्रदेश तथा उसकी राजधानी दोनों का नाम कश्मीर है।' मुसलिम काल में श्रीनगर का नाम छोड़कर श्रीनगर को कश्मीर कहने लगे थे। सिखों ने सन् १८१९ ई० में जब कश्मीर विजय किया तो उन्होंने पुराना नाम श्रीनगर कश्मीर की राजधानी का पुनः प्रचलित किया। बरनीयर तथा उन्नीसवीं शताब्दी तक मुसलमान लोग श्रीनगर को 'कश्मीर' या 'कशूर' कहा करते थे।

बरनीयर श्रीनगर का वर्णन करता है—'नगर के चारों ओर चहार दिवारी नहीं है। यह तीन चौथाई लीग लम्बा तथा आधा लीग चौड़ा शहर है। यह मैदान के अर्ध चन्द्राकार पर्वत से २ लीग दूर पर बसा है। ताजे पानी वाले लेक के तटपर बसा है। यह सरोवर ४ से ५ लीग होगा। इस लेक में बहुत से चलते निर्झर हैं। तथा पर्वत से स्रोतस्विनियाँ आकर मिलती हैं। यह वितस्ता में एक नहर द्वारा मिलती है। उसमें नावें आती जाती हैं। नदी नगर के बीच से बहती है। नदी में ७ लकड़ी के पुल (झेलम या वितस्ता) पर बाँधे गये हैं। नगर के मकान अधिकतर दो तथा तिमजले लकड़ी के बने हैं। कुछ पुरानी इमारतें तथा प्राय: पत्थरों के बने मन्दिर टूटे पड़े हैं। पत्थर की अपेक्षा लकड़ी सस्ती होती है। उसे नदियों द्वारा पहाड़ से लाते हैं। नदी के प्रायः सभी किनारों के मकानों के साथ वाटिकाएँ हैं अर्थात् नगर में वाटिका गृहों की अधिकता है। ये गर्मी तथा बसन्त ऋतु में बहुत ही रुचिकर लगते हैं। नगर के भीतरी भाग के बहुत मकानों में वाटिकाएँ हैं। अनेक मकानों के के समीप नहरें हैं। जहाँ मकान मालिक अपनी नावें रखते हैं। उनसे वे सम्पर्क स्थापित करते हैं।

'नगर के समीप एक अकेला पहाड़ है। उसके ढाल पर बड़े ही सुन्दर मकान बने हैं। मकानों में बगीचा है। चोटी पर मसजिद तथा आश्रम है। दोनों ही अच्छी इमारतें हैं। पर्वत की चोटी पर हरित पादपों के मुकुट हैं। अपने वृक्षों तथा बागों के कारण स्थानीय लोग उसे 'हरीपर्वत' कहते हैं।

'हरीपर्वत' के दूसरी तरफ एक और पर्वत है। उसपर एक छोटी मसजिद है। उसमें वाटिका है। वहाँ पर एक बहुत ही पुरानी इमारत है। उसके चिन्हों के देखने से स्पष्ट मालूम होता है। वह मन्दिर था। यद्यपि उसे तख्तए सुलेमान कहते हैं। मुसलमान कहते हैं। राजा सुलेमान जब कश्मीर में आए थे तो उन्होंने इसे बनवाया था। परन्तु मुझे सन्देह है। कभी हजरत सुलेमान का यहाँ प्रवेश हुआ था।

'डल लेक द्वीपों से भरी है। वे आरामगाह हैं। जल के बीच में ये बहुत ही हरे भरे और सुन्दर लगते हैं। उनमें फलदार वृक्ष तथा नियमित झंझरी-दार भ्रमण मार्ग से पूर्ण हैं। दो-दो फिट की दूरी पर लगाए गये हैं, यह वृक्ष इतने कम मोटे हैं कि

दोनों हाथों के बीच में आ जाते हैं। किन्तु वे जहाज के मस्तूल इतने ऊँचे हैं। केवल शिरोभाग पर ताड़ के वृक्ष की तरह उनमें शाखों का गुच्छा होता है।

'लेक के तटवर्ती पर्वतों के ढालों पर मकानों तथा फूलों के बागों की भरमार है। हवा स्वास्थ्यकर है। इनका जलवायु बहुत ही अच्छा है। उनमें झरने तथा स्रोतस्विनियाँ खूब हैं। वहाँ से लेक, द्वीप तथा नगर का बहुत ही हृदयग्राही दृश्य मिलता है।'

शालीमार बाग का बर्नियर ने ऐसा ही वर्णन किया है जैसा आज भी वह मौजूद है। केवल इतना और कहता है, 'शाहजहाँ द्वारा तोड़े गये मन्दिरों के खम्भों तथा द्वारों से नहरों के मध्य में ग्रीष्म भवन बनाया गया है। उनका मूल्यांकन करना कठिन है।'

कैप्टन नाइट (१८६०) श्रीनगर के विषय में लिखता है 'पूरे शहर में कोई भी प्राचीन निर्माणों के ध्वंसावशेषों को देख सकता है। वे विशाल शिलालेखों में अलंकृत मिलेंगे। ये लेख सब वहाँ लिखे मिलेंगे जो गौरवशाली प्राचीन काल की दु:खभरी कहानी कहते हैं। नदी के दोनों तटोंपर-लकड़ियों के दर्शनीय मकानों की पंक्तियाँ मिलेंगी।.........बहुत से मकान मुझे मिले। वे अपनी नींव की ओर जैसे 'पिसा के लीनिंग टावर' को भी लज्जित करते झाँक रहे हैं।.........मकान छमंजिलों तक ऊँचे हैं। इनकी खिड़कियाँ लकड़ी के नक्काशी के कामों से सुन्दर बनी रहती हैं।

'पूर्व के वेनिस सदृश इस शहर की नदी में सैर करते हुए मैंने देखा कि नदी के तटपर बने भवनों की दिवालों में बहुत से अलंकृत शिलाखण्ड लगे थे। हम घूमते हुए एक मुसलिम कब्रिस्तान में पहुँचे। यहाँ एक गिरी मसजिद थी। उसमें बहुत से पुराने मन्दिरों के अलंकृत शिलाखण्ड लगे थे। वे प्राचीन मालूम होते थे। उन्होंने अपना जीवन इस मुसलिम भूमि से कहीं और आरम्भ किया था।'

पण्डरेथन का मन्दिर सुन्दर है। मैं जिस समय यहाँ अपनी यात्रा में चौथी बार १३-९-१९६२ ई० में पहुँचा तो मन्दिर का द्वार वितस्ता जल के बाढ़ के कारण डूबने में केवल एक फीट और बाकी रह गया था। वितस्ता में बाढ़ आई थी। श्रीनगर अनन्त नाग तथा श्रीनगर-पठानकोट की सड़कों की सतह तक पानी की धारा बह रही थी। श्रीनगर पामपुर वाली सड़क पर बाँध बँधने के कारण जल नहीं आ सका था। पंडरेथन का कुछ ऐसा विशद वर्णन लेखकों ने किया है कि मैंने समझा था कोई बहुत बड़ा मन्दिर होगा। ध्वंसावशेष तथा स्मारक अत्यधिक होंगे परन्तु यहाँ जितनी बार आया निराशा हुई। कश्मीर में जल प्लावन तथा वितस्ता के बाढ़ तथा उसके कारण हुए विनाश का बहुत वर्णन किया गया है। अतएव इस भयंकर बाढ़ के समय अपनी आँखों से कुछ देख लेने के मोह के कारण यात्रा की थी।

इस समय यहाँ भारतीय सेना की छावनी पड़ी है। मन्दिर के पृष्ठभाग में पाकिस्तानी आक्रमण काल के समय वीरता प्रदर्शित करने के कारण मेजर शोभनाथ शर्मा, कमायूँ रेजिमेण्ट का स्मारक बना है। मन्दिर के दक्षिण मुख्य सड़क तक एक छोटा उद्यान बनाया गया है। चिनार का पेड़ लगा है। यहाँ पहले बिलो अर्थात् बेत के वृक्ष बहुत थे। परन्तु उनकी संख्या कम हो गयी है।

मन्दिर का सरोवर ४० वर्ग गज होगा। मन्दिर १८ वर्ग फीट में है। सरोवर के पूर्व तरफ २ छोटे जलस्रोत हैं। उनका जल सरोवर में निरन्तर आता रहता है। सरोवर का जल झेलम नदी में एक गहरी नहर द्वारा निकल जाता है। झेलम मन्दिर से केवल २०० फीट दूर बहती है।

मन्दिर कश्मीर के अन्य मन्दिरों तुल्य कश्मीर शैली पर बना है। मन्दिर का कलश गायब है या

टूट कर गिर गया है। आमलक लोप है। मन्दिर सिकन्दर बुतशिकन द्वारा पूर्णतया नष्ट न किये जाने का कारण यह मालूम होता है कि मन्दिर सरोवर के मध्य में है। मन्दिर का आधार भूमि की सतह से नीचा है। मन्दिर तोडने की अपेक्षा सरोवर को मिट्टी से पाट देने पर सरोवर तथा मन्दिर दोनों का अस्तित्व लोप हो जाता है। सम्भव है यही यहाँ किया गया होगा। अन्यथा सिकन्दर बुतशिकन के आँखों के सम्मुख बचा रह जाना अनहोनी बात है। अथवा मिट्टी से सरोवर भर गया होगा। मन्दिर दृष्टिगत नही हो सका होगा। मैंने स्वयं देखा कि वितस्ता के बाढ के कारण सरोवर पूरा भर गया था। जल में मन्दिर की पूरी भीत डूब गयी थी। मन्दिर उपेक्षित पडा था। उसमे वितस्ता जल से लाई मिट्टी जो शताब्दियो तक जमती रही। मन्दिर सरोवर में पड़ने के कारण स्वयं आँखों से लोप हो गया होगा। काशी मे घाटो पर बने मन्दिर बरसात में गंगा की मिट्टी जमने के कारण भर जाते है।

मन्दिर के द्वार की ऊपरी देहली पर मूर्तियाँ बनी है। किन्तु वे कुरूप कर दी गयी है। स्थानीय लोग इस मन्दिर को पंचमुखी महादेव का मन्दिर कहते हैं। मन्दिर के भीतर अलंकृत तथा मूर्तिमय शिलाखण्ड है। यह मेरुवर्धन स्वामी का मन्दिर कहा जाता है। मेरुवर्धन राजा पार्थ का प्रधान मन्त्री था।

अशोक द्वारा निर्मित यही प्राचीन श्रीनगर था। राजा प्रवरसेन द्वितीय (११०–७० ई० पू०) ने उक्त मन्दिर निर्माण होने के पूर्व प्रवरपुर अर्थात् वर्तमान श्रीनगर बसाया था। उसे अपनी राजधानी बनाया था।

पुराधिष्ठानपुर राजा अभिमन्यु द्वितीय (९६० ई० पू०) के समय आग लगने के कारण भस्म हो गया था। इतनी भयंकर आग लगी थी कि इस मन्दिर के अतिरिक्त जो जल के मध्य मे था और जहाँ आग नही पहुँच सकती थी, सब कुछ जल गया।

मन्दिर की उत्तर दिशा में कुछ खनन कार्य हुआ था। उसमें पुराने मन्दिरो के पत्थर बिखरे मिले थे। वहाँ एक ६ फीट ऊँचा शिवलिंग तथा लगभग १६ फीट ऊँचा टूटा लिंग मिला था। इन दोनो लिंगो के मध्य एक आसीन मूर्ति का पद तथा पाँव जो ठेहुनी भर ऊँचा था, मिला था। वैरन हुगेल ने इसे बुद्ध की प्रतिमा का अवशेष माना है। ह्यूम ने लिखा है कि पाद तथा पैर २० फिट ऊँची मूर्ति के अवशेष थे। वह बैठी मूर्ति थी। उस सरोवर में एक छोटी नाव बँधी रहती थी। उससे दर्शक स्वयं नाव लेकर मन्दिर तक पहुँच जाता था। वहाँ बहुत कम लोग आते थे। सरोवर बडे नरकुल से भरा लगभग ४० वर्ग गज में है। पुराधिष्ठान के अन्य मन्दिरो के ध्वंसावशेषों के कुछ पत्थर समीपस्थ मसजिद के निर्माण में लगाये गये हैं।

प्रश्न उपस्थित होता है। अशोक ने इस स्थान को अपनी राजधानी के लिए क्यों चुना? अशोक ने यह स्थान दो कारणों से राजधानी निमित्त चुना होगा। प्रथम कारण यह मालूम होता है कि वितस्ता का जल इस स्थान को डुबा नहीं सकता। यह ऊँचा है। पृष्ठभाग मे पर्वतमाला है। पर्वत के ढाल के पश्चात् पथरीली ऊँची भूमि है। पर्वत कच्चा नही पक्का है। पत्थर गया जी के पत्थर की तरह सख्त है। मैंने स्वयं देखा सडक बनाने के लिए मिट्टी पहाड तोड़कर बनाई जा रही थी। बाढ़ आने पर लोग पीछे पर्वत के ढाल पर जाकर अपनी रक्षा कर सकते थे। पर्वत के खिसकने का—भूभ्रंश का भय नही था। इस बात का वितस्ता के बाढ तथा अत्यन्त वर्षा के समय यहाँ रहकर मैंने अनुभव कर लिया।

दूसरा कारण यह मालूम होता है कि वर्तमान पण्डरेथन ग्राम तथा शंकराचार्य पर्वत तक का भूखण्ड वितस्ता तथा पर्वतमाला के मध्य समतल तथा उपजाऊ है। विस्तृत भूखण्ड है। इस स्थान को बादामी बाग कहते है। यहाँ बादाम के बहुत बगीचे

हैं। मार्गों की यह शृंखला पामपुर तक मिलती चली जाती है। बनिहाल श्रीनगर मार्ग पर है। आगे जाने पर पामपुर पड़ता है। केसर की खेती के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ की उपजाऊ भूमि, फलदार वृक्षादि के कारण इस स्थान का चयन अशोक ने किया होगा।

इस समय मैदान में भारतीय सैनिक छावनी का कैम्प गत सन् १९४७ ई० से पड़ा है। सैनिक एवं सुरक्षा की दृष्टि से स्थान श्रेष्ठ माना जायगा। इसके दक्षिण-पश्चिम वितस्ता तथा पूर्व ओर ऊँची पर्वत-मालाएँ हैं। दक्षिण में पाण्डु चक पर वितस्ता तथा पर्वत के मध्य अत्यन्त संकीर्ण मार्ग है। पश्चिम रुस्तम गढ़ी जिस पर इस समय कश्मीर राजा का प्रासाद बना है। उस पर्वत तथा वितस्ता के मध्य का स्थान हवाखातून की मजार के समीप का मार्ग ४० फीट संकीर्ण हो जाता है। यहाँ महासरित वितस्ता पर्वत मूल तक खाई का काम करती है। इस प्रकार यह स्थान प्राकृतिक सुरक्षा यंत्रित—एक ओर वितस्ता तथा तीन ओर पर्वत से घिर जाता है। यही कारण है कि इस समय भारतीय सेना यहाँ बड़े पैमाने पर रखी गयी है। उसका पूर्ति तथा सम्भरण केन्द्र है। डोगरा काल में यहाँ कैण्टोनमेण्ट था। अर्थात् सेना की छावनी थी। अशोक उत्तर-पश्चिम भारत में रह चुका था। स्वयं युद्ध विद्या में निपुण था। एक सैनिक होने के नाते उसने इस स्थान का सैनिक महत्त्व समझा। अतएव इस स्थान को राजधानी के लिए चुना।

अफगानिस्तान में जिस प्रकार भगवान् की बड़ी मूर्ति खण्डित की गयी थी उसी प्रकार इस मूर्ति का हाथ जो सम्भवतः अभय मुद्रा में था खण्डित कर दिया गया। बामियान मूर्ति की मुखाकृति ललाट से नीचे बिल्कुल छील दी गयी है। भगवान् त्रिचीवर धारण किये हुए हैं। इस मूर्ति पर दृष्टि पड़ते ही मुझे अपनी आँखों देखी बामियान की दोनों मूर्तियाँ स्मरण हो आयी। मैंने उक्त दोनों बामियान की मूर्तियों का वर्णन विस्तार से अपनी पुस्तक 'आर्याना' में किया है।

भगवान् की अभय मुद्रा में एक और मूर्ति है। मूर्ति भव्य है। अनायास मन पर अभय भावना स्थापित करती है। बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। यज्ञोपवीत, धोती, वाम कर में मृणाल सहित पद्म, तथा दायें कर में माला और मूर्धा पर केश के ऊपर मुकुट है। इस मूर्ति की मुद्रा मुझे बहुत अच्छी लगी।

मूर्ति की मुखाकृति बड़ी सरल है। मालूम पड़ता है मूर्ति जैसे कुछ कहना चाहती है। देखकर मन अनायास मूर्ति की ओर आकर्षित हो जाता है। संग्रहालय में यहाँ से प्राप्त गगन में गमनशील गन्धर्व यक्षादि की भी मूर्तियाँ प्रदर्शित की गयी हैं।

यहाँ से प्राप्त दो और मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। एक की संख्या 'ए' १०४ है। यह लुम्बिनी वन में भगवान् के जन्म की घटना प्रदर्शित करती है। देवी महामाया शाल वृक्ष की एक शाखा पकड़े खड़ी है। उनका बायाँ हाथ एक महिला के स्कन्ध पर है। कहते हैं यह महा प्रजापति गौतमी देवी महामाया की कनिष्ठ बहन थी। उनका विवाह उनके पति शुद्धोदन के साथ हुआ था। भगवान् के जन्म के सातवें दिन देवी महामाया दिवंगत हो गयी थी। अतएव विमाता प्रजापति गौतमी ने भगवान् बुद्ध का लालन-पालन किया था। भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त होने पर महाप्रजापति गौतमी ने स्वयं प्रव्रज्या ले ली और अपने ही पुत्र की शिष्य हुई। पुत्र को शास्ता स्वीकार किया। देवी ने प्रव्रज्या के पश्चात् यह मार्मिक शब्द कहा था—मैं तुम्हारी माता हूँ और आप मेरे शास्ता हो। किन्तु किसी बुद्ध ग्रन्थ में मुझे नहीं मिला कि प्रजापति गौतमी देवी महामाया के देवदह जाते समय साथ थी। सम्भव है कालान्तर में इस प्रकार की कहानी प्रचलित हो गयी हो। अथवा किसी लेखक के ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया गया है। जिसके आधार पर यह मूर्ति बनायी गयी है।

मूर्ति के पृष्ठ भाग में एक चामर धारिणी युवती है। काश्मीर में उस समय महिलाओं की क्या वेशभूषा थी, किस प्रकार केशविन्यास, शृंगारादि करती थी इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उसका यहाँ वर्णन अप्रासंगिक होगा।

एक विचित्र खण्डित मूर्ति इस संग्रहालय में और है। मूर्ति का पाद से कटि प्रदेश तक का ही भाग शेष रह गया है। शेष भाग खण्डित कर दिया गया है। कहीं लुप्त हो गया है। यह पुरुष मूर्ति है। सिंह वाहन है। अर्थात् सिंह पर आसीन है। उसके पैर के अँगूठे से कटि तक, पादत्राण वस्त्रादि से विभूषित है। यह मूर्ति किसी कुषाण वंशीय राजा की हो सकती है। उसने अपनी शक्ति का परिचय सिंह पर बैठ कर दिया है। सिंहवाहिनी दुर्गा या देवी की यह मूर्ति नहीं है। यह किसी सैनिक राजपुरुष की मूर्ति है। इसके पद की जो वेशभूषा है वह पेशावर जिला के ग्रामीण क्षेत्रों के बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ काल तक प्रचलित थी।

पुराधिष्ठान अर्थात् पण्डरेथन का वर्णन तथा विस्तार के साथ उल्लेख महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'योग वासिष्ठ रामायण' में जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ मिलता है। राजा यशस्कर के प्रसंग में मैंने इसका वर्णन किया है। योग वासिष्ठ रामायण, पुराधिष्ठान तथा कश्मीर का सम्बन्ध है या नहीं। यह प्रश्न स्वयं एक स्वतंत्र विषय है। इस प्रसंग के लिये यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त प्रतीत होता है।

योग वासिष्ठ के वर्णन और पुराधिष्ठान के भौगोलिक आदि स्थिति का पूरा मेल खाता है। कुछ विद्वान् कह सकते हैं कि योग वासिष्ठ का यह अंश प्रक्षिप्त है। इस विवाद में यहाँ प्रवेश करना अप्रासंगिक होगा।

पर्वत के ढाल पर लगभग एक मील से अधिक के क्षेत्र में पुराने खिलौने, मूर्तियाँ आदि बहुत मिली हैं। वे इस तरह तोड़ी गयी हैं कि खण्ड मात्र रह गयी हैं। बादामी बाग के पास मैंस्ट तथा अस्पताल आदि सैनिकोपयोगी स्थान बने हैं। यहाँ के खनन में हयग्रीव, वराह, रुद्र, पार्वती, शिव, भैरव, त्रिमूर्ति, लक्ष्मी की मूर्तियाँ मिली हैं। ये इतनी बुरी तरह तोड़ी गयी हैं कि उन्हें देखकर दया आती है। मूर्तियाँ भव्य, सुन्दर तथा कलापूर्ण हैं। उनकी अपनी शैली है।

पण्डरेथन का सबसे पुराना फोटो कर्नल कोल की पुस्तक में छपा है। उसने पण्डरेथन के मन्दिर तथा कला पर प्रकाश डाला है। मन्दिर उस समय जिस अवस्था में था उसी अवस्था में आज है। केवल कुछ मरम्मत कर दी गयी है। सैनिक छावनी के कारण इस स्थान पर कुछ चहल-पहल हो गयी है। यहाँ की मूर्तियाँ जिस कठोरता के साथ भग्न की गयी थी उसका प्रमाण श्रीनगर कला संग्रहालय में संग्रहीत मूर्तियाँ हैं। यहाँ के प्राप्त वस्तुओं से कश्मीर की तत्कालीन स्थिति पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।

प्रतापसिंह संग्रहालय में कुछ मूर्तियाँ तथा मूर्तिखण्ड संग्रहीत हैं। उनमें मूर्ति संख्या १६ गान्धार शैली की है। भगवान् बुद्ध ध्यान मुद्रा में आसीन हैं। महीन चीवर धारण किये हैं। पद्मासीन हैं। मूर्ति का हस्त नासिकादि खण्डित कर दिया गया है। भगवान् बुद्ध की खड़ी मूर्ति संख्या ११ मथुरा से प्राप्त भगवान् की प्रसिद्ध मूर्ति से मिलती है।

केप्टन श्री नाइट (सन् १८६० ई०) के समय पण्डरेथन में खनन कार्य नहीं हुआ था। परन्तु उनके वर्णन से स्पष्ट होता है। वहाँ यथेष्ट भग्नावशेष बिखरे थे। कालान्तर में खनन कार्य यहाँ पर किया गया। उससे प्रमाणित हो गया। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन रहा है।

श्री नाइट ने अपनी पुस्तक में मन्दिर का जो चित्र दिया है उससे प्रकट होता है। मन्दिर इतना उपेक्षित एवं जीर्णावस्था में था कि शिखर पर एक

पेड़ जम गया था। मन्दिर के चारों ओर नरकट के लम्बे-लम्बे पेड़ उगे थे। मन्दिर का मध्य भाग दिवाल सा लगता था। वह लिखता है—'श्रीनगर से तीन कोस इधर हम लोग एक विस्तृत दानव सम्बन्धी भूमि के ध्वंसावशेष पर ठहर गये। यह स्थान पण्डरेथन कहा जाता है। यहाँ हमने पूर्णावस्था में एक इमारत देखी। इस प्रकार की इमारत अब तक हम लोगों ने नहीं देखी थी। उसके चारों ओर बहुत दूर तक इस प्रकार के चिह्न मिले जिनसे मालूम होता था कि प्राचीन काल में यहाँ विशाल नगर था।'

'अन्य रुचिकर अवशेषों में एक मूर्ति का ठोस अधिष्ठान देखा। वह एक फसल कटे हुए खेत में खड़ा था। मूर्ति की ठेहुनी से अधोभाग का शेष रह गया था। यह शिलाखण्ड सात फिट ऊँचा था। मूर्ति की उँगलियाँ तथा अँगूठे तोड़ डाले गये थे। किन्तु पाँव टूटने से बच गये थे।

'यहाँ से आधा मील दूर पर एक विशाल स्तम्भ की वेदी पड़ी थी। वह कुछ अच्छे स्थान पर थी। इसका व्यास छह फिट था। इसे यहाँ रखने के लिये भारी यन्त्र की आवश्यकता पड़ी होगी। कुछ दूर पर हमें स्तम्भ का भाग मिला। वह तीन भागों में खण्डित था। वह १२ फिट लम्बा था। उसका अधोभाग बहु कोणीय था। मध्य भाग गोलाकार था। शिरा भाग नोकदार शुण्डाकार था। वह हिन्दुओं के महादेव के मन्दिर में लगे पत्थर के समान था। (पृष्ठ १२२)

श्री कनिंघम (सन् १८४८ ई०) पण्डरेथन के विषय में लिखते हैं—'इस नाम का अर्थ पुरानी राजधानी अथवा प्राचीन मुख्य नगर होता है। विभिन्न यात्रियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से इसका उच्चारण किया है। श्री मूर क्राफ्ट ने इसे 'पण्डेथन' श्री वाइन ने 'पण्डरेण्टोन' तथा श्री वैरन हूगेल ने 'पण्डरीटन' लिखा है।

'इस मन्दिर की इमारत का उल्लेख सन् ९१३ तथा ९२१ के बीच मिलता है। तत्पश्चात् सन् ९५८ तथा ९७२ के मध्यवर्ती कालों में मिलता है। उस समय रोमन सम्राट् नीरो तुल्य राजा अभिमन्यु ने अपनी राजधानी में आग लगवा दी थी। किन्तु यह मन्दिर नष्ट होने से बच गया था।

'चूँकि यह एकमात्र मन्दिर पुरानी राजधानी में स्थित है, अतएव इसमें सन्देह नहीं कि यह वही मन्दिर है जो इस समय वर्तमान है। यह एक सरोवर के मध्य में स्थित है। चारों ओर जल है। यही स्थिति उस अग्निदाह के समय में रही होगी। अतएव अग्निदाह से यह बच गया था। जब कि अन्य इमारतें जलकर चूना और भस्म मात्र रह गयी।

'वैरन हूगेल मन्दिर को बौद्धों का मानते हैं। कहते हैं। मन्दिर के अन्दर की मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। किन्तु उनकी यह भ्रान्ति है। मन्दिर विष्णु का है। भीतर की मूर्तियों का कोई सम्बन्ध बौद्ध धर्म से नहीं है।

'श्री ट्रिवेक इसके भीतर तैर कर गये। उसे वहाँ किसी प्रकार की मूर्ति का दर्शन नहीं हुआ था। उस समय छत तक पानी था अतएव वह भीतर की मूर्तियाँ नहीं देख सके थे।

'जल के अन्दर मन्दिर बनाने का यह उद्देश्य रहा होगा कि उन्हें नागों की संरक्षता में रखा जाय। नागों के शरीर का ऊर्ध्व भाग मनुष्य तथा अधोभाग सर्प का होता है। कश्मीर में उनकी पूजा प्राचीन काल में प्रचलित थी।' जनरल एशियाटिक सोसाइटी (भाग : १६) श्री डब्लू० वेल फोल्ड (सन् १८७९ ई०) ने पण्डरेथन को 'पण्डरिटन' लिखा है। वह लिखते है—'पण्डरिटन एक समय अत्यन्त समृद्धिशाली तथा बड़ा नगर था। प्रदेश की की राजधानी था। कितने दुःख का विषय है। अपने एक पुराने राजा के पागलपन के कारण यह पत्थरों का संग्रह मात्र रह गया है।

जीर्णं श्रीविजयेशस्य विनिवार्य सुधामयम् ।
निष्कल्मषेणाश्ममयः प्राकारो येन कारितः ॥१०५॥

१०५ उस निष्कल्मष राजा ने विजयेश्वर [1] के पवित्र देव स्थान के जीर्ण हुए चूने आदि से बने प्राकार के स्थान पर नवीन पाषाण प्राकार का निर्माण कराया ।

'कहा जाता है । यह नगर एक समय मिलों में विस्तृत था । उसमें दर्शनीय भवन थे । अशोक ने एक देवस्थान निर्माण कराया था । उसमें भगवान् बुद्ध का एक धातु रखा गया था । इस समय उस पवित्र देव स्थान का पता नहीं है । उस गौरवशाली प्राचीन काल की स्मृति को जीवित रखने के लिये, इस एक मन्दिर के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रह गया है । यह मन्दिर सरोवर के मध्य में है । इसके चारों ओर विलों के उद्यान हैं । अतएव इसके भीतर बना है । बहुत लोग इसके अन्दर जाकर देख नहीं सके हैं । (पृष्ठ २३१)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०५ में 'सुधामयम्' का पाठभेद 'सौधम्' और 'प्राकारो' का पाठभेद 'प्रासादो' तथा 'कारितः' का 'निर्मितः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१०५ (१) विजयेश्वर. काल शिव विजयेश्वर का प्रसिद्ध देवालय वर्तमान विजब्रोर तथा उसके आस-पास का क्षेत्र था । इसे विजयेश्वर क्षेत्र कहते थे । स्थानीय पुरोहितों के अनुसार विजयेश्वर का प्राचीन मन्दिर लगभग १०० गज नदी तट से दूर वितस्ता सेतु के दूसरी तरफ था । यहाँ से कश्मीर के डोगरा राजा रणवीर सिंह ने अपने नवीन मन्दिर निर्माण निमित्त बहुत सामग्री प्राप्त की थी । यहाँ स्तीन सन् १८८९ में आये थे । मन्दिर के अधिष्ठान के पास कुछ टूटे हुए पत्थर तथा मलवे मिले थे । यहाँ पर कुछ निर्माण किया गया है । नवीन मन्दिर के समीप कुछ मूर्तियाँ जो पुरानी नहीं मालूम होतीं, रखी थी । यह मन्दिर नदी के ऊपर कुछ दूर पर बना है ।

विजयेश्वर का मन्दिर राजा अनन्तदेव के समय में भस्म हो गया था । राजा कलश ने उसका जीर्णोद्धार कराया था । (रा० त० ७:५२४) पुराना आकार अथवा सुधामय सम्भवतः ईंट अथवा पत्थरों के ढोकों का बना था । अशोक ने पत्थरों से उसका निर्माण कराया था ।

नीलमत पुराण में दो स्थानों पर विजयेश का उल्लेख मिलता है । पहला वर्णन चक्र संशय तथा दूसरा वितस्ता माहात्म्य के वर्णन के सन्दर्भ में मिलता है । दोनों से कह्लण की बातों की पुष्टि होती है ।

विशोकां विजयेशं च वितस्तां सिन्धुसंगमम् ।
गतान् सर्वानतिक्रम्य प्रययौ भरतं गिरिम् ॥
1056 : १२५०

'—विशोका, विजयेश, वितस्ता, सिन्धु संगम पार करते हुए वह भरतगिरि पर पहुँचा ।

विजयेशाग्रतः स्नात्वा वितस्तायां महीपते ।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते सुखम् ॥
1303 : १५१६,१५१७

'महीपते ! विजयेश्वर के सम्मुख वितस्ता में स्नान करने वाला अपने कुल का उद्धार करता स्वयं रुद्रलोक प्राप्त कर सुख भोगता है ।

उक्त उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं । विजयेश्वर तीर्थ था । विजयेश्वर घाटपर स्नान करने पर मुक्ति मिलती थी । कुल का उद्धार होता था । सुख की प्राप्ति होती थी । विजयेश का महत्त्व सिन्धु संगम जैसा महत्त्वपूर्ण था । उसकी गणना पवित्र स्थानों में थी । इस आध्यात्मिक महत्त्व के साथ दूसरा भौगोलिक महत्त्व भी प्रकट होता है । वितस्ता

सभायां विजयेशस्य समीपे च विनिर्ममे ।
शान्तावसादः प्रासादावशोकेश्वरसंज्ञितौ ॥१०६॥

१०६. उस शान्त एवं अवसाद रहित राजा ने विजयेश्वर के समीप दो प्रासादों[1] का निर्माण सभा[2] स्थान में कराया उनका नाम अशोकेश्वर[3] था।

तटपर विजयेश तीर्थ था। वर्तमान विजब्रोर अथवा ब्रिजबेहरा किंवा व्रजब्रारी ही पूर्वकालीन विजयेश्वर क्षेत्र था। वहाँ के मन्दिर में एक विजयेश का मन्दिर था। अशोकेश्वर का वर्णन नीलमत पुराण में नहीं आता है। इस अभाव के दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह हो सकता है कि नीलमत पुराण अशोक के पूर्व लिखा गया हो अथवा विजयेश यहाँ के प्राचीन नगर देवता थे अतएव उनका महत्व काशी के देवता काशी विश्वनाथ की तरह था। नीलमत पुराण ने विजयेश को ही तीर्थ तथा तीर्थ का प्रधान देवता माना होगा। अन्य देवताओं का उल्लेख विजयेश क्षेत्र में नहीं मिलता।

विजब्रोर अर्थात् विजयेश्वर श्रीनगर से १९ मील दूर स्थित है। कल्हण के अनुसार इस मन्दिर की स्थापना विजयराज ने की थी। (राज० त० २:६२) सिकन्दर बुतशिकन ने इसे नष्ट किया था। यहाँ पर बड़ी मसजिद के समीप कुछ ध्वन्सावशेष पाये जाते हैं। इस मन्दिर का स्तम्भ रतन हाजी की मसजिद में तथा प्रसाद चढ़ाने का बड़ा शिलाखण्ड मसजिद के बाहर पड़ा है। कथा है कि इस मन्दिर के नष्ट होने का समय शिलालेख पर पहले ही लिखकर रख दिया गया था। उस पर लिखा था 'बिस्मिल्लाह मन्त्रेण भशन्त विजयेश्वर।'

विजयेश्वर का उल्लेख जोन आदि की राजतरंगिणी (दत्त पृष्ठ ११, ८८, १२०, १३२, १४०, १४६, १४७, ३२२, ३७२, ३८१, ४०८) में विशेष रूप से किया गया है।

१०६ (१) **प्रासाद :** प्रासाद शब्द से किंचित् भ्रम उत्पन्न हो सकता है। आजकल प्रासाद शब्द मन्दिरों के लिये प्रयोग नहीं किया जाता। संस्कृत में प्रासाद का अर्थ—राजभवन, विशाल भवन, देवालय एवं मन्दिर है। 'प्रासादो देवभूभुजाम्।' अर्थात् देवालय एवं महल दोनों का अर्थ प्रासाद है। अमर कोष (२.२:९)

(२) **सभा :** आज भी यह प्रथा प्रचलित है। बड़े मन्दिरों में राजा तथा श्रीसम्पन्न लोग छोटे-छोटे मन्दिर अपने नाम से स्थापित करा देते हैं। काशी विश्वनाथ के मन्दिर में इस प्रकार कितने ही शिव लिंगों की स्थापना लोगों ने करायी है। छोटे-छोटे मन्दिर दिवालों तथा खाली स्थानों में बनवा दिये जाते हैं। दक्षिण भारत की यात्रा में भी मैंने विशाल मन्दिरों में यह प्रथा प्रचलित पायी है। अशोक ने भी इसी प्रकार पुण्यार्जन निमित्त विजयेश्वर जैसे पवित्र धाम में उसके सभा स्थल अर्थात् प्राकार के भीतर मन्दिर निर्माण कराया होगा।

सभा का अर्थ यहाँ सभामण्डप तथा विशाल मन्दिर का प्राकार दोनों लगाया जा सकता है। सभा का अर्थ वास, कुटी, शाला, सभा, सभाभवन, सभासद् तथा परिषद् होता है। (अमर कोष २:२.७ तथा ३:३:१३७) सभामण्डप छाया हुआ सभा का स्थान होता है। गर्भ गृह के सम्मुख ढके स्थान को सभामण्डप कहते हैं। यह सभी मन्दिरों में होता है। यहाँ पर अर्थ सभा अर्थात् विस्तृत प्राकार वेष्ठित स्थान लगाना उचित प्रतीत होता है। यद्यपि मन्दिर के सभा मण्डप में भी लोग अपने नाम से दिवालों या किसी कोने में मूर्तियाँ स्थापित कर देते हैं। अशोक के निर्मित मन्दिर निश्चय ही विजयेश्वर प्राकार के अन्तर्गत भिन्न मन्दिर थे।

(३) **अशोकेश्वर :** विजयेश्वर के प्रसंग में लिखा जा चुका है कि मन्दिर का पता नहीं चलता।

म्लेच्छैः संच्छादिते देशे स तदुच्छित्तये नृपः।
तपस्संतोषिताल्लेभे भूतेशात्सुकृती सुतम् ॥१०७॥

१०७. म्लेच्छों से कश्मीर देश संछादित हो गया था अतएव राजा ने कठोर तपस्या कर भूतेश से वरस्वरूप जलौक नामक पुत्र उनके संहार निमित्त प्राप्त किया।

मूल मन्दिर नष्ट हो गया तो उससे सम्बन्धित इमारतों आदि का नष्ट होना स्वाभाविक था। उसी के साथ अशोकेश्वर का मन्दिर भी नष्ट हो गया।

कश्मीर में भविष्य के सभी राजा, रानी, मन्त्री तथा गणमान्य लोग अपने नामों से मूर्तियों की स्थापना तथा मन्दिरों का निर्माण कराने लगे। अपने नामों के अन्त में शिव मन्दिर के लिये ईश्वर तथा विष्णु मन्दिर के लिये स्वामी शब्द जोड़ कर मन्दिर तथा मूर्ति का नाम रख देते थे। वह प्रथा कश्मीर के बौद्ध विहारों के सम्बन्ध में नहीं मिली है। यदि एकाध होंगे तो वे भी हिन्दू राजाओं द्वारा अपने नाम से बनवा दिये गये होंगे। परन्तु सर्वमान्य प्रथा यह नहीं हो सकी थी। मठों तथा शालाएँ भी व्यक्ति विशेष के नाम पर निर्माण कराये जाते थे जैसे दिद्दामठ आदि। इनका उदाहरण यथास्थान दिया गया है।

पण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठान के दो मील ऊपर पाडुचक में प्राप्त मन्दिर को अशोकेश्वर का मन्दिर कहा जाता है। किन्तु यह भ्रान्ति मात्र है। पांडुचक वास्तव में पाण्डव तीर्थ जनश्रुति के अनुसार है। नीलमतपुराण में पाण्डव तीर्थ का स्पष्ट वर्णन मिलता है। (नीलमत १३२३ तथा वेल पृष्ठ १०७)

होता है। बोधायन ने म्लेच्छ शब्द की परिभाषा की है।

गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते।
सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥

म्लेच्छ देश में उत्पन्न लोगों को भी म्लेच्छ कहा गया है।

म्लेच्छः म्लेच्छदेशः उत्पत्तिस्थानत्वेन अस्ति अस्य, म्लेच्छ' ... ...।

अमरकोषकार परिभाषा देता है। उन्हें सीमा प्रान्त की संज्ञा देता है।

प्रत्यन्तो म्लेच्छदेशः स्यात्।

कल्हण ने यूनानियों के अर्थ में ही यहाँ म्लेच्छ शब्द का व्यवहार किया है। भारत की पश्चिम-उत्तर की सीमा पर निवसित विदेशियों को म्लेच्छ कहा जाता रहा है। यह शब्द अहिन्दुओं के लिये व्यवहृत किया गया है।

यूनानियों ने बर्बर शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया है उसी अर्थ में म्लेच्छ शब्द का प्रयोग भारतीयों ने किया है। शतपथ ब्राह्मण में म्लेच्छ भाषा का निर्देश प्राप्त है। जहाँ उसे अनार्य लोगों की बर्बर भाषा कहा गया है। (श० ब्रा० ३:२:१:४)

अरब वालों ने जिस समय ईरान जीता था।

साथी अफगानिस्तान तथा भारत के पश्चिम उत्तर सीमा पर बस गये थे। उनका वहाँ राज्य भी स्थापित हो गया था।

काश्मीर की सीमापर स्थित काफिरिस्तान के लोग अपने को यूनानी वंशज कहा करते थे। वे बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में गैर मुसलिम धर्म माननेवाले थे। वे एक प्रकार से मूर्तिपूजक थे। अतएव अफगानी उन्हें काफिर और उनके भूखण्ड को काफिरिस्तान कहते थे।

अंग्रेजों ने काबुल फतह किया। उस समय काफिरिस्तान के निवासियों का एक शिष्ट मण्डल उन्हें यूरोपीय तथा अपना वंशज जानकर उनसे मिलने आया था।

कालान्तर में काफिरिस्तान पर अफगानिस्तान के अमीर अब्दुलरहमान का अधिकार हो गया। उन्हें शक्ति प्रदर्शन द्वारा मुसलिम धर्म में परिवर्तित किया गया। उनके बच्चे काबुल आदि स्थानों में इसलामी शिक्षा प्राप्ति निमित्त भेज दिये गये। जिन्होंने इसलाम धर्म स्वीकार नहीं किया वे बुरी तरह मार डाले गये। (वान् क्रिश्चियन लेस्सिन लिपजिग: रा० ६६-१८७४ 'इण्डिसचे अल्तर्यु म्स कुण्डे' भाग २: पृष्ठ २८५)

अशोक के समय यूनानी अर्थात् म्लेच्छ भारत की सीमा पर रहते थे। भारतीय भूखण्डपर आक्रमण करते थे।

कश्मीर की सीमा पर उनकी आबादी थी। अशोक के समय कश्मीर मण्डल में प्रवेश, उनके रीति-रिवाज एवं धार्मिक धारणाओं का कश्मीर मण्डल पर प्रभाव और उनका कश्मीर के भूखण्ड पर अनेक भागों में अधिकार हो गया होगा। एतदर्थ उनके उन्मूलन अर्थात् उनसे कश्मीर मण्डल की रक्षा निमित्त अशोक ने भूतेश्वर की पूजा कर पुत्र रत्न प्राप्त किया था।

कल्हण के अन्य स्थानों के वर्णनों से भी इसी बात की पुष्टि होती है। तरंग आठ में भोज के प्रसंग में वर्णन करता है कि भोज ने सीमान्त म्लेच्छ जाति से संपर्क स्थापित कर सहायता ली थी। (रा० त० ८:२७९३, २७९६)

मनुस्मृति में उन सब धर्मभ्रष्ट जातियों को म्लेच्छ की संज्ञा दे दी गयी जो भारत में कहीं भी निवास करते थे। उनका सर्व प्रथम उल्लेख भारत के पश्चिम-उत्तर की सीमा पर मिलता है। किन्तु महाभारत से मालूम होता है कि राजा भगदत्त ने समुद्रतटवर्ती म्लेच्छों के साथ युधिष्ठिर के राजसूयज्ञ में भाग लिया था। भीमसेन ने दिग्विजय के समय पूर्व दिशा में समुद्रतटवर्ती म्लेच्छों को जीता था। सहदेव ने दक्षिण तथा नकुल ने पश्चिम-उत्तर के दिग्विजय काल में म्लेच्छों पर विजय प्राप्त की थी।

स्पष्ट प्रतीत होता है। महाभारत काल में म्लेच्छ भारत में चारों दिशाओं में थे। महाभारत के युद्ध में कौरवों का पक्ष म्लेच्छों ने ग्रहण किया था। अर्जुन ने समस्त 'अटिलाल, म्लेच्छों का संहार किया था। म्लेच्छों के धंग नामक राजा का वध नकुल ने किया था। म्लेच्छहन्तृ प्रद्योत राजा का नाम म्लेच्छों के संहार करने के कारण पड़ गया था। (म० द्रो : ६८:४२-४४, ९५:३६, म० स०। २७:२५-२६, २८:४४; २९:१५, ३१:१०, म० व० १८८:२८-२९; म० आश्व० : ९१:२५; म० क० : १४.१४-१७)

स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में म्लेच्छ जाति भारती सीमा पर स्थित अभारतीय धर्म मानने वाली जाति थी। कालान्तर में उन सभी जातियों को म्लेच्छ की संज्ञा दे दी गयी जो भारतीय धर्म तथा आचार को नहीं मानते थे।

(२) भूत : भूत का अर्थ होता है-अतीत-जो बीत चुका है। घटित है। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्व आते हैं। अमरकोष-कार भूत का अर्थ करता है—लब्धं प्राप्तं विन्नं भावितमासादितं च भूतं च। (३:१:१०४) अर्थात्

म्लेच्छैः संच्छादिते देशे स तदुच्छित्तये नृपः ।
तपस्संतोषिताल्लेभे भूतेशात्सुकृती सुतम् ॥१०७॥

१०७. म्लेच्छों से कश्मीर देश संछादित हो गया था अतएव राजा ने कठोर तपस्या कर भूतेश से वरस्वरूप जलौक नामक पुत्र उनके संहार निमित्त प्राप्त किया।

मूल मन्दिर नष्ट हो गया तो उससे सम्बन्धित इमारतों आदि का नष्ट होना स्वाभाविक था। उसी के साथ अशोकेश्वर का मन्दिर भी नष्ट हो गया।

कश्मीर में भविष्य के सभी राजा, रानी, मन्त्री तथा गणमान्य लोग अपने नामों से मूर्तियों की स्थापना तथा मन्दिरों का निर्माण कराने लगे। अपने नामों के अन्त में शिव मन्दिर के लिये ईश्वर तथा विष्णु मन्दिर के लिये स्वामी शब्द जोड़ कर मन्दिर तथा मूर्ति का नाम रख देते थे। वह प्रथा कश्मीर के बौद्ध विहारों के सम्बन्ध में नहीं मिली है। यदि एकाध होंगे तो वे भी हिन्दू राजाओं द्वारा अपने नाम से बनवा दिये गये होंगे। परन्तु सर्वमान्य प्रथा यह नहीं हो सकी थी। मठों तथा शालाएँ भी व्यक्ति विशेष के नाम पर निर्माण कराये जाते थे जैसे दिद्दामठ आदि। इनका उदाहरण यथास्थान दिया गया है।

पण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठान के दो मील ऊपर पाडुचक में प्राप्त मन्दिर को अशोकेश्वर का मन्दिर कहा जाता है। किन्तु यह भ्रान्ति मात्र है। पाडुचक वास्तव में पाण्डव तीर्थ जनश्रुति के अनुसार है। नीलमतपुराण में पाण्डव तीर्थ का स्पष्ट वर्णन मिलता है। (नीलमत १३२३ तथा वेल पृष्ठ १०७)

कल्हण के समय अशोकेश्वर का मन्दिर वर्तमान था। उसने स्पष्ट उल्लेख किया है। जयसिंह की रानी रड्डादेवी ने अशोकेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। (रा० त० ८:३-९१)

१०७ (१) म्लेच्छ : म्लेच्छ का अर्थ—अनार्य, जंगली भाषा बोलने वाले, असंस्कृत भाषाभाषी, शास्त्रों को न मानने वाले, जाति बहिष्कृत आदि होता है। बोधायन ने म्लेच्छ शब्द की परिभाषा की है।

गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते ।
सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥

म्लेच्छ देश में उत्पन्न लोगों को भी म्लेच्छ कहा गया है।

म्लेच्छः तद्देशः उत्पत्तिस्थानत्वेन अस्ति अस्य, म्लेच्छ '' ''' ।

अमरकोषकार परिभाषा देता है। उन्हें सीमा प्रान्त की संज्ञा देता है।

प्रत्यन्तो म्लेच्छदेशः स्यात् ।

कल्हण ने यूनानियों के अर्थ में ही यहाँ म्लेच्छ शब्द का व्यवहार किया है। भारत की पश्चिम-उत्तर की सीमा पर निवसित विदेशियों को म्लेच्छ कहा जाता रहा है। यह शब्द अहिन्दुओं के लिये व्यवहृत किया गया है।

यूनानियों ने बर्बर शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया है उसी अर्थ में म्लेच्छ शब्द का प्रयोग भारतीयों ने किया है। शतपथ ब्राह्मण में म्लेच्छ भाषा का निर्देश प्राप्त है। जहाँ उसे अनार्य लोगों की बर्बर भाषा कहा गया है। (श० ब्रा. ३:२:१:४)

अरब वालों ने जिस समय ईरान जीता था। ऊँची सभ्यता वाले यूनानियों को भी 'अजम' अर्थात् गूँगा अर्थात् बात न समझने वाला कहते थे।

चन्द्रगुप्त के समय भारत पर अलक्सुन्दर, किंवा अलक्षेन्द्र (अलेकजेण्डर), सिकन्दर, का आक्रमण हुआ था। दार्वाभिसार के राजा आभी का सम्पर्क सिकन्दर से था। यूनानियों के लौट जाने तथा सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके अनेक यूनानी

साथी अफगानिस्तान तथा भारत के पश्चिम उत्तर सीमा पर बस गये थे। उनका वहाँ राज्य भी स्थापित हो गया था।

काश्मीर की सीमापर स्थित काफिरिस्तान के लोग अपने को यूनानी वंशज कहा करते थे। वे बीसवी शताब्दी के आरम्भ में गैर मुसलिम धर्म माननेवाले थे। वे एक प्रकार से मूर्तिपूजक थे। अतएव अफगानी उन्हें काफिर और उनके भूखण्ड को काफिरिस्तान कहते थे।

अंग्रेजों ने काबुल फतह किया। उस समय काफिरिस्तान के निवासियो का एक शिष्ट मण्डल उन्हें यूरोपीय तथा अपना वंशज जानकर उनसे मिलने आया था।

कालान्तर मे काफिरिस्तान पर अफगानिस्तान के अमीर अब्दुलरहमान का अधिकार हो गया। उन्हें शक्ति प्रदर्शन द्वारा मुसलिम धर्म में परिवर्तित किया गया। उनके बच्चे काबुल आदि स्थानों में इसलामी शिक्षा प्राप्ति निमित्त भेज दिये गये। जिन्हो ने इसलाम धर्म स्वीकार नही किया वे बुरी तरह मार डाले गये। (वान् क्रिस्चियन लेस्सिन लिपजिग: रा० ६६-१८७४ 'इण्डिसचे अल्तथुंम्स कुण्डे' भाग २: पृष्ठ २८५)

अशोक के समय यूनानी अर्थात् म्लेच्छ भारत की सीमा पर रहते थे। भारतीय भूखण्डपर आक्रमण करते थे।

कश्मीर की सीमा पर उनकी आबादी थी। अशोक के समय कश्मीर मण्डल मे प्रवेश, उनके रीति-रिवाज एवं धार्मिक धारणाओं का कश्मीर मण्डल पर प्रभाव और उनका कश्मीर के भूखण्ड पर अनेक भागो में अधिकार हो गया होगा। एतदर्थ उनके उन्मूलन अर्थात् उनसे कश्मीर मण्डल की रक्षा निमित्त अशोक ने भूतेश्वर की पूजा कर पुत्र रत्न प्राप्त किया था।

कल्हण के अन्य स्थानों के वर्णनों से भी इसी बात की पुष्टि होती है। तरंग आठ मे भोज के प्रसंग मे वर्णन करता है कि भोज ने सीमान्त म्लेच्छ जाति से संपर्क स्थापित कर सहायता ली थी। (रा० त० ८:२७६३, २७६६)

मनुस्मृति मे उन सब धर्मभ्रष्ट जातियों को म्लेच्छ की संज्ञा दे दी गयी जो भारत मे कही भी निवास करते थे। उनका सर्व प्रथम उल्लेख भारत के पश्चिम-उत्तर की सीमा पर मिलता है। किन्तु महाभारत से मालूम होता है कि राजा भगदत्त ने समुद्रतटवर्ती म्लेच्छों के साथ युधिष्ठिर के राजसूयज्ञ में भाग लिया था। भीमसेन ने दिग्विजय के समय पूर्व दिशा में समुद्रतटवर्ती म्लेच्छों को जीता था। सहदेव ने दक्षिण तथा नकुल ने पश्चिम-उत्तर के दिग्विजय काल में म्लेच्छो पर विजय प्राप्त की थी।

स्पष्ट प्रतीत होता है। महाभारत काल में म्लेच्छ भारत मे चारो दिशाओं में थे। महाभारत के युद्ध में कौरवों का पक्ष म्लेच्छो ने ग्रहण किया था। अर्जुन ने समस्त 'जटिलान, म्लेच्छो का संहार किया था। म्लेच्छों के धंग नामक राजा का वध नकुल ने किया था। म्लेच्छहन्तृ प्रद्योत राजा का नाम म्लेच्छों के संहार करने के कारण पड़ गया था। (म० द्रो : ६८:४२-४४, ९५:३६, म० स० : २७.२५-२६, २८:४४; २९:१५, ३१·१०, म० व० १८८:२८-२९; म० शान्ति० : ९१:२५; म० क० : १४:१४-१७)

स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रारम्भ मे म्लेच्छ जाति भारती सीमा पर स्थित अभारतीय धर्म मानने वाली जाति थी। कालान्तर में उन सभी जातियो को म्लेच्छ की संज्ञा दे दी गयी जो भारतीय धर्म तथा आचार को नही मानते थे।

(२) भूत : भूत का अर्थ होता है-अतीत-जो बीत चुका है। घटित है। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्व आते हैं। अमरकोष-कार भूत का अर्थ करता है—लब्धं प्राप्तं विन्नं भावितमासादितं च भूतं च। (३:१:१०४) अर्थात्

लब्ध प्राप्त, विग्र, भावित, आसादित, और भूत हैं। पुनः (३:३.७७) मे अर्थ किया गया है।

अत्याहिते महाभीतिः कर्म जीवानपेक्षि च।
युक्ते क्ष्मादावृते भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु॥

अर्थ होता है अत्याहितं—महाभय, साहसी कर्म, न्याय, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, सत्य, प्राणी, बीता समय।

ब्रह्माण्ड पुराण के मतानुसार भूतों की उत्पत्ति भूत तत्व से हुई थी। इनका भोजन पिशित था। (२ ८ ३९-४०) 'पिशित' का अर्थ होता है मांस-भक्षी, राक्षस, पिशाचादि।

इनका वर्णन अद्भुत है। वे कृशाङ्ग अर्थात् छोटे कद के थे। लंबकर्ण थे। प्रलम्बोष्ठ थे। लम्बे दाँत युक्त थे। नखिन् अर्थात् नख रखते थे। स्थूलपिण्डक अर्थात् स्थूल शरीर वाले थे। वभ्रुव अर्थात् लम्बी भौं वाले थे। हरि तथा मुंज केश थे। ठिगने थे। वर्ण नीललोहित था। पिंगल वर्ण भी होता था।

संगीत विरोधी होते थे। शक्तिशाली होते थे। सर्प यज्ञोपवीत धारण करते थे। शरीर को अनेक रंगों के लेप द्वारा सज्जित करते थे। केशों को मुकुट तुल्य बाँध कर रखते थे। हाथी का चमड़ा धारण करते थे, अथवा नग्न रहते थे। इनके आयुध, शूल, धनुष, निषंग, वरूथ तथा असि थे। यह वर्णन अफरीका तथा आस्ट्रेलिया की घोर जंगली जातियों से मिलता है।

पूर्व काल में अत्यन्त जंगली जाति थे। किन्तु असुर एवं देवों के सम्पर्क के कारण इनकी स्थिति में विशेष सुधार हो गया था। असुरों के सम्पर्क के कारण नृत्य एवं संगीत इन्होंने सीखा। एक तरह की सामाजिक व्यवस्था में इन्होंने अपने को संघटित किया। उनकी मूल सामाजिक व्यवस्था क्या थी। पुराणों आदि में विस्तार से वर्णन नहीं मिलता।

स्वायम्भुव मन्वन्तर के पूर्व युग में भारतवर्ष में ये निवास करते थे। इनका निवासस्थान हिमाचल का पर्वतीय प्रदेश था। धुर उत्तरीय हिमालय भाग में रहते थे। भारतवर्ष के सबसे पुराने रहनेवाले थे। मूल निवासी थे।

असुरों तथा भूत जाति में प्रायः संघर्ष होता रहा। उत्तर में असुरों का दबाव पड़ने लगा। वे अपनी रक्षा निमित्त विन्ध्य की पहाड़ियों में चले आये। वहीं रहने लगे थे।

शंकर भगवान् तथा अन्धकासुर के युद्ध में भूतों ने शंकर के पक्ष में रहकर युद्ध किया था। इस युद्ध में विनायक भूत ने सर्वप्रथम अन्धकासुर पर आक्रमण किया था। अंधक ने विनायक को परास्त कर दिया। अनन्तर नंदी तथा विनायक दोनों ने अन्धकासुर पर आक्रमण किया था। उस युद्ध में अन्धकासुर पराजित हो गया था। अंधक शंकर की शरण में आ गया। शंकर ने उसे भूतगण का गणपति बनाया। उसका नाम भृंगी पड़ा।

भूत एक जाति थी। यह पर्वतीय जाति थी। पिशाच एवं नाग जाति की तरह उत्तर पश्चिम भारतीय सीमा के आस-पास रहते थे।

कश्मीर में नाग तथा पिशाचों के संघर्ष के कारण आर्यों का वहाँ आगमन हुआ। उसी प्रकार प्रतीत होता है। भूत तथा असुरों के संघर्ष के कारण कालान्तर में दुर्बल होने पर भूत जाति उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ने लगी। अन्त में विन्ध्य की पहाड़ियों में शरण ली। वैवस्वत मन्वन्तर के काल तक उनका स्थानान्तरण उत्तर से दक्षिण की ओर पूर्ण हो गया था। (वायु पुराण ३०:८९-१०१, वामनपुराण ६७:१-२३; ब्रह्माण्डः १:३२:८८-८९; २:३:२-३४ २:८.३९-४०; २:९:६८-७८;)

भूतों को प्रेतों की संज्ञा कालान्तर में दे दी गयी। उन्हें शरीरहीन मृतकों के जीव रूप में मान लिया गया। बात इसके विपरीत है। भूत को

एक जाति रूप में जीवित जागृत प्राणी माना गया है। पुराण इसका स्पष्ट निर्देश करते है। वह एक जाति थी। किन्तु अशिक्षित थी। नाग तथा पिशाच जाति से गये गुजरे थे। उनका कोई साहित्य तथा इतिहास नहीं मिलता। केवल पुराणों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है।

पुराणों के अनुसार भूत प्राचीन भारतीय मानव जातियों में एक जाति थी। पुराण मानव जाति के चार वर्ग करते है : (१) धर्म प्रजा (२) ईश्वर प्रजा (३) काश्यपीय प्रजा तथा (४) पुलह प्रजा।

धर्म प्रजा की उत्पत्ति धर्म ऋषि से हुई थी। ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति ईश्वर से हुई थी। काश्यपी प्रजा की उत्पत्ति काश्यप ऋषि से हुई थी। पुलह प्रजा की उत्पत्ति पुलह ऋषि से हुई थी। भूत योनि प्राप्त प्राणियों की पुलह प्रजा में गणना होती है। (ब्रह्माण्ड पुराण १·३२ ८८, २:३·३-३५ तथा २ ७)

पुराणों में भूतों के राजा की संज्ञा रुद्र वैदिक देवता है। रुद्र को भूतनायक तथा गणनायक कहा गया है। भूतों को रुद्र का अनुचर एवं भव परिषद् कहा गया है।

रुद्र प्रतीत होता है। कोई एक व्यक्ति नहीं थे। भूतों के राजा की सामूहिक संज्ञा थी। अनेक स्थानों पर इनके राजा को गणपति भी कहा गया है। यह गणपति आर्य कालीन गण राज्य के अध्यक्ष एवं सभापति से भिन्न थे।

उनमें जो सबसे शक्तिशाली किंवा बलवान व्यक्ति होता था वह राजा निर्वाचित किया जाता था। उसका नाम रुद्र रखा जाता था। पुराणों में इस प्रकार के दो रुद्रों का उल्लेख मिलता है। वीरभद्र सिंहमुख नामक भूतगणों का प्रमुख था। (वामन पुराण : ४:१७) दूसरे रुद्र का नाम नन्दिकेश्वर था। शैलादि नामक भूत गणों का नेता था। (मत्स्य पुराण : १८१:२)

वामन पुराण भूतगणों की जनसंख्या ग्यारह करोड़ देता है। उनमें स्कंद, शाख एवं भैरवादि प्रमुख थे। इसी पुराण में भूतों के रूप एवं अस्त्रों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

उक्त पुराण में भूतों की आकृति का भी वर्णन किया गया है। जिस प्रकार किन्नरों को 'अश्वमुख' कहा गया है। उसी प्रकार भूतों को 'वानरास्य' एवं 'मृगेन्द्र वदन' कहा गया है। भस्म, खट्वांग आदि उनके आयुध थे। इनकी ध्वजा पर किसी पशु या पक्षी की आकृति बनी रहती है। प्रत्येक गण ध्वजा के नाम पर 'मयूरध्वज' आदि नाम से सम्बोधित किया जाता था। (वामन पुराण : ६७:१–२३)

भूतों को ऊर्ध्वरेतस् कहा गया है। अर्थात् वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उनमें विवाह पद्धति मालूम नहीं पड़ती। किन्तु रुद्राणी आदि कतिपय भूत स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। इनका वर्णन मार्कण्डेय, वामन पुराणों तथा देवी माहात्म्य में मिलता है। इनके आकृति का जो वर्णन किया गया है वह आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के जंगली जातियों से मिलता है।

बौद्ध ग्रन्थों में भूत-प्रेत शब्द आता है। प्रेत को वे एक योनि मानते हैं। परन्तु भूत को दिवंगत व्यक्ति की आत्मा किंवा शरीर विहीन प्राणी नहीं मानते। 'भूत गाम' शब्द का प्रयोग किया गया है। वृक्षों आदि को काटने तथा गिराने पर प्रायश्चित्त करने का विधान है उसे 'भूत गाम' की संज्ञा दी गयी है। भूत से प्रेत अलग माने गये है। प्रेतों को पेच्च किंवा पेत आस अर्थात् प्रेत कहते हैं। प्रेत वत्थु तथा वम्हजाल सुत्त में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

मैं समझता हूँ। कश्मीर में नाग तथा पिशाचों के पूर्व भूत जाति पर्वतीय क्षेत्रों में रहती थी। वह पूरे आदिवासी थे। भारत तथा कश्मीर के सबसे प्राचीन मानव असभ्य असंस्कृत प्राणी थे। एक समय

आया। नाग जाति ने उन्हें उद्‌वासित किया होगा। भूतों के नागों का यज्ञोपवीत पहनने का दो अर्थ हो सकता है। एक तो मुण्डमाला के समान नागों की हत्या का प्रतीक होगा दूसरा नागों से उनमें किसी प्रकार सन्धि हो गयी थी। प्रतीक स्वरूप हृदय स्थान पर यज्ञोपवीत धारण करते थे। शंकर किंवा रुद्र दोनों का अधिपति होकर भूतेश तथा नागेश हो गये। भूतगण नागगण उनके गण बन गये।

भूत शब्द शायद इसलिये प्रयोग किया गया कि वे भूत की एक जाति थे। उनका मिश्रण पिशाच, नाग तथा आर्यों में हो गया अतएव उनका जाति का चाहे जो भी नाम रहा हो उसकी संज्ञा भूत की रख दी गयी। अर्थात् वह जाति जो भूत काल में थी। आजकल आदिवासियों में अनेक जाति तथा भाषा-भाषियों तथा धर्मावलम्बियों का बोध होता है। वास्तव में आदिवासी किंवा अनुसूचित कोई एक वर्ग नहीं है। इसी प्रकार भूत शब्द वर्ग तथा समष्टि वाचक है; उससे एक वर्ग का बोध होता है। उसमें कितनी ही जातियाँ तथा उपजातियाँ क्यों न रही हों। नाग जाति के लोप हो जाने पर भी जैसे नागेश्वर, पिशाच जाति के लुप्त होने पर पिशाचमोचन तथा पिशाचेश्वर हैं। उसी प्रकार भूत जाति के लुप्त हो जाने पर भी भूतेश्वर उस लुप्त जाति का एक प्रतीक है।

प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार व्यक्ति मरने के पश्चात् भूत हो जाता है। शरीर विहीन प्राण अन्तरिक्ष में विहार करता है। शिव संहारक देवता हैं। इस शरीर के संहार के पश्चात् काया हीन प्राण शेष रह जाता है। वह भूत है। उसके देवता जिसके कारण शरीरस्थ प्राण अशरीरस्थ हो जाता है। भूत के नेता भूतेश हो जाते हैं। भूतेश्वर की पूजा का प्रचलित रूप यही है। वह भूतों के देवता हैं। शिव के नाना रूपों में यह भी एक रूप है।

केवल हिन्दू धर्म की गाथाओं में प्रेतादि का वर्णन नहीं परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में भी खूब वर्णन मिलता है। बौद्ध पुनर्जन्म मानते हैं। कर्म के अनुसार मनुष्य जन्म लेता है। मुस्लिम कथानकों में भी जिनों का वर्णन मिलता है।

भूतेश। कश्मीर में प्राचीन काल से शिव भूतेश की पूजा प्रचलित है। उसने कश्मीर के सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक जीवन को प्रभावित किया है।

हिन्दू शास्त्रों में द्वादश ज्योतिर्लिंगों और उनके साथ उपलिंगों का उल्लेख मिलता है। भूतेश एक ज्योतिर्उपलिंग है। द्वादश ज्योतिर्लिंग (१) सोमेश्वर, (२) मल्लिकार्जुन, (३) महाकालेश्वर (४) ओंकारेश्वर (५) केदारेश्वर (६) भीम शंकर (७) काशी विश्वनाथ (८) त्र्यम्बकेश्वर (९) वैद्यनाथ (१०) नागेश्वर (११) रामेश्वर तथा (१२) घुश्मेश्वर हैं।

केदारेश्वर के उपलिंग भूतेश हैं। उनका स्थान यमुना तट है यथा—'केदारेश्वरसम्भूतं भूतेशं यमुनातटे।' भूतेश ज्योतिर्लिंग नागेश्वर के भी उपलिंग हैं। यह शिल्लिका सरस्वती तट पर स्थित हैं। शिल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम्—'

भारतवर्ष में बावन शक्तिपीठ हैं। उनमें शक्ति पीठ 'त्रिसन्ध्या' कश्मीर में है। यहाँ पर देवी सती का अंग कंठ गिरा था। देवी का यहाँ नाम महामाया पड़ा था। कहा गया है। भैरवी त्रिसन्ध्येश्वर है। इसी प्रकार देवी सती का केशजाल वृन्दावन में गिरा था। देवी का नाम उमा तथा भैरव का नाम भूतेश है।

कंकणी नदी का संकोण गर्व शैल वाह के दक्षिण दिशा में प्रवाहित है। कंकणी के तट पर वह वेगथ (वसिष्ठाश्रम) ग्राम से तीन मील ऊर्ध्व दिशा में भूतेश है। वहाँ पर सत्तरह मन्दिरों के भग्नावशेष मिलेंगे। इनका उल्लेख विशप कोवी ने सन् १८६६ में अपनी पुस्तक के पृष्ठ १०१ तथा मेजर कोल ने एनसिपण्ट विल्डिंग इन कश्मीर पृष्ठ ११ पर किया है।

उक्त मन्दिर समय समय पर कश्मीर के राजाओं द्वारा निर्माण कराये गये थे। भूतेश्वर जाते समय एक ऊर्ध्व पर्वतीय खण्ड मिलता है। इसे भरतगिरि कहते है। यहाँ एक लघु सरोवर है। उसे ब्रह्म सर कहते है। नीलमत पुराण के अनुसार हरमुकुट, नन्दिपर्वत, भरतगिरि, अमरेश्वर, महादेव गिरि, धनद तथा वैश्रवण, इन्द्र कील, गौरीशिखर, उशोरिका, पंचालधारा, ब्रह्मगिरी, अन्तर्गिरी, पर्वतों को श्रेणियों में आते हैं।

श्रीनगर सोन मार्ग राजपथ पर बुसन से एक सड़क फूटकर पर्वतीय ग्राम वेगथ की ओर जाती है। यह वेगथ नाला के पार्श्व से चलती है। स्थल सघन देवदार तथा फर पादपावली से हरित है। चारों ओर उत्तुंग पर्वतमालाएँ है। नरनाग का उत्तुंग शिखर जैसे इस यात्रा का अन्तिम स्थान है। सात किंवा आठ मील की यात्रा समाप्त कर यात्री नरनाग पहुँचता है। नरनाग मन्दिरों का समूह है। उसे वेगथ मन्दिर समूह की संज्ञा विदेशी पर्यटकों ने दी है। वेगथ ग्राम से तीन मील दूर मन्दिर समूह है।

मैंने पहली बार यहाँ की यात्रा की थी। मार्ग कष्टप्रद था। कुछ दूर तक सड़क नाम मात्र के लिये बनी थी। तत्पश्चात् पगडण्डी का आश्रय लेना पड़ा था। दूसरी वार सन् १९६४ की यात्रा में सड़क नरनाग तक करीब बन चुकी थी। वहाँ ठहरने के लिये डाक बंगला बन रहा था। पहली यात्रा मैंने सन् १९५६ में की थी। उस समय कश्मीर सरकार से कहा था। इस स्थान तक पहुँचने का मार्ग सुगम बना दिया जाय। उस समय मेरे साथ पचास संसद् सदस्यों का दल कश्मीर गया था। किन्तु भूतेश्वर जाने का कोई साहस नही कर सका। मैंने यह यात्रा श्री गुलाम बख्शी तत्कालीन कश्मीर के मुख्य मन्त्री के प्रबन्ध की सुविधा के कारण की थी। अन्यथा यात्रा असम्भव थी। अब सड़क बन गयी है। डाक बंगला तैयार हो गया है। छोटी कार अथवा जिप से सुगमता पूर्वक जाया जा सकता है।

यह स्थान मुझे कश्मीर में बहुत ही आकर्षक, भव्य तथा जीवनमय मिला। स्थान जागृत है। जैसे जैसे व्यक्ति भूतेश्वर के समीप पहुँचता चलता है, उसके मन पर स्थान की भव्यता का गम्भीर प्रभाव पड़ता जाता है।

मुझे वेगथ से नरनाग तक दूसरी बार की यात्रा में पैदल चलना पड़ा था। पैदल चलने में विचित्र आनन्द का अनुभव होता है। बढ़ते चलिये उतने ही प्राकृतिक दृश्य की सुन्दरता बढ़ती मिलेगी।

नाला किंवा कंकणी नदी के तट से मार्ग चलता है। एक ओर नदी का कलकल निनादित प्रवाह तथा दूसरी ओर देवदार तथा चीड़ के वृक्षों की सघन छाया, नदी के गर्त के दोनों ओर ऊँचे होते जाते अत्यन्त हरित पादपपूर्ण पर्वतों की श्रेणी, उनपर वृक्षों का वायु प्रवाह में झूमना, हृदय पर अपना विचित्र प्रभाव छोड़ता है। स्थान निर्जन होने पर भी मन उचटता नही। नदी का निनाद मन बहलाता रहता है। एकान्त का तीव्र अनुभव नहीं होने देता।

भूतेश्वर की ओर चलते रहने पर सम्मुख हिमाच्छादित हरमुकुट पर्वत जैसे ऊँचा उठता जाता है। पृष्ठ भाग में उपत्यका को घेर कर बन्द कर देता है। पहले हरित तत्पश्चात् हिमाच्छादित पर्वत मन पर सौन्दर्य मिश्रित भय उत्पन्न करता है।

मन्दिर से दो फर्लांग पहले वेगथ की ओर एक नाला पड़ता है। नाला पर लकड़ी का पुल बना है। उस पर खड़े होकर वाम पार्श्व में देखने पर एक विचित्र दृश्य मिलता है। दो हरित शिखरों के मध्य एक हिमाच्छादित पादप हीन शिखर झाँकता दिखायी पड़ता है। उसके तीन छोटे छोटे शिखर त्रिमूर्ति तुल्य लगते है।

मन्दिर समूह के समीप पहुँचते ही मार्ग का श्रम स्थान की अभिरामता के कारण तिरोहित हो जाता है। चारों ओर उत्तुंग शिखरमाला खड़ी मिलती है। पर्वतमालायें शिखर से मूल तक अत्यधिक हरित हैं। उनका दृश्य मन को मुग्ध कर देता है। विश्व में इतना सुन्दर पर्वतीय दृश्य दुर्लभ है।

प्राचीन काल में वशिष्ठाश्रम (वैनय) से लेकर मन्दिर समूह तक तपस्वियों के आश्रम थे। तीर्थ यात्रा पथ के दोनों ओर ब्राह्मण रहते थे। परन्तु इस समय यहाँ गूजरों की आबादी है। कृषि में मक्का यहाँ की मुख्य उपज है। गूजर हिन्दू तथा मुसलमान दोनों होते हैं। यहाँ के आबाद गूजर मुसलमान हैं।

यह स्थान जंगल है। सम्भव है कालान्तर में पर्यटक-केन्द्र बन जाने पर पुष्ट और विकसित हो जाय।

वन में भालू हैं। वे मक्का खा जाते हैं। उनसे रक्षा का विचित्र उपाय ग्रामीणों ने निकाल रखा है। शेर से भालू भय खाता है। शेर की आँखें अन्धकार में चमकती हैं। अतएव ग्रामीण दो स्थानों पर करीब-करीब आग जला देते हैं। दूर से मालूम होता है। शेर खड़ा है। उसकी आँखें चमक रही हैं। भालू भयभीत हो जाता है। समीप नहीं आता।

शेर से भी सुरक्षा की तरकीब ग्रामीणों ने ने निकाल ली है। शेर आग से डरता है। ग्रामीण आग की ज्वाला प्रज्वलित करते हैं। शेर पास नहीं आता। भाग जाता है। सड़क निर्माण तथा पर्यटकों के आवागमन के कारण भालू तथा शेर से स्थान निरापद हो गया है। वे दूर जंगलों में चले गये हैं।

सन् १८९९ में लेफ्टिनेण्ट कर्नल श्री हेनरी एच. कोल ने (सुपरिन्टेन्डेन्ट आर्कियालोजिकल विभाग उत्तर पश्चिम प्रान्त) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एन्शियण्ट बिल्डिङ्स इन कश्मीर' लन्दन से प्रकाशित करवायी थी। वह उपलब्ध है। उसमें यहाँ के मन्दिर समूहों का चित्र दिया गया है। उस समय मन्दिरों की क्या अवस्था थी उन चित्रों के देखने से पता चलता है।

श्री कोल ने यहाँ के मन्दिर समूहों को दो वर्गों में विभक्त कर उनका नामकरण किया है। एक का नाम राजदैन बल तथा दूसरे का नाग बल मन्दिर समूह रखा है। प्रथम मन्दिर समूह की संज्ञा राजदैन बल तथा पीछे वाले मन्दिर समूह की संज्ञा नागबल दिया है। विशप कोवी ने नागबल को पूर्वीय तथा राजदैन बल को पश्चिमी मन्दिर समूह कहा है। विशप कोवी के समय मन्दिरों पर घास, फूस बहुत जमे थे। (जे० एस० बी० १८६६ पृष्ठ १०१) पूर्वीय मन्दिर समूह अर्थात् नाग बल किंवा भूतेश मन्दिर के प्राकार की उत्तर पूर्व दिशा में एक छोटा सरोवर है। इस सरोवर को नारान नाग कहते हैं।

नीलमत पुराण तथा कल्हण के अनुसार यह सरोवर प्रसिद्ध सोदर तीर्थ है। इस तीर्थ से बीस गज पश्चिम बड़े मन्दिर के प्राकार के बाहर उत्तराभिमुख एक और मन्दिर था। यह मन्दिर भैरव का मन्दिर था। नागबल अर्थात् पूर्वीय मन्दिर समूह में बड़ा मन्दिर शिव भूतेश का था। राजदैन बल अर्थात् पश्चिमी मन्दिर समूह में बड़ा मन्दिर शिव ज्येष्ठेश का था। इस मन्दिर के पश्चिम दक्षिण कोण विशप कोवी को शिवलिंग का अधिष्ठान किंवा अरघा मिला था जिसपर शिव लिंग स्थापित किया जाता है। वह शिव अधिष्ठान ज्येष्ठेश का था। मैंने चारों ओर लगभग एक घण्टा तक उसे खोजा। परन्तु वह मुझे मिला नहीं। अतएव नहीं कह सकता कि उसका रूप क्या था। यदि वह मिल जाता तो शिव लिंग जिस स्थान पर प्रतिष्ठित किया जाता है उसके घेरे, गहराई तथा आकार से कल्पना की जा सकती थी कि शिवलिंग का प्रकार तथा आकार क्या था।

कर्नल श्री कोल श्रीनगर से दो पड़ाव चलकर यहाँ पहुँचे थे। पहला पड़ाव १० मील तथा दूसरा

१५ मील पर डाला था। आज से १०० वर्ष हो गये। उस समय वेगथ का मार्ग इतना संकीर्ण था कि यात्रा कठिनता से हो सकती थी। मार्ग में चीड़ तथा फर के इतने वृक्ष थे कि उन्हें काट कर श्री कोल यहाँ तक पहुँच सके थे।

ज्येष्ठेश्वर तथा भूतेश्वर के मन्दिरों के मध्य लगभग २०० गज का अन्तर है। ज्येष्ठेश्वर मन्दिर के पृष्ठ भाग में सर्व प्रथम आयताकार एक चबूतरा १०० फीट लम्बा तथा ६७ फीट चौड़ा मिलता है। उसके पश्चात् भूतेश मन्दिर का ध्वंसावशेष पडता है।

वेगथ की ओर से पहुँचने पर प्रथम ध्वंसावशेष ज्येष्ठेश्वर किंवा राजदैन बल समूह का मन्दिर पड़ता है। इसका मुख्य मन्दिर श्री कोल के समय आज ही जैसा खडा था। उसका प्राकार १७६ फीट लम्बा उत्तर-दक्षिण तथा १३० फीट चौड़ा पूरब-पश्चिम है। प्राकार की नींव का आकार आज भी अक्षुण्ण है। यद्यपि पत्थर लोग उठा ले गये हैं। नींव के पत्थर शेष रह गये हैं। उनसे प्राकार के आकार का अनुमान होता है।

ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर २४ वर्ग फीट में है। इसका बहिर्वेशन चारों तरफ ३×१५ फीट ६ इंच है। मन्दिर चौकोर है। मन्दिर के पूरब तथा पश्चिम दोनों ओर आमने सामने दो द्वार हैं। द्वार अलंकृत हैं। उनमें देवी तथा देवताओं के चित्र खोदे गये थे। इस समय उन मूर्तियों की एक प्रकार से छाया मात्र ही रह गयी है।

मन्दिर के दक्षिण तथा उत्तर की दिवालें बन्द हैं। बन्द दिवालों के बाहरी तरफ बड़े गवाक्ष बने हैं। उनमें पूर्व काल में मूर्तियाँ स्थापित थीं। नागबल अर्थात् भूतेश्वर मन्दिर की अपेक्षा ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर अधिक अच्छी हालत में है। इसकी छत शिखर सुरक्षित है। वह मन्दिर की रचना तथा तत्कालीन स्थापत्य पर प्रकाश डालता है। छत तथा शिखर पत्थरों बनी है। मन्दिर के प्रागण में पड़े शिलाखण्डों का रूप काल प्रभाव के कारण कुछ विकृत हो गया है। कहना कठिन है। शिला स्तम्भ गोल थे, अठपहले थे अथवा चौपहले थे। स्तम्भों के अधिष्ठान यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं।

कर्नल कोल ने इस मन्दिर का प्लान पृष्ठ ७:६८ तथा मन्दिर का चित्र ८:६८ तथा ९:६८ पृष्ठों पर दिया है। उसमें ज्येष्ठेश्वर मन्दिर को लेकर ६ मन्दिर प्रदर्शित किये गये हैं। पुस्तक के चित्र देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मन्दिरों पर वृक्षादि जम गये थे। उनकी रक्षा तथा मरम्मत का भी प्रबन्ध नहीं किया गया। मुद्रित चित्र देखने से मन में भय का संचार होता है। मन्दिर वास्तव में भूतों का निवास होगा धारणा अनायास उत्पन्न हो जाती है।

प्रागण में घास, झाड़ियाँ तथा पेड़ लग गये हैं। वह एक उपेक्षित वन का रूप प्रकट करता है। सब कुछ बिखरा, अस्त-व्यस्त, टूटा-फूटा तथा भयंकर रूप में उपेक्षित तथा विघटित है।

जिस समय मैं दूसरी बार पहुँचा तो घास-पात वृक्षादि साफ कर दिये गये थे। बडे मन्दिर का उपयोग गूजर वर्षा तथा तुषारपात से रक्षा निमित्त करते हैं। उनमें अपने पशु बाँधते हैं। मन्दिर की मूर्ति जहाँ थी वहाँ गोबर तथा कीचड़ सड़ रहा था। मन्दिर में किसी प्रकार की मूर्ति तथा अधिष्ठान नहीं है। जिस समय यह मन्दिर नष्ट किया गया होगा, उस समय लिंग किंवा मूर्ति कंकणी नदी में या तो टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दी गयी होगी।

कर्नल कोल ने ६ मन्दिरों का उल्लेख किया है। परन्तु मैंने यहाँ पर छोटे-बड़े मिलाकर ११ मन्दिरों का आकार देखा। श्री कोल का प्लान अधूरा है। तत्कालीन समय में पेड़ों की झुरमुट और सघन झाड़ियों के कारण, श्री कोल को सबका पता नहीं लग सका था। बड़े मन्दिरों को ही वे लक्ष्य कर सके थे।

ज्येष्ठेश्वर मन्दिर की उत्तर दिशा में ६ मन्दिर हैं। दक्षिण दिशा में एक भी मन्दिर नहीं है। उत्तर

तरफ मन्दिर की नीव से प्रांगण ९२ फीट है। किन्तु दक्षिण तरफ केवल ३५ फीट है। कोई भी मन्दिर इस प्रकार अपने मूल रूप में जब कि भारतीय स्थापत्य, वास्तु तथा मूर्तिकला इतनी विकसित हो चुकी थी, त्रुटि नहीं उपस्थित कर सकता। कश्मीर के प्राय: सब मन्दिर प्रागण की मध्य रेखा पर ही *मिलेंगे। भूतेश्वर का मन्दिर भी ऐसा ही है।* परन्तु ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर उत्तर-दक्षिण के प्रागण खण्ड के मध्य मे नही है। अतएव निश्चय ही दक्षिण मन्दिर का भाग कंकणी नदी के गर्त मे चला गया है।

मेरा निश्चित मत है। दक्षिण का भाग कंकणी नदी मे गिर कर नष्ट हो गया है। ज्येष्ठेश्वर के उत्तर दिशावर्ती लघु मन्दिर किसी सिघायी मे नही बने है। अतएव मुख्य मन्दिर के निर्माण के पश्चात् समय-समय पर काश्मीर के राजाओं ने यहाँ मन्दिर निर्माण कराया था। यह प्रथा प्राय: समस्त भारत मे आज भी प्रचलित है। लोग विशाल मन्दिरो के प्रांगण मे अपने नामो से लघु मन्दिरो का निर्माण कर उसमें मूर्तियो किंवा लिंगो की प्रतिष्ठा करते है।

जनरल श्री कनिंघम के मतानुसार इस मन्दिर का *निर्माण ईसापूर्व २५० वर्ष मे हुआ होगा।* कर्नल कोल इसका निर्माण काल सन् ईसवी का हु॰।रम्भिक काल मानते है।

ज्येष्ठेश्वर ने मन्दिर के पृष्ठ भाग मे तथा विश्राम अथवा पाठ, किंवा कथा स्थान या वर्तमान लम्बे चौड़े चबूतरे के ध्वंसावशेष के मध्य मुझे ने ।ो दुहँ तुल्य स्थान मिले। उनमें लम्बे-चौड़े विशाल भाग ालाखण्ड लगे है। वे भी मन्दिर ही रहे होगे। आद का वर्णन किसी अन्य पर्यटक तथा यात्री ने नही के आया है।

निरापद वहाँ ध्वंसावशेष होने का सरल अर्थ है। मन्दिर गये हैं। । वे टूटे। उनके मलवा का ढूहा बना जो अब . पात से ढका पड़ा है। यह धारणा मेरी सन् १८ र दृढ हो गयी कि वहाँ पर अलंकृत कोल ने (मुप जो मन्दिरो मे लगाये जाते थे। बिसरे उत्तर पश्चिम ३, पड़े थे। वे इस मन्दिर के ही रहे होंगे अन्यथा यहाँ पर उनके अस्तित्व का कोई अर्थ मालूम नहीं होता।

इस मन्दिर तथा भूतेश्वर के मध्य उक्त चबूतरा है। यह पूजा पाठ करने तथा विश्राम निमित्त बरामदा किंवा अलिन्द था। मण्डप शिला स्तम्भों की अवलियों पर निर्मित था। दोनों मन्दिरों के मध्य में होने के कारण दोनों मन्दिरो के उपासक, पुजारी तथा भक्त उससे लाभ उठा सकते थे।

कर्नल कोल को यहाँ बहुत नकाशीदार किंवा अलंकृत स्तम्भ मिले थे। स्तम्भों के अधिष्ठान भी अपने *स्थानों पर मिले थे। मुझे इस समय दो* चार स्तम्भ तथा दो ही चार अधिष्ठान मिल सके। उनका व्यास दो फीट था। शेष गायब थे। इससे २० फीट पूर्व भूतेश्वर के मन्दिर का प्राकार है।

नागबल किंवा पूर्वीय या द्वितीय मन्दिर समूह का नाम भूतेश किंवा भूतेश्वर मन्दिर समूह दिया गया है। इसके प्रागण का पता दिवाल पर स्तम्भावली के अधिष्ठान के चिन्हों द्वारा लगाया जा सकता है। यह १५५ फीट वर्गाकार है। इसका कोई भाग कंकणी नदी को धारा में ध्वस्त होकर नही गिरा है। चहार दिवारी का आकार तथा उसकी नीव मे लगे पत्थर वर्तमान है।

मेजर कोल ने मन्दिर के प्रागण में भूतेश्वर के विशाल मन्दिर को लेकर केवल सात मन्दिरों की गणना की है। उन्होने अपने प्लान मे पृष्ठ ६:६६ पर इसे प्रदर्शित किया है। उसमें मन्दिर की उत्तर दिशा में मन्दिर के मुख्य द्वार के समीप रखी टंकी किंवा एक ही पत्थर में खोदा हौज है। यह वास्तव में एक ही पत्थर की आश्चर्यजनक रचना है। यह २२ फीट लम्बा तथा ७ फीट चौड़ा है। लगभग इतना ही मोटा है। मानव बुद्धि इस विशालकाय शिला में खुदी टंकी को देखकर चकित हो जाती है। इस दुर्गम स्थान मे इतना विशाल शिलाखण्ड किस प्रकार उठा कर लाया गया होगा सरल मानव बुद्धि में कौतूहल उत्पन्न करता है।

यह टंकी अत्यन्त विलक्षण तथा कलापूर्ण शैली से बनायी गयी है। आज तक टूटी नहीं है। अनेक भूचाल आये होंगे। उसे तोड़ने का प्रयास किया गया होगा। परन्तु वह यथावत् स्थिति में स्थित है। यहाँ के ग्रामीण बन्धु कहते हैं। इसका जल सर्वदा एक जैसा रहता है।

तोरण द्वार बहार दिवारी में पश्चिमाभिमुख बना है। मन्दिर में केवल एक द्वार है। वह भी पश्चिमाभिमुख है। अतएव वह स्वयं इस बात का प्रमाण है। यह मन्दिर शिव का था। शास्त्रानुसार शिव, शंकर, रुद्र के मन्दिरों का द्वार पश्चिम तथा दक्षिण होता है।

कर्नल कोल ने अपने प्लान पृष्ठ ७:८८ में भूतेश्वर मन्दिर सहित कुल ७ मन्दिरों को दिखाया है। किन्तु मुझे प्रांगण में भूतेश मन्दिर सहित कुल १२ मन्दिरों के भग्नावशेष मिले। सम्भव है। कोल की यात्रा के समय शेष मन्दिर मलवों तथा घास-फूस के अन्दर छिपे रहे हों। शताब्दियों से पड़ती धूल, वृक्ष, तुषारपात आदि के जम जाने के कारण श्री कोल को पता न चला हो।

भूतेश्वर का मन्दिर प्रागण के दक्षिण उत्तर की लम्बाई के मध्य में है। मन्दिर की उत्तर दिशा के पार्श्व में ५ तथा दक्षिण दिशा के पार्श्व में ६ मन्दिर हैं। दक्षिण पार्श्व के मन्दिरों में पूर्व से तीसरे मन्दिर के सम्मुख एक और मन्दिर बना है। यह निर्माण बहुत समय पश्चात् का मालूम होता है। वह उत्तर तथा दक्षिण मन्दिरों की सीध में नहीं आता।

मैं समझता हूँ कि एकादश रुद्र की कल्पना पर ग्यारह मन्दिरों की रचना की गयी थी। अन्यथा दोनों पार्श्वों में छह-छह मन्दिर होने चाहिए थे। भूतेश रुद्रेश हैं। कल्पना की गयी है। यह अनुमान लगाया गया है। मुख्य मन्दिर भूतेश की रचना के पश्चात् कालान्तर में राजा मन्दिर निर्माण करते गये।

यह तर्क सम्मत नहीं है। सामने वाला मन्दिर बनाने वाला पाँचवें मन्दिर के पश्चात् छठा मन्दिर बनवाकर उसको पंक्ति पूरा करता। वह मन्दिरों की पंक्ति के बाहर आकर मन्दिर का निर्माण न कराता। अतएव यह मन्दिर एकादश रुद्र कल्पना पर बना है। भूतेश का मन्दिर ज्येष्ठेश्वर मन्दिर की अपेक्षा सादा है। अतएव ज्येष्ठेश्वर मन्दिर के पूर्व की रचना मालूम पड़ती है।

नरनाग किंवा नारायण नाग का कुण्ड भूतेश्वर मन्दिर की उत्तर दिशा से पहाड़ी द्वारा जल स्रवित होकर आता है। जल कुण्ड किंवा सर से निकलता स्पष्ट दिखायी पड़ता है। वह बहता कंकणी नदी में गिर जाता है। जल अत्यन्त निर्मल है। हलका है। कर्नल कोल ने इसीलिए इसे नाग कहा है। नाग का अर्थ जल स्रोत होता है।

कुण्ड के दो ओर पूर्वकाल की बनी सीढ़ियाँ अपनी पूर्वावस्था में वर्तमान हैं। इस कुण्ड की सफाई नहीं हुई है। चारो ओर मुसलिम गूजरों की आबादी है। अतएव कुण्ड की सफाई नहीं है। उसमें पत्ती, टूटी लकड़ी तथा पहाड़ों पर से गिरे कंकड़ पत्थर पड़े थे। पत्तियों के सड़ने के कारण कुण्ड का स्तर साफ नहीं था। जल निरन्तर कुण्ड में आता और निकलता रहता है अतएव वह साफ लगता है।

इस कुण्ड का निर्मल जल तथा यहाँ की मनो-मुग्धकारी प्राकृतिक दृश्यावली देखकर जलपान के लोभ का संवरण नहीं कर सका। मैंने जल पीया। वह मधुर तथा शीतल था। उसमें मुझे जैसे जीवन मिला। इस कुण्ड किंवा सर को सोदर तीर्थ कहते थे। इसके जल का बड़ा ही विशद वर्णन किया गया है। इसके नाम पर एक दूसरा सोदर तीर्थ श्रीनगर के समीप निर्माण कराया गया था। उसका यथा स्थान वर्णन किया है।

इस सरोवर के समीप एक विशाल शिलाखण्ड पड़ा मिला। वह १५ फीट लम्बा ८ फीट चौड़ा तथा ६ फीट मोटा था। यह शिलाखण्ड मूर्ति का अधि-ष्ठान है।

कंकणी नदी में आध मील दूर धारा के मध्य एक शिलाखण्ड है। उस पर एक कोठरी बनी है।

सोऽथ भूभृज्जलौकोऽभूद् भूलोकसुरनायकः ।
यो यशस्सुधया शुद्धं व्यधाद्ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥१०८॥

जलौक[1]

१०८. अस्तु 'जलौक राजा हुआ । वह भूलोक पर इन्द्र के तुल्य था । उसने अपने धवल यश द्वारा ब्रह्माण्ड मण्डल को शुद्ध कर दिया था ।

चार व्यक्ति उसमें निवास कर सकते हैं । इसके मध्य में एक शिवलिंग का स्थान है । एक दिवाल में मूर्ति रखने का ताखा बना है । मैं जब यहाँ आया तो किसी ने इस मन्दिर का पता मुझे नहीं बताया ।

शिवयोगी के निवास योग्य वह आदर्श स्थान माना जायगा । योगियों के योग तथा ध्यानियों के ध्यान करने के लिये सुरम्य, एकान्त, जलाशय एवं पादप पूर्ण वनश्रीयुक्त स्थान आदर्श कहा जायगा ।

दुर्बल हृदय व्यक्ति दिन में चाहे जितना यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द उठा ले, परन्तु सन्ध्या होते ही स्थान की सुन्दरता अन्धकार की गम्भीरता के साथ भयंकर रूप धारण कर लेती है । आधुनिक
... योजनाओं के योग से यह
...कता
अथवा
रूप
होती
लगता
है ।
उप...
है जैसे भू...
यहाँ पर अ...
...लालेख
नहीं मिला है । यदि कु...
स्थान
के काल निर्णय में सहायता मि...
स्थापत्य
...ी के आधार पर काल निर्णय का अ...
लगाया
...कता है । शिलालेख मिलने पर कश्मीर के
आर... एवं वास्तु कला शैली तथा उसके विकास के
के आ... अच्छा प्रकाश पड़ सकता है । पुरातत्त्व-
निरापद ... स्थान पर आकर अध्ययन तथा
... गये हैं । ...चाहिए । अन्यथा यहाँ इस समय
सन् १८... सामग्रियाँ बिखरी पड़ी हैं, नष्ट
काल ने (सुप...) ।
उत्तर पश्चिम ...

कल्हण ने पुनः भूतेश का उल्लेख राजा जलौक के सन्दर्भ में (त० १:१५८) किया है । उसमें नन्दि क्षेत्र में एक सुदृढ़ पाषाण मन्दिर निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है । यह मन्दिर जलौक द्वारा उक्त भूतेश मन्दिर है । नरेन्द्रादित्य के सन्दर्भ में कल्हण ने (त० १:३४७) में इसका उल्लेख किया है । ललितादित्य के सन्दर्भ में इसका उल्लेख कल्हण ने (त० ४.१८९ में) किया है । अवन्तिवर्मा ने (त० ५:४९) यहाँ दानादि किया था ।

अशोक के समय में भूतेश नाम से स्थान प्रसिद्ध था । छोटा मन्दिर या केवल शिवलिंग रहा होगा । जलौक ने उस स्थान पर भव्य मन्दिर निर्माण कराया जिसके भग्नावशेष का अस्तित्व आज वर्तमान है जो देखा जा सकता है । इसका उल्लेख पुनः तरंग ५ ५५-५९ में किया गया है । राजा उच्चल के सन्दर्भ में (त० ८:७७-११०) इसका उल्लेख किया गया है । कल्हण ने इस मन्दिर का अन्तिम बार उल्लेख (त० . २७:५६, ३३.५६) में किया है । भूतेश की कृपा एवं उनके प्रसाद से अशोक का पुत्र जलौक हुआ था । अतएव यह उचित प्रतीत होता है । जलौक ने भूतेश मन्दिर का निर्माण कराया ।

जोन, प्रज्ञाभट्ट एवं श्रीवर की राजतरंगिणियों में भूतेश्वर का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता । जिससे इस विषय पर और प्रकाश पड सकता ।

अबुल फजल आइने अकबरी में इस मन्दिर का उल्लेख नहीं करता । हैदर मलिक भूतेश्वर का भूतिसर किंवा बुथगर नाम से उल्लेख करता है ।

हरिमुकुट यात्रा से लौटते समय भूतेश मन्दिर का स्थान मार्ग पर पड़ता है। परन्तु इस पर विशेष ध्यान कभी नहीं दिया गया था। मालूम होता है मन्दिर के नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण इसका महत्त्व लोग भूल गये थे।

पाठभेद।

श्लोक संख्या १०८ में 'साध्य' का पाठभेद 'मोघो' तथा 'ज्जलौको' का 'ज्जलौको' तथा 'मुधया' का 'श्रद्धया' मिलता है।

१०८ (१) जलौक : आइने अकबरी में नाम ज्यूलोग दिया है। अबुल फजल के अनुसार—'राजा ने समुद्र तक विजय प्राप्त किया था। विजय यात्रा से लौटते समय वह कन्नौज गया था। उस समय कन्नौज (कान्यकुब्ज) हिन्दुस्तान को राजधानी थी। जलौक कन्नौज से अनेक गुणी तथा विद्वानों को कश्मीर लाया। उनमें सात को चुनकर विभिन्न विभागों का मुख्याधिकारी नियुक्त किया। उनमें एक ज्योतिष विभाग था।

'उसके आदेश पर सर्पों का एक बहुत बड़ा समूह चलता था। उन्हीं पर आरूढ़ होकर राजा लम्बी जल यात्रा करता था। राजा किसी समय युवा और किसी समय वृद्ध बन जाता था। उसके सम्बन्ध में अनेक चामत्कारिक बातें कही जाती है। इस राजा के समय बुद्ध धर्म मानने वालों के साथ सहिष्णुता का व्यवहार किया जाता था।'

अबुल फजल ने राजतरंगिणी के फारसी अनुवाद तथा प्रचलित जनश्रुति पर राजा जलौक का उल्लेख किया है। जलौक के समय कन्नौज भारतवर्ष की राजधानी नहीं था। पाटलीपुत्र राजधानी था। यहाँ सर्पो का तात्पर्य नागो से अबुल फजल का मालूम होता है।

इतिहासकार आजम ने लिखा है :—कश्मीर पर एक नया धर्म लादा गया। उच्छिष्ट डिम्ब से अशोक के पुत्र जलौक ने म्लेच्छों को निकाल बाहर किया। राजा देश-विजय हेतु निकला। उसने उत्तरी ईरान जीत लिया।

उत्तरी ईरान जीतने का कोई साधिकार प्रमाण नहीं मिलता। विदेश यात्रा का अर्थ आजम ने उत्तरी ईरान लगाया है। आजम ने यह तथ्य कहाँ से पाया कोई प्रमाण नहीं देता।

बैदुद्दीन इतिहासकार लिखता है :—'ईरान का राजा इस समय 'दोराब' था। ईरान के विजय के पश्चात् उसने कन्नौज जीता था।'

आजम तथा बैदुद्दीन की बातें यदि मान ली जाँय तो नवीन धर्म पारसियों की अग्नि पूजा हो सकती है। कश्मीर में बुद्ध तथा सनातन धर्म दोनों उस समय प्रचलित थे। दोनों में विरोध नहीं था। ईरान से सम्पर्क में आने पर इसी की सम्भावना हो सकती है।

अग्नि पूजक पंजाब के उत्तर तथा पश्चिमी भाग में एक समय आबाद थे। किन्तु कश्मीर में अग्नि पूजा पारसियों की शैली की कभी प्रचलित नहीं थी। हवन, यज्ञ, पचाग्नि, अग्निहोत्र आदि सनातन धर्म के अंग थे। आर्य धर्म में परम्परा से यज्ञ होता आया है। वह यज्ञ वेदी तक सीमित था। महात्मा जरदस्तु द्वारा प्रसारित तथा प्रचलित अग्नि पूजा का चिह्न कश्मीर में अभी तक मिल नहीं सका है।

किसी अग्निकुण्ड, अग्निमन्दिर किंवा अग्नि वेदी का उल्लेख नीलमत पुराण एवं राजतरंगिणी में नहीं मिलता। जलौक ने ईरान विजय के पश्चात् एक नवीन धर्म कश्मीर पर लादा वह भ्रामक एवं तथ्यहीन है।

हसन लिखता है :—'जलौक राजा अशोक का दूसरा बेटा था। कलिसंवत् १७२६ मुख़ालिफों का किला फतह करके सख़ावत और इंसाफ परवरी में

नेकनामी हासिल की। मुल्क की आबादी में हद दरजा कोशा रहा। लार में मौजा बारहमूला उसी की नामोरात में से है। कल्हण पण्डित ने उसे फरिश्ता सीरत जानकर अच्छी अच्छी खूबियों से मुत्सफ इंसान साबित किया है। पण्डित उद्भट्ट जो अपने वक्त का एकता था उसी के तरतोबयापतों में से था। उसके कहने सुनने से राजा जलौक ने फौरन् बुद्धमजहब छोड दिया। और अपने बाप के बर खिलाफ शैव मजहब अख्तियार कर लिया। विजयेश्वरी और नन्दह किशोर मन्दिरों की पूजा पाठ अपने ऊपर लाजिम कर ली। सख्त रयाजतो और रुहानी सफाई और करामतो के पेश नजर अपने जमाना का एकता था।

कफ—'कहते है कि हर दिन माडू बेजबारह और बारहमूला के मन्दिरो की पूजा-पाठ के लिए घोड़ो पर सवार होकर जाया करता था। एक साप तावा किया हुआ था। जिस पर हर दिन सवार होकर जहाँ चाहता था पहुँचता था। यह साँप उसे बाकी साँपो से भी बचाता था। शिवजी के तमाम मन्दिरों को निहायत उम्दगी से सजाया। इसके जमाने मे बुद्धमजहब की कोई रौनक न रही।

'मशहूर है कि एक औरत ने उससे सवाल किया कि मुझे कुछ बतौर खैरात के दे। राजा ने कहा कि जो माँगेगी दूँगा। इसके बाद औरत मजकूर देवी की शकल में मुतशकल हो गयी। और राजा से इन्सान का गोश्त माँगा। राजा किसी इन्सान के कतल पर राजी न हुआ। और खुद उसके हवाला कर दिया। देखकर उस औरत ने इन्तहाई खुशी के साथ राजा के हक मे तौफीक इबादत की दुआ माँगी—फकत।

'बाद अजई राजा ने मुल्को के फतह करने का पुख्त- इरादा कर लिया। सर जमीन हिन्दुस्तान मुल्क मे कन्नौज और विहार तक के बहुत से शहर अपने कब्जा अख्तियार मे कर लिये। तिमिर नाशक के कौल के मुताबिक कन्दहार और बास्तर तक के बहुत मे शहरो पर अपना कब्जा और इक्तदार जमा लिया। थाम थाम के मुल्कों और इलाकों की फतह के बाद जब अपने मुल्क को लौटा तो बहुत से दस्तकार और अहल पेशा आदमी उसके साथ थे। अपने मुल्क की दौलतमन्दी और शान व शौकत इस दरजा तक पहुँचा दी कि दूर दराज के इलाकों के रहने वाले लोगो के दिल उसे सुनकर बाग बाग हो जाते थे। उसके वक्त तक कश्मीर में मुल्की ओहदेदारों का इन्तजाम न था। राजा ने मुल्की मुआमलात के इन्तजाम को चलाने के लिए अजगुद आफिसर मुकर्रर किये। और उन्हें अपने फरायज का जवाब देह करार दिया। जो ओहदह जात इस राजा ने पैदा किये उनकी तफसील हस्ब जैल है।

(१) उहदा दिवानी—इसके जिम्मा मुल्की लेन देन का इन्तजाम था।

(२) उहदा खानसामानी—इसके जिम्मा खजानो की हिफाजत और आमदनियों का हिसाब व किताब था।

(३) दारोगा फोरखाना—इसका काम फौज के हथियार, लिबास और सामान वगैरह की हिफाजत था।

(४) बख्शी—फौज की इन्तजाम के लिये।

(५) वजारत—बादशाह की राय और मशविरा के लिए।

(६) दारोगा सदर—खैरात और सदकात की तकसीम के लिए।

(७) नकीब—सिपाहियों और किसानो की खबरगीरी के लिये।

अलगरज हकूमत के इन्तजाम को पुख्तगी और अदल व इन्साफ, सखावत और रास्त बाजी में लाशानी था। कहते हैं कि गोटी नीद नाम की एक दवाई पाई थी। जिससे सोना बनाया करता था। इल्म सीमया बखूबी जानता था। आखिर कार कपल मोचन के मुकाम जो कसबा सूपियान में सोनगुल नहर का मुनबअ है राहे बहक हो गया। उसकी बीबी इशान देवी इन्तहाई दरजा की रयाजत कीश और बाहिम्मत औरत थी। उसके मातर चकर और हस्त

यस्य दिव्यप्रभावस्य कथाः श्रुतिपथं गताः ।
आश्चर्याचर्यतां यान्ति नियत द्युपदामपि ॥ १०६ ॥

१०९. राजा के दिव्य प्रभाव की कथा जब देवताओं के कानों तक पहुँची तो वे आश्चर्य चकित स्तम्भित हो गये।

कोटिवेधिनि सिद्धे हि स रसे हाटकार्पणैः ।
असीसुषिरतां हर्तुं हेमाण्यस्य ध्रुवं क्षमः ॥ ११० ॥

११०. कोटिवेधिनी रस की सिद्धि[1] द्वारा करोड़ों वस्तुओं को सुवर्ण में परिणत कर शून्य गगन मण्डल को सुवर्ण दान द्वारा भर देने में राजा सक्षम था।

हाल बनाकर गरीबों और मसकोनों को बख्श दिये। ध्यामदेव के शागिर्द ने नन्दी पुराण पढ़कर नन्दीश्वर का मजहब अपने ऊपर अख्तयार कर लिया। बुद्ध मजहब कतइयन् तर्क कर दिया। राजा जलौक की कुल हुकूमत साठ साल थी।' (पृष्ठ ३९४०)

हसन ने अपने पूर्व के मुसलिम इतिहासकार तथा कल्हण सब के द्वारा वर्णित घटनाओं का समन्वय कर लिया है। सब की बात मान ली है।

उसने 'इतिहास तिमिर नाशक' का उल्लेख किया है। काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने भारत का एक अत्यन्त संक्षिप्त इतिहास लिखा था। मैंने उसे अपनी बाल्यावस्था में पढ़ा था। वह हिन्दी तथा शायद उर्दू दोनों भाषाओं में छपा था। हसन ने यही इतिहास पढ़ा था। इतिहास तिमिर नाशक साधारण लोगों के पढ़ने के लिये उन्नीसवी शताब्दी में लिखा गया था। मेरे पास इसकी मूल प्रति थी। वह 'कलकतिहा नागरी' मोटे टाइप में घार्ट कागज पर छपा था। उन दिनों उसका मूल्य था। क्योंकि कोई और इतिहास भाषा में उपलब्ध नहीं था। राजा शिवप्रसाद नागरी और हिन्दी भाषा के महान् पक्षपातियों एवं उन आन्दोलकों में थे जिन्होंने हिन्दी को उर्दू से भारत में बचाया था। उन दिनों हिन्दी के स्थान पर उर्दू चलाने का प्रचार तेजी पर था। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना तथा तत्कालीन हिन्दी आन्दोलन की यही पीठिका थी। हसन का ऐतिहासिक ज्ञान कितना

सीमित था यह इसी एक बात से प्रमाणित होता है कि उसने अपने मत की पुष्टि इतिहास तिमिर नाशक का उद्धरण देकर करना चाहा है। जिसका ऐतिहासिक महत्त्व साधारण है। जलौक सम्बन्धी हसन के मत को मैं उसी प्रकार मान्यता देने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ जैसे अबुल फजल, आजम तथा बैद्दीन की।

जलौक का वर्णन कल्हण ने कवि श्री छविल्लाकर के आधार पर किया है। श्री छविल्लाकर ने जैसा वर्णन किया होगा उसे ही कल्हण ने अपनी पुस्तक राजतरंगिणी में स्थान दिया है। इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन परिशिष्ट 'जलौक' में द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०९ में 'आश्चर्याच' का 'आश्चर्याश्च' और 'नियतं' का 'निश्चयं' और 'द्युपदां' का 'द्युसदां' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ११० में 'वेधिनि' का 'वेदिनि'; 'सुषिरताम्' का 'सुरिक्ततताम्' और 'हर्तुं' का 'कर्तुं' और 'हेमाण्यस्य' का 'हेमांगस्य' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११० (१) कोटिवेधिनि रस : कल्हण ने धातुओं से सुवर्ण बनाने का उल्लेख राजा ललितादित्य (रा० त० ४ : २४६ तथा ३६३) और सिकन्दर बुतशिकन के वर्णन प्रसंग में; जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी (श्लोक संख्या ५७८) में किया है।

संस्तम्भ्याम्भःप्रविष्टेन तेन नागसरोऽन्तरम् ।
तारुण्यं फणिकन्यानां निन्ये संभोगभव्यताम् ॥ १११ ॥

१११ अपना तारुण्य फणि कन्याओं के संभोग में सफल करने के निमित्त राजा नाग-[1]सरोवरों में जल स्तम्भित कर प्रवेश करता था ।

भारत में प्राचीनकाल से यह कथा प्रचलित चली आती है। साधु महात्मा तथा चामत्कारिक पुरुष स्वर्ण बनाने की सिद्धि प्राप्त करते हैं। मुख्यतया पारा सिद्ध कर उसके द्वारा सोना बनाया जाता है।

इसी प्रकार यह कथा भी प्रचलित है। पारस पत्थर के स्पर्श कराने से धातुएँ तथा लोहा सोना बन जाता है। इस प्रकार चामत्कारिक बातें साधु महात्मा तथा महान् पुरुषों की महत्ता वृद्धि के निमित्त उनके जीवन से सम्बन्धित कर दी जाती है।

कोटिवेधिनी रस का कल्हण ने उल्लेख यहाँ किया है। यह रस क्या था ? कैसे बनता था ? इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता था ? इस पर अब तक प्रकाश नहीं पड़ सका है। यह किसी प्रकार का रस था। जिसके सिद्ध करने से सुवर्ण तैयार हो जाता था।

१११ (१) नागसरोऽन्तरम्ः यहाँ यह अर्थ करना समीचीन मालूम होता है। नाग अर्थात् झरनों, प्रपातों एवं सरोवरों का जल स्तम्भित, अर्थात् रोककर राजा नागकन्याओं के साथ भोग कर अपना यौवन सुफल करता था। जलप्रपात, स्रोत तथा सरोवर कश्मीर में नागों के स्थान माने गये हैं। वे प्रत्येक सरोवर तथा प्रपातों एवं स्रोतों में निवास करते हैं। वहाँ पर नागकन्याओं का रहना स्वाभाविक है। जलप्रपात, स्रोत तथा सरोवर को स्तम्भित करने का अर्थ जल शान्त करना है। उन्हें अपने काम प्रसंग निमित्त हलचलहीन बनाना है। अत्यन्त एकान्त वातावरण उत्पन्न करता है। यहाँ पर कल्हण ने किसी सरोवर, स्रोत एवं प्रपात विशेष का उल्लेख नहीं किया है। उसका मन्तव्य मालूम होता है। राजा किसी नाग किंवा सर विशेष की नागकन्या के स्नेह सूत्र द्वारा ही सीमित नहीं था। वह इच्छानुसार कश्मीर के अगणित नागों तथा सरों में प्रवेश कर अनेकानेक नागकन्याओं से सम्बन्ध स्थापित करता था। वह किसी एक स्थान से बँधा नहीं था।

कल्हण इस प्रकार राजा जलौक की ऋद्धि का वर्णन गौण रूप से कर देता है। राजा ऋद्धि सम्पन्न था। वह नागों तथा सरों के जलों को बाँध देता था। जल बाँध देने की कथा योगियों के जीवन से सम्बन्धित की जाती है। योगी नदी के जल को स्तम्भित किंवा बाँधकर नदी पार पैदल चला जाता है। जल बाँधकर अपना चमत्कार दिखाता है। चामत्कारिक कथानकों से साहित्य भरा पड़ा है। कल्हण राजा जलौक के कोटिवेधिनी रस तुल्य उसके दूसरे चमत्कार का वर्णन करता है।

कल्हण एक तीसरे चमत्कार को और राजा के जीवन से सम्बन्धित करता है। राजा जल में प्रवेश करता था। जल में डूबने अथवा रहने पर साधारण प्राणी प्राणवायु के अभाव में मर जाता है। परन्तु राजा जलौक वहाँ नागकन्याओं के साथ विहार करता था। राजा की दिव्य शक्ति का जो उल्लेख कल्हण ने श्लोक संख्या १०९ में किया है उन्हीं का यहाँ विस्तार करता है। राजा में इतना अधिक दैवी गुण किंवा प्रभाव था कि मनुष्य होते हुए भी वह देवताओं तुल्य अद्भुत कार्य करता था। राजा का जल के अन्दर बिना प्राणवायु प्राप्त किये विहार करना स्वतः एक चमत्कार की बात थी। कल्हण ने राजा के दिव्य प्रभाव का यह तीसरा उदाहरण दिया है।

तत्कालप्रबलप्रेद्धबौद्धवादिसमूहजित् ।
अवधूतोऽभवत्सिद्धस्तस्य ज्ञानोपदेशकृत् ॥ ११२ ॥

११२. राजा का ज्ञानोपदेशक एक तेजस्वी दार्शनिक अवधूत था, जिसने कश्मीर मण्डल में सफलता से फूल कर प्रबल हो उठे बौद्ध 'समूह को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

११२ (१) बौद्ध : अशोक के कारण बौद्धधर्म का प्रचार प्रबल हो उठा था। संघ का भी संघटन सुदृढ़ हो गया था। अशोक ने कश्मीर सीमान्त पर (१) मानसेहरा, (२) शहबाज गढ़ी, तथा (३) धौली मे लगे शिला अभिलेख में धर्म प्रचार तथा संघ संघटन का निर्देश दिया है। धौली में कश्मीर के सीमान्त स्थान तक्षशिला का भी उल्लेख किया गया है।

अशोक ने धर्म प्रचारार्थ पंच वर्षीय योजना बनायी थी। शहबाज गढ़ी तृतीय अभिलेख में उसने स्पष्ट लिखा है—वदय यपभिमितेन''' अणपितं। सवत्रमभ विजिते युत रजिको प्रदेशिक पंचपु पंचपु ५ वपेपु अनुसंयनं निक्रमतु एतायि वो करण इमिस धंमनु शस्तिये थ अजयेपि क्रमये।' अभिलेख के बारह वर्ष (पश्चात्) मेरे द्वारा ऐसी आज्ञा दी गयी। सर्वत्र मेरे राज्य मे, युक्त, रज्जुक, प्रादेशिक पाँच पाँच (५) वर्ष पर इस कार्य के लिये, इस धर्मानुष्ठान के लिये तथा, अन्य कार्य के लिए दौरे पर जाँय।'

मानसेहरा तृतीय अभिलेख में पुन. लिखा गया है 'देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज एवम् अह (१) दुवड शवप भिषितेन मे इयं अणपयिते (२) सवत्र विजिनसि ......तरतु प्रदेशिके पंचसु ५ वषेषु

'अनुसंयनं निक्रमतु एतये अ अथये इमये ध्रमनु शस्तिये यथ अजये पि क्रमणे (३) सधुमत पितुष्य मित्र संस्तुत..........

'ञतिकिनं च ब्रमण श्रमणनं सधुदने प्रणन अनरभे सधु अपवयत अपभडत सधु (४) परिष पि च युतनि गणनसि अण पयि शति हेतुते च। वियंजन ते च।

देवानां प्रिय, प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा द्वादश वर्षाभिषिक्त मुझसे ऐसा आज्ञप्त हुआ। राज्य में सर्वत्र मेरे युक्त, रज्जुक, प्रादेशिक (नामक राज्य कर्मचारी) पाँच-पाँच (५) वर्षों में दौरे पर निकलें। इस प्रयोजन के लिए इस धर्मानुशासन के लिए तथा अन्य भी कार्य के लिए। ' ' परिषदें युक्तों को हेतु (कारण) और व्यञ्जन (अक्षरशः अर्थ) के साथ (इन नियमों की) गणना करने के लिए आज्ञा देंगी।

उक्त दोनों स्थानों के पंचम अभिलेखों मे धर्म महामात्र की नियुक्ति के साथ अपने पुत्र, प्रपौत्र आदि के लिये अभिषेक के तेरहवें वर्ष में अशोक ने आदेश दिया।

'११. देवनं प्रियो प्रियद्रसि रय एवं अहति कलणं दुकरं यो आदि करो कलणस सो दुकरं करोति सो मय बहुकलं किटं तं मअ पुत्र च नतरो च तेन ये मे अपच ब्रक्षन्ति अवकपं तथ ये अनु वटिशन्ति ते सुकिटं कषंति यो चु अ तो ''' '''कं प हये शदि सो दुकटं कषति पपं हि सुकरं स अति क्रतं अतर नो भुत पुव ध्रंम महमत्र नम सो तोदश वपभिसितेन १२ मम ध्रम महमत्र किट ते सत्र प्रषंडेपु वपट धमं धिथ नये च धम वडिय हिद सुखये च ध्रमयुतसं........।'

[देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा। जो कल्याण का प्रारम्भ करता है वह दुष्कर कार्य करता है किन्तु मुझसे बहुत कल्याण किया गया। यदि मेरे पुत्र, नाती और उनके परे मेरे अपत्य कल्प के अन्त तक (इसका) अनुसरण करेंगे वे कुछ सुकृत करेंगे। जो यहाँ (इस देश मे) इसका एक अंश भी नष्ट करेगा वह दुष्कृत करेगा। पाप सुकर है। बहुत समय बीता। भूतकाल मे धर्म महामात्र नाम (का अधिकारी) नही थे। किन्तु राज्याभिषेक के तेरह वर्ष पश्चात् मेरे द्वारा धर्म महामात्र (नियुक्त) किये गये।

धर्म की स्थापना, धर्मवृद्धि और धर्मयुक्तों के हित सुख के लिये वे पापण्डों (धार्मिक सम्प्रदायों) में व्यास हैं ।']

मानसेहरा में भी यही अभिलेख है। कश्मीर की सीमा पर प्राप्त दोनों अभिलेखों के पश्चात् 'धौली के प्रथम पृथक् अभिलेख में अपने राजनीतिक आदर्श में धर्म प्रचार का आदर्श भी रखा। उसने महामात्रों के साथ ही साथ कुमार अर्थात् राज्यपालों के लिये त्रिवर्षीय योजना प्रस्तुत की। यहाँ तक्षशिला के नाम का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है जो कश्मीर की सीमा और कभी कश्मीर राज्य के अन्तर्गत था।

२१. 'अकस्मा पलिकिलेसे वनां सियाति (२३) एताये च अठाये हकं मते पंचसु पंचसु वसे।

२२ सुनिरुा मधि सामि ए अनयसे अचंडे मरिनालंभे होमति एतं अठं जानितु ' 'तथा

२३ कलंति अथ मम अनुमर्थाति (२४) उजेनि तेपि चु कुमाले एताए व अठाये निरवा मयिम '''' '

२४. हे दिसमेव वग नो च अति कामयिसति तिनि वमानि (२५) हेमेव तखसिलाते पि (२६) अदा अ' '

२५. ते महामाता निखमिस्मंति अनुसयानं तदा अहा पयितु अतने कंमं एतं पि जानिसंति

२६. तं पि तथा कलंति अथ लाजि ने अनु सार्थानि (२७)

[बिना किसी कारण के परिक्लेश (शारीरिक कष्ट) का दण्ड न मिले। इस प्रयोजनके लिए मैं महामात्रों को पाँच-पाँच वर्षों के अन्तर से दौरे पर भेजूँगा। जो मकर्कश, अचण्ड, श्लक्ष्णारम्भ (सं निकलेंगे तब वे अपने कर्तव्यों की अवहेलना न करते हुए मेरे इस आदेश को जानेंगे (२६) और ऐसा कार्य भी करेंगे जैसा राजाका अनुशासन है।]

अशोक ने सामाजिक जीवन में भी आमूल परिवर्तन करनेका विचार किया जैसे उसने 'विहार यात्राके स्थानपर' 'धर्म यात्रा' का प्रचलन किया। (जौगढ़ अष्टम अभिलेख) उसने स्वयं स्थान स्थान पर २५६ से अधिक पड़ाव डाला था। (गुर्जरा तथा सहसराम अभिलेख)।

राजाश्रय, प्रचारादिके कारण बौद्ध धर्मको विशेष बल मिला। चीनी यात्रियोंको अशोक निर्मित कम-से-कम चार स्तूप कश्मीर उपत्यका से मिले थे। पाँच सौ चैत्यों का निर्माण हुआ था।

कल्हण इस दशा की ओर संकेत करता है। बौद्ध धर्मानुयायी प्रबल हो गये थे। वे धर्म प्रचारके उत्साहसे भर गये थे। उनका अपने धर्मके समर्थन निमित्त शास्त्रार्थ करना व्यावहारिक बात मालूम होती है। पुराने सनातन धर्मके पक्षपाती अवधूतने उन्हें शास्त्रार्थमें पराजित किया था। कल्हण यहाँ गौण रूपसे संकेत करता है। जनता तथा जलौक राजा पुराने धर्मकी ओर पुनः मुड़े थे। यद्यपि उसने बौद्ध धर्मका विरोध नहीं किया था।

(२) अवधूत : 'महानिर्वाण तन्त्र' के अनुसार अवधूतों का वर्गीकरण किया गया है। अवधूत शैव तथा वैष्णव दोनों सम्प्रदाय के होते थे। अवधूतका शाब्दिक अर्थ त्यागी किंवा संन्यासी होता है। उनका वर्गीकरण 'महानिर्वाण तन्त्र' के अनुसार (१) ब्रह्मावधूत (२) शैवावधूत (३) वीरा-तथा (४) कुलावधूत होते हैं।

विजयेश्वरनन्दीशक्षेत्रज्येष्ठेशपूजने ।
तस्य सत्यगिरो गजः प्रतिज्ञा सर्वदाऽभवत् ॥ ११३ ॥

११३. उस सत्यवादी राजा ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि नन्दिक्षेत्र स्थित ज्येष्ठेश्वर[1] तथा विजयेश्वर की सदा पूजा किया करेगा।

गुह्यांग ढकने मात्र के लिये कौपीन होता है। शरीर भस्म किंवा रक्त चन्दन से पुता रहता है। हाथो में काष्ठ दण्ड, परशु एवं डमरू और मृगचर्म रहता है। कुलावधूत उसे कहते है जो कुलाचार में अभिषिक्त होकर भी गृहस्थाश्रम में रहता है।

वैष्णव सम्प्रदाय में रामानन्द को शिष्य परम्परा मे अवधूत होते हैं। वैष्णव अवधूत के सर के केश लम्बे होते हैं। कण्ठ में स्फटिक की माला रहती है। शरीर पर कंथा रहता है। हाथ में दरियाई नारियल या खप्पर होता है। इस सम्प्रदाय के बंगाल मे पृथक् पृथक् अखाड़े होते हैं। सभी जाति के लोग इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। वे गृहस्थो के द्वार पर वीर अवधूत नामका स्मरण कर एकतारा किंवा अन्य कोई वाद्य यंत्र बजाकर गाते हैं। इनके निवास की शैली अव्यवस्थित रहती है। इन्हे बंगाल मे कुछ लोग बाउल गायक कहते है। परन्तु वह अवधूतों का एक भेद मात्र है।

नाथ सम्प्रदाय मे अवधूतों का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। वे प्रकृति विकारों से दूर रहते हैं। कैवल्य की प्राप्ति निमित्त आत्मचिन्तन तथा अभ्यास में निरन्तर रत रहते है। 'सगुण एवं निर्गुण' ब्रह्म दोनों से पर की उनकी स्थिति होती है।

गुरु दत्तात्रेयको अवधूत कहा जाता है। दत्त सम्प्रदाय मे अवधूतको सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'अवधूत गीता' में अवधूतों का पूर्ण विवेचन विस्तार के साथ प्राप्त होता है।

स्त्रियाँ भी अवधूत तुल्य अवधूती कही जाती है। वे विशेषतया पश्चिमोत्तर भारतीय क्षेत्र में मिलती है। वे संन्यासी पुरुषों तुल्य वेश धारण करती है। भस्म लगाती है। कण्ठ तथा बाहु मे रुद्राक्ष की माला पहनती है। कतिपय अवधूतनियाँ अपने जूड़ा में भी रुद्राक्ष माला लपेट लेती है।

अवधूती मार्ग सुषुम्ना नाड़ी की एक संज्ञा है। उस प्राण वायु को इड़ा पिंगला नाडी के स्थान पर सुषुम्ना नाडी में धारण करने को अवधूती किंवा अवधूतिका मार्ग कहा जाता है।

अवधूतेश्वर शंकर का एक अवतार माना गया है। कथा है। एक समय इन्द्र तथा बृहस्पति भगवान् शंकर के दर्शनार्थ कैलास जा रहे थे। उनकी परीक्षा लेने का शंकर ने विचार किया। मार्ग में दिगम्बर और भयंकर रूप बनाकर बैठ गये। वह न तो मार्ग मे हटते थे और न कुछ बोलते थे।

इन्द्र ने चिढकर वज्र निकाला। शंकर ने वज्र का स्तम्भन कर दिया। उनका तृतीय नेत्र खुल गया। उससे ज्वाला निकलने लगी। बृहस्पतिने शंकरका उग्र रूप देखकर, स्तुति की। वह अग्नि ज्वाला लवणोदधि में डाली गयी। उससे जालंधर उत्पन्न हुआ। उसका वध शंकर ने किया। (शिव० शत : ३०)

११३ (१) ज्येष्ठेश = शंकर की पूजा कश्मीर में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। उनकी तीन नामों यथा ज्येष्ठेश, ज्येष्ठेश्वर तथा ज्येष्ठ रूप से पूजा होती थी। उनके स्थान भी भिन्न थे।

प्रथम ज्येष्ठेश का स्थान हरमकुट पर्वत के अधोभाग मे नन्दिक्षेत्र किंवा नन्दीश क्षेत्र मे था। इसका उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी १: ३६ मे किया है। द्वितीय स्थान त्रिपुरेश्वर अर्थात वर्तमान त्रिफर के समीप था। इसका उल्लेख राजतरंगिणी में कल्हण ने ५ : १२३ मे किया है। तृतीय स्थान श्रीनगर के समीप था। इसका उल्लेख राजतरंगिणी १ : १२४ मे कल्हण ने किया है।

इस स्थान पर कल्हण ने ज्येष्ठेश का स्थान निश्चित नन्दिक्षेत्र बता दिया है। द्वितीय ज्येष्ठेश को प्रथम ज्येष्ठेश से भिन्न मानने के लिये त्रिपुरेशाद्रिनिष्ठ संज्ञा दी है। त्रिपुरेश पर्वत के अधोभाग में उनका निश्चित स्थान बताता है। तृतीय ज्येष्ठेश्वर रुद्र का स्थान डल लेक के समीप था। यहाँ महाराज हरी सिंह ने अपना राजभवन बना लिया है। वह भवन अब होटल रूप से चलता है। श्रीनगर से गुपकर होते हुए जो सड़क डल लेक के तट से होती चश्माशाही, शालीमार बाग की तरफ जाती है; वहीं पर सड़क से ऊपर राजभवन के स्थान पर यह स्थान था।

नन्दिक्षेत्र के ज्येष्ठेश वही हैं जिनका वर्णन भूतेश्वर मन्दिर के सन्दर्भ में किया गया है। भूतेश्वर मन्दिर के प्राकार में अनेक मन्दिर निर्माण किये गये थे। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन थी। मेवाड़ में एकलिंग जी के मन्दिर के प्राकार के अन्दर एकलिंग के मुख्य मन्दिर के चारों ओर अनेक मन्दिरों का निर्माण कालान्तर में राजाओं ने भूतेश्वर मन्दिर के समान कराया था। भूतेश्वर मन्दिर के समीप जैसे मोदर तीर्थ का अति लघु सरोवर है उसी प्रकार एकलिंग मन्दिर में भी एक लघु सरोवर है।

नीलमत पुराण इसे और स्पष्ट कर देता है :

पूर्वोपर्शं च यज्ज्येष्ठेताख्यं लिंगं मम द्विज।
तत्रापि सन्निधानं मे नित्यं विज्ञातुमर्हसि॥
1110:१३११

ऋषिकोटिसहस्राणि मम भक्त्या द्विजोत्तम।
तत्र संस्नापयन्ति स्म ज्येष्ठेशं तं सदैव तु॥
१३१२

यस्मादहं च ज्येष्ठेशे भूतैः सह तथामया।
वस स्वमपि मद्विप्र मन्निष्ठो मत्परायणः॥
1111:१३१७

भयदाता च दैत्यानां सुराणामभयप्रदः।
ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु वसिष्ठोऽपि महायशाः॥
1119.१३२३

स्नाता तु मोदरे पुण्ये दृष्ट्वा भूतेश्वरं हरम्।
ज्येष्ठेश्वरं नन्दिनं च गाणपत्यमवाप्नुयात्॥
1124:१३२८

ज्येष्ठेश के स्थान निर्णय में इस प्रकार कोई विवाद नहीं रह जाता। नीलमत स्थान का निश्चय स्पष्ट करता है। नन्दिक्षेत्र तथा वसिष्ठ आश्रम अर्थात् वेगथ के समीप ज्येष्ठेश का स्थान बताकर, वह भूतेश्वर स्थित ज्येष्ठेश को ही कल्हण वर्णित ज्येष्ठेश मानने के लिये बाध्य कर देता है।

शिव तथा नन्दी की कथा में एक प्राचीन लिंग की बात आती है। उसे ज्येष्ठेश कहते थे। वह नि.सन्देह शिव भूतेश्वर के स्थान में था। प्राचीन नन्दीक्षेत्र माहात्म्य में उल्लेख मिलता है कि ज्येष्ठेश्वर किंवा ज्येष्ठनाथ की पूजा नन्दीश तथा भूतेश्वर के अत्यन्त समीप होती थी। (श्लोक १४६)

कल्हण ने राजतरंगिणी के श्लोक १:१५१ में ज्येष्ठ रुद्र का उल्लेख किया है। वहाँ पर ज्येष्ठ रुद्र वास्तव में ज्येष्ठेश हैं। कल्हण पुनः ४:१९० में उल्लेख करता है कि ज्येष्ठ रुद्र का एक मन्दिर भूतेश्वर में निर्माण कराया गया था। कल्हण ने अन्तिम बार इसका उल्लेख ८:२४३० में किया है। वसिष्ठाश्रम जो बूथेसर अर्थात् भूतेश्वर के समीप था कह कर स्पष्ट कर देता है, कि नन्दिक्षेत्र में जो ज्येष्ठेश है, वही यहाँ वर्णित ज्येष्ठेश है।

इस श्लोक से एक बात और स्पष्ट हो जाती है। उक्त ज्येष्ठेश का लिंग स्वयंभू था। वह अनगढ़ था। इस प्रकार के अनगढ़ शिलाखण्ड की पूजा आज भी सारिका पर्वत, श्रीनगर तथा सुरेश्वरी स्थान में होती है।

ज्येष्ठेश का मन्दिर भूतेश्वर स्थित मन्दिरों के दो समूहों में पश्चिमी मन्दिर समूह में था।

स्वयंभू लिंगों की पूजा भारतवर्ष के अनेक तीर्थों में होती है। मैंने राजस्थान में अनेक स्थानों पर गाढ़े

वे नगर हो अथवा ग्राम अनगढ़ शिलाखण्ड की पूजा भैरव, रुद्रादि नामकरण देकर किये जाते देखा है।

शिव लिंग के प्राप्त करने की एक पुरानी प्रथा है। उन्हें गढ़ना अच्छा नहीं माना जाता। शिवलिंग प्रायः नर्वदा नदी से प्राप्त किये जाते थे। उन्हें नर्देश्वर कहा जाता था। ब्राह्मण किंवा पुरोहित अथवा इस कार्य के लिये नियुक्त व्यक्ति स्नानादि कर शुद्ध होकर नर्वदा की धारा में डुबकी लगाते थे। नदी तल में जो लिंग मिल जाता था उसे लेकर निकलते थे। उसी लिंग की स्थापना गड़े अर्घों में कर दी जाती थी। नर्वदा तल में सभी पत्थर के ढोके प्रायः शिव लिंग आकार के गोले तथा लम्बे आकार के होते हैं। आज कल इस प्रकार के शिव लिंग मूर्तिकार गढ़ने लगे हैं। पालिश करते हैं। तत्पश्चात् स्थापनार्थ बेचते हैं।

यहाँ ज्येष्ठेश शब्द की व्याख्या में विस्तार से जाना अप्रासंगिक होगा। ज्येष्ठेश नाम क्यों दिया गया ? किसी व्यक्ति के नाम पर, ऋषि के नाम पर अथवा किसी पुरानी कथा के आधार पर यह नामकरण किया गया। इसका सम्बन्ध धार्मिक अनुसंधान से है। ऐतिहासिक दृष्टि से इतना वर्णन अलम् प्रतीत होता है।

रुद्र वास्तव में वैदिक देवता है। वैदिक साहित्य में नैसर्गिक एवं व्याधि जनित उत्पात निर्माण कारक देवता की संज्ञा रुद्र नाम से दी गयी है।

शिव की संज्ञा उसी देवता के शमनकारी रूप को दी गई है। अतएव एक ही देवता के रौद्र एवं शान्त रूप का नाम रुद्र एवं शिव है।

पाश्चात्य दैव विज्ञान में सृष्टि संचालक एवं संहारक एक ही देव को मानकर उसकी द्विविध रूप में उपासना की जाती है। भारती दैव विज्ञान संचालक एवं संहारक दो शक्तियों किंवा दैव को मानता है। सचालक शक्ति को विष्णु तथा सृष्टि संहारक शक्ति को रुद्र की संज्ञा दी गयी है।

ऋग्वेद से गृह्यसूत्रों के काल तक रुद्र देवता विषयक कल्पनाओं की उत्क्रान्ति पर दृष्टिपात किया जाय तो प्रतीत होता है। ऋग्वेद अथवा वैदिक साहित्य में रुद्र निसर्ग प्रकोप का देव था।

वही रुद्र उत्तर कालीन साहित्य में पशु, वन, पर्वत, नदी, स्मशानादि समस्त सृष्टि व्यापक एक महान् शक्ति सम्पन्न देवता के रूप में मान्यता प्राप्त कर लिया है।

ऋग्वेद में रुद्र के स्वरूप का वर्णन किया गया है। उनका वर्ण भूरा है। सूर्य तुल्य जाज्वल्यमान एवं सुवर्ण समान प्रदीप्त है। (ऋ० १:४३, २:३३) पूषन तुल्य जटाधारी है।

संहिताओं में वैदिक रुद्र का रूप बदलता दिखाई देता है। उन्हें सहस्राक्ष, नील वर्ण ग्रीवा, एवं केश युक्त बताया गया है (वा० सं०: १६; ७, अथर्ववेद. २:२२) उनका उदर किंवा पेट कृष्ण एवं वर्ण रक्त कहा गया है। (अथर्व वेद १५: १) उन्हें चर्मधारी भी कहा गया है। (वा० सं : १६-२-४,५१) कालान्तर में यह चर्मधारी रूप बाघाम्बर एवं मृग चर्मधारी रूप में परिणत हो गया।

महाभारत एवं पुराणों में रुद्र के स्वरूप की अनेक कल्पनाएँ की गयी हैं। पंचमुख की कल्पना विशेष प्रचलित है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं ऊर्ध्व दिशा वाला मुख सौम्य तथा दक्षिण दिशावर्ती मुख रौद्र दिखाया गया है। दक्षिण दिशा काल की दिशा कही गयी है। अतएव रौद्र रूप प्रदर्शित करना इसी काल किंवा संहार का प्रतीक है। (म० अनु० १४०:४६)

ग्रीवा नील होने का महाभारत में ही दो वर्णन मिलता है। महाभारत अनुशासन पर्व (१४१:८) इन्द्र के प्रहार के कारण ग्रीवा नील होना कहता है। महाभारत शान्ति पर्व (३४२:१३) दूसरा कारण देता है। समुद्र मंथन से प्राप्त हलाहल विष पान करने के कारण शिव की ग्रीवा नीली हो गयी थी। नाम नीलकंठ पड़ गया था। उन्हें वहीं पर श्रीकंठ कहा भी गया है।

पुराणों में रुद्र को चतुर्मुख (विष्णु धर्मः ३:४४-४८;५५:१) अर्धनारीश्वर, नटेश्वर (मत्स्य: २६०) एवं त्रिनेत्र कहा गया है।

रुद्र का निवास स्थान वैदिक साहित्य के अनुसार पर्वतों और मुख्यतया मूजवत् पर्वत है (वा० सं०: २६:२–४; ३.६१;) महाभारत रुद्र का आद्य निवास स्थान मेरु पर्वत मानता है। रुद्र का इसलिए एक नाम मेरुधामा पड़ गया है। (म० अनु० १७:९,१) आश्वमेधिक पर्व महाभारत (८·१) वायु पुराण (४७.१९) एवं सौप्तिक पर्व (१७.२६) के अनुसार रुद्र का निवासस्थान मुंजवान किंवा मूजवत पर्वत है। यह पर्वत कैलास के उस पार था। महाभारत भीष्म पर्व (७.३१) में इनका निवास स्थान कैलास एवं हिमालय पर्वत बताया गया है।

महाभारत अनुशासन पर्व (१४१·१७–१९) के अनुसार रुद्र का निवास स्थान काशी की श्मशान भूमि है। संवर्त को शव रूप शिव का दर्शन काशी में हुआ था।

सभी का समन्वय करने पर निष्कर्ष निकलता है कि रुद्र का स्थान हिमालय के एकान्त में, तपस्या योग्य पर्वतों के मध्य होना चाहिये। भूतेश्वर का स्थान इस दृष्टि से आदर्श है। वहाँ ज्येष्ठ रुद्र की स्थापना की कल्पना सराहना योग्य है।

दक्ष प्रजापति ने रुद्र को नन्दिकेश्वर नामक वृषभ वाहन के लिये दिया था। उनकी ध्वजा पर वृषभ का चिह्न था। अतएव नाम वृषभध्वज पड़ गया। भूतेश्वर स्थान नन्दिक्षेत्र के अन्तर्गत है। इनका आयुध, विद्युत शर है। वेद में इनका शस्त्र धनुष बाण एवं वज्र कहा गया है। ऋ० २:३३:३; १०,५४२:१०;१०:१२६ ६)

यजुर्वेद के शतरुद्रीय अध्याय में रुद्र का स्वभाव चित्रण अधिक विस्तार के साथ किया गया है। (तै० स० ४:५ १, वा० सं० १६) इन्हें 'रुद्रतनु' अर्थात् रुद्रस्वरूप और 'शिवतनु' अर्थात् शिव स्वरूप कहा गया है।

या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वस्य भेषजी।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥

अथर्ववेद में सप्त रुद्रों यथा (१) ईशान, (२) भव, (३) शर्व (४) पशुपति (५) उग्र (६) रुद्र एवं (७) महादेव का वर्णन है। पुराणों में अष्ट रुद्रों का उल्लेख है। यथा–(१) रुद्र (२) भव (३) शर्व (शिव) (४) पशुपति (५) भीम (६) ईशान (७) उग्र एवं (८) महादेव। महाभारत में एकादश रुद्रों का उल्लेख है। यथा (१) मृगव्याध (२) शर्व (३) निर्ऋति (४) अजैकपाद (५) अहिर्बुध्न्य, (६) पिनाकिन् (७) दहन (८) ईश्वर (९) कपालिन् (१०) स्थाणु एवं (११) भव (म० आदि ५०:१०३)

स्कन्द पुराण में (१) भूतेश, (२) नील रुद्र (३) वृषवाहन (४) त्र्यंबक (५) महाकाल (६) भैरव (७) मृत्युंजय (८ कामेश एवं (९) योगेश रुद्रों का नाम दिया गया है। (स्कन्द पु० :७:१:८७) इस पुराण की मान्यता है। कृतयुग में अष्ट रुद्र थे। कलियुग में ग्यारह रुद्रों का अवतार हुआ था। भागवत पुराण (२:१३:७–१८) में (१) मन्यु (२) मनु–(३) महिनस् (सोम) (४) महत् (५) शिव (६) ऋतध्वज (७) उग्ररेतस् (८) भव (९) काल (१०) वामदेव (११) धृतध्वज का नाम दिया गया है।

स्कन्द पुराण में 'भूतेश' को एक रुद्र माना गया है। भूतेश्वर स्थान 'भूतेश' का मन्दिर था। स्थान का नाम भी भूतेश्वर था। अतएव यह निश्चित हो जाता है कि स्थान रुद्र से सम्बन्धित था। *ज्येष्ठ रुद्र का नाम उक्त मान्य तालिकाओं में किसी में नहीं मिलता।*

ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में जो रुद्र था वही उपनिषदों में शिव का रूप ले लिया इस प्रकार रुद्र को परम शुद्ध आध्यात्मिक रूप प्राप्त हो गया। उनकी पूजा यज्ञ भाग से नहीं बल्कि फल-पुष्पादि द्वारा होने लगी। उनका रूप अथर्व वेद वर्णित सातवें रुद्र उत्तर-लोक के अधिपति 'महादेव' तुल्य हो गया। इसीको महाभारत अनुशासन पर्व (१६१:२) बड़ी स्पष्टता से प्रकट करता है।

ते तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः॥

[शिव की घोर एवं शिवा नामकी दो मूर्तियाँ हैं। उनमें घोरा अग्नि रूप है एवं शिवा परम गुह्य अध्यात्म स्वरूप महेश्वर है]

रुद्र शिव की उपासना भारत में अत्यन्त प्राचीन है। उपासना का काल विभाग दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम काल में शिव की प्रतिकृति की उपासना की जाती थी। द्वितीय काल में शिवलिंगोपासना आरम्भ हो गयी।

भूतेश एवं ज्येष्ठ रुद्र इसी द्वितीय काल विभाग में आते हैं। उनमें शिवलिंग की स्थापना की गयी थी। ज्येष्ठ रुद्र का लिंग स्वयंभू था।

ऋग्वेद (७.२१.५, १०।९९।३) में शिश्नदेव की उपासना का उल्लेख अनार्य लोगों के सन्दर्भ में किया गया है। प्राचीन वैदिक वाङ्मय में नहीं मिलता। पतञ्जलि के महाभाष्य (३:९९) में शिव, स्कंद, विशाख, की स्वर्णादि की मूल्यवान प्रतिकृतियों की पूजा के स्पष्ट निर्देश हैं। वेम कद फिसस की मुद्राओं पर शिव की त्रिशूलधारी एवं शिव के प्रतीक स्वरूप शिवलिंग नहीं अपितु नन्दिन् उत्कीर्ण किया गया है।

श्वेताश्वर उपनिषद् (४,११,५·२) में सर्व प्रथम शिवलिंगोपासना का निर्देश मिलता है। 'ईशान रुद्र' को समस्त योनियों का अधिपति कहा गया है। किन्तु यहाँ भी शिवलिंग को शिव का प्रतीक होने का स्पष्ट निर्देश नहीं है।

महाभारत में उपमन्यु के आख्यान में सर्व प्रथम शिवलिंगोपासना का स्पष्ट रूप से निर्देश प्राप्त होता है।

मोहें जो दडो एवं हड़प्पा के उत्खनन में शिव रूप से मिलती मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उनका काल ईशा के ३००० वर्ष पूर्व अर्थात् ४९६८ वर्ष है। यही काल कल्हण तथा नीलमत पुराण के अनुसार महाभारत काल था। यहाँ के प्राप्त देवताओं की मूर्तियाँ महाभारत वर्णित 'त्रिशीर्ष' 'त्रिवक्त्र' 'ऊर्ध्वलिंग' 'योगाध्यक्ष' स्वरूप से मिलती हैं। (म. अनु.: १४: १६२, १६५, ३०८,१७.४६, ७७.९९) वहाँ से प्राप्त मूर्तियों के वाम हस्त में व्याघ्र एवं हस्ती हैं। दक्षिण हस्त में वृषभ एवं गण्डक है। वह चित्र भी महाभारत अनुशासन पर्व (१४:३१३, १७,४८,६१,८५,९१) वर्णित 'पशुपति' 'शार्दूल रूप' 'व्याल रूप' 'मृग बाण रूप, 'नागचर्मोत्तरच्छद' 'व्याघ्राजिन' 'महिषघ्न' 'गजहा' एवं 'मण्डलिन्' से मिलता है।

महाभारत में शिव को सर्वत्र वृषभवाहन कहा गया है। हिटाइट लोगों के तेशब देवता से शिव का साम्य मिलता है। बेबिलोन में प्राप्त अनेक शिल्पों एवं अवशेषों में तेशब की प्रतिमाएँ मिली हैं। उनमें तेशब को वृषभवाहन एवं त्रिशूलधारी दिखाया गया है। तेशब की पत्नी का नाम मौ था। शिव भी अम्बिका जिन्हें पार्वती एवं दुर्गा कहा गया है उनके पति हैं। तेशब की पत्नी सिंहारूढ है। दुर्गा भी सिंहवाहिनी है।

सुसा में प्राप्त तेशब की पत्नी का चित्रण मधुमक्षिका के साथ किया गया है। यह मार्कण्डेय पुराण वर्णित भ्रामरी देवी से साम्य रखता है। कल्हण ने भ्रामरी वासिनी देवी का वर्णन राजतरंगिणी में (३:३९४, ४२३) किया है।

तेशब के समान रुद्र के हाथ में विद्युत, धनुष, त्रिशूल, दण्ड, परशु, पट्टिश आदि अस्त्र दिखाये गये हैं। (ऋ. २: ३३; ३; म. अनु १४: २८८ २८९, १७:४२, ४४:९९)

'शत्रुजय सूक्त' शुक्लयजुर्वेद में रुद्र को लक्ष्य कर लिखा गया है। उसका विचार सुमेरियन देवता 'नेर्यल' से मिलता है। मत है कि भारतीय रुद्र शिव का सम्बन्ध किंवा साम्य अनातेगलिया, मेसोपोटामिया, एवं सिन्धुघाटी की सभ्यता से अवश्य रखता है। (राय चौधरी: स्टडीज इन इंडियन अण्टिक्विटीज पृष्ठ २००-२०४)

निःसन्देह रुद्र सर्व प्रथम वैदिक देवता थे। कालान्तर में वे व्रात्य, निषाद, वन्यादि एवं अनार्य

ग्रामे ग्रामे स्थितैरश्वैर्धावनं प्रतिपिद्धवान् ।
स्वेनावहत्तं सततं नागः कोऽपि सुहृत्तया ॥ ११४ ॥

११४. एक सदय हृदय नाग ग्राम ग्राम[1] पड़ावों पर परवर्तनार्थ स्थित अश्वों को लम्बी कष्टप्रद यात्रा[2] से राजा को विरत कर स्वयं उन्हें ज्येष्ठेश से विजयेश्वर निरंतर पहुँचा दिया करता था।

स रुद्ववसुधाम्म्लेच्छान्निर्वास्याखर्वविक्रमः ।
जिगाय जैत्रयात्राभिर्महीमर्णवमेखलाम् ॥ ११५ ॥

११५. उस विक्रमशाली राजा ने म्लेच्छों[1] से आक्रांत वसुधा का उद्धार कर अपनी विजय यात्राओं द्वारा समुद्र मेखला धारिणी मही का जय किया।

लोगों के देवता बन गये। प्राचीन वैदिक आर्यों द्वारा प्रस्थापित कल्पनाएँ लुप्त हो गयी। अन्तर पड़ता गया। रुद्र भूतपति, किंवा भूतेश, सर्पधारी, स्मशान-निवासी देव में परिणत हो गये। प्रतिकृति की पुरातन उपासना की परंपरा नष्ट हो गयी। उसका स्थान शिव लिंग की उपासना करने वाली नवीन परम्पराओं ने ले लिया।

ज्येष्ठेश किंवा ज्येष्ठ रुद्र नामकरण इसलिये किया गया कि सप्त, अष्ट, एकादश रुद्रों में सबसे ज्येष्ठ रुद्र की उपासना ग्राह्य की गयी। अतएव भूतेश रुद्र के समान ज्येष्ठेश रुद्र नामकरण कर दिया गया।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ११४ में 'हृत्तं, का 'हृ' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११४ (१) ग्राम ग्राम : अश्व से यदि ज्येष्ठेश से विजयेश तक की यात्रा की जाय तो चार दिन पड़ाव डालकर पहुँचा जा सकता है। कल्हण यहाँ स्पष्ट कहता है। मार्ग में पड़ने वाले ग्रामों में अश्व नियुक्त रहते थे। एक ही अश्व द्वारा पूरी यात्रा नहीं समाप्त हो सकती थी। कुछ दूरी पर नवीन अश्व तैयार रहते थे। शिथिल अश्व को त्याग कर नवीन अश्व से यात्रा की जाती थी। पड़ाव पर अश्व रखने और बदलने की प्रथा बहुत पुरानी है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रेल तथा मोटर के आने के पूर्व यूरोप, एशिया तथा सभ्य जगत् में यह प्रथा प्रचलित थी। राजकीय डाक तथा संवाद ले जाने के लिये पड़ाव निश्चित रहते थे। वहाँ अश्व रखे जाते थे। ठहरने किंवा विश्राम का प्रबन्ध रहता था। कश्मीर में यह प्रथा आज से तेईस सौ वर्ष पूर्व ही प्रचलित प्रतीत होती है।

(२) यात्रा : श्री स्टीन ने इस श्लोक की टिप्पणी में ठीक ही लिखा है। कल्हण ने यहाँ ज्येष्ठेश से विजयेश्वर तक की लम्बी कष्टप्रद यात्रा का वर्णन किया है। यह कम से कम अश्वों द्वारा चार दिन का पड़ाव कर समाप्त की जा सकती थी। शीघ्र पहुँचने की दृष्टि से और यह किस प्रकार एक ही दिन में सम्भव हो सकता था, कल्हण ने नाग की कथा जोड़ दी है। प्रतिदिन यह कार्य राजा के लिए किस प्रकार सम्भव था इसका स्पष्टीकरण नाग को राजा के वाहन रूप में प्रस्तुत कर कल्हण करता है।

ज्येष्ठेश से विजयेश की दूरी पक्षी उड़ान या नभ से सीधे ४५ मिनट की होती है। यदि यह यात्रा अश्व से की जाय तो सचमुच चार दिन लग जायगा। मार्ग अत्यन्त लम्बा, पहाड़ियों का चक्कर काटता, ऊबड़-खाबड़ और कष्टप्रद था। पहाड़ियों के कारण अश्व की गति तेज भी नहीं हो सकती थी। भूतेश्वर से कनकवाहिनी नदी की घाटी पकड़कर चलने से सिन्धु नदी पहुँचने तक मार्ग है। अतएव नाग को यहाँ पर लाया गया है कि उसपर सवारी कर राजा अविलम्ब नित्य पहुँच जाता

ा। अश्व की सवारी से किसी प्रकार एक दिन मे येष्ठेश से विजयेश्वर नही पहुँचा जा सकता। इस लए इस असंगति दोष को दूर करने के लिये कल्हण नाग का कथानक वहाँ जोड़ा है। वशिष्ठाश्रम, ारबल, चीरमोचन, तत्पश्चात् मयग्राम, दुग्धाश्रम, हिरण्यपुरा, श्रुवेश्वरी, ईशेश्वर, भीमा देवो, गोपाद्रि होते हुए श्रीनगर आता है। वहाँ से पुराधिष्ठान, नयवन, मिहपुर, समरस्वामी, पद्मपुर, ललितपुर, ोपालपुर, अवन्तिपुर, कतिका, होते वितस्ता पार कर यदि चला जाय तो गम्भीरा संगम होते चक्रधर से विजयेश्वर पहुँचता है। यह मार्ग त्रिकोण बनाता भूतेश्वर से विजयेश्वर तक बड़ा लम्बा बन जाता है।

श्रीनगर से विजयेश्वर २९ मिल पड़ता है। प्राचीन मार्ग का अनुसरण किया जाता तो वह लगभग सौ मिल से उस समय के चक्करदार मार्ग के कारण कम न होगा। आजकल सुगम राज पथ एवं सभी स्थानो मे पहुँचने के लिए सड़क बन जाने के कारण मार्ग की दूरी कम हो गयी है और पथ भी सरल हो गये है।

११५ (१) म्लेच्छ : यहाँ म्लेच्छ से तात्पर्य यूनानी आक्रामकों से है। म्लेच्छ शब्द की विस्तृत व्याख्या परिशिष्ट 'म्लेच्छ' में की गयी है द्रष्टव्य है।

कश्मीर के सीमान्त पर अर्थात् सिन्धु के पश्चिमी तट अफगानिस्तान, तथा कश्मीर के उत्तर एवं पश्चिम यूनानियों का शासन अलकसुन्दर अर्थात् सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् हो गया था। सम्राट् अलकसुन्दर की मृत्यु के पश्चात् यूनानी साम्राज्य अनेक क्षत्रपों मे विभाजित हो गया था। निस्सन्देह अशोक का प्रभाव क्षेत्र किंवा राज्य मानसेहरा, तक्षशिला, शहबाजगढ़ी, लम्पक, कन्दहार तक फैल चुका था। अन्यथा वहाँ अशोक अपने स्तम्भों का निर्माण और धर्म प्रचार कराने में समर्थ नहीं हो सकता था।

ईसा पूर्व २०६ ई० मे यूनानी क्षत्रप, शासक किंवा राजा अन्तियोकस तृतीय ने वलख पर आक्रमण किया। जीत लिया। बिखरे राज्य को पुनः संघटित करने का प्रयास किया। उसने इसी वर्ष भारत की सीमा का अतिक्रमण किया। वह काबुल उपत्यका लाँघता भारत भूमि पर सेना सहित आ पहुँचा। उस समय पाटलीपुत्र मे मौर्य राजा शालीशुक था। उसे सुभगसेन भी कहा जाता है। अन्तियोकस ने शालीशुक से मित्रता कर ली थी।

अलकसुन्दर के आक्रमण के समय तक्षशिला एवं दर्भाभिसार के राजा आम्भी ने अपनी निष्ठा अलकसुन्दर के प्रति प्रकट की थी। कश्मीर के राजा ने भी अपने भाई के साथ चालीस हाथी अलकसुन्दर के भेंट निमित्त भेजे थे।

अन्तियोकस के अभियान का उद्देश्य मालूम होता है, अलकसुन्दर द्वारा विजित भूक्षेत्र पर पुन: अधिकार किंवा प्रभाव स्थापित करना था। सम्भव है। इसी दृष्टि से कश्मीर के राजा ने भी हाथी भेज कर अपनी निष्ठा प्रकट की थी। कश्मीर में अशोक का पुत्र जलौक शासन कर रहा था। कश्मीर भी अशोक के राज्य का अंश था। एतदर्थ अन्तियोकस ने आक्रमण किया होगा।

कल्हण स्पष्ट कहता है कि म्लेच्छों के संहार निमित्त तपस्या कर अशोक ने जलौक पुत्ररत्न भगवान् शंकर की कृपा से प्राप्त किया था। उसके जन्म ग्रहण का प्रयोजन म्लेच्छों का संहार करना था।

कल्हण ने उसी बात को दृष्टि में रख कर म्लेच्छ संहार की बात अपनी वर्णन संगति कायम रखने के लिये की है।

अशोक का अवसान ईसा पूर्व २३२ वर्ष मे हुआ था। यह घटना अशोक की मृत्यु के २६ वर्ष पश्चात् की है। भारतीय इतिहास की गणनानुसार इस समय अशोक का प्रपौत्र शालीशुक पाटलीपुत्र का राजा था। अशोक का पुत्र जलौक कश्मीर का राजा था।

मालूम होता है। जलौक न तो कभी पाटली-पुत्र गया और न उसका कोई वंशधर पाटलीपुत्र का राजा हुआ था। उसने अपने पिता के सिंहासन पर बैठने का भी प्रयास नहीं किया। वह कश्मीर से ही सन्तुष्ट था। जलौक का अशोक के पश्चात् २६ वर्ष तक राज्य करते जीवित रहना कोई आश्चर्य की बात नही मालूम पड़ती।

ते यत्रोज्झटितास्तेन म्लेच्छाः छादितमण्डलाः ।
स्थानमुज्झटडिम्बं तज्जनैरद्यापि गद्यते ॥ ११६ ॥

११६. म्लेच्छाच्छादित मण्डल को जिस स्थान पर म्लेच्छों को उज्झटित कर राजा ने मुक्त किया था उसे लोग उज्झटडिम्ब[1] कहते थे और आज भी कहते हैं।

जित्वोर्वीं कान्यकुब्जाद्यां तत्रत्यं स न्यवेशयत् ।
चातुर्वर्ण्यं निजे देशे धर्म्यांश्च व्यवहारिणः ॥ ११७ ॥

११७. कान्यकुब्ज[1] तथा अन्य भूमि जीतकर राजा ने वहाँ के चातुर्वर्ण्य[2] निवासियों और धर्म तथा व्यवहार निपुणों को अपने देश में लाकर बसाया।

कहा जाता है। ईसा पूर्व २०६ वर्ष में कश्मीर तथा कलिंगादि राज्य स्वतन्त्र हो गये थे। कश्मीर पर अशोक के विजय की बात कहीं नहीं मिलती। किन्तु कश्मीर के स्वतन्त्र राज्य होने का प्रमाण अशोक के पश्चात् मिलता है। कश्मीर अपनी स्वतंत्र स्थिति कायम रखने के लिये पाटलीपुत्र का मुखापेक्षी नहीं रहता था। अतएव म्लेच्छों के आतंक का सामना कश्मीरी सेना ने किया। यूनानी अर्थात् म्लेच्छों से कश्मीरी सेना ने लोहा लिया। म्लेच्छ पराजित हुए। म्लेच्छाकीर्ण भूमि पुनः म्लेच्छ विहीन हो गयी। दूसरी तरफ मौर्य साम्राज्य दुर्बल होता गया। अशोक जैसी क्षमता उसके उत्तराधिकारियों में नहीं रह गयी थी। शालीशुक म्लेच्छ सेना का सामना करने में असमर्थ था। यूनानियों से सन्धि कर ली।

कश्मीर के राजा जलौक ने म्लेच्छों का उच्छिन्न किया। राज्य का विस्तार किया। उसने विजय यात्रा किस ओर की थी। किन भूखण्डों पर विजय प्राप्त किया था। इस पर कल्हण कुछ प्रकाश नहीं डालता।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ११६ में 'ते' का 'स', 'यत्रो' का 'तत्रो', 'ज्झटिता' का 'ज्जूटित', मुज्झट' का 'मुजुट' मुजूट', 'मुत्कुट' 'मुज्जूट' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११६ (१) उज्झटडिम्ब - कश्मीर में डिम्ब शब्द स्थानीय नामों के अन्त में 'मूर' अथवा 'योग' के समान जोड़ते हैं। उज्झटित अर्थात् जिस स्थान पर म्लेच्छों को राजा जलौक ने परास्त किया था उसका इतना महत्त्व काश्मीरी इतिहास में हो गया था कि उसके नामपर एक स्थान का नाम पड़ गया। काश्मीरियों ने यूनानियों को पराजित किया था। वह उनके लिये गौरव तथा महत्त्व की बात थी। यह इस उल्लेख से और स्पष्ट होता है कि कल्हण के समय अर्थात् लगभग १३५४ वर्ष युद्ध के पश्चात् तक उज्झटडिम्ब स्थान तथा नाम प्रचलित था। कल्हण ने वहाँ से प्राप्त सामग्री एवं किसी कथानक के आधार पर म्लेच्छों के उच्छिन्न करने का वर्णन लिखा है।

इस समय वह स्थान कहाँ पर है। पता नहीं चलता। परन्तु इसे काश्मीर के दक्षिण पश्चिम किंवा पश्चिम होना चाहिए।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ११७ में 'कान्यकुब्ज' का पाठभेद 'कन्यकु' तथा 'सन्य' का 'सन्म' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११७ (१) कान्यकुब्ज : यह स्थान वर्तमान कन्नौज है। इत्र, गुलाबजल, सुगन्धित तेलके लिये आजकल प्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश में फरुखाबाद जिला में एक नगर है। गंगा के वामतट पर स्थित है। वाल्मीकि रामायण में कन्नौज के नामकरण का उल्लेख है।

वाल्मीकीय रामायण में नगर के नामकरण की एक कथा मिलती है। चन्द्रवंशी राजा कुशनाभ ने महोदय नगर की स्थापना की थी। राजा की एक सौ कन्याएँ वायु के शाप से कुब्जा हो गयी। उस समय इस नगर का नाम 'कन्य-कुब्ज' पड़ा।

प्रतीत होता है कि सबसे प्राचीन नाम महोदय नगर था। तत्पश्चात् कान्यकुब्ज पड़ा। अनन्तर गाधिपुर कुशस्थल कुशिक आदि नाम पड़ता गया। कुसुमपुर भी इसका नाम पड़ गया। जन्हु के नाम पर गंगा की धारा का नाम जान्हवी पड़ा था।

महाभारत के अनुसार वह राजा गाधि की राज-धानी थी। कान्यकुब्ज राज्य एवं उसके जनपद दोनों का नाम था। (म० आदि : १७८:३, वन० ११५:२०) विश्वामित्र ने कान्यकुब्ज में इन्द्र के साथ सोमपान किया था। (म० वन० ८७:१७) गाधिराज कुमारी सत्यवती को अपनी पत्नी बनाने के लिये ऋचीक ऋषि ने अपना विचार प्रकट किया था। (म० उ० ११९:४)

स्कन्द पुराण में देशों की तालिका में कान्यकुब्ज का स्थान छठवाँ है। इसमें ३६ लाख ग्राम थे।

कान्यकुब्ज को प्राचीनकाल में गाधिपुर, कुश-स्थल तथा महोदय नगर कहते थे। भागवत पुराण में अजामिल को यहीं का निवासी बताया गया है। विश्वामित्र की वह जन्मभूमि थी।

बुद्ध काल से गुप्त काल के अंत तक स्वतंत्र जनपद के रूप में कान्यकुब्ज का नाम प्रायः नहीं मिलता। कालान्तर में यह मौखरी राज्य का केन्द्र हो गया। मौखरी राज्य का संस्थापक हरिवर्मा था। मौखरी वंश के प्रसिद्ध राजा 'ईशानवर्मा' ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। थानेश्वर के शासक हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह मौखरी राजा गृहवर्मा से हुआ था। मालवा के शासक देवगुप्त ने गृहवर्मा को मारकर राज्यश्री को बन्दी बना लिया। कान्यकुब्ज के मन्त्रियों ने राज्य-हर्षवर्धन को दे दिया।

महाराजा हर्षवर्धन के समय कान्यकुब्ज की आशातीत उन्नति हुई। वह राज्य से साम्राज्य की राजधानी बन गया। महाकवि बाण ने 'हर्ष चरित' में कान्यकुब्ज का जीता जागता चित्रण किया है।

हुएनत्साग ने कान्यकुब्ज की यात्रा की थी। उसने यहाँ की भूरि भूरि प्रशंसा की है। बौद्ध साहित्य में कान्यकुब्ज का 'कन्यकुब्ज' जो संस्कृत कान्यकुब्ज का अपभ्रंश है, नाम मिलता है। हुएनत्साग ने स्पष्ट उल्लेख किया है। यहाँ पर बौद्ध विहार थे। उसमें दस सहस्त्र भिक्षु विहार करते थे। हुएनत्सांग के अनुसार कान्यकुब्ज का विस्तार ४००० ली था। उसका कथन है। कान्य-कुब्ज ने संस्कृति, सभ्यता, युद्ध एवं शान्ति कालीन कला में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी।

हर्ष के पश्चात् यशोवर्मा राजा हुआ। तत्पश्चात् क्रमशः आयुध, प्रतीहार तथा गाहड़वाल राजवंशों का कान्यकुब्ज पर अधिकार हुआ। प्रतिहार वंश में नागभट, मिहिरभोज, महेन्द्रपाल आदि प्रसिद्ध राजा हुए हैं। गाहड़वाल वंश में गोविन्दचन्द्रादि के समय कन्नौज की विशेष उन्नति हुई थी। निस्सन्देह छठवीं शताब्दी से १२वी शताब्दी तक साहित्य, कला, धर्मादि का विशेष विकास कन्नौज में हुआ था। 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' के लेखक वाणभट्ट के अतिरिक्त यशोवर्मा के राजकवि वाक्पति एवं भवभूति थे। प्रतीहार काल में राजशेखर, गाहड़वाल काल में लक्ष्मीधर एवं श्रीहर्ष संस्कृत के उद्भट साहित्यकार एवं कवि हुए थे। प्रतीहरों के समय कन्नौज स्थापत्य एवं मूर्तिकला में प्रसिद्ध हो गया था। छठवी शताब्दी में श्वेत हूणों ने कन्नौज पर आक्रमण किया था। तालिमी ने इसका नाम 'कनो गिजा' दिया है।

फिरदौसी ने शाहनामा में कन्नौज का प्रशंसनीय भाषा में उल्लेख किया है। उसका कथन है कि

कर उसके स्थानों पर महाफलदायक 'धर्म मंगल' की बात चलायी गयी थी। अशोक की दृष्टि में यह आवश्यक सुधार था। धर्म प्रचार था। परन्तु यह सुधार जनता हृदयंगम न कर सकी। पश्चिमोत्तर सीमान्त पर उठते युद्ध के बादल, जलौक को दूसरे ढंग पर विचार करने के लिये बाध्य कर दिये। अशोक का अभिलेख इस सम्बन्ध में स्पष्ट था।

'इय वयं (८) ये हि एत के मगले शसयिके तं (९) सिय वो त अठं निवटेयति सिय पुन ना (१०) इअलोक च वो तं (११) इद पुन ध्रम मंगलं अकालिकं (१२) यदि पुन तं अठ न निवटे इअ अथ परत्र अनंतं पुनं प्रसवति (१३) हंचे पुन तं ठं निवटेति ततो उभयेस लध भोति इअ च सो अयो परत्र च अनंतं पुनं प्रसवति तेन ध्रमगलेन।'

[यह कहूँगा। क्योंकि इस प्रकार के मंगल सन्दिग्ध फल वाले होते हैं। इनमें अभीष्ट फल की प्राप्ति हो भी सकती है और नहीं भी। ये इहलौकिक हैं। किन्तु धर्म मंगल समय से बाधित नहीं है। हो सकता है कि इसने इस लोक में वाञ्छित फल की सिद्धि न हो। किन्तु परलोक में इससे अनन्त पुण्य होता है। परन्तु यदि इससे (इस लोक मे भी) सिद्धि होती है तब तो दोनों लाभ प्राप्त होते हैं। अर्थात् इस लोक में इससे अर्थ की प्राप्ति होती है। और परलोक में इस धर्म मंगल से अनन्त पुण्य उत्पन्न होता है]

"से अज देवन प्रियस प्रियद्रसिने रजिने ध्रम चरणेन भेरिघोषे अहो धमघोषे विमन द्रशन अस्तिने अगिकंधनि अञनि च दिवनि रुपनि द्रशेति जनस (२) (मानसेहरा शिला चतुर्थ अभिलेख)

[... किन्तु आज देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरीघोष (रणभेरी) धर्म घोष हो गया। विमान दर्शन, हस्ति दर्शन, अग्नि स्कन्ध तथा अन्य दिव्य प्रदर्शनों को जनता को दिखाकर..]

क्रिया की प्रतिक्रिया होना अनिवार्य है। अशोक के धर्म प्रचार के उत्साह की प्रतिक्रिया पाटलीपुत्र तथा कश्मीर दोनों स्थानों में हुई। कश्मीर में कल्हण के मतानुसार बौद्ध प्रभाव प्रबल हो उठा था। उसने जनता में विरक्ति की भावना भर दी। गृहत्याग की भावना भर दी। प्रव्रज्या को श्रेष्ठ माना। जीवन में उदासीनता को महत्त्व दिया। वह एक प्रकार से गार्हस्थ्य एवं क्षत्रिय धर्म से निष्क्रियता की ओर ले गया। राजाश्रय प्राप्त कर पाटलीपुत्र सैनिक शक्ति के केन्द्र के स्थानपर धर्म प्रचार का केन्द्र बन गया।

जलौक ने विदेशी खतरे को देखा। उसका सामना करने के लिये जनता के विचार में परिवर्तन लाना चाहा। एतदर्थ कान्यकुब्ज से वर्णाश्रम धर्मानुयायियों एवं विद्वानों को लाया। लुप्त होते वर्णाश्रम धर्म का उद्धार किया। एक नवीन जीवन उत्पन्न किया। नवीन प्रेरणा दी।

कश्मीर में बौद्धधर्म के विरुद्ध वह प्रतिक्रिया अशोक की मृत्यु के ३० वर्ष के अन्दर ही हो गयी। बौद्धधर्म 'संघ' शरण की बात करता है। उसके अनुशासन को मानता है। यूरोप में मध्ययुग में संघ अर्थात् चर्च तथा राज्य में संघर्ष हुआ था। चर्च राज्यपर अपना अंकुश रखना चाहता था। मूर्तमान प्रश्न खड़ा हो गया था। चर्च और राज्य दोनों में किसका आदेश किंवा अनुशासन मानना श्रेयस्कर होगा। इस भावना के कारण यूरोप में सुधारवादी, नव जागरण तथा धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा बलवती हुई। उसने भयंकर रक्तरंजित आन्दोलन का रूप पकड लिया।

कुछ इसी प्रकार की बात भारत में हुई। उसका बीज जलौक ने कश्मीर में डाला। वह उसके समय अंकुरित हुआ। और महा वृक्ष के रूप में पल्लवित, पुष्पित होता गया। वर्णाश्रम धर्म में देश, जनपद, नगर, ग्राम एवं गृह का स्थान था। उनके लिये उत्तरोत्तर त्याग करने की बात कही गयी है। देश किंवा राष्ट्र को आदर्श माना गया है। जननी जन्म भूमि को स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। जन्मभूमि

यथावद् वृद्धिमप्राप्तं व्यवहारधनादिभिः ।
सामान्यदेशवद्राज्यं तावदस्मिन्हि मण्डले ॥ ११८ ॥

११८. उस समय तक कश्मीर मण्डल में व्यवहार तथा धनादि का यथोचित विकास नहीं हुआ था और वहाँ की शासन व्यवस्था अन्य सामान्य राज्यों तुल्य थी ।

को माता माना गया है । यह सिद्धान्त राष्ट्रीयता की ओर ले जाता था ।

संघ का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख करता था । जनता संघ के अनुशासन में रहेगी अथवा राज्य—यह कठोर प्रश्न उपस्थित हो गया था । संघ की शरण गया व्यक्ति संघ के अनुशासन को मानने के लिये बाध्य था न कि राज्य के । विचारोंका संघर्ष उत्पन्न हो गया । शान्ति काल में संघ अनुशासन चाहे कितना ही आदर्श क्यों न हो परन्तु जब सीमा पर शत्रु सेना सज्जित खड़ी हो, राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो, देश में भी जनता की शक्ति संघ एवं देश में विभाजित हो गयी हो, तो इस काल में सैनिक विहीन, युद्ध सिद्धान्त विहीन, विरक्त समाज किंवा देश अपनी रक्षा करने में समर्थ कैसे हो सकता था ? जलौक ने जनता से प्रतिबन्धरहित किंवा ऐकान्तिक राजभक्ति की अपेक्षा की । इसमें उसे सफलता मिली । म्लेच्छों अर्थात् यूनानियों के आतंक से देश को मुक्त किया । उन्हें पराजित किया और कान्यकुब्ज तक सैनिक अभियान के साथ पहुँच गया । दूसरी ओर पाटलीपुत्र का शासन यूनानियों का सामना करने में असमर्थ सिद्ध हुआ ।

पाटलीपुत्र में राजा स्वयं बौद्ध था । अशोक का पुत्र था । तत्पश्चात् पौत्र हुआ । अशोक ने अभिलेखों में स्पष्ट आदेश दिया था । उसके पुत्र, पौत्र, तथा उत्तराधिकारी उसके धर्म घोष को जारी रखेंगे । 'त मम पुता च पोता च परं च तेन य मे अपचं आव संवटकवा अनुवति सरे तथा सो सुकतं कासति (५) यो तु एत देसं पि हापेसति सो दुकतं कासति (६) सुकरं हो पापं (गिरनार पंचम अभिलेख)

यदि मेरे पुत्र, पौत्र, और उनके परे जो मेरे अपत्य (संतान) कल्प के अन्त तक (इसका) अनुसरण करेंगे तो वे सुकृत करेंगे । जो इसका एक अंश भी नष्ट करेगा वह दुष्कृत करेगा । पाप सुकर है ।....कश्मीर में प्रतिक्रिया बौद्ध केन्द्र पाटलीपुत्र से दूर होने के कारण शीघ्र हुई । किन्तु पाटलीपुत्र बौद्धधर्म का केन्द्र था अतएव प्रतिक्रिया की गति मन्द थी । विलम्ब से हुई ।

राजाश्रय में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों शक्तियाँ शार्य्वक्य प्राप्त करती हैं । पाटलीपुत्र में जिस प्रतिक्रिया रूपी विद्रोह का बीजारोपण हो रहा था उस विप्लव वृक्ष के बढ़ने एवं पल्लवित होने में ४८ वर्ष लग गये ।

अशोक की मृत्यु के ठीक ४८ वर्ष पश्चात् मौर्य वंशीय अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर पुष्यमित्र (ईसा पूर्व १८५ वर्ष) ने शुंग वंश की स्थापना की थी । उसने पुरातन सनातन किंवा वर्णाश्रम धर्म को पुनः राज्याश्रय दिया ।

बौद्ध लेखक पुष्यमित्र को बौद्ध विरोधी चित्रित करते हैं । बौद्धधर्म की अपेक्षा वर्णाश्रम धर्म की ओर उसका झुकाव था । वह स्वयं एक ब्राह्मण का पुत्र था । बृहद्रथ का सेनापति बन गया था । इस प्रकार कश्मीर में जो धार्मिक क्रान्ति अशोक की मृत्यु के ३० वर्षों के अन्दर हुई उसे भारतवर्ष अथवा पाटलीपुत्र में सफल होने में ४८ वर्ष लग गये । इस विलम्ब का कारण पाटलीपुत्र में बौद्धों का अत्यधिक प्राबल्य होना था ।

अशोक के उत्तराधिकारी धर्म घोष करने में असफल रहे । उन्होंने सनातन धर्म किंवा वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रतिष्ठा निमित्त भी कोई प्रयास नहीं किया ।

धर्माध्यक्षो धनाध्यक्षः कोशाध्यक्षश्चमूपतिः ।
दूतः पुरोधा दैवज्ञः सप्त प्रकृतयोऽभवन् ॥ ११९ ॥

११९. राज्य में सप्तप्रकृति[१] अर्थात् धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, चमूपति, दूत पुरोधा, एवं दैवज्ञ केवल सात ही राज्याधिकारी थे।

कर्मस्थानानि धर्म्याणि तेनाष्टादश कुर्वता ।
ततः प्रभृति भूपेन कृता यौधिष्ठिरीस्थितिः ॥ १२० ॥

१२०. राजाने अठारह कर्म स्थानों[१] को धर्मानुसार स्थापित किया। उसने महाराज युधिष्ठिर के राज्य समान स्थिति उस समय से राज्य मे प्रचलित की।

उनकी निष्क्रियता उनके नाश का राजनीतिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टियों से कारण हुई।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११८ में 'मत्प्राप्तं' का 'मत्प्राप्तैं' तथा 'राज्यं' का 'राज्ञां' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११९ (१) सप्त प्रकृति : महाभारत सभापर्व पंचम अध्याय : अड़तीसवें श्लोक में राज्य की सात प्रकृतियों का उल्लेख मिलता है।

कच्चित् प्रकृतयः सप्त न लुप्ता भरतर्षभ।

राजा के सात अंग किंवा प्रकृति स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, तथा सेना एवं पुरवासी है। राज्य की सप्त प्रकृतियों में दुर्गाध्यक्ष, बलाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, सेनापति, पुरोहित, वैद्य एवं ज्योतिषी की भी कहीं कहीं गणना की गयी है।

कामन्दक नीतिसार में पुरातन भारतीय राज्य की प्रकृति का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार राज्य की सात प्रकृतियाँ—स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं मित्र थे।

स्वामी राज्य की प्रथम प्रकृति है। स्वामी शब्द के अन्तर्गत राजतंत्र का राजा तथा गणतंत्र का राष्ट्रपति दोनों आ जाते हैं। स्वामी शब्द वर्तमान प्रचलित शब्द सॉवरेनिटि किंवा सम्प्रभुत्व के अर्थ में प्राचीनकाल में प्रयुक्त किया जाता था। कौटिल्य राजा को स्वामी मानता है। वह राजतन्त्र में विश्वास करता था। स्वामी के चार गुण माने गये हैं—अभिगामिका, प्रज्ञा, उत्साह और आत्मसम्पद्।

अमात्य के लिये कौटिल्य दो बातें आवश्यक मानता है। प्रथम उसे जानपद अर्थात् देश का नागरिक तथा उसमें दृढ़भक्ति होनी चाहिए। दृढ़भक्ति का अर्थ है, राष्ट्र के प्रति एकमात्र निष्ठा। शब्द का भाव अंग्रेजी शब्द लायलटी में आ जाता है। परन्तु भक्ति शब्द अधिक व्यापक एवं उदार है।

तृतीय प्रकृति जनपद है। इसका अर्थ राष्ट्र किंवा देश है। राष्ट्र में तीन गुणों का होना कौटिल्य ने आवश्यक माना है। शत्रु द्वेषी शक्यसम्पद् अर्थात् इतना शक्ति सम्पन्न होना चाहिए कि पड़ोसी राज्यों को नियन्त्रण में रख सके। तृतीय गुण उसे कर्मशील कर्षक अर्थात् कर्मशील तथा कृषी कार्य में निपुण होना आवश्यक है। उसका चौथा गुण भक्तिशील मनुष्यों से युक्त सेना है। जनपद को प्रजाभक्त, देश भक्त तथा शुद्ध होना चाहिए।

राज्य की चौथी प्रकृति है दुर्ग। दुर्ग के अन्तर्गत सैनिक शक्ति आती है। प्राचीन काल में बारूद तथा अणु परिचालित अस्त्र शस्त्र नहीं थे। दुर्ग का विशेष महत्त्व था। कौटिल्य चार प्रकार के दुर्ग का वर्णन करता है। वे जल, गिरि, मरुस्थल तथा अटवी दुर्ग हैं। दुर्ग उस समय राजधानी किंवा पुर होते थे। दुर्ग के अन्दर नगर बस जाता था। मुसलिम काल में शहर पनाह तथा खाईं नगर के चारों ओर बनायी जाती थी। उनपर मोर्चेबन्दी होती थी। कहीं कहीं खाईं और खाईं के पश्चात् शहर पनाह दोनों बनायी जाती थी। मनु दुर्ग के स्थान पर पुर शब्द का व्यवहार करते हैं। (मनुस्मृतिः ९:५-२९४-)

कोश शब्द मे धनादि आय-व्यय सभी वित्तीय वस्तुओं का समावेश हो जाता है। प्रचार समृद्धि, शस्य सम्पत्, पण्य बाहुल्य होना कोश का गुण माना गया है।

दण्ड शब्द के अन्तर्गत बल शब्द आता है। कोश के समान बल का होना राज्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। बल पुराकालीन भारतीय राज्य प्रकृति का छठवाँ अंग माना गया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में छह प्रकार के बलों का उल्लेख किया है यथा— मौल बल, भृतक बल, श्रेणी बल, मित्र बल, शत्रु बल, तथा अटवी बल।

राज्यकी अन्तिम तथा सातवीं प्रकृति मित्र है। कौटिल्य मित्रों को दो श्रेणियों में विभक्त करता है। प्रथम श्रेणी सहज मित्रों की होती है। द्वितीय श्रेणी मे कृत्रिम मित्र आते हैं। सहज मित्रों की श्रेणी में आनुवंशिक तथा पड़ोसी राष्ट्र होते थे। कृत्रिम मित्र सन्धि तथा प्रयोजन विशेष के लिये बना लिये जाते हैं।

भारतीय राज्य की इस प्रकृति सिद्धान्त की तुलना शंकराचार्य ने एक रथ से की है। जिसका प्रत्येक भाग एक दूसरे पर आश्रित रहता है। सब मिलकर रथ बन जाता है। गति देता है। राज्य की यह परिकल्पना शरीर सदृश की गयी है। राज्य की प्रकृतियाँ शरीर के विभिन्न अवयव हैं।

नीतिसार (४:५;७५) तथा मनुस्मृति (९:२९६, २९७) में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। कौटिल्य एक चरमसीमा पर पहुँच जाता है। कहता है—राजा राज्यम् इति प्रकृतिसंक्षेप.। अर्थात् राजा ही राज्य है। किन्तु यह कथन फ्रान्स के सम्राट् लुई १४ के मत से सर्वथा भिन्न है। जहाँ वह कहता है। वह स्वयं राज्य है। वह राष्ट्र से अपने को ऊपर रखता है। परन्तु कौटिल्य राजा को राष्ट्र किंवा देश का सेवक मानता है। वह राजा के छह शत्रुओं अर्थात् काम क्रोध मोहादि पर नियन्त्रण रखने के लिये जोर देता है। राज्य कितने प्रकार के थे यह राजनीति विज्ञान का विषय है। प्रकृति के सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा।

१२० (१) कर्मस्थान: महाभारत में कर्मस्थानों को तीर्थ कहा गया है। रामायण मे भी उत्तम अठारह कर्मस्थानो का उल्लेख मिलता है।

> कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च।
> त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥
>
> सभापर्व ५ : ३८.

अट्ठारह तीर्थ किंवा कर्म स्थान—मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वंशिक, कारागाराध्यक्ष, द्रव्यसंचय कर्ता (कोषाध्यक्ष), मन्त्रिधात्र, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, कार्यनिर्माण कर्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रसीमापाल, तथा वनरक्षक। प्रथम तीन तीर्थों को छोड़ करने पर पन्द्रह तीर्थ होते हैं। शत्रु के अट्ठारह तथा स्वपक्ष के पन्द्रहों तीर्थों का गुप्तचरों द्वारा देखभाल करवाना राजा का कर्तव्य माना गया है।

पञ्चतन्त्र (३:६७—७०) में कर्मस्थानों का वर्णन किया गया है।

कालिदास ने रघुवंश (१७.६८) में तथा शिशुपालवध (१४.१९) में इन कर्मस्थानों किंवा तीर्थों का उल्लेख किया है।

रामायण तथा महाभारत मे राजा के साथ पुरोहितो का उल्लेख मिलता है। वामदेव प्रसिद्ध पुरोहित थे। ऋग्वेद में वशिष्ठ तथा विश्वामित्र को पुरोहित कहा गया है। राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक पुरोहित माना गया है। यह शक्ति शास्त्र मे निहित थी। शास्त्र के पण्डित ब्राह्मण थे। पुरोहित ब्राह्मण होते थे। पुरोहित राजा का सलाहकार तथा धर्मनियन्त्रक होता था। लौकिक शक्ति का प्रतीक राजा किंवा क्षत्री होता था। अनादि काल से आध्यात्मिक एवं लौकिक शक्ति के माध्यम से राज्य संचालन की कल्पना भारत में की गयी थी। अतएव पुरोहित का स्थान कर्म स्थान मन्त्री के पश्चात् एवं युवराज किंवा उपराजा के पूर्व रखा गया है।

स　विक्रमप्रभावाभ्यां समुपार्जितया श्रिया ।
विदधे　　वारबालादीनग्रहारानुदग्रधीः ॥ १२१ ॥

१२१. अपने विक्रम एवं प्रभाव से उपार्जित धन द्वारा उस उग्र धीमान् राजा ने बारबाल[1] इत्यादि अग्रहारों की स्थापना की।

मनु कहते हैं। क्षत्रियों का उत्कर्ष ब्राह्मणों के बिना सहयोग के नहीं हो सकता। इसी प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के एक साथ मिलने पर लोक तथा परलोक दोनों में वार्धक्य प्राप्त होता है। (मनु० : ९:३२३)।

प्रारम्भ में पुरोहित का पद चाहे कुछ भी रहा हो परन्तु कालान्तर में यह पद वंश परम्परागत हो गया था। राजा का यह कर्तव्य माना जाता था कि वह कुलपुरोहित के मतों का आदर करेगा। पुरोहित धर्मशास्त्र एवं दण्डनीति दोनों में पारंगत होता था।

राजतन्त्र एवं धर्म अर्थात् पौरोहित्य पद तथा उसके कार्य एक दूसरे को शक्ति देते थे। पुरोहित धर्म से राजा को विरत नहीं होने देता था। वह राजा पर अंकुश रखता था। यदि पुरोहित अनुचित कार्य करता तो राजा भी उसे दण्ड देनेके लिये धर्मानुसार मुक्त था। नैपोलियन ने एक समय कहा था—'ईसाइयत का सबसे आश्चर्य जनक कार्य यह था कि उसने गरीबों को अमीरों से त्रासित करने से रोका था और यदि पोप का अस्तित्व न होता तो मुझे एक पोप का आविष्कार करना पड़ता।'

राजनीति एवं धर्म दोनों को मनु ने एक दूसरे का पूरक माना है। अतएव राजा पर धर्म और धर्म पर राजा राष्ट्रहित निमित्त अंकुश लगाया गया है।

कल्हण ने राजतरंगिणी में सब स्थानों पर राजाओं के पुण्य कार्यों, उनके निर्माणों, यथा मन्दिरों, अग्रहारों, शालाओं, छात्रावासों, विहारों, का वर्णन करने में किंचित् मात्र संकोच नहीं किया है। उसकी लेखनी में उनके वर्णन मात्र में स्फूर्ति आ जाती है। यूरोप के सम्राटों, राजाओं एवं सामंतों ने मध्य काल में धर्म निमित्त जिस प्रकार के कार्य किये थे उसी प्रकार के कार्य कश्मीर के राजाओं ने इतिहास के आदिकाल से चौदहवीं शताब्दी तक अर्थात् हिन्दू राज्य काल में अनवरत किया है। इसमें कहीं भी शिथिलता का अनुभव नहीं होने पाया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२१ में 'नुदग्रधी' का पाठभेद 'नुदारधी' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२१ (१) बारबाल : यह वर्तमान ग्राम बारबुल है। सिन्धु तथा कंकणी नदी के संगम से एक मिल ऊर्ध्व भाग में कंकणी नदी के दक्षिण तटपर स्थित है। यह भूतेश्वर जाने वाले मार्ग में पड़ता है। इस कारण इसका और महत्त्व प्राचीन काल में था।

अगस्त सन् १८९१ में श्री स्तीन भूतेश्वर की यात्रा काल में इस ग्राम में आये थे। उन्हें मार्ग के समीप शिवलिंग का अलंकृत एक विशाल पाषाणखण्ड पर बना भद्रपीठ मिला था। वह बहुत बड़ा था। उसे देख कर श्री स्तीन ने और अन्वेषण किया। उन्हें एक और बड़ा अलंकृत पत्थर खेत में मकानों के नीचे लगा दिखाई दिया था।

श्री स्तीन को बारबाल के वृद्ध मुकद्दम से मालूम हुआ था। यह अग्रहार अथवा जागीर बहुत दिनों तक श्रीनगर के एक पीरजादा कुल की थी। राजा गुलाब सिंह के शासन काल पूर्व तक यही व्यवस्था थी। वल्लर वल्लर स्थान सर्वे मानचित्र में दिया गया है। परन्तु श्री स्तीन को इस नाम का कोई स्थान वहाँ पर नहीं मिला था।

बारबाल के दक्षिण पश्चिम सिन्धु तटपर प्राचीन चीर मोचन, पूर्व दक्षिण कंकनपुर, तथा पश्चिम दक्षिण मय ग्राम था। इसके उत्तर में उत्तुंग पर्वत शिखर आरम्भ होता हरमुकुट तक चला जाता

द्वारादिषु प्रदेशेषु प्रभावोग्राण्युदग्रया ।
ईशानदेव्या तत्पत्न्या मातृचक्राणि चक्रिरे ॥ १२२ ॥

१२२. राजा की पत्नी ईशान देवी ने द्वार देशों तथा प्रदेशों में अनेक प्रभावशाली मान चक्रों की स्थापना की जो अपनी दैवी शक्ति के कारण विशिष्टता रखते थे।

है। यहाँ से भूतेश्वर का मार्ग पर्वतों के बीच से होकर जाता है। कंकनी नदी के दोनों तटों पर ऊँची पर्वतमाला मिलती है।

श्री स्टीन का मत है कि कल्हण ने इस अग्रहार का विशेष रूप से उल्लेख इस लिये किया है कि वह भूतेश्वर के तीर्थ यात्रा मार्ग पर पड़ता था। कल्हण का पिता चम्पक भूतेश्वर को नियमित रूप से यात्रा करता था। (रा० ७.९५४) अतएव यह सम्भव प्रतीत होता है कि कल्हण कई बार इस स्थान से अपने पिता के साथ किंवा अकेले गया होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२२ में 'द्वारादिषु' का पाठभेद 'स्त्रिशालादिषु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२२ (१) मातृचक्र : मातृचक्र का शाब्दिक अर्थ होता है मातृकाओं का समूह। 'मातृ चक्र विवेक' इस विषय पर विशेष प्रकाश डालता है। उसका अध्ययन अच्छा होगा। संक्षेप में इनके अर्थ के सम्बन्ध में इतना ही लिखना अलम् होगा कि मूल ज्योतियाँ सूर्य, चन्द्र, बिम्ब तथा चिदात्मा हैं। उसकी रश्मियाँ देवता हैं। मातृका, वर्ण, शक्ति प्रभृति संज्ञा उनकी दी गयी है। इस रश्मिमाला किंवा मातृका चक्र के बहिर्विकास का नाम सृष्टि तथा अन्त.संकोच का नाम प्रलय रखा गया है।

वैदिक ग्रन्थों तथा गृह्यसूत्रों में मातृकाओं का निर्देश प्राप्य नहीं हैं। ऋग्वेद में सप्तमाताओं का उल्लेख मिलता हैं। मत है कि वहाँ सप्त नदियों तथा स्वरों के अर्थ में उनका प्रयोग किया गया है। (ऋ० ९:१०२:४)

महाभारत में इनके स्वरूप का वर्णन मिलता है। उन्हें दीर्घनखी, दीर्घतुण्डी, निर्मांसगात्री, कृष्णमेघनिभ, दीर्घकेश, लंबकर्ण, लंबपयोधर, तथा पिंगाक्ष लिखा गया है। वे कामरूपधर एवं कामरूपचारी हैं। वायु समजव हैं। इनका निवास स्थान वृक्ष, चत्वर, गुफा, स्मशान, शैल एवं प्रस्रवण में कहा गया है। (म० भा० श० ४४:३०-४०) मत्स्य पुराण में मातृकाओं के जन्म का वर्णन अन्धकासुर वध के प्रसंग में किया गया है।

मातृकाओं की संख्याएँ ग्रन्थों में समान नहीं मिलतीं। उनकी संख्या कहीं सात, कहीं अट्ठारह तथा कहीं बत्तीस बताई गयी है। महाभारत शल्य पर्व में कार्तिकेय किंवा स्कन्द की अनुचरी मातृकाओं की नामावली दी गयी है। उनकी संख्या बत्तीस है। उनमें प्रभावती विशालाक्षी आदि के नाम हैं।

सप्त मातृका में, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी एवं ऐन्द्री है। (मार्क० पु० : ८८:११-२०, ३८) अष्ट मातृका में ब्राह्मी, माहेश्वरी, चण्डी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, चामुण्डा एवं चर्चिका है। शिशुमातृका में काकी, हलिमा, रुद्रा, बृहली, आर्या, पलाला, एवं मित्रा है। (म० व० २१७.९) चौदह मातृकाओं में, गौरी, पद्मा, शची, मेध्या, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि एवं कुलदेवी जो प्रत्येक कुल के लिये भिन्न-भिन्न होती है। (गोभिल० स्मृति० १:११-१२) अष्टादश मातृका, विनता, पूतना, कष्टा, पिशाची, अदिति किंवा रेवती, मुखमण्डिका, दिति, सुरभि, शकुनी, सरमा, कद्रू, विलीनगर्भा, करंजनोलया, धात्री, लोहितायनी, आर्या है। महाभारत की इस नामावली में

दो मातृकाओं का नाम नहीं दिया गया है। (म० आर० : २१९:२६–४१)

पहली शताब्दी से मातृका पूजन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर के बृहत्संहिता में इसका स्पष्ट उल्लेख है। (५८:५६) मृच्छकटिक नाटक तथा स्कन्दगुप्त के बिहार के शिलालेख में मातृका पूजन का निर्देश प्राप्त है। चालुक्य एवं कदम्ब राजवंश मातृका के उपासक थे। मालवा के विश्वकर्मन राजा के अमात्य मयूराक्ष ने सन् ४२३ ई० में मातृकाओं का एक मन्दिर निर्माण कराया था। पश्चिमी एशिया के 'ग्रो' संस्कृति में प्राचीन काल से मातृका पूजा प्रचलित थी। मोहें-जोदड़ो तथा हड़प्पा स्थित सिन्धु संस्कृति में मातृका पूजा प्रचलित थी। इन संस्कृतियों की जो मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं उनमें मूर्ति के सम्मुख नर किंवा पशुबलि के चित्र अंकित हैं।

मातृकाओं की प्रतिमाओं की पूजा समस्त भारत में प्रचलित थी। इनका स्वरूप, अर्धनग्न, एवं शिरोभूषण, कण्ठहार, तथा मेखला युक्त प्रदर्शित किया गया है।

उदयपुर संग्रहालय में मातृकाओं की अनेक मूर्तियाँ हैं। उनकी विशेषता यह है कि प्रत्येक मातृका मूर्ति के साथ एक नवजात शिशु बना रहता है। यही कारण है कि शिशु के जन्म के प्रथम दिनों तक मातृ पूजा का विधान मिलता है।

कल्हण ने मातृचक्र का उल्लेख राजतरंगिणी ३:३५; ३४८ में किया है। रा० त० १:३३३ में देवी चक्र का उल्लेख कल्हण करता है। उसने पुनः रा० त० ३:९९ तथा ५:५५ में मन्दिर के सन्दर्भ में मातृ चक्र का उल्लेख किया है।

मातृचक्र शिला पर श्रीचक्र तथा रजनीचक्र तुल्य खोदा जाता है। कश्मीर में अब तक उनकी पूजा गृहों तथा मन्दिरों में की जाती है। यह तान्त्रिक पूजा है। मान्त्रिक स्थान अर्थात् हरिपर्वत श्रीनगर में श्रीचक्र की पूजा होती है।

इसी प्रकार ज्वालामुखी चक्रपूजा उपेन अर्थात् खोवन की चट्टानी पहाड़ी पर होती है। यह स्थान वीही परगना में है। इस स्थान का विशेष महत्त्व है। यहाँ लोग बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ पूजा करने आते हैं।

कश्मीर में तन्त्र आधारित मातृ पूजा के प्रतीक स्वरूप अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित हैं। तन्त्र के अनुसार सप्त मातृका देवी, जीवन एवं मृत्यु के अनेक रूपों को प्रकट करती है। श्रीनगर के संग्रहालय में दुर्गा का एक स्वरूप वाराही रूप में दिया गया है। यह एक युवती की आदम कद मूर्ति है। परन्तु मुख शूकरी अर्थात् वाराही का बनाया गया है। अलबेरूनी ने सप्त मातृ देवियों के साथ वाराही का भी उल्लेख किया है।

कश्मीर उपत्यका में आनेवाले दर्रों को द्वार कहा गया है। कालान्तर में इसे ड्रंग कहने लगे थे। द्वारों की रक्षा पर कश्मीर के राजा विशेष जोर देते थे। द्वारदेश के सैनिक अधिकारी को द्वारपति कहते थे। कश्मीर की स्वतंत्रता की रक्षा इन द्वारों की सुरक्षा पर आधारित थी।

भारत ने खैबर दर्रे की सुरक्षा का व्यापक और मजबूत प्रबन्ध नहीं किया था अतएव पश्चिमोत्तर सीमान्त से सर्वदा भारत पर आक्रमण होता रहा। यूनानी, हूण, शक, मुसलमान आदि खैबर द्वार से भारत में प्रवेश करते थे। खैबर की सुरक्षा शिथिल होने के कारण भारत पराधीनता की बेणी में जकड़ गया। अंग्रेजों ने इस बात को प्रारम्भ से ही समझा था। अतएव लगभग दो तिहाई सेना सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में लगी रहती थी। खैबर की मोर्चे बन्दी आधुनिक शैली में किया था।

कश्मीर के राजा अत्यन्त प्राचीन काल से इस इस महत्त्व को समझते हैं। द्वारों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता था। द्वारपति का स्थान सेनापति तुल्य होता था। उन्हें द्वाराधिपति, द्वारेश तथा द्वाराधिकारी कहा जाता था। यह पद अत्यन्त

श्रुतनन्दिपुराणः स व्यासान्तेवासिनो नृपः ।
सेवनं सोदरादीनां नन्दीशस्पर्धया व्यधात् ॥ १२३ ॥

१२३. वह नृप व्यास[१] के एक अन्तेवासी[२] से नन्दी पुराण[३] सुनकर सोदर[४] तथा अन्य स्थानों की तीर्थयात्रा करने लगा जैसे नन्दीश[५] से स्पर्धा करता था।

महत्त्वपूर्ण सामरिक पद कश्मीर में माना जाता था। इन द्वारों पर सैनिक चौकियाँ होती थी। बारहमूला के अधोभाग अर्थात् वितस्ता के संकीर्ण गह्वरों में इस प्रकार के द्वार थे। अलबेरुनी ने उनके वर्णन के प्रसंग में उनको संज्ञा द्वार से ही दी है। हुएन त्सांग और ओ कुंग चीनी पर्यटकों ने भी उनका उल्लेख किया है। उन्हें कालान्तर में ढंग के साथ-साथ ढक्क भी कहा जाने लगा था। ईशान देवी ने द्वारों पर मातृचक्र की स्थापना कर उसे दैवी शक्ति से भी समन्वित किया। उसे एक धार्मिक रूप दिया। द्वार पर नियुक्त सेना तथा अधिकारियों में विश्वास उत्पन्न किया कि दैवी शक्ति द्वार की सुरक्षा करने में उनके अनुकूल तथा सहायक है।

कश्मीर के प्रदेशों में भी मातृचक्रों की स्थापना दानी ईशान देवी ने इसी दृष्टि से करायी। प्रदेश राज्य के अवयव हैं। उनमें विद्रोह न हो, आततायी शान्त रहें एतदर्थ यहाँ मातृचक्र की शक्ति स्थानीय राज अधिकारियों को बल देते रहें यही मन्तव्य मालूम होता है। महाराष्ट्र तथा मेवाड़ में मैंने सैनिक महत्त्व के स्थानों पर हनुमान एवं दुर्गा की की मूर्तियाँ प्रायः स्थापित देखी हैं।

द्वार शब्द कश्मीर में दर्रों के लिये प्रयुक्त होता रहा है। यद्यपि दर्रों के लिए संस्कृत में संकट शब्द भी आता है। प्रदेश शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। आजादी के पश्चात् सूबों अर्थात् प्रान्तों के लिए प्रदेश शब्द का व्यवहार भारत में किया जाने लगा था। परन्तु प्रदेश शब्द बदलकर उसके स्थान पर अमेरिका की संघ शासन प्रणाली के आधार पर उन्हें 'राज' कहा जाने लगा है। प्राचीन काल में राज केवल एक होता था। उसके अंगों को प्रदेश कहते थे।

१२३ (१) व्यास : इस शब्द का अर्थ विस्तार, विश्लेषण, कथावाचक तथा पुराणों की कथा कहने वाला होता है। कल्हण वहाँ किसी का नाम नहीं देता। महाभारतकार वेदव्यास का भी नाम नहीं देता। जो पराशर के औरस तथा सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वह वैदिक संहिताओं के पृथक्करण कर्ता, वैदिकशास्त्र प्रवर्तकों के आद्य आचार्य, ब्रह्मसूत्रों के प्रणयिता महाभारत पुराणादि ग्रन्थों के रचनाकार थे। वे वैदिक संस्कृति के पुनरुज्जीवक तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सत्यवादी सांख्य, योगधर्मादि शास्त्रों के ज्ञाता एवं दिव्यदृष्टिशाली थे।

उनमें असामान्य प्रतिभा, क्रांतिदर्शी प्रज्ञापन, जीवन सम्बन्धी विरागी दृष्टिकोण, अगाध विद्वत्ता, एवं अप्रतिम संघटन कौशल्य, इन समस्त गुणोयुक्त व्यास तुल्य मूर्तिमंत संस्कार प्रतिमा प्राचीन भारतीय साहित्य जगत् में क्वचित् ही मिल सकेगी। उन्हें बुद्ध साहित्य में केवल ऋषि ही नहीं देवता स्वरूप माना गया है। वायु, (१: ४२—४३) कूर्म (१. ३० : ६६) गरुड़ (१: ८७: ५०), पुराणों में व्यास को विष्णु का अवतार माना गया है। इनको शिव का अवतार कूर्म (२.११:१३६) तथा ब्रह्मा का अवतार वायु(७७,७४—७५) ब्रह्माण्ड (३:१३:८६) पुराणों में माना गया है। लिंग पुराण (२:४९:१७) में ब्रह्मा के पुत्र का अवतार व्यास को माना गया है। धर्मराज युधिष्ठिर ने महाभारत में (आश्र: ८७) में व्यास को भगवान् की उपाधि दी है।

वैदिक संहिता साहित्य में व्यास का निर्देश नहीं मिलता। सामविधान ब्राह्मण (१:४:३७७) में इनका पैतृक नाम 'पाराशर्य' दिया गया है। बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों में एक जन्म 'कण्हदीपायन' अर्थात् कृष्ण द्वैपायन दिया गया है।

आज से २५०० वर्ष पूर्व स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण द्वैपायन नाम प्रसिद्ध हो चुका था। कृष्ण द्वैपायन नाम पड़ने का कारण था। यह यमुना द्वीप में जन्म ग्रहण किये थे अतएव द्वैपायन नाम इनका पड़ा था। (म० आ० ५४:२) इनकी माता कैवर्तराज की कन्या सत्यवती थी। उसका नाम काली था। इसलिये इन्हे कृष्ण कहा गया है। एकमत है कि इनका वर्ण कृष्ण अर्थात् काला था। अतएव कृष्ण द्वैपायन नाम पड़ गया था। यमुना द्वीप कोई देश विशेष नही मानना चाहिए। नदियो में द्वीप बन जाते है। दो धारायें बनकर बहने लगती है। द्वीप पर आबादी हो जाती है। दिल्ली में जमुना की दो धारायें वर्षा में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मध्य में द्वीप बना रहता है। उस पर कैवर्त अर्थात् धीवर या माझी किंवा कृषक झोपड़ी अथवा कच्चा मकान बनाकर रहने लगते है।

व्यास का जन्म वैशाख पूर्णिमा को हुआ था। इनके पुत्र शुकदेव जी थे। शुकदेव को इन्होने सृष्टि क्रम, युगधर्म, ब्राह्म प्रलय, महाप्रलय, मोक्षधर्म एवं क्रिया फलादि का उपदेश दिया था। व्यास की वंश परम्परा इनके पुत्र शुकदेव जी के कारण चली थी। शुक का विवाह पीवरी से हुआ था। उन्हें भूरिश्रवस, प्रभु, शम्भु, कृष्ण एवं गौर नाम के पाँच पुत्र तथा *कीर्तिमती नामक एक कन्या हुई थी।* विष्णु पुराण में २८ व्यासों का उल्लेख मिलता है।

व्यास की वैदिक शिष्य परम्परा है। प्रत्येक वेद तथा उसकी शाखाओं की शिष्य परम्परा है। इसी *प्रकार व्यास की पुराण शिष्य परम्परा है।* प्रतीत होता है कि व्यास को इस शिष्य परम्परा मे कोई अन्तेवासी था।

व्यास शब्द कालान्तर में प्रायः सभी कथा-वाचकों के लिये प्रयुक्त होने लगा। आज व्यास शब्द से इन्ही का बोध होता है। व्यास की वंश परम्परा किंवा शिष्य परम्परा में जो लोग रहे होंगे उन्हें व्यास कहा जाता रहा होगा। *कल्हण यहाँ 'व्यास' पद रूप* में व्यवहृत किया है। वह व्यास व्यास नहीं बल्कि उनकी वंश किंवा पुराण शिष्य परम्परा में कोई व्यक्ति रहा होगा। पुराण का पारंगत तत्कालीन व्यास के किसी अन्तेवासी अथवा शिष्य से राजा ने नन्दिपुराण सुना होगा। व्यास की कोई गद्दी अथवा पीठ कश्मीर में उस समय रही होगी। वहाँ अन्तेवासी किंवा शिष्य रहकर पुराण का अध्ययन तथा अध्यापन करते रहे होंगे। उन्ही में से किसी एक प्रमुख से राजा ने नन्दीपुराण सुना था।

(२) **अन्तेवासी**: अन्तेवासी का अर्थ समीप रहने वाला शिष्य होता है। यह शब्द उस शिष्य के लिये व्यवहार किया जाता है जो शिक्षक किंवा व्यास के समीप निवास कर अथवा उसके आश्रम, पीठ एवं शाला में रहकर विद्याध्ययन करता है।

(३) **नन्दी पुराण**: महापुराण किंवा पुराण, उपपुराण और उपोपपुराण तीन वर्गों में पुराण साहित्य का वर्गीकरण किया गया है। मत्स्य पुराण में पुराणों को गुण के अनुसार सात्विक, राजसिक एवं तामसिक पुनः तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। विष्णु, ब्रह्मा एवं अग्नि-शिव की उपासना प्रतिपादित करने वाले पुराणों को क्रम से सात्विक, राजसिक एवं तामसिक कहा गया है। सरस्वती एवं पितरों का माहात्म्य कथन करने वाले पुराणो को सकीर्ण कहा गया है। (मत्स्य ५३:६८-६९) पद्म एवं भविष्य पुराणों में भी सात्विक, राजसिक तामसिकादि के प्रकार दिये गये है। किन्तु यहाँ उनका वर्गीकरण और प्रकार से किया गया है। (पद्म: उ० २६३:८१-८९ भविष्य: ३:२८:१०-१५)

पुराणों की श्लोक संख्या में एकवाक्यता नही है। प्रत्येक पुराण के वक्ता, देवता, गुण तथा प्रसंग एवं स्थल भिन्न-भिन्न है। लगभग ११ पुराणो का प्रसंग एवं स्थल नैमिषारण्य है। नृसिंह, भागवत के विष्णु एवं देवी, वायु तथा शिव पुराणों को महापुराण मानने में एकवाक्यता नही है।

उपपुराणो की संख्या भी १८ कही जाती है। किन्तु उनकी नामावली में मतैक्य नही है। शिव

उपासना के पुराण (१) कूर्म, (२) ब्रह्माण्ड, (३) भविष्य, (४) मत्स्य, (५) मार्कण्डेय, (६) लिंग, (७) वराह, (८) वामन, (९) शिव तथा (१०) स्कन्द है। विष्णु उपासना के पुराण (१) गरुड, (२) नारद, (३) भागवत, (४) विष्णु है। ब्रह्मा की उपासना के पुराण (१) पद्म तथा (२) ब्रह्म है। अग्नि उपासना का पुराण एक मात्र अग्नि पुराण है। सवितृ उपासना का पुराण ब्रह्मवैवर्त है।

पुराणों के उपपुराण होते हैं। नन्दीपुराण उपपुराण है। यह शिव उपासना का पुराण है। नन्दिक्षेत्र कश्मीर का पवित्र स्थान है। वही भूतेश्वरादि का स्थान है। हरमुकुट पर्वत है। अतएव राजा जलौक ने नन्दिपुराण व्यास के अन्तेवासी से सुना था। उससे प्रभावित होने के कारण वह शैव मत की ओर झुक गया था।

(४) सोदर : नीलमत पुराण सोदर तीर्थ का वर्णन करता है।

सोदरस्य च नागस्य स्नानं कृत्वा विधानतः।
गत्वा च शीघ्रं सद्विप्र तथैवोत्तरमानसम् ॥ १३१४

तत्रापि विधिवत् स्नानं विधाय दृढनिश्चयात्।
सुखं प्राप्तो महाभाग तत्र रंस्यसि पुत्रक ॥ १३१५

तस्माद्देशात्तथा याति दक्षिणेन महानदी।
हिरण्याभाम्भसा पूर्णा नाम्ना कनकवाहिनी ॥ १३१६

सोदर तीर्थ को इस समय नारननाग कहते है। यह भूतेश्वर के ध्वंसावशेष के समीप पर्वत मूल में है। कश्मीर का यह महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। यह एक जलस्रोत है। छोटे आयताकार कुण्ड किंवा सरोवर में यह जल एकत्रित होकर बहता रहता है। इसके समीप भूतेश्वर टिप्पणी में वर्णित दो मन्दिर समूह हैं। श्री स्तीन ने यहाँ की यात्रा की थी। उनके यात्रा काल में सभी मन्दिर अत्यन्त भग्न एवं उपेक्षित थे। किसी में न तो स्तीन के समय शिवलिंग अथवा प्रतिमाएँ थीं और जब मैं वहाँ गया था उस समय भी। और न आज है। मन्दिरों का निर्माण काल भिन्न-भिन्न रहा है। मन्दिर विमान शैली के हैं। यहाँ के एक मन्दिर में केवल दो द्वार है। यह मन्दिर २५ वर्ग फिट मे है। निर्माण में चूने का प्रयोग किया गया है। श्री स्तीन का मत है कि बड़ा मन्दिर ही ज्येष्ठेश का मन्दिर है।

सोदर तीर्थ का वर्णन नन्दिक्षेत्र माहात्म्य में मिलता है। भूतेश्वर, ज्येष्ठेश्वर तथा नन्दिक्षेत्र की तीर्थ यात्रा करने वालों के लिये यहाँ पिण्ड दान देने का विधान है। कनकवाहिनी के संगम के प्रसग में कल्हण ने पुनः वर्णन किया है। (रा० त० २:१६९) नन्दि क्षेत्र एवं नन्दीश क्षेत्र के अन्तर्गत नन्दिक्षेत्र माहात्म्य वर्णित सभी स्थान आ जाते है। वे हरमुकुट सरोवर से भूतेश्वर के मध्य तक स्थित है।

राजा जलौक नगर में ज्येष्ठरुद्र की स्थापना की थी। आदि ज्येष्ठरुद्र के स्थान के समीप नारन नाग का जलस्रोत है। नारन नाग किंवा सोदर तीर्थ का अवतरण श्रीनगर में राजा की सुविधा के लिये हुआ था। अतएव नवीन सोदर तीर्थ श्रीनगर के समीप होना चाहिए।

यह सोदर तीर्थ श्रीनगर समीपस्थ स्थित सुदर है। डल लेक का एक भाग सुदर खुन कहा जाता है। इसके समीप सुदरबल ग्राम है। खुन शब्द संस्कृत शब्द कोण का अपभ्रंश है। सुदर खुन एक संकीर्ण जल निकलने का स्थान है। डल के पश्चिम तरफ है। यह आदमपुर तथा सुदरबल ग्रामों के मध्य स्थित है। यह डल लेक का सबसे गहरा स्थान है।

श्री स्तीन सन् १८८५ ई० में इस स्थान पर आये थे। उन्हें सुदर खुन ग्राम के छोरपर गाँव की मसजिद के समीप २ कुण्ड मिले थे। वे डल लेक के जल से भरे थे। ग्रामीणो ने उन्हें बताया था। उन कुण्डो में निरन्तर बहने वाले जलस्रोत थे।

आज से २५०० वर्ष पूर्व स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण द्वैपायन नाम प्रसिद्ध हो चुका था। कृष्ण द्वैपायन नाम पड़ने का कारण था। यह यमुना द्वीप में जन्म ग्रहण किये थे अतएव द्वैपायन नाम इनका पड़ा था। (म० आ० ५४:२) इनकी माता कैवर्तराज की कन्या सत्यवती थी। उसका नाम काली था। इसलिये इन्हें कृष्ण कहा गया है। एकमत है कि इनका वर्ण कृष्ण अर्थात् काला था। अतएव कृष्ण द्वैपायन नाम पड़ गया था। यमुना द्वीप कोई देश विशेष नहीं मानना चाहिए। नदियों में द्वीप बन जाते हैं। दो धारायें बनकर बहने लगती हैं। द्वीप पर आबादी हो जाती है। दिल्ली में जमुना की दो धारायें वर्षा में स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। मध्य में द्वीप बना रहता है। उस पर कैवर्त अर्थात् धीवर या माझी किंवा कृषक झोपड़ी अथवा कच्चा मकान बनाकर रहने लगते हैं।

व्यास का जन्म वैशाख पूर्णिमा को हुआ था। इनके पुत्र शुकदेव जी थे। शुकदेव को इन्होंने सृष्टि क्रम, युगधर्म, ब्राह्म प्रलय, महाप्रलय, मोक्षधर्म एवं क्रिया फलादि का उपदेश दिया था। व्यास की वंश परम्परा इनके पुत्र शुकदेव जी के कारण चली थी। शुक का विवाह पीवरी से हुआ था। उन्हें भूरिश्रवस, प्रभु, शम्भु, कृष्ण एवं गौर नाम के पाँच पुत्र तथा कीर्तिमती नामक एक कन्या हुई थी। विष्णु पुराण में २८ व्यासों का उल्लेख मिलता है।

व्यास की वैदिक शिष्य परम्परा है। प्रत्येक वेद तथा उसकी शाखाओं की शिष्य परम्परा है। इसी प्रकार व्यास की पुराण शिष्य परम्परा है। प्रतीत होता है कि व्यास की इस शिष्य परम्परा में कोई अन्तेवासी था।

व्यास शब्द कालान्तर में प्रायः सभी कथा-वाचकों के लिये प्रयुक्त होने लगा। आज व्यास शब्द से इन्हीं का बोध होता है। व्यास की वंश परम्परा किंवा शिष्य परम्परा में जो लोग रहे होंगे उन्हें व्यास कहा जाता रहा होगा। कल्हण यहाँ 'व्यास' पद रूप में व्यवहृत किया है। वह आद्य व्यास नहीं बल्कि उनकी वंश किंवा पुराण शिष्य परम्परा में कोई व्यक्ति रहा होगा। पुराण का पारंगत तत्कालीन व्यास के किसी अन्तेवासी अथवा शिष्य से राजा ने नन्दिपुराण सुना होगा। व्यास की कोई गद्दी अथवा पीठ कश्मीर में उस समय रही होगी। वहाँ अन्तेवासी किंवा शिष्य रहकर पुराण का अध्ययन तथा अध्यापन करते रहे होंगे। उन्हीं में से किसी एक प्रमुख से राजा ने नन्दीपुराण सुना था।

(२) अन्तेवासी : अन्तेवासी का अर्थ समीप रहने वाला शिष्य होता है। यह शब्द उस शिष्य के लिये व्यवहार किया जाता है जो शिक्षक किंवा व्यास के समीप निवास कर अथवा उसके आश्रम, पीठ एवं शाला में रहकर विद्याध्ययन करता है।

(३) नन्दी पुराण : महापुराण किंवा पुराण, उपपुराण और उपोपपुराण तीन वर्गों में पुराण साहित्य का वर्गीकरण किया गया है। मत्स्य पुराण में पुराणों को गुण के अनुसार सात्विक, राजसिक एवं तामसिक पुनः तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। विष्णु ब्रह्मा एवं अग्नि-शिव की उपासना प्रतिपादित करने वाले पुराणों को क्रम से सात्विक, *राजसिक एवं तामसिक कहा गया है।* सरस्वती एवं पितरों का माहात्म्य कथन करने वाले पुराणों को संकीर्ण कहा गया है। (मत्स्य ५३:६८-६९) पद्म एवं भविष्य पुराणों में भी सात्विक, राजसिक तामसिकादि के प्रकार दिये गये हैं। किन्तु यहाँ उनका वर्गीकरण और प्रकार से किया गया है। (पद्मः उ० २६३:८१-८५ भविष्य : ३:२८:१०-१५)

पुराणों की श्लोक संख्या में एकवाक्यता नहीं है। प्रत्येक पुराण के वक्ता, देवता, गुण तथा प्रसंग एवं स्थल भिन्न-भिन्न है। लगभग ११ पुराणों का प्रसंग एवं स्थल नैमिषारण्य है। नृसिंह, भागवत के विष्णु एवं देवी, वायु तथा शिव पुराणों को महापुराण मानने में एकवाक्यता नहीं है।

उपपुराणों की संख्या भी १८ कही जाती है। किन्तु उनकी नामावली में मतैक्य नहीं है। शिव

उपासना के पुराण (१) कूर्म, (२) ब्रह्माण्ड, (३) भविष्य, (४) मत्स्य, (५) मार्कण्डेय, (६) लिंग, (७) वराह, (८) वामन, (९) शिव तथा (१०) स्कन्द हैं। विष्णु उपासना के पुराण (१) गरुड़, (२) नारद, (३) भागवत, (४) विष्णु हैं। ब्रह्मा की उपासना के पुराण (१) पद्म तथा (२) ब्रह्म हैं। अग्नि उपासना का पुराण एक मात्र अग्नि पुराण है। सवितृ उपासना का पुराण ब्रह्मवैवर्त हैं।

पुराणों के उपपुराण होते हैं। नन्दीपुराण उपपुराण है। यह शि। उपासना का पुराण हैं। नन्दिक्षेत्र कश्मीर का पवित्र स्थान हैं। वहां भूतेश्वरादि का स्थान है। हरमुकुट पर्वत है। अतएव राजा जलौक ने नन्दिपुराण व्यास के अन्तेवासी से सुना था। उससे प्रभावित होने के कारण वह शैव मत की ओर झुक गया था।

(४) सोदर : नीलमत पुराण सोदर तीर्थ का वर्णन करता है।

सोदरस्य च नागस्य स्नानं कृत्वा विधानतः।
गत्वा च शीघ्रं सच्छिन्न तथैवोत्तरमानसम् ॥
१३१४

तत्रापि विधिवत् स्नानं विधाय दृढ़निश्चयात्।
सुखं प्राप्तो महाभाग तत्र रंस्यसि पुत्रक ॥
१३१५

तस्माद्देशात्तथा याति दक्षिणेन महानदी।
हिरण्याभाम्भसा पूर्णा नाम्ना कनकवाहिनी ॥
१३१३

सोदर तीर्थ को इस समय नारननाग कहते हैं। यह भूतेश्वर के ध्वंसावशेष के समीप पर्वत मूल में है। कश्मीर का यह महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। यह एक जलस्रोत है। छोटे आयताकार कुण्ड किंवा सरोवर में यह जल एकत्रित होकर बहता रहता है। इसके समीप भूतेश्वर टिप्पणी में वर्णित दो मन्दिर समूह हैं। श्री स्तीन ने यहाँ की यात्रा की थी। उनके यात्रा काल में सभी मन्दिर अत्यन्त भग्न एवं उपेक्षित थे। किसी में न तो स्तीन के समय शिवलिंग अथवा प्रतिमाएँ थी और जब मैं वहाँ गया था उस समय भी। और न आज है। मन्दिरों का निर्माण काल भिन्न-भिन्न रहा है। मन्दिर विमान शैली के हैं। यहाँ के एक मन्दिर में केवल दो द्वार हैं। यह मन्दिर २५ वर्ग फिट में है। निर्माण में चूने का प्रयोग किया गया है। श्री स्तीन का मत है कि बड़ा मन्दिर ही ज्येष्ठेश का मन्दिर है।

सोदर तीर्थ का वर्णन नन्दिक्षेत्र माहात्म्य में मिलता है। भूतेश्वर, ज्येष्ठेश्वर तथा नन्दिक्षेत्र की तीर्थ यात्रा करने वालों के लिये यहाँ पिण्ड दान देने का विधान है। कनकवाहिनी के संगम के प्रसंग में कल्हण ने पुनः वर्णन किया है। (रा० त० २:१६९) नन्दि क्षेत्र एवं नन्दीश क्षेत्र के अन्तर्गत नन्दिक्षेत्र माहात्म्य वर्णित सभी स्थान आ जाते हैं। वे हरमुकुट सरोवर से भूतेश्वर के मध्य तक स्थित हैं।

राजा जलौक नगर में ज्येष्ठरुद्र की स्थापना की थी। आदि ज्येष्ठरुद्र के स्थान के समीप नारन नाग का जलस्रोत है। नारन नाग किंवा सोदर तीर्थ का अवतरण श्रीनगर में राजा की सुविधा के लिये हुआ था। अतएव नवीन सोदर तीर्थ श्रीनगर के समीप होना चाहिए।

यह सोदर तीर्थ श्रीनगर समीपस्थ स्थित सुदर है। डल लेक का एक भाग सुदर खुन कहा जाता है। इसके समीप सुदरबल ग्राम है। खुन शब्द संस्कृत शब्द कोण का अपभ्रंश है। सुदर खुन एक संकीर्ण जल निकलने का स्थान है। डल के पश्चिम तरफ है। यह आदमपुर तथा सुदरबल ग्रामो के मध्य स्थित हैं। यह डल लेक का सबसे गहरा स्थान है।

श्री स्तीन सन् १८८५ ई० में इस स्थान पर आये थे। उन्हें सुदर खुन ग्राम के छोरपर गाँव को मसजिद के समीप २ कुण्ड मिले थे। वे डल लेक के जल से भरे थे। ग्रामीणो ने उन्हें बताया था। उन कुण्डों में निरन्तर बहने वाले जलस्रोत थे।

प्रतिष्ठां ज्येष्ठरुद्रस्य श्रीनगर्यां वितन्वता।
तेन नन्दीशसंस्पर्धं न मेने सोदरं विना ॥ १२४ ॥

१२४. राजा जिस समय ज्येष्ठ रुद्र[1] की प्रतिष्ठा श्रीनगर में करता रहा था उसने अनुभव किया कि बिना सोदर तीर्थ के वह नन्दीश से स्पर्धा नहीं कर सकता था।

मैं सुदर बल ग्राम में आया हूँ। ग्राम की आबादी बढ़ गयी है। ग्राम तथा डल लेक तक पक्की सड़क बन गयी है। बिजली लग गयी है। मकान अच्छे और कुछ पक्के बन गये हैं। वहाँ नावें डल तट पर मिलती हैं। उस पार लेकर ले जाई जाती हैं। तट से कुछ हटकर लेक में कमल खूब लगे हैं। मृणाल दण्ड पर कमल पत्र तथा प्रफुल्लित कमल झूम रहे थे। कमलगट्टा अर्थात् कमल का बीज हरा अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। वे तोड़ कर सूखने के लिये तट पर बिछाये गये थे।

मैंने ग्रामीणों से श्री स्तीन वर्णित स्थान के विषय में जिज्ञासा की। ग्रामीणों ने बताया कि उन सब स्थानों पर अब खेत हो गये हैं। काश्त होने लगी है। जलस्रोत सूख गया है। अब कुछ नहीं है। मैंने अपने कश्मीर भ्रमण में अनुभव किया है। जहाँ भी कहीं देवस्थान, तीर्थ, मन्दिरादि जियारत, मजार किंवा मसजिदों में परिणत हो जाते हैं वहाँ ग्रामीण सत्य बात बताने से हिचकते हैं। उस स्थान का सम्बन्ध किसी मुसलिम पीर, संत महात्मा या जियारत से जोड़ देते हैं।

लगभग शताब्दी पूर्व कश्मीरी ब्राह्मण यहाँ तीर्थ यात्रा निमित्त आते थे। ग्राम के समीप बट्टपुर स्थान है। बट्ट शब्द भट्ट का अपभ्रंश है। भट्ट ब्राह्मण लोग यहाँ आबाद थे। वे यहीं के पुरोहित थे। अब वहाँ पर किसी ब्राह्मण की आबादी नहीं है।

श्रीस्तीन को इस स्थान पर कोई ध्वंसावशेष नहीं मिला था। स्थानीय ग्रामीणों से उन्हें मालूम हुआ था। ग्राम में अत्यधिक अलंकृत शिलाखण्ड पड़े थे। उन्हें कश्मीरराज महाराज रणवीर सिंह जी श्रीनगर में मन्दिर निर्माण निमित्त उठवा ले गये थे। इससे स्पष्ट होता है कि यह स्थान जलौक निर्मित सोदर तीर्थ था। यहाँ से मूल सोदर तीर्थ अर्थात् नारन नाग भूतेश्वर में ३२ मिलों का अन्तर है।

सोदर तीर्थ की पूर्व दिशा में ईशेश्वर, सुरेश्वरी, तथा उत्तर पश्चिम अमृत भवन, उत्तर पूर्व तिलप्रस्था और दक्षिण में सारिका पर्वत के प्राचीन पवित्र तीर्थस्थान थे।

(५) नन्दीशः अमर कोश (१:४३) में नन्दीके ६ नाम यथा—शृंगी, भृङ्गी, रिटि, तुण्डि, नन्दिक तथा नन्दिकेश्वर दिया है। यहाँ पर नन्दीश का अर्थ शिव है। नन्दी शिव के पार्षद हैं। द्वारपाल हैं। वाहन हैं। यह शंकर के वरदान के कारण शिलाद ऋषि को भूमि जोतते समय मिले थे। ऋषि पुत्र स्वरूप भगवान् शंकर की तपस्या किया था। तप द्वारा अमरत्व की प्राप्ति की थी। शिव ने इन्हें पुत्रवत् माना था। अपने गणों में स्थान दिया था।

मत्स्य पुराण के अनुसार नन्दीश वास्तु शास्त्र का एक ग्रन्थकार है। मनु के एक पुत्र नन्दीश हैं। कश्यप कुल का गोत्र तथा भार्गव कुल का एक मंत्रकार हुआ है। भागवत मतानुसार निषाध तथा वायु पुराण मतानुसार नल का पुत्र था। नल का पुत्र पुण्डरीक था किन्तु यहाँ पर नन्दीश का अर्थ शंकर किंवा शिव मानना चाहिए।

नन्दीश की पूजा नन्दकोल झील कश्मीर में होती थी। नन्दकोल का प्राचीन नाम कालोदक अथवा नन्दिसर है। इसका यह नाम इस लिये पड़ा है कि काल अर्थात् शिव का और उनके पार्षद नन्दी का भी स्थान होने के कारण नन्दिसर नाम पड़ा है। इन सब तीर्थ स्थानों के क्षेत्र का नाम नन्दिक्षेत्र कल्हण ने दिया है।

नन्दिक्षेत्र के उत्तर ओर कालोदक सतसरनी दर्रा दक्षिण तरफ हरमुकुट पर्वत तत्पश्चात् ब्रह्मसर नाग और धुर दक्षिण में भूतेश्वर है। पश्चिम सरवल नाग तथा पर्वतमाला है।

१२५ (१) ज्येष्ठ रुद्र अथवा ज्येष्ठेश : नन्दिक्षेत्र में भूतेश्वर में ज्येष्ठ रुद्र का मन्दिर तथा लिंग था। सोदर तीर्थ के श्रीनगर में अवतीर्ण होने के पश्चात् वह स्वाभाविक था कि ज्येष्ठ रुद्र किंवा ज्येष्ठेश का भी मन्दिर राजा सोदर तीर्थ के समीप निर्माण कराता। अन्यथा सोदर तीर्थ श्रीनगर में लाने के पश्चात् भी राजा को बत्तीस मिल की नित्य यात्रा ज्येष्ठरुद्र के दर्शन निमित्त करनी पडती। प्रति दिन ३२ मिल आने और जाने में कुल ६४ मिल दुर्गम पर्वतीय मार्ग से चलना पड़ता। अतएव राजा ने ज्येष्ठ रुद्र की स्थापना श्रीनगर में की। यह स्थान कहाँ था और यह अब किस अवस्था में है। यह विचारणीय विषय है।

इस समय शिव ज्येष्ठेश की संज्ञा उस लिंग से दी जाती है जो श्रीनगर में ज्येष्ठ नाग के पास स्थित है। डल लेक के गगरीबल के दक्षिण पश्चिम उठती पहाड़ी ढाल पर तथा जेथर ग्राम के कुछ ऊपर है। श्रीनगर एवं कश्मीर के ब्राह्मणों का यह पवित्र तीर्थ स्थान अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। इसका विस्तार से उल्लेख ज्येष्ठ माहात्म्य में मिलता है।

गाथा है। भगवान् शिव ने ज्येष्ठा अर्थात् पार्वती का उद्धार एक दैत्य से यहाँ किया था। यहीं पर देवी से विवाह किया। विवाह के पश्चात् शिव का नाम ज्येष्ठेश पड़ गया।

समीपवर्ती ग्राम जेथर का नाम माहात्म्य में ज्येस्थरक दिया गया है। श्री साहिबराम ने ज्येष्ठेश्वर की पूजा का उल्लेख अपने तीर्थ में किया है। उन्हें ज्येष्ठ रुद्र कहा है। काश्मीरी उसे ज्येष्ठ उदर कहते है। यह शब्द ज्येष्ठ रुद्र का अपभ्रंश है। चतुर्थ तरंगिणी में 'ज्येष्ठ रुद्राख्य पर्वत' (५९२) उल्लेख से प्रकट होता है कि स्थान का नाम ज्येष्ठ रुद्र से सम्बन्धित था। श्रीपंचमी अर्थात् वैशाख वदी पंचमी को यहाँ काश्मीरियों का जमघट होता था। माहात्म्य में यही दिन ज्येष्ठेश की तीर्थ यात्रा के लिये निश्चित किया गया है।

डल झील को वहींपर (श्लोक ८५३) में 'ज्येष्ठरुद्रसमीपस्थम् सरस' कहा गया है। अर्थात् डल लेकका प्राचीन एक नाम सर था। उलर लेक का नाम महापद्मसर देकर दोनों के नामों में स्पष्ट अन्तर दिखाया गया है। डल को सर तथा उलर को महापद्मसर कहते थे। श्लोक ८०६ मे 'ज्येष्ठ रुद्रसमीपस्थगिरिः' शब्द आया है। शंकराचार्य पर्वत का कालान्तर में एक नाम ज्येष्ठरुद्र भी पड़ गया था। जेथर से इस पर्वत के पूर्वीय मूल तक का अन्तर कठिनता से एक मिल होगा। महादेव माहात्म्य के दो उल्लेखों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। शिव को वहाँ (२:८) इस प्रकार दिखाया गया है कि जैसे वह सारिका किंवा हर पर्वत पर से चारों ओर के अतिरम्य प्राकृतिक दृश्य का अवलोकन कर रहे हैं। वहाँ से वह पूर्व दिशा में डल लेक, तथा दक्षिण दिशा में ज्येष्ठ रुद्र पर्वत देख रहे हैं। इसी प्रकार ३:१० में पार्वती को वितस्ता के तट से ज्येष्ठरुद्र का उत्तुङ्ग स्थान देखते दिखाया गया है। सारिका पर्वत पर चढ़कर यदि चारों ओर देखा जाय तो शंकराचार्य पर्वत अथवा ज्येष्ठ रुद्र जिसे मुसलिम लेखकों ने तख्त सुलेमान लिखा है दक्षिण दिशा में गौरव पूर्ण शिखर ऊँचा किये दिखाई देता है। यहाँ के मन्दिर के शिखर पर लगी बिजुली का प्रकाश रात्रि में समस्त कश्मीर उपत्यका में चमकता दिखाई पड़ता है जैसे वह रात्रि में उपत्यका की एक सजग प्रहरी की तरह रक्षा कर रहा है। शंकराचार्य पर्वत तथा वितस्ता के मध्य संकीर्ण स्थान है। वहाँ तट से खड़ा होकर बिना मस्तक ऊपर उठाये शंकराचार्य पर्वत पर स्थित मन्दिर को कोई नहीं देख सकता। मैंने इन दोनों बातों का स्वयं अनुभव किया और सत्य पाया है।

कल्हण के वर्णन (१:३४१) से यह बात मिलती है। यह स्थान डल लेक के दक्षिण दिखाया गया है। इस शंकराचार्य पर्वत का तत्कालीन नाम ज्येष्ठ रुद्र राजा गोपादित्य के समय में गोपाद्रि पड़ गया था। उल्लेख मिलता है कि राजा गोपादित्य ने ज्येष्ठेश में देवस्थान का निर्माण करा कर गोपाद्रि में एक अग्रहार आर्यावर्त के ब्राह्मणों को दिया था। कल्हण ने गोपाद्रि शब्द पुनः शंकराचार्य किंवा ज्येष्ठ रुद्र पर्वत के लिए और इसी के लिए गोपाचल शब्द का प्रयोग रा० त० ८:११०७ में किया है।

गोपाद्रि का अपभ्रंश आज कलका यथा-स्थान स्थित ग्राम गुपकर है। यह ग्राम बड़ा है। शंकराचार्य पर्वत के मूल पूर्वदिशा में स्थित है। जेथर ग्राम से आध मिल दूर है। इससे प्रकट होता है कि जेथर ग्राम के अत्यन्त समीप राजा गोपादित्य ने उक्त देवस्थान निर्मित किया था।

श्री स्तीन का मत है कि राजा जलौक द्वारा निर्मित ज्येष्ठ रुद्र का स्थान श्रीनगर में डल लेक के दक्षिण दिशा में जेथर ग्राम के समीप होना चाहिए। इस देव स्थान के पूर्व में जेथर तथा शंकराचार्य पर्वत होना चाहिए। वर्तमान स्थिति इन स्थानों की ऐसी है कि वहाँ कोई प्राचीन स्मारक तथा ध्वंसावशेष नहीं है जिससे निश्चित रूप से निर्णय किया जाय कि ज्येष्ठेश का मन्दिर किस स्थान पर था।

जनरल कनिंघम ने (एनसियेण्ट ज्योग्रेफी आफ इण्डिया पृष्ठ ८१ वाराणसी) शंकराचार्य पर्वत किंवा तख्त सुलेमान को ज्येष्ठेश्वर पर्वत माना है। उन्होंने ज्येष्ठ रुद्र का मन्दिर ही वर्तमान शंकराचार्य मन्दिर माना है। किन्तु डाक्टर ब्हूलर ने इसे ठीक नहीं माना है। उनका कहना है कि कश्मीरी पण्डितों की परम्परा शंकराचार्य पर्वत स्थित मन्दिर किंवा देव स्थान को राजा जलौक द्वारा स्थापित ज्येष्ठ रुद्र का मन्दिर नहीं मानती। श्री फरगुसन (हिस्टोरी आफ इण्डियन आर्किटेक्चर पृष्ठ २८२) ने भी इस मन्दिर को प्राचीन मन्दिर नहीं माना है। उन्होंने कहा है कि वर्तमान वृत्ताकार मन्दिर का भीतरी कक्ष जिसमें शिवलिंग स्थापित है उसका मुसलिम काल में निर्माण किया गया था।

प्राचीन मन्दिरों के ध्वंसावशेष गुपकर में अनेक स्थानों पर बिखरे मिलते हैं। गगरीबल के पश्चिमी तट पर सैय्यद निजामुद्दीन साहब की जियारत में तथा ग्राम की अन्य मुसलिम इमारतों में मन्दिरों के बड़े अलंकृत शिलाखण्ड लगे मिलते हैं। श्री स्तीन को उक्त जियारत के मार्ग में एक ओर दस फिट गोला एक विशाल शिवलिंग क्षत-विक्षत दिखाई दिया था। ज्येष्ठ नाग के समीप भी उन्हें एक विशाल शिवलिंग पर्वत मूल में भग्नावस्था में मिला था। जेथर में उन्हें ऊपर भूमि पर कोई विशेष ध्वंसावशेष नहीं मिले थे।

मैंने यहाँ काफी समय खोज में व्यतीत किया है। श्री स्तीन तथा कल्हण वर्णित गुपकर ग्राम का रूप इस समय बिल्कुल बदल गया है। यहाँ पर पूर्व समय आबादी थी। स्वर्गीय राजा हरी सिंह अन्तिम डोगरा राजा कश्मीर ने इस स्थान को अपने प्रासाद निर्माण निमित्त ले लिया था।

वर्तमान जेठा देवी से लेकर राजा श्री कर्ण सिंह के वर्तमान राज प्रासाद तक की भूमि जो शंकराचार्य मन्दिर के पृष्ठ भाग में है। नव प्रासाद निर्माण निमित्त ले ली गयी है। उस पर स्वर्गीय राजा श्री हरी सिंह जी ने अपने तथा तत्कालीन युवराज श्री कर्ण सिंह के लिये एक और प्रासाद बनवाया था। आजादी के पश्चात् आज कल यह प्रासाद एक होटल के रूप में परिणत कर दिया गया है।

श्री स्तीन के मानचित्र तथा वर्णन के आधार पर मैंने अनुसन्धान आरम्भ किया। नक्शा से कुछ सहायता नहीं मिली। सब कुछ बदल गया है। केवल पहाड़ी डल तथा नाग अर्थात् झरनों का अस्तित्व यथा स्थान है। प्राचीन मार्ग तथा सड़क भी समाप्त हो गये हैं। नवीन मार्ग तथा सड़क नवीन ढंग से मूल स्थान से हटकर बनाये गये हैं। स्थानीय लोगों से बातें कीं।

जांच किया। किन्तु विशेष सहायता न मिली। स्तीन वर्णित लिंग तथा कल्हण वर्णित मन्दिर का लेश मात्र वहाँ चिन्ह नही मिला। सब कुछ समथर कर आधुनिक मैदान तथा इमारतो में परिणत हो गया है।

श्री स्तीन जहाँ ज्येष्ठेश्वर का स्थान निश्चित करते है वहाँ इस समय भव्य राजप्रासाद एवं होटल है। नक्शे की सड़क का अस्तित्व लोप हो गया है। दो दिन तक मै स्थानो का निरीक्षण करता रहा किन्तु कुछ पता नही चला।

मेरा ड्राइवर ब्राह्मण था। वह राजा हरीसिंह के समय से ही राजकर्मचारी था। ड्राइवरी करते करते वृद्ध हो गया था। इस समय सरकारी ड्राइवर था। कश्मीर के मुख्य मंत्री श्री बक्सी गुलाम मुहम्मद ने एक कार के साथ उसे मेरे साथ लगा दिया था। वह इस स्थान से परिचित था। बहुत दिन पूर्व उसका यहाँ पर क्वार्टर था। उसमें रहता था। क्वार्टरों का भी अब लोप हो चुका है। मैंने उससे पुरानी सड़क का स्थान पूछा। नक्शा दिखाया। पुराने ग्राम का चिह्न भी बताया।

मै कल्पना नहीं कर सकता था कि डोगरा हिन्दू राज्य में शिवलिंग हटाया जा सकता था। वे धर्मपरायणता के लिये प्रसिद्ध थे। मैंने ड्राइवर से उसकी बाल्यावस्था को कुछ बातें स्म ण करने के लिये उत्साहित किया। वह राजभक्त सेवक था। वह जानकर इस स्थान के विषय में कुछ नहीं बता रहा था। मैंने इसे लक्ष्य किया। उसने काश्मीर के पुरातत्व विभागीय युवक से जिसे मैंने अपने साथ ले लिया था दबी जबान में धीरे से कहा—यहाँ शिव लिंग था। उस स्थान पर जहाँ राज्य प्रासाद या होटल का इस समय मैदान है। इस बात से मुझे एक जानकारी का स्रोत मिला।

इस स्थान पर आने के पूर्व मैं जेठा देवी गया था। मुझे श्रीनगर में कुछ ब्राह्मणों ने बताया कि जेठा देवी के स्थान पर ही ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर था। मैं वहाँ पहुँचा। स्थान देखा। मुझे निराशा हुई। स्थान आधुनिक था। प्राचीनता नाम की किसी वस्तु का दर्शन नहीं मिला। प्रथम क्रिया हुई। यह स्थान ज्येष्ठेश्वर का नही हो सकता। यहाँ देवी की संवत् २००३ विक्रमी में एक मूर्ति स्थापित की गई थी। शिवलिंग कहीं नहीं था। मैं बहुत देर तक वहाँ बैठा और आस-पास घूमता रहा। कुछ समय पश्चात् एक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आ गये। मेरा कौतूहल जानकर वे चकित हुए। मैंने अपना सन्देह इस स्थान के विषय में प्रकट किया।

ज्येष्ठा अर्थात् वर्तमान जेठा देवी के स्थान के पार्श्व में एक नाला बहता था। ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर नाला के वाम पार्श्व में पुरानी अर्थात् श्री स्तीन के नक्शा के लुप्त वाली सड़क के समीप होना चाहिये था।

ज्येष्ठा देवी का स्थान ज्येष्ठ रुद्र से ऊपर तथा नाला के तटपर है। राज प्रासाद से होकर यहाँ का मार्ग जाता है। पूर्व काल में यह मार्ग एक सड़क के रूप में था। इस समय सड़क बिगड़ गयी है। पगडण्डी का रूप ले ली है। ऊपर पहुँचने पर एक सुरम्य स्थान मिलता है। यहाँ पर नाग अर्थात् जलस्रोत है। स्रोत का प्रथम स्वरूप नव निर्मित ज्येष्ठा देवी के मन्दिर के सम्मुख है। एक कुण्ड में स्रोत जल आता है। वहाँ से जल निकल कर नीचे बने चौकोर दूसरे कुण्ड में आता है। यहाँ पुरुष स्नान करते है। वहाँ से जल निकलकर तीसरे अर्थात् सबसे निचले कुण्ड में आता है। यह कुण्ड भी चौकोर है। यह मिट्टी तथा पत्थर की दिवाल से घेरा गया है। जहाँ महिलाएँ स्नान करती है।

प्रथम कुण्ड के ऊपर मैदान है। जहाँ धर्मशाला बनी है। धर्मशाला के बायें भाग में दो कूप जैसे बड़े-बड़े गड्ढे खोदे गये है। इसमें होटल वाले शीत काल में बरफ एकत्रित कर रखते है। उसका प्रयोग ग्रीष्म काल में करते है। इन गड्ढों को गहरी खुदाई की गयी थी। परन्तु उसमें से कोई महत्त्व-पूर्ण वस्तु प्राप्त नही हुई।

विस्मारितो नित्यकृत्यं कार्यव्यग्रतयैकदा ।
विदूरसोदरजलाप्लावनालाभदुर्मनाः ॥ १२५ ॥
अपश्यन्निर्गमात्स्थानादकस्मादुत्थितं पयः ।
स सोदरान्निसंवादि वर्णस्वादादिभिर्गुणैः ॥ १२६ ॥

१२५,१२६. कार्य व्यग्रता के कारण एकदिन राजा सुदूर स्थित सोदर तीर्थ में नित्यकृत्यानुसार स्नान करना भूल गया। वह इस विस्मृति के कारण दुर्मन हो गया। एक जल हीन स्थान में अकस्मात् एक जल स्रोत उद्भूत हो गया था। वह जल वर्ण, स्वाद एवं अन्य गुणों मे सोदर तीर्थ के जलतुल्य था।

यहाँ पर कोई प्राचीन वस्तु नहीं मिली। यहाँ ब्राह्मणो के दो घर हैं। वे देवी की पूजा करते हैं। अखरोट के कुछ वृक्ष हैं। उनका फल बेचकर जीविकोपार्जन करते हैं। स्थान सुन्दर है। यहाँ से डल लेक तथा पर्वतों का अच्छा दृश्य मिलता है। सारिका पर्वत का भी अच्छा दृश्य मिलता है। हरमुकुट पर्वत शिखर माला भी दूर पर दिखाई देती है। निस्सन्देह यह स्थान देवी पार्वती के तपस्या योग्य है। यहाँ शान्ति मिलती है। तरुछाया में बैठकर प्रकृति की शोभा निरखने में आनन्द मिलता है।

मुझे परेशान देखकर उस वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—"मै पाँच वर्ष का था। उस समय नीचे वाला महल राजा बनवा रहे थे। वहाँ पर एक बहुत बड़ा शिवलिंग था। उस लिंग तथा देवस्थान के कारण भूमि पर कब्जा पाना कठिन हो रहा था। राज्य प्रासाद के किसी खुले या बन्द भाग मे शिवलिंग रहने देने का अर्थ था। जनता दर्शन और तीर्थ यात्रा के लिये आती। अतएव राजा हरी सिंह ने शिवलिंग उखड़वाकर फेंकवा दिया। सलाहकारो के सुझाव पर शिवलिंग कहीं गाड़ दिया गया। मैदान चौरस कर दिया गया। मुमकिन है। वह शिवलिंग कहीं मैदान या मकान के नीचे दबा पड़ा हो।"

मुझे इस कथन मे सच्चाई मालूम हुई। ज्येष्ठा देवी जाने का मार्ग पैलेस अर्थात् होटल से होकर जाता है। वह मार्ग भी राजा ने बन्द करवा दिया था। राजा कर्ण सिंह के राजा होने पर वह मार्ग खुल गया है। लोग जेष्ठा के मन्दिर तक इस मार्ग से जा सकते हैं। अब लोग यात्रा करने आने लगे हैं। यद्यपि मैंने स्वयं देखा कि मार्ग के द्वार पर साइन बोर्ड लगा था—"प्राइवेट रोड।"

नीचे उतर कर आया। वृद्ध ड्राइवर से सब बातें बतायीं। वह चकित हुआ। वह स्थान तो नही बता सका कि शिवलिंग इस समय कहाँ गड़ा है परन्तु यह स्वीकार किया कि यहीं शिवलिंग था। किस स्थान पर वह था यह निश्चयात्मक रूप से नही बता सका।

उसने एक बात और बताई। उसका समीप ही क्वार्टर था। वह वृद्धो से सुनता आया था। एक शेर शिवलिंग की नित्य परिक्रमा करने आता था। ज्येष्ठा देवी की भी परिक्रमा करता था। मेरी सन्देह दृष्टि देखकर उसने निश्चयात्मक ढंग से विश्वासपूर्ण वाणी में कहा—मैं छोटा था। अपने क्वार्टर में रहता था। मैंने स्वयं देखा है। शेर का एक बच्चा आता था। शिवलिंग की परिक्रमा करता था। ज्येष्ठा देवी की परिक्रमा करता था। यहाँ आबादी बढ़ने लगी। बहुत दिन हुआ उसका आना बन्द हो गया। और फिर तो यह देवस्थान ही समाप्त हो गया।

मैं वह सब सुनकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा। प्राचीन शिवलिंग पैलेस जो अब होटल हो गया है उसके मैदान अथवा इमारत के नीचे कहीं गड़ा है। अथवा डल लेक में खण्डित मूर्ति या लिंग की तरह

प्रादुर्भूते ततस्तस्मिंस्तीर्थे कृतनिमज्जनः ।
स नन्दिरुद्रस्पर्धायां मानी पर्याप्तिमासदत् ॥ १२७ ॥

१२७. उस प्रादुर्भूत नवीन तीर्थ में मानी राजा ने स्नान किया तो उसे सोदर तीर्थ स्नान जैसी प्रसन्नता हुई। नन्दि रुद्र की स्पर्धा कार्य सम्पन्न होता देख उसे सन्तोष हुआ।

तेन जातु परीक्षार्थं निक्षिप्तः सोदरान्तरे ।
सपिधानाननः स्वर्णभृङ्गारः सुपिरोदरः ॥ १२८ ॥

१२८. उस उत्पन्न सोदर तीर्थ को परीक्षा लेने के लिये कि वास्तव मे वह जल मूल सोदर तीर्थ का है या नहीं। राजा ने एक सुवर्ण भृङ्गार का मुख शीशा से बन्द किया। उसे मूल सोदर तीर्थ में छोड़ दिया।

दिनद्वयेन सार्धेन श्रीनगर्युद्भवाम्भसः ।
उन्मग्नः स महीभर्तुस्तस्य चिच्छेद संशयम् ॥ १२९ ॥

१२९. [1]ढाई दिन के पश्चात् वह सुवर्ण भृङ्गार श्रीनगर समीपस्थ उद्भूत सोदर तीर्थ मे निकल आया तो उस राजा का सन्देह दूर हो गया।

नूनं नन्दीश एवासौ भोक्तुं भोगानवातरत् ।
दृष्टादृष्टक्रियासिद्धिर्न भवेत्तादृगन्यथा ॥ १३० ॥

१३०. प्रतीत होता था कि राजा स्वयं नन्दीश था। भूमि पर भोग भोगने के लिये अवतार[1] लिया था अन्यथा इस प्रकार के अलौकिक कार्य किस प्रकार देखना सम्भव था।

प्रवाह कर दिया गया है। और यही स्थान ज्येष्ठ रुद्र का स्थान था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२६ में 'सोदरा' का 'मोदर', 'वर्णस्वा' का पाठभेद 'वर्णास्वा' मिलता है।

श्लोक संख्या १२८ में 'जातु' का पाठभेद 'तत्र' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२९. (१) मैं बदायूँ उत्तर प्रदेश में एक समय गया था। बदायूँ की पुरानी आबादी एक ऊँचे स्थान पर है। नगर में अनेक कूप है। मुझे बताया गया यदि एक कूप में सन्तरा छोड़ दिया जाय तो दूसरे कूप में निकल आता है। यही बात मुझे नेपाल में मालूम हुई। वहाँ गुह्येश्वरी देवी का मन्दिर है। मै दर्शन करने गया। वहाँ के कुण्डके विषय मे यही कहा गया। समय-समय पर उसमें फल निकल आता था।

कल्हण का यह वर्णन महत्त्वपूर्ण है। ढाई दिन में स्वर्ण भृंगार नवीन सोदर तीर्थ में निकल आया। यह दोनों स्थानो के मध्य की दूरी और यात्रा में लगने वाले समय की ओर संकेत करता है। राजा की शक्ति की ओर भी संकेत करता है। स्वर्ण भृंगार को एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचने मे ढाई दिन का समय लग गया। यद्यपि राजा राज कार्य की व्यस्तता के बावजूद प्रतिदिन सोदर तथा विजयेश्वर की यात्रा करता था। कल्हण राजा की अलौकिक शक्ति के वर्णन की भूमिका प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित श्लोक में उसकी तुलना नंदीश से कर देता है।

१३०. (१) अवतार : प्रायः सभी धर्म किसी न किसी रूप में अवतारवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। देवताओं का मनुष्य रूप धारण करना तथा मानवों से सम्पर्क स्थापित करना अनादि काल

से मान्यता प्राप्त करता आया है। अवतार का साधारण अर्थ होता है। ईश्वर किंवा देवताओं का शक्ति द्वारा भौतिक जगत् में मूर्तिमान आविर्भाव होना। अवतार का प्राचीन-शब्द प्रादुर्भाव है।

वैष्णव सम्प्रदाय में अवतार को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पांचरात्र भगवान् विष्णु के व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, तथा आचार्यावतार का सिद्धान्त स्वीकार करता है। शैव सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भगवान् शंकर के नाना प्रकार की लीलाओं का वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत (१०:२९:१४) भगवान् के अवतार का प्रयोजन उपस्थित करता है।

नृणां निःश्रेयसायापि व्यक्तिर्भगवतो भुवि।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

अवतार-वाद का पुराणों में सविस्तार उल्लेख किया गया है। वैदिक साहित्य में अवतारवाद का रूप मिलता है। प्रजापति ने प्राणियों की रक्षा निमित्त अनेक रूप धारण किया था। शतपथ ब्राह्मण (२ ८:१·१) में मत्स्य, शतपथ ब्राह्मण (७:५:१: ५) में कूर्म, जैमिनी ब्राह्मण में (३·२७२) वाराह, तैत्तिरीय संहिता (७:१.५·१) तथा शतपथ (१४: १ २:११) तथा तैत्तिरीय आरण्यक में नृसिंह तथा तैत्तिरीय संहिता (२:१.३·१) में वामन अवतारों का संकेत प्राप्त होता है। स्वयं ऋग्वेद में (१: १५४.१) में त्रिविक्रम विष्णु का तीन पदों में विश्व को नापने का उल्लेख है।

कालान्तर में प्रजापति के स्थान पर विष्णु की प्रमुखता हुई। उस समय से विष्णु के अवतारों का वर्णन मिलने लगा। अवतारों के रूप, लीला तथा घटना वैचित्र्य का वर्णन वेद पर ही अधिकतया आश्रित है।

विष्णु के चौबीस अवतार माने जाते है। दशावतार विशेष प्रचलित है। उनमें दो जल प्राणी मत्स्य तथा कच्छप है। वे वन जो ...

दो थलचारी वर् ... है। ... वनजो है। दोनों का ... तथा

भाग वराह तथा सिंह का है। एक वामन अवतार है। वे सर्व है। तीन राम है। परशुराम, दाशरथि राम तथा बलराम। बुद्ध मनुष्य: है। कल्कि अरूप: है।

महाभारत में बुद्ध का नाम नहीं मिलता है। वहाँ पर 'हंस' को अवतार मान कर दश संख्या की पूर्ति की गयी है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से बिल्कुल ठीक है। महाभारत काल के पूर्व भगवान् बुद्ध का जन्म नहीं हुआ था। महाभारत के लगभग ढाई हजार वर्ष पश्चात् भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। अतएव महाभारत में बुद्ध का अवतार न होना तर्क सम्मत है।

बौद्ध धर्म के महायान पंथ में अवतारवाद की कल्पना दृढ़ मूल है। बोधिसत्त्व कर्मफल की पूर्णता होने पर बुद्ध रूप में अवतरित होते हैं। जातक कथाएँ इस प्रकार के आख्यानों से भरी पड़ी है। तिब्बत में दलाईलामा के रूप में अवतार का संकेत मिलता है। लामा लोजंग-ग्या-मत्सो (सन् १६१५-१६८२ ई०) ने इस परम्परा की स्थापना की। तिब्बती मान्यता है। दलाईलामा की मृत्यु के पश्चात् उनकी आत्मा किसी बालक में प्रवेश करती है। इस मत का प्रचार मंगोलिया के मठों में विशेष रूप से था। परंतु चीन में अवतारवाद की कल्पना मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी।

पारसी धर्म की परम्परा वैदिक तथा हिन्दुओं की अनेक मान्यताओं से मिलती है। वे राजा को पवित्र तथा दैवी शक्ति सम्पन्न मानते है। पारसी ग्रन्थों में 'वहुर्शो हुरेनाट' राजा में अद्भुत तेज सत्ता थी। वह कालान्तर में अर्दशिर राजा और सस्सनवंशी राजाओं में थी।

शामी अर्थात् सेमेटिक लोगों में कुछ कम या ज्यादा अवतारवाद के अंकुर मिलते है। वहाँ राजा भौतिक तथा दैवी शक्ति का प्रतीक माना था।

... अर्थात् बेबेलोनिया में अवतारवाद का विकास ... था। किश का राजा

राज्ञस्तस्य कदाचित्तु व्रजतो विजयेश्वरम् ।
ययाचे काचिदबला भोजनं मार्गमध्यगा ॥ १३१ ॥

१३१. किसी समय राजा विजयेश्वर जा रहा था। मध्य मार्ग में एक अबला मिली। उसने राजा से भोजन की याचना की।

यथेष्टमशनं दातुं ततोऽनेन प्रतिश्रुते ।
व्यवृणोद्विकृता भूत्वा सा नृमांसाश्रयां स्पृहाम् ॥ १३२ ॥

१३२. राजा ने उसकी इच्छानुसार भोजन देने का वचन दिया तो उसने अपना असली रूप धारण कर मानवमांस की स्पृहा प्रकट की।

स सत्त्वहिंसाविरतस्तस्यै मांसं स्वविग्रहात् ।
अनुज्ञां प्रददौ भोक्तुं यदा सैवं तदाऽब्रवीत् ॥ १३३॥

१३३. राजा अहिंसा व्रत धारण कर जीव हिंसा से विरत हो गया था। उसने उससे कहा — 'मेरे शरीर का मांस ग्रहण' कर सकती हो।' उसने राजा से कहा।

उत्तमुस अपने जीवन काल में ही ईश्वर का अवतार माना जाता था। नरामसिन राजा कहता था। उसमें देवता का रूप प्रवाहित था अतएव उसने अपने मस्तकपर सींग से युक्त चित्र अंकित करवा रखा था।

मिस्र में कुछ इसी प्रकार की मान्यता थी। वहाँ का राजा दैवी शक्ति युक्त माना जाता था। मिस्री लोगों का विश्वास था। 'रा' देवता रानी के साथ सहवास करता था। उससे अलौकिक शक्ति सम्पन्न राजपुत्र जन्म लेता था।

यूनानियों में अवतार की कल्पना आर्यों के समान थी। वीर पुरुषों को वे विभिन्न देवों के पुत्र तुल्य मानते थे। जैसे महाभारत में कर्ण सूर्य के, युधिष्ठिर धर्मराज के, अर्जुन इन्द्र के पुत्र माने गये थे। यहूदी धर्म में ईश्वर के अवतार किंवा पुरुष विशेष में ईश्वर की शक्ति विशेष मानने की ओर अधिक झुकाव है।

ईसाई धर्म में बाइबिल का अध्ययन इस मान्यता को स्वीकार करता है। महात्मा ईसा में अलौकिक शक्ति का होना स्वीकार किया गया है। इसलाम में शिया सम्प्रदाय इमाम में अलौकिक शक्ति की मान्यता स्वीकार करता है।

कल्हण यहाँ पर जलौक में उसी अलौकिक ईश्वरीय शक्ति का होना कहता है। उसकी तुलना नन्दीश के अवतार से करता है।

१३१ (१) कृत्या कथा : कल्हण ने यहाँ भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित तत्कालीन एक कथा का उल्लेख किया है। राजा जलौक का झुकाव बुद्ध धर्म की ओर अधिक नहीं था। अपितु वर्णाश्रम धर्म प्रचार निमित्त ठोस कदम उठाया था। बौद्धों में आतंक व्याप्त हो गया होगा। राज्याश्रय के अभाव में वे भय का अनुभव करते। वर्णाश्रम धर्मावलम्बियों द्वारा बौद्धों का उत्पीड़न बन्द किया जाय, एतदर्थ यह कथा यहाँ जोड़ दी गयी है। राजा जलौक के समय बौद्धधर्मावलम्बियों की क्या स्थिति हो गयी थी। यह इस कथा द्वारा प्रकट होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३२ में 'यथेष्ट' का पाठभेद 'यथेच्छ' मिलता है।

श्लोक संख्या १३३ में 'मांस' का पाठभेद 'दातु' मिलता है।

से मान्यता प्राप्त करता आया है। अवतार का साधारण अर्थ होता है। ईश्वर किंवा देवताओं का शक्ति द्वारा भौतिक जगत् मे मूर्तिमान आविर्भाव होना। अवतार का प्राचीन-शब्द प्रादुर्भाव है।

वैष्णव सम्प्रदाय में अवतार को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पांचरात्र भगवान् विष्णु के व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, तथा आचार्यावतार का सिद्धान्त स्वीकार करता है। शैव सम्प्रदाय के ग्रन्थो में भगवान् शंकर के नाना प्रकार की लीलाओं का वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत (१०:२९:१४) भगवान् के अवतार का प्रयोजन उपस्थित करता है।

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

अवतार-वाद का पुराणों में सविस्तार उल्लेख किया गया है। वैदिक साहित्य में अवतारवाद का रूप मिलता है। प्रजापति ने प्राणियों की रक्षा निमित्त अनेक रूप धारण किया था। शतपथ ब्राह्मण (२ ८.१:१) में मत्स्य, शतपथ ब्राह्मण (७:५:१: ५) में कूर्म, जैमिनी ब्राह्मण में (३·२७२) वाराह, तैत्तिरीय संहिता (७:१.५ १) तथा शतपथ (१४: १:२:११) तथा तैत्तिरीय आरण्यक में नृसिंह तथा तैत्तिरीय संहिता (२ १.३.१) में वामन अवतारों का संकेत प्राप्त होता है। स्वयं ऋग्वेद में (१: १५४.३) मे त्रिविक्रम विष्णु का तीन पदों में विश्व को नापने का उल्लेख है।

कालान्तर में प्रजापति के स्थान पर विष्णु की प्रमुखता हुई। उस समय से विष्णु के अवतारों का वर्णन मिलने लगा। अवतारों के रूप, लीला तथा घटना वैचित्र्य का वर्णन वेद पर ही अधिकतया आश्रित है।

विष्णु के चौबीस अवतार माने जाते है। दशावतार विशेष प्रचलित हैं। उनमें दो जल प्राणी मत्स्य तथा कच्छप है। वे वन जो हैं।

दो मलचारी वराह तथा नृसिंह है। वे भी वनजो है। दोनों का अधोभाग मनुष्य तथा शिरोभाग वराह तथा सिंह का है। एक वामन अवतार है। वे खर्व है। तीन राम है। परशुराम, दाशरथि राम तथा बलराम। बुद्ध सकृपः है। कल्कि अकृपः है।

महाभारत में बुद्ध का नाम नही मिलता है। वहाँ पर 'हंस' को अवतार मान कर दश संख्या की पूर्ति की गयी है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से बिल्कुल ठीक है। महाभारत काल के पूर्व भगवान् बुद्ध का जन्म नहीं हुआ था। महाभारत के लगभग ढाई हजार वर्ष पश्चात् भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। अतएव महाभारत में बुद्ध का अवतार न होना तर्क सम्मत है।

बौद्ध धर्म के महायान पंथ मे अवतारवाद की कल्पना दृढ़ मूल है। बोधिसत्व कर्मफल की पूर्णता होने पर बुद्ध रूप मे अवतरित होते है। जातक कथाएँ इस प्रकार के आख्यानों से भरी पड़ी है। तिब्बत में दलाईलामा के रूप में अवतार का संकेत मिलता है। लामा लोजंग-ग्या-मत्सो (सन् १६१५-१६८२ ई०) ने इस परम्परा की स्थापना की। तिब्बती मान्यता है। दलाईलामा की मृत्यु के पश्चात् उनकी आत्मा किसी बालक में प्रवेश करती है। इस मत का प्रचार मंगोलिया के मठों में विशेष रूप से था। परंतु चीन में अवतारवाद की कल्पना मान्यता प्राप्त नही कर सकी।

पारसी धर्म की परम्परा वैदिक तथा हिन्दुओं की अनेक मान्यताओं से मिलती है। वे राजा को पवित्र तथा दैवी शक्ति सम्पन्न मानते है। पारसी ग्रन्थों में 'वहूसों हुरेनाह' राजा में अद्भुत तेज सत्ता थी। वह कालान्तर में अर्दशिर राजा और सस्सनवंशी राजाओं में थी।

शामी अर्थात् सेमेटिक लोगों में कुछ कम या ज्यादा अवतारवाद के अंकुर मिलते हैं। वहाँ राजा भौतिक तथा दैवी शक्ति का प्रतीक माना जाता था।

बाबुल अर्थात् बेबेलोनिया में अवतारवाद की मान्यता का विकास हुआ था। किश का राजा

राज्ञस्तस्य कदाचित्तु व्रजतो विजयेश्वरम् ।
ययाचे काचिदबला भोजनं मार्गमध्यगा ॥ १३१ ॥

१३१. किसी समय राजा विजयेश्वर जा रहा था। मध्य मार्ग में एक अबला मिली। उसने राजा से भोजन की याचना की।

यथेष्टमशनं दातुं ततोऽनेन प्रतिश्रुते ।
व्यवृणोद्विकृता भूत्वा सा नृमांसाश्रयां स्पृहाम् ॥ १३२ ॥

१३२. राजा ने उसकी इच्छानुसार भोजन देने का वचन दिया तो उसने अपना असली रूप धारण कर मानवमांस की स्पृहा प्रकट की।

स सत्त्वहिंसाविरतस्तस्यै मांसं स्वविग्रहात् ।
अनुज्ञां प्रददौ भोक्तुं यदा सैवं तदाऽब्रवीत् ॥ १३३॥

१३३. राजा अहिंसा व्रत धारण कर जीव हिंसा से विरत हो गया था। उसने उससे कहा — 'मेरे शरीर का मांस ग्रहण' कर सकती हो। ' उसने राजा से कहा।

उद्मुग अपने जीवन काल में हो ईश्वर का अवतार माना जाता था। नरामसिन राजा कहता था। उसमें देवता का रूप प्रवाहित था अतएव उसने अपने मस्तकपर सींग से युक्त चित्र अंकित करवा रखा था।

मिस्र में कुछ इसी प्रकार की मान्यता थी। वहाँ का राजा दैवी शक्ति युक्त माना जाता था। मिस्री लोगों का विश्वास था। 'रा' देवता रानी के साथ सहवास करता था। उससे अलौकिक शक्ति सम्पन्न राजपुत्र जन्म लेता था।

यूनानियों में अवतार की कल्पना आर्यों के समान थी। वीर पुरुषों को वे विभिन्न देवों के पुत्र तुल्य मानते थे। जैसे महाभारत में कर्ण सूर्य के, युधिष्ठिर धर्मराज के, अर्जुन इन्द्र के पुत्र माने गये थे। यहूदी धर्म में ईश्वर के अवतार किंवा पुरुष विशेष में ईश्वर की शक्ति विशेष मानने की ओर अधिक झुकाव है।

ईसाई धर्म में बाइबिल का अध्ययन इस मान्यता को स्वीकार करता है। महात्मा ईसा में अलौकिक शक्ति का होना स्वीकार किया गया है। इसलाम में शिया सम्प्रदाय इमाम में अलौकिक शक्ति की मान्यता स्वीकार करता है।

कल्हण यहाँ पर जलौक में उसी अलौकिक ईश्वरीय शक्ति का होना कहता है। उसकी तुलना नन्दीश के अवतार से करता है।

१३१ (१) कृत्या कथा : कल्हण ने यहाँ भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित तत्कालीन एक कथा का उल्लेख किया है। राजा जलौक का झुकाव बुद्ध धर्म की ओर अधिक नहीं था। अपितु वर्णाश्रम धर्म प्रचार निमित्त ठोस कदम उठाया था। बौद्धों में आतंक व्याप्त हो गया होगा। राज्याश्रय के अभाव में वे भय का अनुभव करते। वर्णाश्रम धर्मावलम्बियों द्वारा बौद्धों का उत्पीड़न बन्द किया जाय, एतदर्थ यह कथा यहाँ जोड़ दी गयी है। राजा जलौक के समय बौद्धधर्मावलम्बियों की क्या स्थिति हो गयी थी। यह इस कथा द्वारा प्रकट होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३२ में 'यथेष्ट' का पाठभेद 'यथेच्छ' मिलता है।

श्लोक संख्या १३३ में 'मांस' का पाठभेद 'दातुं' मिलता है।

बोधिसत्त्वोऽसि भूपाल कोऽपि सत्त्वोर्जितव्रतः ।
कारुण्यं प्राणिषु दृढं यस्येदृक्के महात्मनः ॥ १३४ ॥

१३४. 'निश्चय आप कोई बोधिसत्त्व हैं' भूपाल ! और कौन ऐसा सत्यव्रती हो सकता है ? महात्मन ! आपने जीवित प्राणियों में दृढ़ करुणा दिखायी है ।

बौद्धभाषामजानानो माहेश्वरतया नृपः ।
को बोधिसत्त्वो यं भद्रे मां वेत्सीति जगाद ताम् ॥ १३५ ॥

१३५. शिव उपासक होने के कारण नृप बौद्ध भाषा नहीं समझ सका । राजा ने जिज्ञासा की—' भद्रे ! बोधिसत्त्व क्या ? जिसे तुमने मुझे समझा है ? '

पुनर्बभाषे सा भूपं श्रोतव्यं मत्प्रयोजनम् ।
"अहं ह्युत्थापिता बौद्धैः क्रोधाद्विप्रकृतैस्त्वया ॥ १३६ ॥

१३६. उसने पुनः उस भूप से कहा — ' प्रयोजन सुनिए मैं उन बौद्धों द्वारा भेजी गयी हूँ जिन्हें अपने क्रोध के कारण आपने दुःखी कर दिया है ।

पादटिप्पणियाँ :

१३३(१) शरीर मांस ग्रहण : कल्हण इस श्लोक के द्वारा राजा जलौक का चरित्र महत्वपूर्ण बना देता है । राजा का पवित्र चरित्र निखर उठा है । कृत्या बौद्धों द्वारा भेजी गयी थी । परन्तु राजा ने असीम धैर्य, मेधा एवं दयाशीलता का परिचय दिया है । कृत्या के प्रति किंचित् मात्र क्रोध, क्षोभ किंवा द्वेष उसमें उत्पन्न नहीं हुआ ।

यद्यपि राजा बौद्ध धर्म विरोधी था, परन्तु इस श्लोक से स्पष्ट प्रकट होता है । राजा अहिंसक था । उसने बौद्धों के प्रति हिंसा वृत्ति का वरण नहीं किया था । उन्हें ताड़ित नहीं किया था । उसने राजा शिवि के समान प्राणी रक्षा के लिये अपना मांस देना पसन्द किया । अपने जीवन की आहुति देना स्वीकार किया । परन्तु किसी प्राणी को कष्ट देना, उसकी हत्या करना, उसने अपनी जीवन रक्षा निमित्त भी उचित नहीं समझा । कल्हण राजा के अलौकिक गुणों का वर्णन करते हुए, उसे महाभारत वर्णित ययाति राजा के पौत्र राजा शिवि औशीनर के समकक्ष कर देता है ।

जिस प्रकार राजा शिवि ने कपोत की रक्षा के निमित्त अपना मांस काटकर तराजू पर रखना आरम्भ किया । अपने वचन का पालन किया । शरणागत की रक्षा की । यहाँ कल्हण राजा जलौक को और ऊपर उठा देता है । राजा किसी का भी मांस कृत्या को दे सकता था । वह अपना मांस देने के लिये न तो वचनबद्ध था और न प्रतिज्ञा किया था । परन्तु किसी भी प्राणी को उसके कारण कष्ट न हो, अतएव अपना मांस स्वतः देने पर कटिबद्ध हो गया ।

१३४ (१) बोधिसत्त्व : इस शब्द का अर्थ होता है बुद्ध प्राप्ति का अधिकारी व्यक्ति किंवा पात्र । वह व्यक्ति जिसने बुद्धत्व प्राप्त नहीं किया है । वह महापुरुष जो आगे चलकर बुद्ध हो गया । भगवान् बुद्ध के जन्म काल से उनके बोध गया में बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व काल के जीवन का सम्बोधन बौद्ध ग्रन्थों में बोधिसत्त्व नाम से किया गया है । बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् बोधिसत्त्व स्वयं बुद्ध हो जाते हैं ।

कल्हण ने यहाँ अबला किंवा कृत्या से राजा जलौक के गुणों की प्रशंसा कराने के साथ ही उन्हें नन्दीश अवतार के समान बुद्ध अवतार होने की ओर भी संकेत किया है । वह राजा जलौक के अवतार की

लोकालोकाद्रिपार्श्वस्थास्तामस्यः कृत्तिका वयम् ।
बोधिसत्त्वैकशरणाः काङ्क्षन्त्यस्तमसः च्यम् ॥ १३७ ॥

१३७. 'हम लोकालोक[1] पर्वत के पार्श्व की तम[2] निवासिनी कृत्या[3] हैं। तम मुक्ति की आकांक्षा में बोधिसत्त्व के शरण में रहती हैं।'

लोके भगवतो लोकनाथादारभ्य केचन ।
ये जन्तवो गतक्लेशा बोधिसत्त्वानवेहि तान् ॥ १३८ ॥

१३८. 'भगवान् लोकनाथ[1] से आरम्भ होकर अबतक इस लोक में कुछ प्राणी गतक्लेश[2] हो चुके हैं उन्हें ही बोधिसत्त्व कहा जाता है।'

मान्यता हिन्दू और बौद्ध दोनों से दिलाता है। कृत्या राजा के मास की स्पृहा करती थी। उसने स्वयं स्वीकार किया। राजा जलौक बोधिसत्व है। कल्हण ने काश्मीर में निवसित बौद्ध एवं हिन्दू दोनों धर्मावलम्बियों के अवतार रूप में जलौक को उपस्थित किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३६ में 'हा् त्या' का पाठभेद 'अहत्कृत्या' मिलता है।

श्लोक संख्या १३७ में 'तमसः' का पाठभेद 'तपसः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३७ (१) लोकालोक पर्वत : पौराणिक गाथा के अनुसार सातों समुद्रों को परिवेष्टित करने वाली यह पर्वत श्रेणी है। 'लोकालोकश्चक्रवालः' पृथ्वी को घेरने वाले दो पर्वत लोकालोक तथा चक्रवाल है। (अमरः शैल वर्गः ३:२) इसका अर्थ दृश्य एवं अदृश्य लोक होता है। कृत्या का निवास स्थान यहाँ वर्णन किया गया है। वे अदृश्य लोक अथवा अन्धकार में निवास करनेवाली होती हैं। अतएव उन्हें स्पष्ट नहीं देखा जा सकता।

(२) तम : यहाँ तम शब्द तामस प्रकृति, अन्धकार, तमोगुण एवं पाप के लिए प्रयुक्त किया गया है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस अर्थ में मैं समझता हूँ कल्हण ने तम शब्द का प्रयोग किया है। तमस का अर्थ कूप नरक का अन्धकार तथा क्लेश भी होता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (१०:१२९:३) में तमस शब्द आया है। यहाँ इसका अर्थ अन्धकार किया गया है। तम आसीत् तमसा........? प्रारम्भ में तमस् ही तमस् था। सबकुछ तम से आवृत था।

(३) कृत्या : आभिचारिक कर्म के अर्थ में अनेक स्थानों पर कृत्या शब्द का प्रयोग किया गया है। (ऋ०:१०:८५:२८;२९) अथर्ववेद (५:१४:११) में बताया गया है कि कृत्या अपने कर्ता के पास लौट जाय। अमरकोष में (नानार्थ वर्ग ३:१५८) में कृत्या का अर्थ दिया गया है—कृत्या क्रियादेवतयोस्त्रिषु भेद्ये धनादिभिः।' कार्य, भूत प्रेत आदि अधम देवता, धन, स्त्री, भूमि से भेद डालि जाने वाले पराये राज्य के व्यक्ति इसका अर्थ किया गया है। इसका उल्लेख एक देवी विशेष के अर्थ में भी आता है। मारण कार्य के लिये विशेष रूप से बलिदानादि द्वारा इसकी पूजा की जाती है। यह एक शक्ति विशेष अथवा देवी है। अभिचार क्रिया द्वारा किसी का वध करने के लिये अनुष्ठान विशेष द्वारा उत्पन्न की जाती है। कृत्या को तम शक्ति भी संज्ञा दी गयी है।

१३८ (१) लोकनाथ : लोकनाथ से यहाँ अर्थ भगवान् बुद्ध से है। इस शब्द का अर्थ ब्राह्मण, विष्णु, शिव, राजा तथा बुद्ध होता है।

(२) क्लेश : कल्हण यहाँ भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध शब्द 'दुःख' का उल्लेख न कर क्लेश शब्द का प्रयोग करता है। यहाँ पर क्लेश का अर्थ दुःख

सागसेऽपि न कुप्यन्ति क्षमया चोपकुर्वते ।
बोधिं स्वस्यैव नेच्छन्ति ते विश्वोद्धरणोद्यताः ॥ १३९ ॥

१३९. वे पापियों पर भी क्रोध नहीं करते। वे अपनी क्षमाशीलता द्वारा बुरे का बदला भले से देते हैं। वे केवल अपने लिये बोधि नहीं चाहते, अपितु विश्व की मुक्ति निमित्त उद्यत रहते हैं।

विहारतूर्यनिर्घोषैरुन्निद्रः प्रेरितः खलैः ।
पुरा भवान्व्यधात्क्रोधाद्विहारोद्दलनं यदा ॥ १४० ॥

१४०. एक दिन विहार के तूर्य घोष द्वारा आपकी निद्रा भंग हो गयी। कतिपय खलों की प्रेरणा से आपने क्रोधित होकर विहारों[1] के दलन का आदेश दे दिया।

मानना बौद्धदर्शन तथा सिद्धान्त से अधिक मेल खायेगा। योगशास्त्र के अनुसार क्लेश मुख्यतया पाँच प्रकार के होते हैं यथा—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश।

पाठभेद :

इलोक संख्या १३९ में 'क्षमया' का 'कृपया', 'बोधिं' का 'हितं' 'नेच्छन्ति' का 'नेप्यन्ति' 'श्वोद्धरणो' का 'श्वद्धरणो' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४० (१) विहार दलन : विहारों के दलन करने के आदेश से मालूम होता है कि राजा जलौक बौद्धों का घोर विरोधी था और वर्णाश्रम धर्म के उद्धार निमित्त तुल गया था। कल्हण विहारों के नष्ट करने तथा भिक्षुओं के निकाले जाने का उल्लेख पुनः रा० त० १:१८०,१८१ में करता है। बौद्ध विहारों में हिन्दू देवता रखने की प्रथा बौद्धधर्म के पतन के साथ प्रारम्भ हो गयी थी। कपिलवस्तु के समीप अनेक प्राचीन बौद्ध मन्दिरों में पौराणिक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। भगवान् बुद्ध को अवतार मानकर कालान्तर में हिन्दुओं ने बुद्ध पूजा आरम्भ कर दी थी। अतएव देवमन्दिरों में बुद्ध मूर्ति के साथ पौराणिक देवी देवताओं की मूर्तियों के रखने की प्रथा चल पड़ी थी। आज भी एक ही मन्दिर में शिव, विष्णु, नरसिंह, दुर्गा, गणेश आदि देवताओं की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं। विहारों को हिन्दू मन्दिर में परिवर्तित कर देना साधारण बात हो गयी थी। यह समय-समय पर भारत में होता रहा है।

कृत्या के इस संवाद से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि राजा का विचार बौद्धों के प्रति अच्छा नहीं था। उग्र था। इसका कारण बौद्धों की राज्य के प्रति निष्ठा में कमी होना हो सकता है। बौद्ध संघ-शरण में विश्वास रखते थे। देश एवं राष्ट्र का उनमें स्थान न था। देश एवं संघ के मतवैभिन्य अथवा शासन वैभिन्य में किसको प्राथमिकता दी जायगी यह प्रश्न मूर्तमान सर्वदा खड़ा होता रहा है।

बौद्ध जीवन से विरक्त होते थे। संघ शासन में अनुशासित थे। उनकी निष्ठा संघ की अपेक्षा राज्य के प्रति कम होती थी। यह प्रश्न मध्ययुग के प्रारम्भ काल में यूरोप में भी उग्र रूप से खड़ा हो गया था। चर्च और राज्य दोनों के निष्ठाकाल में किसको प्राथमिकता दी जायगी इस प्रश्न को लेकर शताब्दियों तक राज्य एवं चर्च में संघर्ष होता रहा है। बुद्धधर्म प्रवर्तक धर्म था। वह लोगों का मत परिवर्तित कर संघ में सम्मिलित करने में मिल्लते इसलाम की तरह विश्वास करता था। सम्भव है। बौद्धों की इन मनोवृत्तियों के कारण राजा जलौक बौद्धधर्म विरोधी हो गया होगा। उसके स्थानपर वर्णाश्रम धर्म को आश्रय दिया था।

अनेक अनुवाद-कर्ताओं ने 'विहार नष्ट करने का आदेश राजा ने दिया' यह अनुवाद किया है।

'महाशाक्यः स नृपतिर्न शक्यो बाधितुं त्वया ।
तस्मिन्दृष्टे तु कल्याणि भविता ते तमःक्षयः ॥ १४१ ॥

अस्मद्गिरा प्रेरणीयो विहारकरणाय सः ।
दत्त्वा स्वहेमसंभारं त्वया मलिनितः खलैः ॥ १४२ ॥

तस्मिन्कृते न जायेत विहारच्छेदवैशसम् ।
तस्य तत्प्रेरकाणां च प्रायश्चित्तं कृतं भवेत् ॥' १४३ ॥

क्रुद्धैर्बौद्धैरनुध्याता त्वद्वधाय प्रधाविता ।
अनुशिष्टा समाहूय बोधिसत्त्वैस्तदेत्यहम् ॥ १४४ ॥

१४१-१४४. ' उत्तेजित भिक्षुओं ने मेरे लिये सोचा । आपके वध निमित्त मुझे भेजा । उस समय बोधिसत्त्वों ने मुझे बुलाया । निम्नलिखित उपदेश दिये- ' कल्याणि ! वह राजा महाशाक्य' हैं । तुम उनका वध नहीं कर सकती । किन्तु उनका दर्शन करते ही तुम्हारा तम कम हो जायगा । खलों की प्रेरणा द्वारा उसने दोष किया है, हमारे नाम से तुम उसे प्रेरित करना कि वह अपना हेम संभार देकर विहार का निर्माण करा दे । ऐसा करने से विहार उच्छेद के दोष का भागी राजा न रहेगा और जिन खलों ने उसे उत्तेजित किया है उनके और उसके दोषों का इस प्रकार प्रायश्चित्त हो' जायगा ।

कुछ ने 'विहार गिराने का राजा ने आदेश दिया' यह अनुवाद अंग्रेजी तथा हिन्दी में किया है । यहाँ दलन शब्द का प्रयोग किया है । दलन का अर्थ 'दबाना' अर्थात् विहारों को कुचलने किंवा दबाने का था । यह अर्थ अधिक समीचीन मालूम पड़ता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४१ में 'महाशाक्य' का पाठभेद 'महासत्त्व' मिलता है ।

श्लोक संख्या १४२ में 'स्वहेम' का पाठभेद 'दत्वाऽथ हेम' मिलता है ।

श्लोक संख्या १४४ में 'अनुशिष्टा' का 'अनुदिष्टा' तथा 'सत्वं' का पाठभेद 'सत्यं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१४१ (१) महाशाक्य : एक मत है कि शुद्ध पाठ महासम्मत है । महासम्मत तथा महाशाक्य में नाम मात्र का भेद है । महावंश (२:२३) के अनुसार भगवान् बुद्ध के वंश का नाम महासम्मत था । महावंश में उल्लेख है क्षत्रिय वंशों में शिरोमणि महासम्मत वंश में महामुनि (बुद्ध) ने जन्म लिया ।'

त्रिपिटक के अनुसार भगवान् बुद्ध शाक्य वंशीय थे । देवदह शाक्य थे । उनके पुत्र सिंहहनु थे । सिंहहनु के पुत्र शुद्धोधन थे । शुद्धोधन के पुत्र गौतम अर्थात् बुद्ध थे । गौतम गोत्र था । शाक्य क्षत्रियों की एक शाखा थी । यह शाखा राजा इक्ष्वाकु के रक्त से सम्बन्धित थी । भगवान् बुद्ध शाक्य मुनि हैं । उन्हें शाक्य में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण उनको महाशाक्य की संज्ञा दी गयी है । महासम्मत शब्द का सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के वंश किंवा जाति से था । महाशाक्य भगवान् का नाम शाक्यों में सर्व श्रेष्ठ किंवा महान् होने के .कारण दिया गया था । वह विशेषण है । महाशाक्य शब्द का प्रयोग महासम्मत के स्थानपर अधिक उपयुक्त लगता है ।

सागसेऽपि न कुप्यन्ति क्षमया चोपकुर्वते ।
बोधिं स्वस्यैव नेच्छन्ति ते विश्वोद्धरणोद्यताः ॥ १३९ ॥

१३९. वे पापियों पर भी कोप नहीं करते। वे अपनी क्षमाशीलता द्वारा बुरे का बदला भले से देते हैं। वे केवल अपने लिये बोधि नहीं चाहते, अपितु विश्व की मुक्ति निमित्त उद्यत रहते हैं।

विहारतूर्यनिर्घोषैरुन्निद्रः प्रेरितः खलैः ।
पुरा भवान्व्यधात्कोधाद्विहारोद्दलनं यदा ॥ १४० ॥

१४०. एक दिन विहार के तूर्य घोष द्वारा आपकी निद्रा भंग हो गयी। कतिपय खलों की प्रेरणा से आपने क्रोधित होकर विहारों[1] के दलन का आदेश दे दिया।

मानना बौद्धदर्शन तथा सिद्धान्त से अधिक मेल खायेगा। योगशास्त्र के अनुसार क्लेश मुख्यतया पाँच प्रकार के होते हैं यथा—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३९ में 'क्षमया' का 'कृपया', 'बोधिं' का 'हितं' 'नेच्छन्ति' का 'नेप्यन्ति' 'स्वोद्धरणा' का 'श्वद्धरणो' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४० (१) विहार दलन : विहारों के दलन करने के आदेश से मालूम होता है कि राजा जलौक बौद्धों का घोर विरोधी था और वर्णाश्रम धर्म के उद्धार निमित्त तुल गया था। कल्हण विहारों के नष्ट करने तथा भिक्षुओं के निकाले जाने का उल्लेख पुनः रा० त० १ १८०,१८१ में करता है। बौद्ध विहारों में हिन्दू देवता रखने की प्रथा बौद्धधर्म के पतन के साथ आरम्भ हो गयी थी। कपिलवस्तु के समीप अनेक प्राचीन बौद्ध मन्दिरों में पौराणिक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। भगवान् बुद्ध को अवतार मानकर कालान्तर में हिन्दुओं ने बुद्ध पूजा आरम्भ कर दी थी। अतएव देवमन्दिरों में बुद्ध मूर्ति के साथ पौराणिक देवी देवताओं की मूर्तियों के रखने की प्रथा चल पड़ी थी। आज भी एक ही मन्दिर में शिव, विष्णु, नरसिंह, दुर्गा, गणेश आदि देवताओं की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं। विहारों को हिन्दू मन्दिर में परिवर्तित कर देना साधारण बात हो गयी थी। यह समय-समय पर भारत में होता रहा है।

कृत्या के इस संवाद से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि राजा का विचार बौद्धों के प्रति अच्छा नहीं था। उग्र था। इसका कारण बौद्धों की राज्य के प्रति निष्ठा में कमी होना हो सकता है। बौद्ध संघ-शरण में विश्वास रखते थे। देश एवं राष्ट्र का उनमें स्थान न था। देश एवं संघ के मतवैभिन्य अथवा शासन वैभिन्य में किसको प्राथमिकता दी जायगी यह प्रश्न मूर्तमान सर्वदा खड़ा होता रहा है।

बौद्ध जीवन से विरक्त होते थे। संघ शासन में अनुशासित थे। उनकी निष्ठा संघ की अपेक्षा राज्य के प्रति कम होती थी। यह प्रश्न मध्ययुग के प्रारम्भ काल में यूरोप में भी उग्र रूप से खड़ा हो गया था। चर्च और राज्य दोनों के निष्ठाकाल में किसको प्राथमिकता दी जायगी इस प्रश्न को लेकर शताब्दियों तक राज्य एवं चर्च में संघर्ष होता रहा है। बुद्धधर्म प्रवर्तक धर्म था। वह लोगों का मत परिवर्तित कर संघ में सम्मिलित करने में मिल्लते इसलाम की तरह विश्वास करता था। सम्भव है। बौद्धों की इन मनोवृत्तियों के कारण राजा जलौक बौद्धधर्म विरोधी हो गया होगा। उसके स्थानपर वर्णाश्रम धर्म को प्रश्रय दिया था।

अनेक अनुवाद-कर्ताओं ने 'विहार नष्ट करने का आदेश राजा ने दिया' यह अनुवाद किया है।

'महाशाक्यः स नृपतिर्न शक्यो बाधितुं त्वया ।
तस्मिन्दृष्टे तु कल्याणि भविता ते तमःक्षयः ॥ १४१ ॥

अस्मद्गिरा प्रेरणीयो विहारकरणाय सः ।
दत्त्वा स्वहेमसंभारं त्वया मलिनितः खलैः ॥ १४२ ॥

तस्मिन्कृते न जायेत विहारच्छेदवैशसम् ।
तस्य तत्प्रेरकाणां च प्रायश्चित्तं कृतं भवेत् ॥' १४३ ॥

क्रुद्धैर्बौद्धैरनुध्याता त्वद्वधाय प्रधाविता ।
अनुशिष्टा समाहूय बोधिसत्त्वैस्तदेत्यहम् ॥ १४४ ॥

१४१-१४४. ' उत्तेजित भिक्षुओं ने मेरे लिये सोचा । आपके वध निमित्त मुझे भेजा । उस समय बोधिसत्त्वों ने मुझे बुलाया । निम्नलिखित उपदेश दिये– ' कल्याणि ! यह राजा महाशाक्य' हैं । तुम उनका वध नहीं कर सकती । किन्तु उनका दर्शन करते ही तुम्हारा तम कम हो जायगा । खलों की प्रेरणा द्वारा उसने दोष किया है, हमारे नाम से तुम उसे प्रेरित करना कि वह अपना हेम संभार देकर विहार का निर्माण करा दे । ऐसा करने से विहार उच्छेद के दोष का भागी राजा न रहेगा और जिन खलों ने उसे उत्तेजित किया है उनके और उसके दोषों का इस प्रकार प्रायश्चित्त हो' जायगा ।

कुछ ने 'विहार गिराने का राजा ने आदेश दिया' यह अनुवाद अंग्रेजी तथा हिन्दी में किया है । यहाँ दलन शब्द का प्रयोग किया है । दलन का अर्थ 'दबाना' अर्थात् विहारों को कुचलने किंवा दबाने का था । यह अर्थ अधिक समीचीन मालूम पड़ता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४१ में 'महाशाक्य' का पाठभेद 'महासत्त्व' मिलता है ।

श्लोक संख्या १४२ में 'स्वहेम' का पाठभेद 'दत्वाम्ब हेम' मिलता है ।

श्लोक संख्या १४४ में 'अनुशिष्टा' का '[illegible]' तथा 'सत्वै' का पाठभेद 'सर्वै' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ ।

महासम्मत था । महावंश में [illegible] में शिरोमणि महासम्मत [illegible] ने जन्म लिया ।'

[illegible]

१४१ (१) महाशाक्यः [illegible] शुद्ध पाठ महासम्मत है । [illegible] शाक्य में नाम मात्र का भेद है । [illegible] के अनुसार भगवान् बुद्ध [illegible]

तस्मात्सत्त्वातिरेकस्ते मिषादेवं परीक्षितः ।
क्षीणपापाऽद्य संवृत्ता स्वस्ति ते साधयाम्यहम् ।।"१४५ ।।

१४५. 'राजन् ! मैंने रूप परिवर्तन द्वारा आपके स्वत्व की परीक्षा ली थी। आपके दर्शन द्वारा मेरे पाप क्षीण हो गये हैं। अब मैं जाती हूँ। स्वस्ति ! राजन् !'

कृतप्रतिश्रवे राज्ञि विहारकृतये पुनः ।
प्रहर्षोत्फुल्लनयना कृत्यादेवी तिरोदधे ।। १४६ ।।

१४६. राजा से विहार के पुनर्निर्माण का वचन लेकर प्रहर्षोत्फुल्लनयना कृत्या अदृश्य हो गयी।

'बौद्ध ग्रन्थों' के अनुसार महासम्मत शाक्यों के आदि राजा थे। महासम्मत से बुद्ध तक वंश कभी छिन्न नहीं हुआ था। वंशपरम्परा टूटी नहीं थी। वे सूर्यवंशी थे। उन्हें महासम्मत इसलिए कहा जाता था कि पृथ्वी पर जब अनाचार फैला तो जनता ने सर्व सम्मति से उन्हें राजा निर्वाचित किया था। महासम्मत के राज्य में ताड़ना, वहिष्कार, जुर्माना आदि दण्ड के प्रकार अज्ञात थे। एक मत है। महासम्मत मनु थे। श्रीलंका के राजा अपनी वंशावली महासम्मत से सम्बन्धित करते थे।

१४३ (१) प्रायश्चित्त : भगवान् बुद्ध की करुणा तथा क्षमा का वर्णन यहाँ कल्हण ने किया है। इन श्लोकों से प्रकट होता है। कल्हण ने स्वयं विहार उच्छेद के कार्यों को पसन्द नहीं किया था। राजा के चरित्र में कालिमा न लगे इसलिये उसने कृत्या द्वारा भगवान् स्वरूप बोधिसत्वों का सन्देश राजा को दिया। उसने दोष किया था। दोष किंवा पापों का निराकरण प्रायश्चित्त द्वारा हो सकता था। यदि विहार उच्छेद जैसे दोष के कारण मन स्ताप होगा तो वह भी दूर हो जायगा। प्रायश्चित्त का प्रकार भी कल्हण ने बताया है। जिसका नाश किंवा उच्छेद किया है उसे पूर्ववत् कर देने से दोष किंवा पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है।

कल्हण ने यहाँ यह भी प्रकट किया है। राजा के पास हेम सभार अर्थात् प्रचुर स्वर्ण भण्डार था। उसका कोश खाली नहीं था। पूर्ण था। वह सुयोग्य राजा था। कोश बल पूर्ण था। राजा स्वर्ण भण्डार का दान देकर दान के पुण्य का भागी बन सकता था। बौद्ध धर्म में दान का बहुत महत्त्व है। बौद्ध साहित्य में विहार, चैत्य, वन, शालादि निर्माण कराने वालों की बड़ी प्रशंसा की गयी है। भगवान् बुद्ध ने जेतवन निर्माणकर्ता अनाथपिण्डक, पूर्वाराम निर्माणकर्त्री विशाखा, जीवक वन निर्माण कर्ता जीवक आदि की बड़ी प्रशंसा की है। यहाँ कल्हण इसी दान की ओर संकेत करता है। बोधिसत्व उसके अपराधों को इस प्रकार क्षमा कर देंगे। इसे स्पष्ट रूप से यहाँ कहा गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४५ में 'पापा' का 'पापो' 'संवृता' का 'संजाता' पाठभेद मिलता है।

१४५ (१) स्वस्ति : कल्हण ने यहाँ वैदिक शब्द स्वस्ति का प्रयोग कृत्या से कराया है। वह महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध धर्म वेद की मान्यता नहीं देता। उसकी परम्परा में विशेष आस्था नहीं रखता। कश्मीर में बौद्ध धर्म, वैदिक परम्परा तथा तत्कालीन हिन्दू धर्म से इतना प्रभावित हो गया था कि दोनों में भेद नाम मात्र का रह गया था। बुद्ध को अवतार मान लेने पर रहा सहा भेद भी नष्ट हो गया था। स्वस्ति का अर्थ कल्याण है। स्वस्ति शब्द का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद (१:१:९;१:३५:१;२:३२:४;१०:८;३;३१:११;२:३८:१;३:३८:९) में मिलता है। स्वस्ति वाचन भारतीय परम्परा है। स्वस्ति का अर्थ जाति

अथ कृत्याश्रमं कृत्वा विहारं वसुधाधिपः ।
तत्रैव क्षीणतमसं कृत्यादेवीमसन्धयत् ॥ १४७ ॥

१४७. तत्पश्चात् -उस वसुधाधिप ने कृत्याश्रम[1] में विहार का निर्माण कराया। वहाँ क्षीण तमस कृत्या देवी की राजा ने उपासना[2] की।

मात्र का प्रतीक है। चाहे वे हिन्दू, ईसाई या कोई भी क्यों न हो।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४७ में 'श्रयं' का 'श्रये' 'मसन्ध-यत्' का 'मवन्दयत' पाठभेद मिलता है।

१४७ (१) कृत्याश्रम : बाहरमूला से पाँच मिल अधोभाग में वितस्ता के वामतट पर वर्तमान किरसहोम ग्राम प्राचीन कृत्याश्रम का स्थान है। चीनी पर्यटक ओं कुङ्ग (सन् ७५९-७६३ ई०) कश्मीर पर्यटन काल में इस स्थान को देखा था। उसका उल्लेख किया है। कल्हण ने इसका पुन: उल्लेख रा० ४.२८० में किया है। ओं कुङ्ग के अनुसार वह एक गाँव था। वारहमूला के समीप था। उसे किचाश्रम भी कहा गया है। ओं कुङ्ग ने इसे किल्चे नाम से सम्बोधित किया है। ओं कुङ्ग के पर्यटन काल में इस स्थान को किचा कहा जाता था। उसे उसने अपनी भाषा में किल्चे लिखा है।

श्री स्तीन यहाँ मई सन् १८९६ ई० में आये थे। यह ग्राम वितस्ता नदी तथा पर्वत वाहुमूल के मध्य स्थित है। यहाँ दो ग्रामीण मसजिदें बनी है। श्री स्तीन को मसजिदों के समीप कुछ अलकृत शिला खण्ड दिखायी पड़े थे। उनमें कुछ मूर्ति खुदे शिला खण्ड थे। उन्हें ग्राम के उत्तर ११५ वर्ग गज पर प्राचीर-अर्थात् दिवाल का आयताकार नीव चिन्ह मिला था। इस हाता के केन्द्र में श्री स्तीन को एक ऊँचा स्थान दिखाई दिया था। उसे वहाँ के लोग गद्दी कहते थे। हाता के बाहर दक्षिण पूर्व के कोने पर एक १५ फीट ऊँचा टीला अथवा ढूहा था। श्री स्तीन के मत से यह स्तूप का ध्वंसावशेष था। यहाँ पर और ध्वंसावशेष तथा पत्थरादि न मिलने का कारण स्तीन ने यह दिया है।

यहाँ की उपत्यका में पठान शासन काल में पूर्व दिशा में एक सीधी दिवाल किरसहोम से चौथाई मिल दूर पर बना दी गयी थी। इस दिवाल का अस्तित्व सन् १८३५ ई० तक था। बैरन श्री हुजेल इस ओर आये थे। इस दिवाल को नदी के पार से देखा था। यह दिवाल प्राचीन कृत्याश्रम के ध्वंसावशेष से प्राप्त पत्थरों से बनायी गयी थी। नवीन सड़क का निर्माण सन् १८८६ ई० के लगभग होने लगा। उक्त दिवाल कृत्याश्रम से प्राप्त पत्थरों और उक्त ढूहे से बहुत पत्थर लिये गये थे। यही कारण है कि राजा जलौक द्वारा निर्मित कृत्या-श्रम विहार का स्पष्ट चिन्ह नहीं मिलता। जो कुछ शिलाखण्ड शेष बच गये थे वे सड़क निर्माण में लग गये।

मैं यहाँ आ चुका हूँ। वारहमूला से उरी जाने वाली सड़क पर अनेक मन्दिर बायें पार्श्व में बने आज भी खड़े हैं। कुछ में तो छतें बिल्कुल नहीं हैं और कुछ पर टिन आदि की छतें लगा दी गयी हैं। दो एक टूटे मन्दिरों में मैंने दक्षिण भारतीय साधुओं को निवास करते हुए पाया। वे उन टूटे देवस्थानों में दीपक जलाते तथा पूजा करते थे।

मुझे किरसहोम अथवा कृत्याश्रम में स्तीन द्वारा वर्णित बातों के अतिरिक्त विशेष और देखने को कुछ नहीं मिला। यदि यहाँ खनन कार्य हो तो कुछ

विधाय सोऽश्मप्रासादं नन्दिक्षेत्रे क्षमापतिः ।
भूतेशाय समं कोशैः पूजां रत्नमयीं ददौ ॥ १४८ ॥

१४८. नन्दिक्षेत्र[1] में राजा ने अश्म प्रासाद भूतेश[2] निमित्त निर्माण कराया। उसने कोश के साथ ही साथ रत्नों[3] द्वारा भगवान् की विधिवत् पूजा की।

सामग्री मिल सकती है। इस समय यहाँ के समीपवर्ती क्षेत्र में सैनिक कैम्प लगे हैं। पाकिस्तान से रावलपिण्डी श्रीनगर आने वाली यही मुख्य सड़क है। इस सड़क पर बहुत लड़ाइयाँ हो चुकी है। उनके स्मारक भारतीय सुरक्षा विभाग ने स्थान-स्थान पर बनवा दिये हैं। यहाँ के शेष पत्थर आदि कुछ ही दिनों में विकास योजनाओं में लुप्त हो जायेंगे। ग्राम का प्राचीन रूप बदल गया है।

जलौक शैव था। जाति पाति हीन संघ एवं समाज की जो स्थापना बौद्धों द्वारा हो रही थी वह पुनः वर्णाश्रम आधारित समाज की ओर मुड़ रही थी, राजा शैव होने पर भी कृत्या के नाम पर कृत्याश्रम विहार की स्थापना किया था। निस्सन्देह वह विहार ग्यारहवीं शताब्दी तक कायम था। कल्हण के समय चाहे इसका पूर्व गौरव लुप्त हो गया था परन्तु विहार एवं स्तूप का आकार शेष था।

क्षेमेन्द्र अपनी पुस्तक समयमातृका (सन् १०५०) में नायिका कंकाली को इस विहार में ठहराता है। इससे भी स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र काल में वह विहार निवास करने योग्य था और उसका पूर्व गौरव लुप्त नहीं हुआ था।

थोप मूल ग्राम कृत्याश्रम के समीप है। जहाँ पर बौद्ध कालीन वस्तुएँ पाई जाती है। बारहमूला के समान कहा जाता है कि यहाँ भगवान् ने निवास किया था।

बारहमूला में कृत्याश्रम की ओर चलने पर हुस्कपुर, गान्दव विहार, आदि प्राचीन स्थानों के क्षेत्र मिलते हैं।

महाभारत में ऋषिकाश्रम एक तीर्थ का वर्णन मिलता है। अनुशासन पर्व में विस्तृत उल्लेख मिलता है। महाभारत तथा कल्हण वर्णित कृत्याश्रम दोनों ही जलाशय के पास थे। (म० अनु०; २५:२५)

महाभारत में कृत्या का उल्लेख मिलता है। दैत्यों ने आभिचारिक यज्ञ द्वारा एक राक्षसी को उत्पन्न किया था। वह आमरण अनशनकारी दुर्योधन को उठाकर रसातल ले गयी थी। (म. वन : २५१: २१-२०) भीष्म पर्व महाभारत में कृत्या नामक एक नदी का भी उल्लेख मिलता है। (९:१८) महाभारत वर्णित आश्रम तथा कृत्याश्रम दो भिन्न स्थान प्रतीत होते हैं। अनुसन्धान का विषय है।

(३) कृत्या उपासना : राजा की सहिष्णुता की यहाँ पराकाष्ठा दिखाई गयी है। जिस कृत्या ने राजा का मांस माँगा था, जिसने बौद्धों के उच्छेद से राजा को विरत किया था, जिसने राजा का स्वयं बोधिसत्व अर्थात् ईश्वर रूप दर्शन कर, तप क्षय किया था, उसे ही राजा ने देवी मानकर उसकी स्मृति में कृत्याश्रम विहार का निर्माण कराया था। राजा चाहे कट्टर वर्णाश्रम धर्मानुयायी क्यों न रहा हो, उसने इस घटना के पश्चात् अपनी उग्रता शिथिल कर दी थी। उसके विचारों में परिवर्तन हुआ था। अन्यथा जिस बौद्ध धर्म को उच्छिन्न करने पर तुला था, ठोस कदम उठाया था, उसी के प्रति आदर प्रकट कर विहार का निर्माण न कराता। इससे यह बात प्रकट होती है कि राजा सभी पन्थों के प्रति आदर करता था। आज कल के हिन्दुओं के समान सभी देवी देवताओं की उपासना तथा पूजा करने में संकोच नहीं करता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४८ में 'सोऽश्म' का 'सोम्य' 'समं' का 'क्षमा'; 'कोशैः' का 'कोरैः'; पूजा का 'प्रजां' पाठभेद मिलता है।

चीरमोचनतीर्थान्तर्गणरात्र तपस्यता ।
ब्रह्मासननिविष्टेन ध्याननिष्पन्दमूर्तिना ॥१४६॥

१४९. राजा ने ब्रह्मासनस्थ[1] होकर स्पन्दन हीन मूर्तिवत् चीरमोचन तीर्थ[2] में ध्यान रत होकर अनेक रात्रियाँ व्यतीत कीं।

पादटिप्पणियाँ :

१४८ (१) नन्दिक्षेत्र : पाद टिप्पणी पृष्ठ ७६ रा० त० १.३६ द्रष्टव्य है।

(२) भूतेश : पादटिप्पणी रा० त० १:१०७ पृष्ठ द्रष्टव्य है। यह भूतेश्वर के पूर्वोद्वीप समूह का मुख्य और बड़ा मन्दिर है।

(३) रत्न पूजा : कश्मीर शिव पूजा पद्धति में रत्न तथा मूल्यवान धातुओं को देवताओं पर चढ़ाने तथा उनसे पूजा करने का उल्लेख मिलता है। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। शिव लिंग पर सुवर्ण, रजत मुकुट अथवा रत्न जटित मुकुट, मेखला, माला, शेष नाग, जलद्रोणी, अर्घा, पंचपात्र, आरती आदि चढ़ाया जाता है। दक्षिण रामेश्वर में रत्न का एक भण्डार ही है। विभिन्न पर्वों में विभिन्न रत्नों तथा शृंगार विशेष से पूजा की जाती है। रामेश्वरादि दक्षिण के मन्दिर में इन रत्नों को यात्रियों को दिखाया भी जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४६ में 'चीर' का 'क्षीर'; निष्पन्द का नि स्पन्द, निस्पन्द पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४९ (१) ब्रह्मासन : कल्हण राजा के योग का वर्णन करता है। राजा को वीर, क्षमाशील, दानी तथा धर्म परायण अब तक चित्रित करता चला आया है। अब उसने राजा के योग का उल्लेख कर उसे योगी रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिक आसन ध्यान के लिये योगशास्त्रानुसार श्रेष्ठ कहे गये हैं। उनके स्थान पर ब्रह्मासन का उल्लेख किया गया है। ब्रह्मासन वह योगी लगाता है जो ब्रह्मा का ध्यान करता है। राजा शैव था। विष्णु के अवतार बुद्ध के प्रति भक्ति होने के कारण विष्णु भक्त तथा अन्तिम काल में उसने ब्रह्मासन लगा कर ब्रह्मा की उपासना की। ब्रह्मा का ध्यान किया जो विश्व का कर्ता है। समस्त जीवन उसने विष्णु के अनुरूप रक्षा का कार्य किया, शिव गुण के अनुरूप संहार का भी कार्य किया। जीवन के अन्तिम अध्याय में उसने जगत कर्ता ब्रह्मा का ध्यान किया।

योग में ध्यान की मुद्रा मेरुदण्ड को सीधा रखकर ध्यान लगाना है। मेरु दण्ड सीधा होने पर इड़ा और पिंगला नाड़ियों से प्राण संचार बन्द हो कर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है। सुषुम्ना में प्राण संचार के कारण योगी का ध्यान लगता है। वह वायुहीन तैल दीप की ज्योति के समान कम्पनहीन हो जाता है। वह इस ध्यान मुद्रा में आत्मा का साक्षात्कार करता है। वह विदेह स्थिति प्राप्त करता है। वह आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को समझ जाता है। वह आत्मानुभूति में रम जाता है। स्थूल जगत् से ऊपर उठता है। उसे सविकल्प के पश्चात् निर्विकल्प समाधि लग जाती है। राजा अनेक रात्रियाँ तक निस्पन्द बैठा रहा। इसका स्पष्ट अर्थ है। वह समाधि में ध्यानस्थ था। वह दृश्य, दर्शन, द्रष्टा, की स्थिति से ऊपर उठकर एकाकार हो गया था। वह कर्ता, कार्य, कारक की स्थिति से ऊपर उठ गया था। वह भौतिक जगत् की सीमा पार कर आध्यात्मिक जगत् में विचरण करता था। वह भूताकाश, चित्ताकाश की स्थिति से चिदाकाश की स्थिति में आ गया था। वह कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के प्रपंच एवं बन्धन को तोड़ कर मुक्त हो चुका था। वह ब्रह्मासन पर बैठकर ब्रह्मा में लीन होना चाहता था। ब्रह्मा के कारण

उसकी रचना हुई थी यह उसी सर्जक ब्रह्मा के पास पुनः लौट कर मुक्त होना चाहता था।

(२) चीरमोचन : नीलमत पुराण के आधार पर कहा जा सकता है कि चीरमोचन तीर्थ कनकवाहिनी नदी के समीप कहीं था। नीलमत पुराण (श्लोक १३२५–१३२८) से चीर मोचन तीर्थ के स्थान के सम्बन्ध में एक सूत्र मिल जाता है उससे स्थान का पता लगाया जा सकता है। श्रीस्तीन ने भी इस सम्बन्ध में प्रयास किया है। उन्होंने भी इस तीर्थ के सम्बन्ध में अनुमान लगाया है।

चीरमोचन तीर्थ का नामकरण सप्तर्षियों के *'चीराणि' अर्थात् वल्कल वस्त्र के कारण पड़ा था।* इस तीर्थ पर सप्तर्षि गण अपना चीर त्याग कर स्वर्गारोहण किये थे।

नन्दि क्षेत्र माहात्म्य स्पष्टतया कनकवाहिनी नदी *का सम्बन्ध चीरमोचन तीर्थ से जोड़ता है।* श्री स्तीन जिस समय कश्मीर का पर्यटन कर रहे थे उस समय कश्मीर के पण्डितों को चीरमोचन तीर्थ का ज्ञान नहीं था। लम्बे काल एवं लम्बे मुसलिम शासन *के कारण अन्य तीर्थों के समान वह स्थान भी लोग* भूल चुके थे। हरमुकुट के पुरोहितों से भी श्री स्तीन ने जिज्ञासा की थी। परन्तु वे भी कुछ प्रकाश नहीं डाल सके थे।

नीलमत पुराण तीर्थों में स्नान के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए कनकवाहिनी और सिन्धु-संगम का उल्लेख श्लोक संख्या १३२५ में किया है। श्लोक संख्या १३२६ में पावन तथा रजोविन्द नदियों में स्नान करनेवाला पुण्डरीक तथा राजसूय फल का भागी होता है कहा गया है। श्लोक संख्या १३२७ में नीलमत पुराण कहता है कि वहाँ से चीरमोचन तीर्थ तक विस्तृत क्षेत्र वाराणसी के समान पवित्र है। श्लोक संख्या १३२८ में चीरमोचन का उल्लेख करता पुराण कहता है। चीरमोचन का पवित्र स्थान स्वर्ग मार्ग प्रशस्त करता है। वहाँ पर सभी तीर्थ उपस्थित रहते हैं। श्लोक संख्या १०२६ में नामकरण का कारण उपस्थित करता है—वहीं सप्तर्षि अपना चीर त्याग कर स्वर्गारोहण किये थे। वहाँ स्नान करने पर पापी भी स्वर्ग गमन करते हैं। श्लोक संख्या १३३० में सोदर तीर्थ का उल्लेख किया गया है।

तयोः समागमे पुण्यं राजसूयफलं स्मृतम्।
तस्माद्देशादथारभ्य यावत्स्याच्चीरमोचनम्॥
॥ १५४१ ॥

स्वर्गमार्गप्रदं प्रोक्तं तीर्थं चीरप्रमोचनम्।
दिवमुत्सृज्य चीराणि यत्र सप्तर्षयो गताः॥
॥ १५४३ ॥

नीलमत के अनुसार कनकवाहिनी सिन्धु तत्पश्चात् पावन एवं रजोबिन्दु नदियों के बाद और सोदर तीर्थ के मध्य कहीं चीरमोचन तीर्थ होना चाहिए।

दूसरा सूत्र इस स्थान का पता लगाने का यह मिलता है कि यह स्थान कनकवाहिनी नदी के समीप था। वशिष्ठाश्रम अर्थात् वंगथ चीरमोचन के ऊपर कनकवाहिनी के तट पर था। सप्तऋषियों में एक ऋषि वशिष्ठ भी हैं। चीरमोचन में सप्तऋषियों ने स्वर्गारोहण किया था यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

राजा जलौक भूतेश का उपासक था। नन्दिक्षेत्र *का उसके जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था।* चीरमोचन *से भूतेश्वर सीधे मार्ग से लगभग १० मिल और* वशिष्ठाश्रम लगभग आठ मिल पड़ता है। क्या कारण है। राजा ने अपने प्रिय स्थान भूतेश्वर में जाकर तपस्या नहीं की। उसने चीरमोचन तीर्थ ही तपस्या निमित्त क्यों चुना ?

श्री स्तीन ने इस विषय में यथेष्ठ परिश्रम तथा अनुमान लगाया है। हरमुकुट गंगा 'माहात्म्य में कनकवाहिनी नदी का नाम करंक नदी दिया है। करंक तीर्थ को करंक ग्राम के समीप बताया गया है। हरमुकुट सर की यात्रा के पूर्व इस तीर्थ में आना आवश्यक माना गया है। श्री स्तीन को पुरोहितों

से मालूम हुआ था। यह स्थान प्रंग ग्राम के नीचे सिंधु नदी के दक्षिण तट पर था। यह एक छोटे गाँव लर्री के समीप है। प्रंग ग्राम के कुछ मकानों के पश्चात् एक छोटी धारा कनकवाहिनी की मुख्य धारा से शाखा रूप वारबुल के समीप फूट कर सिन्धु नदी में मिलती है। इस संगम स्थान पर करंक तीर्थ में विहित श्राद्ध किया जाता है। यह स्थान प्राचीन चीरमोचन तीर्थ श्री स्तीन ने माना है। उन्होंने इसका कारण उपस्थित किया है। उनका मत है कि हरमुकुट माहात्म्य प्राचीन ग्रंथ नहीं हैं। उसमें ग्रामों तथा स्थानों के नवीन नाम मिलते हैं। वे प्राचीन नामों के अपभ्रंश हैं। उसमें भूतेश्वर का नाम बोधेश्वर दिया गया है। अमरेश्वर का नाम अम्बो-रह बना दिया गया है। वह वर्तमान अम्बुरहर है। कनकवाहिनी नदी का नाम करंक नदी दिया गया है। उसका वर्तमान नाम कंकनी नदी हो गया है। इसी प्रकार प्राचीन चीरमोचन का नाम करंक हो गया है।

नालमत पुराण, नन्दि क्षेत्र माहात्म्य तथा राज-तरंगिणी चीर मोचन का उल्लेख कनकवाहिनी के समीप करती हैं। करंक तीर्थ के विषय में वे चुप हैं। दूसरी तरफ हरमुकुट माहात्म्य जिसमें चीर-मोचन तीर्थ का उल्लेख नहीं है। करंक तीर्थ को कंकनी नदी के समीप बताता है।

नीलमत पुराण इस स्थान का तथा क्षेत्र का निश्चित पता देता है। मैं वहाँ पर आया था। मुझे वहाँ कोई प्राचीन चिन्ह नहीं प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह तर्क उठा था। जलौक ने तपस्या निमित्त इस स्थान को क्यों चुना था? राजा ने भूतेश्वर जैसे दुर्गम स्थान में जाना पसन्द न किया होगा। दोनों स्थान देखने पर निस्सन्देह वर्तमान चीरमोचन का स्थान अधिक शात मालूम होता है। भूतेश्वर में कनकवाहिनी का कलकल उग्र निनाद होता रहता है। स्थान उत्तुङ्ग पर्वत से आवृत है। तेज पर्वतीय हवा चलती है। भयंकर तुषारपात होता है। जंगली जन्तुओं का उपद्रव आज की अपेक्षा उस समय और अधिक रहा होगा।

यह स्थान राजधानी श्रीनगर से लगभग पन्द्रह मिल दूर है। श्रीनगर से चीरमोचन तक का मार्ग पहाड़ी नहीं बल्कि समथर है। दिन में आसानी से व्यक्ति श्रीनगर से घोड़े से पहुँच और लौट सकता था। वह स्थान श्रीनगर के धुर उत्तर है। वहाँ से वितस्ता सिंधु संगम अर्थात् प्रयाग लगभग बीस मिल दक्षिण पश्चिम पड़ता है। काश्मीरी राजाओं का दाह प्रयाग में होना पुण्य माना जाता रहा है। आज भी यह प्रथा प्रचलित है। काश्मीरी ब्राह्मण या तो यहाँ फूँका जाना पसन्द करते हैं अथवा उनका अस्थि विसर्जन यहाँ किया जाता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी ब्राह्मण थे। उनके भस्म के एक भाग का यहाँ प्रवाह किया गया था।

राजा जलौक ने अपने स्वर्गारोहण निमित्त यह स्थान उपयुक्त ही चुना था। स्थान राजधानी तथा दाह स्थान दोनों से दूर थे। काल की दिशा दक्षिण समझी जाती है। चीरमोचन से प्रयाग संगम दक्षिण दिशा की ओर पड़ता है। स्वर्गारोहण के लिये उत्तर दिशा श्रेष्ठ मानी गयी है। पाण्डवों ने उत्तर दिशा में ही गमन किया था। भगवान् बुद्ध राजगृह से उत्तर दिशा कुशीनगर में आये थे। राजा जलौक स्वर्गारोहण निमित्त अपना राजप्रासाद त्याग कर उत्तर दिशा चीरमोचन पहुँचा था।

राजाने प्रतीत होता है। इच्छामृत्यु प्राप्त की थी। योग एवं ध्यान के लिये उस काल में जब चीर-मोचन में आबादी न रही होगी, स्थान शान्त, प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों उपद्रवों तथा कोलाहलों से दूर था। वह भूतेश्वर जैसे घोर पर्वतीय एवं श्रीनगर जैसे जनाकीर्ण स्थानों के मध्य में था। वह स्थान ध्यान, योग एवं समाधि के लिए उपयुक्त था।

सर्प्तर्षियो ने चीरमोचन मे स्वर्गारोहण किया था। वशिष्ट ब्रह्मा के पुत्र है। राजा ने ब्रह्मासन लगाया था। ब्रह्मा की उपासना की थी। चीरमोचन स्थान

राज्ञा कनकवाहिन्याः सुचिरात्पुण्यकर्मणा ।
नन्दीशस्पर्शनोत्कण्ठा तेनानीयत कुण्ठताम् ॥ १५० ॥

१५०. उस पवित्र पुण्यात्मा राजा की कुछ समय पश्चात् नन्दीश स्पर्श की प्रबल उत्कण्ठा कनकवाहिनी[२] नदी के कारण कुण्ठित हो गयी ।

सप्तर्षियों के स्वर्गारोहण के कारण पवित्र माना जाता था । अतएव ऐसे पुण्य स्थान का चयन भावना तथा विवेक दोनों दृष्टियों से राजा ने उचित ही किया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४९ मे 'कनकवाहिन्याः' का 'कनकवाहिन्या', 'स्पर्शनो' का 'स्पर्धनो' तथा 'कुण्ठताम्' का पाठभेद 'कुण्ठनाम्' और 'कुण्डनाम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१५० (१) श्लोक १५० : यह श्लोक कुछ स्पष्ट नही है। इसका अर्थ बैठता नही । कनकवाहिनी के कारण राजा की उत्कण्ठा क्यों कुण्ठित हुई समझ मे नही आता ।

श्री स्तीन ने उक्त श्लोक को पादटिप्पणी मे श्लोक को स्पष्ट करने के लिए एक और अर्थ किया है—राजा ने अपनी तपस्या द्वारा कनकवाहिनी नदी की नन्दीश के स्पर्श की इच्छा धीरे-धीरे शिथिल कर दिया ।

मैं इसका अर्थ यह लगाता हूँ कि राजा स्वयं अवतार था । नन्दीश स्वरूप हो गया था । कनक-वाहिनी नदी नन्दी क्षेत्र से प्रवाहित होती आती है । उसने राजा के ही तपस्या के कारण नन्दीश स्वरूप समझा । अतएव कनकवाहिनो नदी को नन्दीश स्पर्श की कामना नहीं रह गयी । यदि इसका अनुवाद वाला उक्त अर्थ मान लिया जाय तो उसका भाष्य यही किया जा सकता है कि राजा अपनी तपस्या के कारण इस स्तर पर पहुँच गया था कि उसकी नन्दी स्पर्श की उत्कण्ठा कनकवाहिनी के कारण इसलिये कुण्ठित हो गयी थी कि कनकवाहिनी नन्दी क्षेत्र का स्पर्श करती नित्य प्रति चली आ रही थी । वह राजा कनकवाहिनी में स्नान कर, उसके समीप तपस्या कर स्वयं अनुभव करता रहा कि प्रत्येक जल बिन्दु नन्दिक्षेत्र से स्पर्श करते चले आ रहे है । उनके माध्यम से नन्दीश का स्पर्श कर चुका है । एतदर्थ नन्दीश स्पर्श की की कामना तिरोहित हो चुकी थी । वह तपस्या के कारण नन्दीश का सांनिध्य प्राप्त कर चुका था ।

(२) कनकवाहिनी : नीलमत पुराण (श्लोक १३३०—१३३१) इस नदी का स्थान निश्चित कर देता है । चीरमोचन के पश्चात् श्लोक संख्या १३३० मे नीलमत सोदर तीर्थ के स्नान का महत्व बताता है । तत्पश्चात् श्लोक संख्या १. १३३१ में कनकवाहिनी तथा कालोदया नदी के संगम में स्नान करने का उल्लेख करता है ।

संयोगं सिन्धुना यत्र गता कनकवाहिनी ।
गोसहस्रम् प्राप्नोति धनवानपि जायते ॥
॥ १५३९ ॥

तथा कनकवाहिन्या संगमं याति यो नरः ।
तथा कालोदया पुण्या नदी यत्रैव संगता ॥
॥ १५४० ॥

स्नात्वा तत्र दिवं यान्ति येऽपि पापकृतो नराः ।
सोदरे तु नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥
॥ १५४१ ॥

एकमत है कि नीलमत वर्णित हिरण्या नदी ही कनकवाहिनी नदी है । 'हरिण्यिनी पुण्यजला नाम्ना' यह स्रोतस्विनी भूतेश्वर के नीचे से बहती है । इसे आजकल कंकनी अथवा ककनई नदी कहते है ।

ह्लादोदयान्नृत्तगीतक्षणे नर्त्तितुमुत्थितम् ।
प्रददौ ज्येष्ठरुद्राय सोऽवरोधवधूशतम् ॥ १५१ ॥

१५१. ज्येष्ठ रुद्र[1] के नृत्य एवं गान[2] के समय अन्तःपुर की स्त्रियों को नृत्य एवं गान निमित्त खड़ीं होती देखकर आह्लादित राजा ने एक शत स्त्रियां ज्येष्ठरुद्र को दे दीं।

भूतेश्वर के ऊपर अर्थात् उत्तर तरफ अनेक नाग पडते है।उनमें ब्रह्मसर भी एक नाग पडता है उसके ऊपर कालोदक है। हरमुकुट गंगा का यह अन्तिम तीर्थ स्थल है। प्रति वर्ष भाद्रपद में तीर्थ यात्रा काल पड़ता है। वर्ष में जो लोग दिवंगत होते हैं, उनका अस्थि प्रवाह भी इसमें किया जाता है। इस सर के कुछ नीचे एक दूसरा सर है। उसे कालोदक कहते हैं। नन्दीसर भी उसकी एक संज्ञा है। माघा है। काल तथा शिव दोनों का यह निवास स्थान था। यही शिव के नन्दी भी रहते थे। कनकवाहिनी नदी में इनका तथा हरमुकुट पर्वत के पूर्व तथा दक्षिण पूर्व का जल कनकवाहिनी में आता है। नीलमत पुराण के अनुसार कनकवाहिनी का प्रवाह सोदर तीर्थ के दक्षिण है। यह काश्मीर का मानचित्र देखने से स्पष्ट होता है। वह उत्तर से बहती आती है। भूतेश्वर के समीपस्थ भूखण्ड का स्पर्श करती नीचे बहती दक्षिण की ओर चली जाती है। यदि सोदर अर्थात् नरनाग अथवा भूतेश्वर मन्दिर पर खड़े होकर देखें तो इन स्थानों के पूर्वीय अंचल का स्पर्श करती भयंकर गर्व में ,बहती दक्षिण दिशा की ओर चली जाती है। कनकवाहिनी में हरमुकुट के गंगा सरोवर अर्थात् गंगबल और पवित्र नन्द कोल के जलस्रोत आकर मिलते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५१ में 'न्नृत्त' का 'न्नृत्य' तथा 'सोऽवरोध' का पाठभेद 'स्वावराध' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५१ (१) ज्येष्ठरुद्र वादटिप्पणी १.११३ द्रष्टव्य है।

(२) नृत्य एवं गान : मन्दिरों में देवताओं के सम्मुख नृत्य एवं गान निमित्त स्त्रियों की नियुक्त करने की प्रथा कश्मीर में प्राचीन काल से प्रचलित थी। गान तथा नृत्य वंश परम्परा गत भी चलता था। देव दासी प्रथा दक्षिण भारत की तरह इस समय कश्मीर में प्रचलित नही थी परन्तु स्त्रियाँ स्वतः अपने को देवता पर अर्पित कर देती थी। नृत्य एवं संगीत कार्य पेशेवर स्त्रियों तक सीमित नहीं था। मन्दिरो तथा देवालयों में घर गृहस्थों की भी स्त्रियाँ नृत्य एवं गान में भाग लेती थी।

कल्हण ने (रा० त० ४:२६९—२७०) राजा ललितादित्य के प्रसंग में वंशानुगत नृत्य एवं गान की प्रथा का वर्णन किया है। राजा ललितादित्य को एक वन में युवतियाँ नाचती और गाती दिखायी पडी थी। राजा ने उनसे उस एकान्त स्थान मे नृत्य एवं गान का कारण पूछा। युवतियों ने राजा को सूचित किया कि इस स्थान पर अनादि काल से उनके कुटुम्ब की कन्या किंवा युवतियाँ निश्चित समय पर आती थी। नाचती थीं। गाती थी। पुनः चली जाती थीं। राजा चकित हुआ। वहाँ उनका नृत्य तथा गान सुनने अथवा देखने वाला कोई नही था। प्रसंग वश उसे मालूम हुआ था। वहाँ कोई देव स्थान कभी था। राजा को कौतूहल हुआ। उसने उस स्थान पर खनन कार्य किया। भूमि के नीचे केशव का मन्दिर मिला। वह शताब्दियों से वही भूमिस्थ हो गया था। अथवा मिट्टी पड़ते-पड़ते वह छिप गया था।

वहाँ मन्दिर था। वह परम्परा किंवा जनश्रुति चली आ रही थी। जिस कुटुम्ब के लोग मन्दिर में गाते तथा नाचते रहे वे मन्दिर के भूमि में लोप

भुक्त्वैश्वर्यं स पर्यन्ते प्रविष्टश्चीरमोचनम् ।
पत्न्या समं ययौ राजा सायुज्यं गिरिजापतेः ॥ १५२ ॥

१५२. ऐश्वर्य भोगकर राजा ने चीरमोचन में अपनी पत्नी[1] के साथ प्रवेश किया। पत्नी सहित उस राजा ने गिरिजापति के साथ सायुज्य[2] प्राप्त किया।

हो जाने पर भी नियमतः नृत्य एवं गान की परम्परा का निर्वाह करते चले आ रहे थे।

इसी तरंग के छत्तीसवें श्लोक में नोण वणिक् का वर्णन मिलता है। उसने अपनी पत्नी को मन्दिर में गान एवं नृत्य निमित्त दान कर दिया था।

कश्मीर में नृत्य एवं संगीत कला पुरा काल से ही विकसित थी। राजा स्वयं नृत्य एवं संगीत में भाग लेते थे। इस तरंग के श्लोक ४२३ से पता चलता है कि राजा जयापीड ने भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र का अध्ययन किया था। वह नृत्य तथा संगीत का विद्वान् था।

काश्मीर का राजा हर्ष स्वयं संगीत एवं नृत्य विशारद था। उसके रचित गीत जनता गाती थी। राजा स्वयं नृत्य एवं संगीत की शिक्षा लोगों को देता था। युवराज काल में ही वह अपने पिता राजा कलश की राज्य सभा में गीत की रचना करता था। उन्हें स्वयं गाता था।

तरंग (७०६—७१०) में मदिरालय में वृद्धा वेश्या के नाचने का उल्लेख मिलता है। कर्णवती नर्तकी का उल्लेख (रा. त. ७ : १४६० में) मिलता है। कश्मीर की राजसभा के गायक तथा नर्तकी समाज में विशिष्ट स्थान रखते थे। उनकी तुलना यूनान के हेइटेरा वर्ग से की जा सकती है।

कश्मीर में नृत्य, संगीत तथा काम कला बहुत विकसित थी। कुट्टनीमत जैसे ग्रन्थों का समाज में स्थान था। उसका रचनाकार स्वयं राजा जयापीड का मंत्री दामोदर गुप्त था। उसके अध्ययन से कश्मीर के उत्साहपूर्ण, उल्लासपूर्ण, उमंगपूर्ण, आह्लादपूर्ण मस्त जीवन की एक झाँकी मिलती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५२ में 'प्रविष्टश्चीर' का पाठभेद 'प्रतिष्ठं चीर' तथा 'प्रविष्टश्री' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५२. (१) पत्नी : कल्हण ने राजा का चरित्र पवित्रता तथा धार्मिक प्रवृत्ति से पूर्ण कर दिया है। कल्हण यहाँ केवल एक ही पत्नी का उल्लेख करता है। प्रतीत होता है। राजा एक पत्नीव्रतधारी था। उसका आचरण अनुकरणीय था। पत्नी भौतिक सुख त्याग कर पति के साथ चीरमोचन तीर्थ में स्वर्गारोहण निमित्त आयी थी। पति का जीवन पर्यन्त साथ दिया था। अन्तिम समय में भी साथ दिया। वह लोक में साथ थी। परलोक साथ गयी।

पति के साथ पत्नी सती हुई इसका उल्लेख नहीं मिलता है। यदि वह सती होती तो कल्हण उसका अवश्य उल्लेख करता। राजा ने जिस प्रकार अन्तिम काल में योग का आश्रय लिया और इच्छा मृत्यु प्राप्त की। उसी प्रकार पत्नी ने भी मृत्यु प्राप्त किया होगा। राजा मृत्यु के आलिंगन की प्रबल उत्कण्ठा से चीरमोचन तीर्थ में प्रविष्ट हुआ था। श्रीनगर राजप्रासाद में भौतिक प्रसाधनों के मध्य मरना उसे अच्छा नहीं लगा। वह सप्तर्षियों के समान स्वेच्छया स्वर्ग जाना चाहता था। कल्हण इसी ओर संकेत करता है कि राजा अपनी पत्नी के साथ सायुज्य प्राप्त किया।

(२) सायुज्य : पाँच प्रकार की मुक्तियों में यह एक प्रकार की मुक्ति है। एक दूसरे में इस प्रकार मिल जाता कि परस्पर किसी प्रकार का भेद न रह जाय इस प्रकार की मुक्ति को सायुज्य कहते हैं।

कल्हण ने यहाँ शिव, शंकर, महादेव का नाम न लेकर गिरिजापति का नाम लिया है। यह विशेष महत्त्व रखता है। कल्हण संकेत करता है। राजा और रानी दोनों ने शरीर विसर्जन कर सायुज्य प्राप्त किया। इसलिये कल्हण ने कवि दृष्टि से गिरिजापति अर्थात् शिव शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। पत्नी पति की अर्द्धांगिनी होती है। इसी से अर्धनारीश्वर की कल्पना की गयी है। शिव का शरीर पत्नी एवं पति दोनों का योग अर्थात् अर्धनारीश्वर है। एक भाग शिव तथा दूसरा भाग पार्वती का है। गिरिजा और पति दोनों मिलकर शिव हुए हैं। अतएव राजा जलौक अपनी पत्नी के साथ सायुज्य प्राप्त किया। अर्थात् शिव में मिल कर एकाकार हो गया। मुक्त हो गया। राजा का अंश शिव तथा पत्नी का अंश गिरिजा में मिलकर एक ही अर्धनारीश्वर के शरीर में साथ ही विलीन हो गये। पुरुष मिल गया पुरुष भाग में और स्त्री मिल गई स्त्री भाग में।

सायुज्य शब्द का प्रयोग कल्हण ने बहुत समझ और तौलकर यहाँ किया है। राजा ब्रह्मासन पर बैठा था। उसे ब्रह्मलीन होना न कहकर गौरीपति अर्थात् शिव में सायुज्य प्राप्त करना लिखता है। ब्रह्मलीन केवल ऋषि तथा ब्राह्मणों का होना पुरानी परम्परा के अनुसार कहा गया है। राजा जलौक ब्राह्मण नहीं था। राजर्षि था। ऋषि नहीं था। अतएव कल्हण पुरानी परम्परा का निर्वाह करते हुए सायुज्य का उल्लेख करता है। कल्हण स्वयं शैव था अतएव उसकी दृष्टि में शिव के सायुज्य को विशेष महत्त्व था।

मूल्यांकन:

जलौक का चरित्र चित्रण भारतीय इतिहास में शून्यवत् है। उसका उल्लेख सर्वत्र अशोक के एक पुत्र के सन्दर्भ में किया गया है।

राजा जलौक का चरित्र इतना महान् एवं आदर्श है कि उसके जैसे चरित्रवान राजा विश्व में इने गिने मिलेंगे।

कल्कि अवतार का वर्णन पुराणों में मिलता है। म्लेच्छों के नाश तथा धर्म के पुनःस्थापना निमित्त कल्कि अवतार होने की भविष्यद् वाणी की गयी है। कल्कि के काल्पनिक रूप एवं क्रिया कलाप से जलौक का क्रिया कलाप मिलता है। सम्भव है जलौक का ही कल्कि अवतार की कल्पना रूप में चित्रण किया गया हो। परन्तु इस विवाद में यहाँ पड़ना उचित नहीं है। जलौक कल्कि अवतार के समान महान् सेनानी था। उसने म्लेच्छों से भूमि से विहीन किया। कल्हण के शब्दों में वह स्वयं अवतार था। बौद्धों के शब्दों में वह बोधिसत्त्व था। तत्कालीन सनातन धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों मतावलम्बियों ने उसे अवतार चाहे न भी हो अवतार के समकक्ष माना है।

जलौक महान् सेनानी के अतिरिक्त, आदर्श राजा, विद्वान्, द्रष्टा, संघटनकर्ता, चरित्रमान, उदार, सहिष्णु, सरल, धर्मभीरु, दानी, एक पत्नीव्रतधारी, कर्मठ एवं योगी था। उसने इच्छा मृत्यु पाकर, स्वयं योग द्वारा शरीर त्याग कर, अपनी श्रेष्ठता तथा अलौकिकता की छाप लगायी है।

राजा ने विदेशियों से कश्मीर मण्डल को मुक्त किया। कश्मीर की सैनिक शक्ति का संघटन किया। उसने कश्मीर वीरों को फौलाद की दीवाल तुल्य बना दिया। उन्हें विश्व के यूनानी जैसे वीर सैनिकों के सामने खड़ा कर दिया। वह राज्य पाकर बैठा नहीं रहा। ऐश्वर्य में डूबा नहीं। उसने एक विश्व कर्मशील राजा तुल्य अस्त्र उठाया। अभियान किया। भूखण्ड विजय किया। किन्तु उपनिवेशवाद का वरण नहीं किया। उसने विजय करने के पश्चात् भी कश्मीर मण्डल के अतिरिक्त अन्य भूखण्डों पर राज्य नहीं किया। उन्हें अपने राज्य में सम्मिलित नहीं किया। उनमें मित्रता स्थापित की। जिनका राज्य था उन्हीं को वहाँ रहने दिया।

उसने कश्मीर का सामरिक एवं सुरक्षा दृष्टि से अध्ययन किया। चतुर सेनापति के समान वह समझ गया। कश्मीर की सुरक्षा उसके संकट या द्वार

अर्थात् दर्रों की रक्षा पर अवलम्बित है। यह प्रथम कश्मीरी राजा था जिसने एक ठोस सैनिक नीति की स्थापना की। उसने भविष्य के राजाओं को चेतावनी दी जबतक कश्मीर के द्वारों की दृढ़ता पूर्वक रक्षा होती रहेगी, कश्मीर की स्वतन्त्रता कायम रहेगी।

राजा ने द्वारों अर्थात् दर्रों की मोर्चेबन्दी की। वहाँ सैनिक चौकियाँ तथा शिविर स्थापित किया। और उसकी रानी ईशान देवी ने द्वारों की रक्षा के निमित्त आध्यात्मिक शक्ति मातृ चक्रों की स्थापना की। यदि पति ने भौतिक शक्ति को उत्साहित किया तो पत्नी ने आध्यात्मिक शक्ति का कश्मीर मण्डल की रक्षा के लिये आश्रय लिया।

वह धर्म निरपेक्ष किंवा लौकिक राजा था। उसने सभी धर्मों के प्रति समभाव रखा। बौद्धों के प्रति उसका रोष स्वाभाविक था। बौद्धों का संघटन, राष्ट्र के प्रति निस्संकोच निष्ठा भावना का अभाव, प्रारम्भ में उसे उनका विरोधी बना दिया था।

उसने सनातन धर्म की पुन स्थापना की। कल्कि अवतार तुल्य उसने सनातन धर्म का कश्मीर मण्डल में उद्धार किया। परन्तु समय आते ही वह सहिष्णु हो गया।

कृत्या के साथ हुआ उसका संवाद उसके चरित्र को ऊपर उठा देता है। वह बौद्धों के प्रति झुकता है। उनके विहारों की स्थापना करता है। उनके प्रति क्रोध, उग्र व्यवहार सबको तिरोहित कर देता है। स्वमास देने की घटना उसे पौराणिक आदर्श राजाओं की श्रेणी में बैठा देती है।

राजा लोकप्रिय था। लोकनायक था। लोक वीर था। अनेक लोकविजेता था। लोकनाथ था। अनेक लोक प्रिय गाथाएँ उसके जीवन के साथ सम्बन्धित कर दी गयी थी। उसकी महानता प्रमाणित करने के लिये अनेक अलौकिक घटना पूर्ण गाथाएँ उसके नाम के साथ जोड़ दी गयी हैं।

राजा ने कश्मीर मण्डल को ऊपर उठाया। तत्कालीन ऐतिहासिक जगत् में उसका स्थान बनाया। उसने अनेक उपनिवेश कश्मीर मण्डल मे बसाये। जनजीवन को उन्नत किया। समाज को विकसित करने के लिये विद्या का आश्रय लिया। जनता में नव चेतना एवं स्फूर्ति का संचार किया। उसने कश्मीर मण्डल में नव क्रान्ति की। जिसने कश्मीर जीवन में एक नवीन प्रेरणा का सूत्रपात किया। निष्क्रियता से लोगों को उठाकर कर्मशीलता की ओर प्रेरित किया।

राजशास्त्र का राजा विद्वान् था। राजशास्त्र का अध्ययन किया था। यह उसके प्रशासनिक सुधारों से स्पष्ट प्रतीत होता है। उसने रूढ़ एवं जड़ता प्राप्त प्राचीन शासन पद्धति में आमूल परिवर्तन किया। उसे समयोपयोगी बनाया। शासन के ढाँचे को वैज्ञानिक ढंग पर ढाला। शासन पद्धति का नवीनीकरण किया। पुनःसंघटन किया। शासन को जनता के लिए उपयोगी बनाया। जनता की सुविधा, कार्यों की सरलता, समृद्धि का ध्यान रखते हुए राज्ययन्त्र को सुशासित, समयोपयोगी एवं सुनियोजित किया।

अशोक ने भेरी घोष के स्थान पर धर्म घोष किया था। उसके पुत्र जलौक ने भेरी घोष किया, धर्मघोष किया और विवेक घोष का आश्रय लिया। उसने अपना जीवन एकांगी नहीं बनाया। उसने अपने जीवन को राज्योपम सन्तुलित रखा। किसी का त्याग, किसी का नितान्त विसर्जन, किसी का सम्पूर्ण ग्रहण, उसने नहीं किया। राज्य के लिए, लोक के लिये, जब जिस समय, जो उपयोगी सिद्ध हुआ, उसे एक राजर्षि तुल्य निस्संकोच ग्रहण किया।

सन्त अवधूत ने अपने पाण्डित्य से बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। लोक ने इस खण्डन मण्डन से स्वयं निष्कर्ष निकाला। अपना मार्ग सुनिश्चित किया।

शैवमतावलम्बी होते हुए भी वह सहिष्णु था। कृत्या की घटना से स्पष्ट करती है। बौद्धों के प्रति जो भी कुछ विरोधी भाव था उसे वर्णाश्रम धर्म प्रचार भावना की प्रबलता होते ही क्षण मात्र में त्याग दिया। उसने विनष्ट विहारों का पुनर्निमाण, राजकोश

से कराया। उसने मिथ्या राजकीय मान एवं प्रतिष्ठा का आश्रय नही लिया। बौद्धो के प्रति आदर का भाव प्रकट किया। वर्णाश्रम धर्मप्रचारार्थ शक्ति का आश्रय नही लिया। शास्त्रार्थ द्वारा मत परिवर्तन के लोक तान्त्रिक प्रणाली का अनुकरण किया।

राजा के विरोधी बौद्धो ने अन्त में उसे स्वयं बोधिसत्त्व मानकर आदर किया। उसे सर्वश्रेष्ठ उपाधि किंवा पद, जो बौद्ध जगत् में हो सकता था, दिया। विश्व में इस प्रकार के कम उदाहरण मिलते हैं जहाँ अपने विरोधियों से इतना आदर एक व्यक्ति ने पाया है।

विश्व में अपनी जनता का जितना विश्वास तथा आदर राजा जलौक ने पाया है उस तरह के उदाहरण कम मिलते है। हिन्दुओं ने उसे अवतार तुल्य माना और बौद्धों ने बोधिसत्त्व तुल्य। इस प्रकार तत्कालीन दो विरोधी धर्मानुयायियों का राजा आदर्श हो गया। परस्पर विरोधी विचारों, विरोधी दर्शनों, विरोधी मतों सबका उसने विश्वास प्राप्त किया था।

राजा वास्तव में राजर्षि था। विदेह था। कृत्या ने राजा से ठीक ही कहा था। वह बोधिसत्त्व था। इस एक शब्द बोधिसत्त्व का प्रयोग कर कल्हण ने राजा के पवित्र आदर्श चरित्र का चित्रण कर दिया है।

शिव विजयेश, नन्दीश के उपासक रूप में उसे चित्रित कर कल्हण ने उसे साधारण मानव तल से उठाकर अलौकिक पुरुष की श्रेणी में रख दिया है। तथापि लोक, समाज, नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों से उसे कल्हण ने अलग रखने का प्रयास नही किया है।

राजा कार्यपटु था। दृढ़निश्चयी था। कृत-संकल्प था। भूतेश्वर तथा विजयेश्वर के दर्शन की प्रतिज्ञा का निर्वाह करता था। उसकी इस निष्ठा को देखकर नाग भी द्रवीभूत हो गया था।

राजा में अहंकार नही था। कल्हण उसमें कोई दोष नहीं निकाल सका है। कल्हण ने निष्पक्ष भाव से राजाओं के दोष एवं गुण का वर्णन किया है किन्तु राजा जलौक का चरित्र शुद्ध जल तुल्य निर्मल था।

राजा सुधार करने में किंचित् मात्र संकोच नहीं करता था। वह पाखण्ड एवं आडम्बरों से धर्म एवं समाज को दूर रखना चाहता था। उसके समय मन्दिरों तथा विहारों में बेढंगे रूप से वाद्य बजते थे। धार्मिक कृत्यों में, उपासना में, इनका क्या स्थान हो सकता था? वे जनता की निद्रा में, स्थान की शान्ति में बाधक होते थे। राजा इस पाखण्ड के कारण विहारों से चिढ़ गया। प्रतीत होता है। आजकल के समान बेडौल रूप घण्टा-घड़ियाल, झाँझ, शंख घोंपे तथा लाउड स्पीकर, रेडियो बजते थे। राजा को यह अप्रिय लगा। उसने इनका कोई उपयोग नही देखा।

किन्तु दूसरी ओर देवस्थानों के जीवन को सरस तथा कलात्मक बनाने के लिये राजा ने नि.संकोच एक शत नृत्य गान निपुण ललनाओं को मन्दिरों के लिये दे दिया था। वह स्वयं मन्दिरों के सांस्कृतिक कार्य क्रमों में भाग लेता था। उसने मन्दिरों में नृत्य, संगीत शास्त्र कला विशारदों को रखकर, देवस्थानों को जन जीवन का एक अंग बना दिया। उसके प्रति लोक में रुचि उत्पन्न किया। सरसता का सृजन किया। उन्हें केवल पूजा के स्थान पर जन-जीवन का, सामाजिक कार्य-क्रमों का, एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना दिया। उसने ललित कलाओं में भी आध्यात्मिकता की भावना भर कर उन्हें पवित्र बनाने का प्रयास किया। देवस्थानो में बाल, युवा, वृद्ध नर-नारी सभी एकत्रित होकर नृत्य, एवं संगीतादि के साथ अध्यात्म का दर्शन कर सकते थे। ललित कला, नृत्य संगीत नाटकादि को विलास की सामग्री न बनाकर उन्हें देवस्थानों से सम्बन्धित कर उन्हें आध्यात्मिकता का चोला पहनाकर मानव को विकासोन्मुख करते हुए, दैवी

जीवन का अविच्छिन्न अंग बना दिया था। संगीतादिकला पेशा न होकर, क्रय-विक्रय की सामग्री न होकर, भगवान् के मनोरञ्जन, उनके प्रति श्रद्धा भक्ति प्रकट करने, उनके सानिध्य में रहने का एक साधन हो गयी। कला जीविकोपार्जन का साधन न होकर मानव विकास का सोपान बन गयी।

राजा ने राजकोश का प्रयोग अपने विलास के लिये नहीं किया। जनता का धन जनता के जीवन स्तर को उठाने के लिये, सार्वजनिक कार्यों के लिये खर्च किया। उसने मन्दिरों पर दान चढ़ाया। विहारों का निर्माण कराया। मन्दिरों का निर्माण कराया। जनता को उनके लिये सक्रिय किया। उनके सम्मुख दान का आदर्श रखा।

राजा की देश-भक्ति संकुचित नहीं थी। वह प्रतिक्रियावादी नहीं था। उसने कश्मीर मण्डल का सामाजिक ढाँचा शिथिल देखा। रूढ़ देखा। जड़ देखा। विद्या की कमी देखी। उसने सोत्साह कश्मीर के बाहर से विद्वानों को बुलाया। उन्हें सब तरह की सुविधा देकर कश्मीर को समृद्ध करने की ओर उन्हें प्रेरित किया। निश्चित योजनानुसार चलाने का स्तुत्य प्रयास किया।

राजा का व्यक्तिगत चरित्र बड़ा निर्मल था। वह राज्य कार्य में व्यस्त रहने पर भी धार्मिक कर्म से विरत नहीं हो सका। उसने भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों कार्य-कलापों को एक समान तुला के दोनों पलड़ों की तरह रखा।

राजा स्वयं योगी था। उसने चारपाई पर राज्य प्रासाद में रोग ग्रस्त होकर मरना उचित नहीं समझा। उसने राज सुख त्याग दिया। उसने शरीर तथा इन्द्रियों के शिथिल होने के पूर्व शरीर त्याग देना उचित समझा। उसने एक ऋषि तुल्य अपने परलोक की यात्रा निमित्त स्वयं यात्रा मार्ग प्रशस्त किया। वह चीर मोचन तीर्थ में आकर बैठ गया। योग का आश्रय लिया। अपनी पत्नी जिसका पाणिग्रहण किया था। जिसे सप्तपदी के समय वचन दिया था कि उसे सर्वदा साथ रखेगा विलग नहीं होगा, उसने एक अंग से स्वर्ग जाना पसन्द नहीं किया। अपनी अर्धांगिनी को भी साथ लिया। दोनों पति-पत्नी ने एक साथ संसार का त्याग किया। उसने तपस्वियों एवं ज्ञानियों जैसी मृत्यु आलिंगन की भूमिका तैयार की।

पद्मासन लगाया। निश्चेष्ट अकम्पित धूम्र हीन ज्योति तुल्य निश्चल ध्यानरत हो गया। इसी रूप से उसने सायुज्य प्राप्त किया।

राजा जलौक का व्यक्तित्व इतना ऊँचा है कि कवि की वाणी, लेखक की वाणी उसके वर्णन में, उस तक पहुँचने में असमर्थता का बोध करती है। कश्मीर मण्डल के राजाओं की लम्बी शृंखला में इतना महान्, समर चतुर, सेनानी, ज्ञानी, राजनीतिज्ञ, कलाप्रेमी, शासक, तपस्वी, निर्मल चरित्र, राजा का दर्शन नहीं मिलता। उसने अपने लिये अपने सुख के लिये कुछ नहीं किया। जो कुछ किया कश्मीर मण्डल के लिये किया। वहाँ की जनता के लिये किया।

मुसलिम इतिहासकार भी जलौक के जीवन से अत्यन्त प्रभावित थे। उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिये अबुल फजल उसकी विजय समुद्र पर्यन्त होना लिखता है। आजम, बैंबुद्दीन उसे उत्तरीय ईरान का विजेता मानते हैं। हसन उसे कन्धार और मलय तक पहुँचा देते हैं। कन्नौज और बिहार तक उसे पहुँचाना हसन के लिये साधारण बात थी। कन्नौज तक उसका आना प्रमाणित होता है। इन वर्णनों का इतना महत्व अवश्य है कि जलौक को सभी एक महान् विजेता समझते थे और विजेता रूप में उसका चित्रण करते हैं। वह पहला कश्मीरी राजा था जो गोनन्द के पश्चात् कश्मीरी सेना लेकर कश्मीर मण्डल के बाहर विजयार्थ निकला था। लगभग ढाई हजार वर्ष पश्चात् कश्मीर-वाहिनी ने मथुरा युद्ध के बाद पुनः अपना पराक्रम प्रदर्शित किया था।

अथाऽशोककुलोत्पन्नो यद्वाऽन्याभिजनोद्भवः ।
भूमिं दामोदरो नाम जुगोप जगतीपतिः ॥ १५३ ॥

१५३. तत्पश्चात् अशोक कुलोत्पन्न अथवा अन्य कुलोद्भव दामोदर नामक राजा भूमि-रक्षक हुआ।

ऋद्धया जाज्वलितस्योच्चैर्माहेश्वरशिखामणेः ।
अद्यापि श्रूयते यस्य प्रभावो भुवनाद्भुतः॥ १५४ ॥

१५४. ऋद्धि से जाज्वल्यमान, माहेश्वर[२] शिवउपासकों में शिखामणि, जिस राजा के अद्भुत प्रभाव की गाथा भुवन मे आज भी सुनी जाती है।

जलौक योगी अवधूत का शिष्य था। उसने योगाभ्यास किया। जल का बांधन, उसके अन्दर प्रवेश कर रहना यौगिक क्रियाओ से सम्बन्ध रखता है। उसका अन्तिम समय में योग द्वारा प्राण विसर्जन करना उसे राज योगी के साथ ही साथ राजर्षियो की श्रेणी में रख देता है।

१५३ (१) दामोदर द्वितीय : आइने अकबरी ने राजा का नाम दामोदर दिया है। उसके अनुसार कुछ लोगों का कहना है वह अशोक का वंशज था। कुछ कहते हैं। वह अन्य वंश का था। राजा धार्मिक था। एक भक्त को अपमानित करने के कारण उसके शाप द्वारा सर्प हो गया था।

कल्हण ने दामोदर द्वितीय की इतिहास सामग्री छविल्लकार से ली है। तत्कालीन प्रचलित ग्रन्थों, शिलालेखों, अग्रहारों एवं मन्दिरों मे प्राप्त कुछ संग्रहों पर दामोदर द्वितीय का वर्णन किया है।

मुहम्मद आजिम इतिहासकार के अनुसार दामोदर उद्र वह स्थान है, जहाँ ब्राह्मणो ने राजा को सर्प होने का शाप दिया था। यह सरोवर राजधानी में ७ मील पर हैं। यहाँ अब भी कथा प्रचलित है कि राजा सर्प के रूप में इस स्थान पर प्रकट होता है।

हसन लिखता है—दामोदर राजा जलौक का भाई था। पसन्दो और उमद- खूबियो में उसका हमसर था। तख्त सल्तनत पर बैठकर मल्लूक खुदा को अदल और अहसान के जरिए आराम असाइश बख्शी। मौजा 'गोठ सबू' इसी राजा का बनाया हुआ है। करेवा दामोदर पर अपनी राजधानी के लिए कसीर इमारतों वाला एक शहर तामीर किया।

कैफियत—एक दिन श्राद्ध के तकरीब पर दरयाए झेलम पर गुशल के लिए जाता था। रास्ते में दो बरहमनो ने उससे खाना माँगा। राजा ने कहा। गुशल और श्राद्ध के बाद मैं तुम्हें सीर कर दूँगा। इस पर इन बरहमनों ने राजा के हक में दुआए बद कर दी। इसके नतीजा में राजा की शक्ल साँप की हो गयी। बरसो तक राजा मजकूर जंगलों में परेशान था। इस वाकया की पूरी तफसील करेवा दामोदर के जिकर में गुजर चुकी है। राजा दामोदर की मुद्दत सलतनत ३२ साल थी।

हसन के वर्णन का कोई आधार तथा सत्यता नही है। कल्हण निश्चित नहीं कहता कि दामोदर कौन था ? उसकी वंश परम्परा क्या थी ? इतना अवश्य निश्चयपूर्वक उसके वर्णन से निष्कर्ष निकाला जा सकता है। वह जलौक का पुत्र नही था। अशोक का वंशज हो भी सकता है और नहीं भी। इसका केवल मात्र अनुमान किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण अभी तक नही मिल सका है। हसन का यह कहना कि वह राजा जलौक का भाई था किसी प्रमाण से अबतक सिद्ध नही हो सका है।

वह किस कुल का था ? किस प्रकार कश्मीर का राज्य प्राप्त किया ? उसके उत्तराधिकार का रूप क्या था ? सभी कुछ अज्ञात इतिहास के गर्भ में है।

हरप्रसादपात्रेण सच्चरित्रानुरागिणा ।
बबन्ध सुखिना सख्यं येन वैश्रवणः स्वयम् ॥ १५५ ॥

१५५. उस हर प्रसाद पात्र एवं सच्चरित्रानुरागी सुखी राजा से स्वयं वैश्रवण[१] मैत्री सूत्र में बँधे थे।

कुबेर इव यो राज्ञामग्र्यः स्वाज्ञाविधायिनः ।
आदिश्य गुह्यकान्दीर्घं गुद्सेतुमबन्धयत् ॥ १५६ ॥

१५६. कुबेर तुल्य राजाओं में अग्र उसने आज्ञानुवर्ती गुह्यकों[१] को आदेश देकर दीर्घ गुद् सेतु[२] बँधवाया।

यदि यह अशोक वंशोत्पन्न होता तो भारतीय इतिहास इस पर प्रकाश अवश्य डालता। अब तक की प्राप्य सामग्रियों के आधार पर अशोक के किसी दामोदर पौत्र का होना नहीं मिलता है।

१५४ (१) माहेश्वर : कल्हण ने राजा को यहाँ पर शिव के उपासक रूप में उपस्थित किया है। उसने महेश्वर शब्द का प्रयोग किया है। कल्हण ने श्लोक संख्या १३५ में भी जलौक के लिये माहेश्वर शब्द का प्रयोग किया है। यह राजा निस्सन्देह अपने पूर्व राजा जलौक के समान महेश किंवा शिव का उपासक था। अन्यथा उसे उत्तराधिकार मिलना कठिन होता।

यह जनता अथवा मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्वाचित राजा था। अथवा जलौक कुलावतंस था। यह सब अस्पष्ट है। यहाँ केवल एक कड़ी माहेश्वर शब्द उसे जलौक से जोड़ती है। यह श्लोक और श्लोक संख्या १३५ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जलौक तथा दामोदर दोनों का मत एक था। वे एक ही देव के उपासक थे।

माहेश्वर शिव के एक अवतार हुए हैं। शिव के अड़तालीस नामों में एक नाम महेश्वर है। आठ मातरः में एक माहेश्वरी है।

१५५ (१) वैश्रवण : अथर्ववेद (८.१०.२८) में कुबेर वैश्रवण का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण (१३:४.३.१०) के अनुसार कुबेर वैश्रवण एक राजा है। राक्षस उनकी प्रजा है। तैत्तिरीय आरण्यक (१.३१.३) ने कुबेर को एक देवता रूप में प्रस्तुत किया है। वे नमस्कृत्य है। प्रार्थित है।

वैवस्वत मन्वन्तर में विश्रवा ऋषि का इसे पुत्र कहा गया है। इसकी माता इडविडा थी। उनकी माता का नाम मंदाकिनी भी मिलता है। धनपतित्व के निमित्त इसने तपस्या की। कुबेर हो गया। जिस स्थान पर तपस्या की थी वह महाभारत (श. ४६:२२) के अनुसार कौबेर तीर्थ हो गया। देवी पार्वती की ओर इसने एक बार देखा तो इसका बाँया नेत्र नष्ट हो गया। दक्षिण नेत्र पीला पड़ गया। इसलिये उसका नाम एकाक्ष पिङ्गल हो गया।

उत्तर दिशा का अधिपति माना गया है। उत्तरस्थित यक्ष लोक में निवास करता है। यक्षों के अधिपतित्व प्राप्त की कामना से इसने तपस्या की थी। तपस्या स्थान कावेरी नर्मदा संगम माना गया है। गन्धमादन पर्वत शिखर पर इसका निवास स्थान है। मेरु पर्वत के उत्तर विभावरी भी इसका एक निवास स्थान है। वृद्धि तथा ऋद्धि इसकी शक्तियाँ हैं। इसकी सभा का नाम कुबेर सभा है। कुबेर की एक पत्नी का नाम भद्रा है। इसकी पुरी का नाम अलकापुरी है। पूर्व जन्म में काम्पिल्य नगरी में अग्निहोत्री यज्ञदत्त का गुणनिधि नामक पुत्र था। मुचकुंद से इसका संवाद, ब्राह्मण क्षत्रिय एकता होने पर राज्य सुख की वृद्धि होती

हैं, हुआ था। (म . श . ७५) इसका एक नाम सोम है। एतदर्थ उत्तर दिशा का नाम सौम्य पड़ा है।

वैश्रवण कुबेर के पिता विश्रवस पुलस्त्य एवं हविर्भू का पुत्र कहा गया है। (भा० ४:१:३६—३७) ब्रह्माण्ड पुराण में इसकी माता का नाम इलविला दिया गया है। वह तृणबिन्दु तथा अलंबुषा की कन्या थी। (३:७:३९—४२) किन्तु वायु पुराण में इसकी माता का नाम द्रविडा दिया गया है। (८९·१६) इसकी नव पत्नियाँ थीं। (म . व . २५९:६०) इसकी एक पत्नी केशिनी से रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा कन्या सूर्पणखा हुई थी। महाभारत के अनुसार इसकी पुष्पोत्कटा, राका एवं मालिनी तीन पत्नियाँ राक्षसी थी। महाभारत वनपर्व (२५९:७—८)में मालिनी का विभीषण, पुष्पोत्कटा का रावण और कुम्भकर्ण तथा राका का पुत्र खर और कन्या सूर्पणखा कही गयी है।

१५६(१) गुह्यक : दश देवयोनियों में यक्षों तुल्य एक योनि है। अमरकोश के अनुसार दस निम्नलिखित देवयोनियाँ हैं :

विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥
॥१:१:११॥

कुबेर को गुह्यकेश्वर तथा वैश्रवण भी कहा गया है। गुह्यक उन लोगों के लिये प्रयुक्त किया गया है, जो कुबेर के धनकोष की रक्षा करते थे। उनके स्वामी को गुह्यकेश्वर कहा गया है।

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः ।
॥१:२:७१॥

मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः ।
किन्नरेशो वैश्रवणः पौलस्त्यो नरवाहनः ॥
॥१:२:७२॥

भास्कर्य किंवा मूर्तिकला विकास में कुबेर तथा यक्षों का प्रमुख स्थान है। कुबेर की अलकापुरी का सुन्दर वर्णन मेघदूत में कालिदास ने किया है। यक्ष का स्वामी कुबेर है। बौद्ध मूर्तियों में कुबेर तथा यक्ष भगवान् की पूजा करते दिखाये गये हैं।

गुह्यक शब्द का एक जाति के रूप में प्रयोग मिलता है। उन्हें देवयोनि के अन्तर्गत एक जाति महाभारत ने माना है। (आदि पर्व १८६:७) इस जाति के लोग द्रौपदी के स्वयंवर के समय उपस्थित थे। गुह्यकेश्वर अर्थात् कुबेर की सभा में गुह्यकों का रहना कहा गया है। (सभा पर्व १०.३) गन्धमादन पर्वत पर उनका निवास स्थान था। भीमसेन ने उन्हें वहीं अपनी गदा द्वारा हत किया था। (शल्य पर्व ११:५५-५) गुह्यक को यक्ष भी कहा गया है (१०·१५)।

पुराणों में कुबेर के अनुयायी तथा दानव गुह्यक कहे गये हैं। (भागवत पुराण १.९.३, १०:३४:२८, २:१०:३७, ४:४:३४) गुह्यक जाति हिमालय में निवास करती थी। (भागवत ४:५:२६ ४:१०·५) वे माया विद्या में निपुण थे। (भागवत पुराण १०·५५·२३) गुह्यकों के देवता शिव थे। वे शिव के अनुयायी थे। (भागवत पुराण ६३:१०) गुह्यकों ने पुण्यात्माओं के सम्पर्क से स्वर्ग प्राप्ति की थी। (भागवत पुराण ११:१२:३, १४.५,) गुह्यकों को यक्षों तथा राक्षसों की श्रेणी में रखा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३:७:१६७, ४:२·२६, (मत्स्यपुराण १३:१७, १२१, २)। गुह्यकों के आचरण तथा कर्तव्यों का विशद वर्णन मत्स्य पुराण (१८०.९०, २४६:५३,) तथा वायु पुराण (अध्याय ६९ तथा १०१) में मिलता है। गुह्यक वर्ग को वायु पुराण (अध्याय ३०) में हिमालयवासी गुह्यक कहा गया है—शंकर पार्वती के साथ विराजमान थे। उस समय आदित्यगण, वसुगण, अश्विनीकुमार, गुह्यकों को साथ लेकर वैश्रवण कुबेर, सनत्कुमार, परमर्षि, अंगिरादि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, कैलास निवासी यक्षराज, महा-

मुनि उसना, तथा अप्सराएँ उमा शंकर की उपासना करने लगी।

हरिवंश पुराण में कैलास शिखर पर गुह्यकों के साथ कुबेर के आगमन का वर्णन मिलता है। (८५ १०) मैंने इस विषय पर प्रकाश यक्षों से सम्बन्धित परिशिष्ट में डाला हैं। यक्ष जाति की गुह्यक जाति एक शाखा किंवा वर्ग थी। उनमें तथा यक्षों में भिन्नता मालूम होती हैं। गुह्यक गणों का उत्तरदायित्व सम्पत्ति की रक्षा करना था। उनका काम सैनिकों का था। वे प्रतिहारी थे। वे साधारणतया शस्त्रोपजीवी थे। पहरा, चौकी, तथा रक्षादि करते थे। शस्त्रादि चलाते थे। उन्होंने महाभारत युद्ध में भाग लिया था। यक्ष जाति के होते हुए भी, उन्हें अलग गुह्यक संज्ञा उसी प्रकार दी गयी थी, जैसे हिन्दू होने पर भी क्षत्रियों की अलग जाति शस्त्रोपजीवी होने के कारण हो गयी थी।

वायु पुराण (अध्याय १०१) से प्रकट होता है कि गुह्यक लोग सत्य अर्थात् ब्रह्म लोक में देवताओं के साथ रहते थे। सत्य लोक सातवाँ किंवा अन्तिम लोक है। उसमें समस्त देवगण, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों तथा गुह्यकों के साथ स्वर्ग लोक में निवास करते है। वायु पुराण (अध्याय ६९) में गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष तथा पिशाचों को असुरदेव की श्रेणी में रखा गया है। परन्तु यहाँ पर सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यों को पृथ्वी लोक का निवासी बताया गया है। इस गुह्यकों का स्थान पिशाचों तथा मनुष्यों से ऊपर रखा गया है।

गुह्यकों की उत्पत्ति के विषय में वायु पुराण (अध्याय ९:३२,३०:४) में कथा आता हैं—'ब्रह्मा ने रजस्तम प्रधान दूसरा शरीर धारण किया। उस अन्धकार में क्षुधाकुल होकर उन्होंने दूसरी प्रजा उत्पन्न की। वह प्रजा जल को भक्षण करने के लिये कटिबद्ध हो गयी। हम जल की रक्षा करते है। कहते हुए जो उत्पन्न हुए वे क्रोधी निशाचर राक्षस हुए। जिन लोगों ने कहा हम जल को खा जायेंगे। नष्ट कर देंगे। अतएव उनका नाम राक्षस पड़ा। यक्ष धातु पातनार्थक है। अतएव उनका यक्ष नाम पड़ा। अ० ९।

भागवत (१:९:३) में श्रीकृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि के रथ पर जाने की शोभा के वर्णन में उसकी तुलना गुह्यकों सहित कुबेर से की गयी हैं। वहाँ पर गुह्यकों को कुबेर का साथी कहा गया हैं।

स्कन्द (२:१०:३७) में भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों का वर्णन किया गया है। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सराएँ, नाग, सर्प, किंपुरुष, उरग, मातृकाएँ, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वैताल, यातुधान के वर्ग में गुह्यकों को रखा गया है। (स्कन्द ११:१२:३,१४:५)

दक्ष यज्ञ में सती के प्राण विसर्जन काल में गुह्यक तथा प्रमथ गणों का उपस्थित होना प्रकट होता है। मालूम होता है शिव के पार्षद गुह्यक तथा प्रमथ गण सती के साथ दक्ष यज्ञ में गये थे। सती के प्राण विसर्जन के साथ ही गुह्यकों तथा प्रमथों ने क्रुद्ध होकर, दक्ष यज्ञ में विघ्न डाला था। अस्त्र-शस्त्रों से आक्रमण किया था। उनके भयंकर आक्रमण के वेग को देखकर भृगु ने यज्ञ द्वारा सहस्रों ऋभु नामक देवों को उत्पन्न किया। जलती लकड़ियों द्वारा प्रथमगण तथा गुह्यकों पर वे आक्रमण कर, उन्हें भगाने में समर्थ हुए थे।

दक्ष यज्ञ के प्रसंग में गुह्यकालय अर्थात् गुह्यकों के निवास स्थान का उल्लेख किया गया है। सती की प्राणाहुती से क्रुद्ध होकर, वीरभद्र ने दक्ष के मस्तक को यज्ञ की दक्षिणाग्नि में डाल दिया। यज्ञ को विध्वंस कर गुह्यकालय लौट गये। यहाँ पर गुह्यकालय हिमालय स्थित कैलाश के समीप का स्थान होना चाहिए। वायु पुराण ने हिमालय का यही अंचल गुह्यकों का निवास स्थान बताया है।

उत्तम मृगया निमित्त हिमालय गया था। वहाँ उसको हत्या कर दी गयी थी। ध्रुव अत्यन्त क्रुद्ध होकर, रुद्रों के अनुचरों से सेवित उत्तर दिशा में हिमालय के द्रोणी अर्थात् घाटी में गये। वहाँ नगर गुह्यकों से जनाकीर्ण था। (भागवत ४.१० :५) यहां पर भी यही निर्देश किया गया है। गुह्यक लोग उत्तर दिशा में हिमालय की घाटी किंवा द्रोणी में रहते थे।

श्री कृष्ण द्वारा गुह्यक शंखचूड के वध की कथा भागवत (१०:३४:२८) में कही गयी है। गोपियों को एक समय शंखचूड गुह्यक लेकर, उत्तरदिशा की ओर भाग चला। श्री कृष्ण उस समय गुह्यक के पास पहुँचे। गुह्यक गोपियों को छोड़कर भागा। श्री कृष्ण ने उसका पीछा किया। उसका वध किया। मणि लेकर वापस लौट आये।

इनसे दो बातें स्पष्ट होती हैं। गुह्यक दस्यु आदि का अनुचित कार्य करते थे। उनका निवास स्थान उत्तर दिशा था। मथुरा से उत्तर दिशा पंजाब, कश्मीर, हिमाचल पड़ता है। उत्तर दिशा का अर्थ प्रायः हिमालय का उपत्यका पर्वतीय अंचल माना जाता है।

प्रद्युम्न तथा शम्बरासुर वध के प्रसंग में गुह्यकों का पुनः उल्लेख भागवत (१०:५५ २३) में किया गया है। शम्बरासुर ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसों की सैकड़ों माया का प्रयोग किया। गुह्यक मायावी थे। युद्ध में माया का प्रयोग करते थे। अन्य पुराणों में भी इस प्रकार का उल्लेख किया गया है। शम्बर ने गुह्यकों की माया का प्रयोग किया है। यहाँ गुह्यकों ने युद्ध में भाग नहीं लिया। परन्तु उनकी युद्ध नीति का प्रयोग शम्बर ने प्रद्युम्न के विरुद्ध किया था।

भागवत (११:१२:३) में पुनः दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक को एक ही वर्ग में रखा गया है। गुह्यकों के पूर्वज ब्रह्मर्षि थे। देवयोनि वर्ग में थे। इसका उल्लेख भागवत (११ १४.५) में किया गया है। इन ब्रह्मर्षियों की संतान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्देव, नाग, किन्नर, राक्षस, और किम्पुरुष आदि थे। अपना वंश वृक्ष इन्हीं ब्रह्मर्षियों से प्राप्त किया था।

रामायण में कैलाश के समीप गुह्यकों के रहने की बात कही गयी है। सुग्रीव ने उत्तर दिशा में देवी सीता को खोजने के लिये, जिन देशों तथा जातियों का नाम लिया है, उनमें गुह्यक है। वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३, श्लोक ३ में उल्लेख आता है—'वहाँ यक्षों के स्वामी विश्रवाकुमार श्रीमान् राजा कुबेर जो समस्त विश्व के लिये वन्दनीय हैं तथा धनदाता हैं, वह यक्ष राजा गुह्यकों के साथ निवास करते हैं।'

कल्हण के गुह्यक शब्द के व्यवहार से गुह्यक जाति की सत्यता तथा वास्तविकता पर विशेष प्रकाश पड़ता है। पुराणों में गुह्यकों को यक्षों का एक वर्ग माना है। इसका उल्लेख कर चुका हूँ। कल्हण के इस शब्द से कि राजा ने गुह्यकों से सहायता अर्थात् काम लिया, इससे मालूम होता है, उस समय गुह्यक नामक जाति कश्मीर में रहती थी। जाति परिश्रमी थी। निपुण थी।

पुल बनाना आज भी शिल्पिक कार्य समझा जाता है। किसी कश्मीर कलाकार की सहायता नहीं ली गयी। गुह्यकों की सहायता पुल बनाने के लिये ली गयी, इसका अर्थ है। यह जाति इस कला में निपुण थी। यक्ष नाम की भी जाति थी, गुह्यक नाम की भी जाति थी। कश्मीर में रहती थी। यक्षों गन्धर्वों को कालान्तर में मानव विशेष समझ लिया गया। इसी प्रकार गुह्यकों को भी मानव विशेष समझा गया।

कल्हण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। गुह्यक एक जाति थी। इस जाति के लोग कश्मीर में आबाद थे। और निर्माण कला में निपुण थे।

स हि कारयितुं यत्नैर्यतते स्म स्वमण्डले ।
दीर्घानश्ममयान्सेतूंस्तोयविप्लवशान्तये ॥ १५६ ॥

१५६. उस राजा ने स्वमण्डल में जल[1] विप्लव शान्त करने के लिये यक्षों[2] की सहायता से पाषाण मय दीर्घ सेतुओं के निर्माण का यत्न किया था।

ऊँचा होने पर उसे ऊँचे स्थान में पहुँचाया जा सकता है। राजा दामोदर द्वारा बसाये नगर को आज भी स्मृति स्थानीय लोगों में है।

१५८ (१) विघ्न : कल्हण ने कुटिल तथा तुच्छ मनुष्यों द्वारा परोपकारी कार्यों में बाधा डालने की मनोवृत्ति को धिक्कारा है। उस लोकोत्तर कार्य को उग्रतात्माओं का कार्य कहा है। और इस प्रकार के कार्यों में अरुचि रखने तथा बाधा डालने वालों को उनकी पूर्व जन्म की पुण्यशीलता का अभाव होना उनमें माना है। वह यहाँ पर कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। वह महात्मा गान्धी के समान मनुष्य को बुरा नहीं कहता परन्तु उनके कर्म को बुरा कहता है। कर्म द्वारा मनुष्य पुण्यात्मा एवं दुरात्मा दोनों होता है। अतएव सुकर्म करने वाले श्लाघ्य हैं। दुष्कृति करनेवाले धिक्कार के पात्र हैं।

१५९ (१) जल प्लावन : कश्मीर को प्रकृति ने हरामरा नन्दन उद्यान तुल्य अतिरम्य बनाया है तथापि कश्मीर मण्डल पर प्रकृति की ही वक्र दृष्टि रहती है। जल एवं अग्नि कश्मीर, मुख्यतया श्रीनगर, के शत्रु रहे हैं। जल विप्लव, जलप्लावन वर्षा के द्वारा पहाड़ों का गिरना आदि साधारण बातें हैं। घनघोर वर्षा यदि लगातार तीन दिन तक कश्मीर में हो जाय तो जल विप्लव सदृश दृश्य दिखायी पड़ता है। इनसे कश्मीर की रक्षा करने का स्तुत्य प्रयास प्रायः सभी राजाओं ने किया है। राजा ने भी यक्षों की सहायता लम्बे बाँध बँधाने के लिये लो थी। यक्ष शब्द के प्रयोग से यही प्रकट होता है। राजा का सेतु निर्माण कार्य असाधारण था। साधारण पुरुषार्थ मात्र से सम्भव नहीं था। अतः कश्मीरी मुसलमान कश्मीर में बने पुराने मन्दिरों तथा अन्य निर्माण में लगे विशाल शिलाखण्ड को देखकर उन्हें जिन तथा परियों का काम कहते हैं। इसका कारण यह है कि मुसलिम काल में किसी बड़ी पत्थरों की इमारत की रचना नहीं हुई। पुराने पत्थरों को तोड़ कर निःसंकोच उनका प्रयोग नवीन निर्माण में किया जाता रहा है।

१५९ (२) यक्ष : कल्हण कश्मीर में प्रचलित किंवदन्ती की ओर संकेत करता है। प्राचीन विशाल इमारतों का निर्माण, जिनमें विशाल शिलाखण्ड लगे हैं, उन्हें यक्षों का निर्माण, मानवीय शक्ति के परे होने के कारण मानता है। कल्हण ने जिन भव्य भवनों तथा निर्माणों का वर्णन किया है उनमें बहुतों के ध्वंसावशेष वर्तमान हैं। कश्मीरी मुसलमान उन्हें जिन तथा परियों का बनाया मानते हैं। कारण स्पष्ट है। आज भी उन शिलाखण्डों को देखकर आश्चर्य होता है। वे किस प्रकार मानवों की स्वल्प शक्ति से उठाये और भवनों में लगाये गये होंगे।

यक्ष शब्द ऋग् तथा अथर्व वेद में अनेक स्थलों पर आया है। (ऋग्वेद १:१९०:४, ४:४:१३, ५:७०:४, ७:५३:१६, १०:८८:१३, ७:६१:५; अथर्व वेद ८:६:२५, १०:२.३२, १०:७:३८, १०:८.४३, ११:२:४)

वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड पुराणों में यक्ष शब्द प्रायः गन्धर्व तथा किन्नर के साथ आता है। ये हिमालय प्रदेश निवासी जातियाँ थीं। अलबेरुनी ने गन्धर्वों को गायक जाति में गिना है। गन्धर्वों का संगीत तथा नृत्य पेशा था और आज भी है।

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरांस्तथा।
कल्मायग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् रुमान् ॥

अग्नि पुराण (१९:१८) में 'कश्यपपत्नीखसा-जाता.' अर्थात् कश्यप की पत्नी खसा से यक्षों की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है।

यक्षों का वर्णन महाभारत में यथेष्ट रूप से मिलता है। गुह्यकों के सन्दर्भ में यक्षों का उल्लेख किया गया है। महाभारत में उन्हें देव योनि में रखा गया है। विराट अण्ड द्वारा ब्रह्मादि के उत्पन्न होने के पश्चात् यक्षों की उत्पत्ति बताई गयी है। महाभारत आदि पर्व (१ :३५) में यक्षों को पुलस्त्य मुनि की सन्तान कहा गया है। आदि पर्व (६६:७) में राक्षस रावण पुलस्त्य का नाती था। अतएव यक्षों का सम्बन्ध राक्षसों से मिलाने का प्रयास किया गया है।

यक्ष मानव थे। श्री शुकदेव जी ने यक्षों को महाभारत की कथा सुनायी थी (आदि पर्व १:१०८) यक्षों ने कुबेर का राजपद पर अभिषेक किया था। (वन पर्व ९११:१०:११) पाण्डव भीमसेन ने यक्षों तथा राक्षसों को पराजित कर भगा दिया था। (वन पर्व १६०:५७–५८) सुन्द-उपसुन्द ने इनको पराजित तथा पीड़ित किया था। (वन पर्व २०८:७)

यम ने यक्ष का रूप धारण कर युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर किया था। यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर, धर्मराज युधिष्ठिर ने चारो भाइयों को जीवित किया था। (वनपर्व ३१४:४७।)

प्रायः देवताओं की मूर्तियों पर यक्षगण आकाश में उड़ते उन्हें माला पहनाते, पुष्प वर्षा करते हुए दिखाये जाते हैं। भगवान् बुद्ध की मूर्ति में भी शिरोभाग के दोनो पार्श्वों में उड़ते यक्ष, माला सहित उत्कीर्ण किये मिलते हैं।

ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराणों के अनुसार वे राक्षस तथा खसा की सन्तान हैं। वे अपनी माता को खा जाना चाहते थे अतएव उनका नाम यक्ष पड़ा। यक्षो के रूप का वर्णन किया गया है। उन्हें चार हाथ तथा चार पैर वाला दिखाया गया है। रात्रि में अपने आहार निमित्त विचरण करते हैं। एक यक्ष वसुरुचि का रूप धारण कर अप्सरा क्रथस्थला के साथ नन्दन में निवास किये थे। उससे रजत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यक्ष अपने पुत्र के साथ हिमालय में निवास निमित्त आया था।

ब्रह्माण्ड (३:७:६०, १००–१७, २२:१५, ४१:३०, ७१:१११,) भागवत आदि पुराणों में यक्षों की उत्पत्ति की एक और कथा है। कश्यप पिता तथा विश्वा माता का पुत्र यक्ष था। (भागवत (२.६:१३, ६.८२४, १०:३:२७, ६२:१८, ८५.४१ ब्रह्माण्ड पुराण २:३२:१–२, ३५:१९१, ३६:११८)

पुराणों में उन्हें रुद्र का अनुयायी कहा गया है। उनके स्वामी का नाम कुबेर दिया गया है। भागवत (४:१०:४,११:१६:१६,२३:२७) तथा मत्स्य पुराण (८:५) के अनुसार ब्रह्मा ने यक्षों का अधिनायकत्व शूलपाणी को दिया था। वृत्र की सहायता इन्द्र के विरोध में यक्षों ने की थी। दक्ष यज्ञ में सती के साथ गये थे। भागवत (६:१०२०,४:५.४:३४) उनके खेलों का वर्णन भागवत पुराण (१०:९०:९) में किया गया है। हरि की भक्ति के कारण यक्षो ने मोक्ष प्राप्त किया था। भागवत (७:७:५०)। ब्रह्मा के समीप जब ककुद्मी गये थे तो उनका अनर्त राज्य यक्षों ने ले लिया था। भागवत (९:३:३६) देवो के साथ भगवान् कृष्ण को यक्ष देखने आये थे। भागवत (७:८:३८,९:३१:२) रावण ने यक्षों को परास्त किया था। ब्रह्माण्ड पुराण (३:७:२५५)। वे पित्रों की पूजा करते थे। भागवत पुराण (३:१०:३८, ११९, ११:८१, ४:२:२६, १४:४, २०.५०, ३०:९, ३३:७५)।

मत्स्य पुराण (अध्याय २३) में वर्णन मिलता है कि देव गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण शंकर तथा चन्द्रमा में युद्ध हुआ। उसमें यक्षो के स्वामी कुबेर ने वैताल, यक्ष, नाग तथा किन्नरों की सेना के साथ शंकर को सहायता निमित्त युद्ध में भाग लिया था।

मत्स्य पुराण (अ० १८०) में यक्षों के विषय में एक रोचक कथा दी गयी है। उससे यक्षों के व्यवहार, आचरण तथा धर्म पर प्रकाश पड़ता है। इसका सम्बन्ध हरिकेश यक्ष से है।

पूर्णभद्र यक्षों का राजा था। उसका पुत्र हरिकेश था। हरिकेश शिव का उपासक बन गया। पूर्ण भद्र ने अपनी पुरातन परम्परा पर पुत्र का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—रुद्र की उपासना उचित नहीं है। हमारा काम मानवों से भिन्न है। यक्ष स्वभाव से क्रूर होते हैं। कच्चा मांस खाते हैं। कुत्सित जीवों का भक्षण करते हैं। हिंसक होते हैं।

न हि यक्षकुलीनानामेतं मूढ़ व्रतं तव।
गुह्यका वत यूयं वै स्वभावात्क्रूरचेतसः॥
क्रव्यादाश्चैव किंमक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक।
मैवं कार्षीर्न ते वृत्तिरेवं ॰॰ । महात्मना॥

पिता की बात न मानकर हरिकेश काशी आकर तपस्या करने लगा। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने हरिकेश से वर माँगने के लिये कहा। हरिकेश ने शिव भक्ति का वर माँगा। शिवने प्रसन्न होकर यक्ष को वरदान दिया —'यक्ष, तुम सबके पूज्य गणों के स्वामी तथा धनपति होगे। प्राणियों से अजेय होगे। अन्नदाता होगे। क्षेत्रपाल होगे। उद्‌भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे होगे। तुम दण्डपाणि होगे।'

काशी तथा मथुरा दोनों स्थानों पर यक्ष लोग अपने पुरातन धार्मिक परम्परा के स्थान पर शिव की उपासना अपना लिये। यक्षों ने लौकिक किंवा जातीय धर्म तथा रीतियों के स्थान पर शैव मत स्वीकार कर लिया। उन्हें शिव के गणों में सम्मिलित कर लिया गया। वे शिव के भक्त तथा अनुयायी हो गये थे।

भागवत (२·६:१३) में विराट् पुरुष के वर्णन के प्रसंग में देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, यक्षों, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, भूत, प्रेत, विद्याधर, सर्पादि को एक वर्ग में रखकर उन्हें विराट् पुरुष माना गया है।

भागवत (६·८ २४) में नारायण कवच के वर्णन में कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि को कौमोदकी गदा से नष्ट करने की प्रार्थना की गयी है।

देवराज इन्द्र के विरुद्ध जाते हुए यक्षों का वर्णन किया गया है। दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस सुवर्ण के साज सामान से सुसज्जित होकर देवराज इन्द्र की सेना को बाढ़ रोकने के लिये आये थे। (भा०६:१० २०)।

नृसिंह अवतार के समय भगवान् के समीप जय-जयकार करते आने वालों में—सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरायें, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वैताल, सिद्ध, किन्नर, सुनन्द तथा कुमुद आदि विष्णु के सभी पार्षद वहाँ आये। भागवत (७:८:३८) यहाँ पर विष्णु के पार्षद रूप से यक्षों का वर्णन किया गया है।

रैवत ने कुशस्थली नामक नगर बसाया था। उनके ५० ककुद्मी थे। वे ब्रह्मा से भेंट करने गये थे। लौटकर अपने नगर में आये। देखा कि उनके वंशजों ने यक्षों के भय से नगर का त्याग कर दिया था। भागवत पुराण (९:३:३५)।

भागवत (१०:६:२७) में यक्षों को भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस और विनायक के वर्ग में रखा गया है। भागवत पुराण (१०:३२:१६) में यक्षों को पुनः देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, दैत्य, विद्याधर तथा मनुष्यों के साथ वर्णन किया गया है। भागवत पुराण (१०:९०:९) में भगवान् अपनी पत्नियों के साथ विहार करने की उपमा यक्षराज कुबेर की यक्षिणियों के साथ विहार करने के साथ देते हैं।

उद्धव के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कृष्ण ने अपने विराट् स्वरूप का वर्णन किया है। उसमें कहा है—'मैं दैत्यों में दैत्यराज प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा, औषधियों में सोमरस एवं यक्षराक्षस में कुबेर हूँ। (११:१६:१६)।

यक्षों को 'धन कृपण' कहा गया है 'जो मनुष्य, देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, जाति, भाई, कुटुम्बी और धन के भागीदारों को उनका भाग देकर सन्तुष्ट नहीं रखता और न स्वयं ही उपभोग करता है वह यक्ष के समान धन को रखवाली करने वाला कृपण है।' भा० (११:२३:२४)।

रामायणकार को यक्षों का ज्ञान था। सुग्रीव ने बन्दरों को सीता के अन्वेषणार्थ जिन देशों तथा जातियों में जाने का नाम लिया था उनमें यक्ष का भी नाम है। वह जाति कैलास के समीप उत्तर में निवास करती थी। (वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३:२३)।

मत्स्य पुराण (अध्याय १२१) में यक्षों के निवास-स्थान के सम्बन्ध में उल्लेख है — कैलास पर्वत के पूर्व और उत्तर दिशा में दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला रत्नों की तरह जाज्वल्यमान चन्द्रप्रभा गिरि है। उसके समीप अच्छोद सरोवर है। उस सर से अच्छोद नदी निकली है। नदी के तट पर चैत्ररथ वन है। उसके समीपस्थ पर्वत पर मणिभद्र क्रूरकर्मा, यक्ष सेनापति, गुह्यकों से रक्षित निवास करता है।

कैलास के दक्षिण और पूर्व दिशा में हेमश्रृंग किंवा लोहित नामक एक पर्वत है। उसके पाद प्रदेश में लोहित सरोवर है। उससे लौहित्य महानद निकला है। उसके तट पर विशोक वन है। वहाँ परम धार्मिक मणिधर यक्ष एवं सौम्य गुह्यकों द्वारा रक्षित निवास करता है।

ककुद्मी कैलास के पश्चिम ककुद्मान पर्वत पर रुद्र (वृष नन्दिकेश्वर) की उत्पत्ति हुई थी। त्रिक-कुद के सम्मुख त्रैककुद कज्जल तुल्य शैल है। वहाँ वैद्युत पर्वत है। उस पाद में मानस दिव्य सरोवर है। उसमें सरयू नदी निकली है। उसके तट पर वैभाज दिव्य वन है। वहाँ प्रहेति का पुत्र कुबेर का सेवक ब्रह्मघाती पौरुषशाली राक्षस निवास करता है।

वायु पुराण (अध्याय ३९) में यक्षों का निवास स्थान दिया गया है—शतश्रृंग पर्वत पर अत्यन्त बली यक्षों के सौ पुर हैं।

वायु पुराण (अध्याय ६९) में यक्षों के विषय में उल्लेख मिलता है—

पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष, एवं देवजन नामक यक्षादि गुह्यकों के अन्तर्गत हैं। अगस्त्य, पौलस्त्य तथा विश्वामित्र के गोत्रों में उत्पन्न होने वाले राक्षस तथा यक्षों के राजा कुबेर हैं। अलका नगरी के कुबेर अधी-श्वर हैं। यक्ष केवल आँखों से देखकर रक्त मास एवं चर्बी पी जाते हैं। राक्षस शरीर के भीतर प्रवेश कर पी जाते हैं। पिशाच पीड़ित कर पीते हैं। सभी लक्षणों से सम्पन्न देवताओं के समान, अवि-कारी, तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यशाली, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, शक्तिशाली, विक्रमी, लोकों द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करने वाले, तेजस्वी, यक्षादि के योग्य वरदान देने वाले, यक्ष परायण एव देवताओं के समान धर्मात्मा होते हैं, उन्हें असुर कहा जाता है।

गन्धर्वों का प्रभाव देवताओं की अपेक्षा तीन-चौथाई हीन होता है। अर्थात् गन्धर्वों में देवताओं का चतुर्थांश प्रभाव हीन है। गुह्यक का प्रभाव यक्षों के प्रभाव का चतुर्थांश होता है। अर्थात् गुह्यकों में केवल सोलहवाँ भाग देवताओं के प्रभाव का शेष रहता है। राक्षसों का प्रभाव गुह्यकों अर्थात् यक्षों तुल्य होता है। यक्षों से तीन गुने हीन प्रभाव पिशाच होते हैं। रूप, वायु बल, धर्म, ऐश्वर्य, बुद्धि, तपस्या, शास्त्र बल एवं पराक्रम में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच चार देवयोनियों में उत्पन्न होने वाले, वर्ग सुर तथा असुरों की अपेक्षा हीन होते हैं।

उक्त उद्धरणों से यक्षों के सम्बन्ध में कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। (१) यक्ष देवयोनि में थे। मानव थे। (२) उन्हें गन्धर्व, राक्षस तथा पिशाचों के वर्ग में रखा गया है। (३) सुरों की अपेक्षा असुरों के वर्ग में उन्हें अधिक रखा गया है। (४) वे हिमालय निवासी थे। उनका आवास कैलास के आसपास था। (५) वे आसुरी मत, मांसादि खाने तथा रक्त पात करने वाले थे। किन्तु कालान्तर में वे शिव के अनुयायी हो कर शैवमतावलम्बी हो गये थे। ६) कुबेर उनका राजा था। वे युद्ध में भाग लेते थे।

तपोविभूतयोऽचिन्त्या द्विजानामुग्रतेजसाम् ।
तादृशामपि ये कुर्युः प्रभावस्य विपर्ययम् ।। १६० ।।

१६०. उग्र तेजस्वी द्विजों की तापो विभूतियाँ अचिन्त्य होती हैं क्योंकि उन जैसे राजाओं का भी प्रभाव जिन्होंने नष्ट कर दिया है।

दायादादिबलैर्नष्टा दृष्टा भूयः समुत्थिता ।
श्रीर्विप्रावज्ञया नष्टामपुनःसंभवा पुनः ।। १६१ ।।

१६१. दायाद[1] आदि के बल से नष्ट श्री का पुनरुत्थान देखा गया है किन्तु विप्रों की अवज्ञा द्वारा नष्ट श्री का होना असंभव है।

श्राद्धार्थमुत्थितः स्नातुं द्विजैः कैश्चिद् बुभुक्षितैः ।
प्राक्स्नानाद्भोजनं राजा स कदाचिद्याच्यत ।। १६२ ।।

१६२. किसी समय राजा श्राद्ध निमित्त स्नान करने के लिये उठा। उसी समय कुछ बुभुक्षु ब्राह्मणों ने राजा से स्नान के पूर्व ही भोजन माँगा।

---

(७) मत परिवर्तन के कारण उन्हें शिव का गण बना लिया गया था। (८) गुह्यक लोग यक्षों की एक शाखा थे। (९) उनका सम्बन्ध भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा तथा पर्वतीय भागों में रहने के कारण असुरों से होना स्वाभाविक था तथा उनका आचार-विचार प्रारम्भ से असुरों से मिलता था। (१०) यक्ष कश्मीर के सीमान्त मेरु के दक्षिण तथा कैलास के पश्चिम अर्थात् कश्मीर की उत्तरी पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर रहते थे।

मैंने गुह्यकों के संदर्भ में लिखते हुए यक्षों के विषय में कुछ लिखा है। कल्हण ने यक्षों का विवेचन यहाँ शिल्पी के रूप में किया है। वे सेतु निर्माण करने में निपुण थे। पुराणों में यक्षों को वस्तुपरक माना है। कहीं-कहीं उन्हें इतर योनि भी माना गया है। भोगों में पड़ने वालों के रूप में भी चित्रित किया गया है। कल्हण ने इन सब कपोलकल्पनाओं को छोड़ते हुए वास्तविकता का परिचय दिया है। ... यक्षों को एक जाति के रूप में चित्रित किया ... यक्ष ... काम शिल्प था। राज्य में ... दूर करने के लिये राजा ने यक्षों-द्वारा ... किया गया है। ... वे राजा दामोदर के समय गुह्यकों के साथ कश्मीर में आबाद थे। गुह्यक और यक्ष दोनों शिल्पी के रूप में चित्रित किये गये हैं। किन्तु कल्हण ने गुह्यकों का विवरण केवल सेतु के सम्बन्ध में दिया है। और यक्षों का सेतु अर्थात् बाँध बनाने के सम्बन्ध में किया है। अतएव गुह्यक यदि सेतु बनाने में प्रवीण थे तो यक्ष जलाभाव दूर करने के लिये बाँध बनाने में चतुर दिखायी पड़ते हैं।

१६१ (१) दायाद : दायाद शब्द का अर्थ उत्तराधिकारी—पुत्र, भाई, बन्धु होता है। दाय भाग हिन्दू कानून इसी शब्द के आधार पर बना है। कल्हण, राजा का बल किस प्रकार नष्ट होता है, इस ओर संकेत करता है। कश्मीर में राजा गण अपने उत्तराधिकारियों तथा सम्बन्धियों से बहुत परेशान किये गये थे। उनके कारण कश्मीर के राजा तथा कश्मीर राज्य दुर्बल होता रहा है। दिल्ली में मुसलिम बादशाहों को सर्वदा अपने सम्बन्धियों से भय बना रहता था। उत्तराधिकार के लिये गृह युद्ध होता रहता था।

कल्हण यहाँ ब्राह्मणों के ... बन का वर्णन करता है। उनके ... कोप-

यियासुना वितस्तान्तर्यदा तेनावधीरितम् ।
तदा प्रभावात्ते तस्य तां धुनीमग्रतो व्यधुः ॥ १६३ ॥

१६३. वितस्ता गमनातुर राजा ने जब उनका तिरस्कार किया तो ब्राह्मणों ने अपने प्रभाव से वितस्ता[1] को राजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया ।

सेयं वितस्ता दृष्ट्वैनां भोजयास्मान्स तैरिति ।
उक्तोऽपि मायाविहितामज्ञासीत्सरिदाहृतिम् ॥ १६४ ॥

१६४. ब्राह्मणों ने कहा —' यह वही वितस्ता है । इसे देखकर अब हमें भोजन कराओ । उनके इस प्रकार कहने पर भी राजा ने नदी का लाया जाना माया[1] ही समझा ।

भोज्यं ददामि नाऽस्नातो विप्राः सर्पत सांप्रतम् ।
तेनेत्युक्तास्तमशपंस्ततः सर्पो भवेति ते ॥ १६५ ॥

१६५. ' विप्रो ! बिना स्नान किये मैं भोजन नहीं दूँगा । आप लोग इस समय सर्पत[1] होइये । ' राजा के इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणों ने शाप दिया —' तुम सर्प हो जाओ ।'

भोजन राजा कभी सम्हल नहीं सकता । यद्यपि सम्बन्धियों तथा अन्य कारणों से नष्ट राजाओं का पुनरुत्थान देखा गया है ।

१६३ (१) वितस्ता : कल्हण ब्राह्मणों के प्रभाव, चमत्कार तथा अलौकिक शक्ति का यहाँ उल्लेख करता है । प्रतीत होता है । राजा किंचित् हठी था । वह ब्राह्मणों की शक्ति पर विशेष विश्वास नहीं करता था । अतएव उसने उपेक्षा भाव यहाँ प्रकट किया है ।

१६४ (१) माया : अलबेरूनी ने कश्मीर के ब्राह्मणों के चमत्कार का वर्णन किया है । वह कहता है कि कश्मीरी जड़ खिलौनों तथा प्रतिमाओं को सजीव प्राणी की तरह चला देते थे । मैंने इसका यथा स्थान विस्तृत वर्णन किया है ।

निस्सन्देह योग तथा सिद्धियों द्वारा बहुत कुछ अनहोनी बातें प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती हैं । ब्राह्मणों के इस चमत्कार को देखकर भी राजा ने विशेष महत्त्व नहीं दिया । क्योंकि वह ब्राह्मणों की माया का उसे खेल समझता था ।

विप्रों तथा राजा के संवादों से प्रकट होता है कि ब्राह्मण भोजन पाने के लिए जिद कर रहे थे । और राजा भी स्नान के पश्चात् ही भोजन देने का हठकर बैठा था । यह ध्यान देने की बात है कि राजा ने भोजन देना अस्वीकार नहीं किया था । वह श्राद्ध निमित्त स्नान के पश्चात् देने पर हठ किया था । कल्हण स्वयं ब्राह्मण था । अतएव उसने यहाँ ब्राह्मणों की प्रतिभा दिखाने का स्वाभाविक प्रयास किया है ।

१६५ (१) सर्पत : कल्हण ने यहाँ अपनी कविप्रतिभा का परिचय दिया है । पूर्व पद में 'सर्पत सांप्रतम्' तथा उत्तर पद में 'सर्प' शब्द का प्रयोग कर अनुप्रास बैठाया । राजा ने उन्हें जैसे रेंगते हुए चले जाने के लिये कहा । उनका तिरस्कार किया । उस तिरस्कार से क्रुद्ध होकर राजा के ही 'सर्पत' शब्द को पकड़ कर 'सर्प' हो जाने का शाप दिया । मनुष्य को सर्प रूप परिणत कर देना यह कोई नयी बात नहीं थी । इसके और भी प्रमाण पुरा साहित्य में मिलते हैं ।

नहुष जब इन्द्र पद पर आसीन हुए थे तो उन्होंने इन्द्राणी को प्राप्त करने का प्रयास किया । सप्तर्षियों से पालकी उठवायी । इन्द्राणी मिलन की उतावली में सत्वर गति से चलने के लिए 'सर्प-सर्प' कहने लगे ।

अशेषमेकेनैवाह्ना श्रुत्वा रामायणं तव।
शापस्य शान्तिर्भवितेत्यूचिरे ते प्रसादिताः ॥ १६६॥

१६६. राजा द्वारा प्रसन्न हुए ब्राह्मणों ने कहा —'सम्पूर्ण रामायण एक दिन मे सुनने पर शाप शान्त[१] हो जायगा।'

स दामोदरसूदान्तर्धावन्दूरमुदन्यया।
शापोष्णश्वासधूमेन जनैरद्यापि लक्ष्यते ॥ १६७ ॥

१६७. आज भी लोग उस शाप ग्रस्त[१] राजा को उसके उष्णश्वास के धूम से पहचानते हैं जो जल निमित्त दामोदर सूद में इधर उधर प्यासा घूमता रहता है।

अथाभवन्स्वनामाङ्कपुरत्रयविधायिनः।
हुष्कजुष्ककनिष्काख्यास्त्रयस्तत्रैव पार्थिवाः ॥ १६८ ॥

१६८. तत्पश्चात् वही पर तीन राजा हुष्क[१] जुष्क तथा कनिष्क नाम के हुए जिन्होने अपने नाम पर तीन नगर (हुष्कपुर, जुष्कपुर, कनिष्कपुर) बसाये।

सप्तर्पियो मे अगस्त्य ऋषि ने क्रोधित होकर शाप दिया —'तू सर्प हो जाय।' राजा नहुष सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पडे। अगस्त्य को उसकी दशा पर दया आयी। उन्होने शाप शान्ति के लिये कहा—युधिष्ठिर के राज्य काल में तुम्हे सर्प योनि से मुक्ति प्राप्त होगी। (मे० उ० . ११ : १७' अनु० : १५६-१५७ ' आ० ६ . १८ : २—३ ' : भा० ६ : ७—८ ' विष्णु० : १ :२४)

राजा नहुष तथा राजा दामोदर द्वितीय दोनो ब्राह्मणों के कारण पतित होकर सर्प गति पाये थे। राजा नहुष तथा राजा दामोदर दोनो को ब्राह्मणों का कोपभाजन बनना पड़ा था। उनके कारण राज्य के साथ ही साथ मनुष्य योनि त्याग कर सर्प होना पडा।

१६६ (१) शाप : ऋषि, मुनि, देवी, देवता, सक्षम ब्राह्मण क्रोधित होने पर शाप देते हैं। शाप देने वाले की भी शक्ति क्षय होती है। शाप सर्वदा क्रोध के कारण दिया जाता हैं। आन्तरिक क्रोध का शाप बाहरी साकार रूप है। क्रोध स्वत. अवगुण तथा दोप है। प्रायः देखा गया है कि शाप देने वाला ही शाप शान्ति का उपाय भी बताता है। नहुप के शापित होने पर अगस्त्य ने शाप शमन का उपाय बताया था। यहाँ पर भी शाप देने वाले विप्रो ने ही उसके शान्ति का उपाय राजा को बताया था।

१६७ (१) शापग्रस्त : कल्हण के समय तक यह कहावत प्रचलित थी। दामोदर रुद्र में उसे सर्प स्वरूप व्याकुल तृषित गर्म श्वास लेते हुए लोग देखते है। इससे दो बातें प्रकट होती है। मालूम होता है राजा शाप मुक्त नही हुआ था। कल्हण उसकी मृत्यु, राज्य काल, उसके उत्तराधिकारियों के विषय में कुछ नही लिखता। इस विषय पर कही से और प्रकाश अभी तक नही पड़ सका है। स्थानीय वृद्ध ग्रामीण इस प्रकार की कथा कहते हैं। परन्तु नयी पीढी उन्हें भूल रही हैं। कल्हण ब्राह्मणों के शाप के अद्भुत प्रभाव की धाक बैठाता है। चेतावनी देता है। विप्र के विमुख होने पर परिणाम भयंकर होता है। कहावत है—दुर्भाग्य गर्म श्वास पैदा करती है। और सौभाग्य उसे शीतल बना देता है।

१६८ (१) आइने अकबरी में उन्हें ह्येशेक, जेशेक, केनशेक तीन भाई कहा गया है। अबुल

फजल कहता है। तातार में एक कथा प्रचलित है। बोधुज तुरुष्क राजा ने बोखारा, बलख, इमोर, काबुल तथा कश्मीर जीता था। उस समय कश्मीर का राजा जगम् था। उसने कश्मीर में जर्कन नामक धर्म चलाया। यह घटना ई० पू० २८०० वर्ष पहले घटी थी।

हसन इनके सम्बन्ध में रत्नाकर पुराण का सन्दर्भ देकर एक विचित्र बात कहता है— 'तुर्किस्तान के शाहजादों में से ३ आदमी हुष्क, जुष्क, कनिष्क राजा सन्दिमान के इस तख्त पर हमराह थे। इस बिना पर अपनी पैदाइश खसलत के बमूजिब इन तीनों शहजादों को मुल्क कश्मीर बतौर जागीर बख्शा। इस मुल्क के बहुत से लोगों को अपना गरवेदा बना लिया। एक हफ्ता तक कश्मीर की शैर वह सपाहत अख्तियार कर वापसी अख्तियार किया।'

रत्नागर किंवा रत्नाकर पुराण की गाथा को मिथ्या करार देने के लिये यहाँ एक और प्रमाण उपस्थित हो जाता है। हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क के कालों का निर्धारण हो चुका है। कनिष्क (७८-१०१ ई०) ईसा के पश्चात् हुआ था। हजरत सुलेमान का काल ईसा से ९७० वर्ष पूर्व है। हजरत सुलेमान का काल ९७० ईसा पूर्व से ९३३ वर्ष ईसा पूर्व निर्धारित हो चुका है। सन्धिमति, सन्धिमान, सन्धिमदि एक ही व्यक्ति के नाम हैं। अभिमन्यु के काल तथा सन्धिमान के काल में लगभग ११०० वर्षों का अन्तर है। सम्राट् कनिष्क तथा हजरत सुलेमान के समय में १०४८ वर्षों का अन्तर है। अभिमन्यु, हुष्क, जुष्क, कनिष्क, सन्धिमत तथा हजरत सुलेमान जिन्हें एक ही समय में रखने का प्रयास किया है। उनके ऐतिहासिक कालों में शताब्दियों का अन्तर है। वे एक समय नहीं हुए थे। उनका एक काल में होना ऐतिहासिक तथ्यों के परे है। रत्नाकर पुराण की कपोल कल्पना, उसके अनुवाद तथा उसके अस्तित्व में गम्भीर सन्देह प्रकट करने का अकाट्य प्रमाण उपस्थित करती है।

हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क को सन्दिमान अर्थात् हजरत सुलेमान ने काश्मीर का राज्य जागीर के रूप में दिया। उन्हें तुर्किस्तान से साथ लाकर, गद्दी पर बैठाया। इतिहास इसकी साक्षी देने में असमर्थता प्रकट करता है। हुष्क, जुष्क, तथा कनिष्क तीनों को काश्मीर राज की जागीर दी गयी और तीनों एक साथ राज्य किस प्रकार कर लिये ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं के विरुद्ध होते हुए भी मानवीय प्रकृति के तथा व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव नहीं है। एक साथ तीन राजा सिंहासन पर बैठें। राज्य करें, वह भी जहाँ राज्य प्रणाली राजतंत्र पर आधारित हो इतिहास इस प्रकार का उदाहरण भूत वर्तमान तथा किसी काल में देने में असमर्थ है। गणतन्त्र शासन प्रणाली में यह सम्भव हो सकता है। जैसे कि रोम में दो काउंसिलों की प्रथा थी।

हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क तीनों तीन विभिन्न व्यक्ति थे। तीनों का राज्यकाल भिन्न था। अतएव हसन तथा रत्नाकर पुराण को गाथा मनगढ़न्त कपोल कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

हजरत सुलेमान और कनिष्कादि : हसन अपने इतिहास में लिखता है—यह तीनों राजे हजरत सुलेमान की मदद से क० १७९८ संवत् में हकूमत कश्मीर पर मुन्तकिल हो गये। मखलूक खुदा को अपने अदल व इन्साफ और सखावत से दिल खुश किया। इन तीनों ने तीन गाँव आबाद किये। चुनाचः हुष्क ने मौजा अशकूरा, कनिष्क ने परगना वहो में कांपपुरा और जुष्क ने परगना काक में मौजा जकरो जंजी आखराजल करने मौजा जकरों की आबादी के लिए, सन्दलार से पानी की एक नहर जारी की। मजकूरह बाला तीनों राजाओं ने इकतालीस साल इत्तहाई, इत्तफाक व इत्तहाद से, हकूमत की। और बहुत से लोगों को अपने मजहब का गरवीदा बनाया। इसके पहले एक शख्स शाख सहम

नामी ने डेढ़ सौ साल से लेकर इनके वक्त तक खिता कश्मीर में बुद्धमत का प्रचार किया था और बहुत से लोगों को इस मज़हब में दाखिल कर लिया था। उसके पैरोकारों में एक शख्स नागसेन ने मौजा हाल्न में बुद्धमत के प्रचार में बदिल वजान कोशिश की थी। उन्हीं दिनों बरहमनों और जैनियों के मा बैन मज़हबी मुआमलात पर सख्त झगड़ा बरपा हुए जिससे जनबेन में सख्त खून रेंजी हुई। हुष्क और कनिष्क के पास इन झगड़ों को दबाने के लिए काफी फौज न थी। इसलिए वह इस मुआमला (हुकूमत) के चलाने से आजिज़ रहे। इसलिए तमाम बरहमनों के इत्तफाक़ राय से अभिमन्यु जो राजा वीरमचन्द की औलाद से था और परगना दाच्छेन पारह में जागरी रखता था। तख्त सल्तनत पर बैठा। हुष्क, कनिष्क और जुष्क हुकूमत से अलग कर दिये गये। (पृष्ठ ४२–४३)

उक्त बातें मनगढंत हैं। हज़रत सुलेमान ने अगर इन लोगों को गद्दी पर बैठाया तो उनको भगवान् बुद्ध के समय या उनके पश्चात् होना चाहिए। परन्तु भगवान् बुद्ध हज़रत सुलेमान के ४१६ वर्ष पश्चात् हुए थे। उनके जीवन में शताब्दियों का अन्तर है। बाइबिल के हज़रत सोलेमन और कुरान शरीफ़ के हज़रत सुलेमान एक ही व्यक्ति हैं। कनिष्क का काल सन् ईसवी की पहली शताब्दी है। कनिष्क और भगवान् बुद्ध के समयों में चार शताब्दियों का अन्तर है। कनिष्क के समय में तृतीय बुद्ध परिषद कश्मीर में हुई थी। अतएव कनिष्क को हज़रत सुलेमान से जोड़ना इतिहास की सत्यता, तथा सिद्ध घटनाओं, तथ्यों और काल निर्णय से परे जाना होगा।

छिन्नशृंखलाः

कल्हण की इतिहास शृंखला यहाँ टूट जाती है। जलौक के पश्चात् दामोदर द्वितीय तत्पश्चात् वह हुष्क, जुष्क, कनिष्क का उल्लेख करता है। दामोदर द्वितीय से उक्त राजाओं के कालों में शताब्दियों का अन्तर पड़ता है। कल्हण ने इन तीनों राजाओं का वर्णन छविल्लाकर के आधार पर किया है। (रा० त० १:२०)

कल्हण यहाँ मौन हो जाता है। इस लम्बे काल में कश्मीर में कितने राजा हुए। कश्मीर मण्डल की क्या अवस्था थी ? कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

अशोक के पश्चात् लगभग अड़तालीस वर्षों तक मौर्य वंश का राज्य ईसा पूर्व १८४ वर्ष तक था। मौर्य वंश के पश्चात् ईसा पूर्व १८५ वर्ष में शुंग वंश का राज्य पाटलीपुत्र में हुआ। कनिष्क का काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है।

जलौक तथा दामोदर का राज्य काल कल्हण ने नहीं दिया है। यदि उन दोनों का सम्मिलित राज्य काल पचास से साठ वर्ष भी मान लें तो दामोदर और कनिष्क के बीच कम से कम एक शताब्दी का अन्तर पड़ जाता है।

कल्हण स्पष्ट कहता है। जलौक के पश्चात् दामोदर द्वितीय राजा हुआ। परन्तु दामोदर द्वितीय के पश्चात् कश्मीर मण्डल में कौन राजा हुआ उसपर कुछ प्रकाश नहीं डालता। इस शताब्दी का इतिहास अभी तक अन्धकार की गोद में है। जलौक की वंश परम्परा लुप्त हुई। दामोदर राजा हुआ। प्रतीत होता है कि दामोदर का वंश भी लुप्त हो गया था। दामोदर के शाप ग्रस्त होने पर क्या घटनाएँ घटी कुछ पता नहीं चलता। दामोदर ने रामायण सुनकर प्रायश्चित्त किया या नहीं यह भी सन्दिग्ध है। वह सर्प हो गया। सर्प तुल्य गर्म श्वास लेता था। इससे यही प्रकट होता है। उसने प्रायश्चित्त शायद नहीं किया। उसके वंश में कोई था या नहीं। उसके सर्प होने पर कश्मीर की क्या अवस्था हुई सब कुछ लुप्त है। क्योंकि कल्हण ने ५२ लुप्त राजाओं में से केवल पाँच राजा अर्थात् अशोक से अभिमन्यु यथा जलौक, हुष्क, जुष्क, कनिष्क तथा अभिमन्यु का वर्णन किया है। अतएव इनकी काल गणना अमान्य है। इन दोनों राजाओं का क्रम भी

गलत दिया गया। इस पर प्रकाश परिशिष्ट 'कुशान राजा' में डाला गया है।

कुशान वंशी किस प्रकार काश्मीर के राजा हुए कल्हण मौन है। वह दामोदर द्वितीय के पश्चात् सहसा कुशान वंशीय राजाओं का उल्लेख करता है। कोई कारण भी नही उपस्थित करता कि वह लम्बी राजाओ की शृंखला का जो दामोदर द्वितीय से कुशान वंशीय राजाओं तक हुए थे उल्लेख क्यों नही करता। प्रतीत होता है कश्मीर में लिखित, अलिखित कोई सामग्री प्राप्त नहीं थी जिसके आधार पर वह एक शताब्दी के राजाओं तथा कश्मीर की घटनाओ पर प्रकाश डालता।

(२) हुष्क : मथुरा के लेख से हुष्क राजा हविष्क प्रमाणित हुआ है। परिशिष्ट 'कुशान वंश' द्रष्टव्य है।

(३) जुष्क : जुष्क राजा वास्तव में कुशान राजा वशिष्क था। परिशिष्ट 'कुशान वंश' द्रष्टव्य है।

(४) कनिष्क : परिशिष्ट 'कुशान वंश' द्रष्टव्य है।

(५) हुष्कपुर : वर्तमान उष्कुर गाँव है। यह ग्राम बारहमूला से २ मील दक्षिण-पूर्व वितस्ता के वाम तट पर स्थित है। बारहमूला के डाक बंगला से आध मील पर है। कल्हण ने इसे वाराह क्षेत्र में कहा है। (रा० त० ५:२५९, ६:१८६, ७:१३११, ८:३६०, ७१८, ८२२, ९४४)

यहाँ ललितादित्य ने विहार तथा मन्दिर निर्माण कराया था (रा० त० ४:१८८)। कश्मीर के पश्चिमी पत्थरों से बने द्वार से प्रवेश करने पर यही हुएनसांग ठहरा था (हुएनसांग :१:२०) अल्बेरुनी ने इसे बारहमूला के दूसरी तरफ लिखा है। (इण्डिया पृष्ठ १:२०७)। अबूरिहान उष्कर और बारहमूला को मिला दिया है। (फग मेण्टस आफ अरब पृष्ठ :११६)

बारहमूला के समीप उष्कर ग्राम वितस्ता के वाम पार्श्व में है। यहाँ दो चीजें दर्शनीय हैं। एक ऊँचा टीला उष्कर ग्राम के पास है। मैं जिस समय पहुँचा था यहाँ भारतीय फौज की छावनी थी। छावनी के फाटक तथा ऊँचे ढूहा के मध्य से बारहमूला ऋषी बाबा की सड़क है। वह सड़क बारहमूला से बाबा ऋषी जाती है।

ढूहा पर एक भीमकाय शिवलिंग है। लगभग ६ फीट ऊँचा है। मेरे पास फीता नही था। अतएव ठीक नाप नही दे सकता। शिव लिंग में एक बाण बना है। बाण की नोक मूर्धा से प्रत्यंचा नीचे की तरफ होती भद्रपीठ तक चली गयी है। लिंग का भद्रपीठ चौकोर है। लिंग में बाण तथा यज्ञोपवीत तुल्य प्रत्यंचा बना मैंने अब तक कहीं किसी लिंग में नहीं देखा है। इस लिंग का नाम क्या था। कहना कठिन है। बाण चिह्न अंकित होने के कारण 'बाणेश्वर' नाम रखा जा सकता है। इस समय केवल लिंग अकेला गडा है। यहाँ न तो कोई मन्दिर है न किसी प्रकार का ध्वंसावशेष। लिंग की पूजा भी नही होती। बाणेश्वर लिंग होना असम्भव नही है। बाणेश्वर का मन्दिर रतलाम स्टेशन से ४४ मील पर स्थापित है। यह स्थान बाणासुर की राजधानी थी। कथा है कि बाणासुर ने बाणेश्वर लिंग की स्थापना की थी। संभव है। इस ढूहा पर कभी मन्दिर था वह तोड़ दिया गया। अब उसका ध्वंसावशेष मात्र रह गया है। ढूहा खोदने पर यहाँ के स्थान पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। यहाँ की ईंट आबादी पास होने के कारण गाँव वाले उठा ले गये हो। केवल मिट्टी का टीला मात्र शेष रह गया है।

उष्कर ग्राम में, बारहमूला स्कूल के प्लेग्राउण्ड के पीछे मुकुलित कमल शैली के स्तूप का भग्नावशेष है। परिहासपुर तथा उष्कर दोनों स्तूपों की परिकल्पना एक जैसी है। इस समय यह स्थान तार से घेर दिया गया है। बड़ी-बड़ी घास तथा जंगली खर-

पात उगे थे। उनसे मेरा पैर बुरी तरह छिला गया। किसी प्रकार अन्दर पहुँचा।

स्तूप का अधिष्ठान मात्र शेष रह गया है। स्तूप की चारों दिशाओं में सीढ़ियाँ बनी हैं। दो सीढ़ियों के बीच तीन त्रिकोणीय अधिष्ठान के अंग किंवा कमल की मुकुलित एक एक पगडी हैं। इस समय यहाँ यत्र-तत्र पड़े कुछ अलंकृत शिलाखण्डों के अतिरिक्त और कोई दर्शनीय वस्तु शेष नहीं रह गयी है। स्तूप के पृष्ठ भाग में एक तरफ पहाड़ी है। दूसरी तरफ बारहमूला शहर वितस्ता के वाम तट पर है। बारहमूला इस समय समृद्धिशाली नगर हो गया है। भारतीय सेना की छावनी के कारण खूब चहल-पहल रहती है।

हुष्कर में एकाकी एक स्तूप और उसके परिवेष्ठित दिवाल का अंश शेष रह गया है। खनन कार्य में यहाँ से प्राप्त खिलौने प्रतापसिंह संग्रहालय श्रीनगर कश्मीर में संगृहीत हैं। वे दिवाल के उत्तरीय दिशा में एकाध फीट की दूरी पर गड़े मिले थे। कश्मीर में मूर्तिभंग की शैली भारत जैसी ही थी। मन्दिर तथा मूर्तियों को खण्डित करने की एक शैली प्रचलित हो गयी थी। मूर्तियों के नाक तथा हाथ अवश्य खण्डित कर दिये जाते थे। खण्डित मूर्तियों को या तो किसी मसजिद की सीढ़ियों में लगा दिया जाता था कि लोगों के पैरों तले पड़ती अपनी असमर्थता, दयनीय दशा, शक्तिहीनता प्रकट करती रहीं अथवा तोड़कर कहीं मुर्दों की तरह दफना दी जाती थी।

हुष्कर से प्राप्त खण्डित मूर्तियों पर गन्धार शैली की छाप है। मूर्तियाँ कश्मीर के पुराकालीन मूर्तिकला तथा उनके स्थापत्य शैली पर प्रकाश डालती हैं।

प्रताप सिंह संग्रहालय की भगवान् बुद्ध की (बी . सी . १ .) मूर्ति ध्यान मुद्रा प्रदर्शित करती है। भगवान् पद्मासन लगाकर बैठे हैं। त्रिचीवर धारण किये हैं।

मूर्ति बी . सी . २ गान्धार परवर्ती काल की मूर्ति कला पर प्रकाश डालती है। यह एक मस्तक मात्र है। अधोभाग का पता नहीं चलता है। मूर्ति भग्न है। मूर्धा पर उर्म है।

मूर्ति बी . सी . ३ भग्न मस्तक है। नाक तोड़ दिया गया है। मस्तक के उर्म खण्डित हैं। मुख अण्डाकार है।

मूर्ति बी . सी . ४ एक ब्राह्मण का मस्तक है। तत्कालीन लोगों की वेशभूषा पर प्रकाश डालती है। मूर्ति कला सजीव है। दाढ़ी-मूँछ है। केश पीछे बँधे हैं। बाल कंघी से सँवारे गये हैं।

मूर्ति बी . सी . १० केश विन्यास का उत्कृष्ट नमूना है। घुँघराले केशों में कान ढका है। मूर्धा पर से केश चारों तरफ फैले हैं। उन्हें सर पर मुक्ताशोभित सूक्ष्म वस्त्र से बाँधा गया है। आज कल केशों को संयत रखने के लिये रूमाल या पट्टी से प्राय बाल बाँध लिये जाते हैं। कश्मीर के खेतों पर काम करने वाली नारियों के सर पर इसी प्रकार के वस्त्रों से बाल बाँधा मुझे दिखाई पड़ा। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण कश्मीर की नारियों के साज-शृंगार तथा वेशभूषा में आमूल परिवर्तन होने लगा है। मूर्ति की मुखाकृति कोमल है। यह भग्न मस्तक बोधिसत्व का है।

मूर्ति बी . सी . ११ बोधिसत्व का भग्न मस्तक है। उस मस्तक पर अलंकृत मुकुट है। यह मुकुट ब्रिटिश राजाओं के मुकुट से कुछ मिलता है।

मस्तक बी. सी. १५ : एक युवक का है। उस मस्तक का, दाढ़ी-मूँछ, सब कुछ मुड़ा है। अधरों पर आध्यात्मिक मुस्कान है। आकृति भव्य तथा प्रभावोत्पादक है। कलाकार ने जैसे अन्तर की मनोवृत्तियों को मुखाकृति में उरेह दिया है।

मूर्ति बी. सी. १८ : अत्यन्त उत्कृष्ट कलाकृति यह एक उपासिका का खण्डित मस्तक है।

अधरों पर गम्भीर मुद्रा के साथ आध्यात्मिकता मिश्रित मुसकान है। भरी पुरी मुखाकृति है। कंघी से सँवारे केश में सीमंत मन मे अनायास पवित्र भाव उत्पन्न करते है। मिथुन, काम एवं भौतिक सौन्दर्य प्रदर्शक मुद्रा के यह विपरीत मुद्रा है तथा कलाकृति है।

मूर्ति बी. सी. १९: भग्न मस्तक है। नासिका, भौ, अधरों पर की मुसकान देखते बनती है। मस्तक पर बाल कढे हुए है। मध्य भाग से कानों के ऊपर होते हुए कंघी किये हुए केश पीछे की ओर घूमे है।

खण्डित पीन पयोधर की क्रम संख्या बी. सी. ३५ है। स्तन पर कुच बन्ध लगा है। कण्ठ में मुक्ता माला के अतिरिक्त स्तनों पर दूसरी मुक्तामाला सुशोभित है। कामिनी के शृंगार के रूप को प्रकट करती है। तत्कालीन काश्मीर के लोग कितने शृंगार तथा कला के प्रिय थे। उस पर प्रकाश डालती है।

मस्तक खण्ड बी. सी. १६: एक भिक्षु का है। उसकी दाढी-मूंछ तो मुड़ी है परन्तु मस्तक पर बाल कढे हैं। यह तत्कालीन काश्मीरी लोगों के बाल रखने की एक शैली पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार के बाल काटने को बनारस की तरफ 'खत' काटना, कहते थे। मेरे बचपन में पुराने लोग 'खत' कटाते थे। मेरा भी बाल बचपन मे इसी ढंग पर काटा जाता था। इस समय पाश्चात्य शैली पर बाल काटा जाने लगा है। पुरानी बातें लोग भूल रहे है।

मूर्ति खण्ड बी. सी. ३४: विचित्र मूर्ति है। उसका कटि तथा ऊरु मात्र शेष रह गया है। इस मूर्ति का शिश्न तथा अण्डकोष खुला है। कन्धा से आता कुर्ता कटि प्रदेश तक रह गया है। कुर्ता के छोर पर मुक्ता पंक्ति गुथी है। यह किसी श्वेताम्बर जैन सन्त की मूर्ति हो सकती है।

इसके अतिरिक्त वहाँ से हाथ, कलाई, पद, भुजाओं के खण्डित भाग मिले है। उन्हे देखने से तत्कालीन वेशभूषा तथा विभिन्न प्रकार के प्रायोगिक अलंकारो पर प्रकाश पडता है। कंकण, चूड़ियाँ, भुजबन्द पहनने की चाल थी। कलाई की उँगलियाँ बहुत ही सुन्दर तथा लहर को तरह बनायी गयी है।

(६) जुष्कपुर: श्रीनगर के उत्तर में एक बड़ा ग्राम है। इसका वर्तमान नाम जुकुर है। हरि पर्वत से ४ मील दूर है। यहाँ के प्राचीन ध्वंसावशेषों के शिलाखण्ड, मजारों, कब्रिस्तानों तथा मसजिदो में लगे मैने देखा है। बहुत पत्थर गढ़कर नवीन इमारतों में लगाये गये है। अतएव उनका पूर्व रूप निश्चित करना दिन पर दिन कठिन होता जायेगा। जनरल श्री कनिंघम को सन् १८४७ में तथा श्री स्तीन को वहाँ बहुत शिलाखण्ड मिले थे।

जनरल कनिंघम ने सन् १८४७ ई० नवम्बर मास मे वहाँ की यात्रा की थी। उन्हें उस स्थान पर बहुत अधिक संख्या में पत्थर के स्तम्भ मिले थे। कुछ कश्मीरी पुरातन शैली से अलंकृत पत्थर थे। सबका उपयोग तराश कर मसजिदों तथा जियारतो में किया गया था। (एनिसिएण्ट ज्योग्रेफी पृष्ठ ८५)

जनरल कनिंघम ने जिन स्तम्भों तथा पत्थरों को देखा था वे निस्सन्देह जुष्कपुर में निर्मित विहारों के अवशेष थे। अगले श्लोक से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उसने जुष्कपुर में विहार का निर्माण किया था। जुष्कपुर के उत्तर देवीपुर, पूर्व में तालवल, पश्चिम प्राचीन अमरेश्वर, क्वरहर और धुर दक्षिण डंगरपुर तथा दूर पर हरिपर्वत पड़ता है।

(७) कनिष्कपुर: वर्तमान कानिशपुर है। यह श्रीनगर-बारहमूला सड़क पर स्थित है। ग्राम के पास एक पुराना टीला है। वहाँ से अलंकृत पत्थर मिले थे। कहा जाता है कि राजा कनिष्क का यहाँ निवासस्थान था। इस स्थान पर प्राचीन ध्वंसावशेषो के शिलाखण्ड तथा मुद्राएँ मिलती है, जनरल कनिंघम ने १८४७ में यहा की यात्रा की थी। प्राचीन ध्वंसावशेषो के शिलाखण्डादि उन्हें जियारतो तथा कब्रो में लगे मिले थे। बहुत अधिक संख्या मे इस प्रकार के ध्वंसावशेष बिखरे थे।

श्री स्तीन लिखते है। पण्डित साहिबराम के तीर्थ मे इसका मूल नाम कनिष्कपुर दिया गया है।

सविहारस्य निर्माता जुष्को जुष्कपुरस्य यः ।
जयस्वामिपुरस्यापि शुद्धधीः संविधायकः ॥ १६९ ॥

१६९. उस शुद्धधी जुष्क राजा ने जुष्कपुर के विहार का निर्माण कराया। वह जयस्वामीपुर[१] का भी निर्माता था।

ते तुरुष्कान्वयोद्भूता अपि पुण्याश्रया नृपाः ।
शुष्कलेत्रादिदेशेषु मठचैत्यादि चक्रिरे ॥ १७० ॥

१७०. तुरुष्क[१] वंश में उद्भूत होते हुए भी इन पुण्यात्मा नृपों ने शुष्कलेत्रादि[२] स्थलों में मठ, चैत्यादि बनवाया।

श्री पण्डित काशीराम से श्री स्तीन ने सन् १८९१ ई० में जाँच कराया था। वहाँ के स्थानीय ब्राह्मणों की एक प्रचलित परम्परा से ज्ञात हुआ था। यहाँ कनिष्ठराज का राज्य था।

यह स्थान पीर पंचाल जाने वाले दर्रा मार्ग पर श्रीनगर से १० मिल दक्षिण स्थित है। यहाँ पर एक छोटी सराय है उसे कामपुर सराय कहते हैं।

यह स्थान वितस्ता नदी से लगभग ९ मील पूर्व है। इसके दक्षिण वितस्ता पर बारहमूला पड़ता है इसके उत्तर पूर्व रावटपुर तथा पूर्व दक्षिण सैय्यद भोकल की जियारत है।

१६९ (१) जयस्वामीपुर : जयस्वामीपुर का पता अभी नहीं चल सका है। इस पर अनुसन्धान की आवश्यकता है। जयस्वामी विष्णु का नाम है। प्रतीत होता है। जष्क का झुकाव वैष्णव धर्म की ओर हो गया था। अन्यथा वह जयस्वामी शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता। उसने जुष्कपुर में विहारों का भी निर्माण कराया था। इससे प्रतीत होता है। राजा सहिष्णु था। वह बौद्ध तथा वैष्णव दोनों धर्मों का आदर करता था।

१७० (१) तुरुष्क : कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारी तुर्कवंशीय थे। यह मान्यता प्राचीन काल में प्रचलित रही है। अल्बेरुनी ने भी यही कहा है (२-१०)। तुरुष शब्द ऋग्वेद (२:४६:३२) में दास शब्द के साथ आया है। आर्येतर जाति किंवा दास हुए आर्य के लिये सम्भवतः प्रयोग होता रहा है। पुराणों में तुषार शब्द तुरुष्क के लिये भी आया है। भागवत के पाठ में तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। इनका उल्लेख यवनादि राजाओं के साथ किया गया है। (वायुपुराण ९९:३६०:६२, मत्स्य पुराण २७२:१९:२१ ब्रह्माण्ड पुराण ३:७४:१७२—१७६, भागवत पुराण १२:१:३०।)

पुराणों में उल्लेख आया है :

काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंग लौकिकाः ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुला बाह्यतो नराः ॥
मारकण्डे पुराण ५७:३९

'बाह्यतो नराः' शब्द महत्त्व रखता है। इस ओर संकेत करता है कि वे भारत के बाहर से आने वाले लोग थे।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामन पुराणों के अनुसार कम्बोज, कश्मीर के राजौरी (राजपुरी) उपत्यका से हिन्दूकुश पर्वतमाला तक रहने वालों के लिये प्रयुक्त किया गया है। कुछ विद्वान् कम्बोज क्षेत्र को बदख्शा के समीप हिन्दूकुश के पार तक ले जाते हैं। दरद-कृष्णगंगा के अर्ध भाग वाली उपत्यका अर्थात् उत्तरी कश्मीर में रहते हैं उसे वर्तमान काल में दर्दिस्तान कहते हैं।

कम्बोज और दरद नाम के साथ-साथ आने से यह प्रतीत होता है कि दोनों क्षेत्र परस्पर मिले थे। (मत्स्य पुराण २७३; वायु पुराण २.१७; ब्रह्माण्ड पुराण ३:७४)

'चीनाश्चैव तुषाराश्च' के प्रयोग से मालूम होता है कि कम्बोज तथा दरद की तरह चीन तथा तुषार देश परस्पर मिले थे। दोनों की सीमाएँ एक साथ मिलती थी अन्यथा युगल प्रयोग न किया गया होता।

मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराणों में 'चीनाश्चैव तुषाराश्च' एक साथ उल्लेख किया गया है। वायु पुराण में 'चीनाश्चैव तुषाराश्च' का उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण में 'चीनाश्चैव तुषाराश्च' का उल्लेख है। वामन पुराण में 'बेरणाश्चैव तुषाराश्च' शब्द का उल्लेख किया गया है। अरबों ने तुखारिस्तान का वर्णन किया है। उसमे बलख सम्मिलित हो जाता है। वक्षु अर्थात् आमू दरया के मध्यवर्ती दोनों तटवर्ती अंचलों को लेता चला जाता है। यद्यपि आमू दरया के दक्षिण का अंचल तुषार देश में आता है। वर्तमान तुर्किस्तान तुषार अर्थात् तुर्कों का अंचल कहा जा सकता है।

पुराणों में उल्लेख मिलता है :

साम्रास्तुषाराद् लम्पाकान् पह्लवान् पारदान् शकान्।
एतान् जनपदांश्चक्षुः प्लावयन्ति गतोदधिम्॥

वायु पुराण में 'सान्ध्रास्तुपारास्तम्पाकान् तथा 'साम्रान्तुषारास्तम्पकान्' आया है। मार्कण्डेय पुराण में 'तुषारान् बर्बराकारान्' तथा 'तुषारान् बर्बराकान्' का प्रयोग किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में 'साम्रास्तुषारान् लम्पाकान्' का उल्लेख मिलता है।

तुखार तथा तुषार शब्द एक ही है। जाति के लिए तोषणी अथवा तोखरी शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णु पुराण (४:२४:५३) में तुरुष्क शब्द का उल्लेख करते हुए 'तुरुष्कारा मुण्डाश्च' कहा गया है। इस प्रकार तुखार, तुषार, तोखरी, तुरुष्क, तुर्क सब एक ही जाति के नाम हैं। केवल उच्चारण के भेद प्रकट करते हैं। महाभारत में तुषार तथा तुखार दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया गया है। तुषारवासियों को म्लेच्छ भी कहा गया है। (सभा पर्व ५०:१८५०)

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में वहाँ के निवासी आये थे तथा रसोई परोसने का कार्य करते दिखाई देते हैं। वन पर्व (५१:२५-२६, ५१:१९९१, १७७:२१०) में उल्लेख मिलता है। पाण्डव लोग गन्धमादन से द्वैत वन की ओर लौटते समय तुषार देश को पार कर राजा सुबाहु के नगर में पहुँचे थे। भीष्म पर्व (७५:२१) में तुषारों के युद्ध में भाग लेने का वर्णन मिलता है। तुषार जनपद के वीर गण भीष्म द्वारा निर्मित क्रौंच व्यूह के दक्षिण पार्श्व स्थान में व्यूह की रक्षा कर रहे थे। शान्ति पर्व (६५.२४२९) तुषारवासियों के निवास के विषय में कहा गया है। तुषारवासी म्लेच्छ मान्धाता के राज्य में निवास करते थे।

मान्धाता के विषय में पुराणों में कहा गया है कि इक्ष्वाकुवंश की १८वीं पीढ़ी में हुए थे। वे अपने पिता युवनाश्व की कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा मुचुकुन्द उनके पुत्र थे। मान्धाता चक्रवर्ती राजा थे। सात द्वीपों में उनका राज्य था। उनके राज्य विस्तार के विषय में कहा गया है।

यावत् सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते॥
(ब्रह्माण्ड पुराण ३.६३:६८-७२)

हरिवंश पुराण उनका शक, पह्लव, दरद, अन्य म्लेच्छ तथा दस्यु जातियों के साथ उल्लेख करता है।

स्ट्रेबो (९:५१५) कहता है कि ग्रीक अर्थात् यूनानियों के बलख से निकालने का श्रेय तोखरी जाति को भी है। यह स्थान तुर्किस्तान प्रतीत होता है। तोखरी जाति का स्थान हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर बताया गया है। वह तोखरी जाति का उल्लेख करता है जो वास्तव में तुषार अर्थात् तुर्किस्तान के तुर्क हैं। मार्कण्डेय पुराण (५७:३९) में तुषारों

का वर्णन है। उनका उल्लेख काम्बोज, दरद, बर्बर तथा चीनों के साथ आया है।

१५वीं शताब्दी तक संस्कृत लेखों में तुर्कों के लिए तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। मेवाड़ के राजा मोकल का विक्रम संवत् १४८५ के चित्तौड गढ़ के लेख में उल्लेख है कि राजा ने अंग, कामरूप, वेग, निषाद, चीन तथा तुरुष्कों पर विजय प्राप्त किया था। यह कवि का गौरव वर्णन है। ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। इसका महत्त्व केवल इसलिए है कि उस समय भारत में रहने वाले मुसलमानों के लिए तुरुष्क शब्द का प्रयोग होता था।

अपनी बाल्यावस्था की बातें मुझे याद हैं कि तुर्क शब्द का प्रयोग मुसलमानों के लिए गाँवों में होता था। तुर्की नाई, तुर्की कहार आदि लोग हिन्दू से मुसलमान हो गये थे। हिन्दू नाई तथा मुसलमान नाई में भेद जानने के लिए तुर्क शब्द लगा दिया जाता था।

(२) शुष्कलेत्र : कल्हण उक्त तीनों तुरुष्क राजाओं में किसी विशेष को शुष्कलेत्रादि क्षेत्रों में मठ, चैत्य, तथा उसी के सदृश अन्य निर्माण बनाने का उल्लेख करता है। अपितु उनका नाम सम्मिलित लेता है कि उन राजाओं ने निर्माण कराया।

वह ग्राम दुन्त परगना में हुकालेतर अथवा हुकालेतरी है। श्री स्तीन के निर्देश पर सन् १८९१ में पं० काशीराम ने यहाँ की यात्रा की थी। परन्तु उन्हें यहाँ कोई प्राचीन ध्वंसावशेष नहीं मिला।

यह स्थान श्रीनगर से लगभग १४ मिल दक्षिण पश्चिम है। दामोदर उद्र क्षेत्र के पश्चिम ओर किंचित् दक्षिण दिशा की ओर झुकता है। शुष्कलेत्र क्षेत्र के उत्तर में नागम, पूर्व में गुन्द, दक्षिण में पेत कूट, पश्चिम में सुन्दरा तथा लरबल है। स्थान के समीप छोटे छोटे नाले हैं।

चैत्य : चैत्य अमरकोश कार के अनुसार यज्ञशाला तथा आयतन होता है। परन्तु पालि में यह भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। इसका पालिरूप चेतीय है। 'चितायां भवः चैत्यः' अर्थ किया जाता है। चिता से इसे सम्बन्धित कर दिया गया है।

ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन परम्परा के अनुसार दिवंगत के पवित्र भस्म वा चिता स्थान के ऊपर स्मृति भवन, समाधि, तथा वृक्षों को लगाया जाता था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू तथा लाल-बहादुर शास्त्री के भस्मस्थान पर उद्यान बना दिये गये हैं। महात्मा गान्धी की समाधि तथा जवाहरलाल जी के चितास्थान में शान्ति वन दिल्ली में बन गया है। राजाओं के दिवंगत होने पर उनके राज्यों में छतरियाँ बना दी जाती है।

रामायण, महाभारत एवं भगवद्गीता में यह शब्द पावन वेदी, देवस्थान, प्रासाद एवं धार्मिक वृक्ष आदि के लिये प्रयुक्त हुआ है। 'देवस्थानेषु चैत्येषु' (महा ३:१९०: ६७) 'प्रासाद-गोपुरसभाचैत्य' (भाग ९।११२७) 'कच्चि-च्चैत्यशतैर्जुष्टः' (महा० वन० : १२२९) चैत्य शब्द प्राचीन शब्द है। भगवान् बुद्ध के समय में भी चैत्य के चापाल चैत्यादि पर्याय थे।

बौद्ध काल में अस्थि एवं चिता भस्मों पर चैत्य बनाने की परम्परा चल पड़ी थी। कालान्तर में चैत्य विशालकाय होकर स्तूपों का रूप ग्रहण कर लिये। श्रीलंका में इन्हें दागव जो संस्कृत शब्द धातुगर्भका अपभ्रंश है कहा जाता है। तिब्बती भाषा में दुंगतेन कहते हैं। बौद्ध स्थापत्य में चैत्य निर्माण की एक विशेष कला विकसित हुई थी। गिर्जाघर एवं चर्चों ने चैत्य शैली के उपासना गृहों की नकल की है। अजन्ता एलोरा एवं ईसा से पूर्व बने चैत्यों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है। उपासना भवन में जहाँ चर्च की वेदी तथा ईसा मसीह की मूर्ति एवं क्रास होता है वहीं पर बौद्ध उपासना स्थल में चैत्य तथा वेदी होती है। प्रारम्भ में चैत्य रामायण, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों के अनुसार

प्राज्ये राज्यक्षणे तेषां प्रायः कश्मीरमण्डलम् ।
भोज्यमास्ते स्म बौद्धानां प्रव्रज्योर्जिततेजसाम् ॥ १७१ ॥

१७१. प्रव्रज्या ज्योति[1] से बौद्ध उन शक्तिशाली राजाओं के विस्तृत राज्यकाल में कश्मीर मण्डल का प्रायः उपभोग करते थे ।

काष्ठ के होते थे। कालान्तर में वे पक्के पत्थर तथा ईंटा चूनों से बनने लगे ।

कनिष्क प्रसिद्ध बुद्ध चरित्र के लेखक अश्वघोष का संरक्षक था। कनिष्क के समय में अश्वघोष का होना कहा जाता है। चीनी भाषामें बुद्ध चरित्र का अनुवाद सन् ४२० ई० में हुआ था। एक मत है कि बुद्ध घोष ने किसी युद्ध में पाया था। उसे निवास स्थान तथा अध्ययन अध्यापन एवं लेखन की पूर्ण सुविधा दी थी। बुद्ध चरित्र काशी से प्रकाशित हो चुका है। कुछ भाग संस्कृत तथा कुछ हिन्दी में है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १७१ में 'कश्मीर' का 'काश्मीर' तथा 'स्म' का 'स' और 'च' पाठ भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) प्रव्रज्या : बौद्धों में दो वर्ग होते है। उपासक एवं भिक्षु। उपासक साधारण वेश भूषाधारी गृहस्थ होते हैं। प्रव्रज्या लेने वाला व्यक्ति गृह त्याग करता है। गृहस्थ धर्म त्याग करता है। सर दाढ़ी मुड़ाकर, संन्यासी वन चीवर धारण करता है। पिण्डपात, चीवर, शयनासन, ग्लान तथा प्रत्यय भिक्षुओं के चार निश्चय कहे जाते है। भिक्षा पात्र के अतिरिक्त उनके पास और कुछ नही होता। असंग्रही होते हैं। माला, गन्ध, विलेपन, अलंकार ऊँची शय्या, संगीत, सोना, चाँदी, आदि मे विरत रहते हैं। भिक्षा माँग कर भोजन करते हैं। भिक्षा माँगने की भी एक शैली है। भिक्षु किसी गृहस्थ के द्वार पर चुपचाप जाकर खड़ा हो जायगा। कुछ माँगेगा नहीं, याचना नहीं करेगा। यदि गृहस्थ ने उसके पात्र में कुछ भोज्य पदार्थ डाल दिया तो ले लेता है। अन्यथा वह लौट आता है। विहार में वृक्ष मूल, अथवा गुफा में आसन लगाता है।

संघ शासन में भिक्षु शामिल रहता है। संघ उसे दण्ड दे सकता है। संघ से निकाल सकता है। भिक्षु त्रिरत्न किंवा तीन वचनों, बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मम् शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि, कहकर तीनों की शरण लेता है। बुद्धधर्म में ब्रह्मचर्य पर अत्यधिक जोर दिया गया है। वे अपने कठोर आचरण से लोगों को प्रभावित करते है। उनका नियंत्रित जीवन आकर्षक होता है। वे मध्याह्न के पूर्व केवल एक बार भोजन करते है। मध्याह्न के पश्चात् भोज्य सामग्री ग्रहण नही करते। केवल पेय पदार्थ लेते हैं। सनातन धर्मी संन्यासी दण्ड धारण करते है। गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। परन्तु बौद्ध भिक्षु दण्डधारण नहीं करते। ऊपर से नीचे तक सुआच्छादित रहते हैं।

परिव्राजक के पाँच नाम होते है। (१) भिक्षु (२) परिव्राजक (३) कर्मन्दिन् (४) पाराशरिन् तथा (५) मस्करिन्। परिव्राजक और प्रव्रज्या के शाब्दिक अर्थ में भेद नही है। प्रव्रज्या का शाब्दिक अर्थ होता है। व्रज का अर्थ गमन होता है। प्र उपसर्ग विशेष लगाकर प्रव्रज्या शब्द बन जाता है। विशेषरूप से गृहत्याग करना यही साधारण अर्थ होता है।

बीस वर्ष से कम आयु का व्यक्ति उपासक हो सकता है। श्रमणेर हो सकता है। उसे एक आचार्य किंवा उपाध्याय के निश्चय में रहना पड़ता था। बीस वर्ष से ऊपर होने पर ही वह भिक्षु हो सकता है। दस चीजें ग्रहण करने पर श्रमण होते है। दस भिक्षुओं के मध्य ही उपसम्पदा दी जा सकती है। भिक्षुओं को २२७ नियमों का

तदा भगवतः शाक्यसिंहस्य परिनिर्वृतेः ।
अस्मिन्महोलोकधातौ सार्धं वर्षशतं ह्यगात् ॥ १७२ ॥

१७२. उस समय भगवान् शाक्य सिंह[1] का इस महीलोक में परिनिर्वाण[2] हुए एक सौ पचास वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।

पालन करना पड़ता है । पचशील ग्रहण करने वाला कोई भी व्यक्ति भिक्षु हो सकता है। जीवित माता पिता की अनुमति बिना कोई भिक्षु नहीं हो सकता ।

बौद्धों को राजकीय आश्रय कश्मीर में मिला था । कनिष्क ने तृतीय संगीत कश्मीर में की थी । फाहियान तथा सुंगयुन के वर्णनों से प्रकट होता है । गाधार में बौद्ध भिक्षुओं को राजकीय प्रश्रय था । उनकी यात्रा के समय कश्मीर में सनातन धर्म का प्रभाव बढ़ गया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७२ में 'तदा' का 'ततो'; 'परिनिर्वृतेः' का 'पुरनिर्वृते.' और 'परनिर्वृतेः'; तथा 'महीलोक' का 'सहलोक' 'सहीलोक' और 'शवलोक' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

(१) शाक्यसिंह : शाक्य भगवान् बुद्ध के वंश का नाम है। वह इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रियों की एक शाखा है । उस वंश में सिंह तुल्य अर्थात् श्रेष्ठ भगवान् बुद्ध हुए थे । अतएव उनका नाम शाक्यसिंह रख दिया गया था । वास्तव में उनका नाम 'सिद्धार्थ' था । भगवान् के जन्म स्थान के सम्बन्ध में अब कोई विवाद नहीं रह गया है । ईसा पूर्व ५६३ वर्ष में शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी अर्थात् रूमिनदेई में भगवान् का जन्म हुआ था । अशोक का स्तम्भ वहाँ पर गड़ा है । उसपर अंकित है—'हिय बुधे जाते ति' सुत्तनिपात में स्पष्ट उल्लेख आता है—'सो बोधिसत्तो' ।

भगवान् को शाक्य मुनि भी कहते हैं । कल्हण ने भगवान् का तत्कालीन प्रचलित मूल नाम दिया है । उसने बुद्ध तथा बौद्ध शब्द का प्रयोग भगवान् के प्रचलित बौद्ध धर्म के लिये सर्वत्र किया है ।

(२) परिनिर्वाण : कल्हण यहाँ कुशान राजाओं का काल भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के १५० वर्ष पश्चात् देता है । यह अब तक के प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ठीक नहीं बैठता ।

सिंहली परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण ईसापूर्व ५४४ वर्ष में हुआ था । यही कारण है कि सन् १९५६ में विश्वव्यापी समारोह २००५ वर्ष पूर्ण होने पर परिनिर्वाण उत्सव मनाया गया था ।

राजा बिम्बसार तथा उनके पुत्र अजातशत्रु के भगवान् समकालीन थे ।

महाराज अशोक का भगवान् के परिनिर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् राज्याभिषेक हुआ था । यह सब काल प्रमाणतुला पर तौल कर प्रामाणिक माने गये हैं ।

यदि कल्हण की काल गणना मान ली जाय तो कुशान वंशीय राजाओं का काल ईसा पूर्व ४१६ वर्ष होता है । अशोक का राज्याभिषेक परिनिर्वाण के २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था । इस प्रकार कुशान वंशीय राजाओं का काल अशोक के राज्याभिषेक से ६१ वर्ष पूर्व होता है । अर्थात् कुशान वंशीय राजाओं के पश्चात् अशोक का काल पड़ जाता है ।

हुएनसांग कनिष्क का शासन काल भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के ४०० वर्ष पश्चात् रखता है ।

कल्हण स्वयं अशोक, जलौक, दामोदर तथा अन्य लुप्त राजाओं के पश्चात् कुशान वंशीय राजाओं का क्रम रखता है । कल्हण की काल गणना यहाँ प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती । उसने तत्का-

बोधिसत्त्वश्च देशेऽस्मिन्नेको भूमीश्वरोऽभवत् ।
स च नागार्जुनः श्रीमान् षड्हद्वनसंश्रयी ॥ १७३ ॥

१७३. इस देश में षड्हर्द्वन[1] निवासी नागार्जुन[2] नामक भूमीश्वर हुआ । वह बोधिसत्त्व भी था ।

लौन किसी काल गणना के आधार पर यह समय नहीं दिया है । कुशान वंशीय राजाओं तथा कल्हण के काल में लगभग तेरह शताब्दियों का अन्तर पड जाता है । उसके समय तक भारत में बौद्धधर्म लुप्त हो चुका था । भारत में मुसलिम शासन दो शताब्दियों से कायम था । कश्मीर में स्वतः इतने राजविप्लव, जलप्लावन, भूचाल आये थे कि कितनी ही इतिहास सामग्रियाँ नष्ट हो गयी थी । यहाँ पर कल्हण कोई प्रमाण भी नही उपस्थित करता कि उसकी काल गणना का आधार क्या है ? तर्क और प्रमाण की तुला पर कल्हण का यह समय ठीक नही उतरता ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १७३ में 'न्नेको' का 'न्नेक', 'भूमीश्वरो' का 'भूम्येश्वरो', 'भवत्' का 'वसत्', 'च' का 'तु' और 'त', एवं 'हृद्वन' का 'हंत्वन; 'हर्वन' 'हंत्वन' पाठभेद मिलता हैं ।

पादटिप्पणियाँ :

१७३ (१) षड्हर्द्वन : वर्तमान हरवान है । इसका शाब्दिक अर्थ ६ सन्तों का वन है । श्रीनगर की जल पूर्ति निमित्त सन् १८९५ में यहाँ निर्माण कार्य आरम्भ किया गया । उस समय यहाँ के ध्वंसावशेषो का पता चला । सन् १९२५ मे पुनः यहाँ खनन कार्य हुआ है । जलाखात सुन्दर झील का रूप उपस्थित करता है । सीढ़ियों से जलाखात के बाँध पर लगभग ४० फ़ीट जाना पडता है । एक तरफ हरा ऊँचा पर्वत है । दूसरी तरफ ऊँची भूमि है तथा बाँध के नीचे सुन्दर बगीचा है । इसमे चिनार के पेड़ लगे हुए हैं । वनोत्सव तथा वन विहार के लिए आदर्श स्थान है ।

कहा जाता है । हरवान मे कनिष्क के समय में चतुर्थ बौद्ध परिषद हुई थी । खनन कार्य के पश्चात् इसे परिषद से और सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया है । विहारो के निर्माण निमित्त यह स्थान प्रकृति की गोद मे अत्यन्त सुहावना तथा उपयुक्त है । हरवान के ध्वंसावशेष स्थान से यदि उपत्यका की तरफ दृष्टिपात किया जाय तो हृदयग्राही सुन्दर दृश्य नेत्रों को अनायास सुखकर प्रतीत होता है ।

हरवान के पृष्ठभाग में उत्तुङ्ग पर्वत है । दक्षिण दिशा में भी उत्तुङ्ग पर्वत है । सम्मुख पर्वत है । केवल वाम पार्श्व में खुलसा गया विस्तृत मैदान है । तीनों पार्श्वों में पर्वत द्वारा वेष्ठित मध्य में खुली उपत्यका इतनी सुन्दर लगती है कि यहाँ चुपचाप बैठकर समय बिताते रहने में एक प्रकार के नैसर्गिक आनन्द का बोध होता है । सितम्बर माह की शालि से भरी पुरी उपत्यका केसरिया साड़ी पहने युवती कामिनी तुल्य लगती है । हरे-भरे पादप, पल्लवित वृक्षों का समूह, ग्राम का झुरमुट, पास बहती जल रेखा किसी प्राप्तयौवना के चीर पर बने बेल-बूटे जैसे लगते है ।

मैं प्रकृति के इस अनुपम दृश्य को देखता मुग्ध खड़ा था । सम्मुख पर्वत पर खानाबदोशों के कुछ कैम्प लगे थे । यहाँ से ब्रुज होम दिखाई पड़ता था । उस समय वहाँ पर खनन कार्य हो रहा था । शायद वहाँ कभी सिद्ध रहते थे । गुह्यक गण रहते थे । भौमगृह वासी रहते थे । वे वास्तव में कौन थे अभी अनुसन्धान का विषय है । इस स्थान पर मैं तीन बार जा चुका हूँ । वहाँ से होकर मैं यहाँ आया था ।

जिस समय मैं पहुँचा था आकाश मेघाच्छन्न था । हरवान पर जहाँ पर विहार बना था उसके पीछे का

पहाड़ सूखा है। मेघ उसपर जमे थे। उनका शनैः शनैः इधर-उधर जाना, ग्राम पार्श्व में वर्षा जल द्वारा प्रवाहित कल-कल ध्वनि करता नाला, ग्रामों के शान्त गृहों से उठती धूम राशि, पडते फुहार मे किंचित् खडे होकर उपत्यका को चुपचाप निरखते रहने मे मुझे एक विचित्र आनन्द का बोध हो रहा था। यह दृश्य और यह स्थान मुझे इतना प्रिय लग रहा था मानो मैं स्वयं इस दृश्य का एक अंग बन गया था।

इस समय हरवान का रूप बदल गया है। स्तीन के समय हरवान जो रूप उपस्थित करता रहा होगा वह अब नही है। शालीमार के दक्षिण पार्श्व से पक्की पिच को सडक हरवान ग्राम होती आगे निकल जाती है। सड़क के समीप स्वच्छ जल पूर्ण नाला है। यहाँ पर तीन नाले है। श्री ग्राम नाला, तेल बल नाला तथा शराब कुल। शराब कुल स्वच्छ जल की प्रणाली है। विहार की पहाडी के आधे भाग में बहती है। पूछने पर प्रकट हुआ। यह जल राज्य के शराब बनाने के कारखाने की तरफ जाता है। अतएव इसका नाम शराब कुल पड़ा है। इस समय कारखाना बन्द है।

हरवान पहाड की उतार किंवा ढाल पर है। ढाल पर स्थान इतना समतल बनाया जा सकता है कि पर्वतीय शैली पर बहुत मकान बन सकते है। एक छोटा चौरस मैदान किंवा भूमि है। उसमें तीन चौकोर प्रांगण बने हैं। मध्यवर्तीय प्रांगण में चौकोर स्तूपाकार स्थान बना है। उसके दक्षिण पार्श्व में चौकोर प्रांगण के निर्मित पूर्वकालीन दिवालों के कुछ ध्वंसावशेष के आकार शेष रह गये है। मध्यवर्ती प्रांगण के समीप भी एक लम्बी दिवाल का भग्नावशेष रह गया है। प्रांगणो के ऊपर दिवालों का अवशेष बच गया है। दिवालें विचित्र रूप उपस्थित करती हैं। निर्माणकर्ताओं तथा राजगीरो की कला पर प्रकाश डालती हैं। दिवालों को रचना पर यहाँ पर दो शब्द लिख देना उचित होगा।

पत्थर के ढोकों सी दिवाल खडी की गई है। उनके बाहर बड़ी सुन्दरता से छोटे शिव लिंगों को तरह नदियों से प्राप्त पत्थरों को पलस्तर के स्थान पर लगाया गया है। स्थान स्थान पर सुन्दरता और बढ़ाने के लिये बीच बीच मे पत्थर के ढोके रख अतीव मनोरम रचना की गयी है। वे देखने मे अत्यन्त सुन्दर लगती है। आधुनिक कला की याद दिलाती है। इस प्रकार की दिवाल रचना में कितना श्रम लगा होगा उन्हें देख करके ही अनुमान लगाया जा सकता है।

यहाँ पर पुराने बर्तनों के टुकड़े तथा खपड़े बहुत निकले है। प्राप्त टाइल्स मे फूल-पत्ती तथा मानव आकार बने है। तत्कालीन पुरुषों तथा स्त्रियों की वेशभूषा तथा उनका चेहरा-मोहरा कैसा था। स्पष्ट मालूम होता है।

मैंने उन आकृतियों को ध्यानपूर्वक देखा। आर्यों की मुखाकृति जैसी है। मुख-रेखाएँ उनके हृष्ट पुष्ट, स्वस्थ तथा बलवान रूप को प्रकट करती है। उनका कद ऊँचा है। पाद की पेडली मांस पेशी पुष्ट सम तथा आकर्षक है। नारियों का रूप उनका आकार अत्यन्त हृदयग्राही है। नासिका लम्बी आर्य जातीय सीधी है। रोमन नासिका की तरह उनमें मोड़ नही है। बाल उभडे गण्डस्थल पर अद्भुत शोभा बढाते है। कानों में गोलाकार बाला है। आज भी कश्मीर की स्त्रियाँ गुच्छे का बाला पहनती है। मुसलमान स्त्रियाँ चाँदियों के बाले गुच्छों में कानो से लटकाती है। बाली किंवा बाले पहनने की प्रथा कश्मीरी अंगनाओं से शीघ्रतापूर्वक लोप हो रही है। उनके स्थान पर टंग पहनने की प्रथा फैल चुकी है। टाइल्स पर बने आकार नर-नारियों के है। शरीर पर अलंकारो की बहुलता नही है। रोचक अलंकार है। वे शरीर की सुन्दरता बढाते है। उसे भद्दा नही बनाते। इससे प्रकट होता है कि समाज उस समय कितना सुसंस्कृत तथा सभ्य था। पुरुष ढीला-ढाला वस्त्र पहने दिखाये गये है। वर्मधारी, अश्वारोही, धनुष-बाण धारी तथा वीर पट्ट पहने पुरुषों की आकृतियाँ मिली हैं। युवतियाँ मृदंग अथवा

ढोल बजाती तथा नर्तकियाँ नृत्यमुद्रा में खपड़ों तथा टाइल्स पर मिली हैं।

हाथी का उल्लेख काश्मीरी साहित्य में मिलता है। हरवान के टाइल्स पर हाथी की मूर्ति खुदी मिली है। हस्तिशाला का उल्लेख भी (रा० त० ७: ७७२-७७६ में) कल्हण करता है। हरवान में स्तूप मन्दिर, ईंटा, टाइल्स छन्दावली के अतिरिक्त 'ये धर्मा हेतुप्रभवा' ब्राह्मी लिपि में मिला है। एक काशासन में बैठे साधु की आकृति भी मिली है। खरोष्ट्री लिपि का भी यहाँ दर्शन मिला है।

कुछ ऊपर एक हाल है। हाल के पीछे एक वृत्ताकार हाल और है। इसे देखकर मुझे गौहाटी स्थित कामाक्षा देवी के मन्दिर का स्मरण आ गया। यदि इस हाल का प्रत्यास्थापन किया जाय तो कामरूप कामाक्षा के मन्दिर तुल्य पृष्ठ भाग में गर्भगृह तुल्य गोलाकार तथा मण्डप आयताकार होगा। कामाक्षा देवी में मण्डप से गर्भ गृह में जाने के लिए द्वार बना है। परन्तु यहाँ आयताकार मण्डप से पृष्ठभागीय वृत्ताकार गर्भ गृह में जाने के लिए किसी द्वार किंवा मार्ग का चिन्ह मैंने नहीं देखा। यह वृत्ताकार स्थान चैत्य हो सकता है। स्तूप होने का भी अनुमान लगाया जा सकता है। अजन्ता तथा एलोरा की गुफाओं में चैत्य के सम्मुख आयताकार मण्डप भिक्षुओं के बैठने तथा पूजा करने के लिए बना है। सम्भव है कि उसी स्थापत्य तुल्य यहाँ का निर्माण रहा हो।

हरवान पिण्डपात किंवा भिक्षुओं के भिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से आदर्श स्थान माना जा सकता है। जल का सुपास है। जल दूर से लाने की यहाँ समस्या नहीं थी। निर्झर के कभी सूखने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बादाम, अखरोट तथा फलों के वृक्ष तथा उनके उद्यान यहाँ मुझे अधिकता से मिले। उपत्यका में शालि खूब उत्पन्न होती है। हरवान जिस समय अपनी गौरव गरिमा पर रहा होगा, उस समय यहाँ फल-फूल के वृक्ष खूब लगाये गये होंगे। खेतों में नाना प्रकार की सब्जी तथा अन्न उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता रहा होगा। पिण्डपात निमित्त स्थानीय जनता से भात, तरकारी तथा फलादि मिल जाना सरल था। इस समय चिनार के वृक्ष भी लगे हैं। मालूम नहीं उन दिनों यहाँ चिनार थे कि नहीं। कुछ लोगों का मत है कि चिनार के वृक्ष ईरान से लाकर लगाये गये हैं। इस विवाद में न पड़कर मैं यही कहना चाहता हूँ कि अध्यात्म ज्ञान चर्चा एवं तपस्या निमित्त हरवान का स्थान शान्त तथा आदर्श कहा जायेगा।

इस समय हरवान ग्राम का रूप बहुत कुछ बदल गया है। भौतिक दृष्टि से यह एक समृद्धिशाली ग्राम है। यहाँ अस्पताल, स्कूल, ट्राउट फार्मिंग सेण्टर, श्रीनगर वाटर वर्क्स तथा ध्वंसावशेषों के कारण प्रसिद्ध स्थान हो गया है।

(२) नागार्जुन : उक्त राजाओं किंवा कुशान राजाओं का समकालीन नागार्जुन नहीं था। कल्हण के वर्णन से भ्रम उत्पन्न हो सकता है। चीनी ग्रन्थों में जो सामग्री इनके जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त होती है उससे पता चलता है वह आन्ध्रभृत्यकुलीय शालिवाहन राजा श्री गौतमी पुत्र का समकालीन था। उसका काल सन् १६६-१९६ ई० तक था। कश्मीर में कल्हण वर्णित हुविष्क का काल सन् १०६ ई० आता है। कुछ मत है कि यह शालिवाहन राजा गौतमी पुत्र यज्ञश्री नहीं है परन्तु अब अनेक विद्वान् इसी को मानते हैं। नागार्जुन ने इस राजा के पास जो पत्र लिखे थे उनका अनुवाद तिब्बती तथा चीनी भाषा में उपलब्ध है। राजा यज्ञश्री नागार्जुन का समसामयिक माना जाता है। इस पत्र का नाम 'आर्य नागार्जुन बोधिसत्त्व सहल्लेख' है।

'आर्य नागार्जुन बोधिसत्त्व' यह उल्लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। कल्हण ने इस श्लोक में उसे बोधिसत्त्व कहा है। कल्हण के समय में नागार्जुन प्रख्यात था। वह बोधिसत्त्व माना जाता था। उसे कश्मीर मण्डल का भूमीश्वर भी कहा गया है। नागार्जुन नाम

पहाड़ सूखा है। मेघ उसपर जमे थे। उनका शनैः शनैः इधर-उधर जाना, वाम पार्श्व में वर्षा जल द्वारा प्रवाहित कल-कल ध्वनि करता नाला, ग्रामों के शान्त गृहों से उठती धूम राशि, पडते फुहार में किंचित् खडे होकर उपत्यका को चुपचाप निरखते रहने में मुझे एक विचित्र आनन्द का बोध हो रहा था। यह दृश्य और यह स्थान मुझे इतना प्रिय लग रहा था मानो मैं स्वयं इस दृश्य का एक अंग बन गया था।

इस समय हरवान का रूप बदल गया है। स्तीन के समय हरवान जो रूप उपस्थित करता रहा होगा वह अब नहीं है। शालीमार के दक्षिण पार्श्व से पक्की पिच की सडक हरवान ग्राम होती आगे निकल जाती है। सडक के समीप स्वच्छ जल पूर्ण नाला है। यहाँ पर तीन नाले हैं। दची ग्राम नाला, तेल बल नाला तथा शराब कुल। शराब कुल स्वच्छ जल की प्रणाली है। विहार की पहाडी के आधे भाग में बहती है। पूछने पर प्रकट हुआ। यह जल राजा के शराब बनाने के कारखाने की तरफ जाता है। अतएव इसका नाम शराब कुल पडा है। इस समय कारखाना बन्द है।

हरवान पहाड की उतार किंवा ढाल पर है। ढाल पर स्थान इतना समतल बनाया जा सकता है कि पर्वतीय शैली पर बहुत मकान बन सकते हैं। एक छोटा चौरस मैदान किंवा भूमि है। उसमें तीन चौकोर प्रांगण बने हैं। मध्यवर्तीय प्रांगण में चौकोर स्तूपाकार स्थान बना है। उसके दक्षिण पार्श्व में चौकोर प्रांगण के निर्मित पूर्वकालीन दिवालों के कुछ ध्वसावशेष के आकार शेष रह गये हैं। मध्यवर्ती प्रांगण के समीप भी एक लम्बी दिवाल का भग्नावशेष रह गया है। प्रांगणों के ऊपर दिवालों का अवशेष बच गया है। दिवालें विचित्र रूप उपस्थित करती हैं। निर्माणकर्ताओं तथा राजगीरों की कला पर प्रकाश डालती हैं। दिवालों की रचना पर यहाँ पर दो शब्द लिख देना उचित होगा।

पत्थर के ढोकों से दिवाल खडी की गई है। उनके बाहर बड़ी सुन्दरता से छोटे शिव लिंगों की तरह नदियों से प्राप्त पत्थरों को पलस्तर के स्थान पर लगाया गया है। स्थान स्थान पर सुन्दरता और बढाने के लिये बीच बीच में पत्थर के ढोके रख अतीव मनोरम रचना की गयी है। वे देखने में अत्यन्त सुन्दर लगती है। आधुनिक कला की याद दिलाती है। इस प्रकार की दिवाल रचना में कितना श्रम लगा होगा उन्हें देख करके ही अनुमान लगाया जा सकता है।

यहाँ पर पुराने बर्तनों के टुकड़े तथा खपड़े बहुत निकले हैं। प्राप्त टाइल्स में फूल-पत्ती तथा मानव आकार बने हैं। तत्कालीन पुरुषों तथा स्त्रियों की वेशभूषा तथा उनका चेहरा-मोहरा कैसा था। स्पष्ट मालूम होता है।

मैंने उन आकृतियों को ध्यानपूर्वक देखा। आर्यों की मुखाकृति जैसी है। मुख-रेखाएँ उनके हृष्ट पुष्ट, स्वस्थ तथा बलवान रूप को प्रकट करती है। उनका कद ऊँचा है। पाद की पेडली मांस पेशी पुष्ट सम तथा आकर्षक है। नारियों का रूप उनका आकार अत्यन्त हृदयग्राही है। नासिका लम्बी आर्य जातीय सीधी है। रोमन नासिका की तरह उनमें मोड़ नहीं है। बाल उभडे गण्डस्थल पर अद्‌भुत शोभा बढाते है। कानों में गोलाकार बाला है। आज भी कश्मीर की स्त्रियाँ गुच्छे का बाला पहनती हैं। मुसलमान स्त्रियाँ चाँदियों के बाले गुच्छों में कानों से लटकाती है। बालों किंवा बाले पहनने की प्रथा कश्मीरी अंगनाओं से शीघ्रतापूर्वक लोप हो रही है। उनके स्थान पर तंग पहनने की प्रथा फैल चुकी है। टाइल्स पर बने आकार नर-नारियों के हैं। शरीर पर अलंकारों की बहुलता नहीं है। रोचक अलंकार है। वे शरीर की सुन्दरता बढाते है। उसे भद्देहर नहीं बनाते। इससे प्रकट होता है कि समाज उस समय कितना सुसंस्कृत तथा सभ्य था। पुरुष ढीला-ढाला वस्त्र पहने दिखाये गये हैं। वर्मधारी, अश्वारोही, धनुष-बाण धारी तथा वीर पट्ट पहने पुरुषों की आकृतियाँ मिली हैं। युवतियाँ मृदंग अथवा

ढोल बजाती तथा नर्तकियाँ नृत्यमुद्रा में खपड़ों तथा टाइल्स पर मिली है।

हाथी का उल्लेख काश्मीरी साहित्य में मिलता है। हरवान के टाइल्स पर हाथी की मूर्ति खुदी मिली है। हस्तिशाला का उल्लेख भी (रा० त० ७: ७७२-७७६ में) कल्हण करता है। हरवान में स्तूप मन्दिर, ईंटा, टाइल्स ग्रन्थावली के अतिरिक्त 'ये धर्मा हेतुप्रभवा' ब्राह्मी लिपि में मिला है। एक पद्मासन में बैठे साधु की आकृति भी मिली है। खरोष्ठी लिपि का भी यहाँ दर्शन मिला है।

कुछ ऊपर एक हाल है। हाल के पीछे एक वृत्ताकार हाल और है। इसे देखकर मुझे गोहाटी स्थित कामाक्षा देवी के मन्दिर का स्मरण आ गया। यदि इस हाल का प्रत्यास्थापन किया जाय तो कामरूप कामाक्षा के मन्दिर तुल्य पृष्ठ भाग में गर्भगृह तुल्य गोलाकार तथा मण्डप आयताकार होगा। कामाक्षा देवी में मण्डप से गर्भ गृह में जाने के लिए द्वार बना है। परन्तु यहाँ आयताकार मण्डप से पृष्ठभागीय वृत्ताकार गर्भ गृह में जाने के लिए किसी द्वार किंवा मार्ग का चिन्ह मैंने नहीं देखा। यह वृत्ताकार स्थान चैत्य हो सकता है। स्तूप होने का भी अनुमान लगाया जा सकता है। अजन्ता तथा एलोरा की गुफाओं में चैत्य के सम्मुख आयताकार मण्डप भिक्षुओं के बैठने तथा पूजा करने के लिए बना है। सम्भव है कि उसी स्थापत्य तुल्य यहाँ का निर्माण रहा हो।

हरवान पिण्डपात किंवा भिक्षुओं के भिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से आदर्श स्थान माना जा सकता है। जल का सुपास है। जल दूर से लाने की यहाँ समस्या नहीं थी। निर्झर के कभी सूखने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बादाम, अखरोट तथा फलों के वृक्ष तथा उनके उद्यान यहाँ मुझे अधिकता से मिले। उपत्यका में शालि खूब उत्पन्न होती है। हरवान जिस समय अपनी गौरव गरिमा पर रहा होगा, उस समय यहाँ फल-फूल के वृक्ष खूब लगाये गये होंगे। खेतों में नाना प्रकार की सब्जी तथा अन्न उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता रहा होगा। पिण्डपात निमित्त स्थानीय जनता से भात, तरकारी तथा फलादि मिल जाना सरल था। इस समय चिनार के वृक्ष भी लगे हैं। मालूम नहीं उन दिनों यहाँ चिनार थे कि नहीं। कुछ लोगों का मत है कि चिनार के वृक्ष ईरान से लाकर लगाये गये हैं। इस विवाद में न पड़कर मैं यही कहना चाहता हूँ कि अध्यात्म ज्ञान चर्चा एवं तपस्या निमित्त हरवान का स्थान शान्त तथा आदर्श कहा जायेगा।

इस समय हरवान ग्राम का रूप बहुत कुछ बदल गया है। भौतिक दृष्टि से यह एक समृद्धिशाली ग्राम है। यहाँ अस्पताल, स्कूल, ट्राउट फार्मिंग सेण्टर, श्रीनगर वाटर वर्क्स तथा ध्वंसावशेषों के कारण प्रसिद्ध स्थान हो गया है।

(२) **नागार्जुन :** तरुष्क राजाओं किंवा कुशान राजाओं का समकालीन नागार्जुन नहीं था। कल्हण के वर्णन से भ्रम उत्पन्न हो सकता है। चीनी ग्रन्थों में जो सामग्री इनके जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त होती है उससे पता चलता है वह आन्ध्रभृत्यकुलीय शालिवाहन राजा श्री गौतमी पुत्र का समकालीन था। उसका काल सन् १६६-१९६ ई० तक था। कश्मीर में कल्हण वर्णित हुविष्क का काल सन् १०६ ई० आता है। कुछ मत है कि यह शालिवाहन राजा गौतमी पुत्र यज्ञश्री नहीं है परन्तु अब अनेक विद्वान् इसी को मानते हैं। नागार्जुन ने इस राजा के नाम जो पत्र लिखे थे उनका अनुवाद तिब्बती तथा चीनी भाषा में उपलब्ध है। राजा यज्ञश्री नागार्जुन का समसामयिक माना जाता है। इस पत्र का नाम 'आर्य नागार्जुन बोधिसत्त्व सहल्लेख' है।

'आर्य नागार्जुन बोधिसत्त्व' यह उल्लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। कल्हण ने इस श्लोक में उसे बोधिसत्त्व कहा है। कल्हण के समय में नागार्जुन प्रख्यात था। वह बोधिसत्त्व माना जाता था। उसे कश्मीर मण्डल का भूमीश्वर भी कहा गया है। नागार्जुन नाम

के साथ आर्य एवं बोधिसत्त्व दोनों शब्द होने के कारण प्रकट होता है। बौद्ध जगत् में उसका अत्यधिक आदर था। भूमीश्वर शब्द का प्रयोग कल्हण ने यहाँ राजा के अर्थ में नही किया है। बोधिसत्त्व राजा नही हो सकता। वह भौतिक जगत् से, उसको सम्पदाओं से, उसके ऐश्वर्यों से अलग रहता है। यहाँ कल्हण ने उसे कश्मीर मण्डल का अधीश्वर उसी प्रकार कहा है जैसे 'एकलिंग' जी मेवाड के अधीश्वर है। यहाँ पर यह शब्द नागार्जुन की कश्मीर राज्य में महत्ता तथा उसके प्रभाव के कारण प्रयोग किया गया है। उसका प्रभाव राजा पर था। राजा का प्रभाव कश्मीरमण्डल पर था। अतएव वास्तव में कश्मीर मण्डल का वह भूमीश्वर तुल्य था।

नागार्जुन बौद्ध दर्शन के माध्यमिक सम्प्रदाय का समर्थक था। उन्हें शून्यवादी कहा जाता है। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'माध्यमिक कारिका' अथवा 'माध्यमिक शास्त्र' है। वह २७ प्रकरणों में विभक्त है। कारिकाएँ ४०० है। यह माध्यमिक दर्शन का प्रधान ग्रन्थ है। महायान सूत्रो को संक्षिप्त रूप से इनमे संकलन किया गया है। इस महान् ग्रन्थ द्वारा नागार्जुन की अन्तर्दृष्टि, विवेक, तर्क तथा मेधा शक्ति का परिचय मिलता है।

हिमालय निवासी एक अति वृद्ध भिक्षु से नागार्जुन सूत्र प्राप्त हुआ था। एक मत और है। अश्वघोष से काशी मे नागार्जुन ने शिक्षा प्राप्त की था। यही उसे महायान सिद्धान्त से प्रथम बार सम्पर्क स्थापित हुआ था। मैं स्वयं निश्चय करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ कि उनमे कौन बात सत्य है।

युआनचाग ने बौद्ध धर्म को विश्व मे प्रकाशित करने वाले चार सूर्यों का वर्णन किया है। उसमें वह अश्वघोष, कुमारलब्ध, आर्य देव तथा नागार्जुन को स्थान देता है। इस समय तक नागार्जुन की २० रचनाओं के चीनी अनुवाद प्राप्त हो चुके हैं। नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित शून्यवाद के मुख्य व्याख्याकार पाचवी शताब्दी मे बुद्ध पालित तथा भाप विवेक हुए हैं।

कथा है। नागार्जुन विदर्भ में एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। अपने पिता का एक मात्र पुत्र था। पिता को बडी उम्र मे पैदा हुआ था। ज्योतिषियों ने कहा। नागार्जुन केवल ७ वर्ष जीवित रहेगा। माता पिता दु:खी हुए। सातवें वर्ष उसे नालन्द विश्वविद्यालय में विद्यार्जनार्थ भेज दिया। उसने ९० दिनों मे त्रिपिटको का अध्ययन कर लिया था।

आचार्य राहुल से नालन्दा में नागार्जुन का सम्पर्क स्थापित हुआ। वह भिक्षु बन गया। लोग नवयुवको का स्वरूप धारण कर उसका प्रवचन सुनते थे। नाग जाति के आमन्त्रण पर उनके बीच तीन मास व्यतीत किया। नागाओं के सम्पर्क के कारण उसका नाम नागार्जुन पड़ गया।

एक कथा और है। अर्जुन वृक्ष की छाया में उसका जन्म हुआ था। अतएव नाग तथा अर्जुन मिलाकर उसका नाम नागार्जुन पड गया था।

नागार्जुन महायान सम्प्रदाय का प्रवर्तक था। उसने तिब्बत में अपने दर्शन एवं मतका प्रचार किया। वह कवि, दार्शनिक तथा वैद्य था। एक और कथा तिब्बत में नागार्जुन के विषय में प्रचलित है। नागार्जुन के जन्म के समय से माता पिता ने ज्योतिषियों से सम्पर्क स्थापित किया। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। ग्रामो में यह कार्य पुरोहित करते हैं। उनके पास पत्रा होता है। एक रिकार्ड भी रखते हैं। उनमें ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति के जन्म एवं मृत्यु का दिन तथा समय लिखा रहता है। मुझे भी अपना जन्म दिन तथा काल मालूम नही था। हमारे ग्रामीण पुरोहित से लगभग २० वर्ष पश्चात् मिला था। यह यह प्रथा कम होती जा रही है। साक्षरता के प्रचार के कारण लोग अपने यहाँ डायरी आदि मे लिखने लगे हैं। अतएव अब ग्रामों के पुरोहितों के यहाँ रिकार्ड मिलना कठिन होता जा रहा है।

ज्योतिषियों के अनुसार नागार्जुन की आयु केवल ७ दिनों की थी। उसके माता-पिता के धर्माचरण के कारण देवताओं ने उसको ७ सप्ताह बढ़ा दिया। तत्पश्चात् पुनः आयु ७ वर्ष बढा दिया। सात वर्ष पूर्ण होने के पूर्व वह नालन्द विहार में विद्याध्ययन निमित्त भर्ती किया गया वहाँ उसने अमितायु की पूजा आरम्भ की। देवता प्रसन्न हो गये। उसकी आयु ३०० वर्षों की हो गयी। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में विचित्र कथा है। उसने स्वयं अपना मस्तक अपने हाथों से काटकर मृत्यु का आलिंगन किया था।

कहा जाता है। नागार्जुन आन्ध्र प्रदेश के गन्तूर जिला में श्रीपर्वत पर रहते थे। कालान्तर में इसे विजयपुरी तथा नागार्जुन कोंडा कहने लगे। जनश्रुति है। राजा शातवाहनके समय नागार्जुन ने काशी छोड़ने के तश्चात् श्रीपर्वत पर अपना निवास स्थान बनाया। कश्मीरी बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध धर्मानुयायी वहीं की यात्रा करने लगे।

नागार्जुन कोण्डा में भगवान् बुद्ध की धातु एक स्तूप मे पायी गयी है। उस स्तूप मे भगवान् की धातु एक गोले सुवर्ण मंजूषा मे मिली थी। सन् १९३३ में यह धातु महाबोधि सग्रहालय सारनाथ वाराणसी मे केन्द्रीय सरकार ने सुरक्षित रखने के लिये दे दिया है। मै प्रात. प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा मे भगवान् के इस पवित्र धातु का दर्शन करता हूँ। यह धातु मूल गन्धकुटी विहार में सुरक्षित है। यहाँ के खनन कार्य में बड़े स्तूप, विहार, मन्दिर, मूर्तियों, लघु स्तूप, देहली, अधिष्ठान आदि अमरावती शैली के प्राप्त हुए हैं।

प्राकृत अभिलेख ब्राह्मी लिपि में दूसरी तथा तीसरी शताब्दी के मिले हैं। वहाँ एक अर्धचन्द्राकार देवस्थान (संख्या २) नागार्जुन कोण्डा में दान देने वालों की तालिका अंकित मिली है। समीपवर्ती स्थानों में श्रीलंका, गांधार, चीन तथा कश्मीर के पर्यटकों तथा यात्रियो के लिये स्थान बनाने का उल्लेख है।

नागार्जुन की एक मूर्ति नालन्द के खनन कार्य सन् १९१९—१९२० में प्राप्त हुई है। स्वर्गीय श्री राहुल सांस्कृत्यायन तिब्बत से कुछ चित्र लाये थे। उनमे एक नागार्जुन का है। वह इस समय पटना संग्रहालय विहार मे सुरक्षित है।

रानी शांतिश्री ने अनेक चैत्य तथा विहारों का निर्माण नागार्जुन कोंडा में कराया था। एक अन्य उपासिका बोधिश्री ने चैत्यगृह वहां बनवाया था। उनमें विदेश तथा कश्मीर के भिक्षु आकर रहते थे।

चीनी अनुवादों में उसके १८ ग्रन्थों का उल्लेख बुनियु नंजियो ने अपनी तालिका में दिया है। नागार्जुन ने 'सहृल्लेख' अर्थात् अपने उन पत्रों का संग्रह किया था, जिसे उन्होंने पत्र स्वरूप अपने मित्र यज्ञश्री गौतमीपुत्र को लिखा था। नागार्जुन की जीवनी का अनुवाद चीनी भाषा में कुमार जीव ने सन् ४०५ ई० में किया था। नागार्जुन का तिब्बती नाम है क्लुसग्रुब। प्राकृत आख्यायिका लीलावती के अनुसार नागार्जुन पोट्टिस तथा कुमारिल के साथ शातवाहन की राजसभा मे रहते थे।

नागार्जुन सिद्ध हस्त लेखक थे। उनकी रचना शैली तथा युक्ति विश्व साहित्य में प्रसिद्ध है। माध्यमिक कारिका नागार्जुन के पाण्डित्य, विद्वत्ता, तर्कबुद्धि, दार्शनिक विचार तथा उसके व्यावहारिक ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है।

नागार्जुन शून्यवाद का आचार्य है। वह कहता है :

न सन् नासन् न सदसत् न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥

नागार्जुन की दृष्टि मे मूलतत्त्व शून्य है। किसी भी पदार्थ का स्वरूप निर्णय करने में चार ही कोटियों का प्रयोग संभाव्य है। पहला अस्ति है। दूसरा नास्ति है। तीसरा तदुभयम् चौथा नोभयम् है। परमार्थ इन चारो कोटियों

अथ निष्कण्टको राजा कण्टकोत्साग्रहारदः ।
अभीर्बभूवाभिमन्युः शतमन्युरिवापरः ॥ १७४ ॥

१७४. तत्पश्चात् निर्भीक एवं निष्कंटक[1] तथा कण्टकोत्स[2] अग्रहार दाता द्वितीय इन्द्र तुल्य अभिमन्यु[3] राजा हुआ।

से मुक्त होता है। अतएव उसके अभिधान निमित्त शून्य शब्द का प्रयोग नागार्जुन ने किया है।

आर्य नागार्जुन के नाम से अनेक वैद्यक, रसायन विद्या एवं तन्त्र के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। दार्शनिक नागार्जुन को तान्त्रिक नागार्जुन से अनेक विद्वान् भिन्न मानते हैं। इस भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिये तान्त्रिक नागार्जुन को सिद्ध नागार्जुन के नाम से अभिहित किया जाता है। नागार्जुन का काल द्वितीय शती के उत्तरार्ध तथा सिद्ध नागार्जुन का सातवीं शती के समीप रखा जाता है।

आयुर्वेदाचार्य नागार्जुन सिद्धों की परम्परा में हुए हैं। इनका समय आठवीं तथा नवीं शताब्दी है। प्रबन्ध चिन्तामणि से पता चलता है कि नागार्जुन पादलिप्त सूरि के शिष्य हैं। इस पुस्तक के अनुसार पारद से स्वर्ण बनाने में उन्होंने सफलता प्राप्त की थी। भारत में इन मुख्य तीनों नागार्जुनों के कार्य लेखन, गुण एवं धर्म में अन्तर है। उन्हें प्राय मिलाकर एक व्यक्ति मान लिया जाता है। बौद्ध दर्शन माध्यमिककारिकाकार, आर्य नागार्जुन सबसे पूर्व नागार्जुन नामक व्यक्ति हुए थे। वे अन्य इसी नाम के प्रसिद्ध व्यक्तियों से भिन्न थे।

आधुनिक युग में नागार्जुन के दर्शन का पुनर्जागरण हुआ है। जापान के वर्तमान सामाजिक जीवन मुख्यतया बौद्ध धर्मानुयायियों में इसने पुनः स्थान प्राप्त किया है।

कल्हण नागार्जुन के विषय में यह सत्य ही लिखता है कि वह कुशान राजाओं के समय हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७४ 'कण्टकोत्साग्र' का 'कण्टकोत्सार्ग' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७४ (१) निष्कंटक : का अर्थ कंटकहीन होता है। राजाओं के अनेक कंटक होते हैं। राज मार्ग कण्टकाकीर्ण कहा गया है। राजा के पार्श्व में रहने वाले, उसके दायाद, कुटुम्बी तथा सम्बन्धी प्रथम कंटक होते हैं। उत्तराधिकार किंवा राजा के पश्चात् राज्य, पद, सम्पत्ति आदि पाने के इच्छुक राजा के सम्बन्धी अशुभ कामना करते हैं। कब राजा मरे और वे कब स्वयं राजा बन बैठें। यह मनोवृत्ति राजाओं के विरुद्ध षड्यन्त्र, विप्लव गृहयुद्ध तथा हत्याओं में परिणत होता रहती है। महत्वाकांक्षी सेनापति तथा अमात्य जो राज्य-लिप्सा से लिप्त होते हैं, अथवा स्वयं राज्य लेना चाहते हैं इसी श्रेणी में आते हैं। कौटिल्य ने इसीलिये राजा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कंटक-शोधन कहा है।

(२) कण्टकोत्स : बीरू परगना में यह कन्कोर ग्राम है। हुरवलितर ग्राम से बहुत दूर नहीं है।

(३) अभिमन्यु : आईने अकबरी में नाम अबेहमुन दिया गया है। हसन अभिमन्यु के विषय में लिखा है। राजा अभिमन्यु ने १८३४ क० में लोगों की मरजी से ताज हकूमत सर पर रखकर पहला काम यह किया कि, बुध मजहब को कत्तैयन जड से उखाड़ दिया। इन दिनों चन्दर आचारज नाम एक निहायत ही फाजिल बरहमन था। उसने हिन्दुस्तान में महावाश

स्वनामाङ्कं शशाङ्काङ्कशेखरं विरचय्य सः ।
पराघ्र्यविभवं श्रीमानभिमन्युपुरं व्यधात् ॥ १७५ ॥

१७५. इस श्रीमान् राजा ने अपने नाम पर परम वैभवशाली अभिमन्युपुर[1] नगर बसाकर उसमें उस नगर का आभूषण शशांकांकशेखर[2] मन्दिर का निर्माण कराया।

(महाभाष्य) किताब अपने हमराह लाकर यहाँ के बरहमनों को तालीम दी और अपनी खुद तसीफ करदा किताब 'चन्द व्याकरण' यहाँ पर रायज कर दी। चूँकि (४३) नागसेन की तालीम और परचार से वहाँ के बहुत से लोग अपने मजहब बरगस्तर हो गये थे और बुध मजहब अख्तियार कर लिये थे अपने खादसी अशगाल छोडकर बडे कामो में मुबतिला हो गये थे इसलिये उसकी नहूसत से इस मुल्क में बकसरत बरफ बरसना शुरू हो गयी। यहां तक कि यहां के बादशाह मोसम सरमा में पंजाब और (४४) वगैरह की तरफ हर साल जाने लगे। चन्दर आचारज हुस्न इखलाक और तालिफ कलूब से काम लेकर लोगों को अपने पुराने बाप-दादों के मजहब पर कायम रहने को तलकीन करता। इस वजह से यहाँ के बहुत से लोगों ने बुध मजहब छोडकर अपना पुराना आबाई मजहब अख्तयार कर लिया। नीलमत पुराण किताब पर अजसरे नव अमल पैदा होकर साबिक् रवाज के मुताबिक नज्र व खैरात करने लगे। इसको बरकत से बरफ की मुर्सावत से निजात पाई। राजा अभिमन्यु ने परगना वागल में मौजा आमपुरा आबाद करके बरहमनो को बख्श दिया। चन्दर आचारज को खास एक जागीर देकर ताजीम और तकरीम से उसकी परवरिश की। यह राजा बौद्ध मजहब के पीरो के साथ मजलिस मुनाजिरह मुनकद कराता था। इसमे इस मजहब के लोगों को बडी खराबो का सामना करना पडता था। ३३ साल हकूमत करके इस दुनिया को छोड़ दिया।

गुलजार कश्मीर का मुसनिफ लिखता है कि यही चन्दर आचारज है जिसने किताब नीलमत पुराण चश्मा नीलनाग से निकाली है। या खुद तसनीफ की है। फकत अल्लाह ज्यादा जानता है। (पृष्ठ ४४)

पुरातन इतिहासकार छविल्लाकर की लुप्त राजाओं की तालिका में यह अन्तिम नाम है। कल्हण ने इस राजा का वर्णन छविल्लाकर के वर्णन के आधार पर किया है।

अभिमन्यु कौन था। किस वंश का था। किस प्रकार कश्मीर का राजा हुआ इस पर कल्हण ने कोई प्रकाश नहीं डाला है। कुशान राजा वसुदेव की शक्ति क्षीण हो गयी थी। उसका राज्य मथुरा मण्डल के समीप सीमित रह गया था। नाग जाति के उपद्रवों के कारण कुशान शक्तिहीन होकर अपना अधिकांश राज्य खो बैठे थे। कल्हण ने हुविष्क के पश्चात् कुशानवंशीय और किसी राजा का वर्णन नहीं किया है। कुशान राजाओं के प्रति किसी प्रबल विद्रोह एवं संघर्ष की ओर कल्हण संकेत नहीं करता। निर्विवाद मालूम होता है। वासुदेव तथा उसके पश्चात् के राजा निर्बलता के कारण कनिष्क के साम्राज्य को सम्हाल सकने में असमर्थ रहे। केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होने के कारण शासन सूत्र शिथिल होकर टूट गया। प्रदेश तथा विजित भूखण्ड स्वतन्त्र हो गये। निस्सन्देह यही प्रक्रिया कश्मीर में हुई होगी।

कश्मीर की व्यवस्था कुशान राजा न कर सके। पंजाब तथा मथुरा के समीप उसकी शक्ति नाग जाति के विद्रोह को दबाने में लग गयी। कश्मीर जैसे दूर पर्वतीय प्रदेश से सम्बन्ध विच्छेद हो जाना स्वाभाविक था।

अथ निष्कण्टको राजा कण्टकोत्साग्रहारदः ।
अभीर्बभूवाभिमन्युः शतमन्युरिवापरः ॥ १७४ ॥

१७४. तत्पश्चात् निर्भीक एवं निष्कंटक[1] तथा कण्टकोत्स[2] अग्रहार दाता द्वितीय इन्द्र तुल्य अभिमन्यु[3] राजा हुआ।

से मुक्त होता है। अतएव उसके अभिधान निमित्त शून्य शब्द का प्रयोग नागार्जुन ने किया है।

आर्य नागार्जुन के नाम से अनेक वैद्यक, रसायन विद्या एवं तन्त्र के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। दार्शनिक नागार्जुन को तान्त्रिक नागार्जुन से अनेक विद्वान् भिन्न मानते हैं। इस भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिये तान्त्रिक नागार्जुन को सिद्ध नागार्जुन के नाम से अभिहित किया जाता है। नागार्जुन का काल द्वितीय शती के उत्तरार्ध तथा सिद्ध नागार्जुन का सातवीं शती के समीप रखा जाता है।

आयुर्वेदाचार्य नागार्जुन सिद्धों की परम्परा में हुए हैं। इनका समय आठवीं तथा नवीं शताब्दी है। प्रबन्ध चिन्तामणि से पता चलता है कि *नागार्जुन पादलिप्त सूरि के शिष्य है।* इस पुस्तक के अनुसार पारद से स्वर्ण बनाने में उन्होंने सफलता प्राप्त की थी। भारत में इन मुख्य तीनो नागार्जुनो के कार्य लेखन, गुण एवं धर्म मे अन्तर है। उन्हें प्राय मिलाकर एक व्यक्ति मान लिया जाता है। बौद्ध दर्शन माध्यमिककारिकाकार, आर्य नागार्जुन सबसे पूर्व नागार्जुन नामक व्यक्ति हुए थे। वे अन्य इसी नाम के प्रसिद्ध व्यक्तियों से भिन्न थे।

आधुनिक युग में नागार्जुन के दर्शन का पुनर्जागरण हुआ है। जापान के वर्तमान सामाजिक जीवन मुख्यतया बौद्ध धर्मानुयायियों में इसने पुनः स्थान प्राप्त किया है।

कल्हण नागार्जुन के विषय में यह सत्य ही लिखता है कि वह कुशान राजाओं के समय हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७४ 'कण्टकोत्साग्र' का 'कण्टकोत्सार्ग' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७४ (१) निष्कंटक : का अर्थ कंटकहीन होता है। राजाओं के अनेक कंटक होते हैं। राज मार्ग कण्टकाकीर्ण कहा गया है। राजा के पार्श्व में रहने वाले, उसके दायाद, कुटुम्बी तथा सम्बन्धी प्रथम कंटक होते हैं। उत्तराधिकार किंवा राजा के पश्चात् राज्य, पद, सम्पत्ति आदि पाने के इच्छुक राजा के सम्बन्धी अशुभ कामना करते हैं। कब राजा मरे और वे कब स्वयं राजा बन बैठें। यह मनोवृत्ति राजाओं के विरुद्ध षड्यन्त्र, विप्लव गृहयुद्ध तथा हत्याओं में परिणत होता रहती है। *महत्त्वाकांक्षी सेनापति तथा अमात्य* जो राज्य-लिप्सा से लिप्त होते हैं, अथवा स्वयं राज्य लेना चाहते हैं इसी श्रेणी में आते हैं। कौटिल्य ने इसीलिये राजा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कंटक-शोधन कहा है।

(२) कण्टकोत्स : बीरू परगना में यह कन्कोर ग्राम है। हुरवलितर ग्राम से बहुत दूर नहीं है।

(३) अभिमन्यु : आईने अकबरी में नाम अवेहमुन दिया गया है। हसन अभिमन्यु के विषय मे लिखा है। राजा अभिमन्यु ने १८३४ क० में लोगो की मरजी से ताज हकूमत सर पर रखकर पहला काम यह किया कि, बुध मजहब को कतैयन जड से उखाड दिया। इन दिनों चन्दर आचारज नाम एक निहायत ही फाजिल बरहमन था। उसने हिन्दुस्तान मे महाभाश

स्वनामाङ्कं शशाङ्काङ्कशेखरं विरचय्य सः ।
पराध्यंविभवं श्रीमानभिमन्युपुरं व्यधात् ॥ १७५ ॥

१७५. इस श्रीमान् राजा ने अपने नाम पर परम वैभवशाली अभिमन्युपुर[1] नगर बसाकर उसमें उस नगर का आभूषण शशांकांकशेखर[2] मन्दिर का निर्माण कराया।

(महाभाष्य) किताब अपने हमराह लाकर यहाँ के बरहमनों को तालीम दी और अपनी खुद नसीफ करदा किताब 'चन्द व्याकरण' यहाँ पर रायज कर दी। चूँकि (४३) नागसेन की तालीम और परचार से यहाँ के बहुत से लोग अपने मजहब बरगस्तर हो गये थे और बुध मजहब अख्तियार कर लिये थे अपने खादती मशगाल छोड़कर बड़े कामों में मुबतिला हो गये थे इसलिये उसकी नहूसत से इस मुल्क में बकसरत बरफ बरसना शुरू हो गयी। यहां तक कि यहां के बादशाह मौसम सरमा में पंजाब और (४४) वगैरह की तरफ हर साल जाने लगे। चन्दर आचारज हुस्न इखलाक और तालिफ कलूब से काम लेकर लोगों को अपने पुराने बाप-दादों के मजहब पर कायम रहने को तलकीन करता। इस वजह से यहाँ के बहुत से लोगों ने बुध मजहब छोड़कर अपना पुराना आबाई मजहब अख्तयार कर लिया। नीलमत पुराण किताब पर अज़सरे नव अमल पैदा होकर साबिक् रवाज के मुताबिक नजर व खैरात करने लगे। इसकी बरकत से बरफ की मुसीबत से निजात पाई। राजा अभिमन्यु ने परगना वागल में मौजा आमपुरा आबाद करके बरहमनों को बख्श दिया। चन्दर आचारज को खास एक जागीर देकर ताजीम और तकरीम से उसकी परवरिश की। यह राजा बौद्ध मजहब के पीरों के साथ मजलिसा मुनाजिरह मुनकद कराता था। इससे इस मजहब के लोगों को बड़ी खराबी का सामना करना पड़ता था। ३२ साल हकूमत करके इस दुनिया को छोड़ दिया।

गुलजार कश्मीर का मुसनिफ लिखता है कि यही चन्दर आचारज है जिसने किताब नीलमत पुराण चश्मा नीलनाग से निकाली है। या खुद तसनीफ की है। फकत अल्लाह ज्यादा जानता है। (पृष्ठ ४४)

पुरातन इतिहासकार छविल्लाकर की लुप्त राजाओं की तालिका में यह अन्तिम नाम है। कल्हण ने इस राजा का वर्णन छविल्लाकर के वर्णन के आधार पर किया है।

अभिमन्यु कौन था। किस वंश का था। किस प्रकार कश्मीर का राजा हुआ इस पर कल्हण ने कोई प्रकाश नहीं डाला है। कुशान राजा वसुदेव की शक्ति क्षीण हो गयी थी। उसका राज्य मथुरा मण्डल के समीप सीमित रह गया था। नाग जाति के उपद्रवों के कारण कुशान शक्तिहीन होकर अपना अधिकांश राज्य खो बैठे थे। कल्हण ने हुविष्क के पश्चात् कुशानवंशीय और किसी राजा का वर्णन नहीं किया है। कुशान राजाओं के प्रति किसी प्रबल विद्रोह एवं संघर्ष की ओर कल्हण संकेत नहीं करता। निर्विवाद मालूम होता है। वासुदेव तथा उसके पश्चात् के राजा निर्बलता के कारण कनिष्क के साम्राज्य को सम्हाल सकने में असमर्थ रहे। केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होने के कारण शासन सूत्र शिथिल होकर टूट गया। प्रदेश तथा विजित भूखण्ड स्वतन्त्र हो गये। निस्सन्देह यही प्रक्रिया कश्मीर में हुई होगी।

कश्मीर की व्यवस्था कुशान राजा न कर सके। पंजाब तथा मथुरा के समीप उनकी शक्ति नाग जाति के विद्रोह को दबाने में लग गयी। कश्मीर जैसे दूर पर्वतीय प्रदेश से सम्बन्ध विच्छेद हो जाना स्वाभाविक था।

चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वाऽऽदेशं तस्मात्तदाऽऽगमम्।
प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणं कृतम् ॥ १७६ ॥

१७६. चन्द्राचार्यादि[1] ने राजा के आदेश पर उस समय लुप्तप्राय भाष्य[2] का जनता में प्रचार किया। साथ ही साथ उन्होंने अपने स्वरचित व्याकरण[3] का भी प्रचार किया।

अभिमन्यु इस स्थिति से लाभ उठाकर या तो स्वयं कश्मीर मण्डल का राजा हो गया होगा अथवा कश्मीर की जनता ने उसके गुणों के कारण शासन निमित्त राजा चुना होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७५ में 'नामाङ्कं' का 'नामाङ्का' 'नामाङ्क' और 'शशाङ्काङ्कं' का 'शशाङ्कार्थं' पाठ-भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७५ (१) अभिमन्युपुर : यह श्रीनगर के नैऋत्यकोण में चार मील दूर विमयन ग्राम है। रानी दिद्दा द्वारा बसाया गया अभिमन्युपुर जिसका वर्णन राज० तरं० ६ : २९९ में किया है दूसरा ग्राम है। दोनों को एक ही अभिमन्युपुर नहीं मानना चाहिए।

(२) शशांकांकशेखर : शंशाक का अर्थ शशि या चन्द्रमा होता है। शेखर का अर्थ शिर का आभूषण है। शिर पर धारण की जाने वाली किरीट तथा पुष्पमाला है। भगवान् शिव का शिरोभूषण चन्द्रमा है। अतएव शशांकशेखर शंकर का नाम पड़ा है। कह्लण ने शंशाकशेखर अर्थात् शिव के मन्दिर की समानता नगर के अलंकार से की है। शंशाक जिस प्रकार शिव का अलंकार है उसी प्रकार अभिमन्युपुर नगर का आभूषण किंवा अलंकार शशांकशेखर का मन्दिर था। कह्लण का तात्पर्य यह मालूम होता है कि मन्दिर इतना सुन्दर था कि वह नगर का आभूषण मालूम होता था।

कह्लण ने इस मन्दिर के माध्यम से यह कहने का प्रयास किया है कि राजा शिवभक्त था। कुशान राजाओं द्वारा प्रचलित बुद्धधर्म को राजाश्रय प्राप्त नहीं था। राजाश्रय प्राप्त हो गया था। वे शिवभक्त किंवा सनातनधर्मी थे। कश्मीर ने चार धार्मिक क्रान्तियों का सामना तीन शताब्दियों के अन्दर किया था। पहली धार्मिक क्रान्ति बुद्धधर्म प्रचार की अशोक ने की थी। उसकी विरोधी दूसरी क्रान्ति जलोक ने सनातन धर्म को चलाकर की। तीसरी क्रान्ति कुशान राजाओं ने बुद्ध धर्म की पुनःप्रतिष्ठा तथा राजाश्रय देकर की। सनातन धर्म पृष्ठ भाग में रह गया। चौथी क्रान्ति राजा अभिमन्यु ने पुन: बौद्धधर्म के स्थान पर सनातन धर्म को स्थापित कर की थी। एक प्रकार से सनातन तथा बौद्धधर्म के अनुयायी राजा अपने धर्मों का प्रचार तथा राजाश्रय देते रहे। एक ही कश्मीर मण्डल जैसे लघु स्थान में धार्मिक क्रान्तियाँ एक के पश्चात् दूसरी होती रही। परन्तु वे राजविप्लव का रूप नहीं ले सकी। विचार आते रहे। जाते रहे। जनता समयानुकूल उनको स्वीकार तथा अस्वीकार करती रही।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७६ में 'लब्ध्वाऽऽदेशं' का 'लब्धादेशं'; 'लब्ध्वादेशान्' 'लब्धादेशं' 'लब्धादेशात्' तथा 'स्वं च' का 'चन्द्र' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७६ (१) चन्द्राचार्य : इनका नाम चन्द्रगोमी था। चन्द्राचार्य एवं चन्द्र नाम से इनकी ख्याति थी। इन्होंने पाणिनीय व्याकरण के आधार पर अपने एक और व्याकरण की रचना की। उसमें 'स्वर वैदिकी' प्रकरण नहीं मिलता। इस आधार पर विद्वानों का मत है कि वे बौद्ध थे। क्योंकि बौद्ध वेद को मान्यता नहीं देते।

इनका कहाँ जन्म हुआ था अनिश्चित है। कुछ विद्वानो का मत है कि 'व तथा ब' में इन्होंने भेद नहीं किया है। अन्तस्थ 'व'कारान्त पदों को भी पवर्गीय 'ब'कारान्त प्रकरण में पढ़ा है। अतएव कहा जाता है कि वे वंग (बंगाल) निवासी थे। कारण यह दिया जाता है कि 'वंग' प्रदेशीय लोगों में यह उच्चारण दोष पाया जाता है। इनके वंश का विशेष परिचय नहीं मिलता है।

(२) महाभाष्य : यहाँ पतंजलि के महाभाष्य से अभिप्राय है। वह दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में हुआ था। पाणिनि पर उसने महाभाष्य लिखा है। राजा जयापीड के समय (रा० स० ४ ४८८) में इसी प्रकार का प्रयास किया गया था। राजा अभिमन्यु ने व्याकरण शास्त्र के लुप्त हो जाने के कारण साहित्य को नवजीवन तथा एकरूपता देने के लिये चन्द्राचार्य जिन्हें चन्द्रगोमिल भी कहा जाता है। तथा अन्य विद्वानों को नियुक्त किया था। मालूम होता है। उस समय काश्मीर में व्याकरणाचार्यों की कमी हो गयी थी। शिक्षकों के अभाव में उसने चन्द्राचार्यादि की सहायता द्वारा लुप्तप्राय ज्ञान के पुनर्जीवन निमित्त प्रयास किया था। जयापीड़ के समय में भी पतंजलि के महाभाष्य के प्रचार निमित्त पुनः प्रयास होता दिखायी पड़ता है।

हिन्दू राजाओं के अतिरिक्त कश्मीर का सुलतान बडशाह जैनुल आबदीन जो स्वयं संस्कृत का ज्ञाता था। उसके निर्देश पर रामानन्द ने महाभाष्य पर टीका लिखी थी। बुद्धभट्ट स्वयं महाराष्ट्र में अथर्ववेद के ज्ञानार्जन निमित्त गया था। वह बादशाह के पास न्यायाधीश शिवाभट्ट की प्रेरणा पर भेजा गया था। लुप्तप्राय वेद का ज्ञान प्राप्त कर, उसका प्रचार कश्मीर में आकर करें। लगभग ५०० वर्ष पश्चात् स्वर्गीय रणजीत सीताराम पण्डित के भाई स्वर्गीय श्री एस. पी. पंडित को जब अथर्ववेद की पाण्डुलिपि दक्षिण में प्राप्त नहीं हो सकी, तो कश्मीरी पाण्डुलिपियों को उन्होंने अपना आधार माना था।

कल्हण ने पतंजलि का नाम महाभाष्य के स
नहीं लिखा है। परन्तु राजतरंगिणी के म
विद्वानो का मत है कि यहाँ कल्हण का तात
पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य से ही है। उन्हें य
सूत्र, चरक संहिता तथा व्याकरण महाभाष्य
रचनाकार माना जाता है। परन्तु प्रथम दो
ग्रन्थ उपलब्ध हैं। तृतीय का लेखक भिन्न व्यक्ति
है इस प्रकार का मत कुछ विद्वानों ने प्रकट कि
है। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के वैयाकरण नागे
किवा नागेश भट्ट ने अपने व्याकरण ग्रन्थ मंजूषा
'इति चरके पतंजलिः' शब्द का प्रयोग किया
तथापि आधुनिक विद्वान् चरक संहिता का लेख
योग सूत्रकार पतंजलि को नहीं मानते।

महाभाष्यकार पतंजलि का काल नि
निश्चयात्मक रूप से निश्चित नहीं हो सका है। शु
वंशीय राजा पुष्यमित्र के शौतयज्ञ में, कहा जा
है, पतंजलि पुरोहित थे। 'इह पुष्यमित्रं याजया
महाभाष्य से सिद्ध होता है। यवनों ने साकेत अ
माध्यमिका पर आक्रमण किया था। पतंजलि
समय वर्तमान थे। इस प्रकार महाभाष्य त
पतंजलि दोनो का समय ईसा पूर्व दूसरी शता
ठहरता है। इस आधार पर विद्वानो का मत है
ईसा पूर्व २०० वर्ष से १४० वर्ष के मध्य महाभ
की रचना हुई थी।

महाभाष्य में 'मुनित्रय' को विशेष महत्त्व दि
गया है। वह मुनित्रय अष्टाध्यायीकार पाणि
वार्तिककार कात्यायन, तथा महाभाष्यकार पतंज
है। अष्टाध्यायी पर कात्यायन ने वार्तिकों
रचना कर व्याकरण को अधिक व्यापक, पूर्ण, त
स्पष्ट किया है। पतंजलि ने अपने महाभाष्य द्व
वार्तिको की व्याख्या को और आगे बढ़ाया है
उसमें उन सूत्रों की भी विवेचना की गयी है जि
पर कात्यायन ने लेखनी नहीं उठायी थी।

'वाक्यपदीय' कार भर्तृहरि ने महाभाष्य
रचना का हेतु उपस्थित किया है। उनका मत

तस्मिन्नवसरे बौद्धा देशे प्रबलतां ययुः ।
नागार्जुनेन सुधिया बोधिसत्त्वेन पालिताः ॥ १७७ ॥

१७७. सुधी बोधिसत्त्व नागार्जुन[1] द्वारा पालित बौद्ध उस समय देश में प्रबल हो गये थे।

कि जिस समय व्याकरण के विद्वान् संक्षेप रुचि तथा अल्पविद्यापरिग्रही हो गये तो 'संग्रह' ग्रन्थ का सन्ध्या काल आ गया। उस समय तीर्थदर्शी गुरु पतंजलि ने महाभाष्य की रचना की। उसमें न्याय बीजों का भी निबन्धन है। इससे स्पष्ट होता है। 'संग्रह' ग्रन्थ में व्याकरण सम्बन्धी अत्यन्त विस्तृत विवेचन था।

महाभाष्य की शैली पाण्डित्यपूर्ण है। व्याख्या शैली सरल है। गद्य अत्यन्त सरल है। अकृत्रिम है। स्पष्ट है। धारा प्रवाहिक है। भर्तृहरि की टीका का अधिकांश अबतक अनुपलब्ध है। विवादास्पद विषयों का योग्यतापूर्वक निर्वाह किया है। पहले पूर्व पक्ष को उपस्थित कर उसके पश्चात् उत्तर पक्ष को उपस्थित किया है। अनन्तर उसने अपना मत प्रकट किया है। यह शैली कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भी अपनायी है। महाभाष्य में दार्शनिक दृष्टि के साथ ही साथ शब्दनित्यवाद किंवा शब्द ब्रह्मवाद का निर्देश किया गया है। 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि ने इस पर विस्तृत व्याख्या की है।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय उपयुक्त तथा विज्ञ अध्यापकों तथा शुद्ध पाठ के अभाव में उसका व्यवहार कम हो गया था। शनैः शनैः उसे लोग भूल गये थे। (तरंग ४ : ४८८) राजा जयापीड के समय में कल्हण पुनः वर्णन करता है कि महाभाष्य का प्रायः लोप हो गया था। राजा ने कश्मीर मण्डल के बाहर से विद्वानों को बुलाकर उन्हें कश्मीर में रखा। महाभाष्य का पठन-पाठन पुन. आरम्भ हुआ था।

(३) चान्द्र व्याकरण के (१:२:२६) के 'अजयत् जर्तो हूणान्' को परिवर्तित कर कुछ विद्वानों ने 'जर्तों' के स्थान पर 'गुप्तों' कर दिया इसमें अभिमन्यु का काल गुप्त सम्राटों के पश्चात् सिद्ध करते हैं। किन्तु 'जर्त' शब्द का उल्लेख महाभारत में प्राप्त है। यह शब्द राजा के लिये भी प्रयुक्त किया गया है। उससे प्रकट होता है कि जर्त ने हूणों को पराजित किया था। अतएव अभिमन्यु का काल प्राचीन प्रतीत होता है। राजतरंगिणी में कल्हण ने जो समय दिया है वह चन्द्राचार्य के वास्तविक समय के बहुत निकट है।

१७७ (१) बोधिसत्त्व नागार्जुन : कल्हण ने यहाँ पर नागार्जुन के लिये पुनः बोधिसत्व शब्द का प्रयोग किया है। बौद्ध गण नागार्जुन द्वारा पालित अर्थात् कश्मीर मण्डल में रक्षित थे। उनका किसी प्रकार अनिष्ट नहीं हो सकता था। बोधिसत्व स्वतः प्रबोधि प्राप्त के पश्चात् बुद्ध हो जाते हैं। नागार्जुन के आध्यात्मिक शक्ति का उल्लेख यहाँ पर कल्हण करता है। नागार्जुन यद्यपि कश्मीर मण्डल के राजा नहीं थे परन्तु श्लोक संख्या १७७ में उसे भूमीश्वर कहा है। राजा यद्यपि शिव उपासक था परन्तु वह मालूम पड़ता है, बौद्धों का विरोध करने में असमर्थ था।

भगवान् बुद्ध की पूजा कल्हण के समय तक प्रचलित थी। बुद्ध जन्मोत्सव मनाने का कल्हण उल्लेख करता है। बारहवी शताब्दी सन् ११९१ ई० को हादो ग्राम में एक शिलालेख मिलता है। वह बुद्ध अवलोकितेश्वर की स्तुति से आरम्भ होता है। परिहासपुर में बोधिसत्त्व तथा एक बुद्ध की मूर्ति मिली थी। हुएनसांग १०० तथा ओकुंग (सन् ७५९ ई०) ८०० विहारों के होने का उल्लेख करता है। प्रताप सिंह संग्रहालय श्रीनगर में बोधिसत्त्व पद्मपाणि की एक मूर्ति रखी है।

ते वादिनः पराजित्य वादेन निखिलान्बुधान् ।
क्रियां नीलपुराणोक्तामच्छिन्दन्नागमद्विषः ॥ १७८ ॥

१७८. आगम द्वेषी[1] उन बौद्धों ने अपने विरोधी निखिल विद्वानों को वाद में परास्तकर[2] नीलमत पुराणोक्त धार्मिक क्रियाओं को उच्छिन्न[3] कर दिया।

१७८ (१) आगम : शब्द का अर्थ लिखित प्रमाण ज्ञान, परम्परा गत सिद्धान्त, शास्त्र किंवा विधि, वेद तथा न्याय के चार प्रकार के प्रमाणों में अन्तिम प्रमाण है।

आगम शास्त्र साधारणतया तन्त्र शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। निगमागम शब्द का प्रयोग बहुत होता है। निगम जिस प्रकार वेद है उसी प्रकार आगम तन्त्र भी है। निगम कर्म, ज्ञान तथा उपासना का स्वरूप बताता है। आगम उनके उपायभूत साधनों का वर्णन करता है। वाराही तन्त्र के अनुसार आगम का सात लक्षण यथा–सृष्टि, प्रलय देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट् कर्म तथा साधन और ध्यान योग है। षट्कर्म,–शान्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण है।

महानिर्वाण तन्त्र के अनुसार प्राणी पवित्र तथा अपवित्र अर्थात् मेध्य तथा अमेध्य है। विचारों से प्राय: हीन होते हैं। प्राणियों के कल्याणार्थ शंकर ने पार्वती को आगमों का उपदेश स्वयं दिया था 'कलि आगम सम्मत' अर्थात् कलियुग मे आगम की पूजा पद्धति उपयोगी एवं लाभप्रद कही गयी है।

वेद में बहुदेववाद का बहुल है। उनकी भिन्नता के कारण उनके तीन प्रकार हो गये हैं। वैष्णव आगम अर्थात् पांचरात्र और वैखानस आगम एवं शैव आगम में पाशुपत, शैव सिद्धान्तो तथा त्रिक। तीसरा शाक्त आगम है। द्वैत द्वैताद्वैत एवं अद्वैत दृष्टियों से भी तीन भेद माने गये हैं।

अनेक आगम वेद मूलक हैं। अनेक तन्त्रों पर आगम का वाह्य प्रभाव भी लक्षित होता है। बौद्ध धर्म ने वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध आवाज उठायी थी। वेद एवं ब्राह्मणों की समालोचना से बौद्ध-साहित्य भरा पड़ा है। बौद्धों को इसी मनोवृत्ति की ओर संकेत करते हुए कह्लण ने बौद्धों को आगम द्वेषी रूप में यहाँ चित्रित किया है।

शिव तथा त्रिक सूत्र के पूर्व भी कश्मीर में आगम तन्त्र शास्त्र का अस्तित्व मिलता है। मालिनी, विजय, स्वच्छन्द, विज्ञान भैरव, आनन्द-भैरव, उच्छश्य भैरव, मृगेन्द्र, मातंग, नेत्र, नव स्वास, स्वयंभू एवं रुद्रयामल रूप मिलते हैं।

(२) वाद : वाद का अर्थ वाणी, शब्द, वचन, कथन, वर्णन, निरूपण, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, तथा खण्डन मण्डन होता है। वाद प्रतिवाद का अर्थ झगड़ा-बहस आज कल होता है। कह्लण ने यहाँ वाद शब्द शास्त्रार्थ के अर्थ मे प्रयुक्त किया है। पराजित शब्द के 'वादेन' के पूर्व रखने से स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धों ने शास्त्रार्थ में तत्कालीन विद्वानों को परास्त किया था। बौद्धों ने आगमों का खण्डन कर अपने मत का मण्डन किया था।

(३) उच्छिन्न : कह्लण बौद्धों की प्रबल बुद्धिप्रबलता का यहाँ उल्लेख करता है। सभी कश्मीर मण्डल के विद्वानों को बौद्धों ने शास्त्रार्थ में पाण्डित्य, अकाट्य तर्क, एवं विद्वत्ता के कारण परास्त कर दिया था। उनके धर्म प्रचार का इतना गम्भीर प्रभाव पड़ा कि कश्मीर में नील मत विहित धार्मिक संस्कार आदि समूल नष्ट हो गये। यह एक सामाजिक क्रान्ति थी। उसने समाज के ढाँचे को बदल दिया। लोग प्राचीन सनातनधर्मी परम्पराओं को स्वत: त्याग दिये। राजा इस सामाजिक एवं धार्मिक क्रांति में सम्मिलित नहीं था परन्तु बौद्धों के अनुशासन, विचार तथा प्रचार के कारण धार्मिक कृत्य स्वत: उच्छिन्न हो गये थे।

मण्डले विप्लुताचारे विच्छिन्नबलिकर्मभिः ।
नागैर्जनक्षयश्चक्रे प्रभूतहिमवर्षिभिः ॥ १७९ ॥

१७९. जब उस मण्डल मे आचार विलुप्त हो गये, बलिकर्म[1] विच्छिन्न हो गये तो नागाओं[2] द्वारा की गई प्रभूत हिम[3] वर्षा द्वारा जन क्षय होने लगा।

हिमान्यां बौद्धबाधाय पतन्त्यां प्रतिवत्सरम् ।
शीते दार्वाभिसारादौ षण्मासान्पार्थिवोऽवसत् ॥ १८० ॥

१८०. बौद्धों को बाधा पहुँचाने के लिये प्रति वर्ष हिम वर्षा होने लगीं। अतएव राजा शीत काल में छः मास तक दार्वाभिसार[1] में निवास करने लगा।

---

१७९ (१) बलि कर्म : अनेक प्रकार के बलि कर्म एवं संस्कार नील मत पुराण में विहित हैं। बौद्धों के कारण बलि कर्म बन्द हो गया था। बौद्ध नाग पूजा, मूर्ति पूजा तथा देव पूजा में उस समय तक विश्वास नहीं करते थे।

पंच महा यज्ञों में पाँचवाँ बलि है। बलि अर्थात् जीवों को अन्न दानादि से सन्तुष्ट करने का नाम भूतयज्ञ है। बलि का दूसरा प्रकार पशुओं का वध किंवा बलिदान है। बलि का बलिदान काल में पूर्वाभिमुख तथा खड्गधारी बलि देने वाले का मुख उत्तर दिशा की ओर रहना चाहिए। 'वैश्वदेव' कर्म करने के काल में जो अन्न भाग अलग रख दिया जाता है। उसे प्रयमोक्त बलि कहा जाता है। यह अन्न भाग देव यज्ञ के लक्ष्यभूत देव के प्रति एवं जल, वृक्ष, गृहपशु इत्यादि देवताओं को समर्पित किया जाता है। बलि का अन्न भाग अग्नि में नहीं डाला जाता। भूमि पर फेंक दिया जाता है।

(२) नाग : नाग पूजा कश्मीर मे अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। ओनिस क्रीटस सम्राट् सिकन्दर के साथ यूनान से भारत मे आया था। उसके लेख का उल्लेख स्ट्रावो ने किया है—दर्माभिसार के राजा का दूत दो बड़े नागों का पालन-पोषण करता था। इसी प्रकार तक्षशिला के राजा ने एक बड़ा भारी नाग दिखाया था। उसे वह बड़े स्नेह से खिलाता था। उसकी पूजा देवता तुल्य करता था। आइने अकबरी में अबुल फजल लिखता है—"कश्मीर में नाग पूजा सम्राट् अकबर के समय तक होती रही है। यद्यपि वहाँ के रहने वाले प्रायः मुसलमान हो गये थे। इस समय ७०० नाग मूर्तियाँ कश्मीर के विभिन्न स्थानों में पूजी जाती है। अबुल फजल ने यह उद्धरण आइने अकबरी में पुण्यभट्ट से लेकर दिया है।

नीलमत पुराण में भगवान् विष्णु ने नाग पूजा के प्रसंग में कहा है—

नागस्य यस्य ये स्थाने नियमिष्यन्ति मानवाः ।
ते तं संपूजयिष्यन्ति पुष्पधूपानुलेपनैः ॥
नैवेद्यैर्विविधैर्गन्धैः प्रेक्षादानैश्च शोभनैः ।
त्वयोक्तं च सदाचारं पालयिष्यन्ति ये जनाः ॥
२८९–२९०

+ + +

तस्मादस्य सदा पूजा बलिं च विधिना बुधः ।
विदध्यात्तन्निवासस्थैरभ्यर्च्योऽसौ सदा मुदा ॥
२९७

(३) हिमपात : प्रतीत होता है कि बौद्धों के प्राबल्य के पश्चात् कश्मीर मे कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिनका कारण बौद्धों के सर थोपा गया। लगातार कई वर्षों तक अकाल पड़ता रहा। हिमपात इतना होने लगा कि लोग व्याकुल हो गये थे। चन्द्रदेव, एक ब्राह्मण नेता ने प्रचार आरम्भ कर दिया कि इन सब अनर्थों का मूल कारण बौद्धों का प्रचार

तथा प्राचीन सनातन धर्म से लोगों का विरत होना था। नाग देवतागण अपनी पूजा बन्द हो जाने के कारण क्रुद्ध हो गये थे। हिमपात इतना भयंकर होने लगा था कि राजा दार्वाभिसार (कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम रजौरी क्षेत्र में) किंवा नौशेरा और पुंछ मे जहाँ कुछ शीत कम पडती थी निवास करने लगा।

१८० (१) दार्वाभिसार : दार्वाभिसार का उल्लेख पुराणों, महाभारत तथा वृहत् संहिता में पंजाब को जातियों के वर्णन के सम्बन्ध में आया है। यह रावी तथा झेलम (वितस्ता) नदियों के अधोभागीय मध्यवर्ती पर्वतीय स्थान के लिए प्रयोग किया गया है। रजौरी का पर्वतीय क्षेत्र दर्भाभिसार मण्डल में आता है। (रा० त० ८:१५३१, १८६१)। भीमवार इसी क्षेत्र के *मध्य में एक छोटा पर्वतीय राज्य था। डंगल वितस्ता* के समीप अधोभागीय पर्वतीय दुर्ग घग्घर को कहते है। दर्भाभिसार उत्पलापीड के समय कश्मीर के अन्तर्गत था। (रा० त० ४:७१२) शंकर वर्मा ने उसे पुनः उस समय जीता था जब वह गुजरात जो भीमवर के दक्षिण था जीतने गया था (रा० त० ५:१४१, ५:२०८)। यहाँ के लोगों के चरित्र के विषय में कल्हण ने (*रा० त०* ८.१५३१ में) वर्णन किया है।

दर्भाभिसार का उल्लेख सिकन्दर के आक्रमण के समय भी आया है। दर्भाभिसार के राजा ने सिकन्दर की सहायता की थी।

दर्व: एक जाति का नाम है। यह जाति वल्लावर तथा जम्मू में रहती थी। *दर्व जाति* के साथ ही अभिसार जाति आबाद थी। अतएव प्रदेश का नाम दर्वाभिसार पड़ गया। चेनाब तथा रावी का मध्यवर्ती पर्वतीय भाग दर्व जनपद था। मार्कण्डेय पुराणादि के आधार पर कहा जा सकता है कि दर्व लोग पंजाब की उत्तरीय दिशा की जातियों में से थे। *उनका उल्लेख त्रिगर्त के साथ प्राय: आया है।*

महाभारत सभापर्व में दरद-दार्व-जाति का उल्लेख आया है। (सभापर्व ५१।१३) पुनः उल्लेख आया है।

काम्भ्याः दरदा दार्वा शूरा वैमकास्तका।
औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा वाह्लिकैः सह॥

कश्मीरा कुन्दमानाश्च पौरका हंसकायना।
शिवत्रिगर्तयौधेया राजन्याश्चन्द्रकेकयाः॥

—सभा पर्व ४८:१२:१३

उशीनर को पत्नी का नाम दर्वा था। दर्विन उशीनर का पुत्र वैष्णव मत के अनुसार था।

अभिसार का उल्लेख वृहत् सहिता में वाराह-मिहिर ने किया है। उसने अभिसार, दरद, दर्वा, खस, कीर, कुलूत, कौलिन्द आदि जातियों का वर्णन किया है। अभिसार जनपद झेलम चनाब के मध्य-*वर्ती प्रदेश का नाम था। अतएव निष्कर्ष ठीक होगा दर्वा तथा अभिसार दो भिन्न जनपद थे। मारकण्डेय* पुराण में वर्णन आया है।

कुन्दप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दार्वाः सुकूद् गृहाः।
त्रिगर्ताः जालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह॥

५७.५७

· वृहत् संहिता १४:२९, अलबेरुनी १:३०३

दर्वा का उल्लेख पर्वताश्रयी देश के रूप में मारकण्डेय पुराण में आया है।

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहाराः हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खशाः॥

कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णाः दार्वाः सकृद्गृहाः।
त्रिगर्ताः मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह॥

मारकण्डेय पुराण ५७।५६–५७

नागरहुंजा गिलगिट क्षेत्र में स्थान है। उसका प्राचीन हंसमार्ग नाम था। हंस का अपभ्रंश हुंजा हो गया है। यह प्राचीन दरद जनपद है। पुरातत्त्व विद्वानो में अब भी मतभेद है कि वास्तव में हुंजा हंसमार्ग ही है। मै स्वयं कुछ साधिकार नहीं कह सकता क्योंकि इस स्थान पर मैं आया नहीं हूँ और *यह नही देख सका हूँ कि ऋतु विशेष में हंस* किंवा पक्षी इस ओर से गमन करते है। यह स्थान इस

तदा प्रभावः कोऽप्यासीद्वलिहोमविधायिनाम् ।
नानशन्यद्‌ब्राह्मणा बौद्धाश्च निधनं गताः ॥ १८१ ॥

१८१. उस समय किसी अलौकिक शक्ति के प्रभाव के कारण जिन ब्राह्मणों ने वलि तथा होम[1] विधिवत् किया उनका नाश न होकर केवल बौद्धों का निधन[2] हुआ था।

समय पाकिस्तान में है। यहाँ पाकिस्तानी सैनिक छावनियाँ है जाना सम्भव नहीं है।

मारकण्डेय पुराण में–'ऊर्णा दर्वास्तथैव च' 'ऊर्णा दर्वास्तथैव च' ब्रह्माण्ड पुराण में ऊर्णा दर्वास्तथैव च' उल्लेख आया है। पुराण काल में दर्व जाति तथा दर्वा देश समझे जाते थे। भीष्म पर्व में जनपदों के वर्णन मे दर्वा तथा अभिसार दोनों जनपदों का नाम भारतवर्ष के जनपदों के अन्तर्गत भीष्म पितामह ने गिनाया है।

अभीसारा उलूताश्च, शैवला वाह्लिकास्तथा।
दार्वा च वानवा दर्वा वातजामरथोरगाः॥
भीष्म पर्व ९:५४

सभा पर्व में अर्जुन के पर्वतीय देशों के विजय के सम्बन्ध में तालिका दी गयी है। उसमें दार्वा का नाम आया है। दार्वा दर्व प्रदेश किंवा जनपद है। उसका वर्णन काश्मीर त्रिगर्त आदि देशों के साथ ही क्रम से आया है।

ततस्त्रिगर्तां कौन्तेयं दार्वा कोकनदास्तथा।
क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वशः॥
२७:१९

साथ ही दूसरे श्लोक में 'अभिसारी' शब्द आया है। यह अभिसार प्रदेश तथा नगर का द्योतक है।

अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दनः।
उरगावासिनं चैव रोचमानं रणेऽजयत॥
२७:१९

भीष्म पर्व में एक भारतीय जनपद के रूप में 'दर्व' शब्द का प्रयोग किया गया है।

अभीसारा उलूताश्च शैवला वाह्लिकास्तथा।
दार्वा च वानवा दर्वा वातजामरथोरगाः॥
९:५४

सभा पर्व में दर्व शब्द का प्रयोग एक क्षत्रिय जाति के रूप में किया गया है। पूर्व वंशीय क्षत्रिय राजकुमारों ने युधिष्ठिर को बहुत धन उपहार स्वरूप दिया था।

कैराता दरदा दर्वाः शूरा वै यमकास्तथा।
औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा वाह्लिकैः सह॥
५२:१३।

दार्व शब्द का प्रयोग दर्वदेशीय किंवा दर्व जाति में उत्पन्न क्षत्रिय नरेश के रूप में किया गया है।

ततस्त्रिगर्ताः कौन्तेयं दार्वाः कोकनदास्तथा।
क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वशः॥

दार्वाभिसार शब्द एक म्लेच्छ जाति के लिये प्रयुक्त किया गया है।

दार्वाभिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः।
नैव शक्याः स्म संख्यातुं व्रात्याः शतसहस्रशः॥
९३:७४।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८१ में 'विधायिनाम्' का 'विधायिनः' तथा 'नशन्' का 'नश्यन्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८१ (१) होम : देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में घृतादि डालकर हवन करने को होम कहते हैं। यह पंच महायज्ञों में से एक देवयज्ञ है। उस दान को भी होम कहते हैं। जो श्राद्धादि के समय मंत्र पूर्वक किया जाता है। मनुस्मृति ने होम को एक यज्ञ माना है।

नीलमुद्दिश्य देशस्य रक्षितारमहीश्वरम् ।
काश्यपश्चन्द्रदेवाख्यस्तपस्तेपे ततो द्विजः ॥ १८२ ॥

१८२. काश्यप गोत्रीय चन्द्रदेव[1] नामका द्विज नीलनाग को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करने लगा जो काश्मीर के नागाओं का राजा तथा रक्षक था।

तस्य प्रत्यक्षतां यातो नीलस्तुहिनविप्लवम् ।
न्यवारयज्जगादापि स्वपुराणविधिं पुनः ॥ १८३ ॥

१८३. चन्द्रदेव के सम्मुख नील प्रसन्न हुए। तुहिन विप्लव शान्त किया। नील ने स्व (नीलमत) पुराण की यज्ञादि विधियाँ[1] पुनः बतायीं।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
३:७० ।

(२) निधन : बौद्धों के राजनीतिक उत्पीडन का श्लोक संख्या १८० तथा १८१ में एक मत से कवित्वपूर्ण वर्णन कल्हण ने किया है। बौद्धों को बाधा पहुँचाने के लिये हिम वर्षा तथा बलि एवं होम के कारण ब्राह्मणों पर संकट न आकर बौद्धों का निधन होने लगा यह पुरातन सनातन परम्परानुसार बलि तथा होम की शक्ति तथा महत्ता दिखाने के लिये यहाँ वर्णन किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८२ में 'तारमहीश्वरम्' का 'तारं महेश्वरम्', 'तपस्तेपे' का 'वतस्तेपे' तथा 'ततो द्विजः' का पाठभेद 'द्विजस्ततः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८२ (१) चन्द्रदेव : इस तपस्वी के विषय में विस्तृत बातें अप्राप्त हैं। यह ब्राह्मण थे। तपस्वी थे। काश्मीर में हिम विप्लवादि समाप्त करने के लिये काश्मीर के नागराज नील को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करने लगे। कश्मीर में यह प्रचलित परम्परा है कि नील नाग कश्मीर का रक्षक है। वही सब नागों का नेता किंवा राजा है। नीलमत पुराण कश्मीर का पुराण तथा पूजा, उपासना, बलि एवं धार्मिक संस्कारों की विधि निर्धारित करता है। प्राचीन संस्कार बौद्धों के नवीन शासन के कारण नष्ट प्राय हो गये थे अतएव उन्हें पुनः जारी करने के लिये उसने तपस्या की।

१८३ (१) विधि : प्रतीत होता है कि बौद्धों के प्रभाव के कारण, बौद्धमतावलम्बी राजाओं के लम्बे काल एवं प्रश्रय के कारण नीलमत पुराण विहित संस्कार विधि कश्मीर में प्रायः लोग भूल गये थे अथवा भूलने लगे थे। नील ने चन्द्रदेव ब्राह्मण के सम्मुख प्रकट होकर नीलमत पुराण विहित विधियों, धार्मिक संस्कारों आदि को पुनः बतायी। सम्भव हो सकता है कि प्राचीन नीलमत पुराण लुप्त हो गया हो। उसके स्थान पर नवीन नीलमत पुराण का संस्करण चन्द्रदेव ब्राह्मण ने किया। अन्यथा यहाँ पुनः नीलमत वर्णित बातों को बताने की आवश्यकता न पड़ती।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित 'रिवर आफ किंग्स' पृष्ठ २६ पर श्री फाउचर के एक मन्तव्य का उल्लेख करते हैं। श्री फाउचर ने कश्मीर के ब्राह्मणों तथा मुसलमानों दोनों में नाग, पिशाच, योग नियोग आदि के विषय में अनेक कथायें तथा जनश्रुतियों का होना कहते हैं। जिनपर कश्मीर उपत्यका की साधारण जनता विश्वास करती है। उनका अभिप्राय है कि इस प्रकार की कथाओं, किंवदन्तियों का संग्रह करना अच्छा होगा।

आद्येन चन्द्रदेवेन शमितो यक्षविप्लवः ।
द्वितीयेन तु देशेऽस्मिन्दुस्सहो भिक्षुविप्लवः ॥ १८४ ॥

१८४. आद्य चन्द्रदेव[1] ने यक्ष विप्लव का शमन किया था और द्वितीय चन्द्रदेव ने इस देश में दुःसह भिक्षु विप्लव शान्त किया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १८४ में 'यक्ष' का 'यश', 'यज्ञ' तथा 'भिक्षु' का 'बौद्ध' 'निच' तथा 'भिक्ष' ये पाठ भेद मिलते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

१८४ (१) आद्य चन्द्रदेव : पिशाचों से आदि चन्द्रदेव ने कश्मीर मण्डल की रक्षा की थी। नीलमत पुराण में चन्द्रदेव ब्राह्मण नील समागम वर्णन है। उसमें आद्य चन्द्रदेव काश्यप वंशीय वृद्ध ब्राह्मण थे। शीत ऋतु एवं तुहिन पात के कारण लोग आश्वुज मास में पुरानी परम्परा के अनुसार कश्मीर उपत्यका का त्याग करते थे।

वृद्धावस्था के कारण चन्द्रदेव काश्मीर का त्याग न कर सके। पिशाच उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। उसे सर्व प्रथम रज्जु से बाँधकर रखा। अनन्तर उसे मुक्त कर दिया। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। कहाँ शरण ग्रहण करें। वह घूमने लगा। घूमते-घूमते वह नील के निवास पर पहुँचा। नील को उसकी दशा पर करुणा आयी। उसका आतिथ्य सत्कार किया। उससे पिशाचों तथा शीत रक्षा निमित्त अनेक क्रियाएँ बतायी।

चैत्र मास में हिमपात बन्द हो जाता है। भूमि हिम विहीन हो जाती है। लोग पुनः कश्मीर उपत्यका में लौट आते हैं। वृद्ध-चन्द्रदेव को प्रसन्न तथा स्वस्थ देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। उसे राजा वीर्योदय के सम्मुख उपस्थित किया। चन्द्रदेव ने पिशाच तथा नील के साथ हुई वार्तालाप तथा घटनाओं का वर्णन किया। नील द्वारा विहित पूजा विधि बतायी। राजा तथा प्रजा उन्हें प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो गये। परिणाम स्वरूप कश्मीर उपत्यका पिशाच-भय एवं उपद्रव विहीन हो गयी।

अथाश्वयुज्यामतीतायां निर्गतेषु मनिषा बहिः ।
काश्यपश्चन्द्रदेवाख्यो वृद्धो ब्राह्मणपुंगवः ॥

निर्जगाम निर्वेदाघोदितोऽथेन मायिना ।
क्रीडानिमित्तं च भयात्सिकुम्भस्य न यातिनः ॥

ग्रामग्रेन पिशाचास्तुद्दिपक्रीडुस्तेन वै तदा ।
रज्जुबद्धेन तु यथा बभ्रिणा नृपदारकाः ॥

कल्पमानाः (१) पिशाचैस्तु निर्वेदं परमं ययौ ।
हिमेन शीतेन तथा पिशाचैःस्समीप्यमानो द्विजवृद्धवर्यः।
बभ्राम तत्रैव विमूढचेता भ्रमन्ययौ यत्र स नागराजः ॥
४२५-४२९

यहाँ कल्हण ने पिशाच के स्थान पर यक्ष शब्द का प्रयोग किया है। दोनों शब्द को प्रायः समानार्थक कुछ ऐतिहासिकों ने माना है। परन्तु यक्ष तथा पिशाच दो भिन्न जातियाँ हैं। उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। मुझे नीलमत का मत कल्हण की अपेक्षा अधिक तर्कसम्मत मालूम होता है। कश्मीर में यक्ष, गुह्यक तथा पिशाच तीनों जातियाँ थी। यक्षों को कहीं धर्मविरोधी कार्य करते नहीं दिखाया गया है। पिशाच धर्म विरोधी कार्य करते थे। अतएव यहाँ पिशाच नाम यक्ष के स्थान पर होना चाहिये। यक्षों को शिल्पी के रूप में चित्रित कल्हण ने किया है। वे निर्माण कार्य में लगे दिखाई देते हैं। चन्द्रदेव आख्यान से प्रतीत होता है। कश्मीर उपत्यका में लोग ६ मास निवास करते थे। तुषारपात आरम्भ होने के पूर्व उपत्यका छोडकर गर्म स्थान में चले जाते थे। इसी प्रकार तुषारपात बन्द होने पर पुनः उपत्यका में लौट आते थे। अब भी

शीत ऋतु प्रारम्भ होते ही पर्वतों पर रहने वाली घूमन्तू जातियाँ मैदान में अपनी भेड़ों तथा पशुओं के साथ शरण लेती हैं। सितम्बर मास में मैंने इस प्रकार ऊँचे पर्वतों पर से आने वाले लोगों का समूह कश्मीर की सड़कों पर बहुत देखा है। कल्हण ने यहाँ पुरानी गाथा की पुनरावृत्ति की है।

उक्त वर्णन से प्रकट होता है। पुरातन नीलमत वर्णित संस्कारादि जो बौद्धों के कारण बन्द हो गये थे पुनः आरम्भ किये गये। नाग पूजा पुनः कश्मीर में प्रचलित हुई। कुछ विद्वानों का मत है। नीलमत पुराण इसी समय की रचना है। नीलमत सिद्धान्त लोग त्याग दिये थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि नीलमत पुराण का महत्व घट गया था। बौद्ध सिद्धान्तों ने जोर पकड़ लिया था। बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया का काल था। कुछ लोगों का मत है कि नीलमत ६वीं अथवा ७वीं शताब्दी के पूर्व का ग्रन्थ नहीं है।

हसन चन्द्रदेव के विषय में लिखता है: एक दफा का जिक्र है कि एक बूढ़ा खूसट ब्राह्मण चन्द्रदेव नाम जो इल्म व अमल में मुमताज था कश्मीर के एक गार में छुपकर याद खुदा में मसरूफ हो गया। जरूरियात जिन्दगी की तमाम चीजें इस शख्स ने अपने पास जमा कर लीं। जाड़े का मौसम था। बर्फ व बारिश से तंग आकर देव फौज दर फौज इसके पास जमा हो गये और उस बूढ़े खूसट ब्राह्मण को अपनी खुफिया जगह से निकाल बाहर किया। बाद अजा दो खतरनाक कवी हैकल देव नील नाग के चश्मा पर जो कोहस्तान नागिम की तलहटी में वाका है खड़े हो गये और बरहमन मजकूर को यह दोनों एक दूसरे की बगल में डालकर हँसी ठट्ठा करने लगे। इत्तफाक से गरीब ब्राह्मण का पाँव फिसल गया। और चश्मे के अन्दर जा पड़ा। देखता है क्या कि एक बड़ी वसीय व खराज दुनिया है जिसमें एक आलीशान महल है और महल में एक जर निगार तख्त जिसपर एक बादशाह बड़ी शान व तमकुनत के साथ जलसहगर है। ब्राह्मण हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ा हो गया और बड़ी आजिजी के साथ देवों के मुजालिम और बर्फ की तकलीफ उससे बयान करने लगा। यह बादशाह खुद नील नाग था। उसे ब्राह्मण की हालत जार पर मुरुत रहम आया और अपने पास बुलाकर अपनी खुद तसनीफ करदा किताब नीलमत पुरान उसको बख्श दी। साथ ही वसीयत की कि किताब मजकूर को मुतवकि मुकामात पर पढ़कर देवों और राक्षसों की खैरात व अदकान दिये जाया करें। वह अमल और वजायफ जो इस किताब में दर्ज हैं बाजाप्तगी से हमेशा पढ़े जावें। अकसर औकात खुदाताला की इबादत व अताअत में मसरूफ रहा जाये। इस सूरत में लोग देवों और राक्षसों की इज्ज तकलीफ से महफूज रह सकेंगे। यह कह कर बरहमन मजकूर को चशमा नील नाग के किनारे पहुँचा दिया।

इधनदार बहार थी। लोग सरजमीन हिन्दुस्तान में खेती बाड़ी की गरज से फिर कश्मीर आने लगे। यह देखकर उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ कि एक बूढ़ा व नातवान ब्राह्मण सही व सालम मौजूद है। लोगों ने इसका सबब दरयाफ्त किया जिसको उसने मन व अन से कह डाला। यह सुन कर लोग बहुत खुश हुए। चुनाचः उसे और उसकी किताब फाले नेक जानकर अपने अफसर दरया देव नामी के पास ले गये। लोगों ने दरया देव के हुक्म पर सरअंजामत रखकर देवों और शिद्दत बरफ बारां के आशोब से नजात हासिल कर ली। उसी वक्त से कश्मीर में बिला इम्तयाज मौसम मुस्तकिल तौर पर आबादी शुरू हो गयी। नस्ले इन्सानी की दिन व दिन कसरत के वापस दिहात व कस्बात वजूद में आ गये।

इब्तदा में हर एक गावों का अलग हाकिम होता था। फिर सरकशी और हिर्स के बढ़ जाने की वजह से एक शख्स कई-कई दिहात दबा बैठा। बाहमी मुदाफत और एक दूसरे के शर से बचने के लिये इन लोगों ने छोटे-छोटे किलों की बुनियाद डाल दी। जिन्हें कोट के नाम से पुकारा

आद्येन चन्द्रदेवेन शमितो यक्षविप्लवः ।
द्वितीयेन तु देशेऽस्मिन्दुस्सहो भिक्षुविप्लवः ॥ १८४ ॥

१८४. आद्य चन्द्रदेव[1] ने यक्ष विप्लव का शमन किया था और द्वितीय चन्द्रदेव ने इस देश में दुःसह भिक्षु विप्लव शान्त किया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १८४ में 'यक्ष' का 'पक्ष', 'यज्ञ' तथा 'भिक्षु' का 'बौद्ध' 'भिक्ष' तथा 'भिक्ष' ये पाठ भेद मिलते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

१८४ (१) आद्य चन्द्रदेव : पिशाचोसे आदि चन्द्रदेव ने कश्मीर मण्डल की रक्षा की थी। नीलमत पुराण में चन्द्रदेव ब्राह्मण नील समागम वर्णन है। उसमे आद्य चन्द्रदेव काश्यप वंशीय वृद्ध ब्राह्मण थे। शीत ऋतु एवं तुहिन पात के कारण लोग आसुज मास में पुरानी परम्परा के अनुसार कश्मीर उपत्यका का त्याग करते थे।

वृद्धावस्था के कारण चन्द्रदेव काश्मीर का त्याग न कर सके। पिशाच उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। उसे सर्व प्रथम रज्जु से बाँधकर रखा। अनन्तर उसे मुक्त कर दिया। उसे कुछ समझ में नही आ रहा था। वहाँ शरण ग्रहण करें। वह घूमने लगा। घूमते-घूमते वह नील के निवास पर पहुँचा। नील को उसकी दशा पर करुणा आयी। उसका आतिथ्य सत्कार किया। उसके पिशाचों तथा शीत रक्षा निमित्त अनेक क्रियाएँ बतायी।

चैत्र मास मे हिमपात बन्द हो जाता है। भूमि हिम विहीन हो जाती है। लोग पुनः कश्मीर उपत्यका में लौट आते हैं। वृद्ध-चन्द्रदेव को प्रसन्न तथा स्वस्थ देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। उसे राजा वीर्योदय के सम्मुख उपस्थित किया। चन्द्रदेव ने पिशाच तथा नील के साथ हुई वार्तालाप तथा घटनाओं का वर्णन किया। नील द्वारा विहित पूजा विधि बतायी। राजा तथा प्रजा उन्हे प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो गये। परिणाम स्वरूप कश्मीर उपत्यका पिशाच-भय एवं उपद्रव विहीन हो गयी।

अवश्युज्यामतीतायां निर्मयुमनिया बहिः ।
काश्यपश्चन्द्रदेवाख्यो वृद्धो ब्राह्मणपुंगवः ॥

निर्जगाम निर्वेदाद्योदितोऽर्थेन भाविना ।
क्रीडानिमित्तं च भयाशिकुम्भस्य न यातितः ॥

ब्राह्मणेन पिशाचास्तुद्दिश्यक्रीडुस्तेन ते सदा ।
रज्जुबद्धेन तु यथा यक्षिणः नृपदारकाः ॥

कल्पमानाः (१) पिशाचैस्तु निर्वेदं परमं ययौ ।
हिंसन् शीतेन तथा पिशाचैःसमीप्यमानो द्विजवृद्धवर्यः।
बभ्राम तत्रैव विमूढचेता भ्रमन्ययौ यत्र स नागराजः ॥
४२५–४२९

यहाँ कल्हण ने पिशाच के स्थान पर यक्ष शब्द का प्रयोग किया है। दोनों शब्द को प्रायः समानार्थक कुछ ऐतिहासिकों ने माना है। परन्तु यक्ष तथा पिशाच दो भिन्न जातियाँ है। उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। मुझे नीलमत का मत कल्हण की अपेक्षा अधिक तर्कसम्मत मालूम होता है। कश्मीर में यक्ष, गुह्यक तथा पिशाच तीनों जातियाँ थी। यक्षों को कहीं धर्मविरोधी कार्य करते नही दिखाया गया है। पिशाच धर्म विरोधी कार्य करते थे। अतएव यहाँ पिशाच नाम यक्ष के स्थान पर होना चाहिये। यक्षो को शिल्पी के रूप में चित्रित कल्हण ने किया है। वे निर्माण कार्य में लगे दिखाई देते है। चन्द्रदेव आख्यान से प्रतीत होता है। कश्मीर उपत्यका मे लोग ६ मास निवास करते थे। तुषारपात आरम्भ होने के पूर्व उपत्यका छोड़कर गर्म स्थान में चले जाते थे। इसी प्रकार तुषारपात बन्द होने पर पुनः उपत्यका मे लौट आते थे। अब भी

शीत ऋतु प्रारम्भ होते ही पर्वतों पर रहने वाली घूमन्तू जातियाँ मैदान में अपनी भेड़ों तथा पशुओं के साथ शरण लेती हैं। सितम्बर मास में मैंने इस प्रकार ऊँचे पर्वतों पर से आने वाले लोगों का समूह कश्मीर की सड़कों पर बहुत देखा है। कल्हण ने यहाँ पुरानी गाथा की पुनरावृत्ति की है।

उक्त वर्णन से प्रकट होता है। पुरातन नीलमत वर्णित संस्कारादि जो बौद्धों के कारण बन्द हो गये थे पुनः आरम्भ किये गये। नाग पूजा पुनः कश्मीर में प्रचलित हुई। कुछ विद्वानों का मत है। नीलमत पुराण इसी समय की रचना है। नीलमत सिद्धान्त लोग त्याग दिये थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि नीलमत पुराण का महत्व घट गया था। बौद्ध सिद्धान्तों ने जोर पकड़ लिया था। बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया का काल था। कुछ लोगों का मत है कि नीलमत ६वीं अथवा ७वीं शताब्दी के पूर्व का ग्रन्थ नहीं है।

हसन चन्द्रदेव के विषय में लिखता है - एक दफा का जिक्र है कि एक बूढ़ा खूसट ब्राह्मण चन्द्रदेव नाम जो इल्म व अमल में मुमताज था कश्मीर के एक गार में छुपकर याद खुदा में मसरूफ हो गया। ज़रूरियात जिन्दगी की तमाम चीजें इस शख्स ने अपने पास जमा कर ली। जाड़े का मौसम था। वर्फ व बारिश से तंग आकर देव फौज दर फौज इसके पास जमा हो गये और उस बूढ़े खूसट ब्राह्मण को अपनी खुफिया जगह से निकाल बाहर किया। बाद अजा दो खतरनाक कवी हैकल देव नील नाग के चश्मा पर जो कोहस्तान नागिम की तलहटी में वाका है खड़े हो गये और बरहमन मज़कूर को यह दोनों एक दूसरे की बगल में डालकर हँसी ठट्ठा करने लगे। इत्तफ़ाक से गरीब ब्राह्मण का पाँव फिसल गया। और चश्मे के अन्दर जा पड़ा। देखता है क्या कि एक बड़ी वसीय व सराज दुनिया है जिसमें एक आलीशान महल है और महल में एक जर निगार तख्त जिसपर एक बादशाह बड़ी शान व तमकुनत के साथ जलसहगर है। ब्राह्मण हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ा हो गया और बड़ी प्राजिजी के साथ देवों के मुजालिम और बर्फ की तकालीफ उससे बयान करने लगा। यह बादशाह खुद नील नाग था। उसे ब्राह्मण की हालत जार पर सख्त रहम आया और अपने पास बुलाकर अपनी खुद तसनीफ करदा किताब नीलमत पुरान उसको बख्श दी। साथ ही वसीयत की कि किताब मजकूर को मुतर्वाक मुक़ामात पर पढ़कर देवों और राक्षसों को ख़ैरात व शदकात दिये जाया करें। वह अमल और वज़ायफ जो इस किताब में दर्ज हैं बाज़ाब्तगी से हमेशा पढ़े जावें। अकसर औकात खुदाताला की इबादत व अताअत में मसरूफ रहा जाये। इस सूरत में लोग देवों और राक्षसों की इज़ज तकालीफ से महफूज रह सकेंगे। यह कह कर बरहमन मजकूर को चशमा नील नाग के किनारे पहुँचा दिया।

इबनदार बहार थी। लोग सरजमीन हिन्दुस्तान में खेती बाड़ी की गरज़ से फिर कश्मीर आने लगे। यह देखकर उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ कि एक बूढ़ा व नातवान ब्राह्मण सही व सालम मौजूद है। लोगों ने इसका सबब दरयाफ़्त किया जिसको उसने मन व अन्न से कह डाला। यह सुन कर लोग बहुत खुश हुए। चुनांचः उसे और उसकी किताब फाले नेक जानकर अपने अफसर दरया देव नामी के पास ले गये। लोगों ने दरया देव के हुक्म पर सरअताअत रखकर देवों और शिद्दत बरफ बारां के आसोब से नजात हासिल कर ली। उसी वक्त से कश्मीर में बिला इम्तयाज मौसम मुस्तकिल तौर पर आबादी शुरू हो गयी। नस्ले इन्सानी की दिन ब दिन कसरत के बायस दिहात व कस्बात वजूद में आ गये।

इब्दा में हर एक गाँवों का अलग हाकिम होता था। फिर सरकशी और हिर्स के बढ़ जाने की वजह से एक शख्स कई-कई दिहात दबा बैठा। बाहमी मुदाफ़त और एक दूसरे के घर से बचने के लिये इन लोगों ने छोटे-छोटे क़िलों की बुनियाद डाल दी। जिन्हें कोट के नाम से पुकारा

राजा तृतीयगोनन्दः प्राप्तराज्यस्तदन्तरे ।
यात्रायागादि नागानां प्रावर्तयत पूर्ववत् ॥ १८५ ॥

१८५. तदन्तर गोनन्द तृतीय[1] राजा हुआ। उसने पूर्ववत् नागयात्रा, नागयज्ञादि[2] प्रवर्तित किया।

जाता है। चुनांचः आज भी यह राय मुन्दरजे जैल मुकामों के नामों से दुरुस्त साबित होती है— मन्दर कोट, जौन कोट, सीदरह कोट, दूर कोट, पट.कोट और स्यालकोट। तारीख में इस दौर को कोट राज (या तवायोफ मलमलूकी) के नाम से ताबीर किया जाता है। कश्मीर में यह दौर काफी मुद्दत तक जारी रहा। उस जमाना में कोट हाकिम को मनराज (सरदार) कहा जाता था।

'अपनी असली दौलत पर काना न होकर इन कोट राजों ने एक दूसरे पर चढ़ाई शुरू कर दी। नतीजा मगलूब हुक्मरान को राजा जम्मू की तरफ मुतवज्जह होना पड़ा। उसने अपने बेटे कुंअर दयाकरण को सरकर्दगी में एक बड़ी भारी फौज भेज दी। जिससे बहुत थोड़े अरसा में अमन और अमान बहाल हो गया। उसी वक्त से राजा जम्मू की हकूमत भी कश्मीर में दाखिल पड़ी। कहा जाता है कि इस राजा के खानदान के पचीस आदमियों ने छः सौ तिरपन साल तक सर जमीन कश्मीर पर हुकूमत की। लेकिन इन बादशाहों के नाम की उनकी मुद्दत हकूमत और उनके कारनामों की तशरीफ कोई मोरिख भी न कर सका।

हसन तारीख कश्मीर पृष्ठ ११–१२

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १८५ में 'गोनन्दः' का 'गोनर्दः' तथा 'प्राप्तराज्यस्त' का 'प्राप्तो राज्ये तद' पाठ-भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८५ (१) गोनन्द : आइने अकबरी में नाम राजा वैकुण्ठ तथा राज्यकाल १५ वर्ष दिया गया है।

बैंबुद्दीन कहता है। गोनन्द राजा बनाया गया था। वह अभिमन्यु का पुत्र नहीं था। वह यह भी लिखता है। राजा के सेनापति नन्दराम ने नर्वदा तक हिन्दुस्तान को फतह किया था। किन्तु लेखक के मत का यहीं से समर्थन नहीं मिलता है। इस राजा ने नर्वदा तक विजय किया था। इसका भी प्रमाण नहीं मिलता।

हसन कहता है - राजा गोनन्द सोयम राजा नर के पोते में से था। क० संवत् १८५२ में तख्त हकूमत पर पर रखकर अदल व अहसान और मखलूक खुदा की फलाह व बहबूद में दिल व जान से कोशा रहकर उन्हें आराम आसाइश पहुँचाई। बादशाह की उमदगी और अच्छे कामों की बदौलत सरजमीन कश्मीर से मजहब जैन का गलबा और शिहत बरकरारी खतम हो गयी। ३५ बरस बादशाह रहकर इस दारेफानी से रुखसत हुआ। हुस्न नीयत की बरकत से बहुत से पोते पड़पोते उसकी जरीयत से इस मुल्क के हाकिम हुए। इसके खान्दान के हुक्मरानों का कुल मुद्दत हकूमत दो हजार छह सौ मुतएन की गयी है। पृष्ठ ४४ हसन की काल गणना अत्यन्त दोषपूर्ण है।

(२) गोनन्द तृतीय : गोनन्द तृतीय कौन था? उसकी वंश परम्परा क्या थी? उसे राज्य कैसे प्राप्त हुआ? आदि इन बातों की ओर किंचित् मात्र संकेत कल्हण नहीं करता। राजा अभिमन्यु प्रथम के समान गोनन्द ने अपने भाग्य अथवा पराक्रम से कश्मीर मण्डल का राज्य प्राप्त किया होगा। राजा अभिमन्यु के किसी वंशज, सम्बन्धी आदि का कोई वर्णन कल्हण ने नहीं किया है।

राज्ञा प्रवर्तिते तेन पुनर्नीलोदिते विधौ।
भिक्षवो हिमदोषाश्च सर्वतः प्रशमं ययुः॥ १८६॥

१८६. राजा द्वारा नीलोक्त विधि को पुनः प्रवर्तित करने पर भिक्षु तथा हिम दोष सर्वतः [1]शान्त हो गये।

काले काले प्रजापुण्यैः संभवन्ति महीभुजः।
यैर्मण्डलस्य क्रियते दूरोत्सन्नस्य योजनम्॥ १८७॥

१८७. प्रजा के पुण्य के कारण समय-समय पर ऐसे नृपों का जन्म सम्भव[1] होता है जो अत्यन्त छिन्न-भिन्न हुए राज्य का योजन (पुनर्संघटन) करते हैं।

मालूम होता है। बौद्धों के विरुद्ध हुए आन्दोलन तथा पुरातन धर्म के पुनःस्थापन निमित्त गोनन्द ने विशेष प्रयास किया होगा। अतएव या तो अभिमन्यु ने गोनन्द को स्वयं अपना उत्तराधिकारी बनाया होगा। अथवा सन्तान हीन उसके मरने पर प्रजा ने गोनन्द को राजा निर्वाचित कर लिया होगा।

(३) नाग यात्रा नाग यज्ञ : नील मत पुराण द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८६ मे 'हिमदोपाश्च' का 'हिमदोपाच्च' तथा 'हि सदोषाश्च' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८६ (१) दोष शान्ति : कल्हण ने प्राकृतिक प्रकोप किस प्रकार रोका गया था तथा रोका जा सकता है। उसका यहाँ उल्लेख किया है। तपस्या, पूजा, पाठ, यज्ञादि एवं नीलमत्त विहित संस्कारों तथा कर्मों के कारण बौद्ध तथा हिमपात दोनों का समय हो गया।

१८७ (१) सम्भव : यहाँ गीता की ओर लक्ष्य कल्हण करता है। धर्म की जब जब हानि होती है तो भगवान् का अवतार सम्भव होता है उसी प्रकार प्रजा यदि पुण्य कार्य करती है तो राज्य को समृद्धिशाली, सुगठित बनाने के लिये सुयोग्य नृपों का जन्म सम्भव होता है। गीता के धार्मिक सिद्धान्त 'सम्भवामि युगे-युगे' को कल्हण ने राजनीति क्षेत्र मे 'संभवन्ति महीभुज' कह कर दोनों की समानता की है। वह प्रजा को पुण्य कर्मी होने के लिये संकेत करता है। प्रजा के पुण्य के कारण उत्तम राजाओं का आविर्भाव सम्भव होता है। प्रजा के पाप के कारण क्रूरकर्मा राजा उत्पन्न होते है। कल्हण ने कर्म सिद्धान्त को राजनीति में लागू किया है।

'मैन एण्ड टेकनीक' में श्री स्पेंगलर ने इस कर्म सिद्धान्त की ओर लक्ष्य किया है। उसमें प्राचीन भारतीय कर्म सिद्धान्त की झलक मिलती है। वह कहता है। यह हमारी शक्ति मे नही है कि हम यह चुनें कि हम तीन सहस्र वर्ष पूर्व किसी मिस्री कृषक, किसी ईरानी राजा, अथवा आधुनिक जगत् के अवारो की सन्तान बनें। यह भाग्य कुछ इस प्रकार का है कि हमे स्वीकार करना पड़ेगा। वह हमें किस परिस्थिति, विचार एवं कार्य की ओर प्रवृत्त करता है। जिसके विषय मे दार्शनिक बातें करते हैं। किन्तु केवल समय के आदमी होते है, स्थान के आदमी होते हैं जाति के आदमी होते हैं, व्यक्तिगत वर्ग के आदमी होते है जो समरांगण में एक निर्दय विश्व मे सन्तोष करते है और जीतते या हारते है जब कि उनके चारो तरफ विश्व शनैः शनैः गतिशील ईश्वर के निर्लिप्त भाव तुल्य रहता है। यह संघर्ष जीवन है निःसन्देह जीवन नीत्से के भाव मे एक निर्दय-दयाहीन है जिसमे इच्छा द्वारा शक्ति प्राप्ति के संघर्ष का कोई स्थान नही है।

ये प्रजापीडनपरास्ते विनश्यन्ति सान्वयाः ।
नष्टं तु ये योजयन्ति नृपास्तेषां वंशानुगाः श्रियः ॥ १८८ ॥

१८८. जो प्रजापीडक राजा होते हैं वे कुलसहित नष्ट हो जाते हैं और जो नष्ट राष्ट्र को सुव्यवस्थित करते हैं, उनके वंश की अनुगामिनी श्री होती है।

इत्येतत्प्रतिवृत्तान्तं देशेऽस्मिन्वीक्ष्य लक्षणम् ।
भाविनां भूमिपालानां प्राज्ञैर्ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥ १८९ ॥

१८९. विज्ञ जन राजाओं में इन प्रतिवृत्तान्तों को देखकर भावी भूपालों के शुभाशुभ कर्मों को समझ लेते हैं।

नवीकृतवतो देशं तस्य वंश्यैरिमां मही ।
सिद्धैः प्रवरसेनाद्यैश्चिरं भुक्ता सुकर्मभिः ॥ १९० ॥

१९०. देश को नवीकृत[1] करने वाले उस राजा (गोनन्द) के वंशज, प्रवरसेन आदि सिद्ध थे तथा अपने सुकर्मों द्वारा पृथ्वी का चिरकाल तक भोग किये।

कल्हण इसी ओर संकेत करता है। हम चाहते कुछ हैं। होता कुछ है। यह क्या होता है? इसे कर्म का फल कहा जाता है। कल्हण जनता को सचेत करता है। यदि वह पुण्यात्मा होगी तो आदर्श नृपों का राज्ययुक्त परिपालन सम्भव है अन्यथा क्रूर होने पर पापी किया दूषित होने पर उसे उसके कर्मानुसार उसी प्रकार के अयाचित राजाओं की प्राप्ति होगी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८८ में 'विनश्यन्ति सान्वयाः' का पाठभेद 'नश्येयुः सहान्वया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८८ (१) श्री : कल्हण ने सुनकर यहाँ राजाओं के भाग्य तथा उनके भविष्य की तरफ लक्ष्य कर इस श्लोक से चेतावनी दी है। पाप का परिणाम सर्वनाश है। पुण्य का परिणाम श्री की प्राप्ति करना है। राजा को पुण्याश्रयी होना चाहिए। राज्य को सुव्यवस्थित करना, जनता का सन्तानवत् पालन करना, जनता के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना, उसके निमित्त बड़ा से बड़ा त्याग करना यह राजा का पुण्य कार्य है।

उनके द्वारा उनके धन, कुल तथा राज्य की वृद्धि होती है। अन्यथा सब कुछ नष्ट हो जाता है। व्यास ने १८ पुराणों को लिखने के पश्चात् [illegible] अपना निष्कर्ष निकाला है।

अष्टादश पुराणेषु [illegible]
परोपकार पुण्याय पापाय [illegible]यम्।
[illegible]डनम् ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८९ में 'देशे' का 'देशं' तथा 'देवी' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८९. (१) शुभाशुभ कर्म : कल्हण राजा के जीवन चरित तथा उनके शुभाशुभ कर्मों पर पुन प्रकाश डालता उन्हें चेतावनी देता है। पूर्ववर्ती राजाओं का इतिहास एवं वृत्तान्त उनके कर्मों पर आधारित रहता है। राज्य के घटना चक्र कर्मों के कारण घटित होते हैं। यह घटना चक्र उनका यह प्रतिवृत्तान्त भविष्य के भूपालों के लिए उदाहरण है। उनका भविष्य किसी अलौकिक शक्ति द्वारा परिचालित नहीं होगा। अपितु वह नियन्त्रित होगा। जीवन में मोड़ लेगा उनके कर्मों के द्वारा। वही उनके भविष्य के शुभ तथा अशुभ का निर्णय

गोनन्दान्वयिनामाद्यः स रघूणां रघुर्यथा ।
नृपतिः काश्यपीं वर्षान्पञ्चत्रिंशतिमन्वशात् ॥ १९१ ॥

१९१. यह राजा जो गोनन्द वंश में प्रथम राजा रघुवंशियों[1] में रघु तुल्य हुआ था। इस काश्यपी[2] का पैंतीस वर्ष[3] तक शासन किया।

वर्षषष्टिं सषण्मासैः षड्भिर्वर्षैर्विवर्जिताम् ।
विभीषणाभिधोऽरक्षत्क्षितिं गोनन्दनन्दनः ॥ १९२ ॥

१९२. तत्पश्चात् गोनन्द नन्दन विभीषण नामक राजा ने तत्पश्चात् साठ वर्ष में ६ वर्ष ६ माह कम अर्थात् तिरपन वर्ष छह मास क्षिति की रक्षा की।

करते हैं। यही उनके भाग्य का निर्णय करेगा। विद्वान् इनसे शिक्षा लेकर राजाओं को चेतावनी देते रहे, जनता तथा राजा का मार्ग दर्शन करते रहे यही अभिप्राय यहाँ कल्हण का है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९० मे 'वंश्यै' का 'वंशे' तथा 'सुकर्म' का पाठभेद 'स्वकर्म' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९० (१) नवीकृत : कल्हण का तात्पर्य यहाँ सुधारो से है। गोनन्द वंशीय राजाओं ने कश्मीर में सुधार किया था। शासन तथा शान्ति स्थापित की थी। आध्यात्मिक विचारधारा, प्राचीन नील-मत द्वारा विहित धर्म तथा संस्कारों की ओर मोड़कर उनका देश में प्रचार किया था। हिमपात तथा बौद्धो दोनों के प्रबल दोषो से कश्मीर मंडल का उद्धार किया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९१ में 'गोनन्दा' का 'गोनर्दा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९१ (१) रघुवंश : रघु इक्ष्वाकु वंश में एक अतिश्रेष्ठ राजा हुए हैं। यह भगवान् राम के पूर्व पुरुष थे। राम का एक नाम रघुनाथ इसी रघु के कारण पड़ा है। महाभारत में वर्णित प्राचीन राजाओ की नामावली में रघु का नाम लिया गया है। (म० आ० १ : १७२) भागवत, विष्णु एवं वायु पुराणों के अनुसार रघु राजा दीर्घबाहु का पुत्र था। राजा दिलीप खट्वांग के पौत्र थे। किन्तु मत्स्य तथा पद्म पुराणों में रघु को निघ्न राजा का पुत्र कहा गया है। (पद्म० सृ० ८)

कालिदास ने रघुवंश में रघु को राजा दिलीप का पुत्र कहा है। नन्दिनी धेनु के प्रसाद स्वरूप रघु पुत्र राजा दिलीप को प्राप्त हुआ था। इक्ष्वाकु वंश में सर्व श्रेष्ठ होने के कारण हरिवंश पुराण (१ : १८) ने इसे अयोध्या का प्रथम राजा माना है। इस कालान्तर में इक्ष्वाकु वंश रघुवंश नाम से विख्यात हुआ है। रघुवंश (४) तथा स्कन्द (२ : ८ ?) पुराण मे रघु के दान एवं गौरव का वर्णन किया गया है। रघु को अपने पूर्वज युवनाश्व राजा द्वारा दिव्य खड्ग प्राप्त हुआ था। इस खड्ग को उसने अपने वंशज हरिणाश्व को दे दिया था। रघु के पुत्र अज थे। अज के पुत्र दशरथ थे। दशरथ के पुत्र भगवान् रामचन्द्र थे।

कल्हण ने रघुवंश में जैसे रघु श्रेष्ठ थे। उनके नाम पर वंश चला था। उसी प्रकार गोनन्द वंश में यह गोनन्द राजा सर्व श्रेष्ठ हुआ था। उसी के नाम पर इस वंश की ख्याति गोनन्द वंश से हुई। यहाँ कल्हण रघु वंश की गोनन्द वंश तथा रघु की गोनन्द से तुलना करता है।

इन्द्रजिद्रावणावास्तां पितापुत्रौ नृपौ क्रमात् ।
पञ्चत्रिंशत्सहार्धाश्च वर्षास्त्रिंशत्रयोर्ययुः ॥ १९३ ॥

१९३. पिता तथा पुत्र इन्द्रजीत[1] तथा रावण[2] राजाओं ने क्रमशः ३५ वर्ष ६ मास तथा तीस वर्ष राज्य किये।

बिन्दुरेखाच्छविर्यस्य दृष्टा भाव्यर्थशंसिनी ।
स रावणस्य पूजार्थं लिङ्गं भाति वटेश्वरः ॥ १९४ ॥

१९४. वटेश्वर नामक लिंग की रावण पूजा निमित्त उपयोग करता था। वह लिंग आज भी चमकता है। लिंग के चमकते बिन्दु एवं रेखाएँ भविष्य की सूचना देती हैं।

( ) काश्यपी : कल्हण कश्मीर को यहाँ काश्यपी अर्थात् कश्यप के देश के नाम से सम्बोधित करता है।

(३) काल उल्लेख : कल्हण गोनन्द तृतीय के समय से क्रमबद्ध संवत् तथा राज्यकाल अपने इतिहास राजतरंगिणी में देना आरम्भ करता है। वह राजाओं का विधिवत् नाम देता है। उसने कश्मीर मण्डल की क्रमानुसार वंशावली तथा राज्य का वर्णन किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९२ में 'गोनन्द' का 'गोनर्द' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९२ (१) आइने अकबरी में नाम बिखुन तथा राज्यकाल ५३ वर्ष दिया गया है।

विभीषण का राज्यकाल लौकिक वर्ष १९२१ होना चाहिए। कल्हण ने राज्याभिषेक का कोई संवत् तथा काल नहीं दिया है।

हसन के अनुसार—राजा बबीशान क० १८९७ संवत् में बाप का जानशीन ताजशाही सर पर रखा और रिआया की आसाइश और खुशहाली में तिरपन साल बसर करके इस जहान से रुख्सत हुआ। पृष्ठ ४५।

१९३(१) इन्द्रजीत : आइने अकबरी ने इन्दरजीत नाम तथा उसका राज्यकाल ३५ वर्ष ६ मास दिया है।

हसन के अनुसार राजा इन्द्रजीत क० १९५१ में बाप की जगह तख्त नशीन होकर कश्मीर और हिन्दुस्तान के आसपास के इलाकों पर काबिज हुआ। बाप की सल्तनत को अदल व इन्साफ से आबाद किया। ३५ बरस और ६ माह हुकूमत की सतरंज खेलकर जिन्दगी का बिस्तरा लपेट लिया। पृष्ठ ४५.

(२) रावण : आइने अकबरी ने रावेन नाम तथा उसका राज्यकाल ३० वर्ष दिया है। गणना से लौकिक वर्ष २०१७ आता है। हसन के अनुसार राजा रावन बाप के मरने के बाद क० १९८६ में ताजशाही सर पर रख कर हिन्दुस्तान की सरज़मीन के बहुत से शहर फतह किये। तीस साल तक हुक्मरां था। पूजा-पाठ के लिये बटेश्वर का मन्दिर तामीर किया। मुमकिन गुलदस्तए काश्मीर ने उसे बादशाह का मन्दिर ख्याल किया हैं। हालाँकि यह बिल्कुल गलत है। मतरजुम रत्नाकर ने बड़शाह के मन्दिर का नाम लोकश्री बताया है। पृष्ठ ४५.

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १९४ में 'पूजार्थं' का पाठभेद 'पूजार्हं' मिलता है।

चतुःशालामठस्यान्तः कृतायाऽदायि भूभुजा ।
वटेश्वराय निखिलं तेन कश्मीरमण्डम् ॥ १९५ ॥

१९५. चतुःशाला मठ[१] में स्थापित वटेश्वर पर उस राजा ने निखिल कश्मीर मण्डल चढ़ा दिया था।

पञ्चत्रिंशतमब्दानां क्ष्मां बुभोज महाभुजः ।
रावणक्षोणिभृत्सूनुः सार्धामन्यो विभीषणः ॥ १९६ ॥

१९६. रावण का पुत्र महाभुज विभीषण[१] राजा हुआ। उसने पैंतीस वर्ष छह मास पृथ्वी का राज्य किया।

किंनरापरनामाऽथ किंनरैर्गीतविक्रमः ।
विभीषणस्य पुत्रोऽभून्नरनामा नराधिपः ॥ १९७ ॥

१९७. जिस नर[१] किंवा किन्नर राजा का विक्रम गीत किन्नर[२] गाते हैं। वह अपने पिता विभीषण के पश्चात् नराधिप हुआ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १९५ में 'शाला' का 'शाल' तथा 'कश्मीर' का पाठभेद 'काश्मीर' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९५ (१) वटेश्वर तथा चतुःशाला मठ : इस अद्भुत वटेश्वर लिंग का पुनः राजतरंगिणी में कहीं उल्लेख नहीं करता। उनका स्थान किस दिशा अथवा स्थान में था। कल्हण के समय तक दोनों का अस्तित्व था। वे इतने प्रसिद्ध थे कि कल्हण ने उनके स्थानादि का वर्णन करना साधारण बात समझकर नहीं किया। आगरा से ३०मील दक्षिण-पूर्व यमुना के दक्षिण तट पर वटेश्वर है। आज भी बैलों का मेला लगता है। यह प्राचीन नगर है। यहाँ प्राचीन खण्डहर तथा ध्वंसावशेष हैं। यह वटेश्वर महादेव का स्थान है। तीर्थ है। इसी के आधार पर या मौलिक रूप से वटेश्वर के मन्दिर में वटेश्वर महादेव की स्थापना निमित्त निर्माण कराया गया होगा।

काश्मीर मण्डल को राजाओं ने कई बार भगवदर्पण किया है। कनिष्क ने समस्त कश्मीर धर्म हेतु अर्पित कर दिया था। मेवाड़ के राजा भी अपना राज्य एकलिंग का मानते थे। भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व स्वयं अपने को भगवान् का सेवक समझ राज्य की व्यवस्था करते थे।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १९६ में 'क्षोणि' का 'क्षीणि', 'क्षौणि' तथा 'सार्धा' का 'सार्धं' 'साधा' 'सार्ध्वं' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९६ (१) विभीषण : आइने अकबरी ने नीवोखुन नाम तथा उसका राज्यकाल ३५ वर्ष ६ मास दिया है।

गणना से राज्यारोहण का लौकिक वर्ष २०४८ आता है।

वैबुद्दीन यहाँ एक दूसरे राजा इन्द्रायन को रखता है। उसे कैलाश सिंह का पुत्र बताता है।

हसन कहता है— राजा बवोशन दोम रावन का बेटा था। क० २०१६ में तख्त शाही पर बैठा। चूंकि इल्म मौसीकी वखूबी सीखा था इसलिए हमेशा साजो सरोद और गाने बजाने में अपने औक़ात वसर करता था। तबियत मौजू पाई थी। इसलिए लोग इसे बहुत बड़ा शायर भी मानते हैं। ३६ वर्ष हकूमात में गुजारा। पृष्ठ ४५

सदाचारोऽपि स नृपः प्रजाभाग्यविपर्ययैः ।
व्यधाद्विषयदोषेण महानर्थपरंपराम् ॥ १६८ ॥

१६८. यद्यपि वह राजा सदाचारी था । परन्तु प्रजा के भाग्य[१] विपर्यय के कारण विषय दोष की बाधा लग गयी और महा अनर्थ करने लगा ।

१९७ (१) नर : आइने अकबरी ने नाम नर्र दिया है । यह भी लिखा है कि उसे सर भी कहते हैं । राज्यकाल ३९ वर्ष ९ मास दिया है । अबुल फजल ने लिखा है कि इस राजा की मदद से ब्राह्मणों के अनुयायियों ने बौद्धों के विहारों को जला दिया ।

अन्य मुसलिम लेखकों ने उसे वूज़ लिखा है । उनकी गणना से लौकिक वर्ष २०८३३ आता है ।

हसन लिखता है—'राजा नर क० २०५२ में बाप के कायम मुकाम होकर ताजशाही सर पर रखा । इन्साफ पसन्द और सखी था लेकिन अपनी रानी के साथ सख्त उलफत रखता था । रात-दिन उसी के पास बैठने में अपने औकात वसर करता । इसलिए रियाया की देख-भाल की उसे फुरसत नहीं थी ।

कैफियत—'मज़हब जैन का एक बडा आबिद व ज़ाहिद इन्सान मुकाम कानर में रहा करता था । जोग माया के जोर से उसने एक ऐसा तिलस्म और जादू किया हुआ था कि वह तो सबको देख सकता लेकिन उसे कोई न देख सकता । इस जादू के जोर से वह लोगों के घर में दाखिल हो जाता और उनकी औरतों और लडकियों से ज़नाह किया करता । यहाँ तक कि राजा की रानी से मदारखलत करने लगा । राजा को जब इस बात का पता लगा तो उसके तनबदन में आग लग गयी । इस बिना पर उसने बौधों के सारे इबादतखानो और मन्दिरो के इन-हदाम का हुक्म दे दिया और उन में आग लगवा दी । उनका तमाम माल, दौलत, जागीर और गाँव और मकानात बरहमनो को बख्श दिये । दरयाए झेलम के किनारे मुकाम चक्दर मुतसिल बैजबारह एक शहर बनवाया और वहाँ अपने लिए एक आलीशान महल निहायत पुख्तगी और शानवाला तामीर कराया ।

कैफियत—'मोरखीन लिखते है कि इसके हुकूमत में विशाक नाम का एक बरहमन था । शेशरम नाग की लड़की को अपने निराह में लाये हुए था । राजा नर उस पर फेमफना हो गया । अपने साथ सुलाने और सुहबत करने के लिए राजा मज़कूर ने बरहमन मज़कूर पर जबर तशद्दुद किया । यह बात सुनकर शेशरम नाग गुस्सा मे भर गया और राजा के बनाए हुए शहर पर आग बरसाना शुरू कर दी । शहर और शहर वालों को थोड़ी ही देर में तबाह व बरबाद कर डाला । इसके बाद शेशरम नाग की बहन रमती ने गुस्सा से भरपूर हो कर बीस मील तक शहर मज़कूर पर पत्थरों की बारिश की जिसके बायस यह शहर ही दुनिया से मादोम हो गया । इसका मुफस्सल किस्सा शेशरम नाग के ज़िक्र मे मज़कूर है । राजा नर की मुद्दत हुकूमत उनतालीस साल और नव महीना थी । पृष्ठ ४६

(२) किन्नर : दस देवयोनियों मे एक योनि है । शरीर मनुष्य तथा मुख अश्व तुल्य होता है "स्यात्कि-न्नरः किम्पुरुषस्तुरंगवदनो मयुः ।" (१:२·७) वैदिक साहित्य में मुझे किन्नर जाति का वर्णन किंवा उल्लेख नही मिला । सम्भव है यहाँ अश्व तुल्य का अर्थ मुख लम्बा समझा गया है । वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों मे किन्नरों का उल्लेख आता है । यथा :

गन्धर्वान् किंनरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ।
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् खगान् ॥

हिमालय पर्वतीय सोमावर्तीय जाति का उल्लेख न होना विज्ञ पाठकों को चकित करेगा । इस पर गवेषणा की आवश्यकता है ।

१९८ (१) भाग्य विपर्यय : कल्हण वहाँ पर पुनः दुष्ट राजा होने अथवा राजा के दुष्ट हो जाने का दोष प्रजा पर मढ़ा है । प्रजा के भाग्य के कारण

विहारे निवसन्नेकः किंनरग्रामवर्तिनि ।
तस्य योगबलात्कोऽपि श्रमणोऽपाहरत्प्रियाम् ॥ १९९ ॥

१९९. किन्नरग्राम[1] स्थित एक विहार में रहने वाले श्रमण[2] ने योग बल द्वारा उसकी प्रिया का हरण कर लिया।

विहाराणां सहस्राणि तत्कोपान्निर्ददाह सः ।
अजिग्रहच्च तद्ग्रामान्द्विजैर्मध्यमठाश्रयैः ॥ २०० ॥

२००. इस कारण कुपित होकर राजा ने सहस्रों विहारों[1] को जलवा दिया और उन विहारों पर चढ़े ग्रामों को मध्यमठ[2] निवासी ब्राह्मणों को दे दिया।

श्रद्धापणं राजपथैर्नौयानोज्ज्वलनिम्नगम् ।
स्फीतपुष्पफलोद्यानं स्वर्गस्येवाभिधान्तरम् ॥ २०१ ॥
दिग्जयोपार्जितैर्वित्तैर्जितवित्तेशपत्तनम् ।
वितस्तापुलिने तेन नगरं निरमीयत ॥ २०२ ॥

२०१-२०२. दिग्विजय द्वारा उपार्जित धन से वितस्ता पुलिन में राजा ने एक नगर[1] निर्माण कराया था। वहाँ आने वाले राजपथों द्वारा बाजार सामानों से लदा था। नौकाओं के आवागमन से नदी की गरिमा बढ़ गयी थी। प्रभूत पुष्प एवं फलोद्यानों से पूर्ण नगर दूसरे स्वर्ग सदृश लगता था। वह नगर कुबेर की भी पुरी को मात करने वाला था।

प्रजा को बुरे राजा की प्राप्ति होती है। यहाँ पर लोकतान्त्रिक सिद्धान्त की गौण रूप से पुष्टि की गयी है। प्रजा को जागरूक होना चाहिए। वह उसका भी कर्त्तव्य है कि सच्चरित्र राजा को दुश्चरित्र होने से बचाये। कल्हण ने यहाँ पर यह भी संकेत किया है कि सच्चरित्र राजा भी विषय दोष में लिप्त हो सकता है। यदि मन्त्रिगण, प्रजागण राजा को निरंकुश कर देते हैं तो निश्चय ही दोषों की ओर प्रवाहित हो जाता है। राजा चाटुकार, स्वार्थी, कुटिल पार्षदों से भी घिरा रहता है। वे अपने स्वार्थ सिद्धि किंवा राजा को प्रसन्न करने के लिए सन्मार्ग से कुमार्ग में बदल देते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९९ में 'विहारे' का 'विकारे', 'विकारो', पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९९ (१) किन्नर ग्राम : कश्मीर के नागिम परगना में कानिर ग्राम हो सकता है।

एक किन्नौर क्षेत्र है जो किन्नर जाति का मूल स्थान माना जाता है। हिमाचल प्रदेश में है। मैं वहाँ गया हूँ। वहाँ के लोगों का मुख सुन्दर होता है। आकृति आर्यों तुल्य है। कहीं-कहीं पर्वतीय तथा मंगोल मिश्रण मालूम होता है। सम्भव है। पूर्व काल में इस स्थान पर लद्दाखी ढंग के आदमी अधिक रहते रहे हों। जिनका मुख लम्बा होता है। मैं लद्दाख में गया। वहाँ के लोगों की मुखाकृति देखकर पहली प्रतिक्रिया मेरी यही हुई कि वे आर्यवंशीय नहीं हैं। उनका मुख गोल होने की अपेक्षा लम्बा तथा चपटा अधिक होता है। यदि अश्व की तरह मुख यदि शाब्दिक अर्थ में मान लिया जाय तो उन्हें हयग्रीव मनुष्य कहना होगा जो गलत होगा।

(२) श्रमण : बौद्ध भिक्षु।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०० में 'अजिग्रहच्च' का पाठ भेद 'अजिग्रहश्च' मिलता है।

तत्रैकस्मिन्किलोद्याने स्वच्छस्वादुजलाञ्चितम् ।
आसीत्सुश्रवसो नाम्नो नागस्य वसतिः सरः ॥ २०३ ॥

२०३. वहाँ किसी एक उद्यान में स्वच्छ सुस्वादु जल मय सरोवर था। वहाँ सुश्रवा[१] नामक नाग निवास करता था।

पादटिप्पणियाँ :

२०० (१) विहारदाह : कश्मीर में यह एक और उदाहरण मिलता है। जब राजा ने कुपित होकर धार्मिक स्थानों में आग लगवा दी थी। कश्मीर के अनेक राजाओं ने भविष्य में धार्मिक स्थानों को नष्ट करने का प्रयास किया है।

राजा विषय वासना में लिप्त हो गया था। उसका प्रभाव अन्तःपुर में पड़ना अवश्यम्भावी था। राजा के कारण नैतिक पतन हो रहा था। इसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है कि एक श्रमण का यह साहस हुआ कि वह राजा की प्रिया को उठा ले गया।

(२) मध्यमठ : इस स्थान का निश्चय नहीं किया जा सकता कि कहाँ था। कल्हण इस स्थान के विषय में कुछ संकेत भी नहीं करता।

श्लोक संख्या २०१ तथा २०२ युग्म है। दोनों का अर्थ एक साथ किया गया है।

२०१-२०२ (१) नगर किन्नर किंवा नरपुर : राजा नर के पत्तन अर्थात् नगर का दो नाम दिया गया है। (रा० त० १ : २७४) उसे किन्नरपुर तथा (रा० त० १ . २४४) नरपुर कहा गया है। कल्हण ने चक्रधर का वर्णन (रा० त० १ : २६१, २७०, ८ . ९६१) करते हुए इस नगर का स्थान विजयेश्वर अथवा विजब्रोर के अत्यन्त समीप रखा है। यही बात स्थानीय जनश्रुति से भी प्रकट होती है। विजब्रोर से १ मील नीचे एक उदर है। जिसे आज भी तस्कदर (चक्रधर) कहते हैं। यहीं पर चक्रधर का मन्दिर था। यहाँ वितस्ता एक प्रायद्वीप बनाती है। इस अधित्यका के दक्षिण-पूर्व कोण के समीप एक सूखी नीची भूमि है। वहाँ स्तीन को अपनी यात्रा (सन् १८८९ तथा १८९५) में स्थानीय लोगों से मालूम होता था कि इसी स्थान को सुश्रवा नाग का निवास स्थान कहा जाता था।

कल्हण द्वारा वर्णित पुनरावृत्ति अभी तक स्थानीय लोगों की परम्परा तथा स्मृति में जीवित है। तस्कदर के टीले तथा विजब्रोर के मध्य के स्थान को लोग उस नगर की संज्ञा देते हैं जिसे नागों ने भस्म कर दिया था।

प्राचीन यूनानी तथा भारतीय शककालीन मुद्राएँ बहुत संख्या में यहाँ मुख्यतया नदी पुलिन से प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं की प्राप्ति द्वारा इस स्थान की प्राचीनता में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। यहाँ बाढ़ के समय प्रति वर्ष जल आ जाता है। यदि उदर में खनने का कार्य किया जाय तो कुछ प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं। कल्हण (रा० त० १ : २७०) के उल्लेख से प्रकट होता है कि उसके समय में भी यह स्थान अपना प्राचीन गौरव समाप्त कर ध्वंसावस्था में पड़ा था। पृष्ठ ८३ की टिप्पणियाँ द्रष्टव्य हैं।

मैंने विजयेश्वर की यात्रा में इस स्थान को देखा है। श्री स्तीन ने जिस जनश्रुति का उल्लेख किया। उसे मैंने अतिवृद्धों से सुना है। आधुनिक काल में लोग-उसे भूल चुके हैं। भूल रहे हैं। वे इन सविधानों को कपोल कल्पना मानते हैं। अन्तरीप का दृश्य सुहावना है। स्थान के प्राचीन भूगोल तथा वर्णन में परिवर्तन हो गया है। बाढ़ के जल के कारण मूल रूप बदल गया है। कल्हण के समय निस्सन्देह बहुत कुछ प्राचीन अवशेष तथा रूप स्थायी रहे होंगे।

कदाचित्तस्य दूराध्वक्लान्तो मध्यन्दिने युवा ।
छायार्थी तत्सरःकच्छं विशाखाख्योऽविशद्द्विजः ॥ २०४ ॥

२०४. किसी समय मध्याह्नकाल में एक युवक विशाख नामक ब्राह्मण दूर मार्ग से थका हुआ उस सरोवर तट पर छाया निमित्त आया ।

सच्छायपादपतले समीरैः शमितक्लमः ।
शनैर्जलमुपस्पृश्य भोक्तुं सक्तून्प्रचक्रमे ॥ २०५ ॥

२०५. उस पादप तल की सुछाया में समीर के कारण उसकी क्लान्ति का शमन हो गया । हाथ-मुँह धोकर धीरे धीरे सत्तू[1] खाने लगा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०३ में 'च्छिवतम्' का 'च्छिवतः' तथा 'सरः' का 'सारः' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०३ (१) सुश्रवा नाग : हरचरित चिन्तामणि (१०:२४८) में तथा नीलमत पुराण में सुश्रवा नाग का उल्लेख मिलता है । सुश्रवा नाग का स्थान विजयेश्वर तीर्थ के समीप था ।

आलुफाली फलाफश्च नागः कानसरस्तथा ।
सुश्रवो देवपालश्च नागेन्द्रोऽथ बलाहकः ॥
नी० ८९२:1062

(२) चन्द्रलेखा : श्लोक संख्या २०१ से २७९ तक चन्द्रलेखा उपाख्यान कल्हण ने वर्णन किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०४ में 'मध्यं' का पाठभेद 'मध्या', 'मध्ये' तथा 'मध्य' मिलता है ।

श्लोक संख्या २०५ में 'शनैर्जल' का पाठभेद 'सरोजल' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०५ (१) सत्तू : प्रचलित शब्द सत्तू है । पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा बिहार में मध्याह्न काल में गरीबों का एक मात्र भोजन है । पर्वतीय क्षेत्रों में सत्तू का प्रयोग किया जाता है । प्रायः भारतवर्ष मात्र में सत्तू का किसी न किसी रूप में प्रचलन है । यह बना बनाया भोजन है । मक्का, ज्वार, बाजरा, यव-चना का मुख्यतया सत्तू बनता है । यव-चना का मिश्रित सत्तू अत्यन्त स्वादिष्ट होता है । वह रोटी और दाल दोनों पोषक गुणों का मिश्रण है । मैं ग्रीष्म ऋतु में प्रायः सत्तू खाता हूँ । सत्तू मध्याह्न काल के पूर्व खाना चाहिए । सत्तू खाने के कई प्रकार हैं । पहला प्रकार नमक मिर्च, तथा आम की चटनी अथवा अचार से, तथा दूसरा प्रकार मीठा सत्तू खाने का है । इसमें दूध, चीनी अथवा घी चीनी मिलाते हैं । नमकीन सत्तू में भी सम्पन्न लोग घी मिलाकर प्रयोग करते हैं । सत्तू के होटल भी चलते हैं । उन्हें तुरन्ता होटल कहा जाता है । जहाँ तुरन्त भोजन मिल जाता है ।

सत्तू का वैदोक्त नाम सक्तू है । परवर्ती संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में सक्तू शब्द विशेषतः यव के सक्तू का वाचक है । (तै० स० ६:४:१०:६, वा० सं० १९ २१, श० ब्रा० १:६:३१६,-९:१:१:८)

ऋग्वेद में केवल एक बार (१०:७१:२) इसका उल्लेख तितऊ (चलनी) से चालने के प्रसंग में आया है । शतपथ ब्राह्मण (१३:२:१३) में 'देवानां वा एतद् रूपं यत्सक्तवः' में सक्तु का उल्लेख किया गया है । इसी प्रकार 'प्रजापतेर्वा एतद् रूपं यत्सक्तव .' का उल्लेख, तैत्तिरीय ब्राह्मण (३:८:१४:५) में किया गया है ।

सत्तू का इतना महत्त्व दिया गया है कि सत्तू संक्रान्ति पर्व के दिन सत्तू खाना धार्मिक कृत्य मान

तत्रैकस्मिन्किलोद्याने स्वच्छस्वादुजलाश्रितम् ।
आसीत्सुश्रवसो नाम्नो नागस्य वसतिः सरः ॥ २०३ ॥

२०३. वहाँ किसी एक उद्यान में स्वच्छ सुस्वादु जल मय सरोवर था। वहाँ सुश्रवा[1] नामक नाग निवास करता था।

पादटिप्पणियाँ :

२०० (१) विहारदाह : कश्मीर में यह एक और उदाहरण मिलता है। जब राजा ने कुपित होकर धार्मिक स्थानों में आग लगवा दी थी। कश्मीर के अनेक राजाओं ने भविष्य में धार्मिक स्थानों को नष्ट करने का प्रयास किया है।

राजा विषय वासना में लिप्त हो गया था। उसका प्रभाव अन्तःपुर में पड़ना अवश्यम्भावी था। राजा के कारण नैतिक पतन हो रहा था। इसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है कि एक श्रमण का यह साहस हुआ कि वह राजा की प्रिया को उठा ले गया।

(२) मध्यमठ : इस स्थान का निश्चय नहीं किया जा सकता कि कहाँ था। कल्हण इस स्थान के विषय में कुछ संकेत भी नहीं करता।

श्लोक संख्या २०१ तथा २०२ युग्म है। दोनों का अर्थ एक साथ किया गया है।

२०१-२०२ (१) नगर किन्नर किंवा नरपुर : राजा नर के पतन अर्थात् नगर का दो नाम दिया गया है। (रा० त० १ : २७४) उसे किन्नरपुर तथा (रा० त० १ : २४४) नरपुर कहा गया है। कल्हण ने चक्रधर का वर्णन (रा० त० १ : २६१, २७०, ८ ९६१) करते हुए इस नगर का स्थान विजयेश्वर अथवा विजब्रोर के अत्यन्त समीप रखा है। यही बात स्थानीय जनश्रुति से भी प्रकट होती है। विजब्रोर से १ मील नीचे एक उदर है। जिसे आज भी तस्वदर (चक्रधर) कहते है। यहीं पर चक्रधर का मन्दिर था। यहाँ वितस्ता एक प्रायद्वीप बनाती है। इस अधित्यका के दक्षिण-पूर्व कोण के समीप एक सूखी नीची भूमि है। वहाँ स्तीन को अपनी यात्रा (सन् १८८९ तथा १८९५) में स्थानीय लोगों से मालूम होता था कि इसी स्थान को सुश्रवा नाग का निवास स्थान कहा जाता था।

कल्हण द्वारा वर्णित पुनरावृत्ति अभी तक स्थानीय लोगों की परम्परा तथा स्मृति में जीवित है। तस्वदर के टीले तथा विजब्रोर के मध्य के स्थान को लोग उस नगर की संज्ञा देते हैं जिसे नागों ने भस्म कर दिया था।

प्राचीन यूनानी तथा भारतीय शककालीन मुद्राएँ बहुत संख्या में यहाँ मुख्यतया नदी पुलिन से प्राप्त हुई है। इन मुद्राओं की प्राप्ति द्वारा इस स्थान की प्राचीनता में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। यहाँ बाढ के समय प्रति वर्ष जल आ जाता है। यदि उदर में खनने का कार्य किया जाय तो कुछ प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं। कल्हण (रा० त० १ : २७०) के उल्लेख से प्रकट होता है कि उसके समय में भी यह स्थान अपना प्राचीन गौरव समाप्त कर ध्वंसावस्था में पड़ा था। पृष्ठ ८३ की टिप्पणियाँ द्रष्टव्य हैं।

मैंने विजयेश्वर की यात्रा में इस स्थान को देखा है। श्री स्तीन ने जिस जनश्रुति का उल्लेख किया। उसे मैंने अतिवृद्धों से सुना है। आधुनिक काल से लोग उसे भूल चुके हैं। भूल रहे हैं। वे इन सविधानों को कपोल कल्पना मानते हैं। अन्तरीप का दृश्य सुहावना है। स्थान के प्राचीन भूगोल तथा वर्णन में परिवर्तन हो गया है। बाढ के जल के कारण मूल रूप बदल गया है। कल्हण के समय निस्सन्देह बहुत कुछ प्राचीन अवशेष तथा रूप स्थायी रहे होंगे।

कदाचित्तस्य दूराध्वक्लान्तो मध्यन्दिने युवा ।
छायार्थी तत्सरःकच्छं विशाखाख्योऽविशद्द्विजः ॥ २०४ ॥

२०४. किसी समय मध्याह्नकाल में एक युवक विशाख नामक ब्राह्मण दूर मार्ग से थका हुआ उस सरोवर तट पर छाया निमित्त आया ।

सच्छायपादपतले समीरैः शमितक्लमः ।
शनैर्जलमुपस्पृश्य भोक्तुं सक्तून्प्रचक्रमे ॥ २०५ ॥

२०५. उस पादप तल की सुछाया मे समीर के कारण उसकी क्लान्ति का शमन हो गया । हाथ-मुँह धोकर धीरे धीरे सत्तू[1] खाने लगा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०३ में 'च्छितम्' का 'च्छितः' तथा 'सरः' का 'सारः' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०३ (१) सुश्रवा नाग : हरचरित चिन्तामणि (१०:२४८) में तथा नीलमत पुराण में सुश्रवा नाग का उल्लेख मिलता है । सुश्रवा नाग का स्थान विजयेश्वर तीर्थ के समीप था ।

आखुकालौ फलाफश्च नागः कानसरस्तथा ।
सुश्रवो देवपालश्च नागेन्द्रोऽथ बलाहक : ॥
नी० ८९२:1062

(२) चन्द्रलेखा : श्लोक संख्या २०३ से २७९ तक चन्द्रलेखा उपाख्यान कल्हण ने वर्णन किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०४ में 'मध्यं' का पाठभेद 'मध्या', 'मध्ये' तथा 'मध्य' मिलता है ।

श्लोक संख्या २०५ में 'शनैर्जल' का पाठभेद 'सरोजल' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०५ (१) सत्तू : प्रचलित शब्द सत्तू है । पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा बिहार मे मध्याह्न काल में गरीबों का एक मात्र भोजन है । पर्वतीय क्षेत्रों में सत्तू का प्रयोग किया जाता है । प्रायः भारतवर्ष मात्र में सत्तू का किसी न किसी रूप में प्रचलन है । यह बना बनाया भोजन है । मक्का, ज्वार, बाजरा, यव-चना का मुख्यतया सत्तू बनता है । यव-चना का मिश्रित सत्तू अत्यन्त स्वादिष्ट होता है । वह रोटी और दाल दोनों पोषक गुणों का मिश्रण है । मैं ग्रीष्म ऋतु में प्रायः सत्तू खाता हूँ । सत्तू मध्याह्न काल के पूर्व खाना चाहिए । सत्तू खाने के कई प्रकार हैं । पहला प्रकार नमक मिर्च, तथा आम की चटनी अथवा अचार से, तथा दूसरा प्रकार मीठा सत्तू खाने का है । इसमें दूध, चीनी अथवा घी चीनी मिलाते हैं । नमकीन सत्तू में भी सम्पन्न लोग घी मिलाकर प्रयोग करते हैं । सत्तू के होटल भी चलते हैं । उन्हें तुरन्ता होटल कहा जाता है । जहाँ तुरन्त भोजन मिल जाता है ।

सत्तू का वैदोक्त नाम सक्तु है । परवर्ती संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में सक्तु शब्द विशेषतः यव के सक्तु का वाचक है । (तै० स० ६:४:१०:६, वा० सं० १९:२१, श० ब्रा० १:६:३१६,-९:१:१:८)

ऋग्वेद में केवल एक बार (१०:७१:२) इसका उल्लेख तितऊ (चलनी) से चालने के प्रसंग में आया है । शतपथ ब्राह्मण (१३:२:१३) में 'देवानां वा एतद् रूपं यत्सक्तवः' में सक्तु का उल्लेख किया गया है । इसी प्रकार 'प्रजापतेर्वा एतद् रूपं यत्सक्तव :' का उल्लेख, तैत्तिरीय ब्राह्मण (३:८:१४:५) में किया गया है ।

सत्तू का इतना महत्त्व दिया गया है कि सत्तू संक्रान्ति पर्व के दिन सत्तू खाना धार्मिक कृत्य मान

तान्पाणौ गृह्णतैवाथ तेन तीरविहारिभिः ।
पूर्वमाकर्णितो हंसैः शुश्रुवे नूपुरध्वनिः ।। २०६ ।।

२०६. उसने ग्रास हाथ में लिया ही था कि नूपुरध्वनि सुना। उस ध्वनि को तटपर विहार करने वाले हंसों द्वारा पूर्व ही सुन चुका था।

निर्गते मञ्जरीकुञ्जादपश्यत्पुरतस्ततः ।
कन्ये नीलनिचोलिन्यौ स केचिच्चारुलोचने ।। २०७ ।।

२०७. नील निचोल[1] धारिणी चारुलोचना दो कन्याओं को उसने मंजरी कुञ्ज से निकलती सम्मुख देखा।

कर्णिकापद्मरागाञ्जनाललीलायितस्पृशा ।
मनोज्ञधवलापाङ्गे तनीयोऽञ्जनरेखया ।। २०८ ।।

२०८. मनोज्ञ धवल अपांग को पतली अंजन रेखा, उसके कर्ण कुण्डल में लगे पद्मराग मणि के कमल नाल तुल्य लग रही थी।

हारिनेत्राञ्चलैर्मन्दमारुतान्दोलनाकुलैः ।
सनाथांऽसयुगे रूपपताकापल्लवैरिव ।। २०९ ।।

२०९. उनके दोनों स्कन्धों[1] पर मन्द मन्द मरुत के आन्दोलन से आकुल मंजुल नेत्रांचल, सौन्दर्य के पताका पल्लव सदृश लग रहे थे।

लिया गया है। इस दिन ब्राह्मणों को सत्तू, एक झंझर भरा जल तथा दक्षिणा देने की परम्परा प्रचलित है।

वैदिक साहित्य में इन्द्र के प्रसंग में वर्णन मिलता है। उनका स्वागत सत्तू तथा सोमरस से किया जाता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०७ में 'निर्गते' का पाठभेद 'निर्गतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०७ (१) निचोल : चोल का शाब्दिक अर्थ चोली अथवा अंगिया है। चोल अथवा निचोल संस्कृत शब्द का अर्थ चादर, ओढ़नी, घूँघट, बुरका, पलंग-पोश तथा पालकी का परदा होता है। सचोलक का अर्थ चोली तथा सदरी होता है। शाल शब्द निचोल से निकला है। उर्दू भाषा में कह सकते हैं शाल शब्द चोल का अपभ्रंश है। सुदूर पुरा काल से कश्मीर का शाल प्रसिद्ध रहा है। यह कहना भ्रामक है। कश्मीर में शाल का बनना मुसलिम काल में आरम्भ हुआ था। यूरोप में नेपोलियन बोनापार्ट ने शाल को विख्यात किया था। राज्यमुकुट धारण करते समय उसने शाल को मान्यता दी थी। उस समय पेरिस में उन्हें 'शाले दि कश्मीर' कहा जाता था।

२०९ (१) स्कन्ध : कालिदास के समान कल्हण नारी रूप का प्रशंसक रहा है। वह जहाँ भी कहीं नारी का वर्णन करता है उसका वर्णन अत्यन्त परिष्कृत, सौन्दर्यमय उसकी कवित्व प्रतिभा को प्रकट करता है। कालिदास ने नारी के स्कन्धों का सुन्दर वर्णन किया है। कल्हण ने भी वहाँ स्कन्धों की सुन्दरता का अति उत्तम वर्णन किया है। इस प्रकार कल्हण उँगलियों का वर्णन श्लोक संख्या २५३ में करता है।

ते शशाङ्कानने दृष्ट्वा शनैरभ्यर्णमागते।
विरराभाशनारम्भान्मुहुर्व्रीडाजडाकृतः ॥ २१० ॥

२१०. उन शशांक आनन कन्याओं को समीप आयी देखकर वह लज्जा विमूढ़ हो भोजन आरम्भ करना बन्द कर दिया।

भुञ्जाने कच्छगुच्छानां शिम्बीरम्बुजलोचने।
ते पुनर्दृष्टवानग्रे किंचिद्व्यापारितेक्षणः ॥ २११ ॥

२११. उसने किंचित् नेत्रघुमाकर देखा। कमललोचना वे दोनों कन्याएँ कच्छ गुच्छ[1] की फलियाँ खा रही थीं।

आकृतेर्हा धिगीदृश्या भोज्यमेतदिति द्विजः।
ध्यायन्कृपार्द्रः संमान्य स ते सक्तूनभोजयत् ॥ २१२ ॥

२१२. 'धिक्कार है! इस रूप का यह भोजन ? सम्मान्य तथा दयार्द्र उस ब्राह्मण ने उन दोनों कन्याओं को सत्तू खिलाया।

उपनिन्ये च संगृह्य पुटकैश्चटसीकृतैः।
तयोः पानाय पानीयं सरसः स्वच्छशीतलम् ॥ २१३ ॥

२१३. तत्पश्चात् पीने के लिये पत्रपुटक[1] में स्वच्छ एवं शीतल सरोवर जल लाकर दिया।

---

(२) तिलकम् : कल्हण ने युग्मम् तिलकम् तथा कुलकम्, तीनों श्लोक रचना शैली को किसी विषयों घटनाओं एवं शृंगार वर्णन के लिए अपनाया है। दो श्लोक में जहाँ भाव किंवा घटना प्रकट की जाती है उसे युग्मम्, तीन श्लोकों में प्रकट की जाती है उसे तिलकम् तथा पाँच से पन्द्रह श्लोक में जहाँ प्रकट किया जाता है उसे कुलकम् कहा जाता है।

कल्हण ने श्लोक संख्या २०८, २०९, २१० तिलकम् में कन्याओं के सौन्दर्य का वर्णन किया है। प्रायः सभी अनुवादकर्ताओं ने तीनों श्लोक का अनुवाद एक ही में किया है। मैंने उन्हें श्लोक के क्रम से दिया है। इन श्लोकों का रूप वर्णन अनुवाद में नहीं लाया जा सकता। तीनों श्लोक कल्हण की उत्तम कवित्व प्रतिभा प्रकट करते हैं। उनका रस उनके मूल में ही है। उनका अनुवाद कठिन है। प्रायः सभी अनुवादकारों ने भिन्न-भिन्न शैली तथा शब्दों का विभिन्न अर्थ करते हुए अनुवाद किया है। मैं स्वयं नहीं कह सकता कि इनका अनुवाद करने में मैं सफल हो सका हूं।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २१० में 'व्रीडा' का 'व्रीड' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या २११ में 'दृष्ट्वा' का पाठभेद 'धृष्ट्वा' 'सृष्ट्वा' तथा 'पृष्ट्वा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२११ (१) कच्छ गुच्छ : कश्मीर में इसे 'कचदन' कहते हैं। एक प्रकार की घास है। उपत्यका के चर तथा सुमिचित नदी के समीप बहुत होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २·२ में 'कृपार्द्र' का पाठभेद 'कृपार्द्रः' मिलता है।

श्लोक संख्या २१३ में 'शीतलम्' का 'शीतकृतम्' पाठभेद मिलता है।

तान्पाणौ गृह्णतैवाथ तेन तीरविहारिभिः ।
पूर्वमाकर्णितो हंसैः शुश्रुवे नूपुरध्वनिः ॥ २०६ ॥

२०६. उसने ग्रास हाथ में लिया ही था कि नूपुरध्वनि सुना। उस ध्वनि को तटपर विहार करने वाले हंसों द्वारा पूर्व ही सुन चुका था।

निर्गते मञ्जरीकुञ्जादपश्यत्पुरतस्ततः ।
कन्ये नीलनिचोलिन्यौ स केचिच्चारुलोचने ॥ २०७ ॥

२०७. नील निचोल[१] धारिणी चारुलोचना दो कन्याओं को उसने मंजरी कुञ्ज से निकलती सम्मुख देखा।

कर्णिकापद्मरागाब्जनाललीलायितस्पृशा ।
मनोज्ञधवलापाङ्गे तनीयोऽञ्जनरेखया ॥ २०८ ॥

२०८. मनोज्ञ धवल अपांग की पतली अंजन रेखा, उसके कर्ण कुण्डल में लगे पद्मराग मणि के कमल नाल तुल्य लग रही थी।

हारिनेत्राञ्चलैर्मन्दमारुतान्दोलनाकुलैः ।
सनाथांऽसयुगे रूपपताकापल्लवैरिव ॥ २०९ ॥

२०९. उनके दोनों स्कन्धों[१] पर मन्द मन्द मरुत के आन्दोलन से आकुल मंजुल नेत्रांचल, सौन्दर्य के पताका पल्लव सदृश लग रहे थे।

लिया गया है। इस दिन ब्राह्मणों को सत्तू, एक भंझर भरा जल तथा दक्षिणा देने की परम्परा प्रचलित है।

वैदिक साहित्य में इन्द्र के प्रसंग में वर्णन मिलता है। उनका स्वागत सत्तू तथा सोमरस से किया जाता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०७ में 'निर्गते' का पाठभेद 'निर्गतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०७ (१) निचोल : चोल का शाब्दिक अर्थ चोली अथवा अंगिया है। चोल अथवा निचोल संस्कृत शब्द का अर्थ चादर, ओढनी, घूँघट, बुरका, पलंगपोश तथा पालकी का परदा होता है। सचोलक का अर्थ चोली तथा सदरी होता है। शाल शब्द निचोल से निकला है सरल भाषा में कह सकते है शाल शब्द चोल का अपभ्रंश है। सुदूर पुरा काल से कश्मीर का शाल प्रसिद्ध रहा है। यह कहना भ्रामक है। कश्मीर में शाल का बनना मुसलिम काल में प्रारम्भ हुआ था। यूरोप में नेपोलियन बोनापार्ट ने शाल को विख्यात किया था। राज्यमुकुट धारण करते समय उसने शाल को मान्यता दी थी। उस समय पेरिस में उन्हें 'शाले दि कश्मीर' कहा जाता था।

२०९ (१) स्कन्ध : कालिदास के समान कल्हण नारी रूप का प्रशंसक रहा है। वह जहाँ भी कही नारी का वर्णन करता है उसका वर्णन अत्यन्त परिष्कृत, सौन्दर्यमय उसकी कवित्व प्रतिभा को प्रकट करता है। कालिदास ने नारी के स्कन्धों का सुन्दर वर्णन किया है। कल्हण ने भी वहाँ स्कन्धों की सुन्दरता का अति उत्तम वर्णन किया है। इस प्रकार कल्हण उँगलियों का वर्णन श्लोक संख्या २५३ में करता है।

ते शशाङ्काननं दृष्ट्वा शनैरभ्यर्णमागते ।
विरामाशनारम्भान्मुहुर्व्रीडाजडीकृतः ॥ २१० ॥

२१०. उन शशांक आनन कन्याओं को समीप आयी देखकर वह लज्जा विमूढ़ हो भोजन आरम्भ करना बन्द कर दिया।

भुञ्जाने कच्छगुच्छानां शिम्बीरम्बुजलोचने ।
ते पुनर्ददृशवानग्रे किंचिद्व्यापारितेक्षणः ॥ २११ ॥

२११. उसने किंचित् नेत्र घुमाकर देखा। कमललोचना वे दोनों कन्याएं कच्छ गुच्छ[1] की फलयाँ खा रही थीं।

आकृतेर्हा धिगीदृश्या भोज्यमेतादिति द्विजः ।
ध्यायन्कृपार्द्रः संमान्य स ते सक्तूनभोजयत् ॥ २१२ ॥

२१२. 'धिक्कार है! इस रूप का यह भोजन !' सम्मान्य तथा दयार्द्र उस ब्राह्मण ने उन दोनों कन्याओं को सत्तू खिलाया।

उपनिन्ये च संगृह्य पुटकैश्चटसीकृतैः ।
तयोः पानाय पानीयं सरसः स्वच्छशीतलम् ॥ २१३ ॥

२१३. तत्पश्चात् पीने के लिये पत्रपुटक[1] में स्वच्छ एवं शीतल सरोवर जल लाकर दिया।

---

(२) तिलकम् : कल्हण ने युग्मम् तिलकम् तथा कुलकम्, तीनों श्लोक रचना शैली को किसी विषमो घटनाओं एवं शृंगार वर्णन के लिए अपनाया है। दो श्लोक में जहाँ भाव किंवा घटना प्रकट की जाती है उसे युग्मम्, तीन श्लोकों में प्रकट की जाती है उसे तिलकम् तथा पाँच से पन्द्रह श्लोक में जहाँ प्रकट किया जाता है उसे कुलकम् कहा जाता है।

कल्हण ने श्लोक संख्या २०८, २०९, २१० तिलकम् में कन्याओं के सौन्दर्य का वर्णन किया है। प्रायः सभी अनुवादकर्ताओं ने तीनों श्लोक का अनुवाद एक ही में किया है। मैंने उन्हें श्लोक के क्रम से दिया है। इन श्लोकों का रूप वर्णन अनुवाद में नहीं लाया जा सकता। तीनों श्लोक कल्हण की उत्तम कवित्व प्रतिभा प्रकट करते हैं। उनका रस उनके मूल में ही है। उनका अनुवाद कठिन है। प्रायः सभी अनुवादकारों ने भिन्न-भिन्न शैली तथा शब्दों का विभिन्न अर्थ करते हुए अनुवाद किया है। मैं स्वयं नहीं कह सकता कि इनका अनुवाद करने में मैं सफल हो सका हूं।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २१० में 'व्रीडा' का 'व्रीड' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या २११ में 'ददृशवा' का पाठभेद 'घृष्वा' 'सृष्वा' तथा 'पृष्वा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२११ (१) कच्छ गुच्छ : कश्मीर में इसे 'कचदन' कहते हैं। एक प्रकार की घास है। उपत्यका के चर तथा सुसिंचित नदी के समीप बहुत होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१२ में 'कृपार्द्र' का पाठभेद 'कृपार्द्रः' मिलता है।

श्लोक संख्या २१३ में 'शीतलम्' का 'शीत्कृतम्' पाठभेद मिलता है।

आचान्ते शुचितां प्राप्ते कृतासनपरिग्रहे ।
ततश्च वीजयन्पर्णतालवृन्तैरभाषत ।। २१४ ।।

२१४. भोजनोपरान्त जल से शुद्ध होकर, उनके आसन ग्रहण करने पर विशाख पत्र ताल वृन्त (पंखा) से हवा करता हुआ बोला।

भवत्यौ पूर्वसुकृतैः कैश्चित्संप्राप्तदर्शनः ।
चापलाद्विप्रसुलभात्प्रष्टुमिच्छत्ययं जनः ।। २१५ ।।

२१५. पूर्वकृत सत्कर्मों से आप दोनों का दर्शन प्राप्त हुआ। अब विप्रसुलभ चपलता के कारण यह जन[१] कुछ पूछना चाहता है।

कल्याणिनोभ्यां कतमा पुण्या जातिः परिष्कृता ।
कुत्र वा क्लान्तमेतादृग्विरसं येन भुज्यते ।। २१६ ।।

२१६. 'कल्याणिनी आप दोनो ने कहाँ और कौन सी पुण्य जाति को अलंकृत किया है ? जिसके कारण इस प्रकार के क्लान्त एवं नीरस वस्तु को खाती हैं।'

एका समूचे विद्ध्यावामस्य सुश्रवसः सुते ।
स्वादु भोक्तव्यमप्राप्तं किमीदृङ् नोपभुज्यते ।। २१७ ।।

२१७. उनमें से एक ने कहा—हम सुश्रवा नाग की कन्या हैं। सुस्वादु[१] वस्तु के अभाव हम क्या यह भी न खाएँ ?

पादटिप्पणियाँ :

२१३ (१) पुटक : यहाँ पर पत्तो के दोनों से अर्थ है। विशाख ने समीपवर्ती कमल पत्र अथवा किसी अन्य वृक्ष किंवा पौधे के पत्तो से दोना बनाकर उनमें कन्याओं को जल पीने के लिये दिया।

२१४ (१) तालवृन्त : ताल पंखा अर्थ यहाँ लगता है। प्रतीत होता है। कश्मीर के दक्षिण पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणापथ में प्रचलित ताल अर्थात् ताड़ के पंखो का प्रचलन हो गया था।

२१५ (१) जन : कुछ विद्वान् अनुवादको ने 'जन' का अनुवाद 'आप का विनम्र सेवक' किया है। मैंने यहाँ मूल जन शब्द हो रख दिया है। जन शब्द प्रचलित है। बोधगम्य है। कल्हण ने प्रकृत जन शब्द प्रायः जन साधारण के लिये प्रयोग किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१६ में 'परिष्कृता' का . .' मिलता है।

२१६ (१) प्रश्न : कल्हण की प्रश्न शैली कालिदास की शकुन्तला नाटक शैली जैसी है। नाटक के प्रथम अंक में कण्व के आश्रम की युवतियों तथा दुष्यन्त के बीच हुए प्रश्नोत्तर का स्मरण कराती है। निष्कर्ष निकाला जा सकता है। कल्हण ने इतिहास के साथ ही साथ साहित्य संस्कृत एवं काव्य का यथेष्ट अध्ययन किया था। यह शैली ऋग्वेद में उर्वशी और पुरुरवा के संवाद तथा यम-यमी के प्रश्नोत्तर में भी मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१७ मे 'प्राप्त' का पाठभेद 'प्राप्यं' तथा 'अप्राप्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१७ (१) सुस्वादु : कल्हण ने बड़ी ही सरल, मर्मस्पर्शी शैली तथा भाषा मे कन्याओं की दयनीय दशा का चित्रण किया है। स्वादिष्ट भोजन के अभाव में जो कुछ मिल जाय वही बहुत कुछ है।

पित्रा विद्याधरेन्द्राय प्रदातुं पारकल्पिता ।
इरावत्यहमेषा च चन्द्रलेखा यवीयसी ॥ २१८ ॥

२१८. 'पिता ने विद्याधरेन्द्र[1] को मुझे देने की परिकल्पना की है। मेरा नाम इरावती[2] और इस युवती का चन्द्रलेखा[3] है।'

पुनर्द्विजोऽप्यधादेवं नैष्किञ्चन्यं किमस्ति वः ।
ताभ्यामवादि तातोऽत्र हेतुं वेत्ति स पृच्छ्यताम् ॥ २१६ ॥

२१६. द्विज ने पुनः कहा—आप इतनी निष्किंचन (दरिद्र) क्यों है ? उन दोनों ने उत्तर दिया इसका कारण पिता जी जानते हैं। उनसे पूछिए।

ज्येष्ठेऽत्र कृष्णद्वादश्यां यात्रायै तक्षकस्य तम् ।
आगतं चूडया तोयस्यन्दिन्या ज्ञास्यसि ध्रुवम् ॥ २२० ॥

२२०. 'ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी को तक्षक नाग[1] की यात्रा के लिये आये हुए, उनके जलस्यन्दी चूड़ा से उन्हें निश्चय जान लेंगे।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१८ मे 'च' का 'मे' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१८ (१) विद्याधरेन्द्र : विद्याधरेन्द्र जाति के राजा का अर्थ यहाँ है। विद्याधर एक देव योनि विशेष है। पुराणों में इनके राजाओं का नाम चित्रकेतु, चित्ररथ, अथवा सुदर्शन दिया गया है। (मा०: ६·१७:१;११.१६२९) वायु पुराण (३८·१६) में पुलोमन को विद्याधरपति कहा गया है। इनकी स्त्रियों को विद्याधरी कहा जाता है। (ब्रह्माण्ड पु० ३:५०.४०)

इन देवताओं के शैवेय, विक्रान्त एवं सौमनस नामक तीन प्रमुख गण थे। (वायु० ३०:८८) इनका विद्याधर नामक नगर ताम्रवर्ण सरोवर एवं पतंग पर्वतमालाओं के मध्य है। (मत्स्य० ६५:१८)

(२) इरावती : पंजाब की एक नदी है। रावी का नाम इरावती है। ब्रह्मा की भी एक नदी का नाम है। कश्यप की कन्या का नाम इरावती है। इरावती का विस्तृत वंश ब्रह्माण्ड में है। यहाँ पर यह शब्द केवल नाम के लिये प्रयुक्त किया गया है।

(३) चन्द्रलेखा : चन्द्रलेखा का अर्थ चन्द्रमा की कला है। एक अप्सरा का भी नाम चन्द्रलेखा पुरा साहित्य में आता है। चन्द्रलेखा बाणासुर की कन्या एवं उषा की सखी थी। यहाँ केवल नाम का बोधक है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २२० में 'ज्येष्ठे' का 'ज्यैष्ठे' तथा 'चूडया' का पाठभेद 'चूलया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२२० (१) तक्षक नाग : बोही परगना के जयवन वर्तमान जेवन के समीप एक पवित्र स्वच्छ नाग है। सिपोर से दो मील से भी कम दूरी पर उत्तर पश्चिम जेवन पड़ता है। वह नाग सरोवर आज भी वर्तमान है। मैं वहाँ पर दो बार आ चुका हूँ। उसमें आज भी तक्षक नाग की पूजा की जाती है। यह स्थान श्रीनगर से ५ मील दूर है। विक्रमांकदेव चरित्र के लेखक विल्हण ने इसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। इसके समीप ही खोनमुख ग्राम में उसका जन्म हुआ था। (१८:७०) विल्हण कहता है : प्रवरपुर (श्रीनगर) से डेढ़ गव्यूती पर स्थित है। जयवन में एक ऊँचा स्मारक है। उसे जयवन कहते

है। यहाँ स्वच्छ जल पूर्ण एक सरोवर है। तक्षक का वह पवित्र स्थान है। तक्षक नागों का राजा है। धर्म नष्ट करने वाले कलि का मस्तक चक्रतुल्य नाग ने यहाँ उड़ा दिया था।

पुरावृत्त है। तक्षक नाग ने इस क्षेत्र में केसर की खेती सर्वप्रथम करना आरम्भ किया था। आइने अकबरी में वर्णन आता है। ज्येष्ठमास में जब केसर की खेती आरम्भ की जाती है तो इस जलाशय की तीर्थ यात्रा की जाती है। (२:३५८ तथा रा० त० ४:९३१) माहात्म्य से प्रकट होता है कि हर्षेश्वर तीर्थ में तक्षक नाग का स्थान है। (श्लोक ८०) ज्येष्ठ की पूर्णिमा को हर्षेश्वर की तीर्थ यात्रा के समय तक्षक नाग के स्थान पर भी आना चाहिए। तक्षक नाग का उल्लेख कल्हण ने पुनः रा० त० ४:२१६ में किया है। नीलमत पुराण में उल्लेख है :

द्वौ पद्मौ द्वौ महपद्मौ द्वौ कालौ द्वौ च कृष्णौ।
द्वौ समुद्रौ समुद्राणौ द्वौ गजौ द्वौ च तक्षकौ॥
884

नरपुर के प्रसंग में तक्षक नाग की यात्रा का वर्णन कल्हण ने किया है। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में इस तीर्थ का महत्त्व था।

महाभारत में अन्य तीर्थों की तालिका में कश्मीर के केवल इस तीर्थ का उल्लेख मिलता है।

काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च।
वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम्॥
(म० व० ८२:९०)

कश्मीर में नाग, विष्णु, शिव एवं सूर्य की पूजा अन्य देवताओं की अपेक्षा विशेष प्रचलित थी।

अबुल फजल कश्मीर के देव स्थानों की निम्नलिखित तालिका देता है—शिव = ४५, विष्णु = ६४, = ३, दुर्गा = २२ और नाग = ७००।

आठवीं शताब्दी तक वराह तथा नरसिंह की पूजा प्रचलित हो गयी थी। अबुल फजल की उक्त तालिका से स्पष्ट है कि नाग पूजा तथा देवस्थान कश्मीर में सर्वाधिक लोकप्रिय थे।

तक्षक नाग कश्यप एवं कद्रू का पुत्र था। (विष्णु १:१५; मत्स्य ६:७, म० आ० ५९:४०, ह० वं० १:३:१२१) उसके दो पुत्र अश्वसेन तथा श्रुतसेन थे। (म० आ० ३ १४५—१४६)

अर्जुन ने खाण्डव वन अग्नि को दिया। उस समय वहाँ तक्षक, उसकी पत्नी तथा अश्वसेन उपस्थित थे। अश्वसेन की माता ने पुत्र को मुख में ले लिया। वह आकाशमार्ग द्वारा भागने लगी। अर्जुन ने बाणों द्वारा उसका शिरश्छेद कर दिया। तक्षक के मित्र इन्द्र थे। इन्द्र ने अश्वसेन की रक्षा का विचार किया। उसने अश्वसेन की रक्षा की (म० आ० २१८:६)

इस घटना के समय तक्षक कुरुक्षेत्र में था। (म० आ० २१९:१३) तत्पश्चात् ऋषि शमीक के पुत्र शृंगी की प्रेरणा पर अर्जुन के पौत्र राजा परीक्षित को डँस कर उसकी मृत्यु का कारण हुआ।

जनमेजय तथा तक्षक में शत्रुता वैद ऋषि के शिष्य उत्तंक के कारण हुई थी। पौष्य राजा की रानी का गुरु उत्तंक था। पौष्य पत्नी ने अपना कुण्डल गुरुदक्षिणा स्वरूप उत्तंक को दिया। (म० आ० ३.२५) तक्षक नाग उस कुण्डल को हस्तगत करना चाहता था। उसने एक क्षपणक का वेष धारण किया। वह कभी दृश्य होता था। कभी अदृश्य हो जाता था।

उत्तंक मार्ग में कुण्डल रखकर लघुशंका करने लगे। क्षपणक रूपधारी तक्षक ने कुण्डल चुरा लिया। उत्तंक आचमन कर लौटे। उन्होंने देखा। क्षपणक कुण्डल सहित भागा जा रहा था। उत्तंक ने पीछा किया। क्षपणक ने अपना मूल स्वरूप धारण किया। एक विवर में तक्षक नाग रूप प्रवेश किया। पाताल में पहुँचा। उत्तंकने बिल किया

द्रक्ष्यस्यावामपि तदा तदभ्यर्णकृतस्थिती ।
इत्युक्त्वा फणिकन्ये ते क्षणादास्तां तिरोहिते ॥ २२१ ॥

२२१. 'उस समय हम दोनों को भी उनके समीप स्थित देखेंगे' यह कहकर वे फणि-कन्याएँ तत्क्षण तिरोहित हो गयीं।

क्रमात्प्रववृते सोऽथ नटचारणसंकुलः ।
प्रेक्षिलोकसमाकीर्णस्तत्र यात्रामहोत्सवः ॥ २२२ ॥

२२२. वहाँ नट चारण संकुल प्रेक्षक समाकीर्ण नाग यात्रा महोत्सव क्रम से आरम्भ हुआ।

द्विजोऽपि कौतुकाकृष्टः पर्यटन् रङ्गमञ्जसा ।
कन्योक्तचिह्नज्ञातस्य नागस्यान्तिकमाययौ ॥ २२३ ॥

२२३. कौतुकाकृष्ट वह द्विज भी, शीघ्रता पूर्वक मेले में पर्यटन करता हुआ, कन्या द्वारा बताए, चिन्ह से ज्ञात नाग के समीप आ गया।

पार्श्वस्थिताभ्यां कन्याभ्यां पूर्वमावेदितोऽथ सः ।
द्विजन्मने व्याजहार स्वागतं नागनायकः ॥ २२४ ॥

२२४. पार्श्व स्थित दोनों कन्याओं ने उसके विषय में पिता को जना दिया था। अतएव नागनायक ने ब्राह्मण के लिये कहा--'स्वागत'।

ततः कथान्तरे क्वाऽपि पृष्टः कारणमापदाम् ।
जगाद तं द्विजन्मानं निःश्वस्य श्वसनाशनः ॥ २२५ ॥

२२५. तदनन्तर कथा प्रसंग में आपदाओं का कारण पूछने पर उस द्विजन्मा से निःश्वास लेकर श्वसनाशन[1] (नाग) बोला :

विवर खोदा। पाताल पहुँचा। नागों की स्तुति की। (म० भा० ३:१५४—१५८ दे० भा० २:१०)।

तक्षक को नष्ट करने की कामना से, ऋषि उत्तंक ने जनमेजय को सर्प यज्ञ करने के लिये, प्रेरित किया। सर्पसत्र राजा ने आयोजित किया। उसमें अट्ठारह सर्पकुल जलकर मर गये वे पिच्छाडक, मंडलक, पिंडसेक्त, रमेणक, उच्छिक, शरभ, भंग, बिल्वतेजस, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेचन, मुद्गर, शिशुरोमन, सुरोमान तथा महाहनु थे। तक्षक नाग ऋषि आस्तीक की कृपा से नागयज्ञ में हवि होने से बच गया। (म० भा० ४८:१८)

महाभारत वर्णित कश्मीर के इस तीर्थ का महत्त्व आज भी है। चेवन ग्राम के समीप एक बड़े निर्मल सरोवर में तक्षक नाग की पूजा की जाती है। (रा० त० ७:६०७)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२१ में 'तद' का 'पाठभेद 'तदा' मिलता है।

श्लोक संख्या २२४ में 'वेदितोऽथ' का पाठभेद 'वेदिताय' मिलता है।

२२५ (१) श्वसनाशन : इसका अर्थ यहाँ नाग किंवा सर्प है। 'श्वसनः स्पर्शनो वायुः इत्यमरः'

अभिमानवतां ब्रह्मन्युक्तायुक्तविवेकिनाम् ।
युज्यतेऽवश्यभोग्यानां दुःखानामप्रकाशनम् ॥ २२६ ॥

२२६. 'ब्रह्मन्'! स्वाभिमानी युक्तायुक्तविवेकी जन अवश्यमेव भोग्य दुःखों[१] को प्रकाशित करना ठीक नहीं समझते।

परदुःखं समाकर्ण्य स्वभावसुजनो जनः ।
उपकारसमर्थत्वात्प्राप्नोति हृदयव्यथाम् ॥२२७ ॥

२२७. 'स्वभावतः सज्जन जन, पर दुःख सुनकर उपकार करने में असमर्थ होने के कारण हार्दिक व्यथा का अनुभव करते हैं।

वृत्तिं स्वां बहु मन्यते हृदि शुचं धत्तेऽनुकम्पोक्तिभि-
र्व्यक्तं निन्दति योग्यतां मितमतिः कुर्वन्स्तुतोगतमनः ।
गर्ह्योपायनिषेवणं कथयति स्थास्नुं वदन्व्यापदं
श्रुत्वा दुःखमरुंतुदां वितनुते पीडां जनः प्राकृतः[१] ॥ २२८ ॥

२२८. मितमति साधारण जन दुखियों के दुःख को सुनकर, आत्मश्लाघा करता हुआ, उनकी अपेक्षा अपनी वृत्ति श्रेष्ठ समझता है। तथापि हृदय में शोक धारण करता हुआ, सहानुभूति पूर्ण वचनों से उनकी योग्यता की स्पष्ट निन्दा करता है। दुःख निवृत्ति निमित्त कुत्सित उपायों के आश्रय की मन्त्रणा देता है।

अत एव विवेक्तृणां यावदायुः स्वमानसे ।
जीर्णानि सुखदुःखानि दहत्यन्ते चिताऽनलः ॥ २२९ ॥

२२९. अतएव विवेकियों के मन में आजीवन जीर्ण हुए सुख-दुःख अन्त में चितानल ही जलाते हैं।

अर्थात् वायु जिसका भोजन है उसे नाग कहते हैं। सर्प हवा पीकर रहते हैं यह आम कहावत है।

२२६ (१) दुःखः कल्हण का यह श्लोक अत्यन्त मार्मिक है। उसने स्वाभिमानी और विवेकी लोगों के चरित्र का चित्रण किया है। वे भाग्य विपर्यय के कारण आये हुए दुःखों को चुपचाप सह लेते हैं। उसे प्रकट करने का किंचित् मात्र प्रयास नहीं करते। इसी भाव को कवि रहीम व्यक्त करता है।

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहें लोग सब बाँटि न लैहें कोय॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२७ में 'समाकर्ण्य' का 'यदाकर्ण्य' तथा 'स्वभाव' का 'सुभाव' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या २२८ में 'मति.' का 'मतेः'; 'स्तुतोरा' का 'स्तुतेरा'; 'निषेवण' का 'निषेवन' तथा 'जनः' का 'पुनः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२२८ (१) यह शार्दूल विक्रीडित छन्द है। इसका लक्षण निम्न प्रकार से है।

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२९ में 'विवेक्तृणां' का 'विवक्तृणां', 'जीर्णानि' का 'दीर्घानि' तथा 'दीर्घाणि' और 'चितानलः' का 'चितानिलः' पाठभेद मिलता है।

कः स्वभावगभीराणां लक्षयेद् बहिरापदम् ।
बालापत्येन भृत्येन यदि सा न प्रकाश्यते ॥ २३० ॥

२३०. स्वभावतः गम्भीर जनों की आपदाओं को बाहर कौन जान सकता है ? यदि बालक एवं भृत्य उसे प्रकाशित[1] न करें।

तदस्मिन्नेतयोर्बाल्याद्वस्तुनि व्यक्तिमागते ।
तवाग्रे गोपनं साधो न ममाऽप्युपपद्यते ॥ २३१ ॥

२३१. इन दोनों कन्याओं के बाल स्वभाव[1] द्वारा वस्तु स्थिति प्रकट हो जाने पर साधो ! आपके सम्मुख अब कुछ गोपनीय रखना, मेरे लिये उचित नहीं है ।

त्वयाऽप्यस्मद्धितार्थाय निसर्गसरलात्मनः ।
ईषत्प्रयासः कल्याणिन्क्रियतां यदि शक्यते ॥ २३२ ॥

२३२. कल्याणिन् ! स्वभावतः सरलात्मा आप भी हमारे हित हेतु यदि हो सके, तो थोड़ा प्रयास कीजिए ।

योऽयं तरुतले मुण्डश्चूडालो दृश्यते व्रती ।
अमुना सस्यपालेन कान्दिशीकाः कृता वयम् ॥ २३३ ॥

२३३. यह तरु तले, जो मुण्ड जटाधारी व्रती दिखाई पड़ रहा, इसी सस्यपाल ने हमें भयभीत कर रखा है।

अभुक्ते मान्त्रिकैरन्ने नवे नागैर्न भुज्यते ।
अयं नात्ति च तत्तेन समयेन हता वयम् ॥ २३४ ॥

२३४. मान्त्रिकों[1] के नवान्न ग्रहण करने के पूर्व नाग नया अन्न नहीं खाते। यह नवान्न नहीं खाता है। इसी नियम के कारण हमारी यह दुर्दशा है।

---

२३० (१) प्रकाशित : कल्हण एक चतुर व्यावहारिक गृहस्थ की तरह घर की बात बाहर किस प्रकार फूटती है, उस पर प्रकाश डालता है । गम्भीर मनुष्यों की बातें, जिसे वह किसी से कहता नहीं, तथापि घर के बालक तथा नौकरों के कारण बाहर फैल जाती हैं । किसी भी व्यक्ति के लिए यह असंभव है । घर में अपनी बात बालक किंवा नौकरों से छिपाकर रख सके । दोनों ही अपनी मूढता के कारण गुप्त से गुप्त बातें अनजाने बता देते हैं ।

२३१ (१) बाल स्वभाव : बालक का स्वभाव सरल होता है । वे बात प्रकट कर देते हैं । इस ओर संकेत करता तक्षक नाग कन्याओं द्वारा बात प्रकट करने पर खेद प्रकट करता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३२ में 'र्थाय' का 'दाने' तथा 'कल्याणिन्' का 'कल्याणि' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या २३३ में 'मुण्डश्चुडालो' का 'मुण्ड चूडालो' तथा 'सस्य' का 'शस्य' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२३३ (१) मुण्ड : मुण्ड शब्द का अर्थ शर मुड़ा हुआ अथवा मुण्डित होता है । मुण्ड शुंभ का एक सेनापति था । इसका अर्थ राहु और मुंडित का अर्थ-अधम भी होता है । तक्षक नाग ने यहाँ मुण्ड शब्द उपेक्षा एवं घृणा सूचक अर्थ में व्यवहृत किया है ।

क्षेत्राणि रक्षत्येतस्मिन्दृष्ट्वाऽपि फलसम्पदम् ।
भोक्तुं नैव समर्थाः स्मः प्रेता इव सरिज्जलम् ॥ २३५ ॥

२३५. इसके खेतो के रक्षक रहते हुए, हम प्रेतों[1] के समान सरिता के जल तुल्य फल सम्पत्ति देखकर भी ग्रहण करने में असमर्थ हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३४ मे 'रक्षे' का 'रक्षैः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२३४ (१) मान्त्रिक : कल्हण ने यहाँ नागों मे प्रचलित किसी पुरानी प्रथा की ओर संकेत किया है। नाग जाति नया अन्न मान्त्रिक के ग्रहण कर लेने पर ही खाते थे। यह संकेत यहाँ मिलता है।

यह प्रथा किसी रूप में आज भी प्रचलित है। ग्रामो में पुरोहित तथा ब्राह्मणों को नवीन अन्न दान देने के पश्चात् ग्रहण करने की प्रथा भारत के अनेक अंचलो मे प्रचलित है। भगवान् की पूजा सर्व प्रथम नवान्न तथा उससे बने सामान से की जाती है। तत्पश्चात् उसे ग्रहण किया जाता है।

मान्त्रिको ने नवान्न नही ग्रहण किया था। अतएव तक्षक नाग की कन्याएँ नवान्न उपलब्ध होने पर भी ग्रहण नही कर रही थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३५ में 'रक्षत्ये' का 'रक्षत्वे' तथा 'दृष्ट्वा' का 'सृष्ट्वा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२३५ (१) प्रेत : मृत व्यक्तियों की संज्ञा सात नामो से दी जाती है। परासु, प्राप्तपंचत्व, परेत, प्रेत, मस्थित, मृत तथा प्रमीत। मृत आत्मा की प्रेत एक अवस्था है। वह और्ध्वदैहिक कृत्य किये जाने के पूर्व रहती है। प्र+इत दो शब्दों के संयोग से प्रेत बना है। इसका अर्थ है—वह जो चला गया है। पापियो की आत्मा प्रेतस्वरूप चिर तृष्णा से तृषित रहती है। वे अपनी तृष्णा जल से तृप्त नही कर सकते। जल के समीप रहते जल पान से वंचित रहते हैं। मानव शरीर त्याग देने पर दिवंगत भूत हो जाता है। भूत का अर्थ शरीरहीन आत्मा। भूत तथा प्रेत में अन्तर है। पापी प्रेत होते हैं। भूत मरने पर सभी होते है।

वैदिक काल मे प्रेत दिवगत आत्मा के लिए व्यवहृत होता था। प्रेतो को जल नहीं प्राप्त होता। पश्चिम तथा पूर्वीय प्राचीन विश्वास के अनुसार वे जल की सीमा पार नही कर सकते। प्रेत का अर्थ भूत पिशाच बहुत बाद में होने लगा है। वैदिक साहित्य मे दिवंगत मानव के लिए प्रेत शब्द का प्रयोग किया है। (शतपथ ब्राह्मण १०:५:२:१३ बृहदारण्यकोपनिषद् ५:११:१)

दाह के पश्चात् पीपल वृक्ष से मृत्तिका पात्र मे 'घण्ट' लटका दिया जाता है। उस हँड़िया मे छेद कर देते है। छेद मे कुशा डाल दिया जाता है। कुशाग्र से बूँद-बूँद जल गिरता है। शुद्ध होने तक दाह देने वाला व्यक्ति प्रातः तथा सायं उस पात्र मे जल भर देता है। कथा है। यह टपकता बूँद प्रेत ग्रहण कर सकता है। प्रेत की कल्पना विश्व के समस्त साहित्य, धर्म तथा देशों मे किसी न किसी रूप मे प्रचलित है। विश्वास किया जाता है। शरीर से आत्मा निकल कर इधर उधर भटकती रहती है।

ब्राह्मण प्रेत को ब्रह्म कहा जाता है। स्त्री प्रेत को चुड़ैल कहते हैं। अत्याचारी तथा पापी प्रेत का पिशाच प्रचलित नाम है।

प्रेत कल्पना का आधार जीव वाद है। प्रेत का स्वभाव प्रतिशोधात्मक माना गया है। वैक

द्वीप निवासी प्रेत को 'वी' कहते हैं। 'वी' में चिन्तन शक्ति रहती हैं। परन्तु स्वरूप का अभाव रहता है। वे स्वरूप धारण कर सकते हैं। तथापि अदृश्य रहते हैं। केवल मृत व्यक्ति उन्हें देख सकता है।

असुर अर्थात् असीरिया निवासी प्रेत को 'एडिमू' कहते हैं। अकाल मृत्यु के पश्चात् 'एडिमू' की स्थिति होती है। प्रेत तुल्य 'एडिमू' प्राणियों को भयभीत करते हैं। वहाँ सात प्रकार के प्रेतों की कल्पना भारत के सप्त प्रेतों तुल्य की गयी है।

चीनी लोग प्रेत को 'की' कहते हैं। 'की' रात्रि में विचरण करते हैं। मिस्र में प्रेत को 'खू' कहते हैं। जापान में प्रेत को 'ओनी' कहते हैं। उनका विश्वास है कि 'ओनी' त्रिनेत्र होते हैं। उनकी जिह्वा बाहर लपलपाती निकलती रहती है। उनका दर्शन केवल अर्ध रात्रि में होता है।

इस्लाम में प्रेत को 'जिन' कहा जाता है। उनकी संज्ञा शैतान से भी दी गयी है। पारसी धर्मानुयायी प्रेतों को देव तथा प्रेत योनि को 'बूजेज' कहते हैं। अहरीमन प्रेतों का नायक है। तिब्बत में प्रेतों को 'इहा' कहते हैं।

पुराणों में प्रेतों के रूप का वर्णन किया गया है। उनका वर्ण कृष्ण, स्वरूप विकराल तथा पद की उँगलियाँ पीछे की तरफ होती हैं। उनकी छाया मनुष्यों के समान नहीं पड़ती। वे नकिया कर बोलते हैं।

मृत्यु के उपरान्त लिंग शरीर रह जाता है। पिण्डादि दिया जाता है तो प्रेत शरीर होता है। वह उनका भोग शरीर होता है। स्वर्ग किंवा नरक प्राप्ति के पूर्व तक प्राणी प्रेतयोनि में रहता है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार कतिपय निषिद्ध कार्यों के करने पर प्रेत योनि प्राप्त होती है। निषिद्ध कर्मों की लम्बी तालिका है। उनमे मुख्य द्विज निन्दा, माता-पिता का निरादर, कन्या विक्रय, कुरुक्षेत्र में दान ग्रहण करना, गोवध, चोरी, मदिरा, दूध, दही, मट्ठा का विक्रय मुख्य है। प्रेतों के सम्बन्ध में धारणा है। वे अपवित्र स्थानों मे रहते हैं। अपवित्र वस्तु ग्रहण करते हैं। उनका सूई के समान पतला शिर तथा पेट बहुत बडा होता है। अतएव वे सर्वदा तृष्णा एवं क्षुधा से पीड़ित रहते हैं।

प्रेत संस्कार की विधि विहित है। प्रेत संस्कारों के द्वारा अनेक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। मृत्यु के उपरान्त पूरक पिंड संस्कार या दस पिंड संस्कार द्वारा प्रेत देह की उत्पत्ति होती है। प्रथम पिंड द्वारा प्रेत का मस्तक, दूसरे द्वारा कान, आँख तथा नाक, तीसरे के द्वारा कंठ, स्कन्ध तथा हृदयस्थल, चौथे के द्वारा मूत्रेन्द्रिय, नाभि तथा गुदा, पाँचवें के द्वारा जंघा; छठे के द्वारा चर्म; सातवें के द्वारा नाड़ियाँ, आठवें के द्वारा दाँत और केश, नवें के द्वारा वीर्य तथा दसवें पिण्ड के द्वारा सभी अंगों की पूर्ति होती है। मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् सपिण्डीकरण संस्कार होता है। उक्त संस्कार द्वारा व्यक्ति प्रेत देह तथा प्रेतयोनि का परित्याग करता है। प्रेत संस्कार करने का अधिकार ज्येष्ठ किंवा कनिष्ठ पुत्र को होता है। उनके अभाव में पौत्र प्रेत श्राद्ध तथा संस्कार कर सकता है।

कर्मविशेष से प्रेत श्राद्ध होने पर भी कुछ लोग प्रेतयोनि में रहते हैं। उन्हें भूत कहा जाता है। प्रेत श्राद्ध निमित्त कुछ समय निश्चित है। चैत्र, आश्विन कृष्ण पक्ष, पितृ पक्ष उत्तम समय कहा गया है। प्रेतत्व दूर करने की पुराणों में अनेक विधियों का उल्लेख किया गया है। उनमें वृषोत्सर्ग मुख्य है। इसे आद्यकोदिष्ट श्राद्ध भी कहते हैं। एक वर्ष तक प्रेत निमित्त प्रतिदिन जल तथा अन्न दान दिया जाता है। इसे अंघुघट श्राद्ध कहते हैं। प्रेत बाधा समाप्त करने के लिये गया में प्रेतशिला पर पिण्डदान करने का विधान है। गया में एक प्रेत पर्वत है। वहाँ श्राद्ध करने पर प्रेतोद्धार होता है। काशी में पिशाचमोचन

तथा कुरु यथा भ्रश्येत्समयादेष नैष्ठिकः ।
योग्यां प्रतिक्रियां विद्मो वयमप्युपकर्तृषु ॥ २३६ ॥

२३६. 'आप ऐसा कीजिये कि यह नैष्ठिक[1], जिसने प्रतिज्ञा कर ली है कि नवान्न नहीं ग्रहण करेगा, प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो जाय । हम भी उपकारियों का योग्य प्रत्युपकार करना जानते हैं ।'

स तथेति ततो नागमुक्त्वा यत्नपरो द्विजः ।
अचिन्तयद्दिवारात्रं सस्यपालस्य वञ्चनाम् ॥ २३७ ॥

२३७. 'ऐसा ही करूँगा ।' यत्न तत्पर उस द्विज ने नाग से कहकर, रातदिन उस सस्यपाल[1] को व्रतभ्रष्ट करने की चिन्ता करने लगा ।

गूढं तस्य बहिःक्षेत्रकुटीगर्भकृतस्थितेः ।
पच्यमानान्नभाण्डान्तर्नवान्नं न्यक्षिपत्ततः ॥ २३८ ॥

२३८. जब मान्त्रिक खेत के बाहर कुटी में बैठा था, उस विप्र ने नैष्ठिक के पकते भोजन पात्र में छिपकर नवान्न डाल दिया ।

भुञ्जान एवं तत्तस्मिन्क्षणादेव जहार सः ।
अहीन्द्रः करकासारवर्षी स्फीतां फलश्रियम् ॥ २३९ ॥

२३९. मान्त्रिक के तत्क्षण भोजन ग्रहण करते ही अहीन्द्र[1] ने उपल तथा घनघोर[2] वृष्टि द्वारा खेतों की अत्यधिक उपज हरण कर ली ।

पर प्रेत बाधा प्रतिकार निमित्त श्राद्ध किया जाता है ।

२३६ (१) नैष्ठिक : नैष्ठिक शब्द निष्ठा से बना है । किसी बात का व्रत लेना, प्रतिज्ञा करना, किसी बात का निर्णय लेकर उसपर दृढ़ रहने वाले व्रती को नैष्ठिक कहते हैं । यह विशेषण है । उपनयन से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक गुरुकुल मे रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को भी नैष्ठिक कहा जाता है । किसी व्रत के अनुष्ठान मे संलग्न व्यक्ति के हेतु भी इस विशेषण का प्रयोग किया जाता है ।

कल्हण ने इस अर्थ में इस शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । मान्त्रिक ने नवान्न न ग्रहण करने का व्रत लिया था । उसका यह दृढ़ निश्चय था । एतदर्थ उसे नैष्ठिक कहा गया है । श्लोक संख्या २३८ में कुटी में इस मान्त्रिक का रहना कल्हण ने वर्णन किया है । इससे भी प्रतीत होता है । मान्त्रिक निष्ठावान, दृढ़ त्यागी और कुटी निवासी था ।

पाठभेद :

श्लोक २३७ में 'दिवारात्रम्' का 'दिवारात्रो'; 'सस्य' का 'शस्य' तथा 'वञ्चनाम्' का 'वञ्चनं' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२३७ (१) सस्यपाल : पाल का अर्थ रक्षक, राजा, ग्वाल तथा सस्य का अर्थ अन्न होता है । शाब्दिक अर्थ खेत की फसल तथा अन्न का रक्षक है । यहाँ पर अर्थ खेत की फसल की रखवाली करने वाला करना अच्छा होगा ।

२३९ (१) अहीन्द्र : अहि का अर्थ सर्प, नाग, वृत्रासुर, मेघ, जल, नक्षत्र, पृथ्वी तथा नाभि होता है । अहीन्द्र का अर्थ सर्पों, नागों किंवा अहियों का राजा है । यहाँ पर मुख्यतः नाग के लिए यह शब्द आया है ।

(२) उपल वृष्टि तथा तूफान : नागलोग उपल वृष्टि तथा तूफान का रूप धारण करते हैं ।

तं च व्युत्क्रान्तदारिद्र्यः सरसोऽभ्यर्णमागतम् ।
कृतोपकारमन्येद्युर्निजोर्वीमनयद् द्विजम् ॥ २४० ॥

२४०. दारिद्र्य मुक्त नागराज ने उस उपकारी द्विज को, जो दूसरे दिन सरोवर पर आया था, अपने[1] स्थान पर ले गया।

स तत्र पितुरादेशात्कन्याभ्यां विहितार्हणः ।
अमर्त्यसुलभैर्भोगैरतोष्यत दिने दिने ॥ २४१ ॥

२४१. वहाँ पिता के आदेश पर दोनों कन्यायें द्विज की शुश्रूषा करने लगीं। वह दिनोंदिन अमर्त्यों के सुलभ भोगों से तुष्ट होने लगा।

कालेन सर्वानामन्त्र्य स्वां भुवं गन्तुमुद्यतः ।
प्रतिश्रुतवरं नागं चन्द्रलेखामयाचत ॥ २४२ ॥

२४२. कालान्तर में सबसे विदा लेकर, अपने घर जाने के लिये उद्यत हुआ। वर देने की प्रतिज्ञा करने वाले नाग से द्विज ने चन्द्रलेखा माँगी।

यह जनश्रुति सत्य मानी जाती है। तूफानों द्वारा कृषि नष्ट कर भोजन प्राप्त करते हैं। यही बात तरंग ३:१६ में कही गयी है। उनको तूफान पैदा करने वाली शक्ति का वर्णन तरंग १:२६९ में किया गया है। सि-यू-की (१:६५ तथा १२२) इसी प्रकार का वर्णन करता है।

उपल वृष्टि, तूफान, हैजा, जलप्लावन कश्मीर के लिये साधारण बातें हैं। हैजा पर अब नियन्त्रण कर लिया गया है। जल प्लावन अर्थात् बाढ़ जब भी बारहमूला के पास बालू अथवा पत्थर नदी तल में एकत्रित हो जाते हैं, तो घोर वृष्टि होने पर जलस्तर उठ जाता है। उपत्यका में जल प्लावन का दृश्य उपस्थित हो जाता है। कश्मीर सरकार ने दो ड्रेजर खरीद लिया है। वे वितस्ता का बालू साफ करते हैं। अतएव जलप्लावन की सम्भावना कम हो गयी है।

सन् १४६६, १५७६, १६८२, १७२३, १७३२, १७४५, १७९३ के जलप्लावन अत्यन्त उग्र थे। सन् १६८२ की बाढ़ एक मास तक कश्मीर में रही। सन् १८९३ में श्रीनगर के ७ पुलों में ६ वितस्ता के धारा प्रवाह में बह गये थे। पुरातन कागजों के देखने पर पता चलता है कि प्रत्येक १२ वर्षों में एक बार बाढ़ आने का क्रम रहा है।

२४० (१) नाग स्थान : नीलमत के अनुसार नागाओं का निवास स्थान भोगवती नगरी है। यह नगर पाताल का एक खण्ड माना जाता है। बौद्ध ग्रन्थों में नगरों की तालिका में भोगवती नगरी का उल्लेख है।

नागानामालयं नागनाम्ना भोगवतीं पुरीम् ।
223:२९८

योगी भूत्वा स नागेन्द्र तत्रेहापि कृतालयः ॥

नीलमत पुराण में नये वर्ष के प्रथम दिवस पर महाशान्ति वर्णन में नाग द्वीप का उल्लेख किया गया है।

इन्द्रद्युम्नः कशेरुस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्य गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥
591:७१२

अहो नागस्तथा मासो यः स्यात्संवत्सरः प्रभुः ।
अहो भविष्यद्वर्षस्य तथा मासस्य चारकः ॥
625:७७७

सम्बन्धायोग्यमपि तं कृतज्ञत्ववशंवदः ।
संविभेजे स भुजगः कन्यया न धनेन च ॥ २४३ ॥

२४३. यद्यपि वह विप्र सम्बन्ध के अयोग्य था, तथापि कृतज्ञता द्वारा वशंवद, उस भुजंग[१] ने कन्या एवं धन के साथ उसे भेजा।

एवं नागवराव्याप्तश्रियस्तस्य द्विजन्मनः ।
महान् नरपुरे कालस्तैस्तैर्निर्नियोत्सवैर्ययौ ॥ २४४ ॥

२४४. नाग द्वारा वर से प्राप्त श्री के साथ उसने 'नरपुर' में नित्योत्सवों द्वारा बहुत समय व्यतीत किया।

भुजगेन्द्रतनूजाऽपि तं पतिं पतिदेवता ।
अतोषयत्पराध्यश्रीः शीलाचारादिभिर्गुणैः ॥ २४५ ॥

२४५. भुजगेन्द्र की वह अतुल सौन्दर्यवती कन्या, पति को देवता[१] मानती हुई शील एवं आचारादि गुणों से संतुष्ट रखती थी।

तस्यां कदाचित्सौधाग्रस्थितायां प्राङ्गनाद्बहिः ।
आतपायोज्झितं धान्यं बुभुजे विहरन्हयः ॥ २४६ ॥

२४६. किसी समय जबकि चन्द्रलेखा अपने सौधाग्र पर स्थित खड़ी थी, प्रांगण के बाहर सुखाने के लिये डाले गये धान्य[१] को विहरता एक अश्व आकर खाने लगा।

तं वारयितुमाहूता भृत्या नासन्गृहे यदा ।
शिञ्जानमञ्जुमञ्जीरा सा तदाऽवातरत्स्वयम् ॥ २४७ ॥

२४७. उसे हटाने के लिये चन्द्रलेखा ने भृत्यों को पुकारा परन्तु वे घर में नहीं थे। तब शिञ्जान मंजु मंजीरा[१] वह स्वयं नीचे उतरी।

एतेषां पूजनं कार्यं वाह्नन्कुसुमोत्करैः ।
फलं वेदान्तथा ज्ञात्वो नागवर्णस्य धारकम् ॥
627:७४५-७४६

वह्नितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामनं च गोप्रदानफलं लभेत् ॥
1317=१५३९

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४२ में 'श्रुतवरं' का पाठभेद 'श्रुतं वरं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४३ (१) भुजंग : सुश्रवा नाग यद्यपि स्वकुल परम्परा के अनुसार कन्या दान द्विज को नही कर सकता था तथापि कृतज्ञता तथा वचनबद्धता के कारण चन्द्रलेखा को उसने कुल परम्परा तोड़ कर विशाख ब्राह्मण को दिया था।

२४५ (१) देवता : देव से तल् प्रत्यय होकर देवता बनता है। देव तथा देवता शब्द समानार्थक नहीं थे। देवता शब्द स्त्रीलिंग है। उसका प्रयोग केवल मंत्रों के सम्बन्ध में होता रहा है। प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ उसके देवता का नाम निर्दिष्ट रहता है। हिन्दी में देवता शब्द का व्यवहार देव शब्द के समान पुल्लिंग में होने लगा है। देव वर्ग का निवास स्वर्ग है। देव का पर्याय सुर होता है। देव, दिव्य धातु से बना है। इसका अर्थ चमकना है। प्रकाशमान एवं तेजस्वी लोग देव कहे गये हैं।

एकहस्तधृतावेगस्रस्तशीर्षांशुकान्तया ।
तया पाणिसरोजेन धावित्वा सोऽथ ताडितः ॥ २४८ ॥

२४८. वेग से आने के कारण [1]शीर्षांशुक सर से खिसक गया था। उसके छोर को एक हाथ से पकड़े उसने दूसरे पाणि सरोज से दौड़कर उसे (अश्व को) मारा।

भोज्यमुत्सृज्य यातस्य फणिस्त्रीस्पर्शतस्ततः ।
सौवर्णी पाणिमुद्राऽङ्के तुरगस्योदपद्यत ॥ २४९ ॥

२४९. भोज्य को त्याग कर जाते हुए तुरग के अंग पर फणि स्त्री के स्पर्श से सौवर्णी पाणि मुद्रा अंकित हो गयी।

तस्मिन्काले नरो राजा चारैस्तां चारुलोचनाम्।
श्रुत्वा द्विजवधूं तस्थौ प्रागेवाऽङ्कुरितस्मरः ॥ २५० ॥

२५०. उस समय राजा नर के मन में चारुलोचना द्विज वधू के प्रति अनुराग अंकुरित हो गया, जिसके सौंदर्य के विषय में वह अपने गुप्तचरों से पूर्व ही सुन चुका था।

कल्हण ने पति देवता शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। पतिव्रता स्त्रियाँ पति को देवता मानती हैं। पति भक्ति उनका धर्म माना गया है। कल्हण आर्यों की इस परम्परा का यहाँ उल्लेख करता है।

२४६ (१) धान्य : धान्य का शाब्दिक अर्थ धान होता है। धान कूटने और भूसी निकल जाने पर चावल हो जाता है। धान्य का राजतरंगिणी में सर्वत्र अर्थ चावल धान्य किंवा शाली किया गया है।

२४७ (१) शिञ्जानमंजुमंजीरा : यहाँ पर इस वाक्य का अनुवाद न कर यथावत् रख दिया है ताकि मूल भाव का रस प्राप्त हो सके। यह शब्द कवि कल्हण के साहित्य मर्मज्ञता का परिचायक है। भूषणों की मधुर ध्वनि के लिये शिंजित शब्द का प्रयोग प्रशस्त कहा गया है। 'भूषणानां तु शिञ्जितम्'। 'ञ्ज' 'ञ्ज' का प्रचुर प्रयोगमाधुर्य का व्यंजक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४८ में 'एकहस्त' का पाठभेद 'एकहस्ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४८(१) शीर्षांशुक : शाब्दिक अर्थ शिर तोपने का वस्त्र होता है। शिरोधान भी कहते हैं। कश्मीर में इसे तरंगा कहते हैं। हरवान विहार के खनन कार्य में मिट्टी की टाइल्स तथा खिलौने मिले हैं। तृतीय शताब्दी के शिरोवेश किंवा शीर्षांशुक के रूप तथा प्रकार का ज्ञान होता है।

हरवान के एक टाइल पर नृत्यशील एक रमणी का चित्र उभड़ा अंकित है। वह पैरों में या तो शलवार पहनी है या पाजामा। शरीर पर कुरता है। कुरता की बाँहें ढीली नहीं है। कानों में बाला है, लम्बे केश जूड़ा में बँधे है। शिर पर दुपट्टा की तरह वस्त्र है। वह दोनों हाथों में सिरो भाग से वाम कर में नीचे जानु तक तथा दक्षिण कर में स्कन्ध प्रदेश तक उठा है। उसका वाम पद सीधा तथा दक्षिण पद उठा है। वह वाम दिशा की ओर देख रही है। यह टाइल अत्यन्त भावनामय प्रभावोत्पादक होने के साथ ही साथ तत्कालीन वेश भूषा पर प्रकाश डालती है। उसमें प्रकट होता है कि उस समय का कश्मीर समाज वेशभूषा में कितना सुसंस्कृत तथा आगे बढ़ चुका था। इस टाइल के चौखूटे पर गोले गोले चिन्ह धँसे तथा उभड़े है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४९ में 'द्राङ्के' का पाठभेद 'द्रांके' मिलता है।

सम्बन्धायोग्यमपि तं कृतज्ञत्वसगौरवः ।
संविभेजे स भुजगः कन्यया च धनेन च ॥ २४३ ॥

२४३. यद्यपि वह विप्र सम्बन्ध के अयोग्य था, तथापि कृतज्ञता द्वारा सादर, उस भुजंग[1] ने कन्या एवं धन के साथ उसे भेजा।

एवं नागवराप्तश्रियस्तस्य द्विजन्मनः ।
महान् नरपुरे कालर्न्मनिर्मोन्मर्वगर्गा ॥ २४४ ॥

२४४. नाग द्वारा वर से प्राप्त श्री के साथ उसने 'नरपुर' में निश्चिन्तता द्वारा बहुत समय व्यतीत किया।

भुजगेन्द्रतनूजाऽपि तं पतिं पतिदेवता ।
अतोषयत्परामर्षैः शीलाचारादिभिर्गुणैः ॥ २४५ ॥

२४५. भुजगेन्द्र की वह अनुज चन्द्रलेखा कन्या, पति को देवता[1] मानती हुई शील एवं आचारादि गुणों से संतुष्ट रखती थी।

तस्यां कदाचित्सौधाग्रस्थितायां प्राङ्गणाद्बहिः ।
आतपायोज्झितं धान्यं बुभुजे विहरन्हयः ॥ २४६ ॥

२४६ किसी समय जबकि चन्द्रलेखा अपने सौधाग्र पर स्थित खड़ी थी, प्रांगण के बाहर सुखाने के लिये डाले गये धान्य[1] को विहरता एक अश्व आकर खाने लगा।

तं वारयितुमाहूता भृत्या नागन्गृहे यदा ।
शिञ्जानमञ्जुमञ्जीरा सा तदाऽवातरत्स्वयम् ॥ २४७ ॥

२४७. उसे हटाने के लिये चन्द्रलेखा ने भृत्यों को पुकारा परन्तु वे घर में नहीं थे। तब शिञ्जान मंजु मंजीरा[1] वह स्वयं नीचे उतरी।

एतेषां पूजनं कार्यं बहुलकुसुमोत्करैः ।
फलं वेदान्तथा ज्ञात्वो नागवरस्य पारकम् ॥
627:७४५-७४६

यदितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामनं च गोप्रदानफलं लभेत् ॥
1317=१५२१

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४२ में 'श्रुतवरं' का पाठभेद 'श्रुतं वरं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४३ (१) भुजंग : सुश्रवा नाग यद्यपि स्वकुल परम्परा के अनुसार कन्या दान द्विज को नहीं कर सकता था तथापि कृतज्ञता तथा धनलिप्सा के कारण चन्द्रलेखा को उसने कुल परम्परा तोड़ कर *विवाह ब्राह्मण को दिया था।*

२४५ (१) देवता : देव से तल् प्रत्यय होकर देवता बनता है। देव तथा देवता शब्द समानार्थक नहीं थे। देवता शब्द स्त्रीलिंग है। उसका प्रयोग केवल मंत्रों के सम्बन्ध में होता रहा है। प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ उसके देवता का नाम निर्दिष्ट रहता है। हिन्दी में देवता शब्द का व्यवहार देव शब्द के समान पुलिंग में होने लगा है। देव वर्ग का निवास स्वर्ग है। देव का पर्याय सुर होता है। देव, दिव् धातु से बना है। इसका अर्थ चमकना है। प्रकाशमान एवं तेजस्वी लोग देव कहे गये हैं।

एकहस्तधृतावेगस्रस्तशीर्षांशुकान्तया ।
तया पाणिसरोजेन धावित्वा सोऽथ ताडितः ॥ २४८ ॥

२४८. वेग से आने के कारण [1]शीर्षांशुक सर से खिसक गया था। उसके छोर को एक हाथ से पकड़े उसने दूसरे पाणि सरोज से दौड़कर उसे (अश्व को) मारा।

भोज्यमुत्सृज्य यातस्य फणिस्त्रीस्पर्शतस्ततः ।
सौवर्णी पाणिमुद्राऽङ्गे तुरगस्योदपद्यत ॥ २४९ ॥

२४९. भोज्य को त्याग कर जाते हुए तुरग के अंग पर फणि स्त्री के स्पर्श से सौवर्णी पाणि मुद्रा अंकित हो गयी।

तस्मिन्काले नरो राजा चारैस्तां चारुलोचनाम् ।
श्रुत्वा द्विजवधूं तस्थौ प्रागेवाऽङ्कुरितस्मरः ॥ २५० ॥

२५०. उस समय राजा नर के मन में चारुलोचना द्विज वधू के प्रति अनुराग अंकुरित हो गया, जिसके सौंदर्य के विषय में वह अपने गुप्तचरों से पूर्व ही सुन चुका था।

कल्हण ने पति देवता शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। पतिव्रता स्त्रियाँ पति को देवता मानती हैं। पति भक्ति उनका धर्म माना गया है। कल्हण आर्यों की इस परम्परा का यहाँ उल्लेख करता है।

२४६ (१) धान्य : धान्य का शाब्दिक अर्थ धान होता है। धान कूटने और भूसी निकल जाने पर चावल हो जाता है। धान्य का राजतरंगिणी में सर्वत्र अर्थ चावल धान्य किंवा शाली किया गया है।

२४७ (१) शिञ्जानमंजुमंजीरा : यहाँ पर इस वाक्य का अनुवाद न कर यथावत् रख दिया है ताकि मूल भाव का रस प्राप्त हो सके। यह शब्द कवि कल्हण के साहित्य मर्मज्ञता का परिचायक है। भूषणों की मधुर ध्वनि के लिये शिञ्जित शब्द का प्रयोग प्रशस्त कहा गया है। 'भूषणानां तु शिञ्जितम्'। 'ञ्ज' 'ञ्ज' का प्रचुर प्रयोगमाधुर्य का व्यंजक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४८ में 'एकहस्त' का पाठभेद 'एकहस्ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४८(१) शीर्षांशुक : शाब्दिक अर्थ शिर तोपने का वस्त्र होता है। शिरोधान भी कहते हैं। कश्मीर में इसे तरंगा कहते हैं। हरवान विहार के खनन कार्य में मिट्टी की टाइल्स तथा खिलौने मिले हैं। तृतीय शताब्दी के शिरोवेश किंवा शीर्षांशुक के रूप तथा प्रकार का ज्ञान होता है।

हरवान के एक टाइल पर नृत्यशील एक रमणी का चित्र उभड़ा अंकित है। वह पैरों में या तो शलवार पहनी है या पाजामा। शरीर पर कुरता है। कुरता की बाँहें ढीली नहीं है। कानों में बाला है, लम्बे केश जूड़ा में बँधे हैं। शिर पर दुपट्टा की तरह वस्त्र है। वह दोनों हाथों में शिरो भाग से वाम कर में नीचे जानु तक तथा दक्षिण कर में स्कन्ध प्रदेश तक उठा है। उसका वाम पद सीधा तथा दक्षिण पद उठा है। वह वाम दिशा की ओर देख रही है। यह टाइल अत्यन्त भावनामय प्रभावोत्पादक होने के साथ ही साथ तत्कालीन वेश भूषा पर प्रकाश डालती है। उससे प्रकट होता है कि उस समय का कश्मीर समाज वेशभूषा में कितना सुसंस्कृत तथा आगे बढ़ चुका था। इस टाइल के चौखूटे पर गोले गोले चिन्ह धँसे तथा उभड़े हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४९ में 'द्राङ्गे' का पाठभेद 'द्राके' मिलता है।

सम्बन्धायोग्यमपि तं कृतज्ञत्ववशंवदः ।
संविभेजे स भुजगः कन्यया च धनेन च ॥ २४३ ॥

२४३. यद्यपि वह विप्र सम्बन्ध के अयोग्य था, तथापि कृतज्ञता द्वारा वशंवद, उस भुजंग[1] ने कन्या एवं धन के साथ उसे भेजा।

एवं नागवराऽवाप्तश्रियस्तस्य द्विजन्मनः ।
महान् नरपुरे कालस्तैस्तैर्नित्योत्सवैर्ययौ ॥ २४४ ॥

२४४. नाग द्वारा वर से प्राप्त श्री के साथ उसने 'नरपुर' में नित्योत्सवों द्वारा बहुत समय व्यतीत किया।

भुजगेन्द्रतनूजाऽपि तं पतिं पतिदेवता ।
अतोषयत्परार्ध्यश्रीः शीलाचारादिभिर्गुणैः ॥ २४५ ॥

२४५. भुजगेन्द्र की वह अतुल सौन्दर्यवती कन्या, पति को देवता[1] मानती हुई शील एवं आचारादि गुणों से संतुष्ट रखती थी।

तस्यां कदाचित्सौधाग्रस्थितायां प्राङ्गनाद्बहिः ।
आतपायोज्झितं धान्यं बुभुजे विहरन्हयः ॥ २४६ ॥

२४६ किसी समय जबकि चन्द्रलेखा अपने सौधाग्र पर स्थित खड़ी थी, प्रांगण के बाहर सुखवन के लिये डाले गये धान्य[1] को विहरता एक अश्व आकर खाने लगा।

तं वारयितुमाहूता भृत्या नासन्गृहे यदा ।
शिञ्जानमञ्जुमञ्जीरा सा तदाऽवातरत्स्वयम् ॥ २४७ ॥

२४७. उसे हटाने के लिये चन्द्रलेखा ने भृत्यों को पुकारा परन्तु वे घर में नहीं थे। तब शिञ्जान मंजु मंजीरा[1] वह स्वयं नीचे उतरी।

एतेषां पूजनं कार्यं बहुन्नकुसुमोत्करैः ।
फलं वेदास्तथा शास्त्रो नागवंशस्य धारकम् ॥
627:७४५-७४६

वह्नितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामनं च गोप्रदानफलं लभेत् ॥
1317=१५३९

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४२ में 'श्रुतवरं' का पाठभेद 'श्रुतं वरं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४३ (१) भुजंग : सुश्रवा नाग यद्यपि स्वकुल परम्परा के अनुसार कन्या दान द्विज को नहीं कर सकता था तथापि कृतज्ञता तथा वचनबद्धता के कारण चन्द्रलेखा को उसने कुल परम्परा तोड़ कर विशाख ब्राह्मण को दिया था।

२४५ (१) देवता : देव से तल् प्रत्यय होकर देवता बनता है। देव तथा देवता शब्द समानार्थक नहीं थे। देवता शब्द स्त्रीलिंग है। उसका प्रयोग केवल मंत्रों के सम्बन्ध में होता रहा है। प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ उसके देवता का नाम निर्दिष्ट रहता है। हिन्दी में देवता शब्द का व्यवहार देव शब्द के समान पुलिंग में होने लगा है। देव वर्ग का निवास स्वर्ग है। देव का पर्याय सुर होता है। देव, दिव्य धातु से बना है। इसका अर्थ चमकना है। प्रकाशमान एवं तेजस्वी लोग देव कहे गये हैं।

एकहस्तधृतावेगस्रस्तशीर्षांशुकान्तया ।
तया पाणिसरोजेन धावित्वा सोऽथ ताडितः ॥ २४८ ॥

२४८. वेग से आने के कारण [1]शीर्षांशुक सर से खिसक गया था। उसके छोर को एक हाथ से पकड़े उसने दूसरे पाणि सरोज से दौड़कर उसे (अश्व को) मारा।

भोज्यमुत्सृज्य यातस्य फणिस्त्रीस्पर्शतस्ततः ।
सौवर्णी पाणिमुद्राङ्के तुरगस्योदपद्यत ॥ २४९ ॥

२४९. भोज्य को त्याग कर जाते हुए तुरग के अंग पर फणि स्त्री के स्पर्श से सौवर्णी पाणि मुद्रा अंकित हो गयी।

तस्मिन्काले नरो राजा चारैस्तां चारुलोचनाम् ।
श्रुत्वा द्विजवधूं तस्थौ प्रागेवाङ्कुरितस्मरः ॥ २५० ॥

२५०. उस समय राजा नर के मन में चारुलोचना द्विज वधू के प्रति अनुराग अंकुरित हो गया, जिसके सौंदर्य के विषय में वह अपने गुप्तचरों से पूर्व ही सुन चुका था।

कल्हण ने पति देवता शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। पतिव्रता स्त्रियाँ पति को देवता मानती है। पति भक्ति उनका धर्म माना गया है। कल्हण आर्यों की इस परम्परा का यहाँ उल्लेख करता है।

२४६ (१) धान्य : धान्य का शाब्दिक अर्थ धान होता है। धान कूटने और भूसी निकल जाने पर चावल हो जाता है। धान्य का राजतरंगिणी मे सर्वत्र अर्थ चावल धान्य किंवा शाली किया गया है।

२४७ (१) शिञ्जानमंजुमंजीरा : यहाँ पर इस वाक्य का अनुवाद न कर यथावत् रख दिया है ताकि मूल भाव का रस प्राप्त हो सके। यह शब्द कवि कल्हण के साहित्य मर्मज्ञता का परिचायक है। भूषणों की मधुर ध्वनि के लिये शिंजित शब्द का प्रयोग प्रशस्त कहा गया है। 'भूषणानां तु शिञ्जितम्'। 'ञ्ज' 'ञ्ज' का प्रचुर प्रयोगमाधुर्य का व्यंजक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४८ में 'एकहस्त' का पाठभेद 'एकहस्ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४८(१) शीर्षांशुक : शाब्दिक अर्थ शिर ढोपने का वस्त्र होता है। शिरोधान भी कहते हैं। कश्मीर में इसे तरंगा कहते हैं। हरवान विहार के खनन कार्य में मिट्टी की टाइल्स तथा खिलौने मिले हैं। तृतीय शताब्दी के शिरोवेश किंवा शीर्षांशुक के रूप तथा प्रकार का ज्ञान होता है।

हरवान के एक टाइल पर नृत्यशील एक रमणी का चित्र उभड़ा अंकित है। वह पैरों में या तो शलवार पहनी है या पाजामा। शरीर पर कुरता है। कुरता की बाँहें ढीली नही है। कानों में बाला है, लम्बे केश जूड़ा में बँधे है। शिर पर दुपट्टा की तरह वस्त्र है। वह दोनों हाथों मे शिरो भाग से वाम कर में नीचे जानु तक तथा दक्षिण कर में स्कन्ध प्रदेश तक उठा है। उसका वाम पद सीधा तथा दक्षिण पद उठा है। वह वाम दिशा की ओर देख रही है। यह टाइल अत्यन्त भावनामय प्रभावोत्पादक होने के साथ ही साथ तत्कालीन वेश भूषा पर प्रकाश डालती है। उसमें प्रकट होता है कि उस समय का कश्मीर समाज वेशभूषा में कितना सुसंस्कृत तथा आगे बढ़ चुका था। इस टाइल के चौखूटे पर गोले गोले चिन्ह धँसे तथा उभड़े हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४९ में 'द्राङ्के' का पाठभेद 'द्रांके' मिलता है।

तस्य धावन्तमुन्मत्तमन्तःकरणवारणम् ।
बलान्नियमितुं नासीदपवादभयाङ्कुशः ॥ २५१ ॥

२५१. लोकापवाद का भय रूपी अंकुश राजा के धावित उन्मत्त अन्तःकरण रूपी गज को बल पूर्वक नियन्त्रित करने में असफल रहा।

तस्मिन्नुद्वृत्तरागाग्निविप्लवे भूपतेः पुनः ।
उवाह हयवृत्तान्तो दृप्तवातानुकारिताम् ॥ २५२ ॥

२५२. राजा की उस उद्दीप्त रागाग्नि विप्लव में पुनः अश्व वृत्तान्त ने प्रचण्ड वायु का कार्य किया।

चक्रे पर्यस्तमर्यादः सरलाङ्गुलिशोभिना ।
स काञ्चनकराङ्केन शशाङ्केनेव वारिधिः ॥ २५३ ॥

२५३. शशांक जिस प्रकार समुद्र को मर्यादा हीन कर देता है, उसी प्रकार कांचनकराकित सरल अंगुलियों[1] की शोभा ने राजा को मर्यादा रहित कर दिया।

व्रीडानिगडनिर्मुक्तो दूतैराकूतशंसिभिः ।
तामुपच्छन्दयन्सोऽथ सुन्दरीमुदवेजयत् ॥ २५४ ॥

२५४. लज्जा शृंखला से निर्मुक्त उस राजा ने अभिप्राय विज्ञ दूतों द्वारा उसे प्रलोभित[1] करता उस सुन्दरी को उद्वेजित किया।

सर्वोपायैरसाध्यां च विप्रस्तत्पतिरप्यसौ ।
तेनाऽयाच्यत लुब्धेन रागान्धानां कुतस्त्रपा ॥ २५५ ॥

२५५. उस लोभी राजा ने सब साध्य उपायों से अप्राप्य उसके पति विप्र से भी उस सुन्दरी की याचना की। रागान्धों को भला लज्जा[1] कहाँ?

श्लोक संख्या २५१ में 'वारणम्' का पाठभेद 'कारणम्' मिलता है।

श्लोक संख्या २५२ में 'मुद्वृत्त' का पाठभेद 'मुद्वृद्ध' तथा 'मुद्धृत्त' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२५३ (१) सरलांगुलि : कल्हण यहाँ अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता का परिचय देता है। यहाँ पर सरल शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया गया है। स्त्रियों की सरल एवं लम्बी उंगलियाँ प्रशस्त फल किंवा शुभकर कही गयी हैं। भावप्रकाश इसे व्यक्त करता है।

कोमलः सरलोऽङ्गुष्ठो वर्तुलो यदि योषिताम् ।
क्रमादेवं कृशाङ्गुल्या दीर्घाकाराश्च वर्तुला ।
पृष्ठरोमाः प्रशस्तफलादिरुचिरा उदिता बुधैः ।

कवि दण्डी 'दशकुमार चरितम्' में सरल, गोल, लाल उँगलियों का इसी प्रकार सुन्दर वर्णन करता है—'कोमल नखमणी ऋज्वनुपूर्ववृत्तताम्रागुली सन्नतांस देशे सौकुमार्यवत्यो निमग्नपर्वसन्धी च बाहुलते। ६।२८।

२५४ (१) प्रलोभन : इस विषय पर कश्मीरी रचना संस्कृत काव्य 'कुट्टनीमतम्' द्रष्टव्य है। वह गणिका, वेश्या तथा कामियों के प्रलोभन आदि का विषय वर्णन करता है।

अथ निर्भर्त्सनां तस्मादपि प्राप्तवताऽसकृत् ।
हठेन हर्तुं तां राजा समादिश्यन्त सैनिकाः ॥ २५६ ॥

२५६. उस द्विज से निरन्तर तिरस्कृत होने पर भी उस राजा ने सैनिकों को बलात् उसको हरने का आदेश दिया।

तैर्गृहाग्रे कृतास्कन्दो निर्गत्याऽन्येन वर्त्मना ।
त्राणार्थी नागभवनं सजानिः प्राविशद् द्विजः ॥ २५७ ॥

२५७. गृहाग्र उन सैनिकों से घिरा देख सपत्नीक त्राणार्थी उस द्विज ने अन्य मार्ग से निकल कर नागभवन में प्रवेश किया।

ताभ्यामभ्येत्य वृत्तान्ते ततस्तस्मिन्निवेदिते ।
क्रोधाऽन्धः सरसस्तस्मादुज्जगाम फणीश्वरः ॥ २५८ ॥

२५८. समीप पहुँचकर उन दोनों के वृत्तान्त निवेदित करने पर क्रोधान्ध फणीश्वर उस सरोवर से बाहर निकला।

उद्गर्जज्जिह्मजीमूतजनितध्वान्तसंततिः ।
स घोराशनिवर्षेण ददाह सपुरं नृपम् ॥ २५९ ॥

२५९. उस नाग ने काले बादलों से अन्धकार उत्पन्न कर भयंकर गर्जना की और घोर अशनि वृष्टि द्वारा नगर सहित राजा को भस्म कर दिया।

दग्धप्राण्यङ्गविगलद्वसासृक्स्नेहवाहिनी ।
मयूरचन्द्रकाङ्केव वितस्ता समपद्यत ॥ २६० ॥

२६०. दग्ध प्राणियों के अंगों से विगलित वसा, रक्त एवं अन्य तरल शरीर तत्त्वों के बहने के कारण वितस्ता नदी विचित्र मयूर पंख तुल्य[1] हो गयी थी।

---

२५५ (१) लज्जा : महाकवि कालिदास ने कुमार संभव में उसी भाव को प्रदर्शित किया है।

'यमानयस्त्यात्समुतोऽपि······

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ५:८२

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५७ में 'वर्त्मना' का 'वर्त्मणा' तथा 'सजानिः' का 'सजामिः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६० (१) मयूरपंख तुल्य : कल्हण के इस वर्णन से सिद्ध होता है कि किन्नरपुर किंवा नरपुर वितस्ता पुलिन में था। इतने समीप था कि लोगों के मेद, मज्जा, रक्त तथा जले हुए शव नदी में बह गये थे। कल्हण यहाँ अपनी कवित्व शक्ति का परिचय देता मज्जा, मेद, रक्त तथा जले हुए शव के वर्णन की तुलना मयूर पंख से करता है। नदी के उज्ज्वल एवं निर्मल जलस्तर पर यदि जली हुई श्मशान की लकड़ी, कोयला अथवा जला या अधजला शव तैरने लगे तो वह सचमुच कृष्ण मयूर पुच्छ तुल्य आकार बना देता है। मैंने स्वयं एक समय काशी में मणिकर्णिका घाट पर यह दृश्य बनते देखा है।

चिता शव दाह के पश्चात् ठण्डी की जाती है। चिता पर पानी डाला जाता है। जली लकड़ी, कोयला, शव का शेषांश आदि गंगा में बहा दिये जाते

शरणाय प्रविष्टानां भयाच्चक्रधरान्तिकम् ।
मुहूर्तान्निरदह्यन्त सहस्राणि शरीरिणाम् ॥ २६१ ॥

२६१. भयग्रस्त सहस्रों प्राणी जो शरण हेतु, चक्रधर[1] मन्दिर में प्रविष्ट हुए थे, वे मुहूर्त मात्र में जल गये।

मधुकैटभयोर्मेदः प्रागूर्वोरिव चक्रिणम् ।
दग्धानां प्राणिनां तत्तदा सर्वाङ्गमस्पृशत् ॥ २६२ ॥

२६२. प्राचीन काल में मधु-कैटभ[1] के मेद से चक्रधर के दोनों ऊरु स्पर्श हुए थे। परन्तु इस समय उनका सर्वांग शरीर दग्ध प्राणियों के मेद से लिप्त हो गया था।

है। उस समय गंगा के उज्ज्वल जल स्तर पर मयूर-पंख के 'आँख' पुच्छ तुल्य चित्र बन जाता है।

२६१ (१) चक्रधर : टिप्पणी श्लोक ३८ (१) तथा श्लोक २०१ द्रष्टव्य है। कल्हण इस प्रकार का वर्णन पुनः तरंग ८:९९० में करता है।

कल्हण का वह वर्णन नरपुर स्थान के निश्चय में सहायक होता है। चक्रधर के समीप नरपुर था। इस भयंकर अग्नि दाह के समय लोग त्रस्त हो कर चक्रधर मन्दिर में रक्षा निमित्त शरण लिये थे। परन्तु मन्दिर भी अग्निदाह से नहीं बच सका। वहाँ भी लोग जल मरे। मन्दिर नरपुर में, या उसके इतने पास था, कि लोग दौड़कर उसमें पहुँच गये थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६२ में 'मेंदः' का 'मेतः' तथा 'तत्तत्' का पाठभेद 'तं तं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६२ (१) मधु कैटभ : मधु एवं कैटभ का वध पुरावृत्त के अनुसार भगवान् चक्रधर ने अपनी जंघा पर रख कर किया था। उनके वध के कारण मेद अर्थात् चर्बी उनके जाघ हो तक सीमित थी। इस समय संहार के कारण भगवान् का समस्त शरीर मज्जा पूर्ण हो गया था।

मधु कैटभ असुर द्वय है। सुविख्यात है। मधु तथा कैटभ दोनों असुरों का जन्म ब्रह्मा के स्वेद से हुआ था। (विष्णु धर्म : १ : १५) पद्म पुराण सृ० ४० के अनुसार ब्रह्मा के तमोगुण द्वारा इनकी उत्पत्ति हुई थी। देवी भागवत (१ : ४) के अनुसार इनकी उत्पत्ति विष्णु भगवान् के कान की मैल अर्थात् खुँठ से हुई थी। महाभारत भी इस कथा का समर्थन करता है। भगवान् ने मृत्तिका से इनकी आकृति का निर्माण किया था। उन मूर्तियों में वायु का प्रवेश हो गया। अस्तु वे सप्राण हो गयी। इन दोनों असुरों में मधु की त्वचा कोमल थी। अतएव उसका नाम मधु पड़ा।

महाभारत में उनके जन्म की एक और कथा दी गयी है। भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर जल के दो बिन्दु गिर गये थे। वे तमोगुण तथा रजोगुण के प्रतीक थे। भगवान् ने उन बूँदों पर दृष्टि-पात किया। उनमें एक मधु तथा दूसरा कैटभ हो गया। (म० शा० ३५५ : २२ : २३)

कठिन तपस्या द्वारा वे अजेयत्व प्राप्त कर लिये थे। कालान्तर में असुर स्वभावानुकूल प्राणियों को त्रस्त करने लगे। अतएव भगवान् विष्णु ने इनका वध किया। (दे० भा० १ : ४)

महाभारत वन पर्व (१३ : ५०) में इनकी एक और कथा दी गयी है। जन्म के साथ ही दोनों ने ब्राह्मणों का वध करना आरम्भ कर दिया। ब्रह्मा की हत्या पर भी तत्पर हो गये। ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की। भगवान् विष्णु का इन दोनों असुरों के साथ सहस्र वर्ष तक संघर्ष होता

स्वसा सुश्रवसो नागी रमण्याख्याऽद्रिगह्वरात् ।
साहायकायाऽश्मराशीन्समादाय तदाऽऽययौ ॥ २६३ ॥

२६३. उसी समय सुश्रवा की बहन रमणी (रमण्या[1]) नाम्नी नागी गिरि गह्वर से सहायता निमित्त अश्म राशि लेकर आयी ।

सा योजनाधिके शेषे मार्गस्यारात्सहोदरम् ।
कृतकार्यं निशम्याश्मवर्षं ग्रामेषु तज्जहौ ॥ २६४ ॥

२६४. एक योजन[1] से कुछ अधिक मार्ग शेष रह गया, तो उसने अपने सहोदर भाई की सफलता सुनकर, अश्म राशि की वहीं ग्रामों पर वृष्टि कर दी ।

योजनानि ततः पञ्च जाता ग्रामधरा खिला ।
सा रमण्याटवीत्याधाऽप्यस्ति स्थूलशिलाविला ॥ २६५ ॥

२६५. पाँच योजन तक ग्रामों की समस्त भूमि स्थूल शिला मय हो गयी और वह 'रमण्याटवी'[1] आज भी है ।

रहा । इन्हें मरता न देखकर भगवान् ने इन्हें मोहित किया । तत्पश्चात् उन्हें पलथी अर्थात् ऊरुओं पर रख कर मारा । (पद्म क्रि ० २, मार्क० : ७८ ह . व ० ३ : १३)

इनकी मेद से पृथ्वी बनी । अतएव पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा । ब्रह्मा के निवेदन पर विष्णु ने उन्हें मारा था । अतएव विष्णु का नाम मधु-सूदन हो गया । (म० शा० २०० :१४—१६)

पद्म पुराण के अनुसार देवासुर संग्राम में वे हिरण्याक्ष के पक्ष से युद्ध में भाग लिये थे। देवों से वे मायायुद्ध करते थे। (पद्म० सृ० : ७०) मधु-कैटभ असुरों के पूर्वज थे। तमोगुण प्रवृत्ति के कारण, उग्र प्रवृत्ति के हो गये थे। भयंकर एवं क्रूरकर्मा थे ।

कह्लण ने राजा नर तथा सुश्रवा नाग के संहार की तुलना मधु कैटभ की हत्या से की है। भगवान् विष्णु ने उन्हें ऊरु पर रख कर मारा था। भगवान् चक्रधर का केवल ऊरु प्रदेश तक असुरों के मेद, मज्जा एवं रक्त से भर गया था। परन्तु सुश्रवा नाग का नर संहार इतना क्रूरकर्मा एवं भयंकर था कि भगवान् चक्रधर का समस्त शरीर मानव मेद, मज्जा एवं रक्त से भर गया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६३ में 'राशीन्' का पाठभेद 'राशी' मिलता है ।

२६३ (१) रमण्या—यहाँ का "रमण्याख्याद्रि" पाठ बहुत भ्रामक है । इससे बहिन के नाम का और पर्वत के नाम का भी भ्रम होता है। रमणी शब्द स्त्रीवाचक भी है । रमण्या पर्वत है या बहन है ? श्री रणजीत नारायण पण्डित ने यहां पर रमण्या का पर्वत अर्थ लगाया है। श्री स्तीन ने 'रमण्या' नागी का नाम दिया है। रमणी अर्थ भी लगाया जा सकता है । रमणी+आख्या से रमण्याख्या बन जाता है। और श्लोक संख्या २६५ में भी यह बैठता है। वहाँ पर रमणी+अटवी 'रमण्यटवी' बन जाता है। रमण्या+अटवी यदि मान कर सन्धि की जाय तो रमण्याटवी बन जाता है। जो अभीष्ट नही है। क्योंकि पाठ रमण्य अटवी है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६४ में 'सा यो' का 'स यो' तथा 'रात्सहोदरम् का 'रान्महोदरम्' पाठभेद मिलता है।

२६४ (१) योजन : एक योजन चार कोस का होता है। एक कोस २ मील का होता है।

शरणाय प्रविष्टानां भयाच्चक्रधरान्तिकम् ।
मुहूर्तान्निरदह्यन्त सहस्राणि शरीरिणाम् ॥ २६१ ॥

२६१. भयग्रस्त सहस्रों प्राणी जो शरण हेतु, चक्रधर[1] मन्दिर में प्रविष्ट हुए थे, वे मुहूर्त मात्र में जल गये।

मधुकैटभयोर्मेदः प्रागूर्वोरिव चक्रिणम् ।
दग्धानां प्राणिनां तत्तदा सर्वाङ्गमस्पृशत् ॥ २६२ ॥

२६२. प्राचीन काल में मधु-कैटभ[1] के मेद से चक्रधर के दोनों ऊरु स्पर्श हुए थे। परन्तु इस समय उनका सर्वांग शरीर दग्ध प्राणियों के मेद से लिप्त हो गया था।

है। उस समय गंगा के उज्ज्वल जल स्तर पर मयूर-पंख के 'आँख' पुच्छ तुल्य चित्र बन जाता है।

२६१ (१) चक्रधर : टिप्पणी श्लोक ३८ (१) तथा श्लोक २०१ द्रष्टव्य है। कल्हण इस प्रकार का वर्णन पुनः तरंग ८.९९० में करता है।

कल्हण का यह वर्णन नरपुर स्थान के निश्चय में सहायक होता है। चक्रधर के समीप नरपुर था। इस भयंकर अग्नि दाह के समय लोग त्रस्त हो कर चक्रधर मन्दिर में रक्षा निमित्त शरण लिये थे। परन्तु मन्दिर भी अग्निदाह से नहीं बच सका। वहाँ भी लोग जल मरे। मन्दिर नरपुर में, या उसके इतने पास था, कि लोग दौड़कर उसमें पहुँच गये थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६२ में 'मेदः' का 'मेतः' तथा 'तत्तत्' का पाठभेद 'तं तं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६२ (१) मधु कैटभ : मधु एवं कैटभ का वध पुरावृत्त के अनुसार भगवान् चक्रधर ने अपनी जंघा पर रख कर किया था। उनके वध के कारण मेद अर्थात् चर्बी उनके जाघ ही तक सीमित थी। इस समय संहार के कारण भगवान् का समस्त शरीर मज्जा पूर्ण हो गया था।

मधु कैटभ असुर द्वय है। सुविख्यात है। मधु तथा कैटभ दोनों असुरों का जन्म ब्रह्मा के स्वेद से हुआ था। (विष्णु धर्म : १ : १५) पद्म पुराण सृ० ४० के अनुसार ब्रह्मा के तमोगुण द्वारा इनकी उत्पत्ति हुई थी। देवी भागवत (१ : ४) के अनुसार इनकी उत्पत्ति विष्णु भगवान् के कान की मैल अर्थात् खुँठ से हुई थी। महाभारत भी इस कथा का समर्थन करता है। भगवान् ने मृत्तिका से इनकी आकृति का निर्माण किया था। उन मूर्तियों में वायु का प्रवेश हो गया। अस्तु वे सप्राण हो गयी। इन दोनों असुरों में मधु की त्वचा कोमल थी। अतएव उसका नाम मधु पड़ा।

महाभारत में उनके जन्म की एक और कथा दी गयी है। भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर जल के दो बिन्दु गिर गये थे। वे तमोगुण तथा रजोगुण के प्रतीक थे। भगवान् ने उन बूँदों पर दृष्टि-पात किया। उनमें एक मधु तथा दूसरा कैटभ हो गया। (म० शा० ३५५ : २२ :२३)

कठिन तपस्या द्वारा वे अजेयत्व प्राप्त कर लिये थे। कालान्तर में असुर स्वभावानुकूल प्राणियों को त्रस्त करने लगे। अतएव भगवान् विष्णु ने इनका वध किया। (दे० भा० १ : ४)

महाभारत वन पर्व (१३ : ५०) में इनकी एक और कथा दी गयी है। जन्म के साथ ही दोनों ने ब्राह्मणों का वध करना आरम्भ कर दिया। ब्रह्मा की हत्या पर भी तत्पर हो गये। ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की। भगवान् विष्णु का इन दोनों असुरों के साथ सहस्र वर्ष तक संघर्ष होता

स्वसा सुश्रवसो नागी रमण्याख्याऽद्रिगह्वरात् ।
साहायकायाऽश्मराशीन्समादाय तदाऽऽययौ ॥ २६३ ॥

२६३. उसी समय सुश्रवा की वहन रमणी (रमण्या[1]) नाम्नी नागी गिरि गह्वर से सहायता निमित्त अश्म राशि लेकर आयी।

सा योजनाधिके शेषे मार्गस्यारात्सहोदरम् ।
कृतकार्यं निशम्याश्मवर्षं ग्रामेषु तज्जहौ ॥ २६४ ॥

२६४. एक योजन[1] से कुछ अधिक मार्ग शेष रह गया, तो उसने अपने सहोदर भाई की सफलता सुनकर, अश्म राशि की वहीं ग्रामों पर वृष्टि कर दी।

योजनानि ततः पञ्च जाता ग्रामधरा खिला ।
सा रमण्याटवीत्याख्याऽप्यस्ति स्थूलशिलाविला ॥ २६५ ॥

२६५. पांच योजन तक ग्रामों की समस्त भूमि स्थूल शिला मय हो गयी और वह 'रमण्याटवी'[1] आज भी है।

रहा। इन्हें मरता न देखकर भगवान् ने इन्हें मोहित किया। तत्पश्चात् उन्हें पलथी अर्थात् ऊरुओं पर रख कर मारा। (पद्म क्रि० २, मार्क० : ७८ ह० व० ३ : १३)

इनकी मेद से पृथ्वी बनी। अतएव पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा। ब्रह्मा के निवेदन पर विष्णु ने उन्हें मारा था। अतएव विष्णु का नाम मधुसूदन हो गया। (म० शा० २०० :१४—१६)

पद्म पुराण के अनुसार देवासुर संग्राम में वे हिरण्याक्ष के पक्ष से युद्ध में भाग लिये थे। देवों से वे मायायुद्ध करते थे। (पद्म० सृ० : ७०) मधु-कैटभ असुरों के पूर्वज थे। तमोगुण प्रवृत्ति के कारण, उग्र प्रवृत्ति के हो गये थे। भयंकर एवं क्रूरकर्मा थे।

कह्लण ने राजा नर तथा सुश्रवा नाग के संहार की तुलना मधु कैटभ की हत्या से की है। भगवान् विष्णु ने उन्हें ऊरु पर रख कर मारा था। भगवान् चक्रधर का केवल ऊरु प्रदेश तक असुरों के मेद, मज्जा एवं रक्त से भर गया था। परन्तु सुश्रवा नाग का नर संहार इतना क्रूरकर्मा एवं भयंकर था कि भगवान् चक्रधर का समस्त शरीर मानव मेद, मज्जा एवं रक्त से भर गया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६३ में 'राशीन्' का पाठभेद 'राशी' मिलता है।

२६३ (१) रमण्या—यहाँ का "रमण्याख्याद्रि" पाठ बहुत भ्रामक है। इससे बहिन के नाम का और पर्वत के नाम का भी भ्रम होता है। रमणी शब्द स्त्रीवाचक भी है। रमण्या पर्वत है या वहन है? श्री रणजीत नारायण पण्डित ने यहां पर रमण्या का पर्वत अर्थ लगाया है। श्री स्तीन ने 'रमण्या' नागी का नाम दिया है। रमणी अर्थ भी लगाया जा सकता है। रमणी+आख्या से रमण्याख्या बन जाता है। और श्लोक संख्या २६५ में भी यह बैठता है। वहाँ पर रमणी+अटवी 'रमण्यटवी' बन जाता है। रमण्या+अटवी यदि मान कर सन्धि की जाय तो रमण्याटवी बन जाता है। जो अभीष्ट नहीं है। क्योंकि पाठ रमण्य अटवी है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६४ में 'सा यो' का 'स यो' तथा 'रात्सहोदरम् का 'रान्महोदरम्' पाठभेद मिलता है।

२६४ (१) योजन : एक योजन चार कोस का होता है। एक कोस २ मील का होता है।

घोरं जनक्षयं कृत्वा प्रातः सानुशयोऽप्यहिः ।
लोकापवादनिर्विण्णः स्थानमुत्सृज्य तद्ययौ ॥ २६६ ॥

२६६. घोर जन क्षय करके भी पश्चातापयुक्त नागराज लोकापवाद से खिन्न होकर, प्रातः काल उस स्थान का त्याग कर चला गया।

दुग्धाब्धिधवलं तेन सरो दूरगिरौ कृतम् ।
अमरेश्वरयात्रायां जनैरद्यापि दृश्यते ॥ २६७ ॥

२६७. उसने दूर पर्वत पर दुग्ध सागर तुल्य धवल एक सर[1] का निर्माण कराया। अमरेश्वर[2] यात्रा में जनता उसे आज भी देखती है।

अल्वेरुनी लिखता है—हिन्दुओं में दूरी नापने का माप है। उसे योजन कहते हैं। योजन ८ मील का होता है। अर्थात् २३,००० गज होता है। इस नाप के अनुसार अल फजारी ने अपनी गणित ज्योतिष पुस्तिका में पृथ्वी की परिधि का नाप दिया है। योजन को उसने 'जुन' कहा है। जुन का बहुवचन अजवान होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६५ में 'खिला' का 'शिला' 'रमण्याटवी' का 'रमण्यटवी' तथा 'प्यस्ति' का पाठभेद 'प्यस्थि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६५. (१) रमण्याटवी : नागराज सुश्रवा की बहन का पुरावृत्त यहाँ दिया गया है। उसे रामब्यार नदी के सन्दर्भ में कहा गया है। रामब्यार नदी का शुद्ध संस्कृत शब्द रमण्याटवी है।

रामब्यार नदी पीर पंजाल पर्वत माला तथा रुपरी दर्रों के मध्य बहने वाली जल धाराओं को अपने में मिलाती है। हुरपुर के समीप से बहती हुई सुपियान होती उत्तर-पूर्व बहने लगती है। यह वितस्ता में गम्भीर संगम के समीप आकर मिलती है। यह संगम चक्रधर से तीन मील अधोभाग में है। हुरपुर अथवा हरिपुर से यह अनेक छोटी-छोटी धाराओं में पत्थरों के टोकों और कंकड़ों से टोकर खाती बहने लगती है। आगे बढ़ने पर चौड़ी होती जाती है। नदी का पाट प्रायः वर्ष में सूखा रहता है। केवल बाढ़ के समय जल से पाट भर जाता है। रसूरन के समीप इसका पाट दो मील का हो जाता है परन्तु लितर गाँव के ऊपर से यह पाट संकुचित होने लगता है। प्रवाह एक ही धारा बनकर सूखी बलुई भूमि से बहने लगती है। लितर ग्राम के ऊपर पथरीली भूमि में वह स्थान मिलता है जहाँ कहा जाता है कि रमण्या ने पत्थरों की वर्षा की थी। चक्रधर और इस स्थान के मध्य ८ मील की दूरी होगी। कल्हण के वर्णन से बिल्कुल मिलता है। वह कहता है चक्रधर से एक योजन से कुछ ऊपर अर्थात् ८ मील की दूरी पर रमण्या ने पत्थर फेंक दिया था।

कल्हण ने लिखा है। शिला वृष्टि द्वारा ५ योजन की सीमित भूमि बेकार कर दी गयी। स्टीन के मत के अनुसार माप में कुछ स्थान कम उतरता है। हुरपुर से लितर की आबादी के मध्य की भूमि की दूरी लगभग २२ मील होगी। यह पाँच योजन अर्थात् बीस मील से कम स्थान होगा। वर्तमान काश्मीरी कोस डेढ़ मील का होता है। कल्हण तरंग (७:३९३) तथा विक्रमांकदेव चरित्र में विल्हण के दिए गए माप (१८:७०) अर्थात् पुराना काश्मीरी कोस इससे कम न होगा।

२६७ (१) सुश्रवा सरोवर : यह सरोवर जिसके साथ सुश्रवा नाग के निवास का पुरावृत्त गुथा है, लिदर नदी के एक उद्गम स्थान के पास है। यह

शेष नाग नाम से प्रसिद्ध है। अमरेश्वर तीर्थ यात्रा का यह एक प्रमुख स्थान है।

अमरेश्वर माहात्म्य के अध्याय ६ में जो पुरावृत्त कहा गया है। उससे यह सरोवर शेष नाग के सरोवर से मिलता है। उसी अध्याय में सरोवर की संज्ञा सुश्रमस नाग से दी गयी है। सुश्रमस शब्द सुश्रवा का अपभ्रंश मालूम होता है। अमरेश्वर के पुराने पुरोहित इसे अभी भी सुश्रम नाग सरोवर कहते हैं।

इस सरोवर का जल उज्ज्वल है। यह विशेष ध्यान देने की बात है। चारो तरफ के चूने के पत्थरों के चट्टानों के प्रतिबिम्ब के कारण इसका उज्ज्वल रंग प्रतीत होता हो।

एक संकीर्ण जल स्रोत इस सरोवर में जल लाता है। दक्षिण दिशा में कोहेन हर शिखर की ओर है। इसे जामातुर नाग कहा है। जामातुर का अर्थ जामाता होता है। सुश्रवा नाग का जामाता अर्थात् जामातृ विशाख था। अमरेश्वर यात्रा मार्ग में सुश्रम नाग के साथ इसका भी उल्लेख किया गया है। तीर्थ में इसका वर्णन मिलता है।

(२) अमरनाथ यात्रा : अमरेश्वर यात्रा से यहाँ तात्पर्य अमरनाथ की यात्रा से है। शिव अमरेश्वर उन देवताओं के सम्मुख प्रकट हुए थे जिन्होंने उनकी स्तुति मृत्यु से रक्षा निमित्त की थी। यहा हिम शिव लिंग की पूजा होती है।

कश्मीर की यह यात्रा अत्यधिक सर्वप्रिय है। यहाँ भारतवर्ष के सभी भागों से यात्री आते हैं। नीलमत पुराण में इस तीर्थ का बहुत कम उल्लेख है। इसी प्रकार राजतरंगिणी में भी अमरनाथ का बहुत कम उद्धरण दिया गया है। प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में इसका उतना महत्व नहीं था। जितना आजकल है।

नीलमत पुराण ने कश्मीर के तीर्थों में अमरेश्वर को भी एक तीर्थ तथा पर्वत माना है। यथा :

अमरेशे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत्।
मालिन्यां तु नर स्नात्वा दशगोदफलं लभेत्॥
1321 : १५३५

जोजिला पास के पूर्व और दक्षिण-पूर्व पर्वतमाला कश्मीर की पूर्वीय सीमा बनाती अपने मुख्य पर्वतमाला से फूटकर कई शाखाओं में हो जाती है। वह पर्वतशाखा प्रायः दक्षिण की तरफ जाती है। वितस्ता के धुर दक्षिणीय उद्गम स्थान तक चली आती है। वहा से वह उत्तर-पश्चिम घूमती है। बनिहाल पास के समीप आकर पीर पंजाल पर्वतमाला से मिल जाती है। इस पर्वत से चलकर मार्ग कश्मीर तथा वादवन उपत्यका को पूर्व में जोड़ता है। इस उपत्यका का जल चन्द्रभागा अर्थात् चनाव नदी में बहकर जाता है। यह मार्ग किस्तवार अर्थात् प्राचीन काष्टवाट उपत्यका से मिलाता है।

काष्टवाट चन्द्रभागा नदी पर है। इस क्षेत्र में आबादी कम है। मार्ग दुर्गम है। भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् सड़कें इस क्षेत्र में बन गयी है। मार्ग सुगम हो गया है। दोनों उपत्यकाओं ने कश्मीर के इतिहास में अपने दुर्गम आवागमन के साधनों के कारण कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं लिया है। वैदेशिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में भी विशेष भाग नहीं लिया है। इसके उत्तरी छोर पर तुषार मण्डित पर्वतमाला है। समीप अमरेश्वर किंवा कल्हण कालीन अमरनाथ का तीर्थ है। हरमुकुट पर्वत के गंगा सरोवर के पश्चात् कश्मीर का सबसे महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान रहा है।

कश्मीर के अगणित तीर्थों में हिन्दू तीर्थ यात्रियों को अमरनाथ की यात्रा आकर्षित करती है। बद्रीनाथ की यात्रा के पश्चात् अमरनाथ की यात्रा आधुनिक काल के तीर्थयात्रियों की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण पर्वतीय तीर्थ यात्रा हो गयी है। यात्रा श्रावण मास में होती है।

भगवान् अमरनाथ का हिमलिंग समुद्र तल से १२७२९ फुट ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ पर पारदर्शी हिमलिंग बनता है। शशि कला जिस प्रकार घटती-बढ़ती रहती है, उसी प्रकार

श्वशुरानुग्रहान्नागीभूतस्यापि द्विजन्मनः ।
जामातृसर इत्यन्यत्तत्र च प्रथितं सरः ।। २६८ ।।

२६८. श्वसुर के अनुग्रह से नाग हुए, द्विजन्मा का जामातृ सर[1] नामक वहाँ एक दूसरा प्रसिद्ध सरोवर है।

लिंग का आकार भी घटता बढ़ता है। विश्व के वैज्ञानिकों के लिए यह एक विचित्र चमत्कार उपस्थित करती है।

श्रावण पूर्णमासी के दिन यह लिंग पूर्ण आकार में दृश्यगत होता है। वैज्ञानिकों का मत है। शीत के कारण, पानी चूने के कारण, गिरता जल जम कर लिंगाकार हो जाता है। अतएव लिंग को संज्ञा स्वयम्भू लिंग से दी गयी है। अमरनाथ माहात्म्य में यात्रा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

नीलमत पुराण तथा राजतरंगिणी काल में इस यात्रा का विशेष महत्त्व नहीं मालूम होता। बहुत कम उल्लेख आया है। जोनराज सुलतान जैनुल आबदीन अमरनाथ की यात्रा का वर्णन करता है।

१२३३ जोन चरित्र

अमरनाथ की यात्रा बड़ी रोचक होती है। मैंने इस यात्रा का दृश्य देखा है। श्रीनगर से अमरनाथ की गुफा ९५ मील दूर पर स्थित है। श्रीनगर से पहलगाँव ६० मील पर है। पहलगाँव से श्रीनगर तक की सड़क बहुत अच्छी चौड़ी तथा आरामदेह है। बसें चलती है। साधारण यात्री बसों का उपयोग करते हैं। मार्ग का दृश्य अच्छा है। पहलगाँव से ३५ मील का मार्ग मोटर कार तथा बस चलने लायक अब तक नहीं बन पाया है। जीप बहुत दूर तक जा सकती है। प्रायः पहलगाँव से हजारों यात्री पैदल, और टट्टू पर जाते हैं। धनी लोग जीप में भी जहाँ तक पहुंच सकती है, जाते हैं। इस समय यह यात्रा इतनी सुगम हो गयी है कि पहलगाँव से एक दिन में वहाँ पहुँचा तथा लौटा जा सकता है। चन्दनवाड़ी पहलगाँव मे ८ मील दूर है। चन्दनवाड़ी ९५०० फुट की ऊँचाई पर है। वहाँ की वनश्री देखते ही बनती है।

चन्दनवाड़ी से शेषनाग ६ मील दूर है। पिस्सू घाटी तक की चढ़ाई सीधी ऊँचाई पर है। जाजपल के समीप मार्ग एक छोटे मैदान से होकर गुजरता है। वहाँ पैदल यात्री अपना शिविर अर्थात् कैम्प लगा सकते हैं। यहाँ से ३ मील और चलने पर शेषनाग पहुँचा जाता है। शेषनाग १२२३० फुट ऊँचाई पर स्थित है। इस गिरि का दृश्य प्रेक्षणीय है। इसका जल हिम तुल्य शीतल है। इसमें स्नान करने से थकान तुरन्त मिट जाती है। बेवजन स्थान पर कैम्प लगाया जा सकता है। यहाँ लकड़ी की कमी है। जलाने का पहले से प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

यात्रा का तृतीय चरण शेषनाग से पंच तरणी तक है। दोनों के मध्य ८ मील की दूरी है। शेषनाग से सीधी चढ़ाई महागुण तक मिलती है। यह स्थान समुद्र की सतह से १४००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ स्रोतस्विनियों का जल मिलता है। यहाँ से उतराई आरम्भ होती है। भैरव पर्वत के मूल में पाँच स्रोतस्विनियाँ मिलेंगी। उन्हें पार करना पड़ता है। उनका नाम पंच तरणी है। वहाँ यात्री एक रात पड़ाव कर सकते हैं।

यात्रा का चतुर्थ चरण पंच तरणी से आरम्भ होता है। यहाँ से अमरनाथ की गुफा केवल ४ मील दूर रह जाती है। यह छोटा चढ़ाई का मार्ग है। पर्वत के बाहुमूल में घूमकर यात्री संगम स्थान पर पहुँचता है। यहाँ अमरावती नदी पंचतरणी में मिलती है। इस स्थान से गुफा का दृश्य मिलता है।

२६८ (१) सर : अमरनाथ तीर्थ यात्रा मार्ग में पर्वत शिखर पर एक सरोवर है। उसे शेषनाग सर कहते हैं। गाथा है कि यह सर सुश्रवा निर्मित सरोवर है। यहाँ एक और सर है। उसे जामातृ नाग कहते हैं। कल्हण वर्णित जामातृ सर है।

प्रजानां पालनव्याजान्निश्शङ्कक्षयकारिणः ।
अकस्मादन्तकाः केचित्संभवन्ति तथाविधाः ॥ २६९ ॥

२६९. प्रजापालन के व्याज से प्रजा का निशंक क्षय करने वालों के इस प्रकार के अन्तक[1] अकस्मात् उत्पन्न हो जाते हैं।

अद्यापि तत्पुरं दग्धं श्वभ्रीभूतं च तत्सरः ।
उपचक्रधरं दृष्ट्वा कथेयं स्मर्यते जनैः ॥ २७० ॥

२७०. भस्म हुए उस नगर तथा चक्रधर के समीप छिछले सरोवर[1] को देखकर, इस घटना का आज भी लोग स्मरण करते हैं।

राज्ञां रागः कियान्नाम दोषः स्वल्पदृशां मते ।
तत्तस्य तेन संवृत्तं यन्नाऽभूत्क्वाऽपि कस्यचित् ॥ २७१ ॥

२७१. संकुचित दृष्टि वालो के मतानुसार—'राजा का अनुराग कौन बड़ा दोष है ?' तथापि उस नाग ने इस राजा को ऐसा कर दिया, जैसा कही भी किसी के साथ नही हुआ था।

सतीदैवतविप्राणामप्येकस्य प्रकोपतः ।
श्रुतो हि प्रतिवृत्तान्तं त्रैलोक्यस्यापि विप्लवः ॥ २७२ ॥

२७२. सती स्त्री, देवता तथा विप्रों मे किसी एक के भी प्रकोप से त्रैलोक्य के भी विप्लव का वृतान्त सुना गया है।

चत्वारिंशतमब्दान्स मासैस्त्र्योनां त्रिभि समाम् ।
भुवं भुक्त्वा क्षितिभृया दुर्नयेन क्षयं ययौ ॥ २७३ ॥

२७३. चालीस वर्ष में तीन मास कम भूमि का भोगकर अपने दुर्नीति के कारण राजा न हो गया।

अप्यल्पकालसंदृष्टप्राकाराट्टालमण्डलम् ।
तन्निःनरपुरं लेभे गन्धर्वनगरोपमाम् ॥ २७४ ॥

२७४. प्राकार एवं अट्टालिकाओं से पूर्ण उस नगर का अस्तित्व अल्प काल तक ही रहा। तत्पश्चात् गन्धर्व[1] नगर सदृश हो गया।

---

२६९ (१) अन्तक : इस शब्द का अर्थ मृत्यु, काल, यमराज, तथा नाश करने वाला होता है। प्रजा के निशंक क्षय करने वालों के दलन, किंवा संहारार्थ अन्त निमित्त कोई न कोई कार्य, घटना किंवा व्यक्ति उत्पन्न हो जाते हैं जो संहारक के नाश के कारण बनते हैं। कल्हण ने अन्तक शब्द का इसी अर्थ में यहाँ प्रयोग किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७० मे 'श्वभ्री' का पाठभेद 'शुभ्री' मिलता है।

२७० (१) सरोवर : श्री स्तीन ने इसी छिछले सरोवर का उल्लेख चक्रधर के अन्तरीप के सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी रा० त० १:२०१–२०२ में किया है। वह सरोवर सुश्रवा नाग का कहा जाता है

एकस्तु तनयस्तस्य वैचित्र्यात्कर्मणां गतेः ।
स्वधात्र्या विजयक्षेत्रं नीतः प्राणैर्न तत्यजे ॥ २७५ ॥

२७५. भाग्य वैचित्र्य के कारण उसका एक तनय अपनी धात्री के साथ विजयक्षेत्र[1] गया था। अतएव जीवित रह गया।

राजा सिद्धाभिधः सोऽथ तथा निश्शेषितं जनम् ।
नवीचकार जलदो दावदग्धमिवाचलम् ॥ २७६ ॥

सिद्ध :—

२७६. सिद्ध[1] नामक उस राजा ने शेष जनों में उसी प्रकार नवजीवन का संचार किया, जिस प्रकार जलद दावानल से दग्ध पर्वत का पुनः नवीकरण कर देता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७१ में 'राज्ञा' का 'राज्ञो', 'कियाग्नाम' का 'कियन्नाम', 'मते' का 'मतेः', 'यन्त्रा' का 'यत्रा' तथा 'स्वकापि' का 'स्कापि' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या २७३ में 'दुर्नमेन' का पाठभेद 'दर्णयेन' मिलता है।

श्लोक संख्या २७४ में 'अप्यल्प' का पाठभेद 'अत्यल्प' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७४ (१) गन्धर्वनगर : गन्धर्व नगर काल्पनिक नगर तुल्य माना जाता है। किन्नरपुर का अर्थ किन्नरों का नगर होता है। किन्नर का शाब्दिक अर्थ 'किं कुत्सितो नरः' होता है। देवताओं के गायक माने गये हैं। इनका मुख अश्व तथा शरीर मनुष्य तुल्य होता है।

गन्धर्व भी देवताओं के गायक माने गये हैं। मृत्यु के पश्चात् एवं जन्म के पूर्व की यह एक स्थिति मानी गयी है। गन्धर्वनगर दृष्टि दोष के कारण मृगमरीचिका के समान अथवा आकाश में दिखाई देने वाला मिथ्या किंवा आभास रूप नगर है।

कश्यप तथा अरिष्टा की सन्तति को गन्धर्व कहते हैं। हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्ररादि इसके भेद माने गये हैं। गन्धर्वों का देश हिमालय का मध्य भाग माना गया है। गन्धर्व तथा किन्नर देश पुराणों द्वारा निर्दिष्ट किये गये हैं। गन्धर्वों की स्त्रियाँ अप्सरा कही जाती हैं। कश्यप सुता की सन्तानें अप्सराएँ हैं।

चित्ररथ, विश्वावसु, चित्रसेन, आदि गन्धर्व राजाओं का निर्देश सर्वत्र मिलता है। चित्ररथ तथा पाण्डवों का संघर्ष प्रसिद्ध है। गन्धर्व अपनी सुन्दरता, वीरता तथा बल के लिये प्रसिद्ध हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७५ में 'वैचिभ्यात्' का 'वैचिभ्रात्' तथा 'स्वधात्र्या' का पाठभेद 'स्वधात्रा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७५ (१) विजय क्षेत्र : विजय क्षेत्र किंवा विजयेश्वर क्षेत्र में विजयेश्वर तथा बिजबिहार का नगर सम्मिलित था। टिप्पणी तरंग १ : ३८, १०५ १०६, ११७, १३१, ३१४ तथा तरंग २ : १२३ १२५ तरंग ५ : ४६; तरंग ६ : ९८, तरंग ७: १८३, १८४, ३५४, ४६३, तरंग ८ : २२२२ २३७१, हरचरित चिन्तामणि, राजानक जयद्रथ १० : १९१ रा० त० ७ : ३३६, ४३१, ५२४ भी द्रष्टव्य हैं।

किन्नरपुर नगर की भौगोलिक स्थिति यह श्लोक और स्पष्ट करता है। विजय क्षेत्र, विजयेश, चक्रधर, किन्नरपुर सभी एक ही भौगोलिक सी

इतिवृत्तं महाश्चर्यं तस्य पित्र्यं महामतेः ।
संसारासारताज्ञाने प्राप पुण्योपदेशताम् ॥ २७७ ॥

२७७. उस महामति के लिये पिता का महाश्चर्य पूर्ण इतिवृत्त संसार के असारत्व के ज्ञान में पुण्योपदेश सिद्ध हुआ ।

भोगयोगेन मालिन्यं नेतुं मध्यगतोऽपि सः ।
न शक्यते स्म पङ्केन प्रतिमेन्दुरिवामलः ॥ २७८ ॥

२७८. पंक में निर्मल इन्दु प्रतिबिम्ब[1] सदृश वह राजा भोग योग के मध्यगत होता भी उससे मलिन नहीं हो सका था ।

दर्पज्वरोष्णभूपालमध्ये निर्ध्यायतोऽनिशम् ।
सुधासूतिकलामौलिं तस्यैवोल्लाघतोऽग्रयौ ॥ २७९ ॥

२७९. दर्प ज्वर से सन्तप्त भूपाल के मध्य में सुधा सूति कला मौलि (शिव) का रात्रि-दिन ध्यान करते हुए केवल वही पूर्ण स्वस्थ रहा।

गणितं गुणिना तेन मणींस्तृणमिवोज्झता ।
खण्डेन्दुमण्डनार्चायां मण्डनत्वमखण्डितम् ॥ २८० ॥

२८०. मणियों को तृण तुल्य त्यागते हुए, इस राजा ने खण्डेन्दु मण्डन (शिव) की अर्चा को अखण्डित मण्डन माना ।

वितस्ता तट पर एक साथ हो थे। नर का पुत्र सिद्ध छोटा था इसलिए अपनी उपमाता किंवा धात्रीमाता के साथ विजय क्षेत्र गया था । यह स्थान किन्नरपुर के समीप था इसीलिए अपनी धात्रीमाता के साथ सिद्ध गया था । उसकी इस अनुपस्थिति में ही किन्नरपुर में अग्निदाह हुआ था ।

२७६ (१) सिद्ध : आइने अकबरी में नाम 'सिदेह' तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है ।

सिद्ध का राज्याभिषेक काल २१२४ लौकिक वर्ष होगा । हसन लिखता है—'राजा सिद्ध राजा नर का बेटा था । क० २०९१ में बाप के हादशा के वक्त शहर वेंश्वारह से अपनी रज़ाई मा के साथ गया था । उसके वफ़ात के बाद तख़्त नशीन हुआ । अदल व इन्साफ़, बहादुरी और सुजाअत में वे नज़ीर था । हमेशा रैय्यत के आराम और आशायश और मख़लूक खुदा की फ़लाह व बहबूद में ब दिल व जान कोशां रहता । साठ बरस हकूमत करके मुल्क अदम में जा बसा ।' (पृष्ठ ४६)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७७ में 'पित्र्यं' का 'पित्रं' तथा 'ताज्ञाने' का पाठभेद 'ताज्ञेन', 'ताज्ञनं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२७८ (१) चन्द्र प्रतिबिम्ब : पंकमय सरोवर में चन्द्र प्रतिमा अथवा चन्द्रबिम्ब की पड़ती छाया पंक के कारण दूषित नहीं होती और न उसका चन्द्र बिम्ब पर कोई प्रभाव पड़ता है ।

कल्हण ने उपमा दी है । पंकिल जल में अथवा पंक में शशि बिम्ब पडता है । किन्तु उस पंक तथा पंकिल जल के कारण उसके बिम्ब में मलिनता नहीं आती । दूषित पंक अथवा पंकिल जल शशि बिम्ब के संसर्ग में आने पर भी मलिन करने से असमर्थ रहता है । इसी प्रकार भोग के मध्य रहते हुए भी भोग का दोष राजा को स्पर्श नहीं कर पाया था । वह भोग में रहता भी निर्लिप्त था । निर्मल था ।

राज्ञस्तस्यैव राजश्रीः परलोकानुगाऽभवत् ।
यस्तामयोजयद् भूमौ धर्मेणाऽव्यभिचारिणा ॥ २८१ ॥

२८१. केवल उसी राजा की राज्यश्री उसको परलोकानुगामिनी हुई। क्यों कि उसने इस भूमि पर अव्यभिचारी धर्म से उस राज्यश्री को संयुक्त कर दिया था।

षष्टिमब्दान्प्रशास्योर्वीमासन्नानुचरान्वितः।
आरुरोह सदेहोऽसौ लोकाञ्शशिशिखामणेः ॥ २८२ ॥

२८२. इस राजा ने साठ वर्ष तक[1] पृथ्वी का प्रशासन कर निकटवर्ती अनुचरों सहित सदेह शशिशिखामणि के लोक पर आरोहण किया।

भृत्या नरं समाश्रित्य प्रययुः शोचनीयताम् ।
तत्सुतं तु समालंब्य प्रभुं भुवनवन्द्यताम् ॥ २८३ ॥

२८३. राजा नर का आश्रय लेकर भृत्यों की शोचनीय दशा हुई थी किन्तु उसके पुत्र प्रभु का समालम्बन लेकर उनकी भुवन में वन्दना हुई।

यात्याश्रितः किल समाश्रयणीयलभ्यां
निन्द्यां गतिं जगति सर्वजनार्चितां वा।
गच्छत्यधस्तृणगुणः श्रितकूपयन्त्रः
पुष्पाश्रयो सुरशिरोभुवि रूढिमेति ॥ २८४ ॥

२८४. जगत् में आश्रित, आश्रयदाता से प्राप्त निन्दनीय अथवा सर्वजन श्लाघ्य गति को प्राप्त करता है। क्योंकि कूप यंत्र[1] का आश्रय वाली तृण की रस्सी नीचे जाती है। और पुष्प का आश्रय लेकर तृण सुर के शिर पर चढ़ता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७९ में 'रोष्ण' का 'रोस्म' 'रोयम', 'प्रनिशम्' का 'भृशम्' तथा 'श्लाघतोर्यो' का पाठभेद 'श्लाघतोर्मयी' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८० (१) मण्डन-विरोधाभास : यहाँ विरोधाभास अलंकार का प्रयोग कल्हण ने किया है। शंकर के लिए खण्डेन्दुमण्डन शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु शिव की अर्चना किंवा अर्चा को अखण्डित मण्डन अर्थात् पूर्ण आभूषण माना है। खण्डित मण्डन की अर्चा द्वारा खण्डित मण्डनत्व की प्राप्ति संगत हो सकती है। परन्तु यहाँ खण्डितेन्दुमण्डन की अर्चा से अखण्डित मण्डन की प्राप्ति वरोधाभास का मूल है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८१ मे 'यद्भूमौ' का पाठभेद 'यद्भूतौ' 'यद्भूतो' 'यद्धुतो' 'यद्धूतौ' तथा 'धर्मेणाव्य' का 'धर्मेणाध्य' पाठभेद मिलता है।

२८२ (१) सिद्ध का राज्यकाल : राजा के लम्बे राज्यकाल का कारण यह है कि वह शैशवावस्था में राजा बन गया था। धात्री माँ के साथ विजयेश्वर में जाने के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि वह उस समय शिशु था। शैशवावस्था में उसका अभिभावक कौन था? तथा राज्य संचालन किस प्रकार होता रहा? कल्हण ने इस पर प्रकाश नहीं डाला है। सम्भव है। राज्य के मन्त्रियों ने कोई परिषद बनाकर शासन-सूत्र के संचालन का प्रबन्ध किया हो,

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८३ में 'वन्द्यताम्' का पाठभेद 'वन्ध्यताम्' मिलता है।

श्लोक संख्या २८४ में 'चिता' का पाठभेद 'चितं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८४ (१) यन्त्र : कूप शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। यह सम्भवतः अरघट्ट अर्थात् रहट के लिए प्रयोग किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका प्राय: वर्णन मिलता है। परसियन ह्वील इसका नवीन नाम है। ईरान में इसके प्रचलन के बहुत पूर्व से वह भारत मे प्रचलित था। यह भारतीय अन्वेषण था न कि परसियन। अपना इतिहास भूल जाने के कारण लोगों ने इसे परसियन ह्वील का नाम दे दिया है।

कल्हण ने ऐतिहासिक दृष्टि से यन्त्र का यहाँ प्रयोग कर भारत का गौरव बढ़ाया है। रहट अर्थात् परसियन ह्वील द्वारा कूप से जल निकाला जाता है। जगत् यही जानता है कि यह परसियन अर्थात् ईरान वालों का आविष्कार है। परन्तु कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि कश्मीर मे रहट सुदूर प्राचीन काल से प्रचलित था।

भारतवर्ष में मेवाड़ ऐसा स्थान है जहाँ विदेशी प्रभाव कम पड़ सका है। वहाँ की जनता शताब्दियों तक स्वाधीनता के लिए युद्ध करती रही। अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने में सफल रही। मैं जब हिन्दुस्तानिक लिमिटेड का अध्यक्ष हुआ तो प्राप्य साधनों के कारण मेवाड का कोना-कोना छान डाला। आश्चर्य हुआ। भारतीय संस्कृति सभ्यता वहाँ अपने कुछ मौलिक रूप में दिखाई दी। मन्दिरो की शृंखलाएँ अछूती पड़ी है। वे खण्डित एवं भंग नही किये गये थे। कश्मीर में जिस प्रकार ग्राम-ग्राम में प्राचीन काल मे देव स्थान थे उसी प्रकार यहाँ प्रत्येक ग्राम तथा स्थान पर मन्दिर, स्मारक, सती का चौरा आदि बने दिखाई देंगे। पुराने रीति-रिवाज भी कायम मिलेंगे। अपनी भाषा वे बोलते हैं। उस पर फारसी तथा अंग्रेजी का कम प्रभाव पड़ा है। इस समय परिवर्तन तेजी के साथ हो रहा है।

मैने यहाँ पर रहट चलते हुए बहुत देखे। वे अत्यन्त प्राचीन शैली के हैं। शताब्दियों पूर्व से चलते आ रहे हैं। वे लकड़ी के बनाये जाते हैं। *परसियन ह्वील का नाम बहुत सुना था।* यह भी सुना था कि रहट परसियन आविष्कार है। ईरान से भारत में आया था।

यह धारणा तथा मान्यता गलत है। 'रहट' भारतीय आविष्कार है। भारत मे आज से सहस्रों वर्ष पूर्व चलता था। आज भी चल रहा है। उसका मूल रूप आज भी मेवाड़ में दिखाई पड़ता है। राजस्थान में रहट बहुलता के साथ मिलेगा।

मेवाड में ५२ विशाल झीलें है। वापियाँ हैं। कूप हैं। जलस्रोत हैं। स्रोतस्विनियाँ हैं। सरोवर है। पानी की कमी नहीं है। एतदर्थ रहट अत्यन्त उपयोगी पानी उठाने तथा सींचने के लिए कश्मीर के तुल्य उपयोगी यहाँ सिद्ध हुआ है। कश्मीर मे जल का सर्वत्र सुपास है। प्रायः वही बात उदयपुर के क्षेत्र के विषय में कही जायेगी।

कश्मीर में पुराने ढंग के रहट दिखाई नही देंगे। परन्तु मेवाड़ में गाँव गाँव में अभी तक वे मिलते है। यद्यपि बीस पचीस वर्ष में वे भी लोप हो जायेंगे। उनका स्थान पाम्पिंग सेट अथवा लौह रहट ले लेगा।

नवम्बर सन् १९६७ में मेवाड का पर्यटन आरम्भ किया। पुराने मन्दिरों, दुर्गों, भग्नावशेषों के साथ रहटो को देखा। मैंने उनका नाम पूछा—लोगों ने उसका नाम 'अरहट' बताया। राजतरंगिणी के 'अरघट्ट' शब्द की ओर तुरन्त ध्यान गया। इस विषय पर टिप्पणी लिख चुका था। लेकिन उसे पुनः लिखने का निश्चय किया।

रहट शब्द प्राचीन संस्कृत शब्द 'अरघट्ट' का अपभ्रंश है। 'अर' का अर्थ होता है पहिये की अरा। नेमि के मध्य की आड़ी लकड़ी। उसे पहिये का आरा भी कहते हैं। राष्ट्रीय झण्डों पर चक्र के मध्य केन्द्र बिन्दु से परिधि पर लगी लकड़ियाँ 'अर' अथवा 'आर' कही जाती है। 'घट' का अर्थ है घड़ा। अर + घट मिलकर बनता है 'अरघट'। अथवा जिसका अर्थ होगा 'घड़ा युक्त आर अथवा अर'।

उदयपुर का प्राचीन शैली का 'रहट' आधुनिक रहट से भिन्न है। वह प्राचीन परिभाषा से मिलता है। खड़ा 'अरा' घूमता है। वह चक्र अर्थात् चर्खी को घुमाता है। चर्खी अथवा पहिया पर 'घट' रस्सियों से बँधे रहते हैं। यह 'घट' पहिया से आधुनिक 'रहट' के 'बालटी' अथवा 'डब्बो' की तरह नीचे जाते और पानी लेकर घूमते पहिया पर आते हैं। 'अरहट' शब्द इसी 'अरघट' शब्द का अपभ्रंश है।

'मृच्छकटिकम्' नाटक में अरघट, अरघट्ठा, रहट का नाम 'कूपयन्त्रघटिका' दिया गया है। (१० : ५९) 'कूपयन्त्रघटिका' यही रस्सी में बँधा घटिका यन्त्र था। जल लेकर ऊपर आता तथा नीचे फिर जाता था। कवि शूद्रक ने उसकी उपमा उन्नति एवं अवनति तथा दैव से दी है। भाग्य इसे यन्त्र-घटिका के समान मनुष्य को नीचे गिराता तथा ऊपर उठाता है।

'कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा
कांश्चिन्नयत्युन्नतिं
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुनः
कांश्चिन्नयत्याकुलाम् ॥
अन्योन्यप्रतिपक्षसंहतिमिमां
लोकस्थितिं बोधय-
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिका
न्यायप्रसक्तो विधिः ॥

कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक के द्वितीय अंक श्लोक १२ में यन्त्र शब्द का प्रयोग कल्हण के समान किया है। उसका भी अर्थ रहट ही है :

विन्दुक्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी
भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं
सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणै-
र्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥ (२:१२)

अरघट्ट अरघट्टा, अरघट्टक अथवा रहट को मराठी में 'रहाट' सिन्धी में 'अरट्ट' पंजाबी 'रट्ट' राजस्थानी में 'अरहट' तथा हिन्दी में 'रहट' कहते हैं। यह सब मूल अरघट्ट के अपभ्रंश है। इसी प्रकार 'अर' को हरियाणा में 'आरा' हिन्दी में 'आरा गज' कहते हैं। यह लकड़ी या पटिया अथवा चक्र और नेमि के बीच की लम्बी लकड़ी है।

परसियन ह्वील तथा भारतीय रहट में मौलिक अन्तर था। परसियन ह्वील का चलाने वाला पैदल बैल अथवा ऊँट को हाँकता, उसके पीछे स्वयं घूमता है।

भारतीय रहट दो प्रकार के होते थे। और है। एक तो परसियन रहट की तरह। चलने वाला स्वयं पशु के पीछे हाँकता चलता है। दूसरा रहट पर स्वयं आदमी बैठता है। तेली के पुराने कोल्हू के समान बैठने के लिये स्थान बना रहता है। उसी पर आदमी बैठ कर पानी चलाता है। यही प्रकार मेवाड़ के रहट में विशेष प्रचलित है। रहट पर चलाने वाला स्वयं बैठ जाता है। बैठे ही बैल को हाँकता है। परसियन' रहट में यह बात नहीं है। इस दृष्टि से भारतीय रहट 'परसियन रहट' की अपेक्षा अधिक विकसित था और है।

'परसियन रहट' में मृत्तिका पात्र गोले हँड़िया शैली के लगते है। वे भी रस्सी से बाँधकर माला रूप चेन की तरह बनाये जाते हैं। उदयपुर के

सिद्धः सिद्धः सदेहोऽयमिति शब्दं सुरा दिवि ।
प्राघोषयंस्ताडयन्तः पटहं सप्त वासरान् ॥ २८५ ॥

२८५. 'सिद्ध,[1] यह सदेह सिद्ध है।' सुरगण इसका घोष करते हुए सात दिन तक पटह[2] बजाते रहे।

रहट का मृत्तिका घट अण्डाकार होता है। प्रत्येक ग्रामों में कुम्हार यह घट अथवा घड़ा बनाते हैं। वह ज्यादा पानी उठाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से परसियन-पुराने रहट से यह अधिक विकसित कहा जायगा।

कल्हण का वर्णन आठ शताब्दी पूर्व का है। उस समय भारत में और कश्मीर में रहट चलता था। कल्हण ने पुनः 'अरघट्ट' का वर्णन रा० त० ६ : ४८ में किया है।

मैंने उदयपुर तथा समीपस्थ स्थानों के वृद्धों से पूछा। उनका 'अरहट' कब से चलता है। वे बोले—"बाप दादों ने अपने बाप-दादों से सुना था। वह बहुत दिन से चलता रहा है। हम भी चला रहे हैं।"

मेवाड़ को छोड़कर शेष भारत में यह नवीन सिंचाई की प्रथा है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में इसका प्रचलन गत तीस या चालीस वर्षों से हुआ है। पंजाब में निस्सन्देह यह बहुत पूर्व आ गया था। परसियन भाषा, लिपि तथा सभ्यता का उत्तरी भारत में मुगल समय में अधिक प्रचार हुआ था। यदि यह पुराना भी रहा होगा तो इसका नाम परसियन दे दिया गया। अंग्रेजी सभ्यता के समय परसियन तथा अंग्रेजी नाम मिल कर उसका नामकरण 'परसियन व्हील' हो गया।

निस्सन्देह 'अरघट' अर्थात् रहट भारतीय आविष्कार था। कश्मीर में हजारों वर्ष पूर्व प्रचलित था। मेवाड़ में आज भी अपने मूल रूप में प्रचलित है। वह परसियन व्हील से अधिक विकसित तथा चलाने में सरल, सुगमता से ग्रामीण साधनों-द्वारा प्राप्य है। रहट को विदेशी आविष्कार कहना तथ्यों एवं प्रमाणों के विपरीत बात होगी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८५ में 'प्राघोष' का 'प्रोद्घोष', 'ताडयन्तः' का 'तानुयन्तः' 'न्तो ह्यनन्' पाठभेद मिलता है।

२८५ (१) सिद्ध : दश देव योनि में एक योनि सिद्धों की है। मनुष्यों में जिसका साधन पूरा हो जाता है उसे सिद्ध कहते हैं। जिन संतों तथा योगियों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है उन्हें सिद्ध कहते हैं।

राजा का नाम सिद्ध था। कल्हण उसके नाम के अनुसार सिद्ध प्रमाणित कर उसे सदेह स्वर्ग भेजता है। सदेह स्वर्ग जाना अत्यन्त कठिन कार्य है। विश्वामित्र तथा त्रिशंकु की कथा सदेह स्वर्ग गमन के लिए प्रसिद्ध है। त्रिशंकु विश्वामित्र की तपस्या के बल से भी सदेह स्वर्ग नहीं जा सका था। आज भी अधर में लटक रहा है।

कल्हण ने राजा सिद्ध में भी जलौक के समान अलौकिक गुणों के वर्णन का प्रयास किया है। राजा जलौक आध्यात्मिक तथा राजनीतिक दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ था। परन्तु वह भी सदेह स्वर्ग नहीं जा सका। उसने साधना-द्वारा अपने शरीर का त्याग किया था।

राजा सिद्ध को कल्हण सदेह स्वर्ग पहुँचा कर, आध्यात्मिक जगत् में उसे मनुष्य वर्ग से ऊपर उठा कर, सिद्ध अर्थात् देव वर्ग में रख देता है।

सदेह स्वर्ग महाभारत के पात्रों में केवल धर्मराज युधिष्ठिर गये थे। भगवान् राम तथा श्री कृष्ण ने भी शरीर त्याग इसी भूमि पर किया था।

राजा सिद्ध युधिष्ठिर तुल्य धर्मात्मा था। अपने पिता नर के चरित्र तथा आचरण से उसका चरित्र

उत्पलाक्ष इति ख्यातिं पेशलाक्षतया गतः ।
तत्सूनुस्त्रिंशतं सार्धां वर्षाणामन्वशान्महीम् ॥ २८६ ॥

उत्पलाक्षः

२८६. पेशलाक्ष होने के कारण प्रसिद्ध राजा सिद्ध के पुत्र उत्पलाक्ष[१] ने तीस वर्ष छः मास मही का शासन किया।

तस्य सूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाङ्कं पुरं व्यधात् ।
क्ष्मां सप्तत्रिंशतिं वर्षान्सप्तमासांश्च भुक्तवान् ॥ २८७ ॥

हिरण्याक्षः

२८७. उसके पुत्र हिरण्याक्ष[१] ने अपने नाम पर नगर[२] बसाया और सैंतीस वर्ष सात माह पृथ्वी का भोग किया।

विपरीत था। पिता जितना क्रूर, विषयी एवं लम्पट था, सिद्ध उतना ही अपने गुणो के कारण सिद्ध होकर, सदेह स्वर्ग प्राप्त किया था।

(२) पटह : पटह का अर्थ ढोल, मृदंग, डुग्गी, नगाड़ा, डंका होता है। देवगण मृदंग तथा नगाड़ा बजाते थे। पटह घोष, ड्योढ़ी तथा डुग्गी बजाने वालो का होता है। पटह भ्रमण का अर्थ जनता को एकत्रित करने के लिए घूमकर ढोल बजाने वालो का होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८६ में 'पेशलाक्षतया' का पाठभेद 'पेशलाक्षितया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८६ (१) उत्पलाक्ष : यह एक मत है। पुष्कराक्ष नामक कोई राजा कश्मीर में नहीं हुआ है। कल्हण की काल गणना अति त्रुटिपूर्ण इस समय की है। मुद्राराक्षस नाटक का काल भी अभी निश्चित नहीं हो सका है। विभिन्न विद्वानो के मतो में उसके रचना काल में शताब्दियो का अन्तर पड़ जाता है।

पुष्कराक्ष को चन्द्रगुप्त कालीन राजा मान लिया जाय तो उसका समय अशोक, जलौक आदि सबके पूर्व पड जाता है। अर्थात् वह कल्हण के वर्णनानुसार लुप्त राजाओं की श्रेणी में आ जाता है।

श्री एस० जी० पण्डित इस राजा का काल कल्हण की गणना के अनुसार ईसा पूर्व ८९५ वर्ष और श्री स्तीन उत्पलाक्ष का समय लौकिक संवत् २१८४ वर्ष तीन मास देते हैं। प्राप्य सामग्रियों के आधार पर अभी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस पर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है। यदि मुद्राराक्षस के ऐतिहासिक घटना को सत्य मान लिया जाय तो ऐतिहासिको के मत से चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य काल ईसा पूर्व होता है। मुद्राराक्षस का जो उद्धरण दिया जाता है। वह निम्नलिखित है :

'काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपु, महिमा सैन्धवः सिन्धुषेणाः' अंक ५ में पुनः उल्लेख प्रथम अंक श्लोक ११ के पश्चात् आता है :

'—कुलूताधिपश्चित्रवर्मा मलयजनपदाधिपः सिंहनादः, कश्मीरदेशाधिपः पुष्कराक्षः, सिन्धुराजः सिन्धुसेनः, पारसिकाधिपतिर्मेघाक्षः

अंक ५ में पुनः उल्लेख आता है :

'—ये एतेन राक्षसेन सह सौहार्दमुत्पाद्यास्मच्छरीरद्रोहेण चन्द्रगुप्तमाराधयितुकामाः राजानः तद्यथा कौलूतः चित्रवर्मा, मलयनरपतिसिंहनाद, काश्मीरपुष्कराक्षः सिन्धुराजसुषेणः—

आइने अकबरी मे नाम 'अदुत बोल बेह' तथा राज्यकाल ३० वर्ष ६ मास दिया गया है। हसन लिखता है—'राजा उतपलाक क० ५१५२ में बाप

हिरण्यकुल इत्यस्य हिरण्योत्सकृदात्मजः ।
षष्टिं षष्टिं वसुकुलस्तत्सूनुरभवत्समाः ॥ २८८ ॥

हिरण्यकुल :
२८८. उसके पुत्र हिरण्यकुल[1] ने हिरण्योत्स[2] स्थापित किया और साठ वर्ष राज्य किया।
वसुकुल :
उसके पुत्र वसुकुल[3] ने भी साठ वर्ष राज्य किया।

के कायम मुकाम होकर हमेशा रिआया की फलाह व बहबूद में कोशां रहता था। कुल तीस बरस हकूमत में गुजारे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८७ में 'सप्त त्रिंशति' का पाठभेद 'सप्त त्रिंशतं' तथा 'सप्ता त्रिंशति' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८७ (१) हिरण्याक्ष : आइने अकबरी में 'हिरण्य' नाम तथा राज्यकाल ३७ वर्ष ७ मास दिया गया है।

हसन लिखता है—'राजा हरनयाक्ष ने क० २१८२ में बाप के तख्त का रौनक बख्श कर मुकाम रवल आबाद किया। पैंतीस साल सात माह हकूमत व सल्तनत में गुजारे।'

हिरण्याक्ष एक दैत्य का भी नाम है। हिरण्यकश्यप का भ्राता था। वह वाराह भगवान् द्वारा मारा गया था। (भागवत पुराण ३ : १७ :१८—३१, ३ : १८)

कथासरित्सागर में हिरण्याक्ष नायक के रूप में चित्रित किया गया है। (६९ : २१४) उसके पिता का नाम कनकाक्ष दिया गया है। उसे कश्मीर का राजा कहा गया है। उसकी राजधानी हिरण्यपुर बतायी गयी है। हरिणाक्ष सरित सागर में एक नायक के रूप में एक विद्याधरी से विवाह करता है। उसके पिता का 'कंच' नाम भी दिया गया है।

(२) हिरण्यपुर : श्रीनगर से गान्दर बल तथा सिन्ध उपत्यका में जाने वाली ऊँची सड़क पर 'रान्येल' ग्राम है। गाव के समीप का नाग एक तीर्थ स्थान माना जाता है। यहाँ हरमुकुट जाने वाले यात्री आते हैं। इसका उल्लेख तीर्थों में है। सुरेश्वरी माहात्म्य में इसे (२:७) हिरण्यगंगा कहा गया है। कल्हण ने इस स्थान को हिरण्यपुर के समीप लिखा है।

भिक्षाचर, मयग्राम आधुनिक मनगाम के समीप शिविर डाले पड़ा था। यह स्थान सिन्धु उपत्यका के लार से बहुत दूर नहीं है। लहर अर्थात् लार के विद्रोही जो उसके समर्थक थे, हिरण्यपुर के समीप राजकीय सेना को पराजित किये थे। (रा० त० ८ : ७२९) राजकीय सेना का शिविर अमरेश्वरपुर अर्थात् अम्बुरहर में पड़ा था। यह स्थान रान्येल ग्राम से ढाई मील दक्षिण होगा। यही स्थान हिरण्यपुर था। इसी प्रकार जब उच्चल लोहर से बढ़ता आया और सिन्ध उपत्यका से राजधानी पर घेरा डाला था। उस समय मार्ग में ही अर्थात् हिरण्यपुर में ब्राह्मणों ने उसका राज्याभिषेक कर दिया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८८ में 'ण्योत्सकृदा' का 'ण्याक्षस्य चा' तथा 'वसुकुल' का 'वमुकुल' 'वसुक्कुल' और 'च मुकुल' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८८ (१) हिरण्यकुल : आइने अकबरी में नाम 'हिरेन कुल' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है।

हसन कहता है—'राजा हरन्यगुल (हरन्याक्ष) उसका बेटा था। साठ बरस, अकल व इन्साफ

अथ म्लेच्छगणाकीर्ण मण्डले चण्डचेष्टितः ।
तस्याऽऽत्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमो नृपः ॥ २८९ ॥

मिहिरकुल :

२८९. म्लेश[1] गणों से मण्डल आकीर्ण होने पर उसका लड़का चण्डचेष्टा, काल स्वरूप मिहिरकुल[2] राजा हुआ।

से बादशाहत करके दुनिया से रुखसत हुआ।

(२) हिरण्योत्स : इस स्थान का पता नहीं चलता।

(३) वसुकुल : आइने अकबरी में नाम 'इविकह' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है। हसन कहता है— राजा 'वसः कुल' राजा हरन्यगुल का बेटा था। इसने भी साठ साल हुकूमत किया। लौकिक वर्ष २२१२ में कश्मीर के राज्य सिंहासन पर बैठा होगा।

२८९ (१) म्लेच्छ : पाँचवी शताब्दी के प्रयोग में आमू दरया के उपत्यका के हूण जुआन जाति से मुक्ति पाकर शक्तिशाली हो गये। शासकों के वंश के कारण येथा—इफथेलाइट कहे जाने लगे। यूनानियों ने इन्हें श्वेत हूण कहा है। यही शब्द आज प्रचलित है। यहाँ म्लेच्छ शब्द से इफथेलाइट हूणों से तात्पर्य है। इन हूणों ने आमू दरया के समीपवर्ती प्रदेशों पर अपना राज्य स्थापित किया था। यूनानी बौद्ध सभ्यता का अफगानिस्तान में नाश किया। उत्तरी भारत में राज्य विस्तार कर स्यालकोट को अपनी राजधानी बनाया। भागवत पुराण के अनुसार हूणों पर भरत ने अपनी दिग्विजय यात्रा में विजय प्राप्त की थी। (भागवत ९ : २० : ३०)। मत्स्य पुराण में १९ हूणों का वर्णन मिलता है। (मत्स्यपुराण २७२ : ९)

हसन लिखता है—'राजा मिहिरकुल राजा वसुकुल का बेटा था। क० २३३६ में हुकूमत का झण्डा बुलन्द किया। खुदा का खौफ न होने और बेरहमी और गज़बनाकी में बेमिसाल था। थोड़े जुर्म पर कतल करने से गुरेज नहीं करता था। किसी दिन भी खून रेजी के बग़ैर चैन न लेता। रहम करने के नाम व निसान का उसको पता तक न था। परिन्दे और चरिन्दे मक़्तूलों के गोश्त की उम्मीद में उसके साथ-साथ जाया करते थे। उसके ज़माने में तुर्किस्तान के एक हाकिम ने कश्मीर पर हमला कर दिया। राजा ने इन्तहाई जवाँ मरदी, बहादुरी और इस्तकलाल के साथ उसके हमला का मुँहतोड़ जवाब दिया। जिसके नतीजा में बहुत से सिपाही मक़्तूल और ज़ख्मी हुए। बिल आख़ीर शिकस्त खाकर भाग गया। चन्दरकुल नाम की एक नहर परगना खाविर पारा में खुदवायी। दौरान खुदवाई में कोह आसर व अगर के पुश्ता में एक बड़ा भारी पत्थर सदराह हो गया और किसी भी तदबीर और हीला से अपनी जगह से न हिला। यह देखकर राजा को सख्त फिक्र हुई। पूजापाठ के बाद ख्वाब में एक आदमी देखा। जो उससे कह रहा था कि हर वह औरत जो गुनाह बदकारी से पाक व साफ होगी जब इस पत्थर पर हाथ रखेगी तो वह फौरन नाबूद हो जायगा। राजा ने इसी इलहाम के बमूजिब हर तरफ से औरतों की जमायतों को अखड़ करवाया। लेकिन किसी एक के भी हाथ लगने से वह पत्थर अपनी जगह से न हिला। राजा निहायत गज़बनाक हुआ और औरतों को जिनाहकारी और बच्चों को हरामजदगी और मरदों का बेबस और बेहयाई के बहाने से कतल आम कर दिया।

कैफियत—'मोरखों ने औरत, बच्चे और मर्द मक़्तूलीन की तादाद तीन करोड़ लिखी है लेकिन बाज तीन लाख तक खायत करते हैं।

'आख़िरकार चन्द्रवती जो एक कुम्हार की लड़की थी हाज़िर हुई। उसने राजा को बड़े गुस्सा

के साथ मुखातिब होकर वहा राजा साहब अपने पहले ही दिन औरतो को इस मुश्किल काम करने की तलकीन न फरमाई ताकि पाक दामनी के जोर से वह इस पत्थर को फना कर देती और फिर इतने बेगुनाहों का खून जनाय म होता। अगर औरतो के हाथ लगाने से इस पत्थर ने अपनी जगह से हरकत नही की तो हम देखेंगे कि यह सवामन जो अपने लोगों पर की है क्या आप अपने ऊपर कर सकते है? यह कहा और अपना प्रकपरस्त हाथ पत्थर पर रखा और अपनी जगह से उठाकर एक तरफ फेंक दिया।

एक दिन वही राजा अपने महल में दाखिल हुआ और अपनी रानी को देखा कि एक सुनहरी नक्शा व निगार का कपड़ा अजीब वन किये हुए है उस पर राजा सिंगल द्वीप की तसवीर है। यह देखते ही राजा के गुस्सा की हाड़ी जोश में आ गयी। कसम खाई जब तक राजा सिंगल-द्वीप को सजा न दूँगा किसी काम पर हाथ न डालूंगा। उसी दिन से लड़ाई का साज व सामान जमा करके बहुत भारी फैाज के हमराह सिंगल-द्वीप की तरफ रवाना हो गया। रास्ता में लाल चोल और करनाट के राजो को अपना मतिअ किया। और वहा से जहाजो और किश्तियो के जरिए सिंगल द्वीप में जा पहुँचा। बड़ी खूनरेजी और जंग व जदल के बाद वहा के राजा को फौज की एक बड़ी तादाद के समेत कतल कर डाला। उसकी जगह दूसरा राजा बैठाकर हुक्म साफिद कर दिया कि इसके बाद कपड़ो पर लोगों के तसवीरों में सूरज की तसवीरें बनायें। वापसी के वक्त जुल्म जुल्म व तअदी से काम लेकर बहुत-सा माल गनीमत इकट्ठा कर लिया। जिस वक्त पीर पंजाब के पहाड़ पर पहुँचा अचानक एक हाथी एक टीला से फिसल गया और फिसलते वक्त हाथी ने जोर जोर से दहाड़ें मारीं। राजा को हाथी का दहाड़ना बहुत पसन्द आया। चुनाचे हुक्म दिया कि एक सौ हाथी इसी तरह टीला से नीचे गिराये जांय। इस वक्त से उस जगह को 'हस्तवज' कहते है। काश्मीर में पहुँचकर होल लाड़ के मुकाम पर मिहिरपुर नामका एक शहर आबाद किया। कन्दहार के बरहमनों को बड़ी बड़ी जागीरें अता कीं। मुख्तसर यह कि किस्म किस्म के जुल्मों में वह जालिम इस मरतबा का था कि अहाता तहरीर में नही लाया जा सकता। सत्तर साल हुक्मरानी के बाद एक निहायत ही पचीदह और खतरनाक मर्ज उस पर तारी हो गया। एक दिन हवन के लिए आग जलाई थी उसमें अपने आप को आहुति की जगह जलती हुई आग में डालकर जला दिया।'

हूण—पुराणो में एक जाति के रूप में हूणों का चित्रण किया है। राजा भरत ने अपने दिग्विजय काल में हूणो का संहार किया था। (भागवत पुराण ९ : २० : ३०) मत्स्य पुराण (२७२ : १९) में १९ हूणों का वर्णन मिलता है।

वैदिक साहित्य में हूणो का नाम नही मिलता। रघुवंश महाकाव्य में दिग्विजय के समय राजा रघु ने वक्षु के तट पर हूणो को पराजित किया था। (४:८५)। कालान्तर में हूणों के लिए किसी किसी लेखक ने तुषार तथा तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि तुरुष्क, तथा तुषार वास्तव में तुर्कों के लिए व्यवहृत किया गया है।

पुराणो में उल्लेख मिलता है—

गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः।
शतद्रु जा कुणिन्दाश्च पारदा हारहूणकाः॥

ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदा हारहूणका' मार्कण्डेय पुराण में 'पारदा हारमूर्तिका' 'हारहूण' शब्दो का उल्लेख किया गया है। सम्भव है वे हूणो की एक शाखा रहे हों। हूणों ने मध्य एशिया से मध्यभारत तक की भूमि पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विजयकर, राज्य स्थापित किया था। कुछ लोगों का मत है। हार हूणो का स्थान हेरात क्षेत्र था। वे वही के निवासी थे। किन्तु यह विवादास्पद है।

हर्षचरित मे हूणो का स्थान उत्तरापथ में रखा गया है। 'हूणदावीस्तर्यैव च' का उल्लेख

अथ म्लेच्छगणाकीर्ण मण्डले चण्डचेष्टितः ।
तस्याऽऽत्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमो नृपः ॥ २८९ ॥

मिहिरकुल :

२८९. म्लेच्छ[1] गणों से मण्डल आकीर्ण होने पर उसका लड़का चण्डचेष्टा, काल स॰ मिहिरकुल[2] राजा हुआ।

से बादशाहत करके दुनिया से रुखसत हुआ।

(२) हिरण्योत्स : इस स्थान का पता नहीं चलता।

(३) वसुकुल : आइने अकबरी में नाम 'इन्द्रवह' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है। हसन कहता है—राजा 'वसः कुल' राजा हरन्यकुल का बेटा था। इसने भी साठ साल हुकूमत किया। लौकिक वर्ष २२१२ में कश्मीर के राज्य सिंहासन पर बैठा होगा।

२८९ (१) म्लेच्छ : पाँचवी शताब्दी के प्रथम में दामू दरया के उपत्यका के हूण जु मन जाति से मुक्ति पाकर शक्तिशाली हो गये। शासकों के वंश के कारण येथा—इफ़थैलाइट कहे जाने लगे। यूनानियों ने इन्हें श्वेत हूण कहा है। यही शब्द आज प्रचलित है। यहाँ म्लेच्छ शब्द से इफथेलाइट हूणो से तात्पर्य है। इन हूणों ने आमू दरया के समीपवर्ती प्रदेशों पर अपना राज्य स्थापित किया था। यूनानी बौद्ध सभ्यता का अफगानिस्तान में नाश किया। उत्तरी भारत में राज्य विस्तार कर स्यालकोट का अपनी राजधानी बनाया। भागवत पुराण के अनुसार हूणों पर भरत ने अपनी दिग्विजय यात्रा में विजय प्राप्त की थी। (भागवत ९. २० : ३०)। मत्स्य पुराण में १९ हूणो का वर्णन मिलता है। (मत्स्यपुराण २७२ : ९)

हसन लिखता है—'राजा मिहिरकुल राजा वसुकुल का बेटा था। क॰ २३३६ में हुकूमत का झण्डा बुलन्द किया। खुदा का खौफ न होने और बेरहमी और गज़बनाकी मे बेमिसाल था। थोड़े जुर्म पर कतल करने से गुरेज नही करता था। किसी दिन भी खून रेजी के बगैर चैन न लेता।

रहम करने के नाम व निशान का उसमें तक न था। परिन्दे और चरिन्दे मक़्तूलों गोश्त की उम्मीद में उसके साथ-साथ र करते थे। उसके ज़माने में तुरकिस्तान के हाकिम ने कश्मीर पर हमला कर दिया। ने इन्तहाई जवाँ मरदी, बहादुरी और इस्तक़ के साथ उसके हमला का मुँहतोड़ जवाब . जिसके नतीजा में बहुत से सिपाही मक़्तूल जख्मी हुए। फिर आखीर शिकस्त खाकर गया। चन्दरकुल नाम की एक नहर पर सादिर पारा में खुदवायी। दौरान खुदवाई कोह आमर व अगर के पुश्ता में एक बड़ा पत्थर सदराह हो गया और किसी भी तद और हीला से अपनी जगह से न हिला। देखकर राजा को सख्त फिक़र हुई। पूजा के बाद ख्वाब मे एक आदमी देखा। जो च कह रहा था कि हर वह औरत जो गुनाह भारी से पाक व साफ़ होगी जब इस पत्थर हाथ रखेगी तो वह फौरन नाबूद हो जा राजा ने इसी इलहाम के बमूजिब हर त औरतों की जमायतों को अखड़ करवाया। ले किसी एक के भी हाथ लगने से वह प अपनी जगह से न हिला। राजा निहायत नाक हुआ और औरतों को जिनाकारी और ब को हरामज़दगी और मरदों का बेबस और बेह के बहाने से कतल आम कर दिया।

कैफ़ियत—'मोरखों ने औरत, बच्चे और मक़्तूलीन की तादाद तीन करोड़ लिखी है ले वाज तीन लाख तक साबत करते हैं।

'आखिरकार चन्द्रवती जो एक कुम्हार लड़की थी हाज़िर हुई। उसने राजा को बड़े ग

के साथ मुखातिब होकर वहा राजा साहब अपने पहले ही दिन औरतों को इस मुश्किल काम करने की तकलीफ न फरमाई ताकि पाक दामनों के ज़ोर से वह इस पत्थर को फना कर देती और फिर इतने बेगुनाहों का खून जनाअ न होता। अगर औरतो के हाथ लगाने से इस पत्थर ने अपनी जगह से हरकत नही की तो हम देखेंगे कि यह सवामन जो अपने लोगों पर की है क्या आप अपने ऊपर कर सकते है? यह कहां और अपना मकपरस्त हाथ पत्थर पर रखा और अपनी जगह से उठाकर एक तरफ फेंक दिया।

एक दिन वही राजा अपने महल में दाखिल हुआ और अपनी रानी को देखा कि एक सुनहरी नकशा व निगार का कपड़ा अजीब तन किये हुए है उस पर राजा सिंगल द्वीप की तसवीर है। यह देखते ही राजा के गुस्सा की हाड़ी जोश में आ गयी। कसम खाई जब तक राजा सिंगल-द्वीप को सजा न दूँगा किसी काम पर हाथ न डालूंगा। उसी दिन से लड़ाई का साज व सामान जमा करके बहुत भारी फौज के हमराह सिंगल-द्वीप की तरफ रवाना हो गया। रास्ता में लाल चोल और करनाट के राजो को अपना मतिअ किया। और वहां से जहाजों और किश्तियों के जरिए सिंगल द्वीप में जा पहुँचा। बड़ी खूनरेंजी और जंग व अदल के बाद वहा के राजा को फौज को एक बड़ी तादाद के समेत कतल कर डाला। उसकी जगह दूसरा राजा बैठाकर हुक्म माफिद कर दिया कि इसके बाद कपड़ो पर लोगों के तसवीरो में सूरज की तसवीरें बनायें। वापसी के वक्त जुरम जुल्म व तमदी से काम लेकर बहुत-सा माल गनीमत इकट्ठा कर लिया। जिस वक़्त पीर पंजाब के पहाड पर पहुँचा अचानक एक हाथी एक टीला से फिसल गया और फिसलते वक़्त हाथी ने जोर जोर से दहाड़ें मारी। राजा को हाथी का दहाड़ना बहुत पसन्द आया। चुनांचे हुक्म दिया कि एक सौ हाथी इसी तरह टीला से नीचे गिराये जांय। इस वक्त से उस जगह को 'हस्तवज' कहते हैं। काश्मीर में पहुँचकर होल लाड़ के मुकाम पर मिहिरपुर नामका एक शहर आबाद किया। कन्दहार के बरहमनों को बड़ी बड़ी जागीरें अता कीं। मुख्तसर यह कि किस्म किस्म के जुल्मों में वह जालिम इस मरतबा का था कि अहाता तहरीर में नहीं लाया जा सकता। सत्तर साल हुक्मरानी के बाद एक निहायत ही पचीदह और खतरनाक मर्ज उस पर तारी हो गया। एक दिन हवन के लिए आग जलाई थी उसमें अपने आप को आहुति की जगह जलती हुई आग में डालकर जला दिया।'

हूण—पुराणो में एक जाति के रूप में हूणो का चित्रण किया है। राजा भरत ने अपने दिग्विजय काल में हूणों का संहार किया था। (भागवत पुराण ६ : २० : ३०) मत्स्य पुराण (२७२ : १९) में १९ हूणों का वर्णन मिलता है।

वैदिक साहित्य में हूणो का नाम नही मिलता। रघुवंश महाकाव्य में दिग्विजय के समय राजा रघु ने वक्षु के तट पर हूणों को पराजित किया था। (४:८५)। कालान्तर में हूणों के लिए किसी किसी लेखक ने तुषार तथा तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि तुरुष्क, तथा तुषार वास्तव में तुर्कों के लिए व्यवहृत किया गया है।

पुराणों में उल्लेख मिलता है—

गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः।
शतद्रुजा कुणिन्दाश्च पारदा हारहूणकाः॥

ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदा हारहूणका' मार्कण्डेय पुराण में 'पारदा हारमूपिका' 'हारहूण' शब्दों का उल्लेख किया गया है। सम्भव है वे हूणो की एक शाखा रहे हों। हूणो ने मध्य एशिया से मध्यभारत तक की भूमि पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विजयकर, राज्य स्थापित किया था। कुछ लोगों का मत है। हार हूणो का स्थान हेरात क्षेत्र था। वे वहीं के निवासी थे। किन्तु यह विवादास्पद है।

हर्षचरित में हूणों का स्थान उत्तरापथ में रखा गया है। 'हूणदावांस्तथैव च' का उल्लेख

अथ म्लेच्छगणाकीर्ण मण्डले चण्डचेष्टितः ।
तस्याऽऽत्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमो नृपः ॥ २८९ ॥

मिहिरकुल :

२८९. म्लेछ[1] गणों से मण्डल आकीर्ण होने पर उसका लड़का चण्डचेष्टा, काल स्वरूप मिहिरकुल[2] राजा हुआ।

से बादशाहत करके दुनिया में रुखसत हुआ।

(२) हिरण्योत्स : इस स्थान का पता नहीं चलता।

(३) वसुकुल : आइने अकबरी में नाम 'हरि-रनह' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है। हसन कहता है—राजा 'वसः कुल' राजा हरन्यकुल का बेटा था। इसने भी साठ साल हुकूमत किया। लौकिक वर्ष २११२ में कश्मीर के राज्य सिंहासन पर बैठा होगा।

२८९ (१) म्लेच्छ : पाँचवीं शताब्दी के प्रथम में आमू दरया के उपत्यका के हूण कुशन जाति से मुक्ति पाकर शक्तिशाली हो गये। शासकों के वंश के कारण येथा—इफथेलाइट कहे जाने लगे। यूनानियों ने इन्हें श्वेत हूण कहा है। यही शब्द आज प्रचलित है। यहाँ म्लेच्छ शब्द से इफथे-लाइट हूणों से तात्पर्य है। इन हूणों ने आमू दरया के समीपवर्ती प्रदेशों पर अपना राज्य स्थापित किया था। यूनानी बौद्ध सभ्यता का अफगानिस्तान में नाश किया। उत्तरी भारत में राज्य विस्तार कर स्यालकोट को अपनी राजधानी बनाया। भागवत पुराण के अनुसार हूणों पर भरत ने अपनी दिग्विजय यात्रा में विजय प्राप्त की थी। (भागवत ९ २० : ३०)। मत्स्य पुराण में १९ हूणों का वर्णन मिलता है। (मत्स्यपुराण २७२ : ९)

हसन लिखता है—'राजा मिहिरकुल राजा वसुकुल का बेटा था। क० २२३९ में हुकूमत का झण्डा बुलन्द किया। खुदा का खौफ न होने और बेरहमी और गज़बनाकी में बेमिसाल था। थोड़े जुर्म पर कत्ल करने से गुरेज नहीं करता था। किसी दिन भी खून रेजी के वगैर चैन न लेता। रहम करने के नाम व निशान का उसमें पता तक न था। परिन्दे और चरिन्दे मक़तूलों के गोश्त की उम्मीद में उसके साथ-साथ जाया करते थे। उसके ज़माने में तुर्किस्तान के एक हाकिम ने कश्मीर पर हमला कर दिया। राजा ने इन्तहाई जवाँमर्दी, बहादुरी और इस्तक़लाल के साथ उसके हमला का मुँहतोड़ जवाब दिया। जिसके नतीजा में बहुत से सिपाही मक़तूल और ज़ख्मी हुए। बिल आख़ीर शिकस्त खाकर भाग गया। चन्दरकुल नाम की एक नहर परगना खाविर पारा में खुदवायी। दौरान खुदवाई में कोह आसार व अगर के पुश्ता में एक बड़ा भारी पत्थर सदराह हो गया और किसी भी तदबीर और हीला से अपनी जगह से न हिला। यह देखकर राजा को सख्त फिक्र हुई। पूजापाठ के बाद ख्वाब में एक आदमी देखा। जो उससे कह रहा था कि हर वह औरत जो गुनाह बद-कारी से पाक व साफ होगी जब इस पत्थर पर हाथ रखेगी तो वह फौरन नाबूद हो जायगा। राजा ने इसी इलहाम के बमूजिब हर तरफ से औरतों की जमायतों को अखड़ करवाया। लेकिन किसी एक के भी हाथ लगने से वह पत्थर अपनी जगह से न हिला। राजा निहायत गज़ब-नाक हुआ और औरतों को जिनारकारी और बच्चों को हरामजदगी और मरदों का बेवस और बेहयाई के बहाने से कत्ल आम कर दिया।

कैफ़ियत—'मोरखों ने औरत, बच्चे और मर्द मक़तूलीन की तादाद तीन करोड़ लिखी है लेकिन बाज़ तीन लाख तक साबत करते हैं।

'आखिरकार चन्द्रवती जो एक कुम्हार की लड़की थी हाज़िर हुई। उसने राजा को बड़े गुस्सा

के साथ मुखातिब होकर वहा राजा साहब अपने पहले ही दिन औरतों को इस मुश्किल काम करने की तलकीन न फरमाई ताकि पाक दामनी के ज़ोर से वह इस पत्थर को फना कर देती और फिर इतने बेगुनाहों का खून जनाअ न होता। अगर औरतों के हाथ लगाने से इस पत्थर ने अपनी जगह से हरकत नही की तो हम देखेंगे कि यह सवासन जो अपने लोगों पर की है क्या आप अपने ऊपर कर सकते है? यह कहां और अपना प्रकपरस्त हाथ पत्थर पर रखा और अपनी जगह से उठाकर एक तरफ फेंक दिया।

एक दिन वही राजा अपने महल में दाखिल हुआ और अपनी रानी को देखा कि एक सुनहरी नक्शा व निगार का कपड़ा अजीब तन किये हुए है उस पर राजा सिंगल द्वीप की तसवीर है। यह देखते ही राजा के गुस्सा की हाड़ी जोश में आ गयी। कसम खाई जब तक राजा सिंगल-द्वीप को सजा न दूँगा किसी काम पर हाथ न डालूंगा। उसी दिन से लड़ाई का साज़ व सामान जमा करके बहुत भारी फौज के हमराह सिंगल-द्वीप की तरफ रवाना हो गया। रास्ता में लाल चोल और करनाट के राजो को अपना मतिअ किया। और वहां से जहाजों और किश्तियो के जरिए सिंगल द्वीप में जा पहुँचा। बड़ी खूनरेजी और जंग व जदल के बाद वहां के राजा को फौज की एक बड़ी तादाद के समेत कतल कर डाला। उसकी जगह दूसरा राजा बैठाकर हुक्म नाफिद कर दिया कि इसके बाद कपड़ो पर लोगों के तसवीरों में सूरज की तसवीरें बनायें। वापसी के वक्त जुल्म जुल्म व तअद्दो से काम लेकर बहुत-सा माल मनोमत इकट्ठा कर लिया। जिस वक्त पीर पंजाब के पहाड़ पर पहुँचा अचानक एक हाथी एक टीला से फिसल गया और फिसलते वक्त हाथी ने जोर जोर से दहाड़ें मारी। राजा को हाथी का दहाड़ना बहुत पसन्द आया। चुनांचे हुक्म दिया कि एक सौ हाथी इसी तरह टीला से नीचे गिराये जांय। इस वक्त से उस जगह को 'हस्तवज' कहते है। काश्मीर में पहुँचकर होल लाड़ के मुकाम पर मिहिरपुर नामका एक शहर आबाद किया। कन्दहार के बरहमनों को बडी बड़ी जागीरें अता कीं। मुख्तसर यह कि किस्म किस्म के जुल्मों में वह जालिम इस मरतबा का था कि अहाता तहरीर में नही लाया जा सकता। सत्तर साल हुक्मरानी के बाद एक निहायत ही पचीदह और खतरनाक मर्ज उस पर तारी हो गया। एक दिन हवन के लिए आग जलाई थी उसमें अपने आप को आहुति की जगह जलती हुई आग में डालकर जला दिया।'

हूण—पुराणो में एक जाति के रूप मे हूणो का चित्रण किया है। राजा भरत ने अपने दिग्विजय काल मे हूणो का संहार किया था। (भागवत पुराण ९ : २० : ३०) मत्स्य पुराण (२७२ : १९) में १९ हूणों का वर्णन मिलता है।

वैदिक साहित्य में हूणो का नाम नही मिलता। रघुवंश महाकाव्य में दिग्विजय के समय राजा रघु ने वक्षु के तट पर हूणो को पराजित किया था। (४:८५)। कालान्तर मे हूणों के लिए किसी किसी लेखक ने तुषार तथा तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि तुरुष्क, तथा तुषार वास्तव मे तुर्कों के लिए व्यवहृत किया गया है।

पुराणो में उल्लेख मिलता है—

गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः।
शतद्रुजा कुलिन्दाश्च पारदा हारहूणकाः॥

ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदा हारहूणका' मार्कण्डेय पुराण मे 'पारदा हारभूषिका' 'हारहूण' शब्दों का उल्लेख किया गया है। सम्भव है वे हूणों की एक शाखा रहे हों। हूणों ने मध्य एशिया से मध्यभारत तक की भूमि पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विजयकर, राज्य स्थापित किया था। कुछ लोगों का मत है। हार हूणो का स्थान हेरात क्षेत्र था। वे वही के निवासी थे। किन्तु यह विवादास्पद है।

हर्षचरित मे हूणों का स्थान उत्तरापथ में रखा गया है। 'हूणदावस्त्विपैत च' का उल्लेख

मिलता है। कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में दार्वाभिसार का स्थान है। इस मत से पश्चिमोय-उत्तरीय पंजाब मे इनका निवास प्रकट होता है। पुराणों में एक स्थान पर हूणों का और उल्लेख आता है।

सा (म) रुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः।
सौवीराः सैन्धवा हूणा शाल्वाः शाकलवासिनः ॥

विष्णु पुराण तथा कूर्म पुराण में 'सौवीरा सैन्धवा हूणाः' का उल्लेख आया है। यह भी इस बात की ओर संकेत करता है। पश्चिमी उत्तरी भारत में हूण रहते थे। उनका स्थान सिन्धु नदी से पश्चिम था।

शोभा तन्त्र ५६ देशों की एक तालिका देता है। उसमें हूणों का उल्लेख है। उन्हे पुलिन्द, कोन तथा गान्धार के साथ रखा है। संकेत मिलता है। वे पश्चिमोय उत्तरी भारत की तरफ रहते थे।

मलाश्चैव पानाराः पावापान्धक (?) पुलिन्द (काः)।
हु(हू)ण कौलगान्धारविदर्भाः सविदेहकाः ॥४॥२:४

शक्ति संगम तन्त्र ३ ७:४३ में हूणों के देश का उल्लेख है।

कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि।
श्रीकुन्तलामिधो देशो हूणं शृणु महेश्वरि ॥५३॥

यहाँ पर हूण देश कामगिरि के दक्षिण में तथा मरुदेश के उत्तर मे रखा गया है। श्री कुन्तल नाम के कई क्षेत्रों का वर्णन मिलता है। अतएव इस कुन्तल का निर्धारित करना कठिन है। यह कौन कुन्तल है। कामगिरि मरुस्थल के उत्तर में था। सिन्ध राजस्थान तथा पंजाब का दक्षिणी भाग मरुस्थल है। अतएव यहाँ कुन्तल से तात्पर्य उत्तर पश्चिमी भारत मे लगाना चाहिए। काम देश का नाम सन् ११७६ ई० के एक अभिलेख में मिला है। जिसमें वहाँ के राजा को सपादलक्ष (सेवालिक) पर्वत के राजा के अन्तर्गत कहा गया है।

हूणों को एक जाति के रूप में महाभारत ने चित्रित किया है। उनकी उत्पत्ति नन्दिनी गौ के फेन से हुई थी। माथा का वर्णन महाभारत आदि पर्व (६५ : ४१) तथा वन पर्व (४३:१४) में किया गया है। हूणों के देश को हूण देश कहा गया है। उनका स्थान पश्चिम दिशा निर्धारित किया गया है। उन पर नकुल ने विजय प्राप्त की थी। (सभा पर्व ३२ : १३)। हूण देश तथा जाति के राजागण युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट लेकर आए थे। (सभा पर्व ५१:३४)

(२) मिहिरकुल : आइने अकबरी में नाम 'मेरह कुल' तथा राज्यकाल ७० वर्ष दिया गया है। राज्यकाल लौकिक वर्ष २३७२ से आरम्भ माना जाता है। कुछ ऐतिहासिक इसका सन् ५१५-५५० ई० मानते हैं।

मिहिरकुल इफथेलाइट अथवा श्वेत हूण था। हूणों ने बौद्धों के विरुद्ध जिहाद बोला था। उनके विहारों तथा चैत्यों को नष्ट किया था। भिक्षुओं को तलवार की घाट उतारा था। ह्वेनसांग लिखता है–मिहिरकुल अपने अजेय साहस तथा प्रलोभनीय प्रकृति के कारण प्रमुख व्यक्ति था। पड़ोसी राजाओं में ऐसा कोई नहीं था। जो सकम्पित उसके आदेशों का पालन न करता रहा हो।'

आमू दरया से चलकर हूणों ने हिन्दूकुश पर्वत पार किया। गान्धार लिया। आगे बढ़ना चाहते थे। सन् ४६० ई० में स्कन्दगुप्त ने उनकी बाढ़ रोक दी। ईरान में हूण सफल हुए। ईरान ने हथियार रख दिया। सन् ४८४ ई० में ईरान के राजा को मारकर राज्य पर अधिकार कर लिया। पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक उनका राज्य बलख तक फैल गया।

पाँचवीं शताब्दी में तोरमाण ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। एक मत है। मालवा के राजा यशोवर्मा ने सन् ५३०-५४५ ई० के बीच हूणों पर विजय प्राप्त की थी। यह भी एक मत है। वे बालादित्य नरसिंह गुप्त से पराजित हो गये थे। इस पराजय के पश्चात् मिहिरकुल ने भारत कश्मीर विजय किया। वहाँ से उसने गान्धार पर आक्रमण किया। वहाँ के राजवंश

को समाप्त किया। स्तूप, चैत्य तथा विहारों को नष्ट किया। देश को लूटा। अपनी लूट तथा युद्धवन्दियों के साथ कश्मीर लौट पड़ा। मार्ग में उसने वन्दियों को सिन्धु तट पर मार डाला। अन्ततोगत्वा भारत से हूण लोग थानेश्वर के हर्षवंशीय राजाओं द्वारा निकाल बाहर किये गये। हूण बौद्धों के विरोधी थे। वे शिव के उपासक थे। उन्होंने शिव मन्दिर निर्माण कराया था। वे शैव मत के समर्थक थे।

मिहिरकुल तोरमाण का पुत्र था। तोरमाण की मुद्राओं से पता चलता है कि उसने मध्य प्रदेश से इरन सागर तक अधिकार कर लिया था। उससे यह भी पता चलता है कि वह उत्तर प्रदेश, पंजाब और कश्मीर तक पहुँच गया था। तोरमाण ने जैन धर्म जैन श्रुति के अनुसार स्वीकार कर लिया था। पव्वैया में रहने लगा था। यह स्थान चन्द्रभागा अर्थात् चनाव नदी के तट पर पंजाब में है। तोरमाण का उत्तराधिकारी मिहिरकुल सन् ५१५ ई० में राज्यसिंहासन पर बैठा।

यशोवर्मा तथा बालादित्य से हार कर वह कश्मीर राजा के आश्रय में आया। राजा ने उसे कश्मीर में एक जागीर दी। किन्तु वह कश्मीर के राजा को हटा कर स्वयं राजा बन गया। उसने कन्धार पर आक्रमण कर विजय किया। अनेक लोगों को सिन्धु में डुबाकर मार डाला।

गाथा है। मिहिरकुल ने नरसिंहगुप्त बालादित्य (सन् ४८५-५३० ई०) को पराजित करने का निश्चय किया। परन्तु अपने साथियों के साथ बन्दी बना लिया गया। बालादित्य उसका वध करना चाहता था। परन्तु उसकी माँ ने उसे मुक्त कर देने के लिए कहा। बालादित्य ने एक राजकन्या से उसका विवाह कर दिया।

कश्मीरी इतिहासकारों तथा भारतीय इतिहासकारों के बात में मेल नहीं खाता। मन्दसोर के शिलालेख से पता चलता है। शैव यशोधर्मन के सम्मुख मिहिरकुल का मस्तक झुक गया था।

कोसमस ने इंडिको प्लुस्तस में मिहिरकुल (कोसमस : इन्डिको प्लुस्तस) को गोला नाम से सम्बोधित किया है। चीनी पर्यटक सुंगयुन ने इसे गान्धार का शासक 'येथा' कहा है। मिहिरकुल की राज्य सभा में सन् ५२० ई० में अपना जाना वर्णन करता है।

ह्य नत्सांग ने मिहिरकुल को मोह-हिल लो-चुलो लिखा है। उसे महान् साहसी लिखा है। कोई भी ऐसा पड़ोसी राजा नहीं था जो उसका आदेश नहीं मानता था। उसने मिहिरकुल को बुद्धों के एक बड़े भारी पीड़क के रूप में प्रस्तुत किया है। गाथा है कि मिहिरकुल ने बौद्धों से एक उपदेशक माँगा। भिक्षुगण उसके भय किंवा स्वल्प ज्ञानी होने के कारण कुछ निश्चय न कर सके। अन्त में उन्होंने राजा के राजभवन के एक भृत्य बौद्ध को धर्मज्ञानी के रूप में चुना। राजा ने अपना अपमान समझा। क्रुद्ध होकर उसने बौद्ध संघ के नाश का आदेश दिया। इससे प्रकट होता है। उस समय बौद्ध संघ निष्क्रिय, प्राणहीन एवं अज्ञ हो गया था।

राजतरंगिणी का वर्णन तोरमान तथा मिहिरकुल के भारतीय ऐतिहासिक वर्णन से मेल नहीं खाता। राजतरंगिणी के अनुसार तोरमाण तथा मिहिरकुल के समयों में अन्तर पड़ता है।

चीनी राजदूत सुंगयुन ने सन् ५२० ई० में गान्धार की सीमा के शिविर में राजा मिहिरकुल से भेंट की थी। उसने उस समय के इतिहास पर प्रकाश डाला है। वह अपने समय से दो पीढ़ी पूर्व का इतिहास देकर तत्कालीन समय का वर्णन करता है। वह मिहिरकुल से उसके राज्य के प्रारम्भिक काल में सम्भवतः मिला था। वह लिखता है—उत्तर भारत में श्वेत हूण रहते

है। उनमें एक नाम गोला (मिहिरकुल) है। यह युद्ध के समय २ हजार हाथी तथा विशाल अश्वारोही सेना के साथ चलता है। वह भारत का राजा है। वह लोगों को नष्ट करता है। लोगों को सम्पत्ति भेंट करने के लिए बाध्य करता है। फिसन नदी (सिन्धु) हूणों के देश को भारत से अलग करती है। यह उल्लेख सन ५२५-५३५ ई० का है। इससे दो बात सिद्ध होती है। तोरमाण भानुगुप्त से पराजित हो गया था। हूणों का राज्य सिन्धु नदी के पश्चिमी क्षेत्र तक सीमित रह गया था।

तोरमान के पश्चात् मिहिरकुल ने राज्य विस्तार का विचार किया। उसने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। सन् ५३० ई० के शिलालेख से प्रकट होता है यह उसके राज्य का १५वां वर्ष था। उस समय उसका राज्य ग्वालियर तक विस्तृत था।

मिहिरकुल के यशोधर्मन तथा नरसिंह गुप्त के कारण उत्तरी भारत का त्याग करना पड़ा। उसने सन् ५४४-५५० ई० के बीच सिन्धु नदी के अधोभाग स्थित राज्य प्राप्त करने का पुनः प्रयास किया। जिसे खो चुका था।

यशोधर्मन महाप्रतापी राजा था। उसके चरणों पर अपमानित राजा मिहिरकुल का मस्तक झुका था। मिहिरकुल शिव के अतिरिक्त और किसी के सम्मुख मस्तक झुकाने में सर्वथा असमर्थ था। जिसकी भुजाएं तुषार पर्वत का आलिंगन करती थीं। उसे अपने राज्य के दुर्दम्य होने का दम्भ उत्पन्न हो गया था।

यहाँ तुषार पर्वत से अर्थ हूणों का उस समय हिमालय के पर्वतीय खण्ड में रहना सिद्ध करता है। सुंग-युन ने स्पष्ट कहा है कि हूण राज का कश्मीर के राजा से संघर्ष हुआ था। तुषारपात कश्मीर के अतिरिक्त पश्चिम दिशा में और कहीं नहीं होता अतएव कश्मीर में हूणों का रहना लक्ष्य करता है। मिहिरकुल जब भारत के भीतरी भागों में घुसने का प्रयास कर रहा था। तो मालवा के राजा यशोधर्मन ने उसका सामना किया था। यशोधर्मन के पश्चात् मिहिरकुल का पुनः शक्तिशाली हो जाना मालूम होता है।

मिहिरकुल अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था। पर्यटक ह्वेनसांग के अनुसार उसने स्यालकोट तथा समीपवर्ती भूभागों पर अधिकार स्थापित कर लिया था। किसी समय बौद्ध भिक्षुक से रुष्ट हो गया था। उसने अपने अधिकारियों को आज्ञा दी। हिन्दुस्तान के बौद्धों का नाश कर दिया जाय। बुद्ध अनुशासन समाप्त कर दिया जाय। बुद्ध नाम से सम्बन्धित कोई चीज शेष न रह जाय।

इसने कश्मीर पर अधिकार करने के पश्चात् वहाँ बौद्ध विहारों तथा स्तूपों को नष्ट करा दिया। सम्पत्तियाँ जप्त कर ली।

हूण बौद्ध नहीं थे। वे पिशाचों की पूजा करते थे। हूण राज के साथ किपिन अर्थात् कश्मीर का सीमावर्ती विवाद हुआ था। कश्मीर तथा हूण राज में ३ वर्ष तक युद्ध चलता रहा।

स्कन्दरिया निवासी एक यूनानी ने हूणों के समय के गुप्तवंशीय राजा का नाम नरसिंह बालादित्य दिया है। वह यशोधर्मन तथा हूणों के आक्रमणों से त्रस्त हो गया था। गुप्त साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती देखकर हूणों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। वह मिहिरकुल को भेंट भी देने लगा।

बालादित्य के साथ हुए युद्ध का वर्णन ह्वेनसांग करता है—बालादित्य भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखता था। मिहिरकुल के अत्याचार की बात सुनी तो उसने भेंट भेजना बन्द कर दिया। मिहिरकुल ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। बालादित्य ने एक द्वीप पर शरण ली। सूचना प्राप्त होने पर नाव द्वारा मिहिरकुल ने द्वीप पर आक्रमण किया। द्वीप पर उसको

सेना उतरी। उसने अपनी सेना का मुख्य भाग अपने कनिष्ठ भ्राता के नेतृत्व में पीछे छोड़ दिया। वह एक संकीर्ण दर्रा से गुजर रहा था। बालादित्य की सेना ने उस पर आक्रमण किया। मिहिरकुल बन्दी बना लिया गया। बालादित्य उसका वध करना चाहता था। परन्तु उसकी माता ने उसे रोका। उसे मुक्त कर दिया। छूटने पर मिहिरकुल ने सुना कि उसका भाई लौट गया है। स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया है। उसने कश्मीर के राजा के यहाँ शरण ली।

कश्मीर में मिहिरकुल ने एक विद्रोह आयोजित किया। कश्मीर के राजा को हटाकर स्वयं राजा बन बैठा। उसने गान्धार के राजा को भी मार कर, उसके वंशजों को समाप्त किया। वहाँ का भी राजा बन गया। स्तूपों तथा संघारामों को खूब लूटा। देश को भी लूटा। लौटने के एक वर्ष पश्चात् मर गया। सन् ५६३-५६७ ई० में मध्य भारत में हूणों का लोप हो गया। तुर्क तथा ईरानियों ने भी आमू दरया की उपत्यका के निवासी हूणों का संहार कर हूण शक्ति नष्ट कर दी।

मिहिरकुल ने साकल अर्थात् स्यालकोट तथा उसके समीपवर्ती भूखण्डों पर अपना अधिकार कर लिया था।

मिहिरकुल की मुद्रा पर-'जयतु वृष' 'जयतु वृष ध्वज' टंकित है। उसकी मुद्राओं पर चन्द्रकला, वृषभ, त्रिशूल, सर्प का चक्र तथा शैव चिन्ह टंकित है। 'मिहिर' का अर्थ सूर्य होता है। यह संस्कृत शब्द है। ईरानी अवेस्ता उल्लिखित मिहिर शब्द मिथ्र अर्थात् 'मित्र' है। ईरान तथा मन्दसोर के अभिलेख मिहिरकुल के इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं।

प्रश्न उपस्थित होता है कि मिहिरकुल का क्या कोई शिलालेख आदि भी प्राप्य है। जिसके कारण कल्हण की बात की पुष्टि हो। यह सिद्ध माना जाय कि कश्मीर में मिहिरकुल का शासन था। हूण नरेश मिहिरकुल का ग्वालियर का शिलालेख तिथि शासन-काल १३, इस विषय पर प्रकाश डालता है।

नाना धातु विचित्रे 'गोपाह्व्य नाम्नि भूधरे रम्ये'
कारितवान्शैलमयं भानोः प्रासादवरमुख्यम् ॥ ९
पुण्याभिवृद्धि हेतोर्म्मातापित्रोस्तथात्मनश्चैव।
वमता च गिरिवरे ( ) स्मि (न) राज्ञः ॥१०

'गोपाह्व्य नाम भूधरे' यहाँ गोपा का अर्थ मैं गोपाद्रि गिरि अर्थात् गोप पर्वत लगाता हूँ। गोपाद्रि वर्तमान शंकराचार्य पर्वत है। शंकराचार्य पर्वत के मूल में डललेक के तट पर गुपकर जिसका प्राचीन नाम गोपा अग्रहार था, स्थित है। वन, शैल तथा पुण्य की वृद्धि के लिए वह इस शिखर में निवास करता है। यह स्थान पुराधिष्ठान है। पुराधिष्ठान जैसा मैं लिख चुका हूँ गोपाद्रि अर्थात् शंकराचार्य पर्वत के वाम पार्श्व में है। मिहिरकुल के समय में कश्मीर की राजधानी था। अतएव गिरिवर पर बसाने की ओर संकेत शिलालेख में किया गया है।

मिहिरकुल बौद्ध धर्म विरोधी हो गया था। उसके शिलालेख से प्रकट होता है कि वह द्विजगणों के प्रति आस्था रखता था। यथा—

(यतो) (नि) र्म्मले भाति ॥ ६
द्विजगण मुख्यैरभि संस्तुते ■ पुण्याह नाद घोषण।
तिथि नक्षत्र-मुहूर्ते संप्राप्ति सप्रशस्त (दिने) ७
मातृ तुल्यस्य तु पौत्रः पुत्रश्च मातृदासस्य।
नाम्ना च मातृचेटः पर्व्व—
(त दुर्गे (तु वास्तव्यः) ॥८॥

इसी शिलालेख से तोरमाण और मिहिरकुल का सम्बन्ध सिद्ध होता है कि मिहिरकुल ऐतिहासिक प्राणी था। तोरमाण का पुत्र था। कल्हण का वर्णन वास्तव में कश्मीर में किसी प्रचलित इतिहास के आधार पर दिया गया है। कल्हण मिहिरकुल को वसुकुल का पुत्र बताता है। वह मिहिरकुल की वंशावली ५ पीढ़ियों तक की देता है। कल्हण मिहिरकुल के पुत्र बक का भी उल्लेख करता है।

जो उसके पश्चात् कश्मीर का राजा हुआ था। बक के पश्चात् सीधी वंश परम्परा का लोप होता है। उसी के एक वंश का क्षितिनन्द राजा होना कल्हण लिखता है। एक ओर कल्हण स्पष्ट वर्णन करता है तथा दूसरी तरफ तोरमाण तथा मिहिरकुल के शिलालेखों में कश्मीर का उल्लेख नहीं मिलता।

'गोपाह्वय' शब्द से उसका सम्बन्ध खोच तानकर जोड़ा जाता है। अशोक के समान मिहिरकुल के कश्मीर सम्बन्ध पर सन्देह किया जा सकता है। अशोक के सम्बन्ध में यही बात राजतरंगिणी में पाई जाती है जिसमें उसके दादा का नाम शकुनी दिया गया है। अशोक की वंशावली दी गयी है। उसमें गोधर, उसके पश्चात् उसका पुत्र सुवर्ण, उसके पश्चात् उसका पुत्र जनक तथा उसके पश्चात् शचीनर और उसके पश्चात् राजा शकुनी का प्रपौत्र अशोक राजा हुआ। जिस प्रकार कल्हण की दी गयी अशोक की वंशावली भारतीय इतिहास से मेल नहीं खाती उसी प्रकार मिहिरकुल की दी गयी कल्हण की वंशावली भारतीय इतिहास से मेल नहीं खाती।

ग्वालियर का शिलालेख इस विषय में स्पष्ट है :

श्री तोर (माण इ) ति यः प्रथितो (भू चक) यः प्रभूत-गुणः।
सत्य प्रदान शौर्यार्येन मही न्याय तः शास्ता ॥ ३
तस्योदित कुल कीर्तेः पुत्रो ( ) तुल विक्रमः पतिः पृथ्व्याः।
मिहिर कुले तिख्यातो ( ) भङ्गो यः पशुपतिम ॥ ४

यह मिहिरकुल या तो भारतीय राजा मिहिरकुल था अथवा वह कश्मीर का भिन्न राजा था। हसन ने रत्नाकर पुराण का उल्लेख बहुत किया है किन्तु उसने वही वंशावली दी है जो कल्हण की है। नीलमत पुराण हूण राजाओं, हूण जाति, तथा मिहिरकुल आदि किसी का उल्लेख नाममात्र के लिए नहीं करता। चीनी लेखकों ने मिहिरकुल के पिता का नाम नहीं दिया है। भारतीय इतिहास लेखकों ने कल्हण तथा चीन पर्यटकों द्वारा कश्मीर राजा मिहिरकुल को एक में मिलाने का प्रयास किया है। इन नामों की समता विशेष रूप से आधार मानी गयी है। इस विषय पर अभी और अनुसंधान तथा गवेषणा की आवश्यकता है।

ग्वालियर का शिलालेख मिहिरकुल को वसुकुल का पुत्र बताता है। यह एक विचित्र पहेली है। ग्वालियर के शिलालेख तथा कल्हण के काल में ६०० वर्षों का अन्तर है। अतएव ग्वालियर का शिलालेख मिथ्या नहीं हो सकता। सम्भव है कि मिहिरकुल को कश्मीर राज्य की परम्परा में जोड़ने का प्रयास किया गया है। उसे ५ पीढ़ी से 'कुल' पदीयराजाओं के साथ कर दिया गया हो। तोरमाण और मिहिरकुल नाम में साम्य नहीं है परन्तु वसुकुल तथा मिहिरकुल के नामों में साम्य है और वे एक-वंशीय मालूम होते हैं।

यशोधर्मन के मन्दसोर प्रशस्ति में उल्लेख मिलता है :

आ लौहित्योपकण्ठा त्तलवन गह(नो)
पत्यकादा महेन्द्रादा
गंगाश्लिष्टसानोस्तुहिनशिखरिणं
पश्चिमादापयोधे: ।
सामन्तैर्यस्य बाहु द्रविण-हृत-म (दैः)
पादयोराननमद्भि
श्चूडा-रत्नां शु-राजि व्यतिकर शबला
भूमि भागा क्रियन्ते ॥५॥
स्थाणो रनन्यत्रेण ःणति कृपणतां
प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरि
र्दुर्ग-शब्दाभिमान (म्)।
नीचैस्तानापि यस्य प्रणति भुजबला-
वर्ज्जन क्लिष्ट मूर्द्धना
(चू) डा पुष्पोपहारैर्मिहिरकुल नृपे
णार्च्चिता (.) पादयुग्मं ॥६॥

दक्षिणां सान्तकामाशां स्पर्धया जेतुमुद्यता ।
यन्निपादुत्तरहरिद्वभारान्यमिवान्तकम् ॥ २९० ॥

२९०. उत्तर[१] दिशा ने, दक्षिण दिशा[२] पर विजय प्राप्त करने के लिए दक्षिण के देवता काल की स्पर्धा में मिहिरकुल को यमराज तुल्य उपस्थित किया।

सान्निध्यं यस्य सैन्यान्तर्हन्यमानाशनोत्सुकान् ।
अज्ञानन्गृध्रकाकादीन्दृष्ट्वाऽग्रे धावतो जनाः ॥ २९१ ॥

२९१. राजा के समीप आने की सूचना लोग उसकी सेना द्वारा मारे जाने वालों के मांस उत्सुक गृध्र, काकादि पक्षियों को उसके आगमन के पूर्व मँडराते हुए देखकर पा जाते थे।

दिवारात्र हतप्राणिसहस्रपरिवारितः ।
योऽभूद् भूपालवेतालो विलासभवनेष्वपि ॥ २९२ ॥

२९२. रात दिन सहस्रों हत प्राणियों से परावृत वह भूपाल अपने विलासभवन में भी वेताल[१] था।

बालेषु करुणा स्त्रीषु घृणा वृद्धेषु गौरवम् ।
न बभूव नृशंसस्य यस्य घोराकृतेर्घ्नतः ॥ २९३ ॥

२९३. घोर आकृति, नृशंस और मानव द्रोही इस राजा में बालकों के प्रति करुणा, स्त्रियों के प्रति घृणा तथा वृद्धों के प्रति गौरव भाव नहीं था।

---

(१) उत्तर दिशा : चारों दिशाओं के चार दिक्पाल किंवा देवता हैं। इन्द्र पूर्व दिशा, वरुण पश्चिम दिशा, कुबेर उत्तर दिशा तथा यम दक्षिण दिशा के देवता हैं। कुबेर धन के स्वामी हैं। उनके कारण लक्ष्मी प्राप्त होती है। वे पालक हैं। सम्पत्ति प्रदायक हैं। नाशक नहीं हैं। विष्णु भी रक्षक हैं। विष्णु मन्दिर का मुख इस लिये उत्तर तथा पूर्व दिशा रखा जाता है। उत्तर जिस प्रकार दक्षिण दिशा के ठीक विरोधी दिशा में है। उसी प्रकार दोनों दिशाओं के देवता तथा कर्म भी परस्पर विरोधी हैं। कल्हण इसी ओर संकेत करता है। उत्तर दिशा ने दक्षिण दिशा पर विजय प्राप्ति निमित्त दक्षिण दिशा के संहारक यम तुल्य मिहिरकुल स्वरूप यमराज उत्पन्न किया था।

(२) दक्षिण दिशा : मृत्यु की दिशा है। उसका देवता यम हैं। शिव संहार के देवता हैं। अतएव शिव मन्दिर का द्वार दक्षिण तथा पश्चिम होता है। पश्चिम में सन्ध्या जन्म लेती है। व जीवन सन्ध्या की दिशा है। वहाँ अन्धकार उत्पन्न होता है। पूर्व दिशा उदय की दिशा है। वहाँ से सूर्य ज्योति अन्धकार को तिरोहित करती उठती है। और पश्चिम में जाकर लुप्त हो जाती है। उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर मुख कर उत्तम तथा पवित्र कार्य किये जाते हैं। मृत्यु के पश्चात् मनुष्यों का पद दक्षिण दिशा की ओर कर दिया जाता है। मुसलमान भी अपने शव का पद दक्षिण की ओर करके गाड़ते हैं।

२९२ (१) वेताल : पिशाचों का एक समूह वेताल कहा जाता है। रुद्र गणों में वेताल सम्मिलित हैं। रणभूमि में उपस्थित रहते हैं। वहाँ के मानव रक्त एवं मांस भक्षण करते हैं। (भा०२:१०:३९) इनको देवता मानकर भी पूजा की जाती है।। इन्हें सर्वत्र शिव का उपासक माना गया है। (मत्स्य

तथा मोरी चन्दन से लगवाते हैं। अनेक भक्त उनका गुदना गुदवा लेते हैं।

पैर का चिन्ह वस्त्र पर छपवाने का कोई तुक नहीं मालूम होता। वह मनुष्य पादांकित वस्तु अपवित्र मानी जायगी। यह सम्भव नहीं था कि तत्कालीन हिन्दू किंवा बौद्ध जनता पादांकित वस्त्र अपनी महिलाओं से हृदय पर धारण करवाती।

मैं समझता हूँ। सिंहल भगवान् के पद चिन्ह के कारण तीर्थ था। उसे देखने तथा पूजा करने के लिए हिन्दू तथा बौद्ध दोनों जाते थे। भगवान् का पद पवित्र था। अतएव उसे वस्त्र पर स्वर्ण सूत्र अर्थात् जरी से अंकित कर दिया जाता था। उसी प्रकार शिव विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म, त्रिशूल वस्त्रों, उत्तरीय आदि पर अंकित कर दिये जाते हैं। सिंहल का यही पादांकित वस्त्र कश्मीर में आया रहा होगा।

किन्तु कल्हण यहाँ 'राजा' शब्द पादांकित के लिए प्रयोग करता है। उसका स्पष्ट अर्थ राजा का पद है। यहाँ पर दो बातें सम्भव हो सकती हैं। मिहिरकुल बौद्ध धर्म विरोधी था। वह शिव भक्त था। उसने यदि जाना होगा कि उसकी हृदयेश्वरी हृदय पर बुद्ध पादांकित वस्त्र पति के शिव भक्त होते हुए भी धारण करती है, तो वह क्रोधित हो उठा होगा। वह सिंहल राज के इस धर्म प्रचार को बुरा मानकर उसे दण्ड देने के .. उग्र स्वभावानुकूल अभियान किया होगा। ..राज के पादांकित वस्त्र विक्रय करने का .. समझ में नहीं आता। उसने भगवान् का वस्त्र सिंहल के गौरव स्वरूप बेचने का ..।

.. ने पादांकित वस्त्र के स्थान .. वस्त्र लाया। कल्हण ने ..। सूर्य की उपासना आर्य ..। सूर्य की उपासना का ..। यमुपदेव वस्त्र भी सिंहल में तैय्यार होता था। हिन्दू धर्म का प्रतीक सूर्य तथा बुद्ध का प्रतीक चरण दोनों से अंकित वस्त्र बनते थे।

गया में चरण पादुका पर पूजा होती है। दिल्ली में कुतुब मीनार स्थान का नाम विष्णु पद पर्वत था। मन्दिर विष्णु का था। हिन्दुओं में पादुका पूजा एवं चरण पूजा का विशेष महत्व है। प्रत्येक मन्दिर में चरणपादुका पत्थर पर बनी होती है। उस पर पुष्प, दक्षिणादि चढाया जाता है। बौद्धों में भी हिन्दुओं की देखादेखी चरण पूजा आरम्भ हो गयी थी। बौद्ध मन्दिर में भी चरण पादुका रखी जाने लगी।

राजा मिहिरकुल ने बौद्धों के इस प्रचार प्रकार को, हेमपादांकित वस्त्र के स्थान पर अपने अभियान के फलस्वरूप यमुपदेव हिन्दुओं के प्रतीक चिन्ह को मान्यता दिया। सिंहल राजा पादांकित वस्त्र की यह कल्पना सर्वथा ठीक नहीं उतरती। वे पद के तीर्थ तथा पद की पवित्रता के महत्व को भूल गये होंगे।

कल्हण यहाँ कंचुकी के मुख से कहलाता है कि सिंहल राज के पद का अंकित वस्त्र था। कंचुकी का अन्तःपुर में स्थान एक पार्षद का था। वह वृद्ध रूप में सर्वदा एवं सर्वत्र चित्रित किया है। वह नारद का भी कार्य करता चित्रित किया गया। राजा के क्रोध को देखकर परिहास किंवा राजा की चाटुकारिता के लिये 'पद' देख कर दो राजाओं में लड़ाई हो जाय, कटुता बढे इस प्रयोजन से सिंहलराज का नाम ले लिया होगा। सिंहल का वह वस्त्र था। यह सब जानते थे। सब प्रयोग करते थे। किसी ने पद की ओर ध्यान भी नहीं दिया होगा। यदि कभी किसी ने जिज्ञासा की भी होगी तो सिंहल के व्यापारी भगवान् का पद है कह दिये होंगे।

कंचुकी को तुरन्त उत्तर देना था। परिहास एवं पिशुनता के कारण सिंहल के राजा के वस्त्र

स जातु देवीं संवीतसिंहलांशुककञ्चुकाम् ।
हैमपादाङ्कितकुचां दृष्ट्वा जज्वाल मन्युना ॥ २९४ ॥

२९४. किसी समय रानी को हैमपादांकित[1] सिंहल देशीय कंचुकी धारण किये देखकर, जिसका अंकित पद रानी के कुच पर पड़ता था, वह क्रोध से प्रज्वलित हो उठा।

२५९:२४) पार्वती के शाप के कारण मृत्यु लोक में इसने मनुष्य योनि प्राप्त की थी। वेताल की भक्ति देखकर शिव एवं पार्वती भी महेश एवं शारदा नाम से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। (शिव० शत १४)।

कालिका पुराण में वेताल के भाई का नाम भैरव दिया गया है। वे राजा चन्द्रशेखर तथा रानी तारा के पुत्र थे। वे पूर्व जन्म में भृङ्गी एवं महाकाल नामक शिवदूत थे। भृङ्गी वेताल हुआ था। महाकाल ने भैरव का रूप लिया था। कामाख्या देवी की उपासना द्वारा उन्हें शिव गणों का नेतृत्व प्राप्त हुआ था। इनके वंशजों को 'वेताल वंश' कहते हैं। वैताल जननी स्कन्द की एक अनुचर मातृका थी। (म० शा० ४५:१३) प्रेत का एकी प्रकार भी वेताल कहा जाता है। शव पर अधिकार ?कर लेता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९४ में 'सिंहलां' का 'सिङ्हल द्वीप' तथा 'हैम' का पाठभेद 'हेम' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९४ (१) हैमपादांकित : कंचुकी महिलायें पहनती हैं। पुराने समय में चोली पहनती थी। स्तन के भीतर से रुमाल और आजकल पेटी कोट से कसती हैं। उसपर कंचुकी अथवा चोली या ?पर पहनती हैं। कुच स्थान पर किसी पुष्प गोलाकार आकृति किंवा कुछ न कुछ बेल बूटा बना देती हैं। इसी प्रकार स्वर्ण पाद अंकित चिन्ह कुच स्थल पर बन जाता था।

आज कल भी बेल-बूटों में उँगलियाँ, हाथ, पंजा, पुष्पाकृत, मनुष्याकृति, पशु पक्षी की आकृति, बनायी जाती है। कुछ इसी प्रकार का स्वर्ण जरी का ब्लाउज कंचुकी अथवा चोली का कपड़ा उन दिनों श्री लंका किंवा सिंहल में बनता रहा होगा।

इस वर्णन से एक बात का और पता लगता है। सिंहल से कश्मीर का व्यापार होता था। सिंहल के व्यापारी कश्मीर तथा कश्मीर के व्यापारी सिंहल की वस्तुओं का व्यापार करते थे। अन्यथा श्रीनगर से श्री लंका अथवा सिंहल दो हजार मिल दूर पड़ता है। वहाँ का वस्त्र कैसे कश्मीर में उपलब्ध हो सकता है। निस्सन्देह मिहिरकुल तथा प्राचीन काल में कश्मीर का व्यापार समृद्ध था। कश्मीर में भारत के कोने कोने से व्यापारी आते थे और कश्मीर से भी चारों ओर जाते रहे होंगे।

पादांकित शब्द एक अनुमान की ओर अनायास ले जाता है। मिहिरकुल के समय में सिंहल के सभी लोग बुद्धमतावलम्बी हो चुके थे। आज भी वे बौद्ध हैं। सिंहल अर्थात् श्री लंका में आदम पीक अर्थात् शिखर है। उस पर चरण चिन्ह है : बौद्ध उसे बुद्ध, हिन्दू विष्णु तथा ईसाई महात्मा आदम का चरण चिन्ह मानते हैं। बाइबिल गाथा के अनुसार वे मानवों के आदि पुरुष थे। उन्हीं से जगत् के मानवों की सन्तति हुई है। वे चाहे आज विभिन्न वर्ण, रूप, जाति एवं भाषाभाषी क्यों न हों।

वैष्णव वैरागी लोग रामनामी ओढ़ते हैं। वह कई प्रकार की होती है। किसी पर राम, किसी पर शिव का नाम छपा रहता है। इसी प्रकार भगवान् विष्णु का यह चिन्ह, शंख, गदा, चक्र तथा पद्म भी छपे रहते हैं। ललाट बाहु हृदय पर विष्णु पद छाप चन्दन, कस्तूरी, रोरी

तथा गोपी चन्दन से लगवाते हैं। अनेक भक्त उनका गुदना गुदवा लेते हैं।

पैर का चिन्ह वस्त्र पर छपवाने का कोई तुक नहीं मालूम होता। वह मनुष्य पादांकित वस्तु अपवित्र मानी जायगी। यह सम्भव नहीं था कि तत्कालीन हिन्दू किंवा बौद्ध जनता पादांकित वस्त्र अपनी महिलाओं से हृदय पर धारण करवाती।

मैं समझता हूँ। सिंहल भगवान् के पद चिन्ह के कारण तीर्थ था। उसे देखने तथा पूजा करने के लिए हिन्दू तथा बौद्ध दोनों जाते थे। भगवान् का पद पवित्र था। अतएव उसे वस्त्र पर स्वर्ण सूत्र अर्थात् जरी से अंकित कर दिया जाता था। उसी प्रकार शिव विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म, त्रिशूल वस्त्रों, उत्तरीय आदि पर अंकित कर दिये जाते हैं। सिंहल का यही पादांकित वस्त्र कश्मीर में आया रहा होगा।

किन्तु कल्हण यहाँ 'राजा' शब्द पादांकित के लिए प्रयोग करता है। उसका स्पष्ट अर्थ .राजा का पद है। यहाँ पर दो बातें सम्भव हो सकती हैं। मिहिरकुल बौद्ध धर्म विरोधी था। वह शिव भक्त था। उसने यदि जाना होगा कि उसकी हृदयेश्वरी हृदय पर बुद्ध पादांकित वस्त्र पति के शिव भक्त होते हुए भी धारण करती है, तो वह क्रोधित हो उठा होगा। वह सिंहल राज के इस धर्म प्रचार को बुरा मानकर उसे दण्ड देने के अपने उग्र स्वभावानुकूल अभियान किया होगा। सिंहलराज के पादांकित वस्त्र विक्रय करने का कुछ अर्थ समझ में नहीं आता। उसने भगवान् का पादांकित वस्त्र सिंहल के गौरव स्वरूप बेचने का प्रयास किया।

मिहिरकुल ने पादांकित वस्त्र के स्थान पर यमुपदेव वस्त्र लाया। कल्हण ने उल्लेख किया है। सूर्य की उपासना आर्य धर्मावलम्बी करते हैं। सूर्य की उपासना का स्थान बौद्ध धर्म में नहीं है। यमुपदेव वस्त्र जो सिंहल में तैय्यार होता था। हिन्दू धर्म का प्रतीक सूर्य तथा बुद्ध का प्रतीक चरण दोनों से अंकित वस्त्र बनते थे।

गया में चरण पादुका पर पूजा होती है। दिल्ली में कुतुब मीनार स्थान का नाम विष्णु पद पर्वत था। मन्दिर विष्णु का था। हिन्दुओं में पादुका पूजा एवं चरण पूजा का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक मन्दिर में चरणपादुका पत्थर पर बनी होती हैं। उस पर पुष्प, दक्षिणादि चढ़ाया जाता है। बौद्धों में भी हिन्दुओं की देखादेखी चरण पूजा आरम्भ हो गयी थी। बौद्ध मन्दिर में भी चरण पादुका रखी जाने लगी।

राजा मिहिरकुल ने बौद्धों के इस प्रचार प्रकार को, हैमपादांकित वस्त्र के स्थान पर अपने अभियान के फलस्वरूप यमुपदेव हिन्दुओं के प्रतीक चिन्ह को मान्यता दिया। सिंहल राजा पादांकित वस्त्र की यह कल्पना सर्वथा ठीक नहीं उतरती। वे पद के तीर्थ तथा पद की पवित्रता के महत्त्व को भूल गये होंगे।

कल्हण यहाँ कंचुकी के मुख से कहलाता है कि सिंहल राज के पद का अंकित वस्त्र था। कंचुकी का अन्तःपुर में स्थान एक पार्षद का था। वह वृद्ध रूप में सर्वदा एवं सर्वत्र चित्रित किया है। वह नारद का भी कार्य करता चित्रित किया गया। राजा के क्रोध को देखकर परिहास किंवा राजा की चाटुकारिता के लिये 'पद' देख कर दो राजाओं में लड़ाई हो जाय, कटुता बढ़े इस प्रयोजन से सिंहलराज का नाम ले लिया होगा। सिंहल का वह वस्त्र था। यह सब जानते थे। सब प्रयोग करते थे। किसी ने पद की ओर ध्यान भी नहीं दिया होगा। यदि कभी किसी ने जिज्ञासा की ना होगी तो सिंहल के व्यापारी भगवान् का पद है कह दिये होंगे।

कंचुकी को तुरन्त उत्तर देना था। परिहास एवं भिन्नता के कारण सिंहल के राजा के वस्त्र

में सिंहलराज के अतिरिक्त और किस का पद हो सकता है। इस विचार से अनायास सिंहलराज का हेमांकित पद कह दिया। राजा मिहिरकुल के उग्र स्वभाव को देखकर किसी को प्रतिवाद करने का साहस न हुआ होगा।

सिंहल का प्राचीन नाम श्री लंका तथा अर्वाचीन नाम सिलोन है। अरबों ने इसका नाम 'सैलान' रखा था। अंग्रेजों ने उसी सैलान नाम के आधार पर इसे सीलोन कहना आरम्भ किया और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में यही नाम प्रचलित हो गया।

सिंहल में रावण की ख्याति एक वैद्य तथा विद्वान् के रूप में है। विभीषण की मान्यता देवता तुल्य है। श्रीलंका में अशोक वाटिका आज भी है। उसकी पुरानी राजधानी का नाम 'सीता चक' है। विजय सिंह गुजरात से श्री लंका गये थे। अतएव उनके नाम पर सिंहल नाम पड़ने की एक गाथा है।

प्राचीन समय में भगवान् बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनती थी। उनके श्रीपद ही की पूजा होती थी। यह पद सीधा है। साधारण मनुष्यों का पद किंचित् घुमा हुआ रहता है। पद चिन्ह में महापुरुषों के लक्षण है।

श्री लंका में प्राचीन भित्तिचित्रों में कंचुकी के स्थान पर गोलाकार वृत्त बने दिखाये गये है। यह वृत्ताकार चिन्ह बौद्ध जगत् का तथा धर्म चक्र प्रवर्तन का प्रतीक है। सम्भव है। भगवान् का चरण हृदय देश पर स्थित रहे अतएव हेम पादांकित चिन्ह वक्षस्थल पर कंचुकी में बनाया जाता रहा होगा। हेम शब्द यहाँ महत्त्व रखता है। क्योंकि भगवान् का वर्ण स्वर्ण अर्थात् हेम तुल्य था।

कश्मीर के इतिहास तथा उसके स्थानों पर जिस प्रकार मुसलमानी धार्मिक रंग चढ़ाने का प्रयास किया गया है उसी प्रकार श्रीपाद पर्वत पर भी हिन्दू तथा बौद्ध परम्पराओं पर परदा डाल कर उसे मुसलिम धार्मिक साँचा में ढालने का प्रयास किया गया है।

श्रीशंकराचार्य पर्वत का नाम जिस प्रकार कश्मीर में तख्तए सुलेमान दे दिया गया है। वही प्रक्रिया श्री लंका में श्रीपाद पर्वत के साथ हुई। उसका नाम बाबा आदम की चोटी तथा खोह का नाम 'खोह खिज्र' रख दिया है।

श्रीपाद पर पहुँचने वाले रास्तों का मूल नाम बदल कर एक मार्ग को 'बाबा आदम' तथा दूसरा 'मामा' (हौवा) नाम रख दिया गया है। श्रीपाद तक पहुँचने के लिए श्री लंका के राजाओं ने लोहे की सिकड़ी अथवा जंजीरें लगवा दी थी। यात्री उन्हें पकड़कर श्रीपाद तक पहुँचता है। उसे सिकन्दर का लगवाया प्रसिद्ध किया गया।

प्रसिद्ध ईरानी कवि असरफ ने अपने ग्रन्थ सिकन्दरनामा में लिखा है कि सिकन्दर जब लंका पहुँचा तो जंजीरों को आदम के कदम तक पहुँचने के लिए लगवा दिया था।

इब्नबतूता एक कदम और आगे बढ़ जाता है। वह कहता है द्वार सिकन्दर का निर्माण कराया हुआ है। यहाँ पर लाल गुलाब का फूल हथेली भर का होता है। उस पर 'अल्लाह और 'मुहम्मद' का नाम प्रकृति ने स्वयं लिख दिया है। जंजीर का भी नामकरण कर दिया गया है। दसवीं जंजीर को जंजीरे शहादत की संज्ञा दे दी गयी है। दसवीं जंजीर से खोह खिज्र तक की दूरी दस मील है। उसमें एक स्रोत है। उस स्रोत को हजरत खिज्र से सम्बन्धित कर दिया गया है। जंजीर शहादत पकड़ने पर 'कलम शहादत' पढ़ने की हिदायत की गयी है।

इब्नबतूता ने चरण चिन्ह का परिमाण ग्यारह बालिश्त और सुलेमान सौदागर ने सत्तर हाथ लम्बा बताया है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि मन की भावना के अनुसार वह किसी को बालिश्तों में और किसी को हाथों

में बहुत लम्बा और छोटा दिखाई देता है। यह सब वास्तविक इतिहास पर दूसरा रंग चढ़ाने के लिए किया गया है।

यह तथ्य है कि सिकन्दर कभी लंका में पैर भी नहीं रखा था। वह ईसा पूर्व ३२७ वर्ष में भारत आया और सिन्ध के मार्ग से अपने देश की ओर लौट गया और मार्ग में ही उसका देहावसान मूसा में हो गया। हजरत खिज्र का पैगम्बर मुहम्मद के बहुत बाद का है। पैगम्बर साहब का जन्म ही सन् ५७० ई० में हुआ था।

श्रीपाद पर्वत का अस्तित्व हजरत खिज्र के जन्म से हजारों वर्ष पूर्व था। बौद्ध धर्म अशोक के काल अर्थात् ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पहुँच चुका था। देश बौद्ध हो चुका था।

श्रीपाद श्री लंका का श्रेष्ठ पूजनीय स्थान था। श्रीपाद धर्म चिन्ह था। सिंहल के हेमांकित पाद-चिन्ह वस्त्र का वही अर्थ था कि वह वस्त्र जहां जाता था वह भगवान् बुद्ध के पद चिन्ह के कारण रामनामी वस्त्र के समान पवित्र तथा श्रेष्ठ माना जाता था। पाद चिन्ह का इतना महत्त्व था कि उसे विश्व में चार स्थानों में बौद्धों ने माना है। जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपना पद रखा था। यद्यपि यह भी सत्य है कि भगवान् बुद्ध अपने भौतिक जीवन काल में मध्य देश से कभी बाहर नहीं गये। श्री लंका तो भारत के बाहर था। पाद चिन्ह के विषय में कहा गया है। एक पाद चिन्ह नर्वदा के तट पर था। दूसरा सत्य, बध्य पर्वत की चोटी पर था। तीसरा श्रीलंका में कूट पर था। चौथा यवन देश में था। बुद्ध जगत् निम्नलिखित पद पढ़कर चरण चिन्ह की वन्दना करता है।

यं नम्मदाय नदिया पुलिने च तीरे
यं सच्चबद्धगिरिके सुमनां च लग्गे।
यं तथ्य यौनक पुरे मुनिनो च पादं,
तं पाद लच्छनमहं सिरसा नमामि॥

सुमन कूट पर श्रीपाद है। यवनपुर में चौथे श्रीपाद का होना कहा गया है। मैंने बहुत वृद्ध भिक्षुओं से पूछा। उनका कहना है कि चौथा पाद मक्का में था। काबा जिसे बुतखान कहा गया है वह वास्तव में बुद्ध स्थान था। वहाँ सैकड़ों से ऊपर मूर्तियाँ थी। बुत शब्द बुद्ध का अपभ्रंश है। यह अब प्रमाणित हो चुका है कि बुद्ध शब्द का बुत अपभ्रंश है। काबा में ३००से ऊपर मूर्तियाँ थी। सबकी पूजा होती थी। इस विवाद में न पड़ कर यही कहना अलम् होगा कि मिहिरकुल के समय तक बौद्धधर्म भारत तथा बाहर था। श्रीपाद का हेम पादांकित रूप पूज्य था। क्योंकि उस समय बुद्ध प्रतिमा की पूजा प्रचलित नहीं थी।

सुमनकूट पहुँचने के लिये हेटन पहुँचना चाहिए। हेटन से मसकेलिय जाना पड़ता है। वहाँ से ११ मिल दूर पड़ता है। मसकेलिय से श्रीपाद पर्वत दिखाई पड़ता है। शिखर पर पहुँचने पर चट्टान काटकर सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। जंजीर तथा छड़ पकड़कर श्रीपाद तक पहुँचते हैं।

श्रीपाद के समीप सुमन देव का मन्दिर है। यह स्थान समुद्र की सतह से ७३६० फिट ऊँचाई पर है। भगवान् सुमन देव की प्रार्थना पर तीसरी बार लंका आये थे। सुमन कुट पर उनका आगमन हुआ। यहाँ पर वैशाख पूर्णिमा के दिन अपराह्न काल में अपने वाम पद का चिन्ह अंकित किया था। (सुमन्त कूट वण्णना ७७९) इस पाद की महिमा में समन्त कूट वण्णना में कहा गया है-'ऐसे द्वेष रिपुरहित मनुष्यों के हित-साधक उस धर्मराज ने लंका की लक्ष्मी के रम्य सुमनगिरि पर जिस-जिस चरण चिन्ह को दिया वह चित्त मात्र के प्रसन्न होने से तुम्हे बुद्ध के समान स्वर्गापवर्ग देगा। अतएव हे लोगो! प्रसन्न मन होकर सज्जनों से प्रशंसित उसे नमन करो। उसको पूजा करो।'

उसकी महत्ता का वर्णन उसी ग्रन्थ में और किया गया है —वहाँ सर्वदा वृक्ष एवं लताएँ नत

सिंहलेषु नरेन्द्राङ्घ्रिमुद्राङ्कः क्रियते पटः ।
इति कञ्चुकिना पृष्टेनोक्तो यात्रामशासत ।। २६५ ।।

२६५. जिज्ञासा पर कंचुकी ने बताया 'सिंहल में बने वस्त्र पर राजा का पद चिन्ह अंकित किया जाता है।'— राजा ने अभियान का आदेश दिया।

तत्सेनाकुम्भिदानाम्भोनिम्नगाकृतसंगमः ।
यमुनालिङ्गनप्रीतिं प्रपेदे दक्षिणार्णवः ।। २६६ ।।

२६६. उसकी सेना के गजों के गण्डस्थल से उद्भूत मद धार मिलन से दक्षिण समुद्र ने यमुना[1] मिलन सुख का अनुभव किया।

मस्तक श्रीपाद का नमस्कार करते हैं। उस पर्वत पर जहाँ पदचिन्ह है, मनुष्यसंकुल होने पर भी स्थान हो जाता है। जब एकत्रित मनुष्य पूजा कर निकलते है तो उस पवित्र चरण चिन्ह को मेघ धो डालते है।'

प्रामाणिक रूप से यह मान्यता है कि श्रीपाद ५ फिट लम्बा है। वह स्पष्ट नहीं है। केवल लम्बा गड्ढा मालूम पड़ता है। राजा निःशंक मल्ल (सन् ११९३-१२०७) श्रीपाद को एक बड़े शिला खण्ड से ढकवा दिया था। ढके पत्थर पर नवीन चिन्ह मूल के समान बनवा दिया गया। स्थान छाया हुआ है। समीप ही पुष्पासन है। वहाँ पूजा निमित्त पुष्पांजलि दी जाती है। श्रीपाद इस समय सिमेण्ट की रेलिंग से घेर दिया गया है। यह स्थान समुद्र तट से ६५ मील दूर है। नव मिल दूर से ७३६४ फिट की ऊँची चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। मार्ग घने वन श्री से होकर जाता है। मार्ग में धर्मशालाएँ बनी हैं। छः मिल तक मूल शिखर दिखाई नहीं पड़ता। तीन मिलकी चढ़ाई शेष रह जाने पर श्रीपाद शिखर का दर्शन होता है। तत्पश्चात् सीधी चढ़ाई पड़ती है। पहाड़ काट कर सीढ़ियाँ बनायी गयी है। सीढ़ियों के पश्चात् जंजीरों का सहारा लेना पड़ता है। जंजीरों तक पहुँचने के पूर्व यात्री को खूब समझा दिया जाता है कि वह नीचे की ओर न देखे। नीचे देखने पर भयंकर खाई मालूम पड़ती है। मस्तक घूमने लगता है। किंचित् मात्र पैर फिसलने पर शरीर का पता नहीं चलेगा : सब कुछ चकनाचूर हो जायगा। इसके पश्चात् ४० फिट ऊँची लोहे की सीढ़ी है। उसके पश्चात् श्रीपाद का चबूतरा मिलता है। मैं श्री लंका की यात्रा दो बार कर चुका हूँ। मेरा निश्चित मत है कि कल्हण वर्णित पाद हेमांकित चिन्ह इस श्रीपाद का प्रतीक था जो कंचुकी पर इस प्रकार बनाया जाता था कि वह हृदय स्थल पर भगवान् का पद स्पर्श करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६५ में 'नोक्तो' का 'नोक्ता' तथा 'मशासत.' का 'मधासत.' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६५ (१) कंचुकी : इसका शाब्दिक अर्थ चोली, अंगिया स्त्री लिंग रूप में तथा पुलिंग रूप में अन्तःपुर रक्षक, द्वारपाल, रनिवास में दास दासियों का अध्यक्ष माना गया है। अन्तःपुर के राज्य अधिकारियों में इसका बड़ा महत्त्व रहा है। संस्कृत नाटकों में यह पात्र विशेष रूप से चित्रित किया गया है। राजाओं के गार्हस्थ्य जीवन के स्वरूप को प्रकट करता है।

२६६ (१) यमुना : गंगा-यमुना का प्रायः एक साथ वर्णन मिलता है। गंगा का जल उज्ज्वल तथा यमुना का नीला माना गया है। और है भी। इसका स्पष्ट दर्शन प्रयाग संगम पर मिलता है। जहाँ यमुना तथा गंगा का जल आकर मिलता है। वहाँ

दोनों जलों में भिन्नता प्रकट होती है। संगम के पश्चात् काशी पहुँचने पर गंगा जल उतना उज्ज्वल नहीं रह जाता, जितना हरद्वार तथा प्रयाग में दिखाई देता है। हरद्वार से प्रयाग तक गंगा की धारा में तेजी रहती है। प्रयाग के पश्चात् वेग का लोप हो जाता है। स्थिरता आती है।

हिमालय से गंगा तथा यमुना दोनों नदियाँ निकलती हैं। दोनों का जल सदृश होना चाहिए। परन्तु भिन्नता दिखाई पड़ती है। इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

गंगा में हरद्वार से प्रयाग तक मिलने वाली सब नदियों का स्रोत हिमालय है। सब हिमालय का जल लाकर गंगा में डालती हैं। अतएव गंगा का जल एक ही हिमालय एवं हिम गलने के कारण एक रूप रहता है।

यमुना के साथ ठीक उलटी बात होती है। यमुना में मिलने वाली सब नदियाँ विन्ध्याचल, अरावली आदि से निकलती है। दक्षिण दिशा किंवा दक्षिण पथ से आकर यमुना में मिलती है। वे मैदानी क्षेत्र तथा विन्ध्य के उज्ज्वल वर्ण हीन पत्थरों का टकराया हुआ जल यमुना मे लाती है। यमुना का जल हिमानी, हिम गलन उसके स्रोत के पश्चात् पुनः उसमें नही आता। किन्तु गंगा का जल हिमालय पर्वत के पत्थरों से, जो अपेक्षाकृत विन्ध्य के पत्थरों से अधिक उज्ज्वल है, टकराता बलुई भूमि से बहता आता है। वह अपनी उज्ज्वलता स्थिर रखता है।

यमुना में आनेवाला जल दक्षिण की नदियों का जल है। ये नदियाँ बलुई भूमि से न होकर कुछ काली मिट्टी से बहती आती हैं। वह मिट्टी ससदार होती है। वह उत्तर प्रदेश के गंगा और हिमालय के मध्य भागीय क्षेत्र की मिट्टी की तरह भूरी तथा बलुआ नही है। स्पर्शास्पर्श एवं भौगोलिक स्थिति के कारण जल के रूप में परिवर्तन हो जाता है। जैसे एक ही पिता के दो पुत्र एक ही वर्ण एवं रूप के होते हुए भी यदि एक रूस में तथा दूसरा कांगो अथवा मद्रास में निवास करे तो कुछ समयपश्चात् दोनों के वर्ण में अन्तर पड़ जायगा। एक अधिक शीत के कारण गोरा ही रहेगा। दूसरा अल्पाधिक गरमी के कारण साँवर होता जायगा। यही बात गंगा तथा यमुना के जलों के विषय में कही जा सकती है।

सिंहल (श्रीलंका) तथा भारत अर्थात् रामेश्वर के बीच मनार की खाड़ी है। दोनों के मध्य पतला समुद्र भाग है जो भारत तथा सिंहल को अलग करता है। भगवान् रामचन्द्र ने पम्बन के पास सेतु बाँधा था। रामेश्वर का मन्दिर तथा स्थान पम्बन सेतु पार कर जाना पड़ता है। पम्बन से धनुषकोटि तथा रामेश्वर दो तरफ रेलवे लाइन गयी हैं। धनुषकोटि तथा रामेश्वर एक द्वीप पर है। धनुषकोटि से आज भी जहाज तथा नावें श्री लंका को जाती है।

सन् १९६४–१९६७ ई० भारतीय नौपरिवहन मण्डल के अध्यक्ष होने के कारण मैं यहाँ कई बार आ चुका हूँ। सेतुम् समुद्र एक विशाल योजना है। उसके द्वारा बड़े जहाजों को भारतीय समुद्र में होकर आवागमन के लिये नहर बनाने की योजना है। इस समय जहाज भारत के पश्चिमी तट से पूर्वीय तट पर आने के लिये श्री लंका को परिक्रमा करते हैं। इस योजना के बनने पर वे सीधे भारतीय क्षेत्रीय जल सीमा के अन्दर ही पूर्व से पश्चिम तथा पश्चिमी से पूर्वीय तट पर पहुँच जायेंगे। लगभग ४०० मील की लम्बी यात्रा बच जायगी।

उस समय मैंने यहाँ की भौगोलिक स्थिति आदि का विशेष अध्ययन किया। निस्सन्देह मिहिरकुल धनुषकोटि अंचल पर अपना शिविर लगाया होगा। यहीं से सबसे संकीर्ण समुद्र पार करने का मार्ग है।

समुद्र का जल यदि शीशे के गिलास में रख दिया जाय तो वह उतना नीला नहीं लगेगा। जल की गहराई, समुद्र अथवा नदी में जल का बाहुरी

स सिंहलेन्द्रेण समं संरम्भाद्दपाटयत् ।
चिरेण चरणस्पृष्टप्रियालोकनजां रुषम् ॥ २९७ ॥

२९७. उसने सिंहल नरेश को पदाक्रान्त करने तथा हेम पादांकित प्रिया के कंचुकी द्वारा उद्भूत क्रोधों को शान्त किया।

दूरात्तत्सैन्यमालोक्य लङ्कासौधैर्निशाचराः ।
भूयोऽपि राघवोद्योगमाशङ्क्य प्रचकम्पिरे ॥ २९८ ॥

२९८. जब लंका के सौधों से निशाचरों ने उसकी सेना का दूर से ही अवलोकन किया, तो राघव[1] के आक्रमण की पुनः आशंका हुई।

रूप तथा वर्ण बनाती है। हवाई जहाज में यात्रा करने पर यह बात स्पष्ट दिखायी पड़ती है। तट-वर्ती समुद्र का पानी भूरा तथा गदला रहेगा। तट से जितना ही दूर जाय, उतना ही जल का रंग गाढ़ा नीला हो जायेगा। समुद्र में जहाँ नदियाँ आकर मिलती हैं वहाँ दो तीन मील तक का जल गदला रहता है। गंगा सागर के पास यह बड़ी अच्छी तरह दिखाई देता है। प्रशान्त, अटलाण्टिक महासागर, तथा भूमध्य महासागर का जल अत्यन्त नीला मिलेगा। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी के मध्य पहुँचने पर भी जल की नीलिमा बढ़ जाती है। तटवर्तीय जल होने के कारण समुद्री जल का वर्णन नीलजा यमुना के जल के समीप रंग रूप में पहुँच जाता है।

कल्हण ने बड़ी ही उत्तम उपमा यहाँ दी है। नील समुद्र में नीलजा का जल मिलना प्रिय तथा प्रिय के मिलन तुल्य है। नील जल युक्त समुद्र पुल्लिंग है और नील जल के साथ नीलजा अर्थात् यमुना स्त्रीलिंग है। नर-नारी का मिलन ही प्रेम है। वही काम की चरम सीमा है। निस्सन्देह कल्हण की उपमा की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी मानी जायगी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९७ में 'रुषम्' का पाठभेद 'रुजम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९७ (१) सिंहल आक्रमण : मुजमुल तुल तवारीख में लगभग इसी प्रकार का वर्णन दिया गया है। कश्मीर के एक राजा ने सिंध पर आक्रमण किया था। कश्मीर के राजा का नाम नहीं दिया है। सिन्धराज हाल ने मिहिरकुल को सन्धि करने के लिए बाध्य कर दिया था।

(२) क्रोध : कल्हण यहाँ दोनों क्रोधों की शान्ति का उल्लेख करता है। प्रथम क्रोध हेम-पादांकित कंचुकी देखने के कारण उसमें उत्पन्न हुआ था। दूसरे क्रोध का उदय सिंहल आक्रमण काल में शत्रु को पराजित करने के लिए हुआ था। सिंहल विजय के कारण हेम पादांकित वस्त्र के स्थान पर यमुपदेव वस्त्र प्राप्त किया था। इस प्रकार उसके प्रथम क्रोध की शान्ति हुई। दूसरे क्रोध की शान्ति सिंहलराज को सिंहासन च्युत कर किया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९८ में 'सौधैर्नि' का पाठभेद 'सौधाग्नि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९८ (१) राघव : यहाँ पर राघव शब्द भगवान् श्री रामचन्द्र जी के लिये आया है। श्री लंका पर ऐतिहासिक किंवा गाथा के आधार पर सर्व प्रथम श्री राम की सेना ने सफल आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी।

कल्हण मिहिरकुल के लंका आक्रमण की तुलना भगवान् श्री राम के आक्रमण से करता है। लंका पति रावण से राम की सेना देखकर भयग्रस्त राक्षसों ने संवाद कहा था। अन्धकारमय भविष्य कहा था। राम की सेना से उत्पन्न भय कहा था। यही अवस्था मिहिरकुल की सेना देखकर राक्षसों की हुई थी। वे भयभीत हो गये थे।

(२) सौध से सेना अवलोकन : लंका का जैसा सर्वनाश बन्दरों तथा राम की सेना द्वारा हुआ था। कहीं उसी की पुनरावृत्ति न हो जाय। इसे स्मरण कर लंका वासी आशंकित हो गये थे।

लंका के सौधों अर्थात् प्रासादों से उन्होंने मिहिरकुल की सेना देखी। इसी प्रकार सेना देखने का वर्णन वाल्मीकि ने रामायण में किया है।

'लंका सौध से सेना अवलोकन क्या सम्भव था?' प्रश्न उपस्थित होता है। क्या भारतीय तट पर पड़ी सेना लंका के सौधों से रामायण तथा मिहिरकुल काल में देखी जा सकती थी। मैं इसका यही उत्तर दे सकता हूँ कि यह सम्भव था।

मण्डपम स्टेशन से रेलगाड़ी रामेश्वर द्वीप की ओर बढ़ती है तो बीच में सागर मिलता है। यह बंगाल की खाड़ी तथा मन्नार की खाड़ी के जल को मिलाता है। जल डमरूमध्य है। इस पर लम्बा रेलवे का पुल बना है। रेल गाड़ी बहुत धीरे धीरे चलती है।

समुद्र का जल जिस दिन भाटा के कारण नीचे आ जाता है तो लहरें नहीं उठतीं। जल स्थिर हो जाता है। यही समय है। जब निश्चय किया जा सकता है कि भारतीय भूखण्ड और पम्बन को जोड़ने के लिए कभी सेतु वहाँ बाँधा गया था या नहीं। ज्वार के समय जल बहुत ऊपर उठ जाता है। पम्बन के पुल के नीचे वेग से लहर उठती है।

मैंने यही समय इस स्थान को देखने का निश्चय किया। अपने साथ शिपिंग विभाग के एक इंजीनियर को भी ले लिया।

पहली वस्तु ध्यान आकर्षित करने वाली समुद्र तल में पड़ी विशाल चट्टानें हैं। दोनों भूखण्डों के मध्य विशाल शिलाखण्ड समुद्र तल में पड़े हैं यह केवल वहीं मिलते हैं। समीप पर्वत नहीं है। जहाँ से विशाल शिलाखण्ड लाया जा सके।

यह शिला खण्ड इतने विशाल हैं कि उन्हें मानवी शक्ति द्वारा उठाना सम्भव नहीं है। उन्हें उठाने के लिये क्रेन अथवा कल्हण वर्णित यन्त्र की आवश्यकता पड़ सकती है। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है। नल तथा नील तत्कालीन अभियन्ताओं के निरीक्षण में सेतु बाँधा गया था। विशाल शिलाखण्ड बन्दर लाते थे और समुद्र में छोड़ते थे। यन्त्र का प्रयोग किया गया था।

पम्बन् पुल के नीचे के विशाल शिलाखण्ड और कश्मीर के भूतेश्वर, मार्तण्ड, परिहासपुरादि में लगे विशाल शिलाखण्डों को देखकर अनायास प्रश्न उठता है। उनका लाना कैसे मानवीय शक्ति के सामर्थ्य की बात हो सकती थी?

कल्हण इसका उत्तर देता है। कल्हण ने शिलाः खण्डों को उठाने के लिए 'यन्त्र' शब्द का प्रयोग किया है। यह यन्त्र क्रेन थे। वह स्पष्ट उपमा देते हुए कहता है कि 'यन्त्र' से गिरे शिला तुल्य, अर्थात् यन्त्र शिला को क्रेन की तरह ऊपर उठाता था। वह किसी समय गिरता था तो राज्यच्युत होते राजा के समान उसे रोकना कठिन था। यही बात क्रेन के सम्बन्ध में कही जायगी। क्रेन से गिरते सामान को किसी प्रकार भी रोका नहीं जा सकता। वह गिर कर ही रहेगा।

रामायण ने इसका उत्तर बन्दरों की अलौकिक शक्ति का वर्णन कर दिया है। इससे प्रतीत होता है। प्राचीन काल में कश्मीर से रामेश्वरम् तक 'यन्त्र' अर्थात् क्रेन का शिलाओं के उठाने तथा निर्माण कार्य में प्रयोग किया जाता था। यद्यपि वे क्रेन

आज के समान विद्युत् भाप तथा मशीन परिचालित नही थे। प्रारम्भ मे क्रेन भी हाथ से ही चलते थे। कल्हण ने भी सेतु शब्द का उल्लेख युद्ध सेतु के संदर्भ में किया है। भगवान् राम निर्मित सेतु ठोस था अथवा नावों पर बनाया गया था, स्वतः एक गवेषणा का विषय है। जैसा कि युद्ध सेतु के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है। विशेषज्ञों की यह धारणा पुष्ट हो गयी है कि सेतु सम्भवतः ठोस था। नावों पर नहीं बना था।

मुझे एक रोमन कैथोलिक आयरिश इन्जिनीयर मिल गये। वे विश्व पर्यटन निमित्त निकले थे। उन्हें भी स्थान देखकर कौतूहल हुआ। चर्चा प्रसंग में उन्होने कहा—'मैं रोमन कैथोलिक हूँ। बाइबिल में विश्वास करता हूँ। रामायण की चाहे जो गाथा हो। परन्तु मैं इतना निश्चय रूप से कह सकता हूँ। यह विशाल शिलाखण्ड यहाँ बाहर से लाये गये थे। दोनो समुद्री तटों को सेतु से जोड़ने का प्रयास किया गया था।' (वाल्मीकि रामायण लंका काण्ड सर्ग २२ द्रष्टव्य है)

मैं हिन्दू हूँ। अतएव राम तथा राम गाथा पर स्वभावतः विश्वास करता हूं। परन्तु अभियन्ताओं का यह मत स्थिर हो चला है। किसी समय यहा सेतु था। भारतीय भूखण्ड को रामेश्वर द्वीप से मिलाता था।

वर्तमान सेतुबन्ध रामेश्वरम् मन्दिर का स्थान दो हजार वर्ष से पुराना किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। अतएव निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। रामायण वर्णित रामेश्वर की स्थापना किस स्थान पर की गयी थी। रामेश्वर शब्द से स्पष्ट है। राम ने रामेश्वर की स्थापना की थी। ईश्वर शब्द इस बात का द्योतक है कि शिव की स्थापना भगवान् राम ने की थी। उन्हीं के नाम पर रामेश्वर शिवलिंग का नाम रखा गया। कल्हण ने राजतरंगिणी में सर्वत्र शिव मन्दिरों के लिए नाम के अन्त में ईश्वर या ईश तथा विष्णु मन्दिर के लिये स्वामी शब्द का प्रयोग किया था। यह नामकरण पद्धति समस्त भारत मे प्रचलित हो गयी थी।

सेतुबन्ध शब्द से प्रतीत होता है कि रामेश्वर का सेतुबन्ध ठोस था। इस सेतु को पार कर राम की सेना लंका के समीप पहुँच गयी थी।

यदि धनुषकोटि के पास खड़ा हो कर देखा जाय तो दूसरी ओर श्रीलंका का तट स्थान धुँधला दृष्टिगोचर होगा। लंका और भारत के बीच यह सबसे संकीर्ण स्थान है। दोनो के मध्य छिछला जल है। उसमें कुछ द्वीपों की शृंखला मिलेगी जो लंका और भारत के बीच है इस छिछले पानी के कारण बंगाल की खाड़ी से अरब सागर जाने वाले जहाज सरल और नजदीक के मार्ग से न जा कर श्री लंका की परिक्रमा कर जाते है। इस संकीर्ण स्थान को आज कल की प्रचलित भाषा में 'आदमस् ब्रिज' कहते है। पूर्व काल मे रामेश्वरम् द्वीप से लंका तट स्थान भूखण्ड से मिला रहा होगा।

मिहिरकुल की सेना सेतु किंवा नाव से श्री लंका पहुँची थी या कोई और उपाय निकाला था। इस विषय पर कल्हण शान्त है। रामायण का वर्णन अधिक पूर्ण तथा विस्तार से वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालता है।

कल्हण ने स्वयं श्री लंका किंवा रामेश्वर की यात्रा नही की थी। उसने पूर्व श्रुत अथवा किसी पूर्व कृति पर अपना वर्णन लिखा है। यदि वह रामेश्वरम् की यात्रा किया होता तो उसका वर्णन अधिक सारगर्भित, पूर्ण और समुद्री दृश्यो के वर्णन से भरा होता।

कल्हण ने केवल 'राघव' की सेना से उपमा यहाँ दी है। श्री राम की सेना ने जहाँ शिविर डाला था वहाँ मिहिरकुल की सेना का शिविर पड़ना सम्भव तथा कठिन दोनो हो सकता है। इस स्थान की भौगोलिक स्थिति में आमूल परिवर्तन हो चुका है। साइक्लोन, टौरनेडो तथा तूफानों से स्थान

आक्रान्त रहता है। सन् १९६५ ई० के साइक्लोन में पम्बन सेतु बह गया था। अनेक मकानों की छतें साइक्लोनो मे उड़ गयी थीं। भूमि कहीं समुद्र में धंस गयी, कुछ लोप हो गयी, कुछ निकल आयी थी। बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ कर तृण के समान उड़ गये थे। अतएव लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अथवा रामायण काल में क्या भौगोलिक स्थिति थी। इस पर स्वतः एक ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

सबसे आश्चर्य जनक बात यहाँ के समुद्र तट पर मीठा पानी मिलता है। श्री राम तथा मिहिर-कुल की सेना के लिये जल की आवश्यकता पड़ी होगी। यहाँ कोई नदी नहीं है। सरोवर नहीं है। इस एक बात के अनुसन्धान में उलझन उत्पन्न कर दी थी।

जिस समय मन्नार के गल्फ तथा बंगाल की खाड़ी मिलाने के लिए ड्रिलिंग का कार्य नहर के सर्वेक्षण के लिये आरम्भ हुआ तो दो बातें विशेष महत्त्वपूर्ण मिलीं। जिनसे रामायण की सत्यता तथा कल्हण के वर्णन का मेल खाता है।

समुद्र तट से २०० गज दूर पर ड्रिलिंग करते समय जो पानी निकला वह मीठा था। मन्नार की खाड़ी तथा उसके दूसरे तट बंगाल की खाड़ी तक के मध्यवर्ती भूभाग मे कहीं भी ३०० फिट गहराई तक भूमि में पहाड़ अथवा चट्टानें नहीं मिली। बलुई भूमि ही मिलती गयी। जल कहीं भी किंचित् मात्र खारा नहीं मिला। इससे दो तथ्यों की पुष्टि होती है।

श्रीराम तथा मिहिरकुल की सेना को मीठा जल समुद्र तट पर मिल गया था। वहाँ शिविर स्थापित करने योग्य स्थान था। दूसरी बात जो प्रमाणित होती है कि सेतु बंध के लिए शिलाखण्ड कहीं बाहर से लाये गये थे। जो पम्बन सेतु के नीचे विशाल-काय पड़े हैं। क्योंकि यहाँ भूमि के ऊपर तथा भूमि के नीचे पत्थर नहीं मिलते।

मैंने इस विषय में कोचीन बन्दरगाह के बनाने वाले श्री वेंकटेश्वरम् मुख्य अभियन्ता जो इस समय सेतु समुद्रम योजना में रामेश्वर में कार्य कर रहे हैं। विस्तार से विचार विमर्श किया। उनका भी वही मत है। किसी समय श्री लंका तथा भारत में स्थल तथा जल दोनों माध्यमों से आवागमन रहा। कालान्तर मे हजारो वर्ष के भूकम्पों साइक्लोन समुद्र के तूफान के कारण यह भूमार्ग या तो समुद्र गर्भ में चला गया है, अथवा टूटा फूटा 'आदम ब्रिजस' के रूप में उसकी छाया रूप वर्तमान है।

राघव तथा मिहिरकुल दोनों की सेनाओं का शिविर लंका से बाहर था। उनके मध्य समुद्र था। उसे ही देखकर राक्षसों को लंका पर आक्रमण का भय, श्री राम की सेना को देखकर हुआ था। और मिहिरकुल के समय उस आशंका की पुनरावृत्ति हुई।

समुद्र दोनों तटों के मध्य इतना संकीर्ण है कि लंका के सौधो अर्थात् प्रासाद किंवा उच्च स्थान से भारतीय तट पर होती घटनायें, सेना का शिविर, सेना का परिचालन तथा सेना का प्रकार देखा और समझा जा सकता है।

मिहिरकुल ने किस प्रकार लंका पर आक्रमण किया, युद्ध में क्या गति हुई? युद्ध का क्या रूप था? इन सब महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा उनके वर्णन के सर्वथा अभाव में कुछ तत्त्व पूर्ण निश्चित अनुमान लगाना कठिन है। वाल्मीकि लंका काण्ड (सर्ग ४,२०) द्रष्टव्य है।

रामेश्वर सेतुबन्ध के सम्बन्ध में रामायण का उद्धरण यहाँ ठीक होगा। पत्थरो से जल स्थान पाट दिया गया था। रामायण में कहीं ताखा अथवा खम्भा बनाने का उल्लेख नहीं आता। वहाँ यही उल्लेख मिलता है कि शिलाखण्ड फेंक जल मे गिराये गये। वे शिलाखण्ड हाथियो जैसे विशाल थे। पर्वतों से लाते थे। वे बाहर से समुद्र तट पर लाये जाते थे।

ते नगान् नगसंकाशाः शाखामृगगणर्षभाः।
बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम्॥
(रा० प्र० २२:५५।)

आज के समान विद्युत भाप तथा मशीन परिचालित नही थे। प्रारम्भ मे क्रेन भी हाथ से ही चलते थे। कल्हण ने भी सेतु शब्द का उल्लेख गुद् सेतु के संदर्भ में किया हैं। भगवान् राम निर्मित सेतु ठोस था अथवा पावों पर बनाया गया था, स्वतः एक गवेषणा का विषय है। जैसा कि गुद् सेतु के सम्बन्ध में लिखा जा चुका हैं। विशेषज्ञों की यह धारणा पुष्ट हो गयी है कि सेतु सम्भवतः ठोस था। पांवो पर नही बना था।

मुझे एक रोमन कैथोलिक आयरिश इन्जिनीयर मिल गये। वे विश्व पर्यटन निमित्त निकले थे। उन्हे भी स्थान देखकर कौतूहल हुआ। चर्चा प्रसंग में उन्होने कहा—'मै रोमन कैथोलिक हूँ। बाइबिल में विश्वास करता हूँ। रामायण की चाहे जो गाथा हो। परन्तु मैं इतना निश्चय रूप से कह सकता हूँ। यह विशाल शिलाखण्ड यहाँ बाहर से लाये गये थे। दोनो समुद्री तटो को सेतु से जोड़ने का प्रयास किया गया था।' (वाल्मीकि रामायण लंका काण्ड सर्ग २२ द्रष्टव्य है)

मैं हिन्दू हूँ। अतएव राम तथा राम गाथा पर स्वभावतः विश्वास करता हूं। परन्तु अभियन्ताओं का यह मत स्थिर हो चला है। किसी समय यहा सेतु था। भारतीय भूखण्ड को रामेश्वर द्वीप से मिलाता था।

वर्तमान सेतुबन्ध रामेश्वरम् मन्दिर का स्थान दो हजार वर्ष से पुराना किसी भी प्रकार नही हो सकता। अतएव निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। रामायण वर्णित रामेश्वर की स्थापना किस स्थान पर की गयी थी। रामेश्वर शब्द से स्पष्ट है। राम ने रामेश्वर की स्थापना की थी। ईश्वर शब्द इस बात का द्योतक है कि शिव की स्थापना भगवान् राम ने की थी। उन्हीं के नाम पर रामेश्वर शिवलिंग का नाम रखा गया। कल्हण ने राजतरंगिणी में सर्वत्र शिव मन्दिरों के लिए नाम के अन्त में ईश्वर या ईश तथा विष्णु मन्दिर के लिये स्वामी शब्द का प्रयोग किया था। यह नामकरण पद्धति समस्त भारत में प्रचलित हो गयी थी।

सेतुबन्ध शब्द से प्रतीत होता है कि रामेश्वर का सेतुबन्ध ठोस था। इस सेतु को पार कर राम को सेना लंका के समीप पहुँच गयी थी।

यदि धनुषकोटि के पास खड़ा हो कर देखा जाय तो दूसरी ओर श्रीलंका का तट स्थान धुँधला दृष्टिगोचर होगा। लंका और भारत के बीच यह सबसे संकीर्ण स्थान है। दोनों के मध्य छिछला जल है। उसमें कुछ द्वीपों की शृंखला मिलेगी जो लंका और भारत के बीच है इस छिछले पानी के कारण बंगाल की खाड़ी से अरब सागर जाने वाले जहाज सरल और नजदीक के मार्ग से न जा कर श्री लंका की परिक्रमा कर जाते हैं। इस संकीर्ण स्थान को आज कल की प्रचलित भाषा में 'आदम्स् ब्रिज' कहते हैं। पूर्व काल में रामेश्वरम् द्वीप से लंका तट स्थान भूखण्ड से मिला रहा होगा।

मिहिरकुल की सेना सेतु किंवा नाव से श्री लंका पहुँची थी या कोई और उपाय निकाला था। इस विषय पर कल्हण शान्त है। रामायण का वर्णन अधिक पूर्ण तथा विस्तार से वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालता है।

कल्हण ने स्वयं श्री लंका किंवा रामेश्वर की यात्रा नही की थी। उसने पूर्व श्रुत अथवा किसी पूर्व कृति पर अपना वर्णन लिखा है। यदि वह रामेश्वरम् की यात्रा किया होता तो उसका वर्णन अधिक सारगर्भित, पूर्ण और समुद्री दृश्यो के वर्णन से भरा होता।

कल्हण ने केवल 'राघव' की सेना से उपमा यहाँ दी है। श्री राम की सेना ने जहाँ शिविर डाला था वहाँ मिहिरकुल की सेना का शिविर पड़ना सम्भव तथा कठिन दोनो हो सकता है। इस स्थान की भौगोलिक स्थिति में आमूल परिवर्तन हो चुका है। साइक्लोन, सैण्ड डून तथा तूफानों से स्थान

आक्रान्त रहता है। सन् १९६५ ई० के साइक्लोन में पम्बन सेतु बह गया था। अनेक मकानों की छतें साइक्लोनों में उड़ गयी थीं। भूमि कहीं समुद्र में धँस गयी, कुछ लोप हो गयी, कुछ निकल आयी थी। बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ कर तृण के समान उड़ गये थे। अतएव लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अथवा रामायण काल में क्या भौगोलिक स्थिति थी। इस पर स्वतः एक ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

सबसे आश्चर्य जनक बात यहाँ के समुद्र तट पर मीठा पानी मिलता है। श्री राम तथा मिहिर-कुल की सेना के लिये जल की आवश्यकता पड़ी होगी। यहाँ कोई नदी नहीं है। सरोवर नहीं है। इस एक बात के अनुसन्धान में उलझन उत्पन्न कर दी थी।

जिस समय मन्नार के गल्फ तथा बंगाल की खाड़ी मिलाने के लिए ड्रिलिंग का कार्य नहर के सर्वेक्षण के लिये आरम्भ हुआ तो दो बातें विशेष महत्त्वपूर्ण मिलीं। जिनसे रामायण की सत्यता तथा कल्हण के वर्णन का मेल खाता है।

समुद्र तट से २०० गज दूर पर ड्रिलिंग करते समय जो पानी निकला वह मीठा था। मन्नार की खाड़ी तथा उसके दूसरे तट बंगाल की खाड़ी तक के मध्यवर्ती भूभाग में कहीं भी ३०० फिट गहराई तक भूमि में पहाड़ अथवा चट्टानें नहीं मिलीं। बलुई भूमि ही मिलती गयी। जल कहीं भी किंचित् मात्र खारा नहीं मिला। इससे दो तथ्यों की पुष्टि होती है।

श्रीराम तथा मिहिरकुल की सेना को मीठा जल समुद्र तट पर मिल गया था। वहाँ शिविर स्थापित करने योग्य स्थान था। दूसरी बात भी प्रमाणित होती है कि सेतु बंध के लिए शिलाखण्ड कहीं बाहर से लाये गये थे। जो पम्बन सेतु के नीचे विशाल-काय पड़े हैं। क्योंकि यहाँ भूमि के ऊपर तथा भूमि के नीचे पत्थर नहीं मिलते।

मैंने इस विषय में कोचीन बन्दरगाह के बनाने वाले श्री वेंकटेश्वरम् मुख्य अभियन्ता जो इस समय सेतु समुद्रम योजना में रामेश्वर में कार्य कर रहे हैं। विस्तार से विचार विमर्श किया। उनका भी वही मत है। किसी समय श्री लंका तथा भारत में स्थल तथा जल दोनों माध्यमों से आवागमन रहा। कालान्तर में हजारों वर्ष के भूकम्पों साइक्लोन समुद्र के तूफान के कारण यह भूमार्ग या तो समुद्र गर्भ में चला गया है, अथवा टूटा फूटा 'आदम ब्रिजस' के रूप में उसकी छाया रूप वर्तमान है।

राघव तथा मिहिरकुल दोनों की सेनाओं का शिविर लंका से बाहर था। उनके मध्य समुद्र था। उसे ही देखकर राक्षसों को लंका पर आक्रमण का भय, श्री राम की सेना को देखकर हुआ था। और मिहिरकुल के समय उस आशंका की पुनरावृत्ति हुई।

समुद्र दोनों तटों के मध्य इतना संकीर्ण है कि लंका के सौधों अर्थात् प्रासाद किंवा उच्च स्थान से भारतीय तट पर होती घटनायें, सेना का शिविर, सेना का परिचालन तथा सेना का प्रकार देखा और समझा जा सकता है।

मिहिरकुल ने किस प्रकार लंका पर आक्रमण किया, युद्ध में क्या गति हुई? युद्ध का क्या रूप था? इन सब महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा उनके वर्णन के सर्वथा अभाव में कुछ तत्त्व पूर्ण निश्चित अनुमान लगाना कठिन है। वाल्मीकि लंका काण्ड (सर्ग ४,२०) द्रष्टव्य है।

रामेश्वर सेतुबन्ध के सम्बन्ध में रामायण का उद्धरण यहाँ ठीक होगा। पत्थरों से जल स्थान पाट दिया गया था। रामायण में कहीं ताखा अथवा खम्भा बनाने का उल्लेख नहीं आता। वहाँ यही उल्लेख मिलता है कि शिलाखण्ड फेंक जल में गिराये गये। वे शिलाखण्ड हाथियों जैसे विशाल थे। पर्वतों से लाते थे। वे बाहर से समुद्र तट पर लाये जाते थे।

ते नगान् नगसंकाशाः शाखामृगगणर्षभाः।
बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम्॥
(रा० प्र० २२:५५।)

स तत्रान्यं नृपं दत्त्वा तीव्रशक्तिरुपाहरत् ।
पटं यमुपदेवाख्यं मार्तण्डप्रतिमाङ्कितम् ॥ २९९ ॥

२९९. तीव्र शक्तिमान राजा ने सिंहल का सिंहासन दूसरे नृप को देकर, वहाँ से मार्तण्ड प्रतिमांकित यमुप देव नामक वस्त्र लाया।

हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य, यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥
२२:६०।

समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः ।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥
२२:६२।

पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान् गिरीणां शिखराणि च ।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्यदानवसंनिभाः ॥
२२:६६।

पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि त्रयोविंशत् सुवेलमधिकृत्य वै ॥
२२:७२।

उक्त उल्लेख से पाँच बातें सिद्ध होती हैं। शिलाखण्ड विशाल थे। जैसे वे आज भी 'पम्बन' पुल के नीचे पड़े हैं। दूसरी बात पर्वतों तथा अन्य स्थानों से उन्हें यन्त्रो द्वारा लाया जाता था। वह इतने बड़े थे कि मानव या किंवा वानरी शारीरिक शक्ति के परे की बात थी। तीसरी बात महत्त्वपूर्ण यह है कि पुल पाँच दिनों में बनकर तैयार हो गया। चौथी बात महत्त्वपूर्ण है। ग्रम्भा या तारा नहीं बनाया गया था। सर्वत्र उल्लेख मिलता है। शिलाखण्डों से पाट दिया गया था। वह बात पम्बनम् से किसी प्रकार के निर्माण न मिलने के कारण स्पष्ट होती है। पाँचवी बात, निर्माण में सूत्र का प्रयोग किया गया था कि पुल सीधा बने।

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥
२२:६२।

यद्यपि सूत्र एक सौ योजन लम्बा बाँधा गया था। परन्तु सेतु केवल २३ योजन लम्बा बाँधा गया था। यह बात श्लोक संख्या २२:७२ के 'योजनानि त्रयोविंशत्' से प्रकट होती है। एक सौ योजन लम्बा सेतु बाँधा गया था परन्तु पुल तेईस योजन ही क्यों बाँधा गया और वह भी केवल पाँच दिनों में। इन बातों में मेल नहीं खाता। यदि एक योजन आठ मील का मान लिया जाय तो लंका और भारत के मध्य समुद्र का पाट ८०० मिल होना चाहिए। परन्तु शुद्ध पाट केवल २० मील का है। यदि सेतु २३ योजन लम्बा था तो १८४ मील लंका और भारत के मध्य दूरी होनी चाहिए। यह भी गलत होता है। 'पम्बनम्' पुल की लम्बाई देखकर यह समझा जा सकता है कि निर्माण में विशेष दिन नहीं लग सका। केवल 'पाँच दिन' के उल्लेख से प्रकट होता है कि पुल ८०० या १८४ मिल लम्बा नहीं हो सकता। कवि वर्णन एवं सेतु की विशालता दिखाने के लिये यह वर्णन किया गया है। एक योजन चार कोस का होता है। एक कोस दो मिल का होता है। परन्तु काश्मीरी कोस दो मिल तथा ढाई मिल के बीच होता था। प्रचलित कोस की दूरी से कम था। उक्त प्रमाणों तथा 'पम्बनम्' में बड़े विशालकाय शिलाखण्डों को देखकर सेतु का वही होना प्रमाणित होता है।

यहाँ तटपर मुसलमान मांझियों तथा ईसाइयों की आबादी है। कुछ निम्न वर्ण के हिन्दू रहते हैं। उनसे मैंने महिरकुल सम्बन्धी पुरानी कहानी किंवा आख्यायिका जानने का प्रयास किया। परन्तु उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने मिहिरकुल का नाम भी नहीं सुना था। वे केवल रामायण वर्णित गाथा को ही कुछ हेर फेर के साथ बता सकने में समर्थ हुए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९९ में 'शक्तिरुपा' शक्ति का

व्यावृत्य चोलकर्णाटलाटादींश्च नरेश्वरान्।
सिन्धुरानिव गन्धेभो गन्धेनैव व्यदारयत्॥ ३०० ॥

३००. लौटकर उसने मार्ग में चोल[1], कर्णाट[2], लाटादि[3] के नरेशों को परास्त कर दिया; जैसे गजराज मदगन्ध से ही हाथियों को तितर बितर कर देता है।

ममाः तथा 'शवितरया' और 'मार्तण्ड' का 'मार्तण्ड' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

'२९९ (१) यमुपदेव : यह वस्त्र क्या था ठीक से पता नहीं चलता। मार्तण्ड अर्थात् सूर्य का उल्लेख यहाँ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि से है। मिहिरकुल तथा उसके पिता दोनों की मुद्राओं पर सूर्य आकृति अंकित मिलती है। प्रतीत होता है। राजा शिव भक्त था। सूर्य का उपासक था। सिंहल राजा के हेमपादांकित चिन्ह के स्थान पर उसने 'सूर्यांकित' वस्त्र का प्रचलन किया। रानी के कुच पर उसने सिंहल राजपादांकित चिन्ह देखा था। उसके स्थान गोल उत्तुंग कुच पर उगता गोल सूर्य रश्मि तुल्य वस्त्र लगाना अधिक कलात्मक मालूम होता है। स्तनों पर पश्चिमीय देशों के रंगमंच पर स्त्रियों को इस प्रकार का गोल जरी का काम किये वस्त्र पहने देखा है।

पाठभेद :

१. श्लोक संख्या ३०० में 'लाटादींश्च' का 'नांटादींश्च' तथा 'व्यदारयत्' का 'व्यमारत्' पाठभेद *मिलता है।*

१ ३०० (१) चोल : आधुनिक तंजौर तथा त्रिचनापल्ली तथा पुडुकोट्ट के कुछ भागों को मिलाकर प्राचीन चोल मण्डल प्रायः बन जाता है।

चोल राज्य पूर्वीय सागर तट पर पेन्नर नदी से वेल्लार तथा पश्चिम में कुर्ग तक विस्तृत था। यह भी मत है। वेल्लारू नदी के उत्तर दक्षिण (एक ही नाम की दो नदियाँ हैं) पूर्व में समुद्र तथा पश्चिम में कोट्टाइक्कराय तक फैला था। वर्तमान त्रिचिनापल्ली, तंजोर तथा पुडुकोट्टह का कुछ भाग सम्मिलित था। इसकी राजधानी उरगपुर अथवा उरेयूर अर्थात् प्राचीन त्रिचनापल्ली थी। कवि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में चोल देश का उल्लेख किया है। कावेरीपट्टम कावेरी नदी के उत्तर इस राज्य का बड़ा बन्दरगाह था। कांची अर्थात् वर्तमान कांजीवरम चोल प्रदेश का एक विशाल नगर था। नागपटम अर्थात् नाडीपत्तनम भी इसका एक बन्दरगाह था। यह बन्दरगाह आज भी चालू है। मैं यहाँ दो बार आ चुका हूँ। समुद्र उथला होने के कारण जहाज दो मिल दूर ठहरते हैं।

तंजोर, त्रिचनापल्ली, कुम्भकोनम पूर्वकालीन चोल राज्य के प्रसिद्ध नगर हैं। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में गंगाई कोण्डा, चोलपुरम चोल राज की राजधानी थी। दक्षिण भारत के अभिलेखों में कावेरी नदी का नाम चोल भी दिया गया है। चोल देश तथा देशवासी दोनों के लिए आया है। (सभा पर्व ५२:३५)।

मार्कण्डेय (५७:४:४५,) वायु (४५:४:१२४) मत्स्य पुराणों (११२:५:४६) में चोल राज्य का नाम पाण्ड्य तथा केरल के साथ आया है। इसके अतिरिक्त पद्म पुराण (३०, १०८, १०९;) स्कन्द पुराण (२:४.२६-२७) में भी उल्लेख मिलता है।

रामायण किष्किन्धा काण्ड (४१:१२) में चोल का उल्लेख आन्ध्र, पुण्ड्र, पाण्ड्य, केरल के साथ किया गया है। उसकी दिशा दक्षिण बतायी गयी है। कावेरी नदी का उल्लेख इसी स्थल पर किया गया है।

महाभारत सभा पर्व (२७:२१) में उल्लेख है कि अर्जुन ने चोल सेना पर विजय प्राप्त की थी। भीष्म पर्व (९:६० तथा ५०:५१) में उल्लेख

स तत्रान्यं नृपं दत्वा तीव्रशक्तिरुपाहरत् ।
पटं यमुपदेवाख्यं मार्ताण्डप्रतिमाङ्कितम् ॥ २९९ ॥

२९९. तीव्र शक्तिमान राजा ने सिंहल का सिंहासन दूसरे नृप को देकर, वहाँ से मार्तण्ड प्रतिमांकित यमुप देव नामक वस्त्र लाया।

हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥
२२:६०।

समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः ।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥
२२:६२।

पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान् गिरीणां शिखराणि च ।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्यदानवसंनिभाः ॥
२२:६६।

पञ्चभिस्तु तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि त्रयोविंशत् सुवेलमधिकृत्य वै ॥
२२:७२।

उक्त उल्लेख से पाँच बातें सिद्ध होती हैं। शिलाखण्ड विशाल थे। जैसे वे आज भी 'पम्बन' पुल के नीचे पड़े हैं। दूसरी बात पर्वतों तथा अन्य स्थानों से उन्हें यन्त्रों द्वारा लाया जाता था। वह इतने बड़े थे कि मानव अथवा वानरी शारीरिक शक्ति के परे की बात थी। तीसरी बात महत्त्वपूर्ण यह है कि पुल पाँच दिनों में बनकर तैयार हो गया। चौथी बात महत्त्वपूर्ण है। खम्भा या खाता नहीं बनाया गया था। सर्वत्र उल्लेख मिलता है। शिलाखण्डों से पाट दिया गया था। वह बात 'पम्बनम्' में किसी प्रकार के निर्माण न मिलने के कारण स्पष्ट होती है। पाँचवी बात, निर्माण में सूत्र का प्रयोग किया गया था कि पुल सीधा बने।

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥
२२:६२।

यद्यपि सूत एक सौ योजन लम्बा बाँधा गया था। परन्तु सेतु केवल २३ योजन लम्बा बाँधा गया था। यह बात श्लोक संख्या २२:७२ के 'योजनानि त्रयोविंशत्' से प्रकट होती है। एक सौ योजन लम्बा सेतु बाँधा गया था परन्तु पुल तेईस योजन ही क्यों बाँधा गया और वह भी केवल पाँच दिनों में। इन बातों में मेल नहीं खाता। यदि एक योजन आठ मील का मान लिया जाय तो लंका और भारत के मध्य समुद्र का पाट ८०० मिल होना चाहिए। परन्तु समुद्र पाट केवल २० मील का है। यदि सेतु २३ योजन लम्बा था तो १८४ मील लंका और भारत के मध्य दूरी होनी चाहिए। यह भी गलत होता है। 'पम्बनम्' पुल की लम्बाई देखकर यह समझा जा सकता है कि निर्माण में विशेष दिन नहीं लग सका। केवल 'पाँच दिन' के उल्लेख से प्रकट होता है कि पुल ८०० या १८४ मिल लम्बा नहीं हो सकता। कवि वर्णन एवं सेतु की विशालता दिखाने के लिये यह वर्णन किया गया है। एक योजन चार कोस का होता है। एक कोस दो मिल का होता है। परन्तु काश्मीरी कोस दो मिल तथा ढाई मिल के बीच होता था। प्रचलित कोस की दूरी से कम था। उक्त प्रमाणों तथा 'पम्बनम्' में बड़े विशालकाय शिलाखण्डों को देखकर सेतु का वही होना प्रमाणित होता है।

यहाँ तटपर मुसलमान माझियों तथा ईसाइयों की आबादी है। कुछ निम्न वर्ण के हिंदू रहते हैं। उनसे मैंने महिरकुल सम्बन्धी पुरानी कहानी किंवा आख्यायिका जानने का प्रयास किया। परन्तु उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने मिहिरकुल का नाम भी नहीं सुना था। वे केवल रामायण वर्णित गाथा को ही कुछ हेर फेर के साथ बता सकने में समर्थ हुए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९६ में 'शक्तिरुपा' शक्ति का

व्यावृत्य चोलकर्णाटलाटादींश्च नरेश्वरान्।
सिन्धुरानिव गन्धेभो गन्धेनैव व्यदारयत्॥ ३०० ॥

३००. लौटकर उसने मार्ग में चोल[1], कर्णाट[2], लाटादि[3] के नरेशों को परास्त कर दिया; जैसे गजराज मदगन्ध से ही हाथियों को तितर बितर कर देता है।

ममा' तथा 'दविनदया' और 'मार्ताण्ड' का 'मार्तण्ड' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९९. (१) यमुपदेव : यह वस्त्र क्या था ठीक से पता नहीं चलता। मार्तण्ड अर्थात् सूर्य का उल्लेख यहाँ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि से है। मिहिरकुल तथा उसके पिता दोनों की मुद्राओं पर सूर्य आकृति अंकित मिलती है। प्रतीत होता है। राजा शिव भक्त था। सूर्य का उपासक था। सिंहल राजा के हेमपादांकित चिन्ह के स्थान पर उसने 'सूर्याबिंबे' वस्त्र का प्रचलन किया। रानी के कुच पर उसने सिंहल राजपादांकित चिन्ह देखा था। उसके स्थान गोल उत्तुंग कुच पर उगता गोल सूर्य रश्मि तुल्य वस्त्र लगाना अधिक कलात्मक मालूम होता है। स्तनों पर पश्चिमीय देशों के रंगमंच पर स्त्रियों को इस प्रकार का गोल जरी का काम किये वस्त्र पहने देखा है।

पाठभेद :

१. श्लोक संख्या ३०० में 'लाटादींश्च' का 'नाटादींश्च' तथा 'व्यदारयत्' का 'व्यधारयत्' पाठभेद मिलता है।

३०० (१) चोल : आधुनिक तंजोर तथा त्रिचनापल्ली तथा पुडुकोट्ट के कुछ भागों को मिलाकर प्राचीन चोल मण्डल प्रायः बन जाता है।

चोल राज्य पूर्वीय सागर तट पर पेन्नर नदी से वेल्लार तथा पश्चिम में कुर्ग तक विस्तृत था। यह भी मत है। वेल्लारू नदी के उत्तर दक्षिण (एक ही नाम की दो नदियाँ हैं) पूर्व में समुद्र तथा पश्चिम में कोट्टाइक्कराय तक फैला था। वर्तमान त्रिचिनापल्ली, तंजोर तथा पुडुकोट्टह का कुछ भाग सम्मिलित था। इसकी राजधानी उरगपुर अथवा उरैपुर अर्थात् प्राचीन त्रिचनापल्ली थी। कवि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में चोल देश का उल्लेख किया है। कावेरीपट्टन कावेरी नदी के उत्तर इस राज्य का बड़ा बन्दरगाह था। कांची अर्थात् वर्तमान काञ्जीवरम चोल प्रदेश का एक विशाल नगर था। नागपटम अर्थात् नाड़ीपत्तनम भी इसका एक बन्दरगाह था। यह बन्दरगाह आज भी चालू है। मैं यहाँ दो बार आ चुका हूँ। समुद्र उथला होने के कारण जहाज दो मिल दूर ठहरते हैं।

तंजोर, त्रिचनापल्ली, कुम्भकोनम पूर्वकालीन चोल राज्य के प्रसिद्ध नगर हैं। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में गंगाई कोण्डा, चोलपुरम चोल राज की राजधानी थी। दक्षिण भारत के अभिलेखों में कावेरी नदी का नाम चोल भी दिया गया है। चोल देश तथा देशवासी दोनों के लिए आया है। (सभा पर्व ५२:३५)।

मार्कण्डेय (५७:५:४५,) वायु (४५:५:१२४) मत्स्य पुराणों (११३:५:४६) में चोल राज्य का नाम पाण्ड्य तथा केरल के साथ आया है। इनके अतिरिक्त पद्म पुराण (३०, १०८; १०९;) स्कन्द पुराण (२:४:२६–२७) में भी उल्लेख मिलता है।

रामायण किष्किन्धा काण्ड (४१:१२) में चोल का उल्लेख आन्ध्र, पुण्ड्र, पाण्ड्य, केरल के साथ किया गया है। उसकी दिशा दक्षिण बतायी गयी है। कावेरी नदी का उल्लेख इसी स्थल पर किया गया है।

महाभारत सभा पर्व (२७:२१) में उल्लेख है कि अर्जुन ने चोल सेना पर विजय प्राप्त की थी। भीष्म पर्व (९:६० तथा ५०:५१) में उल्लेख

मिलता है। धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित, क्रौंच व्यूह के दक्षिण पार्श्व में यहाँ के सैनिक रक्षा निमित्त तत्पर थे। कर्ण पर्व (१२:१५) में उल्लेख आता है। पाण्डवों के पक्ष से चोलवासियों ने महाभारत युद्ध में भाग लिया था। द्रोण पर्व (११:१७) में वर्णन मिलता है। भगवान् कृष्ण ने इस देश को जीता था।

कात्यायन ने पाणिनि के वार्तिक में चोल तथा पाण्ड्य का उल्लेख किया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में (४:१:१७५-७) कांचीपुरम का उल्लेख किया है। अशोक ने द्वितीय तथा तेरहवें शिलालेख में चोल, पाण्ड्य, केरल पुत्तो (केरल पुत्र) तथा सतियपुत्तो (सत्यपुत्र) का उल्लेख अपने राज्य के दक्षिणान्त के सीमान्त देश के रूप में किया है।

तिब्बतीय बौद्ध ग्रन्थों से मालूम होता है। मौर्यों ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। इसका समर्थन आधुनिक अनुसन्धानों से हो गया है। महावंश में चोल तथा कावेरीपत्तनम का उल्लेख है। जातक में कावेरीपत्तन का उल्लेख मिलता है। चोल का इतिहास उतार-चढ़ाव से भरा पड़ा है।

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में चोल का उल्लेख किया है। बौद्ध ग्रन्थों में समन्त पसादिका, जातक, पिटकादि में 'कोड' जनपद का अर्थ चोल जनपद लगाना चाहिए।

परमार राज लक्ष्मण देव की प्रशस्ति में चोल विजय का वर्णन है। परन्तु यह कल्पना मात्र प्रतीत होता है। प्लोतमी ने चोल का उल्लेख 'सोर' शब्द से किया है। उस पर अरकाट का शासन होना बताता है।

मार्कण्डेय पुराण (५७:४५), वायु पुराण (४५:१२४), मत्स्य पुराण (११२:४६) में चोल देश का उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण में—'चोलाः कुल्यास्तथैव च' वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में—'चौल्याः कुल्यास्तथैव च' मत्स्य पुराण में 'चोलाः कुल्यास्तथैव च।' वामन पुराण में 'चोल कुल्याश्च राक्षस' का उल्लेख आया है।

शक्ति संगम तंत्र (३:७:२२) में उल्लेख किया गया है :

द्राविडतैलंगयोर्मध्ये चोलदेशः प्रकीर्तितः ।
लम्बकर्णाश्च ते प्रोक्ता मद्योऽथावाप्सरी भवेत् ॥ २२

इससे प्रकट होता है कि चोल देश द्रविड़ तथा तैलंग देश के मध्य स्थित था।

२. कर्णाट : वर्तमान कर्णाटक क्षेत्र है। भागवत (५:६:७,) महाभारत भीष्म पर्व (९:१९) में कर्णाटक को दक्षिण भारत का एक जनपद कहा गया है। जातक (भाग १:४४७,) महावंश (६:५, ६:३५, ८:६–७)

भागवत पुराण (५:६:७) में कर्णाटक का उल्लेख आया है। इसे गरा मंजल कहा गया है। स्कन्द पुराण के देशों की तालिका में कर्णाट का स्थान ४४वाँ तथा ग्राम-संख्या १२५००० दी गयी है। बृहत् संहिता में केरल के साथ कर्णाट का उल्लेख किया गया है।

सम्मोह तन्त्र जिसकी रचना सन् १४५० ई० के पूर्व हुई थी, में उल्लेख आता है :

सौराष्ट्रो द्रविड़श्चैवं (व) तैलिंग मलयाद्र (द्रि) कौ।
कर्णाटायन्त्य वैदर्भ मर्रा (ठा) भीर (राः) ममाल्या (वाः) ॥ ४

शक्ति संगम तन्त्र (३:७:११४:६) में उल्लेख आता है

मार्जारतीर्थराजेन्द्रे कोलापुरनिय मितो ।
तावद्देशो महाराष्ट्रः कर्णाटस्याभि गोचर ॥ ११
रामनाथं समारभ्य श्रीरंगान्तं परेश्वरि ।
कर्णाट देशो देवो दो साम्राज्यभोगदायकः ॥ १९

शक्ति संगम तन्त्र ३:८:१५

पूर्वे वैरजनाथस्तूत्तरेऽमरकण्टकम् ।
कांचीपुरममध्यभागे मोहनावर्त्त मे (ए)व च ॥ १५

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कल्हण ने कर्णाट नाम ठीक दिया है। कर्नाटक प्राचीन नाम नहीं है। कन्नड़ भी प्राचीन नाम नहीं

है। कर्नाटक देशवासियों की भाषा कन्नड़ है। उनका साहित्य कन्नड़ साहित्य कहा जाता है। वर्तमान मैसूर राज्य समस्त कन्नड़ भाषियों का राज्य है। कन्नड़ शब्द संस्कृत कर्णाट का अपभ्रंश है।

उक्त तन्त्रों के अनुसार प्राचीन कर्णाटक देश रामनाथ से श्रीरंग तक विस्तृत था। श्रीरंग शब्द वर्तमान श्रीरंगपत्तन के लिए आया है। श्रीरंग कावेरी नदी के दूसरे तट पर तंजोर के दूसरी तरफ है। रामनाथ स्थान रामनाथपुरम् अर्थात् पूर्व रामनद जिला अथवा रामनाथ मठ मदुरा जिला अथवा तुंग और भद्रा नदियों के संगम पर रामेश्वर तीर्थ हो सकता है।

कश्मीरी महाकवि विल्हण ने कुन्तल देश को कर्णाट देश का समानार्थक कहा है। विक्रमादित्य षष्ठ को 'कुन्तलेन' तथा 'कर्णाटे' कहा गया है। कुन्तल देश कर्णाटक का एक भाग हो सकता है। हरिहर राजा द्वितीय के एक लेख सन् १३०७ ई० मे पता चलता है कि कुन्तल विषय कर्णाट देश में था।

विजयनगर साम्राज्य के विस्तार के साथ कर्णाट प्रदेश की सीमा दक्षिण मे बहुत विस्तृत हो गयी थी। तल्लीकोट के युद्ध (सन् १६६५ ई०) के पश्चात् विजयनगर के राजा चन्द्रगिरी अर्थात् चित्तूर जिला तत्पश्चात् वेल्लोर जिला, उत्तरीय अरकाट तक पीछे चले आये थे। उनका राज्य परिमित हो गया था। लघु राज्य होने पर भी उन्हें कर्नाटक का राय कहा जाता है। सन् १६९२-१७०३ ई० मे जुल्फिकार अली खां कर्नाटक का नवाब बना दिया गया था।

(४) लाट : दक्षिण तथा गुजरात के मध्य का प्रदेश जिसे ताप्ती तथा नर्मदा नदियां सींचती हैं। लाट देश था। एक मत है। ताप्ती और माही के मध्य का देश लाट था। बन्धुवर्मा के मन्दसोर शिलालेख मे लाट का उल्लेख मिलता है। प्रतिहार राजा कक्कुक ने लाट देश मे बहुत ख्याति प्राप्त की थी। एक और मत है माही और किम नदियों के मध्य यह अंचल था। उत्तरी कोंकन और गुजरात का पुराना नाम कहा जाता है। एक मत है कि यह मध्य गुजरात का भाग है। खेह के कर्ण के शिलालेख से मालूम होता है कि इसमें मध्य तथा दक्षिणी गुजरात क्षेत्र सम्मिलित थे। बौद्ध साहित्य द्वीपवंश तथा महावंश के अनुसार लाटराष्ट्र गुजरात था जिसकी राजधानी दीपवंश के अनुसार सिंहपुर थी। पुराने राष्ट्रकूट और गुजरात के कागजातों से प्रतीत होता है कि लाटेश्वर देश गुजरात था। लाटेश्वर राज्य की राजधानी इलापुर थी।

महाभारत अनुशासन पर्व (३५ : १७-१२) में वर्णन आता है कि लाट एक क्षत्रिय जाति थी परन्तु ब्राह्मणों के साथ ईर्ष्या करने के कारण नीच हो गये थे।

संमोह तन्त्र में (२ : ३) देशों की तालिका में लाट देश का नाम दिया है। यथा·

चोलयां (पां) चालगौडश्च मल्पांठ (पालश्च सिंहल।
ब्योक विडो ब्योंगाश्चैव(१) का (क)र्णाटो लाट एव च॥

शक्ति सगम तन्त्र (३:७ ५५) में लाट देश का उल्लेख मिलता है।

अवन्तीतः पश्चिमे तु वैदर्भाद् दक्षिणेऽन्तरे।
लाटदेशः समाख्यातो वर्वरं शृणु पार्वति॥

लाट देश उक्त उद्धरणों के आधार पर अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ (बरार) के उत्तर पश्चिम ठहरता है। लाट देश अधोगामी माही तथा ताप्ती के मध्य में था। राजाओं की शक्ति एवं राज्य विस्तार के कारण यह सीमा कभी-कभी माही से और परे तक चली जाती थी। उसने भृगुकच्छ (भड़ौच) तथा नवसारिका (नवसारी) के अंचल सम्मिलित थे। कामसूत्र (६:५:२६) के अनुसार लाट देश मालवा के पश्चिम दिशा में था। सन् १४२५ ई० के एक दक्षिणी अभिलेख से पता चलता है कि पंच द्राविड ब्राह्मणों में कन्नडिग, तामिल, तैलंग, ग्याल अर्थात् गुजरात के ब्राह्मण

तस्मिन्प्रयाते प्रातेभ्यः सर्वं गुर्जरपराभवम् ।
नगर्यां नरनाथेभ्यस्त्रुटयद्धातमंगलाः ॥ ३०१ ॥

३०१. उनके चले जाने पर, पुनः लौटे, राजाओं से टूटती अट्टार सेनाओं वाली नगरियों ने उनके पराभव को कहा।

काश्मीरं द्वारमागाय श्वभ्रभ्रष्टस्य दन्तिनः ।
श्रुत्वा स आक्रन्दं घोषं तोषरोमाञ्चितोऽभवत् ॥ ३०२ ॥

३०२. कश्मीर द्वार[1] पहुँचने पर गर्त[2] में गिरे गज के आर्तनाद को सुनकर वह हर्ष से रोमांचित होगया।

थे। स्कन्द पुराण के पंच द्राविड ब्राह्मणों में निम्नलिखित ब्राह्मण वर्ग आते हैं। :

कर्णाटाश्चैव, तैलंगा (द्राविडा) गुर्जरा राष्ट्रवासिनः ।
आन्ध्राश्च द्राविडाः पंच विन्ध्यदक्षिणवासिनः ॥

कर्णाट, तैलंग, गुर्जर, आन्ध्र तथा राष्ट्रवासी (महाराष्ट्र) पाँच राष्ट्रवासियों को विन्ध्य के दक्षिण रहने वालों में गिनता है। अर्थात् दक्षिणापथ का अर्थ यही लगाया जाता था। विन्ध्य के उत्तर रहने वाले पंच गौड़ ब्राह्मण पुरों की व्याख्या स्कन्दपुराण करता है :

सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़मैथिलउत्कलाः ।
पञ्चगौड़ा इति ख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ॥

विनयचन्द्र की काव्यशिक्षा में लाट देश के ग्रामों की संख्या २१ हजार तथा गुर्जर देश की ७० हजार दी गयी है। स्कन्द पुराण में देशों की तालिका में लाड़ किंवा लाट देश की क्रमसंख्या ३८ तथा उसके ग्रामों की संख्या भी २१ हजार दी गयी है। उसमें कच्छ की ग्रामसंख्या १४ हजार, सौराष्ट्र की ५५ हजार तथा गुजरात की ग्राम संख्या ७० हजार दी गयी है। इससे स्पष्ट है कि लाट देश का अस्तित्व प्राचीन काल में गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ से स्वतन्त्र तथा भिन्न था। लाट प्रदेश गुजरात तथा सौराष्ट्र से छोटा और कच्छ से बड़ा था।

लाट तथा लाट विषय का उल्लेख प्रथम शताब्दी से सातवीं तथा आठवीं शताब्दी तक भारतीय वाङ्मय में होता रहा है। इस प्रदेश का नाम पुराण तथा महाभारत और रामायण में मुझे नहीं मिल सका है। लेखकों ने इसका उल्लेख किया है। लाट देश का प्रयोग क्रम लाट देश हो गया था। इसमें गुजरात तथा उत्तरीय कोंकण का अंचल था जाता था। मुसलमानों के काल में लार समुद्र तथा भाषा लारी का उल्लेख मिलता है। लाट देश के अन्तर्गत भरुकच्छ (भड़ौच भरुकच्छ) तथा ओजेन (उज्जैन) नगर थे।

३०२. (१) द्वार : द्वार का अर्थ दर्रा का नाम है। संस्कृत में दर्रों को संकट कहते हैं। मौर्य काल की तरह कश्मीर में दर्रों अर्थात् द्वारों की सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाता था। द्वारों पर सेना रहती थी। सुरक्षा की दृढ़ व्यवस्था की जाती थी। उन्हें द्वारपति, द्वाराधिपति, द्वारपति, द्वारेश, द्वाराधिकारी तथा द्वारनायक कहा जाता था। द्वार के आधीन 'द्रंग' अर्थात् चौकियाँ होती थीं। द्रंगाधिपति द्रंग का नायक होता था। वह द्वाराधिप के आधीन होता था। कल्हण ने द्वार का पुनः उल्लेख रा० त० ४:४०४ ५:१३७, ८:१५१० में किया है। विशेष द्रष्टव्य है टिप्पणी १:१२२ पृष्ठ १८२।

(२) गर्त : हस्तिवंज जिसे आइने अकबरी में गलती से हस्तिवतर लिख दिया गया है। पीर पंजाल मार्ग पर अलियाबाद सराय से आधा मील अधोभाग में है।

तदाकर्णनसंरम्भे सहर्षोऽथ विरुद्धधीः ।
शतमन्यद्गजेन्द्राणां हठेन निरलोठयत् ॥ ३०३ ॥

३०३. उस समय विरुद्धधी, प्रसन्न उस राजा ने, उस घोष को सुनने के उत्साह में एक सौ दूसरे हाथियों[1] को बलात् गर्त[2] में गिरवा दिया ।

---

(३) गज-हाथी : वरनीयर इसी प्रकार की औरंगजेब के समय की एक घटना का वर्णन करता है, जबकि हाथी पीर पंजाल पन्तसल या पंचाल धारा पर्वत पर चढ़ रहा था, तो गर्त में गिर गया ।

३०३. (१) हाथी : सुंग युन तथा कोसमस इण्डिको प्लीपुस्टेस (पृष्ठ ७९) दोनों इस बात पर जोर देते हैं कि श्वेत हूणों की सेना में हाथियों का एक बड़ा भारी समूह था । सुंग युन लिखता है कि सेना में सात सौ हाथी थे । इण्डिकोप्लीपुस्टेस से प्रतीत होता है कि 'गोल्लास' (मिहिरकुल) के युद्ध में जाते समय एक सहस्र हाथी से कम उसके पास नहीं थे ।

(२) गर्त : हस्तिवंज : प्राचीन काल से ही यह घटना जहाँ हुई थी उसे लोग जानते हैं । इस घटना के पश्चात् से मिहिरकुल जिस मार्ग से लौटा था उसे हस्तिवंज कहने लगे थे । आइने अकबरी में यह घटना राजतरंगिणी से ली गयी है । उसमें गलती से 'हस्तीवतर' स्थान का नाम लिखा है ।

काश्मीर इतिहास लेखक हैदर मलिक, नारायण कौल और बीरबल कचरू हस्तिवंज ही नाम देते है । उसे पीर पंजाल पर्वतमाला में ही स्थित करते हैं ।

स्तीम ने स्वयं सितम्बर १८९१ में इस स्थान की यात्रा की थी । उसने वहाँ स्थान तथा लोक-श्रुति का पता लगा लिया था । उसने वहाँ का विस्तृत वर्णन टोपो ग्राफी पीर पन्तसाल मार्ग जे० ए० एस० बी० १८९५ पृष्ठ ३७६ पर दिया है । पुराने मुगल मार्ग का वर्णन किया है । हूरपुर अर्थात् शूरपुर (३:२१७) से यह मार्ग कुछ दूर तक रामन्यार नदी के दक्षिण तट के साथ चलता है । फिर मार्ग यह ऊँचाई पार करता वाम अथवा उत्तरी तट पर चलता पुरानी मुगल सराय जिसे 'अलियाबाद' कहते हैं पहुँचता है । दक्षिणी पार्श्व के संकुचित मार्ग के दूसरी तरफ लगभग आध मील अलियाबाद के अधो-भाग में एक ऊँची पर्वतीय ऊर्ध्व भूमि मिलती है । वहाँ से कगार की चट्टान ढालुआ होती नदी के पेटा में मिल जाती हैं । यह झुकी हुई ऊर्ध्वभूमि हस्तिभंज का स्थान कहा जाता है । यहाँ के सभी लोग इस बात को दुहराते हैं । एक राजा का हाथी यहाँ से नीचे खड्ड में गिर गया था । राजा का नाम उन्हें नहीं मालूम है । हाथी स्वयं गिरा था । अथवा गिरा दिया गया था । यह भी उन्हे मालूम नहीं है ।

अकबर के सड़क बनवाने के पहले मार्ग हस्तिवंज टीले पर से रामन्यार नदी के दक्षिण तट से जाता था । आइने अकबरी में अबुल फजल भीमयर से काश्मीर के अनेक मार्गों का वर्णन करता है । वह हस्तिवंज (हस्तिवतर) का उल्लेख अलग करता है (२:७।२७) । यह पूर्वकालीन मार्ग था । अकबर की सेना इसी मार्ग से काश्मीर पहुँची थी ।

पीर पंतसल का मुगल मार्ग जो पोसियाना तथा बहराम गल्ला होकर जाता है वह दक्षिण से उस मार्ग से मिलता है । जो नन्दन सर के पास से दुरहाल दर्रा होता राजोरी जाता है । यहाँ से दक्षिण का मार्ग सीधा पड़ता है । इस मार्ग का लोग अब भी प्रयोग करते है । सन् १८१४ तथा १८१९ में सिखों ने अपने सैनिक अभियान के लिये इसी मार्ग को चुना था । यह मार्ग रामन्यार नदी के दक्षिण और हस्तिवंज के ऊपर होकर जाता है । इस प्रकार नदी पार नहीं करना पड़ता ।

सीमान्त प्राचीन द्वार अथवा ढक्क का स्थान क्रमावर्त में था । (रा० त० ३:२२७) । इस स्थान

को स्टीन ने कामरेन कोट से पहचाना है। यह वर्तमान द्वार स्थान रामब्यार नदी के दक्षिण में है। हस्तिवंज से लगभग ३ मील नीचे अर्थात् अधोभाग में है। इससे प्रकट होता है कि पुराना द्वार जिसका उल्लेख श्लोक २०२ में कल्हण ने किया है। उसी दिशा में रहा होगा।

हस्तिवंज जिस मार्ग से पार किया जाता है। यह ऊँचाई पर पड़ता, धान वाले ढाल से पूर्व की ओर टीले के पश्चिम पड़ता है। आज भी इस उपेक्षित मार्ग पर जानवरों पर सामान लादकर ले जाया जा सकता है।

हस्तवंज नाम से ही प्रकट होता है। स्थान का सम्बन्ध हस्त अर्थात् हाथी से रहा होगा। पर्शियन पुरावृत्तकारों से पता चलता है। 'वंज' शब्द का अर्थ 'गमन' अर्थात् चलना है। पश्चिमी पंजाबी में वंज माने 'चलना' आज भी प्रयुक्त होता है।

अलियाबाद सराय श्रीनगर से ४६ मील दूर होगी। पीर पंतसल या पंजाल दर्रा (संकट) के पड़ाव का स्थान है। मुगलों के समय यह सराय थी। आश्रय स्थान का काम करती थी। जंगल में है। शीतकाल में हिमाच्छादित हो जाता है। समुद्र की सतह से ११८०० फुट ऊंचा है।

गनीसरनी पर्वत शिखर लगभग १६००० फुट ऊँचा है। कौसर नाग पर्वत पर स्थित कश्मीर की सबसे बड़ी झील है।

इसका प्राचीन नाम क्रमसर है। शिखर का नाम नौबन्धन है। नौबन्धन तीर्थ का वर्णन महाभारत के वन पर्व १८७:५० में किया गया है। इस शिखर पर मत्स्य भगवान् के सींग से जोड़कर नौका ऋषियों ने बाँधा था। यह शिखर बनिहाल की पश्चिम दिशा में है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश,—तीन शिखर हैं। इनमें सबसे ऊँचा शिखर १५५२३ फुट है। यहीं प्रसिद्ध कौसरनाग तीर्थ है।

कौसरनाग [illegible] तथा [illegible] के नाश के लिए निकली है। नाग से दुर्गा आविर्भूत [illegible] के संहार से रक्षा निमित्त उत्पन्न हुई थी। 'महाभारत वन पर्व १८७:५०, नीलमत ३३, हरचरित चिंतामणि ४:२७, श्रीवर १:१७४, सर्वावतार ३:४,१२; ४:१७४, नौबन्धन माहात्म्य)

वह समुद्र की सतह से १३००० फुट ऊँचाई पर है। झील दो मील लम्बी है। झील के चारों ओर हिमालय की अत्यन्त शोभनीय पर्वतमालाएँ तथा शिखर हैं। उनमें ३ शिखर १५००० फुट ऊँचे हैं। वे कौसर नाग सर को जैसे निरन्तर नीचे की ओर देखती रहती हैं। 'पंजाल' ईरानी शब्द है। काश्मीरी में उसे पंतसल कहते हैं। इसका अर्थ होता है यात्रियों के लिए जल का प्रबन्ध। 'पौसला' अथवा 'पौसरा' से इस शब्द का मेल खाता है। पौसला, पौसरा, प्याऊ, सबील, एक ही शब्द के समानार्थक भिन्न नाम हैं। उनका सम्बन्ध पानी से है। पंचाल शब्द के लिए पन्तशाल शब्द का प्रयोग किया गया है। पंचाल महाभारत में एक जनपद के लिए प्रयुक्त किया गया है। (भीष्म पर्व ९ ४१ ९ ४७)

मैंने इस स्थान को देखा है। यदि ऊपर अर्थात् भारत से आने वाले मार्ग से श्रीनगर की ओर चला जाय तो इस अंचल का सर्व प्रथम प्राचीन स्थान पुष्याणाद मिलेगा। यह वर्तमान पुशियान है। तत्पश्चात् पंचाल धारा पड़ेगी। अनन्तर हस्तिवंज और फिर उसके बाद उत्तरार्द्ध पर क्रमावर्त, द्रग एवं शूरपुर पड़ेगा। शूरपुर को आज कल सूरपुर कहते हैं। तत्पश्चात् प्राचीन देग्राम, नगकोल, मिनार और शुपियान पड़ता है। शुपियान के पश्चात् श्रीनगर और विजयेश्वर तक समतर भूमि मिलने लगती है।

अलियाबाद सराय रामब्यार नदी के वाम तट पर खड़े ऊँचे पहाड़ के मूल में स्थित है। नवम्बर से अप्रैल तक तुषार से ढँका रहता है। यहाँ उस समय कोई नहीं आता। वह उजड़े, निर्जन स्थान में उपेक्षित पड़ा है। यात्रियों का विश्राम स्थान प्रवेश द्वार के दूसरी तरफ के आंगन के पश्चिम पार्श्व में है। इमारत जर्जर रूप में खड़ी है। उसमें शिल्पी

तथा दरवाजे तक नहो लगे है। सराय की अपेक्षा इसे अस्तबल्ल कहना ठीक होगा। फिर भो तूफान में इससे रक्षा की जा सकती है। यह इतना ठण्डा तथा डरावना है कि यहां पर किसी प्रकार का सामान नहीं मिलता। सराय के चारो तरफ कैम्प लगाने लायक स्थान है। नदी के तट के समीप यहीं हैजे द्वारा सन् १८७६ में मरे अल्फ्रेड जान वले एस० डी० की कब्र है। इस सराय पर पहुचने के पूर्व रामव्यार नदो के दक्षिणी तट पर एक स्रोतस्विनी इससे मिलती है। उसे लट्टी नाला कहते है। इसके तट से मार्ग नन्दन सर तथा भगसर को जाता है। इन सरो मे राजौरी से दरहल दर्रा से होकर पहुंचा जा सकता है। वहा दो-तीन पडाव डाल कर पैदल पहुचा जाता है। यहा जाने के लिए वरमगल्ला या पोशियन या हुरपुर से सामान आदि ले लेना चाहिए। रावलपिण्डी से आने वाले मार्ग पर यह कश्मीर उपत्यका के सबसे समीपवर्ती पडने वाले सर है। बड़ी ऊँचाई पर होने के कारण स्थान शीतल, पथरीला तथा रहने योग्य नही है। कठिनता से जलोनी लकडी मिलती है। यहा कुछ ऊपज नही होती। कस्तूरी मृग अलियाबाद सराय के ऊँचे पर्वतो स्थानों मे मिलते है।

अलियाबाद मे यात्रियो को नही ठहरना चाहिए। सराय से ६ मील दूर दांसोद मे ठहरना चाहिए। कैम्प लगाने लायक स्थान रामव्यार नदी के दक्षिण तट पर मिल जाता है। यहाँ से सुपियान एक दिन मे जाया जा सकता है।

वेग्टन नाइट ने सन् १८६० जून २७ मे यहा की यात्रा की थी। वह अपनी पुस्तक मे लिखता है—दो मील दर्रा से नीचे उतरने पर अलियाबाद सराय मिली। वहा पर रहने लायक एक भाग था जिससे एक फकीर या मुल्ला रहता था। और एक युवक बंगाली तोपची जो शिकार खेलने आया था रहता था। लगभग मध्याह्न काल मे पानी बरसने लगा। वहाँ एक कष्टप्रद रूम में बचाव के लिए गया। वहाँ की फर्स सीलन से भरी थी। वहाँ पत्थर के बहुत ही सुन्दर समतराशी की एक खिडकी थी। वहाँ की शेष इमारतों से वह मेल नहीं खाती थी। सराय के बीच मे हरा जल से भरा एक गड्ढा था। पृष्ठ ७१

डब्ल्यू०डब्ल्यू० अल्फ्रेड (१८७५) संक्षेप में केवल इतना कहता है। पोशियन से अलियाबाद सराय आया जाता है। दोनों के मध्य मे दूरी ११ मील है। एक दिन मे मार्ग खतम किया जा सकता है। मुख्य दर्रा पीर पंजाल का यहाँ से पार किया जाता है। वह ऊँचो और खड़ी चढाई है। चढाई ऊँचाई पर टेढा मेढा और पहाड का किनारा काटकर कर मार्ग बनाया गया है। मार्ग काफी अच्छा है। परन्तु कही कही पर बडे बड़े पत्थरों के ढोको और असम्बन्धित पत्थरो के कारण उवड खाबड है। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता था कि कैसे टट्टू खच्चड लदे हुए एक चट्टान से दूसरे चट्टान पर बिल्ली की तरह कूदते हुए चलते थे। ऊपर की चढाई धीमी पड़ जाती है। पेतशिया से प्रस्थान करने पर चार घण्टे मे शिखर पर पहुँचते है। जहाँ से पाशियाना ६ मील पीछे छूट जाता है।

शिविर उतराई क्रमशः सरल दूर्वाच्छादित प्लेटो ८र से आरम्भ हो जाती है। ५ मील लम्बा तथा आठ मिल चौड़ा मार्ग ५ मील चलकर अलियाबाद सराय पहुचा देता है। यह यात्रियों के लिए एक साधारण आश्रम स्थान है। यह एकाकी एक निर्जन स्थान मे खडा है। वर्ष के अधिक महीनो में वह वीरान पड़ा रहता है। क्योंकि वर्फ के कारण यहाँ पहुँचना कठिन हो जाता है।

बादशाह (औरंगजेब) पीर पंजाल पर्वत पर चढ रहे थे। वह पहाडो मे सबसे ऊँचा था। वहाँ से कश्मीर का दृश्य मिल जाता है। बादशाह के पीछे हाथियो की लम्बी कतार थी। जिनमें महिलाएँ थी। हौदा तथा अम्बारियों में बैठी थी। पहला हाथी लम्बी चढ़ाई देखकर भयभीत हो गया। वह पीछे

तथा दरवाजे तक नहीं लगे हैं। सराय की अपेक्षा इसे अस्तबल कहना ठीक होगा। फिर भी तूफान में इसमें रक्षा की जा सकती है। यह इतना ठण्डा तथा डरावना है कि यहां पर किसी प्रकार का सामान नहीं मिलता। सराय के चारों तरफ कैम्प लगाने लायक स्थान है। नदी के तट के समीप यहीं हैजे द्वारा सन् १८७६ में मरे अल्फ्रेड जान चले एस० सी० की कब्र है। इस सराय पर पहुँचने के पूर्व रामब्यार नदी के दक्षिणी तट पर एक स्रोतस्विनी इससे मिलती है। उसे लूही नाला कहते हैं। इसके तट से मार्ग नन्दन सर तथा भगसर को जाता है। इन सरों में राजौरी से दरहल दर्रा से होकर पहुंचा जा सकता है। वहां दो-तीन पड़ाव डाल कर पैदल पहुंचा जाता है। यहां जाने के लिए बरमगल्ला या पोशियन या हुरपुर से सामान आदि ले लेना चाहिए। रावलपिण्डी से आने वाले मार्ग पर यह कश्मीर उपत्यका के सबसे समीपवर्ती पड़ने वाले सर है। बड़ी ऊँचाई पर होने के कारण स्थान शीतल, पथरीला तथा रहने योग्य नहीं है। कठिनता से जलौनी लकड़ी मिलती है। यहां कुछ ऊपज नही होती। कस्तूरी मृग अलियाबाद सराय के ऊँचे पर्वती स्थानों में मिलते हैं।

अलियाबाद में यात्रियों को नहीं ठहरना चाहिए। सराय से ६ मील दूर शंसोद में ठहरना चाहिए। कैम्प लगाने लायक स्थान रामब्यार नदी के दक्षिण तट पर मिल जाता है। यहाँ से मुपियान एक दिन में जाया जा सकता है।

कैप्टन नाइट ने सन् १८६० जून २७ में यहां की यात्रा की थी। वह अपनी पुस्तक में लिखता है—दो मील दर्रा से नीचे उतरने पर अलियाबाद सराय मिली। यहां पर रहने लायक एक भाग था जिसमें एक फकीर या मुल्ला रहता था। और एक युवक बंगाली तोपची जो शिकार खेलने आया था रहता था। लगभग मध्याह्न काल में पानी बरसने लगा। वहां एक कष्टप्रद रूप में बचाव के लिए गया। वहां की फर्श सीलन से भरी थी। वहां पत्थर के बहुत ही सुन्दर संगतराशी की एक खिड़की थी। वहां की शेष इमारतों से वह मेल नहीं खाती थी। सराय के बीच में हरा जल से भरा एक गड्ढा था। पृष्ठ ७१

डब्ल्यू०डब्ल्यू० मरक्रेड (१८७५) संक्षेप में केवल इतना कहता है। पोशियन में अलियाबाद सराय आया जाता है। दोनों के मध्य में दूरी ११ मील है। एक दिन में मार्ग खतम किया जा सकता है। मुख्य दर्रा पीर पंजाल का यहां से पार किया जाता है। वह ऊँची और खड़ी चढ़ाई है। चढ़ाई ऊँचाई पर टेढ़ा मेढ़ा और पहाड़ का किनारा काटकर कर मार्ग बनाया गया है। मार्ग काफी अच्छा है। परन्तु कहीं कहीं पर बड़े बड़े पत्थरों के ढोंकों और असम्बन्धित पत्थरों के कारण उबड़ खाबड़ है। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता था कि कैसे टट्टू। लच्चड लदे हुए एक चट्टान से दूसरे चट्टान पर बिल्ली की तरह कूदते हुए चलते थे। ऊपर की चढ़ाई धीमी पड़ जाती है। पोशिया से प्रस्थान करने पर चार घण्टे में शिखर पर पहुँचते हैं। जहां से पोशियाना ६ मील पीछे छूट जाता है।

शिविर उतराई क्रमशः सरल दूर्वाच्छादित प्लेटो पर से आरम्भ हो जाती है। ५ मील लम्बा तथा आठ मिल चौड़ा मार्ग ५ मील चलकर अलियाबाद सराय पहुंचा देता है। यह यात्रियों के लिए एक साधारण आश्रम स्थान है। यह एकाकी एक निर्जन स्थान में खड़ा है। वर्ष के अधिक महीनों में यह वीरान पड़ा रहता है। क्योंकि वर्फ के कारण यहां पहुँचना कठिन हो जाता है।

बादशाह (औरंगजेब) पीर पंजाल पर्वत पर चढ़ रहे थे। वह पहाड़ों में सबसे ऊँचा था। वहां से कश्मीर का दृश्य मिल जाता है। बादशाह के पीछे हाथियों की लम्बी कतार थी। जिनमें महिलाएँ थीं। हौदा तथा अम्बारियों में बैठी थी। पहला हाथी लम्बी चढ़ाई देखकर भयभीत हो गया। वह पीछे

हटा। उसके पीछे हटने पर पीछे वाले हाथी अपने पीछे वाले हाथी को धक्का दिये। इस प्रकार हट जाने के कारण पंक्ति में हाथियों ने अपने पिछले आने वाले को हठात् धक्का दिया। वहाँ चढ़ाई और मार्ग पतला था। घूम न सकने के कारण उस घबड़ाहट में १५ हाथी ऊँची चढ़ाई से नीचे गिर गये। उन पर चढ़ी स्त्रियों में तीन मर गईं। शेष इस लिए बच गयीं कि वहाँ चढ़ाई बहुत ऊँची नहीं थी। हाथियों को बचाने का कोई उपाय नहीं था। हाथी जब अच्छी सड़क पर गिर जाते हैं उस समय भी उन्हें उठने में कष्ट होता है। हाथियों के गिरने के दो दिन पश्चात् हम लोग इस मार्ग से गुजरे। मैंने उन गरीब हाथियों को देखा कि उनमें कुछ अभी भी सूँड हिला रहे थे। बादशाही फौज जो एक ही पंक्ति से इस मार्ग से जा रही थी उसे बहुत असुविधाओं का सामना करना पड़ा था। शेष दिन तथा रात गिरी स्त्रियों तथा सामान बचाने में लगाया गया।

हमें तीन चीजें स्मरण रहेंगी जब हम यहाँ से आ रहे थे। पहला तो यहाँ गरमी तथा ठंडक दोनों ऋतुओं का अनुभव एक ही घण्टा के बीच में हुआ। चढ़ते समय बड़ी धूप लगी और पसीना आने लगा। चोटी पर पहुँचते ही जमा बर्फ मिला। बर्फ काटकर जाने वाली फौज ने रास्ता बना दिया था। कुछ पानी बरसने लगा था। शरीर को चुभने वाली ठण्डी हवा चलने लगी थी।

दूसरी चीज यह थी कि २०० कदम के बीच ही दो दिशाओं से एक साथ हवा चल रही थी। चोटी पर चढ़ने के समय यह उत्तर से बह रही थी। जब मैं उतरने लगा तो यह पीठ की तरफ अर्थात् दक्षिण से बहने लगी।

तीसरी चीज यहाँ पर मुझसे एक फकीर से भेंट हुई। वह जहाँगीर के समय से यहाँ की चोटी पर रहता था। उसके धर्म के विषय में नहीं कहा जा सकता था कि वह किस धर्म का अनुयायी था। कहा जाता था कि वह अलौकिक बातें करता था। वह विचित्र बिजली पैदा कर देता था। हवा का तूफान चला देता था। वह तुषार तथा वर्षा तक करा देता था।

उसकी सफेद और घनी दाढ़ी बहुत लम्बी थी। वह बड़ी रुखाई तथा कड़ाहट के साथ भीख माँगता था। वह देखने में जंगली मालूम होता था। वह यात्रियों के एक पत्थर पर रखे गये कतार में मिट्टी के बरतन से पानी पी लेने के संकेत के साथ जल्दी से जल्दी चुपचाप चोटी छोड़कर चले जाने का इशारा करते हुए वहाँ ठहरने के लिए हाथ से मना करता था। वह उन लोगों पर बड़ा गुस्सा होता था जो हल्ला करते थे। मैं उसकी गुफा में गया। आधा रुपया उसके हाथ पर रखा। उसको देखा कि मुखाकृति पर कुछ कोमलता आई है। उसने मुझे बताया कि यहाँ हल्ला करने से बड़ी भयंकर आँधी आती है। औरंगजेब ने उसकी सलाह पर बुद्धिमानी से काम लिया। फौज को जल्दी तथा चुपचाप चले जाने का आदेश दिया। उसका पिता शाहजहाँ भी इसी प्रकार विवेक से काम लेता था। जहाँगीर ने एक बार उसके कहने के अनुसार काम नहीं किया और झाँझ तथा तुरही बजवाया। वह बड़ी कठिनता से विनाश होने से बच पाया। पृष्ठ ४०८-४१०

पुस्तक का सम्पादक इस पर नोट लिखता है कि आज कल भी कश्मीर के पर्वतों की चोटी पर स्थित पवित्र स्थानों पर यात्रा करने वाले मन्त्रादि तथा प्रार्थना नहीं करते जब कि वे बर्फ के किनारे पहुँचते हैं। क्योंकि वाणी की प्रतिध्वनि के अवालांच को अस्थिर कर देता है और उसके लपेट में कितने ही नर नारी नष्ट हो जाते हैं। नोट पृष्ठ ४१०

उक्त वर्णित फकीर की मजार सम्भवतः दर्रा की चोटी पर है। यहाँ बहुत यात्री अब भी आते हैं। कश्मीरी बहुत दूर से लाश दफनाने के लिए यहाँ लाते हैं। आज भी मजार के पास एक फकीर दिखाई पड़ता है। वह दर्रा की चोटी पर रहता है। वह यात्रियों को दूध, पानी तथा आवश्यक सामान देता है। नोट पृष्ठ ४०९

स्पर्शोऽङ्गानि यथा वाचं कीर्तनं पापिनां तथा ।
संदूषयेदतो नोक्ता तस्यान्याऽपि नृशंसता ॥ ३०४ ॥

३०४. जिस प्रकार पापियों का स्पर्श अंगों को दूषित करता है, उसी प्रकार पापियों का कीर्तन वाणी को सन्दूषित करता है। अतएव उसकी अन्य नृशंसता का वर्णन नहीं किया गया है।

को वेत्त्यद्भुतचेष्टानां कृत्यं प्राकृतचेतसाम् ।
धर्मं सुकृतसंप्राप्तिहेतोः सोऽपि यदाददे ॥ ३०५ ॥

३०५ अद्भुत चेष्टा करने वाले सामान्य चेतस प्राणियों के कृत्य को कौन जान सकता है, जबकि वे भी सुकृति प्राप्ति हेतु धर्म का आश्रय लेते हैं।

श्रीनगर्यां हि दुर्बुद्धिर्विदधे मिहिरेश्वरम् ।
होलाडायां स मिहिरपुराख्यं पृथुपत्तनम् ॥ ३०६ ॥

३०६. उस दुर्बुद्धि राजा ने श्रीनगर में मिहिरेश्वर[1] तथा होलाडा[2] में मिहिरपुर[3] नामक महा नगरों की स्थापना की।

आइने अकबरी में भी यह कहानी दी गयी है। मिहिरकुल लज्जाहीन क्रूर राजा था। स्वर्ग ने उसे इजाजत नहीं दी थी कि वह काफी फतह करे। एक बार जब वह पर्वत से हस्तीवतर स्थान पर उतर रहा था तो एक हाथी फिसल कर गर्त में चला गया। मृत्युमुग्न कष्ट में पड़े हाथी का आर्तनाद सुनकर मिहिरकुल प्रसन्न हो गया। तुरन्त आदेश दिया कि एक सौ हाथी और उस स्थान पर ढकेल दिए जाएँ। वह क्रूर राजा उन हाथियों का करुण क्रन्दन सुनकर आनन्द विभोर हो उठा।

बरनीयर कहता है कि औरंगजेब जब कश्मीर जा रहा था तो इस स्थान पर १५ हाथी नीचे गिर कर मर गये।

विचित्र बात है कि सुंग-युन तथा यूनानी लेखक कौसमस दोनों ही हूणों की सेना में विशाल हाथीवाहिनी का वर्णन करते हैं। सुंगयुन सशस्त्र सुसज्जित ७०० शिक्षित हाथियों का वर्णन मिहिरकुल की सेना में करता है। कोसमस ने गोल्ला को युद्ध पर एक हजार से कम हाथियों के साथ जाते नहीं कहता।

पीर पंजाल का प्राचीन नाम पंचाल धारा है। वह कश्मीर की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर स्थित है।

निम्नलिखित उल्लेख नीलमत पुराण में इसके सन्दर्भ में आता है :

तदा स्थापयते राजंस्तां च नावं जगद्गुरुः ।
मत्स्यरूपधरो विष्णुः शृङ्गे कृत्वापकर्षयति ॥
आकृष्य नावं तां देवस्तस्मिन्पर्वतमस्तके ।
बद्ध्वा व्रजति भूपाल ह्यभिज्ञातां तद्गतिम् ॥
इदं च शिखरं पश्य देशेऽस्मिन्नृप पश्चिमे ।
नौबन्धनमिति ख्यातं पुण्यं पापभयापहम् ॥

६०-६१: 39-41

नानेतान् शिखरान्पश्य ब्रह्माविष्णुमहेश्वरान् ।
नौबन्धशिखरं यत्तु स एव नृप शंकरः ॥

क्षेमेन्द्र कवि ने समयमातृका में वर्णन किया है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३०५ में 'वेत्त्यद्भुत' का पाठभेद 'वेत्त्युद्वृत्त' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३०६ में 'होलाडाया' का पाठभेद 'होलाडायां', 'होलाह्लायां', 'होलडाया' तथा 'होलाट्टायां' मिलता है।

अग्रहारानगृहिरे　　गान्धारब्राह्मणास्ततः ।
समानशीलास्तस्यैव ध्रुवं तेऽपि द्विजाधमाः ॥ ३०७ ॥

३०७. उसके समान शील वाले, वे द्विजाधम गान्धार[1] ब्राह्मणों ने उस राजा से अग्रहार ग्रहण किया।

पादटिप्पणियाँ :

३०६ (१) मिहिरेश्वर : यह मन्दिर कहाँ था कुछ पता नहीं चलता। राजा मिहिरकुल ने अपने नाम पर मिहिरेश्वर की स्थापना की। इससे पता चलता है कि वह पूर्णतया शिवभक्त था।

(२) होलाडा : प्राचीन हालदा अचल अवन्तीपुर के दक्षिण दिशा में है। इसके पूर्व कटिवा, ऊवच्छेद, गोल तथा उत्तर में पर्वत और पश्चिम में वितस्ता नदी पड़ती है। होलडा क्षेत्र इस समय वुलर परगना नाम से विख्यात है। काश्मीर उपत्यका में वितस्ता के उत्तर-पूर्व दछिनपुर तथा शोही परगना के बीच में स्थित है। इसका प्रशासकीय केन्द्र त्राल है। लार अर्थात् लोहर तथा देवसर के सम्बन्ध में इसका पुनः उल्लेख आया है। रा० त० ८:३१२५। सरस ७ १२२८ के वर्णनों से प्रकट होता है कि यह मडव राज्य में था। मडव राज्य मराज है। काश्मीर उपत्यका का पूर्वीय भाग है। इसका स्थान रा० त० ८:१४३० के वर्णन से और स्पष्ट हो जाता है। राजा जयसिंह के दो अधिकारी होलदा के विद्रोही डामरों द्वारा घेर लिये गये थे। यह स्थान अवन्ति स्वामी का मन्दिर था। अवन्तीपुर में था। अवन्तीपुर उत्तर परगना में है। रा० तरंगिणी (८:७३३,२८०८,३११५) से और समर्थन मिलता है। होलदा के डामर खूदवी अर्थात् खुव के डामरों के साथ दिखाये गये हैं। खुव योही परगना के समीप था। जोनराज के वर्णन (श्लोक सं० ५४८) से मालूम होता है।

(३) मिहिरपुर : स्थान का पता नहीं चला है। इस नाम तथा इससे मिलते किसी अपभ्रंश नाम का कोई स्थान अभी तक नहीं पाया जा सका है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३०७ में 'गान्धारब्रा' का पाठभेद 'गान्धाराग्रा', मिलता है।

३०७ (१) गान्धार : काबुल उपत्यका का गान्धार एक प्रदेश था। इसमें अग्रहार, लम्पक (लमगान) कपिसा (काबुल तथा कोहिस्तान का उत्तरी भाग) तथा पुरुषपुर (पेशावर) सम्मिलित थे।

गान्धार के ब्राह्मणों का वर्णन महाभारत के कर्ण पर्व में आता है। उनका वर्णन पंजाब के ब्राह्मणों के साथ उनके असनातनी आचार के सम्बन्ध में किया गया है। महाभारत की बातों का ही समर्थन कल्हण के वर्णन से मिलता है। कल्हण उन्हें द्विजाधम कहता है। महाभारत काल में भी गान्धार ब्राह्मणों के आचार उत्कृष्ट नहीं माने गये थे और लगभग ३ हजार वर्ष पश्चात् कल्हण ने उनकी निन्दा दूषित तथा क्रूर मिहिरकुल द्वारा किए गए दान लेने के कारण किया है। काश्मीर के ब्राह्मणों ने सम्भवतः पापी तथा दुरात्मा के हाथों द्वारा प्रदत्त पाप धन रूप दान लेना अस्वीकार किया था। अतएव गैर काश्मीरी अर्थात गान्धार के ब्राह्मणों को दान देने की बात कहकर कल्हण काश्मीरी ब्राह्मणों के चरित्र की गौण रूप से प्रशंसा करता है।

नीलमत पुराण में गान्धार देश का उल्लेख मिलता है :

दर्वाभिसार गान्धार जुहुण्डुरशकान खशान्।
तंगणान् माण्डवान् मद्रानन्तर्गिरि बहिर्गिरीन् ॥
80:१२२

दार्वाभिसारगान्धारजालन्धरशका　　खसाः ।
तंगणा माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिः बहिर्गिरिः ॥
139:१८२

मेघागमः फणिभुजं प्रथितान्धकारः
प्रीणाति हंसममलो जलदात्ययश्च ।
प्रीतेः समानरुचितैव भवेन्निमित्तं
दातुः प्रतिग्रहकृतश्च परस्परस्य ॥ ३०८ ॥

३०८. घोर अन्धकार वाले मेघ का आगमन मयूर को तथा जलद का निर्मल अन्त हंस को प्रसन्न करता है। क्यों कि दाता एवं ग्रहीता की समान रुचि ही परस्पर प्रेम का कारण होती है।

स वर्षसप्ततिं भुक्त्वा भुवं भूलोकभैरवः ।
भूरिरोगार्दितवपुः प्राविशज्जातवेदसम् ॥ ३०९ ॥

३०९. वह भूलोक भैरव सत्तर वर्ष भूमि का भोग करके अत्यधिक रोग ग्रस्त होकर, अग्नि में प्रवेश किया।

सोऽयं त्रिकोटिहा मुक्तो यः स्वात्मन्यपि निर्घृणः ।
देहत्यागेऽस्य गगनादुच्चचारेति भारती ॥ ३१० ॥

३१०. इसके शरीर त्यागने पर गगन से यह भारती उच्चरित हुई—'त्रिकोटिहन्ता वह मिहिरकुल मुक्त हो गया, जिसने अपने शरीर पर भी दया नहीं की।'

उरचः क्रोकणो वायुः शुक्रो वैश्रवणो यमः ।
मण्डक नासो गान्धारो नागः शूर्पारकिर्ध्वनिः ॥
894:१०६४

विशेष द्रष्टव्य है–'गान्धार' पृष्ठ १०६ टिप्पणी श्लोक १:६५

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०८ में 'त्ययश्च' का 'ग्ययश्च' 'निमित्तम्' का 'नितान्तं' तथा 'ग्रहकृतश्च' का पाठभेद 'ग्रहहुतश्च' मिलता है।

३०९. (१) भूलोकभैरव : अष्ट भैरव निर्दिष्ट है, उनके नाम है—असितांग, रुद्र, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कुपति किंवा कपालिन्, भीषण एवं संहार। भैरव की गणना रुद्र गणों में होती है। भैरव वाराणसी नगर के क्षेत्रपाल (कोतवाल) है। लिंग पुराण वीरभद्र को ही भैरव का रूप मानता है। कालिका पुराण में भैरव स्तोत्र नामक मंत्र की विस्तृत व्याख्या उपलब्ध है। उसके अनुसार वाराणसी असुरविख्यात राजा विजय भैरव का वंशज था। उसने खाण्डवी नगर को विध्वस्त कर खाण्डव वन निर्माण किया था। (कालिका पुराण ९२)।

भैरव की उत्पत्ति की कथा लिंग पुराण (१:९८) में दी गयी है। एक समय विष्णु तथा ब्रह्मा गर्वोद्धत होकर भगवान् शंकर का अपमान करने लगे। शिव क्रुद्ध हुए। एक अत्यन्त भयानक शिवगण को उत्पन्न किया। वही भैरव है। उत्पन्न होते ही वाम कर की उँगली के नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ मुख काट डाला। ब्रह्मा ने अपने पाँचवें मुख से शिव की निन्दा की थी। अतएव उसे ब्रह्म हत्या का पातक लग गया। शिव ने ब्रह्मा का कपाल भैरव को थमा दिया। आदेश दिया कि कपाल में भिक्षा माँगो। साथ ही शंकर ने ब्रह्म हत्या से एक स्त्री का निर्माण किया। और उसे भैरव का अनुकरण करने का आदेश दिया।

अन्ततोगत्वा वाराणसी क्षेत्र में प्रवेश करने पर इसकी ब्रह्म हत्या दूर हो गयी। तत्पश्चात् ब्रह्मा का कपाल भैरव के हाथ से गिर गया। जिस स्थान पर

इत्यूचुर्ये मते तेषां य एव परिहारदः ।
खण्डयन्वीतघृणतामग्रहारादिकर्मभिः ॥ ३११ ॥

३११. जो लोग इस प्रकार कहते थे, उनके मन मे था। परिहार देने वाले, उसी राजा ने अपनी निर्दयता को, अग्रहारादि कर्मों द्वारा खण्डित कर दिया था।

आक्रान्ते दारदैर्भौट्टैर्म्लेच्छैरशुचिकर्मभि ।
विनष्टधर्मे देशेऽस्मिन्पुण्याचारप्रवर्तनम् ॥ ३१२ ॥

३१२. दरदों,[१] भौट्टों,[२] म्लेछों[३] तथा अन्य अशुचि कर्मों द्वारा आक्रान्त इस विनष्टधर्म देश मे उसने पुण्याचार का प्रवर्तन किया।

गिर गया उसे कपाल मोचन तीर्थ कहते हैं। (शिव० शतः ८ तथा स्कन्ध पुराण ३:१:२४)।

भैरवी यातना काशी में एक प्रचलित शब्द है। काशी में मृत व्यक्ति को भैरव दो घड़ी में यातना देकर उसे मुक्ति दे देते हैं। इसी के आधार पर कहा जाता है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है।

कल्हण ने भू-लोक भैरव मिहिरकुल को कहा है। वह इतना भयंकर था कि काल स्वरूप भैरव तुल्य था। इस भूमि का अर्थात् मानव रूप यह भैरव था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१० में 'गगना' का पाठभेद 'गणना' मिलता है।

३१०. (१) भारती : इसका शाब्दिक अर्थ सरस्वती, वाणी, तथा वाणी की अधिष्ठात्री है। यहाँ पर कल्हणने आकाश वाणी के अर्थ में प्रयोग किया है। वह वाणी जो सुनाई पड़ती है। परन्तु कहने वाला दिखाई नहीं पडता।

३११. (१) खण्डित : दान की महिमा का वर्णन कल्हण यहाँ करता है। दान के द्वारा मिहिर-कुल के नृशंस एवं निर्दयता पूर्ण कार्यों के दोषों किंवा पापों का मोचन हो गया था। यदि मिहिरकुल ने क्रूरता की तो उसने उपकार भी किया था। कल्हण उसके गुण एवं अवगुण दोनो चरित्रो का यहाँ चित्रण करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१२ में 'भौट्टै' का पाठभेद 'भोट्टै' तथा 'भोट्टै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३१२. (१) दरद : कल्हण वर्णित दरद जाति आधुनिक दरद है। ये आर्य जातीय हैं। प्राचीन यूनानी लोगों को उनका ज्ञान था। ये इस समय भी सिंधु नदी के पश्चिम चित्राल और यासीन से गिलगिट, चिलास, बुंजी तथा कृष्णगंगा की उपत्यका मे रहते हैं। उनका निवास स्थान काश्मीर के उत्तर दिशा मे है। (रा० त० ७:११७१ तथा ८:२७०९) दरद के कुछ ग्रामों में विचित्र प्रथा है। धर्म परिवर्तन बहुत होता रहता है। बौद्ध माता-पिता का पुत्र मुसलमान और मुसलमान माता-पिता का पुत्र बौद्ध धर्मावलम्बी हो जाता है। इस ओर के दरदो मे किसी भी धर्म के प्रति विशेष आस्था नहीं है।

यूनानी इतिहास लेखक हिरोडोटस के समय से आज तक दरदो के निवास स्थानों में सम्भवतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यह कश्मीर की उपत्यका के उत्तरीय पर्वत माला में सुदूर पडता है।

(२) भौट्ट : तिब्बत वंशीय जाति है। कश्मीर के पूर्व तथा पूर्व-उत्तर अर्थात् वर्तमान काश्मीर के पर्वतीय क्षेत्र लद्दाख पास तथा कुछ स्कर्दू में निवास करते है। जो जिला भाग (रा० त० ८:२८८६) के वर्णन से मालूम होता है कि

दरस तथा लद्दाख के ऊँचे पर्वत भौट्ट तथा काश्मीर के मध्य जलच्छाया बनाता था। श्री जोनराज ने द्वितीय राजतरंगिणी में भौट्टों का उल्लेख किया है। कल्हण वर्णित भौट्ट यही लोग थे।

घनाम्बु प्राप्य भौट्टेभ्यः कश्मीरजनविक्रयात्।
गर्जन्नाशाः व्यधास्सर्वास्तदा रिञ्चनवारिदः ॥१५८

भौट्टाल्लहरकोटान्तः पट्टयिक्रयकौसुकान्।
प्रत्यहं वचनोयौरै रिञ्चनोऽथविसृष्टवान् ॥१६७॥

× × ×

स्वदेशे मन्त्रिणोस्तस्य कोटभट्टोदयश्रियोः।
समरेषु भरत्वासीच्चन्द्रडामरलीलयोः ॥ ३९९ ॥

× × ×

केवलं हृदयं शून्यं भौट्टानां नाभवत्तदा।
भूमिपालभयावेशात् कोपोऽपि चिरमश्रितः ॥८२५॥

श्रीवर ने तृतीय अर्थात् जोनराज तरङ्गिणी में भौट्टों का उल्लेख किया है।

अथाशङ्क्या नृपः पापं तद्वधात् कतिचिद्दिनैः।
अहिर्निष्कासयामास भुट्टमार्गेण तं सुतम् ॥१:७१॥

× × ×

कालेनाद्मखानेऽथ भुट्टान् जित्वा समागते।
हाज्यिखानोऽकरोद्याग्राः लोहराद्रौ नृपाज्ञया ॥१:८२॥

× × ×

पित्र्याः पैतामहा वापि विरुद्धा बन्धनेऽवसन्।
भुट्टदेशं धिया तस्य तेषां निष्कामनं व्यधात् ॥३:३२

सम्मोह तन्त्र में भोट देश का उल्लेख किया गया है :

ऐराकभोटांतर्चीन (मा) महाचीनस्तथैव च।
नेपाल(लः) शीलटट्टश्च, गौडकोशलमगधाः ॥

—शक्ति संगम तन्त्र ३:७:३३

काश्मीरं तु समारभ्य कामरूपाच्च पश्चिमे।
भोटान्तदेशो देवि ऐराकः परिकीर्तितः ॥ ३३ ॥

उक्त उल्लेखों से भोट देश का महाचीन, नेपाल, काश्मीर, कामरूप ऐराक के समीप वर्णन किया है। काश्मीर से कामरूप अर्थात् आसाम तक यह अंचल लम्बा था। मानसरोवर के दक्षिण था। इस प्रकार प्राचीन भोट्ट देश की सीमा उत्तर में मानसरोवर, दक्षिण में नेपाल, पूर्व में कामरूप किंवा आसाम तथा पश्चिम में काश्मीर था। वर्तमान तिब्बत का यह दक्षिणी भाग था। वर्तमान भूटान सिक्किम तथा तिब्बत का वह दक्षिणी भाग जो मानसरोवर के दक्षिण में पड़ता था, भोट देश में सम्मिलित समझा गया था। तिब्बती लोगों के लिए भोट्ट, भोटिया तथा भोट शब्द का प्रयोग किया गया है।

कल्हण ने 'भुट्टराष्ट्राधवन' भौट्ट देश जाने वाले मार्ग जोजिला पास का नाम दिया है। (रा० त० ८:२८८७)

(३) म्लेच्छ : यह सम्भवतः हूणों के लिये प्रयुक्त किया गया है जो सिन्धु महानद के उस पार रहते थे। किन्तु म्लेच्छ शब्द का रूप तथा उससे सम्बन्धित होने वाले लोगों की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है।

मुद्राराक्षस अंक प्रथम (१:२) में चाणक्य कहता है—'यथा तस्य म्लेच्छराजबलस्य मध्यात् प्रधानतमाः पञ्च राजानः परया भक्त्या राक्षसमनुवर्तन्ते। ते यथा—

कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिंहः
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमो सैन्धवः सिन्धुषेणः।
मेघाक्षः पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबलः पारसीकाधिराजो

म्लेच्छ राज मलयकेतु की सेना के पाँच प्रमुख राजगण राक्षस के बड़े भक्त तथा अनुयायी थे। उनका नाम— कुलूतराज चित्रवर्मा, मलयनरेश सिंहनाद, काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष, सिन्धु-देशाधिपति सिन्धुषेण, पारसीकाधिराज मेघाक्ष था।

राक्षस छठवें अंक में मलयकेतु को म्लेच्छ कहता है:—

इत्यूचुर्ये मते तेषां स एव परिहारदः ।
खण्डयन्वीतघृणतामग्रहारादिकर्मभिः ॥ ३११ ॥

३११. जो लोग इस प्रकार कहते थे, उनके मन में था। परिहार देने वाले, उसी राजा ने अपनी निर्दयता को, अग्रहारादि कर्मों द्वारा खण्डित कर दिया था।

आक्रान्ते दारदैर्भौट्टैर्म्लेच्छैरशुचिकर्मभि ।
विनष्टधर्मे देशेऽस्मिन्पुण्याचारप्रवर्तनम् ॥ ३१२ ॥

३१२. दरदों,[१] भौट्टों,[२] म्लेछों[३] तथा अन्य अशुचि कर्मों द्वारा आक्रान्त इस विनष्टधर्म देश मे उसने पुण्याचार का प्रवर्तन किया।

गिर गया उसे कपाल मोचन तीर्थ कहते हैं। (शिव० शतः ८ तथा स्कन्ध पुराण ३:१:२४)।

भैरवी यातना काशी में एक प्रचलित शब्द है। काशी में मृत व्यक्ति को भैरव दो घड़ी में यातना देकर उसे मुक्ति दे देते हैं। इसी के आधार पर कहा जाता है कि काशी मे मरने से मुक्ति होती है।

कल्हण ने भू-लोक भैरव मिहिरकुल को कहा है। वह इतना भयंकर था कि काल स्वरूप भैरव तुल्य था। इस भूमि का अर्थात् मानव रूप वह भैरव था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१० मे 'गगना' का पाठभेद 'गणना' मिलता है।

३१०. (१) भारती : इसका शाब्दिक अर्थ सरस्वती, वाणी, तथा वाणी की अधिष्ठात्री है। यहाँ पर कल्हणने आकाश वाणी के अर्थ में प्रयोग किया है। वह वाणी जो सुनाई पड़ती है। परन्तु कहने वाला दिखाई नही पडता।

३११. (१) खण्डित : दान की महिमा का वर्णन कल्हण यहाँ करता है। दान के द्वारा मिहिरकुल के नृशंस एवं निर्दयता पूर्ण कार्यों के दोषों किंवा पापों का मोचन हो गया था। यदि मिहिरकुल ने क्रूरता की तो उसने उपकार भी किया था। कल्हण उसके गुण एवं अवगुण दोनों चरित्रों का यहाँ चित्रण करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१२ में 'भौट्टै' का पाठभेद 'भोट्टै' तथा 'भट्टै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३१२. (१) दरद : कल्हण वर्णित दरद जाति आधुनिक दरद है। ये आर्य जातीय हैं। प्राचीन यूनानी लोगों को उनका ज्ञान था। ये इस समय भी सिंधु नदी के पश्चिम चित्राल और यागीन से गिलगिट, चिलास, बुंजी तथा कृष्णगंगा की उपत्यका में रहते हैं। उनका निवास स्थान काश्मीर के उत्तर दिशा मे है। (रा० त० ७:११७१ तथा ८:२७०९) दरद के कुछ ग्रामो में विचित्र प्रथा है। धर्म परिवर्तन बहुत होता रहता है। बौद्ध माता-पिता का पुत्र मुसलमान और मुसलमान माता-पिता का पुत्र बौद्ध धर्मावलम्बी हो जाता है। इस ओर के दरदों में किसी भी धर्म के प्रति विशेष आस्था नही है।

यूनानी इतिहास लेखक हिरोडोट्स के समय से आज तक दरदों के निवास स्थानों में सम्भवतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यह काश्मीर की उपत्यका के उत्तरीय पर्वत माला में सुदूर पड़ता है।

(२) भौट्ट : तिब्बत वंशीय जाति हैं। कश्मीर के पूर्व तथा पूर्व-उत्तर अर्थात् वर्तमान काश्मीर के पर्वतीय क्षेत्र लद्दाख पास तथा कुछ स्कर्दू में निवास करते हैं। जो जिला पास (रा० त० ८:२८८९) के वर्णन से मालूम होता है कि

दरस तथा लद्दाख के ऊँचे पर्वत भौट्ट तथा काश्मीर के मध्य जलच्छाया बनाता था। श्री जोनराज ने द्वितीय राजतरंगिणी में भौट्टों का उल्लेख किया है। कल्हण वर्णित भौट्ट यही लोग थे।

घनाम्बु प्राप्य भौट्टेभ्यः कश्मीरजनविक्रयात्।
गर्जन्नाशाः व्यधात्सर्वास्सदा रिञ्चनवारिदः ॥१५८

भौट्टाल्लहरकोटान्तः पट्टविक्रयकौतुकान्।
प्रत्यहं वचनोद्योगी रिञ्चनोऽपविसृष्टवान् ॥१६७॥

× × ×

स्वदेशे मन्त्रिणोस्तस्य कोटभट्टोदयश्रियोः।
समरंपु भरत्वासीच्चन्द्रडामरलौलयोः ॥ ३९९ ॥

× × ×

केवलं हृदयं शून्यं भौट्टानां नाभवत्तदा।
भूमिपालभयावेशात् कोपोऽपि चिरसञ्चितः ॥८२५॥

श्रीवर ने तृतीय अर्थात् जोनराज तरङ्गिणी में भौट्टों का उल्लेख किया है।

अथाशङ्क्या नृपः पापं तद्दधात् कतिचिद्दिनैः।
बहिर्निष्कासयामास भुट्टमार्गेण तं सुतम् ॥१:७१॥

× × ×

कालेनादमखानेऽथ भुट्टान् जित्वा समागते।
हाज्यिखानोऽकरोद्यात्राः लोहराद्रौ नृपाज्ञया ॥१:८२॥

× × ×

पित्र्याः पैतामहा वापि विरुद्धा बन्धनेऽवसन्।
भुट्टदेशं धिया तस्य तेषां निष्कासनं व्यधात् ॥३:३२

सम्मोह तन्त्र में भोट देश का उल्लेख किया गया है :

ऐराकभौटांतर्चीन (ना) महाचीनस्तथैव च।
नेपाल(लः) शीलटट्टश्च, गौडकोशलमगधाः ॥

—शक्ति संगम तन्त्र ३:७:३३

काश्मीरं तु समारभ्य कामरूपाच्च पश्चिमे।
भोटान्तदेशो देवि ऐराकः परिकीर्तितः ॥ ३३ ॥

उक्त उल्लेखों से भोट देश का महाचीन, नेपाल, काश्मीर, कामरूप ऐराक के समीप वर्णन किया है। काश्मीर से कामरूप अर्थात् आसाम तक यह अंचल लम्बा था। मानसरोवर के दक्षिण था। इस प्रकार प्राचीन भोट्ट देश की सीमा उत्तर में मानसरोवर, दक्षिण में नेपाल, पूर्व में कामरूप किंवा आसाम तथा पश्चिम में काश्मीर था। वर्तमान तिब्बत का यह दक्षिणी भाग था। वर्तमान भूटान सिक्किम तथा तिब्बत का यह दक्षिणी भाग जो मानसरोवर के दक्षिण में पड़ता था, भोट देश में सम्मिलित समझा गया था। तिब्बती लोगों के लिए भोट्ट, भोटिया तथा भोट शब्द का प्रयोग किया गया है।

कल्हण ने 'भुट्टराष्ट्राधवत्त' भौट्ट देश जाने वाले मार्ग जोजिला पास का नाम दिया है। (रा० त० ८:२८८७)

(३) म्लेच्छ : यह सम्भवतः हूणों के लिये प्रयुक्त किया गया है जो सिन्धु महानद के उस पार रहते थे। किन्तु म्लेच्छ शब्द का रूप तथा उससे सम्बन्धित होने वाले लोगों की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है।

मुद्राराक्षस अंक प्रथम (१:२) में चाणक्य कहता है—'यथा तस्य म्लेच्छराजबलस्य मध्यात् प्रधानतमाः पञ्च राजानः परया भक्त्या राक्षसमनुवर्तन्ते। ते यथा—

कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिंहः
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमो सैन्धवः सिन्धुषेणः।
मेघाक्षः पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबलः पारसीकाधिराजो

म्लेच्छ राज मलयकेतु की सेना के पाँच प्रमुख राजगण राक्षस के बड़े भक्त तथा अनुयायी थे। उनका नाम— कुलूतराज चित्रवर्मा, मलयनरेश सिंहनाद, काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष, सिन्धु-देशाधिपति सिन्धुषेण, पारसीकाधिराज मेघाक्ष था।

राक्षस छठवें अंक में मलयकेतु को म्लेच्छ कहता है:—

आर्यदेश्यान्स संस्थाप्य व्यतनोद्दारुणं तपः ।
संकल्प्य स्ववपुर्दाहं प्रायश्चित्तक्रियां व्यधात् ॥३१३॥

३१३. आर्य देशीय[1] जनों को संस्थापित कर, उसने दारुण तपस्या[2] की। शरीर दाह[3] का संकल्प करके प्रायश्चित्त कर्म किया।

मलयकेतु पर्वतीय राजकुमार है। उसके साथी कुलूत आदि राजा पर्वतीय हैं।

कल्हण का वर्णन स्पष्ट इस ओर संकेत करता है कि सीमा पर रहने वाले म्लेच्छादि काश्मीर में प्रवेश कर पुराने आचार को नष्ट कर दिये थे। म्लेच्छ एवं काश्मीरियों का सम्पर्क इससे प्रकट होता है।

म्लेच्छ शब्द का अर्थ शुक्रनीति के समय और रूप ले लिया था। आचार भ्रष्ट निकृष्ट तथा हेय व्यक्तियों तथा वर्ग के लिये म्लेच्छ शब्द प्रयुक्त होने लगा था। समय के साथ शब्द के अर्थ तथा भाव में परिवर्तन होता है। म्लेच्छ शब्द इसका एक उदाहरण है।

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ॥१:३८॥

जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ नहीं होते किन्तु गुण एवं कर्म के भेद के अनुसार होते हैं।

राजा को भी म्लेच्छ कहा गया है यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता—

असत्यवादिनं गूढचारं न वेद्य शास्ति यः ।
स वै म्लेच्छ इत्युक्तः प्रजाप्राणधनापहः ॥ १:१३६॥

असत्यवादी, गूढचारी का जो राजा शासन नहीं करता वह प्रजा के प्राण एवं धन का अपहर्ता म्लेच्छ है।

म्लेच्छ की एक और परिभाषा शुक्रनीति करती है—

त्यक्तस्वधर्माचरणा निर्घृणाः परपीडकाः ।
चण्डाश्च हिंसका नित्यं म्लेच्छास्ते ह्यविवेकिनः ।

धर्माचरण त्यागी, निर्दय, परपीड़क, चण्ड, नित्य हिंसक तथा अविवेकी व्यक्ति म्लेच्छ है।

'मृच्छकटिकम्' नाटक में म्लेच्छों को अशुद्ध भाषा भाषी कहा गया है। उनका उच्चारण ठीक नहीं होता था। (अंक ६)

पाठभेदः

श्लोक संख्या ३१३ में 'देश्यान्' का पाठभेद 'देशान्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३१३ (१) आर्य देशीय : आर्यदेशीय ब्राह्मणों के कश्मीर में बसाने का उल्लेख मिलता है। परन्तु 'आर्यदेशीय जनों' का यहाँ उल्लेख किया गया है। मिहिरकुल, प्रतीत होता है, आर्यदेश अर्थात् कश्मीर के बाहर पंजाब आदि भारतीय भागों से सभी श्रेणी तथा वर्गों के जनों को लाकर कश्मीर में आबाद किया था।

(२) दारुण तपस्या: प्रतीत होता है, मिहिरकुल योगी था। उसने दारुण तपस्या की थी। उसकी तपस्या इतनी उग्र थी कि उसने स्वेच्छया आग में प्रवेश किया।

राजा सिद्ध के प्रसंग में लिखा जा चुका है। कि वह भी योगी था। उसने भी तपस्या की। तत्पश्चात् सपत्नीक प्राण विसर्जन किया।

यहाँ प्राण विसर्जन की प्रक्रिया अत्यन्त क्रूर तथा रोमांचित करने वाली है। मिहिरकुल का यह चरित्र वर्णन उसे योगियों की श्रेणी में रख देता है। उसे सांसारिक माया व्याप्त नहीं थी। श्लोक संख्या ३१५ के वर्णन से प्रकट होता है। उसने छूरी,

अत एवाग्रहाराणां सहस्रं प्रत्यपादयत् ।
गान्धारदेशजातेभ्यो द्विजेभ्यो विजयेश्वरे ॥३१४॥

३१४. अतएव विजयेश्वर में उसने एक सहस्र अग्रहार गान्धार देशीय द्विजों[1] को दिया।

क्षुरखड्गासिधेन्वादिपूर्णे यः फलके तदा ।
वह्निप्रदीप्ते सहसा पर्यन्ते स्वां तनुं जहौ ॥३१५॥

३१५. तत्पश्चात् उसने सहसा क्षुर, खड्ग, असिधेनु आदि से पूर्ण वह्नि प्रदीप्त फलक पर अपने शरीर[3] को डाल दिया।

कृपाण, असि आदि जड़ित तपे तख्त पर अपना शरीर डाल दिया था।

उसका शरीर गर्म तीक्ष्ण धार वाले वस्तुओं से छिद गया। गर्म लोहा घावों में घुस गया। उसे दारुण कष्ट दिया। इस प्रकार वह फलक पर जलता, घावों से छिदता, प्राण विसर्जन किया। यह कार्य साधारण नहीं है। उसके इस कार्य से प्रकट होता है। वह नृशंस होते भी कितना व्यक्तित्व सम्पन्न, प्रतिभाशाली, उग्र तेजस्वी पुरुष था।

पादटिप्पणी :

३१४ (१) गान्धारदेशीय द्विज : काश्मीर के ब्राह्मणों से, प्रतीत होता है, मिहिरकुल अप्रसन्न था। अपनी इस अप्रसन्नता के प्रतीक स्वरूप, उसने द्विजाधम गान्धार ब्राह्मणोंको, जो कि आचार-हीन महाभारत काल से ही कहे जाते थे, प्रश्रय दिया। उन्हें दान देकर उनकी मर्यादा ऊपर उठाने का प्रयास किया। विजयेश्वर के उल्लेख से मालूम होता है। उन दिनों वह स्थान ब्राह्मणों तथा पुण्यकर्मियों का केन्द्र हो गया था।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३१५ में 'धेन्वा' का 'धन्वादि' तथा 'क्षुर' का 'खर' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३१५ (१) श्लोक ३१२-३१६ : एक मत है कि श्लोक ३१२ से ३१६ तक 'कुलकम्' है। श्री स्तीनने ३१२ से ३१६ तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने ३१२ से ३१७ तक इन्हें 'कुलकम्' मानकर उनका एक साथ अनुवाद किया है। मैंने यहाँ श्लोकों के प्रत्येक पदों को भिन्न मानकर अनुवाद किया है। यदि सबका एक साथ 'कुलकम्' समझ-कर अनुवाद किया जाय तो अनुवाद सरल तथा साहित्यिक दृष्टि से अच्छा और भाव प्रधान होगा। परन्तु प्रत्येक श्लोक के शाब्दिक अर्थो का तात्पर्य समझने में कठिनाई होगी।

(२) असिधेनु : यहाँ पर छुरी के अर्थ में प्रयोग किया गया है। छोटी छुरी आदि को असि-धेनु कहते हैं।

(३) शरीर : कल्हण ने यहाँ तीसरे उदाहरण से योग, साधन एवं मनोबल के कारण स्वतः शरीर त्यागने का वर्णन किया है। इसके पूर्व श्लोक में सपत्नीक तपस्या द्वारा तथा सिद्ध ने अपनी सिद्धता द्वारा शरीर त्याग किया था। मिहिरकुल ने अपने अद्भुत मनोबल के द्वारा शरीर त्याग किया। कल्हण ने यह तीसरा प्रकार स्वेच्छया शरीर त्याग का उपस्थित किया है।

स्वतः आत्मदाह से प्राण विसर्जन करना प्राचीन काल से प्रचलित था। परन्तु यह आत्महत्या सनातनी विचार के अनुसार माना जायगा। बौद्ध देशों में आज-कल भी प्रचलित है। वीतनाम के

दार्वाभिसारगांधारजालंधरखकाः खसाः ।
तंगणा माण्डवाश्चैव भ्रान्तर्गिरिबहिर्गिरिः।१३९ = १८२

नीलमत में 'खशा' तथा 'खश' एक ही शब्द किंवा समानार्थक समझना चाहिए।

कल्हण ने खशो का बहुत वर्णन किया है। उन्हें इस समय खक्खा भी कहते हैं। खक्ख मुसलमान भी हैं। उन्हें राजपूत मुसलमान भी कहा जाता है।

राजतरंगिणी में अनेक स्थानों पर राजौरी अर्थात् राजपुरी का शासक खशो के राजा नाम से सम्बोधित किया गया है। उसकी सेना को खशा कहा गया है (रा० त० ७:९७९, १२७१, १२७६, ८:८८७, १४६६, १८६८, १८९५)। राजपुरी से पूर्व की ओर चलने पर बान्स नदी की ऊपरी उपत्यका मिलती है। इस नदी को अब पंजगव्वर कहते हैं। श्रीवरने जोन राजतरंगणी में इसका उल्लेख किया है।

पञ्चगह्वरजाः केचित् सिन्धुपत्यन्वयोदिताः।
खशा म्लेच्छास्तथान्येऽपि रुरुधुः सर्वतो दिशः॥

उसने इस नदी को पंचगह्वर लिखा है। उसे खशों का निवास-स्थान कहा है। उससे पूर्व वाणशाल अर्थात् आधुनिक बानहाल है। इसी के नीचे बनिहाल पास है। यहीं पर भिक्षाचर ने खश राजा भागिक के दुर्ग में शरण ली थी (रा० त० ८ : १६६५)। राजतरंगिणी (८ : १७७ तथा १०७४) के वर्णन से प्रतीत होता है कि वह सब उपत्यका जो बनिहाल से चन्द्रभागा तक जाती है, जिसे अब 'विचलारी' कहते हैं, और जिसे पुरावृत्तिकार 'विशालटा' कहते है, खशों से आबाद थी।

राजौरी के पूर्व अंचल की भी संज्ञा अनेक स्थानो पर पंचगह्वर नाम से दी गयी है।

खशालय का भी वर्णन कल्हण ने (रा० त० ४ : ५६, ५८, २८४, २९०, २९९) किया है। यहाँ भी खश जाति रहती थी। खशालय ही खैशल की उपत्यका है। इसे कशेर भी कहते है। वह दक्षिण-पूर्व में मारबल पास से काश्मीर के एक कोने से होती किश्तवार तक चली जाती है। खशालय का पुराना नाम खशाली श्रीवर के अनुसार मालूम होता है (रा० त० ७ : ३९९)

राज्यं नश्यति हृष्यति याह्या खशालीनका।
लोकः किश्यति लुण्ठिदाहकरणैश्चौरः स्वकं पश्यति
॥ ४ : ४५२ ॥

मुद्राराक्षस नाटक में 'खश' को एक सैनिक जाति के रूप में चित्रित किया गया है। मलयकेतु ने चन्द्रसेन पर आक्रमण करने की जो योजना बनायी थी उनमें खस सेना को अग्रिम पंक्ति में रखा था।

प्रस्थातव्यं पुरस्तात् खसमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यै
र्गान्धारैर्मध्यमाने सयवनपतिभिः संविधेयप्रयत्नः।
(मुद्राराक्षस नाटक अंक ५)

यहाँ महत्वपूर्ण बात मुद्राराक्षस में पाँच पर्वतीय राजाओं में काश्मीर राजा का उल्लेख है। पाँचों पर्वतीय राजा मलयकेतु के पक्ष में थे। यहाँ यह विचारणीय है कि काश्मीरी सेना का नाम न देकर खस का उल्लेख किया गया है। खस काश्मीर में आबाद थे। वे बली थे। सेना में थे। युद्ध में भाग लेते थे। खस को अग्रभाग में; यवन, गान्धार, को मध्य, तथा पृष्ठ भाग मे चेदि हूण एवं शक सेना रखी गयी थी। इससे प्रकट होता है। 'खस' वीर सैनिक थे। निपुण योद्धा थे। अन्यथा उन्हें अग्रिम पंक्ति में रखने का कोई अर्थ नहीं था।

खस के सम्बन्ध में 'मृच्छकटिकम्' नाटक छठें अंक में चन्दनक के मुख से मिथ्या बात छिपाने के कारण अशुद्ध तथा स्फुट शब्द निकल जाने पर वह पकड़ा जाने लगा तो उसका स्पष्टीकरण करता कहता है—'अरे को अप्पच्चओ तुह ? वयं दक्खिणत्ता अव्वत्तभा भासिणो खस—खत्ति खडी विलय...............अणेअदेस भासाभिण्णा जहेट्ठं मन्त, आम 'दट्ठो दिट्ठा वा, अज्जो अज्जेआ वा।'

खस, खत्ति आदि............देश भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण मनमाना 'देखा गया' देखी गयी' 'आर्य या आर्या' आदि बोला करते हैं।

राजपुरी से पश्चिम घूमने पर पर्णोत्स अथवा रा० त० ६ : ३१२ में वर्णित ग्रन्थ में एक व्यक्ति तुंग खस मिलता है। वह चरवाहा था। रानी दिद्दा के समय अत्यन्त शक्तिशाली मन्त्री बन गया। (रा० त० ७ : ७७३) प्रतीत होता है। तुंग के वंशज रानी दिद्दा के पश्चात् काश्मीर के राजा हुए थे। उन्हें निम्न समझा जाता था।

खस लोगों की भाषा परिष्कृत नहीं थी। वे अशुद्ध बोलते थे। इससे प्रतीत होता है वे विशेष सुसंस्कृत नहीं थे। वे पर्वतीय थे। नगर निवासियों के समान व्याकरण शुद्ध भाषा बोलने के आदी नहीं थे।

खशालय काश्मीर उपत्यका के पूर्व दक्षिण वर्तमान उदिल क्षेत्र है। वह क्षेत्र व्रिग तथा शाहाबाद अंचल के पूर्व दक्षिण ओर पड़ेगा। बकरी बल तथा मरबल पास इसके पश्चिम में पड़ेंगे। इसका वर्णन शुक चौथी राजतरंगिणी में करता है।

'खशालयस्थं चक्रेदां विसृष्टस्तैर्महात्मभिः।
लेखहारस्तमाह स्म मार्गेशमुरवाचिकम् ॥
शुक० रा० : २ : २ : ३५

वितस्ता उपत्यका के अधोभाग में बारहमूला के आगे खस रहते थे। बोराका को खशों का एक केन्द्र कहा गया है। (रा० त० ८ : ४०९) यह स्थान प्राचीन इरावती के समीप था। इरावती को इस समय द्रावेडी कहते हैं। वितस्ता उपत्यका का यह भाग कथाई तथा मुजफ्फराबाद के मध्य है।

आधुनिक खक्ख जाति और खस एक ही है। काश्मीर में वितस्ता उपत्यका के अधोभागीय प्रायः सरदार इसी जाति के हैं। खक्ख शब्द खश का अपभ्रंश है।

वितस्ता उपत्यका के खखा सरदार सिख राज आगमन के पूर्व अर्ध स्वतंत्र हैसियत रखते थे। अपने पड़ोसी बोम्ब कबोले के साथ खस लोग काश्मीर के लिए एक समस्या हो गये थे। उनका भयंकर क्रूर कर्म जो शेख इमामुद्दीन के समय में (१८४६) किया गया था, अभी तक लोगों को याद है।

काश्मीर के मर्दुमशुमारी सन् १८९१ ई० के रिपोर्ट पृष्ठ १४१ पर खखो की आबादी ४१४६ दी गई है। उनको जाति मुस्लिम पर्वतीय राजपूतों का एक उपजाति लिखी गयी है। (पृष्ठ २०१)

खश जाति का मार्कण्डेय पुराण में पर्वताश्रिता जाति कहा गया है। अर्थात् यह जाति पर्वत में रहती थी।

अतो देशान् प्रपश्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहाराः हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्मणाः खशाः ॥

\+ \+ \+

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् समान् ॥
॥ ५७ : ५६ ॥

महाभारत सभा पर्व में भी खस जाति का उल्लेख आता है। उन्हें शकों तथा दरद जातियों तुल्य अर्ध सभ्य जाति में शामिल किया गया है। महाभारत सभा पर्व : (५१६ : १८५९) तथा (द्रोण पर्व ११ : ७९९ : १२१, ७)। सभा पर्व में पुनः एक स्थान पर उल्लेख आता है। वे मरु तथा मन्दर पर्वत के मध्य शैलदा नदी की उपत्यका में रहते थे। (सभा पर्व ५१ : १८५८; ५१ : १८५९)। शैलदा नदी पश्चिमी पर्वत के वरुण पर्वत से निकलती है और पश्चिम सागर में गिरती है। (मत्स्य पुराण : १२० : ३३)। मनु ने उन्हें क्षत्री माना है। परन्तु ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा न होने के कारण वे पतित हो गये। (मनुस्मृति १० : ४३ : ४)। उन्हें काशगर से कुछ विद्वान् सम्बन्धित करते हैं। मार्कण्डेय पुराण (३४६ : ३५०) के अनुसार उन्हें शाल्य, नीप, मक और शूरसेन आदि जातियों के साथ रखा गया है। सेन तथा पालवंश के शिलालेखों में इनका उल्लेख आता है।

वृहद् संहिता में—कुलूत, तंगण, खश, काश्मीरा उल्लेख किया गया है। (१० : १२)। ऋग्वेद सहिता (१ : ११७) में खस जाति का उल्लेख मिलता है।

खसा : प्राचीनतम दक्ष प्रजापति तथा असिक्नी की कन्या थी। कश्यप प्रजापति को दी गयी थी। उससे यक्ष राक्षसादि हुए। मार्कण्डेय पुराण में 'कुरवो गुर्गणा खसाः,' 'वायु पुराण में 'क्षुपणास्त-ङ्गण खसाः' 'कुणपास्तगणाः खसाः,' 'क्षुपणास्तङ्ग-णास्त्रसाः' 'क्षुपणास्तङ्गणा स्वसाः'। ब्रह्माण्ड पुराण में 'कुपथास्तङ्गणाः खसाः,' मत्स्यपुराण में 'कुपथा अपथास्तथा' वामन पुराण में 'कुपथास्तङ्गणा खसा.' कुपथ किंवा अपथ हिमालय में काई स्थान था।

खस देश का उल्लेख द्रोण पर्व में किया गया है। मत्स्य पुराण में बर्बर तथा यवनों के साथ खसों का उल्लेख किया गया है। 'वर्बरान् यवनान् खसान्'। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदान, सीगनान्खसान्' 'पारदास्ताङ्गणा खसान्', 'किम्पुरुषान् खसान्' का उल्लेख पारद तङ्गण तथा किम्पुरुष के साथ आया है। द्रोण पर्व महाभारत में खस जाति का उल्लेख दरद आदि के साथ किया गया है।

शेषः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः॥
(१२१।४२)

खाशीर जनपद का उल्लेख भीष्म पर्व में पूर्वोत्तर भारत के एक जनपद के लिए किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में खश जाति का नाम मगध तथा लौहित्य के साथ पूर्व दिशा में रखा गया है। परन्तु यह काश्मीर साहित्य में वर्णित जाति खस नहीं है। अपितु आसाम खासी पर्वत में रहने वाली खासी जाति हो सकती है। अथवा खस जाति जिसका उल्लेख बंगाल के पाल राजाओं के शिला-लेखों में है वे थे जिनका आवागमन बंगाल; आसाम तक होता रहा है, अथवा कहीं वहीं आबाद रहे होंगे।

शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह॥६७॥
खाशीराश्चान्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः॥
(भीष्मपर्व ९ : ६८)

दरद और काश्मीर के साथ ही खस का उल्लेख किया गया है। खाशीर, खसा, खश एवं खस शब्द एक ही जाति के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। (भीष्म पर्व ९ : ६८)।

भागवत पुराण (२ : ४ : १३) के अनुसार खस जाति पतित हो गयी थी परन्तु भागवत भक्ति के कारण शुद्ध हो गयी। ब्रह्माण्ड पुराण (२ : २६ : १४५ तथा ३ : ६९ १२०) में उल्लेख आता है। विन्ध्य पर्वत में निवास करने वाली एक निम्न कोटि की क्षत्री जाति थी। उसे निषाद भी कहते थे। हरिवंश पुराण के अनुसार सगर ने उन्हें जीता था। उन्हें निम्न श्रेणी में रख दिया। और वे म्लेच्छ माने गये। हरिवंश पुराण (१४ · ७८४) ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण ने उन्हें पूर्व का एक जनपद माना है। जिसमें होकर चक्षु नदी बहती है। (ब्रह्माण्ड पुराण २ : १६ : ४६ तथा मत्स्य पुराण १२१ : ४३, १४४ : ५७)

वायु पुराण में एक पर्वतीय जनपद कहा गया है। वहाँ खस के स्थान पर खश शब्द का प्रयोग किया गया है। वायुपुराण (४५ : ३१५ तथा ४७ : ४७,) में दरद जाति को खस जाति का पड़ोसी माना गया है। बंगाल के पाल राजाओं के शिला-लेख में हूण तथा खस जाति का उल्लेख मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि खस लोग बंगाल तक आते जाते थे।

हरिवंश पुराण (१३ : २३-३४) में उल्लेख आता है। रघुवंशी राजा बाहु को हैहय तथा ताल-जंघ वंशीय राजाओं ने शक, यवन, कम्बोज, पारद

अवतारयतस्तस्य चन्द्रकुल्याभिधां नदीम् ।
अशक्योन्मूलना मध्ये शिलाऽभूद्विघ्नकारिणी ॥ ३१८ ॥

३१८. जबकि चन्द्रकुल्या[1] नाम्नी नदी को राजा अवतारित[2] कर रहा था, बीच मे न हटनेवाली शिला विघ्नकारक हो गयी ।

ततः कृततपाः स्वप्ने देवैरुक्तः स भूपतिः ।
यक्षः शिलायां बलवान्ब्रह्मचार्यत्र तिष्ठति ॥ ३१९ ॥

३१९. तदनन्तर उस राजा ने तपस्या की । स्वप्न में देवताओं ने उससे कहा—'बलवान एवं ब्रह्मचारी यक्ष शिला पर आसीन है ।'

साध्वी स्पृशति चेदेनां निरोद्धुं न स शक्नुयात् ।
ततोऽपरेद्युः स्वप्नोक्तं शिलायां तेन कारितम् ॥ ३२० ॥

३२०. 'यदि साध्वी स्त्री इस शिला का स्पर्श करे, तो वह यक्ष कार्य निरोध में असमर्थ होगा ।' दूसरे दिन उसने स्वप्नोक्त क्रिया शिला पर करायी ।

तथा पह्लव की सहायता से बाहु तथा उसके राज्य को नष्ट कर दिया । (१४ : ४) यवन, पारद, काम्बोज, पह्लव तथा खस पांचगणो ने हैहय राजाओं के विजय निमित्त पराक्रम किया था । यहाँ स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि खसों को राज्य-व्यवस्था गणतन्त्रीय थी । खसो ने बाहु राजा तथा उसके राज्य को नष्ट करने में सम्भवतः प्रत्यक्ष भाग नही लिया था क्योंकि (१३ : ३०) खस का उल्लेख नहीं आता । हैहय तथा तालजंघ राजो के साथ शको का उल्लेख है । उसने बाहु के राज्य को छीन लिया था । वही पर (१४ : ४) केवल यह उल्लेख आता है कि पाचगण राज्य जिनमें खस भी एक गणराज्य था, हैहयों के लिए पराक्रम किया था । खस लोग शकों की तरह बाहु के राज्य को लेते हुए दिखाई नही देते ।

पादटिप्पणियाँ :

३१८ (१) चन्द्रकुल्या : मुहम्मद आजिम कहता है कि राजा मिहिरकुल ने चन्द्रकुल्या नहर बनवायी थी । उसके समय तक वह नहर वर्तमान थी ।

(२) अवतारित : श्री स्तीन तथा सीताराम पण्डित ने यहाँ जल प्रवाह को डाइवर्ट अर्थात् जल प्रवाह को मोड़ने का अर्थ किया है । अन्य अनुवादकों ने भी विभिन्न अर्थ किये हैं । अतएव मैंने यहाँ मूल 'अवतारित' शब्द दे दिया है । 'गंगावतरण' शब्द अत्यन्त प्रचलित है । भगीरथ ने गंगा का अवतरण किया था ।

कल्हण के मस्तिष्क में 'गंगावतरण' की बात रही होगी । भगीरथ की 'गंगा' के समान 'चन्द्रकुल्या' को राजा मिहिरकुल अवतारित करा रहा था । यही भाव यहाँ प्रदर्शित किया है । कुल्या शब्द का अर्थ नहर, नाला एवं नाली होता है । कुल्या का मार्गाविरोध शिला के कारण (रा० त० १ : ३२० ३२१) हो गया था । जलावतरण नही हो रहा था । इससे प्रकट होता है कि चन्द्रकुल्याका राजा निर्माण करा रहा था ।

कुल्या शब्द का प्रयोग कल्हण ने (रा० त० १ : ९७) सुवर्णमयी कुल्या के संदर्भ में किया है । कुल्या शब्द पर विशेष पृष्ठ १३० द्रष्टव्य है ।

२. --- :

श्लोक संख्या ३१९ में 'यक्ष.' का पाठभेद 'यद्या' तथा 'यक्षाः' मिलता है ।

श्लोकसंख्या ३२० में 'चेदेनां' का 'चेदेनं' तथा 'न स' का पाठभेद 'न च' मिलता है ।

तासु तासु कुलस्त्रीपु व्यर्थयत्नास्वथाचलत् ।
चन्द्रवत्याख्यया स्पृष्टा कुलान्या सा महाशिला ॥ ३२१ ॥

३२१. उन उन कुलीन स्त्रियों के यत्न व्यर्थ हो जाने पर, चन्द्रावती नाम्नी स्त्री के स्पर्श से वह महा शिला सचल हो गयी,[1] ।

कोटित्रयं नरपतिः क्रुद्धस्तेनागसा ततः ।
सपतिभ्रातृपुत्राणामवधीत्कुलयोपिताम् ॥ ३२२ ॥

३२२. इस अपराध के कारण क्रुद्ध नरपति ने तीन करोड़[1] पति, भ्राता पुत्र सहित कुल योषिताओं का वध कर दिया।

इयं चान्यमते ख्यातिः प्रथते तथ्यतः पुनः ।
अभव्या सनिमित्ताऽपि प्राणिहिंसा गरोयसी ॥ ३२३ ॥

३२३. अन्य लोगों के मत में यह ख्याति उपयुक्त है, किन्तु तथ्यतः सकारण भी इतनी बड़ी संख्या में प्राण हिंसा शोभनीय नही है।

श्लोकसंख्या ३२१ में 'सा महा' का पाठभेद 'स महा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२१ (१) आइने अकबरी में शिला उठाने की कहानी का निम्नलिखित वर्णन किया गया है—"काश्मीर की एक नदी में एक बड़ा पत्थर उभड़ आया था। उससे नदी की धारा का अवरोध हो गया था। दिन में पत्थर जितना काटा जाता था, रात में उतना ही बढ़ जाता था। इसी समय आकाश-वाणी सुनाई दी—यदि कोई सती स्त्री पत्थर का स्पर्श करे, तो शिला का लोप हो जायेगा। स्त्रियों को शिला स्पर्श करने के लिए, आदेश प्रचारित किया गया। राज्य कर्मचारियों ने बहुत स्त्रियों को शिला स्पर्श कराया। परन्तु शिला टस से मस न हुई। राजा मिहिरकुल बिगड़ा। उसने असती स्त्री तथा उनके पति को असती स्त्री रखने के अपराध में मृत्यु दण्ड दे दिया। उनके संतानों को वर्ण-संकर घोषित कर दिया। इस प्रकार तीस लाख लोग मार डाले गये। एक कुम्भकार की स्त्री ने शिला स्पर्श किया। आश्चर्यजनक घटना घटी। पत्थर हट गया। राजा बीमार पड़ा। उसने स्वयं अग्नि प्रवेश कर प्राणोत्सर्ग किया।'

राजा मिहिरकुल की मृत्यु सन् ५३० ई० में हुई।

३२२ (१) त्रिकोटि हन : मिहिरकुल का नाम (रा० त० १ : ३१०) त्रिकोटिहन दिया गया है। उसने ३ करोड़ मानव का संहार किया था। कल्हण के कथनानुसार मिहिरकुल का नाम तीन कोटि लोगों के वध करने के कारण त्रिकोटिहन पड़ गया था।

यूनानी इतिहासकार हिरोडटस ने भी फरोहा के सम्बन्ध में इसी प्रकार की एक कहानी का वर्णन किया है।

ह्वेन्साग कहता है—'सब ६ सौ हजार उच्च कुल के लोगों को राजा मिहिरकुल ने शिन्त नदी के तट पर वध करवा दिया था। मध्यम श्रेणी के लोगों को नदी में डुबवा दिया था '(१ : १७२ यूयूको)।

एवं क्षुद्रोऽपि यद्राजा संभूय न हतो जनैः।
तत्कर्म कारयद्भिस्तद्दैवतैरेव रक्षितः ॥ ३२४ ॥

३२४. क्षुद्र होते हुए भी उस राजा की प्रजा ने विप्लव द्वारा हत्या नहीं की क्योंकि वह उन्हीं देवताओं द्वारा रक्षित था, जिनकी प्रेरणा से उसने उन कर्मों को किया था।

प्रजापुण्योदयैस्तीव्रैश्चिराच्चस्मिन्क्षयं गते।
वकस्तत्प्रभवः पौरैः सदाचारोऽभ्यषिच्यत ॥ ३२५ ॥

वकः

३२५. प्रजा के तीव्र पुण्योदय के कारण उसके मरने पर, उसके पुत्र सदाचारी वक का पौर जनों ने अभिषेक किया।

---

३२४ (१) देवता : कल्हण यहाँ दैव सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। भाग्यवादी दैव में विश्वास करते है। उनका विश्वास है। सब कुछ दैवी प्रेरणा से होता है। मनुष्य केवल निमित्त मात्र है। साधन है। उसकी गतिविधियाँ पूर्व से ही सुनिश्चित रहती हैं। फलित ज्योतिष सिद्धान्त इसका सबसे बड़ा समर्थक है। यदि बातें पूर्व से ही सुनिश्चित न होती तो पचासों वर्ष पूर्व जन्मकुण्डली में लिखी अथवा वर्षफल, जन्मफल की कही फलगणना और भविष्य की घटनायें किस प्रकार सत्य उतरती ?

भाग्य एवं कर्म का ववाद बहुत पुराना है। आगे न बढ़कर यहाँ इतना ही लिखना अलम होगा कि कल्हण ने मिहिरकुल के क्रूर कर्मों का प्रेरक दैव को ही माना है। जिसकी प्रेरणा से उसने क्रूर कर्मों को किया था उन्हीकी प्रेरणा से उसकी रक्षा भी हुई। जनता उसकी नृशंसताओं तथा उत्पीड़न से ग्रस्त होने पर भी राजविद्रोह नहीं कर सकी। वह अछूता बच गया। उसकी हत्या करने का किसी ने प्रयास नहीं किया। कारण एकमात्र कल्हण यही देता है। जो प्रेरक शक्ति उसकी नृशंसताओं के लिए उत्तरदायी थी, उसी ने उसकी रक्षा की। जनता में विद्रोह, विप्लव की भावना एवं विचार उत्पन्न नहीं होने दिया। कवि दण्डी ने राजाओं के सम्बन्ध में दैवी शक्ति के विषय में 'दशकुमारचरितम्' में कहा है—"मदीयैर्विश्वास्यतमैः पुरुषैः प्रभूतां।" (उपसंहार : १)

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२४ में 'वकस्त' का पाठभेद 'एकस्त' मिलता है। 'ए' तथा 'व' का भ्रम शारदा लिपि के प्रयोग के कारण हो गया है।

पादटिप्पणियाँ :

३२५ (१) आइने अकबरी ने नाम वेक तथा उसका राज्यकाल ६३ वर्ष १३ दिन दिया है। श्री स्तीन के अनुसार लौकिक वर्ष २४४२ के चौथे मास में उसने राज्यारोहण किया था। श्री एस० वी० पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व ६३७ वर्ष रखा है।

हसन कहता है—'राजा वकने बाप के मरने के बाद क० २४०९ मे हुकूमत की। दुलहिन अदब व इन्साफ के जेवर से जेब व जीनत देनेवाला बना। वकाशुर के मुकाम पर अपने नाम पर एक स्वामी का मन्दिर निहायत उमदगी से तामीर किया। इसी तरह एक नहर अपने नाम खर्च कसीर से खुदवायी। शहर पूंछ उसीका आबाद किया हुआ है। चारो तरफ इसके इर्दगिर्द ऊँचे-ऊँचे पहाड है। इसके जमाने में एक जोगी औरत वटका नाम की पैदा हो गयी। उसके हुस्न व जमाल को देखकर राजा का दिल बेकाबू हो गया। वह जादूगरनी एक दिन राजा को कुरबानी की रस्म

तत्रापि पूर्वसंस्काराद्दुक्तत्रासं दधे जनः ।
श्मशानविहिते लीलावेश्मनीव नृपास्पदे ॥ ३२६ ॥

३२६. श्मशान में बने लीलावेश्म सदृश पूर्व संस्कार के कारण उसके सिंहासन के सम्मुख भी लोग उक्त त्रास की आशंका से भय भीत रहते थे।

अतिसंतापदाज्जातं स जनाह्लादकोऽभवत् ।
जलौघा जलदश्यामात्तपात्ययदिनादिव ॥ ३२७ ॥

३२७. अति संतापदायी से उत्पन्न[१] वह जन आल्हादक, उसी प्रकार हुआ, जैसे जलद द्वारा श्याम ग्रीष्मान्त दिन से उत्पन्न वृष्टि।

पर इसके आशनाओं और करीबी रिश्तेदारों समेत जयाफत पर ले गयी थी। इस औरत ने जादू के जोरसे उन तमाम को मार डाला। सिर्फ एक लड़का खिसी नन्द नाम का जिन्दा रहा। मुद्दत हुकूमत बासठ बरस ९ महीने।' (पृष्ठ ४९)।

(२) पौरों द्वारा राज्याभिषेक : कल्हण इस स्थानपर नागरिकों द्वारा राजा चुनने की बात करता है। मालूम होता है कि मिहिरकुल के पुत्रों से किसी सदाचारी पुत्र को लोगों ने राजा बनाने का निश्चय कर उसे राजा बनाया। अन्यथा कल्हण यहाँ पर केवल यही लिखता कि मिहिरकुल का पुत्र उसके पश्चात् राजा हुआ।

काश्मीर में प्रायः राजा का निर्वाचन प्राचीन काल में होता रहा है। राजतरंगिणी में वर्णन आता है कि यशस्कर ब्राह्मण को काश्मीर की परिषद् ने राजा चुना था। (रा० त० ५ : ४६९, ४७७)।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२६ में 'दुरुत्त्रासं' का 'मुक्तत्रास' 'दुक्ता त्रास' 'मुक्ता सन्द', मुक्त त्रासं', 'दुस्त्रासं स' तथा दुक्तात्त्रासं' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२६ (१) नृपास्पद : यहाँ कल्हण ने सिंहासन नहीं 'नृपास्पद' शब्द का प्रयोग किया है। श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित आदि ने सिंहासन ही 'नृपास्पद' का अर्थ लगाया है। नृप+आस्पद मिलकर नृपास्पद शब्द बना है। नृप का अर्थ राजा और आस्पद का अर्थ स्थान, अधिष्ठान, इत्यादि होता है। यहाँ राजस्थान तथा राजा के बैठने की जगह अर्थात् अधिष्ठान भी हो सकता है। यहाँ पर सिंहासन की अपेक्षा राजा के स्थान करना अथवा उसके बैठकों के आसपास अर्थ अधिक कल्हण के समीप होगा। नृपास्पद शब्द का भावार्थ सिंहासन में आ जाता है। किन्तु यह शाब्दिक अर्थ के अधिक समीप नहीं है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२७ में 'अति' का 'अदि'; 'जातः' का 'जाताः', 'जनाह्लादको' का 'जनाः ह्लादको' तथा 'मात्तपा' का 'मोत्तापा', 'मातापा' और 'मात्तापा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२७ (१) संतापदायी : कल्हण यहाँ पर दूसरा उदाहरण संतापदायी राजा से उत्पन्न उत्तम तथा जन आह्लादक पुत्र का देता है। पहला उदाहरण उसने नृशंस नर के पुत्र सिद्ध का दिया है। यहाँ दूसरा का उदाहरण भूलोकभैरव मिहिरकुल के पुत्र बक का देता है।

लोकान्तरादिवायातं मेने धर्मं तदा जनः ।
अभयं च परावृत्तं प्रवासाद्गहनादिव ॥ ३२८ ॥

३२८. उस समय लोग धर्म[1] को लोकान्तर से आया तथा अभय[2] को चिर प्रवास से परावृत्त मानते थे।

स वकेशं वकश्वभ्रे वकवत्यापगां तथा ।
कृत्वा पुरं परार्घ्यश्रीर्लवणोत्साभिधं व्यधात् ॥ ३२९ ॥

३२९. उस अतुल श्री सम्पन्न राजा ने वकश्वभ्र में वकेश[1] तथा वकावती आपगा[2] का निर्माण करके लवणोत्स[3] नगर बनवाया।

तत्र त्रिषष्टिवर्षाणां सत्रयोदशवासरा ।
अत्यवाह्यत भूपेन तेन पृथ्वीं प्रशासता ॥३३० ॥

३३०. उस राजा ने वहाँ पृथ्वी का शासन करते' तिरसठ वर्ष तेरह दिन व्यतीत किया।[1]

---

३२८ (१) धर्म का अर्थ यहाँ राज्य के विधि से है। जिसका आज कल प्रचलित शब्द कानून है।

(२) अभय : शासन का फल अभय है। अभय उस समय जनता में होता है, जब शासन सुव्यवस्थित होता है। राज्यदण्ड का भय अवांछनीय तत्वों को नियन्त्रण में रखता है। जनता में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के भय का अभाव हो जाता है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२९ में 'वकेशं' का 'वकेशे' तथा 'कश्वभ्रे' का पाठभेद 'वकः श्वभ्रे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२९ (१) वकेश तथा वकश्वभ्र : इन दोनो स्थानों का पता अभी तक नही चला है। कुछ स्थान मुझे बताये गये किन्तु वे भ्रामक हैं।

३२९ (२) वकावती आपगा : कल्हण ने आपगा शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। जिसका अर्थ नदी, सरित्, तरंगिणी, शैवालिनी, तटिनी, किंवा सरिता होता है। आपगेय का अर्थ नदी से उत्पन्न नहरादि होता है। यहाँ आपगा का अर्थ नहर माना जा सकता है।

(३) लवणोत्स : श्रीनगर से भारत आने वाले मार्ग पर यह स्थान स्थित है। (रा० त० ६:४६, ५७; ७:७६२, ७:१५३७, १६५८)। श्रीनगर से पूर्व काल में एक ही पड़ाव में लवणोत्स पहुँचा जा सकता था। पामपुर या पद्मपुर मार्ग में पड़ता था। विजयेश्वर के घेरा के सन्दर्भ में (रा० त० ७·१५६७ तथा १६५८) लवणोत्स का वर्णन कल्हण ने किया है। उससे प्रतीत होता है। विजयेश्वर तथा लवणोत्स में अधिक फासला नहीं था। श्रीनगर में बाहर से आने वाली एक सड़क पर लवणोत्स के होने का उल्लेख है। (रा० त० ५६,५७)। लवणोत्स वास्तव में किस स्थान पर था, अभी तक निश्चय नहीं हो सका है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३० में 'वासरा' का 'वासरान्' 'अत्यवाह्यत' का 'अभ्यवाह्यत' तथा 'अभ्यत्राह्यत' और 'प्रशासता' का पाठभेद 'प्रशासता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३० (१) राज्यकाल : राजतरंगिणी राज्य काल ६३ वर्ष तेरह दिन स्पष्ट देती है। श्री रणजीत

तत्रापि पूर्वसंस्कारादुक्तत्रासं दधे जनः ।
श्मशानविहिते लीलावेश्मनीव नृपास्पदे ॥ ३२६ ॥

३२६. श्मशान में बने लीलावेश्म सदृश पूर्व संस्कार के कारण उसके सिंहासन के सम्मुख भी लोग उक्त त्रास की आंशका से भय भीत रहते थे ।

अतिसंतापदाज्जातं स जनाह्लादकोऽभवत् ।
जलौघा जलदश्यामात्तपात्ययदिनादिव ॥ ३२७ ॥

३२७. अति संतापदायी से उत्पन्न[1] वह जन आल्हादक, उसी प्रकार हुआ, जैसे जलद द्वारा श्याम ग्रीष्मान्त दिन से उत्पन्न वृष्टि ।

पर इसके आशनाओं और करीबी रिश्तेदारों समेत जयाफत पर ले गयी थी । इस औरत ने जादू के जोरसे उन तमाम को मार डाला । सिर्फ एक लड़का खितो नन्द नाम का जिन्दा रहा । मुद्दत हुकूमत बासठ बरस ९ महीने ।' (पृष्ठ ४९) ।

(२) पौरों द्वारा राज्याभिषेक : कल्हण इस स्थानपर नागरिकों द्वारा राजा चुनने की बात करता है । मालूम होता है कि मिहिरकुल के पुत्रों से किसी सदाचारी पुत्र को लोगों ने राजा बनाने का निश्चय कर उसे राजा बनाया । अन्यथा कल्हण यहाँ पर केवल यही लिखता कि मिहिरकुल का पुत्र उसके पश्चात् राजा हुआ ।

काश्मीर में प्रायः राजा का निर्वाचन प्राचीन काल में होता रहा है । राजतरंगिणी में वर्णन आता है कि यशस्कर ब्राह्मण को काश्मीर की परिषद् ने राजा चुना था । (रा० त० ५ : ४६९, ४७७) ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२६ में 'दुक्त्रासं' का 'मुक्तत्रास' 'दुक्ता त्रास' 'मुक्ता सन्द', मुक्त तासं', 'दुत्त्रासं स' तथा दुक्तात्त्रासं' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३२६ (१) नृपास्पद : यहाँ कल्हण ने सिंहासन नहीं 'नृपास्पद' शब्द का प्रयोग किया है । श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित आदि ने सिंहासन ही 'नृपास्पद' का अर्थ लगाया है । नृप+आस्पद मिलकर नृपास्पद शब्द बना है । नृप का अर्थ राजा और आस्पद का अर्थ स्थान, अधिष्ठान, इत्यादि होता है । यहाँ राजस्थान तथा राजा के बैठने की जगह अर्थात् अधिष्ठान भी हो सकता है । यहाँ पर सिंहासन की अपेक्षा राजा के स्थान करना अथवा उनके बैठकों के आसपास अर्थ अधिक कल्हण के समीप होगा । नृपास्पद शब्द का भावार्थ सिंहासन में आ जाता है । किन्तु यह शाब्दिक अर्थ के अधिक समीप नहीं है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२७ में 'अति' का 'अपि'; 'जातः' का 'जाताः', 'जनाह्लादको' का 'जनाः ह्लादको' तथा 'मात्तपा' का 'मोत्तापा', 'मातापा' और 'मात्तापा' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३२७ (१) संतापदायी : कल्हण यहाँ पर दूसरा उदाहरण संतापदायी राजा से उत्पन्न उत्तम तथा जन आह्लादक पुत्र का देता है । पहला उदाहरण उसने नृशंस नर के पुत्र सिद्ध का दिया है । यहाँ दूसरा का उदाहरण भूलोकभैरव मिहिरकुल के पुत्र बक का देता है ।

लोकान्तरादिवायातं मेने धर्मं तदा जनः ।
अभयं च परावृत्तं प्रवासाद्गहनादिव ॥ ३२८ ॥

३२८. उस समय लोग धर्म[1] को लोकान्तर से आया तथा अभय[2] को चिर प्रवास से परावृत्त मानते थे।

स वकेशं वकश्वभ्रे वकवत्यापगां तथा ।
कृत्वा पुरं पराघ्र्यश्रीर्लवणोत्साभिधं व्यधात् ॥ ३२९ ॥

३२९. उस अतुल श्री सम्पन्न राजा ने वकश्वभ्र में वकेश[1] तथा वकावती आपगा[2] का निर्माण करके लवणोत्स[3] नगर बनवाया।

तत्र त्रिषष्टिर्वर्षाणां सत्रयोदशवासरा ।
अत्यवाह्यत भूपेन तेन पृथ्वीं प्रशासता ॥३३० ॥

३३०. उस राजा ने वहाँ पृथ्वी का शासन करते' तिरसठ वर्ष तेरह दिन व्यतीत किया।[1]

---

३२८ (१) धर्म का अर्थ यहाँ राज्य के विधि से है। जिसका आज कल प्रचलित शब्द कानून है।

(२) अभय : शासन का फल अभय है। अभय उस समय जनता में होता है, जब शासन सुव्यवस्थित होता है। राज्यदण्ड का भय अवांछनीय तत्त्वों को नियन्त्रण में रखता है। जनता में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के भय का अभाव हो जाता है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२९ में 'वकेशं' का 'वकेशे' तथा 'कवश्वभ्रे' का पाठभेद 'वकः श्वभ्रे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२९ (१) वकेश तथा वकश्वभ्र : इन दोनों स्थानों का पता अभी तक नहीं चला है। कुछ स्थान मुझे बताये गये किन्तु वे भ्रामक है।

३२९ (२) वकावती आपगा : कल्हण ने आपगा शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। जिसका अर्थ नदी, सरित्, तरंगिणी, शैवालिनी, तटिनी, किंवा सरिता होता है। आपगेय का अर्थ नदी से उत्पन्न नहरादि होता है। यहाँ आपगा का अर्थ नहर माना जा सकता है।

(३) लवणोत्स : श्रीनगर से भारत आने वाले मार्ग पर यह स्थान स्थित है। (रा० त० ६:४६, ५७; ७:७६२, ७:१५३७, १६५८)। श्रीनगर से पूर्व काल में एक ही पड़ाव में लवणोत्स पहुँचा जा सकता था। पामपुर या पद्मपुर मार्ग में पड़ता था। विजयेश्वर के घेरा के सन्दर्भ में (रा० त० ७:१५६७ तथा १६५८) लवणोत्स का वर्णन कल्हण ने किया है। उससे प्रतीत होता है। विजयेश्वर तथा लवणोत्स में अधिक फासला नहीं था। श्रीनगर में बाहर से आने वाली एक सड़क पर लवणोत्स के होने का उल्लेख है। (रा० त० ५६,५७)। लवणोत्स वास्तव में किस स्थान पर था, अभी तक निश्चय नहीं हो सका है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३० में 'वासरा' का 'वासरान्' 'अत्यवाह्यत' का 'अभ्यवाह्यत' तथा 'अभ्यत्राह्यत' और 'प्रशासता' का पाठभेद 'प्रशासता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३० (१) राज्यकाल : राजतरंगिणी राज्य काल ६३ वर्ष तेरह दिन स्पष्ट देती है। श्री रणजीत

अथ योगेश्वरी काचिद्भट्टाख्या रजनीमुखे ।
कृत्वा कान्ताकृतिं काम्यामुपतस्थे विशां पतिम् ॥ ३३१॥

३३१. किसी समय रजनी मुख[1] काल में कोई भट्टा नाम्नी योगेश्वरी[2] कमनीय कान्त आकृति धारण कर विशांपति (राजा)[3] के समीप पहुँची।

तया मनोहरैस्तैस्तैर्वचनैर्ग्लपितस्मृतिः ।
स यागोत्सवमाहात्म्यं द्रष्टुं हृष्टो न्यमन्त्र्यत ॥ ३३२ ॥

३३२. अपने मनोहर तत्-तत् वचनों द्वारा नष्ट स्मृति एवं प्रसन्न राजा को यागोत्सव माहात्म्य देखने के लिये, उसने निमन्त्रित किया।

पुत्रपौत्रशतोपेतः प्रातस्तत्र ततो गतः ।
चक्रवर्ती तया निन्ये देवीचक्रोपहारताम् ॥ ३३३ ॥

३३३. तदुपरान्त, अपने शत पुत्र-पौत्रों सहित प्रातः काल वहाँ गये, चक्रवर्ती को उसने देवी चक्र[1] पर उपहार चढ़ा दिया।

सीताराम पण्डित अनुवाद में ६३ वर्ष १३ दिन देते हैं। किन्तु श्री एस. पी. पण्डित के लेख को श्रोरणजोस ने परिशिष्ट 'ए' पृष्ठ ५८१ पर उद्धृत किया है। उसके अनुसार राज्य काल केवल ६३ वर्ष माना है। तेरह दिन कम दिया है। कल्हण के पाठ का अनुवाद ही मैंने यहाँ दिया है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३३१ में 'दृभट्टा' का पाठभेद 'द्दट्टा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३१ (१) रजनीमुख—यहाँ पर रजनीमुख शब्द का प्रयोग कल्हण ने सायंकाल अर्थात् रात्रि के प्रारम्भ काल के लिये किया है।

(२) योगेश्वरी : इसका शाब्दिक अर्थ दुर्गा होता है। योग विद्या में प्रवीण भट्टा के विशेषण रूप में योगेश्वरी शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है। साधारण योग सम्पन्न स्त्रियों को योगिनी कहते हैं उनमें श्रेष्ठ के लिये विशेषण योगेश्वरी लगाया जाता है—आठ विशेष देवियाँ योगिनी कही गयी हैं—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, नारायणी, वाराही, इन्द्राणी चामुंडा तथा महालक्ष्मी।

(३) विशांपति : काश्मीर के राज्य संघटन का प्रकार समय समय पर बदलता रहा है। प्रथम इकाई देश थी। उसके पश्चात्, राज्य तत्पश्चात् विश्व का सबसे छोटा इकाई ग्राम था।

राजा को यहाँ विशांपति कहा गया है। उसके नीच कर्मों के कारण कल्हण ने उसे राजा किंवा नृपति न कहकर विश्व का स्वामी कहा है। वह उससे बड़ा स्थान उसे नहीं देना चाहता है।

विश्व तथा विषय का पदलालित्य के कारण यहाँ पर कल्हण ने अनुप्रास स्वरूप प्रयोग किया है। राजा को विषयपति न कहकर विश्वपति कहा है। दोनों क्रमशः मूर्धन्य ष तथा तालव्य श हैं उनके उच्चारण में भेद है। यदि शीघ्रता से कहा जाय तो उनका भेद समझना कठिन हो जाता है।

विषय काश्मीर में परगना को कहते हैं। विशः राज्य का एक प्रकार है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३२ में 'ग्लपित' का 'ग्लपित' तथा 'न्यमन्त्र्यत का' न्यमन्त्रत' तथा 'न्यमंत्र्यत' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३३ (१) देवीचक्र : मातृ चक्र का उल्लेख टिप्पणी १ : १२२ पृष्ठ पर किया गया है। यहाँ पर

कर्मणा तेन सिद्धाया व्योमाक्रमणसूचकम् ।
जानुमुद्राद्वयं तस्या दृषद्यद्यापि दृश्यते ॥ ३३४ ॥

३३४. उस कर्म द्वारा सिद्ध उस योगीश्वरी के व्योम गमन सूचक, दोनों जानुओं की मुद्रा, शिला पर आज भी देखी जाती है।

देवः शतकपालेशो मातृचक्रं शिला च सा ।
खेरीमठेषु तद्वार्तास्मृतिमद्यापि यच्छति ॥ ३३५ ॥

३३५. देव, शतकपालेश, मातृचक्र तथा वह शिला खेरी[1] के मठों[2] में आज भी उस वार्ता की स्मृति दिलाती है।

कल्हण देवीचक्र का उल्लेख करता है न कि मातृचक्र का। अतएव 'देवी' तथा 'मातृचक्र' में निश्चय उस समय अन्तर रहा होगा।

अनुवादकर्ताओं ने इसका अनुवाद किया है कि देवीचक्रपर राजा को बलिदान कर दिया गया था। यहा पर बलि शब्द का प्रयोग न कर 'उपहार' शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। 'बलि' तथा 'उपहार' में अन्तर है। बंगाल में बलि चढ़े पशु के मांस को महाप्रसाद कहते है। शाक्त लोग 'प्रसाद' ही ग्रहण करते हैं। अन्य मांस उनके लिये वर्जित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३४ में 'दृषद्यद्यापि का 'दृशद्यद्यापि' तथा 'दृषदयद्यापि' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ३३५ मे 'खेरीमठेषु' का 'खीरमठेषु' तथा 'खेरेमठेषु' और 'यच्छति' का पाठभेद 'गच्छति' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३५ (१) खेरी : राजतरंगिणी के तरग ८ : १२६८ श्रीवर ३ : १८७ तथा ४ : ४४८ से यह स्पष्ट हो गया है कि खेरी एक जिला का नाम था। इसे परगना खुरनार वाव कहते है। यह गुलाबगढ़ तथा पीर पन्तमल के मुह दर्रा की ढालुआ उपत्यका मे विसाऊ नदी तक फैला है। गाँव खुर सर्वेक्षण मानचित्र में कूरी दिखाया गया है।

खुर तथा खेरी को समान उच्चारण के कारण एक नही कहा गया है। कल्हण (रा० त० ८ : १२६०) तथा श्रीवर (४ : ४४८) ने खेरी का उल्लेख परगना देवसरसा (दिवशर) और अर्धवान (अदविन) के सन्दर्भ में किया है। दोनों परगना विसाऊ नदी के उत्तर खुर नारवाव में मिलते हैं। इसका प्रशासन विशेष रूप से किया जाता था। यह कल्हण के 'खेरी कार्य' शब्द प्रयोग मे प्रकट होता है। (रा० त० ८.९६०, १११८, १४८२, १६२४)। सिख तथा डोगरा राजकाल में खुर नरवाव जागीर पुरानी प्रथा के अनुसार राजवंशियों को दी गयी थी।

(२) मठ : कल्हण ने किस स्थान के लिए खेरी मठ शब्द का व्यवहार किया है कहना कठिन है। यहाँ से दर्रा तक पहुँचने के लिए चलता रास्ता है। सम्भव है। खेरी मठ इस भाग पर स्थित किसी धर्मशाला के लिए व्यवहृत किया गया है। श्रीवर कश्मीर के सुलतान हसन शाह के समय खेरी मे धर्मशाला स्थापित करने की बात कहता है (३ : १९०)।

श्रीवर के समय तक खेरी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह स्पष्ट प्रकट हो जाता है।

शाहाभिधास्य भार्यापि मठं सुकृतकर्मठम् ।
खेरीविषयमार्गान्तर्निर्ममे सप्रतिग्रहम् ॥ ३:१८७

\+ + +

खेरी चार्धवनं राष्ट्रं आष्ट्रमभितिखेव सा ।
अतापयन्महोष्माढ्या प्रविष्टा कटुकद्वयी ॥

देव्या कुलतरोः कन्दः क्षितिनन्दोऽवशेषितः ।
ततस्तस्य सुतस्त्रिंशद्वत्सरानन्वशान्महीम् ॥ ३३६ ॥

क्षितिनन्द—

३३६. देवी की कृपा से वंश वृक्ष का मूल क्षितिनन्द बच गया था। उस के पुत्र ने तीस वर्ष तक भूमि का शासन किया।

द्वापञ्चाशतमब्दान्क्ष्मां द्वौ च मासौ तदात्मजः ।
अपासीद्वसुनन्दाख्यः प्रख्यातस्मरशास्त्रकृत् ॥ ३३७ ॥

वसुनन्द—

३३७. प्रसिद्ध कामशास्त्र[2] प्रणेता उसके पुत्र वसुनन्द ने बावन वर्ष दो मास[3] धरती की रक्षा की।

---

३३६ (१) आइने अकबरी में 'कुलनुन्द' नाम तथा उसका राज्यकाल ३० वर्ष दिया गया है। हसन लिखता है—'राजा सितीनन्द क० २४८२ में अराकीन हकूमत मुतफ्फक मशविरा से तख्त पर बैठा और तीस साल हकूमत किया।'

(२) क्षितिनन्द : श्री स्तीन के अनुसार लौकिक संवत् २५०५ वर्ष ४ माह १३ वें दिन राज्य सिंहासन पर बैठा था। श्री एस० पी० पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व ५७४ वर्ष दिया है। बक का पुत्र नहीं था। सम्भव है राजा बक का सम्बन्धी रहा हो। क्योंकि राजा के पुत्र तथा पौत्र सभी भट्टा द्वारा बलि चढ़ा दिये गये थे।

३३७ (१) आइने अकबरी में 'विस्सनुन्द' नाम तथा उसका राज्यकाल ५२ वर्ष दो मास दिया गया है।

श्रीस्तीन के अनुसार लौकिक २५३५ वर्ष ४ मास १३ वें दिन राजा ने राज्या रोहण किया था। श्री एस० पी० पण्डित ने वह समय ईसा पूर्व ५४४ वर्ष दिया है।

हसन—राजा वसनन्द क० २५०२ में बाप के कायम मुकाम रौनक बख्श तख्त बादशाही हुआ। इन्तहाई राजा था। अक्लमन्द और बाहोश आदमी था। अक्लमन्द और आलिमों की कदर व मन्जिलत हद से ज्यादा करता था। किताबों से उस राजा का इश्क था। बावन बरस हुक्मरान रहकर आलम में हमेशा के लिये गुमनाम हो गया। पृष्ठ ४०।

(२) काम किंवा स्मरशास्त्र : वसुनन्द के इस प्रख्यात ग्रन्थ का अभी तक पता नहीं चला है। उसका उल्लेख अन्य ग्रन्थों में अवश्य मिलता है।

स्मर का अर्थ, स्मृति, स्मरण, प्रेम, प्रणय तथा कामदेव होता है। स्मर एक राग भी है। स्मरशास्त्र का अर्थ कामशास्त्र होता है। मरीचि तथा ऊर्णा के पुत्रों में से वह एक था। किन्तु यहाँ पर अर्थ कामशास्त्र ही है। 'दशकुमार चरितम्' में दण्डी ने कामशास्त्र के लिये 'अनंग' विद्या का प्रयोग किया है। २ : ६

(३) राज्यकाल : श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अपने राजतरंगिणी के अनुवाद के पृष्ठ ५८१ पर श्री एस०पी० पण्डित के लेख को उद्धृत किया है। उनके अनुसार राज्यकाल केवल बावन वर्ष दिया गया है। दो मास और अधिक नहीं जोड़ा गया है। परन्तु श्री स्तीन तथा सीताराम पण्डित दोनों ने अनुवाद में ५२ वर्ष २ मास राज्यकाल का अनुवाद किया है। अतएव यहाँ भी मूल का अनुवाद जो ५२ वर्ष दो मास आता है दिया गया है।

नरः षष्टिं तस्य सूनुस्तावतोऽक्षश्च तत्सुतः ।
व्यधान्भूद्विड्ग्रामं योऽक्षवालमकारयत् ॥ ३३८॥

नर, अक्ष—

३३८. उसके पुत्र नर अक्ष[२] ने साठ वर्ष शासन किया। उतने ही वर्ष (साठ वर्ष) उसके पुत्र अक्ष ने शासन किया। जिसने अक्षवाल[३] ग्राम निर्माण कराया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३८ में 'ग्रामं' का पाठभेद 'ग्रामो' तथा 'ग्रामं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३८ (१) आइने अकबरी में नाम 'नर' तथा उसका राज्य काल ६० वर्ष दिया गया है।

श्री स्तीन के अनुसार राजा का अभिषेक लौकिक सवत् ३५८७ वर्ष छठवां मास तेरहवें दिन हुआ था। श्री एम. पी. पण्डित ने यह काल ईसा पूर्व ४९१ वर्ष माना है।

हसन लिखता है—'राजा नर बाप की वफात के बाद क० २५४४ में ताजशाही सर पर रखा। कुल साठ बरस हकूमत में बसर करके दुनिया से रवाना हुआ।'

(२) आइने अकबरी में अक्ष का नाम 'उज' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है। श्री स्तीन के अनुसार लौकिक संवत् २६४७ वर्ष छठवां महीना तेरहवें दिन राज्यसिंहासन पर बैठा था। श्री एस. पी. पण्डित वह काल ईसा पूर्व ४३१ वर्ष मानते हैं।

हसन लिखता है—राजा अच्छ राजा नर का बेटा था। साठ साल तक हकूमत किया। दुल्हिन बगल में रखी और दुनिया से रुखसत हो गया। अछवल इसी राजा की यादगारों में से है।

उसका राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २६४७ में हुआ था। यहाँ कुछ गणना में त्रुटियाँ मालूम होती हैं। उसके पिता ने ६० वर्ष राज्य किया। उसने भी साठ वर्ष राज्य किया। पिता-पुत्र को मिलाकर १२० वर्ष हो जाता है।

(३) अक्षवल : अक्ष का अर्थ, आँख, पासा, गाड़ी, धुरा, रुद्राक्ष, सर्प तथा आत्मा होता है। कल्हण के वर्णन से ज्ञान होता है कि राजा अच्छ के समय में प्रथम बार ग्राम रूप में यह स्थान बसाया गया था। इसका वर्तमान रूप हजारों वर्षों के विकास का फल है। यह नगर वर्तमान अचवल है। अनन्त नाग से दक्षिण-पूर्व ६ मील पर स्थित है। कुथर परगना में है। सुन्दर जलस्रोतों के लिए प्रसिद्ध है।

वर्नियर ने अपनी यात्रा (पृष्ठ ४१३) में तथा वाइन (१:३४७) ने भी इसका वर्णन किया है। नीलमत पुराण में इस जलस्रोत का नाम अक्षिपाल नाग दिया गया है।

तथा च नागो व्यसरो नागो नीलमरो विहा।
अतुलाक्षोऽक्षिपालश्च च प्रहलादो यमकस्तथा ॥

मैं यहाँ १९५५ तथा १९५९ में आ चुका हूँ। अन्तिम बार १४-९-६३ में आया था। अचवल का झरना सुन्दर, शीतल तथा वेगशील है। सन् १६२० ई० में नूरजहाँ ने जलस्रोत को नियन्त्रित कर मुगल शैली का बाग निर्माण कराया है।

गाथा है कि त्रिघी नदी की धारा जो वानो दिवल गाय त्रिग परगना में लोप हो गयी है। वहीं अचवल में पुनः प्रकट हुई है। यदि वानोदिवल ग्राम में कोई टुकड़ा धारा में छोड़ दिया जाय तो वही पुनः अचवल में निकल आता है। अतएव अचवल जलस्रोत को त्रिघी की लुप्त धारा का पुनः यहाँ प्रकट होना मानते हैं।

अचवल के पर्वत मूल में जहाँ जल निकलता है यदि उसे देखा जाय तो मालूम पड़ता है जैसे जल स्तर पर अच्छ अर्थात् नेत्र बनते और बिगड़ते रहते

हैं। इसके कारण भी सम्भव है पूर्व काल में इसका नाम 'अच' रूप जल के कारण 'अच' रख दिया गया था। कालान्तर में राजा अच ने अपने नाम का स्थान होने के कारण वहाँ का और विकास किया अथवा 'अच' नाम रखकर अपने स्मारक तथा स्रोत के नामकरण दोनों की कल्पना की।

जलस्रोत के पृष्ठ में हरित देवदारु पादप पूर्ण पर्वत है। पर्वत ऊँचा है। वह बाग के लिए सुन्दर पृष्ठभूमि उपस्थित करता है। सितम्बर मास में मैं इस बाग में कुछ दिन रह चुका हूँ। बाग में फूल खूब हैं। धारा को नियन्त्रित कर एक स्रोत दक्षिण पश्चिम दिशा तथा मुख्य स्रोत के बाग के नहरों में लाया गया है। चिनार के वृक्ष पुराने अत्यधिक और काफी संख्या में लगाये गये हैं। बाग सड़क के किनारे पर है। डाक बंगला बाग से सटा बना है। बाग के दक्षिण पार्श्व में एक सरोवर तथा बाग बाग में राजकीय मत्स्य विभाग है। मछली यहाँ अत्यधिक मिलती हैं।

नूरजहाँ ने अछबल किंवा अचवल का नाम बेगमाबाद रखा था। इसे साहिबाबाद भी कहते हैं यह बाग ४६७ फीट लम्बा है। बाग पत्थर की दीवारों से घिरा है। यहाँ मुगलकालीन समय का ध्वन्सावशेष मिलेगा। मध्यवर्ती नहर १६ फीट तथा उसके दोनों तरफों की नहरें ८ फीट चौड़ी हैं। मध्यवर्ती नहर क्रमशः तीन चौकोर कुण्डों को भरती चलती है। आयताकार प्रत्येक सरोवर में फुहारे लगे हैं। दो सरोवरों के प्रत्येक मध्यवर्ती नहर में ५ फुहारे हैं। अन्तिम भाग में ६ फुहारे हैं।

बर्नियर ने सन् १६६३ ई० में इस स्थान पर एक रात्रि विश्राम किया था। वह स्पष्ट कहता है "यह बाग तथा स्थान कश्मीर के प्राचीन राजाओं का था। बाग इस समय मुगलों के पास है। यहाँ फलदार वृक्ष खूब लगे हैं। सरोवर में मछलियाँ बहुत मिलती हैं।

इस स्थान की सुन्दरता वेग पूर्वक भूमि से निकलने जलस्रोतों के कारण बढ़ जाती है। उसे फुहारा कहने के स्थान पर गोमुखियों उद्गम कहना अच्छा होगा। जल इतने वेग से निकलता है कि मालूम होता है—किसी कूप के अन्दर से पम्प करके ऊपर निकाला जा रहा है। राज उद्यान के नहरों में यह पानी फैला दिया है। इसका जल निर्मल एवं हिम सदृश शीतल है। उद्यान बहुत सुन्दर है। उसमें सेब, खुबानी, नाशपाती, आलूचा तथा शाहदाना अर्थात् बेरों के फलदार वृक्ष लगे हैं। यहाँ ऊँची जल की झालर गिरती है। वह तीस या चालीस फीट चौड़ी होगी। पानी की चादर की तरह दिखाई पड़ती है। रात्रि के समय चादर के पीछे दिवाल में बने ताखों में जब अनेक दीप जला दिये जाते हैं तो वे प्रभावोत्पादक बड़ा सुन्दर कलात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, (पृष्ठ ४१८) बादशाह जहाँगीर यहाँ पर आ चुका है। उसने अपने पन्द्रहवें जलूसी वर्ष में यहाँ का वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है।

'मंगल को अछबल के जलाशय के समीप शिविर पड़ा। पहले की अपेक्षा इसमें जल अधिक है। इसमें एक सुन्दर जलप्रपात है। इसके चारों ओर ऊँचे चीनार और सफेदा के वृक्षों के समूह ऊपर जाकर ऐसे मिल गये हैं कि इनके नीचे बैठने के लिये जैसे कुंज बन गया है। जहाँतक देखा जा सकता है वहाँ तक जाफरी फूलों का खिला हुआ उद्यान सुन्दर दिखायी देता है। जैसे वह स्वर्ग का एक दुपट्टा है।' (पृष्ठ ६८२)

जहाँगीर ने अपने जलूसी वर्ष १७ में ७ शव्वाल को पुनः कश्मीर की यात्रा की थी। वह अचवल पहुँचा। उसने एकम शहरियर को अचवल की यात्रा प्रथम यात्रा के दो वर्ष बाद की थी। इस अवसर पर उसने केवल इतना ही लिखा है—'अचवल के जलाशय के समीप ठहरे। और गुरुवार को महोत्सव वहीं मनाया गया।' (पृष्ठ ७५१)

जुगोप गोपादित्योऽथ क्ष्मां सद्वीपां तदात्मजः ।
वर्णाश्रमप्रत्यवेक्षादर्शितादियुगोदयः ॥३३९॥

गोपादित्य—

उनके आत्मज गोपादित्य ने सद्वीप पृथ्वी की रक्षा की, जिसने वर्णाश्रम परिपालन द्वारा आदि युग का उदय दिखा दिया था।

अचवल का विकास आधुनिक ढंग पर हुआ है। नगर का यथेष्ट विकास हो गया है। नगर में मस्जिदें काफी हैं। याग के सम्मुख वाम भाग में एक शिव मन्दिर है। आधुनिक मन्दिर है। मैं मन्दिर में पूजा करने गया था। एक महिला 'जय जगदीश हरे' मधुर लय मे गा रही थी। एक प्रौढ ब्राह्मण सांगोपाग पूजन कर रहे थे। मन्दिर तथा पूजा देखकर काशी की याद आती थी। पूजा में कोई भेद नही था। मन्दिर के बाहर भी एक लिंग था उसकी भी पूजा की जाती है।

मैं प्रातः काल घूमने निकला। सड़क पर पहुँचा। चौराहे पर मुझे एक मृत्तिका पात्र कसोरा में आटा, दाल, लाल मिर्चा रखा मिला। मैं खड़ा हो गया। उत्तर भारत मे इसे 'उतारा पुतारा' कहते हैं। यह प्रथा किसी न किसी रूप में समस्त भारत मे प्रचलित मिलेगी। भारत मे प्रायः चौराहो पर प्रेत बाधा, महामारी तथा कष्ट निवारणार्थ श्वेत कूष्माण्ड काट-कर फूल अक्षत के साथ रखा जाता है। धार अर्थात् जल मे कुछ पदार्थ मिलाकर स्त्रियाँ रात्रि किंवा ब्राह्म मुहूर्त्त मे चौराहा पर जल गिरा कर हाथ जोडती हैं। इस प्रकार का संस्कार प्रायः समस्त भारत मे मिलेगा। यह एक ही जन जीवन एवं संस्कृति का परिचायक है।

यहाँ से कुछ दूर पर उमा देवी का मन्दिर है। अचवल से लगभग १ मील दूर एक स्वामी जी का आश्रम है। स्वामी जी बंगाली हैं। आश्रम का नाम रामकृष्ण सम्मेलन आश्रम है। स्वामी जी ने अपने हाथों सब कुछ बनाया है। उनकी कुटी के ऊपर एक सुन्दर मन्दिर बना है। उसमे श्री रामकृष्ण परमहंस देव की तस्वीर गर्भगृह में पूजा निमित्त रखी है। अचवल में हिन्दू धर्म की एक छाया तथा आश्रम यही देखने को मिला। प्रसन्नता हुई। यहाँ कभी वेद की ऋचाओं का उद्घोष होता था। यज्ञ की वेदियो से पवित्र धूम ज्योति उद्भूत होती गगन की ओर बढती, मानव में आध्यात्मिकता का संचार करती थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३९ में "प्रत्यवेक्षा" का पाठभेद 'प्रत्यवीक्षा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३९ (१) : आइने अकबरी में नाम 'कुवोत' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष ६ दिन दिया है। राजा ने बुद्धिमानीपूर्वक न्याय पूर्ण राज्य किया था। उसने विजय भी बहुत की थी। उसके राज्य में जीव-हत्या वर्जित थी। राज्यादेश के अनुसार मास भक्षण निषेध था। सुलेमान (शंकराचार्य) पर्वत पर जो मन्दिर खड़ा है, वह इसी राजा के वजीर का निर्माण कराया है।

श्री स्तीन राजा गोपादित्य का राज्याभिषेक लौकिक संवत् २७०७ वर्ष छठवां मास तेरहवें दिन देते हैं। श्री एस० पी० पण्डित वह समय ईसा पूर्व ३७१ वर्ष मानते हैं।

हसन : 'राजा गोपादित्य बाप की वफात के बाद क० २६७४ में मुल्क हाकिम होकर कश्मीर की तमाम सरहदें अपने कब्जा एकदार मे ले आया। रैयत परवरी और इन्साफ से काम लेने मे लाशानी था। मौजा खुली नार व उद मे खाग वेरह में हाथ गाम करथन मे इस्कूरह पुर वागल और शागिस मे

सखोलखागिकाहाडिग्रामस्कन्दपुराभिधान् ।
शमाङ्गासमुखांश्चाग्रहारान् यः प्रत्यपादयत् ॥ ३४० ॥

जिसने खोल[१] सहित, खागिका[२], हाडा ग्राम[३], स्कन्दपुर[४], शमांगसादि[५] मुख्य अग्रहारों को दिया था।

इसकी यादगारों में से है। बेशुमार ग्राम बरहमनों और फकीरों को बख्श दिये और कई मन्दिर भी आबाद किये। जेष्ठेश्वर का मन्दिर जो 'कोह सुलेमान' पर वाका है उसकी अजसरेनव तामीर व मरम्मत कराई। मौजा गोपकार और वछगारा बतौर लंगर इस 'बुतखाना' के लिये वक्फ कर दिये। अपनी कलमरो किसी को भी जानकर मारने की इजाजत नहीं देता था। साठ बरस ६ माह हुक्मरानी करके मर गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४० में 'खोल' का 'निला', 'हाडिग्राम' का 'हाडिग्रामे' और 'शमाङ्गास' का 'शमाङ्गादि,' 'शमाजासा' तथा 'शमाजास' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४० (१) खोल : वर्तमान ग्राम खुली है। उलर परगना में है। खोल का अर्थ विकलांग तथा शिरस्त्राण होता है। खोलक का अर्थ ग्राम अथवा पुरवा होता है।

(२) खागिका : वर्तमान खागी अर्थात् खाग ग्राम है। उल्लेख पृ० १२५ पर किया गया है। खागि, खागिक, खाग एक ही नामवाचक शब्द है। नीलमत में एक खाग नाग का उल्लेख आया है।

स्वगः शिशिरवासी च आवासाः श्रीधरः खगः।
लाङ्गली बलमद्रश्च स्वरूप. पद्महस्तकः ॥
905 : १०७१, १००१

(३) हाडा ग्राम : वर्तमान आड्ग्राम है। आजकल इसे आरगोम गाव कहते हैं। नागाम परगना में है। इसका उल्लेख (रा०त० ८.६७२, १४८६ तथा २१९६) कल्हण ने किया है। पं० काशीराम को सन् १८९१ में यहाँ कुछ मन्दिरों के भग्नावशेष मिले थे। इस समय यहाँ दो बार जाकर के और कुछ विशेष सामग्री मुझे नहीं मिल सकी। यह शब्द लौकिक तथा स्थानीय प्रचलित नाम मालूम होता है।

(४) स्कन्दपुर : वर्तमान गांव खोन्दर है। यह एक बड़ा गाव कुपर परगना में है। तेलवान तथा नौगाम के बीच में पड़ता है।

नीलमत पुराण में स्कन्दायतन, स्कन्देश्वर तथा स्कन्द तीर्थ का उल्लेख आया है। श्री स्टीन ने यहाँ की यात्रा सन् १८९१ ई० में की थी। इसके विषय में उन्होंने कुछ लिखा नहीं है। मुझे इस स्थान पर कुछ विशेष सामग्री उल्लेखनीय नहीं मिली। इस समय अच्छा ग्राम है।

कदर्प नील समागम तीर्थ वर्णन के प्रसंग में स्कन्द के निवास स्थान का उल्लेख मिलता है।

सुवर्णबिन्दुस्तत्रैव हरस्यायतन शुभम्।
स्कन्दस्यायतनं तत्र सर्वपापनिषूदनम् ॥
112 : १५५ ॥

नीलमत में वितस्ता माहात्म्य के सम्बन्ध में स्कन्द तीर्थ का उल्लेख किया गया है।

स्नात्वा तु मदर्तीर्थे च स्कन्दतीर्थे च मानवः।
तथा सुरेश्वरीतीर्थे स्वर्गलोके महीयते ॥
1388 : १५३२ ॥

नीलमत में देवायतन कीर्तन के प्रसंग में स्कन्देश्वर का वर्णन मिलता है। उनका स्थान भाति वन में माना गया है।

ज्येष्ठेश्वरं प्रतिष्ठाप्य गोपाद्रावार्यदेशजाः ।
गोपाग्रहारान्कृतिना येन स्वीकारिता द्विजः ॥ ३४१ ॥

३४१. गोपाद्रि पर ज्येष्ठेश्वर[1] की प्रतिष्ठा कर, कृती जिस राजा ने आर्यदेशीय द्विजों से गोप अग्रहारों[3] को स्वीकृत कराया।

माल्ये वने गौतदेशं विश्वामित्रेश्वरं तथा
मौनासिकं वसिष्ठेशं मारुरेशं सुरेश्वरम् ॥
966 : ११६७

स्कन्देश्वरं वशिखेशं पौलस्त्यमपरं तथा।
दृष्ट्वा कुमारमेकैकं फलं गोदानजं लभेत् ॥
997 : ११६८ ॥

(५) शमांगास : वर्तमान सौमम है। यहाँ पर षड्हस्त कार्तिकेय अर्थात् स्कन्द की मूर्ति पाँचवी शताब्दी की मिली है। एक और मूर्ति अर्धनारीश्वर के साथ अवन्तीपुर के ध्वन्सावशेष से प्राप्त हुई है।

कार्तिकेय की पूजा चैत्र में होती थी। यह पूजा कश्मीर के शिशुओं एवं कुमारो के कल्याण हेतु की जाती थी।

३४१ (१) ज्येष्ठेश्वर और गोपाद्रि : गोपा पर्वत शंकराचार्य पर्वत है। गोपा अर्थात् गुपकर ग्राम इस पर्वत तथा डल लेक के मध्य इस समय भी मौजूद है।

मुसलमान लोग शंकराचार्य पर्वत को 'तख्त-ए-सुलेमान' कहते हैं। इसी प्रकार साइरेश (कुरु) महान, जिसने मीडिया जीता था तथा जिसकी मृत्यु सन् ५६६ ई० पू० हुई थी, उसकी राजधानी की अधित्यका को भी 'तख्त ए-सुलेमान' कहते हैं। साइरेश का संस्कृत नाम 'कुरु' कहा जाता है।

इस महान् सम्राट् की समाधि को मुसलमान लोग 'हजरत सुलेमान' की माता की मसजिद कहते हैं। हजरत सुलेमान मुसलमान नहीं बल्कि यहूदी थे। मुस्लिम धर्म के उत्पन्न होने के हजारो वर्ष पूर्व हुए थे। यहाँ पर वन्ध्या स्त्रियाँ, पुत्र तथा सन्तान निमित्त मन्नतें मानती हैं। फर्गहान के एक बौद्ध स्मारक को भी 'तख्त-ए-सुलेमान' कहा जाता है।

शंकराचार्य के वर्तमान मन्दिर का कई बार जीर्णोद्धार किया जा चुका है। अकबर, जहाँगीर और औरंगजेब के समय में यह भग्नावस्था में पड़ा था। इसका अरबी आलेख जिस समय कश्मीर के लोग प्रायः मुसलमान हो चुके थे, उस समय लिखा गया था। बरनियर ने अपने यात्रा वृत्तान्त में लिखा है। यहाँ एक छोटी मस्जिद थी। औरंगजेब के समय पुनः मन्दिरो के तोड़ने की हवा बह चली थी। उस समय रिवाज हो गया था। जहाँ हिन्दुओं का तीर्थ स्थान या बड़ा मन्दिर होता था, वहाँ मस्जिद तथा जियारतें बना दी जाती थी।

गोपा पर्वत से डल लेक का मनोमुग्धकारी दृश्य दिखाई देता है। मुसलमान इतिहासकार वोहउद्दीन कहता है 'तख्त-ए-सुलेमान' पर एक मन्दिर अथवा स्तूप बनाया गया था। उसमें प्रच-लित किंवदन्ती के अनुसार प्रभु 'ईसामसीह' की अस्थियाँ रखी गयी थी। रफीउद्दीन कहता है 'सिकन्दर बुत शिकन ने इसको नष्ट करवा दिया था।'

श्री नारायण कौल के समय मन्दिर मौजूद था। बरनियर ने इसका उल्लेख किया है। फोस्टर इसका उल्लेख नहीं करता। कहता है—'इस पर्वत के दूसरी तरफ एक दूसरा पहाड़ है। वहाँ एक छोटी मस्जिद है। उसमें बगीचा भी है। एक बहुत पुरानी इमारत है। वह एक मूर्ति का मन्दिर प्रतीत होता है।

गोपाद्रि गिर, गोपकार, तख्त-ए-सुलेमान, शंकराचार्य पर्वत, ज्येष्ठेश्वर आदि सब एक ही पर्वत के नाम हैं। गुपकर गाव उत्तर-पूर्व पर्वत के मूल में और डल के तट पर है। (रा० त० ८:११०४, १०)। पर्वत श्रीनगर के पूर्व दिशा में है। राजतरंगिणी (१:१२४) से मालूम होता है। अत्यन्त प्राचीनकाल से ज्येष्ठेश्वर शिव की पूजा यहाँ होती रही है। इस समय जेवर में देवस्थान है। वहाँ पूजा होती है। वह इस पर्वत के समीप है।

ज्येष्ठेश्वर का जो वर्णन राजा गोपादित्य के सन्दर्भ मे किया गया है, वह निस्सन्देह इसी पवित्र स्थान से सम्बन्ध रखता है। यह वही स्थान है, जहाँ इस समय शंकराचार्य पर्वत पर, शंकर का मन्दिर स्थित है। मन्दिर में इस समय विशाल शिव लिंग स्थापित है। मै इस स्थान की कई बार यात्रा कर चुका हूँ। श्री फरगुसन ने ठीक ही कहा है 'वर्तमान मन्दिर बहुत बाद का निर्माण है।' (पृष्ठ २८२।)

मन्दिर का ऊंचा अधिष्ठान तथा सीढियाँ, निस्सन्देह कल्हण द्वारा देखी हुई गोपादित्य के मन्दिर की निर्माण है। इस पर्वत पर इस मन्दिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन निर्माण अथवा किसी प्रकार का ध्वंसावशेष नही रह गया है। मेरी जानकारी मे यहाँ अभी तक कोई प्राचीन वस्तु नही मिली है। एक बड़े निर्माण के लिए इस पर्वत पर यही एक उपयुक्त स्थान है। जहा बड़े पैमाने पर कुछ बनाया जा सकता था।

ज्येष्ठ का अर्थ सबसे बड़ा होता है। यह परमेश्वर के लिये भी प्रयुक्त किया गया है। यह सामगान का एक प्रकार भी है। मलमास, अधिकमास तथा ज्येष्ठमास तीन वर्ष के पश्चात् पड़ने वाले अधिक चन्द्रमास के लिये प्रयोग किया जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त पूर्णमासी अर्थात् ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के लिये भी ज्येष्ठशब्द का प्रयोग किया जाता है।

गोपाचल ग्वालियर के समीप भी एक पर्वत है। ग्वालियर का एक नाम गोपा है। गोप का प्राचीन अर्थ रक्षक किंवा रक्षा करने वाला होता है।

शंकराचार्य मन्दिर का सबसे पुराना फोटो कर्नल कोल की पुस्तक मे (पृष्ठ १-८८) छपा है। उस समय (सन् १८६९ ई०) मन्दिर पर पेड़ तथा घास जम गये थे। मन्दिर की मरम्मत नही हुई थी। मन्दिर का बाह्य आकार जैसा उस समय था वैसा ही इस समय भी है।

मन्दिर श्रीनगर के भूमितल से १००० फुट ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। कोल का कहना है कि परम्परागत गाथा के अनुसार यह मन्दिर राजा जालुक ने ईसापूर्व २२०' मे निर्माण कराया होगा। मार्शल का मत है कि कश्मीर के अन्य हिन्दू मन्दिरों का जो काल है, वही इस मन्दिर का है। मन्दिरों पर लोग अपना नाम तथा निर्माण काल खुदवा दिया करते है। श्री फरगुसन को प्रारम्भ मे भ्रम हो गया था। उसने मन्दिर पर हिजरी १०६९ लिखा देखा था। अतएव उन्होंने धारणा बना ली—मन्दिर जहांगीर के काल मे बनाया गया था। यह भ्रम है। इसी प्रकार मन्दिर के अन्दर दक्षिण पश्चिम स्तम्भ पर लिखा है। एक साहुकार 'हाजो हस्ती' ने संवत् ५४ में शिव का निर्माण किया'। उस समय इस्लाम धर्म का उदय नही हुआ था। उसी स्तम्भ के नीचे एक जगह लिखा है 'ख्वाजा रुकन वल्द पीर जान ने मन्दिर बनवाया।' इसमें संवत् अथवा हिजरी सन् नही दिया गया है। कल्हण के अनुसार गोपादित्य ने मन्दिर का निर्माण ईसा पूर्व ३६८-३०८ वर्ष मे किया था। किसी विशेष प्रमाण के अभाव में मूलमन्दिर का निर्माण काल यह मान लिया जा सकता है।

राजा अभिनव गुप्त (सन् ९९३-१०१५ ई०) के समय की किंवदंती प्रचलित है। शंकराचार्य के एक शिष्य का यहाँ आगमन हुआ था। वह वेदान्ती थे। शक्ति में उसका विश्वास नही था। एक दिन

उसको बहुत भूख लगी। मार्ग में एक स्त्री को दूध लिये जाते देखा। दूध माँगा। स्त्री ने कहा। पर्वत से नीचे उतरिए। दूध दूँगी। उत्तर मिला। शक्ति नहीं है जो पर्वत से उतर सकूँ। स्त्री ने उत्तर दिया। शक्ति कैसे होगी। तुम शक्ति में विश्वास नहीं करते। वेदान्ती को बात लग गयी। शक्ति में विश्वास करने लगे। 'सौन्दर्य लहरी' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना शक्ति की प्रशंसा एवं स्तुति में की।

मन्दिर पतला है। इसका अधिष्ठान २० फुट ऊँचा है। यह १३ परत शिलाखण्डों का बना है। चारों कोणों पर तीन कोणाकार अधिष्ठान बना है। बौद्ध शैली के आधार पर बौद्ध लोग इसे अपना पवित्र मन्दिर मानते हैं। यहां मन्दिर का बाह्य रूप है। कोणाकार रूप के कारण जो बौद्ध स्तूपों में पाया जाता है, कुछ लोगों का मत है यह बौद्ध मन्दिर था।

मन्दिर का बाहरी चौतरा ३३ फुट चौड़ा है। उसपर मुड़ेरा तुल्य बनावट मन्दिर के अष्टभुजीय रूप को प्रकट करता है। मन्दिर के चबूतरे पर पहुँचने के लिए तीन वर्गों में पत्थर सीढ़ियाँ की बनी हैं। पहला ६, दूसरा ७ तथा तीसरा १८ सीढ़ियों का बना है। अट्ठारह सीढ़ियों वाली चढ़ान दोनों ओर से दिवालों द्वारा बन्द है। इसके पश्चात् १० सीढ़ियों से चढ़ने पर मन्दिर के द्वार तक पहुँचा जा सकता है। मन्दिर का गर्भगृह गोलाकार है।

अर्घा में एक बड़ा लिंग है। मन्दिर का शिखर २५ फुट ऊँचा है। यह चबूतरे में ५ फीट ऊँचाई पर है। चबूतरे का परिवेश १०० फुट होगा। मन्दिर का व्यास १४ फिट है। छत ११ फुट ऊँचाई से आरम्भ होती है। छत के आधार तुल्य चारों कोनों पर चार अठपहले स्तम्भ हैं। दिवाल ७½ फुट मोटी है। सम्पूर्ण मन्दिर शिलाखण्डों अर्थात् पत्थर का बना है।

मन्दिर की शिल्पकला का नाम कश्मीरी हिन्दू कला दिया जा सकता है। यह मन्दिर बंगाल के मन्दिरों के शिल्पकला के आकार तथा रूप से कुछ मिलता है।

कर्नल कोल ने मन्दिर का प्लान पृष्ठ १-८८ पर दिया है। शिव लिंग के चारों तरफ लपटे हुए सर्प की बात कही गयी है। मुझे सर्प तुल्य कोई वस्तु लिंग से लिपटी हुई नहीं दिखाई पड़ी। सम्भव है। प्राचीन शिवलिंग के स्थान पर नवीन शिव लिंग की स्थापना मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय की गयी है। कैप्टन श्री नाइट लिखता है : (सन् १८६१ ई०) यह भूमि से एक हजार फुट ऊँचा है। कहा जाता है कि अशोक के पुत्र जलौक ने इसका निर्माण कराया था— इस मन्दिर का प्लान अठपहला अर्थात् अष्टकोणीय है। प्रत्येक पहल १५ फिट लम्बा है। मन्दिर में १५ सीढ़ियाँ चढ़कर पहुँचा जाता है। प्रत्येक सीढ़ी आठ फिट चौड़ी है। उसके दोनों तरफ ढालुआ दीवालें है। मन्दिर की दीवाल आठ फुट चौड़ी है। यह एक सब से बड़ा प्रमाण है कि यह मन्दिर बहुत पुराना था। (एपिडिक्स ए. पृष्ठ ३५४ (१८६१)

वह मन्दिर के विषय में लिखता है—मन्दिर इस समय दो हिन्दू साधुओं की संरक्षता में है। यहां मैंने दो बड़े गन्दे फकीरों अथवा धार्मिक साधुओं को देखा। उनमें एक सो रहा था। उसका पैर धूल तथा भस्म में पड़ा था, दूसरा अविचल बैठा था। उसकी एक भी मांस-पेशियाँ तक हिल नहीं रही थीं। वह प्रातःकालीन सूर्य में धूप खा रहा था। दोनों प्रायः नंगे थे। उनके शरीर पर तथा मुख पर राख पुती हुई थी। उनके बाल लम्बे और जटा का रूप ले लिये थे। वे दोनों जगत् से जैसे सम्बन्ध तोड़ चुके थे। मैं वहाँ पर था। परन्तु उनमें से किसी ने मेरी तरफ न तो देखा और न ध्यान दिया। उन्हें मेरी उपस्थिति का जैसे ज्ञान भी नहीं था। यद्यपि मैंने उनमें से एक का स्केच किया। दोनों की तरफ बहुत देर तक इस प्रकार ध्यान पूर्वक देखता रहा जैसे किसी चिड़ियाघर में कोई नया जानवर आया हो परन्तु उन्हें जैसे इन सबका कोई ज्ञान ही नहीं था।

गोपाद्रि गिर, गोपकार, तख्त-ए-सुलेमान, शंकराचार्य पर्वत, ज्येष्ठेश्वर आदि सब एक ही पर्वत के नाम हैं। गुपकर गाव उत्तर-पूर्व पर्वत के मूल में और डल के तट पर है। (रा० त० ८:११०४, १०)। पर्वत श्रीनगर के पूर्व दिशा में है। राजतरंगिणी (१:१२४) से मालूम होता है। अत्यन्त प्राचीनकाल से ज्येष्ठेश्वर शिव की पूजा यहाँ होती रही है। इस समय जेकर में देवस्थान है। वहाँ पूजा होती है। वह इस पर्वत के समीप है।

ज्येष्ठेश्वर का जो वर्णन राजा गोपादित्य के सन्दर्भ मे किया गया है, वह निस्सन्देह इसी पवित्र स्थान से सम्बन्ध रखता है। यह वही स्थान है, जहाँ इस समय शंकराचार्य पर्वत पर, शंकर का मन्दिर स्थित है। मन्दिर मे इस समय विशाल शिव लिंग स्थापित है। मै इस स्थान की कई बार यात्रा कर चुका हूँ। श्री फरगुसन ने ठीक ही कहा है 'वर्तमान मन्दिर बहुत बाद का निर्माण है।' (पृष्ठ २८२)

मन्दिर का ऊंचा अधिष्ठान तथा सीढियाँ, निस्सन्देह कल्हण द्वारा देखी हुई गोपादित्य के मन्दिर की निर्माण है। इस पर्वत पर इस मन्दिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन निर्माण अथवा किसी प्रकार का ध्वंसावशेष नही रह गया है। मेरी जानकारी में यहाँ अभी तक कोई प्राचीन वस्तु नही मिली है। एक बड़े निर्माण के लिए इस पर्वत पर यही एक उपयुक्त स्थान है। जहा बड़े पैमाने पर कुछ बनाया जा सकता था।

ज्येष्ठ का अर्थ सबसे बड़ा होता है। यह परमेश्वर के लिये भी प्रयुक्त किया गया है। यह सामगान का एक प्रकार भी है। मलमास, अधिकमास तथा ज्येष्ठमास तीन वर्ष के पश्चात् पड़ने वाले अधिक चन्द्रमास के लिये प्रयोग किया जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त पूर्णमासी अर्थात् ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के लिये भी ज्येष्ठ शब्द का प्रयोग किया जाता है।

गोपाचल ग्वालियर के समीप भी एक पर्वत है। ग्वालियर का एक नाम गोपा है। गोप का प्राचीन अर्थ रक्षक किंवा रक्षा करने वाला होता है।

शंकराचार्य मन्दिर का सबसे पुराना फोटो कर्नल कोल की पुस्तक मे (पृष्ठ १-८८) छपा है। उस समय (सन् १८८६ ई०) मन्दिर पर पेड़ तथा घास जम गये थे। मन्दिर की मरम्मत नही हुई थी। मन्दिर का वाह्य आकार जैसा उस समय था वैसा ही इस समय भी है।

मन्दिर श्रीनगर के भूमितल से १००० फुट ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। कोल का कहना है कि परम्परागत गाथा के अनुसार यह मन्दिर राजा जालुक ने ईसापूर्व २२०' में निर्माण कराया होगा। मार्शल का मत है कि कश्मीर के अन्य हिन्दू मन्दिरो का जो काल है, वही इस मन्दिर का है। मन्दिरो पर लोग अपना नाम तथा निर्माण काल खुदवा दिया करते है। श्री फरगुसन को प्रारम्भ में भ्रम हो गया था। उसने मन्दिर पर हिजरी १०६९ लिखा देखा था। अतएव उन्होने धारणा बना ली—मन्दिर जहांगीर के काल मे बनाया गया था। यह भ्रम है। इसी प्रकार मन्दिर के अन्दर दक्षिण पश्चिम स्तम्भ पर लिखा है। एक साहुकार 'हाजी हुस्ती' ने संवत् ५४ मे शिव का निर्माण किया'। उस समय इस्लाम धर्म का उदय नही हुआ था। उसी स्तम्भ के नीचे एक जगह लिखा है 'ख्वाजा रुकन अस्द पीर जान ने मन्दिर बनवाया।' इसमे संवत् अथवा हिजरी सन् नही दिया गया है। कल्हण के अनुसार गोपादित्य ने मन्दिर का निर्माण ईसा पूर्व ३६८-३०८ वर्ष मे किया था। किसी विशेष प्रमाण के अभाव में मूलमन्दिर का निर्माण काल यह मान लिया जा सकता है।

राजा अभिनव गुप्त (सन् ९९३-१०१५ ई०) के समय की किवदंती प्रचलित है। शंकराचार्य के एक शिष्य का यहा आगमन हुआ था। वह वेदान्ती थे। शक्ति में उसका विश्वास नही था। एक दिन

उसको बहुत भूख लगी। मार्ग में एक स्त्री को दूध लिये जाते देखा। दूध माँगा। स्त्री ने कहा। पर्वत से नीचे उतरिए। दूध दूँगी। उत्तर मिला। शक्ति नहीं है जो पर्वत से उतर सकूं। स्त्री ने उत्तर दिया। शक्ति कैसे होगी। तुम शक्ति में विश्वास नहीं करते। वेदान्ती को बात लग गयी। शक्ति में विश्वास करने लगे। 'सौन्दर्य लहरी' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ को रचना शक्ति की प्रशंसा एवं स्तुति में की।

मन्दिर पतला है। इसका अधिष्ठान २० फुट ऊँचा है। यह ११ परत शिलाखण्डों का बना है। चारों कोणों पर तीन कोणाकार अधिष्ठान बना है। बौद्ध शैली के आधार पर बौद्ध लोग इसे अपना पवित्र मन्दिर मानते हैं। यहां मन्दिर का बाह्य रूप है। कोणाकार रूप के कारण जो बौद्ध स्तूपों में पाया जाता है, कुछ लोगों का मत है यह बौद्ध मन्दिर था।

मन्दिर का बाहरी चौतरा ३३ फुट चौड़ा है। उसपर मुंडेरा तुल्य बनावट मन्दिर के अष्टभुजीय रूप को प्रकट करता है। मन्दिर के चबूतरे पर पहुँचने के लिए तीन वर्गों में पत्थर सीढ़ियाँ की बनी हैं। पहला ६, दूसरा ७ तथा तीसरा १८ सीढ़ियों का बना है। अट्ठारह सीढ़ियों वाली चढान दोनों ओर से दिवालों द्वारा बन्द है। इसके पश्चात् १० सीढियों से चढने पर मन्दिर के द्वार तक पहुँचा जा सकता है। मन्दिर का गर्भगृह गोलाकार है।

अर्घा में एक बड़ा लिंग है। मन्दिर का शिखर २५ फुट ऊँचा है। यह चबूतरे में ५ फीट ऊँचाई पर हैं। चबूतरे का परिवेश १०० फुट होगा। मन्दिर का व्यास १४ फिट है। छत ११ फुट ऊँचाई से आरम्भ होती है। छत के आधार तुल्य चारों कोनों पर चार अठपहले स्तम्भ हैं। दिवाल ७½ फुट मोटी है। सम्पूर्ण मन्दिर शिलाखण्डों अर्थात् पत्थर का बना है।

मन्दिर की शिल्पकला का नाम कश्मीरी हिन्दू कला दिया जा सकता है। यह मन्दिर बंगाल के मन्दिरों के शिल्पकला के आकार तथा रूप से कुछ मिलता है।

कर्नल कोल ने मन्दिर का प्लान पृष्ठ १-८८ पर दिया है। शिव लिंग के चारों तरफ लपटे हुए सर्प की बात कही गयी है। मुझे सर्प तुल्य कोई वस्तु लिंग से लिपटी हुई नहीं दिखाई पड़ी। सम्भव है। प्राचीन शिवलिंग के स्थान पर नवीन शिव लिंग की स्थापना मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय की गयी है। कैप्टन थी नाइट लिखता है : (सन् १८६१ ई०) यह भूमि से एक हजार फुट ऊँचा है। कहा जाता है कि अशोक के पुत्र जलौक ने इसका निर्माण कराया था-इस मन्दिर का प्लान अठपहला अर्थात् अष्टकोणीय है। प्रत्येक पहल १५ फिट लम्बा है। मन्दिर में १५ सीढ़ियां चढ़कर पहुंचा जाता है। प्रत्येक सीढ़ी आठ फिट चौड़ी है। उसके दोनों तरफ ढालुआ दीवालें है। मन्दिर की दीवाल आठ फुट चौड़ी है। यह एक सब से बड़ा प्रमाण है कि वह मन्दिर बहुत पुराना था। (एमिण्टिक्स ए. पृष्ठ ३५४ (१८६१)

वह मन्दिर के विषय में लिखता है—मन्दिर इस समय दो हिन्दू साधुओं की संरक्षता में है। यहां मैंने दो बड़े गन्दे फकीरों अथवा धार्मिक साधुओं को देखा। उनमें एक सो रहा था। उसका पैर धूल तथा भस्म में पड़ा था, दूसरा अविचल बैठा था। उसकी एक भी मांस-पेशियां तक हिल नहीं रही थीं। वह प्रातःकालीन सूर्य में धूप खा रहा था। दोनों प्रायः नंगे थे। उनके शरीर पर तथा मुख पर राख पुती हुई थी। उनके बाल लम्बे और जटा का रूप ले लिये थे। वे दोनों जगत् से जैसे सम्बन्ध तोड़ चुके थे। मैं वहाँ पर था। परन्तु उनमें से किसी ने मेरी तरफ न तो देखा और न ध्यान दिया। उन्हें मेरी उपस्थिति का जैसे ज्ञान भी नहीं था। यद्यपि मैंने उनमें से एक का स्केच किया। दोनों की तरफ बहुत देर तक इस प्रकार ध्यान पूर्वक देखता रहा जैसे किसी चिड़ियाघर में कोई नया जानवर आया हो परन्तु उन्हें जैसे इन सबका कोई ज्ञान ही नहीं था।

श्री वाइन अपने ट्रेवेल पृष्ठ ९०-९१ में लिखते है। तख्त-सुलेमान एक पुराना हिन्दू मन्दिर है। वह तेजस्वी सुलेमान का तख्त कहा जाता है। वह प्राचीन शक्तिशाली इन्द्रजालिक, जिन्हें प्रत्येक पवित्र मुसलमान विश्वास करता है कि वह आकाश से उस सिंहासनपर आये थे जो देविस तथा एरिट लेकर आए थे। जिन्हें भगवान् ने सुलेमान का सेवक बना दिया था।

श्री डबलू, वेरफोल्ड लिखते है—'मैं नहीं जानता कि तख्त सुलेमान नाम क्यों पड़ा। निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि बाइबिल का सर्वविख्यात व्यक्ति (सुलेमान) क्या यहाँ आकर पर्वत पर अपना तख्त बनाया था। किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। यह विचित्र बात है कि पूर्व में अपने पवित्र इतिहास से सम्बन्धित व्यक्तियों का नाम जिनसे हम परिचित हैं यहाँ की स्थानीय गाथाओं, साहित्य तथा यथार्थ सच्चाई में मिलते हैं जैसे कि हजरत नूह तथा उसके पुत्र की मजारें फैजाबाद के समीप अयोध्या में है। एशिया के इस भाग में दो नामों की प्रसिद्धि इस संज्ञा के कारण हुई है। क्यों और किस प्रकार तख्त ए सुलेमान इस ऊँचे पर्वत का सुलेमान के नाम पर नाम पड़ा कहना कठिन है। यहाँ की स्थानीय जन कथाओं में कोई ऐसी कथा नहीं मिली। जिससे मालूम होता कि हजरत सुलेमान ने यहाँ आसपास आश्चर्यजनक काम किया था। यहाँ के अच्छे मुसलमान कहते हैं कि यहाँपर हजरत सुलेमान ने ठहर कर कश्मीर उपत्यका का जल जिन्नों को आज्ञा देकर निकलवाया था। जिन्हें सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने सुलेमान के आधीन कर दिया था।

'हिन्दू लोग इसे सिर-ई-शुर-अर्थात् शिवका शिर कहते हैं ………अष्टकोणीय चबूतरा पर जो १२ फिट ऊँचा हैं उसपर ३० फिट ऊँचा कोणीय मन्दिर बना है। इसमें चूने के पत्थर की सीढ़ियाँ पूर्व दिशा में हैं जो भूमिस्तर से मन्दिर के गर्भ-गृहमें पहुंचाती है। चूने के पत्थर पर खूब पालिश की गयी है। यही पत्थर सम्पूर्ण मन्दिर की रचना में लगाया गया है। मन्दिर का गर्भगृह वृत्ताकार अर्थात् गोला है। उसका व्यास १४ फिट है। छत समतल है। यह चार खम्भों पर आधारित है। इसमें एक चौखूंटा अधिष्ठान है। उसपर काले पत्थर का शिव लिंग है। उससे प्रकट होता है कि इस शिवाल के अन्दर विभिन्न समयों में कितने विभिन्न धर्मों का अनुकरण किया गया होगा। मूलतः यह बौद्ध मन्दिर था। कालान्तर में मुसलिम काल में मसजिद बना दिया गया। तत्पश्चात् हिन्दुओं द्वारा शिव मन्दिर का रूप प्रदान किया। पृष्ठ-९०-९१

महाराज मैसूर ने मन्दिर के शिखर पर बिजली लगवायी है। यह बिजली सब तरफ जलती है। उसका प्रकाश कश्मीर उपत्यका के किसी भी भाग में दिखाई देता है। राजा ने बिजली के खर्च के लिए रुपया जमा कर दिया है। उसी से बिजली का खर्च किया जाता है। रात्रि में मन्दिर पर तथा शिखर पर अमर ज्योति जलती है। कश्मीर उपत्यका में वह जैसे भगवान् का स्मरण दिलाती है। भगवान् कश्मीर की उपत्यका की रक्षा किंवा संरक्षण कर रहे हैं। उस रोशनी को देखकर मन को एक प्रकार का आध्यात्मिक संतोष तथा शान्ति मिलती है।

मन्दिर के उत्तर-पूर्व एक चबूतरा है। जहाँ सम्भवतः पहले कोई इमारत बनी रही होगी। मन्दिर के उत्तर पार्श्व के समीप एक अलंकृत कमरा चूने के पत्थर का बना है। कमरा ११ फुट वर्गाकार तथा ६½ फुट ऊंचा है। मन्दिर के दक्षिण तरफ ४० फुट दूर पर एक होज है। वह अलकृत पत्थर का बना है। यह ११ फुट वर्गाकार और ९ फुट गहरा है। शिखर पर जल की कठिनाई है। पर्वत मूल से आदमी जल लेकर ऊपर आता है। इस होज में बर्फ तथा वर्षा का जो जल एकत्रित होता है। इससे मन्दिर की पूजा तथा अर्चना होती है।

भूक्षीरवाटिकायां यो निर्वास्य लशुनाशिनः ।
खासटायां व्यधाद्विप्रान् निजाचारविवर्जितान ॥ ३४२ ॥

३४२. उसने लहसुनभोजी[1] विप्रों को भूक्षीर वाटिका[2] तथा निज आचारहीन ब्राह्मणों को खासटा से[3] निर्वासित कर दिया ।

राजतरंगिणी के अनुसार राजा गोपादित्य ने (ईसा पूर्व ३६८-३०८) में इस मन्दिर का निर्माण कराया था । राजा ललितादित्य सन् ७०१-७३७ ई० ने मन्दिर का जीर्णोद्धार, मन्दिर निर्माण के लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् कराया था । कश्मीर के बड़शाह जैनुल आबदीन (सन् १४२०-१४७० ई०) ने मन्दिर की छत की मरम्मत करवायी थी । छत भूकम्प के कारण प्रायः नष्ट हो गयी थी । सिख राज्यपाल शेखगुलाम मोहिउद्दीन ने शिखर की ईंटो से मरम्मत करवायी थी । डोगरा राजाओं ने ईंटों के स्थान पर पत्थर का शिखर, जैसा पूर्व मन्दिर का था, बनवा दिया है ।

पूर्वकाल में झेलम नदी के सुधारयार घाट से मन्दिर तक सीढ़ियां बनी थीं । वे अब नष्ट हो गया है । सुना जाता है । मन्दिर की इन सीढ़ियों के पत्थरों से नूरजहाँ ने श्रीनगर में पत्थर मस्जिद का निर्माण कराया है । पत्थर मस्जिद वितस्ता के वाम तट पर स्थित है । यह मुगल स्थापत्य शैली पर बनी है । मस्जिद में कोई नमाज़ नहीं पढ़ता । मस्जिद का इसलिए त्याग कर दिया गया कि नूरजहा की जूतों का कीमत मात्र मस्जिद निर्माण की कीमत आंकी गयी थी । अतएव यह अपवित्र मानकर त्याग दी गयी । मैंने इस मस्जिद को देखा है । मस्जिद में एक बड़ा अहाता है । सूना पड़ा है । इसमें बच्चे खेलते है ।

शंकराचार्य पर्वत का नाम तख्त सुलेमान 'बाण भट्ट' का रखा हुआ है ।

(२) आर्य देशीय : श्री रणजीत सीताराम पण्डित के अनुसार कल्हण ने यहा गंगा और यमुना के भूखण्ड को माना है । किन्तु उत्तरी भारतवर्ष को यदि आर्यावर्त मान लेते हैं तो यह शब्द आर्यदेश के अर्थके अधिक समीचीन होगा ।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है गोप या गुपकर में आर्यदेशीय ब्राह्मणों के निवास निमित्त राजा ने अग्रहार दिया था । डललेक के तट पर ब्राह्मणों के आबाद करने का यह प्रथम उदाहरण मिलता है ।

उक्त विवरण से स्पष्ट प्रकट होता है । कश्मीर के ब्राह्मणों की मान्यता खान-पान की परम्परा न पालन करने कारण समाप्त हो गयी थी । उनके स्थान पूर्ति निमित्त आचारवान ब्राह्मणों को बाहर से लाकर आचार रक्षा निमित्त बसाया गया था ।

(३) गोपा अग्रहार : गोपा अग्रहार गुपकर ग्राम में स्थित फलवाले बगीचों आदि का स्थान रहा होगा । श्रीनगर में जिस तेजी के साथ आबादी बढ़ रही है, उससे यह ग्राम भी नष्ट होकर, आबादी तथा मकानों के समूह का रूप ले लेगा ।

पाठभेद :

- श्लोकसंख्या ३४२ में 'व्यधाद्वि' का 'व्यधानिव' 'व्यधार्वि', 'वृधान्वि' तथा 'व्यधान्वि' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३४२. (१) लहसुनभोजी : मनुस्मृति लहसुन का प्रयोग द्विजों के लिए वर्जित करती है ।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ।५५।

लहसुन तथा प्याज का भोजन ब्राह्मणों एवं द्विजो के लिये वर्जित माना गया है । उच्च वर्ण के लोग उनका व्यवहार कुछ दिन पूर्व नहीं करते थे । मेरे घरमें अबतक लहसुन प्याज का प्रवेश नहीं हो सका

अन्यांश्चानीय देशेभ्यः पुण्येभ्यो वश्चिकादिषु ।
पावनानग्रहारेषु ब्राह्मणान्स न्यरोपयत् ॥ ३४३ ॥

३४३. उसने पुण्यदेशों[1] से अन्य पवित्र ब्राह्मणों[2] को लाकर वश्चिक[3] आदि अग्रहारों में बसाया।

उत्तमो लोकपालोऽयमिति लब्ध्वा प्रशस्तिषु ।
यः प्राप्तवान्विना यज्ञं चक्षमे न पशुक्षयम् ॥३४४॥

३४४. जिसने प्रशस्तियों[1] में यह 'उत्तम लोकपाल है', उपाधि प्राप्त की थी। यज्ञ के अतिरिक्त पशु क्षय[2] वह सहन नहीं कर सकता था।

है। मैं स्वयं नहीं खाता। सनातनी ब्राह्मण गण आज भी लहसुन प्याज का भक्षण नहीं करते। उन्हें अभक्ष्य माना गया है। वैष्णव तथा वैश्य वर्ग में एक बहुत बड़ा समाज लहसुन तथा प्याज से परहेज करता है। मारवाड़ी वासा में अबतक प्याज एवं लहसुन का प्रयोग नहीं किया जाता।

(२) भूक्षीर वाटिका: वर्तमान बुछो बोर प्राचीन भूक्षीर वाटिका स्थान है। यह पतला भूखण्ड है। शंकराचार्य पर्वत के मूल में उत्तर-पश्चिम स्थान से डल के एक भाग नगरी बल तक फैला है। 'बोर' शब्द संस्कृत वाटिका का अपभ्रंश है। भू का अर्थ भूमि, क्षीर का अर्थ दूध, तथा वाटिका का अर्थ छोटा उद्यान होता है। शुद्ध संस्कृत नाम। सम्भव है वहाँ पर ऐसे वृक्ष हैं जिनके पत्ते या डंठल तोड़ने पर गूलर, बटादि की तरह दूध निकलता रहा हो।

(३) खासटा: इस स्थान को सुदर बल के समीप होना चाहिए। निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में यह स्थान कहाँ पर था। पृष्ठ १९० सुदर बल टिप्पणी द्रष्टव्य है।

३४३ (१) पुण्यदेश: यहाँ पर पुण्यदेश का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। राजा सम्भवत: कश्मीर को पुण्यदेश इसलिये नहीं समझता था कि वहाँ के ब्राह्मणादि आचारभ्रष्ट हो गये थे। कई बार वहाके ब्राह्मणों के सुधार की चेष्टा की गयी। कितनी ही बार ब्राह्मण बाहर से लाकर कश्मीर में बसाये गये परन्तु प्रतीत होता है कालान्तर में आने वाले ब्राह्मण भी स्थानीय ब्राह्मणों से मिलकर आचार का त्याग कर देते थे। अतएव राजा कश्मीर के बाहर 'पुण्यदेश' उत्तरी भारत के तीर्थस्थानों आदि से लाकर ब्राह्मण कश्मीर में बसाये।

(२) पवित्र ब्राह्मण: कश्मीर की तुलना में पुण्यदेश के ब्राह्मणों को पवित्र कहा गया है। पवित्र ब्राह्मण का यहाँ अर्थ—विद्वान्, आचार-नियम स्वाध्यायप्रिय, पठन-पाठन-यज्ञादि कर्मकाण्ड में पारंगत ब्राह्मणों से है।

(३) वश्चिक: यह वर्तमान गाव उचो है। रामब्यार नदी की पूर्व दिशा में अधोभाग में है। सन् १८९१ में पं० काशीराम को यहाँ कुछ खण्डित मूर्तियाँ मिली थीं। उनके अनुसार स्थान विशेष प्राचीन महत्व नहीं रखता था। मात्र एक देवस्थान रूप में स्थित था। इसके पूर्व में नदी कुछ दूर पर पड़ेगी। उत्तर में रामब्यार नदी है। पश्चिम में दुरबाग तथा सपनगर है। दक्षिण में अलनी है। यह विजयेश्वर के पश्चिम पड़ता है।

३४४. (१) प्रशस्ति: निसन्देह गोपादित्य ऐतिहासिक व्यक्ति था। उसके नाम से सम्बन्धित गोपाद्रि पर्वत, गोपकुर (गोपा अग्रहार) तथा अनेक स्थान हैं। शंकराचार्य पर्वत पर स्थित मन्दिर इस राजा का निर्माण था। यहाँ पर,

सपड्दिनां वर्षषष्टिं पालयित्वा स मेदिनीम् ।
भोक्तुं पुण्यपरीपाकं लोकान्सुकृतिनामगात् ॥ ३४५ ॥

३४५. उसने साठ वर्ष छह दिन[1] मेदिनी का पालन करके, पुण्य परिपाक भोग हेतु, सुकृतियों के लोक में प्रस्थान किया।

गोऽर्णस्तत्सुतः क्षोणीं गोकर्णेश्वरकृद्दधे ।
अष्टपञ्चाशतं वर्षांस्त्रिंशत्याऽह्नां विवर्जितान् ॥ ३४६ ॥

गोकर्णः[1]

३४६. गोकर्णेश्वर[2] का निर्माता उसके पुत्र गोकर्ण ने तीस दिन कम अट्ठावन वर्ष[3] पृथ्वी पर शासन किया।

प्रतीत होता है, कल्हण ने गोपादित्य सम्बन्धी प्रशस्तियों से अपनी लेखन सामग्री ली थी।

प्रशस्ति के लिये टिप्पणी पृ० १३ 'प्रशस्ति पट्ट' द्रष्टव्य है।

(२) पशुक्षय—यज्ञ में पशुहत्या विहित थी। अतएव राजा ने पशुहत्या यज्ञ के अतिरिक्त सब स्थानों पर बन्द करवा दी। कश्मीर शीत प्रधान देश है। तथापि उसने धर्म भावना से प्रेरित होकर पशुहत्या वर्जित कर दी। प्रतीत होता है। राजा धर्मभीरु था। सुधारक था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४५ में 'संपड्दिनां' का 'सपण्मासा' तथा 'परीपाकं' का पाठभेद 'परिपाकं' तथा 'परोपाकं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४५. (१) छह दिन : कुछ विद्वानों का मत है कि 'छह दिन' के स्थान पर 'छह मास' होना चाहिए। श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित दोनों ने ही ६ दिन ही पाठ ठीक माना है। पाठ दोनों ही मिलते हैं। अतएव मैंने प्रचलित पाठ के अनुसार '६ दिन' ही दिया है। किसी गणना पर इसका निश्चय करना कठिन है। श्री स्तीन ने ठीक लिखा है कि राजा युधिष्ठिर का राज्य काल नहीं दिया गया है। अतएव गणना करना कठिन है। श्री एस पी. पण्डित ने भी ६० वर्ष ६ दिन राज्यकाल माना है

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४६ में 'क्षौणी' का 'क्षोणीं', दधे' का 'दधे'; 'त्याऽह्नां' का 'त्यह्नां' तथा 'विवर्जितान्' का 'विवर्जनात्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४६ (१) गोकर्ण : आइने अकबरी में राजा गोकर्ण को 'कुरेन' तथा उसका राज्यकाल ५७ वर्ष ११ दिन दिया गया है। हसन लिखता है—क. २७३४ में उसके (गोपादित्यके) बेटे राजा गोकर्न ने इकबालमन्दी का ताज सर पर रखकर अठावन बरस सल्तनत किया।

श्री स्तीन राज्याभिषेक का समय कल्हण की गणनानुसार लौकिक संवत् २७६७ वर्ष छठवाँ मास तथा उन्नीसवाँ दिन देते हैं। श्री एस० पी० पण्डित ने यह काल ईसा पूर्व ३११ वर्ष माना है। श्री जनरल कनिंघम के अनुसार राजा गोकर्ण का नाम किदार शैली की मुद्रा पर टंकित मिला है। परन्तु बादमें उस मुद्रा के प्रति सन्देह प्रकट किया गया है कि वास्तव में वह गोकर्ण की थी। श्री देवसेन श्री कनिंघम के मत का खण्डन करते हैं।

(२) गोकर्णेश्वर : गोकर्णेश्वर महादेव का कहाँ स्थान था अभी तक पता नहीं चला है। गोकर्ण क्षेत्र

अन्यांथानीय देशेभ्यः पुण्येभ्यो वशिकादिषु ।
पावनानग्रहारेषु ब्राह्मणान्स न्यरोपयत् ॥ ३४३ ॥

३४३. उसने पुण्यदेशों[1] से अन्य पवित्र ब्राह्मणों[2] को लाकर वशिवक[3] आदि अग्रहारों में बसाया।

उत्तमो लोकपालोऽयमिति लब्ध प्रशस्तिषु ।
यः प्राप्तवान्विना यज्ञं चक्षमे न पशुक्षयम् ॥३४४॥

३४४. जिसने प्रशस्तियों[1] में यह 'उत्तम लोकपाल है', उपाधि प्राप्त की थी। यज्ञ के अतिरिक्त पशु क्षय[2] वह सहन नहीं कर सकता था।

है। मैं स्वयं नहीं खाता। सनातनी ब्राह्मण गण आज भी लहसुन प्याज का भक्षण नहीं करते। उन्हें अभक्ष्य माना गया है। वैष्णव तथा वैश्य वर्ग में एक बहुत बड़ा समाज लहसुन तथा प्याज से परहेज करता है। मारवाड़ी शाखा में अबतक प्याज एवं लहसुन का प्रयोग नहीं किया जाता।

(२) भूक्षीर वाटिका: वर्तमान बूठी बोर प्राचीन भूक्षीर वाटिका स्थान है। यह पतला भूखण्ड है। शंकराचार्य पर्वत के मूल में उत्तर-पश्चिम स्थान से डल के एक भाग नगरी बल तक फैला है। 'बोर' शब्द संस्कृत वाटिका का अपभ्रंश है। भू का अर्थ भूमि, क्षीर का अर्थ दूध, तथा वाटिका का अर्थ छोटा उद्यान होता है। शुद्ध संस्कृत नाम। सम्भव है वहाँ पर ऐसे वृक्ष है जिनके पत्ते या डंठल तोड़ने पर गूलर, वटादि की तरह दूध निकलता रहा हो।

(३) खासटा: इस स्थान को सुदर बल के समीप होना चाहिए। निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में यह स्थान कहाँ पर था। पृष्ठ १९० सुदर बल टिप्पणी द्रष्टव्य है।

३४३ (१) पुण्यदेश: यहाँ पर पुण्यदेश का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। राजा सम्भवतः कश्मीर को पुण्यदेश इसलिये नहीं समझता था कि वहाँ के ब्राह्मणादि आचारभ्रष्ट हो गये थे। कई बार वहाके ब्राह्मणों के सुधार की चेष्टा की गयी। कितनी ही बार ब्राह्मण बाहर से लाकर कश्मीर में बसाये गये परन्तु प्रतीत होता है कालान्तर में आने वाले ब्राह्मण भी स्थानीय ब्राह्मणों से मिलकर आचार का त्याग कर देते थे। अतएव राजा कश्मीर के बाहर 'पुण्यदेश' उत्तरी भारत के तीर्थस्थानों आदि से लाकर ब्राह्मण कश्मीर में बसायें।

(२) पवित्र ब्राह्मण: कश्मीर की तुलना में पुण्यदेश के ब्राह्मणों को पवित्र कहा गया है। पवित्र ब्राह्मण का यहाँ अर्थ—विद्वान्, आचार-नियम स्वाध्यायप्रिय, पठन-पाठन-यज्ञादि कर्मकाण्ड मे पारंगत ब्राह्मणों से है।

(३) वशिवक: यह वर्तमान गांव उची है। रामन्यार नदी की पूर्व दिशा मे अधोभाग में है। सन् १८९१ में पं० काशीराम को यहाँ कुछ खण्डित मूर्तियाँ मिली थीं। उनके अनुसार स्थान विशेष प्राचीन महत्व नहीं रखता था। मात्र एक देवस्थान रूप मे स्थित था। इसके पूर्व में नदी कुछ दूर पर पड़ेगी। उत्तर मे रामन्यार नदी है। पश्चिम मे दुरबाग तथा सयनगर है। दक्षिण में अवनी है। यह विजयेश्वर के पश्चिम पड़ता है।

३४४. (१) प्रशस्ति: निसन्देह गोपादित्य ऐतिहासिक व्यक्ति था। उसके नाम से सम्बन्धित गोपाद्रि पर्वत, गोपकुर (गोपा अग्रहार) तथा अनेक स्थान है। शंकराचार्य पर्वत पर स्थित मन्दिर इस राजा का निर्माण था। यहाँ पर,

सपड्दिनां वर्षषष्टिं पालयित्वा स मेदिनीम् ।
भोक्तुं पुण्यपरीपाकं लोकान्सुकृतिनामगात् ॥ ३४५ ॥

३४५. उसने साठ वर्ष छह दिन[1] मेदिनी का पालन करके, पुण्य परिपाक भोग हेतु, सुकृतियों के लोक में प्रस्थान किया।

गोकर्णस्तत्सुतः क्षोणीं गोकर्णेश्वरकृद्दधे ।
अष्टपञ्चाशतं वर्षांस्त्रिंशत्याऽह्नां विवर्जितान् ॥ ३४६ ॥

गोकर्णः[1]

३४६. गोकर्णेश्वर[2] का निर्माता उसके पुत्र गोकर्ण ने तीस दिन कम अट्ठावन वर्ष[3] पृथ्वी पर शासन किया।

प्रतीत होता है, कल्हण ने गोपादित्य सम्बन्धी प्रशस्तियों से अपनी लेखन सामग्री ली थी।

प्रशस्ति के लिये टिप्पणी पृ० १३ 'प्रशस्ति पट्ट' द्रष्टव्य है।

(२) पशुक्षय—यज्ञ में पशुहत्या विहित थी। अतएव राजा ने पशुहत्या यज्ञ के अतिरिक्त सब स्थानों पर बन्द करवा दी। कश्मीर शीत प्रधान देश है। तथापि उसने धर्म भावना से प्रेरित होकर पशुहत्या वर्जित कर दी। प्रतीत होता है। राजा धर्मभीरु था। सुधारक था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४५ में 'सपड्दिनां' का 'सपण्मासा' तथा 'परीपाकं' का पाठभेद 'परिपाकं' तथा 'परोपाकं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४५. (१) छह दिन : कुछ विद्वानों का मत है कि 'छह दिन' के स्थान पर 'छह मास' होना चाहिए। श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित दोनों ने ही ६ दिन ही पाठ ठीक माना है। पाठ दोनों ही मिलते हैं। अतएव मैंने प्रचलित पाठ के अनुसार '६ दिन' ही दिया है। किसी गणना पर इसका निश्चय करना कठिन है। श्री स्तीन ने ठीक लिखा है कि राजा युधिष्ठिर का राज्य काल नहीं दिया गया है। अतएव गणना करना कठिन है। श्री एस पी. पण्डित ने भी ६० वर्ष ६ दिन राज्यकाल माना है

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४६ में 'क्षोणी' का 'क्षौर्णी', दधे' का 'दद्दे'; 'त्याऽह्नां' का 'त्यह्ना' तथा 'विवर्जितान्' का 'विवर्जनात्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४६ (१) गोकर्ण : आइने अकबरी में राजा गोकर्ण को 'कुरेन' तथा उसका राज्यकाल ५७ वर्ष ११ दिन दिया गया है। हसन लिखता है—क. २७३४ में उसके (गोपादित्यके) बेटे राजा गोकर्न ने इकबालमन्दी का ताज सर पर रखकर अठावन बरस सल्तनत किया।

श्री स्तीन राज्याभिषेक का समय कल्हण की गणनानुसार लौकिक संवत् २७६७ वर्ष छठवाँ मास तथा उन्नीसवाँ दिन देते हैं। श्री एस० पी० पण्डित ने यह काल ईसा पूर्व ३११ वर्ष माना है। श्री जनरल कनिंघम के अनुसार राजा गोकर्ण का नाम किदार शैली की मुद्रा पर टंकित मिला है। परन्तु बादमें उस मुद्रा के प्रति सन्देह प्रकट दिया गया है कि वास्तव में वह गोकर्ण की थी। श्री देवसेन श्री कनिंघम के मत का खण्डन करते हैं।

(२) गोकर्णेश्वर : गोकर्णेश्वर महादेव का कहाँ स्थान था अभी तक पता नहीं चला है। गोकर्ण क्षेत्र

सूनुर्नरेन्द्रादित्योऽस्य खिङ्खिलाख्याभिधोऽभवत्।
भूतेश्वरप्रतिष्ठानामक्षयिण्याश्च कारकः ॥ ३४७ ॥

नरेन्द्रादित्य (खिखिल)[१] :

३४७. उसका पुत्र नरेन्द्रादित्य उपनाम खिखिल[२] हुआ। वह भूतेश्वर[३] प्रतिष्ठानों और अक्षयिणी[४] का संस्थापक था।

दक्षिण भारत में पश्चिमी समुद्रतट पर है। गोकर्ण को 'दक्षिण काशी' भी कहते हैं। श्रीक्षेत्र-गोकर्ण त्रिस्थलों में से एक क्षेत्र है। भास्कर क्षेत्रों में इसकी गणना की जाती है।

पौराणिक गाथा है कि महादेव गाय के कर्ण से उत्पन्न हुए थे। जिस स्थान पर गाय के कान से रुद्र प्रकट हुए थे उस स्थान का नाम 'गोकर्ण' किंवा 'रुद्रयोनि' पड़ गया था। महाप्रलय काल में पृथ्वी जलमग्न हो जायगी तो 'गोकर्णक्षेत्र' का स्थान आवर्त तुल्य दिखाई पड़ता रहेगा। अतएव उसको संज्ञा 'वर्णावर्त' उस समय दी जायगी। गोकर्ण के चारों ओर योजन पर्यन्त भूमि को 'गोकर्णमण्डल' कहा जाता है।

'रुद्रभूमि' गोकर्ण को कहते हैं। यहाँ मरने पर मुक्ति होती है। दिवंगत को शिव का सानिध्य प्राप्त होता है। मैंने गोकर्ण क्षेत्र की यात्रा १२ अगस्त सन् १९६५ को की थी। स्थान समुद्र तटपर है। मन्दिर प्राचीन नहीं मालूम होता। समुद्र की लहरों के कारण तट कट गया है।

गोकर्ण में जगत्-पूजित आत्मलिंग वैवस्वत मन्वन्तर के २३वें, त्रेतायुग में शरत् काल कार्तिक शुक्ल प्रतिपद व्यतिपात योग, तुला मास, विशाखा नक्षत्र, दिन रविवार, लग्न मीन, के मंगल मुहूर्त में स्थापित हुआ था। रावण आत्मलिंग को उखाड़ना चाहता था। किन्तु असफल रहा। यहाँ महाबलेश्वर, महागणपति श्रीकलंकलेश्वर, श्री ताम्रगौरी, श्री वेंकटरमण, श्री भद्रकाली, कालीहृद, श्री रुद्रतीर्थ, श्री दुर्गाकुण्ड, श्री शतशृंग, श्री कोटितीर्थ, श्री त्रिपुरस्थली, श्री विघ्नपापस्थली, श्री रुद्रपाद, श्री शंकर नारायण, श्री पट्टविनायक, श्री उमामहेश्वर, श्री ब्रह्मेश्वर, श्रीकेतकी, श्रीभैरव, श्री क्षेत्रपाल, श्रीनरसिंह, श्रीकृष्ण, श्रीकेतकी विनायक, श्री सिद्धेश्वर, श्रीमणिभद्र, श्री चक्रतीर्थ, श्री नागेश्वर, श्री मणिनाग, श्रीरामतीर्थ, श्रीकपिलतीर्थ, श्री वैतरणी, श्री सरस्वती, श्री सोमतीर्थ, आदि अनेक स्थान कश्मीर के देवस्थानों के समान यहाँ बने मिलेंगे।

स्थान गन्दा है। बहुत गरीबी है। गोकर्ण का लिंग ऊपर निकला नहीं है। एक छोटा कुण्ड है। जलसे भरा रहता है। उसमें हाथ डालने पर एक छोटे लिंग का स्पर्श होता है। कथा है कि दूसरे लिंग के नीचे अन्य लिंग हैं। पार्श्वमें महाबलेश्वर की मूर्ति एक उठे स्तम्भ पर है।

गोकर्ण के मुख्य मन्दिर की परिक्रमा में आदि-गोकर्ण की मूर्ति भूमिस्तर से नीचे जल में मुझे दिखाई दी। मन्दिर के पृष्ठ भाग में ताम्र गंगा है। यह एक पक्का छोटा कुण्ड है। इसमें अस्थि प्रवाह किया जाता है। जल बँधा है। कुण्ड गन्दा लगा। पेड़ की पत्तियाँ गिर कर पड़ती रहती हैं। श्मशान से अस्थिचयन कर यहीं पर अस्थियाँ डाल दी जाती हैं। बाहर से भी लोग अस्थि लाकर इसमें डालते हैं।

आश्चर्य की बात यह है अस्थियाँ कुछ ही दिनों में गलकर जल में घुल जाती हैं। यहाँ के जल में रासायनिक पदार्थ कुछ हैं। जिनके कारण अस्थियाँ गल जाती हैं। अन्यथा अस्थियाँ जलमें या भूमि में सैकड़ों वर्ष पड़ी रहती हैं।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३४७ में 'कारकः' का 'कारसः' पाठभेद मिलता है।

दिव्यानुग्रहभागुग्राभिधो यस्य गुरुर्व्यधात् ।
उग्रेशं मातृचक्रं च प्रभावोदग्रविग्रहः ॥ ३४८ ॥

३४८. दैवी शक्ति प्राप्त, प्रभावोत्कृष्ट एवं विग्रह युक्त, उग्र[1] नामक उसके गुरु ने उग्रेश[2] एवं मातृ[3]चक्र स्थापित किया।

पादटिप्पणियाँ :

३४७. (१) नरेन्द्रादित्य : आइने अकबरी ने 'नुरद्र' नाम दिया है। उसका राज्यकाल ३६ वर्ष ३ मास १० दिन माना है।

कल्हण की गणना के अनुसार स्तीन राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् २८२५ वर्ष पाँचवाँ माम उन्नीसवें दिन देते हैं। श्री एस. पी. पण्डित समय ईसा पूर्व २५३ वर्ष रखते हैं।

हसनके अनुसार अपने वापके मरने के बाद राजा नरेन्द्रादित्य रौनक बख्श सलतनत हुआ। राजा ३६ बरस हुकूमत करके गुजर गया।

(२) खिंखिल : एक मुद्रा 'देव शाही 'तिंगिल'—अंकित प्राप्त हुई है। इसे नरेन्द्रादित्य प्रथम की मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा की शैली इफथेलाइट प्यासको अर्थात् हूणों की शैली की है। वह मुद्रा राजा लषन (लक्ष्मण) (रा० त० ३ : ३८३) के ढंग की है। एक दूसरी मुद्रा मिलती है उस पर—'श्रीनरेन्द्र'—अंकित है। यह मुद्रा 'किदार' शैली की है। सम्भव है कि यह मुद्रा इसी नाम के बाद में हुए किसी राजा की मुद्रा रही हो। यह मुद्रा सम्भवतः ५वीं ६ठवीं शताब्दी की प्रतीत होती है। किन्तु कल्हण के अनुसार ईसा पूर्व २५०–२१४ वर्ष की है।

कल्हण के अनुसार खिंखिल श्रीनन्द तृतीय के पश्चात् उन्नीसवाँ राजा हुआ था।

खिंखिल नाम भारतीय नहीं प्रतीत होता अतएव इसे हूण वंशीय मानने की ओर विद्वानों का झुकाव है। किन्तु कल्हण के काल तथा मुद्रा-काल में ६ शताब्दियों का अन्तर समस्या उत्पन्न कर देता है।

(३) भूतेश्वर : हरमुकुट पर्वत के समीप यह स्थान है। अशोक के वर्णन में इसका उल्लेख किया जा चुका है। पृष्ठ १४९ तथा टिप्पणी 'भूतेश' पृष्ठ २०१ द्रष्टव्य है।

(४) अक्षयिणी : ब्राह्मणों के भोजन निमित्त अक्षयिणी क्षेत्र किंवा सदावर्त है। कश्मीर के पर्वतीय भागों में इस प्रकार के दानों को 'अछिन्या' कहते हैं। श्रीवर ने (१:४०८) जैनुल आबदीन बादशाह द्वारा दिये गये एक दान का वर्णन शूरपुर अर्थात् हूरपुर के पास पीर पंतराल मार्ग पर किया है। यहाँ यात्री बिना किसी भेदभाव के भोजन प्राप्त करते थे। उसने यहाँ 'अन्नसत्र अविच्छिन्न' शब्द का प्रयोग किया है। अक्षयिणी का अर्थ होता है कि जहाँ सदावर्त अथवा दान निरन्तर किया जाता है। वह इतना होता है कि कभी कमी नहीं पड़ती। कोई हताश होकर लौटता नहीं। अक्षय भाण्डार तुल्य आवश्यकता पूर्ति करता है।

अच्छिन्नेनान्नसत्रेण विजयेश्वरवासिनाम् ।
उदरे मेदुरे सिद्धः प्रणामो यत्नतो विभोः ॥ १:५:२१

नासिक की गुफा में तथा अन्य स्थानों पर इस प्रकार के दान के लिए 'अक्षयनिधि' शब्द का प्रयोग किया गया है। जम्मू के रघुनाथ मन्दिर में यह 'सदावर्त' नाम से प्रसिद्ध है। डोगरा राजाओं के काल में बनिहाल पास तथा झेलम की सड़क बुनयार पर साधु तथा तीर्थ यात्रियों को इस प्रकार का दान दिया जाता था।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अक्षयिणी को देवी माना है। उन्हों ने 'अक्षयिणी देवी के मन्दिर की स्थापना की' इस प्रकार अनुवाद किया है। मैं इसे ठीक मानने में असमर्थ हूँ। (पृष्ठ : ५८३)

३४८ (१) उग्र : इनका उल्लेख नहीं और अभी

भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् शतं चाह्नां विशुर्भुवः ।
स दीर्घैरनघांल्लोकानासदत्सुकृतैः कृती ॥ ३४९ ॥

३४९. उस पुण्यात्मा ने छत्तीस वर्ष सो दिन पृथ्वी का स्वामी रहकर अत्यधिक सुकृतों के कारण पुण्य लोक प्राप्त किया ।

युधिष्ठिराभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः ।
यः सूक्ष्माक्षतया लोकैः कथितोऽन्धयुधिष्ठिरः ॥ ३५० ॥

युधिष्ठिर :

३५०. अनन्तर युधिष्ठिर नामक उसका पुत्र राजा हुआ, जिसे सूक्ष्माक्ष होने के कारण, लोग अन्ध युधिष्ठिर कहते थे[१] ।

तक नहीं मिल सका है। सम्भव है कल्हण के समय तक इनके विषय में कुछ साहित्य प्राप्त रहा हो। कल्हण ने स्वयं इनका इतना संक्षिप्त वर्णन किया है कि कुछ अनुमान लगाना कठिन है।

(२) उग्रेश : ऋग्वेद में 'उग्रदेव' का उल्लेख मिलता है। (ऋ० १:३६ : १८; पं०ब्रा. १४: ३ : १७; २३:१६ ११७) इनका पैतृक नाम तैत्तिरीय आरण्यक में राजनि दिया गया है। (तै०-आ०; ५ ४-१२) यहाँ पर सरल अर्थ यही अभिहित है कि उग्र ने अपने नाम पर उग्रेश शिव की स्थापना की।

(३) मातृ चक्र : टिप्पणी मातृचक्र पृष्ठ १८१ (१ २२) द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४९ में 'शतं' का 'शतिं' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ३५० में 'सूक्ष्माक्षतया' का पाठभेद 'सूक्ष्माक्षितया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५० (१) आइने अकबरी में 'जेवादिस्तर' लिखा है। राज्य काल ४८ वर्ष १० दिन दिया गया है। राजतरंगिणी में इस राजा का राज्य काल नहीं दिया गया है। आइने अकबरी मे युधिष्ठिर के शासन के विषय में लिखा है—राजा युधिष्ठिर ने न्यायपूर्ण शासन आरम्भ किया। किन्तु कालान्तर में वह कामी हो गया। वह इतना क्रूर हो गया था कि हिन्दुस्तान तथा तिब्बत के राजाओं ने उसके खिलाफ मिलकर आवाज उठायी। इससे उत्साहित होकर कश्मीर के सरदारों ने विद्रोह किया। राजा को बन्दी-गृह में डाल दिया।

श्री स्तीन इस राजा का राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २९६१ वर्ष आठवा मास उनतीसवाँ दिन मानते हैं। श्री एस. पी. पण्डित यह समय ईसा पूर्व २१७ वर्ष देते हैं।

हसन के अनुसार 'क. २८२८ मे उसका (नरेन्द्रादित्य का)बेटा राजा अन्ध युधिष्ठिर बाप का जानशीन हुआ। उसकी आँखें बड़ी छोटी थी। यही वजह था कि वह बीनाई पूरी नही रखता था। इस बिना पर इसे लोगों ने अन्ध यानी कोर का लकब दिया हुआ था। शुरू-शुरू मे अदल व इन्साफ़ सखावत व रैयत परवरी में मसरूफ रहा। लेकिन बिल आखीर कमीनों और बदकारों की सुहबत में पड़कर जुल्म और सख्ती का पेशा अख्तियार कर लिया। हर क़िस्म के बुरे काम मसलन शराबनोशी और बदकारी अपना शआर बना लिया। लोगों की औरतें और बीवियाँ जबर्दस्ती ले जाने लगा। अकलमन्दो और सन रसीदा लोगों से नफरत अख्तियार करके कमीनो और आवारो को अपना मुसाहब बना लिया। बेरहमी और खूँनरेजी में कोई कसर बाकी न रखी। यह देखकर

तेन क्रमागतं राज्यं सावधानेन शासता ।
अनुजग्मे मितं कालं पूर्वभूपालपद्धतिः ॥३५१॥

३५१. उसने क्रमागत राज्य का सावधानी पूर्वक शासन करता हुआ कुछ दिन तक पूर्ववर्ती राजाओं की पद्धति[1] का अनुकरण किया ।

काले कियत्यपि ततो यात्यभाग्यवशादसौ ।
सिषेवे श्रीमदक्षीबो यत्किञ्चनविधायिताम् ॥३५२॥

३५२. कुछ समय पश्चात् अभाग्य वश श्रीमद से उन्मत्त वह यत्किंचनविधायी[1] हो गया ।

नान्वग्रहीदनुग्राह्यान्न संजग्राह धीमतः ।
न प्रवृत्तोपचाराणां प्रागिवासीत्प्रियंकरः ॥३५३॥

३५३. वह अनुग्रह पात्रों पर अनुग्रह, धीमानों का संग्रह, तथा सेवारत सेवकों का पूर्ववत् प्रियकर्त्ता नहीं रह गया था ।

दुर्विद्यपर्षदा साकं निर्विशेषं सभाजितैः ।
परिजह्रे स दुर्जातो जाततेजोवधैर्बुधैः ॥३५४॥

३५४. दुर्विद्य गण के साथ, निर्विशेष रूप से सम्मानित तथा अपमानित विद्वानों ने उस दुर्जात राजा का त्याग कर दिया ।

सर्वत्र समदृष्टित्वं गुणोऽयं खलु योगिनः ।
अकीर्तिहेतुः स महान्दोषस्तु पृथिवीपतेः ॥३५५॥

३५५. सर्वत्र समदर्शिता योगियों के लिये गुण है किन्तु वह पृथ्वीपति की अकीर्ति का हेतु तथा महान् दोष है ।

उसकी फ़ौज और रैयत उससे मुतनफ़र हो गयी । आसपास के हुक्काम जो दिल और जान से राजा के मतोअ और फरमांबरदार थे, एक एक करके इसके बागी होने लगे । हुकूमत के अहल हल व अकदीद उवान इसकी मजवली पर मुताफ़िक हो गये । अहल ज़माना की यह बेमुरव्वती देखकर युधिष्ठिर दो-तीन रकीबों के हमराह हिन्दुस्तान की तरफ़ भाग गया । यहाँ एक राजा ने उसे पकड़कर जान से मार डाला । इसकी मुद्दत हकूमत बावन बरस और आठ माह थी ।' पृष्ठ ५०

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५१ में 'अनुजग्मे' का 'अनुजज्ञे' तथा 'मितं' का पाठभेद 'सितं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५१ (१) पद्धति : यहाँ शासन पद्धति अर्थ लगाना चाहिए । पूर्ववर्ती राजाओं की शासन पद्धति का अनुकरण कुछ दिन तक राजा करता रहा ।

३५२ (१) यत्किंचनविधायी : राजा स्वेच्छाचारी, उद्दण्ड, अकर्मण्य, उच्छृंखल, निरंकुश तथा अविहित, अकरणीय कर्म करने वाला हो गया था । कल्हण का यही तात्पर्य यहाँ प्रकट होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५४ में 'परिजह्रे' का पाठभेद 'परिजिह्रे' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५५. (१)समदर्शी : योगियों तथा सज्जनों के

भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् शतं चाह्नां विभुर्भुवः ।
स दीर्घैरनघाँल्लोकानासदत्सुकृतैः कृती ॥ ३४९ ॥

३४९. उस पुण्यात्मा ने छत्तीस वर्ष सौ दिन पृथ्वी का स्वामी रहकर अत्यधिक सुकृतों के कारण पुण्य लोक प्राप्त किया ।

युधिष्ठिराभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः ।
यः सूक्ष्माक्षतया लोकैः कथितोऽन्धयुधिष्ठिरः ॥ ३५० ॥

युधिष्ठिर :

३५०. अनन्तर युधिष्ठिर नामक उसका पुत्र राजा हुआ, जिसे सूक्ष्माक्ष होने के कारण, लोग अन्ध युधिष्ठिर कहते थे[१] ।

तक नहीं मिल सका है । सम्भव है कल्हण के समय तक इनके विषय में कुछ साहित्य प्राप्त रहा हो । कल्हण ने स्वयं इनका इतना संक्षिप्त वर्णन किया है कि कुछ अनुमान लगाना कठिन है ।

(२) उग्रेश : ऋग्वेद में 'उग्रदेव' का उल्लेख मिलता है । (ऋ० १·३६ : १८; पं०ब्रा. १४. ३ : १७; २३:१६ · ११७) इनका पैतृक नाम तैत्तिरीय आरण्यक में राजनि दिया गया है । (तै०-आ०; ५.४-१२) यहाँ पर सरल अर्थ यही अभिहित है कि उग्र ने अपने नाम पर उग्रेश शिव की स्थापना की ।

(३) मातृ चक्र : टिप्पणी मातृचक्र पृष्ठ १८१ (१ २२) द्रष्टव्य है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४९ में 'शतं' का 'शतिं' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या ३५० में 'सूक्ष्माक्षतया' का पाठभेद 'सूक्ष्माक्षितया' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५० (१) आइने अकबरी में 'जेवादिस्तर' लिखा है । राज्य काल ४८ वर्ष १० दिन दिया गया है । राजतरंगिणी में इस राजा का राज्य काल नहीं दिया गया है । आइने अकबरी में युधिष्ठिर के शासन के विषय में लिखा है—राजा युधिष्ठिर ने न्यायपूर्ण शासन आरम्भ किया । किन्तु कालान्तर में वह कामी हो गया । वह इतना क्रूर हो गया था कि हिन्दुस्तान तथा तिब्बत के राजाओं ने उसके खिलाफ मिलकर आवाज उठायी । इससे उत्साहित होकर कश्मीर के सरदारों ने विद्रोह किया । राजा को बन्दी-गृह में डाल दिया ।

श्री स्तीन इस राजा का राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २९६१ वर्ष आठवां मास उनतीसवां दिन मानते हैं । श्री एस. पी. पण्डित यह समय ईसा पूर्व २१७ वर्ष देते हैं ।

हसन के अनुसार 'क. २८२८ में उसका (नरेन्द्रादित्य का)बेटा राजा अन्ध युधिष्ठिर बाप का जानशीन हुआ । उसकी आँखें बड़ी छोटी थीं । यही वजह था कि यह बीनाई पूरी नहीं रखता था । इस बिना पर इसे लोगों ने अन्ध यानी कोर का लकब दिया हुआ था । शुरू-शुरू में अदल व इन्साफ् सखावत व रैयत परवरी में मसरूफ रहा । लेकिन बिल आखीर कमीनों और बदकारों की सुहबत में पड़कर जुल्म और सख्ती का पेशा अख्तियार कर लिया । हर किस्म के बुरे काम मसलन शराबनोशी और बदकारी अपना शआर बना लिया । लोगों की औरतें और बीवियाँ जबर्दस्ती ले जाने लगा । अक्लमन्दों और सन रसीदा लोगों से नफरत अख्तियार करके कमीनों और आवारों को अपना मुसाहब बना लिया । बेरहमी और खूँरेजी में कोई कसर बाकी न रखी । यह देखकर

तेन क्रमागतं राज्यं सावधानेन शासता ।
अनुजग्मे मितं कालं पूर्वभूपालपद्धतिः ॥३५१॥

३५१. उसने क्रमागत राज्य का सावधानी पूर्वक शासन करता हुआ कुछ दिन तक पूर्ववर्ती राजाओं की पद्धति[1] का अनुकरण किया ।

काले कियत्यपि ततो यात्यभाग्यवशादसौ ।
सिषेवे श्रीमदक्षीबो यत्किञ्चनविधायिताम् ॥३५२॥

३५२. कुछ समय पश्चात् अभाग्य वश श्रीमद से उन्मत्त वह यत्किंचनविधायी[1] हो गया ।

नान्वग्रहीदनुग्राह्यान्न संजग्राह धीमतः ।
न प्रवृत्तोपचाराणां प्रागिवासीत्प्रियंकरः ॥३५३॥

३५३. वह अनुग्रह पात्रों पर अनुग्रह, धीमानों का संग्रह, तथा सेवारत सेवकों का पूर्ववत् प्रियकर्त्ता नहीं रह गया था ।

दुर्विधपर्षदा साकं निर्विशेषं सभाजितैः ।
परिजह्रे स दुर्जातो जाततेजोवधैर्बुधैः ॥३५४॥

३५४. दुर्विध गण के साथ, निर्विशेष रूप से सम्मानित तथा अपमानित विद्वानों ने उस दुर्जात राजा का त्याग कर दिया ।

सर्वत्र समदृष्टित्वं गुणोऽयं खलु योगिनः ।
अकीर्तिहेतुः स महान्दोषस्तु पृथिवीपतेः ॥३५५॥

३५५. सर्वत्र समदर्शिता योगियों के लिये गुण है किन्तु वह पृथ्वीपति की अकीर्ति का हेतु तथा महान् दोष है ।

उसकी फ़ौज और रैयत उससे मुतनफर हो गयी । आसपास के हुक्काम जो दिल और जान से राजा के मतीअ और फरमांबरदार थे, एक एक करके इसके बागी होने लगे । हकूमत के अहल हल व अकदोद ज़बान इसकी मज़बली पर मुताफिक हो गये । अहल ज़माना की यह बेमुरव्वती देखकर युधिष्ठिर दो-तीन रफीकों के हमराह हिन्दुस्तान की तरफ भाग गया । यहाँ एक राजा ने उसे पकड़कर जान से मार डाला । इसकी मुद्दत हकूमत बावन बरस और आठ माह थी ।' पृष्ठ ५०

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५१ में 'अनुजग्मे' का 'अनुजज्ञे' तथा 'मितं' का पाठभेद 'सितं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५१ (१) पद्धति : यहाँ शासन पद्धति अर्थ लगाना चाहिए । पूर्ववर्ती राजाओं की शासन पद्धति का अनुकरण कुछ दिन तक राजा करता रहा ।

३५२ (१) यत्किंचनविधायी : राजा स्वेच्छाचारी, उद्दण्ड, अकर्मण्य, उच्छृंखल, निरंकुश तथा अविहित, अकरणीय कर्म करने वाला हो गया था । कल्हण का यही तात्पर्य यहाँ प्रकट होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५४ में 'परिजह्रे' का पाठभेद 'परिजिह्रे' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५५- (१)समदर्शी : योगियों तथा सज्जनों के

भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् शतं चाह्नां विशुर्भुवः ।
स दीर्घैरनघाल्लोकानासदत्सुकृतैः कृती ॥ ३४९ ॥

३४९. उस पुण्यात्मा ने छत्तीस वर्ष सौ दिन पृथ्वी का स्वामी रहकर अत्यधिक सुकृतों के कारण पुण्य लोक प्राप्त किया ।

युधिष्ठिराभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः ।
यः सूक्ष्माक्षतया लोकैः कथितोऽन्धयुधिष्ठिरः ॥ ३५० ॥

युधिष्ठिर :

३५०. अनन्तर युधिष्ठिर नामक उसका पुत्र राजा हुआ, जिसे सूक्ष्माक्ष होने के कारण, लोग अन्ध युधिष्ठिर कहते थे[१] ।

तक नहीं मिल सका है । सम्भव है कल्हण के समय तक इनके विषय में कुछ साहित्य प्राप्त रहा हो । कल्हण ने स्वयं इनका इतना संक्षिप्त वर्णन किया है कि कुछ अनुमान लगाना कठिन है ।

(२) उग्रेश : ऋग्वेद में 'उग्रदेव' का उल्लेख मिलता है । (ऋ० १:३६ : १८; पं०ब्रा. १४. ३ : १७; २३.१६ : ११७) इनका पैतृक नाम तैत्तिरीय आरण्यक में राजनि दिया गया है । (तै०-आ०; ५.४-१२) यहाँ पर सरल अर्थ यही अभिहित है कि उग्र ने अपने नाम पर उग्रेश शिव की स्थापना की ।

(३) मातृ चक्र : टिप्पणी मातृचक्र पृष्ठ १८१ (१.२२) द्रष्टव्य है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४९ में 'शतं' का 'शतिं' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या ३५० में 'सूक्ष्माक्षतया' का पाठभेद 'सूक्ष्माक्षितया' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५० (१) आइने अकबरी में 'जेवादित्तर' लिखा है । राज्य काल ४८ वर्ष १० दिन दिया गया है । राजतरंगिणी में इस राजा का राज्य काल नहीं दिया गया है । आइने अकबरी में युधिष्ठिर के शासन के विषय में लिखा है—राजा युधिष्ठिर ने न्यायपूर्ण शासन आरम्भ किया । किन्तु कालान्तर में वह कामी हो गया । वह इतना क्रूर हो गया था कि हिन्दुस्तान तथा तिब्बत के राजाओं ने उसके खिलाफ मिलकर आवाज उठायी । इससे उत्साहित होकर कश्मीर के सरदारों ने विद्रोह किया । राजा को बन्दी-गृह में डाल दिया ।

श्री स्तीन इस राजा का राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २९६१ वर्ष आठवां मास उनतीसवां दिन मानते हैं । श्री एस. पी. पण्डित यह समय ईसा पूर्व २१७ वर्ष देते हैं ।

हसन के अनुसार 'क. २८२८ में उसका (नरेन्द्रादित्य का)बेटा राजा अन्ध युधिष्ठिर बाप का जानशीन हुआ । उसकी आँखें बड़ी छोटी थी । यही वजह था कि वह बीनाई पूरी नहीं रखता था । इस बिना पर इसे लोगों ने अन्ध यानी कोर का लकब दिया हुआ था । शुरू-शुरू में अदल व इन्साफ़ सखावत व रैयत परवरी में मसरूफ रहा । लेकिन बिल आखीर कमीनों और बदकारों की सुहबत में पड़कर जुल्म और सख्ती का पेशा अख्तियार कर लिया । हर क़िस्म के बुरे काम मसलन शराबनोशी और बदकारी अपना शआर बना लिया । लोगों की औरतें और बीवियाँ जबर्दस्ती ले जाने लगा । अक़लमन्दों और सन रसीदा लोगों से नफ़रत अख्तियार करके कमीनों और आवारों को अपना मुसाहब बना लिया । बेरहमी और खूँनरेजी में कोई कसर बाकी न रखी । यह देखकर

तेन क्रमागतं राज्यं सावधानेन शासता ।
अनुजग्मे मितं कालं पूर्वभूपालपद्धतिः ॥३५१॥

३५१. उसने क्रमागण राज्य का सावधानी पूर्वक शासन करता हुआ कुछ दिन तक पूर्ववर्ती राजाओं की पद्धति[1] का अनुकरण किया।

काले कियत्यपि ततो यात्यभाग्यवशादसौ ।
सिषेवे श्रीमदक्षीबो यत्किञ्चनविधायिताम् ॥३५२॥

३५२. कुछ समय पश्चात् अभाग्य वश श्रीमद से उन्मत्त वह यत्किंचनविधायी[1] हो गया।

नान्वग्रहीदनुग्राह्यान्न संजग्राह धीमतः ।
न प्रवृत्तोपचाराणां प्रागिवासीत्प्रियंकरः ॥३५३॥

३५३. वह अनुग्रह पात्रों पर अनुग्रह, धीमानों का संग्रह, तथा सेवारत सेवकों का पूर्ववत् प्रियकर्त्ता नहीं रह गया था।

दुर्विधपर्षदा सार्कं निर्विशेषं सभाजितैः ।
परिजह्रे स दुर्जातो जाततेजोवधैर्बुधैः ॥३५४॥

३५४. दुर्विध गण के साथ, निर्विशेष रूप से सम्मानित तथा अपमानित विद्वानों ने उस दुर्जात राजा का त्याग कर दिया।

सर्वत्र समदृष्टित्वं गुणोऽयं खलु योगिनः ।
अकीर्तिहेतुः स महान्दोषस्तु पृथिवीपतेः ॥३५५॥

३५५. सर्वत्र समदर्शिता योगियों के लिये गुण है किन्तु वह पृथ्वीपति की अकीर्ति का हेतु तथा महान् दोष है।

उसकी फौज और रैयत उससे मुतनफर हो गयी। आसपास के हुक्काम जो दिल और जान से राजा के मतीअ और फरमांबरदार थे, एक एक करके इसके बागी होने लगे। हकूमत के अहल हल व अकदीद जवान इसकी मजबली पर मुताफिक हो गये। अहल जमाना की यह बेमुरव्वती देखकर युधिष्ठिर दो-तीन रफीकों के हमराह हिन्दुस्तान की तरफ भाग गया। यहाँ एक राजा ने उसे पकड़कर जान से मार डाला। इसकी मुद्दत हकूमत बावन बरस और आठ माह थी।' पृष्ठ ५०

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५१ में 'अनुजग्मे' का 'अनुजज्ञे' तथा 'मितं' का पाठभेद 'सितं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५१ (१) पद्धति : यहाँ शासन पद्धति अर्थ लगाना चाहिए। पूर्ववर्ती राजाओं की शासन पद्धति का अनुकरण कुछ दिन तक राजा करता रहा।

३५२ (१) यत्किंचनविधायी : राजा स्वेच्छाचारी, उद्दण्ड, अकर्मण्य, उच्छृंखल, निरंकुश तथा अविहित, अकरणीय कर्म करने वाला हो गया था। कल्हण का यही तात्पर्य यहाँ प्रकट होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५४ में 'परिजह्रे' का पाठभेद 'परिजिह्रे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५५ (१) समदर्शी : योगियों तथा सज्जनों के

भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् शतं चाह्नां विभुर्भुवः ।
स दीर्घैरनघांल्लोकानासदत्सुकृतैः कृती ॥ ३४९ ॥

३४९. उस पुण्यात्मा ने छत्तीस वर्ष सौ दिन पृथ्वी का स्वामी रहकर अत्यधिक सुकृतों के कारण पुण्य लोक प्राप्त किया ।

युधिष्ठिराभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः ।
यः सूक्ष्माक्षतया लोकैः कथितोऽन्धयुधिष्ठिरः ॥ ३५० ॥

युधिष्ठिर :

३५०. अनन्तर युधिष्ठिर नामक उसका पुत्र राजा हुआ, जिसे सूक्ष्माक्ष होने के कारण, लोग अन्ध युधिष्ठिर कहते थे[१] ।

तक नहीं मिल सका है। सम्भव है कल्हण के समय तक इनके विषय में कुछ साहित्य प्राप्त रहा हो। कल्हण ने स्वयं इनका इतना संक्षिप्त वर्णन किया है कि कुछ अनुमान लगाना कठिन है ।

(२) उग्रेश : ऋग्वेद में 'उग्रदेव' का उल्लेख मिलता है। (ऋ० १:३६ : १८; पं०ब्रा. १४: ३ : १७; २३:१६ : ११७) इनका पैतृक नाम तैत्तिरीय आरण्यक में राजनि दिया गया है। (तै० आ०; ५.४-१२) यहाँ पर सरल अर्थ यही अभिहित है कि उग्र ने अपने नाम पर उग्रेश शिव की स्थापना की ।

(३) मातृ चक्र : टिप्पणी मातृचक्र पृष्ठ १८१ (१ २२) द्रष्टव्य है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४९ में 'शतं' का 'शतिं' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या ३५० में 'सूक्ष्माक्षतया' का पाठभेद 'सूक्ष्माक्षितया' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५० (१) आइने अकबरी में 'जेवादित्तर' लिखा है। राज्य काल ४८ वर्ष १० दिन दिया गया है। राजतरंगिणी में इस राजा का राज्य काल नहीं दिया गया है। आइने अकबरी में युधिष्ठिर के शासन के विषय में लिखा है—राजा युधिष्ठिर ने न्यायपूर्ण शासन आरम्भ किया। किन्तु कालान्तर में वह कामी हो गया। वह इतना क्रूर हो गया था कि हिन्दुस्तान तथा तिब्बत के राजाओं ने उसके खिलाफ मिलकर आवाज उठायी। इससे उत्साहित होकर कश्मीर के सरदारों ने विद्रोह किया। राजा को बन्दी-गृह में डाल दिया ।

श्री स्तीन इस राजा का राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २९६१ वर्ष आठवा मास उनतीसवाँ दिन मानते हैं। श्री एस. पी. पण्डित यह समय ईसा पूर्व २१७ वर्ष देते हैं ।

हसन के अनुसार 'क. २८२८ में उसका (नरेन्द्रादित्य का)बेटा राजा अन्ध युधिष्ठिर बाप का जानशीन हुआ। उसकी आँखें बड़ी छोटी थी। यही वजह था कि वह बीनाई पूरी नहीं रखता था। इस बिना पर इसे लोगों ने अन्ध यानी कोर का लकब दिया हुआ था। शुरू-शुरू में अदल व इन्साफ, सखावत व रैयत परवरी में मसरूफ रहा। लेकिन बिल आखीर कमीनों और बदकारों की सुहबत में पड़कर जुल्म और सख्ती का पेशा अख्तियार कर लिया। हर क़िस्म के बुरे काम मसलन शराबनोशी और बदकारी अपना शआर बना लिया। लोगों की औरतें और बीवियाँ जबर्दस्ती ले जाने लगा। अकलमन्दों और सन रसीदा लोगों से नफरत अख्तियार करके कमीनों और आवारों को अपना मुसाहब बना लिया। बेरहमी और खूँरेजी में कोई कसर बाकी न रखी। यह देखकर

वाक् मर्मच्छेदिनी दीर्घं नर्म शश्वत्कथा विटैः ।
अनीश्वरोचिता तस्य क्रीडाऽपि भयदाऽभवत् ॥३५७॥

३५७. राजा के लिये अनुचित उसकी मर्मभेदी वाणी, विटों के साथ लम्बी मनोरंजन वार्ता तथा क्रीडा भी भयदायक हो गयी थी।

पुरो मिथ्यागुणग्राही परोक्षं दोषदर्शकः ।
असुस्थिरादरो भूभृत्सोऽभूद् द्वेष्योऽनुजीविनाम् ॥३५८॥

३५८. प्रत्यक्ष मिथ्या गुणग्राही, परोक्ष में दोष दर्शक, और असुस्थिर आदर प्रदर्शक, वह राजा अनुजीवियों के द्वेष का पात्र बन गया था।

मनागनवधानेन स्खलतस्तस्य भूपतेः ।
इत्थं राज्यस्थितिरगादचिरेण विसूत्रताम् ॥३५९॥

३५९. नितान्त असावधानी के कारण स्खलित, उस राजा की राज्यस्थिति शीघ्र ही इस प्रकार विशृंखलित हो गयी।

गीत प्रिय और दक्ष होता है। समयानुसार पदों का उल्लेख करता है। कामुक रसमय गीतों से उत्तेजित करता है। वाक् प्रलोभन से चित्त को हरने की कोशिश करता है। उसका तीसरा गुण ऊहा-पोह में दक्ष होना है। चौथा गुण उसका वाग्मी होना है। वह शब्दजाल में फँसा कर अपनी रुचि के अनुसार काम करवा लेता है। पवित्र-से-पवित्र व्यक्ति को वह अपवित्र करने में सफल होता है। किसी को पतित करने में उत्साहित होता है।

विट कामतन्त्र कला कोविद नायक एवं नायिका का सन्देश वाहक होता है। विट का लक्षण साहित्य दर्पण में दिया गया है।

वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः ।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥
॥ २४ : १०४ ॥

(२) स्त्रैण : स्त्रियों की मन्त्रणा पर चलनेवाले व्यक्तियों के अर्थ में यहाँ इस शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द राजा का विशेषण है। लौकिक भाषा में इस शब्द का अर्थ मेहरा होता है। इसका अर्थ नारीसुलभ, स्त्री द्वारा शासित, स्त्रीत्व, नारीत्व स्त्रीस्वभाव तथा दौर्बल्य भी होता है। कल्हण का यहाँ तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि राजा रमणियों में इतना रम गया था कि उसका पुरुषोचित व्यवहार एवं आचरण जैसे लुप्त हो गया था।

स्त्रैण शब्द का शुक्र ने राजा के सन्दर्भ में कल्हण के समान ही प्रयोग किया है।

जायते राष्ट्रहासश्च शत्रुवृद्धिर्धनक्षयः ।
सुराप्यपि वरो राजा न स्त्रैणो नातिकोपवान् ॥
॥ ४ : ५९ ॥

लोकांश्चण्डस्तापयति स्त्रैणो वर्णान्विलुम्पति ।
मद्यप्येकश्च भ्रष्टः स्याद् बुद्ध्या च व्यवहारतः ॥
॥ ४ : ६० ॥

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३५७ में 'दीर्घं नर्म शश्वत्कथा' का पाठभेद 'दीर्घनर्म चासत् तथा' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३५८ में 'असुस्थिरादरो' का पाठभेद 'अस्वस्थिरादरो' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३६० में 'उपेचितस्य' का 'उपेचितास्य' तथा 'द्रोहि' का 'निज', और 'द्रोणि' पाठभेद मिलता है

नयद्भिर्गुणतां दोषान्दोषतां च गुणान्विटैः ।
स लुप्तप्रतिभश्चक्रे शनकैः स्त्रीजितोपमः ॥३५६॥

३५६. दोषों को गुण एवं गुणों को दोष बताने वाले विटों[1] द्वारा प्रतिभाहीन, वह राजा शनैः शनैः स्त्रैण[2] तुल्य हो गया।

लिये समदर्शी होना गुण कहा गया है। योगी तथा राजा में अन्तर है। राजा के लिए समदर्शी होना उसी प्रकार गुण है, जिस प्रकार उग्रदण्ड दायक। राजा सभी गुणों का समन्वय है। दुष्टों को दण्ड, कण्टकशोधन, आततायियों का नाश, शत्रुओं का संहार, युद्ध में विजय, समय पर तेजस्वी, समय पर सरल, समय पर दानी, जनता के उपकार के लिये जब जिस समय जिन गुणों की अपेक्षा हो ग्रहणकारी होना चाहिए। युद्ध में शत्रु पर दया राजा के नाश एवं पराजय का कारण होती है। आततायियों पर करुणा समाज में अशान्ति उत्पन्न करती है। अवांछनीय तत्वों के प्रति उपेक्षा देश को अराजकता की ओर ले जाती है। योगी एवं पण्डित जो अपने हो में लीन रहते है, उनके लिये समदर्शिता गुण है। वे पशु पक्षी में भी मैत्री भावना रख सकते हैं। किन्तु सर्वसाधारण में यह मैत्री भावना तथा समदर्शिता प्रचुरता से प्राप्त नहीं होती। योगी के साथ सर्प बैठता है। सिंह देखकर चला जाता है। परन्तु एक साधारण मनुष्य को विषधर क्रुद्ध सर्प काट सकता है, मनुष्यभक्षी सिंह उसकी हत्या कर सकता है। ऐसी स्थिति में सर्प पर तथा सिंह पर दया करना मानवहत्या में सहायक होना होगा। उस समय सर्प किंवा सिंह को मार देना हिंसा नहीं कहीं जायगी। एक के मरने से अनेकों की रक्षा होगी। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन शुक्रनीति में किया गया है। राजा को काल का कारण, दण्ड-स्वरूप एवं क्रूर आदि सद्गुणों से युक्त होना कहा गया है। दुर्जनों की हिंसा का समर्थन किया गया है। दण्ड सम्पूर्ण धर्मों का शरण है।

कालस्य कारणं राजा सदसत्कर्मकारणः ।
स्वधर्मैर्दण्डयत्यस्मात् स्वधर्मे स्थापयेत् प्रजाः ॥

॥ १:६०॥

दमो दण्ड इति ख्यातस्तस्माद्दण्डो महीपतिः ।
तस्य नीतिर्दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते ॥१:१५६॥
राज्ञां स दण्डनीत्या हि सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
दण्ड एव हि धर्माणां शरणं परमं स्मृतम् ॥४:४७॥
अहिंसकौ साधुहिंसा पशुवच्छ्रुतिचोदनात् ।
दण्ड्यस्यादण्डनान्नित्यमदण्डस्य च दण्डनात् ॥
॥४:४९॥

भगवान् श्री रामचन्द्र ने भी राजा के लिये सामनीति को अनुचित कहा है।

न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ।
प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिन्जयो वा रणमूर्धनि
—वा० रा० २१:१६

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५६ में 'जितोपमः' का पाठभेद 'जितोपमाम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५६. (1) विट : इस शब्द का अर्थ कामुक, लंपट, वेश्यागामी होता है। विषय भोग में विट अपनी समस्त सम्पत्ति का नाश कर देता है। और अन्त में धूर्त बन जाता है।

'कुट्टनीमतम्' में विट का विशद वर्णन किया गया है। यह तत्कालीन कश्मीर के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालता है। उसमें विट को सन्देश-वाहक चित्रित किया गया है। वह वेश्या तथा सुन्दरी स्त्रियों से उनके प्रेमियों के मध्य सन्देश वाहक का कार्य करता है। प्रेमी तथा प्रेमिका को एक दूसरे के पास पहुँचाने की व्यवस्था करता है। अभिगमन के लिये प्रेरित करता है।

विट के चार मुख्य लक्षण कहे गये हैं। वह वेश्योपचार में कुशल होता है। मधुरभाषी कविता-

वाक् मर्मच्छेदिनी दीर्घं नर्म शश्वत्कथा विटैः ।
अनीश्वरोचिता तस्य क्रीडाऽपि भयदाऽभवत् ॥३५७॥

३५७. राजा के लिये अनुचित उसकी मर्मभेदी वाणी, विटों के साथ लम्बी मनोरंजन वार्ता तथा क्रीडा भी भयदायक हो गयी थी।

पुरो मिथ्यागुणग्राही परोक्षं दोषदर्शकः ।
असुस्थिरादरो भूभृत्सोऽभूद् द्वेष्योऽनुजीविनाम् ॥३५८॥

३५८. प्रत्यक्ष मिथ्या गुणग्राही, परोक्ष में दोष दर्शक, और असुस्थिर आदर प्रदर्शक, वह राजा अनुजीवियों के द्वेष का पात्र बन गया था।

मनागनवधानेन स्खलतस्तस्य भूपतेः ।
इत्थं राज्यस्थितिरगादचिरेण विसूत्रताम् ॥३५९॥

३५९. नितान्त असावधानी के कारण स्खलित, उस राजा की राज्यस्थिति शीघ्र ही इस प्रकार विशृंखलित हो गयी।

गीत प्रिय और दक्ष होता है। समयानुसार पदों का उल्लेख करता है। कामुक रसमय गीतों से उत्तेजित करता है। वाक् प्रलोभन से चित्त को हरने की कोशिश करता है। उसका तीसरा गुण ऊहा-पोह में दक्ष होना है। चौथा गुण उसका वाग्मी होना है। वह शब्दजाल में फँसा कर अपनी रुचि के अनुसार काम करवा लेता है। पवित्र-से-पवित्र व्यक्ति को वह अपवित्र करने में सफल होता है। किसी को पतित करने में उत्साहित होता है।

विट कामतन्त्र कला कोविद नायक एवं नायिका का सन्देश वाहक होता है। विट का लक्षण साहित्य दर्पण में दिया गया है।

> वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः ।
> ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥
> ॥ २४ : १०४ ॥

(२) स्त्रैण : स्त्रियों की मन्त्रणा पर चलनेवाले व्यक्तियों के अर्थ में यहाँ इस शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द राजा का विशेषण है। लौकिक भाषा में इस शब्द का अर्थ मेहरा होता है। इसका अर्थ नारीसुलभ, स्त्री द्वारा शासित, स्त्रीत्व, नारीत्व स्त्रीस्वभाव तथा दौर्बल्य भी होता है। कल्हण का यहाँ तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि राजा रमणियों में इतना रम गया था कि उसका पुरुषोचित व्यवहार एवं आचरण जैसे लुप्त हो गया था।

स्त्रैण शब्द का शुक्र ने राजा के सन्दर्भ में कल्हण के समान ही प्रयोग किया है।

> आयते राष्ट्रह्रासश्च शत्रुवृद्धिर्धनक्षयः ।
> सुराप्यपि वरो राजा न स्त्रैणो नातिकोपवान् ॥
> ॥ ४ : ५९ ॥
> लोकांश्चण्डस्तापयति स्त्रैणो वर्णान्विलुम्पति ।
> मद्यपश्चैकश्च भ्रष्टः स्याद् बुद्ध्या च व्यवहारतः ॥
> ॥ ४ : ६० ॥

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३५७ में 'दीर्घं नर्म शश्वत्कथा' का पाठभेद 'दीर्घनर्म चासत् तथा' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३५८ में 'असुस्थिरादरो' का पाठभेद 'अस्वस्थिरादरो' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३६० में 'उपेचितस्य' का 'उपेचितास्य' तथा 'द्रोहि' का 'निज', और 'द्रोणि' पाठभेद मिलता है

उपेक्षितस्य निद्रोहैरयतन्ताऽजितात्मनः ।
अथ लब्धबलास्तस्य नाशाय द्रोहिमन्त्रिणः ॥३६०॥

३६०. शुभचिन्तकों द्वारा उपेक्षित एवं स्वच्छन्द इस राजा के नाशहेतु शक्तिशाली द्रोही मन्त्रियों ने यत्न किया।

पादटिप्पणियाँ :

३६० (१) राजतन्त्र : प्राचीन भारत में राजतन्त्र, कही वंशपरम्परागत उत्तराधिकार द्वारा ज्येष्ठ पुत्र अथवा प्रचलित हिन्दू उत्तराधिकार नियमानुसार सगोत्र सपिण्डादि को राज्य मिलता था। उनके अभाव में बन्धुओं को जाता था; अथवा उसका निर्वाचन जनता किंवा मन्त्री एवं परिषदादि करती थी। कल्हण ने निर्वाचित राजा का वर्णन राजतरंगिणी (७:७०३) में किया है। किस प्रकार परिषद् ने मिलकर कश्मीर के राजा का निर्वाचन किया था। कश्मीर राजा को कल्हण ने महाशासन की उपमा दी (त० १:१४१) है। श्री रणजीत सीताराम पण्डित राजतरंगिणी के अनुवाद में इस पर टिप्पणी लिखते हुए कहते हैं—'इससे प्रकट होता है कि कश्मीर मे राजाओं का मूलस्वरूप निर्वाचनीय था। उत्तराधिकार निर्वाचन पर निर्भर था।' सम्भवतः बौद्धों के संघ प्रथा का प्रभाव था। संघ में निर्वाचन द्वारा कार्य सम्पन्न होता था। संघ मे पद निर्वाचन द्वारा प्राप्त होते थे। प्राचीन भारत मे जनता दुर्बल राजाओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थी। अतएव प्राचीन संस्कृत वाङ्मय मे राजाओं के राज्यच्युत, निर्वासित करने की अनेक घटनाएं मिलती हैं। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है। धिजमराज को जनता ने राज्यच्युत कर दिया था। उसके वंश ने दश पीढियों तक राज्य किया था। पंचविंश ब्राह्मण मे राजाओं के हटाने के दो उदाहरण मिलते हैं। वे दीर्घश्रव तथा सिन्धुक्षित थे। (१२:१२, ६ तथा १५:३, २५)। विष्णुपु[illegible] राजा वेणु की कथा प्रसिद्ध है। वह राज्यच्यु[illegible] मार डाला गया [illegible] पुराण अध्याय १३)।

भारतीय राजनीति के सिद्धान्त का जहाँ तक मैं अध्ययन कर सका हूँ, वह जनता के विप्लव, एवं विद्रोह के अधिकार को, दुराचारी, आततायी, क्रूर, एवं प्रजाभक्षक, शोषक राजा के विरुद्ध स्वीकार करता है। यद्यपि यह सिद्धान्त भी स्वीकार करता है। राजा देवता का अंश है। किन्तु यह भी साधिकार घोषणा करता है। देवता बुरे कर्मो से राक्षस हो जाता है। ऋषि पुलस्त्य का नाती रावण था। ऋषि कुल में जन्म लेने पर भी बुरे कार्यों द्वारा राक्षस हो गया था।

देवता उसी समय तक देवता है, जब तक उसमें देवत्व गुण वर्तमान रहता है। सद्गुण के कारण देवता होता है। देवत्व प्राप्त करता है। सद्गुण के अभाव में, प्रजा रंजन के अभाव में, न्याय प्रिय शासन के अभाव में, राष्ट्रसुरक्षा के अभाव में, राजा का सद्गुण और दैवी गुण लुप्त हो जाता है। परपीड़ा, परशोषण, दुराचार, एवं दूषित विचारो का आश्रय ग्रहण करते ही, उसका देवस्वरूप तथा देवत्व तिरोहित हो जाता है। अतएव उसे राज्यच्युत करना, उसे हटा देना, उसका वध कर देना, देव विरोधी कार्य नही कहा जायेगा। उसे असुर विरोधी कार्य, धर्म एवं शास्त्र सम्मत, कहकर पापहीन कहा गया है। जनता के कल्याण निमित्त इस प्रकार के राजा से पिण्ड छुड़ाना देशभक्ति की गणना मे लिया जायेगा।

शुक्राचार्य ने शुक्रनीति मे स्वच्छन्द देशभक्ति किंवा स्वतन्त्र राजा के विषय मे जो कहा है वही घटना इस राजा के सम्बन्ध मे घटी।

स्वातन्त्र्यमापन्नो ह्यनर्थायैव [illegible]पते।
[illegible] मनेत्सद्यो भिन्नप्रकृ[illegible] ॥ २:४ ॥

प्रभोः संकोचिताज्ञैस्तैश्चरद्भिर्निरवग्रहम् ।
राज्यं जिहीर्षवो भूपाश्चक्रिरे भूम्यनन्तराः ॥३६१॥

३६१. प्रभु की आज्ञा संकुचित करने वाले तथा स्वच्छन्द, उन मन्त्रियों ने पार्श्ववर्ती भूपों को राज्य हरण हेतु उत्सुक कर दिया।

तदनुप्राणिताः सर्वे ते ते नानादिगाश्रयाः ।
आसन्राज्यामिषं प्राप्तुं श्येना इव ससंभ्रमाः ॥३६२॥

३६२. मन्त्रियों द्वारा प्रोत्साहित, नाना दिशाओं के वे सब नृप, बाज की भाँति राज्य रूप माँस की प्राप्ति हेतु समुद्यत हो गये थे।

अथोत्पन्नभयो राजा न शशाक निजांस्थितिम् ।
व्यवस्थापयितुं यन्त्रच्युतां कारुः शिलामिव ॥३६३॥

३६३. भयभीत राजा अपनी स्थिति को यन्त्र[1] च्युत शिला को शिल्पी की तरह व्यवस्थित रखने में असमर्थ हो गया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३६१ में 'संकोचिता' का पाठभेद 'संकुचिता' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३६२ में 'तदनुप्राणिताः सर्वे ते ते' का पाठभेद 'तदनुप्राणिता वैरि नृपा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६३ (१) यन्त्र : कश्मीर के मन्दिरों में लगे विशाल शिलाखण्डो को उठाने के लिए किसी प्रकार के यन्त्र का प्रयोग होता था। अन्यथा बड़े-बड़े शिलाखण्डों को कैसे उठाकर एक दूसरे पर रखा गया होगा। यह बात मन्दिरों के ध्वन्सावशेषो के देखने से मालूम होती है। कल्हण इसी शिला उठाने वाले यन्त्र की उपमा यहाँ पर देता है। घिरारी किंवा चर्खा बड़े शहतीर में लगाकर शिला उठाने की क्रिया मन्दिरों के निर्माण निमित्त कश्मीर में प्रचलित थी। यह यन्त्र, आधुनिक शब्दावली में क्रेन था।

श्री आर. एस. पण्डित इस यन्त्र का यहाँ अर्थ पानी उठाने वाले यन्त्र, अर्थात् ढेकली जिसके बाँस के एक छोर में पत्थर दूसरे में बालटी की लम्बी रस्सी बंधी रहती है, और हाथ से पानी खींचते और सिंचाई करते हैं, लगाया है। यह ढेकली प्रथा बिहार, बंगाल, आसाम तथा कश्मीर में कुछ प्रचलित रही है। यहाँ पत्थर गिरने से सन्तुलन बिगड़ जायेगा इस ओर उक्त मत से संकेत किया गया है।

कल्हण ने यहाँ—'यन्त्रयुता कारुः शिलामिव' लिखा है। कारुः का अर्थ कारीगर होता है। 'कारुः' का अर्थ शिल्पी होता है। (अमर कोश २:१०:५) शिल्पी के साथ कारु का प्रयोग स्पष्ट प्रकट करता है कि कारु का अर्थ कारीगर से है। यह यन्त्र पत्थर उठाने वाला यन्त्र है। न कि रणजीत सीताराम पण्डित के शब्दो मे ढेकली। ढेकली कूपक चलाता है। यदि यन्त्र का सम्बन्ध जल उठाने से होता है, तो कूपक अथवा कूपिसम्बन्धी शब्द का प्रयोग किया जाता। कारु शब्द के प्रयोग से मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। यह पत्थर उठाने का यन्त्र था। जिसके भार के सन्तुलन के लिए यन्त्र के चर्खा अथवा घिरारी के रस्सा या डोरी में एक तरफ पत्थर लगा रहता था। इस प्रकार का यन्त्र स्टेशनों पर कोयला ऊँचाई पर ले जाकर रखने और वहाँ से इंजन में डालने के लिए मैंने पश्चिमी रेलवे में देखा है।

उपेक्षितस्य निर्द्रोहैरयतन्ताऽजितात्मनः ।
अथ लब्धबलास्तस्य नाशाय द्रोहिमन्त्रिणः ॥३६०॥

३६०. शुभचिन्तकों द्वारा उपेक्षित एवं स्वच्छन्द इस राजा के नाशहेतु शक्तिशाली द्रोही मन्त्रियों ने यत्न किया।

पादटिप्पणियाँ :

३६० (1) राजतन्त्र : प्राचीन भारत में राजतन्त्र, कहीं वंशपरम्परागत उत्तराधिकार द्वारा ज्येष्ठ पुत्र अथवा प्रचलित हिन्दू उत्तराधिकार नियमानुसार सगोत्र सपिण्डादि को राज्य मिलता था। उनके अभाव में बन्धुओं को जाता था; अथवा उसका निर्वाचन जनता किंवा मन्त्री एवं परिषदादि करती थी। कल्हण ने निर्वाचित राजा का वर्णन राजतरंगिणी (७:७०३) में किया है। किस प्रकार परिषद् ने मिलकर कश्मीर के राजा का निर्वाचन किया था। कश्मीर राजा को कल्हण ने महाशावक की उपमा दी (त० १:१४१) है। श्री रणजीत सीताराम पण्डित राजतरंगिणी के अनुवाद में इस पर टिप्पणी लिखते हुए कहते हैं—'इससे प्रकट होता है कि कश्मीर में राजाओं का मूलस्वरूप निर्वाचनीय था। उत्तराधिकार निर्वाचन पर निर्भर था।' सम्भवतः बौद्धों के संघ प्रथा का प्रभाव था। संघ में निर्वाचन द्वारा कार्य सम्पन्न होता था। संघ में पद निर्वाचन द्वारा प्राप्त होते थे। प्राचीन भारत में जनता दुर्बल राजाओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थी। अतएव प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में राजाओं के राज्यच्युत, निर्वासित करने की अनेक घटनाएं मिलती हैं। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है। भ्रिजयराज को जनता ने राज्यच्युत कर दिया था। उसके वंश ने दस पीढ़ियों तक राज्य किया था। पंचविंश ब्राह्मण में राजाओं के हटाने के दो उदाहरण मिलते हैं। वे दीर्घश्रव तथा सिन्धुक्षित थे। (१२:१२, ६ *तथा* १५:३, २५)। विष्णुपुराण में राजा वेणु की कथा प्रसिद्ध है। वह राज्यच्युत कर मार डाला गया था। (विष्णु पुराण अंश १ अध्याय १३)।

भारतीय राजनीति के सिद्धान्त का जहाँ तक मैं अध्ययन कर सका हूँ, वह जनता के विप्लव, एवं विद्रोह के अधिकार को, दुराचारी, आततायी, क्रूर, एवं प्रजाभक्षक, शोषक राजा के विरुद्ध स्वीकार करता है। यद्यपि यह सिद्धान्त भी स्वीकार करता है। राजा देवता का अंश है। किन्तु यह भी साधिकार घोषणा करता है। देवता बुरे कर्मों से राक्षस हो जाता है। ऋषि पुलस्त्य का नाती रावण था। ऋषि कुल में जन्म लेने पर भी बुरे कार्यों द्वारा राक्षस हो गया था।

देवता उसी समय तक देवता है, जब तक उसमें देवत्व गुण वर्तमान रहता है। सद्गुण के कारण देवता होता है। देवत्व प्राप्त करता है। सद्गुण के अभाव में, प्रजा रंजन के अभाव में, न्याय प्रिय शासन के अभाव में, राष्ट्रसुरक्षा के अभाव में, राजा का सद्गुण और दैवी गुण लुप्त हो जाता है। परपीड़ा, परशोषण, दुराचार, एवं दूषित विचारों का आश्रय ग्रहण करते ही, उसका देवस्वरूप तथा देवत्व तिरोहित हो जाता है। अतएव उसे राज्यच्युत करना, उसे हटा देना, उसका वध कर देना, देव विरोधी कार्य नहीं कहा जायेगा। उसे असुर विरोधी कार्य, धर्म एवं शास्त्र सम्मत, कहकर पापहीन कहा गया है। जनता के कल्याण निमित्त इस प्रकार के राजा से पिण्ड छुड़ाना देशभक्ति की गणना में गिना जायेगा।

शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में स्वच्छन्द देशभक्ति किंवा स्वतन्त्र राजा के विषय में जो कहा है वही घटना इस राजा के सम्बन्ध में घटी।

प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नो ह्यनर्थायैव कल्पते।
भिन्नराष्ट्रो भवेत्सद्यो भिन्नप्रकृतिरेव च ॥ २:४ ॥

प्रभोः संकोचिताज्ञैस्तैश्चरद्भिर्निरवग्रहम् ।
राज्यं जिहीर्षवो भूपाश्चक्रिरे भूम्यनन्तराः ॥३६१॥

३६१. प्रभु की आज्ञा संकुचित करने वाले तथा स्वच्छन्द, उन मन्त्रियों ने पार्श्ववर्ती भूपों को राज्य हरण हेतु उत्सुक कर दिया।

तदनुप्राणिताः सर्वे ते ते नानादिगाश्रयाः ।
आसन्राज्यामिषं प्राप्तुं श्येना इव ससंभ्रमाः ॥३६२॥

३६३ मन्त्रियों द्वारा प्रोत्साहित, नाना दिशाओं के वे सब नृप, बाज की भाँति राज्य रूप मांस की प्राप्ति हेतु समुद्यत हो गये थे।

अथोत्पन्नभयो राजा न शशाक निजस्थितिम् ।
व्यवस्थापयितुं यन्त्रच्युतां कारुः शिलामिव ॥३६३॥

३६३. भयभीत राजा अपनी स्थिति को यन्त्र[1] च्युत शिला को शिल्पी की तरह व्यवस्थित रखने में असमर्थ हो गया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३६१ में 'संकोचिता' का पाठभेद 'संकुचिता' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३६२ में 'तदनुप्राणिताः सर्वे ते ते' का पाठभेद 'तदनुप्राणिता वैरि नृपा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६३ (१) यन्त्र : कश्मीर के मन्दिरों में लगे विशाल शिलाखण्डों को उठाने के लिए किसी प्रकार के यन्त्र का प्रयोग होता था। अन्यथा बड़े-बड़े शिलाखण्डों को कैसे उठाकर एक दूसरे पर रखा गया होगा। यह बात मन्दिरों के ध्वन्सावेशषों के देखने से मालूम होती है। कल्हण इसी शिला उठाने वाले यन्त्र की उपमा यहाँ पर देता है। घिरारी किंवा चर्खी बड़े शहतीर में लगाकर शिला उठाने की क्रिया मन्दिरों के निर्माण निमित्त कश्मीर में प्रचलित थी। यह यन्त्र, आधुनिक शब्दावली में क्रेन था।

श्री आर. एस. पण्डित इस यन्त्र का यहाँ अर्थ पानी उठाने वाले यन्त्र, अर्थात् ढेकली जिसके बाँस के एक छोर में पत्थर दूसरे में बालटी की लम्बी रस्सी बंधी रहती है, और हाथ से पानी खींचते और सिंचाई करते है, लगाया है। यह ढेकली प्रथा बिहार, बंगाल, आसाम तथा कश्मीर में कुछ प्रचलित रही है। यहाँ पत्थर गिरने से सन्तुलन बिगड़ जायेगा इस ओर उक्त मत से संकेत किया गया है।

कल्हण ने यहाँ—'यन्त्रयुता कारुः शिलामिव' लिखा है। कारुः का अर्थ कारीगर होता है। 'कारुः' का अर्थ शिल्पी होता है। (अमर कोश २:१०:५) शिल्पी के साथ कारु का प्रयोग स्पष्ट प्रकट करता है कि कारु का अर्थ कारीगर से है। यह यन्त्र पत्थर उठाने वाला यन्त्र है। न कि रणजीत सीताराम पण्डित के शब्दों में ढेकली। ढेकली कूपक चलाता है। यदि यन्त्र का सम्बन्ध जल उठाने से होता है, तो कूपक अथवा कूपिसम्बन्धी शब्द का प्रयोग किया जाता। कारु शब्द के प्रयोग से मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। यह पत्थर उठाने का यन्त्र था। जिसके भार के सन्तुलन के लिए यन्त्र के चर्खी अथवा घिरारी के रस्सा या डोरी में एक तरफ पत्थर लगा रहता था। इस प्रकार का यन्त्र स्टेशनों पर कोयला ऊँचाई पर ले जाकर रखने और वहाँ से इंजन में डालने के लिए मैंने पश्चिमी रेलवे में देखा है।

चिरक्षुण्णे क्ष्माभर्तुस्तस्मिन्राज्ये विसंस्थुले ।
उपायोऽस्य स्थितेर्हेतुर्नैकः कश्चन पप्रथे ॥३६४॥

३६४. बहुत दिनों से उस राज्य के विशृंखलित होने पर, उसके स्थायित्व हेतु कोई उपाय उस राजा को नही सूझा ।

दृष्टदोषान्स्थितिं प्राप्तो हन्यादस्मानसंशयम् ।
विचिन्त्येति न सामास्य जगृहुर्निजमन्त्रिणः ॥३६५॥

३६५. उसके अपने मन्त्रियों ने राजा की सन्धि को यह सोचकर स्वीकार नहीं किया कि; राजा ने उनके दोषों को देख लिया है, अतएव स्थिति सुदृढ़ होने पर, उन्हें निश्चय ही मरवा डालेगा ।

अथ निरुरुधुस्ते संनद्धा बलैर्नृपमन्दिरं
व्यवहितजनाक्रन्दं भेरीरवैरतिभैरवैः ।
मदकरिघटाकेतुच्छायानिरुद्धरविप्रभा
भवनवलभीः संतन्वन्तो दिवाऽपि तमोवृताः ॥३६६॥

३६६. उन सन्नद्ध मन्त्रियों ने सेनाओं से राजभवन घेर लिया । उस समय अति भयंकर भेरी ध्वनि से जन-क्रन्दन दब गया । मदमत्त गजसमूह की पताकाओं की छाया से सूर्य-प्रकाश अवरुद्ध हो गया और अट्टालिकायें दिन में भी तमोवृत हो गयीं ।

कल्हण ने यन्त्र शब्द का प्रयोग क्रेन जैसे यन्त्र के लिये यहाँ किया है । वह शिला उठाने के काम मे आता है । आज कल भी इमारत बनाने मे ऊँचे क्रेन का प्रयोग शिला, ईंटा आदि उठाने के लिये किया जाता है ।

इस प्रकार के यन्त्र भारत मे कश्मीर से लेकर धुर दक्षिण रामेश्वरम् तक सुदूर प्राचीन काल से प्रचलित थे । वाल्मीकीय रामायण में सेतु बाँधने के समय इस प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किया गया था ।

हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥२२:६०॥

[महाकाय महाबली वानर हाथी के समान बड़ी बड़ी शिलाओं और पर्वतों को उखाड़कर यन्त्रों द्वारा समुद्र तट पर लाते थे ।]

श्लोक संख्या ३६४ में 'चिर' का 'चिरं' 'कश्चन' का 'कस्य न' तथा 'पप्रथे' का पाठभेद 'प्रपथे' मिलता है ।

श्लोक संख्या ३६५ में 'प्राप्तो' का 'प्राप्तान्', 'प्राप्ते' तथा 'प्राप्ता' और 'स्मान' का पाठभेद 'स्माद' तथा 'स्मान्न' मिलता है ।

श्लोक संख्या ३६७ मे 'रजोद्धराज' का 'रजोद्ध राज', 'रजोद्धाराज'; 'नाश्रु' का 'नासु', 'नासु', और 'राजाध्वना' का पाठभेद 'राजाधुना' मिलता है ।

तैर्गन्तुं स्वभुवो निवारितरणैर्दत्तेऽवकाशे तत-
स्त्यक्तश्रीर्नगरान्तरात्स नृपतिस्तात्पर्यतो निर्ययौ।
आजानेयरजोऽङ्कराजललनाप्रस्थानसंदर्शन-
क्षुभ्यत्पौरजनाश्रुलाजकणिकाकीर्णेन राजाध्वना ।।३६७।।

३६७. उन लोगों के, स्वभूमि से जाने हेतु युद्ध बन्द कर अवकाश प्रदान करने पर, वह राजा सम्पत्ति त्याग कर, राजमार्ग द्वारा नगर से निकल गया। उस समय उत्तम अश्व की धूल में राज ललनाओं का प्रस्थान देखकर, दुखित होते पुरजनों की अश्रु रूपी लाज[1] कणिका से वह राजमार्ग व्याप्त हो गया था।

राज्याच्च्युतस्य बहुशः परिवाररामा-
कोशादि तस्य रिपवो व्रजतोऽपजह्रुः।
उर्वीरुहो विगलितस्य नगेन्द्रशृङ्गा-
द्वल्लीफलादि रभसादिव गण्डशैलाः ।।३६८।।

३६८. राज्यच्युत एवं गमनशील उस राजा के बहुत से परिवार, कामिनियाँ और धनादि का शत्रुओं ने उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे गण्डशैल, पर्वत शिखर से पतित वृक्ष को उसके लताफलादि से वेगपूर्वक वंचित कर देता है।

रम्यैः शैलपथैर्व्रजञ्श्रमवशाच्छायां श्रितः शाखिना-
मासीनप्रचलायितेन सुमहद् दुःखं विसस्मार सः।
दूरात्पामरपूत्कृतैः श्रुतिपथप्राप्तैः प्रबुद्धस्त्वभूद्
दृष्टो निर्झरवारिभिः सह मनाक् श्वभ्रे निमज्जन्निव।।३६९।।

३६९. रम्य शैल पथ पर गमन करते हुए, क्लान्त वश वृक्षों की छाया का आश्रय लेकर बैठने और पुनः चलने से, उसने महान् दुःख को विस्मृत कर दिया। दूर से सुने गये पामरों के कोलाहलों से, प्रबुद्ध राजा निर्झर वारि के साथ गर्त में डूबता हुआ सा देखा गया।

पादटिप्पणियाँ :

३६७. (१) लाज : धान का भुना लावा तथा पुष्प का राजपथ तथा राजा की शोभा-यात्रा के समय अथवा शुभ अवसरों पर वर्षा किया जाना पुरानी परंपरा है। प्रायः समस्त भारतवर्ष में यह प्रचलित है। बंगाल में मृतकों की शव-यात्रा के समय लाज-वर्षा भी जाती है। विवाह के समय भी लावा परछने की क्रिया हमारी तरफ प्रचलित है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३६८ में 'रामा' का 'रामाः', 'पजह्रुः' का 'विजह्रुः'; 'विगलितस्य' का 'विच-लितस्य' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ३६९ में 'मासीनप्रचलायितेन' का 'मासीनः प्रचलायितेन' 'मासिन प्रचलायितेन' 'मासीनः प्रलयायितेन' 'मासीनप्रलयायितेन' 'मासीन

नानावीरुत्तृणपरिमलैरुग्रगन्धा वनोर्वी-
रम्भःक्षोभप्रतिहतशिलाः पिच्छिलाश्चाद्रिकुल्याः ।
क्रान्त्वा श्रान्तैर्बिसकिसलयच्छायमुग्धाङ्गलेखै-
रप्युत्सङ्गं निहिततनुभिर्मूर्छितं तस्य दारैः ॥३७०॥

३७०. नाना प्रकार के वीरुत तृणों के परिमल से उग्र गन्धवती वनभूमि, जल के ठोकरों से प्रतिहत शिलाओं और फिसलनों से युक्त कुल्याओं को पार करके, मृणाल सदृश मुग्ध अंगलेखाओं एवं उत्संग में निहित शरीरों वाली श्रान्त उसकी स्त्रियां मूर्छित हो गयीं।

पर्यन्ताद्रितटाद्विलोक्य सुचिरं दूरीभवन्मण्डलं
द्रागामन्त्रयितुं क्षिपत्सु नृपतेर्दारेषु पुष्पाञ्जलीन् ।
क्षोणीपृष्ठविकीर्णपत्त्रति नमत्तुण्डं स्वनीडस्थितैः
सावेगं गिरिकन्दरासु पततां वृन्दैरपि क्रन्दितम् ॥३७१॥

३७१. सीमान्त पर्वत तट से दूर होते मण्डल को देर तक देखकर शीघ्र विदा लेने के लिये नृपस्त्रियों के पुष्पांजलियाँ गिराने पर, वेग के साथ नीचे उतरते हुए, गिरिकन्दराओं के, स्वनीड स्थित पक्षिवृन्दों ने भी पृथ्वी तल पर पंख फैला, नमित चंचु हो क्रन्दन[1] किया।

प्रचलायितेन,' 'सुमहद्दु ख' का 'स्वमहद्दुःखः' महद्दुख:';'पूत्कृतै.' का ,पुत्कृतै.', 'फुत्कृतैः', 'हुत्कृतै.' तथा 'मनाक् श्वभ्रे' का पाठभेद 'मनः श्वभ्रे' 'पुनः श्वभ्रे' 'मना श्वभ्रे' 'मनाः श्वभ्रे' 'मानाः श्वभ्रे' 'मनःश्वभ्रे' 'महच्छ्वभ्रे' पाठभेद मिलता है।

श्लोकसंख्या ३७० में 'रप्युत्सङ्गं' का पाठभेद 'रत्युत्सङ्गं' तथा 'रस्युत्सङ्गं' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३७१ में 'पर्यन्ताद्रि' का 'पर्यस्ताद्रि' तथा 'क्षिपत्सु' का पाठभेद 'जहत्स्व' और 'जहत्सु' मिलता है।

जहाँ न जाने कितनी मिलनयामिनियों में अपनी सुखमय, रसमय, उल्लासमय समय व्यतीत किया था, उन सबको नमस्कार कर, उन्हें स्मृति के धवल पटपर केवल लिखकर विदा हो रही थी। उस कश्मीर मण्डल को उन्हो ने नमस्कार किया जहाँ वे एक दिन रानी थी। आज रंक थी। कल ओर-छोर अज्ञात जगत् मे अनजाने भटकनेवाली थीं उस पवित्र मातृभूमि का जिसे वे पुनः नही देख सकेंगी जो केवल उनकी स्मृति मे शेष रह जायगी अन्तिम

किमदटिप्पणियाँ :

इस ३१ (१) नमित चंचु : कल्हण ने करुण धुर दक्षिण २।को यहाँ पराकाष्ठा कर दी है। मूल प्रचलित थे। भाव समझने पर ही पदलालित्य का रस समय इस प्रकार के है।

हस्तिमात्रान् महाकायाः न्त करुण दृश्य कल्हण ने पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैःअपनी जन्मभूमि जहाँ उन [महाकाय महाबली थां। जहाँ युवती हुई थी।

वाल। घोरज देन करुण दृश्य के। हो गया। वे बैठे गये। अपने घोंसलों से सम्मुख पंख फैलाकर नमस्कार किया।

'मासीनप्रचलायितेन' 'मासित प्रचलायितेन' 'मासीन सीनप्रचलायितेन'

स्तनयुगतलनद्धस्रस्तमूर्धांशुकानां
त्रिकवलनविलोलं वीक्ष्य दूरात्स्वदेशम् ।
अवहत रुदतीनां मौलिविन्यस्तहस्तं
पथि नृपवनितानामश्रुभिर्निर्झराम्भः ॥३७२॥

३७२. पीछे मुड़कर दूर से स्वदेश को देखकर, शिर से गिरे वस्त्र को स्तन युगल पर सम्हालती, तथा मस्तक पर हाथ रख कर रुदन करती, नृपवनिताओं के अश्रुओं से, मार्ग में निर्झर जल बहने लगा ।

प्रीतिस्थैर्यैरुचितवचनाविप्रया शोकशान्त्या
निर्व्याजाज्ञाग्रहणगुरुभिस्तैश्च तैश्चोपचारैः ।
तस्य स्नेहादुपगतवतो राज्यविभ्रंशदुःखं
मन्दीचक्रुः स्वभुवि सुजना भूपतेर्भूमिपालाः ॥३७३॥

३७३. स्थिर प्रीतियों से, उचित वचन प्रयोग से, शोक शान्ति से, अकारण आज्ञा ग्रहण करने की गम्भीरता से, स्नेह से तथा और भी उन-उन उपचारों द्वारा अपनी भूमि में आये इस भूपति के राज्य विभ्रंश के दुःख को सज्जन भूमिपालों ने मन्द कर दिया ।

दी और स्वयं नमित चंचु होने लगे किन्तु देव का हृदय उनके दुर्दिन को देखकर भी नहीं पसीजा। मानव हृदय उनके भाग्य विपर्यय पर इस विदाई के समय उन्हें बिदाकर दो बूँद आँसू भी नहीं बहा सका। वह काम किया पक्षियों ने ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३७२ में 'तलनद्ध' का 'बलनद्ध'; 'विलोलं' को 'विलोमं'; 'नृपवनितानां' का 'अबलानां चलं कृत' पाठभेद मिलता है ।

पाददिप्पणियाँ :

३७२ (१) श्लोक संख्या ३६८ से ३७८ तक करुण रस से ओत प्रोत संस्कृत साहित्य एवं काव्य में उत्कृष्ट माने जायेगा। कल्हण करुण रस व्यक्त करने की प्रतिभा का स्वयं एक उदाहरण उपस्थित करता है ।

इसी प्रकार का उदाहरण स्पेन के इतिहास में मिलता है। स्पेन का अन्तिम मूर राजा बोअबदिल को सन् १४९२ ई० में कैस्टिलियन ने निर्वासित कर दिया। वह जब अपने राज परिवार के साथ पदुल पर्वत पर पहुँचा तो अन्तिम बार उसने करुण दृष्टि से ग्रनडा को देखा। जहाँ पर बोअबदिल ने पर्वत पर अन्तिम बार ग्रनडा को देखा था और स्पेन से बिदाई ली थी उसे आज भी 'एल डलटियो सीसपिरो-डेल-मोरो' अर्थात् 'मूर की अन्तिम आह' कहते हैं ।

राजा युधिष्ठिर किस दिशा में गया था, किस मार्ग, संकट किंवा द्वार से कश्मीर का त्याग किया था, किस स्थान से रानियों ने अपनी मातृभूमि कश्मीर मण्डल का अन्तिम दर्शन कर उसे पुष्पांजलि अर्पित की थी। पता नहीं चलता। कल्हण इस घटना स्थल के विषय में शान्त है। उसको यह शान्ति इस बात को प्रकट करती है। उसने किसी प्रचलित श्रुति के आधार पर अथवा पूर्व इतिहासकारों के अत्यन्त सूक्ष्म सूत्र के आधार-पर उक्त वर्णन लिखा है ।

राजा युधिष्ठिर तथा उसके राज्य की परिस्थिति, विद्रोह, भ्रष्टशासन, मन्त्रियों के कुमन्त्र आदि घटनाओं का वर्णन 'दशकुमारचरित' में कवि

दण्डी ने अवन्तिवर्मा तथा अश्मकदेशाधिपति के सन्दर्भ में किया है। (८:५—३०)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७३ में 'शान्त्या' का 'कान्त्या' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३७३. (१) भूमिपाल और अलकसुन्दर (सिकन्दर) : हसन लिखता है कि अन्ययुधिष्ठिर बाहर जाने पर बाहरी राजाओं द्वारा मार डाला गया था। यह नितान्त कपोलकल्पना है। कल्हण इसका ठीक उलटा वर्णन करता है। बाहरी राजाओं के सुव्यवहार के कारण वह अपने राज्य त्याग का दुःख भूल गया था।

(२) राज्यपाल : कल्हण ने राजतरंगिणी में इस राजा का राज्यकाल नहीं दिया है। किन्तु उसने प्रथम तरंग के राजाओं के राज्यकाल का कुल योग गोनन्द (प्रथम) से युधिष्ठिर (प्रथम) तक २२६८ वर्ष दिया है। उसके अनुसार गणना करने पर युधिष्ठिर का राज्यकाल ३४ वर्ष ३ मास १ दिन आता है। आईने अकबरी ने राज्यकाल ४८ वर्ष १० दिन दिया है। यह काल गलत गणना के कारण त्रुटिपूर्ण है। पाठभेद के आधार पर गणना की जाय तो ३३ वर्ष ९ मास तथा ७ दिन आता है।

गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर प्रथम तक २१ राजाओं का वर्णन कल्हण करता है। गोनन्द तृतीय का राज्याभिषेक लौकिक संवत् १८९४ में हुआ था। गोनन्द तृतीय से नरेन्द्रादित्य अर्थात् २० राजाओं का राज काल ९६७ वर्ष ८ मास तथा २३ दिन होता है। श्लोक संख्या ३४५ में ६ मास के स्थान पर ६ दिन की गणना करने से अवश्य अन्तर पड़ जाता है। वह होता है। ९६८ वर्ष २ मास २३ दिन। गोनन्द प्रथम का राज्याभिषेक लौकिक संवत् ६२८ में हुआ था। गोनन्द से लेकर अभिमन्यु तक के राजाओं का राज्य काल १२६६वर्ष होता है। अर्थात् लौकिक संवत् ६२८ से १८९४ है।

श्लोक संख्या ४८ में कल्हण लिखता है—'गोनन्द प्रथम तथा उसके उत्तराधिकारियों ने २२६८ वर्ष कलियुग में शासन किये। यह गणना कुछ लेखकों के मत से त्रुटिपूर्ण लगती है। उन्होंने माना है कि भारत युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ था।

श्लोक संख्या ५४ में कल्हण लुप्त ५२ राजाओं का राज्य काल १२६६ वर्ष देता है। इस प्रकार २२६८ में से यदि १२६६ वर्ष घटा दिया जाय तो केवल १००२ वर्ष बचता है। यह काल गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर तक का होता है। गोनन्द तृतीय से नरेन्द्रादित्य का शासन काल ९६७ वर्ष ८ मास २३ दिन होता है। यदि इस काल को १००२ वर्ष में से घटा दिया जाय तो युधिष्ठिर प्रथम का राज्यकाल ३४ वर्ष ३ मास १ दिन आता है।

श्री एस. पी. पण्डित ने गोनन्द वंश के प्रथम तरंग के राजाओं के राज्यकाल की गणना १०१४ वर्ष ९ मास ९ दिन दी है। इसमें राजा युधिष्ठिर का राज्य काल न ी दिया गया है केवल लिख दिया गया कोई समय नहीं दिया गया है।

गोनन्द तृतीय का राज्याभिषेक ईसापूर्व ११८४ वर्ष दिया गया है। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक ईसा पूर्व २१७ वर्ष दिया है। युधिष्ठिर का राज्यकाल का समय न सम्मिलित करने पर इस गणना के अनुसार ९६७ वर्ष आता है। यदि प्रत्येक राजा का, शासन काल का समय गोनन्द तृतीय से नरेन्द्रादित्य अर्थात् युधिष्ठिर के राज्याभिषेक दिन तक का समय जोड़ा जाय तो ९६६ वर्ष १६ दिन होता है। गोनन्द वंश के प्रथम तरंग के राजाओं का जो जोड़ दिया गया है वह १०१४ वर्ष ९ माह ९ दिन दिया गया है। यदि १०१४ वर्ष ९ माह ९ दिन में से ९६६ वर्ष १६ दिन निकाल दिया जाय तो ४८ वर्ष ८ मास २३ दिन बचता है। किन्तु श्री स्तीन की कल्हण आधारित गणना मानी जाय तो वास्तव में ३४ वर्ष ३ मास १ दिन आता है।

श्री एस. पी. पण्डित के अनुसार ईसा पूर्व २१७ वर्ष में युधिष्ठिर सिंहासन पर बैठा था। श्री स्तीन के अनुसार यह दिन लौकिक संवत् २८६१ वर्ष ८ मास २९ दिन होना चाहिए।

हसन—'अन्ध युधिष्ठिर के राज्यकाल में सिकन्दर का आना हसन लिखता है। मैं उसे यहां उद्धृत इसलिए करना चाहता हूँ कि कम से कम इस एक घटना के उल्लेख के कारण रत्नाकर पुराण, उसके मुतरजम तथा हसन तीनों को इतिहास के साक्षियों तथा प्रमाणों के सम्मुख कही खड़े होने की जगह नही मिल सकेगी।

हसन—'मुतरजम रत्नाकर लिखता है कि अन्ध युधिष्ठिर के आखिर दौर हकूमत के सिकन्दर फीलकोस जिसे मग़रिके वाशिन्दे महायोन कहते थे, बड़ी भारी लश्कर के साथ हिन्दुस्तान की तसखीर के लिए आया। जब दरिया नीलाब से गुजरा तो हिन्दुस्तान के तमाम राजे-महाराजों में जलजला पड़ गया। राजा युधिष्ठिर का भाई जिसका नाम अबीसतर और कश्मीर के बाहर वाले कोहिस्तानी इलाके का हुक्मरां था सिकन्दर की खिदमत में तुहफे ले जाकर मुअजिज व मुकरम हुआ। सिकन्दर से अपने भाई के बर खिलाफ मदद मांगी। चुनाचः सिकन्दर ने एक भारी फ़ौज उसकी इमदाद के लिए मुकर्रर कर दी। अन्ध युधिष्ठिर मुकाबला की ताब न लाकर हिन्दुस्तान की तरफ़ भाग खड़ा हुआ और उसकी जगह अबीसतर मुल्क कश्मीर का हाकिम क़रार पाया। दूसरी तरफ़ अन्ध युधिष्ठिर ने भी राजा पूरन से इमदाद मांगी। चूंकि पूरन खुद सिकन्दर के साथ मसरूफ़ जंग था। इस बिना पर युधिष्ठिर की इमदाद से कासिर रहा। यह देखकर अन्ध युधिष्ठिर पूरन की तरफ़ से सिकन्दर के साथ मसरूफ़ पैकार हुआ। और नतीजतन् दौरान जंग मारा गया। इस वाक़या के बाद ही सिकन्दर ने कश्मीर के जनूबी पहाड़ी इलाके से खुद कश्मीर में नजूल किया और कुछ अरसा शैल-शिकार में मसरूफ़ रहा। एक दिन खुदा के करने से मौक़ा पर एक तीर सिकन्दर के बाजू पर लगा। जब तीरन्दाज को गिरफ़्तार कर लाये तो मालूम हुआ कि यह अबेस्तर का पढ़ाया आदमी था। और सिकन्दर के मारने पर मुतअइन था। सिकन्दर पर जब यह हाल खुला तो उसकी आतिश गजब की कोई हद न रही। और उसने जुर्म को पादाश में अबीसतर को मय उसके रिश्तेदारों के क़तल कर डाला। इसके बाद मुल्क की हकूमत राजा परताप को जो मालवा के राजो में से था और राजा विक्रमाजीत अजदाद में से है अता करके खुद अपने मुल्क को वापस चला गया। वाल्हा आलम।

सिकन्दर कश्मीर में नही आया था। (पृष्ठ ५० तथा ५१) इस विषय पर भारतीय इतिहासकारों की आलोचना करता हुआ हसन लिखता है:

हिन्दुस्तानी तारीखदाँ लिखते हैं कि सिकन्दर फिलकोश ईसा की पैदाइश से साढ़े तीन सौ साल क़बल रूम के दारूल खलाफा से निकला और थोड़े से मुद्दत में इराक, रूम, अरब और फिरंगिस्तान वग़ैरह मुमालिक फतह कर लिए। ईसा से ३३१ साल पेश्तर फ़ारस पर फ़तह करने की गरज से हमला किया और तीसरे हमले में वहाँ के बादशाह दारासन, दाराब बिन बहमन को क़तल करके ईरान और खुरासान की सलतनतें अपने क़ब्जा इकतदार में ले आया। और चूंकि हिन्दुस्तानी राजे-महराजे दाराब के अहद हकूमत में सल्तनत ईरान के बाज गुजार थे इस खयाल के पेश नजर सिकन्दर ने फ़तह हिन्द भी लाजमी और जरूरी समझे। चुनांचे : ३२७ क़बल मसीह में एक भारी लश्कर के हमराह दरयाए नीलम अबूर करके हिन्दुस्तान हुक्मरान राजे-महाराजों में तहलक मचा दिया। अरसा चार साल से सिकन्दर की शाही फ़ौजें ने बरफानी पहाड़ों में सफ़र की सख्तियाँ बरदाश्त की थीं। इसके साथ ही लड़ाइयों और मुसलसल जंग व जदल के बायश थककर, चूर हो गयी थी, और गरमियों में पंजाब में रहने की वजह से उनमें से अकसर बुखार में मुबतिला हो गये थे। इस वजह से उन्होंने हिन्दुस्तान पर हमला करने में जल्दी न की।

इन दिनों हिन्दुस्तान में तीन राजे मशहूर थे। अबीसतर कश्मीर और उसके आसपास के पहाड़ी

इलाके का फ़रमान रहा। दूसरा दोआब सिन्धु और झेलम का महाराजा टेकसिला। तीसरा हस्तिनापुर का राजा पोर। अबीसतर ने बेशुमार तुहफे व तहायफ के जरिये सिकन्दर का इस्तक़बाल किया। राजा टेकसिला ने सिर्फ आरयावो हासिल करके सिकन्दर को अपने घर दावत को और पूरी शान व शौकत से दावत फराज बजा लाया। बादशाह ने अपनी थकी हुई फौजों को वहाँ छोड़कर खुद दरयाए झेलम के किनारे डेरे डाल दिये। लेकिन उस तरफ़ से राजा पोर एक भारी फ़ौज के साथ आया और दरया के इस किनारे मोरचा बना लिया। इन दिनों दरया झेलम शिद्दत बरसात के बायस तफ़ पानी पर था। सिकन्दर के लिए दरया का अबूर करना बहुत मुश्किल हो गया। आखिरकार दस मील ऊपर की तरफ़ जाकर रात को दरया पार किया। राजा पोर एक जबरदस्त लड़ाई के बाद सिकन्दर के हाथ क़ैदी हुआ। लेकिन सिकन्दर ने इन्तहाई रहम से काम लेकर राजा पोर को उसका मुल्क मौरूसी वापस कर दिया। बाद अजोई वकील मुसन्निफ वकाअ कश्मीर को शैर को रवाना हुआ। लेकिन हिन्दुस्तानी वकाय निगार सिकन्दर के कश्मीर जाने के मुतल्लिक बिलकुल खामोश हैं। लेकिन वकाअ काश्मीर के मुसन्निफ का बयान हक़ीक़त से खाली नही हैं।

मुख्तसर यह कि सिक़न्दर दोआब व चज का मुल्क राजा पोर को सौंप दिया और खुद रावी और चिनाव को पार करके मुकाम सागला में कौम तातार के १९ हजार आदमी मौत के घाट उतार दिये। यहां से मुल्क विहार के फ़तह करने का इरादह उसके दिल में था लेकिन उसके सिपाही हिन्दुस्थान में मजीद आगे बढने से मुनकर हो गये। इसलिए लाचार सिकन्दर को हिन्दुस्तान के मुकम्मल तसखीर दूसरे मौका पर छोडनी पड़ी। और अपने मुल्क के वापस का इरादह कर लिया। दो हजार किश्तियाँ फिल अल फौरन बनवाई गई। एक लाख बीस हाजर पैदल सिपाही। दो सौ हाथी किश्तयों में बैठाकर दरियाए सिन्धके जरिये रवाना कर दिये। बाक़ी फौज दरया के दोनों किनारे सूरकी से चलती रही। पांच सौ कोस तै करने के बाद यह तमाम किश्तियां समुन्दर के दहाना पर पहुँच गयीं। वहां से सिकन्दर जो सुक्की के रास्ते रवाना हुआ था और नयारकस ने जो उसके बाहरी बेड़े का अफ़सर था दरया का सफ़र कुल सात महीने में तै किया। सिकन्दर ने ३२३ बरस कबल मसीह के वफ़ात पायी। (पृष्ठ ४१-४२।)

हसन तथा वकाअ कश्मीर के लिखने का कुल तात्पर्य यह है कि कश्मीर के इतिहास पर एक खास रंग चढ़ाने के लिए सिकन्दर को 'कश्मीर के अन्दर दाखिल' करते हैं। हजरत नूह, हजरत सुलेमान तथा हजरत ईसा का नाम कश्मीर के इतिहास से जोड़कर उस पर विदेशी रंग चढ़ाने की कोशिश की गयी है। सिकन्दर को काश्मीर जैसे दुर्गम स्थान में आना, उसकी यात्रा तथा कश्मीर का वर्णन यूनानी इतिहासकारों का नहीं करना, जब कि उन्होंने छोटी-से-छोटी बातें लिखी हैं, आश्चर्यजनक तथा असम्भव कही जायेगी। हसन तथा वाकए कश्मीर के लेखकने कुछ नही बताया है कि उन्होंने सिकन्दर के कश्मीर में दाखिल करने की बात कहां से पाई है। यदि सिकन्दर कश्मीर में प्रवेश किया होता तो उसका समय अशोक के काल के पूर्व हसन की गणना तथा राजाओं की तालिका के अनुसार होना चाहिए।

राजा शचीनर का काल हसन के अनुसार क० संवत् १२३३ बैठता है। राजा स्वर्ण का समय क० संवत् ११६६ होता है। हसन राजा शचीनर का राज्यकाल नही देता। परन्तु तीनों का समय मिलाकर १०४ वर्ष अर्थात् कलयुग १२७३ होता है। हसन राजा शचीनर के पश्चात् राजा गलन्दर जिसे शचीनर का भतीजा कहता है कलि संवत् १३४३ में राज्य करना बताता है। राजा अशोक का राज्यकाल क० संवत् १६५५ लिखता है यह भी लिखता है कि अशोक राजा शचीनर वल्द

इति श्रीकाश्मीरकमहामात्यचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां प्रथमस्तरङ्गः ॥

इस प्रकार श्री कश्मीर के महामात्य चम्पक प्रभु के पुत्र कल्हण कृत राजतरंगिणी में प्रथम तरंग समाप्त हुआ।

शकुनी के पोतों में से था। हुसन ने इसी प्रकार अशोक के पूर्व राजा भगवन्त का कलि संवत् १६४१ में होना बताया है।

इतिहास सिकन्दर का आक्रमण काल ३२७ वर्ष पूर्व ईसा देता है। यह समय अनेक साक्षियों से प्रमाणित हो चुका है। ईरान का काल उक्त संवतों के कारण उलझन में पड़ जाता है। सिकन्दर का आना अशोक के पूर्व होता है।

हुसन रत्नाकर पुराण के आधार पर उसका उल्लेख कर अशोक के पश्चात् ३५ राजाओं के वर्णन के पश्चात् सिकन्दर का कश्मीर में आना लिखता है। अशोक का काल हुसन ने १२५५ क० संवत् तथा राजा अन्ध युधिष्ठिर का समय कलि संवत् २८२८ देता है। बात यहीं नहीं समाप्त होती। उसने मिहिरकुल तथा सम्राट् कनिष्क के पश्चात् अन्ध युधिष्ठिर का समय रखता है। तथा उसी के समय सिकन्दर का आना लिखता है। कनिष्क के पूर्व वर्ष, मिहिरकुल के पूर्व वर्ष सिकन्दर का आना प्रमाणित हो चुका है। अतएव हुसन का संवत्, उनका दिया काल, राजाओं की तालिका आदि भ्रामक अनुमान पर आधारित, इतिहास को एक विशेष जमाना देने की गरज से लिखा गया है।

हुसन ने पुनः अपने पुराने सिद्धान्त की पुनरावृत्ति की है कि उसका आधार रत्नाकर पुराण का अनुवाद है। वह अनुवाद जैनुल आबदीन के समय में किया गया था। उसे अनुवाद मिला। वितस्ता में वह यात्रा कर रहा था। नाव डूब गयी। रत्नाकर पुराण भी डूब गया। मैं कह सकता हूँ कि या तो रत्नाकर पुराण मिथ्या है अथवा इतिहास को अपने रंग में रंगने के लिए रत्नाकर पुराण का सहारा लिया गया है। यदि कभी कोई रत्नाकर पुराण था भी तो वह तर्क के आधार पर मिथ्या प्रतीत होता है। प्रमाणों की कसौटी पर हुसन तथा मतरजम रत्नाकर पुराण तथा पुराण तीनो ही सत्य नहीं उतरते। पुराणों का मैंने अध्ययन किया है। पुराण गणना में भूल नहीं करते। असंगत बात नहीं लिखते। प्रमाण के लिए किसी ऋषि आदि के वाक्यों का आश्रय लेते हैं। उनकी वर्णन शैली मौलिक और निराली होती है। रत्नाकर पुराण का वर्णन केवल कपोलकल्पना मात्र है।

पाठभेद :

इति पाठ में 'काश्मीरक' का 'काश्मीरिक' 'चम्पक' का 'श्री चापाकं' पाठभेद मिलता है।

इतिपाठ : पादटिप्पणी :

'इति' पाठ के पश्चात् पाण्डुलिपियों में निम्नलिखित श्लोक लिखा मिलता है :

'चतुर्दशाधिकं वर्षं सहस्रं नव वासराः।
मासाश्च विगता अस्मिन्नेकविंशतिराजसु ॥

पाठभेद :

उक्त श्लोक में 'चतुर्दशाधिकं' का 'चतुर्विंशाधिकं' तथा 'एकविंशति' का 'अष्टात्रिंशति' पाठभेद मिलता है।

इससे कल्हण के यह लिखने का समय स्थिर हो जाता है।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

द्वितीयस्तरङ्गः

द्वितीय तरंग के राजा

नाम राजा	राज्य काल वर्ष	लौकिक संवत् राज्याभिषेक	फलि संवत
(१) प्रतापादित्य (प्रथम)	३२	२८९६	२६२१
(२) जलौकस	३२	२९२८	२९५३
(३) तुंजीन (प्रथम)	३६	२९६०	२९८५
(४) विजय	८	२९९६	३०२१
(५) जयेन्द्र	३७	३००४	३०२९
(६) सन्धिमति (आर्य राज)	४७	३०४१	३०६६
	१९२ वर्ष		

द्वितीय तरंग

विहितमजगोशृङ्गाग्राभ्यां धनुर्घटितं
नरकरटिनोर्देहार्धाभ्यां गणं प्रतिगृह्णतः।
द्विविधघटनावाल्लभ्यानां निधेरुचिता विभो-
र्जयति ललनापुंभागाभ्यां शरीरविनिर्मितिः ॥१॥

अज एवं गो के शृङ्गाग्र द्वारा विनिर्मित धनुष[1] तथा मानव एवं मातंग के देहार्ध द्वारा निर्मित गणेश[2] को साथ में रखने वाले, द्विविध घटना प्रियता-निधि, भगवान् के नर एवं नारी[3] अंश से शरीर का निर्माण सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो रहा है।

पाठभेद:

'ओं' तथा 'ओं श्रीगणेशायनमः' का भी पाठ प्रारम्भ में मिलता है।

श्लोक संख्या १ में 'गोश्रृङ्गा' का 'अजश्रृङ्गा' 'गौः श्रृङ्गा'; 'गण' का 'गणे', 'गणैः'; 'प्रति-गृह्णतः' का 'प्रतिगृह्यतः', 'प्रतिगृह्यतः'; 'द्विविध' का 'विविध'; 'उचिता' का 'अभ्यरस्ता' और 'ललना', का पाठभेद 'ललना' मिलता है।

शैली : कल्हण ने द्वितीय तरंग में नूतन उपमा, नवीन शब्दावली तथा सुगठित पदों की रचना की है। प्रथम तरंग में कल्हण ने प्रचलित शब्दों, प्रचलित उपमाओं एवं सरल भाषा का आश्रय लिया है। प्रथम तरंग के ३७३ श्लोकों की रचना के पश्चात् अभिव्यक्ति एवं भाव व्यंजना अधिक परिष्कृत तथा प्रौढ़ हो गयी है। उसके विचारों में कल्पना के स्थान पर गम्भीरता एवं प्रौढ़ता के मुकुलित स्वरूप का दर्शन होता है।

प्रथम तरंग में घटनावली, काल गणना, तथा राजाओं के वर्णन के समय उसमें एक प्रकार की झिझक मालूम होती है। वह इतिहास लिख रहा था। परन्तु सामग्री पर्याप्त न होने पर वह विश्रृंखलित और टूटी कड़ियों को इधर उधर से लाकर जोड़ रहा था। किसी प्रकार ग्रन्थ को इतिहास का रूप दे रहा था। इस तरंग में वह झिझक कम हो गयी है। उसकी भाषा संयत हो गयी है। वह किंचित् आत्मविश्वास के साथ वर्णन करता है जिसका अभाव प्रथम तरंग में स्पष्ट मिलता है।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित के अनुवाद में पृष्ठ ९८१ पर इस तरंग में वर्णित ६ राजाओं का वर्गीकरण विक्रमादित्य वंश दिया गया है। श्री स्तीन इस वर्ग का कोई नामकरण नहीं करते। इस वर्ग के राजा एक ही वंश के नहीं थे। अतएव उनका वर्गीकरण किसी नाम से करना उचित नहीं होगा।

कल्हण प्रशंसा द्वारा ही द्वितीय तरंग का आरम्भ करता है। अर्ध नारीश्वर भगवान् शिव की वन्दना करता है।

वह श्लोक द्विविध घटनापूर्ण है। अर्ध नारीश्वर का शरीर पुरुष एवं स्त्री से बना है, और धनुष भी अज एवं गो श्रृंग से बना है। इस प्रकार कल्हण ने तीन द्विविध घटनाओं का वर्णन कर भगवान् का जय किया है।

१ (१) धनुष : श्रृंगधनुष का कल्हण ने उल्लेख किया है। चाणक्य चार प्रकार के धनुषों का वर्णन करता है। चौथे प्रकार का धनुषदण्ड हड्डी, सींग किंवा श्रृंग का बनता था।

श्रीकृष्ण का धनुष सींग अर्थात् श्रृंग का था। बाँस, सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, इस्पात तथा

अन्य धातुओ से भी धनुष बनाये जाते थे।

धनुष का दण्ड बनाने मे भैंस, गंडा, शरभ की सीग तथा चन्दन, शाल, बेंत, ककुभ अथवा धवल की लकड़ी का भी प्रयोग होता था। अग्निपुराण में धनुष का विशद वर्णन किया गया है।

धनुष की डोरी को प्रत्यंचा कहते हैं। प्रत्यंचा तांत, बांस या अन्य रेशेदार पदार्थों से बनायी जाती थी। चाणक्य ने मुर्वा, मुंज, घास, अर्क, सन, गवेधु तथा स्नायु तन्तुओ से प्रत्यंचा बनाने का वर्णन किया है।

धनुष का दण्ड ६ फुट का उत्तम माना जाता है। उससे कम का निम्न श्रेणी का होता है। आर्य काव्य कालीन धनुष का दण्ड ५॥ फुट तथा बाण ३ फिट का होता था। धनुष का दण्ड दो प्रकार का होता था। साधारण धनुष में दण्ड के दोनों छोरों को प्रत्यचा से सम्बन्धित कर दिया जाता है। यह सुगमता से बन जाता है। दूसरा प्रकार दण्ड में दोनों छोर अर्ध वृत्ताकार धनुष के दोनों ओर दण्ड

वैदिक आर्यों का मुख्य आयुध धनुष था। उसका इतना महत्त्व था कि मृतक के दाहिने हाथ में धनुष रख दिया जाता था। दाह क्रिया के पूर्व, उसके हाथ से धनुष ले लिया जाता था ताकि वह भस्म न हो जाय। उसे मृतक द्वारा प्रदत्त मानते समझते थे।

धनुर्ज्या को कस देने पर धनुष के दोनों अग्र भागों को आर्त्नी कहते थे। अप्रयोगावस्था में प्रत्यंचा उतार देते थे। चलाने के समय कस दिया जाता था। (ऋ० १० : १६६ : ३) कान के समीप तक धनुर्ज्या को खीचकर छोड़ते थे। अतएव उसे कर्णयोनि कहा जाता था। ऋ० ६:७५ : २ तथा ऋ० : २ :२४ :८

ग्रीक अर्थात् यूनानी कवि होमर के वर्णन के अनुसार धनुष को वक्षस्थल तक खीचकर छोड़ते थे। अर्थात् भारतीय तथा पाश्चात्य धनुष चलाने में यह भेद था। (इलियड :४:१२५)

धनुष भारत से विश्व में चारों ओर फैला था। भारत से ईरान होता पश्चिमी एशिया तथा वहाँ से यूनान, रोम, मिश्र तथा यूरोप में पहुँचा था।

एक अनुवादकर्ता ने शिव के धनुप का नाम 'अजगव' दे दिया है। किन्तु शिव के धनुष अर्थ में यहाँ यह शब्द बैठता नहीं। गणेश तथा धनुप दोनों शिव के पास थे। इसे हम एक रूपक भी इस प्रकार मान सकते हैं कि भगवान् शिव के पार्श्व मे बुद्धि के प्रतीक गणेश तथा शक्ति का प्रतीक धनुप दोनो उपस्थित हैं। वह शास्त्र एवं शस्त्र दोनो से समन्वित हैं। शिव ने किरात रूप में अर्जुन से युद्ध कर अपनी अपार शक्ति का परिचय दिया था। बुद्धि अर्थात् गणेश तो उनके पुत्र ही हैं।

गणेश : गणेश वैदिक शब्दों में ब्रह्मणस्पति भी है। वह शंकर तथा पार्वती की सन्तान होने पर भी अयोनिज है। (ब्रह्म वै० पु० ८ तथा लिंग० १०२; पार्वती ने अपने शरीर के उबटन की मूर्ति बनाकर उसे सजीव किया था। (पद्म० सृ: ४३ ; स्कन्द० ७:१:३८ ; मत्स्य० १५३)।

प्रत्येक युगो मे गणेश के अवतार, उनका नामादि भिन्न माना गया है। कृत अर्थात् सतयुग में गणेश कश्यप पुत्र विनायक थे। उनका वाहन सिंह था। इस अवतार काल मे देवातक नरांतक का दलन किया था। त्रेतायुग में शिवपुत्र मयूरेश्वर तथा वाहन मयूर था। सिन्धू का संहार किया था। द्वापर युग में शिवपुत्र गजानन हुए थे। सिंदूर का विनाश किया था। वरेण्य राजा को गणेश गीता सुनाया था। कलियुग में अश्वारूढ धूमकेतु नाम नाग में अदिति के गर्भ से जन्म लेंगे। महोत्कट रूप में म्लेच्छों का संहार करेंगे। (गणेश: २:१-६)।

गणेश के एकदंत होने का कारण दिया गया है। भगवान् परशुराम ने शंकर-द्वारा प्रदत्त परशु गणेश पर फेंका। परशु शंकर का था। पिता का था अतएव उसका प्रतिकार नही किया जा सकता था। दाँत पर आक्रमण सह लिया। एक दाँत टूट गया। परशु हाथ में ले लिया। उस समय से उनका एक आयुध हो गया। यही कारण है। गणेश के हाथों में परशु आयुध बना मिलता है। कश्मीर में प्राप्त मूर्तियों में परशु आयुध दिखाया गया है।

हाथी का मस्तक लगने की भी एक कथा है। भगवती पार्वती स्नान कर रही थी। गणेश द्वार पर बैठे थे। गणेश द्वारपाल किंवा रक्षक का कार्य कर रहे थे। शंकर का प्रवेश रोक दिया। शंकर क्रुद्ध हो गये। पिता-पुत्र का संघर्ष होने लगा। शंकर ने गणेश का मस्तक तोड दिया। पार्वती के आग्रह पर, शंकर ने मानव मस्तक के स्थान पर इन्द्र के गज का मस्तक लाकर, लगा दिया। उस समय से उनका नाम गजानन हो गया। (शिव० कु० १६) एक कथा और है। शनि के दृष्टिपात से गणपति का मस्तक भस्म हो गया। देवताओं ने उसके स्थान पर हाथी का मस्तक लगा दिया। (ब्रह्मवै० ३ : १८ भवि०, प्रति० ४ : १२)

गणपति को सिंदूर प्रिय है। हनुमान की मूर्ति के समान उनकी मूर्ति पर सिंदूर का लेपन किया जाता है। गणपति वध करेंगे, यह कल्पना उठते ही, सिन्दूरासुर ने गणपति को उठाकर नर्मदा में डाल दिया। गणपति के रक्त से नर्मदा का जल रक्तिम हो गया। कालान्तर मे गणपति ने सिन्दूरासुर का वध किया। उसका लाल रक्त शरीर में लेप किया। उनका समस्त शरीर सिन्दूर के रक्त से रक्त वर्ण हो गया। (गणेश० २ : १३७)

गणेश की सिद्धि तथा विद्धि दो पत्नियाँ हैं। (गणेश० : १ : १५) इसकी उपासना से कार्तवीर्य अभ्यंग हुआ था। (गणेश० : २ : ७३-८३) गणेश चतुर्भुज हैं। उनका वाहन मूषक है।

गणपति का एक रूप निकुंभ है। वाराणसी स्थित निकुंभ की उपासना करने पर भी दिवोदास की पत्नी सुयशा को पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। दिवोदास क्रोधित हो गया। निकुंभ मन्दिर ध्वस्त करा दिया।

अन्य धातुओं से भी धनुष बनाये जाते थे।

धनुष का दण्ड बनाने में भैंस, गेंडा, शरभ की सींग तथा चन्दन, शाल, बेंत, ककुभ अथवा धवल की लकड़ी का भी प्रयोग होता था। अग्निपुराण में धनुष का विशद वर्णन किया गया है।

धनुष की डोरी को प्रत्यंचा कहते हैं। प्रत्यंचा तांत, बाँस या अन्य रेशेदार पदार्थों से बनायी जाती थी। चाणक्य ने मुर्वी, मुंज, घास, अर्क, सन, गवेधु तथा स्नायु तन्तुओं से प्रत्यंचा बनाने का वर्णन किया है।

धनुष का दण्ड ६ फुट का उत्तम माना जाता है। उससे कम का निम्न श्रेणी का होता है। आर्ष काव्य कालीन धनुष का दण्ड ५॥ फुट तथा बाण ३ फिट का होता था। धनुष का दण्ड दो प्रकार का होता था। साधारण धनुष में दण्ड के दोनों छोरों को प्रत्यंचा से सम्बन्धित कर दिया जाता है। यह सुगमता से बन जाता है। दूसरा प्रकार दण्ड में दोनों छोर अर्ध वृत्ताकार धनुष के दोनों ओर दण्ड अर्धचन्द्राकार से उठे रहते थे। उनके छोर पर प्रत्यंचा लगा दी जाती थी। धनुष छोड़ते समय प्रत्यंचा दोनों छोरों पर घूमे अर्धचन्द्राकार दण्ड पर शक्ति से चढ़ायी जाती थी। इसे प्रत्यंचा का चढ़ाना कहते हैं। यह धनुष दण्ड बाँस का भी बनता था। उसे अग्नि से सिकाकर अर्धवृत्ताकार दोनों छोरों पर बना देते थे। किन्तु इस प्रकार का धनुष धातु का अधिक होता था। मध्ययुग में इस प्रकार धातु निर्मित धनुष बहुत प्रचलित थे।

धनुष के झुकाव अर्थात् चाप का भी वर्णन मिलता है। चाप के अनुसार प्रत्यंचा भारी या हलकी होती थी। 'कोदण्ड मण्डन' में १८ प्रकार के धनुषों का उल्लेख मिलता है। चाप का विभिन्न भार भी दिया गया है। योगिन् के धनुष का भार २०० पल तथा दूर प्रहार वाले धनुष का भार ९५० या १००० पल दिया गया है। नीति प्रकाशिका में १४ प्रकार के बाणों का वर्णन मिलता है।

वैदिक आर्यों का मुख्य आयुध धनुष था। उसका इतना महत्त्व था कि मृतक के दाहिने हाथ में धनुष रख दिया जाता था। दाह क्रिया के पूर्व, उसके हाथ से धनुष ले लिया जाता था ताकि वह भस्म न हो जाय। उसे मृतक द्वारा प्रदत्त मानते समझते थे।

धनुर्ज्या को कस देने पर धनुष के दोनों अग्र भागों को अर्त्नी कहते थे। अप्रयोगावस्था में प्रत्यंचा उतार देते थे। चलाने के समय कस दिया जाता था। (ऋ० १० : १६६ : ३) कान के समीप तक धनुर्ज्या को खींचकर छोड़ते थे। अतएव उसे कर्णयोनि कहा जाता था। ऋ० ६:७५ : २ तथा ऋ० : २ :२४ :८

ग्रीक अर्थात् यूनानी कवि होमर के वर्णन के अनुसार धनुष को वक्षस्थल तक खींचकर छोड़ते थे। अर्थात् भारतीय तथा पाश्चात्य धनुष चलाने में यह भेद था। (इलियड '४:१२५)

धनुष भारत से विश्व में चारों ओर फैला था। भारत से ईरान होता पश्चिमी एशिया तथा वहाँ से यूनान, रोम, मिश्र तथा यूरोप में पहुँचा था। भारतीय सैन्य विज्ञान का नाम ही धनुर्वेद दे दिया था। यूनानियों के साथ पर्सिया का युद्ध प्राचीन काल में कई बार हुआ था। उसमें भारतीय धनुष विद्या विशारदों ने भाग लिया था। उन्हें सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर माना गया था। धनुष विद्या भारत में अत्यन्त विकसित थी।

कल्हण यहाँ पर धनुष के अग्र भाग में अज तथा गाय के सींग अर्थात् शृंग लगने का उल्लेख करता है। प्राचीन काल में धनुष के दोनों सिरों को दृढ़ और मजबूत बनाने के लिए, सींग तथा किसी धातु को जड़ कर, उसे अधिक टिकाऊ बना देते थे। डोरी अथवा प्रत्यंचा को चढ़ाने के लिये उसमें खाँचा बना रहता था। उसमें प्रत्यंचा लगा दी जाती थी। कश्मीर में गाय तथा अज का सींग, भैंस, भैंसा, गेंडा तथा शरभ की अपेक्षा छोटा होता था। वह धनुष दण्ड बनाने के अयोग्य था। अतएव उसे दोनों छोरों पर लगाया जाता था।

एक अनुवादकर्ता ने शिव के धनुष का नाम 'अजगव' दे दिया है। किन्तु शिव के धनुष अर्थ में यहाँ यह शब्द बैठता नही। गणेश तथा धनुष दोनो शिव के पास थे। इसे हम एक रूपक भी इस प्रकार मान सकते है कि भगवान् शिव के पार्श्व में बुद्धि के प्रतीक गणेश तथा शक्ति का प्रतीक धनुष दोनो उपस्थित है। वह शास्त्र एवं शस्त्र दोनो से समन्वित है। शिव ने किरात रूप में अर्जुन से युद्ध कर अपनी अपार शक्ति का परिचय दिया था। बुद्धि अर्थात् गणेश तो उनके पुत्र ही हैं।

गणेश : गणेश वैदिक शब्दो में ब्रह्मणस्पति भी है। वह शंकर तथा पार्वती की सन्तान होने पर भी अयोनिज है। (ब्रह्म वै० पु० ८ तथा लिंग० १०२) पार्वती ने अपने शरीर के उबटन की मूर्ति बनाकर उसे सजीव किया था। (पद्म० सृः ४३ ; स्कन्द० ७:१:३८ ; मत्स्य० १५३)।

'प्रत्येक युगों में गणेश के अवतार, उनका नामादि भिन्न माना गया है। कृत अर्थात् सतयुग में गणेश कश्यप पुत्र विनायक थे। उनका वाहन सिंह था। इस अवतार काल में देवांतक नरातक का दलन किया था। त्रेतायुग मे शिवपुत्र मयूरेश्वर तथा वाहन मयूर था। सिन्धु का संहार किया था। द्वापर युग मे शिवपुत्र गजानन हुए थे। सिंदूर का विनाश किया था। वरेण्य राजा को गणेश गीता सुनाया था। कलियुग मे अश्वारूढ धूमकेतु नाम नाग मे अदिति के गर्भ से जन्म लेंगे। महोत्कट रूप में म्लेच्छों का संहार करेंगे। (गणेश: २:५-६)।

गणेश के एकदंत होने का कारण दिया गया है। भगवान् परशुराम ने शंकर-द्वारा प्रदत्त परशु गणेश पर फेंका। परशु शंकर का था। पिता का था अतएव उसका प्रतिकार नही किया जा सकता था। दाँत पर आक्रमण सह लिया। एक दाँत टूट गया। परशु हाथ मे ले लिया। उस समय से उनका एक आयुध हो गया। यही कारण है। गणेश के हाथों मे परशु आयुध बना मिलता है। कश्मीर मे प्राप्त मूर्तियों में परशु आयुध दिखाया गया है।

हाथी का मस्तक लगने की भी एक कथा है। भगवती पार्वती स्नान कर रही थी। गणेश द्वार पर बैठे थे। गणेश द्वारपाल किंवा रक्षक का कार्य कर रहे थे। शंकर का प्रवेश रोक दिया। शंकर क्रुद्ध हो गये। पिता-पुत्र का संघर्ष होने लगा। शंकर ने गणेश का मस्तक तोड दिया। पार्वती के आग्रह पर, शंकर ने मानव मस्तक के स्थान पर इन्द्र के गज का मस्तक लाकर, लगा दिया। उस समय से उनका नाम गजानन हो गया। (शिव० कु० १६) एक कथा और है। शनि के दृष्टिपात से गणपति का मस्तक भस्म हो गया। देवताओं ने उसके स्थान पर हाथी का मस्तक लगा दिया। (ब्रह्मवै० ३ : १८ भवि०, प्रति० ४ : १२)

गणपति को सिंदूर प्रिय है। हनुमान की मूर्ति के समान उनकी मूर्ति पर सिंदूर का लेपन किया जाता है। गणपति वध करेंगे, यह कल्पना उठते ही, सिन्दूरासुर ने गणपति को उठाकर नर्मदा में डाल दिया। गणपति के रक्त से नर्मदा का जल रक्तिम हो गया। कालान्तर में गणपति ने सिन्दूरासुर का वध किया। उसका लाल रक्त शरीर में लेप किया। उनका समस्त शरीर सिन्दूर के रक्त से रक्त वर्ण हो गया। (गणेश० २ : १३७)

गणेश की सिद्धि तथा विद्धि दो पत्नियाँ हैं। (गणेश० : १ : १५) इनकी उपासना से कार्तवीर्य अभ्यंग हुआ था। (गणेश० : २ : ७३-८३) गणेश चतुर्भुज हैं। उनका वाहन मूषक है।

गणपति का एक रूप निकुंभ है। वाराणसी स्थित निकुंभ की उपासना करने पर भी दिवोदास की पत्नी सुयशा को पुत्र प्राप्ति नही हुई। दिवोदास क्रोधित हो गया। निकुंभ मन्दिर ध्वस्त करा दिया।

निकुंभ ने वाराणसी नष्ट होने का शाप दिया। तालजंघादि हैहयों ने वाराणसी नगर ध्वस्त किया। दिवोदास पलायन कर गया। अन्त में निकुंभ की पुनः स्थापना की गयी। वाराणसी समृद्धिशाली हो गयी। इस कथा में वर्णित निकुंभ ही गणपति नाम से प्रख्यात हुए। (वायु० : ९२ : ३६-६१)

गणेश ओंकार स्वरूप हैं। उनकी उपासना का अर्थ ब्रह्म की उपासना मानी गयी है। (गणेश० : १ : १३-१४) एतदर्थ सर्व विद्या एवं कलाओं का उन्हें अधिपति माना जाता है। किसी भी देवता की उपासना के पूर्व सर्वप्रथम गणेश की पूजा की जाती है। (पद्म० : सृ० : ६३)

अ-उ-म् से ओंकार बनता है। यह प्रणव है। तुरीय नाम चतुर्थ भाग भी ॐ कार में समाविष्ट है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय चारों अवस्थाओं का ॐ कार द्योतक है। साम्य तथा साधन दोनों रूपों से ॐ कार वर्णित है। अतएव वेदों का ॐ कार से प्रारम्भ करने की प्रथा प्रचलित हुई थी।

कालान्तर में गजमुख गणेश का स्वरूप ॐ कार से ही विकसित हुआ। ॐ कार तथा गणेश की प्रचलित एवं प्राचीन मूर्तियों के रूपों में साम्य मिलता है। गणेश की गजमुख मूर्ति अबतक पाँचवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं प्राप्त हो सकी है।

सन्त ज्ञानेश्वर ने गीता की ज्ञानेश्वरी टीका में गजमुख तथा ॐ कार की एकता स्पष्ट की है। इस एकता के कारण उपनिषद् प्रतिपादित ॐ कार वेद एवं सार्वत्रिक, सर्व कार्यारम्भ में आद्य स्थान प्राप्त कर लिया।

बाल गणपति, तरुण गणपति, भक्ति विघ्नेश्वर, शक्ति गणेश, उच्छिष्ट गणपति, नृत्त गणपति, हेरंब गणपति, प्रसन्न गणपति आदि रूपों में गणपति की मूर्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार विनायक के आठ रूपों की कल्पना की गयी है।

(२) अर्धनारीश्वर : एक कथा है। बाइबिल के आदम तथा हौवा की कथा से मिलती है। बाइबिल के अनुसार सर्व प्रथम आदम को भगवान् ने बनाया। तत्पश्चात् उसकी एक पसली से होवा को बनाया। इस प्रकार नारी एक ही मनुष्य का अंग है।

शिव पुराण में कथा मिलती है। ब्रह्मा ने प्रजा उत्पत्ति निमित्त तपस्या की। शिव उनकी तपस्या से प्रसन्न हो गये। उनके शरीर से अर्धनारी-नरेश्वर उत्पन्न हुए। (शिव० शत० ३)

स्कन्द पुराण में एक और कथा का वर्णन है। महिषासुरमर्दिनी ने महिषासुर का वध किया। शिव सन्तुष्ट हुए। प्रसन्न हुए। अकस्मात् वह पार्वती तपस्या कर रही थीं। पार्वती को वामांग पर शिव ने ले लिया। शंकर के इस प्रेम प्रदर्शन से प्रफुल्लित होकर, पार्वती भगवान् शंकर के वामांग में लीन हो गयीं। शंकर एवं पार्वती एक ही शरीर के दक्षिण तथा वामांग हो गये। शिव का पुरुष दक्षिणांग सुवर्ण रह गया। पार्वती का शरीर वामांग ताम्रवर्ण युक्त हो गया। अर्धभाग में कंचुकी तथा हार आदि आभूषण रह गये और यथावत् पुरुष स्वरूप रह गया। यह शिव पार्वती का अर्ध नारीश्वर किंवा अर्धनारी-नरेश्वर रूप हो गया। (स्कन्द० १ : २ : ३-२१; मत्स्य० २६०) मनुस्मृति में भी इसी प्रकार की एक कथा दी गयी है। हिरण्यगर्भ की सृष्टि रचना की इच्छा हुई। उसने अपने शरीर को दो भाग किये। अर्ध भाग से स्त्री तथा दूसरे अर्ध भाग से पुरुष शरीर की रचना हुई। एक ही शरीर के दो अंश थे। मिलने पर, अर्ध नारीश्वर रूप अर्थात् पुरुष तथा स्त्री एक में हो गये। (मनु० : १ : ३२)

देवी भागवत में और एक कथा इसी से मिलती-जुलती दी गयी है। ईश्वर अपनी स्वेच्छा से द्विविध रूप हो गये। दायाँ भाग पुरुष तथा वाम भाग स्त्री का हो गया। उसने यह कार्य सृष्टि रचना की दृष्टि एवं इच्छा से किया। (दे० भा० २ : २७)

किष्किन्धा काण्ड वाल्मीकीय रामायण में इस

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि स्त्री का मूल पुरुष से भिन्न नहीं है। (कि० : ३४ : ३८)

ऋग्वेद में यद्यपि अर्धनारीश्वर शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, तथापि उसकी कल्पना मिलती है। पुरुष एवं प्रकृति इस सृष्टि प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु हैं। प्रतीकात्मक स्वरूप है। इसकी व्यंजना स्पष्ट प्रतीत होती है। द्यावा-पृथ्वी लोक की मध्यवर्ती सृष्टि है। माता-पिता, योषा-वृषा प्राण हैं। अग्नि-सोम, पुरुष-स्त्री हैं। पति-पत्नी के द्वन्द्व द्वारा प्राणी जगत् का सृजन होता है।

पुरुष में अग्नि तत्व तथा स्त्री में सोम तत्व प्रधान है। स्त्री के आभ्यंतर में अर्धभाग पुरुष का विद्यमान रहता है। जहाँ अग्नि है। वहीं अर्धभाग सोम है। अतएव ऋग्वेद (१ : १६४ : १६) कहता है—'स्त्रियः सतीस्ता उ मे पुंस आहुः।' स्त्री का शोणित आग्नेय एवं पुरुष का शुक्र सौम्य भाव से युक्त रहता है। शुक्र एवं शोणित ही वैज्ञानिक भाषा में वृषा एवं योषा अर्थात् नर-नारी है। स्त्री तथा पुलिंग है।

सृष्टि के इस आदि मूल मातृत्व एवं पितृत्व को प्रतीक रूप में पुराणों में पार्वती एवं परमेश्वर कहा गया है। शिव पार्वती ही रुद्र एवं अम्बिका है। शतपथ ब्राह्मण (५ : ३ : १ : १०) में उल्लेख है—'अग्निर्वै अग्निः।' इसी को तैत्तिरीय ब्राह्मण दुहराता है—'एवं रुद्र. यदग्निः।' (१:१:५:८-६) ऋग्वेद कितनी वैज्ञानिक भाषा में कहता है - 'अग्निर्जागतितमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।' (५ : ४४ : १५) अग्नि एवं सोम जगत् के माता पिता हैं। अग्नि अन्नाद है। सोम उसका अन्नरूप द्वारा संभरण करता है।

सृष्टि रचना के लिये पुरुष एवं स्त्री दोनो तत्त्व अनिवार्य हैं। वनस्पति से लेकर समस्त प्राणधारियों की उत्पत्ति इन दोनो तत्वों के मिलन का परिणाम है। पुरुष नारी में बीज वपन करता है। नारी गर्भ में पुरुष के अग्निकण को लेकर सम्वर्धन करती है। वह बीज विराट रूप धारण करता है। बीज की शक्ति के अनुसार, जो मात्रा का आधान करती है, वही माता है। वही पिता एवं माता शिव एवं शक्ति के प्रतीक हैं।

शक्ति विहीन शिव रुद्र हैं। उनका स्वरूप घोर हो जाता है। शक्ति के साथ मिलने पर उनका स्वरूप शिव होता है। इसे दूसरी तरह से समझे तो अर्थ होगा। यदि अग्नि को सोम स्वरूप अन्न प्राप्त नहीं होता, तो वह जिसमें रहती है, उसी को भस्म करती है। यह रुद्र रूप है। यह संहार का स्वरूप है। किन्तु अग्नि में सोम की आहुति याग है। इस यज्ञ का स्वस्ति भाव होता है। वह स्वस्ति भाव शिव-शक्ति किंवा अग्नि-सोम का समन्वित रूप है। यही अर्धनारीश्वर है।

वैदिक साहित्य में नैसर्गिक एवं व्याधि-जनित उत्पात-संहारक देवता को रुद्र कहा गया है। किन्तु उन्हीं उत्पातों का शमनकारी देवता शिव बन गया है। अतएव रुद्र एवं शिव एक ही देव के रौद्र एवं शान्त स्वरूप हैं।

कालान्तर में रुद्र के नाम, रुद्र, भव, शर्व (शिव) पशुपति, भीम, ईशान, उग्र एवं महादेव पड गये। रुद्र की पत्नी सुवर्चला किंवा सती, पुत्र शनिश्चर तथा निवास स्थान सूर्य, भव की पत्नी उमा (उषा) पुत्र शुक्र निवास स्थान जल; शर्व (शिव) की पत्नी विकेशी, पुत्र मंगल, निवास स्थान मही, पशुपति की पत्नी शिवा, पुत्र मनोजव, निवास स्थान वायु, भीम की पत्नी स्वाहा (स्वधा) पुत्र स्कन्द निवास स्थान अग्नि; ईशान की पत्नी दिशा, पुत्र स्वर्ग, निवास स्थान आकाश; उग्र की पत्नी दीक्षा, पुत्र संतान, निवास स्थान यज्ञीय ब्राह्मण तथा महादेव की पत्नी रोहिणी, पुत्र बुध और निवास स्थान चन्द्र कहा गया है। यही अष्ट रुद्र है। (विष्णु० १ : ८; मत्स्य० ४९; पद्म०, सृ० ३; वायु, २७; स्कन्द ७ : १ : ८७)

इस रूप में प्रत्येक के साथ शक्ति स्वरूप पत्नी है। सभी पार्वती किंवा आदि शक्ति की प्रतीक है।

भूयो राज्यार्जनोद्योगस्तेनात्यज्यत भूभुजा ।
जरसा शमिवाण्या च कर्णमूलमनाप्तया ॥२॥

२. अपनी जरावस्था तथा शमियों[1] की श्रुत वाणी के कारण उस राजा ने पुनः राज्य प्राप्ति का उद्योग त्याग दिया।

अनयद्विनयोदात्तः समं स्वविषयेण तान् ।
विषयान्वशिनामग्र्यः स तान्पश्चाऽपि विस्मृतिम् ॥३॥

३. जितेन्द्रियों में अग्र एवं विनयोदात्त उस राजा ने विषय[1] (स्वदेश) के साथ अपने पंचेन्द्रिय विषयों को भी विस्मृत कर दिया।

शिव के साथ उनकी अर्धांगिनी हैं। वह अलग नहीं सचमुच एक ही शरीर, एक ही विश्व, एक ही ब्रह्माण्ड के पुरुष एवं शक्ति, सृष्टि के मूल कारण नर-नारी हैं। मूलतः प्रजापति एक थे। अकेले थे। उनमे सृष्टि रचना का संकल्प उदय हुआ। उन्होंने अपने शरीर के दो खण्ड कर दिये। उसमें एक अर्धभाग स्त्री एवं दूसरा भाग पुरुष हुआ। अर्धनारीश्वर सृजन स्रोत के प्रतीक है। वह मिलन के साकार स्वरूप है।

अर्धनारीश्वर की अनेक मूर्तियाँ मिलती है। एक प्रभावशाली मूर्ति एलोरा के कैलास मन्दिर मे है। अब तक उपलब्ध सबसे प्राचीन मूर्ति मथुरा संग्रहालय में प्रथम शती कुषाण कालीन है।

दक्षिण पूर्व एशिया का मैंने पर्याप्त पर्यटन किया है। यह आदि शक्ति हैं कम्बुज के एंगकोर वाट मे दारु, पाषाण एवं मृण्मयी अनेक मूर्तियाँ मैंने अर्धनारीश्वर की देखी हैं। श्याम अर्थात् थाईलैण्ड मे अर्धनारीश्वर की मूर्ति तथा उसका पूजन किसी समय खूब प्रचलित था। (द्रष्टव्य हैं दक्षिण पूर्व एशिया)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २ में 'जरसा' का 'रजसा' और 'शमि' का 'शंमि' पाठभेद मिलता है।

२.(१) शमी : शमी का अर्थ शान्त, संयमी तथा जितेन्द्रिय होना है। स्वदोषों को शमन करने वालों को शमी कहते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३ मे 'दात्तः' का पाठभेद 'दातुः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३ (१) विषय, विशः-विश्य : वैदिक काल मे एक समिति थी। समिति का अर्थ एक स्थान पर सबका एकत्रित होना था। एक समिति जनसाधारण को 'विशः' थी। राष्ट्रीय सभा थी। वैदिक काल में हिन्दू समाज जनों अथवा वर्गों में विभक्त था। यथा—अनु, यदु, कुरु। साथ ही वे लोग यह भी समझते थे। हमलोग एक ही जाति के है। क्योंकि वे सब लोग अपने आपको आर्य कहते थे। वर्गों के लोग 'विश.' कहलाते थे। जिससे वैश्य शब्द निकला है।

यूनानियों ने भारत पर आक्रमण किया। भारतीयों के सम्पर्क में आये। परन्तु पंजाब से आगे नही बढ़ सके। यूनानी लेखकों ने राज्य एवं विशः को एक ही माना है। वे प्रत्येक राज्य के नागरिकों को विशः की संज्ञा देते है। सिन्ध तथा पंजाब के प्राय. सभी राज्यों के विषय में उन्होंने यही कहा है। किन्तु भारतीय लेखक उन्हें जनपद तथा देश कहते थे। (पाणिनि : ४ : १ : १६८-१७३) कल्हण ने विषय शब्द का प्रयोग देश किंवा उसके राजा के सम्बन्ध में किया है। विषय, विश्य अथवा विशः निसन्देह देश एवं राज्य

धावन्राज्येच्छया दुर्गागलिकायां स्वमन्त्रिभिः ।
कालेन स्थापितो बद्ध्वेत्यभ्यधायि तु कैरपि ॥४॥

४. राज्येच्छा से दौड़ते[1] हुए राजा को उसके मन्त्रियों[2] ने दुर्गागलिका[3] में बन्दी बना दिया। ऐसा कुछ लोगों ने कहा है।

से छोटा माना जाने लगा था। उसका अर्थ समय की गति से बदलता गया। मूल में विषय शब्द के समानार्थक शब्द देश, विषय एवं उपवर्तन थे।

सुदूर प्राचीन काल से ही कश्मीर उपत्यका छोटे प्रशासकीय विभागों में विभाजित थी। उन्हें प्रचलित भाषा में परगना कहते हैं। उनका प्राचीन नाम विषय था। लोक प्रकाश में उल्लेख आता है कि २७ विषयों में कश्मीर राज्य विभक्त था—

—'एषां सप्तविंशतिविषयाणां अन्तःराक्षेपवेषणकः'—पृष्ठ ७७

'खोयाश्रमि, एकेन, क्रोधन, द्वाविंशति, चालन, समाला, देवसुची (र), भृंग, वितस्ता, सत्रव, खरवारि, नील, हारी, जलहडोय, खड्वीय, फग्गा, लहर, प्रौलडोय, नीलाश।'

उक्त १९ विषयों का नाम लोकप्रकाश में मिलता है। उनका आधुनिक नाम निम्नलिखित रूप से हो गया है।

खोयाश्रमी = खुयाश्रम, खायाश्र (हा) मी, शमाला = समाला, औलिदिय = होलडा, लहरी = लहर; नीलाश = नीलाश्व; खड्वीय = खदुवी; एकेन = एकेनक, देवसुवी = देवसरस; क्रोधन = क्रुहिन परगना, देवाविसती = दुन्त परगना भृंग = बिंग परगना, फग्गा = फक; तथा चालन, वि स्था, सतरव, स्वनवारी नील, हारी, जलहदिय, क्या थे और हैं निश्चित पता नहीं चलता।

लोक प्रकाश से वह पता नहीं लगता कि ये विभाग कब बनाये गये तथा उनका वास्तविक रूप क्या था। वे किस समय तक अपने पूर्व एवं परिवर्तित रूप में स्थित थे।

अबुल फजल के समय में ३८ परगना थे। उसके पूर्व काजी अली के अनुसार ४१ परगना थे।

सिखों के राज्य काल में कश्मीर में करीब ३६ परगना थे। मूर क्राफ्ट (स० १८२८ ई०) बैरन हुगेल (स० १८३५ ई०) तथा वाइन (स० १८४० ई०) ने परगनों की संख्या ३६ दी है। परन्तु उनके दिये नाम नहीं मिलते। परगनों की सीमा तथा नाम डोगरा राज काल तक बदलता रहा है। मेजर बेट्स (स० १८६५ ई०) ने परगनों की संख्या ४३ दी है। कालान्तर में भारत के समान परगनों के स्थान पर तहसीलों में कश्मीर बाँटा गया। डोगरा राज्य काल में ११ तहसीलें थीं। आज कल जम्मू कश्मीर राज्य का राजनीतिक विभाजन पूर्णतया बदल गया है।

दूसरे विषय का अर्थ काम वासना यहाँ लगना चाहिए। विषय, रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श है। इन्हीं को विषय गोचर इन्द्रियाँ भी कहा जाता है। विषय शब्द आश्रय के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इन्द्रियों का नाम विषयिन् कहा गया है। विषय इन्द्रियों के द्वाराहोते हैं। इन्द्रियों के वशीभूत जो हो जाता है, वही विषयी है। कल्हण के कहने का यहाँ तात्पर्य यही है कि राजा विषय युक्त अर्थात् विषयी हो गया था। वह इन्द्रियजयी नहीं इन्द्रियों के वशीभूत था।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४ में 'बद्ध्वे' का 'वद्वे' तथा 'वर्द्धे' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४ (१) धावन : इस श्लोक का एक अर्थ यह भी हो सकता है—'राज्येच्छा से दुर्गागलिका में

धावित उस राजा को उसके मन्त्रियों ने बन्दी बना लिया। ऐसा कुछ लोग कहते हैं।'

(२) मन्त्री : मन्त्री तथा मन्त्रि परिषद् पर टिप्पणी पाँचवें श्लोक की मन्त्रि तथा मन्त्री परिषद द्रष्टव्य है।

४ (३) दुर्गागलिका : यह श्रीनगर में द्रगजन स्थान है। शंकराचार्य पर्वत के पश्चिम मूल से डल झील के फाटक के मध्य का स्थान दुर्गागलिका नाम से प्रसिद्ध था। द्रगजन मूल शब्द दुर्गागलिका का अपभ्रंश है। श्रीनगर के कुछ लोगों को यह अभी तक याद है। कभी यहीं कोई राजा बन्दी रखा गया था।

डल लेक के दक्षिणी पूर्वी एक भाग को गगरी बल कहते हैं। शंकराचार्य पर्वत जिसका एक बाहु उत्तर की ओर निकलता है। डल लेक के समीप पहुँच जाता है। इसके तथा डल के मध्य का स्थान गगरी बल कहा जाता है। उसके उत्तर पूर्व के डल के अंचल को गगरी बल कहते हैं। गगरी बल स्थान भी गगरी बल जल संगम से दक्षिण पश्चिम की ओर जल की चौड़ी नहर तुल्य जल प्रणाली चली गयी है। वितस्ता से एक नहर निकलकर उत्तर नवपुरा की ओर गयी है। और सेतु से पुन. पश्चिम दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। सर अर्थात् महा सरोवर पर जो पुल यहाँ बना था उसका नाम नवपुरासेतु कहा गया है। यहाँ से सेतु का बन्धा प्रारम्भ होता है। इस बन्धा के उत्तर दिशा में एक नहर डल लेक से आती है। उसे नारी नम्बल कहते हैं। इसके पूर्वीय छोर पर जहाँ यह भी शंकराचार्य पर्वत के पश्चिमी मूल भाग को स्पर्श करती है वहीं पर कम से कम एक लकड़ी पूर्व एक द्वार था। वहीं से स्नुप पूल का जल सेतु से बाहर बहता था। यह जल द्वार उस समय बन्द कर दिया जाता था, जब वितस्ता का जलस्तर, डल के जल स्तर से ऊँचा हो जाता था। यह निर्माण हजारों वर्ष पुराना है। उस समय इसका निर्माण हुआ था जब सेतु अथवा बन्ध बनाया गया था। इसी के पास दुर्गागलिका की आबादी थी। यहीं पर अन्ध युधिष्ठिर बन्दी रखा गया था।

श्रीवर ने इस सेतु का उल्लेख जैनराज तरंगिणी चतुर्थ तरंग में किया है। इससे स्पष्ट होता है कि यह सेतु अत्यन्त प्राचीन निर्माण था। क्योंकि श्रीवर का काल ही (सन् १४५०-१४८६ ई०) होता है।

छिन्नेषु सेतुबन्धेषु तसन्नौपुरकादिषु।
पुर्दुर्गरचनेवाभूद् दुर्गमा सद्विरोधिनाम् ॥ ४:१२१॥

× × ×

अथ काश्मीरिकाः प्रोचुः सैदांशिनीरान्तिकस्थितान्।
नौसेतुबन्धरज्जुर्यद्स्तद्भिन्नो भयेन नः ॥४:२४२॥

इस समय यहाँ घनी आबादी हो गयी है। स्थान का पहचानना कठिन हो गया है।

भ्रमण काल में मुझे कुछ पण्डितों ने दुर्गागलिका का स्थान श्री शंकराचार्य पर्वत से श्रीनगर-बनिहाल सड़क पर बनिहाल की ओर जाते समय वाम ओर एक दुर्गा का मन्दिर दिखाया गया। यहाँ कुण्ड भी है। उनकी संख्या दो है। एक ऊपर है। दूसरा नीचे है। स्थान सुरम्य है। ब्राह्मणों के कुल यहाँ रहते हैं। धर्मशालायें बना हैं। यहाँ देवी का मन्दिर है। ऊपर शिव लिंग है।

मैं यहाँ बहुत समय तक प्राचीन ध्वंसावशेष खोजता रहा। कुछ लिखने योग्य यहाँ पर वस्तुएँ नहीं मिली। यहाँ भी एक नाग है।

प्रतीत होता है कि कल्हण स्वयं निश्चित नहीं कर सका था कि राजा सचमुच बन्दी बनाया गया था या नहीं। अतएव उसने इस घटना का आधार कतिपय लोगों के कथन को माना है। उसे इस घटना की सत्यता का प्रमाण तत्कालीन किसी ग्रन्थ अथवा इतिहास के लेखकों की रचना में नहीं मिल सका था।

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् ।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥५॥

५. उन मन्त्रियों[१] ने राजा विक्रमादित्य के वंशज प्रतापादित्य[२] को दिगन्तर से लाकर यहाँ अभिषिक्त किया ।

पादटिप्पणियाँ :

५ (१) मन्त्री एवं मन्त्रि परिषद् : मन्त्रियो ने राजा को बाहर से बुलाकर राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया था यह कश्मीर के मन्त्रियों किंवा मन्त्रिपरिषद् की शक्ति तथा अधिकार का एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

राजा के निरंकुश होने पर मन्त्रियों का अधिकार था । वे उसे हटा सकते थे । अन्ध युधिष्ठिर के सम्बन्ध में मन्त्रियों ने यही किया था । राजा को जो बैठा सकता है, वह राज सिंहासन से उतार भी सकता है ; मन्त्रि परिषद् का यह अधिकार धर्म सम्मत माना गया है ।

भारतीय राजशास्त्र मन्त्रि[illegible] मन्त्रि-परिषद् को यह अधिकार देता है, या नहीं कि, वह राजा को बन्दी बना ले, अथवा किसी दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर राजा चुन ले; इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है ।

कश्मीर में मन्त्रियों ने प्रायः राजाओं को सिंहासन च्युत किया है । अन्य व्यक्ति को राज-सिंहासन पर बैठाया है । जनता ने भी राजा चुना है ।

कश्मीर में मन्त्रि परिषद् बड़ी शक्तिशाली थी । राजा को निरंकुश नहीं होने देती थी । इस विषय पर भारतीय राजनीतिशास्त्र के विभिन्न युगकालीन विद्वानों तथा कल्हण का क्या मत है । जानना उचित होगा ।

कल्हण ने मन्त्रियों द्वारा राजाओं को पद च्युत तथा प्रतिष्ठापित करने का बहुत उदाहरण उपस्थित किया है । राजा तथा मन्त्रियों के अधिकार सीमा तथा उनका परस्पर क्या सम्बन्ध था, इसका अध्ययन राजनीति विज्ञान की दृष्टि से उचित होगा ।

महाभारत (३८ : ३० : ३८ : १६,२१) ने मन्त्री, मन्त्रि परिषद् किंवा मन्त्रिमण्डल को राज्य की प्रकृति का महत्त्व पूर्ण अंग माना है ।

राजा मन्त्रिमण्डल पर उतना ही निर्भर था जितना पर्जन्य पर प्राणिमात्र निर्भर रहता है । जितना स्त्रियाँ पति पर निर्भर रहती है । अर्थशास्त्र राजा एव मन्त्री को तुलना रथ के दो चक्रों से करता है ।

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवाँस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।
—अर्थ० . १ ३ : १ : ३

मनु ने मन्त्रियों को राज्य कार्य के लिये नितान्त आवश्यक माना है ।

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥
—मनु० : ८ :५३

शुक्राचार्य मन्त्रियों की अनिवार्यता और स्पष्ट रूप से कहते है । उनके बिना राज्यपतन अवश्यं-भावी हो जाता है ।

विना प्रकृतिमन्मंत्राद्राज्यनाशो भवेन्मम ।
निरोधनं भवेदेवं राज्ञस्ते स्युः सुमन्त्रिणः ॥
—शु० नी० २ : ८२

स्मृतियों तथा पुराणों ने मन्त्रियों के अधिकार गुण, कर्तव्यों की विशद व्याख्या की है । वेद भी मन्त्री की अनिवार्यता स्पष्ट करता है ।

ऋग् तथा अथर्ववेद में मन्त्री शब्द का उल्लेख नहीं मिलता । यजुर्वेद संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों

धारित उस राजा को उसके मन्त्रियों ने बन्दी बना लिया। ऐसा कुछ लोग कहते हैं।'

(२) मन्त्री : मन्त्री तथा मन्त्रि परिषद् पर टिप्पणी पाँचवें श्लोक की मन्त्रि तथा मन्त्री परिषद द्रष्टव्य है।

४ (३) दुर्गागलिका : यह श्रीनगर में द्रगजन स्थान है। शंकराचार्य पर्वत के पश्चिम मूल से डल भील के फाटक के मध्य का स्थान दुर्गागलिका नाम से प्रसिद्ध था। द्रगजन मूल शब्द दुर्गागलिका का अपभ्रंश है। श्रीनगर के कुछ लोगों को यह अभी तक याद है। कभी यहाँ कोई राजा बन्दी रखा गया था।

इस लेक के दक्षिणी पूर्वी एक भाग को गगरी बल कहते हैं। शंकराचार्य पर्वत जिसका एक बाहु उत्तर की ओर निकलता है। डल लेक के समीप पहुँच जाता है। इसके तथा डल के मध्य का स्थान गगरी बल कहा जाता है। उसके उत्तर पूर्व के डल के अंचल को गगरी बल कहते हैं। गगरी बल स्थान भी गगरी बल जल संगम से दक्षिण पश्चिम की ओर जल की छोटी नहर तुल्य जल प्रणाली चली गयी है। जिससे से एक नहर निकलकर उत्तर नवपुरा की ओर गयी है। और सेतु से पुन. पश्चिम दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। सर अर्थात् महासरित पर जो पुल यहीं बना था उसका नाम नवपुरासेतु कहा गया है। यहीं से सेतु का बन्धा प्रारम्भ होता है। इस बन्धा के उत्तर दिशा में एक नहर डल लेक से आती है। उसे बारी नम्बल कहते हैं। इसके पूर्वीय छोर पर जहाँ यह थी शंकराचार्य पर्वत के पश्चिमी मूल भाग को स्पर्श करती है वहीं पर कम से कम एक शताब्दी पूर्व एक द्वार था। वहीं से स्नुष कुल का जल सेतु से बाहर बहता था। वह जल द्वार उस समय बन्द कर दिया जाता था, जब वितस्ता का जलस्तर, डल के जलस्तर से ऊँचा हो जाता था। यह निर्माण शताब्दियों पुराना है। जिस समय इसका निर्माण हुआ था जब सेतु अथवा बन्ध बनाया गया था। इसी के पास दुर्गागलिका की आबादी थी। यहीं पर अन्ध युधिष्ठिर बन्दी रखा गया था।

श्रीवर ने इस सेतु का उल्लेख जैनराज तरंगिणी चतुर्थ तरंग में किया है। इससे स्पष्ट होता है कि यह सेतु अत्यन्त प्राचीन निर्माण था। क्योंकि श्रीवर का काल ही (सन् १४५०-१४८६ ई०) होता है।

छिन्नेषु सेतुबन्धेषु तत्तन्नीपुरकादिषु।
पूर्दुर्गरचनेवाभूद् दुर्गमा तद्विरोधिनाम् ॥ ४:१२१॥

× × ×

अथ काश्मीरिकाः प्रोचुः मैदांसिनीशान्तिकस्थितान्।
नौसेतुबन्धरज्जुर्यद्दत्तश्छिन्नो भयेन नः ॥४:१४२॥

इस समय यहाँ घनी आबादी हो गयी है। स्थान का पहचानना कठिन हो गया है।

भ्रमण काल में मुझे कुछ पण्डितों ने दुर्गागलिका का स्थान श्री शंकराचार्य पर्वत से श्रीनगर-बनिहाल सड़क पर बनिहाल की ओर जाते समय वाम ओर एक दुर्गा का मन्दिर दिखाया गया। यहाँ कुण्ड भी है। उनकी संख्या दो है। एक ऊपर है। दूसरा नीचे है। स्थान सुरम्य है। ब्राह्मणों के कुल यहाँ रहते हैं। धर्मशालायें बना है। यहाँ देवी का मन्दिर है। ऊपर शिव लिंग है।

मैं यहाँ बहुत समय तक प्राचीन ध्वंसावशेष खोजता रहा। कुछ लिखने योग्य यहाँ पर वस्तुएँ नहीं मिली। यहाँ भी एक नाग है।

प्रतीत होता है कि कल्हण स्वयं निश्चित नहीं कर सका था कि राजा सचमुच बन्दी बनाया गया था या नहीं। अतएव उसने इस घटना का आधार कतिपय लोगों के कथन को माना है। उसे इस घटना की सत्यता का प्रमाण तत्कालीन किसी ग्रन्थ अथवा इतिहासके लेखकों की रचना में नहीं मिल सका था।

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् ।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥५॥

५. उन मन्त्रियों[1] ने राजा विक्रमादित्य के वंशज प्रतापादित्य[2] को दिगन्तर से लाकर यहाँ अभिषिक्त किया ।

पादटिप्पणियाँ :

५ (१) मन्त्री एवं मन्त्रि परिषद् : मन्त्रियों ने राजा को बाहर से बुलाकर राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया था यह कश्मीर के मन्त्रियों किंवा मन्त्रिपरिषद् की शक्ति तथा अधिकार का एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

राजा के निरंकुश होने पर मन्त्रियों का अधिकार था । वे उसे हटा सकते थे । अन्ध युधिष्ठिर के सम्बन्ध में मन्त्रियों ने यही किया था । राजा को जो बैठा सकता है, वह राज सिंहासन से उतार भी सकता है ; मन्त्रि परिषद् का यह अधिकार धर्म सम्मत माना गया है ।

भारतीय राजशास्त्र मन्त्रि[illegible] मन्त्रि-परिषद् को यह अधिकार देता है, या नहीं कि, वह राजा को बन्दी बना ले, अथवा किसी दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर राजा चुन ले; इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है ।

कश्मीर में मन्त्रियों ने प्रायः राजाओं को सिंहासन च्युत किया है । अन्य व्यक्ति को राज-सिंहासन पर बैठाया है । जनता ने भी राजा चुना है ।

कश्मीर में मन्त्रि परिषद् बड़ी शक्तिशाली थी । राजा को निरंकुश नहीं होने देती थी । इस विषय पर भारतीय राजनीतिशास्त्र के विभिन्न युगकालीन विद्वानों तथा कल्हण का क्या मत है । जानना उचित होगा ।

कल्हण ने मन्त्रियों द्वारा राजाओं को पद च्युत तथा प्रतिष्ठापित करने का बहुत उदाहरण उपस्थित किया है । राजा तथा मन्त्रियों के अधिकार सीमा तथा उनका परस्पर क्या सम्बन्ध था, इसका अध्ययन राजनीति विज्ञान की दृष्टि से उचित होगा ।

महाभारत (३८ : ३० : ३८ : १६,२१) ने मन्त्री, मन्त्रि परिषद् किंवा मन्त्रिमण्डल को राज्य की प्रकृति का महत्त्व पूर्ण अंग माना है ।

राजा मन्त्रिमण्डल पर उतना ही निर्भर था जितना पर्जन्य पर प्राणिमात्र निर्भर रहता है । जितना स्त्रियाँ पति पर निर्भर रहती है । अर्थशास्त्र राजा एवं मन्त्री की तुलना रथ के दो चक्रों से करता है ।

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवाँस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।
—अर्थ० : १ ३ : १ : ३

मनु ने मन्त्रियों को राज्य कार्य के लिये नितान्त आवश्यक माना है ।

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥
—मनु० : ८ :५३

शुक्राचार्य मन्त्रियों की अनिवार्यता और स्पष्ट रूप से कहते है । उनके बिना राज्यपतन अवश्यंभावी हो जाता है ।

विना प्रकृतिमन्त्रांराज्यनाशो भवेन्मम ।
निरोधनं भवेदेवं राज्ञस्ते स्युः सुमन्त्रिणः ॥
—शु० नी० २ : ८२

स्मृतियों तथा पुराणों ने मन्त्रियों के अधिकार गुण, कर्तव्यों की विशद व्याख्या की है । वेद भी मन्त्री की अनिवार्यता स्पष्ट करता है ।

ऋग् तथा अथर्ववेद में मन्त्री शब्द का उल्लेख नहीं मिलता । यजुर्वेद संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों

में 'रत्नी' शब्द का उल्लेख मिलता है। (पं०ब्रा० १९ : १ : ४) 'रत्नी' को 'वीर' की पदवी से सम्बोधित किया गया है। कालान्तर में यही 'रत्नी' 'राजरत्न' 'नवरत्न' आदि की सर्व श्रेष्ठ उपाधि रूप से प्रयुक्त होने लगा।

वैदिक काल के 'रत्नि' परिषद् में—पुरोहित, पट्टरानी, युवराज, राजन्य, अक्षावाप, क्षत्ता, सेनानी, सूत, संग्रहीता, रथकार आदि प्रमुख राज्याधिकारी होते थे। 'रत्नियों' का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता था। वाजपेय यज्ञ काल में राजा 'रत्नि बलि' प्रदान हेतु स्वयं 'रत्नियों' के निवास स्थान पर जाता था। वैदिक यज्ञों का प्रचार क्षीण होने के साथ ही साथ, रत्नी वर्ग का अन्त हो गया। वायु पुराण में रत्नियों को दो वर्गों में विभक्त किया गया था। उन्हें सजीव तथा निर्जीव की संज्ञा दी गयी थी। सजीव वर्ग में पट्टरानी, पुरोहित, सेनानी, सूत, मन्त्री, आदि का समावेश होता था। निर्जीव वर्ग में मणि, कृपाण, धनुष, भाला, रत्न, पताका एवं कोषादि थे। (वायु० ५७ : ६८-७१)

कालान्तर में 'रत्नी' का स्थान एक अत्यन्त प्रभावशाली संस्था ने ग्रहण कर लिया था उसे 'मन्त्रि परिषद्', 'अमात्य परिषद्' एवं 'सचिव परिषद्' कहते थे। मगधराज अजातशत्रु, कोसलराज प्रसेनजित के समय मन्त्रियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जातक कथाओं में भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। (जातक सं० ५२८ तथा ५५३)

मौर्य एवं शुंग राजाओं की 'मन्त्रि परिषदें' थी, (अर्थ शास्त्र : १; अशोक के अभिलेख सं० ३ तथा ६ एवं मालविकाग्निमित्र नाटक अंक ५) पश्चिम भारत में शक राजा मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा से राज्य शासन करते थे। उसके 'मन्त्रि सचिव' तथा 'कर्म सचिव' सदस्य होते थे। (रुद्रदामा का जूनागढ़ शिलालेख) गुप्त राजाओं के अभिलेखों में भी मन्त्रियों का उल्लेख मिलता है।

मन्त्रियों का अधिकार असीमित होता गया है। शक्तिशाली राजा का मन्त्रिमण्डल उसका सलाहकार था। राजा उनकी मन्त्रणा की अवहेलना कर सकता था। दुर्बल राजा पर मन्त्रिपरिषद् हावी हो जाती थी। मौखरि वंश के निस्संतान होने पर, मौखरिराज्य का सिंहासन मन्त्रियों द्वारा हर्षवर्धन को दिया गया था।

मन्त्रि परिषद् की संख्या निश्चित नहीं थी। मनु के मतानुसार मन्त्रियों की संख्या सात या आठ होनी चाहिए। (म० ७ : ५४) महाभारत का मत है कि मन्त्रियों की संख्या आठ होनी चाहिए।

'अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्।'

अर्थशास्त्र में उल्लेख आता है—मानव सम्प्रदाय १२; बार्हस्पत्य पंथी १६; औशनस पंथी २० मन्त्रियों की संख्या देते हैं। (अ १ : १५) शुक्राचार्य १० राज्य की प्रकृति में मन्त्रियों की गणना करते [illegible] (शुक्र० २ : ६९-७९) किन्तु मनु एवं कौटिल्य [illegible] पर एक मत है कि मन्त्रियों की संख्या देश के विस्तार एवं समय की आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। शुक्राचार्य मन्त्रिमण्डल में पुरोहित का रखना आवश्यक नहीं मानते हैं। (शुक्र० २ : ७२) किन्तु शुक्र का कथन है कि पुरोहित का भय प्रदर्शन ही राजा को सुपथ पर लाने के लिये पर्याप्त था। (शुक्र० २ : ९९)

अशोक के तृतीय तथा षष्ठ अभिलेखों से 'मन्त्रि परिषद्' की कार्य प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है। षष्ठ लेख से स्पष्ट पता चलता है कि अमात्यों के निर्णय पर, मन्त्रि परिषद् पुनर्विचार कर सकती था। सम्राट् के आदेशों में भी परिषद् आवश्यकतानुसार संशोधन करती थी। परिषद् में मत वैभिन्न्य होने पर सम्राट् अशोक का निर्णय अन्तिम माना जाता था। एक स्थान पर अशोक के दान पर उसकी मन्त्रिपरिषद् ने सीमा लगा दी थी। युआन च्वांग ने पर्यटन संस्मरण में लिखा है कि श्रावस्ती का राजा

विक्रमादित्य ५ लाख मुद्रा दान देना चाहता था। परन्तु मन्त्रि परिषद् ने रोक दिया कि प्रजा का अपशब्द सुनना पड़ेगा। पादंजलि जातक में कथा मिलती है कि मन्त्रियों ने पादंजलि को उसकी मूर्खता के कारण युवराज नहीं बनने दिया।

अशोक कश्मीर का राजा था। अतएव कश्मीर के शासन में वह मन्त्रि परिषद् जैसी संस्था को किसी न किसी रूप में अवश्य रखा होगा। शक राजाओं के समय में भी मन्त्रि परिषद् थी। शक राजाओं ने कश्मीर पर शासन किया था। गुप्त काल के पश्चात् उत्तर भारत में मन्त्रि परिषद् का उल्लेख नहीं मिलता।

कल्हण के वर्णन से पता चलता है कि कश्मीर में मन्त्रि परिषद् का कभी लोप नहीं हुआ। वह अत्यन्त शक्तिशाली संस्था थी। निस्सन्देह उत्तर भारत, उत्तर गुप्त काल में, केवल कश्मीर ही अपवाद था। जहाँ मन्त्रि परिषद् सक्रिय थी।

शुंग काल में भी राजाओं ने मन्त्रि परिषद् को कायम रखा था। दक्षिण भारत में चोल राज्य में दसवीं शताब्दी तक कश्मीर के समान मन्त्रि परिषद् सक्रिय एवं शक्तिशाली थी।

मन्त्रि परिषद् को राजा नियुक्त करता था। नियुक्त मन्त्रियों के समवेत रूप का नाम मन्त्रि-परिषद् था। कश्मीर में राजा ही मन्त्री नियुक्त करते थे। सब मन्त्री मिलकर मन्त्रि परिषद् अर्थात् मन्त्रि मण्डल बनाते थे। मन्त्री राजा के प्रति और अप्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी था। मन्त्रियों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा उनके व्यक्तित्व पर निर्भर थी। धर्मशास्त्र ही उनका विधि ग्रन्थ था। नीति तथा स्मृतियों का उल्लंघन न तो मन्त्री कर सकता था और न राजा। दोनों ही अपने अधिकार की सीमा तत्कालीन प्रचलित नीति, स्मृति तथा धर्म शास्त्रों से निर्धारित करते थे।

राजा के शक्तिशाली होने पर 'राजायत्त तन्त्र' तथा मन्त्रियों के शक्तिशाली होने पर 'सचिवायत्त-तन्त्र' शासन कहा जाता था। सामान्य स्थिति का नामकरण 'उभयायत्त' शासन कहा जाता था। ('मुद्राराक्षस : अंक ३; कथासरित्सागर १ : ५८-५९)

कश्मीर में मन्त्रियों ने अनेक राजाओं को राज-सिंहासन पर बैठाया, अनेकों को सिंहासन से उतारा है उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है।

मन्त्रियों ने राजा युधिष्ठिर को बन्दी गृह में रखा और इसी वंश के व्यक्ति को राज्यसिंहासन पर बैठाया। यह मन्त्रि परिषद् के अधिकार सीमा के अन्तर्गत था। जिसका प्रयोग समय समय पर कश्मीर में होता रहा है। यह नीति, स्मृति व्यवहार एवं न्याय सम्मत था।

(२) प्रतापादित्य : श्री विलसन ने अभिषेक का समय ईसापूर्व १६८ वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल ईसा पूर्व १० वर्ष तथा राज्य काल ३२ वर्ष माना है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक काल कल्हण के वर्ष गणनानुसार लौकिक संवत् २८९६ वर्ष तथा राज्यकाल ३२ वर्ष रखा है। श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय ईसापूर्व १६९ वर्ष रखा है। श्री चन्द्रकान्त बाली ने अपनी ज्योतिषगणना के अनुसार प्रतापादित्य का सप्तर्षि संवत् ३७८५ तथा सन् १५ ई० दिया है।

आइने अकबरी में प्रतापादित्य का नाम परतोपदत्त लिखा है। उसमें लिखा है कि वह विक्रमादित्य का वंशज था। उसका राज्यकाल अबुल फजल २३ वर्ष देता है।

हसन प्रतापादित्य के सन्दर्भ में लिखता है—

राजा प्रतापादित्य २८८६ क० बहुक्म सिकन्दर और महल कश्मीर के इत्तफाक से हुकूमत कश्मीर पर सरफराज हुआ। और ममलकत और फौज और रैय्यत को आसाइश में जान दिल से कोशिश की। तीस साल हुकूमत में गुजरे। (प्र १५२-५३)

शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः ।
अन्यैरत्रान्यथाऽलेखि विसंवादकदर्थितम् ॥६॥

६. 'वह शकारि विक्रमादित्य[1] था'—इस प्रकार विसंवाद कदर्थित को भ्रान्त अन्य लोगों ने अन्यथा लिखा है।

इदं स्वभेदविधुरं हर्षादीनां धराभुजाम् ।
चिरकालमभूद्भोज्यं ततः प्रभृति मण्डलम् ॥७॥

७. उस समय से पारस्परिक कलह ग्रस्त यह मण्डल[1] हर्षादि[2] राजाओं का चिर काल तक उपभोग्य बना रहा।

श्री विदैउद्दीन तथा श्री नारायण कौल का मत है कि प्रतापादित्य मालवा के राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित था। अभी तक कोई ऐसा आधिकारिक प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका है कि निष्कर्ष निकाला जाय कि वास्तव में प्रतापादित्य विक्रमादित्य का सम्बन्धी था। इस पर अभी अनुसन्धान की आवश्यकता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६ में 'रति सभ्रम' का 'स इति भ्रम', 'इति संभ्रम' तथा 'विसंवादक' का पाठभेद 'विसंवादिक' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६ (१) विक्रमादित्य : द्वितीय तरंग में वर्णित ६ राजाओं का सम्बन्ध गोनन्द वंश से प्रतीत नहीं होता।

शक संवत् का आरम्भ सन् ७८ ई० से होता है। किन्तु श्री स्तीन के नोट के अनुसार प्रतापादित्य का राज्यारोहण काल ईसापूर्व १८० वर्ष आता है। इस प्रकार दोनों समयों में २५८ वर्ष का अन्तर हो जाता है। विक्रम संवत् ईसा पूर्व ५७ वर्ष से आरम्भ होता है। यही कारण मालूम होता है जिससे कि इस विक्रमादित्य को शकारि विक्रमादित्य से भिन्न कल्हण मानता है।

विक्रमादित्य के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। विक्रम संवत् चलाने वाले विक्रमादित्य कौन ऐतिहासिक व्यक्ति थे, इसका निर्णय इतिहास के विद्वानों ने एक मत से अभी तक नहीं किया है। अनेकवाद तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

७ (१) मण्डल : मण्डल शब्द का प्रयोग कल्हण ने राज्य के लिये किया है। शुक्र ने (शुक्र नीति १ : १८२-१८६) सामन्त, माण्डलिक, राजन्, महाराज, स्वराज, सम्राज, विराज, सार्वभौम के आधीन राज्य का वर्गीकरण किया है। मण्डल के अधिपति को माण्डलिक कहते थे। सामन्त की आय १ लाख से ३ लाख, मण्डल की आय ४ से ५०; स्वराज की ५१-१००; सम्राज की १ करोड़ से १०; विराज की ११ से ५० तथा सार्वभौम राज की ५१ करोड़ से ऊपर प्रतिवर्ष रजत कर्ष आय रखा है। हर्ष को यहाँ मण्डलेश नहीं मानना चाहिये। कल्हण प्रायः कश्मीर राज्य के लिये मण्डल शब्द का प्रयोग कर देता है। लोक प्रकाश में कश्मीर मण्डल के सम्बन्ध में एक श्लोक आता है जिसमें उसके ग्रामों की संख्या दी गयी है।

षष्टिग्रामसहस्राणि षष्टिग्रामशतानि च ।
षष्टिर्ग्रामास्त्रयो ग्रामा ह्येतत्कश्मीरमण्डलम् ॥

—पृष्ठ ७८ श्लोक ४

असपूर्वाऽपि तेनोर्वी सपूर्वेव महीभुजा ।
लालिता हृदयज्ञेन पत्या नववधूरिव ॥८॥

८. इस राजा ने परम्परा प्राप्त सदृश अपरम्परा प्राप्त इस पृथ्वी को भी, हृदयज्ञ पति के नववधू तुल्य लालित[1] किया।

भुक्त्वा द्वात्रिंशतं वर्षान्भुवं तस्मिन्दिवं गते ।
जलौकास्तत्सुतो भूमेर्भूषणं समपद्यत ॥९॥

जलौकास्[1]

९. बत्तीस[1] वर्ष पृथ्वी को भोग कर उसके दिवंगत होने पर उसका पुत्र जलौकास्[2] भूमि भूषण हुआ।

---

(२) हर्ष : भारतीय इतिहास में कई हर्षो का उल्लेख मिलता है। उज्जैन के एक राजा विक्रमादित्य को भी हर्ष कहा गया है। उसका उल्लेख कल्हण ने तृतीय तरंग के श्लोक १२५ में किया है। वह कश्मीर राजा मातृगुप्त के समय में हुआ था। कल्हण की काल गणना के अनुसार उसका समय २६८ वर्ष पश्चात् पड़ता है।

यदि हम हर्ष को कन्नौज का राजा हर्षवर्धन मान लिया जाय, जिसका उल्लेख ह्युन साग करता है, तो उसका समय प्राप्त लेखों के अनुसार सन् ६०६-६५० ई० आयेगा। इस प्रकार कल्हण की काल गणना में, जिस प्रकार मिहिरकुल को गणना में अन्तर पड़ता है, उसी प्रकार इस काल मे भी पड़ जाता है। कन्नौज के हर्ष का काल प्रतापादित्य का समय नहीं हो सकता।

अल्बेरुनी लिखता है—कश्मीर की समय सारणी के अनुसार श्रीहर्ष ६६४ वर्ष विक्रमादित्य के पश्चात् हुए थे। उस समय देश में श्रीहर्ष, विक्रमादित्य, शक, वल्लभ, तथा गुप्त पांच प्रकार के संवतो का प्रचलन था। विक्रम संवत् मानने वाले दक्षिण, तथा पश्चिमी भारत भूखण्ड मे निवास करते थे। (अलबेरुनीः साचू : २ : ६-९)

८ (१) लालित : लालन-पालन शब्द प्रायः एक साथ आता है। कल्हण ने यहाँपर नववधू और पृथ्वी की तुलना की है। जिस प्रकार अपनी प्रियतमा नववधू के प्रति पति हार्दिक प्रेम करता उसका दुलार करता है उसी प्रकार पृथ्वीपति राजा प्रतापादित्य ने पृथ्वी का प्रेम तथा स्नेह से अपने में अभिन्न समझते हुए लालन किया। मनुष्य किसी से प्रेम न करते हुए भी, उसका पालन करता है। राजा प्रजा से अत्यन्त स्नेह न करते हुए भी, प्रजा पालक हो सकता है। परन्तु प्रजा के साथ स्नेह करना, उसे अभिन्न समझना, उसका दुलार करना सर्वथा भिन्न बात है। लालन में पालन शब्द भी समन्वित हो जाता है। परन्तु पालन में लालन का अर्थ समाविष्ट नही होता। कल्हण ने यहाँ उपमा बहुत ही सुन्दर दी है। उसकी यह नयी सूझ है।

९ (१) श्री विल्सन ने अभिषेक का समय ईसा पूर्व १३६ वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल सन् २२ ई० और राज्यकाल ३२ वर्ष दिया है। श्री स्तीन राज्याभिषेक काल कल्हण के गणनानुसार लौकिक संवत् २९२८ वर्ष तथा राज्यकाल ३२ वर्ष दिया है।

श्री एस० पी० पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व १३७ वर्ष तथा राज्यकाल ३२ दिया है।

श्री वाली ने सप्तर्षि संवत् ३८१७ तथा सन् ४७ वर्ष यह समय दिया है।

आइने अकबरी में जलौक को 'जुगूक' लिखा गया है। राज्यकाल ३० वर्ष दिया गया है।

पितुरेव समं कालं वृद्धिहेतोः स दिद्युते ।
विषुवत्पूर्णशीतांशुरिव शीतेतरार्चिषः ॥१०॥

१०. सूर्य के समकाल[1] तक शरदकालीन पूर्ण शशि तुल्य वह वृद्धि हेतु, पिता के ही बराबर समय तक प्रकाशित रहा।

अथ वाक्पुष्टया सार्धं देव्या दिव्यप्रभावया ।
भुवं तत्प्रभवो भुञ्जंस्तुञ्जीनोऽरञ्जयत्प्रजाः ॥११॥

तुंजीन[1]

११. तदुपरान्त इसका पुत्र तुंजीन दिव्य प्रभाव युक्त देवी वाक्पुष्टा के साथ पृथ्वी का भोग करता हुआ प्रजारंजन किया।

हसन लिखता है—बाद अजई (प्रतापादित्य) राजा जलोक शानो ने बादशाहत की पोशाक जेबतन करके ३२ साल हुकूमत में गुजारे।

(१) जलौक, जलौकस्, जलौकास्: प्रसिद्ध अनुवादकारों ने नाम को भिन्न प्रकार से लिखा है। श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अपने अनुवाद में जलौक तथा जलौकसः दिया है। श्री स्तीन ने भूमिका के पृष्ठ १२५ पर 'जलौकस्' दिया है। अनुवाद में पृष्ठ ५७ पर पुनः 'जलौकस्' दिया है। श्री पण्डित ने अनुवाद के पृष्ठ प्राग्त ४२ पर 'जलौकस्' तथा अनुवाद में 'जलौक' और पुनः पृष्ठ ५८१ पर 'जलौकस्' दिया है। कल्हण ने मूल श्लोक में 'जलौकास्तत्सुतो' दिया है। क्रिया के अनुसार 'जलौकान्' शुद्ध प्रतीत होता है। इसके पूर्व (त० १ : १०८) कल्हण ने 'भूभृज्जलौको' का प्रयोग कर अशोक के पुत्र 'जलौक' का वर्णन किया है। प्रतीत होता है कि अशोकपुत्र 'जलौक' तथा प्रतापादित्य-पुत्र में भेद जाहिर करने के लिए 'जलौकस्' किंवा 'जलौकास्' नाम दिया है।

१० (१) समकाल-ज्योतिष ज्ञान: कल्हण की ज्योतिष का ज्ञान था इस श्लोक से प्रकट होता है। दिन एवं रात्रि वर्ष में २३ सितम्बर तथा २२ मार्च को बराबर होते हैं। इस समय सूर्य निरक्ष पर जाता है। भारतीय मास की गणना से कार्तिक एवं चैत्र विषुव २२ या २३ सितम्बर तथा महाविषुव या हरेरः २० मार्च को होता है।

चन्द्रमा की वृद्धि तथा ह्रास का कारण विज्ञान के अनुसार सूर्य है। यहाँ पर भी वृद्धि हेतु सूर्य को कहा है। पिता भी पुत्र के लिये वृद्धि का हेतु है। यहाँ पर पिता को सूर्य तथा पुत्र को चन्द्रमा की उपमा दी गयी है। चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य का ही प्रतिबिम्ब है और पिता का प्रकाश या प्रतिबिम्ब पुत्र। कल्हण ने यहाँ काव्य एवं ज्योतिष का संक्षेप में समन्वय किया है।

११(१) श्री विलसन ने अभिषेक का काल ईसा पूर्व १०४ वर्ष ९ मास तथा समीकृत का सन् ५४ ईस्वी तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् २९६० वर्ष तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया है।

श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व १०५ वर्ष तथा राज्य काल ३६ वर्ष रखा है।

श्री बाली ने सप्तर्षि सं० ३८५३ तथा सन् ८३ ई. यह काल दिया है।

आइने अकबरी में तुंजीन राजा को 'बुनजिर' नाम से सम्बोधित तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया गया है।

हसन लिखता है—राजा तुंजीन २९५० क० में बाप की जगह तख्तनशीन हुआ। उसकी रानी वाग्पुस्ता नाम एक निहायत ही अकलमन्द और दाना औरत थी, उसी की रहनुमाई में फौज और रैयत के खुश करने में मशगूल रहता। उनके साथ

दम्पतिभ्यामियं ताभ्यामभूष्यत वसुन्धरा।
गङ्गामृगाङ्कखण्डाभ्यां जटाभूरिव धूर्जटेः ॥१२॥

१२. यह वसुन्धरा उस दम्पति द्वारा, गंगा एवं मृगाङ्क खण्ड से शिव-जटा तुल्य शोभित हुई।

मण्डलं साध्वधत्तां तौ नानावर्णमनोरमम्।
शतह्रदापयोवाहौ माहेन्द्रमिव कार्मुकम् ॥१३॥

१३. उन दोनों ने नाना वर्णों[१] से मनोरम मण्डल को समुचित रूप से उसी प्रकार धारण किया जैसे विद्युत एवं मेघ नाना वर्ण से मनोरम इन्द्रधनुष को धारण करता है।

अदल और इन्साफ से पेश आता। तुंगेश्वर और बैजनाथ के पास हरदास का मन्दिर तामीर कराया और एक निहायत ही आलीशान इमारतों वाला शहर कंग बनवाया। शहर के इर्द गिर्द अमाथों का मन्दिर बनवाया। इसके शिखर पर एक लाख अशरफियों का सोना बतौर मुलम्मा के चढ़वाया। (पृष्ठ ५१)

'कहते हैं कि मराज की हद्द में बहुत से पौदे लगवाए जिसमें कि राजा की हुस्न नीयत की बदौलत लगाते ही फल निकल आये। माह भादों में इस कदर बर्फबारी हुई कि फसलें सारी की सारी तबाह व बरबाद हो गयीं। सख्त क़हत पड़ा। राजा ने अपने खजाने के मुँह खोल दिये। और उनमें जिस कदर भी हीरे जवाहिरात और सोना चाँदी थे गरीबों और मसकीनों की नजर कर दी लेकिन इस के बावजूद भी कहत दूर न हुआ।

'नेकखसलत राजा यह देखकर सख्त लाचार हुआ और अपने आप को कत्ल करने पर आमादह हो गया। उसकी रानी इस मक़सद से आगाह हो गयी और उसने उसे ऐसा करने से रोका। रात के वक्त दोनों मियां बीवी बारगाह रब आला हजरत में आजिजी और इन्कसारी में मसरूफ हुए। उनकी दुआ की कबूलियत के निशान में दो कबूतर हर सुबह आसमान से हरेक आदमी के घर पहुँचते। यहाँ तक कि क़हत की मुसीबत रफ़ा दफ़ा हो गयी।

'वागपुरता ने रामू और केमूह के दिहात आबाद करके बरहमनों को जागीर के तौर पर बख्श दिये। यह औरत अपने पेट से कोई औलाद नही रखती थी राजा के अन्त काल के वक्त उसकी लाश पर सती हो गयी। राजा तुंजीन की मुद्दत हकूमत ३६ बरस थी।' (पृष्ठ ५३)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३ में 'धत्तां' का 'दत्ता', 'हृत्ता' तथा 'नाना वर्ण' का 'नानार्णव' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३ (१) वर्ण : यहाँ 'वर्ण' शब्द श्लिष्ट है। कल्हण वर्ण का अर्थ अनेक जातियों से पूर्ण कश्मीर मण्डल तथा अनेक रंगों अर्थात् वर्णों से युक्त इन्द्रधनुष किया है।

(२) शतह्रद—इस शब्द को विलसन ने नदी समझा है तथा पादटिप्पणी में 'शतह्रद' को शतलज नदी माना है। यह अर्थ गलत है। (पृष्ठ २९)

(३) पयोवहा—इसको भी विलसन ने नदी माना है। पादटिप्पणी में पयोवहा को व्यास नदी समझाने का प्रयास किया है। वह अर्थ भी गलत है। (पृष्ठ २९) वह अर्थ स्वरसाम्यता के कारण लगाने का प्रयास किया गया है।

चक्राते च महाभागौ विभ्रमाभरणं भुवः ।
तुङ्गेश्वरं हरावासं कतिकाख्यं च पत्तनम् ॥१४॥

१४. उन दोनों महाभागों में भूमि विलास आभरण हर का आवास तुङ्गेश्वर[1] तथा कतिका[2] नामक पत्तन[3] का निर्माण कराया।

---

१४ (१) तुंगेश्वर : वह मन्दिर कश्मीर में कहाँ पर है अभी तक पता नहीं चल सका है। तुंगेश्वर मन्दिर का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है। उसका वर्णन विष्णु, वाराह, तथा वारह मूला के सन्दर्भ में किया गया है।

देवं नारायणस्थाने पश्चिमे तु वरप्रदम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं देवं वराहस्य समीपगम् ॥
1158 : १२६९.७०

वराहं नरसिंह च बहुरूपं वरप्रदम् ।
सप्तर्षीणां तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा ॥
1159 : १२७०-१२७१ ॥

तुङ्गवासं च वरदं च वरदं च स्वयंभुवम् ।
गुहावासं च योगीशं अनन्तं कपिलं मुनिम् ॥
1160 : १२७१.७२

कल्हण ने तुंगेश का पुनः वर्णन तरंग ६ में 'तुंगेश्वरापणोपान्तादुज्जगाम' किया है। (रा० ६: १९०)

तुंगक्षेत्र का भी उल्लेख नीलमत पुराण में आया है। यथा—

बिन्दुनादेश्वरं तीर्थं सोमतीर्थं पृथूदकम् ।
तुंगेशतीर्थक्षेत्रं तु उत्तंकस्वामिनं तथा ॥ 1351 : १५६६

'तुङ्ग' शब्द का अर्थ उन्नत, पर्वत, प्रलम्ब, मुख्य आदि होता है। तुंगेश शब्द चन्द्रमा, सूर्य, शिव, कृष्ण के लिये भी प्रयुक्त होता है।

तुंगनाथ हिमालय पर स्थित एक शिवलिंग है। उसके कारण वह स्थान तीर्थस्थान माना गया है। इसे भृगुतुंग भी कहते हैं। श्राद्ध तथा पितृ कार्य के लिये पवित्र माना गया है। राजा ययाति ने यहाँ पर तप किया था।

तुंगशेखर एक पर्वत है। वनपर्व महाभारत में इसे महागिरि कहा गया है। भृगु महर्षि ने यहाँ तपस्या की थी। तुंगकारण्य का उल्लेख वनपर्व (८५ : ४६) तथा तुंग वेणु एक भारतीय नदी का भीष्म पर्व (७ : २९) में उल्लेख मिलता है। वाराह पुराण तुंगकूट तीर्थ का वर्णन करता है। कोकामुख तीर्थ के सन्दर्भ में इसका उल्लेख किया गया है। वनपर्व (८४ : १५८) में वर्णन मिलता है। तुंगतीर्थ में स्नान करने पर पूर्व जन्म की स्मृति जागृत होती है। विष्णु के तीन प्रसिद्ध तीर्थ स्थान कहे गये हैं—कोकामुख बद्री नारायण तथा लोहार्गल। कोकामुख क्षेत्र को वाराह क्षेत्र कहते हैं, यह नेपाल में सुवर्ण कौसिकी अर्थात् सुनकोसी नदी के वाम तट पर, 'वराह छत्र' नगर अर्थात् वाराह क्षेत्र है। काठमाडू से १२४ मील दक्षिण है। यह धौलागिरि है।

(२) कतिका-कतिक—यह वर्तमान ग्राम कई है। ऊलर परगना में है। वितस्ता के दक्षिण तट पर है। नदी से बहुत दूर नहीं है। चचपोर ग्राम के समीप है।

(३) पत्तन—लोक प्रकाश पत्तन की परिभाषा देता है :

ग्रामायुतसहस्राणां पत्तनं ज्ञायते बुधैः ।
तत्रापि सारं नगरं तत्पौराः पुरवासिनः ॥
पृष्ठ ५९ श्लोक नं० ४

[दस सहस्र ग्राम वाले स्थान को पत्तन कहते हैं उसमें भी मूल (सारं) को नगर कहते हैं। वहाँ के रहने वाले को पौर (पुरवासी) कहते हैं।]

क्वचिन्मडवराज्यान्तःस्थाने चण्डातपोज्ज्वले ।
तत्प्रभावेन फलितं वृक्षैस्तत्क्षणरोपितैः ॥१५॥

१५. मडव[1] राज्यान्तर्गत किसी चण्डातपोज्ज्वल स्थान में उनके प्रभाव द्वारा तत्क्षण-रोपित वृक्ष फल युक्त हुए थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५ में 'मडवराज्या' का 'मल्वरण्य', मारवराज्या'; 'तपोज्ज्वले' का 'तपोल्वणे' तथा 'वेन' का 'प्रभावेण' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५ (१) मडव राज्य : काश्मीर अत्यन्त प्राचीन काल से दो अंचलों में विभक्त है। उनका आजकल का नाम मराज तथ कमराज है। कामराज्य का अपभ्रंश कमराज तथा मडवराज्य का अपभ्रंश मराज है। श्रीनगर से वितस्ता के अधोभागवर्ती परगने कमराज तथा श्रीनगर से ऊपर वितस्ता के दोनों तटवर्ती परगने मडवराज के काश्मीर उपत्यका के उत्तरी पश्चिमी ७ परगने खुयहोम, जैनगिर, लोली, उत्तर, मच्छुर, हमल तथा त्रहिन हैं। आईने अकबरी में अबुल फजल ने दोनों भागों की सीमा दोनों विभागों का मध्यवर्ती केन्द्र वर्तमान शेर-गढ़ी राज्य भवन का स्थान माना है। मराज कश्मीर उपत्यका का पूर्वीय भाग था। कमराज पश्चिमी भाग था। (आईने अकबरी २: ३६८) अबुल फजल ३८ परगनों में कश्मीर को विभाजित करता है। श्रीनगर मराज में था। उसके ऊपर के सभी परगने भी मराज में थे। हिन्दूराज्य काल में दोनों का प्रशासकीय विभाजन किस प्रकार था। निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है।

लोक प्रकाश ने मराज की सीमा दी है :

मध्यं मराजमित्युक्तं ग्रामपञ्चसहस्रकम् ।
श्रीवन्तकादयारभ्य मनुवान्तं स्मृतं बुधैः ॥ ३ ॥
मनुवाराजमित्यूचुः पूतनात्कथ्यते किल ।
सतीसरसि ग्रामाणां वक्ष्यमाणमुदीरितम् ॥ ४ ॥
—पृष्ठ ७८

मध्यस्थित ५ सहस्र ग्रामों को 'मराज' और श्रीवन्तक से लेकर मनुवान्त को पवित्र होने के कारण मनुवाराज कहते हैं। सतीसर (कश्मीर) में ग्रामों का जो प्रमाण कहा गया है वह निम्न है। इसी प्रकार कमराज की भी परिभाषा दी गयी है।

खोयाश्रमिकादारभ्य कामराजं स्मृतं बुधैः ।
वातूलल्लहरान्तं च नगरैः परिवारितः ॥ १ ॥
—पृष्ठ ७७

इस श्लोक में 'वातूल' का पाठभेद 'वामूल' भी प्राप्त है। यह पाठ समुचित प्रतीत होता है।

खोयाश्रमिक से लेकर लहर के अन्त तक नगरों से परिवृत क्षेत्र को विद्वानों ने कामराज कहा है।

इस समय राज्य तीन प्रदेशों में विभक्त है— कश्मीर, जम्मू और लद्दाख। स्वाधीनता पूर्व के कश्मीर राज्य का तृतीयांश भूखण्ड इस समय पाकिस्तान के पास अनधिकृत रूप से है। कश्मीर उपत्यका बनिहाल मूल से आरम्भ होकर एक दिशा में लोलाव तथा दूसरी दिशा में बारहमूला तक विस्तृत है। लम्बाई चौरासी मिल तथा चौड़ाई चौबीस मिल है। अनन्त नाग के समीप केवल दस या बीस मील चौड़ी है। यह कश्मीर का हृदय है। डोगरा राज्य काल में जम्मू, कश्मीर तथा सर-हदी इलाकों के सूबों में विभक्त था। जम्मू प्रदेश में; जम्मू, ऊधमपुर, मीरपुर, कठुआ, पुंछ तथा चनेनी जिले थे। कश्मीर प्रदेश में अनन्त नाग, बारह मूला, मुजफ्फराबाद जिले थे। सरहदी इलाका में लद्दाख, गिलगित, तथा गिलगित आंसेसी के जिले थे।

पाकिस्तान के पास अनधिकृत रूप से मीरपुर जिला की तहसील भीमबर, तथा चार गाँव, छम, देवा, चकला, तथा मनावर के अतिरिक्त शेष जिला है। पुंछ जिला में, जागीर पुंछ के भाग की पूरी तहसील, तथा हवेली की आधी तहसील पाकिस्तान

नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः ।
द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्दकोऽभवत् ॥१६॥

१६. उसी के समय जिसने सर्व जन प्रेक्ष्य नाट्य का निर्माण किया, वह द्वैपायन[1] मुनि का अंशभूत महाकवि चन्दक[2] था ।

के पास है । मुजफ्फराबाद जिला में मुजफ्फराबाद, उरी की आधी तहसील, और तीन चौथाई करनाट पाकिस्तान के पास हैं । गिलगित का दूसरा इलाका पहले का रिटूसीक्षेत्र, लद्दाख सूबा में स्करदा की तहसील, मासवा का थोड़ा भाग तथा करगिल की एक चौथाई तहसील पाकिस्तान के पास है ।

डोगरा राज्य काल के पश्चात अक्टूबर सन् १९४७ से जनवरी सन् १९४९ तक पाकिस्तान से संघर्ष था । जम्मू कश्मीर राज्य इस समय निम्नलिखित विभागों में विभक्त है—जम्मू प्रदेश में जम्मू, कठुआ उधमपुर, डोडा, नय शहर के जिले है । कश्मीर प्रदेश में श्रीनगर, अनन्त नाग और बारह मूला हैं । सरहदी इलाकाजात में लद्दाख का जिला है उसमें करगिल सम्मिलित है । पहली जनवरी सन् १९४९ को युद्ध विराम रेखा के आधार पर विभाग किया गया है । यह युद्ध विराम रेखा मुनावर तहसील भीमवर से आरम्भ हो कर, देवह, और बटाला के बीच होकर नौशेरा और राजौरी के करीब से जाती है । पुंछ का शहर बायीं ओर छोड़कर उड़ी के दरमियान से झेलम के उस पार से होती हुई काजी नाग तक गयी है । काजी नाग से आगे बढ़कर टिथवल के करीब से हो कर परवर्या गली के साथ केरन में जाती है । यहाँ से पूरब तरफ गुरेज से हो कर, करगिल कमया के बीच में होकर, तहसील इस्करदू की बाटली तहसील लद्दाख तक चली जाती है ।

सन् १९४१ के बाद कश्मीर में जनगणना नहीं हुई । उस समय की जनगणना के अनुसार जम्मू कश्मीर राज्य की आबादी ४०,२४,९८० थी । कश्मीर प्रदेश की आबादी १७,२८,६००, जम्मू प्रदेश की १९,९१,४८०, सरहदी इलाके अर्थात् लद्दाख करगिल में ३,११,३००, जागीर पूंछ में ४, २१, ७०० और चनैनी में ११,८०० लोग आबाद थे । उसमें मुसलमान ३०, ७३, ५४०, सवर्ण हिन्दू, ५, ८६, ६२१, हरिजन १, १३, ४६४, सिख ६५, ९०३, बौद्ध ईसाई जैन आदि ८८,०८८ थे । पूरा क्षेत्रफल लगभग ८४ हजार वर्ग मिल था । प्रति मिल में औसतन ४७ व्यक्ति निवास करते थे । सरहदी क्षेत्र मे प्रति मिल ९ व्यक्ति निवास करते थे । भारतीय क्षेत्र अधिक उपजाऊ तथा कम पहाड़ी है । पाकिस्तानी भाग पहाडी और वन घन से भरा है ।

युद्ध बन्दी के पश्चात् भारतीय कश्मीर की आबादी में ६० प्रतिशत मुसलमान तथा ४० प्रति शत हिन्दू है । पाकिस्तान मे अनधिकृत कश्मीर में १३ लाख मुसलमानों की आबादी थी । भारतीय क्षेत्र में १८ लाख मुसलमान हैं । उसमे १६ लाख केवल कश्मीर उपत्यका में हैं । केवल २ लाख सूबा जम्मू में है । गैर मुसलिम जम्मू में १० लाख और कश्मीर सूबा में २ लाख हैं । इस प्रकार १८ लाख मुसलमान तथा १२ लाख गैरमुसलिम इस समय आबाद हैं । पाकिस्तान में १२ लाख सबके सब मुसलमान हैं । सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार जम्मू कश्मीर की भारतीय भाग की आबादी ३५:८३,००० और क्षेत्रफल २२२८०२ वर्ग किलोमीटर है । सन् १९४१ की गणना अनुसार इस क्षेत्र की आबादी ३०,००,००० थी ।

कश्मीर राज्य का विभाजन तथा पुनर्गठन अनेक बार हुआ है । प्राचीन भूगोल तथा विभाग से आज का विभाजन सर्वथा भिन्न है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६ में 'यश्चक्रे' का 'यच्चक्रे'; 'नविः' का 'नवे.' 'पायन' का 'पायनं' तथा 'चन्दको'

का पाठभेद 'चन्द्रको' और 'चर्मको' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६(१) द्वैपायन : व्यास पाराशर्य का नाम द्वैपायन है। इनका जन्म यमुनाद्वीप में हुआ था। अतएव नाम 'द्वैपायन' पड़ा था। (म० आ० ५४:२) इनकी माता का नाम काली था। अस्तु नाम 'कृष्ण द्वैपायन' भी रखा गया था। भागवत पुराण में उल्लेख आता है। वह स्वयं कृष्ण वर्ण थे। वर्ण के कारण नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ गया था। वैशाख पूर्णिमा इनका जन्म दिन है। आषाढ़ पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा मनायी जाती है।

व्यास ने वेदों की पुनर्रचना की थी। इसलिए उन्हें वेदव्यास कहा जाता है।

'विव्यास वेदान् यस्मात्स तस्माद् व्यास इति स्मृतः।'
(म० आ० ६७ : ७३।)

वायु पुराण में इन्हें 'पुराण प्रवक्ता' कहा गया है (वायु ६० : ११–२१; विष्णु धर्म : ११७४) अत्यन्त कठोर तपस्या करने के कारण अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त किये थे। इन्होने दूरश्रवण, दूर दर्शन अनेक विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त की थी।
(म० आ० : ३७:१६।)

कौरव पाण्डवों के पितामह थे। उनके महान् हितचिन्तक रूप में उनका चरित्र चित्रण किया गया है। जनमेजय के यज्ञ मण्डप में सर्प यज्ञ के समय उपस्थित थे। वैशम्पायन ने अपने शिष्य को स्वरचित महाभारत सुनाने का आदेश दिया था। (म० आ० ५४) पाण्डवों के वनवास काल में युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति विद्या' का उपदेश दिया था। (म० व० ३७:२७–३०) संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। संजय महाभारत युद्ध का आँखा देखा वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। (म० भी० २९) संजय की दिव्य दृष्टि युद्ध के पश्चात् नष्ट हो गयी थी। (म० सौ० : ९:५८) घृताची अप्सरा से इनको शुक्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। (म. आ. ५७:७४) किन्तु स्कन्द पुराण में शुक्र को जाबालि ऋषि की कन्या वटिका से उत्पन्न कहा गया है। (स्कन्द : ६८ : १४७–१४८)

द्वैपायन चिरंजीवी हैं। वेदरक्षणार्थ उसका विभाजन किये थे। पौराणिक साहित्य तथा महाभारत का निर्माण किया था। (वायु०६०:१-१६) वेद की चार स्वतंत्र संहिताओं को बनाया था।

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदमकल्पयत्।
(वायु० ६०:१९ ब्रह्माण्ड० ३:३४:१९)

व्यास की वैदिक शिष्य परम्परा है। ऋग्वेद की शिष्य परम्परा मे, पैल, बाष्कल (इन्द्रप्रमति) बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर, माण्डुकेय; सत्यश्रवस्, सत्यहित, सत्यश्री, शाकल्य, बाष्कलि, शाकपूर्ण, पथगारि, शैशिरेय, वत्स, तथा शत बलाक है। ऋग् वेद की २१ शाखाएँ हैं। उनमे केवल शाकल, बाष्कल एवं सांख्यायन की संहिताएँ उपलब्ध है। शेष दो जिनका निर्देश प्राप्त है आश्वलायन एवं मण्डूकायन है। आश्वलायन एवं सांख्यायन शाखाओं के प्रवर्तक कौन आचार्य थे कहना कठिन है।

व्यास की यजुर्वेद की वैदिक शिष्य परम्परा में, वैशंपायन, याज्ञवल्क्य, ब्रह्मणति, तित्तिरी, माध्यंदिन, काण्व, श्यामाययाति, आसुरि एवं अलिम्प है। कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं मे तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एव कापिष्ठल की संहिताएँ प्राप्त हैं। शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखाएं है। उनमे केवल काण्व एवं माध्यंदिन उपलब्ध है।

सामवेद की वैदिक शिष्य परम्परा में, जैमिनि, सुमन्तु—जैमिनि, सुत्वन—जैमिनि, सुकर्मन्—जैमिनि, पौष्पिण्ड्य, लौगाक्षि, कुथुमि, कुशितिन्, लांगलि, राणायनीय, तण्डिपुत्र, पराशर, भागवित्ति, लोमगायनी, पाराशर्य, प्राचीन योग, आसुरायण, तथा पतंजलि हैं। सामवेद की १०० शाखाएँ हैं। उनमें केवल कौथुम तथा राणायनीय संहिताएँ प्राप्त हैं।

अथर्व वेद की शिष्य परम्परा मे सुमन्त, कबंध, पथ्य, देवादर्श, पिप्पलाद, जाजलि—शौनक, सैन्ध-

नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः।
द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्दकोऽभवत् ॥१६॥

१६. उसी के समय जिसने सर्व जन प्रेक्ष्य नाट्य का निर्माण किया, वह द्वैपायन[1] मुनि का अंशभूत महाकवि चन्दक[2] था।

के पास है। मुजफराबाद जिला में मुजफ्फराबाद, उरी की आधी तहसील, और तीन चौथाई करनाट पाकिस्तान के पास है। गिलगित का दूसरा इलाका पहले का रिद्रुसीक्षेत्र, लद्दाख सूबा में स्करया की तहसील, मासवा का थोड़ा भाग तथा करगिल की एक चौथाई तहसील पाकिस्तान के पास है।

डोंगरा राज्य काल के पश्चात् अक्टूबर सन् १९४७ से जनवरी सन् १९४९ तक पाकिस्तान से संघर्ष था। जम्मू कश्मीर राज्य इस समय निम्नलिखित विभागों में विभक्त है—जम्मू प्रदेश में जम्मू, कठुआ ऊधमपुर, डोडा, नय शहर के जिले हैं। कश्मीर प्रदेश में श्रीनगर, अनन्त नाग और बारह मूला है। सरहदी इलाकाजात में लद्दाख का जिला है उसमें करगिल सम्मिलित है। पहली जनवरी सन् १९४९ को युद्ध विराम रेखा के आधार पर विभाग किया गया है। यह युद्ध विराम रेखा मुनावर तहसील भीमवर से आरम्भ हो कर, देवह, और बटाला के बीच होकर मीदौरा और राजौरी के करीब से जाती है। पूछ का शहर बायीं ओर छोड़कर उड़ी के दरमियान से झेलम के उस पार से होती हुई काजी नाग तक गयी है। काजी नाग से आगे बढ़कर टिफवल के करीब से हो कर थरवयां गली के साथ केरन में जाती है। यहाँ से पूरब तरफ गुरेज से हो कर, करगिल कसबा के बीच से होकर, तहसील इस्करदू की काटती तहसील लद्दाख तक चली जाती है।

सन् १९४१ के बाद कश्मीर में जनगणना नहीं हुई। उस समय की जनगणना के अनुसार जम्मू कश्मीर राज्य की आबादी ४०,२४,९८० थी। कश्मीर प्रदेश की आबादी १७,२८,६००, जम्मू प्रदेश की १५,६१, ५८०, सरहदी इलाके अर्थात् लद्दाख करगिल में ३,११,१००, जागीर पूछ में ४, २१, ७०० और चनेनी में ११,८०० लोग आबाद थे। उसमें मुसलमान ३०, ७३, ५४०, सवर्ण हिन्दू, ५, ८६, ६२१, हरिजन १, १३, ४६४, सिख ६५, ९०३, बौद्ध ईसाई जैन आदि ८८,०८८ थे। पूरा क्षेत्रफल लगभग ८४ हजार वर्ग मिल था। प्रति मिल में औसतन ४७ व्यक्ति निवास करते थे। सरहदी क्षेत्र मे प्रति मिल ९ व्यक्ति निवास करते थे। भारतीय क्षेत्र अधिक उपजाऊ तथा कम पहाड़ी है। पाकिस्तानी भाग पहाड़ी और वन धन से भरा है।

युद्ध बन्दी के पश्चात् भारतीय कश्मीर की आबादी में ६० प्रतिशत मुसलमान तथा ४० प्रति शत हिन्दू है। पाकिस्तान में अनधिकृत कश्मीर में १३ लाख मुसलमानों की आबादी थी। भारतीय क्षेत्र में १८ लाख मुसलमान है। उसमें १६ लाख केवल कश्मीर उपत्यका में है। केवल २ लाख सूबा जम्मू में है। गैर मुसलिम जम्मू में १० लाख और कश्मीर सूबा में २ लाख है। इस प्रकार १८ लाख मुसलमान तथा १२ लाख गैरमुसलिम इस समय आबाद है। पाकिस्तान में १२ लाख सबके सब मुसलमान हैं। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार जम्मू कश्मीर की भारतीय भाग की आबादी ३५;८३,००० और क्षेत्रफल २२२८०२ वर्ग किलोमीटर है। सन् १९४१ की गणना अनुसार इस क्षेत्र की आबादी ३०,००,००० थी।

कश्मीर राज्ज का विभाजन तथा पुनर्गठन अनेक बार हुआ है। प्राचीन भूगोल तथा विभाग से आज का विभाजन सर्वथा भिन्न है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६ में 'यश्चक्रे' का 'यच्चक्रे'; 'कविः' का 'कवेः' 'पायन' का 'पायनं' तथा 'चन्दको'

का पाठभेद 'चन्द्रको' और 'चर्मको' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६(१) द्वैपायन : व्यास पाराशर्य का नाम द्वैपायन है। इनका जन्म यमुनाद्वीप में हुआ था। अतएव नाम 'द्वैपायन' पड़ा था। (म० आ० ५४:२) इनकी माता का नाम काली था। अस्तु नाम 'कृष्ण द्वैपायन' भी रखा गया था। भागवत पुराण में उल्लेख आता है। वह स्वयं कृष्ण वर्ण थे। वर्ण के कारण नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ गया था। वैशाख पूर्णिमा इनका जन्म दिन है। आषाढ़ पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा मनायी जाती है।

व्यास ने वेदों को पुनर्रचना की थी। इसलिए उन्हें वेदव्यास कहा जाता है।

'विव्यास वेदान् यस्मात्स तस्माद्‌व्यास इति स्मृतः।'
(म० आ० ५७ : ७३।)

वायु पुराण में इन्हें 'पुराण प्रवक्ता' कहा गया है (वायु ६० : ११–२१; विष्णु धर्म : १।७४) अत्यन्त कठोर तपस्या करने के कारण अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त किये थे। इन्होंने दूरश्रवण, दूर दर्शन अनेक विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त की थी।
(म० आ० : ३७:१६।)

कौरव पाण्डवों के पितामह थे। उनके महान् हितचिन्तक रूप में उनका चरित्र चित्रण किया गया है। जनमेजय के यज्ञ मण्डप में सर्प यज्ञ के समय उपस्थित थे। वैशम्पायन ने अपने शिष्य को स्वरचित महाभारत सुनाने का आदेश दिया था। (म० आ० ५४) पाण्डवों के वनवास काल में युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति विद्या' का उपदेश दिया था। (म० व० ३७:२७–३०) संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। संजय महाभारत युद्ध का आँखों देखा वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। (म० भी० २:९) संजय की दिव्य दृष्टि युद्ध के पश्चात् नष्ट हो गयी थी। (म० सौ० : ९:५८) घृताची अप्सरा से इनको शुक्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। (म. आ. ५७:७४)

किन्तु स्कन्द पुराण में शुक्र को जाबालि ऋषि की कन्या वटिका से उत्पन्न कहा गया है। (स्कन्द : ९८ : १४७–१४८)

द्वैपायन चिरंजीवी हैं। वेदरक्षणार्थ उसका विभाजन किये थे। पौराणिक साहित्य तथा महाभारत का निर्माण किया था। (वायु० ६०:१-१६) वेद की चार स्वतंत्र संहिताओं को बनाया था।

ततः स ऋच उद्‌धृत्य ऋग्वेदमकल्पयत्।
(वायु० ६०:१९ ब्रह्माण्ड० ३:३४:१९)

व्यास की वैदिक शिष्य परम्परा है। ऋग्वेद की शिष्य परम्परा में, पैल, बाष्कल (इन्द्रप्रमति) बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर, माण्डुकेय, सत्यश्रवस्, सत्यहित, सत्यश्री, शाकल्य, बाष्कलि, शाकपूर्ण, पत्रभारि, शैशिरेय, वत्स, तथा शत बलाक हैं। ऋग् वेद की २१ शाखाएँ हैं। उनमें केवल शाकल, बाष्कल एवं सांख्यायन की संहिताएँ उपलब्ध हैं। शेष दो जिनका निर्देश प्राप्त है आश्वलायन एवं मण्डूकायन हैं। आश्वलायन एवं सांख्यायन शाखाओं के प्रवर्तक कौन आचार्य थे कहना कठिन है।

व्यास को यजुर्वेद की वैदिक शिष्य परम्परा में, वैशंपायन, याज्ञवल्क्य, ब्रह्मराति, तित्तिरी, माध्यंदिन, काण्व, श्यामायपाति, आसुरि एवं अलिम्प हैं। कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं में तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एवं कापिष्ठल की संहिताएँ प्राप्त हैं। शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखाएँ हैं। उनमें केवल काण्व एवं माध्यंदिन उपलब्ध हैं।

सामवेद की वैदिक शिष्य परम्परा में, जैमिनि, सुमन्तु—जैमिनि, सुत्वन—जैमिनि, सुकर्मन्—जैमिनि, पौष्पिण्ड्य, लौगाक्षि, कुथुमि, कुशितिन्, लांगलि, राणायनीय, तण्डिपुत्र, पराशर, भार्गवित्ति, लोमगायनी, पाराशर्य, प्राचीन योग, आसुरायण, तथा पतंजलि हैं। सामवेद की १०० शाखाएँ हैं। उनमें केवल कौथुम तथा राणायनीय संहिताएँ प्राप्त हैं।

अथर्व वेद की शिष्य परम्परा में सुमन्त, कबंध, पथ्य, देवादर्श, पिप्पलाद, जाजलि—शौनक, सैंधव-

तयोः प्रभावमाहात्म्यजिज्ञासार्थमिवोद्यता ।

भयंकर अकाल[1] प्रजासु दुस्सहा जातु व्यापद्दैवी व्यजृम्भत ॥१७॥

१७. कदाचित् उन दोनों का प्रभाव माहात्म्य जानने के लिये ही मानो प्रजाओं में दुस्सह दैवी आपत्ति भयंकर रूप से प्रकट हुई।

वायन, बभ्रु, और मंजुकेश हैं। अथर्ववेद की २ शाखाएँ हैं। उनमें दोनों पिप्पलाद तथा शौनक प्राप्त हैं।

समस्त पुराणों की श्लोक संख्या ४,२५,००० है। उनमें १० पुराण अपूर्ण हैं। केवल ८ पूर्ण हैं। नृसिंह, भागवत, वायु एवं शिव पुराण को महापुराण नहीं माना जाता। इन पुराणों में अग्नि पुराण के देवता अग्नि हैं। गुण तामस है। स्थल नैमिषारण्य है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के देवता सूर्य हैं। गुण राजस है। स्थान नैमिषारण्य है। पद्मपुराण के देवता ब्रह्मा हैं। गुण सात्त्विक है। स्थान नैमिषारण्य है। पाप पुराणों के देवता विष्णु हैं। गुण सात्विक है। उनमें गरुड़ एवं नारद का स्थान नैमिषारण्य, नृसिंह का स्थान प्रयाग, भागवत का स्थान सहस्र वार्षिक सत्र, और विष्णु का स्थान दृषद्वतीतोर दीर्घसत्र है। शेष पुराणों के देवता शिव हैं। उनमें वराह और कूर्म सात्विक हैं। मार्कण्डेय, लिंग, ब्रह्माण्ड, भविष्य, तथा वामन राजसिक हैं। स्कन्द, मत्स्य, तथा शिव तामसिक हैं। वायु पुराण का क्या प्रधान गुण है। निश्चित नहीं किया जा सकता। कूर्म, लिंग, स्कन्द, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य का स्थान नैमिषारण्य है। भविष्य का शतानीक नृप सभा, वराह का पृथ्वी और शिव का स्थान प्रयाग है। मारकण्डेय, वायु का स्थान निश्चित नहीं है।

व्यास का जीवन संदेश था। चतुर्विध पुरुषार्थों में केवल धर्माचरण द्वारा ही अर्थ कामादि पुरुषार्थ प्राप्त हो सकते हैं। केवल धर्म ही शाश्वत है। चिरंतन है। नित्य है। शेष सुखोपभोग एवं पुरुषार्थ अनित्य हैं। वे कितना मार्मिक वचन कहते हैं :—

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥
(म० स्व० २२४९)

'मैं हाथ उठाकर समस्त विश्व से कहता आ रहा हूँ कि अर्थ एवं काम से भी अधिक धर्म महत्व पूर्ण है। किन्तु कोई भी मनुष्य मेरे इस कथन की ओर ध्यान नहीं देता है।'

द्रष्टव्य है पृष्ठ १८३ पादटिप्पणी-व्यास।

(२) चन्द्रक : सुभाषितावली में चन्द्रक चन्द्रगोपी नाम से सम्बोधित किया गया है। पाश्चात्य लेखक साइलवियन लेवी का मत है कि चीनी पर्यटक इत्सिंग द्वारा उल्लिखित चन्द्र ही चन्द्रक कवि है। तिब्बती भाषा में एक नाटक मिला है। उसमें चन्द्र-गोपिन का वर्णन है। महाकवि कल्हण ने उसकी तुलना महाभारतकार से की है। सुभाषितावली में उसके पद प्राप्त होते हैं।

प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं सन्त्यज रुषम्
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः।
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥
॥ १६२९ ॥

एषा हि मे रणगतस्य दृढा प्रतिज्ञा
द्रक्ष्यन्ति यन्न रिपवो जघनं हयानाम्।
युद्धेषु भाग्यचपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैवं यदिच्छति जयं च पराजयं च ॥२२७५॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७ में 'दैवी' का पाठभेद 'दैवी' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७ (१) अकाल : कल्हण ने कश्मीर के अनेक अकालों का वर्णन किया है। सम्राट् अकबर के समय में भी भीषण अकाल पड़ा था। कल्हण ने अपने काल के समीप पड़ने वाले अकालों का वर्णन भी दिया है। अकबर के समय कश्मीर में पर्यटन करने

पाकोन्मुखशरच्छालिच्छन्नकेदारमण्डले ।
मासि भाद्रपदेऽकस्मात्पपात तुहिनं महत् ॥१८॥

महा अकाल :

१८. भाद्रपद[1] मास में पकते हुए शरद् कालीन शालियुक्त क्षेत्र मण्डल में अकस्मात् महान् तुहिन पात हुआ ।

वाले ईसाई पर्यटकों ने उनका वर्णन किया है । उनके पढ़ने से रोंगटा खड़ा हो जाता है ।

श्री विनोइस्ट डी गोइस जो सम्राट् अकबर के निवेदन पर कश्मीर गये थे, वर्णन करते हैं : कश्मीर में इस अकाल के काल में हमने देखा कि बहुत सी माताएँ वे घर बार की हो गयी थीं । अपने बच्चों को कुछ खिलाने में असमर्थ हो कर उन्हें खुले ग्राम बाजारों में बेचने लगी थीं । बहुत से बालकों को पादरियों ने खरीद कर उनका बपतिस्मा कर उन्हें ईसाई बना लिया । एक मुसलमान अपना एक बच्चा बेचने के लिये लाया । पादरी ने बच्चे को माँ को कुछ धन देकर बच्चा इसलिए वापस कर दिया कि वह बड़े होने पर कश्मीर में ईसाई होकर नहीं रह सकता था । दूसरे दिन लड़के की माँ पुनः पादरी के यहाँ आई । उससे बोली कि बच्चा मरने ही वाला है । उसके घर चलकर उसका बपतिस्मा कर दिया जाय । पादरी कुछ पूर्तगालियों के साथ बच्चे के घर गया । उसके पिता की अनुमति लेकर उसका बपतिस्मा किया । मरने पर लड़के का पिता बच्चे का खतना करना चाहता था परन्तु पादरी ने खतना नहीं करने दिया और ईसाई धर्मानुसार उसे गाड़ दिया । इसी प्रकार कुछ द्रव्य लेकर एक दूसरी स्त्री अपने बच्चे का बपतिस्मा कराने के लिए ले आई । बच्चे का बपतिस्मा ज्यों ही समाप्त हुआ बच्चा मर गया । (अकबर एण्ड जिसूइस्टा पृष्ठ ७८)

आइने अकबरी—इस राजा के समय सूर्य जब सिंह राशि में था उस समय इतना हिमपात हुआ कि पूरी फसल नष्ट हो गई । उससे देश में भयंकर अकाल फैल गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८ में 'च्छन्न' का 'छन्ने' तथा 'छन्ने' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१८ (१) भाद्रपद अकाल : काश्मीर का मुख्य अन्न शाली है । भारत में वर्षाकालीन फसल है । धान कई प्रकार के होते हैं । कोई साठ दिन में होता है और कोई भाद्र कार्तिक और अगहन मास तक तैयार होता है । शरद कालीन धान को भारत में अगहनिया धान कहते हैं । कश्मीर में भाद्रपद में शाली पुष्ट होने लगती है । वह पकने लगती है । कार्तिक शुक्ल पक्ष में शाली काटने को अच्छा माना जाता है । सितम्बर अक्टूबर में वह काट ली जाती है ।

काश्मीर के ग्रामीण क्षेत्रों में जाने का यह सबसे अच्छा समय है । फल भी हो जाते हैं । सेव, बबूगोशा अखरोट से वृक्ष लद जाते हैं । खेतों में सुवर्ण वर्ण शाली अत्यन्त सुहावनी लगती है ।

काश्मीर उपत्यका की मुख्य उपज शाली है । उष्ण तापमान ९४ डिग्री से ऊपर नहीं जाता । वर्ष में लगभग २६ इंच वर्षा होती है । उत्तर पूर्व का भाग उत्तर पश्चिम को अपेक्षा कम ऊँचा है । दस इंच से कम जहाँ वर्षा होती है, उसे इस समय खुश्क, दस से २५ इंच तक वर्षा वाले को खुश्कवार तथा २५ इंच से अधिक जहाँ वर्षा होती है उसे मरतूब कहते हैं । कश्मीर उपत्यका की जल वायु खुश्कवार प्रचलित कश्मीरी भाषा में कही जायगी । उसे मार्तादिल भी कह सकते हैं । सूर्य की रश्मि

शीतल वायु के कारण तपती नहीं। ग्रीष्म ऋतु आने पर फारस की खाड़ी तथा भूमध्य सागर से आती वायु के कारण साइक्लोन, अन्धड़ आता है। वर्षा होती है। फरवरी मार्च तथा आधे अप्रैल तक पानी बरस जाता है। पहाड़ियों पर वर्षा औसतन २६ इंच होती है। शीत काल में कश्मीर उपत्यका में १६ इंच वर्षा होती है। ग्रीष्म ऋतु में ८ इंच पानी बरसता है। अप्रैल से अक्टूबर तक तापमान ५४ से ९६ डिग्री तक रहता है। अतएव ग्रीष्म काल में हवा मार्तदिल और खुश्कवार होती है।

कश्मीर उपत्यका में केला, बरगद, पीपल, आम, अमरूदादि के वृक्ष नहीं उगते। अखरोट, चिनार, सफेदा, देवदार, बेर तथा चीड़ के वृक्ष खूब दिखाई देते हैं। सेब, नासपाती, खुबानी, चेरी, सताल, अखरोट, आलूबा, बादाम तथा शाक भाजी होती है। अन्नों में शाली होती है।

शाली मुख्य उपज है। इसके लिये गरम और मरतूब हवा पानी की आवश्यकता होती है। जमीन समतल तथा पानी का उसमें रुकावट होना चाहिए। पहाड़ों पर सीढ़ीनुमा धान की खेती होती है। उपत्यका के मैदान में खेतों में शाली बोयी जाती है। काश्मीर उपत्यका में ही शाली की फसल सबसे अधिक होती है। उपत्यका की भूमि समतल तथा उपजाऊ है।

उपत्यका के लोगों का शाली अर्थात् चावल सर्वप्रिय भोजन है। कश्मीर राज्य में अब भी चावलभोजी लोगों की आबादी अधिक है। दक्षिणी भाग में में भूमि समतल है। सिंचाई का सुपास है। यहाँ पर प्राचीन काल से अत्यधिक शाली पैदा होती है। अनेकानेक नागों, सरोवरों, वितस्ता तथा कुओं से सिंचाई होती है।

कश्मीर उपत्यका में धान बोने का समय चैत्र अर्थात् १३ अप्रैल से आरम्भ होता है। सितम्बर १६ से धान काटने का समय आरम्भ हो जाता है। हिन्दी मास से कार्तिक शुक्ल पक्ष में शाली काटने का मुहूर्त माना जाता है।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय भी खेती का यही प्रकार था। मौसम में भी परिवर्तन नहीं हुआ है। शरद् ऋतु कुमार और कार्तिक का महीना होता है। भाद्रपद भादों का महीना होता है। धान कट कर शरद् अर्थात् कुमार कार्तिक में तैयार हो जाता है। भारत में धान की बोआई जुलाई अर्थात् आषाढ़ मास में होती है। विभिन्न प्रकार के धान विभिन्न समयों पर काटे जाते हैं।

मुख्य फसल धान की होती है। जुलाई में बोकर अगहन या कार्तिक के अन्त में काटते हैं। कश्मीर में यह समय अप्रैल मई में बोआई तथा सितम्बर अक्टूबर में कटाई का होता है। इस समय कश्मीर राज्य में १९० हजार हेक्टर क्षेत्रफल में शाली बोयी जाती है। इस समय शाली २१० मेट्रिक टन होती है। गेहूँ केवल ६६ हजार, तथा चना ७ हजार मेट्रिक टन होता है। अतएव शाली मुख्य खाद्य पदार्थ है। शाली के बाद मक्का १७० हजार हेक्टर टन १८० हजार मीटर क्षेत्र में बोया जाता है।

शरद् कालीन वायु उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूरब बहती है। यह हवा झंझावात, साइक्लोन, उपल वृष्टि तथा शीत के साथ प्रायः उग्र होने पर आती है। कश्मीर तथा हिमाचल में तुषारपात एवं शीतलहरी आनेपर उसका तुरन्त प्रभाव दिल्ली, पंजाब तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश पर पड़ता है।

दक्षिण पूरब से चलने वाली हवा नम तथा गर्म होती है। वह मानसून होती है। उससे वर्षा होती है। कश्मीर में भाद्रपद मास में वायु उत्तर पश्चिम से चलने लगती है। उत्तर से आने वाली वायु हिमाच्छादित तथा शीत कटिबन्ध से आने के कारण शीतल होती है। वह तापमान घटा देती है। अतएव असमय ही कश्मीर में तुषारपात हो जाता है।

कल्हण ने सत्य ही इस भौगोलिक दशा, प्राकृतिक जलवायु तथा उसके प्रभाव की ओर संकेत किया है। भाद्रपद में प्रायः शाली अधपकी हो जाती है। तुषारपात से शाली लोट जाती

तस्मिन्विश्वक्षयोद्भुक्तकालाट्टहसितोपमे ।
न्यमज्जन् शालयः साकं प्रजानां जीविताशया ॥१९॥

१९. काल के अट्टहास सदृश, विश्व विनाश हेतु, उत्पन्न उसमें (तुहिनपात में) प्रजाओं की जीवित आशाओं के साथ, शालियाँ निमज्जित हो गयीं।

अथाऽऽसीत्क्षुत्परिक्षामजनप्रेतकुलाकुलः ।
प्रकारो निरयस्येव घोरो दुर्भिक्षविप्लवः ॥२०॥

२०. क्षुधा से क्षीण जन-प्रेत-समूह-संकुल वह घोर दुर्भिक्ष विप्लव नरक[1] के प्रकार[2] तुल्य लगता था।

है। तुषार के आघात से बालें टूट जाती हैं। शीत के कारण अधपकी शाली का पकना बंद हो जाता है। वह नष्टप्राय हो जाती है। केवल पुवाल तथा जीवनहीन शाली का दर्शन होता है।

कश्मीर में उन दिनों कृषि तथा ऊनी वस्त्र के अतिरिक्त और कोई उद्योग-धन्धा नहीं था। शाली, मक्का, तथा फल एकमात्र जीवन यापन के साधन थे। कश्मीर उपत्यका में बाहर से आने वाला मार्ग पंजाब तथा बाहरी क्षेत्रों से दुर्गम है। अन्न यदि बाहर से उन दिनों घोड़ों, बैलों पर लाया भी जाता था, तो बहुत महँगा पड़ता था। गरीबों के साधन के बाहर उनका खरीदना हो जाता था। अन्न सरलतापूर्वक अधिक मूल्य देने पर भी नहीं मिल पाता था।

कल्हण इसी ओर इस श्लोक में संकेत करता है। आजकल के विकसित सड़कों, हवाई जहाजों, ट्रकों तथा रेलवे से उस समय की परिस्थिति पर विचार करना ठीक नहीं होगा। इन साधनों से, वह समय साधनहीन एक प्रकार से हिमालय की कुक्षि में था। जहाँ सभी कुछ कठिनता से प्राप्त हो सकता था।

कल्हण ने शाली नष्ट होने पर, जीवन के सहारा न प्राप्त होने पर कश्मीर मण्डल की क्या अवस्था हुई थी उसी पर अगले श्लोकों में अकाल का हृदयस्पर्शी अत्यन्त करुणोत्पादक वर्णन किया है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २० में 'कुलाकुलः' का 'समाकुलः' तथा 'प्रकारो' का 'प्राकारो' एवं 'प्रकरो' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०. (१) नरक : निरय शब्द का प्रयोग यहाँ कल्हण ने किया है। उसका अर्थ नरक होता है। स्वर्ग एवं नरक की कल्पना प्रायः सभी धर्मों में प्राप्त होती है। स्वर्ग का विलोमार्थक नाम नरक है। प्राचीन मान्यता के अनुसार मरणोत्तर अधोलोक स्थान में या अवस्था में देव इत्यादि द्वारा पापियों को उनके पाप तथा अपराधों का दण्ड दिया जाता है। शीत प्रधान देशों में नरक की कल्पना प्रायः हिमाच्छादित तथा उष्ण देशों में अग्नितप्त लोकों में की गयी है। भारतीय मान्यता के अनुसार नरक दक्षिण दिशा अर्थात् यम की दिशा में पाताल के निम्नतम भाग में माना गया है। लगभग २८ नरकों की कल्पना की गयी है। यमराज पाप पुण्य का निर्णय कर पापियों को विभिन्न नरकों में भेजते हैं।

ऋग्वेद में नरक का उल्लेख नहीं मिलता। ब्राह्मण काल में नरक की कल्पना मिलती है। अथर्व वेद में (२ : १४ : ३; ५ : १९ : ३) नरक स्वर्ग के विपरीत यम के क्षेत्र रूप में अभीष्ट है। वहाँ राक्षसियों तथा व्यभिचारिणियों का

शीतल वायु के कारण तपती नहीं। ग्रीष्म ऋतु आने पर फारस की खाडी तथा भूमध्य सागर से आती वायु के कारण साइक्लोन, अन्धड़ आता है। वर्षा होती है। फरवरी मार्च तथा आधे अप्रैल तक पानी बरस जाता है। पहाड़ियों पर वर्षा औसतन २६ इंच होती हैं। शीत काल में कश्मीर उपत्यका में १६ इंच वर्षा होती है। ग्रीष्म ऋतु में ८ इंच पानी बरसता है। अप्रैल से अक्टूबर तक तापमान ५४ से ९६ डिग्री तक रहता है। अतएव ग्रीष्म काल में हवा मार्तदिल और खुश्कवार होती है।

कश्मीर उपत्यका में केला, बरगद, पीपल, आम, अमरूदादि के वृक्ष नहीं उगते। अखरोट, चिनार, सफेदा, देवदार, बेद तथा चीड़ के वृक्ष खूब दिखाई देते है। सेब, नासपाती, खुबानी, चेरी, सफालू, अखरोट, आलूचा, बादाम तथा शाक भाजी होती है। प्रायः मे शाली होती है।

शाली मुख्य उपज है। इसके लिये गरम और मरतूब हवा पानी की आवश्यकता होती है। जमीन समतल तथा पानी का उसमें रुकावट होना चाहिए। पहाड़ों पर सीढ़ीनुमा धान की खेती होती है। उपत्यका के मैदान में खेतों में शाली बोयी जाती है। काश्मीर उपत्यका में ही शाली की फसल सबसे अधिक होती है। उपत्यका की भूमि समतल तथा उपजाऊ है।

उपत्यका के लोगों का शाली अर्थात् चावल सर्वप्रिय भोजन है। कश्मीर राज्य में अब भी चावल-मोजी लोगो की आबादी अधिक है। दक्षिणी भाग में में भूमि समतल है। सिंचाई का सुपास है। यहाँ पर प्राचीन काल से अत्यधिक शाली पैदा होती हैं। अनेकानेक नागों, सरोवरों, वितस्ता तथा कुओं से सिंचाई होती हैं।

कश्मीर उपत्यका में धान बोने का समय चैत्र अर्थात् १३ अप्रैल से आरम्भ होता है। सितम्बर १३ से धान काटने का समय आरम्भ हो जाता है। हिन्दी मास से कार्तिक शुक्ल पक्ष में शाली काटने का मुहूर्त माना जाता है।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय भी खेती का यही प्रकार था। मौसम में भी परिवर्तन नहीं हुआ है। शरद् ऋतु कुमार और कार्तिक का महीना होता है। भाद्रपद भादों का महीना होता है। धान कट कर शरद् अर्थात् कुमार कार्तिक में तैयार हो जाता है। भारत में धान की बोआई जुताई अर्थात् आषाढ़ मास में होती है। विभिन्न प्रकार के धान विभिन्न समयों पर काटे जाते हैं।

मुख्य फसल धान की होती है। जुलाई में बोकर अगहन या कार्तिक के अन्त में काटते है। कश्मीर में यह समय अप्रैल मई में बोआई तथा सितम्बर अक्टूबर में कटाई का होता है। इस समय कश्मीर राज्य में १९० हजार हेक्टर क्षेत्रफल में शाली बोयी जाती है। इस समय शाली २१० मेट्रिक टन होती है। गेहूँ केवल ६९ हजार, तथा चना ७ हजार मेट्रिक टन होता है। अतएव शाली मुख्य खाद्य पदार्थ है। शाली के बाद मक्का १७० हजार हेक्टर टन १८० हजार मीटर क्षेत्र में बोया जाता है।

शरद् कालीन वायु उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूरब बहती है। यह हवा झंझावात, साइक्लोन, उपल वृष्टि तथा शीत के साथ प्रायः उग्र होने पर आती है। कश्मीर तथा हिमाचल में तुषारपात एवं शीत-लहरी आनेपर उसका तुरन्त प्रभाव दिल्ली, पंजाब तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश पर पड़ता है।

दक्षिण पूरब से चलने वाली हवा नम तथा गर्म होती है। वह मानसून होती है। उससे वर्षा होती है। कश्मीर में भाद्रपद मास में वायु उत्तर पश्चिम से चलने लगती है। उत्तर से आने वाली वायु हिमाच्छादित तथा शीत कटिबन्ध से आने के कारण शीतल होती है। वह तापमान घटा देती है। अतएव असमय ही कश्मीर में तुषारपात हो जाता है।

कल्हण ने सत्य ही इस भौगोलिक दशा, प्राकृतिक जलवायु तथा उसके प्रभाव की ओर संकेत किया है। भाद्रपद में प्रायः शाली अधपकी हो जाती है। तुषारपात से शाली लोट जाती

तस्मिन्विश्वक्षयोद्युक्तकालाट्टहसितोपमे ।
न्यमज्जन् शालयः साकं प्रजानां जीविताशया ॥१९॥

१९. काल के अट्टहास सदृश, विश्व विनाश हेतु, उत्पन्न उसमें (तुहिनपात में) प्रजाओं की जीवित आशाओं के साथ, शालियाँ निमज्जित हो गयीं ।

अथाऽऽसीत्क्षुत्परिक्षामजनप्रेतकुलाकुलः ।
प्रकारो निरयस्येव घोरो दुर्भिक्षविप्लवः ॥२०॥

२०. क्षुधा से क्षीण जन-प्रेत-समूह-संकुल वह घोर दुर्भिक्ष विप्लव नरक[1] के प्रकार[2] तुल्य लगता था ।

है । तुषार के आघात से बालें टूट जाती हैं । शीत के कारण अधपकी शाली का पकना बंद हो जाता है । वह नष्टप्राय हो जाती है । केवल पुवाल तथा जीवनहीन शाली का दर्शन होता है ।

कश्मीर में उन दिनों कृषी तथा ऊनी वस्त्र के अतिरिक्त और कोई उद्योग-धन्धा नहीं था । शाली, मक्का, तथा फल एकमात्र जीवन यापन के साधन थे । कश्मीर उपत्यका में बाहर से आने वाला मार्ग पंजाब तथा बाहरी क्षेत्रों से दुर्गम है । अन्न यदि बाहर से उन दिनों घोड़ों, बैलों पर लाया भी जाता था, तो बहुत महँगा पड़ता था । गरीबों के साधन के बाहर उनका खरीदना हो जाता था । अन्न सरलतापूर्वक अधिक मूल्य देने पर भी नहीं मिल पाता था ।

कल्हण इसी ओर इस श्लोक में संकेत करता है । आजकल के विकसित सड़कों, हवाई जहाजों, ट्रकों तथा रेलवे से उस समय की परिस्थिति पर विचार करना ठीक नहीं होगा । इन साधनों से, वह समय साधनहीन एक प्रकार से हिमालय की कुक्षि में था । जहाँ सभी कुछ कठिनता से प्राप्त हो सकता था ।

कल्हण ने शाली नष्ट होने पर, जीवन के सहारा न प्राप्त होने पर कश्मीर मण्डल की क्या अवस्था हुई थी उसी पर अगले श्लोकों में अकाल का हृदय-स्पर्शी अत्यन्त करुणोत्पादक वर्णन किया है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २० में 'कुलाकुलः' का 'समाकुलः' तथा 'प्रकारो' का 'प्राकारो' एवं 'प्रकरो' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०. (१) नरक : निरय शब्द का प्रयोग यहाँ कल्हण ने किया है । उसका अर्थ नरक होता है । स्वर्ग एवं नरक की कल्पना प्रायः सभी धर्मों में प्राप्त होती है । स्वर्ग का विलोमार्थक नाम नरक है । प्राचीन मान्यता के अनुसार मरणोत्तर अधोलोक स्थान में या अवस्था में देव इत्यादि द्वारा पापियों को उनके पाप तथा अपराधों का दण्ड दिया जाता है । शीत प्रधान देशों में नरक की कल्पना प्रायः हिमाच्छादित तथा उष्ण देशों में अग्नितप्त लोकों में की गयी है । भारतीय मान्यता के अनुसार नरक दक्षिण दिशा अर्थात् यम की दिशा में पाताल के निम्नतम भाग में माना गया है । लगभग २८ नरकों की कल्पना की गयी है । यमराज पाप पुण्य का निर्णय कर पापियों को विभिन्न नरकों में भेजते हैं ।

ऋग्वेद में नरक का उल्लेख नहीं मिलता । ब्राह्मण काल में नरक की कल्पना मिलती है । अथर्व वेद में (२ : १४ : ३; ५ : १९ : ३) नरक स्वर्ग के विपरीत यम के क्षेत्र रूप में अभीष्ट है । वहाँ राक्षसियों तथा व्यभिचारिणियों का

मावास रहता है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में (४ : २६ : १) नरक का उल्लेख मिलता है 'मनो नरको वाङ्नरकः प्राणो नरकश्चक्षुर्नरकः श्रोत्रं नरकस्त्वङ्नरको हस्तौ नरको गुदं नरकः शिश्नः नरकः पादौ नरकः' पुनः इसी ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है (४ : २५ : ६) 'दश पुरुषे स्वर्गनरकाणि ताग्येनं स्वर्गं गतानि स्वर्गं गमयन्ति नरकं गतानि, नरकं गमयन्ति'।

विष्णु तथा भागवत पुराण में नरकों का विशद वर्णन मिलता है। भागवत पुराण (५ : २६ : ५) नरक त्रिलोक में है। दक्षिण दिशा तथा पृथ्वी के नीचे किन्तु जल के ऊपर स्थित है। विष्णु पुराण नरकों की स्थिति जल एवं स्थल दोनों के नीचे मानता है। (२ : ६ : १) नरकों की संख्या निश्चित नहीं है। विष्णु पुराण ७ नरकों की कल्पना करता है। किन्तु भागवत में यह संख्या २८ तक पहुँच गयी है।

प्रायश्चित्त स्वरूप यातनाओं के भोगने के स्थान नरक के २८ नाम हैं (१) तामिस्र (२) अंध तामिस्र (३) रौरव (४) महारौरव (५) कुंभीपाक (६) कालसूत्र (७) असिपत्रवन (८) सूकरमुख (९) अंध कूप (१०) कृमि भोजन (११) संदंश (१२) तप्त सूर्मि (१३) वज्रकंटक शाल्मली (१४) वैतरणी (१५) पूयोद (१६) प्राणरोध (१७) विशसन (१८) लालाभक्ष (१९) सारमेयादन (२०) अवीचि (२१) अयःपान (२२) क्षारकर्दम (२३) रक्षोगणभोजन (२४) शूलप्रोत (२५) दंदशूक (२६) अवटनिरोधन (२७) पर्यावर्तन तथा (२८) सूचीमुख।

सूर्यपुत्र यमराज नरक का शासन सूत्र चलाते हैं। मरणासन्न प्राणी को यम के दूत संयमनी पुरी में ले जाते हैं। चित्रगुप्त उनके पाप पुण्य का लेखा जोखा उपस्थित करते हैं। पुण्यात्माओं को उनके पुण्य फल भोगने के लिये स्वर्ग तथा पापियों को नरक में भेजते हैं।

अपने कर्मों के अनुसार जिन्हें मुक्ति नहीं मिलती वे पुण्य का फल स्वर्ग तथा पाप का फल नरक में भोगकर पुनः पुण्य-पाप रूप कर्मों के साथ इस लोक में जन्म लेते हैं।

यहूदी लोगों के नरक की कल्पना पुरातन बाइबिल में है। उसे 'शिउल' कहते हैं। वह मृतात्माओं का आवास है। ईसाई मान्यता के अनुसार मनुष्यों की रचना के पूर्व भगवान् ने स्वर्गदूतों की सृष्टि की थी। इन स्वर्गदूतों के एक वर्ग ने ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वे विद्रोही नरकगामी हुए। उनका नेता शैतान बन गया। इस नरक अर्थात् हेल में पापी मनुष्य भी पहुँच जाते हैं। मुसलमान लोग नरक को दोजख कहते हैं। यह शब्द जहन्नुम अरबी शब्द का पर्याय है। यह वह स्थान है जहाँ अग्नि धधकती रहती है। अल्लाह पर विश्वास न लाने वाले तथा उसके आदेश को न मानने वाले, दूसरे देवता की पूजा करने वाले दोजख में जाते हैं। दोजख में दण्ड भोगने के पश्चात् वे एराफ में भेज दिये जाते हैं। पारसी धर्म के नरक की कल्पना के अनुसार वह उत्तर दिशा में अत्यन्त शीतल स्थान है। उसे 'द्रजो देमन' (द्रुजोस्मन) कहते हैं। वह अत्यन्त दुर्गंध पूर्ण अन्धकारमय असह्य शीतल क्रन्दनपूर्ण है।

(२) प्रकार : यहाँ कल्हण ने 'प्रकार' किंवा 'प्रकारो' शब्द का प्रयोग नरक के विशेषणरूप में किया है। 'प्रकार' का पाठभेद 'प्राकारो' भी मिलता है। श्री स्तीन ने इसका अनुवाद नरक के एक प्रकार किंवा भेद के अर्थ में किया है। श्री पण्डित ने प्रकार शब्द का अनुवाद 'स्ट्रांग होल्ड अर्थात् दुर्ग' किया है। प्राकार का अर्थ नगर की रक्षा के लिये निर्मित परकोटा, चहार दिवारी अथवा शहर पनाह होता है। अनेक अनुवादकों ने इस का विभिन्न अर्थ किया है। मैंने मूल शब्द प्रकार ही रख दिया है। प्रकार शब्द हिन्दी में प्रचलित और बोधगम्य है।

पत्नीप्रीतिं सुतस्नेहं पितृदाक्षिण्यमातुरः ।
कुक्षिम्भरिः क्षुदुत्तप्तो विसस्माराखिलो जनः ॥२१॥

२१. कुक्षिम्भरि[1] एवं क्षुधातप्त निखिल आतुर जनों ने पत्नी-प्रेम, सुत-स्नेह तथा पितृ समादर को विस्मृत कर दिया था।

क्षुत्तापाद् व्यस्मरल्लज्जामभिमानं कुलोन्नतिम् ।
अशनाहंक्रियाक्रान्तो लोकोऽलक्ष्मीकटाक्षितः ॥२२॥

२२. दारिद्रय दृष्टि ग्रस्त एवं अशन हेतु ही क्रिया प्रवृत्त लोक, क्षुधा ताप से लज्जा, स्वाभिमान, एवं कुल गौरव को विस्मृत कर दिया था।

क्षामं कण्ठगतप्राणं याचमानं सुतं पिता ।
पुत्रो वा पितरं त्यक्त्वा चकार स्वस्य पोषणम् ॥२३॥

२३. क्षाम[1] तथा कण्ठगत प्राण वाले याचना करते पुत्र को पिता ने, क्षामादियुक्त पिता को पुत्र ने त्याग कर, अपना ही पोषण किया।

स्नाय्वस्थिशेषे बीभत्से स्वदेहेऽहंक्रियावताम् ।
अभूद्भोज्यार्थिनां युद्धं प्रेतानामिव देहिनाम् ॥२४॥

२४. स्नायु एवं अस्थि मात्रावशिष्ट बीभत्स स्वदेह निमित्त क्रिया करने वाले भोज्यार्थी प्राणियों का प्रेतों तुल्य युद्ध होता था।

रूक्षाभिभाषी क्षुत्क्षामो घोरो दिक्ष्वक्षिणी क्षिपन् ।
एक एको जगज्जीवैरियेष स्वात्मपोषणम् ॥२५॥

२५. कटुभाषी, क्षुधा-क्षाम एवं भयंकर दिशाओं में दृष्टिपात करने वाला एक-एक व्यक्ति जगत् जीवों से आत्म पोषण की इच्छा करता था।

तस्मिन्महाभये घोरे प्राणिनामतिदुस्सहे ।
ददृशे लोकनाथस्य तस्यैव करुणार्द्रता ॥२६॥

२६. प्राणियों के उस अति दुस्सह एवं घोर महाभय में केवल उसी लोकनाथ (राजा) की करुणार्द्रता देखी गयी।

पादटिप्पणियाँ :

२१ (१) कुक्षिम्भरि : उदर पूर्ति की चिन्ता मात्र जिनको रहती है, उनको कुक्षिम्भरि अर्थात् कुक्षि भरने वाला कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२ में 'स्मरत्' का 'व्यस्मरत्' तथा 'लोकोऽलक्ष्मी' का पाठभेद 'लोको लक्ष्मी' मिलता है।

श्लोक संख्या २३ में 'पुत्रो' का पाठभेद 'सुतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२३ (१) क्षाम : अत्यन्त दुर्बल, भूख से कृश हुए, कंकाल मात्र प्राणियों के लिये क्षाम शब्द का प्रयोग किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६ में 'मतिदुःसहे' का पाठभेद 'मितिदुःसहे' मिलता है।

निवारितप्रतीहारः स रत्नौषधिशोभिना ।
दर्शनेनैव दीनानामलक्ष्मीक्लममच्छिनत् ॥२७॥

२७. प्रतिहार[1] रहित उस राजा ने रत्नौषधि[2] के सदृश शोभायमान दर्शन मात्र से ही दीनों के दारिद्र्य कष्ट को दूर किया ।

सपत्नीको निजैः कोशैः संचयैर्मन्त्रिणामपि ।
क्रीतान्नः ॥ दिवारात्रं प्राणिनः समजीवयत् ॥२८॥

२८. अपने तथा मन्त्रियों के भी संचित कोषों द्वारा अन्न खरीदने वाले सपत्नीक उस राजा ने रात-दिन प्राणियों को जीवित किया ।

अटवीषु श्मशानेषु रथ्यास्वावसथेषु च ।
क्षुत्क्षामः क्ष्माभुजा तेन नहि कश्चिदुपेक्ष्यत ॥२९॥

२९. अटवी में, श्मशान में, रथ्या में, गृह में, किसी भी क्षुत्क्षाम[1] की उस राजा ने उपेक्षा नहीं की ।

श्लोक संख्या २७ में 'शोभिना' का पाठभेद 'शोभिनः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२७ (१) प्रतिहार : इस शब्द का अर्थ द्वारपाल, दरवान तथा साथ चलने वाला भृत्य होता है । यहाँ पर राजा की सज्जनता, सरलता, सहृदयता और वह प्रजा पीड़ा से कितना दुःखी हो गया था, इसका उल्लेख कल्हण ने किया है । राजा बिना किसी के साथ लिये, अकेला अपनी प्रजा के पास जाता था । उनके दुःख में दुःखी होता था । दारिद्रय पीड़ित प्रजा, उसके दर्शन मात्र से सन्तोष प्राप्त करती थी ।

यह स्मरण कराता है, महात्मा गान्धी की नोआखाली तथा पूर्वीय बंगाल सन् १९४७ ई० की यात्रा का । महात्मा गान्धी एकाकी नाव पर, पैदल, विपद ग्रस्त ताड़ित जनता में विचरण करते थे । उस महान् विभूति को देखकर अनायास विपन्न पूर्व बंगाल के हिन्दुओं में आत्मविश्वास तथा सन्तोष उत्पन्न हो जाता था ।

(२) रत्नौषधि : अनुवादकों को रत्नौषधि के सम्बन्ध में भ्रम हुआ है । रत्नरूपी औषधि, रत्न और औषधि, रत्न की औषधि आदि अनुवाद किया गया है । यह भ्रामक है ।

रत्नौषधि आयुर्वेद के अनुसार पार्थिव औषधि है । रत्न स्वतः औषधि होता है । ज्योतिष में ग्रहों की दशा ठीक करने के लिये विभिन्न प्रकार के रत्नों को धारण करने की व्यवस्था की गयी है । इसी प्रकार आयुर्वेद के अनुसार विभिन्न बीमारियों से नीरोग होने के लिये रत्न पहनने का विधान किया गया है । मेरे एक मित्र को पथरी की बीमारी थी । उन्हें दहाने फिरंग पहनने को कहा गया । उससे उन्हें अभूतपूर्व लाभ हुआ ।

रत्नौषधि का कर्मकाण्ड में भी विधान है । मकान की नींव तथा कूप के तल में, घर में रत्नों को रखते हैं, उस पर मकान तथा कूप रचना करते हैं । इस रत्न की संज्ञा ही रत्नौषधि दी गयी है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९ में 'दुपेक्ष्यत' का पाठभेद 'दुपेक्ष्यते', 'दुपेदयत' तथा 'दुपेदयते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२९ (१) क्षुत्क्षाम : क्षुधा से दुर्बल, क्षुधा से कृशकाय अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।

तती निश्शेषितघनः चीणान्नां वीक्ष्य मेदिनीम् ।
क्षपायामेकदा देवीमेवमूचे स दुःखितः ॥३०॥

३०. तदनन्तर धनहीन दुःखी उस राजा ने अन्न विहीन पृथ्वी को देखकर एक समय रात्रि में देवी[1] (पत्नी) से इस प्रकार कहा—

देव्यस्मदपचारेण ध्रुवं केनाऽपि दुस्तरा ।
जाता निरपराधानां जनानां व्यापदीदृशी ॥३१॥

३१. देवि ! निश्चय ही हमारे किसी दुस्तर दुष्कर्म के कारण निरपराध लोगों पर ऐसी विपत्ति आयी है ।

धिङ्मामधन्यं यस्याग्रे लोकोऽयं शोकपीडितः ।
पश्यन्नशरणामुर्वीमनुग्राह्यो विपद्यते ॥३२॥

३२. मुझ अधन्य को धिक्कार है कि जिसके सम्मुख, शरण रहित, पृथ्वी को देखते हुए, अनुग्राह्य एवं शोक पीड़ित यह लोक विपत्ति ग्रस्त हो रहा है ।

प्रजा निश्शरणा एता अन्योन्यं बान्धवोज्झिताः ।
अरक्षतो भयेऽमुष्मिन् किं कार्यं जीवितेन मे ॥३३॥

३३. परस्पर में बान्धवों को त्यागने वाली यह प्रजा शरण रहित हो रही है। इस महा-भय में रक्षा न करने वाले मेरे इस जीवन से क्या प्रयोजन ?

यथाकथञ्चिल्लोकोऽयं दिनान्येतानि यत्नतः ।
मयाऽतिवाहितः सर्वो न च कोऽपि व्यपद्यत ॥३४॥

३४. यथा कथञ्चित् इतने दिनों तक यत्न पूर्वक मैंने इस सर्वलोक की रक्षा की और कोई भी मृत नहीं हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३० में 'ततो' का 'अतो' तथा 'दुःखितः' का पाठभेद 'सुदुःखितः' मिलता है ।

शब्दटिप्पणियाँ :

३० (१) देवी : राजा ने रानी को आदर सूचक देवी शब्द का प्रयोग किया है। प्रकट होता है। उसकी रानी उत्तम चरित्र वाली विदुषी, तथा पति के कार्यों की सहायक थी । उचित सलाह देती थी । आपत्तिकाल में धैर्य दिलाती थी । आदर्श सर्वाङ्गिनी थी । देवी का शब्दार्थ देवपत्नी, दुर्गा, सरस्वती, प्रथममहिषी, पटरानी, पूज्य एवं प्रतिष्ठित महिला होता है ।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ३१ मे 'देव्यस्म' का पाठभेद 'देव्यस्स' मिलता है ।

श्लोक संख्या ३२ में 'लोकोऽयं' का पाठभेद 'लोकेयं' मिलता है ।

श्लोक संख्या ३३ में 'अरक्षतो' का पाठभेद 'अरक्षितो' तथा 'अरक्षिता' मिलता है ।

श्लोक संख्या ३४ में 'वाहितः सर्वो' का पाठभेद 'वाहिताः सर्वे' तथा 'वारिताः सर्वे' मिलता है ।

अतिक्रान्तप्रभावेयं कालदौरात्म्यपीडिता ।
निष्किञ्चनाऽद्य संजाता पृथिवी गतगौरवा ॥३५॥

३५. काल दौरात्म्य से पीड़ित तथा विगत प्रभाव वाली गौरव रहित यह पृथ्वी आज निष्किञ्चन हो गयी है।

तदिमाः सर्वतो मग्ना दारुणे व्यसनार्णवे ।
उपायः कतमस्तावत्समुद्धर्तुं क्षमः प्रजाः ॥३६॥

३६. अतएव चारों ओर से दारुण दुःख सागर में मग्न इस प्रजा का उद्धार करने में कौन सा यत्न समर्थ है ?

निरालोको हि लोकोऽयं दुर्दिनग्रस्तभास्करः ।
कालरात्रिकुलैर्विष्वक्परीत इव वर्तते ॥३७॥

३७. सूर्य के दुर्दिन ग्रस्त होने के कारण प्रकाश रहित यह लोक, कालरात्रि कुलों से सर्वतः मानो घिरा हुआ है।

हिमसंघातदुर्लङ्घ्यक्षितिभृद्रुद्धनिर्गमाः ।
बद्धद्वारकुलायस्थखगवद्विवशा जनाः ॥३८॥

३८. हिम संघात के कारण दुर्लङ्घ्य पर्वत से रुद्ध मार्ग वाले लोग अवरुद्ध द्वार युत नीड में स्थित पक्षियों के सदृश विवश हो गये हैं।

शूराश्च मतिमन्तश्च विद्यावन्तश्च जन्तवः ।
कालदौरात्म्यतः पश्य जाता निहतयोग्यताः ॥३९॥

३९. 'देखो ! शूर, मतिमान् एवं विद्यायुक्त प्राणी काल कौटिल्य के कारण लुप्त योग्यता वाले हो गये हैं।

आशाः काञ्चनपुष्पकुड्मलकुलच्छन्ना न काः क्ष्मातले
सौजन्यामृतवर्षिभिस्तिलकितं सेव्यैर्न किं मण्डलम् ।
पन्थानः सुचिरोपचाररुचिरैर्व्याप्ता न कैः संस्तुतै-
स्तेषामत्र न सन्ति निह्नुतगुणाः कालेन ये मोहिताः ॥४०॥

४०. इस पृथ्वी तलपर ऐसी कौन सी दिशाएं हैं जो स्वर्ण पुष्प कुड्मल समूह संकुल नहीं हैं ? सौजन्यरूपी अमृत की वृष्टि करने वाले स्वामियों से कौन सा मण्डल शोभित नहीं है ? चिर काल तक सेवा से शोभायमान एवं प्रशसित किन लोगों से मार्ग पूर्ण नहीं हैं ? जो छिपे हुए गुण वाले एवं काम से मोहित हैं; उन लोगों का ही गुण अब यहां नहीं है ?

श्लोक संख्या ३५ में 'संजाता' का पाठभेद 'सम्पन्ना' मिलता है।

श्लोक संख्या ३७ में 'विष्वक्' का पाठभेद 'विश्वक्' तथा 'विवष्का' मिलता है।

श्लोक संख्या ३८ में 'हिमसंघातदुर्लङ्घ्य' का 'हिमसंघातदुर्लभ' तथा 'जनाः' का पाठभेद 'जनः' मिलता है।

श्लोक संख्या ४० में 'काः' का 'कः'; 'सुचिरो-

तदेष गलितोपायो जुहोमि ज्वलने तनुम् ।
न तु द्रष्टुं समर्थोऽस्मि प्रजानां नाशमीदृशम् ॥४१॥

४१. अतएव साधन रहित मैं, शरीर की आहुति देता हूं। क्यों कि प्रजा का इस प्रकार नाश देखने में समर्थ नहीं हूं।

धन्यास्ते पृथिवीपालाः सुखं ये निशि शेरते ।
पौरान्पुत्रानिव पुरः सर्वतो वीक्ष्य निर्वृतान् ॥४२॥

४२. वे पृथ्वीपाल धन्य हैं जो सर्व प्रकार से सुखी पुरजनों को पुत्रवत् सम्मुख देखकर सुख की नींद लेते हैं। सुख पूर्वक शयन करते हैं।

इत्युक्त्वा करुणाविष्टो मुखमाच्छाद्य वाससा ।
निपत्य तल्पे निश्शब्दं रुरोद पृथिवीपतिः ॥४३॥

४३. ऐसा कहकर, करुणाविष्ट, पृथ्वीपति वस्त्र से मुख ढककर, तल्पपर गिर, निःशब्द रोने लगा।

निवातस्तिमितैर्दीपैरुद्ग्रीवैः कौतुकादिव।
वीक्ष्यमाणाऽथ तं देवी जगाद जगतीभुजम् ॥४४॥

४४. उत्थित ग्रीवा वाले निश्चल दीपों से मानों कौतुक वश देखी जाती हुई देवी, (रानी) तब उस पृथ्वीपति से बोली—

पचार' का 'प्रचुरोपचार'; 'स्तेपामत्र' का 'रेपामत्र' 'सन्ति' का 'वसन्ति' और 'ये' का पाठभेद 'ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४० (१) अनुवादकों ने अन्य प्रतियोंको आधार मानकर अनुवाद किया है अतएव अन्तिमपद का अनुवाद पाठभेद के कारण इस प्रकार होगा—

'जिनका गुण छिपा है तथा जो काल से मोहित है, वही यहां निवास करते हैं।'

कल्हण ने इस श्लोक में शिक्षित, विद्वानों सुसंस्कृत एवं कलाविद् कश्मीरियो पर अकाल का क्या प्रभाव पड़ा था, वर्णन करता है। त्रस्त काश्मीरी अपना निवास स्थान छोड़कर उत्तरी भारत में आ जाते थे। वहीं वे अपनी शक्ति, पौरुष एवं बुद्धि का परिचय देते थे। निवास करते थे। इस प्रकार का उल्लेख पुनः कल्हण ने तरंग ८:२२२७ में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१ में 'गलितोपायो' का पाठभेद 'गलितापायो' मिलता है।

श्लोक संख्या ४३ में 'निश्शब्दं' का पाठभेद 'निश्शंकं' मिलता है।

श्लोक संख्या ४४में 'निवात' का 'निर्वात' तथा 'भुजम्' का 'पतिम्' पाठभेद मिलता है।

राजन्प्रजानां कुकृतैः कोऽयं मतिविपर्ययः।
येनेतर इव स्वैरमघोरोचितमीहसे ॥४५॥

४५. "हे राजन्! प्रजाओं की कुकृतियों से यह कौन सा मतविपर्यय हो गया है? जिससे इतर जन की तरह अघोरोचित स्वेच्छा-वृत्ति की कामना कर रहे हैं?

यद्यसाध्यानि दुःखानि छेतुं न प्रभविष्णुता।
तन्महीपाल महतां महत्त्वस्य किमङ्कनम् ॥४६॥

४६. हे महीपाल! असाध्य दुःखों को दूर करने के लिये, यदि असमर्थता है, तो बड़े लोगों के महत्त्व का चिह्न ही क्या?

कः शक्रः कतमः स्त्रष्टा वराकः कतमो यमः।
सत्यव्रतानां भूपानां कर्तुं शासनलङ्घनम् ॥४७॥

४७. 'इन्द्र'[1] कौन है? स्रष्टा[2] कौन—? बेचारा यम[3] कौन—? जो कि सत्यव्रती नृपों के शासन का उल्लंघन कर सके?

श्लोक संख्या ४५ में 'कुकृतैः' का पाठभेद 'कुकृत्यैः' मिलता है।

श्लोक संख्या ४७ में 'भूपाना' का 'भूतानां' तथा 'शासनलङ्घनम्' का पाठभेद 'शासनलङ्घनाम्' तथा 'न प्रभविष्णुता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४७ (१) इन्द्र : इन्द्र का सर्वाधिक वर्णन वेद में मिलता है। वैदिक आर्यों के ओजपूर्ण देवता इन्द्र हैं। इन्द्र ने मेघों को विदीर्ण किया था। इनके लिये त्वष्टा ने वज्र बनाया था। इन्द्र ने स्रष्टा,: सूर्य, द्यु तथा उषस को उत्पन्न किया है। वृत्रासुर का वध किया है। जल एवं नदियां प्रवाहित किया है। गायें तथा सोम को जीता है। दशद्यु का संरक्षण किया है। ऋग्वेद (१ : ३३ : १४-१५)। साम गानसे इन्द्र को स्फूर्ति प्राप्त होती है। आंगिरस तथा इन्द्र एक साथ रहते हैं। (ऋ० १ : ११) अहि को मार कर सप्त सिन्धु को मुक्त किया था। (ऋ० : २ : १२) इन्द्र की उपासना न करने वालों को अनिन्द्र कहा जाता है। उनकी निन्दा की गयी है। (ऋ०७:१२: १६)।

प्रत्येक मन्वन्तरों में इन्द्र की कल्पना की गयी है। इन्द्र भूः, भुवः एवं स्वः तीनों लोकों का अधिपति है। एक सौ यज्ञ करने पर इन्द्रत्व की प्राप्ति होती है। सप्तर्षि इनके मन्त्रणा दायक हैं। इन्द्र की पौराणिक कल्पनायें परस्पर भिन्न हैं। इनका उल्लेख गरुड़, वृत्र वध, त्रिपुर, सुकर्माख्यान, यज्ञहविर्भाग मरुताख्यान, सागर मंथन, वृत्रउत्पत्ति, ब्रह्म-हत्या, मुक्ति, पुरंजय वाहन, जयापजय, यज्ञ, हवनादि, के सन्दर्भ में आता है। इन्द्र के सम्बन्ध में भारतीय साहित्य में इतनी गाथायें हैं कि उनका संकलन स्वतः एक विशाल ग्रन्थ का रूप ले लेगा।

(२) स्रष्टाः—सृष्टि के रचयिता, सर्जन एवं निर्माण करने के अर्थ में स्रष्टा शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द ब्रह्मा के लिये प्रयुक्त किया गया है। परन्तु अनेक स्थलों पर ब्रह्मा विष्णु तथा शिव के लिये एक साथ प्रयुक्त किया गया है।

महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के शरीर से देवता, ऋषि, नाग एवं असुरोंका निर्माण हुआ था। उन चारों

प्राणियों को ब्रह्मा ने 'ॐ' का उपदेश दिया था। (म० धाश्व० २६:८) पद्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा के हृदय से बकरी, उदर से गाय, भैंसादि ग्राम्य पशु समूह, तथा पद से अश्व, गधा, ऊँट आदि वन्य पशु उत्पन्न हुए थे। मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा के दक्षिण अंगूठा से दक्ष, हृदय से मदन, अधर से लोभ, अहंभाव से मद, नेत्र से मृत्यु, स्तनाग्र से धर्म, भ्रूमध्य से क्रोध, बुद्धि से मोह, कंठ से प्रमोद, हथेली से भरत, एवं शरीर से सतरूपा नामक पत्नी उत्पन्न हुई थी। मत्स्य पुराण एवं महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के शरीर से मृत्यु नामक नारी उत्पन्न हुई थी। (म० द्रो०:१:८:१५०)

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा के चार मुखों से वेदों तथा समस्त वैदिक साहित्य एवं ग्रन्थों का निर्माण हुआ था। ब्रह्मा के, पुराणों के अनुसार, चतुर्मुख हैं। (१) पूर्व मुख से गायत्री छंद, ऋग्वेद, त्रिवृत रथन्तर एवं अग्निष्टोम, (२) दक्षिण मुख से—यजुर्वेद, पंचदश ऋक् समूह, बृहत्साम, एवं उक्थ यज्ञ, (३) पश्चिम मुख से—सामवेद, सप्तदश ऋक्समूह, वैरूप साम, एवं अतिरात्र यज्ञ, एवं (४) उत्तर मुख से—अथर्ववेद, एकविंश ऋक् समूह, आप्तोयम अनुष्टुप् छन्द एवं वैराज साम उत्पन्न हुए थे।

ब्रह्मा के मानस पुत्र, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, भृगु एवं वसिष्ठ थे। (ब्रह्म० ब्रह्माण्ड:२:९)

महाभारत में सृष्टि निर्माण का क्रम दिया गया है। शंकर ने यज्ञ किया। ब्रह्मा ने अपने वीर्य की आहुति दी। उस यज्ञ से प्रजापतियों का जन्म हुआ। (म० अनु० ८५:९९—१२०) पद्म पुराण और प्रकार उपस्थित करता है। सर्व प्रथम तमोगुणी प्रजा उत्पन्न हुई। वह पाँच प्रकार यथा—तम, मोह, महामोह, तामिस्र एवं अन्धतामिस्र थी। तत्पश्चात् आठ सृष्टियों का निर्माण किया उनमें उत्पन्न प्राणी—तिर्यक् स्रोतस् (पशु), ऊर्ध्वस्रोतस् (देव) अर्वाक् स्रोतस् (मानव) अनुग्रह, भूत, प्राकृत, वैकृत, एवं कौमार थे। देव राक्षस किन्नर मनुष्य यक्ष एवं पिशाच गणों की उत्पत्ति ब्रह्मा ने मनःसामर्थ्य से की थी। ब्रह्मा का प्रथम शरीर तमोगुणी था। उसके जघन से असुरों का निर्माण हुआ। तमोगुण का त्याग कर ब्रह्मा ने सतोगुणी शरीर धारण किया। परित्याग किये तमोगुणी शरीर से रात्रि का निर्माण हुआ। सतोगुणी शरीर से देवों का निर्माण हुआ। इस शरीर का भी ब्रह्मा ने त्याग किया। इससे दिन की उत्पत्ति हुई। इसके तृतीय शरीर से पितर उत्पन्न हुए। उसके त्यक्त भाग से सन्ध्या काल का जन्म हुआ। ब्रह्मा के चतुर्थ शरीर से मानवों की उत्पत्ति हुई। उसके त्यक्त भाग से उषा काल का निर्माण हुआ। इसके पाँचवें शरीर से यक्ष एवं राक्षस उत्पन्न हुए।

(३) यमः—यम के पिता वैवस्वत तथा माता सरण्यू की यम यमी दोनों युगल सन्तान थे (ऋ० १० १४:१७:१०:१४.१) उन्हें यमौ मिथुनौ, कहा जाता है। जुड़वा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यम यमी एक साथ जुड़वा पैदा हुए थे। [ऋ० १:६६:४:१:२६४ :१५:२:३९:२] यम वैदिक काल से मृत्यु के देवता माने गये हैं [१:१६५:४] ये पहले प्राणी हैं। जिनकी मृत्यु हुई थी [अ० १८:३:१३] ऋग्वेद में यम यमी का संवाद प्रसिद्ध है। उसमें भाई एवं बहन के विवाह का निषेध किया गया है। मृतकों को विश्राम स्थान प्रदान करता है। (ऋ० १०:१४ :१८ तथा १०:१६) वह प्रथम मनुष्य था (अ० ८:३:१३) यमको दक्षिण दिशा का राजा कहा गया है (श ब्रा० २:२:४:२) यम के दूत दो श्वान हैं। उनके चार नेत्र हैं। उनकी नासिका चौड़ी है। उनका नाम उलूक तथा कपोत है। [ऋ० १०:१६५ :४) उन्हें शबल एवं उदुंबल भी कहा गया है। (ऋ० १०:१३:४)

वेदों के पश्चाद् यम का रूप बदलता गया है। उसे विवस्वत् तथा संध्यापुत्र कहा गया है (ह-वं १:९:४ मार ७४:७मा० ६:३;४०) यमके अश्वों

वर्षैः षट्त्रिंशता शान्ते पत्यौ विरहजो ज्वरः ।
तत्यजे ज्वलनज्वालानलिनप्रच्छदे तया ॥ ५६ ॥

छत्तीस वर्षों के साथ पति के गत हो जाने पर, उसने विरह ज्वर को अग्नि की ज्वाला रूपी नलिन[२] प्रच्छद पर त्याग दिया।

नाम कैमुह है। यह आदविन परगना में एक बड़ा गाँव है। विशोका नदी के वाम पश्चिम तट पर स्थित है। ग्राम की सबसे बड़ी मुसलिम जियारत के समीप सितम्बर सन् १८९५ ई० में श्रीस्तीन को मन्दिर के भग्नावशेष के बड़े पत्थर दिखाई पड़े थे।

विजयेश्वर से दक्षिण दिशा में लगभग ७ मील दूर स्थित है। इसके पूर्व विशोका नदी, पश्चिम में सरीगाम, वचरू, उत्तर में व्रजलू और दक्षिण में छोटा नाला है।

(२) रामुष : वर्तमान ग्राम सुपियान और श्रीनगर की मुख्य सड़क पर मध्य मार्ग में रामुह नाम से स्थित है। कुछ समय पहले दर ब्राह्मणों की यह जागीर थी। यह श्रीनगर का प्रसिद्ध ब्राह्मण वंश था। अक्तूबर सन् १८९१ ई० में श्रीस्तीन को ग्राम के नाग के समीप बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ मिली थी। कल्हण ने राजतरंगिणी में इस ग्राम का पुनः वर्णन तरंग ८ श्लोक २८१३ में किया है।

यह स्थान छोटी नदी रामनू के पश्चिम अर्थात् वाम तट पर है। यह नदी उत्पलपुर के समीप *वितस्ता में मिल जाती है। दक्षिण में मीरपुन्ड* उत्तर में पोरगपुर, पश्चिम में चरार पड़ता है। पूर्व में नदी पर मित्तरगम, तथा जेगम अर्थात् जेगार है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५६ में 'ज्वलन' का पाठ भेद 'दलन' मिलता है।

५६ (१) अग्नि ज्वाला : रानी का राजा के साथ अथवा पत्नी का पति के साथ सती होने का यह सर्व प्रथम उदाहरण राजतरंगिणी में प्राप्त होता है। काश्मीर के इतिहास में जहाँ तक अध्ययन कर सका हूँ यह सप्रामाणिक प्रथम उदाहरण है। इसके पूर्व राजाओं के साथ रानियों तथा किसी और दूसरी महिला के सती होने का उल्लेख नहीं मिलता। कश्मीर में सती प्रथा का आरम्भ एक प्रकार से यहीं से होता है। यह समस्त हिन्दू, मुसलिम तथा लार्ड विलियम बेंटिंग के शासन के समय तक भारत में चलता रहा।

सम्राट् अकबर ने सती प्रथा को गैर कानूनी ठहराया था। राजाज्ञा से बन्द कर दिया था।

राजा जलौक ने स्वेच्छया सपत्नीक स्वर्गारोहण किया था। अतएव उसे सती प्रथा का कश्मीर में आरम्भ काल कहना उचित नहीं है।

वैदिक काल में सती प्रथा का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है। वेद सती प्रथा को मान्यता देता है या नहीं। मैंने अपनी पुस्तक 'वेद कथा' लिखते समय ऋग्वेद का पूरा अध्ययन किया परन्तु मुझे कहीं सती प्रथा का स्पष्ट उदाहरण नहीं मिला।

एक प्रथा निस्सन्देह वैदिक काल में प्रचलित थी। *दिवंगत पति के साथ विधवा चिता के समीप जाती* थी। कहीं-कहीं उदाहरण मिलता है। शव के साथ भी जाती थी। तत्पश्चात् मृत व्यक्ति का भाई अथवा अन्य सम्बन्धी उसे उठाता था। साथ लौटा लाता था। विवाह कर लेता था। आज भी पंजाब के जाटों में यह प्रथा प्रचलित है। छोटा भाई बड़े भाई की विधवा स्त्री को स्त्रीवत् रख लेता है। अनेक जातियों में यह प्रथा अभी तक प्रचलित है।

देवी पार्वती सती रूप से दक्ष यज्ञ में प्राण दे दी थी। सती होने के पश्चात् वह उमा हो गयी। इससे सती नाम तथा सती होने की महत्ता बढ़ गयी।

सती उस समय से पवित्र समझी जाने लगी। यह प्रथा आदिम जातियों से आरम्भ हुई है। मृत के साथ स्त्री भी स्वर्ग जाए ताकि उनका वहाँ मिलन होता रहे अथवा वह पति की स्वर्ग मे इस लोक की तरह् सेवा करती रहे, उनका साथ न छूटे, इसलिये मुख्यतः राजा के कब्र मे उनकी रानियाँ, राजा के पार्षद, अस्त्र-शस्त्र, अश्व, भोज्य तथा अन्य दैनिक जीवनोपयोगी सामग्रियाँ गाड़ दी जाती थी। इसलिये उन्हे गाड़ दिया जाता था कि परलोक मे दिवंगत के साथ रहकर उसे सुख पहुँचाती रहे। चीन में यह प्रथा बहुत समय तक प्रचलित थी। यहाँ की समाधियो मे दिवंगत के शव के साथ इस प्रकार की गड़ी स्त्रियाँ आदि मिली है।

यूरोप में भी यह प्रथा प्रचलित थी। दियोदोरस सिकुलस, स्टार्बो तथा सन्त जेरामो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में इस प्रथा के प्रचलित रहने का उल्लेख करते हैं।

कालान्तर मे सती की पूजा होने लगी। मेवाड़ में गाँव गाँव में सतियों का चौरा दिखायी पड़ेगा। काशी में श्मशान तथा अन्य स्थानों पर सती का चौरा बना दिखायी पड़ता है। सती के चौरा की पूजा होती रहेगी इस मानवीय गर्व मिश्रित दुर्बलता के कारण स्त्रियाँ स्वतः सती हो जाती थी। यह पुण्य कार्य माना जाने लगा। पति भक्ति की यह चरम सीमा आँकी गयी। मान्यता मिलती थी कि सती होने वाली स्वर्ग जाती है। स्वर्ग प्राप्ति की कामना इस प्रथा को मजबूत बनाने में सहायक हुई थी। यह यहाँ तक बढ गयी थी कि यदि पति कही दूर मर जाता था तो पत्नी अकेली स्वतः सती हो जाती थी।

बौद्धो ने सती प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया था। जैन धर्म मे सती होने की प्रथा नही है।

राजपूतो मे यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। राजपूत वीर शत्रु सेना की प्रबल शक्ति देखकर जौहर करते थे। घर मे स्त्रिया अपने बच्चों को गोद में लिये सती हो जाती थी। चित्तौर में सहस्त्रो की संख्या में सामूहिक रूप से महिलायें मुसलिम आक्रामको से अपनी पवित्रता की रक्षा करने के लिये अनेक बार सती हो गयी है। जगत् मे सबसे अधिक महिलाएँ मेवाड़ मे सती हुई है। यहाँ सती के स्मारक बिखरे पड़े है। मुख्यतः प्रवेश द्वारों पर जहा उनके पति शत्रुओं से लड़ते वीर गति को प्राप्त हुए थे। चित्तौर दुर्ग मे रानी पद्मिनी सहस्रो महिलाओ के साथ अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय जिस भूस्थान पर सती हुई थी वहाँ मैंने अपनी आँखों से देखा है कि पत्थर अग्नि ज्वाला मे फट गये है तथा धूयें के काले चिह्न वर्तमान है।

ब्रिटिशराज भारत मे स्थापित होने के पश्चात् लार्ड विलियम बेंटिक ने चार दिसम्बर सन्१८२९ई० को सती तथा सती होने के सहायक होने वालों को दण्डनीय घोषित कर सती प्रथा को अवैधानिक कार्य करार दिया था। उस समय से यह प्रथा बंद हो गयी है। तथापि कभी न कभी किसी महिला के सती होने का समाचार प्राप्त होता रहता है।

तथापि सन् १८३९ ई० मे पंजाब के सिख राजा रणजीत सिंह के साथ उनकी ३६ विधवाएँ सती हो गयी थी। केवल रानी जिन्दा अपने छोटे बच्चे के लालन पालन करने के व्याज से सती न हो सकी थी।

सन् १८२३ ई० में जिस वर्ष सती सम्बन्धी कानून बना ५७५ विधवायें बंगाल और केवल कलकत्ता की सीमा में३१०, स्त्रियाँ सती हो गयी थी। उनमे१०१साठ वर्ष; २२६चालीस से साठ वर्ष; २०८ बीस से चालीस वर्ष तथा ३२ महिलायें बीस वर्ष उम्र तक की थी।

सन् १७७७ ई० में राणा जंगबहादुर की चिता के साथ नेपाल में उनकी अनेक रानियाँ सती हो गयी थी। नेपाल मे यह प्रथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक दिखायी पड़ती है।

निस्सन्देह विश्व की अनेक जातियो के इतिहास इस प्रथा के साक्षी हैं। महान् व्यक्तियों की चिता

सा यत्र शुचिचारित्रा विपन्नं पतिमन्वगात् ।
स्थानं जनैस्तद् वाक्पुष्टाटवीत्यद्यापि गद्यते ॥ ५७ ॥

५७. पवित्रचरित्रा उसने जहाँ दिवंगत पति का अनुगमन किया था, उस स्थान को लोग आज भी वाक्पुष्टाटवी[1] नाम से कहते हैं।

के साथ, पत्नियाँ, दास, पशु, स्नेही, अस्त्र-शस्त्र, अश्वादि जला दिये जाते थे अथवा मारकर अथवा जीते जी कब्र के साथ गाड़ दिये जाते थे।

ब्रह्मपुराण, व्यास स्मृति तथा अथर्ववेद का समर्थन सती प्रथा के पक्ष में लिया जाता है। किन्तु वह अत्यन्त क्षीण समर्थन स्रोत प्रमाणित हुआ है। भगवान् मनु ने सती होने के लिए कहीं नहीं लिखा है।

आधुनिक युग में सती शुद्ध रूप से नहीं परन्तु प्रेमिकायें जो प्रेमी को पति स्वरूप मानती थी उनके साथ प्राण त्याग दी हैं। जर्मनी के अधिनायक हिटलर की आत्महत्या के समय उसकी प्रेमिका इवा ब्रौ ने भी एक साथ एक मुहूर्त में आत्म हत्या की थी। दोनों का शव एक साथ एक ही स्थान पर फूंका गया था।

इसी प्रकार इटली के अधिनायक बेनितो मुसोलिनी की प्रेमिका जो उनके साथ थी। उनके साथ ही गोली से मार दी गयी थी। उसने मुसोलिनी के साथ ही मरना पसन्द किया था। भावना सती प्रथा तथा अन्य दोनों उदाहरणों से एक ही प्रकार की है।

५६ (३) नलिन : कल्हण ने चिता की ज्वाला को उपमा नलिन से दी है। काश्मीर में नलिन अर्थात् कुमुदिनी का रेशा शीतलता लाने के लिए प्रयोग किया जाता है। अधिकतया उसका लेप करते हैं। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में इस प्रकार के प्रयोग का वर्णन किया है।

कल्हण ने अग्नि ज्वाला को नलिन जैसा शीतलप्रद बताया है। रानी के विरह ज्वर की उष्णता नलिन प्रच्छद पर जाने से शीतल हो गयी थी।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ५७ में 'शुचिचारित्रा' का पाठभेद 'शुचिचारित्र्या' तथा 'शुचिदारित्रा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५७ (१) वाक्पुष्टाटवी : वाक्पुष्टा अटवी कहाँ है। इसका पता नहीं चलता। जोनराज ने वाक्पुष्टा अटवी का उल्लेख अलाउद्दीन (अल्लेश्वर) के सम्बन्ध में किया है। इसके समीप एक गिरिगह्वर में एक डायन के होने का वर्णन किया है। जिससे अलाउद्दीन का सामना हुआ था। अतएव यह स्थान किसी पर्वत के समीप रहा होगा। जोनराज ने वाक्पुष्टाटवी का उल्लेख किया है। (जोन राज श्लोक ३४३) उससे प्रकट होता है कि उसके समय तक उस स्थान का महत्त्व था तथा लोगों में धुंधली स्मृति उस घटना की शेष रह गयी थी।

राजपुत्रः स वाक्पुष्टाट्वीं लीलारसाददत् ।
योगिनीचक्रमद्राक्षीत् कदाचिद्गिरिगह्वरे ॥३४६॥

पं० गोविन्द कौल के अनुसार यह स्थान पुनः नर वाव परगना में बुट्‌ग्राम होना चाहिए। इस स्थान पर गुलाब गढ दर्रा के पर्वत बाहुमूल से होकर पहुँचते हैं। श्री स्टीन ने इस स्थान की यात्रा सितम्बर सन् १८९१ में की थी। किन्तु वहाँ पर उन्हें स्थानीय लोगों से उक्त कथा के विषय में कुछ जानकारी नहीं मिल सकी।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ५८ में 'नानापरयागता' का पाठभेद 'नानागनरयागना' मिलता है।

चारुचारित्रिया तत्र तया सत्रेऽवतारिते ।
नानापथागतानाथसार्थैरद्यापि भुज्यते ॥ ५८ ॥

५८. सच्चरित्रा उस देवी द्वारा वहाँ स्थापित सत्र[१] में नाना पथों से आये अनाथ आज भी भोजन करते हैं।

आभ्यामभ्यधिकं कर्तुं शक्तिः कस्येति निश्चितम् ।
विचिन्त्यारोचकी धाता नापत्यं निर्ममे तयोः ॥ ५९ ॥

५९. इन दोनों से अधिक करने की निश्चय ही किस की शक्ति है ? यह सोचकर अरोचकी विधाता ने उन दोनों के लिये सन्तति का विधान नहीं किया।

वेधाः परां धुरमुपैति परीक्षकाणा-
मिक्षोः फलप्रजनने न कृतश्रमो यः ।
विस्मारितोद्धुरसुधारसयोग्यतात् तत्
तस्मादुदेत्य किमिवाभ्यधिकं विदध्यात् ॥ ६० ॥

६०. विधाता परीक्षकों की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है, जिस ने इक्षु[१] के फल देने में परिश्रम नहीं किया। सुस्वादु सुधा रस को भी विस्मरित कर देने की योग्यता वाले, उससे बढ़कर और वह क्या कर सकता था।

पादटिप्पणियाँ :

५८ (१) : सोम यज्ञ का समय जो १३ से १०० दिनों के अन्दर पूर्ण होता है उसके लिये प्राचीन समय में यह शब्द प्रयुक्त किया जाता था। इसका अर्थ आश्रय स्थान, शरण स्थान तथा वह स्थान है, जहाँ गरीबों को भोजन दिया जाता है। अधियणी तथा सत्र में सूक्ष्म भेद है। सत्र प्रायः उसी दान के लिए प्रयुक्त होता है जहाँ गरीबों को बना भोजन दिया जाता है जैसे लंगर अथवा क्षेत्र। काशी में क्षेत्र विद्यार्थी तथा संन्यासियों का मुफ्त भोजन स्थान है। सत्र और क्षेत्र समानार्थक हैं। कहावत है—क्षेत्रे भोजं मठे निद्रा।

पादटिप्पणियाँ

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ४२वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ६० में 'सुधारस' का 'मुदारम्', 'मुदारस', 'मुधारम्'; 'योग्यतात्तत्' का 'योग्यतात्तु', 'योग्यता तु', 'योग्यता तत्', 'योग्यतः तत्' 'योग्यतात्तान्' तथा 'दुदेत्य' का पाठभेद 'उत्पादयित्वा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ४३ वाँ श्लोक है।

६०. (१) इक्षु : इसे ईख और पूर्वी उत्तर-प्रदेश तथा बिहार में ऊख कहते हैं। दोनों ही शब्द इक्षु के अपभ्रंश हैं। इक्षु शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद (१ : ३४ : ७) में प्राप्त होता है। तत्पश्चात् संहिताओं में भी उल्लेख मिलता है। (मै. सं. : ३ . ७ : ९; ४ : २ : ९; वा. स. २५ : १ : तै. सं : ३ : १६ : १; तथा कठक अश्वमेध ३ : ८) वैदिक साहित्य से यह पता नहीं चलता कि इसकी खेती होती थी अथवा यह वन में उत्पन्न होता था।

कश्मीर की उपत्यका किंवा वादी में ईख प्रायः नहीं होती है। इसकी पैदावार इस समय जम्मू काश्मीर राज्य के जम्मू प्रदेश में तहसील रनबीर सिंह पुरा में खूब होती है। इस समय यहाँ ६ हजार एकड़ में ईख की खेती होती है। जम्मू के

सा यत्र शुचिचारित्रा विपन्नं पतिमन्वगात् ।
स्थानं जनैस्तद् वाक्पुष्टाटवीत्यद्यापि गद्यते ॥ ५७ ॥

५७. पवित्रचरित्रा उसने जहां दिवंगत पति का अनुगमन किया था, उस स्थान को लोग आज भी वाक्पुष्टाटवी[१] नाम से कहते हैं।

के साथ, पत्नियाँ, दास, पशु, स्नेही, अस्त्र-शस्त्र, अश्वादि जला दिये जाते थे अथवा मारकर अथवा जीते जी कब्र के साथ गाड़ दिये जाते थे।

ब्रह्मपुराण, व्यास स्मृति तथा अथर्ववेद का समर्थन सती प्रथा के पक्ष में लिया जाता है। किन्तु वह अत्यन्त क्षीण समर्थन स्रोत प्रमाणित हुआ है। भगवान् मनु ने सती होने के लिए कहीं नहीं लिखा है।

आधुनिक युग में सती शुद्ध रूप से नहीं परन्तु प्रेमिकायें जो प्रेमी को पति स्वरूप मानती थी उनके साथ प्राण त्याग दी है। जर्मनी के अधिनायक हिटलर की आत्महत्या के समय उसकी प्रेमिका इवा ब्रौ ने भी एक साथ एक मुहूर्त में आत्म हत्या की थी। दोनों का शव एक साथ एक ही स्थान पर फूंका गया था।

इसी प्रकार इटली के अधिनायक बेनितो मुसोलिनी की प्रेमिका जो उनके साथ थी। उनके साथ ही गोली से मार दी गयी थी। उसने मुसोलिनी के साथ ही मरना पसन्द किया था। भावना सती प्रथा तथा अन्य दोनों उदाहरणों से एक ही प्रकार की है।

५६ (३) **नलिन :** कल्हण ने चिता की ज्वाला की उपमा नलिन से दी है। कश्मीर में नलिन अर्थात् कुमुदिनी का रेशा शीतलता लाने के लिए प्रयोग किया जाता है। अधिकतया उसका लेप करते हैं। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में इस प्रकार के प्रयोग का वर्णन किया है।

कल्हण ने अग्नि ज्वाला को नलिन जैसा शीतलप्रद बनाया है। रानी के विरह ज्वर की उष्णता नलिन प्रच्छद पर जाने से शीतल हो गयी थी।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ५७ में 'शुचिचारित्रा' का पाठभेद 'शुचिचारित्र्या' तथा 'शुचिदारित्रा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५७ (१) **वाक्पुष्टाटवी :** वाक्पुष्टा अटवी कहाँ है। इसका पता नहीं चलता। जोनराज ने वाक्पुष्टा अटवी का उल्लेख अलाउद्दीन (अल्लेश्वर) के सम्बन्ध में किया है। इसके समीप एक गिरिगह्वर में एक डायन के होने का वर्णन किया है। जिससे अलाउद्दीन का सामना हुआ था। अतएव यह स्थान किसी पर्वत के समीप रहा होगा। जोनराज ने वाक्पुष्टाटवी का उल्लेख किया है। (जोन राज श्लोक ३४३) उससे प्रकट होता है कि उसके समय तक उस स्थान का महत्त्व था तथा लोगों में धुंधली स्मृति उस घटना की शेष रह गयी थी।

राजपुत्रः स वाक्पुष्टाट्व्यां लीलारसाददन् ।
योगिनीचक्रमद्राक्षीत् कदाचिद्‌गिरिगह्वरे ॥३४६॥

पं० गोविन्द कौल के अनुसार यह स्थान खुर नर वाव परगना में बुट्‌टू ग्राम होना चाहिए। इस स्थान पर गुलाब गढ दर्रा के पर्वत बाहुमूल से होकर पहुँचते हैं। श्री स्तीन ने इस स्थान की यात्रा सितम्बर सन् १८९१ में की थी। किन्तु वहाँ पर उन्हें स्थानीय लोगों से उक्त कथा के विषय में कुछ जानकारी नहीं मिल सकी।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ५८ में 'नानापयागता' का पाठभेद 'नानागतपयागता' मिलता है।

चारुचारित्रया तत्र तया सत्रेऽवतारिते ।
नानापथागतानाथसार्थैरद्यापि भुज्यते ॥ ५८ ॥

५८. सच्चरित्रा उस देवी द्वारा वहाँ स्थापित सत्र[1] में नाना पथों से आये अनाथ आज भी भोजन करते हैं।

आभ्यामभ्यधिकं कर्तुं शक्तिः कस्येति निश्चितम् ।
विचिन्त्यारोचकी धाता नापत्यं निर्ममे तयोः ॥ ५९ ॥

५९. इन दोनों से अधिक करने की निश्चय ही किस की शक्ति है? यह सोचकर अरोचकी विधाता ने उन दोनों के लिये सन्तति का विधान नहीं किया।

वेधाः परां धुरमुपैति परीक्षकाणा-
मिक्षोः फलप्रजनने न कृतश्रमो यः ।
विस्मारितोद्धुरसुधारसयोग्यतात् तत्
तस्मादुदेत्य किमिवाभ्यधिकं विदध्यात् ॥ ६० ॥

६०. विधाता परीक्षकों की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है, जिस ने इक्षु[1] के फल देने में परिश्रम नहीं किया। सुस्वादु सुधा रस को भी विस्मरित कर देने की योग्यता वाले, उससे बढ़कर और वह क्या कर सकता था।

पादटिप्पणियाँ :

५८ (१) : सोम यज्ञ का समय जो १३ से १०० दिनों के अन्दर पूर्ण होता है उसके लिये प्राचीन समय में यह शब्द प्रयुक्त किया जाता था। इसका अर्थ आश्रय स्थान, शरण स्थान तथा वह स्थान है, जहाँ गरीबों को भोजन दिया जाता है। अक्षियणी तथा सत्र में सूक्ष्म भेद है। सत्र प्रायः उसी दान के लिए प्रयुक्त होता है जहाँ गरीबों को बना भोजन दिया जाता है जैसे लंगर अथवा क्षेत्र। काशी में क्षेत्र विद्यार्थी तथा सन्यासियों का मुफ्त भोजन स्थान है। सत्र और क्षेत्र समानार्थक हैं। कहावत है—क्षेत्रे भोजं मठे निद्रा।

पादटिप्पणियाँ

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ४२वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ६० मे 'सुधारस' का 'मुदारम्', 'मुदारस', 'मुधारम्'; 'योग्यतात्तत्' का 'योग्यतात्तु', 'योग्यता तु', 'योग्यता तत्', 'योग्यता तत्' 'योग्यतात्तात्' तथा 'दुदेत्य' का पाठभेद 'उत्पादयित्वा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ४३ वाँ श्लोक है।

६०. (१) इक्षु : इसे ईख और पूर्वी उत्तर-प्रदेश तथा बिहार में ऊख कहते हैं। दोनों ही शब्द इक्षु के अपभ्रंश हैं। इक्षु शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद (१ : ३४ : ७) में प्राप्त होता है। तत्पश्चात् संहिताओं में भी उल्लेख मिलता है। (मै. सं. : ३ : ७ : ९; ४ : २ : ९; वा. स. २५ : १ : तै. स : ३ : १६ : १; तथा कठक अश्वमेध ३ : ८) वैदिक साहित्य से यह पता नही चलता कि इसकी खेती होती थी अथवा यह वन में उत्पन्न होता था।

कश्मीर की उपत्यका किंवा वादी में ईख प्रायः नही होती है। इसकी पैदावार इस समय जम्मू काश्मीर राज्य के जम्मू प्रदेश मे तहसील रनबीर सिंह पूरा मे खूब होती है। इस समय यहाँ ६ हजार एकड़ मे ईख की खेती होती है। जम्मू के

दीर्घदुर्दिननष्टार्कं राष्ट्रमात्मापचारतः ।
ज्ञात्वा राज्ञयग्निसाद्देहं सा चकारेति केचन ॥ ६१ ॥

६१. अपने दुष्कृत्य के कारण बहुत दिनों तक रवि रहित राष्ट्र को जानकर उस रानी ने देह को अग्निसात् कर दिया । ऐसा कुछ लोगों का विचार है ।

ततोऽन्यकुलजो राजा विजयोऽष्टावभूत्समाः ।
पत्तनेन परीतं यश्चकार विजयेश्वरम् ॥ ६२ ॥

६२. तदुपरान्त अन्य कुलोत्पन्न राजा विजय आठ वर्ष रहा, जिसने विजयेश[1] को नगर से घिरवाया ।

नहरी क्षेत्र में भी ईख की उपज होने लगी है । इस राज में कुल ईख १.६ हजार हैक्टर में बोया जाता है । उत्पादन ११.२३ हजार मेट्रिक टन का होता है । मैंने सन् १९६३ में जम्मू प्रदेश की यात्रा में यह खेती देखी है । ईख अच्छी होती है ।

शर्करा अर्थात् चीनी का उत्पादन सर्वप्रथम भारत में ही प्रारम्भ हुआ था । यूनानी भारत में आये । उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि डण्ठल से शहद निकलती है । जो महत्त्व भारत में शर्करा का प्राचीन काल में था वही पश्चिम तथा यूरोप में मधु का था ।

कश्मीर उपत्यका में ईख का अभाव था । वहाँ उसका माधुर्य दुर्लभ पदार्थों में समझा जाता था । आम भारत में साधारण चीज है । किन्तु वही श्रीनगर में दुर्लभ पदार्थ है ।

इक्षु यद्यपि मधुर था परन्तु विधाता ने उसे फल नहीं दिया है । यदि उसमें फल होता तो सम्भवतः गन्ने के माधुर्य से भी अधिक माधुर्य होता । ईख के रस को सुधारस से भी ऊँचा स्थान कल्हण देता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१ में *'नष्टार्कम्'* का पाठभेद 'नष्टार्क' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

६२. (१) श्री विलसन ने अभिषेक का काल ईसापूर्व ६६ वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल सन् ९० ई० और राज्य काल ८ वर्ष दिया है ।

श्री स्तीन ने कल्हण के आधार पर गणना कर राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् २९९६ तथा राज्य काल आठ वर्ष दिया है । श्री एम० पी० पण्डित ने ईसा पूर्व ६९ वर्ष तथा राज्य काल ८ वर्ष दिया है । श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि संवत् ३८६१ तथा सन् ९१ ई० दिया है ।

१ आइने अकबरी में राजा विजय को 'बेजीरी' लिखा है । राज्य काल ८ वर्ष दिया गया है ।

हसन लिखता है—राजा विजय २९६८ क० में अराकीन सल्तनत के इत्तफाक और मशविरह से सरबराहाय सल्तनत हुआ । शहर के बड़े लोगों में से था । बेजबारह का शहर तामीर करके अपना पायतख्त बनाया । विजय शूर का मन्दिर इन्तहाई रफअत और संगीनी के साथ बुलन्द किया । मुद्दत हकूमत आठ बरस ।

(२) विजयेश : टिप्पणी विजयेश्वर ८४ तथा १०५ द्रष्टव्य है ।

श्री विलसन ने (पृष्ठ ३०) लिखा है कि *विजयेश का मन्दिर राजा विजय ने राजधानी के* अन्दर बनवाया । यह बात प्रमाणित नहीं होती । विजय ने विजयेश का मन्दिर बिजबीर अर्थात् विजय क्षेत्र में बनाया । यही परम्परा, जनश्रुति तथा अन्य उपलब्ध प्रमाणों से प्रमाणित होता है । विलसन को इस विषय में भ्रम हो गया है ।

सुतो महीमहेन्द्रस्य जयेन्द्रस्तस्य भूपतेः ।
क्ष्मामाजानुभुजो राजा बुभोजाथ पृथुप्रथः ॥ ६३ ॥

६३. उस मही महेन्द्र भूपति का पुत्र आजानुबाहु, इन्द्र तुल्य राजा जयेन्द्र ने पृथ्वी का भोग किया।

पादटिप्पणियाँ :

६३ (१) जयेन्द्र : श्री विलसन ने अभिषेक काल ईसापूर्व ६० वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल स० ९८ई० और राज्य काल ३७ वर्ष माना है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय कल्हण के आधार पर गणनाकर लौकिक संवत् ३००४ वर्ष तथा राज्यकाल ३७ वर्ष रखा है।

एस. पी. पण्डित ने यह समय ईसापूर्व ६१ वर्ष तथा राज्यकाल ३७ वर्ष माना है। श्री वालो ने यह समय सप्तर्षि संवत् ३८९८ तथा सन् १२८ ई० दिया है।

आइने अकबरी में जयेन्द्र को 'चुन्दर' लिखा है। राज्यकाल ३७ वर्ष दिया गया है।

आइने अकबरी में सन्धिमति के विषय में सबसे अधिक लिखा है। अबुलफजल कहता है—राजा जयेन्द्र इस दृष्टि में लौकिक संवत् ३००४ में राजा हुआ। वह भूमि पर महेन्द्र अर्थात् इन्द्र तुल्य था। वह आजानबाहु था। राजा पृथु तुल्य प्रतापी था।

सन्धिमति : उसका मन्त्री महा मेधावी सन्धिमान था। वह शिवभक्त था। महात्मन् ईशान का शिष्य था। उसकी कीर्ति कश्मीर मण्डल में व्याप्त हो गई थी। राजा एवं राजन्य वर्ग कान के कच्चे होते हैं।

राजदरबारियों ने मन्त्री की मेधा उसकी कीर्ति तथा प्रिय होने का दूसरा अर्थ लगाना आरम्भ किया। राजा के सम्मुख उसके गुण दोष रूप में बढ़ा-चढ़ाकर किये जाने लगे। उसकी बढ़ती ख्याति तथा शक्ति राजा के लिए घातक सिद्ध होगी यह बात राजा के मन में बैठा दी गयी। राजा मन्त्री से शंकित रहने लगा। उसके प्रति द्वेष भावना उत्पन्न हो गई। चपल कर्ण राजा ने उसका राज दरबार में आना बन्द कर दिया। उससे क्रोधित होकर उसकी सब सम्पत्ति छीन कर उसे दरिद्र बना दिया।

हसन लिखता है—राजा जयेन्द्र सन्दमत वजीर के इमदाद व इनायत से २९९४ क० में बापके कायम मुकाम तख्त नशीन हुआ। कुछ मुद्दत अदल व इन्साफ में गुजारी। बिल आखीर अपने वजीर से नाराज होगया। और अरसा दस साल तक उसे कैद व बन्द में मबतिला रखा। और जिस कदर भी उसके पास असबाब था लूट लिया। लेकिन अवाम वजीर की नेक नियती से खुश थे और अपनी जगह परचमी गोरपा करते कि किसी न किसी दिन वजीर ही बादशाह होगा। यह चीज भी राजा के कान में पहुँच गयी। हुकम दिया कि वजीर को सूली दे दें। चुनाचे शाही हुकम के बमूजिब वजीर को सूली पर चढ़ा दिया गया। और गरीब जानसे रुखसत हुआ। लेकिन इसके बाद ही राजा पर वहशत व दीवानगी सवार हो गयी और चन्द दिनों बाद खुद भी दुनिया से रुखसत हो गया। मुद्दत हकूमत ३७ साल।

चूँकि राजा जयेन्द्र बे औलाद था। इसलिए उसकी वफात के चन्द दिनों तक सल्तनत कश्मीर बादशाह के बगैर रही। ईशानदेव नामक एक आबिद वजाहिद इश्शान को जो वजीर सन्दमत का मुखी था और अरसा दराज से मुकाम इशः बरारी में गोशः नशीन था। जब वजीर मजकूर को सूली की खबर सुनी तो उसके लाश को जलाने की नीयत से दार के नीचे आया। वजीर के जिस्म को सूली से उतार कर गुसल देने के लिये तैयार हुआ। कैफियत (कफ] ईशानदेव ने जब उसके माथे पर नजर डाली तो देखा कि उसपर यह तीन फिकरह लिखे हुए है—

अलोलकीर्तिकल्लोलदुकूलवलनोज्ज्वलाम् ।
बभार यद्भुजस्तम्भो जयश्रीसालभञ्जिकाम् ॥ ६४ ॥

६४. जिसके भुजस्तम्भ ने, निश्चल कीर्तिकल्लोलरूपी दुकूल के वलन से शोभायमान जयश्री शालभंजिका[1] को धारण किया था ।

१—जब तक यह शख्स जिन्दा रहेगा मुफलिस रहेगा ।

२—दस साल तक कैद में रहकर दार पर मरेगा ।

३—उसके बाद राज लेगा ।

ईशान देव ने दिल में सोचा कि इन तीन फिकरों में से दो का मजमून ब अमल भा गया है। और तीसरे फिकरह का मजमून भी मकोमन् अमल में आयेगा। लिहाजा उसकी लाश वही छोड़कर एक पोशीदह जगह तलाश की। वहाँ उसे रखकर खुदा की कुदरत का मुन्तज़िर रहने लगा।

एक रात देखा कि मैदान नूरानी हो गया है। और चन्द जोगनी आई है। उन्होने वजीर की लाश को सूली से उतार लिया है। और उससे बातचीत में मशगूल है। ईशानदेव तमाम रात काँपता रहा और हैरान था कि वह कौन है। सुबह के वक्त जब जोगिनी जाने लगीं और उन्होंने लाश मजकूर को बदस्तूर दार पर लटकाना चाहा तो ईशानदेव ने तलवार हाथ में लेकर जोगनियों को डराया और बाद में जोर जोर से शोर व गोगा मचाया यह देख कर औरतें गायब हो गयी उनमें से एक ने कहा—"ईशान देव इस शख्स को खुदा ने हमारी वजह से जिन्दा किया है। हम पर तू क्यों तलवार उठाता है। वह राजा सन्दीमान है। और एक दिन बहुत बड़ा राजा होगा। जब वजीर जिन्दा हो गया तो अपने पीर के पाँवों में पड़ा। उस वक्त लोग हरतरफ से जमा हुए और वजीर को जिंदह देखकर निहायत हैरान हुए। लोग उसे पहले से जानते थे। उसे देखने ही पहचान गये। मेदाकीन में शहर उसके मसलाक करीमाना को देखकर उसे मुल्क कश्मीर की हकूमत कबूल करने को कहा। पहले तो उसने इन्कार किया। बिलाखिर अपने पीर के कहने से सल्तनत कबूल करने पर राजी हो गया।

(पृष्ठ ५४—५५)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६४ में 'अलोल' का 'आलोल' 'दुकूल' का 'दुगूल' 'श्री' का 'त्री' तथा 'साल-भञ्जिकाम्' का पाठभेद 'शालभञ्जिकाम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६४ (१) शालभंजिकाः—अर्थ पुतली होता है। इसका अर्थ वेश्या भी होता है। साँची स्तूपों के घेरे पर शालभंजिका मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। मेरे एक मित्र ने शालभंजिका का अर्थ पर्वों तथा पवित्र उत्सवों अथवा यात्रा के समय लाज वर्षा करने वाली कमनीय बालाओं से किया है। किन्तु इसका वर्णन मुझे कहीं नहीं मिल सका।

वृक्ष को पकड कर स्त्रियाँ खड़ी होती थीं। उसके तले उत्सव मनाती थी। इस प्रकार वृक्षों को पकड़ने वाली स्त्रियों को शालभंजिका कहा गया है। कालान्तर में इसी प्रकार की मूर्ति काष्ठ तथा पाषाण पर बनायी जाने लगी। उसे शालभंजिका की संज्ञा दे दी गयी।

निस्सन्देह यहाँ इसका तात्पर्य निर्जीव पुतली से है। पुतली चालक के संकेत पर ही कार्य करती है। इसी प्रकार जयश्री इस राजा के अभिप्राया-नुसार कार्य करती है। अर्थात् उसे विजय प्राप्त होता ही है।

शालभंजिका का एक अर्थ और मिलता है। यह काष्ठ की स्त्री प्रतिमा घटसहित बनायी जाती थी। उत्सवों तथा शुभ कार्य काल में द्वार पर सजा

तस्याभूदद्भुतोदन्तो भवभक्तिविभूषितः ।
राज्ञः संधिमतिर्नाम मन्त्री मतिमतां वरः ॥ ६५ ॥

६५. उस राजा का अद्भुत वृत्तान्त युक्त, शिवभक्ति विभूषित, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सन्धिमति नामक मन्त्री हुआ।

नास्त्युपायः स संसारे कोऽपि योऽपोहितुं क्षमः ।
भूपालमत्तकरिणामेषां चपलकर्णताम् ॥ ६६ ॥

६६. संसार में कोई भी ऐसा उपाय नहीं है, जो इन भूपाल रूपी मत्त गजों की चपल कर्णता[१] को दूर करने में समर्थ हो।

अत्यद्भुतमतिः शङ्क्यः सोऽयमुक्त्वेति यद्विटैः ।
तस्मिन्धीसचिवे द्वेषस्तेनाग्राह्यत भूभुजा ॥ ६७ ॥

६७. "अत्यन्त[१] अद्भुत मतिमान् भी यह आशंकनीय है", यह कहकर, विटों ने, राजा को उस धीमान् मन्त्री के प्रति द्वेषयुक्त कर दिया।

कर रख देते थे। यह पुतली किंवा प्रतिमा शाल वृक्ष की बनती थी अतएव उसे शालभंजिका कहा जाता था।

एक मत और है। शालभंजिका एक उत्सव प्रति वर्ष मनाया जाता था। यदि शालभंजिका का अर्थ वेश्या किंवा गणिका से लिया जाय तो काशी में गणिकाओं का लोलार्क छठ के दिन बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक मेला लगता था। काशी की सभी गणिका कीनाराम के अस्तल पर तथा मार्गों में गाती थीं। उनका स्वागत सत्कार होता था। आज से पचास वर्ष पूर्व तक यह उत्सव धूमधाम से होता था। अब यह बन्द हो गया है। सुधारवादी प्रवाह में तिरोहित हो गया है। केवल स्मृति मात्र शेष रह गयी है। वृत्त शालभंजिका संस्कृत का एक प्रसिद्ध नाटक है।

पाठभेद :

इलोक संख्या ६५ में 'दन्तो' का 'दात्तो', 'राज्ञः' का 'राज्ञा' तथा 'संधिमति' का पाठभेद 'संधिमति' मिलता है।

इलोक संख्या ६६ में 'योऽपोहितुं' का पाठभेद 'यो पिहितुं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ४४वां इलोक है।

६६(१) चपलकर्णता—कल्हण ने यहाँ चपल शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। चाटुकार तथा दरबारियों की बातें सुनकर राजाओं की वृत्ति का चंचल हो जाना अर्थात् राजा का चपलकर्ण हो जाना स्वाभाविक है। हाथी का चपल कर्ण उसका स्वभाव है। मत्त हाथी का कान सर्वदा चंचल रहता है। यहा 'चपलकर्ण' श्लिष्ट है।

पाठभेद :

इलोक संख्या ६७ में 'शङ्क्य.' का पाठभेद 'शक्यः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६७(१) श्री स्तीन ने इलोक संख्या ६६ एवं ६७ का एक ही में अनुवाद किया है। रणजीत सीताराम पण्डित ने अलग अलग अनुवाद

निवारितप्रवेशोऽथ सकोपस्तमहेतुकम् ।
निनाय हृतसर्वस्वं यावदायुर्दरिद्रताम् ॥ ६८ ॥

६८. उस कुपित राजा ने मन्त्री का प्रवेश निषिद्ध कर दिया[1]। और निष्कारण सर्वस्व हरण कर उसे यावज्जीवन के लिये दरिद्र बना दिया।

तस्य भूपतिविद्वेषग्रीष्मोष्मपरिशोषिणः ।
आप्यायं राजपुरुषा वार्तयाऽपि न चक्रिरे ॥ ६९ ॥

६९. भूपति के विद्वेष रूपी ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से परिशोषित उसे, राजपुरुषों ने वार्ता से भी सन्तुष्ट नहीं किया।

गिरं गभीरो गृह्णाति क्ष्माभृद्यावत्तदग्रगाः ।
उक्तानुवादिनस्तावद्व्यक्तं प्रतिरवा इव ॥ ७० ॥

७०. जब[1] गम्भीर राजा कुछ कहता है तो, उसी समय उक्ति की पुनरुक्ति करने वाले उसके अग्रगामी (राजा के साथ आगे चलने वाले चाटुकार) प्रतिध्वनि सदृश शब्द करते हैं।

स तु राजविरुद्धत्वदारिद्र्याभ्यां न विव्यथे ।
गतप्रत्यूहया प्रीतः प्राप्तया हरसेवया ॥ ७१ ॥

७१. समुपलब्ध निर्विघ्न हर सेवा से प्रसन्न वह (सन्धिमति) राजा की विरुद्धता एवं दारिद्र्य से दुःखी नहीं हुआ।

किया है। मैंने भी दोनों श्लोकों का अनुवाद अलग ही किया है। इसमें अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६८ में 'सकोपस्त' का पाठभेद 'स कोपास्त' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६८ (१) प्रवेश निषिद्ध—देशी राज्यों में यह प्रथा भारतीय राज्यों के विलय पूर्व (१९४७-४८) तक जारी थी। इसे 'ड्योढ़ी बन्द' करना कहते थे। राजप्रासाद के ड्योढ़ी [देहली] के भीतर प्रवेश नहीं किया जा सकता था। राजस्थान में यह प्रथा दूसरे प्रकार से प्रचलित थी। यदि राजा अप्रसन्न होता था तो आज्ञा दे देता था 'घर बैठो'। घर में राज्य कर्मचारी रहता था। वेतन पाता था। किन्तु काम नहीं कर सकता था। राजा की अकृपा का यह प्रतीक था।

राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रहका यह ४५वाँ श्लोक है।

७० (१) इसका द्वितीय अर्थ यह होता है—'जब गम्भीर पर्वत ध्वनि प्राप्त करता है तो उसके पार्श्ववर्ती प्रतिध्वनि के रूप में स्पष्ट दुहरा देते हैं।"

अग्रगा का अर्थ पर्वत के सम्मुख स्थित पहाड़ से भी होता है। पर्वत से उठती ध्वनि को सम्मुख स्थित पहाड़ी दुहरा देती है अर्थात् ध्वनि को प्रतिध्वनित करती है। अग्रग का अर्थ मार्गदर्शक भी होता है।

क्ष्माभृत् का अर्थ पर्वत तथा राजा दोनों होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७१ में 'दारिद्र्याभ्यां' का 'दारि-

अथ भाव्यर्थमाहात्म्यात्प्रथे प्रतिमन्दिरम् ।
राज्यं संधिमतेर्भावीत्यश्रुताऽपि सरस्वती ॥ ७२ ॥

७२. भावी घटना के माहात्म्य से प्रत्येक घर में अश्रुत[1] भी वह वाणी फैल गयी—"राज सन्धिमति का होने वाला है ।"

नाचोदिता वाक्चरतीत्याप्तेभ्यः श्रुतवान्नृपः ।
ततः संभूतसंत्रासः कारावेश्मनि तं न्यधात् ॥ ७३ ॥

७३. "बिना कहे बात नहीं फैलती है ।" इस प्रकार विश्वस्तों से राजा ने सुना और संत्रस्त होकर, उसे कारागार[1] में रख दिया ।

तत्र तस्योग्रनिगडैः पीडिताङ्घ्रेर्विशुष्यतः ।
पूर्णोऽभूद्दशमो वर्षो भूपतेश्चायुषोऽवधिः ॥ ७४ ॥

७४. वहां उग्र निगड बन्धन से पीड़ित चरणयुक्त शुष्क उस मंत्री का दसवां वर्ष तथा राजा के आयु की अवधि पूर्ण हो गयी।

निष्पुत्रः स महीपालो मुमूर्षुर्दाहमादधे ।
रोगोत्थया पीडया च चिन्तया च तदीयया ॥ ७५ ॥

७५. निष्पुत्र एवं मुमूर्षु वह महीपाल रोगोत्पन्न पीड़ा और उस चिन्ता से दग्ध होने लगा ।

ग्राम्या' और 'हरसेवया' का पाठभेद 'हरिसेवया' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

७१ (१) हर एकादश रुद्रों में से एक है । यहाँ पर शिव के अर्थ में प्रयोग किया गया है । कम्बुज कम्बोडिया में हरि-हर की पूजा व्यापक रूप से प्रचलित थी । अर्धनारीश्वर के समान एक ही मूर्ति में दक्षिण ओर हरि तथा वाम अर्धांग में हर अर्थात् शिव की आकृति सवेशभूषा रहती थी । कम्बोडिया के एंग कोरवाट में इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ मैंने अपने पर्यटन काल सन् १९५७ में देखी थीं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७२ में 'प्रतिम' का पाठ भेद 'नवम' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

७२ (१) अश्रुत सरस्वती—इसका शाब्दिक अर्थ दो हैं । वह वाणी जो, सुनायी नहीं पड़ती । किंवदन्ती या अफवाह के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७३ में 'संभूत' का 'सद्भूत' तथा 'न्यधात्' का पाठभेद 'व्यधात्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

७३(१) कारावेश्म—कारागार को उस समय कारावेश्म कहते थे ।

प्राचीन भारत में कारागार व्यवस्था बहुत विकसित हो चुकी थी । चाणक्य ने अर्थशास्त्र में कारागार का जो रूप प्रस्तुत किया है वह बहुत ही विकसित कहा जायगा । उसमें बन्दियों के भोजन, वस्त्र, बेड़ी, मुलाकात, जेल का शासन, जेल रक्षकों अर्थात् वार्डरों का भ्रष्टाचार आदि पर आजकल के पटु कारागार विशेषज्ञ की तरह प्रकाश डाला गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७५ में 'मादधे' का पाठभेद

ऊष्मायमाणो विद्वेषवह्निना ज्वलताऽनिशम् ।
न विना तद्वधं मेने भवितव्यप्रतिक्रियाम् ॥ ७६ ॥

७६. विद्वेषाग्नि से रात्रि-दिन जलते रहने के कारण निरंतर पीड़ित होते हुए उस राजा ने उसके (सन्धिमति) वध के बिना, भवितव्यता की प्रतिक्रिया असम्भव समझा।

भाव्यर्थस्याऽबुधाः कुर्युरुपायं स्थगनाय यम् ।
स एवाऽपावृतं द्वारं ज्ञेयं दैवेन कल्पितम् ॥ ७७ ॥

७७. मूर्ख जन भवितव्यता को अन्यथा करने हेतु, जिस उपाय को करते हैं, वही भाग्य निर्मित अनावृत द्वार है।[1]

दग्धाङ्गारकदम्बके विलुठतः स्तोकोन्मिषत्तेजसो
वेधा वह्निकणस्य शक्तिमतुलामाधातुकामो हठात् ।
तन्निर्वापणमिच्छतः प्रतनुते पुंसः समीपस्थिते
संतापद्रुतभूरिसर्पिषि घटे पानीयकुम्भभ्रमम् ॥ ७८ ॥

७८. जब विधाता दग्ध अंगार समूह में चिनाते हुए स्वल्प तेज वाले वह्निकण को हठात् अतुल शक्ति सम्पन्न करने की इच्छा करता है, तब उस अग्नि को बुझाने के इच्छुक पुरुष में उसके निकटस्थ ताप-तरल प्रचुर घृत घट में जल कुम्भ का भ्रम कर देता है।[1]

अथ राजाज्ञया क्रूरैर्वधकर्माधिकारिभिः ।
निशि संधिमतिः शूले समारोप्य विपादितः ॥ ७९ ॥

७९. राजा की आज्ञा से क्रूर वध कर्माधिकारियों ने रात्रि में सन्धिमति को शूलपर[1] चढ़ाकर हत्या कर दी।

'मादवे' मिलता है।

राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रहका यह ४६४वा श्लोक है।

श्लोक संख्या ७७ में 'स्याऽबुधाः' का पाठभेद 'य बुधाः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७७(१) कल्हण पुरानी बातों को नवीन शैली से कहता है। वही शैली उसने भाग्य वर्णन में अपनायी है। कल्हण की कवि रूप में वह सबसे बड़ी विशेषता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७८ में 'स्थिते' का पाठभेद 'स्थितेः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७८(१) इस श्लोक का अर्थ कई प्रकार से अनुवादकों ने किया है। श्री रणजीत सीताराम पण्डित के मत से इस श्लोक का शाब्दिक अर्थ कुछ अस्पष्ट होता है परन्तु तात्पर्य समझ में आ जाता है।

७९ (१) शूलः—शूली की प्रथा प्राचीन भारत में प्रचलित थी। स्थानभेद के कारण शूल अर्थात् शूल देने के प्रक्रिया में भी अन्तर था। शूलीपर चढ़ाने के लिए कल्हण ने समारोप शब्द का प्रयोग किया है।

श्री बिलफोर्ड का मत है कि जिस शूली पर मरना सन्धिमति का कहा जाता है वह वास्तव में 'क्रास' था। (एशियाटिक रिसर्च भाग १०) किन्तु यह बात गलत है। शूली की प्रथा भारत में बहुत प्राचीन है। महाभारत में माण्डव्य ऋषि को शूलीपर चढ़ाने का वर्णन मिलता है। 'क्रास' के

प्रोतशूले श्रुते तस्मिन् शोकशङ्कुर्महीपतेः ।
निरगाद्रोगभग्नस्य पूर्वं पश्चात्तु जीवितम् ॥ ८० ॥

८०. उसे शूल विद्ध हुआ सुनने पर रोग से भग्न महीपाल का शोक शंकु (शूल) पहले और बाद में प्राण निकल गया।

सप्तत्रिंशतिवर्षेषु यातेष्वस्मिन्निरन्वये ।
प्रशान्तभूमिपालाऽभूत्कतिचिद्दिवसानि भूः ॥ ८१ ॥

८१. वंश हीन उस राजा के सैतीस वर्ष बीत जानेपर कुछ दिनों तक यह पृथ्वी भूमिपाल रहित हो गयी थी।

अथ संधिमतिं बुद्ध्वा तथा व्यापादितं गुरोः ।
ईशानाख्यस्य हृदयं विवशं वशिनोऽप्यभूत् ॥ ८२ ॥

८२. सन्धिमति को उस प्रकार व्यापादित (मारा गया) जानकर, जितेन्द्रिय भी गुरु ईशान का हृदय विवश हो गया।

शिरीष इव संसारे सुखोच्छेद्ये मनीषिणाम् ।
हन्ताऽऽनृशंस्यं तद्वृन्तमिवैकमवशिष्यते ॥ ८३ ॥

८३. शिरीष पुष्प सदृश सरलता पूर्वक नष्ट होने वाले, इस संसार में खेद है। मनिषियो की क्रूरता ही उसके (शिरीष पुष्प के) वृन्त की तरह अवशिष्ट रह जाती है।

स श्मशानभुवं प्रायादनाथस्येव शुष्यतः ।
कर्तुं विनयिनस्तस्य स्वोचितामन्तसत्क्रियाम् ॥ ८४ ॥

८४. अनाथ के समान सूखते हुए उस विनयी की, अपने करने योग्य अन्तिम संस्कार करने के लिये वे (गुरु) श्मशान भूमिपर गये।

कारण भ्रम फैला है। सन्धिमति को ईशा मसीह रूप में जोडने का वृथा प्रयास किया गया है।

श्री विलसन ने [पृष्ठ ३१] पर लिखा है कि जिस रात्रि में राजा का निधन हुआ और उसका शरीर जलाया गया उसी रात्रि सन्धिमति को बधिकोने शूली पर चढाया।

कल्हण ने उक्त श्लोक में स्पष्ट वर्णन किया है कि राजा का प्राण सन्धिमति के शूली लगने के पश्चात् छूटा था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८३ में 'तद्वृन्तमि' का 'तद्वृत्तमि' तथा 'तद्वृत्यमि' पाठभेद मिलता है।

८३ [१] शिरीष—उत्तरी भारत के बगीचों तथा सडकों पर शिरीष का वृक्ष बहुत मिलता है। इसका वृक्ष सुन्दर तथा रात्रि में अति सुगन्धदायक होता है।

तं चाऽस्थिशेषमद्राक्षीत्कृष्यमाणं वलाद् वृकैः ।
शूलमूलावबद्धास्थिखण्डावष्टम्भनिश्चलम् ॥ ८५ ॥

८५. शृगालों द्वारा बलात् नोचे जाते हुए तथा शूल मूल ये बँधे, अस्थि खण्ड के सहारे निश्चल, अस्थि मात्र अवशिष्ट उसे (गुरु ने) देखा।

समीरणसमीकीर्णमुण्डरन्ध्राग्रनिर्गतैः ।
ध्वनितैरनुशोचन्तमिवाऽवस्थां तथाविधाम् ॥ ८६ ॥

८६. वहाँ समीरण समाकोर्ण मुख रन्ध्र द्वारा निर्गत ध्वनियों से मानो यह अपनी उस प्रकार की अवस्था को सोच रहा था।

हा वत्स द्रष्टुमीदृक्त्वे जीवाम्यद्येति वादिना ।
तस्याऽऽकृष्यत मूलान्तःप्रोतं तेनाऽथ कीकसम् ॥ ८७ ॥

८७. 'हा ! वत्स !! आज मैं तुम्हें इस प्रकार देखने के लिये जीवित हूँ ?' इस प्रकार कहते हुए उसने (ईशान) शूल विद्ध अस्थि को खींचा।

वेष्टिताङ्घ्रिः शिरशोर्णैस्तत्कचैर्धूलिधूसरैः ।
अनैषीत्तं स कङ्कालं वारयन्भपतो वृकान् ॥ ८८ ॥

८८. शिरसे गिरे धूल धूसरित उसके केशों से लिप्त चरण वह (ईशान) गुर्राते हुए वृकों को हटाता हुआ उस के कंकाल को ले गया।

उचितां सत्क्रियां कर्तुं ततस्तस्य समुद्यतः ।
भाले विधातृलिखितं श्लोकमेतमवाचयत् ॥ ८९ ॥

८९. तदनन्तर उचित सत्क्रिया करने के लिये समुद्यत उसने भाल[1] पर विधातृ लिखित इस श्लोक[2] को बाँचा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८६ में 'समाकीर्ण' का पाठभेद 'समाकीर्ण' तथा 'समापूर्ण' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

श्री स्तीन ने ८५ एवं ८६ श्लोको का अनुवाद एक साथ किया है। हिन्दी अनुवाद में भी एक साथ हो अनुवाद किया गया है। किन्तु श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने उनका अनुवाद अलग अलग किया है। यहाँ भी अनुवाद अलग हो किया गया है। उससे अर्थ में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं होती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८८ में 'वेष्टिताङ्घ्रः' का 'वेष्टिताघ्र' 'सकङ्काल' का 'स्वकं कालं' तथा 'भपतो' का पाठभेद 'भापतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८९ [१]भालरेखाः—प्राचीन काल में रेखा विज्ञान सामुद्रिक विद्या बहुत विकसित थी। हस्त-रेखा, पादरेखा, ललाटरेखा, आदि देखकर जन्म-पत्र तैयार कर दिया जाता था। आज भी अत्यन्त मेधावी अनुभवी सामुद्रिक हस्तरेखा देखकर जन्म तिथि निकाल लेते हैं।

'यावज्जीवं दरिद्रत्वं दश वर्षाणि बन्धनम् ।
शूलस्य पृष्ठे मरणं पुना राज्यं भविष्यति' ॥ ६० ॥

९०. "यावज्जीवन दारिद्रता, दश वर्षों तक बन्धन, शूल पृष्ठपर मरण. पुनःराज्य होगा।"

खोपड़ी पर रेखाएँ होती है। भगवान् बुद्ध के समय वंगीस खोपड़ी देखकर भविष्य तथा भूत दोनों कालो को कह देते थे। यह उनका पेशा हो गया था। उसने इस प्रकार बहुत धन अर्जन किया था। भगवान् बुद्ध ने उसके सम्मुख पाँच खोपडियाँ रख दीं। उसने चार का सच्चा हाल बता दिया परन्तु पाँचवें का भविष्य नहीं बता सका क्योंकि वह एक निर्वाण प्राप्त व्यक्ति की खोपड़ी थी। [सुत्तनिपात. वंगीस सुत्त: संयुक्त निकाय :८:१–१२पर गाथा२६४]

भारत में एक प्रचलित आख्यान है। एक ज्योतिषी थे। उन्हें एक खोपडी मिल गयी। उसपर लिखा था 'ताहू पर कछु और' अभी कुछ और होना बाकी है। पण्डित को महान् आश्चर्य हुआ। मर जाने पर अब इसका क्या होगा। परीक्षा के लिये उसे लाकर घर में रख दिया।

खोपड़ी घर में रखने पर लोगों को आश्चर्य हुआ। पण्डित की स्त्री को लोगो ने बहका दिया। इस खोपड़ी के कारण उस पर विपत्ति आने वाली थी। पण्डितानी ने क्रोधावेश में खोपडी उखल मे डालकर कूट डाला। पण्डितजी लौट कर आये। उन्हें बात मालूम हुई। उन्हें पण्डितानी की दुर्बल बुद्धि पर तो दया आयी। तथापि अपने शास्त्र पर उन्हें और विश्वास हो गया। कपाल रेखा की वाणी सत्य उतरी।

२. श्लोक—श्लोक मे चार पाद एवं आठ मात्रायें होती है। रामायण तथा महाभारत श्लोको में लिखे गये हैं। संस्कृत का कोई भी पद जो अनुष्टप् छन्द में होता है, उसे श्लोक कहते है। यह गायत्री की स्तुति में कहा गया था।

कल्हण ने अनुष्टुप् छन्द में ही राजतरंगिणी का निबन्धन किया है। किन्तु आदि एवं अन्त में उसने छन्द परिवर्तित कर दिया है।

महाकाव्य का यह एक लक्षण है कि सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित कर दी जाती है। कालिदास की भी यही शैली है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९० मे 'पुना राज्यं' का पाठभेद 'पुन राज्यं' तथा 'पुनः राज्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

९०(१) सन्धिमति और महात्मा ईशामसीह

यदि सन्धिमति का नाम संयोग से ईशान होता तो उसे ईशा मानने मे सन्देह का अवसर नही मिलता।

कुछ यह बात प्रचलित हो गई है कि महात्मा ईशा मसीह कश्मीर आए थे। वहाँ दश वर्ष निवास किया था। वह किसी बौद्ध विहार में निवास करते थे। कश्मीर मे ही उन्होंने ज्ञानार्जन किया था।

ईशा के जीवन में १० वर्ष का काल अज्ञात है। वे १० वर्ष कहा थे? क्या किये,? कुछ पता नही चलता। जीवन चरित्र की मूल घटनाओं में साम्य है।

कुछ मुसलिम लेखकों का मत है कि प्रभु ईशा-मसीह की कब्र कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में है। उसे हजरत यूज आसफ कहते है। यह मजार श्रीनगर मे खानयार में है। यह भी कहा जाता है कि यूज आसफ महात्मन् मूसा के वंशज थे। मिश्र के बादशाह ने कश्मीर में उन्हें अपना राजदूत बना कर कश्मीर के राजा के दरबार मे भेजा था। अरबी में यदि यूज आसफ लिखा जाय तो वह बोधि-सत्व तुल्य लगेगा। सम्भव है कि उक्त मजार मिश्री राजदूत यूज आसफ की रही होगी अथवा वहाँ कोई स्तूप था। जिसका सम्बन्ध बोधि-सत्व से था। उसे ही यूज आसफ इसलामीकरण निमित्त कर दिया गया।

पादत्रयस्य दृष्टार्थः श्लोकस्याऽऽसोत्स योगवित् ।
द्रष्टव्ये तुर्यपादार्थप्रत्यये कौतुकान्वितः ॥ ९१ ॥

९१. श्लोक[1] के पाद त्रय का अर्थ देखकर, द्रष्टव्य चतुर्थ पादस्थ अर्थ के विश्वास में वह योगवेत्ता कौतुकान्वित हो गया था।

अचिन्तयच्च संभ्रान्तः कथमेतद्भविष्यति ।
उवाच च विधेः शक्तिमचिन्त्यां कलयंश्चिरम् ॥ ९२ ॥

९२. सम्भ्रान्त होते हुए उसने सोचा—'यह कैसे होगा ?' और देर तक विचार करते हुए विधाता की शक्ति को (मन ही मन) अचिन्त्य कहा।

कश्मीर में हिन्दूराज के अन्त तथा इसलाम के प्रचार के साथ हिन्दूपरम्परा हिन्दू इतिहास आदि की इसलामीकरण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। आदम, मूसा, सुलेमान, ईशा आदि नबियों के नाम से कश्मीर के पुराने स्थान तथा गाथाओं का नामकरण किया जाने लगा। यहाँ तक कि हिन्दू राजाओं का नाम भी बदल कर उन्हें मुसलमानी जामा पहना दिया गया। यह इसलिये किया गया कि नवीन बने मुसलमान तथा भावी सन्तानें हिन्दू इतिहास संस्कृत, सभ्यता को पूर्णतया भूलकर यही समझें कि कश्मीर में सनातन काल से इसलाम परम्परा कायम थी और उन्होंने हिन्दूधर्म त्याग कर मुसलमान बनकर कुछ बुरा नहीं किया है। बल्कि पुराने मूल मजहब में पुनः लौट आए हैं। जिसे कभी त्याग दिया था।

सन्धिमति का राज प्राप्ति के पश्चात् राज त्याग कर चले जाने का उल्लेख है। सन्धिमति का राजत्याग के पश्चात् सन्त होकर चले जाने का भी उल्लेख है। परन्तु उनका हुआ क्या ? वे कहाँ गये, कहाँ रहे तथा कहाँ मरे इतिहास के गर्भ में है। ईशामसीह का पता सूली पर चढ़ने के पश्चात् नहीं लगता। हो यह कहा जाता है कि उन्होंने यहूदियों के राजा होने की बात कही जिसके कारण तत्कालीन सत्ता तथा कानून के अनुसार उन्हें सूली पर चढ़ाया गया। सन्धिमति को कश्मीर राज के कल्पित विद्रोह के नाम पर ही सूली का आलिंगन किया था।

बाइबिल के समालोचकों में एक-मत ईशामसीह को ऐतिहासिक व्यक्ति जैसा वर्णन किया गया है नहीं मानता। रूसी वैज्ञानिकों ने 'डेडसी स्क्रोल' जिसमें बाइबिल लिखी है उसका अन्वेषण कर बताया है कि स्क्रोल का काल ईशा के कथित जन्म काल से पूर्व का है। ईशा तथा सन्धिमति के जीवनकाल तथा चरित्र में इतना साम्य है कि अभी गवेषणा की आवश्यकता है।

सन्धिमति के गुरु का नाम ईशान था। यह शब्द 'ईशा' से मिलता है। इस विषय पर बिना कुछ विशेष अध्ययन के कहना साधिकारिक ढंग से ठीक न होगा। यदि ईशान को ही कुछ लेखकों ने ईशा नाम साम्य के कारण दिया होता तो बात कुछ दूसरी हो जाती।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९१ में 'दृष्टार्थः' का 'दृष्टार्थे'; 'तुर्य' का 'चतुर्थ' तथा 'पादार्थ' का पाठभेद पदार्थ' मिलता है।

श्लोक संख्या ९२ में 'कथमे' का पाठभेद 'कार्यो मे' मिलता है।

तत्तत्कर्मव्यतिकरकृतः पारतन्त्र्यानुरोधा-
त्सज्जाः सर्वे व्यवसितहठोन्मूलनाय प्रयत्नात् ।
चित्रं तत्राऽप्युदयति विधेः शक्तिरत्यद्भुतेयं
यन्माहात्म्याद्विविधघटनासिद्धयो निर्निरोधाः ॥ ९३ ॥

९३. "तत् तत् कर्म संसर्ग में संलग्न, सब लोग पारतन्त्र्य के अनुरोध से, सुनिश्चित (नियति) का प्रयत्न पूर्वक हठात् उन्मूलन हेतु समुद्यत होते हैं, किन्तु आश्चर्य है, वहां भी विधाता की यह अद्भुत शक्ति उदित हो जाती है। जिसके प्रभाव से, द्विविध घटना सिद्धियाँ निरोध रहित हो जाती हैं।"

मणिपूरपुरे पार्थं निहतं समजीवयत् ।
फणिकन्याप्रभावेन सर्वाश्चर्यनिधिर्विधिः ॥ ९४ ॥

९४. सभी आश्चर्यों के निधि विधि ने मणिपूर[१] में निहत पार्थ को नागकन्या[२] के प्रभाव से जीवित किया था।

पादटिप्पणियाँ :

९३. राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५०वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ९४ में 'वेन' का पाठभेद 'वेण' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ:

९४ (१) मणिपूर : इस समय केन्द्रीय शासित प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल २२३४६ वर्ग कीलो मीटर है। भागवत पुराण (९:२२:३२) के अनुसार यहाँ की राजकन्या के गर्भ से अर्जुन पुत्र बभ्रुवाहन हुआ था।

(२) नागकन्या : मणिपूर के राजा चित्रवाहन थे। उनकी कन्या का नाम चित्रांगदा था। विवाह अर्जुन के साथ हुआ था। उनका पुत्र बभ्रुवाहन था। पुत्र को अर्जुन ने चित्रवाहन को दे दिया। विवाह के समय चित्रवाहन ने शर्त रखी थी। चित्रांगदा से उत्पन्न पुत्र, उसका राजवंश चलायेगा। चित्रवाहन नाना होते भी बभ्रुवाहन का धर्मपिता था। वह मणिपूर का कालान्तर में राजा हुआ। (म० आ० २०६:२४-२६; २०७:२१-२३)

महाभारत युद्ध के पश्चात्, महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञीय अश्व के साथ अर्जुन मणिपूर पहुँचे। बभ्रुवाहन ने अश्व पकड़ लिया। जब उसे मालूम हुआ कि उसके पिता का अश्व है तो द्रव्यादि भेंट के साथ वापस कर दिया।

अर्जुन को पुत्र का यह कार्य कायरता पूर्ण प्रतीत हुआ। उसने धनादि लौटा दिया।

अर्जुन का व्यंग बभ्रुवाहन समझ गया। उसने अपने मन्त्री सुबुद्धि से परामर्श कर अश्व पकड़ लिया। सेनापति सुमति के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन, ससैन्य केवल पराजित ही नहीं हुआ; उसे अपने प्राण भी गवाना पड़ा। अर्जुन की ओर से कर्ण पुत्र वृषकेतु भी इस युद्ध में मारा गया था।

गर्वोन्मत्त बभ्रुवाहन ने पिता के परास्त तथा हत्या की बात माता चित्रांगदा से आकर कही। चित्रांगदा पति की मृत्यु का समाचार सुनकर, विलाप करने लगी। अर्जुन के शव के साथ सती होने का निश्चय किया। बभ्रुवाहन को पितृ-हत्या के दोष का अपराध मालूम पड़ा। वह भी आत्महत्या करने पर तत्पर हो गया।

द्रोणपुत्रास्त्रनिर्दग्धं मातुर्गर्भे परिक्षितम् ।
जीवयन्कृष्णमाहात्म्याद्धाता धुर्योऽधिकारिणाम् ॥ ९५ ॥

९५. द्रोण-पुत्रास्त्र[1] से माता के गर्भ में दग्ध परिक्षित[2] को कृष्ण के माहात्म्य से जीवित[3] करता हुआ विधाता अधिकारियों में अग्रणी हुआ।"

उलूपी नागकन्या थी। उसका पिता कौरव्य नाग था। वह बालविधवा थी। अर्जुन ने उससे गन्धर्व विवाह किया था। पति की मृत्यु का समाचार सुनी। दुःखी आयी। चित्रांगदा को सान्त्वना दी। बभ्रुवाहन ने पिता तथा माता की जीवन रक्षा का उपाय विमाता से पूछा। उलूपी ने बताया। यदि शेष नाग से मृत संजीवन मणि लायी जाय तो अर्जुन जीवित हो सकता है।

बभ्रुवाहन शेषनाग के पास गया। मणि मांगा। अन्य नागों की मंत्रणा पर शेष नाग ने मणि देना अस्वीकार कर दिया। बभ्रुवाहन का शेषनाग से युद्ध हुआ। शेषनाग युद्ध में पराजित हो गया। बभ्रुवाहन मणि लेकर शव के समीप आया।

अर्जुन का शव मस्तक हीन उसने देखा। हताश हो गया। परन्तु कृष्ण अपने पुण्य प्रभाव से मस्तक पुनः लाये। उसका शव से सन्धि कर दिया गया। अर्जुन जीवित होगये। (जै० म० ३७:२१–४०, म० आश्व० ७९–९०)

महाभारत में यह कथा दूसरी तरह से दी गयी है। वहाँ यह वर्णन मिलता है। बभ्रुवाहन ने अपनी विमाता उलूपी के अस्त्रों-शस्त्रों द्वारा अर्जुन को युद्ध में मूर्छित किया था। यह घटना सुनकर चित्रांगदा ने सपत्नी उलूपी की निर्भर्त्सना की। उलूपी को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। उसने बभ्रुवाहन को मृत संजीवक मणि दी। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के वक्ष स्थल पर मणि रखकर पिता को जीवित किया। (म० आश्व० ८१:९–१०, ९०:१)

९५ (१) द्रोणपुत्र : अश्वत्थामा से यहाँ तात्पर्य है। अश्वत्थामा चिरंजीवियों में एक है।

(२) परिक्षित : उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न अभिमन्यु का पुत्र था। महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् ३६ वर्ष राज्य किया। राज्य-सिंहासन पर बैठने के समय परिक्षित की आयु ३६ वर्ष थी। इसकी पत्नी का नाम मद्रवती किंवा माद्रवती था। उनके चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन थे। कृपाचार्य को ऋत्विज बनाकर भागीरथी के तटपर इसने ३ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसका देहावसान ९६ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इसने ६० वर्ष राज्य किया था। (दे० भा० २:८)

कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् कलि ने पृथ्वी में प्रवेश किया। शूद्र रूप धारण कर वह पशु आदि की हत्या करने लगा। कलि को समाप्त करने के लिए परिक्षित उद्यत हो गया। कलि राजा परिक्षित की शरण में आया। निवास के लिये स्थान पूछने पर जूआ, मद्य, व्यभिचार, हिंसा तथा स्वर्ण पाँच स्थानों में रहने के लिये राजा ने आदेश दिया। धर्म तथा पृथ्वी को संतोष हुआ। (भा० : १ : १६:१७)

मृगया निमित्त एक समय परिक्षित वन में गये। उन्हें प्यास लगी। जल ढूँढने लगे। शमीक मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ध्यानस्थ थे। वह राजा का आना जान न सके। जल की याचना सुन न सके। राजा को क्रोध आया। उसने पास ही पड़े, एक मृत सर्प को मुनि के गले में डाल दिया। वापस चला गया। (म० आ० ३६:१७–२१)

शमीक के पुत्र शृंगी ऋषि को यह बात ज्ञात हुई। उसने शाप दिया। गले में साँप डालने वाले की मृत्यु सात दिन पश्चात् सर्प दंश से हो जायगी। शमीक के पुत्र का नाम कहीं-कहीं 'गविजात' भी दिया गया है।

शमीक को शाप की बात ज्ञात हुई। मुनि को दुःख हुआ। पुत्र की भर्त्सना की। अपने शिष्य

गौरमुख से शाप की बात परिक्षित को बताने के लिये भेजा। (म० भा० ३८:१३–२८)

तक्षक नाग यथा समय परिक्षित को दंश करने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में कश्यप मान्त्रिक मिला। वह नाग का विष उतारने परिक्षित के पास जा रहा था। तक्षक ने उसे यथेष्ट धन देकर, वापस कर दिया। निश्चित समय पर तक्षक द्वारा सर्पदंस के कारण परिक्षित की मृत्यु हो गयी। (म० आ० ३६–४०, ४५–४७ दे० भा० २:८–१०)

भागवत पुराण के अनुसार तक्षक ने ब्राह्मण रूप धर कर परिक्षित के राजभवन में प्रवेश किया था। तक्षक परिक्षित के समीप पहुँचते ही, तत्काल नागस्वरूप धारण कर, उसकी हत्या का कारण हुआ। (भा० १२:६)

महाभारत में यह कथा दूसरी प्रकार से दी गयी है। तक्षक ने कतिपय नागों को फल, पुष्प देकर परिक्षित के पास भेजा। एक फल में सूक्ष्म रूप कीड़ा बनकर बैठ गया। तपस्वी वेशधारी नाग परिक्षित के द्वार पर फल पुष्प भेंट करने की अनुमति माँगने लगे। परिक्षित ने उनके फल को स्वीकार किया। एक बड़ा फल स्वयं ले लिया। शेष अपने मित्रों को दे दिया।

परीक्षित ने फल फोड़ा। उसमें से एक लाल कीड़ा निकला। उसे देखकर परिक्षित ने व्यंगपूर्वक कहा—'सूर्य अस्ताचल जा रहा है। सातवाँ दिन पूरा हो रहा है। कहीं यही न तक्षकराज बन जाय ?' परिक्षित उस कीड़े को अपनी गर्दन पर लेकर जैसे खेलने लगा। परन्तु तत्काल वह कीड़ा तक्षक नाग बन गया। उसके शरीर से लिपट गया। परिक्षित सर्पदंस से तत्काल मर गया।

पुराणों के अनुसार परिक्षित जन्म से मगध देश के राजा महापद्म का समय १५०० वर्षों का होता है। (मत्स्य० २७३:३६) विष्णु पुराण में 'ज्ञेय' का 'शतं' पाठ मानकर यह अवधि एक हजार एकसौ पन्द्रह वर्षों की निश्चित की गयी है। (विष्णु० : ४:२४:३२)

(३) जीवित करना—परिक्षित उत्तरा के गर्भ में था। महाभारत में दुर्योधन कौरवों से पराजित हो गया था। केवल अश्वत्थामा शेष रह गया था। वह पाण्डवद्रोही था। रात्रि में द्रोपदी के पाँचों पुत्रों की हत्या कर दी थी। उसने इसी प्रकार सूत, सोम, धृष्टद्युम्न, शिखंडी आदि अनेक वीरों का नाश किया। प्रसन्न अश्वत्थामा दुर्योधन के समीप गया। दुर्योधन घायल था। तड़प रहा था। भारतीय युद्ध की सम्पूर्ण सेना में केवल पाँच पाण्डव, श्री कृष्ण पाण्डव पक्ष के तथा कौरव पक्ष के केवल तीन अश्वत्थामा, कृपाचार्य एवं कृतवर्मा जीवित बच गये थे। द्रौपदी के पुत्रों आदि की हत्या सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। सुखपूर्वक प्राण विसर्जन किया।

द्रोपदी अत्यन्त दुःखी हुई। उसने प्रतिज्ञा की। अश्वत्थामा के मस्तक की मणि निकालकर यदि युधिष्ठिर के मस्तक पर वह न देखेगी तो प्राण त्याग देगी। भीम ने मणि प्राप्त हेतु अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया। (म. सौ. ८,९ ११)

अश्वत्थामा चिरंजीवी था। भीमसेन का उसे हराना कठिन था। अतएव श्री कृष्ण, अर्जुन के साथ भीम की सहायता के लिए गये। पाण्डवों के नाश हेतु अश्वत्थामा ने ब्रह्मशीर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रतिकार निमित्त अर्जुन ने भी वही अस्त्र छोड़ा। पृथ्वी जलने लगी।

व्यासादि मुनियों ने अश्वत्थामा को पाण्डवों के शरण जाने के लिये कहा। उसने अपने अस्त्र को लौटाना स्वीकार नहीं किया। किन्तु मणि देने पर उद्यत हो गया।

उत्तरा के गर्भस्थ परिक्षित पर उसने अस्त्र छोड़ा। अस्त्र के कारण गर्भस्थ शिशु जलने लगा। उत्तरा ने भगवान् का स्मरण किया। भगवान् ने शिशु की रक्षा की। विष्णु का नाम इसलिये "विष्णु-रात" पड़ गया। यहाँ भारत के अनुसार कुरु वंश के परिक्षीण होने पर इसने जन्म लिया था। अतएव परिक्षित नाम पड़ा था। (म० अश्व० ७० : १०)

उद्घाटिततमोरिः स ततः पितृवनावनो ।
ददर्श योगिनीस्तेजःपरिवेषान्तरस्थिताः ॥ १०० ॥

१००. तदुपरान्त उसने गवाक्ष खोलकर श्मशान भूमि पर तेज के परिवेश में स्थित योगिनियों को देखा।

तासां संभ्रममालक्ष्य कङ्कालं चापवाहितम् ।
ईशानस्तां श्मशानोर्वीं धृतासिश्चकितो ययौ ॥ १०१ ॥

१०१. उनके सम्भ्रम एवं अपहृत कंकाल को देखकर तलवार लिये चकित ईशान उस श्मशान पर गया।

अथाऽपश्यत्तरुच्छन्नः शायितं मण्डलान्तरे ।
सन्धीयमानसर्वाङ्गं कङ्कालं योगिनीगणैः ॥ १०२ ॥

१०२. तत्पश्चात् वृक्ष के ओट से उसने देखा कि योगिनियाँ मध्य में कंकाल को सुलाकर सब अंगो को जोड़ रही थीं।

उल्लसद्वरसंभोगवाञ्छा मद्यपदेवताः ।
वीरालाभात्समन्विष्य कङ्कालं तमपाहरन् ॥ १०३ ॥

१०३. वर सम्भोग की उत्कट कामना वश उन मद्यप योगिनियों ने किसी वीर (पुरुष) के अभाव में खोजकर उस कंकाल का अपहरण कर लिया।

एकमेकं स्वमङ्गं च विनिधाय चणादथ ।
कुतोऽप्यानीय पुंलक्ष्म पूर्णाङ्गं तं प्रचक्रिरे ॥ ०४ ॥

१०४. अपने एक-एक अंग को रखकर और कहीं से पुंलक्ष्म (शिश्न) लाकर, उसे सर्वांग पूर्ण कर दिया।

जोनराज ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है।

अचलत्पाऽनादण्डघण्टानाघण्टाकृतम् ।

मनांसि न पुनस्तेषां वीराणां साहसस्पृशाम् ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०० में 'ददर्श' का 'दर्शयन्' तथा 'स्थिताः' का पाठभेद 'स्थितः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ।

श्लोक संख्या ९९ और १०० का अनुवाद श्री स्तीन, श्री पण्डित तथा अन्य अनुवादकों ने एक साथ ही किया है। यहाँ पर दोनों श्लोकों का अनुवाद अलग-अलग कर दिया गया है। इससे अर्थ में विप्रतिपत्ति नहीं होती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०१ में 'मालक्ष्य' का पाठभेद 'माकर्ण्य' मिलता है।

श्लोक संख्या १०३ में 'सम्भोग' का 'संयोग' 'मद्यप-देवता' का 'मध्यमदेवता' 'मुद्यमदेवताः तथा 'तमपाहरन्' का पाठभेद 'तमुपाहरन्' मिलता है।

श्लोक संख्या १०४ में 'कुतो' का 'ततो' तथा 'पुंलक्ष्म' का पाठभेद 'पुलिङ्ग' मिलता है।

गोरमुख से शाप की बात परिक्षित को बताने के लिये भेजा। (म० भा० ३८:१३–२८)

तक्षक नाग यथा समय परिक्षित को दंश करने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में कश्यप मान्त्रिक मिला। वह नाग का विष उतारने परिक्षित के पास जा रहा था। तक्षक ने उसे यथेष्ट धन देकर, वापस कर दिया। निश्चित समय पर तक्षक द्वारा सर्पदंस के कारण परिक्षित की मृत्यु हो गयी। (म० आ० ३६–४०, ४५–४७ दे० भा० २:८–१०)

भागवत पुराण के अनुसार तक्षक ने ब्राह्मण रूप धर कर परिक्षित के राजभवन में प्रवेश किया था। तक्षक परिक्षित के समीप पहुँचते ही, तत्काल नागस्वरूप धारण कर, उसकी हत्या का कारण हुआ। (भा० १२:६)

महाभारत मे यह कथा दूसरी प्रकार से दी गयी है। तक्षक ने कतिपय नागों को फल, पुष्प देकर परिक्षित के पास भेजा। एक फल में सूक्ष्म रूप कीड़ा बनकर बैठ गया। तपस्वी वेशधारी नाग परिक्षित के द्वार पर फल पुष्प भेंट करने की अनुमति माँगने लगे। परिक्षित ने उनके फल को स्वीकार किया। एक बड़ा फल स्वयं ले लिया। शेष अपने मित्रों को दे दिया।

परीक्षित ने फल फोड़ा। उसमें से एक लाल कीड़ा निकला। उसे देखकर परिक्षित ने व्यंगपूर्वक कहा—'सूर्य अस्ताचल जा रहा है। सातवाँ दिन पूरा हो रहा है। कहीं यही न तक्षकराज बन जाय?' परिक्षित उस कीड़े को अपनी गर्दन पर लेकर जैसे खेलने लगा। परन्तु तत्काल वह कीड़ा तक्षक नाग बन गया। उसके शरीर से लिपट गया। परिक्षित सर्पदंस से तत्काल मर गया।

पुराणों के अनुसार परिक्षित जन्म से मगध देश के राजा महापद्म का समय १५०० वर्षों का होता है। (मत्स्य० २७३:३६) विष्णु पुराण में 'ज्ञेय' का 'शत' पाठ मानकर यह अवधि एक हजार एकसो पन्द्रह वर्षों की निश्चित की गयी है। (विष्णु० : ४:२४:३२)

(३) **जीवित करना**—परिक्षित उत्तरा के गर्भ में था। महाभारत में दुर्योधन कौरवों से पराजित हो गया था। केवल अश्वत्थामा शेष रह गया था। वह पाण्डवद्रोही था। रात्रि में द्रौपदी के पाँचों पुत्रों की हत्या कर दी थी। उसने इसी प्रकार सूत, सोम, धृष्टद्युम्न, शिखंडी आदि अनेक वीरों का नाश किया। प्रसन्न अश्वत्थामा दुर्योधन के समीप गया। दुर्योधन घायल था। तड़प रहा था। भारतीय युद्ध की सम्पूर्ण सेना में केवल पाँच पाण्डव, श्री कृष्ण पाण्डव पक्ष के तथा कौरव पक्ष के केवल तीन अश्वत्थामा, कृपाचार्य एवं कृतवर्मा जीवित बच गये थे। द्रौपदी के पुत्रों आदि की हत्या सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। सुखपूर्वक प्राण विसर्जन किया।

द्रौपदी अत्यन्त दुःखी हुई। उसने प्रतिज्ञा की। अश्वत्थामा के मस्तक की मणि निकालकर यदि युधिष्ठिर के मस्तक पर वह न देखेगी तो प्राण त्याग देगी। भीम ने मणि प्राप्त हेतु अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया। (म. सौ. ८,९ ११)

अश्वत्थामा चिरंजीवी था। भीमसेन का उसे हराना कठिन था। अतएव श्री कृष्ण, अर्जुन के साथ भीम की सहायता के लिए गये। पाण्डवों के नाश हेतु अश्वत्थामा ने ब्रह्मशीर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रतिकार निमित्त अर्जुन ने भी वही अस्त्र छोड़ा। पृथ्वी जलने लगी।

व्यासादि मुनियों ने अश्वत्थामा को पाण्डवों के शरण जाने के लिये कहा। उसने अपने अस्त्र को लौटाना स्वीकार नहीं किया। किन्तु मणि देने पर उद्यत हो गया।

उत्तरा के गर्भस्थ परिक्षित पर उसने अस्त्र छोड़ा। अस्त्र के कारण गर्भस्थ शिशु जलने लगा। उत्तरा ने भगवान् का स्मरण किया। भगवान् ने शिशु की रक्षा की। विष्णु का नाम इसलिये "विष्णुरात" पड़ गया। यहाँ भारत के अनुसार कुरु वंश के परिक्षीण होने पर इसने जन्म लिया था। अतएव परिक्षित नाम पड़ा था। (म० अश्व० ७० : १०)

द्रोणपुत्रास्त्रनिर्दग्धं मातुर्गर्भे परिक्षितम् ।
जीवयन्कृष्णमाहात्म्याद्धाता धुर्योऽधिकारिणाम् ॥ ९५ ॥

९५. द्रोण-पुत्रास्त्र[1] से माता के गर्भ में दग्ध परिक्षित[2] को कृष्ण के माहात्म्य से जीवित[3] करता हुआ विधाता अधिकारियों में अग्रणी हुआ।"

उलूपी नागकन्या थी। उसका पिता कौरव्य नाग था। वह बालविधवा थी। अर्जुन ने उससे गन्धर्व विवाह किया था। पति की मृत्यु का समाचार सुनी। दुःखी आयी। चित्रांगदा को सान्त्वना दी। बभ्रुवाहन ने पिता तथा माता की जीवन रक्षा का उपाय विमाता से पूछा। उलूपी ने बताया। यदि शेष नाग से मृत संजीवन मणि लायी जाय तो अर्जुन जीवित हो सकता है।

बभ्रुवाहन शेषनाग के पास गया। मणि मांगा। अन्य नागों की मंत्रणा पर शेष नाग ने मणि देना अस्वीकार कर दिया। बभ्रुवाहन का शेषनाग से युद्ध हुआ। शेषनाग युद्ध में पराजित हो गया। बभ्रुवाहन मणि लेकर शव के समीप आया।

अर्जुन का शव मस्तक हीन उसने देखा। हताश हो गया। परन्तु कृष्ण अपने पुण्य प्रभाव से मस्तक पुनः लाये। उसका शव से सन्धि कर दिया गया। अर्जुन जीवित होगये। (जै० म० ३७:२१–४०, म० आश्व० ७९–९०)

महाभारत में यह कथा दूसरी तरह से दी गयी है। वहाँ यह वर्णन मिलता है। बभ्रुवाहन ने अपनी विमाता उलूपी के अस्त्रों-शस्त्रों द्वारा अर्जुन को युद्ध में मूर्छित किया था। वह घटना सुनकर चित्रांगदा ने सपत्नी उलूपी की निर्भर्त्सना की। उलूपी को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। उसने बभ्रुवाहन को मृत संजीवक मणि दी। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के वक्ष स्थल पर मणि रखकर पिता को जीवित किया। (म० आश्व० ८१:९–१०, ९०:१)

९५ (१) द्रोणपुत्र : अश्वत्थामा से यहाँ तात्पर्य है। अश्वत्थामा चिरंजीवितों में एक है।

(२) परिक्षित : उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न अभिमन्यु का पुत्र था। महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् ३६ वर्ष राज्य किया। राज्य-सिंहासन पर बैठने के समय परिक्षित की आयु ३६ वर्ष थी। इसकी पत्नी का नाम भद्रवती किंवा माद्रवती था। उनके चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन थे। कृपाचार्य को ऋत्विज बनाकर भागीरथी के तटपर इसने ३ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसका देहावसान ९६ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इसने ६० वर्ष राज्य किया था। (दे० भा० २:८)

कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् कलि ने पृथ्वी में प्रवेश किया। शूद्र रूप धारण कर वह पशु आदि की हत्या करने लगा। कलि को समाप्त करने के लिए परिक्षित उद्यत हो गया। कलि राजा परिक्षित की शरण में आया। निवास के लिये स्थान पूछने पर जूआ, मद्य, व्यभिचार, हिंसा तथा स्वर्ण पाँच स्थानों में रहने के लिये राजा ने आदेश दिया। धर्म तथा पृथ्वी को संतोष हुआ। (भा० : १ : १६:१७)

मृगया निमित्त एक समय परिक्षित वन में गये। उन्हें प्यास लगी। जल ढूँढ़ने लगे। ऋचीक मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ध्यानस्थ थे। वह राजा का आना जान न सके। जल की याचना सुन न सके। राजा को क्रोध आया। उसने पास ही पड़े, एक मृत सर्प को मुनि के गले में डाल दिया। वापस चला गया। (म० आ० ३६:१७–२१)

शमीक के पुत्र शृंगी ऋषि को यह बात ज्ञात हुई। उसने शाप दिया। गले में साँप डालने वाले की मृत्यु सात दिन पश्चात् सर्प दंश से हो जायगी। शमीक के पुत्र का नाम कहीं-कहीं 'गविजात' भी दिया गया है।

शमीक को शाप की बात ज्ञात हुई। मुनि को दुःख हुआ। पुत्र की भर्त्सना की। अपने शिष्य

गौरमुख से शाप की बात परिक्षित को बताने के लिये भेजा। (म० आ० ३८:१३–२८)

तक्षक नाग यथा समय परिक्षित को दंश करने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में कश्यप मान्त्रिक मिला। वह नाग का विष उतारने परिक्षित के पास जा रहा था। तक्षक ने उसे यथेष्ट धन देकर, वापस कर दिया। निश्चित समय पर तक्षक द्वारा सर्पदंस के कारण परिक्षित की मृत्यु हो गयी। (म० आ० ३९–४०, ४५–४७ दे० भा० २:८–१०)

भागवत पुराण के अनुसार तक्षक ने ब्राह्मण रूप धर कर परिक्षित के राजभवन में प्रवेश किया था। तक्षक परिक्षित के समीप पहुँचते ही, तत्काल नागस्वरूप धारण कर, उसकी हत्या का कारण हुआ। (भा० १२:६)

महाभारत में यह कथा दूसरी प्रकार से दी गयी है। तक्षक ने कतिपय नागों को फल, पुष्प देकर परिक्षित के पास भेजा। एक फल में सूक्ष्म रूप कीड़ा बनकर बैठ गया। तपस्वी वेशधारी नाग परिक्षित के द्वार पर फल पुष्प भेंट करने की अनुमति माँगने लगे। परिक्षित ने उनके फल को स्वीकार किया। एक बड़ा फल स्वयं ले लिया। शेष अपने मित्रों को दे दिया।

परीक्षित ने फल फोड़ा। उसमें से एक लाल कीड़ा निकला। उसे देखकर परिक्षित ने व्यंगपूर्वक कहा—'सूर्य अस्ताचल जा रहा है। सातवाँ दिन पूरा हो रहा है। कहीं यही न तक्षकराज बन जाय?' परिक्षित उस कीड़े को अपनी गर्दन पर लेकर जैसे खेलने लगा। परन्तु तत्काल वह कीड़ा तक्षक नाग बन गया। उसके शरीर से लिपट गया। परिक्षित सर्पदंस से तत्काल मर गया।

पुराणों के अनुसार परिक्षित जन्म से मगध देश के राजा महापद्म का समय १५०० वर्षों का होता है। (मत्स्य० २७३:३६) विष्णु पुराण में 'शेष' का 'शत' पाठ मानकर यह अवधि एक हजार एकसौ पन्द्रह वर्षों को निश्चित की गयी है। (विष्णु० : ४:२४:३२)

(३) जीवित करना—परिक्षित उत्तरा के गर्भ में था। महाभारत में दुर्योधन कौरवों से पराजित हो गया था। केवल अश्वत्थामा शेष रह गया था। वह पाण्डवद्रोही था। रात्रि में द्रौपदी के पाँचो पुत्रों की हत्या कर दी थी। उसने इसी प्रकार सूत, सोम, धृष्टद्युम्न, शिखंडी आदि अनेक वीरों का नाश किया। प्रसन्न अश्वत्थामा दुर्योधन के समीप गया। दुर्योधन घायल था। तड़प रहा था। भारतीय युद्ध की सम्पूर्ण सेना में केवल पाँच पाण्डव, श्री कृष्ण पाण्डव पक्ष के तथा कौरव पक्ष के केवल तीन अश्वत्थामा, कृपाचार्य एवं कृतवर्मा जीवित बच गये थे। द्रौपदी के पुत्रों आदि की हत्या सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। सुखपूर्वक प्राण विसर्जन किया।

द्रौपदी अत्यन्त दुःखी हुई। उसने प्रतिज्ञा की। अश्वत्थामा के मस्तक की मणि निकालकर यदि युधिष्ठिर के मस्तक पर वह न देखेगी तो प्राण त्याग देगी। भीम ने मणि प्राप्त हेतु अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया। (म. सौ. ८,९ ११)

अश्वत्थामा चिरंजीवी था। भीमसेन का उसे हराना कठिन था। अतएव श्री कृष्ण, अर्जुन के साथ भीम की सहायता के लिए गये। पाण्डवों के नाश हेतु अश्वत्थामा ने ब्रह्मशीर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रतिकार निमित्त अर्जुन ने भी वही अस्त्र छोड़ा। पृथ्वी जलने लगी।

व्यासादि मुनियों ने अश्वत्थामा को पाण्डवों के शरण जाने के लिये कहा। उसने अपने अस्त्र को लौटाना स्वीकार नहीं किया। किन्तु दृष्टि देने पर उद्यत हो गया।

कचं भस्मीकृतं दैत्यैर्नागांस्तार्क्ष्येण भक्षितान् ।
पुनर्जीवयितुं को वा दैवादन्यः प्रगल्भते ॥९६॥

९६. दैत्यों द्वारा भस्मी कृत कच[1] एवं तार्क्ष्य[2] भक्षित नागों को पुनः जीवित करने के लिये दैव के अतिरिक्त और कौन समर्थ हुआ ?

एक मत है कि परिक्षित जन्म लेते ही अपने रक्षक भगवान् को खोजने लगा। अस्तु 'परि+इक्ष' नाम प्राप्त किया। (भा० १ : १२ : ३०) इस सन्धि के अनुसार नाम 'परीक्षित' होना चाहिए। परन्तु महाभारत में सर्वत्र नाम परिक्षित ही व्यवहृत हुआ है। कल्हण ने भी नाम 'परिक्षित' ही दिया है। मैंने भी यही नाम दिया है।

भागवत पुराण में यह कथा और तरह से हो गयी है। अश्वत्थामा ने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये द्रौपदी के पाँचो पुत्रों की हत्या कर दी। अर्जुन ने अश्वत्थामा को बन्दी बना लिया। उसे द्रौपदी के सम्मुख उपस्थित किया। द्रौपदी ने अश्वत्थामा को ब्राह्मण पुत्र के कारण उसे छोड़ देने के लिये अर्जुन से कहा। उसने अश्वत्थामा के चूडामणि को ले लेना पर्याप्त प्रतिशोध माना।

(भाग० १०:७१;४४,४६,४७)

९६ (१) कच : कच देवगुरु बृहस्पति के पुत्र थे। उनकी माता का नाम नहीं पता चलता। कच देवयानी कथा प्रसिद्ध है।

कच असुर गुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिये सुरों द्वारा भेजे गये थे। कच ने इसे रहस्यमय ढंग से गोपनीय रखा।

दैत्यों ने समझ लिया कि कच संजीवनी विद्या प्राप्त करने के लिये आया था। कच को मार डालने का निश्चय दैत्यों ने किया।

एक दिन कच गुरु की गाय चरा रहा था। राक्षसों ने कच का टुकडे-टुकड़े कर डाला। शृगालों को खिला दिया। शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या का प्रयोग किया। तत्काल कच शृगालों के शरीर से सजीव निकल आये।

दूसरी बार वह एक अरण्य में गया था। असुरों ने कच के टुकडे टुकड़े काटकर समुद्र में फेंक दिये किन्तु शुक्राचार्य से देवयानी ने पुनः जीवित करने का निवेदन किया। संजीवनी प्रयोग से पुनः कच का शरीर जीवित हो गया।

तीसरी बार असुरों ने कच को मारकर उसका चूर्ण बना डाला। उस चूर्ण को सुरा में मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दिया। ज्ञात होने पर शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या के प्रभाव से उसे पुकारा। उसने गुरु के उदर से ही उत्तर दिया—'वह उदर में है।' शुक्राचार्य ने कहा—'बाहर आओ।' वह बाहर आने के लिये तैयार न हुआ। उत्तर दिया: 'मैं गुरु हत्या का दोषी कैसे हो सकता हूँ।'

देवयानी कच से अत्यन्त प्रेम करती थी। उसने पिता से कच की रक्षा के लिये आग्रह किया। शुक्राचार्य ने कहा—'कच के प्राप्त होने पर मेरी मृत्यु हो जायगी।' देवयानी ने दोनों में से किसी का मरना स्वीकार नहीं किया। विवश होकर शुक्राचार्य ने उदर स्थित कच को संजीवनी विद्या सिखायी। उसे समझा दिया। वह पहले जी जायगा। तत्पश्चात् बाहर आकर मरे हुए उसे संजीवनी विद्या के प्रयोग से जिला दे। कच ने यही किया।

किन्तु गुरु कन्या होने के कारण कच ने देवयानी को बहन तुल्य माना। उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया। देवयानी ने उसे शाप दिया। संजीवनी विद्या उसे फलप्रद नहीं होगी। कच ने गुरु कन्या और बहन समझकर उसे प्रतिशाप नहीं दिया। परन्तु कहा—मैं यह विद्या दूसरे को सिखा दूँगा। वह प्रयोग करेगा। मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा।

इत्युक्त्वा भाविनोऽर्थस्य द्रष्टुं सिद्धिं समुद्यतः ।
तत्रैव बद्धवसतिः कङ्कालं स ररक्ष तम् ॥९७॥

९७. इस प्रकार कह कर भावी अर्थ की सिद्धि देखने को समुद्यत उसने वहीं पर निवास करते हुए उस कंकाल को रक्षित किया।

अथार्धरात्रे निर्निद्रस्तयैवाद्‌भुतचिन्तया ।
धूपाधिवासमीशानो घ्रातवान्दिव्यमेकदा ॥ ९८ ॥

९८. एक समय उसी अद्भुत चिन्ता में निद्रारहित ईशान ने अर्धरात्रि में दिव्य धूपगन्ध का अनुभव किया।

उच्चण्डलाडनादण्डोद्‌घृष्टघण्टौघटांकृतैः ।
चण्डैर्डमरुनिर्घोषैर्घर्घरं श्रुतवान्ध्वनिम् ॥ ९९ ॥

९९. दीर्घ ताडन दण्ड ताडित घण्टों के नादों एवं भयंकर डमरु निर्घोषों से घर्घर ध्वनि सुना।

---

(२) तार्क्ष्य : जीमूतवाहन द्वारा नागों के जीवित करने का उल्लेख कथासरित्सागर में सरल शैली में कश्मीरी कवि सोमदेव (ग्यारहवीं शताब्दी) ने वर्णन किया है। सोमदेव कवि क्षेमेन्द्र का समकालीन था।

तार्क्ष्य नाम के अनेक व्यक्ति हुए हैं। ऋग्वेद में तार्क्ष्य एक अश्व का नाम है। (ऋ०: १:८९:६; १०:१७८) त्रसदस्यु का यह वंश माना गया है। (ऋ० ८:२२:७) तार्क्ष्य को एक पक्षी या वायस कहा गया है। उसे वैपश्चित नामक पक्षियों का राजा कहा गया है। अरिष्टनेमि का एक पैतृक नाम तार्क्ष्य है। तार्क्ष्य एक आचार्य भी थे (ए. आ. ३:१:६, सां. आ. ७:१९) कश्यप प्रजापति का नामान्तर तार्क्ष्य है। दक्ष ने इसे अपनी कन्याएँ दी थी। सरस्वती से इनका सम्भाषण हुआ था। (म. व. १८४: तथा १८६)

यह कश्यप तथा विनता का पुत्र तथा गरुड का भाई था। (म० आ० ६५:४०) भगवान् शिव का भी एक नाम तार्क्ष्य कहा गया है। (अनु०:१७:९८) तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड, अरुण, अरुणी तथा वरुणी विनता के पुत्र हैं। कद्रू के पुत्र शेष, अनन्त आदि नाग हैं। विनता एवं कद्रू सपत्नियाँ हैं। उनमें वैमनस्य तथा शत्रुता स्वाभाविक है। उनकी लड़ाई प्रसिद्ध है। इसी प्रकार उनकी सन्तानें भी परस्पर एक दूसरे से शत्रुता रखती थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९८ में 'मेकदा' का पाठभेद 'मेकतः मिलता है।

श्लोक संख्या ९९ में 'उच्च' का 'उदच' 'लाडना' का 'वादना' 'लाद्रना', 'वदना' तथा 'डमरु-निर्घोषै' का पाठभेद 'डमरुघोर्ष्यैश्च' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९९ (१) लाडन दण्ड : ताडन का अर्थ आघात करना होता है। ताडन दण्ड घण्टा बजाने की मुगरी अथवा लकड़ी का बना दण्ड अर्थात् दण्ड समान वस्तु थी। जापानी घंटा में डण्डा रस्सी में बँधा रहता है। वह गोल घंटा पर आघात करता है। भारतीय मन्दिरों तथा चर्च में घण्टों में लोलक भीतर लगे रहते हैं। एक घण्टा साधारण मोटे चद्दर अष्ट धातु का होता है। उसे मुगरी या लकड़ी से ठोक कर बजाते हैं।

उद्घाटिततमोरिः स ततः पितृवनावनो ।
ददर्श योगिनीस्तेजःपरिवेषान्तरस्थिताः ॥ १०० ॥

१००. तदुपरान्त उसने गवाक्ष खोलकर श्मशान भूमि पर तेज के परिवेश में स्थित योगिनियों को देखा ।

तासां संभ्रममालक्ष्य कङ्कालं चापवाहितम् ।
ईशानस्तां श्मशानोर्वी धृतासिश्चकितो ययौ ॥ १०१ ॥

१०१. उनके सम्भ्रम एवं अपहृत कंकाल को देखकर तलवार लिये चकित ईशान उस श्मशान पर गया ।

अथाऽपश्यत्तरुच्छन्नः शायितं मण्डलान्तरे ।
सन्धीयमानसर्वाङ्गं कङ्कालं योगिनीगणैः ॥ १०२ ॥

१०२. तत्पश्चात् वृक्ष के ओट से उसने देखा कि योगिनियाँ मध्य में कंकाल को सुलाकर सब अंगो को जोड़ रही थीं ।

उल्लसद्वरसंभोगवाञ्छा मद्यपदेवताः ।
वीरालाभात्समन्विष्य कङ्कालं तमपाहरन् ॥ १०३ ॥

१०३. वर सम्भोग की उत्कट कामना वश उन मद्यप योगिनियों ने किसी वीर (पुरुष) के अभाव में खोजकर उस कंकाल का अपहरण कर लिया ।

एकमेकं स्वमङ्गं च विनिधाय क्षणादथ ।
कुतोऽप्यानीय पुंलक्ष्म पूर्णाङ्गं तं प्रचक्रिरे ॥ ०४ ॥

१०४. अपने एक-एक अंग को रखकर और कहीं से पुंलक्ष्म (शिश्न) लाकर, उसे सर्वांग पूर्ण कर दिया ।

जोनराज ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है ।

अचलल्लाङ्गनादण्डघण्टानाद्यण्डटांकृतम् ।

मनांसि न पुनस्तेषां वीराणां साहसस्पृशाम् ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०० में 'ददर्श' का 'दर्शयन्' तथा 'स्थिताः' का पाठभेद 'स्थितः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

श्लोक संख्या ९९ और १०० का अनुवाद श्री स्तीन, श्री पण्डित तथा अन्य अनुवादकों ने एक साथ ही किया है । यहां पर दोनों श्लोकों का अनुवाद अलग-अलग कर दिया गया है । इससे अर्थ में विप्रतिपत्ति नहीं होती है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०१ में 'मालक्ष्य' का पाठभेद 'माकर्ण्य' मिलता है ।

श्लोक संख्या १०३ में 'सम्भोग' का 'संयोग' 'मद्यप-देवता' का 'मध्यमदेवता' 'मुद्यमदेवताः' तथा 'तमपाहरन्' का पाठभेद 'तमुपाहरन्' मिलता है ।

श्लोक संख्या १०४ में 'कुतो' का 'ततो' तथा 'पुंलक्ष्म' का पाठभेद 'पुलिङ्ग' मिलता है ।

अथ पुर्यष्टकम्राम्यदनाक्रान्तान्यविग्रहम् ।
योगेनाकृष्य योगिन्यस्तत्र संधिमतेर्न्यधुः ॥ १०५ ॥

१०५. सन्धिमति के पुर्यष्टक को आकृष्ट कर योगिनियों ने उस (शरीर) में रख दिया।

ततः सुप्तोत्थित इव प्रत्तदिव्यविलेपनः ।
समभुज्यत ताभिः स यथेच्छं चक्रनायकः ॥ १०६ ॥

१०६. तत्पश्चात् सुप्तोत्थित सदृश दिव्य लेपन लिप्त उस चक्र नायक[1] ने उनसे समुपभोग किया।

ईशानस्तस्य देवीनां वितीर्णाङ्गहृतिं पुनः ।
क्षपायां क्षीयमाणायां चकितः पर्यशङ्कत ॥ १०७ ॥

१०७. रात्रि के क्षीयमाण होने पर, चकित ईशान ने देवियों द्वारा उसके (सन्धिमति के) सम्पृक्त अंगों के हरण की आशंका की।

नदंस्तद्रक्षया धीरः स च तत्स्थानमाययौ ।
तच्च योगेश्वरीचक्रं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १०८ ॥

१०८. वह धीर उसकी रक्षा हेतु, नाद करता हुआ उस स्थान पर आ गया और वह योगिनी समूह तत्क्षण अन्तर्हित हो गया।

श्लोक संख्या १०५ में 'पुर्यष्टक' का 'पुर्यष्टकं' 'भ्राम्यद' का 'भ्राम्यन्म' तथा 'योगिन्य.' का 'योगेश्य:', 'योगेस्य' 'योगेभ्यः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०५ (१) पुर्यष्टक—पुर्यष्टक का विशद वर्णन रूप, कार्यकलापादि का 'योगवासिष्ठ रामायण' में मुख्यतः लीला उपाख्यान में किया गया है। द्रष्टव्य है—योगवासिष्ठ कथा'

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०६ में 'सुप्तो' का 'स्वप्तो' तथा 'प्रत्तदि' का पाठभेद 'प्रमुदि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०६ (१) चक्रनायक : जोनराजने चक्रनायक के स्थान पर योगिनी नायक शब्दका प्रयोग किया है।

योगिनीनायको दूरात् परिज्ञाय नृपात्मजम् ।
योगिनीनिकटं प्रादुर्विकटप्रकटौजसः ॥३४८॥

चक्रनायक एक आयुर्वेदिक औषधि होती है। भैरवी चक्र में उसके नेता के रूप में चक्रनायक एवं चक्रेश दोनों शब्द मिलता है। वह तान्त्रिक चक्र का अधिष्ठाता माना जाता है। चक्रनायक का भी अर्थ व्याघ्रगन्ध नामक गंध द्रव्य होता है।

योग तथा तन्त्र साहित्य में चक्रों का वर्णन मिलता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाषट्चक्र व्यक्ति के रीढ़ प्रदेश पर शरीर के अति निम्नभाग से मूर्धा तक जाता है। मूर्धा पर सहस्रधारा होती है। शुभाशुभ के निर्णय हेतु स्वर तथा सर्वतोभद्रादि ८४ चक्रों का उल्लेख मिलता है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १०७में 'ईशानस्तस्य'का 'ईशानतस्य' तथा 'र्णाङ्गहृतिं' का पाठभेद 'र्णाङ्गाहृति' मिलता है।

उद्घाटिततमोरिः स ततः पितृवनावनो ।
ददर्श योगिनीस्तेजःपरिवेपान्तरस्थिताः ॥ १०० ॥

१००. तदुपरान्त उसने गवाक्ष खोलकर स्मशान भूमि पर तेज के परिवेश में स्थित योगिनियों को देखा।

तासां संभ्रममालक्ष्य कङ्कालं चापवाहितम् ।
ईशानस्तां श्मशानोर्वीं धृतासिश्चकितो ययौ ॥ १०१ ॥

१०१. उनके सम्भ्रम एवं अपहृत कंकाल को देखकर तलवार लिये चकित ईशान उस स्मशान पर गया।

अथाऽपश्यत्तरुच्छन्नः शायितं मण्डलान्तरे ।
सन्धीयमानसर्वाङ्गं कङ्कालं योगिनीगणैः ॥ १०२ ॥

१०२. तत्पश्चात् वृक्ष के ओट से उसने देखा कि योगिनियाँ मध्य में कंकाल को सुलाकर सब अंगो को जोड़ रही थीं।

उल्लसद्वरसंभोगवाञ्छा मद्यपदेवताः ।
वीरालाभात्समन्विष्य कङ्कालं तमपाहरन् ॥ १०३ ॥

१०३. वर सम्भोग की उत्कट कामना वश उन मद्यप योगिनियों ने किसी वीर (पुरुष) के अभाव में खोजकर उस कंकाल का अपहरण कर लिया।

एकमेकं स्वमङ्गं च विनिधाय क्षणादथ ।
कुतोऽप्यानीय पुंलक्ष्म पूर्णाङ्गं तं प्रचक्रिरे ॥ ०४ ॥

१०४. अपने एक-एक अंग को रखकर और कहीं से पुंलक्ष्म (शिश्न) लाकर, उसे सर्वांग पूर्ण कर दिया।

जोनराज ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है।

अचलल्लाङ्नादण्डघण्टानाद्ग्रचण्डटंकृतम् ।

मनांसि न पुनस्तेषां वीराणां साहसस्पृशाम् ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०० में 'ददर्श' का 'दर्शयन्' तथा 'स्थिताः' का पाठभेद 'स्थितः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

श्लोक संख्या ९९ और १०० का अनुवाद श्री स्तीन, श्री पण्डित तथा अन्य अनुवादकों ने एक साथ ही किया है। यहाँ पर दोनों श्लोकों का अनुवाद अलग-अलग कर दिया गया है। इससे अर्थ में विप्रतिपत्ति नहीं होती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०१ में 'मालक्ष्य' का पाठभेद 'माकर्ण्य' मिलता है।

श्लोक संख्या १०३ में 'सम्भोग' का 'संयोग' 'मद्यप-देवता' का 'मद्यमदेवता' 'मुद्यमदेवताः तथा 'तमपाहरन्' का पाठभेद 'तमुपाहरन्' मिलता है।

श्लोक संख्या १०४ में 'कुतो' का 'ततो' तथा 'पुंलक्ष्म' का पाठभेद 'पुलिङ्ग' मिलता है।

अथ पुर्यष्टकभ्राम्यदनाक्रान्तान्यविग्रहम् ।
योगेनाकृष्य योगिन्यस्तत्र संधिमतेर्न्यधुः ॥ १०५ ॥

१०५. सन्धिमति के पुर्यष्टक को आकृष्ट कर योगिनियों ने उस (शरीर) में रख दिया ।

ततः सुप्तोत्थित इव प्रत्तदिव्यविलेपनः ।
समभुज्यत ताभिः स यथेच्छं चक्रनायकः ॥ १०६ ॥

१०६. तत्पश्चात् सुप्तोत्थित सदृश दिव्य लेपन लिप्त उस चक्र नायक[1] ने उनसे समुपभोग किया ।

ईशानस्तस्य देवीनां वितीर्णाङ्गहृतिं पुनः ।
क्षपायां क्षीयमाणायां चकितः पर्यशङ्कत ॥ १०७ ॥

१०७. रात्रि के क्षीयमाण होने पर, चकित ईशान ने देवियों द्वारा उसके (सन्धिमति के) सम्पृक्त अंगों के हरण की आशंका की ।

नदंस्तद्रक्षया धीरः स च तत्स्थानमाययौ ।
तच्च योगेश्वरीचक्रं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १०८ ॥

१०८. वह धीर उसकी रक्षा हेतु, नाद करता हुआ उस स्थान पर आ गया और वह योगिनी समूह तत्क्षण अन्तर्हित हो गया ।

श्लोक संख्या १०५ में 'पुर्यष्टक' का 'पुर्यष्टकं' 'भ्राम्यद' का 'भ्राम्यन्म' तथा 'योगिन्यः' का 'योगेश्यः', 'योगेस्य' 'योगेभ्यः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०५ (१) पुर्यष्टक—पुर्यष्टक का विशद वर्णन रूप, कार्यकलापादि का 'योगवासिष्ठ रामायण' में मुख्यतः लीला उपाख्यान में किया गया है। द्रष्टव्य है—योगवासिष्ठ कथा'

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०६ में 'सुप्तो' का 'स्वप्तो' तथा 'प्रत्तदि' का पाठभेद 'प्रमुदि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०६ (१) चक्रनायक : जोनराजने चक्रनायक के स्थान पर योगिनी नायक शब्द का प्रयोग किया है।

योगिनीनायको दूरात् परिज्ञाय नृपात्मजम् ।
योगिनीनिकटं प्रादुर्विकटप्रकटौजसः ॥३४८॥

चक्रनायक एक आयुर्वेदिक औषधि होती है। भैरवी चक्र मे उसके नेता के रूप में चक्रनायक एवं चक्रेश दोनों शब्द मिलता है। वह तान्त्रिक चक्र का अधिष्ठाता माना जाता है। चक्रनायक का भी अर्थ व्याघ्रगन्ध नामक गंध द्रव्य होता है।

योग तथा तन्त्र साहित्य में चक्रों का वर्णन मिलता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञापट्चक्र व्यक्ति के रीढ़ प्रदेश पर शरीर के अति निम्नभाग से मूर्धा तक जाता है। मूर्धा पर सहस्रधारा होती है। शुभाशुभ के निर्णय हेतु स्वर तथा सर्वतोभद्रादि ८४ चक्रों का उल्लेख मिलता है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १०७में 'ईशानस्तस्य'का 'ईशानतस्य' तथा 'र्णाङ्गहृतिं' का पाठभेद 'र्णाङ्गाहृतिं' मिलता है।

अथाऽश्रूयत वाक्तासां मा भूदीशान भीस्तव ।
नास्त्यङ्गहानिरस्माकं वृते चास्मिन्न वञ्चना ॥ १०९

१०९. अनन्तर उनकी वाणी सुनायी पड़ी-हे ईशान ! तुम्हें भय न हो। हम लोगों के चुने इसमें (शरीर में) अंग हानि एवं वंचना नहीं है।'

अस्मद्वराद्दिव्यवपुः संधितः संधिमानसौ ।
आर्यत्वादार्यराजश्च ख्यातो भुवि भविष्यति ॥ ११० ॥

११०. "हम लोगों के वर से संयुक्त दिव्य शरीर यह सन्धिमान[1] आर्य[2] होने के कारण पृथ्वी पर प्रसिद्ध 'आर्य राज'[3] होगा।"

ततो दिव्याम्बरः स्रग्वी दिव्यभूषणभूषितः ।
ववन्दे संधिमान्प्रह्वः प्राप्तपूर्वस्मृतिर्गुरुम् ॥ १११ ॥

१११. तदुपरान्त दिव्याम्बर एवं माला धारी, दिव्य भूषण—भूषित, विनत सन्धिमान ने पूर्व स्मृति प्राप्त कर, गुरु की वन्दना की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११० में 'राजश्च' का 'राजाख्यः' 'राजाख्य' तथा 'भुवि' का पाठभेद 'राजा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११० (१) सन्धिमान : अंगों को योगिनियों द्वारा सन्धि करने पर योगिनियों ने उसे सन्धिमान नाम से सम्बोधित किया। इसी प्रकार जरासन्ध के शरीर के दोनों भागों को जरा ने एक में जोड़ा तो जोड़ने वाले के नाम के साथ उसका नाम जरासन्ध पड़ गया था।

कल्हण ने इसके पश्चात् सन्धिमति के स्थान पर 'सन्धिमान' नाम का ही प्रयोग किया है। सन्धिमति नाम का पुनः उल्लेख नहीं मिलता।

(२) आर्य : स्त्रियाँ आर्य शब्द पति के लिये आदर प्रदर्शन हेतु प्रयोग करती हैं। योगिनियाँ भी स्त्री थीं। उन्होंने सन्धिमति के साथ पतिवत् व्यवहार किया था अतएव उन्होंने आदर सूचक श्रेष्ठ शब्द 'आर्य' से सन्धिमान का सम्बोधन किया है। अपने को स्त्री स्वरूप स्वीकार कर लिया था। तएव नाम नहीं लिया। प्रतीत होता है। कल्हण काल में भी पत्नी अपने पति का नाम नहीं लेती थी। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। कल्हण ने बड़ी चातुरी के साथ योगिनियों के मुख से 'सन्धिमति' मूल नाम के स्थान पर 'सन्धिमान' तथा 'आर्य' कहलवाकर इस प्रथा का निर्वाह किया है।

(३) आर्य राज : योगिनियों ने अपने पति स्वरूप सन्धिमति को 'आर्य' शब्द से सम्बोधन किया था। अतएव उसका नाम 'सन्धिमति', 'सन्धिमान' के स्थानपर 'आर्यराज' रख दिया। उनका पति काश्मीर का राजा होगा। इससे यह भाव प्रकट होता है।

आर्यराज का अर्थ होता है आर्यों का राजा। प्राचीन काल में कुल के कर्ता के लिये आर्य सम्बोधन प्रयुक्त किया जाता था। कुल की पत्नियाँ अपने पति को 'आर्य पुत्र' शब्द से सम्बोधित करती थीं। कल्हण ने इसका प्रयोग पुनः तरंग ८ में किया है। (रा० त० ८ : ३२४७) प्राकृत में आर्य शब्द 'अज्ज' हो गया था। आधुनिक 'जी' शब्द अज्ज का अपभ्रंश है। जो नाम के अन्त में लगाना आदर सूचक माना जाता है।

ईशानोऽपि तमालिंग्य स्वप्नेष्वपि सुदुर्लभम् ।
भूमिकामाललम्बे कामिति को वक्तुमर्हति ॥ ११२ ॥

११२. ईशान ने स्वप्न में भी सुदुर्लभ उसे आलिंगन कर, किस आनन्द की प्राप्ति की, यह कहने में कौन समर्थ है ?

असारं च विचित्रं च संसारं ध्यायतोर्मिथः ।
विवेकविशदा तत्र प्रावर्तत तयोः कथः ॥ ११३ ॥

११३. वहां पर परस्पर असार एवं विचित्र संसार का चिन्तन करते हुए, उन दोनों की विवेक-विशद कथा चली।

अथ वार्ता विदित्वेमां कुतोऽपि नगरौकसः ।
सबालवृद्धाः सामात्यास्तमेवोद्देशमाययुः ॥ ११४ ॥

११४. किसी प्रकार इस बात को जानकर सबाल-वृद्ध, नगर निवासी, अमात्य सहित उस स्थान पर आ गये।

पूर्वाकृतिविसंवादाद् भ्रमो नाऽयं स इत्यथ ।
तेनाच्छिद्यत संवादि निखिलान्पृच्छता वचः ॥ ११५ ॥

११५. पूर्वाकृति से भिन्न होने के कारण यह, वह (मन्त्री) नहीं है, उस भ्रम को संवादी निखिल लोगों से बातें पूछते हुए उसने दूर कर दिया।

अर्थनां शासितुं राष्ट्रं पौराणामपराजकम् ।
सोऽन्वमन्यत कृच्छ्रेण निस्स्पृहः शामनाद्गुरोः ॥ ११६ ॥

सन्धिमान आर्यराज

११६. नृप हीन राष्ट्र के शासन हेतु, पुरवासियों की प्रार्थना करने पर, गुरु के आदेश से निस्पृह उसने कष्ट पूर्वक अनुमति दे दी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११२ मे 'ललम्बे' का पाठभेद 'ललम्भे' मिलता है।

श्लोक संख्या ११५ में 'संवादि' का पाठभेद 'संवासि' मिलता है।

श्लोक संख्या ११६ में 'अर्थनां' का पाठभेद 'अर्थाना' मिलता है।

पाददिप्पणियाँ :

१. आइने अकबरी मे सन्धिमति का नाम 'अरि-राज' और राज्य काल ४७ वर्ष दिया गया है।

२. हसन सन्धिमान के विषय में लिखता है— 'राजा सन्दीमान अलमारुफ व आर्य राज ३०३१ क० में बातफाक अराकीन शहर कश्मीर पर मुतमकुन हुआ। इन्तज़ाम सल्तनत और फौज और रैयत के साथ अदल व इन्साफ़ से पेश आने में बदिल व जान कोशिश करता। जिस मुकाम पर उसे सूली दी गयी थी वहाँ उसने सन्दसूर का मन्दिर बनवाया। ईशा बरारी में अपने मुरशिद को ताज़ीम व तक-रीम के पेश नज़र ईशेश्वर का मन्दिर बनवाया। मुक़ाम थेद में थेदा देवी का मन्दिर और मौज़ा बमरू में भीमा देवी की यादगार क़ायम की। परगना फाग की आबादी और सर सब्जी के लिये दरयाए सन्दलार से एक नहर जारी की। जिसका नाम भारी कुल रखा। परगना लार में आरी नाम

का गाँव आबाद करके शहर आर्य कुल के अखरा-जात के लिये वक़्फ़ कर दिया।

'आख़िरकार गद्दार दुनिया में एतबार न रख-कर अक़सर औक़ात इबादत और मन्दिरों के बुतों की पूजापाठ में सर्फ़ किया करता था। रोज़ाना हर सुबह एक हज़ार शिव लिंग बनवाकर उनकी पूजा करता। वह चोज़ ममालह मुल्को और अमूर सल्तनत को कमाहक देख-भाल से माना हुई। लोग इस बात से बहुत तंग हुए। आर्यराज ने भी अपने दिल में इस अम्र का अहसास कर लिया। मुल्क से सर करदः लोगों को अपने रूबरू बुलाया। और कहा "अब तक मैं तुम्हारे कहने सुनने से अमूर सल्तनत सरंजाम देता था। अब मुनासिब होगा कि किसी और शख़्स को इस काम के लिए तैयार कर लो और मुझे माज़दर समझो।

'वाज़ अर्ज़ी हिरन की खाल पहन ली और बोमजू को गार में चला गया। और कुछ अरसा बाद लोगों की नज़रों से ग़ायब हो गया। तब से लोग इस ग़ार को ग़ार आर्य राय कहने लगे। ४७ बरस हकूमत में गुज़ारे आर्य राय को हकूमत के तेरह बरस बाद सन् विक्रमी शुरू हुआ। सन् कलयुग ३०४४ बरस गुज़रे। तवालत के खौफ से इन्हें तर्क किया गया।

'राज सन्दीमान के आख़िरी अहद हकूमत में लोगों में मशहूर हो गया कि राजा अन्ध युधिष्ठिर का पोता गोपादित्त नाम राजा कन्दहार के ज़ेर साया औक़ात बसर करता है। उसका एक बेटा है। मेघवाहन नाम जो इन्तहाई दरजा का लायक व फ़ायक है। इन्हीं दिनों परयाग के राजा जोतिश ने अपनी बेटी अमरितपरभा के स्वयंवर का इश्त-हार दिया हुआ था। इस चीज के पेशनजर मेघ-वाहन बाप की इजाज़त से जशन स्वयंवर में हाज़िर हुआ। अमरित परमा ने उसे देखते ही इन्तहाई पसन्द किया। और फूलों की माला उसकी गरदन में डाल दी। मेघवाहन साज़ वो सामान और पसन्दीदः दुलहिन के साथ कन्दहार में रहने लगा। कश्मीर के अवाम सन्दीमान की कमज़ोरी के बायस पहले ही से दिलगीर थे। जब उन्होंने राजा मेघवाहन का नाम सुना तो उसके खिदमत में कश्मीर के करने का पैग़ाम भेजा। इन ६ राजाओं की हुकूमत एक सो बयानवे बरस शुमार होता है।"

हज़रत सुलेमान और सन्दिमान-हसन एक अजीब कहानी उपस्थित कर सुलेमान को सन्धिमान प्रमाणित करने का प्रयास करता है।

'मुल्ला अहमद रत्नागर के तरजुमा में हुक्म तराज है कि दामोदर के मसरब होने के बाद उसका बेटा नरेन्दर हुक्मरानी के तक़िया पर बैठा। इसके थोड़े दिनों के बाद एक शख़्स सन्दिमान नामी जो मुल्क मग़रिब के आबिदों और जाहिदों में से था। सर जमीन कश्मीर में वारिद हुआ। इस शख़्स ने रयाज़त के ज़ोर से ऐसा दतबा पाया था कि उसका विमान यानी उड़न खटोला हवा पर जाता था। जिन्द और परिन्दे उसके अहकाम के फ़रमा बरदार थे और उसके साथ साथ जाते। जब उसके तख़्त में शहबाज़ की तरह कश्मीर की तमाम हुदूद की सैर कर ली तो बिल आखीर कोह लारिक जेह यानी कोह सुलेमान को चोटी पर ठहर गया। इस हाल को देख कर आम और खास लोग वहा जमा हो गये। और उसकी शान व शौकत और आब व दाब को देखकर दंग रह गये।

'राजा नरेन्द्र इस खबर के सुनते ही फौरन् हाज़िर खिदमत हुआ। राजा सन्दिमान की शोशू नदी और रज़ामन्दी हासिल की। इसके अलावा जिस शख़्स ने भी उसके सामने अपनी कोई मुराद रखी वह उससे कामयाब व बामुराद हुआ। चूँकि शहर सन्दमत नगर के गर्क हो जाने से कश्मीर की सतह हुदूद वैजबारह तक हमेशा सैलाबी रहती थी इस वजह से लोग गुलात की तंगी और कहत के बाग हमेशा आजिज़ रहते थे। इसलिए उन्होंने लगाना के रूबरू इल्तजा की कि —

प्राप्योपवनोपान्तं तं दिव्याकृतिशोभिनम् ।
सतूर्यं स्नापयामासुरभिषेकाम्बुभिर्द्विजाः ॥ ११७ ॥

११७. उपवन के समीप ले जाकर, ब्राह्मणों ने दिव्याकृति शोभित उसे सूर्य नाद पूर्वक अभिषेक जल से स्नान कराया।

निकाल दिया जाये। सन्दिमान ने जिन्नों की एक जमाअत को उन पत्थरों के उठाने पर जो जलजला की वजह से खादन पार के मुकाम पर दरया में लुढ़क गये थे। हुक्म दिया। हुक्म पाते ही जिन्नों ने दरया की गहराई से पत्थरों को निकाल लिया। जिससे रुका हुआ पानी फिर से जारी हो गया। और थोड़े ही अरसा में कश्मीर की अन्दरूनी सतह जाहिर हो गयी।

'राजा नरेन्दर ने आंजनाब की दोस्ती और रफाकत को अपने ऊपर पसन्द किया। और मुल्क कश्मीर की हुकूमत से दस्तबरदारी अख्तियार कर ली। सन्दिमान को भी उसकी यह ख्वाहिश पसन्द आई और हमेशा अपने साथ रहने और पास बैठने की इजाजत से उसे सर्फराज किया।

'कहते है तुरकिस्तान के शाहजादों में से तीन आदमी हुश्क, कनिष्क और जुश्क राजा सन्दिमान के इस तख्त पर हमराह थे। इस बिना पर अपनी पैदाइश खसलत के बमूजिब इन तीनों शहजादों को मुल्क कश्मीर बतौर जागीर बख्शा। इस मुल्क के बहुत से लोगों को अपना गरवीदा बना लिया। एक हफ्ता तक कश्मीर के सैर व सयाहत करके वापसी अख्तियार किया।

'मतरजुमा यानी मुल्ला अहमद कहता है कि इससे साफ मालूम होता है कि सन्दिमान हजरत सुलेमान होंगे। क्योंकि मशरिक के लोग उसे सन्दिमान यानी रयाजत कीश इन्सान कहते है और तमाम दुनिया में सबको मालूम हैं कि हजरत सुलेमान का तख्त ही हवा पर उड़ता था। उसके तावे में जिन और परी थे। और तफीर लफ्जों के बिना पर ... र के लोग हजरत सुलेमान को सन्दीमान कहते ... न से लेकर इस वक्त तक कोह लारक

'राजा सन्दीमान

जेर को कोह सुलेमान या कोह सन्दीमान कहा जाता है। नोज खत्ता कश्मीर का दूसरा नाम 'बाग सुलेमान' भी है।"

मैं प्रथम तरंग पर इस विषय में लिख चुका हूं कि सुलेमान का काल ९७०-९३३ वर्ष ईसा पूर्व था और कनिष्क का काल सन् ७८—१०७ है। इस प्रकार दोनों के समयों में १०४८ वर्ष का अन्तर पड़ता है। सन्धिमान का काल हसन ने क० ३०३१ संवत् तथा कनिष्क का क० १७९८ संवत् बतलाया है। सन्धिमान १२३३ वर्ष पूर्व कनिष्क का होना स्वीकार करता है। दोनों के कालों में १२३३ वर्षों का अन्तर है। सुलेमान ९०० वर्ष ईसा पूर्व हुए थे अतएव सन्धिमान तथा सुलेमान के समयों में २२८१ वर्षों का अन्तर पड़ जाता है। हसन इन अन्तरों का किसी प्रकार भी स्पष्टीकरण करने में असमर्थ होता है। अतएव सुलेमान और सन्धिमान एक ही व्यक्ति है यह धारणा सर्वथा भ्रामक एवं मिथ्या है।

(३) राजा का निर्वाचन : राजा के निर्वाचन का उल्लेख पूर्व वैदिक काल में मिलता है। ऋग्वेद में उल्लेख आता है।

'ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सवो अप वृत्रादतिष्ठन् ।' (१०:१२४:८)

विश द्वारा राजा का निर्वाचन किया गया था। अथर्ववेद में भी विशों द्वारा राजा के निर्वाचन की कामना की गयी है।

'त्वां विशो वृणतां राज्याय।' (३:४:२)

पादटिप्पणियाँ

११७ श्री विलसन ने अभिषेक का काल ईसा पूर्व २३ वर्ष ९ मास और समीकृत काल सन् १२५ ई. तथा राज्य काल ४७ वर्ष दिया है।

नवराजोचिताचारे न स शिक्षामपैक्षत ।
दृष्टकर्मा समस्तास्तु निस्तुषाः प्रक्रिया व्यधात् ॥ ११८ ॥

११८. अनुभवी उसने नये नृप के उचित आचार हेतु शिक्षा की अपेक्षा नहीं की, उसने समस्त प्रक्रियाओं को सरल कर दिया ।

स राजोचितनेपथ्यः पौराशीर्घोषशोभिनीम् ।
सौधोन्मिपल्लाजवर्षां ससैन्यः प्राविशत्पुरीम् ॥ ११९ ॥

११९. राज्योचित परिधानयुक्त उसने सेना के साथ, पुरवासियों के आशीर्घोष से रम्य एवं सौधों से उन्मिषित लाजवृष्टि पूर्ण पुरी में प्रवेश किया ।

तस्मिन्विरजसि प्राज्यमाक्रामति नृपासनम् ।
आचक्राम प्रजा व्यापन्न दैवी न च मानुषी ॥ १२० ॥

१२०. महान् नृपासन पर रजोगुण रहित उसके आसीन होने के पश्चात् प्रजा पर दैवी एवं मानुषी आपत्ति नहीं आयी ।

अहरन्हृदयं तस्य भृङ्गारहितविभ्रमाः ।
नितम्बिन्यो वनभुवः शमिनो न तु योषितः॥ १२१ ॥

१२१. शमी उसके हृदय को शृङ्गार हित विभ्रम शालिनी एवं नितम्बिनी[1] वनभूमिओं ने अपहरण किया, न कि (एवंभूत) योषिताओं ने ।

श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय ईशा पूर्व २४ वर्ष तथा राज्य काल ४७ वर्ष माना है ।

श्री स्तीन ने अभिषेक का समय लौकिक संवत् ३०४१ तथा राज्य काल ४७ वर्ष माना है ।

श्री वालो ने यह समय सप्तर्षि संवत् ३९४२ तथा सन् १७५ ई० दिया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११८ में 'पैक्षत' का पाठभेद 'पेक्षत' मिलता है ।

श्लोक संख्या ११९ मे 'सौधोन्मि' का 'सौधोर्मि' तथा 'ससैन्य' का पाठभेद 'ससैन्या' मिलता है ।

पादटिप्पणियां :

१२१ : इस श्लोक का एक अर्थ यह भी होता है—"शमी उसके हृदय को शृंगों से शोभायमान सुन्दर उपत्यका वाली वनभूमिओं में अपहृत किया न कि शृंगार के लिये विलासवती नितम्बिनी योषिताओं ने ।"

(१) नितम्ब : इस श्लोक में नितम्ब एवं भृंगारहित विभ्रम श्लिष्ट है ।

नितम्ब का अर्थ पर्वत का निम्न प्रदेश तथा रमणी का नितम्ब अर्थात् कटि प्रदेश का निम्न भाग होता है ।

भृंगारहितविभ्रम का एक अर्थ शृंगो से शोभमान और अपर अर्थ शृंगार के लिये विलासशालिनी रमणी होता है ।

शृंगार एवं शान्त रस परस्पर विरोधी हैं । परन्तु यहाँ कल्हण ने दोनो के अपुष्ट रूप का एक साथ चित्रण किया है । इसी प्रकार भर्तृहरि ने निम्नलिखित श्लोक में इसको अभिव्यक्त किया है ।

"मात्सर्यमुत्सार्य विचार्यकार्य-
मार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।
सेव्या नितम्बा किमु भूधराणामुत
स्मितस्मेरविलासिनीनाम् ॥"

वनप्रसूनसंपर्कपुण्यगन्धैस्तपस्विनाम् ।
कर्पूरधूपसुरभिः करैः स्पृष्टः स पिप्रिये ॥ १२२ ॥

१२२. कर्पूर[1] एवं धूप[2] से सुरभित वह, तपस्वियों के वनपुष्प संपर्क से पुण्यगन्धशाली करों का स्पर्श प्राप्तकर, प्रसन्न हुआ।

भूतेशवर्धमानेशविजयेशानपश्यतः ।
नियमो राजकार्येषु तस्याऽभूत्प्रतिवासरम् ॥ १२३ ॥

१२३. भूतेश[1], वर्धमानेश[2], तथा विजयेश[3] का जब दर्शन नहीं करता था, उस समय प्रति दिन राज्य कार्य ही उसका नियम हो गया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२२ में 'स्पृष्टः' का पाठभेद 'पृष्टः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२२ (१) कपूर—कपूर का शिव की पूजा में बहुत महत्व है। कर्पूर से भगवान् के वर्ण की उपमा दी गयी है। कपूर से आरती करने की प्रथा सर्वत्र भारत में प्रचलित है। कपूर का गुण शीतलता है। वह सुगन्धित होता है। उसकी सुगन्धि सात्विक होती है। कुछ विचित्र गति है। कर्पूर शीतल होते हुए भी गुणकारी होते हुए भी अपने में अग्नि छिपाये बैठा रहता है। अग्निस्पर्श से वह ज्योतिर्मय हो जाता है। स्पर्श गुण से कितना अन्तर वस्तु परिस्थितियों में हो जाता है। कपूर उसका ज्वलन्त उदाहरण है। शीतल होते हुए भी दाहक हो जाता है।

इस समय कर्पूर के तीन वर्ग है। जापानी और चीन का बना भीमसेनी अथवा बरास द्वारा निर्मित और भारतीय अथवा पत्री कर्पूर। यह उड़नशील वनस्पति से बना पदार्थ है। जापानी नाम से प्रसिद्ध कर्पूर का पौधा चीन, जापान, फारमूसा तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में मिलते है। इसका पौधा देहरादून, सहारनपुर, नीलगिरि तथा मैसूर में मिलता है। नैपाल में भी इसके वृक्ष होते हैं। भारत में यह कर्पूर की पत्तियों तथा जापानादि में पचास वर्ष के ऊपर के वृक्षों के काष्ठ के आसवन से निकाला जाता है। भीमसेनी कर्पूर सुमात्रा तथा बोर्नियो (वरुण द्वीप) में होता है। इसकी पहचान यह है कि जल में डालने से यह डूब जाता है। आज कल कृत्रिम कर्पूर का व्योहार बढ गया है। कर्पूर का गुण वातनाशक होता है। कफघ्न भी होता है। विसूचिका तथा त्वचा रोग में विशेष लाभकारी और कृमी नाशक होता है।

काश्मीर उपत्यका में कर्पूर का बाहर से ही आयात होता था।

(२) धूप-देव निमित्त सुगन्धि के लिये जलाये जाने वाले सभी पदार्थों का समावेश धूप शब्द में हो जाता है। धूप गन्ध का प्रयोग प्रायः एक साथ मिलता है। धूप के पाँच भेद—निर्यास, चूर्ण, गन्ध, काष्ठ एवं कृत्रिम होता है। काश्मीर में सूखे पर्वतीय पादपों की जड़ तथा देवदार काष्ठ का चूर्ण आदि मिला कर बनाया जाता है। पर्वतीय एक पादप का नाम ही काश्मीर में दूप या धूप है। धूपवत्ती, अगरबत्ती विभिन्न सुगन्धियाँ इसी वर्ग में आती है।

१२३ (१) भूतेश : टिप्पणी पृष्ठ १४९ द्रष्टव्य है।

(२) वर्धमानेश : स्थानीय जनश्रुति के अनुसार यह स्थान वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर है। श्रीनगर का गनपतयार मुहल्ला या गणेश घाट है। वितस्ता माहात्म्य में इसका उल्लेख है। माहात्म्य के अनुसार वर्धमानेश्वर गणपति तीर्थ के समीप था। सन् १८८८ में पड़ोस के रहने वाले पुरोहितों ने मलयार

हरायतनसोपानचालनाम्भःकणान्वितैः ।
संस्पृष्टः पवनैः सोऽभूदानन्दास्पन्दविग्रहः ॥ १२४ ॥

१२४. हरायतन सोपानों के धोने वाले (समुत्थित) जल कण से व्याप्त पवन के संस्पर्श से उसका शरीर आनन्द के कारण स्पन्दित हो जाता था।

पूर्वपूजापनयने निराडम्बरसुन्दरः ।
तेनैव द्रष्टुमज्ञायि स्नपितो विजयेश्वरः ॥ १२५ ॥

१२५. उसने पूर्व पूजा सम्भार को हटने पर विना आडम्बर के सुन्दर स्नापित विजयेश्वर दर्शन को दर्शन माना।

लिङ्गपीठलुठत्स्नानकुम्भाम्भःक्षोभभूर्ध्वनिः ।
शयानस्याऽप्यभूत्तस्य वल्लभो वल्लकीद्विपः ॥ १२६ ॥

१२६. शयन करते हुए भी उस वीणा द्वेषी को लिङ्ग पीठ पर लुंठित होते स्नान कुंभ जल के क्षोभ[1] की प्रचुर ध्वनि प्रिय हुई।

घाटके निकट मन्दिर का निर्माण कराया। इस मन्दिर में स्थापित शिव लिंग प्राचीन मन्दिर का ही शिव लिंग है। वह एक मसजिद के शमादान अर्थात् दीवट के काम में लाया जाता रहा। मसजिद की दीवार प्राचीन वर्धमानेश्वर मन्दिर के अलंकृत शिलाखण्डों तथा भग्नावशेषों से बनायी गयी है। पश्चिम बंगाल वर्दमान का शुद्ध नाम वर्द्धमान है। यह रेलवे का बहुत बड़ा जंकशन तथा आसनसोल कलकत्ता के बीच है।

(३) विजयेश : टिप्पण पृष्ठ ४ विजयेश द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२५ में 'निराडम्बर' का 'विराडम्बर,' 'निजडम्बर' तथा 'स्नपितो' का पाठभेद 'स्नापितो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२५ उक्त श्लोक का भावानुवाद श्री स्तीन तथा श्री पण्डित ने किया है। अन्य अनुवादकों ने भी उक्त दोनों अनुवादकों का ही अनुकरण किया है।

कश्मीर में यह प्रथा है कि पहले दिन के चढ़े हुए फूल पत्तों शृंगारादि को दूसरे दिन अति प्रातः काल में उतार लेते हैं।

आडम्बर शब्द का प्रयोग कल्हण ने पुनः तरंग ८:२७२१ में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२६ में 'वल्लभो' का पाठभेद 'वल्लभौ' तथा 'वल्लभा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२६ (१) क्षोभ : कल्हण ने इस शब्द का तथा आर्य राज के इस पुण्य भावना का उल्लेख राजा जयसिंह के सन्दर्भ में किया है।

आसीद्यथार्यराजस्य शयानस्याप्यतिप्रियः ।
कामं लिङ्गाभिषेकाम्भःसंक्षोभप्रभवो ध्वनिः ॥
८:२३९८ ॥

शिव लिंग को स्नान कराया जाता है तो दृश्य दिखायी पड़ सकता है। कल्हण की दृष्टि का यह एक उदाहरण है। काशी विश्वनाथ में तथा उदयपुर के एक लिंग की जब आरती एवं शृंगार के पूर्व स्नान कराया जाता है तो लिंग की मूर्धा से जल अरघा पर गिरता है। अरघा से पुनः जल लुढ़कता नीचे गिरता है। इस समय जल से एक प्रकार का कल-कल शब्द उद्भूत होता है। कल्हण ने उसी का आँखों देखा वर्णन किया है।

तापसैर्भस्मरुद्राक्षजटाजूटाङ्कितैर्बभौ ।
तस्य माहेश्वरो पर्षदिव भूमिपतेः सभा ॥ १२७ ॥

१२७. भस्म, रुद्राक्ष एवं जटाजूट युक्त तपस्वियों में उस पृथ्वीपति की सभा शिव की सभा तुल्य शोभित हुई।

शिवलिङ्गसहस्रस्य प्रतिष्ठाकर्मणि प्रभोः ।
प्रतिज्ञा प्रत्यहं तस्य नाऽभूद्विघटिता क्वचित् ॥ १२८ ॥

१२८. उसकी प्रति दिन सहस्रों[1] शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कर्म की प्रतिज्ञा कहीं भी विघटित (भंग) नहीं हुई।

प्रमादात्तदनिष्पत्तौ शिलास्वुत्कीर्य कल्पिता ।
सहस्रलिङ्गी तद्भृत्यैः सर्वतोद्याऽपि दृश्यते ॥ १२९ ॥

१२९. प्रमाद से कभी उसके न होने पर भृत्यों द्वारा शिला पर[1] उत्कीर्ण सहस्र शिव लिंग चारों ओर आज भी दिखायी पड़ते हैं।

लिंग पूजा अत्यन्त प्राचीन है। मोहेन्दो जोरो में मृत्तिका टेवलेट पर लिंग, शक्ति तथा पृथ्वी उत्कीर्ण प्राप्त हुए हैं। विश्व में लिंग पूजा चार हजार वर्षों से भी प्राचीन है।

१२८ (१) सहस्र लिंग—कश्मीर में सहस्र लिंग प्रतिष्ठा तथा पूजा का विशेष महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। पूर्णिमादि पर एक सहस्र लिंग मृत्तिका के बनाये जाते हैं। श्रीर शंकराचार्य पर्वत की मूल से प्राप्त मिट्टी से शिव लिंग प्रातः काल प्रतिष्ठित किये जाते हैं। सायं काल वितस्ता किंवा समीपस्थ स्रोतस्विनियों अथवा सरोवरों में उनका विसर्जन कर दिया जाता है। शिवरात्रि के दिन काशी में कुछ लोग अब भी एक सहस्र शिव लिंग गंगा की मिट्टी से बनाते हैं। तथा पूजन पश्चात् उनका गंगा में विसर्जन किया जाता है।

यहाँ पर अर्थ पार्थिवपूजन ही लगाना चाहिए। सहस्र लिंग की प्रति दिन राजा प्राण-प्रतिष्ठा करता था। पूजन करता था। वह दृढ़ निश्चयी था। कभी प्रतिज्ञा भंग नहीं हुई।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२९ में 'प्रमाद' का पाठभेद 'प्रसाद' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२९ (१) शिला—शिव लिंग = कश्मीर में शैव सम्प्रदाय प्रचलित था। शिव की पूजा का वहाँ के जीवन में प्रमुख स्थान था। आज भी कश्मीरी शिव भक्त हैं।

आधुनिक काल में स्वर्गीय महाराज रणवीर सिंह कश्मीर नरेश ने ईशावर में एक सहस्र पाषाण शिव लिंग स्थापित करने तथा जम्मू में रण-वीरेश्वर मन्दिर में कोटि लिंग विभिन्न रूपों के स्थापित करने का विचार किया था।

शिव लिंग गंगा की मिट्टी अथवा चीटी द्वारा चाली हुई मिट्टी अथवा शुद्ध मिट्टी से बनाते हैं। पार्थिव पूजा करने वाले पूजन के व्रत का आजन्म पालन करते हैं। पूजन के पूर्व अन्न ग्रहण अथवा किसी प्रकार का कार्य नहीं करते।

महेन्दो जोरो में भी मिट्टी के वस्तु पर लिंग-शक्ति तथा पृथ्वी उत्तीर्ण मिले हैं। स्पष्ट है कि शिव लिंग पूजा अत्यन्त प्राचीन है।

तासु तासु स वापीषु लिङ्गव्याजादरोपयत् ।
स्वपुण्यपुण्डरीकाणां जन्मनेऽक्षपरम्पराम् ॥ १३० ॥

१३०. उसने अनेक वापियों में लिंग व्याज से स्वपुण्य पुण्डरीकों की अक्ष[1] (बीज) परम्परा आरोपित की।

स्थाने स्थाने जलान्तश्च बहुसंख्यैर्निवेशितैः ।
अनयन्नर्मदाभङ्गिं शिवलिङ्गैस्तरङ्गिणीः ॥ १३१ ॥

१३१. स्थान स्थान पर जल मध्य प्रचुर संख्या में सन्निवेशित शिव लिंगो से तरंगिणियों को उसने नर्मदा[1] सदृश बना दिया।

लिदर पर स्थित खोवर पुर परगना के शिलगाम मे एक शिला सहस्र लिंग कही जाती है। वह सहस्र शिव लिंग तुल्य प्रतीत होती है। वह सहस्र शिव लिंग शिला सन्धिमति की है अथवा दूसरे की निश्चय पूर्वक कहना कठिन है।

नीलमत पुराण शिव पूजा के महत्त्व तथा उसका कश्मीर के धार्मिक जीवन में क्या स्थान था इस पर प्रकाश डालता है।

पतिस्ते शङ्करस्त्वेको नापरोऽभिधरितस्ततः ।
सिन्धुसंगमनेनाशु मज्जस्व स्वर्पितंशिवम् ॥३१६॥
भुक्त्वा रात्रौ ततः कार्यं नृत्यगीतैः प्रजागरम् ।
श्रोतव्यः शिवधर्मश्च प्रादुर्भावश्च तत्कृतः ॥५॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३० में 'स्वपुण्य' का 'स पुण्य' 'सुपुण्य' तथा 'काणां' का पाठभेद 'पुण्डरीकाक्ष' 'कानां' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३० (१) अक्ष : कमल का बीज शिव लिंग तुल्य होता है। शिव लिंग स्वरूप कमल बीजों को जलाशयों में आरोपित कर करोड़ों शिव लिंग स्वरूप कमल बीज उत्पन्न करने की विराट कल्पना राजा ने की। कमल बीज की माला बनायी जाती है। होम में इसकी हवि भी दी जाती है। कश्मीर म इसकी सुमिरनी बनायी जाती है।

१३१ (१) नर्मदा : शिव लिंग—नर्मदा में शिव लिंग सदृश शिलाखण्ड मिलते है। प्रायः भारतवर्ष में सर्वत्र वहीं से लिंग स्थापनार्थ जाते है। नर्मदा मे जिस प्रचुरता से शिव लिंग जल में पड़े मिलते है उसी प्रकार सरिताओं में लिंग की प्रतिष्ठा कर सन्धिमान ने काश्मीर की सरिताओं को ही नर्मदा का रूप दे दिया था।

कश्मीर की यात्रा मे प्रायः प्रत्येक पवित्र सरोवरों तथा नागों में मैंने जल के अन्दर शिव-लिंग रखा देखा। यह प्रथा कश्मीर की विशेषता प्रतीत होती है। जल में लिंग कश्मीर में इस प्रकार मैंने रखे देखा कि वे ऊपर से दिखायी पड़ते हैं। उन पर पुष्पादि भी चढाया जाता है। श्रीनगर के घाटों पर भी इस प्रकार के जलस्थ लिंग दिखाई पड जाते है।

कल्हण इस प्रकार के लिंग का पुनः उल्लेख (रा. त. ७ : १८५) करता है :

पत्युर्नाम्याऽप्यवहारान् प्रददावमरेश्वरे ।
त्रिशूलबाणलिङ्गादिप्रतिष्ठाश्च विनिर्ममे ॥

नर्वदा में शिव लिंग की अधिकता से मिलने का कारण है। नर्वदा मारबल रोकस से बहती आती है। मारबल के पत्थर लुढ़कते-लुढ़कते और जल-प्रवाह के कारण लिंग स्वरूप हो जाते हैं। हरद्वार से ऊपर भी शिव लिंगाकार पत्थर दिखाई देते हैं। किन्तु वे सुन्दर नहीं होते।

शालिग्राम के रूप में विष्णु रूप से उनकी पूजा की जाती है।

प्रतिलिङ्गं महाग्रामाः प्रत्यपाद्यन्त तेन ये ।
पर्षदामद्य तद्भोगः कालेनान्तर्धिमागतः ॥ १३२ ॥

१३२. उसने पर्षदों[1] को प्रति लिंग पर जिन महाग्रामों को चढ़ाया था काल वस उनका भोग आज नष्ट हो गया है।

अकरोत्स महाहर्म्यैर्महालिंगैर्महायूपैः ।
महात्रिशूलैर्महतीं महामाहेश्वरो महीम् ॥ १३३ ॥

१३३. उस महा माहेश्वर ने इस पृथ्वी को महा भवनों, महा लिंगों, महा यूपों एवं महा त्रिशूलों से महान् बनाया।[1]

---

१३२ (१) पर्षद्, परिषद् : परिषद् वैदिक शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ चारों ओर बैठना होता है। उपनिषदों में दार्शनिक विचारों के लिये होने वाली गोष्ठी को परिषद् कहा गया है। उपनिषद् का उपदेश नितरां निकटवर्ती लोगों को ही देते थे।

उपनिषद् का एक अर्थ रहस्य होता है। इस रहस्य को अत्यन्त निकटवर्ती परिषद् किंवा पर्षद् में देते थे। उस चर्चा एवं ज्ञान का नाम ही उपनिषद् हो गया। (बृ: उ. ६ : १ : १, जै० ब्रा० २ : ११ : १३, १४ तथा गो. गृ. सू० ३ : २ : ४०, आचार्यों के साथ उनकी परिषद् का उल्लेख सर्वत्र मिलता है।

पर्षद् शब्द का अर्थ सभा तथा धर्मोपदेशक पण्डितों का समाज होता है। हिन्दी में परिषद् तथा पर्षद् को समानार्थक मानते हैं। परन्तु उनके भाव तथा अर्थ में किंचित् भेद है। यहाँ पुरोहित किंवा ब्राह्मणों के समूह अथवा समाज के अर्थ में ही कल्हण ने पर्षद् शब्द का प्रयोग किया है।

पुरोहितों की परिषद् थी। कल्हण के अनुसार परिषद् के पुरोहितगण दान का स्वयं उपभोग करने लगे थे। परिषदों की उपयोगिता समाप्त हो गयी थी। आगे चलकर ब्राह्मणों तथा पुरोहितों को इन परिषदों ने प्रायोपवेशन द्वारा राजा तथा मन्त्रियों से कार्य निकालने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

मन्दिरों तथा तीर्थों के पुरोहितगण परिषद् बनाते थे। परिषद् के सदस्यों को पारिसद्य किंवा पारिषद कहा जाता था। इस प्रकार के पारिषद जहाँ एक ही मन्दिर मे सम्बन्धित अनेक कुटुम्ब वंश के होते है वे अबतक अपना अस्तित्व रखती है। हरपर्वत पर शारिका देवी, क्षीर भवानी की ज्वालामुखी, अनन्तनाग, विजयेश्वर वीरनाग, सलार मूला, कोटि तीर्थ बारहमूला में पुरोहितों के कुल रहते है। उन्हे कल्हण के शब्दों में स्थानपाला कहते थे। (रा०त० ८।८११)

पुरोहित दक्षिण यात्रियों से जो लेते हैं। वह एक साथ मिलाया जाता है। भवनों तथा मन्दिरों के प्रबन्ध के लिये खर्च काटकर वे परस्पर बाँट लिया करते हैं। उनके द्रव्य विभाजन का भाग निश्चित रहता है। इसी प्रकार अग्रहार द्वारा प्राप्त सम्पत्ति का भी प्रबन्ध तथा विभाजन परिषद् करती थी। उनका राजनीति पर विशेष प्रभाव था। कल्हण के वर्णन (रा० त० ५ : ४६५ तथा ८ : ९००) से प्रकट होता है।

१३३ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५१ वाँ श्लोक है।

येदां च भीमादेवीं च देशांश्चान्यान्पदे पदे।
स मठप्रतिमालिङ्गैर्हर्म्यैर्निन्ये महार्घताम् ॥ १३५ ॥

१३५. उसने थेड़ा[1], भीमा देवी[2] एवं अन्य देशों (स्थानों) को पद-पद पर मठों, प्रतिमा-लिंगों एवं हर्म्यों में महार्घ बनाया।

कही जाती है। यहां पर प्राचीन मन्दिर का अवशेष केवल उक्त नाम मात्र के ढूहे के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।

श्रीनगर के समीप तथा मुख्य चलती सड़क पर होने के कारण स्थान की उन्नति तथा विकास किया जा सकता है। मैंने पता लगाना आरम्भ किया यहां पर कौन पूजा वगैरह करता है। मुसलमान दुकानदार कुछ बता नहीं सके।

ईशावर के समीप है एक बाल ब्रह्मचारी श्री लक्ष्मण जी का स्थान। सड़क के पार्श्व में है। उनका यहां पर आश्रम है। साधना करते हैं। सप्ताह में रविवार के दिन प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक त्रिक तथा शैव दर्शन पर विचार विनिमय तथा सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हैं। मैं उनके पास दो बार गया था। स्थान तथा आश्रम सुन्दर है।

ईशावर स्थान प्राचीन काल में सुरेश्वरी के समान पवित्र माना जाता रहा है। वर्तमान ईशावर नाम पुराने नाम इशब्रोर का बिगड़ा रूप है। ब्रोर शब्द देवी के अर्थ में कश्मीर में प्रयुक्त होता रहा है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३५ में 'येदा' का 'स्वेदा' तथा 'महार्घ' का पाठभेद 'महार्क' का मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३५ (१) येदा-थेदा : इसे थेडा देवी भी कहते हैं। वर्तमान थीड ग्राम डल के उत्तर तटपर जेयर से एक मील उत्तर है।

अबुल फजल लिखता है—'थिड गाँव बड़ा रमणीक ग्राम है। वहाँ सात स्रोत आकर मिलते हैं। उनके चारों ओर पत्थरों की इमारतें प्राचीन काल के गौरव का स्मरण दिलाती हैं।"

इस तीर्थ को सप्त पुष्करिणी तीर्थ कहा गया गया है हरचरित चिन्तामणि (४:४०) में उल्लेख है कि यहाँ पार्वती ने तपस्या की थी।

श्री स्तीन ने यहाँ की यात्रा उन्नीसवीं शताब्दी में की थी। परन्तु अबुल फजल वर्णित प्राचीन देवस्थान के टूटे शिलाखण्ड एवं मन्दिर किंवा भवनों के आकार श्रीस्तीन को नहीं मिले। वहाँ सातों जल-स्रोत अभी भी चलते हैं। मैंने यहाँ जलस्रोतों को चलते देखा। क्योंकि उन्हें समाप्त करना सम्भवतः मानवीय शक्ति एवं विध्वंस के परे की बात थी।

यह स्थान श्रीनगर से जो सड़क डल लेक के तट से होती शालीमार की तरफ जाती है उसी के समीप चश्मा शाही से थोड़ी दूर उत्तर-पश्चिम की तरफ पड़ता है।

(२) भीमा देवी : भीमा देवी का स्थान वर्तमान 'ब्रान' ग्राम माना गया है। डल के तट से १½ मील और उत्तर जाने पर मिलता है। नील-मत पुराण इस स्थान का पता बताता है।

इस समय बाबा गोलम दीन के जियारत के उत्तर पश्चिम है। भीमा देवी के उत्तर पश्चिम ईशेश्वर अर्थात् ईशावर पड़ता है। ईशेश्वर से उत्तर पूर्व श्रुतेश्वरी तथा भीमा देवी के मध्य प्राचीन श्री द्वार का क्षेत्र है।

भीमादेवीं तथा दृष्ट्वा श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम्।
तथा कापिंजलीं देवीं तथा देवीं सुरेश्वरीम् ॥११८५॥

हरचरित चिन्तामणि के अनुसार भीमा देवी में पार्वती ने तपस्या की थी। (४:४७)

भीमा देवी का तीर्थ अब प्रायः लुप्त हो गया है। यह स्थान एक सुन्दर जलस्रोत जो दामपोर गाँव के

स्वयंभूमिश्च तीर्थैश्च पूतं भक्तिविभूषितः ।
स एव भोक्तुमज्ञासीत्प्राज्ञः कश्मीरमण्डलम् ॥ १३६ ॥

१३६. स्वयं भू[1] एवं तीर्थों से पवित्र कश्मीर मण्डल का उपभोग भक्ति विभूषित केवल वही जानता था।

स्नातस्य निर्झराम्भोभिः पुष्पलिङ्गार्चनोत्सवैः ।
राज्ञस्तस्य वनोर्वीषु मासः पुष्पाकरो ययौ ॥ १३७ ॥

१३७. स्नात उस राजा का वसन्त[1] मास निर्झर जलों एवं पुष्प लिंगार्चनोत्सवों[2] द्वारा वनभूमि में व्यतीत होता था।

समीपस्थ पर्वत से निकलता है, उसके पास माना जा सकता है। यहाँ अब एक मुसलिम जियारत है।

दुर्गा सप्तशती में भीमा देवी के नाम की व्युत्पत्ति दी गयी है। देवी ने जब भीम रूप धारण कर मुनियों की रक्षा के लिए हिमालय पर रहने वाले राक्षसों का भक्षण किया, उस समय देवी का नाम भीमा पड़ गया।

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति :
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥११:५०॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥११:५१॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदा रुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥११:५२॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३६ में 'विभूषितः' का 'विशेषितः' 'विशेषतः'; 'एव' का 'एवं;' 'प्राज्ञः' का 'प्राज्या' 'प्राज्य.' और 'कश्मीर' का पाठभेद 'काश्मीर' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३६ (१) स्वयंभू : स्वयंभू तथा तीर्थों में अन्तर है। अपने रूप एवं विचित्रताओं के कारण पूजनीय माने जाते हैं। स्वयंभू प्रकृति द्वारा बन गये लिंगाकार शिलाखण्डादि माने जाते हैं। वे जलस्रोत भी स्वयंभू माने जाते हैं जिनमें कोई विशेषता एवं विचित्रता होती है। उन्हें भी स्वयंभू मानकर पूजा की जाती है। तीर्थस्थान मानव कृत होते हैं। कल्हण ने स्वयंभू लिंग का पुनः वर्णन रा० त० ८:२४३० में किया है।

१३७ (१) वसन्त : कल्हण इस श्लोक से षट् ऋतुओं में होती हुई राजा की दिन चर्या का वर्णन आरम्भ करता है। वसन्त ऋतु प्रारम्भ होता है। पादपों में पत्तियाँ लगने लगती हैं। हिम तथा तुषार गल जाता है। पृथ्वी श्वेत चादर के स्थान पर हरी चादर ओढ़ने लगती है। निर्झर चलने लगते हैं। सूर्य किरण सुखदायी लगती है। अन्धड़ तथा पश्चिमी वायु का वेग कम हो जाता है। कलियाँ लगने लगती हैं। वृक्ष निखर आते हैं। कल्हण यहाँ कश्मीर के वसन्त का सर्वांगीण वर्णन नहीं करता। वह इतिहास लिख रहा था। प्रसंग के कारण उसने सन्धिमान आर्य राज की ऋतुचर्या का उल्लेख किया है।

(२) लिंगार्चनोत्सव : कल्हण सन्धिमान के समय वसंत ऋतु में प्रचलित लिंगार्चनोत्सव का उल्लेख करता है। माघ मास के उत्तरार्ध में माघ शुक्ल फाल्गुन कृष्ण को १३ को महाशिवरात्रि का व्रत एवं उत्सव होता है।

शिवरात्रि के समय उत्तरी भारत में आम में मंजरियाँ लग जाती हैं। नव चेतना का

स चातिरम्यः काश्मीरो ग्रीष्मस्त्रिदिवदुर्लभः ।
हिमलिङ्गार्चनैः प्रायाद्वनान्तेपु कृतार्थताम् ॥ १३८ ॥

१३८. त्रिलोक दुर्लभ अति रम्य कश्मीर की ग्रीष्म ऋतु को उसने वनान्तों[1] में हिम लिंग की अर्चनाओं द्वारा कृतार्थ किया।

फुल्लाब्जपण्डरुद्धाशाः प्राप्य पुष्करिणीतटीः ।
लक्ष्मीसखः स खण्डेन्दुचूडध्यानपरोऽभवत् ॥ १३९ ॥

१३९. लक्ष्मी-सखा वह प्रफुल्लित कमल दल से रुद्ध दिशाओं वाली पुष्करिणी तट पर जाकर खण्डेन्दुचूड के ध्यान में मग्न हो जाता था।[1]

अनुभव होता है। यद्यपि कल्हण स्पष्ट नहीं कहता कि किस तिथि को यह उत्सव होता था। मेरा अनुमान है कि यह उत्सव शिवरात्रि को मनाया जाता रहा है। शैव तथा शिव भक्तों का यह सबसे बड़ा पर्व होता है। शिवरात्रि के दिन स्नान तथा शिवलिंग पर जल एवं पुष्प चढ़ाने का बड़ा महत्व होता है। धर्मप्राण प्राणी इस दिन निराहार व्रत रखते हैं।

वसन्त की चर्या सन्धिमान संगीत, नाटक, तथा वसन्त ऋतु के साथ काम का पुष्प बाण के साथ आगमन रूप में वसन्तोत्सव नहीं मनाता था। उसने काम तथा उत्सव के भौतिक रूप को आध्यात्मिक रंग में रंग दिया था। वह वन में जाता था। पुष्प उद्यानों में जाता था। निर्झरों में स्नान करता था। किन्तु देवार्चन हेतु करता था। उसने मदनोत्सव को शिवोत्सव में परिणत कर दिया था। मदन का नहीं अपितु मदन दाहक शिव की उपासना में जनता को लगा दिया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३८ में 'काश्मीरो ग्रीष्मस्त्रिदिव' का पाठभेद 'काश्मीरोऽग्रीष्मस्त्रिदिव' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३८ (१) वनान्त : वनान्त से अर्थ उपत्यका के सीमावर्ती वन प्रान्त है। राजा के समान सन्धिमति मृगया के लिये वनों में, वन प्रान्त में, वनान्त में नहीं जाता था। अपितु वह हिमलिंग की अर्चना हेतु भ्रमण करता था। शाब्दिक अर्थ वन का अन्त होता है।

ग्रीष्म ऋतु कश्मीर की अत्यन्त सुहावनी होती है। पुष्प खूब खिल जाते हैं। भूमि सुरम्य हरियाली पूर्ण हो जाती है। सभी जलस्रोतों में जल उछलने लगते हैं। इस समय उपत्यका के मैदान में हिम लिंग मिलना कठिन हो जाता है। सन्धिमान वनान्त में जाता था। जहाँ हिम मिलता था। ग्रीष्म ऋतु में हिम दुर्लभ हो जाता है। उस दुर्लभ काल में वह जहाँ हिम सुलभ होता था वहाँ जाता था। हिम का लिंग बनाकर पूजा करता था। अथवा जहाँ हिमस्वरूप शिवलिंग प्रकृति बना देती थी वहाँ पूजा करता था। यह स्थान लगभग १० हजार फिट की ऊँचाई पर होता था।

कल्हण ने वनान्त का प्रयोग साभिप्राय किया है। ग्रीष्म ऋतु तक बरफ गल जाती है। मार्ग चारों ओर का खुल जाता है। कश्मीर दर्शन का यह सबसे अच्छा काल है। इसी काल में सन्धिमान अपनी राजकीय यात्रा कश्मीर मण्डल के सुदूर स्थानों में करता था। जनता का दुःख-सुख इस व्याज से जानता था। सैनिक स्थान जो वनों के अन्त में थे। वहाँ पहुँचता था। राज्य कार्य तथा राजधानी के बाहर तुषारपात हीन ऋतु शिविर लगाने के लिए उत्तम था। इसका उपयोग सन्धिमान ने आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों कार्यों के लिये किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३९ में 'फुल्लाब्ज' का 'फुल्लाब्जर'' 'पण्ड' का पाठभेद 'खंड' मिलता है।

साधं तपोधनैस्तैस्तैर्भजतो जागरोत्सवान् ।
तस्याऽभूवन्भुवो भर्तुरमोघा माघरात्रयः ॥ १४१ ॥

१४१. इन उन तपोनिधियों के सङ्ग में जागरणोत्सव मनाते उस पृथ्वीपति की माघ रात्रियाँ निष्फल नहीं हुई ।

अत्यद्भुतं राज्यलाभमित्थं सफलयन्कृती ।
पञ्चाशतं त्रिवर्षोनामत्यक्रामत्स वत्सरान् ॥ १४२ ॥

१४२. कृती यह (नृप) अत्यद्भुत राज्य लाभ को इस प्रकार सफल करता हुआ तीन कम पचास (४७) वर्ष व्यतीत किया ।

शमव्यसनिनस्तस्य राज्यकार्याण्यपश्यतः ।
तस्मिन्काले प्रकृतयो विरागं प्रतिपेदिरे ॥ १४३ ॥

१४३. उस समय राज्य कार्य न देखने के कारण उस शान्ति प्रेमी से प्रजा विरक्त हो गया ।

अन्वैष्यत नृपस्ताभिः कश्चिद्राज्याय शुश्रुवे ।
राजपुत्रो जिगीषुश्च श्रीमान्यौधिष्ठिरे कुले ॥ १४४ ॥

१४४. उन लोगों ने राज्य के लिये किसी नृपका अन्वेषण किया, तब सुना कि युधिष्ठिर के कुल में एक विजयेच्छुक श्रीमान् पुत्र है ।

माते ही भूमि पर तुषार पात होने लगता है । पौष और माघ मासों में सम्पूर्ण पर्वतमाला तुषार मण्डित हो जाती है । वृक्ष ठूठे दिखायी पड़ते है । पुष्करिणियाँ, डल और उलर झीलें जम जाती है । कश्मीर मण्डल की भूमि कश्मीरियों के गौर वर्ण से स्पर्धा करने लगती है । पादपों की शाखायें श्वेत तुषार मण्डित हो जाती है । एक भी पत्ती दिखाई नहीं पड़ती । आकाश पक्षी शून्य, वन पशुशून्य और भूमि जनशून्य दिखायी पडती है ।

कश्मीर का यह काल दुःखप्रद होता है । साधारण जनता अपने घरों मे बन्दी बन जाती है । यदि अधिक तुषार पात हो गया तो द्वार खुलना कठिन हो जाता है । इस समय केवल कागडी एकमात्र सहायक होती है । रात दिन घर मे रहने के कारण जैसे दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता । यह अवस्था फाल्गुन मास तक चलती है ।

कल्हण ने पाँच -ऋतुओं का वर्णन किया है । शिशिर तथा शीत ऋतु के चार मास का एक ऋतु रूप दिया है । एतदर्थ उन्होंने शिशिर तथा शीत ऋतु का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया है । यह चार मास कश्मीर के जीवन का अत्यन्त कष्ट साध्य मास है । ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद ऋतु जितनी सुहावनी होती है वैसा ही कष्टप्रद शीत के चार मास होते है ।

इस कष्ट काल मे जब बाहर निकलना कठिन हो जाता है । रात दिन तुहिन वर्षा होती रहती है । सन्धिमान बाहर निकलने में असमर्थ होकर अपने भवन में भगवान् के ध्यान में ही मग्न बिता देता था । उसकी रात्रियाँ निष्फल नहीं हुई । जब कि शेष जनता तुहिनपात से पीड़ित तुषार के मध्य में पंगु तुल्य वे वसन्त के आगमन को कामना करती है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४३ में 'शम' का पाठभेद 'सम' मिलता है ।

जुगोप गोपादित्याख्यं कश्मीरेन्द्रजिगीषया ।
युधिष्ठिरप्रपौत्रं हि गान्धाराधिपतिस्तदा ॥ १४५ ॥

१४५. उस समय गान्धाराधिपति ने कश्मीरेन्द्र को जीतने की इच्छा से ही युधिष्ठिर के प्रपौत्र गोपादित्य को अपने यहाँ संरक्षित किया।

वसन्नप्राप्तसाम्राज्यः स तत्र तनयं क्रमात् ।
अवाप लक्षणैर्दिव्यैरमोघं मेघवाहनम् ॥ १४६ ॥

१४६. बिना साम्राज्य प्राप्त किये, वहाँ निवास करते समय, उसने दिव्य लक्षण युक्त, अमोघ मेघवाहन नामक पुत्र प्राप्त किया।

स युवा पितुरादेशाद्वैष्णवान्वयजन्मनः ।
राष्ट्रं प्राग्ज्योतिपेन्द्रस्य ययौ कन्यास्वयंवरे ॥ १४७ ॥

१४७. वह युवक पिता के आदेश पर, वैष्णव[1] कुलोत्पन्न, प्राग्ज्योतिपेन्द्र[2] के राष्ट्र में उसकी कन्या के स्वयंवर में गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४५ में 'दित्याख्य' का 'दित्याख्यः' और 'कश्मीरेन्द्र' का 'काश्मीरेन्द्र' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४५ (१) गान्धारः परिशिष्ट द्रष्टव्य है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४६ में 'प्राप्त' का पाठभेद 'पास्त' मिलता है।

श्लोक संख्या १४७ में 'युवा' का पाठभेद 'तत्र' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४७(१) वैष्णव : वैष्णव प्रभाव मणिपुर आसाम में था और आज भी है। कल्हण के समय में भी भारत के इस धुर पूर्वीय अंचल में वैष्णव सम्प्रदाय प्रबल था। आज भी वहाँ प्रबल है। यद्यपि ईसाई मिशनरियों के कारण नागा, नेफा, आदि क्षेत्रों में ईसाई धर्म का प्राबल्य हो गया है। गरीब पर्वतीय जाति को ईसाई धर्म को दीक्षित करने में विदेशी मिशनरी सफल हुई हैं। मणिपुर, त्रिपुरा तथा आसाम के हिन्दू बहुल क्षेत्रों में वैष्णव प्रभाव आज भी दिखायी पड़ता है।

कल्हण को तत्कालीन भारतीय स्थिति का ज्ञान था। उसके इस वर्णन से स्पष्ट होता है।

(२) प्राग्ज्योतिप : एक प्राच्य जनपद था। यह अति प्राचीन जनपद था। महाभारत में कुछ स्थानों पर इसको म्लेच्छ स्थान कहा गया है।

वामन पुराण के अनुसार यह पूर्व का एक जनपद है। (वा. पु. १३:४९)

वहाँ का राजा भगदत्त था। उसकी प्रशंसा की गयी है। इसे दानवराज नरकासुर का देश कहा गया है। नरकासुर का नाम भौम भी था। उसका पुत्र भगदत्त था। नरक राजा का उल्लेख कल्हण ने (रा. त. २:१५० में) उल्लेख किया है। विष्णु पुराण के अनुसार यह राजधानी थी।

(वायु : ४५ : १२२, मार्कण्डेय : ५७ : ४४, मत्स्य ११४ : ४४ भाग० १० : ५९ रा : २, ३१; वामन : ८:१२, ४३:२९)

महाभारत में प्राग्ज्योतिप का उल्लेख मिलता है। उसे एक अति प्राचीन नगर कहा गया है। भौमासुर की राजधानी था। (म. II : ३८) भौमासुर के पश्चात् उसका पुत्र भगदत्त वहाँ का राजा हुआ था। यहाँ पर नरकासुर निवास करता था।

तत्र तं वारुणं छत्रं छायया राजसंनिधौ ।
भेजे वरस्रजा राजकन्यका चाऽमृतप्रभा ॥ १४८ ॥

१४८. वहाँ राजा की संनिधि में उसे वरुण छत्र[1] ने छाया से और राजकन्या अमृत-प्रभा[2] ने वरमाला से सम्मानित किया ।

(म० उद्यो० ४९:८०) भगदत्त के पश्चात् यहाँ का राजा वज्रदत्त हुए थे । (म. आश्व:७५:१)

(३) कन्यास्वयंवर : भारतीय एकता भारत की भिन्नता में अभिन्नता का बड़ा ही उत्तम उदाहरण मेघवाहन का स्वयंवर उपस्थित करता है ।

मेघवाहन गान्धार अर्थात् सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश जो काबुल उपत्यका तक फैला था वहाँ से भारत के धुर पूर्वीय प्रदेश प्राग्ज्योतिष पहुँचता है । स्वयंवर में भारतीय राजा आमन्त्रित किये जाते थे । भारत को एक ईकाई के रूप में भारतीय देखते थे ।

स्मरणीय बात है । स्वयंवर में केवल हिन्दू ही भाग लेते थे । भारत की सीमा पर स्थित यवन म्लेच्छ राजा भाग नहीं लेते थे । हिन्दुओं एवं भारत की एकता का यह सजीव उदाहरण है । भारत के किसी कोने में रहनेवाला भारतीय अपने को एक ही कुल की सन्तान समझता था । एक दूसरे को भाई मानता था ।

मेघवाहन २ हजार मील की यात्रा कर प्राग्-ज्योतिष पहुँचा था । गान्धार की भाषा एवं आसाम की भाषा में जमीन आसमान का अन्तर था । एक दूसरे की भाषा नहीं समझते थे । एक दूसरे का रंग नहीं मिलता था । अंग विन्यास नहीं मिलता था, खानपान नहीं मिलता था । रहन सहन नहीं मिलता था । जल-वायु नहीं मिलती थी । तथापि जैसे उनमें भिन्नता नहीं थी । सब एक परिवार के प्राणी थे । वह परिवार विशाल भारत था । वह परिवार रक्त से नहीं अपितु धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता से जुटा था । घुल मिल गया था । सुदूर पूर्व के मनीषियों की यह कल्पना थी । जो साकार थी । गान्धार के होते भी वह आसाम में अपरिचित समझा गया । राजकन्या ने दो हजार मील दूर रहने वाले को चुनने में किंचित् मात्र संकोच नहीं किया । उसके पिता ने संकोच नहीं किया कि मेघवाहन एक राज्यच्युत वंश का वंशज मात्र था । वह राजा किंवा राज्य का उत्तराधिकारी नहीं था । राजा ने उसे राजकन्या देने में किंचित् मात्र संकोच नहीं किया । वह दूर जाने वाली थी । उसका पुनः दर्शन दुर्लभ हो सकता था ।

कन्या अमृतप्रभा ने भी निस्संकोच मेघवाहन का वरण किया । वह था आदर्श । यह थी भारतीय संस्कृति की अमोघ शक्ति जिसने भारत को अनेक आघातों, ताड़नाओं के होते भी एक में बाँध रखी थी । कल्हण भारत की इस सांस्कृतिक एकता की अविच्छिन्न धारा से परिचित था । और उसने बड़ी सुन्दरता से उसे यहाँ उदाहरण स्वरूप उपस्थित कर दिया है ।

१४८ (१) वरुण छत्र : वरुण छत्र किस प्रकार प्राग्ज्योतिष के राजा के पास आया इसका उल्लेख कल्हण ने स्वयं तरंग ३ के श्लोक ५३ से ७० तक में किया है । उस वर्णन से प्रतीत होता है कि मेघवाहन ने अमृतप्रभा तथा वरुण का छत्र दोनों प्राप्त किया था । मेघवाहन ने यह छत्र वरुण के माँगने पर पुनः लौटा दिया था ।

वैदिक साहित्य में वरुण सृष्टि के नैतिक एवं भौतिक प्रतिपालक रूप में चित्रित किये गये हैं । वैदिकोत्तर साहित्य में वरुण का श्रेष्ठत्व क्रमशः क्षीण होता गया है । उसका प्रभुत्व केवल जल ही पर शेष माना जाने लगा है । वह सहस्र नेत्रों से मानव जाति का अवलोकन करते हैं । (ऋ० ७:२४:८८)

अतएव वरुण को 'सूर्यनेत्री' की संज्ञा दी गयी है। (ऋ. ७:६६) यह सुपाणि है। स्वर्णद्रापि एवं द्युतिमत् वस्त्र धारण करते है। (ऋ. १०:२५) इनका रथ सूर्य के समान द्युतिमान है। उसमे स्तम्भो के स्थान पर नाभियाँ लगी है। (ऋ. १:१२२)

ब्राह्मण ग्रन्थ रचना काल मे इसके रूप की कल्पना श्वेत वर्ण, गंजा, पीत नेत्र, वृहद पुरुष रूप में की गयी है। वरुण का भवन स्वर्ण निर्मित है। द्युलोक मे है। गृह में सहस्र द्वार है। वह भवन में बैठकर समस्त सृष्टि का अवलोकन करता है। (५:६७—६८, १:२५) सर्वदर्शी सूर्य अपने गृह से उदित होकर मानवों के कृत्यो की सूचना वरुण को देता है। (ऋ.: ७ : ६०) ऋग्वेद मे इसे सम्राट् कहा गया है। यह उपाधि इन्द्र को दी गयी है परन्तु इन्द्र से भी अधिक वरुण को प्रदान की गयी है। इसके सार्वभौम सत्ता किंवा छत्र का एवं शासक के नाते निर्देश किया गया है। (ऋ० १ : १ : १३२; ५ : ८५) वरुण प्रकृति के नियमों का महान् अधिपति है। उसके कारण द्युलोक एवं पृथ्वी अलग अलग हुई। (ऋ० : ६ : ७०; ८ : ४२) इसने अग्नि की जल मे, सूर्य को आकाश में, एवं सोम की पर्वतों मे स्थापना की है। (ऋ. ५ : ८५) वायु मण्डल में भ्रमणशील वायु वरुण का श्वास है। (ऋ० :७.८) ऋग्वेद मे कितनी ही बार वरुण को असुर किंवा रहस्यमय व्यक्ति कहा गया है। (ऋ० : १ : ३५ : ७ ; २ : ७ : १० , ७ : ६५ : २ ; ८ : ४२ : १) यह प्रानी आसुरी माया के कारण मनुष्यों का सम्राट् बन गया था। उसे मक्षिन् भी कहा गया है। (ऋ० ७ : ८८ : ६)

अथर्व वेद काल में वरुण की वह सत्ता नहीं मानी गयी है जो ऋग्वेद काल में थी। उसे केवल जल का नियंत्रक माना गया है। (अ. वे ३ : ३) ब्राह्मण ग्रंथों में-उसे जल देवता रूप में चित्रित किया गया है। (तै. सं. २ : १ : २ :१ ; श. ब्रा. ४ : ४ ५ : ११; ऐ. ब्रा. ७ : १५)

वरुण शब्द को व्युत्पत्ति की गयी है। उसके अनुसार पापियों को परिवेष्टित करने वाला कहा गया है। (१ : ८९) पापियों को अन्धकार की भाँति आच्छादित करनेवाला भी कहा गया है। (तै० स० २ : १ : ७)

महाभारत काल में वरुण के रूप में और परिवर्तन होता दिखायी पड़ता है। उसे अदिति का पुत्र तथा चौथा लोकपाल कहा गया है। जल निवासी देवता उसे बना दिया गया है। (म० आ० ५९ : १५) इसको पश्चिम दिशा, जल एवं नागलोक का अधिपति कहा गया है। (म. स. ९:७; म. उ. : ८६ : २०) देवताओं ने जलेश्वर रूप में इसका अभिषेक किया था। वरुण का पुत्र श्रुतायुध था। उसे गदा प्रदान किया था। (म. द्रो. ६७:४९) इसकी ज्येष्ठ पत्नी का नाम ज्येष्ठा था। वह शुक्राचार्य की कन्या थी। उससे बल, अधर्म एवं पुष्कर नामक तीन पुत्र तथा सुरा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई थी। (म. आ. ६०:५१–५२; म. उ. ९६:१२) इसकी एक और पत्नी थी। उसका नाम वारुणी था। उसे गौरी भी कहते हैं। उसे गो नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। (म. स. ९:१०८) इसकी तृतीय पत्नी का नाम शीत-तोया था। जनक सभा का सुविख्यात ऋषि वन्दिन् भी इसका पुत्र था। (म. व. १३४:२४) रुद्र के यज्ञ से उत्पन्न हुए भृगु, अंगिरस एवं कवि नामक तीन पुत्रों में से इसने भृगु को अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया था। वह भृगु वारुणी नाम से प्रसिद्ध हुआ। (म० अनु० : १३२ । ३६)

वरुण की पूजा का कश्मीर के धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नीलमत पुराण (श्लोक 809-810) में वरुण का उल्लेख विष्णु, शक, सविता, ब्रह्मा एवं रुद्र के साथ किया गया है। वरुण का नीलमत -पुराण में आदित्य, मरुत् तथा जलाधिपति के रूप में वर्णन किया गया

तेन तस्य निमित्तेन वृद्धिमागामिनीं जनाः ।
अजानन्नम्बुवाहस्य पाश्चात्येनेव वायुना ॥ १४९ ॥

१४९. इन लक्षणों से जनता ने उसके उन्नत भविष्य को पश्चिमी वायु[1] चलने पर जलद आने के समान जान लिया।

राज्ञा हि नरकेणैतद्वरुणादुष्णवारणम् ।
आनीतमकरोच्छायां न विना चक्रवर्तिनम् ॥ १५० ॥

१५०. राजा नरक[1] द्वारा वरुण से लाया गया वह छत्र चक्रवर्ती के अतिरिक्त और किसी पर छाया नहीं किया था।

है। वे नरक देवता रूप में भी चित्रित किये गये हैं। (श्लोक 619, 607, 384, 1381 तथा 1004-1006)। कार्तिक में वरुण पूजा का विधान भी नीलमत पुराण करता है। वरुण पंचमी पूजा का मुख्य दिन रखा गया है (श्लोक 755) नीलमत वरुण लोक का भी उल्लेख करता है। (868, 282-284, 1262,676,1001,1232,1221, 1286, 1299)

(२) अमृतप्रभा—विदैउद्दीन मेघवाहन की प्राग्ज्योतिष की राजकन्या का नाम 'खोता' देता है। पुनः कहता है कि वह खोट के राजा की कन्या थी। लेखक का आधार केवल परसियन अनुवाद राजतरंगिणी का है। मेघवाहन की दूसरी रानी खादना को ही शायद खोता लिखा है। कल्हण ने किसी खोता रानी का वर्णन नहीं किया है यद्यपि उसने मेघवाहन की पाँच रानियों का नाम दिया है। वे अमृतप्रभा, पूक देवी, इन्द्र देवी, खादना तथा सम्मा है। (रा. त. ३:१०)

१४९ राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५२ वा श्लोक है।

(१) पश्चिमी वायु: पश्चिमी यहाँ दो अर्थ उपस्थित करता है। कश्मीर में पश्चिमी वायु चलने पर वर्षा होती है। उत्तर भारत में भी पुरवा हवा अर्थात् पूर्वीय वायु चलने के पश्चात् जब पछुवा अर्थात् पश्चिमी वायु चलने लगती है, तो ग्रामीण समझ जाते हैं कि वर्षा होगी। उत्तर भारत में आसाम से लेकर हिमाचल तक वर्षा ऋतु में मानसून से वर्षा होने का यही लक्षण माना जाता है। बंगाल की खाड़ी से मानसून उठता है। वह पश्चिम उत्तर की ओर चलता है। वहाँ हिमालय उसे तिब्बत में तथा और आगे बढ़ने से रोक देता है। वह वायु टक्कर खाकर लौटती है। उसकी गति पश्चिम से, पूर्व उत्तर से पूर्व और दक्षिण की ओर हो जाती है। इसी से वृद्धि होती है।

आसाम के लोगों ने मेघवाहन को पश्चिम से आया जानकर उसकी उपमा पश्चिमी वायु जनता के लिये वर्षा सहित उज्ज्वल भविष्य उपस्थित करती है। उसी प्रकार पश्चिम का मेघवाहन अपने उज्ज्वल भविष्य के साथ पूर्व आसाम में आया था। उसका लक्षण देखकर लोगों ने उसका भविष्य आँका था।

१५० (१) नरक: राजा नरक प्राग्ज्योतिष का राजा था। पृथ्वी का पुत्र होने के कारण इसकी संज्ञा भौम भी थी। इसकी माता भू देवी ने तपस्या की थी। विष्णु ने प्रसन्न होकर उसे वैष्णवास्त्र दिया था। उस अस्त्र के कारण यह अजेय हो गया था। इस अस्त्र को उसने अपने पुत्र भगदत्त को दे दिया था। (म० द्रो० २८)

नरक का राज नील समुद्र के तट पर था।

तमन्तिकं पितुः प्राप्तं पत्न्या लक्ष्म्या च संश्रितम् ।
भुवा निमन्त्रयामासुर्मन्त्रिणो वंशयोग्यया ॥ १५१ ॥

१५१. पत्नी एवं लक्ष्मी से युक्त वह जब पिता के पास पहुँचा तब उसे मन्त्रियों ने वंशानुरूप भूमि द्वारा आमन्त्रित किया ।

उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिष थी। इसका नाम भूमि लिंग भी आया है। इसके पाँच राज्यपाल 'हयग्रीव, निशंभु, पंचजन, विरूपाक्ष एवं मुर थे। यह इतना प्रबल हो गया था कि इन्द्र से उच्चैःश्रवा अश्व एवं ऐरावत हाथी छीन लाया था। देवमाता आदि के कुण्डलों का भी हरण कर लिया था। (म. स. ३८)

माता अदिति के कुण्डल की प्राप्ति का देवताओं ने प्रयास किया। किन्तु विफल हो गये। प्राग्ज्योतिष में असुरों का एक सुदृढ़ दुर्ग था। अजेय था। नरकासुर यहीं निवास करता था। निर्मोचन नगर में नरक तथा श्री कृष्ण का युद्ध हुआ। नरक पराजित हो गया। (म. उ. ४८:८०—८४) कृष्ण ने उसके पुत्र को राज्यसिंहासन पर बैठाया (भा०:१०:५९)

नरक ने पृथ्वी का अपहरण किया था। उसने सम्पत्ति तथा अपहृत नारियों को मणिपर्वत पर औदका नामक स्थान में रखा था।

श्री कृष्ण तथा नरक की कथा हरिवंश पुराण में दूसरे ढंग से दी गयी है। युद्ध प्रारम्भ पूर्व श्री कृष्ण ने पांचजन्य शंख घोष किया। शंख घोष सुनते ही नरक क्रुद्ध हो गया। क्रोध पूर्वक सवेग युद्धार्थ रथारूढ़ हो निकला। नरक का रथ अत्यंत विस्तृत मूल्यवान तथा अजय था। नरक का मस्तक चक्र से भगवान् ने काट दिया। अदिति का कुण्डल तथा प्राग्ज्योतिष का राज्य दोनों मुक्त हुए। (ह० व० २:६३, भा०१०:५९) श्री कृष्ण ने बन्दी रखी नारियों को मुक्त किया (पद्म : उ० : २८८) पद्म पुराण में भी यह कथा दी गयी है। उसमें 'नरक चतुर्दशी' का विशेष वर्णन किया गया है। यह दिन कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को पड़ता है। उसने कृष्ण से वर माँगा था। उसकी मृत्यु के दिन अर्थात् नरक चतुर्दशी को सूर्योदय के पूर्व जो मंगल स्नान करे उन्हें नरक की यातना न दी जाय।

नीलमत पुराण में यह कथा अत्यन्त संक्षेप में दी गयी है। वरुण की सभा में नरकासुर को अत्यंत सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उसे वहाँ पर पृथ्वीपति कहा गया है। (म. स. ९:१२) नरक को वहीं पर छत्र प्राप्त हुआ था। उसी वरुण के छत्र का उल्लेख कल्हण यहाँ करता है। प्राग्ज्योतिष में वह छत्र आया था। प्राग्ज्योतिष का राजा उसका वंशज था। अतएव उसके कुल में वह छत्र था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५१ में 'वंश' का 'वंश्य' तथा 'योग्यया' का 'योग्य वा' और 'योग्यवान' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५१ (१) मन्त्री-शक्ति—कल्हण यहाँ एक और उदाहरण कश्मीर की शक्तिशाली मन्त्री परिषद् किंवा मन्त्री मण्डल का देता है।

सन्धिमान राजा था। उसके राजा रहते हुए कश्मीर के मन्त्रियों ने मेघवाहन को कश्मीर की भूमि देने का निश्चय किया। उसे कार्यान्वित भी किया। औपचारिक रूप से मन्त्रियों ने उसे उसके पूर्वजों के राज्य ग्रहण करने का निवेदन किया। मन्त्रिपरिषद् की शक्ति कश्मीर में कितनी शक्तिशाली थी यह इसी से प्रकट होता है। उन्हें किंचित् मात्र संकोच नहीं हुआ कि सन्धिमान के मन्त्री होते भी वे उसे राज्यच्युत करने का प्रयास कर रहे थे। मन्त्रियों के सम्मुख जनता हित तथा राज्य

अथाऽऽर्यराजो विज्ञाय स्वराज्यं भेदजर्जरम् ।
प्रतिचक्रे न शक्तोऽपि तस्थौ तु त्यक्तुमुत्सुकः ॥ १५२ ॥

१५२. भेद से जर्जरित[1] अपने राज्य को जानकर, उसे त्यागने के लिये उत्सुक वह आर्य राज समर्थ होते हुए भी प्रतिरोध न कर, स्थिर हो गया।

की व्यवस्था का प्रश्न था। सन्धिमान इतना अधिक धर्म की ओर झुक गया था कि वह राज कार्य की ओर उतना ध्यान नहीं दे सका। जितनी की अपेक्षा हो सकती थी।

उसे परलोक की चिन्ता हो गयी थी। मन्त्री लोक के थे। उन्हें लोक की चिन्ता थी। परलोक की चिन्ता सन्तों, साधुओं, महात्माओं तथा ब्राह्मणों को हो सकती थी। सन्धिमान ४७ वर्ष राज्य कर चुका था। उसके पूर्व वह मन्त्री रह चुका था। दश वर्ष जेल में था। जो कारावास तथा राज्य काल का समय जोड़ा जाय तो वही ५७ वर्ष का हो जाता है। यदि मान लिया जाय कि वह पचीस या तीस वर्ष की आयु में मन्त्री हुआ था तो राज्य त्याग के के समय उसकी आयु ८२ या ८७ वर्ष होनी चाहिए।

वृद्धावस्था के कारण उसका झुकाव परलोक की ओर हो जाना स्वाभाविक था। वह ९६ वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुआ था। इस प्रकार राज्य त्याग के पश्चात् ९ या १४ वर्ष तक जीवित रहा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५२ मे 'तु' का पाठ भेद 'तत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५२ (१) भेद जर्जरित : राज्य कार्य की व्यवस्था ठीक से देखने के कारण मन्त्रियों तथा भृत्यों का प्रबल होना स्वाभाविक था। राजा जब शक्ति हीन होता है तो उसके पार्षद, मन्त्री तथा भृत्यों की शक्ति वृद्धि होती जाती है। मन्त्री, पार्षद, भृत्य एवं अन्य लोग परस्पर स्पर्धा शक्ति प्राप्ति के लिये करते हैं। इस स्पर्धा के कारण परस्पर अविश्वास तथा भेद उत्पन्न होता है। राजा के कुछ निर्णायक निश्चय न लेने पर वह और बढता जाता है। यही अवस्था सन्धिमान के राज्य यन्त्र की हुई थी। दुर्बल राजा के कारण राज यन्त्र शिथिल हो गया था। यन्त्र ढीले हो गये थे। उन्हें कसने के अभाव में राज्य शरीर जर्जरित हो गया था। वह जर्जरता पारस्परिक भेदों में प्रकट होती है। एतदर्थ कल्हण यहाँ ठीक ही कहता है कि राजा भेद जर्जरित हो गया था।

कल्हण सन्धिमान का चरित्र और महान् बना देता है। राजा अपनी स्थिति सम्हाल सकता था। उसके विरुद्ध आचरण दोष भ्रष्टाचार का दोष नही आरोपित किया जा सकता था। जनता में उसके अलौकिक शक्ति की धाक थी। प्रतिरोध करना चाहता तो वह कर सकता था।

किन्तु वह दार्शनिक, आध्यात्मिक, निस्पृह राजा था। उसने राज्य की याचना नही की थी। राज्य जाने लगा उस समय भी चिन्ता नही की। वह अनायास मिला था। अनायास जा रहा था।

राज्य के प्रति उसे इस लिये भी मोह नही रह गया था कि उसे कोई सन्तान नही थी। कल्हण के वर्णन से प्रकट नही होता कि उसे स्त्री था। रक्तज उत्तराधिकारी के अभाव में उसे यह कामना नही रह गयी थी कि राज्य उसके सन्तान किंवा वंशज को मिले। वह जनता का राज्य था। जनता से मिला था। जनता चाहे उसे ले ले। सन्धिमान ने वह दृष्टिकोण अपनाया था। सन्धिमान निस्सन्देह साधु राजा था। उसके समान विश्व इतिहास में शायद ही कोई उदाहरण मिल सके।

तमन्तिकं पितुः प्राप्तं पत्न्या लक्ष्म्या च संश्रितम् ।
भुवा निमन्त्रयामासुर्मन्त्रिणो वंशयोग्यया ॥ १५१ ॥

१५१. पत्नी एवं लक्ष्मी से युक्त वह जब पिता के पास पहुँचा तब उसे मन्त्रियों ने वंशानुरूप भूमि द्वारा आमन्त्रित किया।

उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिष थी। इसका नाम मूर्ति लिंग भी आया है। इसके पाँच राज्यपाल 'हयग्रीव, निशुंभ, पंचजन, विरूपाक्ष एवं मुर थे। यह इतना प्रबल हो गया था कि इन्द्र से उच्चैःश्रवा अश्व एवं ऐरावत हाथी छीन लाया था। देवमाता आदि के कुण्डलों का भी हरण कर लिया था। (म. स. ३८)

माता अदिति के कुण्डल को प्राप्ति का देवताओं ने प्रयास किया। किन्तु विफल हो गये। प्राग्ज्योतिष में असुरों का एक सुदृढ़ दुर्ग था। अजेय था। नरकासुर यहीं निवास करता था। निर्मोचन नगर में नरक तथा श्री कृष्ण का युद्ध हुआ। नरक पराजित हो गया। (म. उ. ४८:८०—८४) कृष्ण ने उसके पुत्र को राज्यसिंहासन पर बैठाया (भा०:१०:५९)

नरक ने पृथ्वी का अपहरण किया था। उसने सम्पत्ति तथा अपहृत नारियों को मणिपर्वत पर औदका नामक स्थान में रखा था।

श्री कृष्ण तथा नरक की कथा हरिवंश पुराण में दूसरे ढंग से दी गयी है। युद्ध प्रारम्भ पूर्व श्री कृष्ण ने पांचजन्य शंख घोष किया। शंख घोष सुनते ही नरक क्रुद्ध हो गया। क्रोध पूर्वक सवेग युद्धार्थ रथारूढ़ हो निकला। नरक का रथ अत्यंत विस्तृत मूल्यवान तथा अजय था। नरक का मस्तक चक्र से भगवान् ने काट दिया। अदिति का कुण्डल तथा प्राग्ज्योतिष का राज्य दोनों मुक्त हुए। (ह० व० २:६३, भा०१०:५९) श्री कृष्ण ने बन्दी रखी नारियों को मुक्त किया (पद्म : उ० : २८८) पद्म पुराण में भी यह कथा दी गयी है। उसमें 'नरक चतुर्दशी' का विशेष वर्णन किया गया है। यह दिन कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को पड़ता है। उसने कृष्ण से वर माँगा था। उसकी मृत्यु के दिन अर्थात् नरक चतुर्दशी को सूर्योदय के पूर्व जो मंगल स्नान करे उन्हें नरक की यातना न दी जाय।

नीलमत पुराण में यह कथा अत्यन्त संक्षेप में दी गयी है। वरुण की सभा में नरकासुर को अत्यंत सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उसे वहाँ पर पृथ्वीपति कहा गया है। (म. स. ९:१२) नरक को यहीं पर छत्र प्राप्त हुआ था। उसी वरुण के छत्र का उल्लेख कल्हण यहाँ करता है। प्राग्ज्योतिष में वह छत्र आया था। प्राग्ज्योतिष का राजा उसका वंशज था। अतएव उसके कुल में वह छत्र था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५१ में 'वंश' का 'वंश्य' तथा 'योग्यया' का 'योग्य या' और 'योग्यवान' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५१ (१) मन्त्री-शक्ति—कल्हण यहाँ एक और उदाहरण कश्मीर की शक्तिशाली मन्त्री परिषद् किंवा मन्त्री मण्डल का देता है।

सन्धिमान राजा था। उसके राजा रहते हुए कश्मीर के मन्त्रियों ने मेघवाहन को कश्मीर की भूमि देने का निश्चय किया। उसे कार्यान्वित भी किया। औपचारिक रूप से मन्त्रियों ने उसे उसके पूर्वजों के राज्य ग्रहण करने का निवेदन किया। मन्त्रिपरिषद् की शक्ति कश्मीर में कितनी शक्तिशाली थी यह इसी से प्रकट होता है। उन्हें किंचित् मात्र संकोच नहीं हुआ कि सन्धिमान के मन्त्री होते भी वे उसे राज्यच्युत करने का प्रयास कर रहे थे। मन्त्रियों के सम्मुख जनता हित तथा राज्य

अथाऽऽर्यराजो विज्ञाय स्वराज्यं भेदजर्जरम् ।
प्रतिचक्रे न शक्तोऽपि तस्थौ तु त्यक्तुमुत्सुकः ॥ १५२ ॥

१५२. भेद से जर्जरित[1] अपने राज्य को जानकर, उसे त्यागने के लिये उत्सुक वह आर्य राज समर्थ होते हुए भी प्रतिरोध न कर, स्थिर हो गया।

को व्यवस्था का प्रश्न था। सन्धिमान इतना अधिक धर्म की ओर झुक गया था कि वह राज कार्य की ओर उतना ध्यान नही दे सका। जितनी की अपेक्षा हो सकती थी।

उसे परलोक की चिन्ता हो गयी थी। मन्त्री लोक के थे। उन्हें लोक की चिन्ता थी। परलोक की चिन्ता सन्तो, साधुओं, महात्माओं तथा ब्राह्मणों को हो सकती थी। सन्धिमान ४७ वर्ष राज्य कर चुका था। उसके पूर्व वह मन्त्री रह चुका था। दश वर्ष जेल में था। जो कारावास तथा राज्य काल का समय जोड़ा जाय तो वही ५७ वर्ष का हो जाता है। यदि मान लिया जाय कि वह पचीस या तीस वर्ष की आयु में मन्त्री हुआ था तो राज्य त्याग के के समय उसकी आयु ८२ या ८७ वर्ष होनी चाहिए।

वृद्धावस्था के कारण उसका झुकाव परलोक की ओर हो जाना स्वाभाविक था। वह ९६ वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुआ था। इस प्रकार राज्य त्याग के पश्चात् ९ या १४ वर्ष तक जीवित रहा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५२ में 'तु' का पाठ भेद 'तत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५२ (१) भेद जर्जरित : राज्य कार्य की व्यवस्था ठीक से देखने के कारण मन्त्रियों तथा भृत्यों का प्रबल होना स्वाभाविक था। राजा जब शक्ति हीन होता है तो उसके पार्षद, मन्त्री तथा भृत्यों की शक्ति वृद्धि होती जाती है। मन्त्री, पार्षद, भृत्य एवं अन्य लोग परस्पर स्पर्धा शक्ति प्राप्ति के लिये करते हैं। इस स्पर्धा के कारण परस्पर अविश्वास तथा भेद उत्पन्न होता है। राजा के कुछ निर्णायक निश्चय न लेने पर वह और बढ़ता जाता है। यही अवस्था सन्धिमान के राज्य यन्त्र की हुई थी। दुर्बल राजा के कारण राज यन्त्र शिथिल हो गया था। यन्त्र ढीले हो गये थे। उन्हें कसने के अभाव में राज्य शरीर जर्जरित हो गया था। वह जर्जरता पारस्परिक भेदों में प्रकट होती है। एतदर्थ कल्हण यहाँ ठीक ही कहता है कि राजा भेद जर्जरित हो गया था।

कल्हण सन्धिमान का चरित्र और महान् बना देता है। राजा अपनी स्थिति सम्हाल सकता था। उसके विरुद्ध आचरण दोष भ्रष्टाचार का दोष नही आरोपित किया जा सकता था। जनता में उसके अलौकिक शक्ति की धाक थी। प्रतिरोध करना चाहता तो वह कर सकता था।

किन्तु यह दार्शनिक, आध्यात्मिक, निस्पृह राजा था। उसने राज्य की याचना नही की थी। राज्य जाने लगा उस समय भी चिन्ता नही की। वह अनायास मिला था। अनायास जा रहा था।

राज्य के प्रति उसे इस लिये भी मोह नहीं रह गया था कि उसे कोई सन्तान नही थी। कल्हण के वर्णन से प्रकट नही होता कि उसे स्त्री था। रक्तज उत्तराधिकारी के अभाव में उसे यह कामना नहीं रह गयी थी कि राज्य उसके सन्तान किंवा वंशज को मिले। वह जनता का राज्य था। जनता से मिला था। जनता चाहे उसे ले ले। सन्धिमान ने वह दृष्टिकोण अपनाया था। सन्धिमान निस्सन्देह साधु राजा था। उसके समान विश्व इतिहास में शायद ही कोई उदाहरण मिल सके।

अचिन्तयच्च सत्यं मे संप्रीतो भूतभावनः।
सिद्धिविघ्नानमून्दीर्घानपाकर्तुं ममुद्यतः॥ १५३॥

१५३. उसने विचार किया –'वास्तव मे इन महान् सिद्धि-विघ्नों का दूर करने के लिये समुद्यत भूतभावन मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं।'

कृत्ये बहूनि निष्पाद्ये श्रमात्कौसीधमाश्रयन्।
प्रावृषीवाध्वगो दिष्टया मोहितोऽस्मि न निद्रया॥ १५४॥

१५४. "सौभाग्य से, अनेक निष्पाद्य कृत्यों के रहते, श्रम से आलस्य का आश्रय लेते हुए, वर्षा कालीन पथिक सदृश, मैं निद्रा द्वारा मोहित नहीं हुआ।"

स्वकाले त्यजता लक्ष्मीं विरक्तां बन्धकीमिव।
हठनिर्वासनव्रीडा दिष्टचा नासादिता मया॥ १५५॥

१५५. "सौभाग्य से, अपने काल में स्वैरिणी सदृश विरक्त, लक्ष्मी को त्यागते हुए, मैंने बलात् निर्वासन व्रीडा को नहीं प्राप्त किया।"

शैलूषस्येव मे राज्यरंगेऽस्मिन् वल्गतश्चिरम्।
निर्व्यूढावपि वैरस्यं दिष्टया न प्रेक्षका गताः॥ १५६॥

१५६. "इस राज्य रूपी रंगमंच पर शैलूष (नट) सदृश, चिरकाल तक मैंने नृत्य किया। सौभाग्य से उनकी समाप्ति पर भी दर्शक विरस नहीं हुए।"

दिष्टया सदैव वैमुख्यमुच्चैरुद्घोषयञ्छ्रियः।
त्यागक्षणे न भीतोऽस्मि विकत्थन इवाऽऽहवे॥ १५७॥

१५७. सौभाग्य से, मैंने लक्ष्मी के प्रति विमुखता का सदैव उद्घोष किया, अतएव इसके त्याग काल में, युद्ध के मध्य डींग हाँकने वाले की तरह, भयभीत नहीं हुआ।"

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५४ में 'श्रयन्' का 'श्रयम्' और 'कौसीद्य' का पाठभेद 'कौमोद्य' मिलता है।

श्लोक संख्या १५५ में 'स्वकाले' का 'सुकाले' 'स्वकुले' तथा 'विरक्ता' का पाठभेद 'संरक्ता' मिलता है।

श्लोक संख्या १५६ में 'शैलूषस्येव' का 'शैलूषस्यैव' 'निर्व्यूढावपि' का 'निर्व्यूढाम्' 'निर्व्यूढमपि' तथा 'वैरस्यं' का पाठभेद 'वैराज्यं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५६ (१) निर्व्यूढ़ : निर्व्यूढ शब्द एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका अर्थ होता है किसी कथावस्तु का विश्लेषण करना। इसका अर्थ संस्कृत शब्द वस्तु समान होता है। राजतर० ३:१८६, ७:६०६ और ७:२७०७ द्रष्टव्य है।

इति संचिन्तयन्नन्तः सर्वत्यागोन्मुखो नृपः ।
मनोराज्यानि कुर्वाणो दरिद्र इव पिप्रिये ॥ १५८ ॥

१५८. सर्व त्यागोन्मुख नृप यह अन्तश्चिन्तन करते हुए; मनो राज्य करते, दरिद्र तुल्य नितरां प्रसन्न हुआ ।

अन्येद्युः प्रकृतीः सर्वाः संनिपत्य सभान्तरे ।
ताभ्यः प्रत्य(त्या)र्पयन्न्यासमिव राज्यं सुरक्षितम् ॥ १५९ ॥

१५९. दूसरे दिन सभा में सब लोगों को बुलाकर न्यास तुल्य सुरक्षित राज्य, उन्हें अर्पित कर दिया ।

उज्झितं स्वेच्छया तच्च प्रयत्नेनापि नाऽशकत् ।
तं स्वीकारयितुं कश्चित्फणीन्द्रमिव कञ्चुकम् ॥ १६० ॥

१६०. स्वेच्छया, त्यक्त राज्य को फणीन्द्र के कंचुक तुल्य प्रयत्न पूर्वक भी कोई, उसे ग्रहण कराने में समर्थ नहीं हुआ ।

अर्चालिङ्गमुपादाय सोऽथ प्रायादुदङ्मुखः ।
धौतवासा निरुष्णीषः पद्भ्यामेव प्रजेश्वरः ॥ १६१ ॥

१६१. धौत[1] वस्त्र धारण किये, बिना उष्णीष के, उत्तर मुखी प्रजेश्वर पैदल ही अर्चा (पूजन) लिंग[2] लेकर गया ।

तस्य पादार्पितदृशो व्रजतो मौनिनः प्रभोः ।
पन्थानं जगृहुः पौरा निश्शब्दस्त्रवदश्रवः ॥ १६२ ॥

१६२. नत मस्तक हो गमन करते मौनी उस प्रभु के मार्ग को निःशब्द अश्रुपात करते पुरवासियों ने ग्रहण किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५९ में 'संनिपत्य' का 'संनिपात्य' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या १६० में 'तच्च' का पाठभेद 'तं च' तथा 'ते च' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१६१ (१) धौतवस्त्र : श्री विलसन ने यहाँ पर धोती शब्द का प्रयोग किया है । (पृष्ठ ३२) कल्हण ने धोती नहीं धौत अर्थात् उज्ज्वल वस्त्र का उल्लेख किया है । नीलमत में वस्त्र के अन्तर्गत प्रायः वस्त्र, अम्बर, वासा, वसन, संवित, चीनांशुक आदि आ जाते हैं । (श्लोक ५६२, ७८६, ८११, ८३५, १२०७, १३१५, ४३२, ४४२, ६२, ५७६)

(२) अर्चालिंग—लिंगायत लोग शिवलिंग सर्वदा अपने पास रखते हैं । चाँदी की मन्दिराकार डिबिया में दोनों ओर कोढे लगे रहते हैं । उनमें यज्ञोपवीत की दोनों छोर दोनों ओर से बाँध देते हैं । यज्ञोपवीत तुल्य उसे पहनते हैं । डिबिया को प्रतिदिन खोलकर उसमें स्थित शिवलिंग की पूजा करते हैं ।

इस लिंग की लिंगायत प्रति दिन अर्चा अर्थात् पूजा करते हैं । यह सम्प्रदाय ग्यारहवीं शताब्दी में दक्षिण में प्रचलित हुआ और बढ़ता गया । उत्तर भारत में निस्सन्देह यह अति प्राचीन काल से प्रचलित था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६२ में 'मौनिनः' का पाठभेद 'मानिनः' मिलता है ।

विलङ्घितगव्यूतिरुपविश्य तरोरधः ।
जनमेकैकमुद्बाष्पं न्यवर्तयत सान्त्वयन् ॥ १६३ ॥

१६३. एक गव्यूति[1] गमनानन्तर तरु तले बैठ कर के उसने अश्रु पूर्ण प्रत्येक जन को सान्त्वना देते हुए परावृत किया।

पथि शिखरिणां मूले मूले विलम्ब्य जहज्जनान्-
मितपरिकरो गच्छन्नूर्ध्वं क्रमात्समदृश्यत ।
गहनवसुधाः संपूर्योच्चैर्व्रजन्स्व निजात्पदा-
न्नद इव विनिर्यातः स्तोकैः कृतानुगमो जलैः ॥ १६४ ॥

१६४. मार्ग में शिखरागियों के मूल मूल में रुक कर, लोगों को परावृत करते मित परिकर वह, क्रम से ऊपर जाते हुए, गहरी भूमि को पूर्ण कर पुनः अपने स्थान से कोई जल के साथ सवेग गमनशील नद सदृश दिखाई पड़ा।

निरशेषं निकटात्स लोकमटवीमध्ये निरुन्धन्पदं
शोकावेशसबाष्पगद्गदपदं संमान्य चोत्सार्य च ।
भूर्जत्वक्परिरोधमर्मरमरुन्निद्राणसिद्धाध्वग-
श्रेणीमौलिमणिप्रभोज्ज्वलगुहागेहं जगाहे वनम् ॥ १६५ ॥

१६५. अटवी मध्य रुक कर, शोकावेश के कारण अश्रु पूर्ण एवं रुद्ध वाणी से युक्त, समस्त लोगों को अपने निकट से परावृत कर, संमान्य उसने वन में प्रवेश किया; जहाँ कि भूर्जपत्रों[1] के परिरोध के कारण मर्मर ध्वनि पूर्ण मरुत् से शयन करते, सिद्ध पथिक गण के मस्तक स्थित मणि की कान्ति से गुहा गृह[2] समुज्ज्वल हो रहे थे।

पादटिप्पणियाँ :

१६३ (१) गव्यूति : यह माप का एक पारिभाषिक शब्द है। एक गव्यूति की दूरी एक क्रोश होती है। यह वैदिक शब्द लोग तथा फ्रान्सीसी माप से २ मील तथा ७४३ गज होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६४ में 'मित' का 'मित' तथा 'कृतानुगमो' का पाठभेद 'स्तोकानुगमो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६४ (१) साहित्य दर्पण शर्वे शरिणी शब्द का उल्लेख पर्वत के लिये किया गया है।

शिखरिणां वर कुमार किमभिधं,
किमभिधानमसावकरोत्तपः ।
सुमुखि येन तवाधरपाटलं
दिशति बिम्बफलं शुकशावकः ॥

नदी का जल अत्यधिक बढ़कर तटों पर फैल जाता है तब भी जल की गति नदी के अधोभाग की ही ओर होती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६५ में 'निरुन्धन्' का 'निरुन्धत्' 'निरुत्पन्' 'निरुन्धत्' 'निरुदधत्' 'भूर्ज त्वक' का 'भूर्जत्वल' 'मर्मर' का 'मंन्दर' 'मर्दर' 'मर्जर' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६५ (१) भूर्ज : भूर्ज संस्कृत शब्द का

मयं भोजपत्र है। कश्मीर में यह बहुत होता है। जोजिला पास के समीप इसके वृक्ष खूब मिलते हैं। प्राचीन काल में यह कागज के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता था। परन्तु गृह त्यागी संन्यासी अथवा मग्न गण इसका वस्त्र बनाकर भी पहनते थे। हवन के काम में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह पवित्र माना गया है। भोजपत्र के बने पहनने के साधनों को वल्कल कहा जाता था। भोजपत्र पर चन्दन तथा केशर से तान्त्रिक यन्त्र और कवच लिख कर तावीज के ढंग पर पहनने की प्रथा थी, और है।

ऊर्ध्व काबुल उपत्यका में स्तूपों से भोजपत्र पर लिखे गये अभिलेख प्राप्त हुए हैं। सन् १८९२ ई० में फ्रेंच अन्वेषक श्री दुत्रिपुल डी रहिन को खोतान से बहुत दूर पर खरोष्ठी भाषा में लिखे गये भोज पत्र पर अभिलेख मिले थे। वह पाण्डुलिपि धम्म पद की थी। प्राकृत भाषा में थी। मध्य एशिया में संस्कृत पाली, प्रकृति और कुशान भाषा में ये जर्मन रूसी तथा फ्रेंच विद्वानों को भोजपत्र पर लिखे लेखादि प्राप्त हुए थे।

भोजपत्र कश्मीर से मध्य एशिया में भेजा जाता था। भूर्जपत्र के वृक्ष लगभग १४००० फिट ऊँचाई पर पाये जाते हैं। इसका भी नर एवं मादा प्रकार होता है। नर शरद तथा मादा वसन्त ऋतु में प्रकट होता है। भोजपत्र अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें कानू पीत, रक्त, कृष्ण, धूसर वर्ण के मुख्य होते हैं। कानू भूर्ज पत्र को श्वेत भूर्ज भी कहा जाता है। इसकी छाल श्वेत होती है। यह पतली होती है। लिखने के लिये उत्तम मानी गयी है। इस छाल से आभूषण, टोकरियाँ, प्याली, तश्तरी आदि बनाया जाता है। इसका लुगदी से जूते के साँचे तथा फरमे भी बनाये जाते हैं। हिमालय के अतिरिक्त उत्तरी अमेरिका, कनाडा तथा उत्तरी यूरोप में मिलता है।

पीत भूर्ज पत्र को रजत भूर्ज पत्र भी कहते हैं वृक्ष के वयस्क होने पर इसकी छाल धुँधले-धूसर वर्ण की हो जाती है। यह लकड़ी का फर्नीचर, खेती के औजार तथा गृहस्थी के कार्यों के लिये अच्छा होता है। रक्त भूर्ज पत्र जलाशयों के समीप मिलता है। इसे नदी भूर्ज पत्र भी कहते हैं। दल-दली भूमि, सरोवरों, नदी के तटों पर वृक्ष उगते हैं। इसके छाल का वर्ण पहले गुलाबी होता है। तत्पश्चात् काला हो जाता है। इसके वृक्ष ४० से ६० फिट ऊँचे होते हैं। दक्षिण अमेरिका में विशेषतया प्राप्त होता है।

कृष्णभूर्ज पत्र का वृक्ष ६० से ८० फिट ऊँचा होता है। इसका शीर्ष शोभनीय होता है। शाखायें पतली तथा टहनियाँ कोमल होती हैं। इसकी लकड़ी कृष्ण वर्ण तथा कठोर होती है। फर्नीचर आदि तथा गृहों के सजाने के लिये इसकी लकड़ी अच्छी होती है। धूसर भूर्ज पत्र का वृक्ष ४० फिट से अधिक ऊँचा नहीं होता। अमेरिका के अनेक राज्यों में इसके वृक्ष मिलते हैं। छाल कड़ी और परतें एक दूसरे के साथ मजबूती से चिपकी रहती है। यह जलाने के काम में आता है। इसके साँचे बनाये जाते हैं।

गुहागेह से इस स्थान पर बुमजू की गुफाओं की ओर संकेत होता है। स्टीन ने बुमजू की गुफाओं को इन गुहा गेहों को मानने में सन्देह किया है। यह ठीक है। किन्तु हसन ने बुमजू ही की गुफा माना है।

मेरा मत है कि यह स्थान व्रुज होम अथवा व्रजहोम है। इस स्थान पर खनन कार्य भारतीय पुरातत्त्व विभाग की तरफ से हो रहा है। श्री त्रिलोक नाथ खजान्ची कार्य कर रहे हैं। व्रुज होम एक छोटी सी पहाड़ी है। उसके प्रायः तीन तरफ पर्वत माला है। श्रीनगर उत्तर दिशा में पड़ता है।

राजा सन्धिमति उत्तर दिशा की ओर चलता हुआ भूर्ज पत्तों के मर-मर से पूर्ण गुहागेह में रहने वाले सिद्ध जनों के स्थान पर पहुँचता है। वहाँ से वह पुनः नन्दि क्षेत्र की तरफ जाता है। नन्दि-क्षेत्र हर मुकुट पर्वत पर है। हरिमुकुट की यात्रा से गन्ध अर्थात् सिन्ध वैलो होने पुनः हरमुकुट गंगा का मार्ग पकड़ते हुए नारायण बल होते, गंगाबल पहुँचते हैं। इस समय यहाँ की यात्रा कर श्रीनगर आदि होते, नारायण बल की तरफ से लौटते हैं। मैंने बुर्जहोम की गुफाएँ देखी हैं। आजकल भी भारतवर्ष के कितने ही स्थानों पर साधु इस प्रकार की गुफाओं में रहते हैं। मैं समझता हूँ बुर्जहोम का नाम भूर्ज वृक्ष के आधार पर पड़ा है। इन गुफाओं में कौन रहते थे। उनमें मानव कंकाल ६॥ फुट लम्बे तक के मिले हैं। गाड़ने की प्रथा हिन्दुओं में नहीं थी। केवल साधु संन्यासी अथवा सिद्ध गण समाधि लेते थे। तत्कालीन समय में यहाँ केवल हिन्दू रहते थे। अतएव सन्धिमान सिद्धजनों के स्थान में पहुँचता नन्दि पर्वत गया था। यह स्थान नन्दि पर्वत यात्रा के मार्ग में है। अतएव यही स्थान गुहागेह निवासियों का है।

१ गव्यूती : हरकन में टाइल्स मिली हैं जिनमें लोगों के उँकड़ू बैठे हुए दिखाया गया है। यही आसन समाधि में मिले दो चार कंकालों का मैंने देखा है। वे लम्बे सुला कर नहीं गाड़े गए थे। उँकड़ू अधिक मिले हैं। समाधि देने की प्रथा है कि पद्मासन लगाकर समाधि में रख देते थे, एक प्रकार और था। खड़ी शव समाधि में खड़ाकर ऊपर से मिट्टी डाल देते थे। यहाँ खड़ शव पद्मासन रूप में रखा गया होगा। कालान्तर में एक पैर खुल गया और पृष्ठ भाग गड्ढे में पीछे लग गया। यही रूप खड़े शव का है।

यहीं पर ईंटें भी मिली हैं। इन ईंटों का आकार नारायण नाग में मिली ईंटों से मिलता है। स्वाइन सन्धिमति का काल ३०४४१ वर्ष देता है। चाहे यह समय बिलकुल ठीक भी न हो परन्तु सन्धिमति का समय २ हजार वर्ष पूर्व ही ठहरता है। यदि वैज्ञानिक शोधन से यह शव दो हजार वर्ष पूर्व का ठहरता है तो मेरा अनुभव ठीक है।

यहाँ मैंने एक शव और देखा। जिसके मस्तक की हड्डियाँ टूटी थीं। एक प्रथा थी शव समाधि में रखने पर मूर्धापर नारियल अथवा ऐसी चीज से मारते थे कि मूर्धा भग्न होजाय। यही कार्य कपाल क्रिया के रूप में श्मशान में की जाती है। मस्तक तोड़ दिया जाता है।

पत्थर के सामान यहाँ मिलते हैं। साधुओं को धातु स्पर्श निषेध किया गया है। आज कल भी संन्यासी लोग पत्थर के बर्तनों में भोजन करते हैं। सभी गृहस्थों के यहाँ चटनी आदि खाने तथा खट्टा और दही आदि चीज रखने के लिए पथरी रखी जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम पत्थर युग में हैं। हड्डियों की सुइयों के विषय में यही कहना अलम है कि धातु की सुई बनाना वर्जित था। पर मूर्तियाँ जो निकली हैं वे हिन्दू काल की हैं उन्हें लौह छेनी से गढ़ा गया है। वे हड्डियों तथा पत्थरों के औजारों से नहीं बन सकती थीं अतएव उस समय लोहा का आविष्कार हो चुका था। जब लोहा प्राप्त था तो हड्डियों की सुई क्यों बनाई गयी। इसका एक मात्र कारण यही है कि धातु का स्पर्श वर्जित था। मेरा उक्त मत केवल अनुमान पर आधारित है।

गुहागेह का शब्दार्थ इस बात की ओर लक्ष्य करता है कि गुफा प्रकार के घरों में लोग निवास करते हैं। अफगानिस्तान के बामियान स्थान में पर्वत में सैकड़ों से भी अधिक गुफा मैंने स्वयं देखी हैं वहाँ भिक्षु तथा वहाँ रहने वाले उन गुफाओं में रहते थे। इस समय अनेक गुहागृह ध्वस्त हो गये हैं। परन्तु अत्यधिक अपना रूप कायम किये हैं। यह पहाड़ पत्थर के नहीं सख्त मिट्टी के हैं। इस लिये गुफायें बहुत नष्ट हो गयी हैं अथवा गिर गयी हैं।

अथ वनसरसीतटद्रुमाधः
पुटकघटोदरसंभृताम्बुपूराम् ।
वसतिमकृत वासरावसाने
शुचितरुपल्लवकल्पितोच्चतल्पाम् ॥ १६६ ॥

१६६. दिवस के अवसान में वन सरसी (सरोवर) तटपर तरु तले जल पूर्ण पुटक[1] घट के साथ पवित्र तरु पल्लवों से तल्प निर्मित कर निवास किया।

शृङ्गासक्तमितातपाः शबलितरुच्छायाभुवः शाद्वलै-
रुत्फुल्लामलमल्लिकातलमिलत्सुप्तव्रजस्त्रीजनाः ।
सध्वाना वनपालवेणुरणितोन्मिश्रैः प्रपाताम्बुभिः
श्रान्तं दृक्पथमागतास्तमनयन्निद्रामदूराद्रयः ॥ १६७ ॥

१६७. दृष्टिगोचर निकटवर्ती उस पर्वत ने श्रान्त उसको निद्रित कर दिया, जिसकी शिखरों पर मित आतप पड़ रहा था, जहाँ हरी-हरी घासों में छाया भू चित्रित तथा उत्फुल्ल अमल मल्लिका तले, ब्रजस्त्री-जन प्रसुप्त थी और जो वनपालों के वेणु ध्वनि से पूर्ण निर्झर जल द्वारा निनादित हो रहा था।

वनकरिरसितैः पदे पदे स
प्रतिभटतां पटहध्वनेर्दधानैः ।
अमनुत रटितैश्च ककरेटोः
परिगलितां गमनोन्मुखस्त्रियामाम् ॥ १६८ ॥

१६८. गमनोन्मुख उसने पद पद पर, पटह ध्वनि, सदृश वन गज गर्जनों एवं काक ध्वनियों से रात्रि को परिगलित समझा।[1]

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६६ में 'तल्पाम्' का पाठभेद 'तल्पम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

कल्हण ने पुटक का उल्लेख तरंग १:२१३ श्लोक में भी किया है। यहा उसने पुनः उसको दोहराया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६७ में 'मितातपाः' का 'सितातपाः' 'रुत्फुल्ला' का 'ल्लासा' तथा 'पालवेणु' का पाठभेद 'पालरेणु' मिलता है।

श्लोक संख्या १६८ में 'वनकरि' का 'वनहरि' तथा 'ध्वनेर्द' का पाठभेद 'ध्वनैर्द' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६८ (१) वनवर्णन. वन गमन वर्णन कल्हण ने यहाँ पुरा. कवियों की शैली पर किया है।

राजा सन्धिमति उत्तर दिशा की ओर चलता हुआ भूज पतों के मर-मर से पूर्ण गुहागेह में रहने वाले सिद्ध जनों के स्थान पर पहुँचता है। वहाँ से वह पुनः नन्दि क्षेत्र की तरफ जाता है। नन्दि-क्षेत्र हर मुकुट पर्वत पर है। हरिमुकुट की यात्रा से गन्ध अर्थात् सिन्ध वैलो होते पुनः हरमुकुट गंगा का मार्ग पकड़ते हुए नारायण बल होते, गंगाबल पहुँचते हैं। इस समय यहाँ की यात्रा कर श्रीनगर आदि होते, नारायण बल को तरफ से लौटते हैं। मैंने ब्रुजहोम की गुफाएँ देखी है। आजकल भी भारतवर्ष के कितने ही स्थानो पर साधु इस प्रकार की गुफाओं में रहते है। मै समझता हूँ ब्रुजहोम का नाम भूर्ज वृक्ष के आधार पर पड़ा है। इन गुफाओ में कौन रहते थे। उनमें मानव कंकाल ६॥ फुट लम्बे तक के मिले है। गाड़ने की प्रथा हिन्दुओं में नही थी। केवल साधु संन्यासी अथवा सिद्ध गण समाधि लेते थे। तत्कालीन समय में यहाँ केवल हिन्दू रहते थे। अतएव सन्धिमान सिद्धजनो के स्थान में पहुँचता नन्दि पर्वत गया था। यह स्थान नन्दि पर्वत यात्रा के मार्ग मे है। अतएव यही स्थान गुहागेह निवासियो का है।

१ गव्यूती : हुरकन में टाइल्स मिली है जिनमें लोगो के उँकडू बैठे हुए दिखाया गया है। यही आसन समाधि में मिले दो चार कंकालो का मैने देखा है। वे लम्बे सुला कर नही गाड़े गए थे। उँकडू अधिक मिले है। समाधि देने की प्रथा है कि पद्मासन लगाकर समाधि में रख देते थे, एक प्रकार और था। खड़ी शव समाधि में खड़ाकर ऊपर से मिट्टी डाल देते थे। यहाँ खड़ शव पद्मासन रूप में रखा गया होगा। कालान्तर में एक पैर खुल गया और पृष्ठ भाग गढ्ढे में पीछे लग गया। यही रूप खड़े शव का है।

यहाँ पर ईंटें भी मिली है। इन ईंटों का आकार नारायण बाग में मिली ईंटों से मिलता है। स्वाइन सन्धिमति का काल ३०४४१ वर्ष देता है। चाहे यह समय बिलकुल ठीक भी न हो परन्तु सन्धिमति का समय २ हजार वर्ष पूर्व ही ठहरता है। यदि वैज्ञानिक शोधन से यह शव दो हजार वर्ष पूर्व का ठहरता है तो मेरा अनुभव ठीक है।

यहां मैंने एक शव और देखा। जिसके मस्तक की हड्डियाँ टूटी थीं। एक प्रथा थी शव समाधि में रखने पर मूर्धापर नारियल अथवा ऐसी चीज से मारते थे कि मूर्धा भग्न होजाय। यही कार्य कपाल क्रिया के रूप में श्मशान में की जाती है। मस्तक तोड़ दिया जाता है।

पत्थर के सामान यहाँ मिलते है। साधुओं को धातु स्पर्श निषेध किया गया है। आज कल भी संन्यासी लोग पत्थर के बर्तनों में भोजन करते है। सभी गृहस्थो के यहाँ चटनी आदि खाने तथा खट्टा और दही आदि चीज रखने के लिए पथरी रखी जाती है। इसका अर्थ यह नही है कि हम पत्थर युग में है। हड्डियों की सुइयो के विषय मे यही कहना अलम है कि धातु की सुई बनाना वर्जित था। चर मूर्तियाँ जो निकली है वे हिन्दू काल की है उन्हे लौह छेनी से गढ़ा गया है। वे हड्डियो तथा पत्थरों के औजारो से नही बन सकती थी अतएव उस समय लोहा का आविष्कार हो चुका था। जब लोहा प्राप्त था तो हड्डियो की सुई क्यों बनाई गयी। इसका एक मात्र कारण यही है कि धातु का स्पर्श वर्जित था। मेरा उक्त मत केवल अनुमान पर आधारित है।

गुहागेह का शब्दार्थ इस बात की ओर लक्ष करता है कि गुफा प्रकार के घरों में लोग निवास करते है। अफगानिस्तान के बामियान स्थान में पर्वत में सैकड़ों से भी अधिक गुफा मैने स्वयं देखी है वहाँ भिक्षु तथा वहाँ रहने वाले उन गुफाओं में रहते थे। इस समय अनेक गुहागृह ध्वस्त हो गये है। परन्तु अत्यधिक अपना रूप कायम किये है। यह पहाड़ पत्थर के नही सख्त मिट्टी के है। इस लिये गुफायें बहुत नष्ट हो गयी है अथवा गिर गयी है।

अथ वनसरसीतटद्रुमाधः
पुटकघटोदरसंभृताम्बुपूराम् ।
वसतिमकृत वासरावसाने
शुचितरुपल्लवकल्पितोच्चतल्पाम् ॥ १६६ ॥

१६६. दिवस के अवसान में वन सरसी (सरोवर) तटपर तरु तले जल पूर्ण पुटक[1] घट के साथ पवित्र तरु पल्लवों से तल्प निर्मित कर निवास किया।

शृङ्गासक्तमितातपाः शबलितच्छायाभुवः शाद्वलै-
रुत्फुल्लामलमल्लिकातलमिलत्सुप्तव्रजस्त्रीजनाः ।
सध्वाना वनपालवेणुरणितोन्मिश्रैः प्रपाताम्बुभिः
श्रान्तं दृक्पथमागतास्तमनयन्निद्रामदूराद्रयः ॥ १६७ ॥

१६७. दृष्टिगोचर निकटवर्ती उस पर्वत ने श्रान्त उसको निद्रित कर दिया, जिसकी शिखरों पर मित आतप पड़ रहा था, जहाँ हरी-हरी घासों में छाया भू चित्रित तथा उत्फुल्ल अमल मल्लिका तले, व्रजस्त्री-जन प्रसुप्त थी और जो वनपालों के वेणु ध्वनि से पूर्ण निर्झर जल द्वारा निनादित हो रहा था।

वनकरिरसितैः पदे पदे स
प्रतिभटतां पटहध्वनेर्दधानैः ।
अमनुत रटितैश्च कर्कटेटोः
परिगलितां गमनोन्मुखस्त्रियामाम् ॥ १६८ ॥

१६८. गमनोन्मुख उसने पद पद पर, पटह ध्वनि, सदृश वन गज गर्जनों एवं काक ध्वनियों से रात्रि को परिगलित समझा।[1]

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६६ में 'तल्पाम्' का पाठभेद 'तल्पम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

कल्हण ने पुटक का उल्लेख तरंग १:२१३ श्लोक में भी किया है। यहां उसने पुनः उसको दोहराया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६७ में 'मितातपाः' का 'मिता-तपाः' 'उत्फुल्ला' का 'ल्लासा' तथा 'पालवेणु' का पाठभेद 'पालरेणु' मिलता है।

श्लोक संख्या १६८ में 'वनकरि' का 'वनहरि' तथा 'ध्वनेर्द' का पाठभेद 'ध्वनंद' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६८ (१) वनकर्कोटः [illegible]
कल्हण ने यहाँ पुनः कवियों को [illegible] किया है।

अन्येद्युर्विधिवदुपास्य पूर्वसंध्या-
मासन्ने नलिनसरस्यपास्तनिद्रः ।
क्ष्मापालः परिचितसोदराम्बुतीर्थं
नन्दीशाध्युषितमवाप भूतभर्तुः ॥ १६९ ॥

१६९. दूसरे दिन पार्श्ववर्ती नलिन सरसी में अपनी निद्रा तिरोहित कर (स्नानकर) राजा ने पूर्व सन्ध्योपासन किया अनन्तर नन्दीश समीपस्थ भूभर्ता[1] (भूतेश्वर) परिचित सोदर[2] तीर्थ में पहुँचा।

नन्दिक्षेत्रे त्रिभुवनगुरोः सोऽग्रतस्तत्र याव-
त्तस्थौ तावत्स्वयमभिमतावाप्तये जायते स्म ।
भस्मस्मेरः सुघटितजटाजूटबन्धोऽक्षसूत्री
रुद्राक्षाङ्को जरठमुनिभिः सस्पृहं वीक्ष्यमाणः ॥ १७० ॥

१७०. भस्म स्मेर सुघटित, जटाजूट बन्ध से युक्त, अक्ष सूत्री, रुद्राक्ष अंकित एवं वृद्ध मुनियों से सस्पृह वीक्ष्यमाण वह नन्दिक्षेत्र[1] में त्रिभुवन गुरु के सम्मुख जब तक स्थित रहा तब तक उसके अभिलषित की प्राप्ति हुई।

भ्राम्यञ्श्रीकण्ठदत्तव्रतजनितमहासत्क्रियो भैक्षहेतो-
र्भिक्षादानोद्यतासु प्रतिमुनिनिलयं संभ्रमात्तापसीषु ।
वृक्षैर्भिक्षाकपाले शुचिफलकुसुमश्रेणिभिः पूर्यमाणे
मान्यो वैराग्ययोगेऽप्यनुपनतपरप्रार्थनालाघवोऽभूत् ॥ १७१ ॥

१७१. श्रीकण्ठव्रत के कारण अत्यधिक संस्कृत वह जब भिक्षा हेतु प्रत्येक मुनि गृह में जाता तो तपस्विनियाँ सोत्साह स्पर्धा पूर्वक भिक्षा देने के लिये उद्यत रहती थीं। किन्तु वृक्षों द्वारा पवित्र पुष्प फल से कपाल (भिक्षापात्र) के पूर्ण हो जाने से, मान्य उसने वैराग्य योग में भी याचना लाघव को नहीं प्राप्त किया

---

१६९. (१) भूतेश्वर : पृष्ठ १४९ द्रष्टव्य है। गाथा में भूतेश्वर दर्शन का उल्लेख कल्हण ने पूर्व श्लोक संख्या २:१२३ में किया है। नीलमत पुराण श्लोक 1047, 1118, 1242, 1335, द्रष्टव्य है।

(२) सोदर : पृष्ठ १४५ द्रष्टव्य है। नीलमत पुराण श्लोक, 1330, 486, 1113, 1115, 1325, 1330 भी द्रष्टव्य है।

१७० (१) नन्दिप्रवेग क्षेत्रः पृष्ठ ७६ द्रष्टव्य है। भस्म की उज्ज्वल वर्ण की उपमा कल्हण ने स्मित दन्त पंक्ति के उज्ज्वल वर्ण से दिया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७१ में 'भ्राम्यञ्श्री' का 'भ्राम्यञ्छ्री', 'योगे' का 'योग्यो' तथा 'नुपनत' का पाठभेद 'नुपतन' 'नुपगत' 'नपतन' मिलता है।

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचणपकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ
राजतरङ्गिण्यां द्वितीयस्तरङ्गः ॥

इस प्रकार काश्मीर के महामात्य चणपक प्रभु के पुत्र कल्हण विरचित
राजतरंगिणी में, द्वितीय तरंग समाप्त हुआ।

इति पाठ में 'चणपक' का पाठभेद 'चम्पक' तथा 'चणयक' मिलता है।

एशियाटिक सोसायटी बंगाल से प्रकाशित सन् १८३५ ई० की प्रति में इति पाठ के पश्चात् निम्नलिखित पाठ और दिया गया है। पृष्ठ ३१ किन्तु इसका अनुवाद श्री स्तीन तथा श्री पण्डित ने नहीं दिया है। अन्य अनुवादकों ने इसका अनुवाद दिया है मैं यहाँ मूल तथा अनुवाद दोनों देता हूँ।

शतद्वये वत्सराणामष्टाभिः परिवर्जिते।
अस्मिन्द्वितीये व्याख्यातः षट् प्रख्यातगुणा नृपाः ॥

एक सौ बानबे वर्ष में इस द्वितीय तरंग कथित प्रख्यात गुण वाले ६ नृप हुए। श्री स्तीन ने प्रथम भाग परिशिष्ट एक के पृष्ठ १३५ पर द्वितीय तरंग की काल गणना इसी श्लोक के आधार पर दी है। उनका वर्णित १९२ इस श्लोक में यथावत् है।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

तृतीयस्तरङ्गः

तृतीय तरंग के राजा

गोनन्द वंश पुनरस्थापित

नाम राजा	राज्यकाल वर्ष	लौकिक संवत्
(१) मेघव हन	३४	३०८८
(२) श्रेष्ठसेन-प्रवरसेन (तुजीन द्वितीय)	[illegible]	[illegible]१२२
(३) हिरण्य-तोरमाण		२
(४) मातृ गुप्त		
(५) प्रवरसेन द्वितीय		२-०
(६) युधिष्ठिर द्वितीय		१-११
(७) लगन नरेन्द्रादित्य		१-१
(८) रणादित्य (तुजीन तृतीय)		-१
(९) विक्रमादित्य		
(१०) बालादित्य		

अथ

तृतीयस्तरङ्गः

मुञ्चैभाजिनमस्य कुम्भकुहरे मुक्ताः कुचाग्रोचिताः
किं भालज्वलनेन कज्जलमतः स्वीकार्यमक्ष्णोः कृते ।
संधाने वपुरर्धयोः प्रतिवदन्नेवं निषेधेऽप्यहेः
कर्तव्ये प्रिययोत्तरानुसरणोद्युक्तो हरः पातु वः ॥ १ ॥

१. 'गज चर्म त्याग दे' इसके कुम्भ कुहर में (तुम्हारे) कुचाग्रोचित मुक्ता होते हैं।' 'भालस्थ' ज्वलन (अग्नि) से क्या लाभ ?'' 'इससे नेत्रों के लिये कज्जल प्राप्त होते हैं।' अर्धाङ्ग विषयक प्रश्न का उत्तर देकर, इसी प्रकार प्रिया के अहि का निषेध करने पर, उत्तर अन्वेषण में उद्यत, शिव आप लोगों की रक्षा करें।[1]

अथोल्लसत्पृथुश्लाघमानिन्युर्मेघवाहनम् ।
गान्धारविषयं गत्वा सचिवाधिष्ठिताः प्रजाः ॥ २ ॥

मेघवाहन[1]

२. मन्त्रियों के नियन्त्रण में प्रजा गान्धार देश[2] जाकर, मेघवाहन को ले आयी, जिसकी प्रचुर प्रशस्ति फैल रही थी।

पाठभेद :

'श्री गणेशाय नमः' से भी तरंग का आरम्भ होता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५३ वाँ श्लोक है। उक्त पद का भावार्थ निम्नलिखित होगा। देहार्ध द्वय मिलन समय पार्वती ने जिज्ञासा की 'गजाजिन परित्याग कर दीजिये।' महादेव ने उत्तर दिया—'इसके कुम्भ के मध्य में तुम्हारे पयोधर भूषण के उपयुक्त मुक्ता राशि निहित है। पार्वती ने पुनर्जिज्ञासा की—ललाट स्थित अनल का प्रयोजन क्या है ? महादेव ने उत्तर दिया—'वहाँ से तुम्हारा लोचन भूषण कज्जल प्राप्त होगा।' इस प्रकार प्रत्युत्तर देकर प्रियतमा के सर्प निषेध सूचक प्रश्न के चिन्तन अनुसरण उद्यत हर आप लोगों की रक्षा करें।

(१) २ श्री विलसन मेघवाहन का अभिषेक काल सन् २३ ई० ३ मास तथा राज्य काल ३४ वर्ष देते हैं।

श्री एस पी. पण्डित यह समय सन् २४ ई० तथा राज्यकाल ३४ वर्ष देते हैं।

श्रीस्तीन अभिषेक काल लौकिक संवत् ३०८८ तथा राज्यकाल ३४ वर्ष देते हैं।

श्री बाली ने यह काल सप्तर्षि संवत् ३९७९ तथा सन् २०६ ई० देते हैं।

अबुल फजल आइने अकबरी में मेघवाहन का नाम मगदहन देता है।

ट्रायर यह समय सन् २४ ईस्वी तथा ९ मास देते हैं। कनिंघम यह समय सन् ३८३ ई. मानते हैं।

हसन लिखता है—'राजा मेघवाहन राजा भरीराय (सन्धिमत) के इस्तीफा देने के बाद संवत् ३४ मे तुरन्त सल्तनत पर जलवागर

तृतीय तरंग के राजा

गोनन्द वंश पुनरस्थापितः

नाम राजा	राज्यकाल वर्ष	लौकिक संवत
(१) मेघव हन	३४	३०८८
(२) श्रेष्ठसेन-प्रवरसेन (तुजीन द्वितीय)	३०	३१२२
(३) हिरण्य-तोरमाण	३०-२-०	३१५२
(४) मातृ गुप्त	४-९-१	३१८२-२-०
(५) प्रवरसेन द्वितीय	६०	३१८६-१-११
(६) युधिष्ठिर द्वितीय	३९-३-०	३२४६-११-१
(७) लखन नरेन्द्रादित्य	१३	३२८६-२-१
(८) रणादित्य (तुजीन तृतीय)	३००	३२९९-२-१
(९) विक्रमादित्य	४२	३३९९-२-१
(१०) बालादित्य	३६-८-०	३६४१-२-१
	५८६-१०-१	

अथ

तृतीयस्तरङ्गः

मुञ्चेभाजिनमस्य कुम्भकुहरे मुक्ताः कुचाग्रोचिताः
किं भालज्वलनेन कज्जलमतः स्वीकार्यमक्ष्णोः कृते ।
संधाने वपुरर्धयोः प्रतिवदन्नेवं निषेधेऽप्यहेः
कर्तव्ये प्रिययोत्तरानुसरणोद्युक्तो हरः पातु वः ॥ १ ॥

१. 'गज चर्म त्याग दें' इसके कुम्भ कुहर में (तुम्हारे) कुचाग्रोचित मुक्ता होते हैं।' 'भालस्थ' ज्वलन (अग्नि) से क्या लाभ ?'' 'इससे नेत्रों के लिये कज्जल प्राप्त होते हैं।' अर्धाङ्ग विषयक प्रश्न का उत्तर देकर, इसी प्रकार प्रिया के अहि का निषेध करने पर, उत्तर अन्वेषण में उद्यत, शिव आप लोगों की रक्षा करें।[१]

अथोल्लसत्पृथुश्लाघमानिन्युर्मेघवाहनम् ।
गान्धारविषयं गत्वा सचिवाधिष्ठिताः प्रजाः ॥ २ ॥

मेघवाहन[१]

२. मन्त्रियों के नियन्त्रण में प्रजा गान्धार देश[२] जाकर, मेघवाहन को ले आयी, जिसकी प्रचुर प्रशस्ति फैल रही थी।

पाठभेद :

'श्री गणेशाय नमः' से भी तरंग का आरम्भ होता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५३ वाँ श्लोक है। उक्त पद का भावार्थ निम्नलिखित होगा। देहार्ध द्वय मिलन समय पार्वती ने जिज्ञासा की 'गजाजिन परित्याग कर दीजिये।' महादेव ने उत्तर दिया—'इसके कुम्भ के मध्य में तुम्हारे पयोधर भूषण के उपयुक्त मुक्ता राशि निहित है। पार्वती ने पुनर्जिज्ञासा की—ललाट स्थित अनल का प्रयोजन क्या है ? महादेव ने उत्तर दिया—'वहाँ से तुम्हारा लोचन भूषण कज्जल प्राप्त होगा।' इस प्रकार प्रत्युत्तर देकर प्रियतमा के सर्प निषेध सूचक प्रश्न के चिन्तन अनुसरण उद्यत हर आप लोगों की रक्षा करें।

(१) २ श्री विलसन मेघवाहन का अभिषेक काल सन् २३ ई० ३ मास तथा राज्य काल ३४ वर्ष देते हैं।

श्री एस. पी. पण्डित यह समय सन् २४ ई० तथा राज्यकाल ३४ वर्ष देते हैं।

श्रीस्तीन अभिषेक काल लौकिक सवत् ३०८८ तथा राज्यकाल ३४ वर्ष देते हैं।

श्री बालो ने यह काल सप्तर्षि संवत् ३९७९ तथा सन् २०६ ई० देते हैं।

अबुल फजल आइने अकबरी में मेघवाहन का नाम मगदहन देता है।

ट्रायर यह समय सन् २४ ईस्वी तथा ९ मास देते हैं। कनिंघम यह समय सन् ३८३ ई. मानते हैं।

हसन लिखता है—'राजा मेघवाहन राजा प्ररोराय (सन्धिमत) के इस्तीफा देने के बाद संवत् ३४ में तुरन्त सल्तनत पर जलवागर

हुआ। और इन्तहाई ओरल और इन्साफ के साथ कश्मीर के चमन को तर व ताज़गी बख्श दी। आस पास के मुमालिक को अपने कब्जा इख्तदार में ले आया। परिन्दों हैवानों के गोश्त के खाने वालो को नाहक़ खून बहाने की कत्तईयन मुमानियत कर दी। शिकारियो और कसावो को गुज़र औकात के लिये जागीरें दी। उसकी हकूमत में किसी जानवर को तकलीफ नही पहुँची। बल्कि उसकी हुस्ननीयत के पेश नज़र इशारात—भी आपस में एक दूसरे को एज़ार सानी पर कादिर न हुए। रात को भेष बदलकर बाहर को गश्त किया करता था। फकीरों और बे वसीला लोगों को चोरी छिपे घर पर माल व दौलत भेजा करता। मंगावन, मनोया गाय और मेघमठ के दिहात आबाद किये। इसी असना में खबर सुनी कि हिन्दुस्तान में जानदारों को एज़ाज़ पहुँचाते हैं। चुनांचे ऐसा करने से रोकने के लिये एक बड़ी भारी फौज़ इस तरफ रवाना की। हिन्दुस्तान के बहुत से राजों को अपना मनीय व फरमा बरदार बना लिया। जिसके नतीजा में उन्होंने जानदारों के इज़ाद तकलीफ़ की दस्तबरदारी अख्तियार कर ली। जिसने उसके हुक्म की तालीम से सरताबी की उसकी हकूमत तबाह व बरबाद हो गयी। आहिस्ता आहिस्ता यह राजा फतह करते करते दरियाये शोर पर पहुँच गया।

एक दिन अपने अराकीन सल्तनत साथ दरयाए शोर के अबूर करने पर मशविरा कर रहा था कि एकाएक दूर से यह आवाज़ सुनायी दी कि राजा मेघवाहन की अमलदारी में लोग मुझे मार रहे हैं। राजा इस फरयाद को सुनते ही गैज़ व गज़ब से भर गया। इस सदा की तलाश में दूर तक दौड़ कर गया। क्या देखता है कि एक आदमी है जिसे पांच छः आदमी ज़ोर से जकड़ा हुआ ले जा रहे हैं। राजा ने हकीकत हाल पूछा। उनमें से एक बोला कि हमारा एक प्यारा बेटा है। बीमारी के बाइस करीबुल मर्ग है। इसके साथ हमारे पड़ोस में एक मन्दिर है। जहाँ से लोग गैब की बातें सुनते हैं। वहाँ हमने अपनी बीमारी के मुतल्लिक सुना है कि इसके खातिर जब तक इन्सानी कुरबानी न दी जायगी तब तक वह अच्छा न होगा। अब यह अजल रसीदह हमारे पास पहुँचा है। इसकी जान हम अपने लड़के के लिये कुरबान करेंगे।

राजा ने कहा मेरे अहद हकूमत में जब हैवानो का कतल मम्नू है। तो तुम्हारी क्या ताकत है कि तुम बेगुनाह आदमी को कतल करो। उन आदमियों ने जवाब दिया कि इस लड़के के वफ़ात से लोग बे जान होजायंगे। जब आपको एक आदमी का मरना पसन्द नही है तो इतने आदमियों का मरना आपको किस तरह पसन्द होगा। और फिर खुदा को आप क्या जवाब देंगे। राजा बोला कि यह मुसाफिर है। बे गुनाह है। इसको छोड़ दो। इसके बदले मेरी जान अपने बेटे पर कुरबान कर दो।

लोगों ने इसे मजाक समझा। लेकिन राजा ने असलन तलवार निकाल कर अपने मार डालने का एकराम किया। उसी वक्त राजा पर फूल आसमान से बरसने लगे। अचानक गैब से एक सहानी इन्सान नमूदार हुआ। और राजा का हाथ पकड़ कर उसे खुदकशी से रोका। उस वक्त तमाम लोग राजा की नज़रों से गायब हो गये। राजा हैरत के भँवर में फँस गया। और उस फिरिश्ता से इस जमायत की कैफियत दरियाफ्त की। वह बोला कि यह जमायत गैब से तेरी आज़माइश के लिये आयी थी। मैं समुद्रों और लहरों का मोकल हूँ। तेरा खल्क खुदा पर तेरी शुजाअत और शफ़क़त देखकर मैं तेरा मतई व फरमा बरदार होता हूँ। और अब अपना मतलब मुझसे कह। राजा ने कहा। मैं मुझसे जज़ीरा सिंहल द्वीप और जज़ीरा लंका की फतह में मदद माँगना चाहता हूँ। उस शख्स ने जवाब दिया कि मैं खुदा की बारगाह से तेरी मआज़मत के लिये मुकर्रर किया गया हूँ। इसके बाद नेक सरिश्त बादशाह एक अज़ीमुशान फौज के हमराह

रक्तप्रजस्य भूभर्तुः पश्चाल्लोकानुरञ्जनम् ।
तस्याज्ञायि जनैर्धौतक्षौमक्षालनसंनिभम् ॥ ३ ॥

३. प्रजानुरक्त उस राजा के लोकानुरंजन को स्वच्छ क्षौम वस्त्र के क्षालन सदृश तत्पश्चात् (प्रजा ने) जाना।[१]

स पुनर्बोधिसत्त्वानामपि सत्त्वानुकम्पिनाम् ।
चर्यामुदात्तचरितैरत्यशेत महाशयः ॥ ४ ॥

४. उस महाशय ने अपने उदात्त चरितों से प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले बोधि सत्त्वों[१] की चर्या का भी अतिक्रमण कर दिया।

जिसमे बहुत से घोड़े और हाथी भी थे गोया मोकल को इत्राजन समुन्दर को पार कर गया और बहुत जल्द ही जज़ोरा सिंहल द्वीप को फतह कर लिया। वहाँ के राजा विभीषण ने फरमा बरदारी का तौक़ गले में डाल लिया। और हैवानों को न क़तल करने का हुक्म अपनी तमाम क़लमरो में दे दिया। और अपने मुल्क के बहुत से तुहफे़ तहायफ़ के साथ राजा मेघवाहन को रुख़सत किया। राजा मज़कूर कमाल शान व शौकत से अपने वतन कश्मीर फ़रमा हुआ।''

२ (२) गान्धार देश : पृष्ठ १०६ टिप्पणी गान्धार, ३०७ १:६८, ३०७, ३१४, २: १४४ द्रष्टव्य है।

(१) ३ राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५४ वाँ श्लोक है।

इसका भावार्थ यह भी हो सकता है। 'जिस प्रकार स्वच्छ क्षौम वस्त्र के धुल जाने पर उसका स्वच्छ रूप प्रकट होता है, उसी प्रकार प्रजानुरक्त उस राजा के लोकानुरंजन को प्रजा ने उसके कार्यों से बाद में जाना।'

इसका एक और भावार्थ निम्नलिखित हो सकता है :

'जिस प्रकार विशुद्ध क्षौम का वर्ण धोने पर जाना जा सकता है, उसी प्रकार जनगण प्रजानुरक्त नृपति का लोकानुराग तत्पश्चात् लोगों ने जाना।'

४(१) बोधिसत्त्व : बडशाह जैनुल आबदीन (सन् १४२० ई.) के समय तक भगवान् बुद्ध तथा उनका उल्लेख तत्कालीन साहित्य में श्रद्धापूर्वक किया गया है। श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी १:७६ में भगवान् बुद्ध का उल्लेख किया है। इससे प्रकट होता है। बौद्ध धर्म तथा बुद्ध को शेष भारत में प्रायः लोग भूल गये थे। उस समय भी किसी न किसी रूप में उनका कश्मीर में अस्तित्व था। विशेष रा. त. १.१३४, १३५, १३७, १३८, पृष्ठ १९४-१९५ द्रष्टव्य है।

बोधिसत्त्व की धर्मता के विषय में मिलिन्द प्रश्न मे कहा गया है—बोधिसत्त्वो के माता पिता, किस वृक्ष के नीचे तपस्या करेंगे-स्थान, प्रधान शिष्य, पुत्र, भिक्षु सेवक पूर्व से ही निश्चित रहते है। तुषित लोक में निवास करते समय आठ बातो को देख लेते है, (१) जन्म का उचित काल (२) जन्मस्थान द्वीप (३) जन्मस्थान (४) कुल (५) माता (६) गर्भ रहने का समय (७) जन्म का मास तथा (८) महाभिनिष्क्रमण काल। (मिलिन्द प्रश्न : ४:४:३५) बोधिसत्त्व चार बातो में एक दूसरे से भिन्न होते है—(१) कुल (२) स्थान, समय (३) आयु तथा ४ ऊँचाई में। किन्तु सभी बोधिसत्त्व रूप, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति

तस्याभिषेक एवाज्ञां धारयन्तोऽधिकारिणः ।
सर्वतोऽमारमर्यादापटहानुदघोषयन् ॥ ५ ॥

५. उसके अभिषेक काल में ही, आज्ञाकारी अधिकारियों ने अहिंसा मर्यादा का पटह[1] घोष करवा दिया।

विमुक्ति ज्ञान का साक्षात्कार, चार वैशारद्य, दस बुद्ध बल, छः असाधारण ज्ञान, चौदह बुद्ध ज्ञान, अट्ठारह बुद्ध, धर्म, तथा बुद्ध की दूसरी बातों में समान होते हैं। सभी बुद्ध, बुद्ध के गुणों में बराबर होते हैं। (मिलिन्द प्रश्न ४:८:७३)

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में अशोक से ललितादित्य तक प्रायः एक विचारधारा थी। ललितादित्य के समय में भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में जो श्रद्धा भक्ति तथा उनके विचारों के प्रति आदर था वह क्रमशः भविष्य में कम होता गया। भगवान् बुद्ध का तत्कालीन विचार हिन्दू धर्म विरोधी नहीं माना जाता था। क्षेमेन्द्र, वरदराज, जयरथ और कल्हण का बुद्ध के प्रति वह भाव प्रकट नहीं होता जो नीलमत पुराण में प्रतिपादित है। शंकराचार्य के पश्चात् तो पूर्व विचारों में आमूल परिवर्तन हो गया। इस परिप्रेक्ष्य में कश्मीर में बुद्ध प्रभाव का विश्लेषण करना चाहिए। भगवान् बुद्ध की उशकर आदि की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनका काल चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी है। उनमें एक आसनस्थ, दूसरी दो खड़ी हैं। इसी प्रकार पण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठान से बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर, भगवान् बुद्ध के जन्म का दृश्य आदि उपस्थित करती मिली हैं। जिनका काल छठीं शताब्दी पूर्व कहा जाता है।

स्कन्द पुराण काशी खण्ड में भगवान् बुद्ध का रूप खींचा गया है उसमें जटा-जूट एवं गैरिक परिधान धारी वह दिखाये गये हैं। स्कन्द पुराण का वर्णन भगवान् बुद्ध के परम्परा गत बनती मूर्तियों से नहीं मिलता। कश्मीर में अब तक जटाजूट, एवं गैरिक वस्त्र धारी मूर्तियाँ नहीं मिली हैं।

नीलमत पुराण बुद्ध को विष्णु का अवतार मानता है तथा उनके जन्म दिवस पर उत्सव की विधि उपस्थित करता है। बुद्ध जन्म एक पर्व की तरह मनाया जाता था। यह दिवस वैशाख मास की पूर्णिमा को मनाया जाता था। आज भी विश्व में बुद्ध पूर्णिमा इसी दिन को कहते हैं। इस दिन भगवान् बुद्ध की मूर्ति को स्नान, आभूषण आदि से अलंकृत, शाक्यों के स्थान, और, चैत्यों के दीवालों, को सफेदी कर उन्हें चित्रित करना चाहिये। बौद्धों को पुस्तक, वस्त्र, खाद्य पदार्थों का दान और नर्तकियों तथा वादकों से समन्वित उत्सव मनाना चाहिये। भगवान् बुद्ध की पूजा नैवेद्य, वस्त्र, दरिद्रों को दान देकर तीन दिन तक करना चाहिये। (नी. 684—692)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५ में 'मार' का पाठभेद 'सार' तथा 'मान' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५ (१) पटह : इस शब्द का अर्थ नगाड़ा, डंका, ढोल, डुग्गी होता है। जैसे, प्राचीन पटह घोष अर्थात् डुग्गी पीटने के अर्थ में प्रयोग किया गया है। डुग्गी पीटने वाले को पटह घोषक कहते थे। शहनाई के साथ भी कश्मीर में इसे बजाते हुए हमने देखा है।

वेद तथा जातक कथाओं में पटह का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत में कहीं-कहीं इसका उल्लेख बहुत कम मिलता है। रामायण (५:१०:४) में निसन्देह इसका बहुत उल्लेख किया गया है। वीणा वादन के प्रसंग में नीलमत पुराण ने इसका उल्लेख किया है। यथा 'वीणापटहनादितम्'। (नी० २२) तथा 'वीणापटह शब्दैश्च' (नी० 413)

कल्याणिना प्राणिवधे तेन राष्ट्रान्निवारिते ।
निष्पापां प्रापिता वृत्तिं स्वकोशात्सौनिकादयः ॥ ६ ॥

६. राष्ट्र में प्राणी वध बन्द हो जाने पर, उस कल्याणी नृप ने स्व कोश से सौनिक (कसाई) आदि को निष्पाप वृत्ति प्रदान की ।

तस्य राज्ये जिनस्येव मारविद्वेषिणः प्रभोः ।
क्रतौ घृतपशुः पिष्टपशुर्भूतवलावभूत् ॥ ७ ॥

७. जिन (बुद्ध) तुल्य मार[1] (हिंसा) विद्वेषी उस प्रभु के राज्य में घृत पशु एवं पिष्ट पशु की बलि[2] यज्ञ में होती थी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६ में 'निष्पापा'का; निष्पाया' 'निष्पापा' 'निष्पापं' 'प्रापिता' का 'प्रापितां' तथा 'शात्सौ' का पाठभेद'शारशौ' 'पारशौ' तथा 'शात्सों' मिलता है ।

श्लोक संख्या ७ में 'राज्ये' का पाठभेद 'राज्यं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

७ (१) मार : मार तीन प्रकार के होते हैं—(१) क्लेश मार (२) मृत्यु मार (३) देव पुत्र मार । क्लेश दश हैं—(१) लोभ (२) द्वेष (३) मोह (४) मान (५) दृष्टि (६) विचिकित्सा (७) स्त्यान (८) औद्धत्य (९) अहनी (१०) अन्—अपत्रपा अर्थात् असंकोच । इनको क्लेश मार कहा जाता है ।

जिस समय तथा जिस हेतु से प्राणियों की मृत्यु होती है उसे मरण मार कहते हैं । देवपुत्र मार कामावचर के छठें देवलोक पर निर्मित वशवर्ती में रहता है । द्रोही राजकुमार की भाँति यहाँ एक प्रादेशिक शासक होता है । उससे सब भयभीत रहते है । क्योंकि यह कुशल कर्मों का विरोधी है । अधिकांश मार देवपुत्र च्युत होकर नरक में पड़ते है । दूषी मारि मारा की दुर्गति यहाँ द्रष्टव्य है ।

(२) बलि : कल्हण ने यहाँ 'क्रतौ' शब्द का प्रयोग किया है । क्रतु का अर्थ यज्ञ होता है । वेद में उल्लेख मिलता है—आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः । अहिंसा के प्रचार के पश्चात् पुराण तथा स्मृति वर्णित विहित पशु बलि के स्थान पर घृतादि या पिष्ट पशु बनाकर उनकी बलि की जाने लगी थी । पंच यज्ञ का पुराणों तथा स्मृतियों में प्रचुर उल्लेख मिलता है । भूत बलि दिवंगत के लिये दी जाती है । कश्मीरी शैव मतानुयायी आज भी आटा अन्न तथा घृतादि की पशु आकृति बनाकर बलि देते हैं । यह है पुरानी प्रथा की स्मृति, बलि प्रथा को अहिंसक रूप दिया गया है ।

बलि एवं उपहार : कल्हण ने बलि एवं उपहार दोनों शब्दों का प्रयोग किया है । दोनों में अन्तर है । बलि का अर्थ आत्मसमर्पण होता है । बलि कर्ता स्वयं अपना बलि न कर, अपने प्रतिनिधि स्वरूप मनुष्य, पशु, पक्षी, फल आदि की बलि चढ़ाता है । परन्तु उपहार में प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता । किसी भी वस्तु को उपहार, भेंट, पूजा स्वरूप इष्ट देव को चढ़ाया जाता है । वह नैवेद्य स्वरूप प्रसाद हो जाता है । दोनों की प्रक्रियाओं में अन्तर है ।

स मेघवननामानमग्रहारं विनिर्ममे ।
मयुष्टग्रामकृत्पुण्यज्येष्ठं मेघमठं तथा ॥ ८ ॥

८. मयुष्ट ग्राम निर्माता, उसने मेघवन नामक अग्रहार एवं पुण्य में अग्रणी मेघमठ[1] का निर्माण किया (कराया)।

भोगाय देश्यभिक्षूणां वल्लभाऽस्याऽमृतप्रभा ।
विहारमुच्चैरमृतभवनाख्यमकारयत् ॥ ९ ॥

९. उसकी प्रियतमा अमृतप्रभा ने देशीय[1] भिक्षुओं के भोग हेतु अमृत भवन[2] नामक उच्च विहार बनवाया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८ में 'मयुष्ट' का 'सयुष्ट' 'ज्येष्ठं का 'ज्येष्ठो' और 'तथा' का पाठभेद 'सदा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८ (१) मयुष्ट, मेघवन, मेघमठ : इन तीनों स्थानों का निश्चित पता नहीं चलता। उक्त तीनों स्थानों का उल्लेख पुनः नहीं मिलता।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९ में 'देश्य' का पाठभेद 'चैत्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९ (१) देशीय : राजतरंगिणी में कश्मीर मण्डल के बाहर के रहने वालों के लिये देश्य, दैशिक, दैशिका, शब्दों का व्यवहार किया गया है।

दैशिक : देशीय भिक्षु भी इसी ग्रंथ में प्रयुक्त किया गया है। कश्मीरी भिक्षुओं के लिये देशीय शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यह गैर कश्मीरी भिक्षुओं के लिये व्यवहृत किया गया है। जोन राज ने श्रीकण्ठ चरित का मंख के भाष्य में (१५:१०२) उल्लेख किया है।

(२) अमृत भवन : इसका पाली एवं प्राकृत नाम अपभ्रंश होकर वर्तमान विगड़ा नाम अमित भवन या आमित भवन हो गया था। इसका वर्तमान विगड़ा अन्त बवन अन्त बवन अथवा वन्तबवन है। यह श्रीनगर से तीन मील दूर उत्तर दिशा में विचार नाग के समीप है।

श्री स्टीन ने इस स्थान की यात्रा जून सन् १८९५ ई० में की थी। वहाँ पर उन्हें एक खुले मैदान और लक्षम कुल (लक्ष्मी कुल्या) के मध्य एक ध्वन्सावशेष स्थान मिला था। यह अमृत भवन विहार का अवशेष था। एक ठोस गोलाकार टीला लगभग २० फिट ऊँचा था। उसकी बनावट स्तूप से मिलती थी। एक आयताकार शिलाखण्ड से टूटा घिरा स्थान भी वहाँ था। वहाँ से ३० गज के अन्तर पर पूर्व तरफ सरोवर जैसा छिछला कुण्ड प्राचीन शिलाखण्डीय प्राकार से घिरा है। वहाँ के स्थानी निवासी कहते हैं कि महाराज के राज्य काल में मन्दिर तथा भवन बनवाने के लिये यहाँ के शिलाखण्ड उठवा लिये गये थे। ग्राम के अनेक मकानों में यहाँ के अलंकृत पत्थरों का उपयोग किया गया है।

चीनी पर्यटक ओ कुग ने इस विहार का वर्णन "न्गोमितियो वान" विहार नाम से किया है। विचार नाग तथा श्रीनगर के मध्य मन्दिरों तथा विहारों की शृंखला थी। उन्हें ज़ियारत तथा इमारतों में परिणत कर लिया गया है।

देश्यैकदेशाल्लोर्नाम्नः प्राप्तस्तस्याः पितुर्गुरुः ।
स्तुन्या तद्भाषया प्रोक्तो लोस्तोन्पास्तूपकार्यभूत् ॥ १० ॥

१०. देश के एकदेश (भाग) जिसका नाम लोह[1] था, उसके पितृ गुरु, जिन्हें उनकी भाषा में स्तुन्पा[2] कहते थे, आये और स्तूप लोस्तोन्पा बनवाया।

चक्रे नडवने राज्ञो युकदेव्यभिधा वधूः ।
विहारमद्भुताकारं सपत्नीस्पर्धयोद्यता ॥ ११ ॥

११. राजा की यूक देवी नाम्नी वधू ने सपत्नी की स्पर्धा से नडवन[1] में अद्भुत आकार वाला भवन निर्माण कराया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १० में 'देश्यैक' का 'देशैक'; 'स्तुन्पा' का 'स्तुत्या' 'स्तुम्पा' 'स्तम्या' का 'लोस्तोन्पा' का 'लोस्तोन्या' 'लोस्तुन्प' और 'यभूत्' का पाठभेद 'यंकृत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१० (१) लोह : वर्तमान लेह अंचल है। महाभारत में उत्तर दिशा के विजय में अर्जुन ने इसे जीता था।

(२) स्तोन्पा : यह शब्द तिब्बती स्तोन-पा है। इसका मूल संस्कृत शास्ता किंवा उपदेष्टा है। तिब्बत मे इसका शाब्दिक अर्थ उपदेशक अथवा शिक्षक होता है। यह शब्द बुद्ध के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

लद्दाख में इसका उच्चारण तोनपा किया जाता है। तिब्बत के नगर लासा में तोम वा कहते हैं।

दक्षिणी तिब्बत को अब भी लोह कहते हैं। अमृतप्रभा प्राग्ज्योतिष के राजा की कन्या थी। उसके गुरु अल्लोर थे। वह तिब्बत के थे। इससे दो बातें प्रकट होती हैं। प्रथम तिब्बत तथा आसाम का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है। दूसरी बात यह प्रकट होती है कि बुद्ध धर्म का प्रचार उस समय तक आसाम में हो गया था।

रानी अमृतप्रभा का गुरु बौद्ध था। पिता तथा कन्या दोनों का बुद्ध तथा बौद्ध धर्म की ओर झुकाव होना स्वाभाविक था।

राजा मेघवाहन पर रानी अमृतप्रभा के कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा होगा। राजा की प्रवृत्ति अहिंसक हो गयी।

लोह, लोहर, लोह कोट, तीनों स्थान भिन्न-भिन्न हैं। उनका यथा स्थान वर्णन किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११ में 'यूक' का पाठभेद 'यूव' दिया गया है।

पादटिप्पणियाँ :

११ (१) नडवन : यह वर्तमान नरवोर स्थान है। श्रीनगर के उत्तर-पश्चिम संगीन दरवाजा तथा ईदगाह के बीच स्थित है। इसका एक पुरातन नाम नादवाट था। वाट शब्द महत्वपूर्ण है। थाईलैण्ड, कम्बोडिया आदि स्थानों में वाट का अर्थ बौद्ध विहार होता है। वाट का अर्थ बाग भी होता है। वाटिका शब्द उपवन के लिये आज भी प्रचलित है। वोर शब्द इसी वाट एवं वाटिका का अपभ्रंश है। कश्मीर के स्थानीय नामों के अन्त में 'वोर' शब्द प्रायः मिलता है। भू क्षीर वाटिका, (रा. त.१:३४२) राजन वाटिका (रा. त. ८: ७५६) तथा रंग वाटिका (रा. त. ७:११५३) प्रचलित शब्द थे।

अर्धे यद्भिक्षवः शिक्षाचारास्तत्रार्ऽपितास्तया ।
अर्धे गार्हस्थ्यगर्ह्याश्च सस्त्रीपुत्रपशुश्रियः ॥ १२ ॥

१२. वहाँ अर्ध भाग में शिक्षाचार[1] रत भिक्षुओं[2] तथा अर्ध (अपरार्ध) भाग में स्त्री पुत्र पशु धन वाले गर्ह्य गृहस्थों के लिये व्यवस्था की ।

नरवोर के कबरिस्तान तथा जियारतें कश्मीर के अन्य कबरिस्तानों के और जियारतों के समान प्राचीन भवनों के ध्वन्सावशेषों से पूर्ण हैं। भूमि के अन्दर कितने अलंकृत शिला खण्ड एवं मूर्तियाँ होंगी कौन जाने भूमि की सतह से प्राप्त शिलाओं आदि के देखने से वास्तविक अनुमान लगाना कठिन है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२ में 'यद्भिम' का 'यद्भिभ' तथा 'श्रियः' का 'स्त्रिय.' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२ (१) शिक्षाचार : बौद्ध धर्मावलम्बियों में एक प्रव्रज्या लेने वाले चीवरधारी भिक्षु होते हैं। दूसरे गृहस्थ उपासक होते हैं। भिक्षु गृह त्यागी होता है। गृहस्थ सकुटुम्ब भगवान् का उपासक मात्र होता है। वह घर त्यागता नहीं।

कल्हण दोनों प्रकार के बुद्ध धर्मावलम्बियों की व्यवस्था का उल्लेख करता है। गृहस्थ भी कुछ समय के लिये भिक्षु होकर विहार में निवास —है। बौद्ध देशों में प्रत्येक व्यक्ति को —ता है।

कम तीन ते हैं। बर्मा चीवर धारण देखा है कि भिक्षु बनकर ार का निर्वाह र्तव्य की दृष्टि

शेष ...कश्मीर ...टिका ...जोन रा... (१५:१०२ ...टिका, (रा. ...अन्त में ... ७५६) तथा ... लिखित शब्द से । (२) अ... प्राकृत नाम अपभ्र

नेपाल में विवाहित भिक्षु जन साधारण की तरह कार्य करते हैं। व्यापार करते हैं। खेती करते हैं। प्रायः दृढ धर्म के कठोर शासन का व्यवहार नहीं करते।

प्रतीत होता है। उस समय कश्मीर में इस प्रकार के भिक्षुओं की परम्परा तथा वर्ग रहा होगा। अतएव रानी ने दोनों प्रकार के भिक्षुओं के लिये व्यवस्था की थी।

(२) भिक्षु : इस शब्द का शाब्दिक अर्थ भिक्षुक भिखारी होता है। यह शब्द बौद्ध भिक्षुओं के लिए रूढ़ हो गया है। अतएव इसका अर्थ बौद्ध संन्यासी होता है। भिक्षु चर्या अर्थात् भिक्षा वृत्ति ही भिक्षुओं को जीवन-यापन का एक मात्र साधन है। भिक्षुओं के वस्त्र को संघाटी तथा चीवर कहते हैं। विशेष द्रष्टव्य है रा. त. १:१८४, १८६ पृष्ठ २५२—२५३,

प्रव्रज्या प्राप्त करने पर भिक्षु श्रामणेर कहा जाता है। उसे एक उपाध्याय किंवा आचार्य के निश्रय में रहना होता है। उसके शील में १० विरतियाँ वर्जनायें है—प्राण घात, चोरी, अब्रह्मचर्य, मिथ्याभाषण, मद एवं नशा विकाल भोजन, नृत्य-गान-वाद्य, तमाशा माला-गंध-विलेपन-अलंकरण; ऊँची बहुमूल्य शय्या सुवर्ण रजत ग्रहण।

भिक्षुओं का चार निश्रय-पिण्डपात, चीवर, शयनासन, ग्लान प्रत्यय, भेषज हैं भिक्षु उपसोथ के लिये प्रति पक्ष एकत्र होते थे। इस अवसर पर प्रतिमोक्ष का पाठ किया जाता था। प्रतिमोक्ष के आठ विभाग—पाराजिक, संघावशेष, अनियत, नैसर्गिक, पातयंतिक, प्रातिदेशनीय, शौक्ष एवं अधिकरण शमथ है। अपराधी भिक्षु अपने व्यतिक्रम

अथेन्द्रदेवीभवनाभिन्द्रदेव्यभिधा व्यधात् ।
विहारं सचतुःशालं स्तूपं भूपप्रियाऽपरा ॥ १३ ॥

१३. राजा की अपरा (दूसरी) इन्द्र देवी नाम्नी प्रिया ने इन्द्रदेवी[१] भवन नामक चतुःशाल युक्त विहार तथा एक स्तूप बनवाया।

अन्याभिः खादनासम्माप्रमुखाभिर्निजाख्यया ।
देवीभिस्तस्य महिता विहारा बहवः कृताः ॥ १४ ॥

१४. उसकी अन्य खादना[१], सम्मा आदि प्रमुख देवियों ने अपने अपने नामों से अनेकों दिव्य विहारों को बनवाया।

की आदेशना करते थे, और उन पर उचित प्रायश्चित्त एवं दण्ड की व्यवस्था की जाती थी। वर्षा वास के नियम थे। उसके अनंतर प्रवारणा नामक पर्व होता था। एकत्रित भिक्षु संघ में एकमत, उद्वाहिका, शलाका ग्रहण, किंवा बहुमत से किसी निश्चय पर पहुँचा जाता था।

पादटिप्पणियाँ :

१३ (१) इन्द्रदेवी भवन विहार : इसका उल्लेख कल्हण ने पुनः भिक्षाचर के संघर्ष के सम्बन्ध में किया है। (रा. त. ८:११७२) यह स्थान श्रीनगर में होना चाहिए। कयूल अर्थात् काठिला जिसका उल्लेख कल्हण ने (रा: त: ८:११६०) में किया है उसके समीप इसकी स्थिति प्रतीत होती है।

(२) बहुपत्नी प्रथा : अब तक कश्मीर के राजा प्रतीत होता है एक पत्नी प्रथा का पालन करते थे। मेघवाहन पहला राजा है जिसकी ५ पत्नियों का उल्लेख कल्हण करता है।

मेघवाहन के पश्चात् होने वाले राजाओं की बहुपत्नियों का उल्लेख मिलने लगता है। बहु पत्नी प्रथा मैं समझता हूँ मेघवाहन के समय कश्मीर में प्रचलित हुई और जड़ जमाती चली गयी।

मैं समझता हूँ यह पश्चिम के शामी अर्थात् सेमेटिक जाति का प्रभाव था। मेघवाहन गान्धार तथा अफगानिस्तान में रहा था। अफगानिस्तान से सीरिया अर्थात् भूमध्य सागर तक यहूदी और ईसाई रहते थे। उनके ग्रन्थों के पढ़ने से पता चलता है कि दासी तथा बहु पत्नी रखने का उनमें आम रिवाज़ था। कुरान शरीफ के पढ़ने से उस समय की सामाजिक स्थिति का जो ज्ञान प्राप्त होता है उससे प्रकट होता है कि अनेक विवाह करना तथा छोड़ना साधारण बातें थीं। दासी को पत्नीवत् रखना फैशन था। इस व्याप्त कुरीति को दूर करने के लिये पैगम्बर मुहम्मद साहब ने विवाहित स्त्री रखने की सीमा पार कर दी थी। हिन्दुओं में बहुपत्नी प्रथा वर्जित नहीं थी तथापि एक पत्नी से अधिक रखना अच्छा नहीं समझा जाता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४ में 'सम्मा' का 'मम्मा', 'मस्मा' तथा 'महिता' का पाठभेद 'सहिता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४ (१) खादना तथा सम्मा : इन दोनों विहारों के निश्चित स्थान का पता नहीं मिलता। खादन पार स्थान बारहमूला के ४ मिल वितस्ता के अधोभाग में दक्षिण तट पर इस स्थान की सम्भावना की जाती है। वितस्ता माहात्म्य में इस स्थान को 'खादना हार' कहा गया है।

किन्तु सम्मा विहार कहाँ था ? इस पर गवेषण की आवश्यकता है।

खादना तथा सम्मा शब्द अप्रचलित प्रतीत होते

अर्वाक्कालोद्भवस्यापि राज्यकालोऽस्य भूपतेः ।
न्यक्कृतादिनृपोदन्तैर्वृत्तान्तैरद्भुतोऽभवत्[१] ॥ १५ ॥

१५. अर्वाक् कालीन (परवर्ती) भी इस नृपति का राज्य काल आदि कालीन नृप कथाओं को तिरस्कृत करने वाले वृत्तान्तों के कारण अद्भुत हो गया था।

स बहिर्विहरञ्जातु भूभृद्भीतैरुदीरितम् ।
चौरश्चौरोऽयमित्यारादशृणोत्क्रन्दितध्वनिम् ॥ १६ ॥

१६. कदाचित् बाहर विहार करते हुए उस राजा ने समीप में "यह चोर है, यह चोर है" ऐसी भीतोक्त क्रन्दन ध्वनि सुनी।

कः कोऽत्र बध्यतां चौर इत्युक्ते तेन सक्रुधा ।
शशामाक्रन्दितध्वानो न च चौरो व्यभाव्यत ॥ १७ ॥

१७. 'क कोऽत्र'[१]–यहाँ कौन है ? चोर को बाँध लो' क्रोध पूर्वक राजा के कहने पर, आक्रन्दित ध्वनि शान्त हो गयी। किन्तु कोई चोर दिखायी नहीं दिया।

है। खादन शब्द संस्कृत अवश्य है जिसका अर्थ खाना, भोजन करना, भोज्य पदार्थ तथा दाँत है। परन्तु यहाँ सम्मा के साथ प्रयुक्त होने पर ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे दोनों शब्द मेघवाहन की अभारतीय रानियों के लिये प्रयुक्त किये गये है। समा शब्द अरबी है। उसका अर्थ आकाश होता है। सम्म अरबी शब्द है उसका अर्थ विष है। शमा और समा शब्द के अर्थों में भेद है। शमाका अर्थ मोमबत्ती। अरबी-फारसी में शमा उसे भी कहते है जिसका मुखमण्डल शमा के समान प्रकाशमान होता है। शम्मा अरबी शब्द है। उसका अर्थ हलका सुगन्ध होता है। मेघवाहन अफगानिस्तान के एक अंचल अर्थात् गान्धार में बाल्यावस्था व्यतीत किया था। वहीं से काश्मीर आया था। अतएव संभव है खादना तथा सम्मा उसकी रानियाँ अफगानिस्तान अथवा उसके पड़ोस ईरान, तुर्किस्तान या अफगानिस्तान में ही निवास करने वाली किसी अरबी अथवा ईरानी जाति की कन्या हों। अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान में उस समय बौद्ध धर्म का प्राबल्य था। दोनों रानियों का बौद्ध विहार बनवाना इस बात को प्रमाणित करता है कि वे बौद्ध धर्मानुरक्त थीं। मैं समझता हूँ कि दोनों रानियाँ तुर्किस्तान, अफगानिस्तान किंवा ईरानी रक्त की थी।

१५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५५ वां श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७ में 'सक्रुधा' का पाठभेद 'भूभुजा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७ (१) कः कोऽत्र : कोई है इस अर्थ में यह शब्द उस समय भी व्यवहृत होता था। अंग्रेजी में 'हू इज देयर' इसी प्रकार का सम्बोधन है जो सेना तथा सशस्त्र पुलिस द्वारा किसी को जानने के लिये सम्बोधित किया जाता है।

पुनर्द्वित्रैर्दिनैस्तस्य निर्गतस्याग्रतस्ततः ।
अभवन्नभयार्थिन्यो द्वित्रा दिव्यप्रभाः स्त्रियः ॥ १८ ॥

१८. पुनः दो या तीन दिन पश्चात् जब वह (राजा) बाहर जा रहा था, सम्मुख अभयार्थिनी एवं दिव्य प्रभामयी दो या तीन स्त्रियां उपस्थित हो गयीं।

ताः संश्रुतेप्सितास्तेन रुद्धाश्वेन कृपालुना ।
अभ्यभाषन्त सीमन्तघुञ्जिताञ्जलयो वचः ॥ १९ ॥

१९. कृपालु उस (राजा) ने अश्व रोक कर, उन्हें अभय दान दिया। अभीप्सित को सुनकर, वे शिर पर बद्धांजलि करके बोलीं—

देव दिव्यप्रभावेन भुवने भवता धृते ।
अपरस्माद्भयं जातु कस्य स्यात्करुणानिधे ॥ २० ॥

२०. "देव ! करुणानिधे !! आपके दिव्य प्रभाव से भुवन को धारण करते, दूसरों से किसी को भय कैसे होगा ?"

तदानीं तोयदा भूत्वाच्छादयन्तो नभस्तलम् ।
अकाण्डकरकापातशङ्किभिः कार्षकैर्मृषा ॥ २१ ॥

२१. "उस समय नाग[1] मेघ होकर, नभस्थल को आच्छादित कर लिया, तब कृषकों को असमय में करकापात[2] की मिथ्या शंका हुई।[3]

पाठभेद :

श्लोक संख्या २० में 'वेन' का पाठभेद 'वेण' मिलता है।

श्लोक संख्या २१ मे 'भूत्वाच्छा' का 'भूत्वा छा' तथा 'कार्षकै' का पाठभेद 'कृषकै', और 'कार्षिकै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१ (१) नाग : पृष्ठ ४३ से ६३ तक द्रष्टव्य है। वृष्टि के सम्बन्ध में नाग का एक अर्थ मेघ होता है।

नागों का नीलमत पुराण के अनुसार वर्षा पर नियन्त्रण एवं अधिकार था। उनका तूफानों तथा हिमपात पर भी अधिकार था। (नी० 351, 985-986) पुरातन भारतीय साहित्य में जल पर नागों का नियन्त्रण था इससे सम्बधित अनेक आख्यान तथा प्रसंग मिलते हैं। 'सर्पवलि' पर्व वर्षा ऋतु के प्रथम मास से आरम्भ होकर अन्तिम मास तक चलता है। महा० आदि० २१: ६; भविष्यत् पुराण: २२;

(२) करका : उपल किंवा ओला वृष्टि को करकापात कहते हैं। तुहिन तथा करकापात में अन्तर है। तुहिनपात बर्फ गिरने को कहते हैं। तुहिनपात अत्यन्त शीत काल में होता है। करकापात किसी भी ऋतु में हो सकता है। यह भारत के किसी भाग में वर्षा और अन्धड़ के साथ हो सकता है। परन्तु तुहिनपात केवल शीत कटिबन्ध और हिमालय में तापमान की न्यूनता जहाँ होती है वहीं होता है।

(३) श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित तथा प्रायः सभी अनुवादकर्ताओं ने चार श्लोकों (२१-२४) का अनुवाद एक साथ ही किया है। कल्हण इन्हें कुलकम् में नहीं रखा है किन्तु कुछ पाण्डुलिपि में इसके लिये 'चक्कलक' शब्द का प्रयोग किया गया है। श्री स्तीन द्वारा वीना की राजकीय

पक्वशालिवनस्फीतिरक्षाक्षुभितमानसैः ।
नागास्त्वत्कोपसंरम्भभूमितां गमिताः प्रभो ॥ २२ ॥

२२. "पके शालियों से परिपूर्ण क्षेत्रों की रक्षा हेतु उनका मन क्षुभित था, अतएव प्रभो ! (वे) नाग झूठे ही आपके क्रोधावेश के पात्र हो गये ।

तेऽस्माकं पतयश्चौरश्चौर इत्यार्तभाषितम् ।
श्रुत्वा देवेन बध्यन्तामित्यवादि यदा क्रुधा ॥ २३ ॥

२३. "उन लोगों ने मेरे पतियों को जब 'चोर चोर' ऐसा आर्तनाद किया, तब (उसे) सुनकर, आप क्रोध से—'बाँध लो—बोले ।

तदा त्वदाज्ञामात्रेण न्यपतन्पाशवेष्टिता ।
प्रसादः क्रियतां तेषामस्मत्करुणयाऽधुना ॥ २४ ॥

२४. "उस समय आपकी आज्ञा मात्र से पाश वेष्टित कर (वे) लाये गये । अधुना, हम लोगों पर करुणा कर, उन्हें प्रसन्न (मुक्त) करें ।"[१]

तदाकर्ण्याऽवदद्राजा प्रसादविशदाननः ।
सर्वे ते बन्धनान्नागास्त्यज्यन्तामिति सस्मितः ॥ २५ ॥

२५. इसको सुनकर, सस्मित एवं प्रसादोज्ज्वल आनन राजा बोले—"वे सब नाग बन्धन मुक्त कर दिये जाँय ।"

तथा तस्याज्ञया राज्ञो नागा विधुतबन्धनाः ।
प्रणम्य चरणौ तूर्णं प्रययुः सपरिग्रहाः ॥ २६ ॥

२६. राजा की आज्ञा से नाग बन्धन रहित हो गये । वे सपरिवार चरणों में प्रणाम कर, शीघ्रता पूर्वक चले गये ।

अथ ग्राहयितुं भूपानाज्ञां हिंसानिवृत्तये ।
स दिग्जयाय निर्व्याजधर्मचर्यो विनिर्ययौ ॥ २७ ॥

दिग्विजय[१]

२७. निर्व्याज धर्माचारी वह (नृप) राजाओं की हिंसा निवृत्ति हेतु आज्ञा पालन कराने के लिये दिग्विजय निमित्त निकल पड़ा ।[१]

पुस्तकालय में रखी गयी प्रति में इसका उल्लेख मिलता है । मैंने सबको भिन्न भिन्न मानते हुए प्रत्येक श्लोकों का अनुवाद अलग अलग किया है । निस्सन्देह अलग अलग अनुवाद करने में कुछ कठिनाई का अनुभव अवश्य होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२ में 'स्फीति' का 'स्फाति' तथा 'भूमि ता' का पाठभेद 'भूमि ते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२४ (१) श्लोक में 'चतुर्भि : कुलकम् चक्कलकम्' जोड़ने का सुझाव है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७ में 'धर्म' का पाठभेद 'धर्म्मा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२७ (१) दिग्विजय : पण्डित जवाहर ला॰

अभूदभीतजनतावेक्षणश्लाघ्यविक्रमः ।
स्पृहणीयो जिनस्यापि तदीयविजयोद्यमः ॥ २८ ॥

२८. उसका यह विजयोद्यम जिन[1] (बुद्ध) के लिये भी स्पृहणीय था, क्योंकि उसने अपने प्रशंसनीय विक्रम एवं निरीक्षण से जनता को निर्भय रखा।

प्रभावविजितान्कृत्वा सोऽहिंसादीक्षितान्नृपान् ।
अर्णसां पत्युरभ्यर्णमवापावर्णवर्जितः ॥ २९ ॥

२९. निष्कलंक उस राजा ने अपने प्रभाव से विजित नृपों को अहिंसा व्रत में दीक्षित कर, अर्णस्पति[1] (सागर) के समीप पहुँचा।

तत्र तालीवनच्छायासुखविश्रान्तसैनिकः ।
युक्तिं द्वीपान्तराक्रान्तौ क्षणमन्तर्व्यचिन्तयत् ॥ ३० ॥

३०. वहाँ पर उसके सैनिक ताल वन की छाया में सुखपूर्वक विश्राम कर रहे थे। द्वीपान्तर (अन्य द्वीप पर) आक्रमण करने के लिये क्षण भर (उसने) मनमें विचार किया।

अथ वेलावनोपान्तात्तेनार्ताक्रन्दितध्वनिः ।
मेघवाहनराज्येऽपि हतोऽयमिति शुश्रुवे ॥ ३१ ॥

३१. अनन्तर उसने तटवर्ती वन की छोर से आर्त क्रन्दित ध्वनि सुनी—"मेघवाहन के राज्य में भी यह (मैं) मारा गया।"

नेहरू मेघवाहन के इस महाप्रयास के सम्बन्ध मे श्रीरणजीत सीताराम पण्डित की भूमिका मे लिखते हैं : अहिंसा द्वारा विचित्र प्रयास—'हम पढते हैं—मेघवाहन का विजय द्वारा अहिंसा का विचित्र प्रयास—।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८ मे 'अभूद' का 'अभून'; 'जिनस्यापि' का 'जनस्यापि' तथा 'तदीय' का पाठभेद 'त्वदीय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) जिन : अनेक लेखको ने जिन और जैन शब्द को मिलाकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसका शाब्दिक अर्थ जीतने वाला होता है। बुद्ध ने स्व विजय किया था। अतएव उनका नाम जिन हो गया था। जैन भी अपने तीर्थंकरो को विजेता किंवा जीतने वाले कहते है। अलबेरूनी ने १:२४६ में इसी मत का प्रतिपादन किया है।

जिन शब्द का उल्लेख कल्हण ने रा० त० १:१०२ ३:७,२८; ४:२००, २११, २६१; ८:२२३४ मे किया है। विशेष द्रष्टव्य पृष्ठ १३६ है।

२९ (१) अर्णस्पति का अर्थ यहाँ समुद्र है। नदियो का स्वामी समुद्र संस्कृत काव्य में कहा गया है। कल्हण उसी काव्य परम्परा का यहाँ पालन किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३० में 'सैनिकः' का 'सैनिकैः' तथा 'क्रान्तौ' का पाठभेद 'क्रान्त्यै' मिलता है।

श्लोक संख्या ३१ में 'पान्तात्ते' 'पान्ते ते' तथा 'हतोऽय' का पाठभेद 'हतोऽह' मिलता है।

पक्वशालिवनस्फीतिरक्षाक्षुभितमानसैः ।
नागास्त्वत्कोपसंरम्भभूमितां गमिताः प्रभो ॥ २२ ॥

२२. "पके शालियों से परिपूर्ण क्षेत्रों की रक्षा हेतु उनका मन क्षुभित था, अतएव प्रभो! (वे) नाग भूठे ही आपके क्रोधावेश के पात्र हो गये।

तेऽस्माकं पतयश्चौरश्चौर इत्यार्तभाषितम् ।
श्रुत्वा देवेन बध्यन्तामित्यवादि यदा क्रुधा ॥ २३ ॥

२३. "उन लोगों ने मेरे पतियों को जब 'चोर चोर" ऐसा आर्तनाद किया, तब (इसे) सुनकर, आप क्रोध से—'बाँध लो—बोले।

तदा त्वदाज्ञामात्रेण न्यपतन्पाशवेष्टिता ।
प्रसादः क्रियतां तेषामस्मत्करुणयाऽधुना ॥ २४ ॥

२४. "उस समय आपकी आज्ञा मात्र से पाश वेष्टित कर (वे) लाये गये। अधुना, हम लोगों पर करुणा कर, उन्हें प्रसन्न (मुक्त) करें।"[१]

तदाकर्ण्याऽवदद्राजा प्रसादविशदाननः ।
सर्वे ते बन्धनान्नागास्त्यज्यन्तामिति सस्मितः ॥ २५ ॥

२५. इसको सुनकर, सस्मित एवं प्रसादोज्ज्वल आनन राजा बोले—"वे सब नाग बन्धन मुक्त कर दिये जाँय।"

तथा तस्याज्ञया राज्ञो नागा विधुतबन्धनाः ।
प्रणम्य चरणौ तूर्णं प्रययुः सपरिग्रहाः ॥ २६ ॥

२६. राजा की आज्ञा से नाग बन्धन रहित हो गये। वे सपरिवार चरणों में प्रणाम कर, शीघ्रता पूर्वक चले गये।

अथ ग्राहयितुं भूपानाज्ञां हिंसानिवृत्तये ।
स दिग्जयाय निर्व्याजधर्मचर्यो विनिर्ययौ ॥ २७ ॥

दिग्विजय[१]

२७. निर्व्याज धर्माचारी वह (नृप) राजाओं की हिंसा निवृत्ति हेतु आज्ञा पालन कराने के लिये दिग्विजय निमित्त निकल पड़ा।[१]

पुस्तकालय में रखी गयी प्रति में इसका उल्लेख मिलता है। मैंने सबको भिन्न भिन्न मानते हुए प्रत्येक श्लोको का अनुवाद अलग अलग किया है। निस्सन्देह अलग अलग अनुवाद करने में कुछ कठिनाई का अनुभव अवश्य होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२ में 'स्फीति' का 'स्फाति' तथा 'भूमि ता' का पाठभेद 'भूमि ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४ (१) श्लोक में 'चतुर्भि : कुलकम् चक्कलकम्' जोड़ने का सुझाव है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७ में 'धर्म' का पाठभेद 'धर्म्म' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७ (१) दिग्विजय : पण्डित जवाहर ला..

अभूदभीतजनतावेक्षणश्लाघ्यविक्रमः ।
स्पृहणीयो जिनस्यापि तदीयविजयोद्यमः ॥ २८ ॥

२८. उसका यह विजयोद्यम जिन[1] (बुद्ध) के लिये भी स्पृहणीय था, क्योंकि उसने अपने प्रशंसनीय विक्रम एवं निरीक्षण से जनता को निर्भय रखा।

प्रभावविजितान्कृत्वा सोऽहिंसादीक्षितान्नृपान् ।
अर्णसां पत्युरभ्यर्णमवापाकर्णवजितः ॥ २९ ॥

२९. निष्कलंक उस राजा ने अपने प्रभाव से विजित नृपों को अहिंसा व्रत में दीक्षित कर, अर्णस्पति[1] (सागर) के समीप पहुँचा।

तत्र तालीवनच्छायासुखविश्रान्तसैनिकः ।
युक्तिं द्वीपान्तराक्रान्तौ क्षणमन्तर्व्यचिन्तयत् ॥ ३० ॥

३०. वहाँ पर उसके सैनिक ताल वन की छाया में सुखपूर्वक विश्राम कर रहे थे। द्वीपान्तर (अन्य द्वीप पर) आक्रमण करने के लिये क्षण भर (उसने) मनमें विचार किया।

अथ वेलावनोपान्तात्तेनार्तक्रन्दितध्वनिः ।
मेघवाहनराज्येऽपि हतोऽयमिति शुश्रुवे ॥ ३१ ॥

३१. अनन्तर उसने तटवर्ती वन की छोर से आर्त क्रन्दित ध्वनि सुनी—"मेघवाहन के राज्य में भी यह (मैं) मारा गया।"

नेहरू मेघवाहन के इस महाप्रयास के सम्बन्ध में श्रीरणजीत सीताराम पण्डित की भूमिका में लिखते हैं : अहिंसा द्वारा विचित्र प्रयास—'हम पढ़ते है—मेघवाहन का विजय द्वारा अहिंसा का विचित्र प्रयास—।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८ में 'अभूद' का 'अभूत'; 'जिनस्यापि' का 'जनस्यापि' तथा 'तदीय' का पाठभेद 'त्वदीय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) जिन : अनेक लेखकों ने जिन और जैन शब्द को मिलाकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसका शाब्दिक अर्थ जीतने वाला होता है। बुद्ध ने स्व विजय किया था। अतएव उनका नाम जिन हो गया था। जैन भी अपने तीर्थंकरों को विजेता किया जीतने वाले कहते हैं। अलबेरुनी ने १:२४३ में इसी मत का प्रतिपादन किया है।

जिन शब्द का उल्लेख कल्हण ने रा० त० १:१०२ ३:७,२८; ४:२००, २११, २६१; ८: २२३४ में किया है। विशेष द्रष्टव्य पृष्ठ १३६ है।

२९ (१) अर्णस्पति का अर्थ यहाँ समुद्र है। नदियों का स्वामी समुद्र संस्कृत काव्य में कहा गया है। कल्हण उसी काव्य परम्परा का यहाँ पालन किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३० में 'सैनिकः' का 'सैनिकैः' तथा 'क्रान्तौ' का पाठभेद 'क्रान्त्यै' मिलता है।

श्लोक संख्या ३१ में 'पान्तात्ते' 'पान्ते ते' तथा 'हतोऽय' का पाठभेद 'हतोऽह' मिलता है।

तप्तायःशङ्कुनेवान्तर्व्रणितः स द्रुतं ततः ।
संचारिणाऽऽतपत्रेण सत्रा तां वसुधामगात् ॥ ३२ ॥

३२. तप्त लौह शंकु से अन्तर्विध सदृश (नृप) संचारी आतपत्र[1] (राज-छत्र) के साथ शीघ्र ही उस भूमि पर गया ।

अपश्यदथ केनापि चण्डिकायतनाग्रतः ।
नरं शबरसेनान्या हन्यमानमधोमुखम् ॥ ३३ ॥

३३. वहाँ देखा—चण्डिकायतन[1] के आगे कोई शबर[2] सेनानी अधोमुख नर को मार रहा है ।

श्लोक सख्या ३२ में 'तः' का 'तस्य'; 'द्रुतं' का 'श्रुत', तथा 'सत्रा ता' का पाठभेद 'स तत्र'; 'सत्राता' 'सद्राता' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३२ (१) आतपत्र=छत्र : यहाँ तात्पर्य श्वेत वरुण छत्र से है । छत्र के सन्दर्भ में एक पौराणिक कथा मिलती है । किस प्रकार छत्र की उत्पत्ति हुई थी । देवी रेणुका महर्षि जमदग्नि की धर्मपत्नी थी । सूर्य ताप से कदाचित् विकल हो गयी । महर्षि अपनी पत्नी की व्याकुलता देखकर क्रुद्ध हो गये । सूर्य के वध के हेतु धनुष बाण उठाया । सूर्य भगवान् भयभीत हो गये । प्रकट हुए । एक छत्र बनाकर महर्षि को दिया । सामान्य छत्र तथा राजछत्र में भिन्नता होती है । छत्र, चामर, मुकुट आदि राजा के चिन्ह माने जाते हैं । सम्राट् के छत्र का चतुर्थांश युवराज का छत्र होता है । सम्राट् के छत्र के अग्रभाग में भिन्नता प्रदर्शन हेतु आठ अंगुल की एक पताका लगी रहती है । इस छत्र को दिग्विजयी छत्र कहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३३ में 'शबर' का पाठभेद 'शवर' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

(१) आयतन . देवस्थान यज्ञ स्थान के अर्थ में यहा इस शब्द का प्रयोग किया गया है । आध्यात्मिक दृष्टि से छः आयतन बाहर तथा छ. भीतर होते हैं । चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन आन्तरिक आयतन हैं । बाह्यायतन रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श एवं धर्म हैं । प्राणियों की तृष्णाओं के कारण उक्त बारह आयतन हैं । तृष्णाओं के घर हैं ।

भवन, गृह, निवेशन, आलय, वेश्म, आयतन, अट्टालक इन शब्दों का प्रयोग नीलमत पुराण में किया गया है । उनमें क्या भेद था इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है । (नी० 187, 359, 362, 364, 369, 370, 400, 551, 558)

(२) शबर : पुराणों के अनुसार यह एक विशेष म्लेच्छ जाति थी । ये दक्षिणापथ के निवासी थे । वायु पुराण में इन्हें 'दक्षिणापथवासिनः' कहा गया है । इनका उल्लेख, आभीर, आटव्य, पुलिन्द, वैदर्भ, दण्डक आदि के साथ प्राप्त होता है । (वायु: ४५:१२६) ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार विश्वामित्र के ज्येष्ठ पचास पुत्र उन्हीं के शाप से आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द आदि हो गये थे (ऐ. ब्रा० ७: १८: २; सां. श्रौः १५: २६: ६) वह दक्षिण में पेन्नार नदी के प्रदेश में रहते थे । रामायण में प्राप्त शबरी की कथा इस ओर संकेत करती है । इनकी आबादी राजस्थान तथा हिमांचल प्रदेश आदि में थी ।

महाभारत के अनुसार शबर मूलतः क्षत्रिय थे परन्तु आचार त्याग देने के कारण म्लेच्छ हो गये थे । महाभारत में शबरों ने कौरवों के पक्ष से युद्ध

अनात्मज्ञ धिगेतत्ते कुकर्मेति महीभुजा ।
तर्जितः स भयादेवं शबरस्तं व्यजिज्ञपत् ॥ ३४ ॥

३४. 'ओ अनात्मज्ञ ! कुकर्मी !! तुम्हें धिक्कार है।"—राजा के इस प्रकार वर्जित करने पर, भय से उस शवर ने उन्हें बताया—

शिशुर्मुमूर्षुर्मे राजन्नयं रोगार्दितः सुतः ।
कर्मैतद्दैवतैरुक्तमस्य श्रेयोऽलवावहम् ॥ ३५॥

३५. "हे राजन् ! रोग पीड़ित मेरा पुत्र यह शिशु मरणासन्न है। देवों-द्वारा कहा गया, यह कर्म (बलि) इसके लिये श्रेयस्कर है।

उपहारनिरोधेन सद्य एष विपद्यते ।
बन्धुवर्गमशेषं च विद्धयेतज्जीवजीवितम् ॥ ३६ ॥

३६. 'इस उपहार के निरोध से यह सद्यः (तत्काल) मृत हो जायगा। समस्त बन्धु वर्ग को इसी के जीवन से जीवित जानिये।

अरण्यगहनाल्लब्धमनाथं देव रक्षसि ।
बहुलोकाश्रयं बालं कथमेतमुपेक्षसे ॥ ३७ ॥

३७. देव ! गहन वन में प्राप्त अनाथ को आप रक्षा करते हैं फिर अनेकों के आश्रय-भूत उस बालक की क्यों उपेक्षा कर रहे हैं।

अथाभ्यधान्महात्मा स वचोभिः शबरस्य तैः ।
वध्यस्य दृष्टिपातैश्च विक्लवैर्विवशीकृतः ॥ ३८ ॥

३८. उस महात्मा (नृप) ने शबर की बातों एवं वध्य के कातर दृष्टिपातों से विवश होकर कहा—

में भाग लिया था। सात्यकी ने इनका संहार किया था।

३३ (२) आयतन : कल्हण का वर्णन पुराणों से मेल खाता है क्योंकि यह स्थान दक्षिण का समुद्र तट था जहाँ शबर से राजा की भेंट हुई थी। शबर शिव भक्त थे। एकमत है कि वर्तमान भील जाति के शबर ही पूर्व पुरुष थे।

एक मत शबर जाति को पिशाच के एकादश उपजातियों में एक मानता है। "शाबरं द्राविडं चैव एकादश पिशाचकाः।"

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४ में 'अनात्मज्ञ' का 'अनात्मज्ञा' और 'देवं' का 'देव' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ३६ में 'एष' का पाठभेद 'एव' मिलता है।

श्लोक संख्या ३८ में 'स वचोभिः' का पाठभेद 'सुवचोभिः' मिलता है।

किरात कातरो मा भूः स्वयं संरक्ष्यते मया ।
बहुबन्धुस्तव सुतो वध्योऽप्ययमबान्धवः ॥ ३९ ॥

३९. "ओः किरात[1] ! कातर मत हो। मैं स्वयं तुम्हारे पुत्र की जिसके बहुत बन्धु हैं; और बन्धु हीन उस वध्य को रक्षा करता हूँ।

श्लोक संख्या ३९ में 'वध्यो' का पाठभेद 'बाध्यो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३९ (१) किरात : विन्ध्य तथा राजस्थान में रहने वाली एक आदिम जाति है। किरात शब्द अनार्यों के लिये बहुत प्रयुक्त किया गया है। राजस्थान तथा विन्ध्य के निवासी भीलों को किरात की संज्ञा हो जाती है। वंशानुक्रम तथा जाति के विचार से किरात एवं भील में अन्तर है।

इस जाति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह पहाड़ी जाति है। महाभारत सभा पर्व (अ. २६) से प्रतीत होता है कि प्राग्ज्योतिष के समीप किरात प्रदेश था। हिमालय के पूर्व लौहित्य नदी के आगे किरात निवास करते थे। टालेमी ने किरात जाति का प्रदेश बर्मा का अराकान प्रदेश बताया है। पाँचवीं तथा छठी शताब्दियों के प्राप्त बर्मी तथा कम्बुज शिलालेखों से पता चलता है कि वहाँ के मूल निवासी किरात थे। इन प्रमाणों से माना जा सकता है कि पूर्वी हिमालय अंचल, भूटान, मणिपुर, बर्मा तथा कम्बुज (कम्बोडिया) तक किरात जाति फैली थी। प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त ने किरात तथा चीन की सेना के साथ अर्जुन से युद्ध किया था।

महाकवि भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य से पता चलता है कि महाभारत काल में किरात सैनिक तथा गुप्तचरों का कार्य करते थे। महादेव ने किरात वेश में अर्जुन से युद्ध किया था। नेपाल में प्राचीन किरात जाति आजकल किरान्ती नाम से प्रसिद्ध है। वे बल्लो, माझ तथा पन्थ किरान्त वर्गों में विभक्त है। वल्लो किरान्त लिम्बू, पख तथा रयस श्रेणियों में विभक्त है। लिम्बू किरात पत्नी खरीदते है। गरीब लिम्बू अपने ससुर के घर नौकरी कर पत्नी प्राप्त करता है। नेपाल की वंशावली से प्रतीत होता है कि अहिर वंश के पश्चात् किरात वंश के २९ राजाओं ने नेपाल में शासन किया था। नेपाल के किरात बौद्ध तथा हिन्दू दोनों हैं। सिक्किम के पश्चिम मोरंग में आज भी किरात जाति रहती है।

वराहमिहिर की बृहत् संहिता में भारत के दक्षिण पश्चिम किरात जनपद होने का उल्लेख किया गया है। शक्ति संगम तंत्र में 'तप्त कुण्ड' से 'राम क्षेत्रान्त' पर्यन्त किरात देश कहा गया है। यह विन्ध्य प्रदेश में स्थित है।

किरात एक शिवावतार भी हुआ है। मूक नामक दानव का इसने सूकर रूप में वध किया है। ऋग्वेद में किरात तथा आकुली दो असुरों का का उल्लेख मिलता है (ऋ० १०:५७:१; १०:६०:१; बृहद् देवता ७.९१:१६; पं०ब्रा० १३:१२:५, शा० ब्रा० २:१.४ १४, जै. ब्रा. ३:१६७।

यह जाति सम्भवतः अनार्य थी। प्राचीन ग्रन्थों में प्रायः उनका सम्बन्ध पर्वतों तथा गुफाओं से जोड़ा गया है। उनकी मुख्य जीविका आखेट बतायी गयी है। अथर्ववेद (१०४ १४) में किरात का उल्लेख मिलता है। वाजसनेयी संहिता (३०.१६) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में किराता का सम्बन्ध गुहा से बताया गया है। अभिप्राय यह मालूम होता है कि वे गुहावासी थे।

उपहारीकरोम्येष चण्डिकायै स्वविग्रहम् ।
मयि प्रहर निश्शङ्कं जीवत्वेतज्जनद्वयम् ॥ ४० ॥

४०. "मैं अपने शरीर को चण्डिका के लिये उपहार[1] में दे रहा हूँ। तुम मुझ पर निःशंक होकर प्रहार करो। वे दोनों जन जीवित होवें।"

तदद्भुतमहासत्त्वचित्तोदात्त्वविस्मितः ।
उन्मिषद्रोमहर्षस्तं ततः स शबरोऽभ्यधात् ॥ ४१ ॥

४१. तदनन्तर वह शबर उस महासत्त्व के चित्त की उदात्तता से विस्मित एवं रोमांचित हो गया और उनसे बोला—

अतिकारुण्यमिपतस्तवायं पृथिवीपते ।
कश्चिन्मतिविपर्यासप्रकारो हृदि रोहति ॥ ४२ ॥

४२. पृथ्वीपते! आपके हृदय में अति कारुण्य के कारण किसी प्रकार का मति विपर्यय (बुद्धि भ्रम) उत्पन्न हो गया है।

वाल्मीकि रामायण में किरातों की नारियों के जूड़ा का वर्णन है। उनके वर्ण की सुवर्ण से उपमा दी गयी है। (किष्किन्धा काण्ड : ४०;२७)

महाभारत कर्ण पर्व (७३:१९-२०) में उन्हें बर्बर अनार्य जाति तुषार, यवन, खस, आंध्रक, पुलिन्द, म्लेच्छों के साथ रखा गया है। उन्हें पर्वतीय जाति कहा गया है। द्रोण पर्व (४.७) में उन्हें हिमालय पर्वत में निभृत कहा गया है। सभा पर्व (५२:९-१२) में किरात लोग युधिष्ठिर को भेंट लेकर आते हुए देखे जाते हैं। उन्हें क्रूरकर्मी कहा गया है। फल-मूलभोजी, चर्मवस्त्रधारी तथा भयंकर शस्त्र चलाने वाला कहा गया है। कालान्तर में किरात लोग समस्त भारत में फैल गये थे।

खारवेल के अभिलेख में चीन तथा किरात दोनों का एक साथ उल्लेख किया गया है। सांची के एक स्तूप पर एक किरात भिक्षु के दान का उल्लेख अंकित है। नागार्जुनीय कोण्ड के एक अभिलेख में किरातों का उल्लेख है।

महाभारत के उपायन पर्व में किरात के चन्दन लेकर भेंट में आने का उल्लेख है। अतएव किरात दक्षिण में थे। ललितादित्य का उनसे समुद्रतट पर भेंट होना वास्तविकता की ओर संकेत करता है।

मनु ने किरातों की गणना व्रात्य क्षत्रियों में की है। (मनु० १०:४३-४४)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४० में 'स्ववि' का पाठभेद 'सुवि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४० (१) उपहार : कल्हण ने उपहार शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। बलि तथा उपहार में स्पष्ट अन्तर कल्हण ने किया है। बलि किसी भी व्यक्ति अथवा पशु की उसकी इच्छा अथवा अनिच्छा होने पर भी जबर्दस्ती बलिकर्ता अपने प्रतिनिधि रूप में कर देता था। परन्तु उपहार से यह ध्वनि नहीं निकलती। अपना उपहार नैवेद्य अथवा भोग लगाने की तरह देवता को चढ़ाया जाता है।

त्रैलोक्यजीवितेनापि यो रक्ष्यो हेलयैव तम् ।
पृथिवीभोगसुभगं कथं कायमुपेक्षसे ॥ ४३ ॥

४३. "त्रैलोक्य के प्राण से भी जो रक्षणीय है; पृथ्वी के उपभोग करने योग्य उस काया की आप योंही क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ?

न मानं न यशो नार्थान्न दारान्न च बान्धवान् ।
न धर्मं न सुतान्भूपा रक्षन्ति प्राणतृष्णया¹ ॥ ४४ ॥

४४. "नृप गण प्राण रक्षा हेतु मान, यश, अर्थ, दारा, बन्धु, धर्म एवं पुत्र की भी रक्षा नहीं करते ।

तत्प्रसीद प्रजानाथ मा वध्येऽस्मिन्कृपां कृथाः ।
शिशुश्चैव प्रजाश्चैता जीवन्तु त्वयि जीवति ॥ ४५ ॥

४५. "प्रजानाथ ! प्रसन्न हों । उस वध्य पर कृपा न कीजिये । आपके जीवित रहने पर शिशु और प्रजा जीवित रहेगी ।"

उपाजिहीर्षुरात्मानं दन्तद्योतार्घडम्बरैः ।
अर्चयन्निव चामुण्डामथोवाच स पार्थिवः ॥ ४६ ॥

४६. "स्वयं उपहार बनने के लिये उत्सुक नृप ने दन्त प्रभा रूपी अर्घ पुञ्ज से मानो चामुण्डा¹ की अर्चना करते हुए कहा—

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३ में 'काय, का पाठभेद 'वार' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ५६वाँ श्लोक है ।

४६ (१) चामुण्डा : स्कन्द पुराण (५:१:३८) में उल्लेख मिलता है । शुंभ तथा निशुंभ ने देवी का वध करने के लिये चण्ड एवं मुण्ड नामक दो राक्षसों को भेजा था । देवी ने उनका वध किया । चण्ड एवं मुण्ड के वध के पश्चात् देवी ने शुंभ एवं निशुंभ का वध किया । अतएव देवी का नाम चामुण्डा पड़ा ।

रक्तबीज एक असुर था । वह शुम्भ निशुम्भ के पक्ष का योद्धा था । रुद्र के वर प्रभाव से उसका एक बूँद रक्त पृथ्वी पर पड़ते रक्त बूँद के बीज स्वरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता था । चामुण्डा बूँदों [illegible] गिरते ही रक्त चाट जाती थी । असुर उत्पन्न होने की नौबत ही नहीं आती थी । चामुण्डा ने रक्तबीज का नाश किया । (दे० भा० ५:२७–२९, मार्क० ८९, शिव० उमा ४७)

चामुण्डा के सम्मुख नर बलि का वर्णन भवभूति ने 'मालती माधव' नाटक में किया है । नाटक के पंचम अंक में नायक ने नायिका की रक्षा करते समय अघोर घंट पुरोहित का वध किया था ।

सदाचारसुधास्वादे के भवन्तो वनौकसः।
जाह्ववीमज्जनप्रीतिं न जानन्ति मरुस्थिताः ॥ ४७ ॥

४७. 'सदाचार रूपी सुधा का स्वाद आप वनवासी कैसे जान सकते हैं? मरुस्थल निवासी गंगा स्नान (मज्जन) के आनन्द को नहीं जानते।

ध्रुवापायेन कायेन क्रीणतः कीर्तिमव्ययाम्।
ममाभीष्टं प्रमार्ष्टुं ते मूढ रूढोऽयमाग्रहः ॥ ४८ ॥

४८. 'हे मूढ! अवश्यमेव नश्वर इस शरीर से अविनश्वर कीर्ति का क्रय करते, मेरे अभीष्ट के नाश हेतु, तुम्हारा यह दुराग्रह (क्यों ?) बढ़ गया है।

मा वोचः किंचिदपरं प्रहर्तुं चेद्घृणा तव।
न किं निजः कृपाणो मे शक्तः प्रक्रान्तसिद्धये ॥ ४९ ॥

४९. 'और कुछ मत कहो। यदि प्रहार करने में तुम्हें दया (आती) है, तो क्या मेरा कृपाण प्रस्तुत कार्य सिद्धि में समर्थ नहीं है?'

इत्युक्त्वा स स्वयं देहमुपहर्तुं समुद्यतः।
खण्डनाय स्वमुण्डस्य विकोशं शस्त्रमादधे ॥ ५० ॥

५०. ऐसा कहकर, देह को उपहार करने के लिये उद्यत वह स्वयं अपने मुण्ड के खण्डन हेतु कोश से शस्त्र निकालकर, धारण कर लिया।

ततः प्रहर्तुकामस्य तस्य द्युकुसुमैः शिरः।
करश्च दिव्यवपुषा रुद्धः केनाप्यजायत ॥ ५१ ॥

५१. प्रहारोत्सुक उनका शिर आकाश से गिरे पुष्पों से आच्छादित हो गया, और किसी दिव्य शरीरी ने हाथ को रुद्ध कर दिया।[1]

अथापश्यत्तथाभूतः कञ्चिद्दिव्याकृतिं पुरः।
न चण्डिकां न तं वध्यं न किरातं न दारकम् ॥ ५२ ॥

५२. तथाभूत उसने सम्मुख कोई दिव्याकृति देखी। (किन्तु) चण्डिका, किरात, दारक (शिशु) एवं वह वध्य दिखायी नहीं दिया।

पादटिप्पणियाँ :

४७(१) राजतरंगिणी मुक्तिका ५७वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८ में 'भीष्ट' का 'भीष्टा' तथा 'रूढो' का पाठभेद 'मूढो' मिलता है।

श्लोक संख्या ५० में 'दधे' का पाठभेद 'ददे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५१ (१) हाथ रुद्ध करना : बाइबिल में वर्णन आता है कि अब्राहम अपने पुत्र को बलि भगवान् पर चढ़ा रहा था। उसने प्रहार के लिये हाथ उठाया था कि ईश्वरीय शक्ति ने उसका हाथ रोक लिया। इस प्रकार के चमत्कारों से विश्व का पूरा साहित्य भरा पड़ा है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ में 'पुरः' का पाठभेद 'पुनः' मिलता है।

त्रैलोक्यजीवितेनापि यो रक्ष्यो हेलयैव तम् ।
पृथिवीभोगसुभगं कथं कायमुपेक्षसे ॥ ४३ ॥

४३. "त्रैलोक्य के प्राण से भी जो रक्षणीय है; पृथ्वी के उपभोग करने योग्य उस काया को आप योंही क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ?

न मानं न यशो नार्थान्न दारान्न च बान्धवान् ।
न धर्मं न सुतान्भूपा रक्षन्ति प्राणतृष्णया[1] ॥ ४४ ॥

४४. "नृप गण प्राण रक्षा हेतु मान, यश, अर्थ, दारा, बन्धु, धर्म एवं पुत्र की भी रक्षा नहीं करते ।

तत्प्रसीद प्रजानाथ मा वध्येऽस्मिन्कृपां कृथाः ।
शिशुश्चैष प्रजाश्चैता जीवन्तु त्वयि जीवति ॥ ४५ ॥

४५. "प्रजानाथ ! प्रसन्न हों । उस वध्य पर कृपा न कीजिये । आपके जीवित रहने पर शिशु और प्रजा जीवित रहेगी ।"

उपाजिहीर्षुरात्मानं दन्तद्योतार्घडम्बरैः ।
अर्चयन्निव चामुण्डामथोवाच स पार्थिवः ॥ ४६ ॥

४६. "स्वयं उपहार बनने के लिये उत्सुक नृप ने दन्त प्रभा रूपी अर्घ पुञ्ज से मानो चामुण्डा[1] की अर्चना करते हुए कहा—

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३ में 'काय, का पाठभेद 'कार' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४४ (१) राजतंरगिणी सूक्ति संग्रह का ५६वाँ श्लोक है ।

४६ (१) चामुण्डा : स्कन्द पुराण (५:१:३८) में उल्लेख मिलता है । शुभ तथा निशुंभ ने देवी का वध करने के लिये चण्ड एवं मुण्ड नामक दो राक्षसों को भेजा था । देवी ने उनका वध किया । चण्ड एवं मुण्ड के वध के पश्चात् देवी ने शुंभ एवं निशुंभ का वध किया । अतएव देवी का नाम चामुण्डा पड़ा ।

रक्तबीज एक असुर था । वह शुम्भ निशुम्भ के पक्ष का योद्धा था । रुद्र के वर प्रभाव से उसका एक बूँद रक्त पृथ्वी पर पड़ते रक्त बूँद के बीज स्वरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता था । चामुण्डा बूँदों के गिरते ही रक्त चाट जाती थी । असुर उत्पन्न होने की नौबत ही नहीं आती थी । चामुण्डा ने रक्तबीज का नाश किया । (दे० भा० ५:२७–२९; मार्क० ८४, शिव० उमा ४७)

चामुण्डा के सम्मुख नर बलि का वर्णन भवभूति ने 'मालती माधव' नाटक में किया है । नाटक के पंचम अंक में नायक ने नायिका की रक्षा करते समय अघोर घंट पुरोहित का वध किया था ।

सदाचारसुधास्वादे के भवन्तो वनौकसः ।
जाह्नवीमज्जनप्रीतिं न जानन्ति मरुस्थिताः ॥ ४७ ॥

४७. 'सदाचार रूपी सुधा का स्वाद आप वनवासी कैसे जान सकते हैं ? मरुस्थल निवासी गंगा स्नान (मज्जन) के आनन्द को नहीं जानते ।

ध्रुवापायेन कायेन क्रीणतः कीर्तिमव्ययाम् ।
ममाभीष्टं प्रमार्ष्टुं ते मूढ रूढोऽयमाग्रहः ॥ ४८ ॥

४८. 'हे मूढ ! अवश्यमेव नश्वर इस शरीर से अविनश्वर कीर्ति का क्रय करते, मेरे अभीष्ट के नाश हेतु, तुम्हारा यह दुराग्रह (क्यों ?) बढ़ गया है ।

मा वोचः किंचिदपरं प्रहर्तुं चेद्घृणा तव ।
न किं निजः कृपाणो मे शक्तः प्रक्रान्तसिद्धये ॥ ४९ ॥

४९. 'और कुछ मत कहो । यदि प्रहार करने में तुम्हें दया (आती) है, तो क्या मेरा कृपाण प्रस्तुत कार्य सिद्धि में समर्थ नहीं है ?'

इत्युक्त्वा स स्वयं देहमुपहर्तुं समुद्यतः ।
खण्डनाय स्वमुण्डस्य विकोशं शस्त्रमादधे ॥ ५० ॥

५०. ऐसा कहकर, देह को उपहार करने के लिये उद्यत वह स्वयं अपने मुण्ड के खण्डन हेतु कोश से शस्त्र निकालकर, धारण कर लिया ।

ततः प्रहर्तुकामस्य तस्य द्युकुसुमैः शिरः ।
करश्च दिव्यवपुषा रुद्धः केनाप्यजायत ॥ ५१ ॥

५१. प्रहारोत्सुक उनका शिर आकाश से गिरे पुष्पों से आच्छादित हो गया, और किसी दिव्य शरीरी ने हाथ को रुद्ध कर दिया ।[१]

अथापश्यत्तथाभूतः कश्चिद्दिव्याकृतिं पुरः ।
न चण्डिकां न तं वध्यं न किरातं न दारकम् ॥ ५२ ॥

५२. तथाभूत उसने सम्मुख कोई दिव्याकृति देखी । (किन्तु) चण्डिका, किरात, दारक (शिशु) एवं वह वध्य दिखायी नहीं दिया ।

पादटिप्पणियाँ :

४७(१) राजतरंगिणी सूक्तिका ५७वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८ में 'भीष्टं' का 'भीष्ट' तथा 'रूढ़ो' का पाठभेद 'मूढो' मिलता है ।

श्लोक संख्या ५० में 'दधे' का पाठभेद 'ददे' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५१ (१) हाथ रुद्ध करना : बाइबिल में वर्णन आता है कि अब्राहम अपने पुत्र को बलि भगवान् पर चढ़ा रहा था । उसने प्रहार के लिये हाथ उठाया था कि ईश्वरीय शक्ति ने उसका हाथ रोक लिया । इस प्रकार के चमत्कारों से विश्व का पूरा साहित्य भरा पड़ा है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ में 'पुरः' का पाठभेद 'पुनः' मिलता है ।

स तं दिव्यस्तदाऽवादीन्मां त्वं सत्त्ववशीकृतम् ।
विद्धि मध्यमलोकेन्दो वरुणं करुणानिधे ॥ ५३ ॥

५३. उस समय उस दिव्य (व्यक्ति) ने उससे कहा—'हे मध्यमलोकेन्दु ! करुणानिधे !! तुम मुझे सत्त्व वशीकृत वरुण[१] जानो।

यदेतत्त्वामुपास्तेऽद्य छत्रं तन्मत्पुरात्पुरा ।
महाबलोऽहरद्भौमः पुराणश्वशुरस्तव ॥ ५४ ॥

५४. 'आज यह जो छत्र तुम्हारी सेवा में है, उसे पहले मेरे नगर से तुम्हारे पुराण श्वशुर महाबली भौम[१] ने अपहृत कर लिया था।

रसातलैकतिलकं माहात्म्यवदिदं विना ।
उपद्रवाः प्राणहराः पौराणां नः पदे पदे ॥ ५५ ॥

५५. 'रसातल[१] का एक मात्र तिलक माहात्म्यशाली इस (छत्र) के बिना मेरे पुरवासियों के पद-पद पर प्राणहारी उपद्रव होते हैं।

श्लोक संख्या ५३ में 'त्वं' का पाठभेद 'त्वा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५३ (१) वरुण : पाद टिप्पणी 'वरुण' रा० त० २ १४८ द्रष्टव्य है। वरुण सूर्य के नव ग्रहों में एक ग्रह भी है। यह बहुत बड़ा पिण्ड है। अत्यन्त दूरस्थ होने के कारण दूरदर्शी के बिना नही देखा जा सकता था। सन् १८४६ मे प्रथम बार दूरदर्शी द्वारा इसकी वास्तविक स्थिति ज्ञात हुई थी। किन्तु आविष्कार बहुत पूर्व ही बिना दूरदर्शी के हो चुका था। भारतीयों को इसका ज्ञान सुदूर पूर्व काल से था। वरुण का व्यास लगभग ३३,००० मील है। सूर्य मे २७९ करोड मील पर स्थित है। यह साढे तीन मील प्रति सेकण्ड चलकर १६५ वर्षों में सूर्य को परिक्रमा करता है। नेपचून शब्द के लिये वरुण शब्द का प्रयोग किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में कूर्म को वरुण का सहायक माना गया है। (७.५.१.९) नीलमत पुराण में वरुण को मृत्यु (619,), आदित्य (607) तथा, जलदेवता (384) के रूप में चित्रित किया गया है। उसका सम्बन्ध नरक से भी जोड़ा गया है। (1381) "जलाधिपेन ज्ञातस्य नरके पतनं कृत." इसी पुराण के अनुसार वरुण तीर्थ की बलि तथा प्रतिमा की स्थापना पुलस्त्य ने की थी। (1004—1006) कार्तिक पूर्णिमा को वरुण पूजा का भी उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है। (435—437) वरुण पंचमी की विशेष रूप से पूजा कश्मीर मे होती थी। (755) वरुण यात्रा उत्सव का विधान भी नीलमत पुराण में अन्य यात्रोत्सव के साथ रखा गया है। (804-865) नीलमत वरुणलोक का भी उल्लेख करता है।

५४ (१) भौम : इस दैत्य का दूसरा नाम 'नरक' है। उसे 'नरकासुर' भी कहते हैं।

५५ (१) रसातल : सप्त अधोलोकों में से एक लोक है। पाताल के पाँच लोक यथा-अधोभुवन पाताल, बलि सद्मन, रसातल तथा नागलोक हैं।

तदिदं प्राप्तुकामेन त्वदौदार्यं परीक्षितुम् ।
कारुण्यमय मायेयं निरमायि मयेदृशी ॥ ५६ ॥

५६. 'हे करुणामय ! ! इसे (छत्र) प्राप्त करने की इच्छा से तुम्हारे औदार्य की परीक्षा हेतु, इस प्रकार की यह माया निर्मित की।

त्वदादियों व्यधाज्जन्तुन्व्यसून्वसुकुलात्मजः ।
प्रायश्चित्तममारेण चरसीव तदेनसः ॥ ५७ ॥

५७. 'तुम्हारे पूर्ववर्ती वसुकुलात्मज' जिसने प्राणियों का वध किया था, उसके पाप का इस अहिंसा द्वारा (अब) प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

भयस्पृहाजनकयोर्धरणीधारणोचिते ।
शेषदेहे विषोद्गारफणारत्नौघयोरिव ॥ ५८ ॥

५८. 'धरणी धारण हेतु शेष शरीर में जैसे क्रमशः भय एवं अभिलाष (स्पृहा) उत्पन्न कारक विषोद्गार तथा फणरत्न समूह रहते हैं।

सुभाषित रत्नाकर में इसका अर्थ पृथ्वी किया गया है। रसातल शब्द साधारणतया नरक के लिये प्रयुक्त होता है। प्राग्ज्योतिष तथा वरुण लोक रसातल नहीं है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५६ में 'कारुण्यमय' का पाठभेद 'करुणामय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५७ (१) वसुकुलात्मज : कल्हण मेघवाहन को मिहिरकुल का वंशज नहीं बताता है। द्रष्टव्य है रा. त. १:२८८–३२५ पृष्ठ २९२–३३३।

दक्ष कन्या एवं धर्म की पत्नी का नाम वसु था। उससे आठ वसु हैं। उन्हें अष्ट वसु कहा जाता है। हरिवंश, स्कन्द एवं विष्णु पुराणों में इनका नाम—धर, ध्रुव, सोम, अप, अनल, अनिल प्रत्यूष तथा प्रभास है। नीलमत पुराण भी आठ वसुओं की तालिका देता है। उससे यह तालिका मिलती है। (603) नीलमत नव संवत्सर अर्थात् चैत्र शुक्ल एक को वसुपूजा का माहात्म्य उपस्थित करता है।

भागवत में उनका नाम—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु तथा विभावसु दिया गया है। महाभारत में 'अप्' के स्थान में 'अहः' तथा शिव पुराण में 'अयज' नाम दिया गया है। अष्ट वसुओं के नायक अग्नि है।

ऋग्वेद में वसु गण पृथ्वी निवासी देवता है। वसु नाम के अनेक वैदिक एवं पौराणिक देवताओं का उल्लेख मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५८ में 'धारणोचिते' का पाठ भेद 'धरणोचिते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४८ (१) चक्कलम् : कतिपय अनुवादकों ने श्लोक संख्या ४८–६१ श्लोकों का अनुवाद एक साथ चार श्लोकों को 'चक्कलम्' चारपद का मान कर किया है। यहाँ अनुवाद प्रत्येक श्लोक का अलग-अलग दिया गया है। निस्सन्देह कुछ प्रति में चक्कलम होने का निर्देश किया गया है।

तमःप्रकाशावह्योस्तेजःक्रान्तदिगन्तरे ।
उपर्बुधे धूमजालज्वालापल्लवयोरिव ॥ ५९ ॥

५९. 'तेज से दिगन्तरव्यापी अग्नि में जैसे अन्धकार तथा प्रकाशप्रद धूम पुञ्ज एवं ज्वाला पल्लव रहते हैं।

क्रमाप्यायक्रियाभाजो रुद्धतेजस्विमण्डले ।
प्रावृट्पयोदच्छन्नेऽह्नि संतापासारयोरिव ॥ ६० ॥

६०. आवृत रवि मण्डल एवं प्रावृट् पयोद से आच्छन्न दिन में जैसे क्रम (खेद और शान्तिदायी सन्ताप तथा वृष्टि होते हैं—

द्वयोरालोकितं चित्रं जन्मैकस्मिन्महाकुले ।
तस्य त्रिकोटिहन्तुश्च तवाऽहिंस्रस्य च प्रभोः ॥ ६१ ॥

६१. 'उसी तरह एक ही महाकुल में त्रिकोटिहन्ता[1] (मिहिर कुल) उसका एवं अहिंसक प्रभु आप दोनों का विचित्र जन्म देखा।'

नम्रः सम्राडथैवं स वदतो यादसां प्रभोः ।
चकार पूजां स्तोत्रेण छत्रेण च कृताञ्जलिः ॥ ६२ ॥

६२. यादस् पति (वरुण)[1] के इस प्रकार कहने पर, विनम्र उस सम्राट् ने अंजलि-बद्ध होकर, स्तोत्र एवं छत्र से उनकी पूजा की।

तं च स प्रतिगृह्णन्तं प्रणयादुष्णवारणम् ।
जगाद गुणिनामग्र्यो वरुणं धरणीधवः ॥ ६३ ॥

६३. सप्रणय छत्र ग्रहण करते वरुण से गुणियों में अग्रणी धरणीपति ने कहा—

पाठभेद:

श्लोक संख्या ५९ में 'क्रान्त' का पाठभेद 'वमान्त' मिलता है।

श्लोक संख्या ६१ में 'हन्तुश्च' का 'हर्तश्च' 'हर्तुश्च' तथा 'अहिंस्र' का पाठभेद 'अहिंस' मिलता है। श्लोक में 'धर्तुभिः' 'कुलकम्' किंवा 'चक्रकम्' जोड़ने का सुझाव दिया गया है।

पादटिप्पणियाँ :

६१ (१) त्रिकोटिहन : कल्हण ने मिहिर-कुल के लिये त्रिकोटिहन्ता एवं त्रिकोटिहन शब्द का उल्लेख रा. त. १:३१०, ३२२ तथा ८:३४१५ में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२ में 'धवः' का पाठभेद 'धरः' मिलता है।

कल्पद्रुमाश्च सन्तश्च नार्हन्ति समशीर्षिकाम् ।
अर्थिनां प्रार्थिताः पूर्वे फलन्त्यन्ये स्वयं यतः[1] ॥ ६४ ॥

६४. "कल्पद्रुम एवं सन्त सम कोटि में होने योग्य नहीं। क्योंकि प्रथम (कल्पद्रुम) आकांक्षी के प्रार्थना करने पर तथा अन्य (सन्त) स्वतः फल देते हैं।

अत्रालम्बिष्यत छत्रं कथं नः पुण्यपण्यताम् ।
तत्प्रार्थयिष्यत न चेदार्तोपकृतये भवान् ॥ ६५ ॥

६५. "छत्र हमारे पुण्य पण्यता को कैसे प्राप्त करता, यदि आप आर्त के उपकार हेतु न प्रार्थित होते।"

वदान्यः संविभाग्येभ्यः पूर्णं कुर्यादनुग्रहम् ।
छाययाऽऽप्याययन्दद्यात्फलान्यपि महीरुहः[1] ॥ ६६ ॥

६६. वदान्य[2] संविभाग (दान) पूर्वक अनुग्रह पूर्ण करता है, क्योंकि महीरुह (वृक्ष) छाया द्वारा सन्तुष्ट करता हुआ, फल प्रदान करता है।

तदेवं विहितोदात्तसंविभागाभिचोदितः ।
जनोऽयं भगवन्किंचिद्वरं प्रार्थयतेऽपरम् ॥ ६७ ॥

६७. 'भगवन् ! आपके इस प्रकार के उदात्त व्यवहार से प्रोत्साहित, यह जन एक अन्य वर की प्रार्थना करता है।

पादटिप्पणियाँ :

६४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ५८ वाँ श्लोक है।

मेघवाहन वरुण की प्रार्थना आरम्भ करता है। सम शीर्षिकाम् शब्द का यहाँ कल्हण ने प्रयोग किया है। सम का अर्थ समान तथा शीर्ष का अर्थ शिर होता है। इसका शाब्दिक अर्थ सन्तुलित मस्तिष्क लगाया जा सकता है। इस शब्द का उल्लेख पुनः कल्हण ने ३:१३७ में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६५ में 'न' का पाठभेद 'न' मिलता है।

श्लोक संख्या ६६ में 'वदान्य' का 'वदन्यः' 'भाग्येभ्यः' का 'भागेभ्यः' तथा 'दद्यात्' का पाठभेद 'दध्यात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६६ (१) राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का ५९ वाँ श्लोक है।

(२) वदान्य : सबको दान देने के लिये जो कहता है, उसे वदान्य कहते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६७ में 'तदेवं' का 'तदेव' और 'अपरम्' का पाठभेद 'परम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

६७ (१) वर : वरुण के द्वारा छत्र स्वीकार कर लेने पर उत्साहित होकर, अपने उपकार का प्रत्युपकार पाने की अभिलाषा, से राजा वर की आकांक्षा करता है।

वशीकृतेयं पृथिवी कृत्स्ना भवदनुग्रहात् ।
जेतुं द्वीपान्कथ्यतां तु युक्तिः पाथोधिलङ्घने ॥ ६८ ॥

६८. 'आपकी कृपा से मैंने समस्त पृथ्वी को वशीकृत किया है। (अब) द्वीपों को जीतने के लिये, समुद्र लंघन हेतु कोई उपाय बतायें'।

इत्यभ्यर्थ्यमानोऽकथयद्भूमिपालं जलेश्वरः ।
तितीर्षौ भवति स्तम्भं नीयतेऽम्भो मयाऽम्बुधेः ॥ ६९ ॥

६९. इस प्रकार भूमिपाल के प्रार्थना करने पर जलेश्वर ने कहा,—"जब आप समुद्र पार करने की इच्छा करेंगे तो मैं जल स्तम्भित कर दूँगा।"

ततो महान्प्रसादोऽयमित्युक्ते पृथिवीभुजा ।
तिरोबभूव भगवान्वरुणः सोष्णवारणः ॥ ७० ॥

७०. तदुपरान्त राजा के 'आपका यह महान् प्रसाद' है'—यह कहने पर, भगवान् वरुण छत्र सहित तिरोहित हो गये।

अन्येद्युर्विस्मयस्मेरैर्बलैः सीमन्तयञ्जलम् ।
प्रभावस्तम्भितक्षोभं प्रोत्ततार स वारिधिम् ॥ ७१ ॥

७१. दूसरे दिन (वरुण के) प्रभाव से जल स्तम्भित हो गया। तब उसने जल को सीमन्तित[1] करते हुए, विस्मित तथा सस्मित सैनिकों के साथ समुद्र पार किया।

गुणरत्नाकरः शैलं स रत्नाकरशेखरम् ।
नानारत्नाकरं सैन्यैराहरोहाऽथ रोहणम् ॥ ७२ ॥

लंका विजय—

७२. गुणरत्नाकर[1] उसने ससैन्य, नाना रत्नों की खान एवं रत्ननिधियों का शेखर रोहण पर्वत पर आरोहण किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६९ में 'तितीर्षौ' का पाठभेद 'तितीर्षोः' मिलता है।

श्लोक संख्या ७१ में 'क्षोभं' का पाठभेद 'जलं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७१(१) सीमन्तित : कल्हण की उपमा यहाँ अनुपम है सीमन्त का अर्थ माँग होता है। शिर पर बाल काले होते हैं। भूरे होते हैं। माँग काढने पर बाल दोनों ओर घूमते हट जाते हैं। मध्य में सीधी परित्र ललाट से उठती पीछे चली जाती है। सीमन्त अर्थात् माँग के मध्य का भाग त्वचा वर्ण के अनुसार उज्ज्वल किवा भूरा लगता है। दोनों ओर जल हट जाने पर सीमन्त के समान दिखायी पड़ा होगा। जल उछल कर दोनों ओर हो जाएगा। सीमन्त तुल्य रेखा बन जाएगी। इसी प्रकार बाल मस्तक त्वचा से उठकर दोनों ओर गिर कर बालों से मिल जाता है। जल का तल नीला होता है। बाल का रंग काला उसके वर्ण के निकट होता है।

७२ (१) रत्नाकर शब्द पर यहाँ जोर दिया गया है। रत्नाकर समुद्र को कहा जाता है। कल्हण ने यहाँ राजा के लिये गुणरत्नाकर विशेषण का प्रयोग कर उसे रत्न के साथ गुणों से भी विभूषित किया है।

(२) रोहण : श्रीलंका के पर्वत 'आदमस्

तत्र तालीतरुवनच्छायाध्यामितसैनिकम् ।
प्रीत्या लङ्काधिराजस्तमुपतस्थे विभीषणः ॥ ७३ ॥

७३. जब कि उसके सैनिक वहाँ ताल वृक्ष वनच्छाया में बैठे थे, लंकाधिपति [1]विभीषण प्रेम पूर्वक उसके पास आया।

समागमः स शुशुभे नरराक्षसराजयोः ।
वन्दिनादाश्रुतान्योन्यप्रथमालापसंभ्रमः ॥ ७४ ॥

७४. नर एवं राक्षसराज का यह समागम सुशोभित हुआ। किन्तु वन्दिगणों के नाद से उनका परस्पर उद्वेग पूर्ण (प्रथम) संलाप सुनायी नहीं पड़ा।

अथ रक्षःपतिर्लङ्कां नीत्वाऽलंकरणं क्षितेः ।
अमर्त्यसुलभाभिस्तं विभूतिभिरुपाचरत् ॥ ७५ ॥

७५. राक्षसपति पृथ्वीभूषण (मेघवाहन) को लेकर लंका गया। वहाँ अमर्त्य सुलभ विभूतियों से उसका उपचार किया।

यदासीत्पिशिताशा इत्यन्वर्थं नाम रक्षसाम् ।
तदा तदाज्ञाग्रहणे प्राप तद्रूढिशब्दताम् ॥ ७६ ॥

७६. राक्षसों का 'पिशिताश' (मांसभक्षी) नाम चरितार्थ था, परन्तु (उसकी) आज्ञा ग्रहण करने पर, वह शब्द रूढ़ हो गया।

फीट' अथवा श्रीपाद पर्वत का नाम है। द्रष्टव्य है पाद टिप्पणियाँ तरंग १:२९४ तथा २९९ आदम पीक को ही रामायण वर्णित सुवेलाद्रि कुछ लोग मानते हैं।

आदम पीक को रहु अथवा रहुन मुसलमान लोग कहते हैं। रोहण का अर्थ ही चढ़ना अथवा आरोहण करना होता है। रोपण अथवा आरोह सीढ़ियों तथा आदम पर्वत की लौह शृंखला को पकड़ कर किया जाता है। श्रीपाद पर्वत शिखर ७३६० फीट तथा पिदुरु तलागल शिखर ८२९६ फीट ऊँची है। पूर्व काल में श्रीपाद पर्वत ही सबसे ऊँचा माना जाता था। परन्तु आधुनिक ऊँचाई माप साधन से श्रीपाद कम ऊँचा और लंका में ठहरा है। उससे भी ऊँची चोटी किरिगिल पोत की है। वह ७८५७ फीट है इन्हीं तीन शिखरों के कारण श्री तुलसीदास ने रामायण में लिखा है—'गिरि त्रिकूट पर बस जहँ लंका।

७३ (१) विभीषण : लंका में विभीषण को भक्त रूप में चित्रित किया गया है न कि राक्षसेन्द्र रावण भ्राता रूप में राक्षस।

राम ने लंका का राज्य विभीषण को दिया था। विभीषण चिरंजीवी माना जाता है। एकमत उसे अब तक लंका का राजा मानता है।

मैं समझता हूँ। कालान्तर में 'विभीषण' शब्द लंका के राजा का पद वाचक हो गया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७६ में 'प्राप' का पाठभेद 'प्रापि' मिलता है।

रक्षःशिरःप्रतिच्छन्दैः स्थिरप्रणतिसूचकैः ।
सनाथशिखरान्प्रादात्तस्मै रक्षःपतिर्ध्वजान् ॥ ७७ ॥

७७. राक्षसपति ने उसे स्थिर प्रणय सूचक राक्षस शिर की आकृतियों से युक्त शिखर वाले ध्वजाओं को दिया।

पाराद्वारिनिधेः प्राप्ताः कश्मीरेष्वधुनापि ये ।
राज्ञां यात्रासु निर्यान्ति ख्याताः पारध्वजाः पुरः ॥ ७८ ॥

७८. वारिनिधि पार से प्राप्त वे ख्यात 'पारध्वज'[1] कश्मीर में आज भी राजयात्राओं में निकाले जाते हैं।

इत्थमाराक्षसकुलं प्राणिहिंसां निषिध्य सः ।
स्वमण्डलं प्रति कृती न्यःवर्तत नराधिपः ॥ ७९ ॥

७९. इस प्रकार समस्त राक्षस कुल में प्राण हिंसा निषिद्ध करके यह कृती राजा स्वमण्डल को लौटा।

ततःप्रभृति तस्याज्ञा सार्वभौमस्य भूपतेः ।
हिंसाविरतिरूपा सा न कैश्चिदुदलङ्घ्यत ॥ ८० ॥

८०. तब से लेकर इस सार्वभौम राजा की उस हिंसा विरति आज्ञा का किसी ने उल्लंघन नहीं किया।

क्षुद्रैरुद्रादिभिर्नाप्सु सिंहाद्यैर्गहने न च ।
न श्येनप्रमुखैर्व्योम्नि तद्राज्ये जन्तवो हताः ॥ ८१ ॥

८१. उसके राज्य में क्षुद्र जल मार्जारादि जल में, सिंहादि वन में, श्येनादि आकाश में, जीव हत्या नहीं करते थे।

श्लोक संख्या ७८ मे 'कश्मीरे' का पाठभेद 'काश्मीरे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७८ (१) पारध्वज : विजय में प्राप्त शत्रुओं के ध्वजों को विजय यात्रा किंवा उत्सवों पर जलूस में निकाला जाता है। यह प्रायः रोम सम्राट् के प्रदर्शनों तथा यूरोप में भी प्रचलित रहा है। कश्मीर में भी इस प्रकार की शोभा यात्रा प्रचलित रही होगी। कल्हण के समय तक यह निकाले जाते थे और लंका विजय की स्मृति हरी करते कश्मीर के सैनिकों का मस्तक गौरव से ऊँचा करते थे। इस पारध्वज का पुनः कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८१ मे 'रुद्रा' का पाठभेद 'रुप्रा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८१ (१) उद्र : उद्र किस प्रकार का जलीय जन्तु था कहना कठिन है। अंग्रेजी अनुवादकों ने उसका अनुवाद 'ओटर' अर्थात् ऊदबिलाव किंवा जलमार्जार किया है।

अतिक्रामति[1] कालेऽथ कोऽपि शोकाकुलो द्विजः ।
पुत्रं गदार्तमादाय द्वारि चक्रन्द भूपतेः ॥ ८२ ॥

ब्राह्मण बालक की कथा

८२. कुछ काल अतिक्रान्त[2] होने पर, कोई शोकाकुल द्विज रोग से पीड़ित पुत्र को लेकर, भूपति के द्वार पर क्रंदन किया —

दुर्गया प्रार्थितं राजन् पश्वाहारं विनैष मे ।
अनन्यसंततेः सूनुर्ज्वरेणाद्य विपद्यते ॥ ८३ ॥

८३. हे राजन्! दुर्गा[1] वांच्छित पशु आहार के बिना मेरा यह एक मात्र पुत्र आज ज्वर से मृत हो रहा है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८२ में 'गदार्त' का पाठभेद 'गतासु' 'गदात्त' तथा 'गशतु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८२ (१) बाण के हर्षचरित में इस प्रकार की शब्दावली मिलती है—'प्रतिक्रामति काले—'

(२) द्विज द्वार क्रन्दन : रामायण में इसी प्रकार की कथा का वर्णन है। भगवान् राम के द्वार पर एक ब्राह्मण अपने अकालमृत्यु ग्रस्त ब्राह्मण बालक को लेकर आया। राजा राम से प्रश्न किया। पुत्र की अकाल मृत्यु क्यों हुई ? राजा उसके लिये उत्तरदायी है। राजा पुत्र को जीवित करे। वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड का सर्ग ७३ से ७६ सर्ग का संवाद राजनीति सिद्धान्त तथा प्रजा के प्रति राजा का कर्तव्य का अनुपम सिद्धान्त प्रतिपादित करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८३ में 'राजन्पश्वाहारं' का पाठभेद 'राजन्नुपहारं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८३ (१) दुर्गा का यहाँ पर अर्थ कालिका लगाया जाना उचित मालूम पड़ता है।

दुर्गा का देवस्थान कहाँ था इसका अन्वेषण नहीं हुआ है। श्री स्तीन तथा अन्य किसी पुरातत्त्ववेत्ता ने इस पर प्रकाश नहीं डाला है। अनुमान मात्र लगाया जा सकता है। यह स्थान दुर्गा नाग तथा दुर्गा श्री के मन्दिर से सम्बन्धित किया जा सकता है।

यह स्थान आज शाह हमदान नाम से मुसलिम जियारत है। यहीं पर दुर्गा नाग है। पादटिप्पणी तरंग ३:३५२ द्रष्टव्य है।

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'देवी माहात्म्य' में देवी का निर्देश दुर्गा नाम से किया गया है। विश्व व्यापक आदि माया के लिये सामान्य नाम देवी प्रयुक्त किया है। मार्कण्डेयपुराण में देवी का माहात्म्य बताने के लिये 'सप्तशती' की रचना की गयी है। दुर्गा को काली, लक्ष्मी एवं सरस्वती का अवतार माना गया है। दुर्ग नामक असुर का वध करने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा है।

दुर्गा का महत्त्वपूर्ण स्थान देवी उपासना में था। काश्मीर में निरंजन पर्व पर दुर्गा पूजा के समय अस्त्र शस्त्रों की पूजा होती थी। वह पूजा दुर्गा मन्दिर के अन्दर होती थी। (नी० 739, 740) आश्विन की कृष्ण पक्ष अष्टमी को दुर्गा मन्दिर में उपकरणों की पूजा होती थी। (नी० 786—89) दुर्गा मन्दिर में पुस्तकों की पूजा होती थी। (नी० 789) सरस्वती के मन्दिर में पुस्तकों की पूजा होना साधारणतया माना गया है। परन्तु वहाँ दुर्गा मन्दिर में पुस्तकों की पूजा से कुछ कौतूहल उत्पन्न होता है। मैं समझता हूँ। दुर्गा सप्तशती

यद्यहिंसाऽऽग्रहेणेमं क्षितिपाल न रक्षसि ।
एतद्विपत्तौ तत्कोऽन्यो निमित्तं प्रतिभाति मे ॥ ८४ ॥

८४. 'हे क्षितिपाल ! यदि अहिंसा के आग्रह से इसकी रक्षा नहीं करते हो, तो इसकी विपत्ति में दूसरा और कौन कारण है।

निर्णयो वर्णगुरुणा त्वयैवैष प्रदीयताम् ।
ब्राह्मणस्य पशोर्वा स्यात्प्राणानां कियदन्तरम् ॥ ८५ ॥

८५. 'वर्ण गुरु'[१] आप ही इसका निर्णय दें कि, ब्राह्मण और पशु के प्राण में कितना अन्तर है'।

तपःस्थानपि ये जघ्नुर्ब्राह्मणप्राणलब्धये ।
हा मातस्तेऽधुना भूमे प्रजापालास्तिरोहिताः ॥ ८६ ॥

८६. "हा भूमि माता[१] ! तुम्हारे वे भूमिपाल (अब) तिरोहित हो गये, जिन्होंने ब्राह्मण प्राणोपलब्धि हेतु तपस्वियों[२] का भी वध किया।"

आदि दुर्गा देवी सम्बन्धी ग्रन्थों से ही यहाँ तात्पर्य है। हरा मजरी पूजा के दिन दुर्गा को हरा पुष्प अर्पित किया जाता था। (नी० 668—78)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८५ में 'प्राणाना' का पाठभेद 'प्राणिना' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८५ (१) वर्णगुरुः इस शब्द का यहाँ अर्थ राजा है। एक अनुवादक ने वर्ण गुरु का अर्थ चारो वर्ण का रक्षक किया है। यहाँ वर्ण गुरु शब्द भूपाल, पृथ्वीपति, क्षितिपाल आदि के समान राजा का विशेषण है जिसका अर्थ राजा होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८६ में 'तप.स्था' का 'तपस्स्था' तथा 'भूमे' का 'भूमे' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८६ (१) भूमि माता : कल्हण ने वैदिक सिद्धान्त का यहाँ प्रतिपादन किया है। वैदिक साहित्य में पृथ्वी को माता कहा है। ऋग्वेद में पृथ्वी माता तथा देवी रूप उसे सम्बोधित किया गया है। पृथ्वी का अर्थ भूमि है। तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है—'इयं वै माता' (३:८:९:१) 'तन्माता पृथ्वी तद् द्यौः' (तै० ब्रा० २:७:१६:३) 'धेनुरिव वा इयं मनुष्येभ्यः सर्वान् कामान् दुहे माता धेनुर्मातेव वा इयं मनुष्यान् बिभर्ति' (श० ब्रा० २:३:१:२१)

मोहन्जो जोरो तथा अनेक प्राचीन वैदिक किंवा अर्धवैदिक कालीन स्थानों के खनन में पृथ्वी को माता के रूप मे मृतिका टेबलेट आदि पर चित्रित किया गया है। (इण्डियन एण्ड इण्डोनीशियन आर्ट) कुमार स्वामी प्लेट ३० आकृति १०५।

पृथ्वी को माता कहने का भाव श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के आनन्द मठ में लिखित गान 'वन्देमातरम्' में आ जाता है। रा० तरं० ८:१२३६ श्लोक भी द्रष्टव्य है।

(२) तपस्वी : कल्हण का अभिप्राय यहाँ रामायण की प्रसिद्ध कथा शम्बूक से है। ब्राह्मण बालक की मृत्यु के कारण जानने पर तपस्वी होने पर भी शम्बूक की हत्या कर राम ने ब्राह्मण बालक को जीवित किया था। शम्बूक एक वृक्ष की

इति ब्रुवति साक्षेपं शोकरूक्षाक्षरं द्विजे ।
आपन्नार्तिहरो राजा चिरमेवं व्यचिन्तयत् ॥ ८७ ॥

८७. इस प्रकार द्विज के आक्षेप पूर्वक शोक से कटु भाषण करने पर, दुःखियों के दुःख का हरण कर्ता (परार्तिहर) राजा चिरात् इस प्रकार सोचा—

न वध्याः प्राणिन इति प्राङ्मया समयः कृतः ।
विप्रार्थमपि किं कुर्यां संप्रतिज्ञातविप्लवम् ॥ ८८ ॥

८८. "प्राणी वध्य नहीं हैं।" पूर्व में मैंने ऐसा प्रण किया है, अब क्या विप्र के लिये भी मैं प्रतिज्ञा भंग करूँ।

निमित्तीकृत्य मामद्य विपद्येत द्विजो यदि ।
तत्राऽप्यत्यन्तपापीयानर्थः संकल्पविप्लवः ॥ ८९ ॥

८९. मुझे निमित्त बनाकर, यदि द्विज मृत हो गया, तो वहाँ भी अत्यन्त पापमय संकल्प विलय होगा।

नैति मे संशयभ्रान्तमेकपक्षावलम्बनम् ।
संभेदावर्तपतितं प्रसूनमिव मानसम् ॥ ९० ॥

९०. 'संशय भ्रान्त मेरा मन उसी प्रकार किसी एक पक्ष का अवलम्बन नहीं कर पा रहा है, जैसे संगम के आवर्त में पतित कुसुम।

तत्स्वदेहोपहारेण दुर्गां तोषयता मया ।
प्रतिज्ञया समं न्याय्यं रक्षितुं जीवितं द्वयोः ॥ ९१ ॥

९१. 'तो दुर्गा को अपने देह के उपहार से सन्तुष्ट करके, प्रतिज्ञा के साथ दोनो की प्राण रक्षा न्याय्य है।'

शाखा में शिर नीचा और पैर ऊपर कर शाखा मे लटकता तपस्या कर रहा था। (वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ७५ तथा ७६)

रामायण की इस कथा का उल्लेख भवभूति के प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरित के प्रथम अंक मे मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८८ में 'प्राङ्मया समयः कृतः' का 'प्राग्योऽस्मि समकल्पयम्' तथा 'संप्रति' का पाठभेद 'स प्रति' मिलता है।

श्लोक संख्या ९१ में 'जीवितं' का पाठभेद 'जीवितुं' मिलता है।

इति संचिन्त्य सुचिरं देहदानोद्यतो नृपः ।
श्वः प्रियं तव कर्ताऽस्मीत्युक्त्वा विप्रं व्यसर्जयत् ॥ ९२ ॥

९२. देह दान के लिये उद्यत नृप ने चिरकाल तक इस प्रकार सोचा। "कल मैं तुम्हारा प्रिय (कार्य) करूँगा"—ऐसा कहकर विप्र को विसर्जित किया।

क्षपायां क्ष्मापतिमथ स्वमुपाहर्तुमुद्यतम् ।
निषिध्य दुर्गा व्यधित प्रकृतिस्थं द्विजन्मजम् ॥ ९३ ॥

९३. रात्रि में दुर्गा ने अपने को उपहार करने हेतु उद्यत नृपति को निषिद्ध कर, द्विज पुत्र को प्रकृतिस्थ (नीरोग) कर दिया।

इत्याद्यद्यतनस्यापि चरितं तस्य भूपतेः ।
पृथग्जनेष्वसंभाव्यं वर्णयन्तस्त्रपामहे ॥ ९४ ॥

९४. अन्य लोगों में असम्भव, उस विगत भूपति के चरित का वर्णन करते, हम लज्जित हो रहे हैं।

अथवा रचनानिर्विशेषमार्षेण वर्त्मना ।
प्रस्थिता नानुरुन्धन्ति श्रोतृचित्तानुवर्तनम् ॥ ९५ ॥

९५. अथवा आर्ष[१] मार्ग से प्रस्थित रचना में निर्विशेष श्रोता के चित्तानुवर्तन का अनुरोध नहीं करते हैं।

तस्मिन्नस्तं गते भुक्त्वा क्ष्मां चतुस्त्रिंशतं समाः ।
अनादित्यमिवाऽशेषं निरालोकमभूज्जगत् ॥ ९६ ॥

९६. पृथ्वी का चौंतीस वर्ष भोग करने के पश्चात्, राजा के अस्त हो जाने पर, सम्पूर्ण जगत् बिना सूर्य के प्रकाश रहित जैसा हो गया।

पादटिप्पणियाँ :

९५ (१) आर्ष - श्री रणजीत सीताराम पण्डित श्लोक ९४ तथा ९५ पर टिप्पणी करते अपना मत प्रकट करते हैं कि कल्हण ने अपने समय के पाठकों के मनोभाव को परख लिया था। वे रहस्यमय तथा काव्यमय गाथा को बिना उसका उपहास किये सुनने के लिये तैयार नहीं थे। अतएव कल्हण ने यहाँ स्वयं स्पष्टीकरण किया है। वह यहाँ स्पष्टीकरण करता है कि उसमें प्राचीन काव्यपरम्परा का निर्वाह तथा अनुसरण किया है। कल्हण यहाँ पर आर्ष शब्द का प्रयोग कर ऋषिकृत, प्रयुक्त एवं वैदिक परम्परा किंवा मार्ग के अनुकरण करने की बात उठाकर अपने काव्य को पवित्र कहने का प्रयास करता है।

९६ (१) मूल्यांकन : मेघवाहन शान्त शासक था। वह तपस्वी था। योगी था। महान् आत्मा था। आध्यात्मिक प्राणी था। तथापि वह शक्तिशाली राजा था। चतुर शासक था। आदर्श राज्य की उसने कल्पना की। उसने राज्य का आधार शक्ति तथा दण्डनीति की अपेक्षा प्रेम एवं मन परिवर्तन पर महात्मा गान्धी की तरह विश्वास किया। उसने मनुष्य को कृतघ्न, क्रूर, आततायी, निर्भय प्राणी नहीं माना। उसने मनुष्य में मानवता देखने का प्रयास किया और उसे पाया। उसने

अथ क्ष्माभृद्ररक्ष क्ष्मां श्रेष्ठसेनस्तदात्मजः ।
प्राहुः प्रवरसेनं यं तुञ्जीनं चाञ्जसा जनाः ॥ ९७ ॥

श्रेष्ठसेन (प्रवरसेन प्रथम तुञ्जीन द्वितीय)

९७. अथ (अनन्तर) उसके पुत्र राजा श्रेष्ठसेन ने पृथ्वी की रक्षा की जिसे लोग प्रवरसेन एवं तुंजीन कहते हैं[1] ।

अपने में, प्रजा में, तपस्वो में तथा विरोधी प्रवृत्ति वालों के मध्य भेद पाटने का स्तुत्य प्रयास सर्वदा किया । और उसमें सफल रहा ।

अशोक ने भेरी घोष के स्थान पर धर्म घोष किया था । प्रजानुरक्त मेघवाहन ने अहिंसा को सार्वजनिक रूप देने के लिए, दिग्विजय की कल्पना की । दिग्विजय द्वारा उसने अहिंसा को व्यापक बनाने का प्रयास किया । उसकी दिग्विजय यात्रा में उसके विचारों को जिसने स्वीकार किया उसे उसने उनके राज्य तथा शक्ति से च्युत नहीं किया । उसने व्यर्थ हिंसा का आश्रय नहीं लिया ।

उसका चरित्र निखर उठता है । कल्हण ने उसे इस प्रकार चित्रित किया है कि वह अपने पवित्र व्यक्तिगत व्यवहार, विचारों के कारण भारतवर्ष के नृपतियों की श्रेणी में अशोक से भी ऊँचा स्थान पाने का पात्र है । किसी मत-मतान्तर का खण्डन किंवा मण्डन न कर उसने एक सरल, सीधा, मर्यादित पथ का अनुकरण किया । वह पथ निराला था । अनुपम था । शान्त था । उसका आशय प्रिय था । वह राज मद से दूर था । परन्तु वह जानता था । राज्य की शक्ति सेना भी है । उस सैनिक शक्ति को शिथिल होने नहीं दिया । उस शक्ति को मजबूत बना कर उसका प्रयोग प्रयत्न उत्तम उदात्त अहिंसा सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप देने का प्रयास किया । अहिंसा के कारण कसाइयों किंवा पशु हत्या पर जीवित रहने वालों को बेकारी का अनुभव कर उनकी जीविका का भी प्रबन्ध किया । वह दूरदर्शी, व्यावहारिक एवं प्रजाप्रिय राजा था । उसने भगवान् बुद्ध के उपदेशों को अपने व्यक्तिगत चरित्र, त्याग, तपस्या एवं राज्य की सैनिक शक्ति से भारत में प्रचारित किया । उपदेश एवं सिद्धान्त को मानसिक स्तर से उतार कर जीवन दर्शन में उतारा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९७ में 'प्राहुः' का पाठभेद 'आहुः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

९७ (१) श्री विलसन अभिषेक काल सन् ५७ ई० ९ मास तथा राज्य काल सन् ३० वर्ष २ मास देते हैं ।

श्री एस. पी. पण्डित यह समय सन् ८८ ई० तथा राज्य काल ३० वर्ष देते हैं ।

श्री स्टीन अभिषेक काल लौकिक संवत् ३१३२ तथा राज्य काल ३० वर्ष देते हैं ।

श्री वाली यह समय सप्तर्षि संवत् ४००९ तथा सन् २३९ ई० देते हैं । कलि गताब्द ३१८३ वर्ष ४ मास आता है । ट्रायर वह समय सन् ५८ वर्ष ६ मास देते हैं । कनिंघम के मत से यह काल सन् ४०० ई० होना चाहिए । आइने अकबरी ने 'सरेसमेन' नाम दिया है ।

बिदेउद्दीन श्रेष्ठसेन की गाथा में बहुत कुछ परिवर्धन करता है । उसका कहना है कि राजा ने खोट के खाली राजसिंहासन पर अपनी माता को बैठा दिया । उसने अपने साम्राज्य की सीमा खतई, चीन तथा मचीन तक फैला ली, बिदेउद्दीन कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करता कि उसने इस घटना का वर्णन कहाँ से प्राप्त किया है । यह गलत है ।

हसन कहता है— संवत् विक्रमी ६८ में राजा श्रेष्ठसेन बाप के इन्तकाल के बाद तख्त नशीन हुआ । मुल्क को रब्त जब्त और अदल व इन्साफ काम लेने में हद से ज्यादा कोशिश की । मातृ चक्र

दोःस्तम्भसंभृतासक्तो कृपाणमणिदर्पणे[१] ।
संक्रान्तेवोन्मुखी यस्य भुवनश्रीर्व्यभाव्यत ॥ ९८ ॥

९८. जिसके बाहु स्तम्भ से लगे कृपाण मणि दर्पण में उत्सुक भुवन श्री प्रतिबिम्बित हो रही थी ।

समातृचक्रं निर्माय यः पूर्वं प्रवरेश्वरम् ।
पुण्याः पुराणाधिष्ठाने प्रतिष्ठा विविधा व्यधात् ॥ ९९ ॥

९९. जिसने पुराणाधिष्ठान[१] में प्रथम मातृचक्र सहित प्रवरेश्वर का निर्माण करके विविध पुण्य प्रतिष्ठा की ।

[१]गृहाङ्गनमिव क्षोणीं गणयन्वशवर्तिनीम् ।
त्रिगर्तोर्वीं ग्रामसंख्ये प्रवरेशाय यो ददौ ॥ १०० ॥

१००. जिसने वशवर्तिनी पृथ्वी को गृह आंगन तुल्य गिनते हुए, ग्रामों सहित त्रिगर्त[२] भूमि प्रवरेश्वर को दी ।

वीर वीरेश्वर का मन्दिर अपनी यादगार में छोड़ा । इलाका कांगड, की पैदावार उसके इखराजात के लिए वकफ की । तीस बरस हकूमत करके दुनिया से रुखसत हुआ । दो बेटे हिरन और तोरमान नामी अपने पीछे छोड़े ।

९८ (१) बाण ने हर्ष चरित में इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है—'कृपाणदर्पणेषु'

९९ (१) पुराणाधिष्ठान : योगवासिष्ठ रामायण में अधिष्ठान नगर का उल्लेख मिलता है । कल्हण ने प्रतिष्ठान शब्द का प्रयोग किया है । कल्हण के समय अधिष्ठान पुराने नगर के रूप में रह गया था । अतएव पुराणाधिष्ठान किंवा पुराधिष्ठान की संज्ञा दी गयी । यह स्थान पण्ड्रेथन है । महाराज यशस्कर के समय वह पुराणाधिष्ठान की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सका था । मालूम होता है उस समय वहाँ यथेष्ट आबादी थी और नवीन नगर मे वह मिला था ।

अधिष्ठान का अर्थ नगर होता है । पुराणाधिष्ठान का अर्थ पुराना नगर होगा ।

श्लोक १:१०४ की टिप्पणी पृष्ठ १२८ तथा ५:२६७ द्रष्टव्य है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०० में 'संख्ये' का 'मध्ये' तथा 'ददौ' का पाठभेद 'दधौ' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१०० (१) बाण ने इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया हो 'अंगनवेदी वसुधा—।'

(२) त्रिगर्त : कांगड़ा क्षेत्र को त्रिगर्त कहते है । यह क्षेत्र चम्बा पर्वतमाला तथा व्यास नदी के ऊर्ध्व भाग में है । त्रिगर्त प्राचीन काल में जालन्धर राज्यान्तर्गत था । इन्द्रचन्द कटोच राजाओं में कांगड़ा के थे । जिनका उल्लेख तरंग ७:१५० में कल्हण ने किया है । इसका पुनः उल्लेख ८:१५३१ किया गया है ।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में त्रिगर्त का उल्लेख किया है । पाणिनि का काल मध्य छठवीं शताब्दी बी. सी. कहा जाता है । कुछ सूत्रों में स्पष्ट और कुछ सूत्रों में गौण रूप से 'प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः' उल्लेख किया गया है । भर्गादि में, भर्ग, करूष, कश्मीर, शाल्व देश आते है । यौधेयादि में त्रिगर्त

तथा यौधेय सम्मिलित थे। यौधेय का अर्थ आयुध-जीवी संघ कहना उचित होगा। शस्त्रोपजीवी होने के कारण उन्हें क्षत्री माना जाता था। महाभारत में सभा पर्व (२७:७:१२; ५२:१४—१५) में त्रिगर्त पाण्डवों से पराजित हो गया था। सभा पर्व ८:२० में उन्हें क्षत्री कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख आता है :

कर्णप्रावरणाश्चैव हूणाद्‌र्वाः सहुण्डुकाः।
त्रिगर्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥

मार्कण्डेय तथा वायुपुराण में 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव, पुनः मार्कण्डेय पुराण में 'त्रिगर्ता मालवा इचैव' ब्रह्माण्ड पुराण मे 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव' वामन में 'त्रिगर्ताश्च किराताश्च तोमराः शशिखाद्रिकाः' उल्लेख मिलता है।

वामन पुराण पर्वताश्रयी देशों मे चौदह आदि की तालिका में त्रिगर्त को रखा गया है। वामन० १३:५६-५७

'कर्ण प्रावरण, हूण, दार्व, त्रिगर्त, मालव, किरातादि हिमालय की पर्वतीय जातियाँ हैं। मालव शब्द से भ्रम हो सकता है। वे कहीं वर्तमान मालवा के समीप तो नहीं थे। प्राचीन काल में सस मालव का उल्लेख मिलता है। त्रिगर्त वर्तमान जालन्धर तथा कांगड़ा अंचल कहा जाता है। यहाँ पर वर्णित मालव शब्द सतलज क्षेत्र के लिये आया है। किरात जाति आधुनिक किराती है। इसी जाति ने कभी नेपाल के एक भाग पर शासन किया था।

स्कन्द पुराण मे देशों की तालिका में त्रिगर्त का नाम नहीं है। परन्तु क्रम संख्या १४ पर जालन्धर का नाम दिया गया है। मालूम होता है। उस समय त्रिगर्त जालन्धर क्षेत्र में मान लिया गया था। क्योंकि तोमर देश की क्रम संख्या ५४ स्कन्द पुराण में दी गयी हैं। निस्सन्देह जालन्धर का क्षेत्र बहुत विस्तृत था।

प्राचीन त्रिगर्त रावी तथा सतलज नदी के मध्य, जालन्धर का प्रदेश था। प्राचीन ग्रन्थों में कांगड़ा का नाम त्रिगर्त दिया गया है। मेरे अनेक कांगड़ा निवासी मित्र जो भारतीय संसद् के सदस्य हैं, स्पष्ट कहते हैं—कांगड़ा ही प्राचीन त्रिगर्त देश है। जनरल कनिंघम का मत है कि कांगड़ा ही त्रिगर्त देश है। चम्बा पर्वतमाला तथा व्यास नदी के ऊर्ध्व भाग में स्थित है। उनका यह भी मत है कि, त्रिगर्त क्षेत्र तीन नदियों अर्थात् रावी, व्यास एवं सतलज द्वारा सिंचित होता था। प्रोफेसर जानसन का मत है कि कटोच राज्य त्रिगर्त देश कहा जाता है।

मैं स्वयं कांगडा मे घूमा हूँ। स्थानीय राजाओं से भी भेंट की थी। यह जनश्रुति सुदूर प्राचीन काल से चली आती है कि त्रिगर्त कांगड़ा है। इसी का वर्णन महाभारत तथा पुराणों में किया गया है। कल्हण ने त्रिगर्त का पुनः उल्लेख ३:१००, २८५, ५:१४४, ७:२२४, तथा ८:५३० में किया है।

दशकुमार चरित में तीन धनाढ्य कुलों के त्रिगर्त जनपद में निवास करने का मित्रगुप्त के पर्यटन सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है। उस समय १२ वर्षों का भयंकर अवर्षण था। नदियाँ तक सूख गयी थी। हेमचन्द ने अभिधान चिन्तामणि में त्रिगर्त तथा जालन्धर का समानार्थक रूप में प्रयोग किया है।

वर्तमान पंजाब का उत्तरी पूर्वीय भाग जो चम्बा से कांगड़ा तक विस्तृत है और जो इस समय हिमालय प्रदेश में है, त्रिगर्त कहा जाता था। सतलज, व्यास तथा रावी नदियों की तीन घाटियाँ अर्थात् गर्त किंवा द्रोणियों के कारण इसको त्रि तीन गर्त (घाटी) कहा जाता था।

इसका नाम जालन्धरायण भी था। रावी तथा व्यास के संकुचित मार्ग से देश में प्रवेश होता था। आज भी यह मार्ग चलता है। गुरदासपुर तथा पठानकोट के जिले त्रिगर्त राज्यान्तर्गत थे। यहाँ से औदुम्बुर गणराज्य की मुद्रायें प्राप्त हुई हैं।

दोःस्तम्भसंभृवासक्तो कृपाणमणिदर्पणे[१] ।
संक्रान्तेवोन्मुखी यस्य भुवनश्रीर्व्यभाव्यत ॥ ९८ ॥

९८. जिसके बाहु स्तम्भ से लगे कृपाण मणि दर्पण में उत्सुक भुवन श्री प्रतिबिम्बित हो रही थी।

समातृचक्रं निर्माय यः पूर्वं प्रवरेश्वरम् ।
पुण्याः पुराणाधिष्ठाने प्रतिष्ठा विविधा व्यधात् ॥ ९९ ॥

९९. जिसने पुराणाधिष्ठान[१] में प्रथम मातृचक्र सहित प्रवरेश्वर का निर्माण करके विविध पुण्य प्रतिष्ठा की।

[१]गृहाङ्गनमिव क्षोणीं गणयन्वशवर्तिनीम् ।
त्रिगर्तोर्वीं ग्रामसंख्ये प्रवरेशाय यो ददौ ॥ १०० ॥

१००. जिसने वशवर्तिनी पृथ्वी को गृह आंगन तुल्य गिनते हुए, ग्रामों सहित त्रिगर्त[२] भूमि प्रवरेश्वर को दी।

और वीरेश्वर का मन्दिर अपनी यादगार में छोड़ा। इलाका बागड़, की पैदावार उसके इखराजात के लिए वक्फ की। तीस बरस हकूमत करके दुनिया से रुखसत हुआ। दो बेटे हिरन और तोरमान नामी अपने पीछे छोड़े।

९८ (१) बाण ने हर्ष चरित में इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है—'कृपाणदर्पणेषु'

९९ (१) पुराणाधिष्ठान : योगवासिष्ठ रामायण में अधिष्ठान नगर का उल्लेख मिलता है। कल्हण ने अधिष्ठान शब्द का प्रयोग किया है। कल्हण के समय अधिष्ठान पुराने नगर के रूप में रह गया था। अतएव पुराणाधिष्ठान किंवा पुराधिष्ठान की संज्ञा दी गयी। यह स्थान पाण्ड्रेथन है। महाराज प्रवरसेन के समय यह पुराणाधिष्ठान की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सका था। मालूम होता है उस समय वहाँ यथेष्ट आबादी थी और नवीन नगर से वह मिला था।

अधिष्ठान का अर्थ नगर होता है। पुराणाधिष्ठान का अर्थ पुराना नगर होगा।

श्लोक १:१०४ की टिप्पणी पृष्ठ १२८ तथा ५:२६७ द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०० में 'संख्ये' का 'मध्ये' तथा 'ददौ' का पाठभेद 'दधौ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०० (१) बाण ने इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है 'अंगनवेदी वसुधा—।'

(२) त्रिगर्त : कांगड़ा क्षेत्र को त्रिगर्त कहते हैं। यह क्षेत्र चम्बा पर्वतमाला तथा व्यास नदी के ऊर्ध्व भाग में है। त्रिगर्त प्राचीन काल में जालन्धर राज्यान्तर्गत था। इन्द्रचन्द कटोच राजाओं में कांगड़ा के थे। जिनका उल्लेख तरंग ७:१५० में कल्हण ने किया है। इसका पुनः उल्लेख ८:१५२१ किया गया है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में त्रिगर्त का उल्लेख किया है। पाणिनि का काल मध्य छठवीं शताब्दी बी. सी. कहा जाता है। कुछ सूत्रों में स्पष्ट और कुछ सूत्रों में गौण रूप से 'प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः' उल्लेख किया गया है। भर्गादि में, भर्ग, करूष, कश्मीर, शाल्व देश आते हैं। यौधेयादि में त्रिगर्त

तथा यौधेय सम्मिलित थे। यौधेय का अर्थ आयुध-जीवी संघ कहना उचित होगा। शस्त्रोपजीवी होने के कारण उन्हें क्षत्री माना जाता था। महाभारत में सभा पर्व (३७:७:१२; ५२:१४—१५) में त्रिगर्त पाण्डवों से पराजित हो गया था। सभा पर्व ८:२० में उन्हें क्षत्री कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख आता है :

कर्णप्रावरणाश्चैव हूणादार्वाः सहुण्डुकाः।
त्रिगर्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥

मार्कण्डेय तथा वायुपुराण में 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव, पुनः मार्कण्डेय पुराण में 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव' ब्रह्माण्ड पुराण मे 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव' वामन में 'त्रिगर्ताश्च किराताश्च तोमरा. शशिखाद्रिकाः' उल्लेख मिलता है।

वामन पुराण पर्वताश्रयी देशों मे चौदह आदि की तालिका में त्रिगर्त को रखा गया है। वामन० १३:५६–५७

'कर्ण प्रावरण, हूण, दार्व, त्रिगर्त, मालव, किरातादि हिमालय की पर्वतीय जातियाँ हैं। मालव शब्द से भ्रम हो सकता है। वे कहीं वर्तमान मालवा के समीप तो नहीं थे। प्राचीन काल में सप्त मालव का उल्लेख मिलता है। त्रिगर्त वर्तमान जालन्धर तथा कागड़ा अंचल कहा जाता है। यहाँ पर वर्णित मालव शब्द सतलज क्षेत्र के लिये आया है। किरात जाति आधुनिक किराती है। इसी जाति ने कभी नेपाल के एक भाग पर शासन किया था।

स्कन्द पुराण मे देशों की तालिका में त्रिगर्त का नाम नही है। परन्तु क्रम संख्या १४ पर जालन्धर का नाम दिया गया है। मालूम होता है। उस समय त्रिगर्त जालन्धर क्षेत्र में मान लिया गया था। क्योंकि तोमर देश की क्रम संख्या ५४ स्कन्द पुराण में दी गयी है। निस्सन्देह जालन्धर का क्षेत्र बहुत विस्तृत था।

प्राचीन त्रिगर्त रावी तथा सतलज नदी के मध्य, जालन्धर का प्रदेश था। प्राचीन ग्रन्थों में कांगड़ा का नाम त्रिगर्त दिया गया है। मेरे अनेक कागड़ा निवासी मित्र जो भारतीय संसद् के सदस्य हैं, स्पष्ट कहते हैं–कांगड़ा ही प्राचीन त्रिगर्त देश है। जनरल कनिंघम का मत है कि कांगड़ा ही त्रिगर्त देश है। चम्बा पर्वतमाला तथा व्यास नदी के ऊर्ध्व भाग में स्थित है। उनका यह भी मत है कि, त्रिगर्त क्षेत्र तीन नदियाँ अर्थात् रावी, व्यास एवं सतलज द्वारा सिंचित होता था। प्रोफेसर जानसन का मत है कि कटोच राज्य त्रिगर्त देश कहा जाता है।

मैं स्वयं कांगडा में घूमा हूँ। स्थानीय राजाओं से भी भेंट की थी। यह जनश्रुति सुदूर प्राचीन काल से चली आती है कि त्रिगर्त कांगड़ा है। इसी का वर्णन महाभारत तथा पुराणों में किया गया है। कल्हण ने त्रिगर्त का पुनः उल्लेख ३ १००, २८५, ५:१४४, ७:२२४, तथा ८:५३० में किया है।

दशकुमार चरित में तीन धनाढ्य कुलों के त्रिगर्त जनपद में निवास करने का मित्रगुप्त के पर्यटन सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है। उस समय १२ वर्षों का भयंकर अवर्षण था। नदियाँ तक सूख गयी थी। हेमचन्द ने अभिधान चिन्तामणि में त्रिगर्त तथा जालन्धर का समानार्थक रूप में प्रयोग किया है।

वर्तमान पंजाब का उत्तरी पूर्वीय भाग जो चम्बा से कांगड़ा तक विस्तृत है और जो इस समय हिमालय प्रदेश में है, त्रिगर्त कहा जाता था। सतलज, व्यास तथा रावी नदियों की तीन घाटियाँ अर्थात् गर्त किंवा द्रोणियों के कारण इसको त्रि तीन गर्त (घाटी) कहा जाता था।

इसका नाम जालन्धरायण भी था। रावी तथा व्यास के संकुचित मार्ग से देश में प्रवेश होता था। आज भी यह मार्ग चलता है। गुरदासपुर तथा पठानकोट के जिले त्रिगर्त राज्यान्तर्गत थे। यहाँ से औदुम्बर गणराज्य की मुद्रायें प्राप्त हुई हैं।

ईशो नृपाणां निश्शेपक्ष्माकेदारकुटुम्बिनाम्[१] ।
स समास्त्रिंशतं भूभृदनिस्त्रिंशाशयोऽभवत् ॥ १०१ ॥

१०१. समस्त पृथ्वी क्षेत्र को कुटुम्बी[१] समझने वाले नृपों का अधीश्वर निष्क्रूर राजा ने तीस वर्ष शासन किया।

हिरण्यतोरमाणाख्यौ व्यधत्तामथ तत्सुतौ ।
साम्राज्ययुवराजत्वभाजने रञ्जनं क्षितेः ॥ १०२ ॥

१०२. साम्राज्य एवं युवराज पद के पात्र हिरण्य तथा तोरमाण[१] संज्ञक उसके दोनों पुत्रों ने क्षिति का रंजन किया।

त्रिगर्त के ६ संघ राज्यों का पाणिनि ने वर्णन किया है। उनके नाम—कोंडोपरथ, दाण्डिक, क्रौष्टकी, जालमानि, ब्राह्मगुप्त और जानकि हैं।

महाभारत में त्रिगर्त तथा कुलूत अर्थात् उलूक पर्वतमालाओं में निवासित गणों और राजाओं का वर्णन किया गया है। (सभा-पर्व २७: ५–१६) कुलूत अर्थात् वर्तमान कुलू अंचल की राजधानी नगर थी। कच्यादि गण (४ २:९) पाणिनि वर्णित नगर यही रहा होगा। कुलूत के दक्षिण मण्डी तथा सुकेत के राज्य थे। यवादि गण—अष्टाध्यायी (८:२ ९) में 'मंडमती' का उल्लेख है। सुकेत सम्भवत: सुकुट्ट है। इसका उल्लेख सभा पर्व में कुलिन्दो के सन्दर्भ में आया है। सतलज के दक्षिण टोंस नदी का क्षेत्र कुलिंद प्राचीन काल में कहा जाता था। कुलिंद, कुलूत तथा कुणिंद एक ही शब्द के विकृत रूप हैं। अष्टाध्यायी (४.१:१७८) में योधेयों के साथ त्रिगर्त सघ का उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य है आदि पर्व १५५:२ ; सभा पर्व २७ १८ , २३ ७,५२ १८—१९ , वन पर्व २७- १५ २६, २७१:१२ ; उद्योग पर्व १६४:८, १६६ ११, ५ १८, १६०:९ , विराट पर्व : अ० ३०, ३२, ३३ ; भीष्म पर्व ५७:७, अ० ५६, ६१, ७२, १०२ ; द्रोण पर्व : अ० ४, १८:१६ ; कर्ण पर्व . अ० ८, १७,१९, ७०, १८१, १५७ ; शल्य पर्व अ० २७ ; आश्वमेधिक पर्व: अ. ७४

१०१ (१) कुटुम्ब : बाण के हर्ष चरित में इस प्रकार का पद मिलता है—'चतुरुदधि-केदारकुटुम्बो।

इस श्लोक का भाव निम्नलिखित श्लोक में और स्पष्ट हो जाता है :

अयं निज परो वेति गणना लघुचेतसम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

१०२ (१) तोरमाण : श्री विलसन अभिषेक काल सन् ८७ ई. ३ मास तथा राज्य काल ३० वर्ष २ मास देते हैं।

श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय सन् ८८ ई. तथा राज्य काल ३० वर्ष २ मास रखा है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक काल लौकिक सं० ३१६२ तथा राज्य काल ३० वर्ष रखा है।

श्री बाली यह समय सप्तर्षि संवत् ४०३९ तथा सन् २६९ ई० देते हैं।

कलि गताब्द ३२१३ वर्ष ६ मास आता है। टायर के अनुसार यह समय सन् ८८ ईस्वी ६ मास होना चाहिए। कनिंघम ने सन् ४१५ ई. समय रखा है।

आइने अकबरी 'हिरेन' नाम देती है। राज्य काल ३० वर्ष दिया गया है।

तूरमाण यह तुर्की नाम है। यह उन प्रारम्भिक तुर्कों में पाया जाता है जिन्होंने भारत विजय किया था

और पहले बौद्ध तथा कालान्तर में हिन्दू हो गये थे। दसवीं शताब्दी में काबुल तथा सीमान्त पश्चिमोत्तर देश के रहने वाले उन्हीं तुर्कों को शाही कहा गया। तरंग ५:२३३ द्रष्टव्य है।

भारतीय हूण राजा तोरमाण कश्मीर के राजा तोरमाण से भिन्न है। कुछ इतिहासकारों ने खींच-खाँचकर कश्मीरी तोरमाण को भारतीय तोरमाण का पौत्र होने का अनुमान लगाया है।

कश्मीरी तोरमाण ने भी भारतीय तोरमाण राजा तुल्य मुद्रा टंकणित करवाया था। दोनों की मुद्राओं में समानता होने के कारण कुछ इतिहासकार उन्हें एक मानते हैं। कल्हण के अनुसार हूणराज नरेन्द्रादित्य का वंशज था। कश्मीरी तोरमाण युधिष्ठिर प्रथम का वंशज था।

कश्मीर में तोरमाण नाम की ताम्र मुद्रायें बहु संख्या में मिली हैं। मुद्रायें मध्य छठवीं शताब्दी की टंकणित हैं। उनकी लिपि गुप्त कालीन हैं।

तोरमाण तुरकी नाम है। तुर्क एवं तुरुष्क एक ही जाति थी। मुसलिम काल के पूर्व तुर्किस्तान से आने वाले तुर्क बुद्ध धर्मावलम्बी थे। कालान्तर में हिन्दू बन गये। कुछ इतिहासकारों का मत है कि काबुल तथा सिन्ध के मध्य रहनेवालों के लिये शाही शब्द का प्रयोग होने लगा था।

हसन लिखता है—(१) सन् विक्रमी ९८ में हिरन वारिस तख्त होकर अपने भाई को तोरमान ओहदः वजारत बख्शा। कुछ अरसा खूब गुजरी। लेकिन आखिर में तोरमान का मिजाज भाई की अताअत व फरमा बरदारी से मनहरफ़ हो गया। सिक्का अपने नाम जारी कर लिया। हिरन को उसकी यह हरकत सख्त नापसन्द आयी। और तूरमान को जेल भेज दिया। तूरमान की बीवी अंजना जो सूरज वंशी राजाओं के चश्म व चिराग़ थी अपने शौहर के हादसा के वक्त फरार हो गयी। और मुकाम अन्दर कोट में एक कुम्हार के घर रहने सहने लगी। यह औरत अपने खाविन्द से हामिला थी। इसलिये वज़ हमल के वक्त इसके पेट से एक लड़का पैदा हुआ। जिसका नाम इसने परवरसेन रखा। कुम्हार की बीवी इस लड़के को अपनी औलाद की तरह परवरिश किया करती थी। सन् बलूगत तक लोग उसे कुलाल का बेटा ही खयाल करते रहे। बचपन से ही बुज़ुर्गी के निशानात उसकी पेशानी से नमूदार थे। बच्चों के साथ खेल व कूद के दौरान में खुद एक ऊँची जगह पर बैठता और अपने आप को राजा के खिताब से पुकारता था। दूसरे लड़कों को वज़ारत गोरनरी और दीगर मुलाज़मतों के ओहदसे बख्शे हुए थे। इसका शगल हमेशा तीरन्दाजी और निशाना बाज़ी था। हसन इत्तफ़ाक से अंजना का भाई जयेन्द्र अपनी बहन की तलाश में जगह जगह फिरता था। एक दिन वह अन्दर कोट में भी जहाँ परवरसेन बच्चों में खेल रहा था आ पहुँचा। क्या देखता है कि एक लड़का बड़ी शान-शौकत से एक टीला पर बैठा हुआ है। और अपने मातहत बच्चों पर हुक्मरानी कर रहा है। जयेन्द्र के दिल में तबअ मुहब्बत और शफ़कत ने जोश मारा लेकिन वहाँ कुछ न कह सका। रात को उस लड़के के पीछे कुम्हार के घर में आया। अपने बहन को जो मुद्दत से जुदा हो गयी थी। पहचान लिया। दोनों एक दूसरे के साथ गले मिलकर रोये।

परवरसेन ने इस रोने-धोने का सबब अपनी मा से पूछा। उसने जवाब दिया कि यह मेरा भाई है। तेरा बाप तूरमार अपने भाई के जुल्म से कैदी बना हुआ है। अब मैं उसी के फिराक़ में होती हूँ। परवरसेन अपने बाप की हालत सुनकर गुस्सा से आगबबूला हो गया। इन्दर जे के घर रात दिन कुश्ती और पहलवानी में बसर करने लगा।

इस असनाए में हिरन ने बाज़ मुतक़द्दर हस्तियों के सफारिश के पेश नज़र तूरमान की रिहाई के अहकाम जारी कर दिये। तूरमान कुछ मुद्दत बैठ के हमराह उल्फत और मुहब्बत से ज़िन्दगी गुज़ार

आताहतानां प्राचुर्यं विनिवार्यासमञ्जसम् ।
तोरमाणेन दीनाराः स्वाहताः संप्रवर्तिताः ॥ १०३ ॥

१०३. तोरमाण ने भात अंकित मुद्रा का असंगत प्राचुर्य निवारण कर स्वांकित दीनार प्रवर्तित किया।

के नागहानी फौत हो गया। इस वाकया के थोड़े अरसः बाद परवरसेन अपने खालू जो इन्दर की हमराही में हिन्दुस्तान के बड़े बड़े तीरथ और मन्दिर देखने के लिये गया। इन्ही दिनों तकदीर इलाही से हिरन की जिन्दगी के दिन भी पूरे हो गये और वह तीस साल हुकूमत करके इस जहान् से रुखसत हुआ। राजा हिरन बे औलाद था। इसलिए हुकूमत का चिराग बे रौनक रहा। यह देखकर अराकीन सल्तनत महाराज विक्रमाजीत की खिदमत में हाज़िर हुए जो हिन्दुस्तान का ताजदार था। उससे इल्तजा की कि वह सल्तनत कश्मीर अपने कब्ज इक्तदार में लाए।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १०३ मे 'आताह' का 'बाताह' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०३ (१) दीनार : संस्कृत दीनार शब्द रोमन दिनारियस शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। यह शब्द आज भी जेकोस्लोविका की मुद्रा के लिये प्रयोग किया गया है। कश्मीर मे दीनार मुद्राओं के लिये प्रायः प्रयोग किया जाता था। यह स्वर्ण, रजत तथा ताम्र तीनों धातुओं में टंकणित होता था। एक सौ कौड़ी का एक ताम्र दीनार होता था। कल्हण जब वर्णन करता है कि एक हजार दीनार मासिक वेतन अधिकारियों को दिया जाता था। तो उसका अर्थ यह पैसा ही है। तरग ८:३८; ७:१४५, १६३; ४१८ तथा ८:१९१८ द्रष्टव्य है। मेरी बाल्यावस्था में सन् १९१४—१९१६ में काशी में एक ताम्बे के पैसा का १० से ४० कौड़ी मिलती थी। कौड़ी का प्रचलन सन् १९२० के पश्चात् प्रायः नगरो में बन्द हो गया। उसका स्थान अघेला आधा पैसा तथा एक पैसा में मिलने वाली तीन पाई वृटिश राज्य काल में ले लिया था। बारह पाई का एक आना १६ आना का एक रुपया तथा एक पैसा में ३ पाई और २ अधेला मिलता था। चार पैसा या आठ अधेला का एक आना होता था। दो पैसे का एक सिक्का टका या टकहवा सन् १९२० तक खूब चलता था परन्तु उसका प्रचलन भी वृटिश अमलदारी में बन्द कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त चाँदी की दुअन्नी चवन्नी तथा अठन्नी चलती थी। एक आना का सिक्का मिश्रित धातु का चलता था। इस समय एक सौ पैसा का एक रुपया चलने लगा है।

दीनार ३२ रत्ती का सुवर्ण का सामान्यतः होता था। संस्कृत भाषा में यह शब्द प्रचलित हो गया था। ईरान तथा सीरिया में अरबों के आक्रमण के पूर्व दीनार प्रचलित था। अरबो के यहाँ मुद्रा टंकणित नहीं होती थी। अरब विजय के पश्चात् अपने सल्तनत में 'दिरहेम' अरबों ने प्रचलित किया। यह दीनार शब्द का ही तद्भव रूप है।

आइने अकबरी के अनुसार दीनार एक दिरहम का तीन बटा सातवाँ वजन मे होता था।

फरिश्ता लिखता है कि दीनार दो रुपयो के बराबर होता था। रोमन लोगों का दिनेरियस रजत मुद्रा था जब कि हिन्द दीनार सुवर्ण का होता था। रोमन दिनेरियस सुवर्ण का भी होता था। पेरीप्लस का लेखक अग्रियन लिखता है कि 'दिनारी' स्वर्ण और रजत के यूरोप से 'वर्णगजा' अर्थात् भड़ौच भेजे जाते थे।

मामवज्ञाय राज्ञेव कस्मादेतेन वल्गितम् ।
इति तं पूर्वजो राजा क्रोधनो बन्धने व्यधात् ॥ १०४ ॥

१०४. राजा के समान इसने मेरी अवज्ञा कर किस हेतु औद्धत्य किया ? इस पूर्ववर्ती (ज्येष्ठभ्राता) क्रोधी राजा ने उसे बन्धन में कर दिया।

चिरं स्थितित्यक्तशुचस्तत्र तस्याऽञ्जनाभिधा ।
ऐक्ष्वाकस्याऽऽत्मजा राज्ञी वज्रेन्द्रस्याऽऽस्त गुर्विणी ॥१०५॥

१०५. वह चिरकाल तक वहाँ रहते, शोकरहित हो गया। उसकी अंजना नामक रानी गर्भवती हुई, जो ऐश्वाकु वज्रेन्द्र की आत्मजा थी।

आसन्नप्रसवा भर्त्रा सा त्रपार्तेन बोधिता ।
सुतं प्रविश्य प्रासोष्ट कुलालनिलये क्वचित् ॥ १०६ ॥

१०६. उसके आसन्नप्रसवा होने पर त्रपा पीड़ित पति ने उससे कहा—कहीं कुलाल निलय में जाकर प्रसव करो।

स कुम्भकारगेहिन्या काक्येव पिकशावकः ।
पुत्रीकृतो राजपुत्रः पर्याप्तं पर्यवर्धत ॥ १०७ ॥

१०७. जिस प्रकार काकी[1] पिक शावक का वर्धन करती है, उसी प्रकार कुम्भकार की गृहिणी ने पुत्रीकृत उस राजपुत्र का पर्याप्त संवर्धन किया।

जनयित्र्याः कुलाल्याश्च रक्षित्र्या विदितोऽभवत् ।
रत्नक्ष्मेर्भुजंग्याश्च प्रच्छन्न इव शेवधिः ॥ १०८ ॥

१०८. उसे उसकी माता तथा रक्षिका कुलाली उसी तरह जानती थी, जैसे प्रच्छन्न मूल्यवान निधि को पृथ्वी तथा भुजंगिनी[1] जानती हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०४ में 'एतेन' का पाठभेद 'तोरमाणेन' मिलता है।

श्लोक संख्या १०६ में 'सा त्रपार्तेन' का पाठभेद 'सत्रपं तेन' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०७ (१) काकी : कोयल के बच्चे को कौआ अपना समझ कर पालता है। यह केवल गाथा नहीं है। वास्तविकता है। कवि की कल्पना नहीं है। कवि का सत्य दर्शन वर्णन है। कोयल अपना घोंसला नहीं बनाती। वह अण्डा वहाँ देती है जहाँ कौआ अपना घोंसला या नीड़ बनाता है। वह घोंसले में जाकर अण्डा देती है। तत्पश्चात् अपने अण्डे का परित्याग कर उड़ जाती है। कालिदास ने दुष्यन्त के मुख से अभिज्ञान शकुन्तला नाटक में कहलवाया है—स्त्रियाँ सर्वदा धोखा देती हैं—उनकी उपमा 'प्राग् अन्तरिक्षगमनात्' से देता है। तरंग ८ : ३१७५ तथा ३१७८ भी द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०८ में 'शेवधिः' का पाठभेद 'सेवधि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०८ (१) भुजंगिनी : पृथ्वी में गड़े रत्न को पृथ्वी तथा भुजंग जानता है। कंजूसों के लिये भारत में कोने कोने में सभी भाषाओं में कहावत प्रचलित है कि वे मरने पर सर्प बनकर पृथ्वी में गड़े धन पर बैठते हैं। कल्हण उसी कहावत का यहाँ काव्य रूप में वर्णन करता है।

भ्राताहतानां प्राचुर्यं विनिवार्यासमञ्जसम् ।
तोरमाणेन दीनाराः स्वाहताः संप्रवर्तिताः ॥ १०३ ॥

१०३. तोरमाण ने भ्रातृ अंकित मुद्रा का असंगत प्राचुर्य निवारण कर स्वांकित दीनार प्रवर्तित किया।

के नागहानी फौत हो गया। इस वाक़्या के थोड़े अरसः बाद परवरसेन अपने खालू जो इन्दर की हमराही में हिन्दुस्तान के बडे बडे तीरथ और मन्दिर देखने के लिये गया। इन्ही दिनों तकदीर इलाही से हिरन की जिन्दगी के दिन भी पूरे हो गये और वह तीस साल हुकूमत करके इस जहान् से रुखसत हुआ। राजा हिरन बे औलाद था। इसलिए हुकूमत का चिराग बे रौनक रहा। यह देखकर अराकीन सल्तनत महाराज विक्रमाजीत की खिदमत में हाज़िर हुए जो हिन्दुस्तान का ताजदार था। उससे इल्तजा की कि वह सल्तनत कश्मीर अपने कब्ज इक्तदार में लाए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०३ में 'भ्राताह' का 'बालाह' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०३ (१) दीनार : संस्कृत दीनार शब्द रोमन दिनारियस शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। यह शब्द आज भी जेगोस्लोविया की मुद्रा के लिये प्रयोग किया गया है। कश्मीर में दीनार मुद्राओं के लिये प्रायः प्रयोग किया जाता था। यह स्वर्ण, रजत तथा ताम्र तीनों धातुओं में टंकणित होता था। एक सौ कौड़ी का एक ताम्र दीनार होता था। कल्हण जब वर्णन करता है कि एक हजार दीनार मासिक वेतन अधिकारियों को दिया जाता था। तो उसका अर्थ यह पैसा ही है। तरंग ८:१८; ७:१४५, १६३; ४१८ तथा ८:१९१८ द्रष्टव्य है। मेरी बाल्यावस्था में सन् १९१४—१९१६ में काशी में एक ताम्बे के पैसा का १० से ४० कौड़ी मिलती थी। कौड़ी का प्रचलन सन् १९२० के पश्चात् प्रायः नगरों में बन्द हो गया। उसका स्थान अधेला आधा पैसा तथा एक पैसा में मिलने वाली तीन पाई बृटिश राज्य काल में ले लिया था। बारह पाई का एक आना १६ आना का एक रुपया तथा एक पैसा में ३ पाई और २ अधेला मिलता था। चार पैसा या आठ अधेला का एक आना होता था। दो पैसे का एक सिक्का टका या टकहवा सन् १९२० तक खूब चलता था परन्तु उसका प्रचलन भी बृटिश अमलदारी में बन्द कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त चाँदी की दुअन्नी चवन्नी तथा अठन्नी चलती थी। एक आना का सिक्का मिश्रित धातु का चलता था। इस समय एक सौ पैसा का एक रुपया चलने लगा है।

दीनार ३२ रत्ती का सुवर्ण का सामान्यतः होता था। संस्कृत भाषा में यह शब्द प्रचलित हो गया था। ईरान तथा सीरिया में अरबों के आक्रमण के पूर्व दीनार प्रचलित था। अरबों के यहाँ मुद्रा टंकणित नहीं होती थी। अरब विजय के पश्चात् अपने सल्तनत में 'दिरहेम' अरबों ने प्रचलित किया। यह दीनार शब्द का ही तद्भव रूप है।

आइने अकबरी के अनुसार दीनार एक दिरहम का तीन बँटा सातवाँ वजन में होता था।

फरिश्ता लिखता है कि दीनार दो रुपयों के बराबर होता था। रोमन लोगों का दिनेरियस रजत मुद्रा था जब कि हिन्द दीनार सुवर्ण का होता था। रोमन दिनेरियस सुवर्ण का भी होता था। पेरीप्लस का लेखक अद्रियन लिखता है कि 'दिनारी' स्वर्ण और रजत के यूरोप से 'बर्यगजा' अर्थात् भड़ोच भेजे जाते थे।

मामवज्ञाय राज्ञेव कस्मादेतेन वल्गितम् ।
इति तं पूर्वजो राजा क्रोधनो बन्धने व्यधात् ॥ १०४ ॥

१०४. राजा के समान इसने मेरी अवज्ञा कर किस हेतु औद्धत्य किया ? इस पूर्ववर्ती (ज्येष्ठभ्राता) क्रोधी राजा ने उसे बन्धन में कर दिया।

चिरं स्थितित्यक्तशुचस्तत्र तस्याऽञ्जनाभिधा ।
ऐक्ष्वाकस्याऽऽत्मजा राज्ञी वज्रेन्द्रस्याऽऽस्त गुर्विणी ॥१०५॥

१०५. वह चिरकाल तक वहाँ रहते, शोकरहित हो गया। उसकी अंजना नामक रानी गर्भवती हुई, जो ऐश्वाकु वज्रेन्द्र की आत्मजा थी।

आसन्नप्रसवा भर्त्रा सा त्रपार्तेन बोधिता ।
सुतं प्रविश्य प्रासोष्ट कुलालनिलये क्वचित् ॥ १०६ ॥

१०६. उसके आसन्नप्रसवा होने पर त्रपा पीड़ित पति ने उससे कहा—कहीं कुलाल निलय में जाकर प्रसव करो।

स कुम्भकारगेहिन्या काक्येव पिकशावकः ।
पुत्रीकृतो राजपुत्रः पर्याप्तं पर्यवर्धत ॥ १०७ ॥

१०७. जिस प्रकार काकी[1] पिक शावक का वर्धन करती है, उसी प्रकार कुम्भकार की गृहिणी ने पुत्रीकृत उस राजपुत्र का पर्याप्त संवर्धन किया।

जनयित्र्याः कुलाल्याश्च रक्षित्र्या विदितोऽभवत् ।
रत्नसूतेर्भुजंग्याश्च प्रच्छन्न इव शेवधिः ॥ १०८ ॥

१०८. उसे उसकी माता तथा रक्षिका कुलाली उसी तरह जानती थी, जैसे प्रच्छन्न मूल्यवान निधि को पृथ्वी तथा भुजंगिनी[1] जानती हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०४ में 'एतेन' का पाठभेद 'तोरमाणेन' मिलता है।

श्लोक संख्या १०६ में 'सा त्रपार्तेन' का पाठभेद 'सत्रपं तेन' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०७ (१) काकी : कोयल के बच्चे को कौआ अपना समझ कर पालता है। यह केवल गाथा नहीं है। वास्तविकता है। कवि की कल्पना नहीं है। कवि का सत्य दर्शन वर्णन है। कोयल अपना घोंसला नहीं बनाती। वह अण्डा वहाँ देती है जहाँ कौआ अपना घोंसला या नीड बनाता है। वह घोंसले में जाकर अण्डा देती है। तत्पश्चात् अपने अण्डे का परित्याग कर उड़ जाती है। कालिदास ने दुष्यन्त के मुख से अभिज्ञान शकुन्तला नाटक में कहलवाया है—स्त्रियाँ सर्वदा धोखा देती हैं—उनकी उपमा 'प्राग् अन्तरिक्षगमनात्' से देता है। तरंग ८:३१७५ तथा ३१७८ भी द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०८ में 'शेवधिः' का पाठभेद 'सेवधि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०८ (१) भुजंगिनी : पृथ्वी में गड़े रत्न को पृथ्वी तथा भुजंग जानता है। कंजूसों के लिये भारत में कोने कोने में सभी भाषाओं में कहावत प्रचलित है कि वे मरने पर सर्प बनकर पृथ्वी में गड़े धन पर बैठते हैं। कल्हण उसी कहावत का यहाँ काव्य रूप में वर्णन करता है।

पौत्रः प्रवरसेनस्य गिरा मातुर्नृपात्मजः ।
पैतामहेन नाम्नैव कुलाल्या ख्यापितोऽभवत् ॥ १०६ ॥

१०९. माता के कहने पर कुलाली ने प्रवरसेन के पौत्र नृपात्मज को पितामह के नाम से प्रख्यात किया।

वर्धमानः स संपर्कं न सेहे सहवासिनाम् ।
तेजस्विमैत्रीरसिकः शिशुः पद्म इवाऽम्भसाम् ॥ ११० ॥

११०. वर्धमान वह शिशु तेजस्वियों के मैत्री का प्रेमी था। उसने सहवासियों का उसी प्रकार सम्पर्क नहीं किया, जैसे रवि मैत्री का प्रेमी पद्म, जल का सम्पर्क नहीं करता।

तं कुलीनैश्च शूरैश्च विद्याविद्भिश्च दारकैः ।
अन्वीतमेव ददृशुः क्रीडन्तं विस्मयाज्जनाः ॥ १११ ॥

१११. कुलीन शूर विद्याविद् बालकों के साथ ही क्रीड़ा करते हुये, उसे लोग विस्मय पूर्वक देखते थे।

स्ववृन्दस्याऽभ्युदारौजा राजा चक्रे स दारकैः ।
मृगेन्द्रशावः क्रीडद्भिर्वने बालमृगैरिव ॥ ११२ ॥

११२. साथ में क्रीड़ा करते बालकों ने उस तेजस्वी को उसी प्रकार अपने दल का राजा बना लिया, जैसे वन में साथ क्रीड़ा करते बाल मृग सिंह शावक को।

संविभेजेऽनुजग्राह वशीचक्रे च सोऽर्भकान् ।
अराजोचितमाचारं नैव कंचिदसेवत ॥ ११३ ॥

११३. उसने संविभाग एवं अनुग्रहण पूर्वक बालकों को वश में कर लिया और कभी अराजोचित आचार नहीं किया।

भाण्डादि कर्तुं मृत्पिण्डं कुम्भकारैः समर्पितम् ।
स्वीकृत्य चक्रिरे तेन शिवलिङ्गपरम्पराः ॥ ११४ ॥

११४. कुम्भकारों के भाण्डादि निर्माण हेतु प्रदत्त मृत्पिण्ड को लेकर, वह शिव लिंग की परम्परा तैयार करता था।

तथा साश्चर्यचर्यः स क्रीडञ्जातु व्यलोक्यत ।
मातुलेन जयेन्द्रेण सादरं चाभ्यनन्द्यत ॥ ११५ ॥

११५. उस प्रकार के आश्चर्य जनक कृत्यशाली क्रीड़ा करते, उस बालक को कदाचित् मातुल जयेन्द्र ने देखा और सादर अभिनन्दन किया।

आवेद्यमानं शिशुभिस्तं जयेन्द्रोऽयमित्यसौ ।
भूपालवत्सावहेलं पश्यन्नन्वग्रहीदिव ॥ ११६ ॥

११६. शिशुओं ने ज्ञात कराया 'यह जयेन्द्र है,' तो भूपाल सदृश उसने अवहेलना पूर्वक देखते हुए मानो अनुग्रह किया।

संभाव्य सत्त्वावष्टम्भात्तमसामान्यवंशजम् ।
सादृश्याद्भगिनीभर्तुर्भागिनेयमशङ्कत ॥ ११७ ॥

११७. प्रबल साहस के कारण उसे असामान्य कुलोत्पन्न समझकर भगिनीपति के सादृश्य से भगिनी पुत्र की शङ्का (जयेन्द्र) ने की।

सत्वरस्तत्त्वजिज्ञासारसेनानुससार तम् ।
प्राप्तस्तद्गृहमौत्सुक्यात्स्वसारं च व्यलोकयत् ॥ ११८ ॥

११८. वस्तु स्थिति जानने की जिज्ञासा रससे उत्सुकता पूर्वक अनुसरण कर (जयेन्द्र) शीघ्र उसके घर गया और अपनी बहन को देखा।

सा स चान्योन्यमुन्मन्यू पश्यन्तौ भ्रातरौ चिरात् ।
निश्श्वासद्विगुणोष्माणि मुहुरश्रूण्यमुञ्चताम् ॥ ११९ ॥

११९. उन दोनों भाई बहन ने देर तक एक दूसरे को उत्कण्ठा पूर्वक देखा और पुनः निश्वास[1] के कारण अत्यधिक अश्रुपात किया।

कुलाल्या दारको मातः कावेताविति पृष्टवान् ।
अकथ्यतेत्थं वत्सैषा माताऽयं मातुलश्च ते ॥ १२० ॥

१२०. दारक (पुत्र) के यह पूछने पर 'माता ! ये दोनों कौन हैं' कुलाली ने इस प्रकार कहा—'वत्स, यह तुम्हारी माता एवं यह मातुल है।'

पितुर्बन्धेन सक्रोधं तं कालापेक्षयाऽक्षमम् ।
शिक्षयित्वा जयेन्द्रोऽथ कार्यशेषाय निर्ययौ ॥ १२१ ॥

१२१. पिता के बन्धन से क्रुद्ध एवं काल की अपेक्षा से असमर्थ उसको जयेन्द्र शिक्षा देकर अवशिष्ट कार्य हेतु चला गया।

उरिपञ्जोत्पादनासज्ये तस्मिन्भ्राता यदृच्छया ।
बन्धात्त्यक्तो नृतरणिस्तोरमाणोऽस्तमाययौ ॥ १२२ ॥

१२२. वह जब विद्रोह हेतु तैयार हुआ। उसी समय स्वेच्छा से भाई (हिरण्य) ने मानव सूर्य (तोरमाण) को बन्धन मुक्त कर दिया, जो अस्त हो (मर) गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११८ के 'स्तत्त्व' का पाठभेद 'स्तर्क' मिलता है।

श्लोक संख्या ११९ में 'निश्श्वास' का पाठभेद 'निःश्वासात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११९ (१) निश्वास : कल्हण ने इसी प्रकार की उपमा राज० त० १:१५७ में दी है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२२ में 'त्पादनासज्जे' का, 'त्पादनसज्जे' तथा 'बन्धात्त्य' का पाठभेद 'बन्धान्मु' मिलता है।

निवार्य मरणोद्योगं मातुर्निर्वेदखेदितः ।
ययौ प्रवरसेनोऽथ तीर्थौत्सुक्याद्दिगन्तरम् ॥ १२३ ॥

१२३. माता के मरणोद्योग[1] को रोक कर वेदना से खिन्न, प्रवरसेन तीर्थ करने की उत्सुकता से दिगन्तर गया ।

रक्षित्वा दशमासोनाः क्ष्मामेकत्रिंशतिं समाः ।
तस्मिन्क्षणे हिरण्योऽपि शान्तिं निस्संततिर्ययौ ॥ १२४ ॥

१२४. उस समय सन्तान रहित हिरण्य भी दश मास कम इकतीस वर्ष पृथ्वी की रक्षा कर शान्ति (मृत्यु) प्राप्त किया ।

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ १२५ ॥

१२५. उस समय उज्जैनी में एकछत्र चक्रवर्ती श्रीमान् विक्रमादित्य[1] हुआ जिसका अपर नाम हर्ष था ।

पादटिप्पणियाँ :

१२३ (१) मरणोद्योग : तोरमाण के मरने पर रानी स्वयं सती होना चाहती थी । उसके इस प्रयास को प्रतीत होता है प्रवरसेन ने रोका और माता को सती होने से विरत किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२५ में 'हर्षापराभिध.' का पाठभेद 'हर्षाभिधा पुरा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१२५ (१) विक्रमादित्य : तरंग २:७ में कल्हण ने हर्ष का उल्लेख किया है । श्लोक २:६ में कल्हण स्पष्ट कहता है कि वहाँ वर्णित हर्ष विक्रमादित्य शकारि विक्रमादित्य नहीं था । कल्हण के अनुसार शकारि विक्रमादित्य वही मालूम पड़ते हैं । शकों को पददलित करने के कारण शक संवत् ईसवी सन् ७८ में प्रचलित किया गया था । शक पराजय का उल्लेख कल्हण अगले १२८ वें श्लोक में पुनः करता है । उसने इस तरंग के श्लोक ३३० में पुनः कहा है कि शीलादित्य प्रतापादित्य का पिता हर्ष विक्रमादित्य था । ह्वेन सांग ने शीलादित्य का उल्लेख अपने पर्यटन संस्मरण में किया है । (२:२६१) उसका शासन काल सन् ५८० ईसवी मालवा में था ।

शक संवत् दक्षिण तथा कश्मीर में भी चलता है । गणतंत्र के पश्चात् भारत सरकार ने भी शक ही संवत् को स्वीकार कर मान्यता दी है । सरकारी कागजों में अब इसी का व्यवहार किया जाता है । इस समय विक्रम संवत् २०२५ शक संवत् १८९० तथा अंग्रेजी सन् १९६८ है ।

मुसलिम इतिहासकारों ने विक्रमादित्य के सम्बन्ध में भ्रम पैदा कर दिया है । वे एक नाम विक्रमादित्य का ही दुहराते हैं । किसी भी विक्रमादित्य के सम्बन्ध में न कुछ आलोचना करते हैं और न उनका समय आदि देते हैं । उनसे इस सम्बन्ध में कुछ सहायता नहीं मिलती ।

भूपमद्भुतसौभाग्यं श्रीर्वद्धरभसाऽभजत् ।
विहाय हरिबाहूंश्च चतुरः सागरांश्च यम् ॥१२६॥

१२६. अद्भुत सौभाग्यशाली जिसके आश्रय में विष्णु के चारों बाहु और चारों समुद्र को छोड़कर, लक्ष्मी स्वतः सवेग आयी।

लक्ष्मीं कृत्वोपकरणं गुणे येन प्रवर्धिते।
श्रीमत्सु गुणिनोऽद्यापि तिष्ठन्त्युद्धुरकंधराः ॥१२७॥

१२७. जिसने लक्ष्मी को उपकरण (बनाकर) गुण (ों) का वर्धन किया, जिसके कारण गुणी (जन) धनियों में उन्नत स्कन्ध बैठते हैं।

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः।
शकान्विनाश्य येनाऽऽदौ कार्यभारो लघूकृतः ॥१२८॥

१२८. म्लेच्छों[१] के नाश हेतु पृथ्वी पर अवतरित होने वाले हरि के कार्य भार को आदि में ही जिसने शकों का विनाश कर लघु (हल्का) कर दिया।

नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम्।
तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सर्वास्थानस्थमासदत् ॥१२९॥

१२९. नाना दिगन्तरों से प्रख्यात एवं गुणवानों के लिये सुलभ, उस नृप के पास जो कि सार्वजनिक सभा भवन में स्थित था—कवि मातृगुप्त पहुँचा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२७ में 'गुणे' का 'गुणो', 'प्रवर्धिते' का 'प्रवर्धने' तथा 'त्युद्धुर' का पाठभेद 'त्युद्धत' मिलता है।

श्लोक संख्या १२८ में 'लघू' का पाठभेद 'लघु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२८ (१) म्लेच्छनाश : यहाँ पर कल्हण ने कल्कि अवतार की ओर संकेत किया है। भगवान् कल्कि अवतार लेकर म्लेच्छों का संहार करेंगे। गीत गोविन्द ने इसका उल्लेख किया है।

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्।
केशव धृतकल्किशरीर ॥

१२९ (१) मातृगुप्त : कुछ विद्वान् मातृगुप्त को कवि कालिदास मानते हैं। इन्हीं विद्वानों ने यह भी माना है कि जिस विक्रमादित्य के सभा में नव रत्नों का होना कहा जाता है वह छठीं शताब्दी का विक्रमादित्य हर्ष था। डाक्टर भाउदा जी का तर्क है कि कालिदास और मातृगुप्त का शाब्दिक अर्थ एक ही है। काली का अर्थ माता होता है। दास का अर्थ गुप्त होता है। इस प्रकार कालिदास ही मातृगुप्त है।

कल्हण ने कालिदास का राजतरंगिणी में कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। प्राकृत काव्य सेतु बन्ध जो प्रवरसेन के अनुरोध पर कालिदास ने लिखा था उसका भी उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार मिलाया गया है कि प्रवरसेन द्वितीय का उत्तराधिकारी मातृगुप्त दिखाया गया है।

क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में मातृगुप्त की कविताओं का उल्लेख किया है। श्री वल्लभदेव की सुभाषितावली में भी मातृगुप्त के पदों का उल्लेख

मिलता है। एक मातृगुप्त का उल्लेख अलंकार एवं नाट्य शास्त्र के प्रणेता के रूप में मिलता है।

मातृगुप्त को कालिदास मानने में आधुनिक विद्वानों ने असहमति प्रकट की है। बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भाऊदा जी का मत है कि मातृगुप्त ही कालिदास हैं।

डाक्टर थी हूमरन्ले का मत है कि पुरा कथा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कही जाती है वह राजा यशोवर्धन पर लगती है जो वास्तव में हूण विजेता था। प्रोफेसर पाठक भी इस मत का समर्थन करते हैं। कालिदास कृत रघुवंश में रघु के विजय का वर्णन वस्तुतः हूणों के सम्बन्ध में है जो कश्मीर में रहते थे। क्योंकि कालिदास उसी सन्दर्भ में केसर का वर्णन करता है जो केवल भारत में कश्मीर में ही होता है। सम्राट् समुद्रगुप्त ने मातृगुप्त का उल्लेख किया है।

मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्।
कश्मीरराजोऽप्यभवत् सरस्वतीप्रसादतः॥

सम्राट् समुद्रगुप्त का निधन सन् ३६४ ई० में हुआ था। अतएव मातृगुप्त का उसके पूर्व होना निश्चित प्रतीत होता है।

आइने अकबरी के अनुसार मातृगुप्त एक कश्मीरी ब्राह्मण था। राजा विक्रमादित्य उसके गुणों तथा बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उसे कुछ द्रव्य देकर कश्मीर भेजा। उसने कश्मीर के मन्त्रियों तथा कुलीनों के नाम एक पत्र दिया। उसे आदेश दिया कि वह अकेला यात्रा करे। वह कश्मीर आया। आदेशानुसार पत्र दिया। पत्र में लिखा था—इसे कश्मीर का राज्य दे दिया जाय। कश्मीर के मन्त्रियों तथा कुलीनों ने पत्र पर विचार करने के लिये परिषद् बुलायी। अन्त में निश्चय किया गया कि राजा के आदेशों का पालन किया जाय।

हसन लिखता है—राजा हिरन बे औलाद था। इस लिये हुकूमत का चिराग बे रौनक रहा। यह देखकर आराकीन सल्तनत महाराज विक्रमाजीत की खिदमत में हाजिर हुए। जो हिन्दुस्तान का ताजदार था। उसने इल्तजा की कि वह सल्तनत कश्मीर अपने कब्ज़ा अकदार में लाये। इसके पहले एक बहुत बड़ा इजाज़त केश बरहमन मातृगुप्त जो कश्मीर का था महाराज मज़कूर की खिदमत में गया हुआ था। और बादशाह के खास लश्कर में इन्तहाई मुफलिसी की हालत में ज़िन्दगी औकात बसर कर रहा था।

एक दिन सरदियों के मौसम में राजा विक्रमाजीत नींद से जागा। शमा हवा के चलने से गुम हो गयी थी। दरबार के मुलाज़िमों और चौकीदारों को आवाज़ दी। लेकिन वह गलबा नींद से होशियार न हो सके। मातृगुप्त महलखाना के बाहर बाग के सहन में इन्तहाई परेशानी की हालत में बैठा हुआ था। इसने राजा की आवाज़ सुन ली और फौरन राजा की खिदमत में हाज़िर हो गया। शमा जलाई और राजा के हुज़ूर में कारयाबी पाली। राजा ने पूछा—'किस कदर रात बाकी है—?'

बरहमन ने कहा—'आध पहर।' राजा ने पूछा 'तुझे कैसे मालूम हुआ कि आध पहर रात बाकी है?' मातृगुप्त ने एक इन्तहाई फ़सीह व बलीग फिकरा नज़्म किया हुआ था। जो राजा के सामने पढ़ दिया।

"सरदी की सिद्दत से मेरा जिस्म सौकरकर लोबिया के दाना की तरह हो गया है। और मेरी आग इस तरस ज़ईफ़ हो गयी है कि साँसों की कसरत से मेरे होंट तड़क गये हैं। और भूक की वजह से मेरा हलक और तालू सूक हो गया है। गम और रंज के दरया में डूब गया हूँ। जिसके बाअस नींद मेरी आँखों से इस तरह जाती रही है जिस तरह कोई औरत को बेइज्जत करके निकाल दे। जिस तरह एक बड़े आदमी को जागीर में हो और वह जमीन उससे कम नहीं होती इस तरह यह स्याह रात मुझसे कम नहीं होती।"

स गम्भीरस्य भूभर्तुरनुभावं महाद्भुतम् ।
विविधास्थानसंवृद्धस्तस्याऽभ्यूह्य व्यचिन्तयत् ॥१३०॥

१३०. विविध राज्य सभाओं से सम्बन्धित, उस (कवि) ने उस गम्भीर भूपति के महाद्भुत प्रभाव की कल्पना कर सोचा—

सोऽयमासादितः पुण्यैः चोणिपालो गुणिप्रियः ।
परभागोपलम्भाय पूर्वेऽमुष्य महीभुजः ॥१३१॥

१३१. 'गुणी प्रिय इस भूपाल को (पूर्व) पुण्यों से प्राप्त किया है, उससे उत्कृष्ट नृप प्राप्ति हेतु पूर्व नृपों में देखना होगा।

राजा फमीह् व बलीग इश्लोक सुनकर बहुत महजूज हुआ और इस बरहमन की परीशान हालों पर गस्त हैरान हुआ इसके सलामें मुल्क कश्मीर उसे इनाम दिया। उसी वक्त उसने कश्मीर के लोगों के खत के जवाब में मुन्दरजा जैल खत लिखा।

'मातृगुप्त इस मुल्क की हकूमत पर मा बदौलत की तरफ से सरफराज किया गया है। उसकी अताअत और फर्मां बरदारी अपने ऊपर वाजबी और लाजिम जाने।'

दूसरे दिन बरहमन दरबार में पहुँचा तो राजा ने उसके हाथ में लिफाफा देते हुए कहा कि फौरन कश्मीर जाओ और वहाँ के मतकदर लोग तुम्हें इस लिफाफा को देखकर शाहनशाह बना देंगे। बरहमन ने इन्तहाई मामूली की हालत में राजा का रुक्का अपने हाथ में लिया और कश्मीर की तरफ रवाना हो गया। जिस वक्त हीरापुरा पहुँचा तो वहाँ के सरदारों के हाथ में महाराजा विक्रमाजीत का फरमान दे दिया। खत पढते ही अमीरों में खुशी के शादयाने बजाये और मातृगुप्त को लिबास शाही पहना कर तख्त सल्तनत पर जल्वः अफ़रोज किया।

तनत्रीया—इस मुकाम पर महाराजा विक्रमाजीत के मुख्तसर हालात तारीखी तफसील को मलहूज रखते हुए रदीया करिने किये जाते हैं।

मातृगुप्त राजा विक्रमादित्य के हुक्म से संवत् १३० विक्रमी के हकूमत कश्मीर का तख्त सर पर रख कर सल्तनत के काम में मशगूल हुआ। और हकूमत के सरकरद और अरकान को हस्ब मदारज के शुमार सोना और जरकार खिलअत अता की। रिश्तादारों और मुतल्लकीन को बेइन्तहाई निआमत और मुनासिब और लायक दरजे बख्श कर सरबुलन्द किया। और कश्मीर की नफीस चीजों में से बहुत से उमदः और लतीफ तुहफे मुहय्या करके राजा विक्रमाजीत की खिदमत में भेजे। रियाया पर अदल व अहसान की तरफ मुतवजा होकर अपने मुल्क में जानवरों का कतल बन्द कर दिया। मुल्क की आमदनी से जो कुछ दिन में जमा होता था रात को फिकरा और मुसाकीन को बख्श कर खजाना खाली कर देता था। चार साल और नव माह की मुद्दत हकूमत का जाम पीकर राजा विक्रमाजीत के इन्तकाल की खबर सुनी। उसी वक्त सल्तनत तर्क करके इबादत कबूलियत की। काशी के मुल्क को गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३० में 'महा' का पाठभेद 'गुणा' मिलता है।

श्लोक संख्या १३१ में 'क्षोणि' का 'क्षौणि' तथा 'लम्भाय' का पाठभेद 'रंभाय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३१ (१) दूसरे पद का अर्थ वास्तव में यह प्रतीत होता है मातृगुप्त सोचता है—'अमुष्य पूर्व

मिलता है। एक मातृगुप्त का उल्लेख अलंकार एवं नाट्य शास्त्र के प्रणेता के रूप में मिलता है।

मातृगुप्त को कालिदास मानने में आधुनिक विद्वानों ने असहमति प्रकट की है। बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भाऊदा जी का मत है कि मातृगुप्त ही कालिदास है।

डाक्टर श्री. हृयरन्ले का मत है कि पुरा कथा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कही जाती है वह राजा यशोवर्धन पर लगती है जो वास्तव में हूण विजेता था। प्रोफेसर पाठक भी इस मत का समर्थन करते हैं। कालिदास कृत रघुवंश में रघु के विजय का वर्णन वस्तुतः हूणों के सम्बन्ध में है जो कश्मीर में रहते थे। क्यों कि कालिदास उसी सन्दर्भ में केसर का वर्णन करता है जो केवल भारत में कश्मीर में ही होता है। सम्राट् समुद्रगुप्त ने मातृगुप्त का उल्लेख किया है।

मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्।
कश्मीरराजोऽप्यभवत् सरस्वतीप्रसादतः॥

सम्राट् समुद्रगुप्त का निधन सन् ३६४ ई० में हुआ था। अतएव मातृगुप्त का उसके पूर्व होना निश्चित प्रतीत होता है।

आइने अकबरी के अनुसार मातृगुप्त एक कश्मीरी ब्राह्मण था। राजा विक्रमादित्य उसके गुणों तथा बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उसे कुछ द्रव्य देकर कश्मीर भेजा। उसने कश्मीर के मन्त्रियों तथा कुलीनों के नाम एक पत्र दिया। उसे आदेश दिया कि वह अकेला यात्रा करे। वह कश्मीर आया। आदेशानुसार पत्र दिया। पत्र में लिखा था—इसे कश्मीर का राज्य दे दिया जाय। कश्मीर के मन्त्रियों तथा कुलीनों ने पत्र पर विचार करने के लिये परिषद् बुलायी। अन्त में निश्चय किया गया कि राजा के आदेशों का पालन किया जाय।

हसन लिखता है—राजा हिरन बे औलाद था। इस लिये हुकूमत का निजाम बे रौनक रहा। यह देखकर आराकीन सल्तनत महाराज विक्रमाजीत की खिदमत में हाजिर हुए। जो हिन्दुस्तान का ताजदार था। उसने इल्तजा की कि वह सल्तनत कश्मीर अपने कब्जा अकदार में लाये। इसके पहले एक बहुत बड़ा इजाजत केश बरहमन मातृगुप्त जो कश्मीर का था महाराज मजकूर की खिदमत में गया हुआ था। और बादशाह के खास लश्कर में इन्तहाई मुफलिसी की हालत में जिन्दगी औकात बसर कर रहा था।

एक दिन सरदियों के मौसम में राजा विक्रमाजीत नींद से जागा। शमा हवा के चलने से गुल हो गयी थी। दरबार के मुलाजिमों और चौकीदारों को आवाज दी। लेकिन वह गफलत नींद से होशियार न हो सके। मातृगुप्त महलखाना के बाहर बाग के सहन में इन्तहाई परेशानी की हालत में बैठा हुआ था। इसने राजा की आवाज सुन ली और फौरन राजा की खिदमत में हाजिर हो गया। शमा जलाई और राजा के हुजूर में कारयाबी पाली। राजा ने पूछा—'किस कदर रात बाकी है—?'

बरहमन ने कहा—'आध पहर।' राजा ने पूछा 'तुझे कैसे मालूम हुआ कि आध पहर रात बाकी है?' मातृगुप्त ने एक इन्तहाई फसीह व बलीग फिकरा नज्म किया हुआ था। जो राजा के सामने पढ़ दिया।

"सरदी की शिद्दत से मेरा जिस्म सीमकर लोबिया के दाना की तरह हो गया है। और मेरी आग इस तरस जईफ हो गयी है कि साँसों की कसरत से मेरे होंट तड़क गये हैं। और भूक की वजह से मेरा हलक और तालू खुश्क हो गया है। गम और रंज के दरया में डूब गया हूँ। जिसके बाअस नींद मेरी आँखों से इस तरह जाती रही है जिस तरह कोई औरत को बेइज्जत करके निकाल दे। जिस तरह एक बड़े आदमी को जागीर मे हो और वह जमीन उसमें कम नहीं होती इस तरह यह स्याह रात मुझसे कम नहीं होती।"

स गम्भीरस्य भूभर्तुरनुभावं महाद्भुतम् ।
विविधास्थानसंवृद्धस्तस्याऽभ्यूह्य व्यचिन्तयत् ॥१३०॥

१३०. विविध राज्य सभाओं से सम्वन्धित, उस (कवि) ने उस गम्भीर भूपति के महाद्भुत प्रभाव की कल्पना कर सोचा—

सोऽयमासादितः पुण्यैः क्षोणिपालो गुणिप्रियः ।
परभागोपलम्भाय पूर्वेऽमुष्य महीभुजः ॥१३१॥

१३१. 'गुणी प्रिय इस भूपाल को (पूर्व) पुण्यों से प्राप्त किया है, उससे उत्कृष्ट नृप प्राप्ति हेतु पूर्व नृपों में देखना होगा।

राजा फमीह व बलीग इश्लोक सुनकर बहुत महजूज हुआ और इस बरहमन की परीशान हालो पर सख्त हैरान हुआ इसके सलामें मुल्क कश्मीर उसे इनाम दिया। उसी वक्त उसने कश्मीर के लोगों के नाम के जवाब में मुन्दरजा जैल खत लिखा।

'मातृगुप्त इस मुल्क की हुकूमत पर मा बदौलत की तरफ़ से सरफ़राज किया गया है। उसकी अताअत और फर्मां बरदारी अपने ऊपर वाजबी और लाजिम जाने।'

दूसरे दिन बरहमन दरबार में पहुँचा तो राजा ने उसके हाथ में लिफाफा देते हुए कहा कि फौरन कश्मीर जाओ और वहाँ के मतक़दर लोग तुम्हें इस लिफाफा को देखकर शाहनशाह बना देंगे। बरहमन ने इन्तहाई मामूली की हालत में राजा का रुक्का अपने हाथ में लिया और कश्मीर की तरफ रवाना हो गया। जिस वक्त हीरापुरा पहुँचा तो वहाँ के सरदारों के हाथ में महाराजा विक्रमाजीत का फ़रमान दे दिया। खत पढते ही अमीरों में खुशी के शादयाने बजाये और मातृगुप्त को लिबास शाही पहना कर तख्त सल्तनत पर जलवः अफ़रोज़ किया।

तनबीया—इस मुकाम पर महाराजा विक्रमाजीत के मुख्तसर हालात तारीखो तफ़सील को मलहूज़ रखते हुए रदीया करिने किये जाते हैं।

मातृगुप्त राजा विक्रमादित्य के हुक्म से संवत् १३० विक्रमी के हुकूमत कश्मीर का तख्त सर पर रख कर सल्तनत के काम में मशगूल हुआ। और हकूमत के सरकरद और अरकान को हस्व मदारज के शुमार सोना और जरकार खिलअते अता की। रिश्तादारों और मुतल्लकीन को बेइन्तहाई निआमत और मुनासिब और लायक दरजे बख्श कर सरबुलन्द किया। और कश्मीर की मफ़ीस चीजों में से बहुत से उमदः और लतीफ तुहफे, मुहय्या करके राजा विक्रमाजीत की खिदमत में भेजे। रिआया पर अदल व अहसान की तरफ़ मुतवज्जा होकर अपने मुल्क में जानवरों का कतल बन्द कर दिया। मुल्क की आमदनी से जो कुछ दिन में जमा होता था रात को फिकरा और मुसाफीन को बख्श कर खजाना खाली कर देता था। चार साल और नव माह की मुद्दत हकूमत का जाम पीकर राजा विक्रमाजीत के इन्तकाल की खबर सुनी। उसी वक्त सल्तनत तर्क करके इबादत कबूलियत की। काशी के मुल्क को गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३० में 'महा' का पाठभेद 'गुणा' मिलता है।

श्लोक संख्या १३१ में 'क्षोणि' का 'क्षौणि' तथा 'लम्भाय' का पाठभेद 'रंभाय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३१ (१) दूसरे पद का अर्थ वास्तव में यह प्रतीत होता है मातृगुप्त सोचता है—'अमुष्य पूर्व

यस्मिन्राजनि तत्त्वज्ञैः सूरिभिः संभृतश्रुतैः ।
नाञ्जलिर्दीयते जातु मानाय च गुणाय च ॥१३२॥

१३२. 'जिस राजा को तत्त्व वेत्ताओं, विद्वज्जनों एवं शास्त्रज्ञों को समादर तथा गुण हेतु कभी अञ्जलि नहीं देनी पड़ती।

भङ्गयाऽमुष्मिन्विदधती स्वाभिप्रायप्रकाशनम् ।
वैदग्ध्यवन्ध्यतां नैति बुद्धिः कुलवधूरिव ॥१३३॥

१३३. 'इस राजा से भंगिमा विशेष द्वारा स्वाभिप्राय प्रकाशन में बुद्धि कुल वधू तुल्य वैदग्ध रहित नहीं होती।

खिलीकृतखलालापे युक्तायुक्तविवेक्तरि ।
नायाति सेव्यमानेऽस्मिन्स्वगुणोऽनर्थकारिताम् ॥१३४॥

१३४. 'खलों के निस्सारता को जानने वाले युक्तायुक्त विवेकी, इस नृप की सेवा में स्वगुण अनर्थकारी नहीं होते।

अनाप्नुवद्भिः सावद्यदुर्विदग्धसमशीर्षिकाम् ।
जीवन्मरणमस्याग्रे गुणिभिर्नानुभूयते ॥१३५॥

१३५. 'इसके सम्मुख दुर्विद्ग्ध एवं निन्द्य मूर्ख जनों की तुल्य कोटि में विद्वान् नहीं आते थे। अतएव उन्हें जीवित मरण का अनुभव नहीं होता था।

संभावनानुसारेण प्रवृत्तोऽस्माद्विवेकिनः ।
शोच्यते नाञ्चितोच्छ्वासं प्रीतिदायो महाशयैः ॥१३६॥

१३६. 'संभावना अनुसार प्रवृत्त प्रीतिदायी, उस विवेकी के कारण, महाशयों द्वारा उष्णोच्छ्वास पूर्वक शोचनीय नहीं होता था।[१]

महोभुजा।'—इसके पूर्व के नृप 'परभागोपलम्भाय' अर्थात् इस राजा की उत्कृष्टता सिद्धि हेतु हुए। मातृगुप्त प्रतीत होता है अनेक राजाओं के यहाँ गया था किन्तु उसे केवल विक्रमादित्य हर्ष ही उत्कृष्ट प्रतीत हुआ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १३२ में 'यस्मिन्' का पाठभेद 'मस्मिन्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३६ (१) श्री रणजीत सीताराम पण्डित के अनुसार इस पद का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि विद्वान् निम्न गुणों के व्यक्तियों का आदर होते देखकर ईर्ष्या नहीं करते थे। इसका एक भावात्मक अर्थ हो सकता है—विवेकी भूपति योग्यता अनुसार परितोषिक प्रदान करना कह कर सदाशय जनगण के दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक शोक प्रकाश नहीं करने देता था।

गृह्णन्यथागुणं स्वान्तमुचितप्रतिपत्तिभिः ।
अन्तरज्ञः समस्तानामयमुत्साहवर्धनः ॥१३७॥

१३७. 'तारतम्यवेत्ता उत्साह वर्धक यह (नृप) उचित प्रमाण द्वारा गुणानुसार सबको अन्तःकरण में ग्रहण कर समादृत करता था।

सेवया दृष्टकष्टस्य दाक्षिण्योत्पादने श्रमः ।
अस्य यो न स भृत्यानां हिमाद्रौ हिमविक्रयः ॥१३८॥

१३८. 'कष्ट विज्ञ इस राजा की सेवा हित, शिष्टाचार सम्पादन में हुआ, भृत्यों का श्रम, हिमाद्रि पर, हिम विक्रय[1] तुल्य व्यर्थ नहीं जाता था।

मिथ्याख्यातगुणो नाप्तो नामात्यः कलहप्रियः ।
असत्यसंधः स्थेयो वा नास्थानेऽस्य महीपतेः ॥१३९॥

१३९. 'उस राजा की सभा में मिथ्या प्रशंसित आप्त पुरुष, कलह प्रिय अमात्य तथा असत्यसंध स्थेय नहीं थे।

अश्लीलालापिनोऽन्योन्यं नर्मोक्त्या मर्मभेदिनः ।
अन्यप्रवेशासहनाः संहता[1] नास्य सेवकाः ॥१४०॥

१४०. 'अश्लील आलाप करने वाले, परस्पर नर्मोक्ति द्वारा मर्म भेदी अन्य का प्रवेश न सहने वाले, उसके सेवक नहीं थे।

छन्दानुवर्तिनामेष निजविज्ञानवन्दिनाम् ।
सर्वज्ञंमन्यतान्धानां मुखप्रेक्षी न पार्थिवः ॥१४१॥

१४१. 'यह नृप छन्दानुवर्तियों, प्रशंसकों, एवं सर्वज्ञंमन्यता से अन्धों का मुख देखने वाला नहीं है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १३७ में 'स्वान्त' का 'शान्त' तथा 'स्वन्त' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३८ (१) हिमाद्रि पर जहाँ चारो ओर हिमाच्छादित भूमि तथा शिखर हैं वहा हिम का विक्रय उसी प्रकार व्यर्थ होगा जैसा रानीगंज तथा झरिया के कोयले की खानो में कोयला का विक्रय हेतु ले जाना। वामन पुराण में हिमाद्रि तथा हिमवत् शब्दो का प्रयोग हिमालय के लिये बहुत किया गया है। वामन ६:५५; २४:१०; २६:१५; २८:१३; ३२:८५—८७; ३८:४९; ५०:१४, २५; तथा ५५:५७।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४० में 'नर्मोक्त्या' का पाठभेद 'नर्मोक्ता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४० (१) संहत : दलबन्दी अथवा परस्पर स्वार्थ हेतु टकराते हुए सेवकों के अर्थ में यह शब्द आया है।

अनेन सह संजातः संलापो विपुलोदयः ।
लभ्यते नान्तरा छेत्तुं दुर्जातैर्जातु दुर्जनैः ॥१४२॥

१४२. 'दुर्जात दुर्जनों के लिये दूसरे के साथ किये गये, विपुलोदय युक्त संलाप के बीच में काटने का अवसर नहीं है।

सर्वदोषोज्झितं सेव्यं नृपमेवामिमं मम ।
समासादयतः पुण्यैरदूरे स्वार्थसिद्धयः ॥१४३॥

१४३. 'निर्दोष एवं सेव्य इस नृप को पुण्यों से प्राप्त करने वाले मेरी स्वार्थ सिद्धियाँ निकट हैं।

गम्भीरश्च गुणज्ञश्च स्थिरबुद्धिश्च पार्थिवः ।
एष क्लेशभयं त्यक्त्वा निषेव्यः प्रतिभाति मे ॥१४४॥

१४४. 'गम्भीर, गुणज्ञ, तथा स्थिर बुद्धि यह नृप क्लेश भय त्यागकर, मुझे सेवनीय प्रतीत होता है।

न चास्माद्धनमादाय शङ्कितादन्यराजवत् ।
भ्राम्यतो भूतलेऽमुष्मिन्सेव्योऽन्यः प्रतिभाति मे ॥१४५॥

१४५. 'प्रसन्न इस नृप से अन्य राजाओं के समान धन लेकर, इस भूतल पर भ्रमण करते, मुझे अन्य (नृप) सेव्य प्रतीत नहीं होते।'

इति संचिन्त्य सुदृढं स नवामिव तां सभाम् ।
नारञ्जयन्न चास्ते स्म गुणिगोष्ठीषु मध्यगः ॥१४६॥

१४६. इस प्रकार दृढ़ता पूर्वक चिन्तन कर मध्यस्थित उसने उस सभा को नवीन तुल्य रंजित तथा गुणियों की गोष्ठी में हस्त क्षेप नहीं किया।

मृदुपूर्वं गुणानेव दर्शयन्तं विशां पतिः ।
विशिष्टयोग्यताख्यत्यै विवेदाराधनोन्मुखम् ॥१४७॥

१४७. विशांपति[1] ने विशिष्ट योग्यता ज्ञापन हेतु विनय पूर्वक गुणों को हो प्रदर्शित करते (उस मातृगुप्त को) आराधनोन्मुख जाना।

भेद :

श्लोक संख्या १४४ में 'क्लेश' का पाठभेद ...ता है।

श्लोक संख्या १४५ में 'न चास्मा' का 'न चास्य' ... 'भ्राम्यतो' का पाठभेद 'भ्राम्यते' 'मस्मिन्' मि...

श्लोक संख्या १४६ मे 'नारञ्जयन्न' का पाठ भेद 'नानुरञ्जन्न' तथा "नारञ्जश्च" मिलता है।

श्लोक संख्या १४७ मे 'नेव' का 'नेवं' तथा 'पति.' का पाठभेद 'पतिम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४७ (१) विशांपति : यहाँ पर विशांपति शब्द राजा के अर्थ में कल्हण ने प्रयुक्त किया है।

अचिन्तयच्च नाऽयं स्याद्गुणिमात्रं महाशयः ।
उदात्तं सत्क्रियार्हत्वं वदत्यस्य गभीरता ॥१४८॥

१४८. महाशय (नृप) ने चिन्तन किया—'यह केवल गुणी ही नहीं है, क्योंकि इसकी गम्भीरता उदात्त सत्कार योग्यता को सूचित करती है।'

इति संचिन्त्य राज्ञाऽपि ज्ञातुं तस्यान्तरं मतेः ।
नाक्रियन्त परीक्षार्थं यथावल्लाभसत्क्रियाः ॥१४९॥

१४९. ऐसा चिन्तनकर, राजा ने उसकी आन्तरिक मति जानने की इच्छा से, परीक्षा हेतु उसका यथावत् उचित लाभ सत्कार नहीं किया।

स तेनानुपचारेण तमुदात्ताशयं नृपम् ।
स्वीकर्तारं विदन्धीमान्सिषेवे प्रीतिमाश्रितः ॥१५०॥

१५०. उस बुद्धिमान् ने उदात्ताशय नृप के उस अनौपचारिक व्यवहार से अपने को स्वीकृत समझ, प्रसन्न होकर, सेवा करने लगा।

क्रमोपचीयमानेन[1] सेवाभ्यासेन धीमतः ।
तस्य नोद्वेगमगमत्स्वकाय इव पार्थिवः ॥ १५१ ॥

१५१. उस बुद्धिमान् के क्रम प्रवृद्ध सेवाभ्यास के कारण राजा को अपने शरीर के समान उद्वेग नहीं हुआ।

नातीव स्वल्पया स्थित्या नातीवाऽप्यथ दीर्घया ।
शरन्निशाक्षणेनेव राजा निन्ये प्रसन्नताम् ॥ १५२ ॥

१५२. उसने राजा को अपनी नात्यन्त स्वल्प एवं नात्यन्त दीर्घ स्थिति से शारदीय निशा काल सदृश प्रसन्न किया।[1]

नर्मभिर्गर्भचेटानां द्वाःस्थानां विक्रियाक्रमैः ।
मिथ्यास्तवैर्विटानां च न स क्षोभमनीयत ॥ १५३ ॥

१५३. अन्तः पुरस्थ भृत्यों की नर्मोक्तियों, द्वारपालों के विक्रिया क्रमों (कुत्सित व्यवहारों) एवं विटों की मिथ्या स्तुतियों द्वारा वह क्षुब्ध नहीं हुआ।

विशां शब्द एतरेय ब्राह्मण (८:२६) में —'राष्ट्राणि वै विशः' यजुर्वेद (२०:९) में—'विशि राजप्रतिष्ठितः' अथर्ववेद (३:४:२) में 'त्वां विशो वृणता राज्याय' (४:८ ४ में) 'विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु' लोक, जनता किंवा प्रजा के लिये आया है विश का पति राजतन्त्र में राजा होता और गणतन्त्र में राष्ट्रपति होता है।

१५१ (१) बाण ने हर्षचरित में इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है—'क्रमोपचीयमान।

१५२ (१) इस पद का भावात्मक अर्थ यह भी प्रतीत होता है—'उसने अपनी सम स्थिति से नृप को वैसे ही प्रसन्न किया जिस प्रकार शरद् काल करता है।'

प्रसन्नालापसंप्राप्तौ छायाग्रह इवाचलः ।
प्रतिस्पर्धीव च क्रुध्यन्नावज्ञायामभूत्प्रभोः ॥ १५४ ॥

१५४. प्रभु के प्रसन्नता पूर्ण आलाप की संप्राप्ति में छाया ग्रह तुल्य अचल रहता और उनकी अवज्ञा से प्रतिस्पर्धी की तरह क्रुद्ध नहीं होता था।

वीक्षणं राजदासीनां राजद्विष्टैः सहासनम् ।
राजाग्रे च कथां नीचैः कालविन्नाचचार सः ॥ १५५ ॥

१५५. काल विज्ञ वह राजदासियों का अवलोकन, राजद्रोहियों के साथ आसन, एवं राजा के सम्मुख निम्नस्तरीय जनों से वार्तालाप नहीं करता था।

स्वभावाद्राजपुरुषैः सजनै राजनिन्दकैः ।
नास्मात्प्रभोरुपालम्भो लेभे पैशुन्यजीविभिः ॥ १५६ ॥

१५६. स्वभाव से नृप के विश्वस्त राजनिन्दक गुप्तचरों ने इसके द्वारा प्रभु का उपलम्भ (निन्दा) नहीं प्राप्त की (सुनी)।

यदद्भिरादरात्स्थैर्यं वैफल्याग्रन्वहं प्रभोः ।
निन्ये नोत्साहशैथिल्यं सेवोत्साहासहिष्णुभिः ॥ १५७ ॥

१५७. उसके सेवा उत्साह को न सहने वाले सेवको प्रति दिन आदर पूर्वक "प्रभु की सेवा विफल है" आदि कहकर भी (उसके) सेवा उत्साह को शिथिल नहीं कर सके।

अन्योत्कर्षानपि यदन्प्रसङ्गेन निराग्रहः ।
स्वविद्याद्योतकः सोऽभूत्सभ्यानां हृदयंगमः ॥ १५८ ॥

१५८. कथा प्रसंग में अन्योत्कर्ष को कहते हुए भी, आग्रह रहित एवं विद्या प्रकाशक उसे सभ्य[1] जनों ने हृदयंगम किया।

दूसरा भावार्थ यह भी हो सकता है—'शारदीय निशा तुल्य वह भूपति के समीप अत्यल्पकाल अथवा सुदीर्घ समय अवस्थान न कर राजा को प्रसन्न किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५७ में 'नोत्साह' का पाठभेद 'सोत्साह' मिलता है।

श्लोक संख्या १५८ में 'सभ्याना' का पाठभेद 'सत्याना' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५८ (१) सभ्य : सभा के सदस्य को सभ्य कहते थे। विक्रमादित्य की सभा में नवरत्नों का होना कहा जाता है। उनमें महाकवि कालिदास एक थे। कालान्तर में सभा शब्द का प्रयोग खुली सार्वजनिक सभा के लिये होने लगा। भिक्षाचर ने (त० ८.९१२) श्रीनगर के नागरिकों की सभा बुलायी थी।

एवं स सेव्यमानस्तमुद्योगेन बलीयसा ।
अनिर्विण्णो मातृगुप्तः षड्ऋतूनत्यवाहयत् ॥ १५९ ॥

१५९. तत्परता पूर्वक अत्यधिक उसकी सेवा करने और बिना खिन्न हुए, मातृगुप्त ने छः ऋतुओं को व्यतीत किया ।

अथ तं कृशसर्वाङ्गं धूसरं जीर्णवाससम् ।
बहिर्जातु विनिर्यातो राजा वीक्ष्य व्यचिन्तयत् ॥ १६० ॥

१६०. बाहर जाते हुए राजा ने कदाचित् सर्वांग कृश, धूलि धूसर, जीर्ण वस्त्र युक्त उसे देखकर, चिन्तन किया—

वैदेशिको निश्शरणो गुणवान्बान्धवोज्झितः ।
दार्ढ्यं जिज्ञासुना कष्टं सोऽयमायासितो मया ॥ १६१ ॥

१६१. 'इसकी दृढ़ता की जिज्ञासा में विदेशी निःशरण गुणवान बान्धव हीन इसे कष्ट पहुँचाया ।

कोऽस्याश्रयः किमशनं कानि प्रावरणानि वा ।
इत्यैश्वर्यविमूढेन मया हन्त न चिन्तितम् ॥ १६२ ॥

१६२. खेद है कि, (हन्त) ऐश्वर्य मूढ़ मैंने यह भी नहीं चिन्तन किया कि इसका कौन आश्रय है, क्या भोजन है और क्या वसन है ।

वसन्तेनेव न मया शोभयाऽद्यापि योजितः ।
शीतवातातपैः शुष्यन्सोऽयं पुरुषपादपः ॥ १६३ ॥

१६३. मैंने वसन्त के समान शीत, वात, एवं आतप से शुष्क कर इस पुरुष पादप को आज भी शोभा से युक्त नहीं किया ।

अस्य ग्लानस्य भैषज्यं निर्विण्णस्य विनोदनम् ।
श्रान्तस्य वा क्लमच्छेदं को विदध्यादसंपदः ॥ १६४ ॥

१६४. 'इस निर्धन ग्लान का भैषज्य, खिन्न का विनोदन एवं श्रान्त का क्लमच्छेद कौन करे ?

नास्मै चिन्तामणिं दद्यां नामृतं वा निषेवितः ।
मया यदयमेतावद्व्यामूढेन परीक्ष्यते ॥ १६५ ॥

१६५. सेवित होकर इसे चिन्तामणि अथवा अमृत तो नहीं दे दूँगा, जो कि मूढ़ मैं इसकी इतनी परीक्षा लेता हूँ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५९ में 'अनिर्विण्णो' का पाठभेद 'अनिर्विन्नो' मिलता है ।

श्लोक संख्या १६१ में 'यासितो' का पाठभेद 'वासितो' मिलता है ।

श्लोक संख्या १६५ में का 'दद्यां' पाठभेद 'दध्यां' मिलता है ।

तदमुष्य गुणित्वस्य तीव्रसेवाश्रमस्य च ।
प्रतिपत्त्या कतमया तावदानृण्यमाप्नुयाम् ॥ १६६ ॥

१६६. 'तीव्र सेवाश्रमी एवं गुणी इससे मैं किस समादर द्वारा उऋणता प्राप्त कर सकता हूँ ?"

इति चिन्तयतस्तस्य राज्ञस्तं सेवकं प्रति ।
स्वप्रसादोचिता काचित्प्रत्यभान्नैव सत्क्रिया ॥ १६७ ॥

१६७. इस प्रकार चिन्ता करते उस नृपति को उस सेवक के प्रति स्वप्रसादोचित कोई सत्कार नहीं प्रतीत हुआ।

ततः प्रावर्तत स्फारनीहारलववाहिभिः ।
दहन्निवाङ्गं प्रालेयपवमानैर्हिमागमः ॥ १६८ ॥

१६८. तदनन्तर प्रचुर नीहारकणवाही हिम वायु से युक्त हिमागम (शिशिर) अंग को दग्ध सा करता (हुआ) आया।

संततध्वान्तमिषतस्तीव्रशीतवशीकृताः ।
आशाश्चकाशिरे नीलनिचोलाच्छादिता इव ॥ १६९ ॥

१६९. तीव्र शीत से विवश दिशायें निरन्तर (घने) अन्धकार के व्याज से नील निचोल से आच्छादित तुल्य शोभित हुईं।

शीतार्त्या द्युमणावौर्वदहनोष्माभिलाषतः ।
द्रुतं यातीव जलधिं दिनानि लघुतां ययुः ॥ १७० ॥

१७०. शीत त्रास के कारण मानो बड़वाग्नि ऊष्मा की अभिलाषा से, सूर्य के शीघ्र जलनिधि गमन करने पर, दिन छोटे होने लगे।

अथ दीपोज्ज्वले धाम्नि लसद्दीप्तहसन्तिके ।
कदाचिन्नृपतिर्दैवादर्धरात्रे व्यबुध्यत ॥ १७१ ॥

१७१. किसी समय जब दीप से प्रकाशित गृह में प्रज्वलित अंगारधानी (हसन्ती) शोभित हो रही थी—राजा अकस्मात् (दैवात्) अर्धरात्रि में प्रबुद्ध हुआ।

स हेमन्तानिलैर्भूरिझांकारपरुषैः पुरः ।
दीपान्प्रकम्पितान्नीपत्प्रविष्टैर्धाम्नि दृष्टवान् ॥ १७२ ॥

१७२. उसने गृह में प्रविष्ट प्रभूत झांकार[1] ध्वनि से परुष, हेमन्त कालीन वायु से प्रकम्पित दीप सामने देखा।

श्लोक संख्या १६६ में 'प्नुयाम्' का पाठभेद 'प्नुयात्' मिलता है।

श्लोक संख्या १७१ में हसन्तिका' का पाठभेद 'मानान्तिका' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७२ (१) झांकार : इस शब्द का उल्लेख कल्हण ने पुनः तरंग ८.९५३ में किया है।

तानुज्ज्वलयितुं भृत्यानन्विष्यन्नभ्यधात्ततः ।
यामिकेषु बहिः सज्जः को वर्तत इति स्फुटम् ॥ १७३ ॥

१७३. तदनन्तर उन्हें प्रज्वलित करने के लिये भृत्यों को खोजते हुए सुस्पष्ट कहा—"बाहर यामिक[1] में कौन उपस्थित है ?"

सुखसुप्तेषु सर्वेषु बाह्यकक्ष्यान्तरात्ततः ।
राजन्नयमहं मातृगुप्त इत्यशृणोद्वचः ॥ १७४ ॥

१७४. उस समय सभी लोग सुख पूर्वक सुप्त थे। बाह्य कक्ष में से—"राजन् ! मैं मातृगुप्त हूँ" यह वाणी (राजा ने) सुनी।

प्रविशेति स्वयं राज्ञा दत्तानुज्ञस्ततो गृहम् ।
लक्ष्मीसांनिध्यरम्यं तदद्दष्टोऽन्यैर्विवेश सः ॥ १७५ ॥

१७५. राजा के स्वयं यह आज्ञा देने पर 'प्रवेश करो'—बिना दूसरे के ज्ञात हुये, गृह में प्रवेश किया।

दीपानुज्ज्वलयेत्युक्तो निष्पाद्य चतुरः पदैः ।
बहिर्ययियासुरूचेऽथ क्षणं तिष्ठेति भूभुजा ॥ १७६ ॥

१७६. 'दीपों को जलाओ'—कहे जाने पर, निष्पादित करके (दीप जलाकर) चार पद बाहर जाने पर राजा ने उससे कहा,—'क्षण भर रुको'।

स भयद्विगुणीभूतशीतकम्पः प्रभोः पुरः ।
किंस्विद्वक्तीति विमृशन्नातिदूरेऽभ्युपाविशत् ॥ १७७ ॥

१७७. भय से उस (मातृगुप्त) का शीत कम्पन द्विगुणित हो गया। 'वह क्या कहेंगे।' विचार करते प्रभु के सम्मुख न अति दूर बैठ गया[1]।

अथ पप्रच्छ भूपालः कियत्यस्ति निशेति तम् ।
सोऽभ्यधाद्देव यामिन्या यामः सार्धोऽवशिष्यते ॥ १७८ ॥

१७८. राजा ने उससे पूछा—'कितनी रात्रि शेष है ?' उसने कहा—'यामिनी का डेढ़ याम (डेढ़ प्रहर) अवशिष्ट है।'

---

१७३ (१) यामिक : याम का अर्थ रात्रि तथा प्रहर दोनों होता है। रात्रि में पहरा देने वालों को यामिक कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७५ में 'दृष्टो' का पाठभेद 'पृष्टो' मिलता है।

श्लोकसंख्या १७६ में 'यियासुरूचेऽथ' का पाठभेद 'ययौ स ऊचेय', तथा 'यियासुरूचे च' मिलता है।

श्लोक संख्या १७७ में 'भय' का पाठभेद 'भय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७७ (१) बैठ गया : यहाँ पर कल्हण ने 'उपाविशत्' शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ बैठना होता है। अन्य अनुवादकर्ताओं ने 'वह खड़ा हो गया' अर्थ किया है।

तदमुष्य गुणित्वस्य तीव्रसेवाश्रमस्य च।
प्रतिपत्त्या कतमया तावदानृण्यमाप्नुयाम् ॥ १६६ ॥

१६६. 'तीव्र सेवाश्रमी एवं गुणी इससे मैं किस समादर द्वारा उऋणता प्राप्त कर सकता हूँ ?''

इति चिन्तयतस्तस्य राज्ञस्तं सेवकं प्रति।
स्वप्रसादोचिता काचित्प्रत्यभान्नैव सत्क्रिया ॥ १६७ ॥

१६७. इस प्रकार चिन्ता करते उस नृपति को उस सेवक के प्रति स्वप्रसादोचित कोई सत्कार नहीं प्रतीत हुआ।

ततः प्रावर्तत स्फारनीहारलववाहिभिः।
दहन्निवाङ्गं प्रालेयपवमानैर्हिमागमः ॥ १६८ ॥

१६८. तदनन्तर प्रचुर नीहारकणवाही हिम वायु से युक्त हिमागम (शिशिर) अंग को दग्ध सा करता (हुआ) आया।

संततध्वान्तमिषतस्तीव्रशीतवशीकृताः।
आशाश्चकाशिरे नीलनिचोलाच्छादिता इव ॥ १६९ ॥

१६९. तीव्र शीत से विवश दिशायें निरन्तर (घने) अन्धकार के व्याज से नील निचोल से आच्छादित तुल्य शोभित हुई।

शीतार्त्या द्युमणावौर्वदहनोष्माभिलाषतः।
द्रुतं यातीव जलधिं दिनानि लघुतां ययुः ॥ १७० ॥

१७०. शीत त्रास के कारण मानो बड़वाग्नि ऊष्मा की अभिलाषा से, सूर्य के शीघ्र जलनिधि गमन करने पर, दिन छोटे होने लगे।

अथ दीपोज्ज्वले धाम्नि लसद्दीप्तहसन्तिके।
कदाचिन्नृपतिर्दैवादर्धरात्रे व्यबुध्यत ॥ १७१ ॥

१७१. किसी समय जब दीप से प्रकाशित गृह में प्रज्वलित अंगारधानी (हसन्ती) शोभित हो रही थी—राजा अकस्मात् (दैवात्) अर्धरात्रि में प्रबुद्ध हुआ।

स हेमन्तानिलैर्भूरिझांकारपरुषैः पुरः।
दीपान्प्रकम्पितान्नीपत्प्राविष्टैर्धाम्नि दृष्टवान् ॥ १७२ ॥

१७२. उसने गृह में प्रविष्ट प्रभूत झांकार[1] ध्वनि से परुष, हेमन्त कालीन वायु से प्रकम्पित दीप सामने देखा।

पादटिप्पणियाँ :

श्लोक संख्या १६६ में 'प्नुयाम्' का पाठभेद 'प्नुयात्' मिलता है।

श्लोक संख्या १७१ में हसन्तिका' का पाठभेद 'मग्नाग्निका' मिलता है।

१७२ (१) झांकार : इस शब्द का उल्लेख कल्हण ने पुनः तरंग ८.९५३ में किया है।

तानुज्ज्वलयितु भृत्यानन्विष्यन्नभ्यधात्ततः ।
यामिकेषु बहिः सज्जः को वर्तत इति स्फुटम् ॥ १७३ ॥

१७३. तदनन्तर उन्हें प्रज्वलित करने के लिये भृत्यों को खोजते हुए सुस्पष्ट कहा—"वाहर यामिक[1] में कौन उपस्थित है ?"

सुखसुप्तेषु सर्वेषु बाह्यकक्ष्यान्तरात्ततः ।
राजन्नयमहं मातृगुप्त इत्यशृणोद्वचः ॥ १७४ ॥

१७४. उस समय सभी लोग सुख पूर्वक सुप्त थे। बाह्य कक्ष में से—"राजन् ! मैं मातृगुप्त हूँ" यह वाणी (राजा ने) सुनी।

प्रविशेति स्वयं राज्ञा दत्तानुज्ञस्ततो गृहम् ।
लक्ष्मीसांनिध्यरम्यं तददृष्टोऽन्यैर्विवेश सः ॥ १७५ ॥

१७५. राजा के स्वयं यह आज्ञा देने पर 'प्रवेश करो'—बिना दूसरे के ज्ञात हुये, गृह में प्रवेश किया।

दीपानुज्ज्वलयेत्युक्तो निष्पाद्य चतुरः पदैः ।
बहिर्यियासुरूचेऽथ क्षणं तिष्ठेति भूभुजा ॥ १७६ ॥

१७६. 'दीपों को जलाओं'—कहे जाने पर, निष्पादित करके (दीप जलाकर) चार पद बाहर जाने पर राजा ने उससे कहा,—'क्षण भर रुको'।

स भयद्विगुणीभूतशीतकम्पः प्रभोः पुरः ।
किंस्विद्वक्ष्यतीति विमृशन्नातिदूरेऽभ्युपाविशत् ॥ १७७ ॥

१७७. भय से उस (मातृगुप्त) का शीत कम्पन द्विगुणित हो गया। 'वह क्या कहेंगे।' विचार करते प्रभु के सम्मुख न अति दूर बैठ गया[1]।

अथ पप्रच्छ भूपालः कियत्यस्ति निशेति तम् ।
सोऽभ्यधादेव यामिन्या यामः सार्धोऽवशिष्यते ॥ १७८ ॥

१७८. राजा ने उससे पूछा—'कितनी रात्रि शेष है ?' उसने कहा—'यामिनी का डेढ़ याम (डेढ़ प्रहर) अवशिष्ट है।'

---

१७३ (१) यामिक : याम का अर्थ रात्रि तथा प्रहर दोनो होता है। रात्रि में पहरा देने वालों को यामिक कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७५ में 'दृष्टो' का पाठभेद 'पृष्टो' मिलता है।

श्लोकसंख्या १७६ मे 'यियासुरूचेऽथ' का पाठभेद 'ययौ स ऊचेय', तथा 'यियासुरूचे च' मिलता है।

श्लोक संख्या १७७ में 'भय' का पाठभेद 'मय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७७ (१) बैठ गया : यहाँ पर कल्हण ने 'उपाविशत्' शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ बैठना होता है। अन्य अनुवादकर्ताओं ने 'वह खड़ा हो गया' अर्थ किया है।

ततो भूभृदुवाचैनं कथं सम्यङ्निशाक्षणः।
त्वयाऽवधारितो निद्रा कथं नाभूच्च ते निशि ॥ १७९ ॥

१७९. तदुपरान्त राजा उससे बोले—'तुमने सम्यक् निशा क्षण कैसे जाना ? तुम्हें रात्रि में निद्रा क्यों नहीं आयी ?

अथ कृत्वा क्षणाच्छ्लोकमेतं तं स व्यजिज्ञपत्।
अवस्थावेदनादाशां दैन्यं वा त्यक्तुमुद्यतः ॥ १८० ॥

१८०. अवस्था प्रतिवेदन से आशा एवं दैन्य को त्यागने के लिये उद्यत उस (मातृगुप्त) ने क्षण में यह श्लोक बनाकर उस (नृप) को ज्ञात कराया—

शीतेनोद्धूषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे।
निद्रा क्वाऽप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी' ॥ १८१ ॥

१८१. "माष फली तुल्य शीत से रोमांचित एवं चिन्ता सागर में निमज्जित, मेरी जिसके अग्नि को धौंकने से अधर फट गये हैं, क्षुधा से कण्ठ क्षीण हो गया है, निद्रा अपमानिता स्त्री तुल्य त्यागकर कहीं दूर चली गयी है, और रात्रि सत्पात्र में दी गयी पृथ्वी के समान समाप्त नहीं होती है।"

तदाकर्ण्य महीपालः साधुवादैः परिश्रमम्।
अभिनन्द्य कवीन्द्रं तं पूर्वस्थानं व्यसर्जयत् ॥ १८२ ॥

१८२. महीपाल इसे सुनकर, साधुवादों द्वारा परिश्रमी उस कवीन्द्र को अभिनन्दित कर पूर्व स्थान पर विसर्जित कर दिया।

अचिन्तयच्च धिङ्मां यः सगुणात्खिन्नचेतसः।
दुःखोत्तप्तं वचः शृण्वन्नेवमेवाधुना स्थितः ॥ १८३ ॥

१८३. उस (राजा) ने चिन्तन किया—"मुझे धिक्कार है, जो कि गुण युक्त एवं खिन्नचेतस की दुःख उतप्त वाणी सुनते हुये, इस प्रकार अभी स्थित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८१ में 'माषशिमिव' का पाठ भेद 'मासमशिवं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८१ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ६०वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८२ में 'पूर्वस्थानं' का पाठभेद 'पूर्वस्थाने' मिलता है।

निरर्थकान्साधुवादानन्यस्येव विदन्मम ।
अयमज्ञातहृदयो दुःखमास्ते ध्रुवं बहिः ॥ १८४ ॥

१८४. 'सामान्य लोगों के समान मेरे निरर्थक धन्यवादों को जानते हुये, अज्ञान हृदय यह निश्चय ही बाहर दुःखी होगा।

चिरं चिन्तयतो यत्नात्सदृशीमस्य सत्क्रियाम् ।
देयं महार्हमद्यापि न किंचित्प्रतिभाति मे ॥ १८५ ॥

१८५. "इसके योग्य सत्कार चिर काल तक यत्न पूर्वक चिन्तन पर भी, मुझे बहुमूल्य कोई वस्तु आज भी इसे देय नहीं प्रतीत होती।

अथवाऽस्यैव सूक्तेन स्मारितोऽस्म्यधुना यथा ।
वर्तते राजरहितं काम्यं कश्मीरमण्डलम् ॥ १८६ ॥

१८६. अभी इसकी सूक्ति ने मुझे स्मरण कराया है कि, काम्य कश्मीर मण्डल, जैसे राजरहित है।

पात्रायास्मै मही तस्मात्सा मया प्रतिपाद्यते ।
अवधीर्य महीपालान्महतोऽप्यर्थनापरान् ॥ १८७ ॥

१८७. अतएव इसे (कश्मीर) चाहने वाले बड़े महीपालों को तिरस्कृत करके भी वह भूमि, इस पात्र को दे रहा हूँ।"

इति निश्चित्य चतुरं क्षपायामेव पार्थिवः ।
गूढं व्यसर्जयद्दूतान्काश्मीरीः प्रकृतीः प्रति ॥ १८८ ॥

१८८. ऐसा निश्चय कर राजा ने रात्रि में शीघ्र ही कश्मीरी जनों (प्रकृति) के पास गुप्तरूप से दूतों को भेजा।

आदिदेश च तान्यो वो दर्शयेच्छासनं मम ।
मातृगुप्ताभिधो राज्ये निश्शङ्कं सोऽभिषिच्यताम् ॥ १८९ ॥

१८९. और उन्हें आदेश दिया कि "तुम्हें जो मेरा शासन (आज्ञा पत्र) दिखाये, उस मातृगुप्त को (वहां) निःशंक होकर, अभिषिक्त करो।"

अथ दूतेषु यातेषु लेखयित्वा स्वशासनम् ।
क्ष्मापतिस्तं क्षपाशेषं कृतकृत्योऽत्यवाहयत् ॥ १९० ॥

१९०. दूतों के चले जाने पर, स्वशासन को लिखकर, कृतकृत्य क्षमापति ने शेष रात्रि व्यतीत किया।

श्लोक संख्या १८६ में 'कश्मी' का पाठभेद 'काश्मी' मिलता है।

श्लोक संख्या १८९ में 'वो' का पाठभेद 'वा' मिलता है।

मातृगुप्तस्तु नृपतेः संलापमपि निष्फलम् ।
ध्यायन्गृहीतनैराश्यस्त्यक्तभार इवाभवत् ॥ १९१ ॥

१९१. मातृगुप्त नृपति के संलाप को भी निष्फल मानता हुआ, निराश होकर, भार रहित तुल्य हो गया।

अन्तर्दध्यौ च कर्तव्यं कृतं शान्तोऽद्य संशयः ।
आशापिशाचिकात्यक्तश्चरिष्याम्यधुना सुखम् ॥ १९२ ॥

१९२. अन्तःकरण में (यह) धारण कर लिया—'कर्तव्य किया। आज संशय शान्त हो गया। अब आशा स्वरूप पिशाची से मुक्त हुआ, सुख पूर्वक विचरण करूँगा।

गतानुगतिकत्वेन कोऽयमासीन्मम भ्रमः ।
जनप्रवादात्सेव्यत्वं येनास्य ज्ञातवानहम् ॥ १९३ ॥

१९३. "गतानुगतिका के कारण मुझे यह कौन भ्रम हो गया था, जिसे जनप्रवाद वस इसे सेव्य मान लिया।

भुञ्जानाः पवनं सरीसृपगणाः प्रख्यापिता भोगिनो
गायद्भृङ्गनिवारका निगदिता विस्तीर्णकर्णा गजाः ।
यश्चाभ्यन्तरसंभृतोष्मविकृतिः प्रोक्तः शमी स द्रुमो
लोकेनेति निरर्गलं प्रलपता सर्वं विपर्यासितम्[1] ॥ १९४ ॥

१९४. "पवन के अशन करने वाले सर्पों को 'भोगी'[2] प्रख्यात किया; गान करते भृंगों के निवारक गजों को 'विस्तीर्णकर्ण' कहा; जो अभ्यन्तर में अग्नि विकार धारण करता है; उस द्रुम को शमी कहा—इस प्रकार संसार ने सबको विपरीत कर दिया है

अथवा विघ्नेऽमुष्य न काऽप्यनभिगम्यता ।
लक्ष्मीप्रणयिनो येन कृताः प्रणयिनां गृहाः ॥ १९५ ॥

१९५. "इसके पास जाने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जिसने अपने प्रणयी जनों को गृह लक्ष्मी सम्पन्न कर दिया है—

श्लोक संख्या १९४ में 'प्रख्यापिता' का पाठभेद 'प्रख्यामिता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ६१वा श्लोक है।

(२) भोगी आदि : कल्हण ने यहाँ भोगी शब्द की उपमा दी है। भोगी शब्द भुज अर्थात् भोगने से बना है। गज शब्द गै अर्थात् गाने से बना है। शमी शब्द शम अर्थात् आन्तरिक शान्त होना है। शमी वृक्ष से अग्नि तैय्यार की जाती है। उससे रगड़ कर अग्नि उत्पन्न की जाती है। प्राचीन गाथा है। शमी की शाखा में अग्नि छिपी रहती है। आकाशचारी सर्प भी होते हैं। वे उड़ते हैं। मैने पेड़ो पर अत्यन्त पतला लम्बा साँप देखा है जो एक शाखा से दूसरी शाखा पर इस प्रकार जाता है कि उड़ता मालूम पड़ता है। पुरानी गाथा है कि नाग किंवा सर्प भी उड़ते हैं। मैंने अभी तक इस प्रकार का सर्प अपनी आँखों नही देखा है। सर्प, गज तथा शमी यहाँ श्लेष है।

त्यागिनो निष्कलङ्कस्य को दोषोऽस्य महीपतेः ।
ममापुण्यं तु तन्निन्द्यं यच्छ्रेयःप्रतिबन्धकम् ॥ १९६ ॥

१९६. "त्यागी एवं निष्कलङ्क इस नृपति का क्या दोष है? मेरा अपुण्य ही निन्द्य है, जो कि श्रेय का प्रतिबन्धक है

रत्नोज्ज्वलाः प्रविकिरंल्लहरीः समीरै-
रब्धिः क्रियेत यदि रुद्धतटाभिमुख्यः ।
दोषोऽर्थिनः स खलु भाग्यविपर्ययाणां
दातुर्मनागपि न तस्य तु दातृतायाः[1] ॥ १९७ ॥

१९७. "रत्नों[2] के समुज्ज्वल लहरियों का विकिरण (प्रसार) करते हुए, समुद्र को यदि वायु तट से दूर कर दे—तो वह प्रार्थी के भाग्य विपर्यय का ही दोष है न कि उस दाता की दानशीलता का

उत्तानफललुब्धानां वरं राजोपजीविनः ।
न तु तत्स्वामिनस्तीव्रपरिक्लेशैः फलन्ति ये ॥ १९८ ॥

१९८. "उदात्त फलाभिलाषियों में नृपोपजीवी श्रेष्ठ होते हैं, न कि वे स्वामी जो कि तीव्र परिश्रम पर फल प्रदान करते हैं।

तिष्ठन्ति ये पशुपतेः किल पादमूले
संप्राप्यते झटिति तैर्नहि भस्मनोऽन्यत् ।
ये तद्वृषस्य तु समुज्ज्वलजातरूप-
प्राप्त्या न कानि सुदिनानि सदैव तेषाम्[1] ॥ १९९ ॥

१९९. "जो पशुपति के पादमूल में बैठते हैं, वे तत्काल भस्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त करते; जो लोग उनके वृष का आश्रय लेते हैं, उनके लिये सदैव समुज्ज्वल स्वर्ण प्राप्ति के अतिरिक्त और कौन सुदिन हो सकता है?

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९७ में 'प्रविकिरंल्ल' का 'प्रविकिरेल्ल', 'प्रविकरल्ल' तथा 'पर्ययाणां' का पाठभेद 'पर्ययेण' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९७ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रहका ६२वां श्लोक है।

(२) रत्न : श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने इसका भावार्थ टिप्पणी में किया है कि रत्नों की खान समुद्र रत्नाकर है। वह दाता है। वह अपनी लहरों से रत्न सहित तट की ओर याचक किंवा अभ्यर्थी को रत्न देने बढ़ता है। किन्तु वायु उसको इस कार्य से विरत कर देती है।

१९९ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ६३ वा श्लोक है।

श्री सीताराम पण्डित इस श्लोक के अनुवाद की टिप्पणी में लिखते हैं—'इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि कल्हण के समय में नन्दी के उपासकों की कमी नहीं थी। जिन्हें वह शिव की अपेक्षा सरलता से मिल जाता था। नन्दी सुर एवं असुर के समुद्र मन्थन से रत्न रूप प्राप्त हुआ था।

चिन्तयन्नपि पश्यामि न कंचिद्दोषमात्मनः ।
यातो विरक्तिं यं ज्ञात्वा सेव्यमानोऽप्ययं नृपः ॥ २०० ॥

२००. "विचार करने पर भी अपना कोई दोष नहीं देखता हूँ जिसे जानकर सेव्यमान यह नृप विरक्त हो गया है ।

अथवाऽनादृतोऽन्येन संप्राप्तोऽन्तकमाप्नुयात् ।
कः फलेनाभिसंबन्धं गतानुगतिकात्प्रभोः ॥ २०१ ॥

२०१. अथवा—अन्य से अनादृत, किसने निकट जाकर, गतानुगतिक प्रभु द्वारा फल प्राप्त किया है ?

अन्तर्ये सततं लुठन्त्यगणितास्तानेव पाथोधरै-
रात्तानापततस्तरङ्गवलयैरालिङ्ग्य गृह्णन्नसौ ।
व्यक्तं मौक्तिकरत्नतां जलकणान्सम्प्रापयत्यम्बुधिः
प्रायोऽन्येन कृतादरो लघुरपि प्राप्तोऽर्च्यते स्वामिभि[1]: ॥ २०२ ॥

२०२. जो अभ्यन्तर में निरन्तर असंख्य जल कण उपेक्षित रहते लोटते हैं; उन्हें ही जलद, जब ग्रहण कर गिराता है, तब तरंग वलयों से आलिंगन कर, ग्रहण करते हुए, यह समुद्र सुस्पष्ट रूप से मौक्तिक[2] रत्न बना देता है । प्रायः अन्य से समादृत लघु भी समीप पहुँचकर, स्वामियों से समादृत होता है ।

नन्दी की उपासना निस्सन्देह सबसे सरल है । नन्दी शिवालय के गर्भ गृह के बाहर बना रहता है । उसका मुख द्वार के बाहर शिव की ओर रहता है । मन्दिर का द्वार किंवा गर्भ गृह का द्वार बन्द करने पर शिव का दर्शन नहीं मिलता किन्तु नन्दी का किसी समय भी मिल जाता है । वह खुले में रहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०० में 'क' का पाठभेद 'कि' मिलता है ।

श्लोक संख्या २०२ में 'रात्ता' का 'रार्ता'; 'पतत' का 'पतितः' तथा 'र्च्यते' की पाठभेद 'र्च्यंते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०२ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का ६४वाँ श्लोक है । इस पद का एक अर्थ यह भी हो सकता है : सागर मध्यस्थित जलकण समूह अनादृत होकर रहता है । किन्तु मेघमाल' द्वारा गृहीत होकर पुनर्वार पतित होने पर समुद्र अपने तरंग को विस्तार कर उन्हें ग्रहण करता है और मुक्ता में परिणत होता है । लघुव्यक्ति भी प्रथमतः दूसरों द्वारा समादर पाने के पश्चात् राजा का सम्मान लाभ करते हैं ।

(२) मौक्तिक : यह सुन्दर पद है । राजाओं की प्रकृति का यह चित्रण करता है । राजा उनका आदर करते हैं जो किसी दूसरे राजा द्वारा समादृत हो चुके रहते हैं ।

मुक्ता के विषय में गाथा प्रचलित है कि स्वाती का वर्षा जल गिरता है । समुद्र में सीप उन जलों को ग्रहण करते हैं । वह जलबिन्दु सीप में मुक्ता हो जाता है । भर्तृहरि ने कहा है :

'स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितस्'
सः मुक्तिका जायते ।'

इदं संचिन्तयन्सोऽभूत्सेव्ये तस्मिन्निरादरः ।
खिन्नस्य हि विपर्येति तत्त्वज्ञस्यापि शेमुषी ॥ २०३ ॥

२०३. यह सोचते हुए, वह सेव्य इस (नृप) के प्रति आदर रहित हो गया। तत्त्वज्ञ खिन्न की बुद्धि निश्चय ही विपरीत हो जाती है।

प्रभातायां विभावर्यामथाऽऽस्थानस्थितो नृपः ।
आकार्यतां मातृगुप्त इति चत्तारमादिशत् ॥ २०४ ॥

२०४. जब विभावरी के प्रभात होने पर, सभास्थान पर पहुँचकर, राजा ने क्षत्ता को यह आदेश दिया,—'मातगुप्त को बुलाओ —

ततः प्रधावितानेकप्रतीहारप्रवेशितः ।
प्रविवेश महीभर्तुस्त्यक्ताश इव सोऽन्तिकम् ॥ २०५ ॥

२०५. तब अनेक प्रतिहारी दौड़कर, उसे ले आये और निराश सदृश वह, नृपति के समीप (सभाभवन में) प्रवेश किया।

तस्मै कृतप्रणामाय मुहूर्तादिव पार्थिवः ।
भ्रुसंज्ञितेन व्यतरल्लेखं लेखाधिकारिणा ॥ २०६ ॥

२०६. प्रणाम करने वाले, उसे तत्क्षण पार्थिव ने भ्रूसंकेतित[१] लेखाधिकारी द्वारा लेख प्रदान किया।

स्वयं च तमुवाचाङ्ग कश्मीरान्वेत्सि किं भवान् ।
गत्वा तत्राधिकारिभ्य एतच्छासनमर्प्यताम् ॥ २०७ ॥

२०७. 'अंग[१] ! क्या आप कश्मीर का जानते हैं ? वहां जाकर, यह शासन[२] पत्र अधिकारियों को अर्पण कीजिए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०४ में 'क्षत्तारं' का पाठभेद 'द्वारस्थं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०६ (१) भ्रूसंकेतित : प्राचीन काल में पुराने विचार के राजा लोग स्वयं मुख से आज्ञा नहीं देते थे। केवल उनके संकेत से मन्त्री तथा सचिव आदेश का कार्य जान जाते थे। और राजाज्ञा प्रसारित करते थे।

मैंने काशिराज को इस प्रकार का संकेत तथा व्यवहार करते देखा है। अब भारत में सभी देशी राज्यों का विलय हो गया है। वह अत्यन्त प्राचीन प्रथा केवल इतिहास एवं साहित्य की सामग्री रह गयी है।

२०७ (१) अंग : यह सम्बोधनवाचक अव्यय शब्द है। इसका अर्थ बहुत अच्छा होता है। श्रीमान् बहुत ठीक, 'अवश्य' 'सत्य है' 'अंगीकार है' होता है।

(२) शासन : शासन का अर्थ यहां आज्ञापत्र किंवा फारसी का प्रचलित शब्द फरमान है। पादटिप्पणी १५ (१) पृष्ठ १२ तथा तरंग ४ : २२१ ; ८ : २६२५, द्रष्टव्य है। शासन पत्र लिखने तथा उसके रखनेवालों को लेखाधिकारी कहा जाता था।

स शापितोऽस्मद्देहेन यो लेखं वाचयेत्पथि ।
संविदेषा प्रयत्नेन विस्मर्तव्या न जातुचित् ॥ २०८ ॥

२०८. पथ में जो लेख पढ़े,—"उसे मेरे देह की शपथ है।" प्रतिज्ञा प्रयत्न पूर्वक कभी मत भूलना।

अविज्ञाताशयो राज्ञस्तामाज्ञां : क्लेशशङ्कितः ।
सोऽबुद्ध दहनज्वालां न तु रत्नाङ्कुरद्युतिम् ॥ २०९ ॥

२०९. (नृपति के) आशय को न जानकर क्लेश शङ्कित, उसने राजा के उस आज्ञा को अग्नि ज्वाला जाना, न कि रत्नाङ्कुर कान्ति।

यथादेशस्तथेत्युक्त्वा मातृगुप्ते विनिर्गते ।
निर्गर्वः पूर्ववद्राजा तस्थावाप्तैः सहालपन् ॥ २१० ॥

२१०. 'जैसी आज्ञा'—कहकर, मातृगुप्त के विनिर्गत हो जाने पर, गर्व रहित नृप पूर्ववत् आप्तजनों के साथ संलाप करता हुआ, स्थिर रहा।

अथाक्लेशोचितं क्षाममपाथेयमबान्धवम् ।
दृष्ट्वा यान्तं मातृगुप्तं निनिन्देति नृपं जनः ॥ २११ ॥

२११. अक्लेशोचित, क्षाम, सम्बल रहित, बन्धु, विहीन, मातृगुप्त को जाते हुए देख कर लोग नृप की निन्दा करने लगे।

अहो नरेश्वरस्येयं यत्किंचनविधायिता ।
पृथग्जनोचिते कर्मण्यर्हतो निदधाति यः ॥ २१२ ॥

२१२. अहो! 'नरेश्वर की यह यत्किञ्चन विधायिता! जो कि सामान्य जनोचित काय में योग्यों को नियुक्त करता है।

दुराशया धृतक्लेशं सेवमानमहर्निशम् ।
ध्रुवं क्लेशार्हमेवैनं ज्ञातवानबुधो नृपः ॥ २१३ ॥

२१३. 'दुराशा से अहर्निश सेवा करते दुःखी इसे निश्चय ही विद्वान् नृप ने क्लेश सहिष्णु (ही) जाना।

शासन शब्द का प्रयोग नीलमत पुराण में भी किया है। वहाँ पर यह शब्द शिव शासन के रूप में व्यवहृत किया गया है। प्राचीन निबन्धों में बुद्ध शासन के समान शिव शासन सम्बन्धी निबन्धों के अर्थ में इसका उल्लेख किया गया है।

स्वमह चापि यस्यैव शासने सम्व्यवस्थितौ य।

नील० १२४७ परिशिष्ट

उपायं यं पुरस्कृत्य सेवते सेवकः प्रभुम् ।
अनन्तरज्ञस्तत्रैव योग्यं तं किल मन्यते[1] ॥ २१४ ॥

२१४. 'सेवक जिस उपाय को अग्रसर करके प्रभु की सेवा करता है, अन्तरज्ञ (नृप) उसे उसी (कार्य) योग्य मानता है।

सुखार्थी नागारिप्रतिभयशमात्प्रत्युत सुखं
जहौ शेषस्तल्पीकृततनु निषेव्यासुररिपुम् ।
यतस्तेनामुष्मिन्नधिगतवता क्लेशसहतां
श्रमाधायि न्यस्तं निरवधि धराभारवहनम् ॥ २१५ ॥

२१५. 'नागरिपु (गरुड़) के भय शमन से सुखाकांक्षी शेष नाग शरीर की शय्या बना, (कर) विष्णु की सेवा करके, प्रत्युत सुख का त्याग (ही) कर दिया। क्योंकि (उन्होंने) क्लेश सहन करने में समर्थ मानकर, इनपर श्रम प्रद पृथ्वी का भार सदैव के लिये न्यस्त कर दिया।

अयमेतद्गृहीतेषु गुणवत्सु गुणाधिकम् ।
आत्मानं गुणवान्पश्यन्नास्थयैनमशिश्रियत्[1] ॥ २१६ ॥

२१६. 'उन गृहीत गुणवानों में स्वयं को अधिक गुणवान देखते हुये, इसने आस्था पूर्वक उसका (नृप का) आश्रय लिया था।

अनन्तरज्ञः कोऽन्योऽस्माद्गुणान्दर्शयतेऽधिकान् ।
अस्मै गुणवते पूजां यश्चकार किलेदृशीम् ॥ २१७ ॥

२१७. अन्तर को न जानने वाला अन्य कौन इससे अधिक गुणवान (गुणज्ञ) है। जिसने इस गुणवान् को इस प्रकार पूजा की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१४ में 'उपायं यं' का पाठभेद 'उपायं त' तथा 'उपायनं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१४ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ६५वाँ श्लोक है।

२१६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ६६वाँ श्लोक है।

स शापितोऽस्मद्देहेन यो लेखं वाचयेत्पथि ।
संविदेषा प्रयत्नेन विस्मर्तव्या न जातुचित् ॥ २०८ ॥

२०८. पथ में जो लेख पढ़े,—"उसे मेरे देह की शपथ है।" प्रतिज्ञा प्रयत्न पूर्वक कभी मत भूलना।

अविज्ञाताशयो राज्ञस्तामाज्ञां क्लेशशङ्कितः ।
सोऽबुद्ध दहनज्वालां न तु रत्नाङ्कुरद्युतिम् ॥ २०९ ॥

२०९. (नृपति के) आशय को न जानकर क्लेश शङ्कित, उसने राजा के उस आज्ञा को अग्नि ज्वाला जाना, न कि रत्नाङ्कुर कान्ति।

यथादेशस्तथेत्युक्त्वा मातृगुप्ते विनिर्गते ।
निर्गर्वः पूर्ववद्राजा तस्थाव्राप्तैः सहालपन् ॥ २१० ॥

२१०. 'जैसी आज्ञा'—कहकर, मातृगुप्त के विनिर्गत हो जाने पर, गर्व रहित नृप पूर्ववत् आप्तजनों के साथ संलाप करता हुआ, स्थिर रहा।

अथाक्लेशोचितं क्षाममपाथेयमबान्धवम् ।
दृष्ट्वा यान्तं मातृगुप्तं निनिन्देति नृपं जनः ॥ २११ ॥

२११. अक्लेशोचित, क्षाम, सम्बल रहित, बन्धु, विहीन, मातृगुप्त को जाते हुए देख कर लोग नृप की निन्दा करने लगे।

अहो नरेश्वरस्येयं यत्किंचनविधायिता ।
पृथग्जनोचिते कर्मण्यर्हतो निदधाति यः ॥ २१२ ॥

२१२. अहो! 'नरेश्वर की यह यत्किञ्चन विधायिता ? जो कि सामान्य जनोचित काय में योग्यों को नियुक्त करता है।

दुराशया धृतक्लेशं सेवमानमहर्निशम् ।
ध्रुवं क्लेशार्हमेवैनं ज्ञातवानबुधो नृपः ॥ २१३ ॥

२१३. 'दुराशा से अहर्निश सेवा करते दुःखी इसे निश्चय ही विद्वान् नृप ने क्लेश सहिष्णु (ही) जाना।

शासन शब्द का प्रयोग नीलमत पुराण में भी किया है। वहाँ पर यह शब्द शिव शासन के रूप में व्यवहृत किया गया है। प्राचीन निबन्धों में बुद्ध शासन के समान शिव शासन सम्बन्धी निबन्धों के अर्थ में इसका उल्लेख किया गया है।

स्वमह चापि यस्यैव शासने स.ावस्थितौ च ।

नील० १२७७ परिशिष्ट

उपायं यं पुरस्कृत्य सेवते सेवकः प्रभुम् ।
अनन्तरज्ञस्तत्रैव योग्यं तं किल मन्यते' ॥ २१४ ॥

२१४. 'सेवक जिस उपाय को अग्रसर करके प्रभु की सेवा करता है, अन्तरज्ञ (नृप) उसे उसी (कार्य) योग्य मानता है।

सुखार्थी नागारिप्रतिभयशमात्प्रत्युत सुखं
जहौ शेषस्तल्पीकृततनु निषेव्यासुररिपुम् ।
यतस्तेनामुष्मिन्नधिगतवता क्लेशसहतां
श्रमाधायि न्यस्तं निरवधि धराभारवहनम् ॥ २१५ ॥

२१५. 'नागरिपु (गरुड़) के भय शमन से सुखाकांक्षी शेष नाग शरीर की शय्या बना, (कर) विष्णु की सेवा करके; प्रत्युत सुख का त्याग (ही) कर दिया। क्योंकि (उन्होंने) क्लेश सहन करने में समर्थ मानकर, इनपर श्रम प्रद पृथ्वी का भार सदैव के लिये न्यस्त कर दिया।

अयमेतद्गृहीतेषु गुणवत्सु गुणाधिकम् ।
आत्मानं गुणवान्पश्यन्नास्थयैनमशिश्रियत्' ॥ २१६ ॥

२१६. 'उन गृहीत गुणवानों में स्वयं को अधिक गुणवान देखते हुये, इसने आस्था पूर्वक उसका (नृप का) आश्रय लिया था।

अनन्तरज्ञः कोऽन्योऽस्माद्गुणान्दर्शयतेऽधिकान् ।
अस्मै गुणवते पूजां यश्चकार किलेदृशीम् ॥ २१७ ॥

२१७. अन्तर को न जानने वाला अन्य कौन इससे अधिक गुणवान (गुणज्ञ) है। जिसने इस गुणवान् को इस प्रकार पूजा की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१४ में 'उपायं यं' का पाठभेद 'उपायं त' तथा 'उपायनं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१४ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ६५वाँ श्लोक है।

२१६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ६६वाँ श्लोक है।

यो नानाद्युतिमत्पदार्थरसिकोऽप्यारेऽपि शक्रायुधे
सप्रेमा स विलोक्य बर्हमिह मे किं किं न कुर्यात्प्रियम् ।
इत्याविष्कृतबर्हराजि नटते यो बर्हिणेऽम्भोलवा-
न्मुञ्चति तं विहाय जलदं कोऽन्योऽस्ति शून्याशयः[1] ॥२१८॥

२१८. जो अनेकों कान्तिमय पदार्थों का रसिक है, निःसार भी इन्द्रधनुष से प्रेम रखता है, वह यहाँ मेरे (सचित्र) पंख को देखकर (मेरे लिये) क्या-क्या प्रिय नहीं करेगा ? इस आशय से पिच्छ फैलाकर नृत्य करते मयूर[2] को जो जल कणों के अतिरिक्त कुछ नहीं देता उस जलद के अतिरिक्त और कौन शून्य हृदय है[3] ।

गच्छतो मातृगुप्तस्य निर्दैन्यस्यैव वर्त्मसु ।
नाभूद्भाव्यर्थमाहात्म्याद्विकल्पः कोऽपि चेतसि ॥ २१९ ॥

२१९. मार्ग में गमन करते दैन्य रहित मातृगुप्त के मन में भावी अर्थ (की प्राप्ति) माहात्म्य से कोई विकल्प नहीं हुआ।

अहंपूर्विकयोद्गमनिमित्तैः शुभशंसिभिः ।
स वितीर्णकरालम्ब इव न श्रममाददे ॥ २२० ॥

२२०. स्पर्धापूर्वक प्रकट होते शुभ[1] सूचक निमित्तों से हस्तावलम्ब प्राप्त करने तुल्य वह परिश्रान्त नहीं हुआ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१८ में 'बर्हिणे' का पाठभेद 'बर्हिणो' तथा 'विहाय जलदं' का पाठभेद 'विलोक्य जलदमित्यन्यादर्शे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१८ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह १७वाँ श्लोक है।

(२) मयूर : वर्षा ऋतु में मयूर मेघाच्छन्न आकाश में मस्त होकर अपनी प्रेमिका मयूर के सम्मुख आत्मविभोर होकर नृत्य करता है।

(३) शून्याशय शब्द का प्रयोग शून्य हृदय के लिये किया गया है। यहाँ इन्द्रधनुष के लिये शून्य हृदय प्रयुक्त किया गया है। इन्द्रधनुष बादल के कारण बनता है। परन्तु वह धनुष की तरह ठोस नहीं अपितु शून्य वृत्त होता है। उसका आकार मात्र दिखायी पड़ता है। अन्यथा वह किरणों एवं जल वाष्प का छाया रूप मात्र है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२० में 'लम्ब' का 'लम्भ' और 'माददे' का पाठभेद 'मादधे' मिलता है।

२२० (१) शुभसूचक : शकुन ज्ञान स्वतः एक शास्त्र है। शुभ-अशुभ शकुनों के विचार में निम्न अनेक स्थानों पर लेख उपलब्ध मिलते हैं। प्रचलित शुभाशुभ का लक्षण स्वप्न, पल्लीपतन (छिपकली गिरना), प्रस्थान करते समय विभिन्न वस्तुओं के सम्मुख पड़ने से भावी शुभ एवं अशुभ कार्यों का पता चल जाता है।

स्वप्न : शुभ—जल मे तैरना स्वप्न में देखने पर शुभ फलप्रद होता है। आकाश में उड़ना—व्यापार मे लाभ किंवा शुभ यात्रा, सुवर्ण अंगूठी धारण करना—वाञ्छित रमणी प्राप्ति, मेवा भक्षण—धन प्राप्ति; ऊँट देखना—सम्पत्ति प्राप्ति; सूर्य दर्शन—महान् व्यक्तियों से साक्षात्कार; ग्रह नक्षत्र दर्शन—शुभसन्देश प्राप्ति; मेघ दर्शन—उन्नति पथ जाना; हाथ में अग्नि लेना—

बिना परिश्रम धन प्राप्ति; अश्वारोहण—व्यापार में उन्नति; उद्यान लगाना-शुभसमाचार प्राप्ति, कोठे पर चढ़ना—शुभ समाचार; दर्पण देखना—प्रेमिका मिलन, बिस्तर बिछाना-धनप्राप्ति; पका बाल-दीर्घायु होना; अंडा देखना—पुत्र उत्पत्ति; पर्वतारोहण—उन्नति; शरीर में विष्ठा पोतना-धनप्राप्ति; विष्ठा भक्षण—प्रचुर धन प्राप्ति; जल पीना-व्यापार में लाभ; स्वादिष्ट भोजन एवं ताम्बूल खाना-सुन्दर स्त्री प्राप्ति; जल में डूबना-शुभ कर्म; कृपाण देखना-विजय प्राप्ति; हरीसाक तरकारी—शुभ समाचार; धनुष बाण चलाना-आशापूर्ति; सिंहासन पर चढ़ना-प्रतिष्ठा वृद्धि; रोना—प्रसन्नता प्राप्ति; श्वेत वस्त्र धारण—शुभसंवाद और क्रीडा देखने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

पल्ली पतन या गिरगिट का अवरोहण-शुभ : सोम, बुध, गुरु, शुक्रवारों तथा १, २, ५, ६, १०, ११ तथा १२ तिथियों में पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उ०फा०, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिष, रेवती, नक्षत्रों में पुरुष के दाहिने अंग तथा स्त्रियों के बायें अंग पर छिपकली का गिरना शुभ माना जाता है। सर पर गिरना—राज्य लाभ, ललाट पर—बन्धु दर्शन, भौंह पर—श्रेष्ठ पुरुषों से मित्रता; अधरोष्ठ पर-ऐश्वर्य प्राप्ति; दक्षिण कान पर—आयुवृद्धि; बायें कान—धन लाभ; ग्रीवा-धन लाभ; दक्षिणबाहु-नृप तुल्यता; कण्ठ—शत्रुनाश, उदर—भूषण लाभ, घुटने पर शुभागमन, जंघों-शुभ, हाथों-वस्त्र लाभ, कन्धा पर—विजय; नासिका छिद्र-अत्यन्त धन लाभ कटिभाग - अश्व, हस्ती किंवा सवारी का लाभ; हृदय—धनलाभ; तथा मुख पर गिरना मिष्ठान्न भोजन की प्राप्ति होती है।

छींक—शुभ : शयन, मल मूत्र त्याग, भोजन, स्नान-दान, विद्याध्ययन, युद्धप्रस्थान, विवाद, बीज बोने के समय शुभ होती है। पीछे तथा बायें की छींकमें दोष नहीं होता।

छींक—अशुभ : साधारणतया किसी दिशा की छींक अच्छी नहीं कही गयी है। अपनी छींक स्वयं शुभप्रद नहीं होती। गाय-बैल की छींक अत्यन्त हानिकारक; सम्मुख छींक—कलहकारिणी; दाहिने की छींक—धननाशक; धीरे की छींक—भय दायक; कुमारी, वेश्या, मालिन, विधवा, धोबिन तथा रजस्वला की छींक—अशुभ; तथा यात्रा के समय की छींक अशुभ होती है।

स्वप्न—अशुभ : अर्धरात्रि के पूर्व का देखा स्वप्न शुभाशुभ फल नहीं देता। रात्रि के अन्त में देखे स्वप्न का विचार करना चाहिए। उसके पश्चात् यदि निद्रा न आये तो शुभाशुभ का अवश्य फल होता है। आकाश से गिरना-शारीरिक एवं मानसिक कष्ट, पक्का फल भोजन-निकट सम्बन्धी की मृत्यु, ऊँट पर चढ़ना-अस्वस्थता; घोड़े से गिरना-धन एवं प्रतिष्ठा की हानि; नावपर चढ़कर डूबना—पदच्युति; आंधी तूफान—यात्रा में कष्ट; पर्वत से गिरना—कष्ट, दाहिना बाहु का कटना—कोई भाई की मृत्यु; बाईं भुजा का कटना; छोटे भाई की मृत्यु; बारात में जाना—मृत्यु; नवीन घर निर्माण—सम्बन्धी की मृत्यु; मूड़ासिर-मृत्यु कारक; तेल लगाना—स्वास्थ्यहानि; स्वयं बीमार झंझट; सूअर देखना—नाराजगी; भैंस—आपत्ति आगमन; शेर—राज भय; राजा की मृत्यु-राष्ट्र पर विपत्ति; पिंजड़ा देखना—कारागार मिलता है।

पल्लीपतन—अशुभ : जन्म नक्षत्र, मृत्युयोग, दग्धयोग, भद्रा में, पापग्रह, पुण्यलग्न में चन्द्रमा अष्टम हो, तो छिपकली गिरने का फल अशुभ होता है।

गिरगिट के अंग पर चढ़ने का फल छिपकिली के सदृश ही होता है।

इसके अतिरिक्त, सर्प, जलहीन घट, बिल्ली आदि का यात्रा के समय सम्मुख पड़ना अशुभ तथा पूर्ण घट, शव, तिलकधारी ब्राह्मण, कोखमें बालक

अपश्यत्स फणाकोटौ खञ्जरीटमहेः पथि ।
स्वप्ने प्रासादमारुह्य स्वं चोल्लङ्घितसागरम् ॥ २२१ ॥

२२१. पथ में उसने देखा—सर्प के फण पर खंजरीट बैठा है, और स्वप्न में स्वयं प्रासाद पर आरूढ़ तथा सागर पार किया।

अचिन्तयच्च शास्त्रज्ञो निमित्तैः शुभशंसिभिः ।
एतैर्भूभर्तुरादेशो ध्रुवं मे स्याच्छुभावहः ॥ २२२ ॥

२२२. उन शुभसूचक निमित्तों से उस शास्त्रज्ञ ने सोचा,—'निश्चय ही राजा का आदेश मेरे लिये शुभावह (सुखप्रद) है।

फलं मम तनीयोऽपि कश्मीरेषु भवेद्यदि ।
अनर्घदेशमाहात्म्यात्किं किं नातिशयेत तत् ॥ २२३ ॥

२२३. "कश्मीर में यदि मुझे स्वल्प फल भी प्राप्त हो तो वह अनर्घ्य देश के माहात्म्य से किस किस का अतिक्रमण नहीं करेगा।',

---

लिये सौभाग्यवती स्त्री, आदि का मिलना शुभ होता है। रात्रि में यदि कुत्ता रोता है तो पास पड़ोस तथा कहीं से मृत्युसमाचार मिलता है या कोई मरता है।

राजनीति में अत्यन्त प्राचीन काल से शुभाशुभ का विवेचन होता रहा है। वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत में सेनाओं के प्रयाण अथवा किसी कार्य के प्रस्थान अथवा कार्य करने के समय शकुनों के आधार पर भविष्य की घटना की सूचना मिलती मानी गयी है।

प्राचीन रोमन लोग भगवान् की इच्छा आकाश में पक्षियों के उड़ने से लगाते थे। वे उनकी गति से भगवान् की चेतावनी भी निकालते थे।

रोमन लोग कोई भी कार्य चाहे युद्ध अथवा शान्ति का ही क्यों न हो बिना शकुन निकाले नहीं करते थे। अधिकारियों के चुनाव के समय विशेषतः शकुन देखा जाता था। जिस समय सेनापति युद्ध यात्रा के लिये निकलते थे उस समय विशेष रूप से शकुनों का विचार किया जाता था।

भारत में शकुन, ज्योतिष आदि के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनमें उनका विशद वर्णन मिलता है। किन्तु कौटिल्य ने शकुनों को महत्व नहीं दिया है। उनकी निन्दा की है। वह कहते हैं—सम्पत्ति सरल व्यक्तियों के हाथों से कुटिल व्यक्तियों के हाथों में चली जाती है। वे अत्यधिक नक्षत्रों एवं ग्रहों का आश्रय लेते हैं। सम्पत्ति नक्षत्रों का नक्षत्र है। किस प्रकार तारे उनसे प्रभावित होंगे ? कृत निश्चयी व्यक्ति सैकड़ों प्रकार के साधनों से सम्पत्ति प्राप्त करता है। सम्पत्ति से ही सम्पत्ति पर विजय प्राप्ति की जाती है जैसे हाथी द्वारा ही हाथी पाया जाता है। (अर्थशास्त्र ९:४ तथा त ३:२३० तथा ८:७४४, ७४६ द्रष्टव्य है।)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२१ में 'महेः' का पाठभेद 'महो' मिलता है।

श्लोक संख्या २२३ में 'कश्मीर' का पाठभेद 'काश्मीर' मिलता है।

अकृच्छ्रलङ्घ्याः पन्थानो वल्लभातिथयो गृहाः ।
उपानमन्गच्छतोऽस्य सत्क्रियाश्च पदे पदे ॥ २२४ ॥

२२४. गमन करते हुए इसे सुख पूर्वक लङ्घ्य मार्ग, अतिथि प्रेमी गृह एवं पग-पग पर सत्कार प्राप्त हुये।

इत्थं विलङ्घिताध्वा स लोलानोकहशाद्वलम् ।
मङ्गल्यदधिपात्राभ ददर्शाग्रे हिमाचलम् ॥ २२५ ॥

२२५. इस प्रकार मार्ग पार कर वह चंचल वृक्षों से हरे एवं मंगल दधि[1] पात्र तुल्य हिमाचल को देखा।

सरलस्यन्दसुभगा गङ्गाशीकरवाहिनः ।
प्रत्युद्ययुस्तं मरुतः पाल्यायाः संस्तुता भुवः ॥ २२६ ॥

२२६. देवदारु वृक्ष के राल से सुभग पालनीय, भूमि से संस्तुत एवं गंगा[1] शीकर वाही काश्मीरी समीरण इसका अभिनन्दन किया।

श्लोक संख्या २२५ में 'ध्वा स' का 'काशं', 'श्वास'; तथा 'नोकह' का पाठभेद 'नोकह' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२२५ (१) दधि : जैसे ही बनिहाल पास तथा पुराना मुगल मार्ग समाप्त कर मैदान निवासी पर्यटक कश्मीर उपत्यका का दर्शन करता है तो उसे तुषार मण्डित पर्वत शिखर का अभिराम दर्शन मिलता है। उसका वह हिम दर्शन तथा हरीभरी उपत्यका उसमें अभूतपूर्व चेतना एवं भाव तरंगें उत्पन्न कर देती है।

यहाँ तुषार की उपमा दधि से दी गयी है। उपत्यका के चारों ओर उत्तुंग पर्वत शिखर से परावृत है। वे तुषारमण्डित रहते हैं। उपत्यका हरीभरी रहती है। अतएव तुषार की उपमा कल्हण ने दधि से दी है। दूध जम जाने पर दही बन जाता है। जल जमने पर बर्फ हो जाता है।

दधि पात्र में दूर्वा मंगल कार्यों के समय में रखा जाता है। कल्हण की यह उपमा अनोखी है। उसकी पैनी दृष्टि की यह द्योतक है। हिम परिवृत गोलाकार उपत्यका दधिपात्र से और उसके मध्य में रखी हरी दूर्वा से हरीभरी कश्मीर उपत्यका की उपमा दी है।

किन्तु यहाँ एक त्रुटि प्रतीत होती है। काव्य-शास्त्र के नियम के अनुसार उपमा उत्कृष्ट होनी चाहिये। उपमा मगल दधि पात्र छोटा है। परन्तु उपमेय हिमालय विशाल है। बड़ा है। वह खटकता है।

२२६ (१) गंगा—कश्मीर की अनेकानेक स्रोतस्विनियाँ तथा नाग गंगा के रूप माने जाते हैं। कश्मीर की सिन्ध उपत्यका को सींचने और वितस्ता में मिलने वाली सिन्ध नदी को भी गंगा कहा गया है। पादटिप्पणी 'गंगा' पृष्ठ १०० द्रष्टव्य है।

नीलमत पुराण में निम्नलिखित गंगा का उदाहरण मिलता है।

जम्बुमार्गं तथा पुण्यं पुण्यां वाराणसीं तथा।
तथैव जाह्नवीं गंगां देवीं गगनमेखलाम् ॥
90.१३१–१३२॥

× × ×

गंगासागरसन्धि च सिन्धुसागरसंगमम्।
भृगुतुगं विशालां च कुब्ज.म्रं रैवतं तथा ॥94:१३६॥

× × ×

शतद्रुं च ततस्तीर्त्वा ऋषिगंगां च निम्नगाम् ।
अर्जुनाश्रममासाद्य देवसुन्दं तथैव च ॥132:१०५॥

× × ×

मकरेण ययौ गंगा कूर्मेण यमुना नदी ।
वृषारूढा शतद्रुश्च महिषेण सरस्वती ॥153:२०५॥

× × ×

कथं सती शची गंगा अदितिर्यमुना दितिः ।
सरित्वमिह संप्राप्ता या च देवी करीषिणी॥238:३१५॥

× × ×

अदितिश्च दितिश्चैव शची गंगा च निम्नगा ।
एवमस्त्वित्यमापन्त नोमा न च करीषिणी॥241:३१९
३२० ॥

× × ×

शक्ता हि पावने ब्रह्म त्रैलोक्यस्यापि सा भवेत् ।
अदितिश्च दितिश्चैव या च गंगा महानदी ॥
एवं क्रमेण सा देवी गृह्यारव्य सरिद्वरा ।
जगाम गंगया सार्धं संयोगं सिन्धुना सह॥290:३८८-
३८९ ॥

× × ×

तपनस्य सुता देवी गंगास्नेहेन मन्त्रिता ।
बहुमानान्मुनेर्मस्या स्वेनांशेन व्यवर्धत॥294:३९२॥
वितस्तां तु सरिच्छ्रेष्ठां सर्वकल्मषनाशिनीम् ।

× × ×

*गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा ॥295:
३९४ ॥*

× × ×

स प्रयागसमो देशस्तयोर्यत्र तु संगमः ।
गंगातोयमथादाय गंगां [illegible] यमुनाऽब्रवीत् ॥296:३९५
३९६ ॥

× × ×

तामब्रवीत्ततो गंगा भूय एव मया तव ।
हर्षदं नाम सुभगे यदाऽहं सिन्धुसंगिता॥298:३९७-
३९८ ॥

× × ×

तव अवनस्य विप्रस्य निम्यं कर्मानुतिष्ठतः ।
मोक्षदं मुनयः स्नानं गंगायां स्वर्गदं विदुः ॥
॥ 311:४१२ ॥

× × ×

स्वैराजिकानां मध्येन मात्राणां चैव भागतः ।
भोगप्रस्थमतिक्रम्य गंगया सह संगता ॥320:४२१॥

× × ×

अदितिश्च दितिश्चैव शची च मनुजेश्वर ।
तपनस्य सुता या च या च गंगा सरिद्वरा॥322:४२३॥

× × ×

सीता वंक्षुश्च सिन्धुश्च सप्तगंगाश्च मानद ।
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसा ह्रदा ॥
॥ 599:७२० ॥

× × ×

गंगा सपूजनं कार्यं तस्मिन्नहनि काश्यप ।
ब्रह्मलोकात्त्रिपथगा पृथिव्यामवतारयत् ॥681:८०६,
८०७ ॥

× × ×

नमः शशांकलेखांकजटाभार महेश्वर ।
गंगातरंगनिर्धूत जटाभार नमोऽस्तु ते॥1091:१२८९॥

× × ×

तत्र गंगा सरिच्छ्रेष्ठा चन्द्रभ्रष्टा प्रतिष्ठिता ।
यस्यां स्नातस्य पूयन्ते सर्वपापान्यसंशयम् ॥
॥ 1243:१४५६-१४५७

× × ×

राजसूयमवाप्नोति गंगामातुश्च संगमे ।
देवतीर्थे नरः स्नात्वा भवत्यमरपूजितः ॥
॥1244:१४५७-१४५८॥

× × ×

गंगोद्भेदे नरः स्नात्वा भेडादेवीसमीपतः ।
गंगास्नानफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥
॥ 1309:१५२२-१२२३ ॥

× × ×

क्रमवर्ताभिधाने स प्रदेशे प्राप्तवांस्ततः ।
ढक्कं काम्बुवनामानं योऽद्य शूरपुरे स्थितः ॥ २२७ ॥

२२७. तदनन्तर वह क्रमवर्त नामक प्रदेश में काम्बुव[1] संज्ञक ढक्क[2] पहुँचा जो आज शूरपुर (सोपुर) में स्थित है ।

वितस्तातो महीनाथ न गंगा व्यतिरिच्यते ।
केशवं जाह्नवीतोये पुरुषस्यास्थिसंभवः ॥
॥ 1373:१५८७ ॥

× × ×

वितस्तातोऽधिको राजन् स्नानाद्यं तुल्यमेव च ।
भागीरथेन गंगेयं पुरा राज्ञाऽवतारिता॥1374:१५९०।

× × ×

गंगानदी शंभुजटाकलापे,
चंद्रेण देवेन तथा विभिन्ना ।
प्रोक्ता नृलोके नृप चन्द्रभागा,
आयाति पुण्यं वितता वितस्ताम् ॥ 1391 ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२७ में 'वर्ता' का पाठभेद 'वर्ता' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२२७ (१) क्रमवर्त : वर्तमान कमेनन कोठ, पीर पंतसल मार्ग पर है ।

(२) काम्बुव : वह ढक्क का नाम है । पीर-पंतसल मार्ग पर है ।

ढक्क : इस शब्द का अर्थ रणजीत सीताराम पण्डित ने ढमस्टेशन (नगाड़ा की चौकी) लगाया है । उसे निरीक्षण किंवा अवलोकन चौकी कहा है । स्तीन ने इसका अर्थ सैनिक चौकी किया है । ढक्क शब्द प्राचीन है । नीलमत पुराण में ढक्क शब्द मिलता है । वह एक नाग है । उस स्थान पर ढक्क के स्थान पर धुक्क का भी पाठभेद मिलता है ।

वीरभद्रावनी नागौ नागी सारमधुक्ककौ ।
रक्ताकश्च तथा चक्को गोशो चंश नगस्तथा ॥
221 : १०८७-१०८८

कश्मीर में ढक्क सैनिक चौकी अथवा वाच स्टेशन को कहते हैं । कश्मीर के इतिहास में ढक्क के प्रबन्ध तथा रक्षा पर राजाओं ने बहुत जोर दिया है । ढक्क के कारण कश्मीर में अवाञ्छनीय तत्वों का प्रवेश नहीं हो सकता था । ढक्क प्रायः दर्रों, प्रवेश स्थान तथा सैनिक महत्त्व के स्थान पर सुरक्षा तथा नियन्त्रण की दृष्टि से बनाये गये थे ।

अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर ने क्रमवर्त स्थित ढक्क को शूरपुर में स्थापित किया था । शूरपुर वर्तमान हूरपुर किंवा होरपुर है । रामण्यार नदी की हरी भरी सुहावनी उपत्यका में स्थित है ।

ढक्क किंवा द्रंग पर्वतीय दर्रों के प्रवेश मुख पर सुरक्षा निमित्त निर्मित किये जाते थे । इसका काम बाहर से आने वाले सामान से चुंगी वसूल करना तथा देश की सुरक्षा दोनों से होता था । शूरपुर के चुंगी का यह स्थान उस जगह देखा जा सकता है जहाँ बादशाह जैनुल आबदीन ने अभिसार से आने वालों के लिये शिविर किंवा पड़ाव अथवा छावनी बनवाया था ।

द्रंग का अर्थ रक्षा स्थान होता है । श्रीवर ने उसे गुल्म भी कहा है । द्रंगिका, द्रांगिका, द्रंगिन आदि समानार्थक शब्द वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों में प्रयुक्त किया गया है । पुराने मुगल बादशाही मार्ग पर यात्री के लिए बाजार, निवास आदि को सुविधा प्राप्त होती थी । यह पर्वतीय व्यवधान पार करते ही किंचित् मैदान के पश्चात् मिलता है । कल्हण ने राजतरंगिणी में इसका कई बार उल्लेख किया है ।

मंख के कोश में द्रंग रक्षा स्थान का समान वाचक कहा गया है । द्रंग का कहीं-कहीं मार्गेश अर्थात्

शतद्रुं च ततस्तीर्त्वा ऋषिगंगां च निम्नगाम् ।
अर्जुनाथममासाद्य देवसुन्दं तथैव च ॥132:१७५॥

× × ×

मकरेण ययौ गंगा कूर्मेण यमुना नदी ।
वृषारूढा शतद्रुश्च महिषेण सरस्वती ॥153:२०५॥

× × ×

कथं सती शची गंगा अदितिर्यमुना दितिः ।
सरित्त्वमिह संप्राप्ता या च देवी करीषिणी॥233:३१५॥

× × ×

अदितिश्च दितिश्चैव शची गंगा च निम्नगा ।
एवमसरित्वमभ्यपन्त सोमा न च करीषिणी॥241:३१९
३२० ॥

× × ×

शक्ता हि पावने मह्य त्रैलोक्यस्यापि सा भवेत् ।
अदितिश्च दितिश्चैव या च गंगा महानदी ॥
एवं क्रमेण सा देवी गृह्यात्यथ सरिद्वरा ।
जगाम गंगया सार्धं संयोगं सिन्धुना सह॥290:३८८-
३८९ ॥

× × ×

तपनस्य सुता देवी गंगास्नेहेन मन्त्रिता ।
बहुमानान्मुनेर्मध्या स्वेनांशेन व्यवर्धत॥294:३९३॥
वितस्तां तु सरिच्छ्रेष्ठां सर्वकल्मषनाशिनीम् ।

× × ×

गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा ॥295:
३९४ ॥

× × ×

स प्रयागसमो देशस्तयोर्यत्र तु संगमः ।
गंगातोयमथादाय गंगां [illegible] यमुनाऽब्रवीत् ॥296:३९५
३९६ ॥

× × ×

तामब्रवीत्ततो गंगा भूय एव मया तव ।
हरंत्र्यं नाम सुभगे यदाऽहं सिन्धुसंगिता॥298:३९७-
३९८ ॥

× × ×

तव भक्तस्य विप्रस्य नित्यं कर्मानुतिष्ठतः ।
मोक्षदं मुनयः स्नानं गंगायां स्वर्गदं विदुः ॥
॥ 311:४१२ ॥

× × ×

स्वैराजिकानां मध्येन मात्राणां चैव भागशः ।
भोगद्वयमतिक्रम्य गंगया सह संगता ॥320:४२१॥

× × ×

अदितिश्च दितिश्चैव शची च मनुजेश्वर ।
तपजन्य सुता या च या च गंगा सरिद्वरा॥322:४२३॥

× × ×

सीता वंक्षुश्च सिन्धुश्च सप्तगंगाश्च मानद ।
सुषमा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसा ह्रदा ॥
॥ 599:७२० ॥

× × ×

गंगा सपूजनं कार्यं तस्मिन्नहनि काश्यप ।
ब्रह्मलोकात्त्रिपथगा पृथिव्यामवतारयत् ॥681:८०६,
८०७ ॥

× × ×

नमः शशांकलेखांकजटाभार महेश्वर ।
गंगातरंगनिर्धूत जटाभार नमोऽस्तु ते॥1091:१२८९॥

× × ×

तत्र गंगा सरिच्छ्रेष्ठा चन्द्रभष्टा प्रतिष्ठिता ।
यस्यां स्नातस्य पूयन्ते सर्वपापान्यसंशयम् ॥
॥ 1243:१४५६-१४५७

× × ×

राजसूयमवाप्नोति गंगामानुषसंगमे ।
देवतीर्थे नरः स्नात्वा भवत्यमरपूजितः ॥
॥1244:१४५७-१४५८॥

× × ×

गंगोद्भेदे नरः स्नात्वा भेडादेवीसमीपतः ।
गंगास्नानफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥
॥ 1309:१५२२-१२२३ ॥

× × ×

क्रमवर्ताभिधाने स प्रदेशे प्राप्तवांस्ततः ।
ढक्कं काम्बुवनामानं योऽद्य शूरपुरे स्थितः ॥ २२७ ॥

२२७. तदनन्तर वह क्रमवर्त नामक प्रदेश में काम्बुव[1] संज्ञक ढक्क[2] पहुँचा जो आज शूरपुर (सोपुर) में स्थित है ।

वितस्तातो महीनाथ न गंगा व्यतिरिच्यते ।
केवलं जाह्नवीतोये पुरुषस्यास्थिसंभवः ॥
॥ 1373:१५८७ ॥

× × ×

वितस्तातोऽधिको राजन् स्नानार्थं तुल्यमेव च ।
भागीरथेन गंगेयं पुरा राज्ञाऽवतारिता॥1374:१५९०।

× × ×

गंगानदी शंभुजटाकलापे,
चंद्रेण देवेन तथा विभिक्ता ।
प्रोक्ता नृलोके नृप चन्द्रभागा,
आयाति पुण्यं वितता वितस्ताम् ॥ 1391 ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२७ में 'वर्त्त' का पाठभेद 'वत्ता' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२२७ (१) क्रमवर्त : वर्तमान कमेनन कोठ, पीर पंतसल मार्ग पर है ।

(२) काम्बुव : वह ढक्क का नाम है । पोर-पंतसल मार्ग पर है ।

ढक्क : इस शब्द का अर्थ रणजीत सीताराम पण्डित ने डमस्टेशन (नगाड़ा को चौकी) लगाया है । उसे निरीक्षण किंवा अवलोकन चौकी कहा है । स्तीन ने इसका अर्थ सैनिक चौकी किया है । ढक्क शब्द प्राचीन है । नीलमत पुराण में ढक्क शब्द मिलता है । वह एक नाग है । उस स्थान पर चुक्क के स्थान पर धुक्क का भी पाठभेद मिलता है ।

वीरभद्राशनौ नागौ नागौ सारमधुक्ककौ ।
रक्ककाकद्य तथा चक्रको जोतो वंश नतस्तथा ॥
221 : १०८७-१०८८

कश्मीर में ढक्क सैनिक चौकी अथवा वाच स्टेशन को कहते हैं । कश्मीर के इतिहास में ढक्क के प्रबन्ध तथा रक्षा पर राजाओं ने बहुत जोर दिया है । ढक्क के कारण कश्मीर में अवाञ्छनीय तत्वों का प्रवेश नहीं हो सकता था । ढक्क प्रायः दर्रों, प्रवेश स्थान तथा सैनिक महत्त्व के स्थान पर सुरक्षा तथा नियन्त्रण की दृष्टि से बनाये गये थे ।

अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर ने क्रमवर्त स्थित ढक्क को शूरपुर में स्थापित किया था । शूरपुर वर्तमान हुरपुर किंवा होरपुर है । रामब्यार नदी की हरी भरी सुहावनी उपत्यका में स्थित है ।

ढक्क किंवा द्रंग पर्वतीय दर्रों के प्रवेश मुख पर सुरक्षा निमित्त निर्मित किये जाते थे । इसका काम बाहर से आने वाले सामान से चुंगी वसूल करना तथा देश की सुरक्षा दोनों से होता था । शूरपुर के चुंगी का यह स्थान उस जगह देखा जा सकता है जहाँ बादशाह जैनुल आबदीन ने अभिसार से आने वालों के लिये शिविर किंवा पड़ाव अथवा छावनी बनवाया था ।

द्रंग का अर्थ रक्षा स्थान होता है । श्रीवर ने उसे गुल्म भी कहा है । द्रंगिका, द्रांगिका, द्रंगिन आदि समानार्थक शब्द वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों में प्रयुक्त किया गया है । पुराने मुगल बादशाही मार्ग पर यात्री के लिए बाजार, निवास आदि की सुविधा प्राप्त होती थी । यह पर्वतीय व्यवधान पार करते ही किंचित् मैदान के पश्चात् मिलता है । कल्हण ने राजतरंगिणी में इसका कई बार उल्लेख किया है ।

मंख केकोश में द्रंग रक्षा स्थान का समानवाचक कहा गया है । द्रंग का कहीं-कहीं मार्गेश अर्थात्

नानाजनपदाकीर्णे स्थाने तत्राथ शुश्रुवान् ।
काश्मीरिकान्महामात्यान्स्थितान्केनापि हेतुना ॥ २२८ ॥

२२८. वहाँ उसने सुना कि नाना जनपदाकीर्ण स्थान पर किसी कारण से काश्मीरी महामात्य स्थित हैं।

ततोऽपनीतप्राग्वेपः प्रावृतो धवलांशुकैः ।
स जगामान्तिकं तेषां दातुं नृपतिशासनम् ॥ २२९ ॥

२२९. तदनन्तर पूर्ववस्त्र बदल धवल वस्त्र[1] धारण कर वह नृपति शासन देने के लिये उन लोगों के समीप गया।

तं प्रयान्तं समुद्यद्भिः शकुनैः सूचितोदयम् ।
पान्थाः केऽप्यन्वयुर्द्रष्टुं निमित्तानां फलोद्गमम् ॥ २३० ॥

२३०. गमन करते इसका कुछ पथिकों ने निमित्तों का फलोद्भव देखने हेतु अनुगमन किया, जिसका प्रकट होते शकुनों से उदय (उत्थान) ज्ञात था।

मार्ग का अधिकारी के रूप में प्रयोग किया गया है।

सम्राट् अकबर के काल में मार्गेश को मलिक कहते थे। कालान्तर में यह अधिकार मौरूसी अर्थात् आनुवंशिक उत्तराधिकार के रूप में हो गया था। उन्हें जागीर मिलती थी। कश्मीर में सिक्ख राज स्थापित होने पर जागीरें जप्त कर ली गयी थी। इस प्रकार के पूर्व जागीरदारों का पता सुपियान (हुरपुर के नीचे) शाहाबाद आदि स्थानों में मिलता है।

क्रमवर्त के प्राचीन दुर्ग अथवा ढक्क स्थान का पता निश्चयात्मक रूप से मिल गया है। उसका नाम बिगड़कर कमेलन कोठ हो गया है। यह स्थान लगभग साढ़े पाँच मिल हूरपुर से दूर एक अलग पहाड़ी पर जहाँ पीर पंजाब की स्रोतस्विनियाँ तथा रूपरी दर्रा मिलता था। यहाँ पहाड़ी खड़ी लगभग दो सौ फिट ऊँची होगी। पहाड़ी पर २००×५० फिट की अधित्यका अर्थात् प्लेटो है। यहाँ पर दो अष्टपहल बुर्ज बने हैं जो सामरिक प्राकार से समन्वित है। इस समय गिर गये हैं। ढक्क को पुलिस चौकी मानने का कुछ लेखकों ने प्रयास किया है। यह ठीक नहीं होगा। "क्रमवर्ता ■ कोटा:" का ही अपभ्रंश 'कमेलन कोठ' हो गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२८ में 'श्मीरि' का पाठभेद 'श्मीर' मिलता है।

श्लोक संख्या २२९ मे 'प्रावृतो' का पाठभेद 'प्रवृत्तो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२२९ (१) धवल वस्त्र : यह प्राचीन आचार एवं परम्परा है कि देवस्थान, यात्रा एवं राजसभा में धवल किंवा नवीन अथवा स्वच्छ वस्त्र धारण कर लोग जाते थे। अन्यधर्मावलम्बियों में भी यही बात देखी जाती है। रविवार के दिन चर्च में ईसाई तथा शुक्रवार के दिन मुसलमान जुमा की नमाज में धुला किंवा स्वच्छ वस्त्र ऋतु के अनुसार धारण कर जाते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३० मे 'फलोद्गमम्' का पाठभेद 'फलोद्गमं' मिलता है।

श्रुत्वाऽथ विक्रमादित्यदूतः प्राप्त इति द्रुतम् ।
द्वाःस्थाः काश्मीरमन्त्रिभ्यस्तमासन्नं न्यवेदयन् ॥ २३१ ॥

२३१. 'विक्रमादित्य के दूत का आगमन सुनकर द्वारपालों ने उसकी उपस्थिति शीघ्र ही काश्मीरी मन्त्रियों से निवेदित की।

'आगच्छत प्रविशतेत्युच्यमानोऽथ सर्वतः ।
स तान्समस्तसामन्तानाससादानिवारितः ॥ २३२ ॥

२३२. 'आइये, प्रवेश कीजिये'—इस प्रकार सब ओर से लोगों ने कहा। बिना अवरोध वह उन समस्त सामन्तों के पास पहुंचा।

यथाप्रधानं सचिवैर्विहितोचितसत्क्रियः ।
ततः पराध्यमध्यास्त तन्निर्दिशतमासनम् ॥ २३३ ॥

२३३. प्रधानतानुसार सचिवों के उचित सत्कार प्राप्त कर (वह) उन लोगों से निर्दिष्ट सर्व श्रेष्ठ आसनपर बैठा।

कृतार्हणैरथामात्यैराज्ञां पृष्टो महीभुजः ।
शनैस्तच्छासनं तेभ्यो लज्जमान इवार्पिपत् ॥ २३४ ॥

२३४. सम्मानकारी अमात्यों के पूछने पर 'राजा की क्या आज्ञा है'—लज्जित तुल्य वह धीरे से शासन उन्हें अर्पित किया।

तेऽभिवन्द्य प्रभोर्लेखमुपांशु मिलितास्ततः ।
उन्मुच्य वाचयित्वैतमवोचन्विनयानताः ॥ २३५ ॥

२३५. उन्होंने प्रभु लेख उपांशु का अभिनन्दन किया। एकान्त में मिले। उसे खोला। और बाँचकर विनयावनत बोले—

मातृगुप्त इति श्लाघ्यं भवतामेव नाम किम् ।
एवमेवैतदित्यूचे सोऽपि तान्विहितस्मितः ॥ २३६ ॥

२३६. 'श्लाघ्य मातृगुप्त' आपही हैं क्या ? सस्मित उनसे कहा—'एवमेव' (ऐसा ही)।

पादटिप्पणियाँ :

२३२ (१) बाण के हर्ष चरित में इससे मिलता पद मिलता है—

'सविनयं अभाषत आगच्छत प्रविशत'—

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३४ में 'वार्पिप' का पाठभेद 'वार्पप' मिलता है।

श्लोक संख्या २३५ में 'नातः' का पाठभेद 'न्विताः' मिलता है।

कः कोऽत्र संनिधातॄणामित्यश्रूयत वाक्ततः ।
राज्याभिषेकसंभारो दृश्यते स्म च संभृतः ॥ २३७ ॥

२३७. यह वाणी सुनायी पड़ी, "सन्निधाताओं में कौन है ?" तदनन्तर राज्याभिषेक संभार वहाँ पर दिखायी दिया ।

ततः कलकलोत्तालभूरिलोकसमाकुलः ।
प्रदेशः क्षणमात्रेण सोऽभूत्क्षुभ्यन्निवार्णवः ॥ २३८ ॥

२३८. क्षणमात्र में उत्ताल कोलाहल करते लोक समाकुल से व्याप्त वह स्थान क्षुब्ध समुद्र तुल्य हो गया ।

अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठितः ।
संनिपत्य प्रकृतिभिर्मातृगुप्तोऽभ्यषिच्यत ॥ २३९ ॥

मातृगुप्त का अभिषेक[1] :

२३९. पूर्वाभिमुख[2] सुवर्णभद्र पीठ पर बैठे मातृगुप्त को समागत प्रकृतियों[3] ने अभिषिक्त किया ।

तस्य विन्ध्यतटव्यूढवक्षसः परिनिर्लुठत् ।
सशब्दमभिषेकाम्बु रेवास्रोत इवाबभौ ॥ २४० ॥

२४०. उसके विशाल वक्षस्थल पर लुठित होते सशब्दपूर्ण अभिषेक जल विन्ध्यातट[1] के ढालपर गिरती रेवा (नर्मदा) स्रोत तुल्य सुशोभित हुआ ।

श्लोक संख्या २३७ में 'स्म' का पाठभेद 'स' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२३९ (१) श्री विलसन ने राज्याभिषेककाल सन् ११७ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ४७१ ई० एवं राज्यकाल ४ वर्ष ९ मास दिया है ।

श्री एस. पी. पण्डित ने वह समय सन् ११८ ई० तथा राज्य काल ४ वर्ष ९ मास १ दिन दिया है ।

श्री स्टीन ने अभिषेक काल लौकिक संवत् ३१४२ और २ मास तथा राज्य काल ४ वर्ष ९मास १ दिन दिया है ।

श्री वार्नो सप्तर्षि संवत् ४०४४ तथा सन् २६९ ई० देते हैं । कलिगताब्द ३२१८ वर्ष ३ मास द्वापर के मत से सन् ११७ वर्ष ११ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४३० ई० आता है । अबुलफजल नाम मैतर कुत्त देता है ।

(२) पूर्वाभिमुख : पूर्व मुख बैठकर प्रातः कालीन सन्ध्या तथा पूजा आदि किया जाता है । यह शुभ माना गया है । सूर्योदय की दिशा पूर्व है अतएव पवित्र कार्यों एवं सब प्रकार के संस्कारों के लिये उत्तम माना गया है । पूर्व के अभाव में उत्तर दिशा का स्थान माना गया है । पूर्व दिशा शक्ति प्रद, शुभ उत्थान तथा उदय का द्योतक है । सूर्य का उदय पूर्व में होता है अतएव वह दिशा जागृत अवस्था की, उदय की उत्थान की, प्रतीक है ।

(३) प्रकृतियों : यहाँ पर इसका राज प्रकृतियों तथा साधारण प्रकृति जनों दोनों हो सकता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४० में 'स्रोत' का पाठभेद 'स्रोता' मिलता है ।

अथ स्नातानुलिप्ताङ्गं सर्वाङ्गामुक्तभूषणम् ।
व्यजिज्ञपंस्तं राजानं क्रान्तगजासनं प्रजाः ॥ २४१ ॥

२४१. स्नान एवं अनुलेपन के पश्चात्, सर्वांग भूषण भूषित हो सिंहासनारूढ होने पर, प्रजा ने उस नृपति को ज्ञात कराया।

अर्थितेन स्वयं त्रातुं विक्रमादित्यभूभुजा ।
निर्दिष्टः स्वसमानस्त्वं शाधि नः पृथिवीमिमाम् ॥ २४२ ॥

२४२. 'रक्षा हेतु प्रार्थित स्वयं भूभुज विक्रमादित्य ने आपको स्व तुल्य निर्दिष्ट किया है। हम लोगों की पृथ्वी पर शासन करें'।

मण्डलानि विलभ्यन्ते येनानेन प्रतिक्षणम् ।
मा मंस्था मण्डलं राजन्विलब्धं तदिदं परैः ॥ २४३ ॥

२४३. 'हे राजन्! इस मण्डल को दूसरों से प्राप्त होना मत जानिये, क्योंकि इस राज्य के द्वारा प्रतिक्षण मण्डल प्राप्त होते रहते हैं।

कर्मभिः स्वैरवाप्तस्य जन्मनः पितरौ यथा ।
राज्ञां तथाऽन्ये राज्यस्य प्रवृत्तावेव कारणम् ॥ २४४ ॥

२४४. "जिस प्रकार स्वकर्मों से प्राप्त जन्म के प्रति माता-पिता कारण होते हैं, उसी तरह राजाओं के राज्य प्रवर्तन में अन्य लोग कारण होते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

२४० (१) विन्ध्या : नीलमत पुराण सात कुल पर्वतों में एक विन्ध्या की भी गणना करता है। नी० ५९६—६००

२४२ (१) श्लोक संख्या २४२—२४५ तक स्वागत श्लोक है। कश्मीर में राजा तथा अभ्यागतों के स्वागत की सुनिश्चित सुसंस्कृत एक शैली थी। औरंगजेब के कश्मीर आगमन काल में भी कश्मीरियों ने इसी प्रकार का स्वागत किया था। उसका वर्णन श्री वर्नियर करते हैं। उनकी समानता हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी मिलती है।

हम लोगों के कश्मीर पहुँचते ही भाटों से बादशाह औरंगजेब ने कश्मीर के इस प्रिय भूमि की स्तुति में कविता पाठ किया। बादशाह ने कविता लेकर उन्हें मिहरबानी दिखाते इनाम दिया। जहाँ तक मुझे स्मरण है उनमें एक में परावृत मालाओं की अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई में आकाश को आभूषण रूप में परावृत कर दिया था जिसे हम देखते हैं। प्रकृति ने अपनी पूरी शक्ति कश्मीर मण्डल को सजाने में समाप्त कर दी थी। उसे शत्रु सैन्यों से आक्रमण हेतु दुर्जेय बना दिया था। पृथ्वी की राजधानियों में रानी होने के कारण यह उचित ही था कि उसे पूर्ण शान्ति तथा सुरक्षा युक्त रखा जाय। इस प्रकार वह सार्वभौम राज सत्ता का उपयोग करती रहे बिना कभी किसी के पराधीन बनकर'।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४३ में 'विलभ्यन्ते' का 'विदीयन्ते'; 'येनानेन' का 'येनैतेन' तथा 'विलब्धं' का पाठभेद 'विलब्धं' मिलता है।

श्लोक संख्या २४४ में 'पितरौ' का 'पितरो' तथा 'राज्ञां' का पाठभेद 'राज्ञा' मिलता है।

इत्थं स्थिते परं कंचित्त्वदीयोऽस्मीति शंसता ।
न नेया भवता राजन्वयमात्मा च लाघवम् ॥ २४५ ॥

२४५. 'ऐसी स्थिति में हे राजन्! किसी अन्य से 'तुम्हारा हूँ' यह कहकर आप स्वयं तथा हम लोगों का गौरव लाघव न करें।'

इति तैस्तथ्यमुक्तोऽपि संस्मरन्स्वामिसत्क्रियाम् ।
मातृगुप्तो महीपालः क्षणमासीत्कृतस्मितः ॥ २४६ ॥

२४६. इस प्रकार उनके यथार्थ कहने पर भी महीपाल मातृगुप्त स्वामी के समादर को स्मरण करते हुए क्षण भर सस्मित रहा।

दानेन सुदिनं कुर्वन्नवराज्योर्जितेन सः ।
तत्रैव मङ्गलोदग्रं तदहो निरवर्तयत् ॥ २४७ ॥

२४७. उसने नव राज्योचित प्रचुर दान द्वारा मंगलमय उस दिन को सुदिन करते हुए (उसे) वहीं व्यतीत किया।

पुरप्रवेशायान्येद्युरभ्यर्थमानोऽथ मन्त्रिभिः ।
अद्भुतप्राभृतं दूतं राज्यदातुर्व्यसर्जयत् ॥ २४८ ॥

२४८. दूसरे दिन मन्त्रियों ने पुर प्रवेश हेतु प्रार्थना की। अद्भुत भेंट के साथ दूत को राज्यदाता (विक्रमादित्य) के पास भेजा।

देशौन्नत्यानुसारेण स्पर्धामिव च तां विदन् ।
स्वामिनो मनसि ह्रीतः सागसं स्वममन्यत ॥ २४९ ॥

२४९. देश की समृद्धि के अनुसार उसे स्वामी की स्पर्धा तुल्य जानते हुये, मन में लज्जित हुआ और अपने को अपराधी समझा।

अथाहूयपरान्भृत्यान्वक्तु सेवास्मृतिं प्रभोः ।
अल्पार्घाण्यपि सात्म्यानि प्राहिणोत्प्राभृतानि सः ॥ २५० ॥

२५०. उसने प्रभु की सेवा स्मृति को कहने के लिये दूसरे भृत्यों को बुलाकर स्वल्प मूल्यों के भी (नृप के) तदनुरूप भेंट भेजा

श्लोक संख्या [illegible] 'अपरं', 'कं [illegible] संख्या २५० में '[illegible]ण्य' का 'अल्पा-
का 'कश्चि' 'किंचि [illegible] भेद 'राज [illegible] र्घ्य' तथा '[illegible] का पाठभेद
मिलता है। [illegible] 'स्वात्म्यानि'

असामान्यान्गुणांस्तस्य स्मरन्पर्यश्रुलोचनः ।
स्वयं लिखित्वा श्लोकं च स्वकमेकं व्यसर्जयत् ॥ २५१ ॥

२५१. असामान्य उसके गुणों का स्मरण करते हुये उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। स्वयं लिखकर उसने अपना एक श्लोक भेजा।

नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं
दित्सां न सूचयसि मुञ्चसि सत्फलानि ।
निःशब्दवर्षणमिवाम्बुधरस्य राज-
न्संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः ॥ २५२ ॥

२५२. "हे राजन्! आप अपना आकार नहीं बदलते, आत्म श्लाघा नहीं करते, दान करने की इच्छा बिना प्रकट किये फल प्रदान करते हैं। जलद के निःशब्द वर्षण तुल्य फलित ही आपकी कृपा दिखायी पड़ती है।"

ततः प्रविश्य नगरं सैन्यैः पिहितदिक्तटैः ।
क्रमागतामिव महीं यथावत्पर्यपालयत् ॥ २५३ ॥

२५३. तदनन्तर दिगृतट को आच्छादित करनेवाले सैनिकों के साथ नगर प्रवेश कर परम्परा प्राप्त तुल्य पृथ्वी का यथावत् परिपालन किया।

त्यागे वा पौरुषे वाऽपि तस्यौचित्योन्नतात्मनः ।
क्ष्माभुजस्तर्कुकस्येव नाभूत्परिमितेच्छता ॥ २५४ ॥

२५४. त्याग या पौरुष में भी औचित्य से उन्नतात्मा वह; याचक (तर्कुक[1]) के तुल्य परिमित (इच्छा) आकाङ्क्षी नहीं हुआ।

यष्टुं यज्ञान्धृतोद्योगस्त्यागी विततदक्षिणान् ।
पशुबन्धमनुध्याय करुणाकूणितोऽभवत् ॥ २५५ ॥

२५५. (उस) त्यागी ने प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञ करने के लिये उद्योग किया किन्तु पशुवध का ध्यान कर करुणापूर्ण हो गया।

पादटिप्पणियाँ :

२५२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ६८ वा श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५४ में 'चित्योन्नतात्मन :' का 'न्त्यौचितात्मनः' तथा 'तर्कुकस्येव' का पाठभेद 'याचकस्येव' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२५४ (१)तर्कुक : कुछ अनुवादकों में तर्कुक का अर्थ तकुवा लगाया है। परन्तु यह अर्थ यहाँ नही बैठता है। इसका पाठभेद 'याचकस्येव' भी मिलता है। वह यहा पर संगत है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५५ मे 'कूणितो' का पाठभेद 'कुञ्चितो' तथा 'कूजितो' मिलता है।

इत्थं स्थिते परं कंचित्त्वदीयोऽस्मीति शंसता ।
न नेया भवता राजन्वयमात्मा च लाघवम् ॥ २४५ ॥

२४५. 'ऐसी स्थिति में हे राजन्! किसी अन्य से 'तुम्हारा हूँ' यह कहकर आप स्वयं तथा हम लोगों का गौरव लाघव न करें।'

इति तैस्तथ्यमुक्तोऽपि संस्मरन्स्वामिसत्क्रियाम् ।
मातृगुप्तो महीपालः क्षणमासीत्कृतस्मितः ॥ २४६ ॥

२४६. इस प्रकार उनके यथार्थ कहने पर भी महीपाल मातृगुप्त स्वामी के समादर को स्मरण करते हुए क्षण भर सस्मित रहा।

दानेन सुदिनं कुर्वन्नवराज्योर्जितेन सः ।
तत्रैव मङ्गलोदग्रं तदहो निरवर्तयत् ॥ २४७ ॥

२४७. उसने नव राज्योचित प्रचुर दान द्वारा मंगलमय उस दिन को सुदिन करते हुए (उसे) वहीं व्यतीत किया।

पुरप्रवेशायान्येद्युरर्थ्यमानोऽथ मन्त्रिभिः ।
अद्भुतप्राभृतं दूतं राज्यदातुर्व्यसर्जयत् ॥ २४८ ॥

२४८. दूसरे दिन मन्त्रियों ने पुर प्रवेश हेतु प्रार्थना की। अद्भुत भेंट के साथ दूत को राज्यदाता (विक्रमादित्य) के पास भेजा।

देशौन्नत्यानुसारेण स्पर्धामिव च तां विदन् ।
स्वामिनो मनसि ह्रीतः सागसं स्वममन्यत ॥ २४९ ॥

२४९. देश की समृद्धि के अनुसार उसे स्वामी की स्पर्धा तुल्य जानते हुये, मन में लज्जित हुआ और अपने को अपराधी समझा।

अथाहूयपरान्भृत्यान्वक्तु सेवास्मृतिं प्रभोः ।
अल्पार्घाण्यपि सात्म्यानि प्राहिणोत्प्राभृतानि सः ॥ २५० ॥

२५०. उसने प्रभु की सेवा स्मृति को कहने के लिये दूसरे भृत्यों को बुलाकर स्वल्प मूल्यों के भी (नृप के) तदनुरूप भेंट भेजा।

श्लोक संख्या २४५ में 'परं' का 'अपरं'; 'कंचि' का 'कंदिच' 'किंचि' तथा 'राजन्' का पाठभेद 'राजा' मिलता है।

श्लोक संख्या २५० में 'अल्पार्घाण्य' का 'अल्पार्घ्याण्य, 'अनर्घाण्य' तथा 'सात्म्यानि' का पाठभेद 'साद्यानि' तथा 'स्वात्म्यानि' मिलता है।

असामान्यान्गुणांस्तस्य स्मरन्पर्यश्रुलोचनः ।
स्वयं लिखित्वा श्लोकं च स्वकमेकं व्यसर्जयत् ॥ २५१ ॥

२५१. असामान्य उसके गुणों का स्मरण करते हुये उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। स्वयं लिखकर उसने अपना एक श्लोक भेजा।

नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं
दित्सां न सूचयसि मुञ्चसि सत्फलानि ।
निःशब्दवर्षणमिवाम्बुधरस्य राज-
न्संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः ॥ २५२ ॥

२५२. "हे राजन्! आप अपना आकार नहीं बदलते, आत्म श्लाघा नहीं करते, दान करने की इच्छा बिना प्रकट किये फल प्रदान करते हैं। जलद के निःशब्द वर्षण तुल्य फलित ही आपकी कृपा दिखायी पड़ती है।"

ततः प्रविश्य नगरं सैन्यैः पिहितदिक्तटैः ।
क्रमागतामिव महीं यथावत्पर्यपालयत् ॥ २५३ ॥

२५३. तदनन्तर दिग्तट को आच्छादित करनेवाले सैनिकों के साथ नगर [illegible] परम्परा प्राप्त तुल्य पृथ्वी का यथावत् परिपालन किया।

त्यागे वा पौरुषे वाऽपि तस्यौचित्योन्नतात्मनः ।
क्ष्माभुजस्तर्कुकस्येव नाभूत्परिमितेच्छता ॥ २५४ ॥

२५४. त्याग या पौरुष में भी औचित्य से उन्नतात्मा [illegible] परिमित (इच्छा) आकाङ्क्षी नहीं हुआ।

यष्टुं यज्ञान्धृतोद्योगस्त्यागी [illegible] ।
पशुवधमनुध्याय [illegible] ॥ २५५ ॥

२५५. (उस) त्यागी ने प्रचुर दक्षिणा वाले [illegible] पशुवध का ध्यान कर करुणापूर्ण हो गया।

पादटिप्पणियाँ :

२५२ (१) राजतरंगिणी मुद्रित संग्रह का यह [illegible] ६८ वां श्लोक है। [illegible]

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५४ में [illegible] लौकिक 'न्नत्योचितात्मनः' तथा [illegible] पर पानी 'याचकस्येव' मिलता है। [illegible] कया जाना

अमारमादिदेशाथ यावद्राज्यं स्वमण्डले ।
चूर्णीकृत्य सुवर्णादि प्रददौ च करम्भकम् ॥ २५६ ॥

२५६. अपने सम्पूर्ण (मण्डल) राज्य में अहिंसा का आदेश दिया और स्वर्ण चूर्ण आदि करम्भक[१] प्रदान किया।

करम्भके कीर्यमाणे मातृगुप्तेन भूभुजा ।
वैतृष्ण्यमुन्मिषत्तोषो न को नाम न्यपेवत ॥ २५७ ॥

२५७. भूभुज मातृगुप्त के करम्भक प्रदान करने पर सन्तुष्ट हुआ कौन असन्तोष (वितृष्णा) को प्राप्त किया।

गुणी च दृष्टकष्टश्च वदान्यश्च स पार्थिवः ।
विक्रमादित्यतोऽप्यासीदभिगम्यः शुभार्थिनाम् ॥ २५८ ॥

२५८. गुणी, कष्टदर्शी, वदान्य वह नृपति शुभार्थियों के लिये विक्रमादित्य से भी अधिक अभिगम्य था।

विवेचकतया तस्य श्लाघ्यया सुरभीकृताः ।
लक्ष्मीविलासाः क्ष्माभर्तुरशोभन्त मनीषिषु ॥ २५९ ॥

२५९. उस राजा की श्लाघ्य विवेकशीलता से सुरभित लक्ष्मी विलास मनीषियों से सुशोभित हुई।

हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन्नवम् ।
आसमाप्ति ततो नापत्साध्वसाध्विति वा वचः ॥ २६० ॥

२६०. (जब) मेण्ठ उसके समक्ष नवीन हयग्रीववध[१] सुना (प्रदर्शित कर) रहा था समाप्ति पर्यन्त उससे "साधु या असाधु" वाणी नहीं सुनी।

पादटिप्पणियाँ :

२५६ (१) करम्भक : इसका अर्थ खिचड़ी होता है। कश्मीर में खिचड़ी ब्राह्मणों को देने का प्राचीन रिवाज था। काशी आदि स्थानों में खिचड़ी दरिद्र नारायण का भोजन माना जाता है। इसी प्रकार पुलाक जिसका अपभ्रंश वर्तमान पुलाव है प्राचीन भारत में प्रिय भोजन था। पुलाव सामिष तथा निरामिष दोनों बनता था। निरामिष में मेवा तथा सब्जी डालकर बनाया जाता था। सामिष पुलाव में भोजनीय मांस डाला जाता था। करम्भक का उल्लेख पुनः रा० त० ५:१६ में भी कल्हण ने किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५७ में 'वैतृष्ण्य' का पाठभेद 'वैतृष्य' मिलता है।

श्लोक संख्या २५८ में 'वदान्य' का पाठभेद 'वदन्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६० (१) हयग्रीव वध : हयग्रीव का उल्लेख कुछ स्थानों पर महाकाव्य तथा अनेक स्थानों पर नाटक रूप में किया गया है। वह अत्यन्त सुन्दर काव्य है। अबतक यह काव्य पूर्ण रूप में नहीं प्राप्त हुआ है। इसको उल्लेख कवि राजशेखर न

अथ ग्रथयितुं तस्मिन्पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् ।
लावण्यनिर्याणभिया तदधः स्वर्णभाजनम् ॥ २६१ ॥

२६१. जब वह पुस्तक समेट रहा था—तो उसके नीचे स्वर्णपात्र, लावण्य[1] परिगलन भय से राजा ने रख दिया।

अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्या कृतसत्कृतिः ।
भर्तृमेण्ठः कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम् ॥ २६२ ॥

२६२. नृप की उस प्रकार की अन्तरज्ञता से सत्कृत होकर कवि भर्तृमेण्ठ ने लक्ष्मी का प्रदान पुनरुक्त (निःप्रयोजन) माना।

किया है। उसने अपने पूर्वजन्मों में वाल्मीकि भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति होना लिखा है।

बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स राजते सम्प्रति राजशेखरः ।
(बालरामायण)
विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिरा
स सम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला ।

क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक तथा मंख ने श्रीकंठचरित (२:५३) में मेण्ठ का उल्लेख किया है। मंख ने उसे सुबन्धु, भारवि तथा बाण के समकक्ष रखा है। सुभाषितावली में मेण्ठ की कविताओं का उद्धरण दिया गया है। हेमचन्द्र ने अलंकारचूड़ामणि में हयग्रीव वध को काव्य माना है। काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण में मेण्ठ तथा उसके काव्य का उल्लेख मिलता है। डाक्टर श्री भाऊदाजी ने राघव भट्ट के शकुन्तला भाष्य में मेण्ठ के पद्यों को पाया है।

कश्मीरी कवियों में मेण्ठ अन्यतम कवि हैं। यह प्रबन्ध कवि हैं। राज्यसभा के कवि थे। हयग्रीव वध के श्लोक सूक्ति ग्रन्थों में उद्धृत हैं। राजशेखर ने इन्हें वाल्मीकि का अवतार माना है।

अश्वशिरस् तथा हयग्रीव दोनो शब्दों का उल्लेख पुराणों में मिलता है। महाभारत में उल्लेख आता है कि और्व का क्रोध समुद्र में निक्षेप हुआ तो उसमें हयशिरस् की उत्पत्ति हुई। पुनः उल्लेख मिलता है कि हयग्रीव नरक का सेनापति था। भागवत पुराण के अनुसार विष्णु ने हयग्रीव का वध किया था। (११:४:१७) विष्णु तथा मारकण्डेय पुराण में उल्लेख है कि भगवान् विष्णु भद्राश्व में हयशिरस् रूप से उत्पन्न हुए थे। (विष्णु० २:२:५० ; मारक० ५५) कालिका पुराण के अनुसार हयग्रीव ने ज्वरासुर को मारा था। (कालिका० ८१:९६) देवी भागवत में विष्णु हयग्रीव ने असुर हयग्रीव का वध किया था (देवीभागवत १:४)।

असमी साहित्य में उल्लेख मिलता है कि ऋषि उर्व के कहने पर विष्णु ने हयासुर, जो मणिकूट पर निवास करता था, वध किया था। अन्तिम समय असुर ने प्रार्थना की कि भगवान् स्वयं हयसुर का रूप धारण कर मणिकूट पर निवास करें। नील मत में हयग्रीव अवतार का उल्लेख है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६१ में 'ग्रथयितुं' का पाठभेद 'ग्रन्थयितुं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६१ (१) लावण्य—लावण्य का लौकिक अर्थ पानी है। स्त्री पर पानी है। मोती पर पानी है। इसका अर्थ स्त्री पर लावण्य है किया जाना

स मातृगुप्तस्वाम्याख्यं निर्ममे मधुसूदनम् ।
कालेनादत्त यद्ग्रामान्मम्मः स्वगुरुसद्मने ॥ २६३ ॥

२६३. उसने मातृगुप्त स्वामी[1] नामक मधुसूदन (मन्दिर) का निर्माण कराया, उसमें लगे ग्रामों को मम्म[2] ने कालान्तर में अपने देव मन्दिर हेतु ले लिया।

इत्यागादितराज्यस्य शासतः क्ष्मां क्षमापतेः ।
त्रिमासोना ययुस्तस्य मेऽस्याहाः पञ्च वत्सराः ॥ २६४ ॥

२६४. इस प्रकार राज्य प्राप्त कर पृथ्वी का शासन करते उस नृपति का तीन मास एक दिवस कम पाँच वर्ष व्यतीत हुआ।

कृतार्थतां तीर्थतोयैराञ्जनेयो नयन्पितॄन् ।
जातं तादृशमश्रौषीत्स्वस्मिन्देशे पराक्रमम् ॥ २६५ ॥

२६५. आंजनेय (प्रवरसेन) ने जो कि, तीर्थों में जल से पितरों[1] को कृत-कृत्य कर रहा था, इस प्रकार सुना—'स्वदेश पर आक्रमण[2] हुआ है।'

उचित है। लावण्य सौन्दर्य के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। शब्दकल्पद्रुम में लावण्य की परिभाषा की गयी है :

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥

काव्य का यह रस सोचे चू न जाय इसलिए स्वर्णपात्र रख दिया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २६३ में 'मम्म' का, 'नम्मः' 'मस्मः', तथा 'स्वसुर' का पाठभेद 'स्वशुर,' तथा 'स्वदेवगृहाय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६३ (१) मातृगुप्त स्वामी—इस मन्दिर का उल्लेख पुनः कही नही मिलता। यह मन्दिर कहाँ था इसका पता भी नहीं चलता।

(२) मम्म—मम्म ने मन्दिर वहाँ बनवाया था उल्लेख नही मिलता। मम्म का यह मन्दिर विष्णु मन्दिर था। यह श्लोक नं० ४:६९८ से प्रगट होता है। यह स्पष्ट निर्देश है कि मम्म ने मम्म स्वामी का मन्दिर निर्माण कराया था। स्वामी एवं ईश्वर शब्दों के साथ विष्णु तथा शिव मन्दिर समझना चाहिये। इसके लिये पृष्ठ १४७ की पाद टिप्पणी द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २६५ में 'नयन्' का 'प्रनयत्' तथा 'पराक्रमम्' का पाठभेद 'पराभवम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६५ (१) पित्र : यहाँ पित्र तर्पण के अर्थ में लगाना चाहिये जो सन्ध्या करते समय तथा श्राद्ध के समय किया जाता है।

(२) आक्रमण : कल्हण ने यहाँ पर पराक्रम शब्द का मूलतः प्रयोग किया है। अनुवादकों ने उसका अर्थ हरण अर्थात् राज्य का बलात् ले लेना किया है। मैंने यहाँ आक्रमण शब्द रखा है। धन, सम्पत्ति, राज्य सभी पर आक्रमण करने के भाव का समावेश हो जाता है।

पितृशोकार्द्रता तस्य क्रोधेनान्तरधीयत ।
तरोरिवार्कतापेन नैशाम्बुलवसिक्तता ॥ २६६ ॥

२६६. उसकी पितृशोकार्द्रता क्रोध से वैसे ही अन्तर्हित हो गयी—जैसे रवि ताप से तरु की रात्रि कालीन जलसिक्तता।

श्रीपर्वते पाशुपतव्रतिवेषस्तमागतम् ।
आचख्यावश्वपादाख्यः सिद्धः कन्दाशनं ददत् ॥ २६७ ॥

२६७. जब वह श्री[1] पर्वत पर आया तब उसे पाशुपत[2] व्रती वेश अश्वपाद नामक सिद्ध कन्द भोजन देते हुए कहा—

---

२६७ (१) श्रीपर्वत—श्रीपर्वत किंवा श्री शैल के लिये विष्णुपुराण २:१४१ तथा ५:११८ द्रष्टव्य है।

(२) पाशुपत : नाट्य शास्त्र के अनुसार इस पंथ का अनुयायी नृत्य एवं गान से अपना भक्ति भाव प्रकट करता है। कालाञ्जर में तन्त्र शास्त्र के विकास के साथ शिव पुरुष रूप तथा पार्वती स्त्री शक्ति किंवा प्रकृति रूप में चित्रित गये हैं।

श्री शंकराचार्य ने पाशुपत सम्प्रदाय के पाँच सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है—(१) कार्य, (२) कारण, (३) योग (४) विधि तथा (५) दुःखान्त।

कार्य तीन प्रकार के हैं—(१) विद्या (२) अविद्या तथा (३) पशु। विद्या दो प्रकार की है—बोध स्वभावा तथा (२) अबोधस्वभावा। बोध स्वभावा विद्या दो प्रकार का है—(१) व्यक्त तथा (२) अव्यक्त। पशु दो प्रकार का होता है—(१) मलयुक्त तथा (२) निर्मल।

(२) कारण—समस्त वस्तुओं की सृष्टि, संहार तथा अनुग्रह करने वाले तत्त्व को कारण कहते हैं। गुण एवं कार्य के भेदों के कारण इसके अनेक रूप हो जाते हैं।

(३) योग—ईश्वर के साथ चित्त के सम्बन्ध को जोड़ने वाले साधन को योग कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—(१) क्रिया युक्त तथा (२) क्रियाहीन।

(४) विधि—धर्म को सिद्धि करने वाले व्यापार किंवा क्रिया को विधि कहते हैं। विधि दो प्रकार की होती है। (१) प्रधान तथा (२) गौण। इसके भेद—(१) व्रत तथा (१) द्वार है।' भस्म से स्नान, भस्म में शयन, उपहार, जप एवं प्रदक्षिणा व्रत हैं। द्वारचर्या छह प्रकार की होती है (१) क्राथन (२) स्पन्दन (३) मन्दन (४) शृंगारण (५) अवितकरण तथा (६) अविनद् भाषण। चर्या की सहायक विधि गौण विधि कही जाती है।

(५) दुःखान्त—दो प्रकार का होता है—(१) अनात्मक तथा (२) सात्मक। अनात्मक दुःखों का पूर्ण क्षय है। सात्मक—जिसमें ज्ञान और कर्म की शक्ति से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ज्ञान शक्ति पाँच प्रकार की होती है—(१) दर्शन (२) श्रवण (३) मनन (४) विज्ञान तथा (५) सर्वज्ञत्व। क्रिया शक्ति एक होने पर भी त्रिविध है—(१) मनोजवित्व (२) कामरूपित्व (३) विकरणधर्मित्व।

शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत चार सम्प्रदाय (१) शैव (२) पाशुपत (३) कारुक सिद्धान्ती तथा (५) कापालिक नामधारी सिद्धान्त आते हैं। पाशुपत सिद्धान्त के प्रतिपादक स्वयं भगवान् पशुपति माने जाते थे। शिवपुराण की वायवीय संहिता (२,२४,१९९) द्रष्टव्य है। अन्य ग्रन्थ पंचाध्यायी है। उसका उल्लेख काश्मीर विद्वान् केशव भी करते हैं।

जन्मान्तरे लब्धसिद्धिस्त्वामस्म्युपरिसाधकम् ।
वाञ्छामपृच्छं राज्यार्थमभिलाषस्तु तेऽभवत् ॥ २६८ ॥

२६८. 'जन्मान्तर में तुम मेरे उपरि साधक' (अनुचर) थे। उस समय सिद्धि प्राप्त होने पर मैंने तुम्हारी अभिलाषा पूछी। राज्य की अभिलाषा तुम्हें हुई।

सयत्नं तव कर्तुं तन्मनोरथमनन्यथा ।
अथ मामित्थमादिक्षत्स्मरमणशेखरः ॥ २६९ ॥

२६९. 'तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि हेतु जब मैं प्रयत्नशील था उस समय स्मर रमण शेखर (शिव) ने ऐसी दीक्षा दी—

गणेऽयं मामकः सिद्धो यस्तवोपरिसाधकः ।
जन्मान्तरेऽस्य राज्येच्छां कुर्यामहमनन्यथा ॥ २७० ॥

२७०. 'तुम्हारा उपरिसाधक मेरा सिद्ध गण है। जन्मान्तर में इसको राज्य प्राप्त की इच्छा थी। मैं इसे पूर्ण करूंगा।

भावं भवस्तद्भवतो भगवान्दत्तदर्शनः ।
साफल्यं नेष्यतीत्येवमभिधाय तिरोदधे ॥ २७१ ॥

२७१. 'भगवान् शिव दर्शन देकर तुम्हारा मनोरथ सफल करेंगे'—यह कहकर वह तिरोहित हो गया।

साम्राज्येच्छोः समामेकां तत्र तस्य तपस्यतः ।
लब्धस्मृतिः सिद्धगिरा प्रददौ दर्शनं शिवः ॥ २७२ ॥

२७२. वहाँ एक वर्ष तपस्या करने पर साम्राज्याकांक्षी उसे (शिव ने) सिद्ध वाणी द्वारा स्मरण प्राप्त कर, दर्शन दिया।

व्रतिवेषं तमादिष्टवाञ्छितार्थसमर्पणम् ।
स जगन्निर्जयोन्निद्रं नरेन्द्रत्वमयाचत ॥ २७३ ॥

२७३. वांछित अर्थ समर्पण के लिये कहने वाले उस व्रती वेशधारी (शिव) से जगत् जयसे जागरूक नरेन्द्रता को (प्रवरसेन ने) याचना की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६८ में 'साधकम्' का पाठभेद 'साधक.' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२६९ (१) साधक : तन्त्र तथा माहात्म्य से अलौकिक शक्ति प्राप्ति के लिये जो साधन करता है उसे साधक कहते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७१ में 'भावं' का पाठभेद 'भावे' मिलता है।

उपेक्ष्य मोक्षं किं क्ष्माभृद्भोगानिच्छसि भङ्गुरान् ।
इति जिज्ञासुना भावं शंभुना सोऽभ्यधीयत ॥ २७४ ॥

२७४. 'राजन् ! मोक्ष को उपेक्षित कर क्षण भंगुर भोगों की क्यों इच्छा करते हो ? इस प्रकार भाव जानने के जिज्ञासु शम्भु[1] ने उससे कहा—

स तं बभाषे शंभुं त्वां बुद्ध्वा व्याजतपोधनम् ।
अभ्यधामिदमद्धा त्वं न स देवो जगद्गुरुः ॥ २७५ ॥

२७५. उसने उनसे कहा—'तुम्हें तपस्वी वेशधारी शम्भु जानकर, यह याचना की थी किन्तु निश्चय ही, वह जगद्गुरु देव तुम नहीं हो ।

महान्तो ह्यर्थिताः स्वल्पं फलन्त्यल्पेतरत्स्वयम् ।
उदन्यया वदान्योऽदाद्दुग्धाब्धिं स पयोऽर्थिने ॥ २७६ ॥

२७६. स्वल्प प्रार्थित, महान् जन स्वयं अधिक फल प्रदान करते हैं । उस वदान्य ने पयःप्रार्थी को क्षीरसागर दिया ।

पादटिप्पणियाँ :

२७४ (१) शम्भु : कल्याण सम्पादित करने वाले देव का अर्थ शम्भु होता है । उग्रकर्मा रुद्र है । शिव कल्याण स्वरूप है । शम्भु रुद्र एवं शिव यद्यपि एक ही शंकर के नाम है, रूप है परन्तु उनका अर्थ भिन्न है । नीलमत पुराण में शम्भु को कालयज्ञोपवीती कहा है । (नी० १०९४, ९००, ९१३, ८८८)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७६ में 'वदान्यो' का पाठभेद 'वदन्यो' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२७६ (१) पयःप्रार्थी : कल्हण ने यहाँ महाभारत वर्णित उपमन्यु की कथा की ओर संकेत किया है । उपमन्यु की कथा वायुपुराण अध्याय ५६ में दी गयी है—व्यीतमन्यु नामक एक वेद वेदांग पारग गृहस्थ एवं महाभाग्य शाली श्रेष्ठ ब्राह्मण था । उसकी धर्मशीला नामक पत्नी थी । उस पत्नी से उसे उपमन्यु नामक पुत्र प्राप्त हुआ । दूध के अभाव में माता चावल पीस कर उसे पिलाया करती थी । उसका रंग दूध की तरह उज्ज्वल होता था । एक दिन अपने पिता के साथ किसी द्विज के यहाँ उसने सुस्वादु खीर खाया । माता ने दूसरे दिन दूध के व्याज से उसे पिसा चावल का पानी दिया तो उपमन्यु ने पीने से अस्वीकार कर दिया । बालक असली दूध के लिये रोने लगा । माता ने भी रोते हुए कहा बिना शिव की कृपा से दूध कैसे मिल सकता है ? शिव की कृपा कैसे प्राप्त होगी इसका उत्तर माता ने दिया—'विरूपाक्ष त्रिशूलधारी महादेव की आराधना करो ।' उपमन्यु के पूछने पर कि विरूपाक्ष कैसे है माता ने उत्तर दिया—प्राचीन काल में श्रीदाम नाम प्रसिद्ध एक महान् असुरपति था । उसने लक्ष्मी को समस्त जगत् अतिक्रान्त कर वशवर्तिनी बना लिया था । उस असुर ने तत्पश्चात् वासुदेव से श्रीवत्स प्राप्त करने का प्रयास किया । भगवान् विष्णु असुर वध की कामना से शिव के पास गये । शिव उस समय हिमालय शिखर के चिकने भूतल पर बैठे थे । तदनन्तर विष्णु जो जगन्नाथ के समीप गये । और अपने द्वारा स्वयं अपनी आराधना की । वे एक सहस्र वर्ष पैर के अँगूठे पर खड़े रह कर तपस्या करने लगे । महादेव ने प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु को सुदर्शन चक्र

अस्य वैकल्यकैवल्यलाभनिश्चलचेतसः ।
नो वेत्स्यभिजनस्याभिभूतिं मर्मव्यथावहाम् ॥ २७७ ॥

२७७. 'कैवल्य प्राप्ति से भी अशान्त चित्त वाले इसके कुल के मर्म व्यथाकारी तिरस्कार को क्या आप नहीं जानते ?'

जगत्परिवृढः प्रौढप्रीतिस्तं सफलार्थनम् ।
कृत्वा प्रादुष्कृतवपुस्ततो भूयोऽभ्यभाषत ॥ २७८ ॥

२७८. उसे सफल मनोरथ करके अत्यन्त प्रसन्न जगन्नायक शरीर धारणकर पुनः बोले–

मज्जतो राज्यसौख्येषु सायुज्याप्तिदूतिकाम् ।
मदाज्ञयाऽश्वपादस्ते संज्ञां काले करिष्यति ॥ २७९ ॥

२७९. 'अश्वपाद मेरी आज्ञा से समय पर राज सुखों में निमग्न तुम्हें सायुज्य[1] प्राप्ति का सन्देश वाहिका-संज्ञा प्रदान करेगा।

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवे स कृतव्रतपारणः ।
अगच्छदश्वपाद तमापृच्छ्याऽभिमतां भुवम् ॥ २८० ॥

२८०. यह कह कर देव के अन्तर्हित हो जाने पर उसने व्रत का पारण किया और अश्वपाद से आज्ञा लेकर अभिमत भूमि की ओर गया।

प्रदान किया। सुदर्शन चक्र द्वादश अरों, छह नाभियों, एवं दो युगों से युक्त था। चक्र की अमोघ शक्ति जानने की जिज्ञासा पर शंकर ने विष्णु से अपने ही ऊपर चलाने के लिये कहा। शंकर पर विष्णु ने चक्र चलाया। शंकर के शरीर के तीन भाग हो गये। प्रथम भाग का नाम हिरण्याक्ष, दूसरे का सुवर्णाक्ष तथा तृतीय का विरूपाक्ष नाम पड़ा। विष्णु ने उस चक्र द्वारा दामा का वध किया। उस असुर के वध के पश्चात् विष्णु ने विरूपाक्ष शंकर की उपासना की। तत्पश्चात् क्षीर सागर चले गये। यदि तुम दूध चाहते हो तो विरूपाक्ष शंकर की उपासना करो। उपमन्यु ने शिव विरूपाक्ष की उपासना कर दुग्ध प्राप्त किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७७ में 'वैकल्य' का 'वैकल्प' तथा "कैवल्य" का पाठभेद "कैवल्या" मिलता।

श्लोक संख्या २७८ में 'भ्यभाषत' का पाठभेद 'व्यभाषत' मिलता है।

श्लोक संख्या २७९ में 'मज्जतो' का 'सज्जतो' तथा 'सायुज्या' का पाठभेद 'सायुज्या' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७९. (१) सायुज्य : पाँच प्रकार की मुक्ति होती है। सायुज्य में आत्मा परमात्मा में लीन होकर एकाकार हो जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८० 'अगच्छ' का पाठभेद 'आगच्छ' मिलता है।

ततो विदितवृत्तान्तो मातृगुप्ताभिषेणनात् ।
निषिध्य सविधायातानमात्यानब्रवीद्वचः ॥ २८१ ॥

२८१. तदुपरान्त (सब) वृत्तान्त जानकर पूजाहेतु उद्यत हो, आये हुये, अमात्यों को निवारित कर बोला—

विक्रमादित्यगुप्तिसक्तमुच्छेत्तुं यतते मनः ।
मातृगुप्तं प्रति न नो रोषेणारूषितं मनः ॥ २८२ ॥

२८२. 'मेरा मन गर्वीले विक्रमादित्य को उच्छेद के लिये प्रयत्नशील है, मातृगुप्त के प्रति क्रोध से मेरा मन रूक्ष नहीं है।

अप्रियैरपि निष्पिष्टैः किं स्यात्क्लेशासहिष्णुभिः ।
ये तदुन्मूलने शक्ता जिगीषा तेषु शोभते ॥ २८३ ॥

२८३. क्लेश न सह सकने वाले एवं निष्पिष्ट शत्रुओं में क्या रखा है ? जो अपने उन्मूलन में समर्थ हैं, उन्हीं में विजयेच्छा शोभित होती है।

यान्यब्जान्युदयं द्विषन्ति शशिनः कोऽन्यस्ततोऽसंमत-
स्तन्निर्माथिकरीन्द्रदन्तदलनं यन्नाम कोऽयं नयः ।
सामर्थ्यप्रथनाय चित्रमसमैः स्पर्धां विधूयोन्नता
ये तेषु प्रभवन्ति तत्र जहति व्यक्तं प्ररूढा रुषः ॥ २८४ ॥

२८४. 'जो कमल[२] चन्द्रोदय द्वेषी हैं, उनसे बढ़कर असम्मत (शत्रु) दूसरा कौन है ? उनका निर्मथन कर्ता करीन्द्र (हाथी) के दन्त का दलन जो चन्द्र करता है, यह कौन आश्चर्य है। उन्नत जन सामर्थ्य प्रख्यात करने के लिये, असम जनों के साथ स्पर्धा त्यागकर, जो उनमें समर्थ है, वहाँ उग्र क्रोध का प्रदर्शन करते हैं।

श्लोक संख्या २८३ में 'क्लेशास' का पाठभेद 'क्लेशस' मिलता है।

श्लोक संख्या २८४ में 'विधूय' का पाठभेद 'विधाय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७०वा श्लोक है।

(२) कमल : कमल सूर्योदय के साथ मुकुलित होता है और सूर्यास्त के साथ उसके पटल बन्द हो जाते हैं। कुमुदिनी रात्रि में चन्द्रोदय के साथ मुकुलित होती है। चन्द्र किरणों के तिरोहित होने और सूर्योदय के साथ ही उसकी पंखड़ी बन्द हो जाती है। इस प्रकार शशि कमल का प्रकृतितः शत्रु है। कल्हण यहाँ शशि की उज्ज्वलता को गज-दन्त अर्थात् हाथी दाँत से तुलना करता दाँत की उज्ज्वलता को श्रेष्ठ बताता है। इस प्रकार शशी को गज विरोधी चित्रित किया गया है। हाथी दाँत शशि रश्मि से चिनक जाता है। गज कमल का शत्रु माना गया है। वह सरोवर में प्रवेश करता है और कमल दल को नष्ट कर देता है। तरंग ७:१०९९ तथा ८:२८५६, २८६५ तथा ३१४२ द्रष्टव्य है।

त्रिगर्तानां भुवं जित्वा ॥ व्रजन्नथ भूपतिः ।
विक्रमादित्यमशृणोत्कालधर्ममुपागतम् ॥ २८५ ॥

२८५. त्रिगर्त भूमि विजित कर जाते हुए उसने विक्रमादित्य को दिवंगत हुआ सुना।

तस्मिन्नहनि भूभर्त्रा शोकान्निश्श्वसताऽनिशम् ।
नास्नायि नाशि नास्वापि स्थितेनावनताननम् ॥ २८६ ॥

२८६. उस दिन अवनतानन (अधोवदन) स्थित राजा ने शोक से निःश्वास लेते हुये; स्नान, भोजन एवं शयन भी नहीं किया। स्थिर रहा।

अन्येद्युर्भुवमुत्सृज्य कश्मीरेभ्यो विनिर्गतम् ।
शुश्राव मातृगुप्तं स नातिदूरे कृतस्थितिम् ॥ २८७ ॥

२८७. दूसरे दिन उसने सुना—मातृगुप्त भूमि त्याग, कश्मीर से बहिर्गत हो कर, बहुत दूर पर स्थित कहीं (समीप) ही है।

कैश्चिन्निर्वासितो मा स्विन्मदीयैरिति शङ्कितः ।
ययौ प्रवरसेनोऽस्य पार्श्वे मितपरिच्छदः ॥ २८८ ॥

२८८. मेरे किसी पक्षपाती द्वारा निर्वासित कर दिया गया हो, इस शंका से प्रवरसेन परिमित जनों के साथ उसके पास गया।

मैं अपने अनुभव से बता सकता हूँ कि कमल, हाथी दाँत, शशि की उपमा कल्हण ने सत्यता के आधार पर दी है। मेरे पास हाथी था। उसका दाँत बड़ा था। हम प्रायः बालपन में हाथी के पास जाते थे। उसे ईख खाने को दिया जाता था। ईख में ही रोटी मिला दी जाती थी। उन दिनों मेरी हाथी दस सेर आटा की रोटी प्रतिदिन खाता था। रामलीला के पश्चात् अगहन मास में वह जमीन्दारी पर भेज दिया जाता था। मैं भी एक बार गया था। संयोग से मेरे एक बड़े सरोवर में खूब कमल खिला था। हाथी उस ओर जाने के लिये उत्सुक हो गया। मैं उसपर बैठा था। महावत के मना करने पर हमारी जिदपर वह सरोवर में लाया गया। सरोवर में पैठते ही वह कमलों को उखाडकर फेंकने लगा। बाहर निकला तो सूंड में कमल को उखाड़ता लाया। रात्रि में मैंने एक बार देखा कि महावत चाँदनी रात में दाँत पर कपड़ा लपेट देता था। पूछने पर कोई जवाब नहीं दे सका। केवल यही कहा कि बाप दादों के समय से यह होता आया है। वह भी करता है। कल्हण का यह श्लोक पढ़ने पर मुझे स्मरण आया कि दाँत चिनक न जाय इसलिये उसपर चाँदनी में कपड़ा लपेट दिया जाता था। परन्तु मैंने देखा है कि हाथी दाँत चिनक जाते हैं। उनको लम्बी चिनक पंक्ति बन जाती है। इससे हाथी दाँत का मूल्य कम हो जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८६ मे 'निश्श्वस' का 'निश्वस' तथा 'नास्नायि' का पाठभेद 'नाम्नापि' और 'माम्नापि' मिलता है।

कृतार्हणं सुखासीनं ततः पप्रच्छ तं शनैः ।
विनयावनतो राजा राज्यत्यागस्य कारणम् ॥२८९॥

मातृगुप्त का राज त्याग

२८९. इसके पश्चात् विनयावनत राजा ने नमस्कार कर, सुखपूर्वक बैठे, उससे धीरे से राज त्याग का कारण पूछा।

बभाषे तं क्षणं स्थित्वा स निश्वस्य विहस्य च ।
गतः स सुकृती राजन् येन भूमिभुजो वयम् ॥२९०॥

२९०. वह कुछ क्षण स्थिर हो, निःश्वास लेकर, विहँसकर, बोला—'हे राजन्! जिसके द्वारा मैं राजा था वह सुकृती गत हो गया।

यावन्मूर्ध्नि रवेः पादास्तावद् द्योतयते दिशः ।
द्योतयेन्नान्यथा किं न ग्रावैव तपनोपलः ॥२९१॥

२९१. 'जब तक मूर्धा पर सूर्य की किरणें रहती हैं, तब तक सूर्यकान्त मणि दिशाओं का ज्योतिर्मय करती है, अन्यथा नहीं, तो क्या वह पत्थर मात्र नहीं है।

अथ राजाऽभ्यधात्केन राजन्नपकृतं तव ।
यत्प्रत्यपचिकीर्षायै तमीशमनुशोचसि ॥२९२॥

२९२. राजा ने कहा—'हे राजन्! आपका किसने अपकार किया है? जिसके प्रतिकार करने की इच्छा से उस स्वामी के लिये आप शोक करते हैं?

मातृगुप्तस्ततोऽवादीत्कोपस्मितसिताधरः ।
अस्मानुत्सहते कश्चिन्नापकर्तुं बलाधिकः ॥२९३॥

२९३. तदनन्तर क्रोध पूर्ण स्मिति से सिताधर मातृगुप्त बोला—'कोई बलाधिक हमारा अपकार करने में समर्थ नहीं है।

नयता गण्यतामस्मानन्तरज्ञेन तेन हि ।
न भस्मनि हुतं सर्पिर्नोप्तं वा सस्यमूषरे[1] ॥२९४॥

२९४. 'अन्तरज्ञ उस राजा[2] (विक्रमादित्य) ने मुझे अधिपति बनाकर निश्चय ही भस्म में घृत का हवन तथा ऊसर में बीज वपन नहीं किया है।

पादटिप्पणियाँ :

२९१ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७१वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २९२ में 'यत्प्रत्यप' का पाठभेद 'यत्प्रत्यय' और 'तत्प्रत्यय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७२वाँ श्लोक है।

(२) राजा : श्लोक का भावार्थ यह

उपकारं स्मरन्तस्तु कृतज्ञत्ववशंवदाः ।
पदवीमुपकर्तृणां यान्ति निश्चेतना अपि ॥२९५॥

२९५. 'कृतज्ञता से वशंवद उपकार स्मरण करने वाले निश्चेतन भी उपकारियों का अनुसरण करते हैं।

निर्वाणमनु निर्वाति तपनं तपनोपलः ।
इन्दुमिन्दुमणिः किंच शुष्यन्तमनु शुष्यति ॥२९६॥

२९६. 'सूर्यकान्त मणि सूर्य के निर्वाण (अस्त) के पश्चात् शान्त हो जाता है। और इन्दुमणि इन्दु के क्षीण होने पर शुष्क हो जाता है।

पुण्यां वाराणसीं गत्वा तस्माच्छमसुखोन्मुखः ।
इच्छामि सर्वसंन्यासं कर्तुं द्विजजनोचितम् ॥२९७॥

२९७. 'अतएव शान्ति सुख का इच्छुक मैं पुण्य वाराणसी जाकर द्विज जनोचित सर्व त्याग करना चाहता हूँ।

मणिदीपमिवेशं तमन्तरेणान्धकारिताम् ।
बिभेमि द्रष्टुमप्युर्वीं भोगयोगे कथैव का ॥२९८॥

२९८. 'मणि दीप' निभ उस स्वामी के बिना, अन्धकार पूर्ण पृथ्वी को देखने में भी भयभीत होता हूँ। भोग योग का कहना ही क्या ?

इत्यौचित्यनिधेस्तस्य वाणीमाकर्ण्य विस्मितः ।
धीरः प्रवरसेनोऽपि व्याजहारोचितं वचः ॥२९९॥

२९९. इस प्रकार औचित्य विधान की वाणी सुनकर विस्मित धीर प्रवरसेन भी उचित वचन बोला—

प्रतीत होता है कि मातृगुप्त को विक्रमादित्य ने जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर पहुँचा दिया था वह उसके महानता तथा दूरदर्शिता का परिणाम था।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २९५ में 'वशंवदाः' का पाठभेद 'वशीकृताः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ४२वाँ श्लोक है।

२९६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ४३वाँ श्लोक है।

(२) सूर्यकान्त मणि : कविपरम्परा के अनुसार चिन्तामणि सूर्य की रश्मियों से ज्योतिर्मय होती है। इन्दुमणि शर्वरी में पिघल जाती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९८ में 'कथैव का' का पाठभेद 'तु का कथा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९८ (१) मणिदीप : कल्हण ने पुनः उल्लेख तरंग ४:१५ में 'मणिदीपिकान्' किया है। मणि दीप का यहाँ अर्थ रात्रिकालीन प्रकाश है।

२९९ (१) आइने अकबरी में अबुल फजल ने नाम पीवीरसेन दिया है। आइने अकबरी के

अनुसार प्रवरसेन हिन्दुस्तान का एक सामान्य व्यक्ति था। एक धार्मिक व्यक्ति ने भविष्यद् वाणी की थी। वह राजा होगा। इस पर वह नगरकोट गया। वहाँ का अधिकारी बन गया। मातृगुप्त ने प्रवरसेन के लिये राज्य त्याग दिया। वह बनारस चला गया और साधारण जीवन व्यतीत करने लगा।

प्रवरसेन एक श्रेष्ठ राजा था। उसने काश्मीर की श्रीनगरी बसायी थी। कहा जाता है कि उसमें ३० लाख ६० हजार मकान थे। उसने बहुत दान किया था। प्रवरसेन कश्मीर को ग्यारह वर्षों की मालगुजारी बराबर मातृगुप्त के पास काशी भेजता रहा। मातृगुप्त धन गरीबों में बाँटता था।

श्री विलसन ने प्रवरसेन का राज्यारोहण मूल संवत् के अनुसार सन् १२२-२३ ईस्वी देता है।

श्री एस. पी. पण्डित ने प्रवरसेन का राज्यारोहण काल सन् १२३ ई० तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् ३१८६ मास ११ तथा दिन प्रथम तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया है।

श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि संवत् ४०५४ तथा सन् २८४ ई० दिया है।

कलिगताब्द ३२७८ वर्ष ३ मास द्वापर के अनुसार सन् १२३ वर्ष ८ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४३३ ई० ६ मास माना है।

हसन लिखता है—, ६) परवरसेन। राजा परवरसेन सन् १३५ विक्रमी में मातृगुप्त के रुखसत करने के बाद कश्मीर में आकर हुकूमत के जब्त रब्त और फौज और रैय्यत की आसाइश में मशगूल हुआ। अदल व इन्साफ और बख्शिश और मिहरबानी में मसरूफ रहकर अपने हमअसरों से बढ़ गया। दो तीन साल कमाल आजादी के साथ इस जगह का इन्तजाम दरजा कमाल तक पहुँचाकर कश्मीर फौज के साथ हिन्दुस्तान का इरादा किया। इतराफ हिन्दुस्तान के बहुत से मुल्क दरयाए शोर के किनारे तक अपने कब्जा में ले आया। विक्रमाजीत का बेटा शीलादित्य जो कि मुखालिफों के हाथ से डरकर परेशानी के जंगल में हैरान था। प्रवरसेन ने उसके सारे मुखालिफों को जंग के जरिया मगलूब और शिकस्त देकर शीलादित्य को अपने बाप के मौरूसी मुल्क पर सलतनत बख्श दिया। और सिंहासन का तख्त जो कि विक्रमाजीत के कब्जा में पड़ा था शिलादित्य से लेकर कश्मीर की तरफ लौटा। कुछ अरसा के बाद शीलादित ने राजा की पैरवी से सरकशी करके बगावत का झण्डा बुलन्द कर दिया। राजा प्रवरसेन अपने लश्कर के साथ हमलावर हुआ। और उसे कैदी बनाया। बुलन्द हिम्मती से उसको खता अता से बख्श कर अपने मौरूशी मुल्क पर बदस्तूर कायम किया। कुछ अरसा के बाद स्याह बख्ती के बायस उसने फिर सरकशी की। राजा ने उसपर दूसरी दफा कहर करके फिर मुआफ कर दिया।

कहते है कि शिलादित ने छह मर्तबा बगावत अख्तयार की। प्रवरसेन ने हर दफा इसकी सरकोबी करके फिर उन्हें अता की कशरत से बख्श दिया। सातवीं मरतबा राजा ने कमाल कहर से उसको हुकूमत को जब्त करके उस बागी को महबूस कर दिया। कुछ अरसा के बाद कमाल हिम्मत और दरया दिली से उसके गुनाहों से दरगुजर कर बदस्तूर अपने मुल्क को हुकूमत पर मुख्तार कर दिया। कहते है कि आली हिम्मत की बिना पर हर शहर बिना जंग व जदल से फतह करता वहाँ की हुकूमत पर वारिसान मुल्क को बदस्तूर रखता था और अपनी मौरूसी मुमलकत से किसी को भी माजदिल न करता था। (पृ.२)

बलाद व इमसार के रब्त व जब्त के बाद चाहा कि खित्तः कश्मीर में एक दिल बजीर शहर (पृष्ठ ६६) आबाद करके अपना नाम जमाना की वफा पर यादगार छोड़े। इस बिना पर स्थानियों में से एक की रहनुमाई से श्रीनगर का शहर जो इस वक्त आबाद और मशहूर है कोह मारों के इर्द गिर्द बाकी इमारतों के साथ जिनकी तादाद मुवर्रखों ने छत्तीस

उपकारं स्मरन्तस्तु कृतज्ञत्ववशंवदाः ।
पदवीमुपकर्तृणां यान्ति निश्चेतना अपि ॥२९५॥

२९५. 'कृतज्ञता से वशंवद उपकार स्मरण करने वाले निश्चेतन भी उपकारियों का अनुसरण करते हैं।

निर्वाणमनु निर्वाति तपनं तपनोपलः ।
इन्दुमिन्दुमणिः किंच शुष्यन्तमनु शुष्यति ॥२९६॥

२९६. 'सूर्यकान्त मणि सूर्य के निर्वाण (अस्त) के पश्चात् शान्त हो जाता है। और इन्दुमणि इन्दु के क्षीण होने पर शुष्क हो जाता है।

पुण्यां वाराणसीं गत्वा तस्माच्छमसुखोन्मुखः ।
इच्छामि सर्वसंन्यासं कर्तुं द्विजजनोचितम् ॥२९७॥

२९७. 'अतएव शान्ति सुख का इच्छुक मैं पुण्य वाराणसी जाकर द्विज जनोचित सर्व त्याग करना चाहता हूँ।

मणिदीपमिवेशं तमन्तरेणान्धकारिताम् ।
बिभेमि द्रष्टुमप्युर्वीं भोगयोगे कथैव का ॥२९८॥

२९८. 'मणि दीप' निभ उस स्वामी के बिना, अन्धकार पूर्ण पृथ्वी को देखने में भी भयभीत होता हूँ। भोग योग का कहना ही क्या ?

इत्यौचित्यनिधेस्तस्य वाणीमाकर्ण्य विस्मितः ।
धीरः प्रवरसेनोऽपि व्याजहारोचितं वचः ॥२९९॥

२९९. इस प्रकार औचित्य विधान की वाणी सुनकर विस्मित धीर प्रवरसेन भी उचित वचन बोला—

प्रतीत होता है कि मातृगुप्त को विक्रमादित्य ने जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर पहुँचा दिया था वह उसके महानता तथा दूरदर्शिता का परिणाम था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९५ में 'वशंवदाः' का पाठभेद 'वशीकृता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह श्लोक है।

२९६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह श्लोक है।

(२) सूर्यकान्त मणि : कविपरम्परा के अनुसार चिन्तामणि सूर्य की रश्मियों से ज्योतिर्मय होती है। इन्दुमणि शर्वरी में पिघल जाती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९८ में 'कथैव का' का पाठभेद 'तु का कथा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९८ (१) मणिदीप : कल्हण ने पुनः उल्लेख तरंग ४:१५ में 'मणिदीपिकान्' किया है। मणि दीप का यहाँ अर्थ रात्रिकालीन प्रकाश है।

२९९ (१) आईने अकबरी में अबुल फजल ने नाम पीरोरसेन दिया है। आईने अकबरी के

अनुसार प्रवरसेन हिन्दुस्तान का एक सामान्य व्यक्ति था। एक वणिक व्यक्ति ने कैलाश वस्तु की थी। यह धन हुआ। इस पर वह राजकोट गया। वहाँ का अधिकारी बन गया। मातृगुप्त ने प्रवरसेन के लिये राज्य त्याग दिया। वह बनारस चला गया और संन्यास जीवन व्यतीत करने लगा।

प्रवरसेन एक श्रेष्ठ राजा था। उसने कश्मीर की श्रीनगरी बसायी थी। कहा जाता है कि उसमें ६० लाख ६० हजार मकान थे। उसने बहुत दान किया था। प्रवरसेन कश्मीर की ग्यारह वर्षों की मालगुजारी बराबर मातृगुप्त के पास काशी भेजता रहा। मातृगुप्त धन गरीबों में बाँटता था।

श्री विल्सन ने प्रवरसेन का राज्यारोहण सूत्र संवत् के अनुसार सन् १२०-२१ ईस्वी दिया है।

श्री एम. पी. पण्डित ने प्रवरसेन का राज्यारोहण काल सन् १२१ ई० तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया है।

श्री स्टीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् ३१८६ मास ११ तथा दिन नवम तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया है।

श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि संवत् ४०५४ तथा सन् ३८४ ई० दिया है।

कलियुगाब्द ३२३८ वर्ष ३ मास ट्रायर के अनुसार सन् १३३ वर्ष ८ मास तथा वकिनस के अनुसार सन् ११२ ई० ६ मास आता है।

हसन लिखता है— ६) प्रवरसेन। राजा प्रवरसेन सन् १२५ विक्रमी में मातृगुप्त के रुखसत करने के बाद कश्मीर में आकर हुकूमत के तख्त पर और फौज और रैयत की आसाइश में मशगूल हुआ। अदल व इन्साफ और बख्शिश और मिहरबानी में मशहूर रहकर अपने हमअसरों से बढ़ गया। दो तीन साल कमाल आजादी के साथ इस जगह का इन्तजाम दर्जा कमाल तक पहुँचाकर कश्मीर फौज के साथ हिन्दुस्तान का इरादा किया। इत्तफाक हिन्दुस्तान के बहुत से मुल्क दरयाए शोर के किनारे तक अपने कब्जा में ले आया। विक्रमादित्य का बेटा शीलादित्य जो कि मुखालिफों के हाथ से हारकर परेशानी के आलम में हैरान था। प्रवरसेन ने उसके सारे मुखालिफों को जंग के जरिये मगलूब और गिरफ्तार करके शीलादित्य को अपने बाप के मौरूसी मुल्क पर हुकूमत बख्श दिया। और सिंहासन का तख्त जो कि विक्रमादित्य के कब्जा में पड़ा था फिर शिलादित्य से लेकर कश्मीर की तरफ लौटा। कुछ अरसा के बाद शीलादित्य ने राजा की पैरवी से सरकशी करके बगावत का झण्डा बुलन्द कर दिया। राजा प्रवरसेन अपने लश्कर के साथ हमलावर हुआ। और उसे कैदी बनाया। बुलन्द हिम्मती ने उसको खता से दरगुजर कर अपने मौरूसी मुल्क पर बदस्तूर कायम किया। कुछ अरसा के बाद स्याह बख्ती के बाइस उसने फिर सरकशी की। राजा ने उसपर दूसरी दफा कब्जा करके फिर मुआफ कर दिया।

कहते हैं कि शिलादित्य ने छह मर्तबा बगावत अख्तियार की। प्रवरसेन ने हर दफा इसकी सरकोबी करके फिर उन्हें खता की बख्शिश से बख्श दिया। आठवीं मर्तबा राजा ने कमाल कहर से उसकी हुकूमत को जब्त करके उस बागी को महबूस कर दिया। कुछ अरसा के बाद कमाल हिम्मत और दरया दिली से उसके गुनाहों से दरगुजर कर बदस्तूर अपने मुल्क की हुकूमत पर मुख्तार कर दिया। कहते हैं कि अपनी हिम्मत की बिना पर हर शहर बिना जंग व जदल से फतह करता वहाँ की हुकूमत पर वारिसान मुल्क को बदस्तूर रखता था और अपनी मौरूसी मुमलिकत से किसी को भी मालदिल न करता था। (पृ.३)

बलाद व इमसार के फतह व जब्त के बाद चाहा कि खित्तः कश्मीर में एक दिल पजीर शहर (पृष्ठ ६६) आबाद करके अपना नाम जमाना की सफा पर यादगार छोड़े। इस बिना पर रुहानियों में से एक की रहनुमाई से श्रीनगर का शहर जो इस वक्त आबाद और मशहूर है कोह मारों के इर्द गिर्द आली इमारतों के साथ जिनकी तादाद मुवर्रिखों ने छत्तीस

सत्यं विश्वभरा देवी भूपते रत्नसूरियम् ।
उत्पत्त्या द्योतते धर्म्यैः कृतज्ञैर्या भवादृशैः[1] ॥३००॥

३००. हे भूपते ! सत्य ही यह विश्वम्भरा देवी रत्न प्रसूता है, जो कि आपके तुल्य कृत ा एवं धार्मिकों की उत्पत्ति से समुज्ज्वल है।

अन्तरज्ञतया श्लाघ्यः कोऽन्यस्तस्मान्महीभुजः ।
इत्थं जडे जगत्येकस्त्वां यथावद्विवेद यः[1] ॥३०१॥

३०१. 'उस महीभुज से (अधिक) अन्य कौन अन्तरज्ञता के कारण श्लाघ्य है ? जिसने जड़ ससार में उस प्रकार आपको जाना।

चिरं खलु खिलीभूताः कृतज्ञत्वस्य वीथयः ।
धीर त्वयैव न त्वाशु सचारो यदि दर्श्यते[1] ॥३०२॥

३०२. 'हे धीर ! कृतज्ञता की वीथियां पूर्व में ही निःसार (नष्ट) हो जातीं, यदि आप शीघ्र ही संचार न करते।

पाकश्चेन्न शुभस्य मेऽद्य तदसौ प्रागेव नादात्किमु
स्वार्थश्चेन्न मयाऽस्य किं न भजते दीनान्स्वबन्धूनयम् ।
मत्तो रन्ध्रदृशोऽस्य भीर्यदि न तल्लुब्धः किमेष त्यजे-
दित्यन्तः पुरुषाधमः कलयति प्रायः कृतोपक्रियः[1] ॥३०३॥

३०३. (अन्य से) उपकृत अधम पुरुष प्रायः अन्तःकरण में इस प्रकार सोचता है— 'आज मेरे शुभ का परिपाक (भाग्योदय) हुआ है, अन्यथा पूर्व में ही इसने क्यों नहीं प्रदान किया, यदि मुझसे इसका स्वार्थ नहीं है, तो क्यों न यह अपने दीन बन्धुओं को उपकृत करता है। छिद्रद्रष्टा मेरे द्वारा यदि इसे भय न होता, तो क्या यह लोभी त्याग करता, प्रदान करता ?

लाख लिखी है। आबाद किया। उसकी हकीकत पहले हिस्सा में गुजर गयी। साठ बरस की मुद्दत हकूमत करके जिन्दगी का बिस्तर लपेट लिया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०० में 'धर्म्यैः का पाठभेद 'धर्न्यैः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३०० (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७५वां श्लोक है।

३०१ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७६वां श्लोक है।

३०२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७७वां श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०३ में 'पक्रियः' का पाठभेद 'पत्क्रियः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३०३ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७८वां श्लोक है।

अत्युदात्तगुणेष्वेषा कृतपुण्यैः प्ररोपिता ।
शतशाखीभवत्येव यावन्मात्राऽपि सत्क्रिया[1] ॥३०४॥

३०४. 'पुण्यशालों द्वारा अत्युदात्त गुणवानों पर (प्ररोपित) की गयी, यावन्मात्र भी सत्क्रिया शत शाखाओं वाली हो ही जाती है।

तत्त्व गुणवतामग्र्यस्तत्त्वज्ञैश्चाभिनन्दितः ।
परीक्षितो मणिरिव व्यक्तं बहुमतः सताम् ॥३०५॥

३०५. 'वास्तव में तत्त्वज्ञों द्वारा अभिनन्दित गुणवानों में अग्रणी एवं स्पष्ट ही सज्जनों द्वारा बहु मान्य (बहुमत) (आप) परीक्षित मणि तुल्य हैं।

तस्मादनुगृहाणास्मान्मा स्म त्याक्षीर्नरेन्द्रताम् ।
ममापि ख्यातिमायातु गुणवत्पक्षपातिता ॥३०६॥

३०६. 'अतएव हमें अनुगृहीत करें। नरेन्द्रता का त्याग न करें ताकि मेरी भी गुणवत्पक्षपातिता प्रख्यात हो।

पूर्वं तेनाथ चरमं मयाऽपि प्रतिपादितम् ।
भवान् पाणिप्रणयिनीं विदधातु पुनर्भुवम् ॥३०७॥

३०७. 'पूर्व में उनसे एवं अन्त में मेरे द्वारा भी प्रतिपादित भूमि को पुनः आप हस्तगत करें।'

अव्याजौदार्यचर्यस्य श्रुत्वेति नृपतेर्वचः ।
कृतस्मितो मातृगुप्तः शनैर्वचनमब्रवीत् ॥३०८॥

३०८. उदारचर्या निष्कारण उदारता पूर्ण आचरण वाले इस नृपति की बात सुनकर मुस्कराकर मातृगुप्त शनैः शनैः बोला—

---

३०४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७९वा श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०५ में 'भिनन्दिता' का पाठभेद 'वि नन्दिताः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३०६ (१) गुणवत्पक्षपातिता : यह शब्द सुन्दर है। भावपूर्ण है। अतएव मूलरूप में यहाँ रखा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि मैं भी गुणवानों के प्रति पक्षपात करता हूँ यह ख्याति हो।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०७ में 'पाणि' का पाठभेद 'प्राणि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३०७ (१) पुनर्भुवम् : पुनर्भुवम् यहाँ श्लिष्ट है। इसका अर्थ यहाँ दो विभिन्न भुवन अर्थात् लोक अथवा 'पुनर्भू' पुनर्विवाहित विधवा हो सकती है।

यान्यक्षराण्यन्तरेण वाच्यं वक्तुं न पार्यते ।
का गतिस्तदु दाने मर्यादोल्लङ्घनं विना ॥३०९॥

३०९. 'जिन अक्षरों को कहे बिना अभिप्राय व्यक्त नहीं होता, उसे प्रकट करने में मर्यादा उल्लघन के अतिरिक्त और कौन गति है ?

अतः परुषमप्यद्य किंचिदेव मयोच्यते ।
अव्याजार्जवमप्येतदार्यत्वमवधीर्यते ॥३१०॥

३१०. 'अतएव आज मैं कुछ परुष (शब्द) कहता हूँ यद्यपि (इससे) निष्कारण सरलतामयी भद्रता[1] तिरस्कृत हो रही है।

सर्वः स्मरति सर्वस्य प्रागवस्थासु लाघवम् ।
आत्मैव वेत्ति माहात्म्यं वर्तमाने क्षणे पुनः ॥३११॥

३११. 'पूर्व स्थितियों में सब लोग सभी लोगों के लाघव का स्मरण करते हैं, किन्तु वर्तमान क्षण में माहात्म्य (गौरव) को आत्मा ही जानती है।

पूर्वावस्था मदीया ते त्वदीया या च मे हृदि ।
ताभ्यां विमोहितावावां न विद्मोऽन्योन्यमाशयम् ॥३१२॥

३१२. "मेरी पूर्वावस्था आपके एवं आपकी मेरे हृदय में है। उनसे विमोहित हम दोनों एक दूसरे का आशय नहीं जानते हैं।

राजा भूत्वा कथं मादृक्प्रतिगृह्णातु संपदः ।
कथमेकपदे सर्वमौचित्यं परिमार्जतु ॥३१३॥

३१३. "राजा[1] होकर मुझ सदृश जन सम्पत्तियाँ कैसे ग्रहण करें ? सब औचित्य एकाएक (सहसा) कैसे परिमार्जित (नष्ट) कर दें ?

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०९ मे 'यान्यचरा' का पाठभेद 'यान्यक्षारा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३१० (१) भद्रता : कल्हण ने 'आर्यत्व' शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। उसका अनुवाद 'भद्रत्व' उचित बैठता है। मैंने आर्य का अर्थ यहाँ भद्र ही करना उचित समझा है।

३११ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८०वा श्लोक है।

३१३ (१) राजा : राजा किसी का अनुग्रह द्वारा प्रदत्त दान सहसा नही ग्रहण करता। राजा दान देता है। दान लेता नहीं है। यह पुरानी परम्परा है। इस श्लोक मे यही भाव निहित है।

असाधारणमौदार्यमाहात्म्यं तस्य भूपतेः ।
भोगमात्रकृते मादृक्किं साधारणतां नयेत् ॥ ३१४ ॥

३१४. 'उस नृपति के असाधारण औदार्य माहात्म्य को भोग मात्र के लिये, क्या साधारण कर दूँ ?

अपि च स्पृहयालुः स्यां भोगेभ्यो यदि भूपते ।
म्रियमाणेऽभिमाने मे केन ते विनिवारिताः ॥ ३१५ ॥

३१५. भूपते ! यदि मैं भोगों[1] के लिए इच्छा करूं, तो मेरे स्वाभिमान के रहते, उन्हें (भोगों को) कौन रोक सकता है ?

यन्ममोपकृतं तेन तद्विना प्रत्युपक्रियाम् ।
जीर्णमेवाधुनाऽङ्गेषु प्रभवत्वेष निश्चयः ॥ ३१६ ॥

३१६. 'उसने मेरा जो उपकार किया है, वह बिना प्रत्युपकार के यह निश्चय है कि अब (मेरे) अंगों में जीर्ण हो जायगा ।

या गतिर्भूभुजोऽमुष्य मया तामनुगच्छता ।
पात्रापात्रविवेकत्वख्यातिर्नेया प्रकाश्यताम् ॥ ३१७ ॥

३१७. "उस भूभुज का जो आचरण था उसका अनुसरण करने वाले मुझे पात्रापात्र विवेकशीलता की ख्याति प्रकाश में लानी चाहिये ।

एतावत्येव कर्तव्ये यातेऽस्मिन्कीर्तिशेषताम् ।
भोगमात्रपरित्यागाद्विदध्यां सत्यसंधताम् ॥ ३१८ ॥

३१८. 'इतना ही कर्तव्य कर इसके दिवंगत हो जाने पर (कीर्ति शेष) अब भोग मात्र के परित्याग से अपनी सत्यसंधता सिद्ध करूँगा ।"

इत्युक्त्वा विरते तस्मिञ्जगाद जगतीपतिः ।
त्वदीया न मया स्पृश्यास्त्वयि जीवति संपदः ॥ ३१९ ॥

३१९. ऐसा कहकर उसके विरक्त हो जाने पर जगतीपति (प्रवरसेन) ने कहा—'तुम्हारे जीवित रहते, मैं तुम्हारी सम्पत्तियों का स्पर्श नहीं करूंगा ।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१४ में 'मे' का पाठभेद 'ते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३१५ (१) भोग : मातृगुप्त के मुख से कल्हण ने कहलवाया है । यदि वह भोग की आकांक्षा करता, तो उनका भोग बिना स्वाभिमान त्याग किये कर सकता था । जैसा कि वह प्रवरसेन से पुनः राज्य प्राप्त कर सकता था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१७ में 'श्यताम्' का पाठभेद 'दताम्' मिलता है ।

यान्यक्षराण्यन्तरेण वाच्यं वक्तुं न पार्यते ।
का गतिस्तदु-दाने मर्यादोल्लङ्घनं विना ॥३०६॥

३०९. 'जिन अक्षरों को कहे बिना अभिप्राय व्यक्त नहीं होता, उसे प्रकट करने में मर्यादा उल्लंघन के अतिरिक्त और कौन गति है ?

अतः परुषमप्यद्य किंचिदेव मयोच्यते ।
अव्याजार्जवमप्येतदार्यत्वमवधीर्यते ॥३१०॥

३१०. 'अतएव आज मैं कुछ परुष (शब्द) कहता हूँ यद्यपि (इससे) निष्कारण सरलतामयी भद्रता' तिरस्कृत हो रही है।

सर्वः स्मरति सर्वस्य प्रागवस्थासु लाघवम् ।
आत्मैव वेत्ति माहात्म्यं वर्तमाने क्षणे पुनः ॥३११॥

३११. 'पूर्व स्थितियों में सब लोग सभी लोगों के लाघव का स्मरण करते हैं, किन्तु वर्तमान क्षण में माहात्म्य (गौरव) को आत्मा ही जानती है।

पूर्वावस्था मदीया ते त्वदीया या च मे हृदि ।
ताभ्यां विमोहितावावां न विद्वोऽन्योन्यमाशयम् ॥३१२॥

३१२. "मेरी पूर्वावस्था आपके एवं आपकी मेरे हृदय में है। उनसे विमोहित हम दोनों एक दूसरे का आशय नहीं जानते हैं।

राजा भूत्वा कथं माद्दक्प्रतिगृह्णातु संपदः ।
कथमेकपदे सर्वमौचित्यं परिमार्जतु ॥३१३॥

३१३. "राजा' होकर मुझ सदृश जन सम्पत्तियाँ कैसे ग्रहण करें ? सब औचित्य एका-एक (सहसा) कैसे परिमार्जित (नष्ट) कर दें ?

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०९ में 'यान्यक्षरा' का पाठभेद '[illegible]' लिखा है।

पादटिप्पणी :

३१० (१) भद्रता : कल्हण ने 'आर्यत्व' शब्द का प्रयोग [illegible] किया है। उसका अनुवाद 'भद्रत्व' [illegible] है। [illegible] का अर्थ यहाँ भद्र हो करना उचित समझा है।

३११ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८०वां श्लोक है।

३१३ (१) राजा : राजा किसी का अनुग्रह द्वारा प्रदत्त दान ग्रहण नहीं ग्रहण करता। राजा दान देता है। दान लेता नहीं है। यह पुरानी परम्परा है। इस श्लोक में यही भाव निहित है।

असाधारणमौदार्यमाहात्म्यं तस्य भूपतेः ।
भोगमात्रकृते मादृक्कि साधारणतां नयेत् ॥ ३१४ ॥

३१४. 'उस नृपति के असाधारण औदार्य माहात्म्य को भोग मात्र के लिये, क्या साधारण कर दूँ ?

अपि च स्पृहयालुः स्यां भोगेभ्यो यदि भूपते ।
म्रियमाणेऽभिमाने मे केन ते विनिवारिताः ॥ ३१५ ॥

३१५. 'भूपते ! यदि मैं भोगों[1] के लिए इच्छा करूँ, तो मेरे स्वाभिमान के रहते, उन्हें (भोगों को) कौन रोक सकता है ?

यन्ममोपकृतं तेन तद्विना प्रत्युपक्रियाम् ।
जीर्णमेवाधुनाऽङ्गेषु प्रभवत्वेष निश्चयः ॥ ३१६ ॥

३१६. 'उसने मेरा जो उपकार किया है, वह बिना प्रत्युपकार के यह निश्चय है कि अब (मेरे) अंगों में जीर्ण हो जायगा ।

या गतिर्भूभुजोऽमुष्य मया तामनुगच्छता ।
पात्रापात्रविवेकत्वख्यातिर्नेया प्रकाश्यताम् ॥ ३१७ ॥

३१७. "उस भूभुज का जो आचरण था उसका अनुसरण करने वाले मुझे पात्रापात्र विवेकशीलता की ख्याति प्रकाश में लानी चाहिये ।

एतावत्येव कर्तव्ये याते्ऽस्मिन्कीर्तिशेषताम् ।
भोगमात्रपरित्यागाद्विदध्यां सत्यसंधताम् ॥ ३१८ ॥

३१८. 'इतना ही कर्तव्य कर इसके दिवंगत हो जाने पर (कीर्ति शेष) अब भोग मात्र के परित्याग से अपनी सत्यसंधता सिद्ध करूँगा ।"

इत्युक्त्वा विरते तस्मिञ्जगाद जगतीपतिः ।
त्वदीया न मया स्पृश्यास्त्वयि जीवति संपदः ॥ ३१९ ॥

३१९. ऐसा कहकर उसके विरक्त हो जाने पर जगतीपति (प्रवरसेन) ने कहा— 'तुम्हारे जीवित रहते, मैं तुम्हारी सम्पत्तियों का स्पर्श नहीं करूँगा ।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१५ में 'मे' का पाठभेद 'ते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३१५ (१) भोग : मातृगुप्त के मुख से कल्हण ने कहलवाया है । यदि वह भोग की आकांक्षा करता, तो उनका भोग बिना स्वाभिमान त्याग किये कर सकता था । जैसा कि वह प्रवरसेन से पुनः राज्य प्राप्त कर सकता था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१७ में 'श्यताम्' का पाठभेद 'शताम्' मिलता है ।

अथ वाराणसीं गत्वा कृतकाषायसंग्रहः ।
सर्वं संन्यस्य सुकृती मातृगुप्तोऽभवद्यतिः ॥ ३२० ॥

३२०. अनन्तर सुकृती मातृगुप्त वाराणसी जाकर, सर्व त्याग पूर्वक, काषाय वस्त्र संग्रह कर, यती हो गया।

राजा प्रवरसेनोऽपि कश्मीरोत्पत्तिमञ्जसा ।
निखिलां मातृगुप्ताय प्राहिणोद् दृढनिश्चयः ॥ ३२१ ॥

३२१. दृढनिश्चयी राजा प्रवरसेन ने भी सम्पूर्ण कश्मीरोत्पत्ति (राजस्व-लाभ) मातृगुप्त को भेजा।

स हठापतितां लक्ष्मीं भिक्षाभुक् प्रतिपादयन् ।
सर्वार्थिभ्यः कृती वर्षान्दश प्राणानधारयत् ॥ ३२२ ॥

३२२. कृती [illegible]ह भिक्षुभुक् हठपूर्वक आगत लक्ष्मी को सर्व प्रार्थियों को देते हुये, दश वर्ष प्राण धारण [illegible]।

अन्योन्यं साभिमानानामन्योन्यौचित्यशालिनाम् ।
त्रयाणामपि वृत्तान्त एष त्रिपथगापयः[1] ॥ ३२३ ॥

[illegible] परस्पर स्वाभिमानी एवं औचित्यशाली इन तीनों (विक्रमादित्य, मातृगुप्त, [illegible] यह वृत्तान्त त्रिपथगा[2] का जल है।

[illegible]ां :

(१) यती : शाब्दिक अर्थ संन्यासी, त्यागी, [illegible]ता है। यम शब्द से यती बना है। आत्मनि- [illegible] स्वनियन्त्रण, अपने पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति को यति किंवा यती कहते हैं। वैनियों में जो लोग गृहस्थ जीवन त्याग देते है उन्हें यती कहा जाता है।

पाठभेद :

१. श्लोक संख्या ३२१ में 'काश्मीरो' का पाठभेद [illegible]श्मीरो' मिलता है।

[illegible] श्लोक संख्या ३२२ में 'हठा' का पाठभेद 'हारा[illegible]' है।

पादटिप्पणियाँ :

३२३ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८१वां श्लोक है :

(२) त्रिपथगा : गंगा नदी है। कल्हण ने यहाँ पर अपने कवित्व का परिचय देते हुए सुन्दर उपमा दी है। त्रिपथगा (पवित्र गंगा) की तीन पथ अर्थात् लोक हैं। स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल लोक। स्वर्ग से गंगा चलकर मर्त्य लोक में आयीं। पाताल लोक में पहुँच कर गंगा ने राजा सगर के पुत्रों को तार कर भगीरथ को तपस्या सफल की थी। त्रिपथगा की विमल, धवल धारा तुल्य ही तीनों राजा विक्रमादित्य, मातृगुप्त एवं प्रवरसेन थे। महाभारत एवं भागवत पुराण अध्याय ९ में गंगावतरण की कथा काव्यमय पदों मे दी गयी है।

राजा प्रवरसेनोऽथ नमयन्नवनीधरान्।
अकृच्छ्लङ्घ्याः ककुभो वृद्धस्य यशसो व्यधात् ॥ ३२४ ॥

राजा प्रवरसेन द्वितीय का अभियान :

३२४. राजा प्रवरसेन ने अवनीधरों (भूपालों) को झुकाते हुये, प्रवृद्ध यश द्वारा दिशाओं को बिना कष्ट के लंघनीय बना दिया।

पीताब्धिलङ्घितोर्वीभृत्कुम्भयोनिरिवाऽनयत्।
तस्य प्रतापः प्रभवन्भुवनानि प्रसन्नताम् ॥ ३२५ ॥

३२५. जिस प्रकार समुद्र पान एवं पर्वत लंघन कर्ता (कुम्भयोनि) अगस्त्य[1] जल निर्मल करते हैं उसी प्रकार उदय होते उसके प्रताप ने भुवनों को प्रसन्न किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३२४ में 'व्यधात्' का पाठभेद 'न्यधात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२५ (१) अगस्त्य : ऋग्वेद के अनुसार अगस्त्य मित्रावरुणों के पुत्र हैं। (ऋ० ७:३३:१३) उर्वशी को देखकर मित्रावरुणों का रेत कमल पर स्खलित हो गया। उससे वसिष्ठ एवं अगस्त्य उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद में अगस्त्य के प्रचुर संख्या में सूक्त उपलब्ध हैं। उनका पैतृक नाम मान्य एवं मान्दार्य भी वेदों में मिलता है। (ऋ० १:१६५ ; १४—१५ ; १६६ ; १५ ; १८५ ; १०) अगस्त्य की पत्नी का नाम लोपामुद्रा है। वह विदर्भराज निमिराज की कन्या थी। अगस्त्य लोपामुद्रा संवाद वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध है। (ऋ० १:१७८:४ ;) पुराणों के अनुसार मित्रावरुणों के वीर्य से इन्द्र के शाप के कारण कुंभ से उत्पन्न हुए थे। अतएव इन्हें कुम्भयोनि कहा गया (मत्स्य० ६१ : २०१ ; पद्म० सृ० : २२ : २२ म० व० ९६ ; म० मो० १२२, १८५ ; म० शा० ३४४)।

अग का अर्थ है पर्वत। पर्वत स्तम्भन करने के कारण अगस्त्य नाम पड़ा था। यही इस नाम की व्युत्पत्ति है। (वा० रा० म० ११) अगस्त्य ऋषि विन्ध्य पर्वत के गुरु थे। अगस्त्य दक्षिण दिशा गमन कर रहे थे। उस समय विन्ध्य ने नमस्कार किया। अगस्त्य ने उसे आशीर्वाद दिया कि वह उसी प्रकार विनत उनके लौटने तक पड़ा रहे। इसी समय से उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ का आवागमन प्रारम्भ हुआ। इस आवागमन को प्रारम्भ करने के लिये अगस्त्य ने अपना निवास स्थान काशी त्याग दिया। दक्षिण रामेश्वर में स्थित हो गये। काशीपति शंकर स्वयं अपने दिये अभिवचन के अनुसार दक्षिण रामेश्वर में निवास करने लगे। (म० व० : १०२ ; दे० भा० १०:३.७ : आ०रा० सार १० ; स्कन्द० ४:१:४)।

अगस्त्य को दक्षिण का स्वामी तथा विजेता कहा गया है। उनका उल्लेख सर्वदा दक्षिण तथा श्रीलंका के सन्दर्भ में पाया है। अगस्त्य ने (१) वराह पुराण में पशुपालोपाख्यान में 'अगस्त्य गीता',(२) पंचरात्र की 'अगस्त्य संहिता'(३) स्कन्द पुराण की 'अगस्त्य संहिता' (४) 'शिव संहिता' तथा (५) भास्कर संहिता के 'द्वैध निर्णयतन्त्र' की रचना की है। (ब्रह्म० वै० २:१६) अगस्त्य विदर्भ निमिराज तथा काशिराज अलर्क के समकालीन प्रतीत होते हैं।

अगस्त्य का उदय वर्षा ऋतु के अंत का प्रतीक है। इस समय जल निर्मल हो जाता है। भूमि जल सोख कर हरीभरी हो जाती है। रा० त० २:१४० द्रष्टव्य है।

अथ वाराणसीं गत्वा कृतकाषायसंग्रहः ।
सर्वं संन्यस्य सुकृती मातृगुप्तोऽभवद्यतिः ॥ ३२० ॥

३२०. अनन्तर सुकृती मातृगुप्त वाराणसी जाकर, सर्व त्याग पूर्वक, काषा संग्रह कर, यती हो गया।

राजा प्रवरसेनोऽपि कश्मीरोत्पत्तिमञ्जसा ।
निखिलां मातृगुप्ताय प्राहिणोद् दृढनिश्चयः ॥ ३२१ ॥

३२१. दृढनिश्चयी राजा प्रवरसेन ने भी सम्पूर्ण कश्मीरोत्पत्ति (राजस्व-ला मातृगुप्त को भेजा।

स हठापतितां लक्ष्मीं भिक्षाभुक् प्रतिपादयन् ।
सर्वार्थिभ्यः कृती वर्षान्दश प्राणानधारयत् ॥ ३२२ ॥

३२२. कृती व भिक्षुभुक् हठपूर्वक आगत लक्ष्मी का सर्व प्रार्थियों को देते हुये, दश वर्ष प्राण धारण कि

अन्योन्यं साभिमानानामन्योन्यौचित्यशालिनाम् ।
त्रयाणामपि वृत्तान्त एष त्रिपथगापयः[1] ॥ ३२३ ॥

रस्पर स्वाभिमानी एवं औचित्यशाली इन तीनों (विक्रमादित्य, मातृगुप्त, यह वृत्तान्त त्रिपथगा[2] का जल है।

:

(१) यती : शाब्दिक अर्थ सन्यासी, त्यागी, ा है। यम शब्द से यती बना है। आत्मनि- स्वनियन्त्रण, अपने पर नियन्त्रण रखने ले व्यक्ति को यति किंवा यती कहते हैं। नियों में जो लोग गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं उन्हे ी कहा जाता है।

ठभेद :

श्लोक संख्या ३२१ में 'काश्मीरो' का पाठभेद श्मीरो' मिलता है।

न श्लोक संख्या ३२२ में 'हठा' का पाठभेद 'हारा है।

पादटिप्पणियाँ :

३२३ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८१वां श्लोक है :

(२) त्रिपथगा : गंगा नदी है। कल्हण ने यहाँ पर अपने कवित्व का परिचय देते हुए सुन्दर उपमा दी है। त्रिपथगा (पवित्र गंगा) की तीन पथ अर्थात् लोक हैं। स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल लोक। स्वर्ग से गंगा चलकर मर्त्य लोक में आयीं। पाताल लोक में पहुँच कर गंगा ने राजा सगर के पुत्रों को तार कर भगीरथ की तपस्या सफल को थी। त्रिपथगा की विमल, धवल धारा तुल्य ही तीनों राजा विक्रमादित्य, मातृगुप्त एवं प्रवरसेन थे। महाभारत एवं भागवत पुराण अध्याय ९ में गंगावतरण को कथा काव्यमय पदों में दी गयी है।

राजा प्रवरसेनोऽथ नमयन्पर्वतावलीम् ।
अकृच्छ्रलङ्घ्याः ककुभो दृढस्य धनुषो व्यधात् ॥ ३२४ ॥

राजा प्रवरसेन द्वितीय का अभियान :

३२४. राजा प्रवरसेन ने पर्वतावली (भूपालों) को झुकाते हुये, सुदृढ़ धनु द्वारा दिशाओं को बिना कष्ट के लंघनीय बना दिया।

पीताब्धिर्लङ्घितोर्वीभृत्कुम्भयोनिरिवाऽभवत् ।
तस्य प्रतापः प्रभवन्भुवनानि प्रभञ्जनात् ॥ ३२५ ॥

३२५. जिस प्रकार समुद्र पान एवं पर्वत लंघन कर्ता (कुम्भयोनि) अगस्त्य[1] बल निर्जित करते हैं उसी प्रकार उसके प्रताप ने भुवनों को प्रभञ्जन किया।

शुष्कतमालपत्राणि शीर्णताडोद्गतानि च
तत्सेनाऽर्णवतीराणि चक्रेऽस्थिशुष्कानि च ॥ ३२६ ॥

३२६. उसकी सेना ने समुद्र तट को सूखे तमाल पत्रों तथा शीर्ण ताड़ पत्रों से युक्त, और शुष्क तिलक अस्थिनियों के पुष्पों को शुष्क निस्तेज एवं गलित ताड़पत्रों[१] सा बना दिया।

स गङ्गाऽऽलिङ्गिताङ्गस्य पूर्वाम्भोनिधेरभात् ।
सैन्येभमदनिष्यन्दैः कालिन्दीसंगमश्रियम् ॥ ३२७ ॥

३२७. उसने गंगा आलिंगित पूर्व समुद्र को सेना के गजों के मद स्राव द्वारा कालिन्दी संगम शोभा प्रदान किया।

तापस्पर्शपयोधेः करैः सुरद्विषदैः ।
चक्रोत्पाटन सौराष्ट्राननां सम्प्राप्य पाटनम् ॥ ३२८ ॥

३२८. इसने दिगन्तव्यापी सेनाओं द्वारा परवाम्बुधि (समुद्र) तटवर्ती सौराष्ट्र[१]-वासियों का उत्पाटित कर राष्ट्र ध्वंस कर दिया।

यत्नोऽर्थिनः पार्थिवेषु द्वेषरागविवर्जितः ।
ववृधे धर्मविजयस्तस्य विजितात्मनः ॥ ३२९ ॥

३२९. पृथ्वीन्द्र यशःकामी एवं द्वेष राग रहित इस पृथ्वीन्द्र का राजाओं पर धर्म-विजय[१] बढ़ा।

नील मत पुराण श्रवणव्रत दर्शन पर्व का उल्लेख करता है। यह पूजा उस समय की जाती है जब सूर्य का योग कन्या राशि में होता है। इस में उपवास रात्रि में पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजा का विधान है। (742-747)।

३२६ (१) तमाल : यहाँ श्लिष्ट है। कल्हण ने यहाँ बहुत उत्तम उपमा दी है। इस श्लोक में श्लेष तुल्ययोगिता आदि अलंकारों का समावेश किया गया है। अतएव इसे सृष्टि या संकर कहेंगे (टाडो आज भी पंजाब में एक प्रकार के कर्णफूल अर्थात इयररिंग को कहते हैं।)

तमाल का अर्थ तमाल वृक्ष के साथ ही साथ ललाट भी होता है। ताडोदल का भी अर्थ ताडपत्र तथा कर्णफूल होता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२७. (१) गंगा : गंगा का जल उज्ज्वल तथा यमुना का पुष्ट श्यामल काला होता है। तरंग ७ : १४७७ में इस श्लोक की उपमा पुनर्वोध है।

इतिहासकार विंटरहोल्प्रबन्धेन को बताता तक पहुँचा देता है। वह कहता है कि बंगाल में उसने 'शाक' अर्थात् 'बाबर' के नाम 'वेरगिन' को जीत कर राज्य 'नमान सिंह' को दे दिया। वह सोमा-दित्य का पुत्र था। लेखक ने इसे किसी प्रमाण पर आधारित नहीं किया है। यमान और शाक दोनों एक ही वृक्ष के नाम हैं।

३२८. (१) सुराष्ट्र : कल्हण यहाँ अपने भौगो-लिक ज्ञान का उदाहरण उपस्थित करता है। कल्हण ने निस्सन्देह भारत भ्रमण किया था। उसने जो भी भौगोलिक स्थिति दी है वह ठीक उतरी है। सुराष्ट्र अर्थात् वर्तमान सौराष्ट्र को वह समुद्र तट तथा पश्चिम दिशा में बतलाता है जो सर्वथा ठीक है। सौराष्ट्र को काठियावाड़ भी कहते हैं।

३२९. (१) धर्मविजय : कल्हण ने यहाँ

वैरिनिर्वासितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात् ।
राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ॥ ३३० ॥

३३०. इसने शत्रुनिर्वासित विक्रमादित्यात्मज प्रतापशील अपर नाम शीलादित्य[1] को उसके पैतृक राज्य पर बैठाया।

सिंहासनं स्ववंश्यानां तेनाहितहृत ततः ।
विक्रमादित्यवसतेरानीतं स्वपुरं पुनः ॥ ३३१ ॥

३३१. स्व वंशियों का सिंहासन[1] जो अपहृत था उसे विक्रमादित्य के नगर से वह पुनः अपने पुर में लाया।

धर्मविजय की चर्चा की है। अशोक ने 'भेरी घोष' के स्थान पर 'धर्मघोष' किया था। प्रवरसेन ने सैनिक विजय के स्थान पर धर्मविजय की बात उठायी। भेरी घोष सैन्य शक्ति का परिचायक है। सैन्य शक्ति पाशविक शक्ति का परिचायक है। रक्तपात का का जनक है। प्रवरसेन ने उसके स्थान पर धर्म विजय का नारा बुलन्द किया।

धर्मविजय क्षत्रियों का धर्म कहा है। धर्म की रक्षा के लिए जो संघर्ष किंवा युद्ध होता है वह रक्तपात नहीं अपितु धर्म की स्थापना निमित्त होता है। महाभारत युद्ध को धर्मयुद्ध कहा गया है। क्षत्रियों के लिए भी न्याय के, धर्म के आचारादि के स्थान पर शस्त्र का आश्रय लेना अनुचित कहा गया है। यही प्राचीन भारतीय युद्ध परम्परा थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३० में 'न्यधात्' का पाठभेद 'व्यधात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३०. (१) शीलादित्य : प्रतापशील उपनाम शीलादित्य मालवा के राजा शीलादित्य थे। ह्युान्त्सांग कहता है कि उसके भारत आगमन के ६० वर्ष पूर्व वह हुआ था। परोक्षरूप से उसे विक्रमादित्य का उत्तराधिकारी बताता है। प्रोफेसर श्री एम. मुल्लर शीलादित्य का अनुमानित समय सन् ५५० से ६०० ई० लगाते हैं।

३३१ (१) सिंहासन : विक्रमादित्य के सिंहासन के सन्दर्भ में यह श्लोक कहा गया है। यह मत सर्व श्री ट्रोयर तथा लास्सेन पाश्चात्य इतिहासविदों का है। यह विक्रमादित्य का वही सिंहासन है जिसके सम्बन्ध में अनेक गाथायें प्रचलित है। 'सिंहासन बत्तीसी' भी इसी सिंहासन से सम्बन्धित की गई है।

बत्तीस पुतलियों अर्थात् अप्सराओं पर निर्मित सिंहासन के सम्बन्ध में अनेक गाथायें हैं। यह प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य के पश्चात् यह सिंहासन उज्जैन में नहीं था। किन्तु यह कहा जाता है कि राजा भोज ने उसे पुनः प्राप्त किया था। किन्तु इसका ऐतिहासिक सप्रमाण पता नहीं लगता।

कल्हण ने यहाँ एक विचित्र प्रश्न उपस्थित कर दिया है। उसके अनुसार कश्मीर निर्मित राजसिंहासन विक्रमादित्य के नगर उज्जैन चला गया था। वह किस प्रकार श्रीनगर से अवन्ती पहुँचा इस पर कल्हण ने कहो नहीं प्रकाश डाला है। विक्रमादित्य अथवा उज्जैन के किसी राजा ने कश्मीर विजय नहीं किया था। किसी राजा के सन्दर्भ में यह भी नहीं कहा गया है कि उसने विक्रमादित्य को अधीनता स्वीकार कर ली थी। भेंट में सिंहासन विक्रमादित्य अथवा उसके पूर्वजों को दिया था। मातृगुप्त ने भेंट अवश्य विक्रमादित्य को भेजा था परन्तु

शुष्यत्तमालपत्राणि शीर्णताडीदलानि च
तत्सेनाऽर्णवतीराणि चक्रेऽरिस्त्रीमुखानि च ॥ ३२६ ॥

३२६. इसकी सेना ने समुद्र तट को सूखते तमाल पत्रों तथा शीर्ण ताड पत्रों से युक्त, और शुष्क तिलक अरिपत्नियों के मुखों को शुष्क तिलक एवं गलित ताड़ङ्कवाला[१] बना दिया।

स गङ्गाऽऽलिङ्गिताङ्गस्य पूर्ववारिनिधेरव्यधात् ।
सैन्येभमदनिष्यन्दैः कालिन्दीसंगमश्रियम् ॥ ३२७ ॥

३२७. उसने गंगा आलिंगित पूर्व समुद्र को युद्ध गजों के मद स्राव द्वारा कालिन्दी संगम शोभा प्रदान किया।

रोधस्यपरपाथोधेः कटकैः स्पृष्टदिक्तटैः ।
चकारोत्पाट्य सौराष्ट्रानसौ राष्ट्रविपाटनम् ॥ ३२८ ॥

३२८. इसने दिगन्तव्यापी सेनाओं द्वारा परपाथोधि (समुद्र) तटवर्ती सौराष्ट्र[१]-वासियों का उत्पाटित कर राष्ट्र ध्वंस कर दिया।

यशोऽर्थिनः पार्थिवेषु द्वेषरागबहिष्कृतः ।
ववृधे धर्मविजयस्तस्य क्षितिशतक्रतोः ॥ ३२९ ॥

३२९. पृथ्वीन्द्र यशःकामी एवं द्वेष राग रहित इस पृथ्वीन्द्र का राजाओं पर धर्म-विजय[१] बढ़ा।

नील मत पुराण अगस्त्य दर्शन पर्व का उल्लेख करता है। यह पूजा उस समय की जाती है जब सूर्य का योग कन्या राशि से होता है। दन में उपवास रात्रि में पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजा का विधान है। (*742-747*)।

३२६ (१) तमाल : यहाँ श्लिष्ट है। कल्हण ने यहाँ बहुत उत्तम उपमा दी है। इस श्लोक में श्लेष तुल्ययोगिता आदि अलंकारों का समावेश किया गया है। अतएव इसे संसृष्टि या संकर कहेंगे (टाहो आज भी पंजाब में एक प्रकार के कर्णफूल अर्थात् इयररिंग को कहते हैं।)

तमाल का अर्थ तमाल वृक्ष के स■ ही साथ मराट भी ह ता है। ताडीदल का भी अर्थ ताड़पत्र तथा कर्णफूल होता है।

पादटिप्पणियाँ।

३२७. (१) गंगा : गंगा का जल उज्ज्वल तथा यमुना का कुछ हलका काला होता है। तरंग ७ : १४७७ से इस श्लोक की उपमा तुलनीय है।

इतिहासकार विदेउद्दीन प्रवरसेन को बंगाल तक पहुँचा देता है। वह कहता है कि बंगाल में उसने 'ढाक' अर्थात् 'ढाक्का' के राजा 'बेहरसिंह' को जीत कर राज्य 'पलास सिंह' को दे दिया। यह शीलादित्य का पुत्र था। लेखक ने इसे किसी प्रमाण पर आधारित नहीं किया है। पलास और ढाक दोनों एक ही वृक्ष के नाम हैं।

३२८. (१) सुराष्ट्र : कल्हण यहाँ अपने भौगोलिक ज्ञान का उदाहरण उपस्थित करता है। कल्हण ने निस्सन्देह भारत भ्रमण किया था। उसने जो भी भौगोलिक स्थिति दी है वह ठीक उतरी है। सुराष्ट्र अर्थात् वर्तमान सौराष्ट्र को वह समुद्र तट तथा पश्चिम दिशा में बतलाता है जो सर्वथा ठीक है। सौराष्ट्र को काठियावाड़ भी कहते हैं।

३२९. (१) धर्मविजय : कल्हण ने यहाँ

वैरिनिर्वासितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात् ।
राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ॥ ३३० ॥

३३०. इसने शत्रुनिर्वासित विक्रमादित्यात्मज प्रतापशील अपर नाम शीलादित्य[१] को उसके पैतृक राज्य पर बैठाया।

सिंहासनं स्ववंश्यानां तेनाहितहृत ततः ।
विक्रमादित्यवसतेरानीतं स्वपुरं पुनः ॥ ३३१ ॥

३३१. स्व वंशियों का सिंहासन[१] जो अपहृत था उसे विक्रमादित्य के नगर से वह पुनः अपने पुर में लाया।

धर्मविजय की चर्चा की है। अशोक ने 'भेरी घोष' के स्थान पर 'धर्मघोष' किया था। प्रवरसेन ने सैनिक विजय के स्थान पर धर्मविजय की बात उठायी। भेरी घोष सैन्य शक्ति का परिचायक है। सैन्य शक्ति पाशविक शक्ति का परिचायक है। रक्तपात का का जनक है। प्रवरसेन ने उसके स्थान पर धर्म विजय का नारा बुलन्द किया।

धर्मविजय क्षत्रियों का धर्म कहा है। धर्म की रक्षा के लिए जो संघर्ष किंवा युद्ध होता है वह रक्तपात नहीं अपितु धर्म की स्थापना निमित्त होता है। महाभारत युद्ध को धर्मयुद्ध कहा गया है। क्षत्रियों के लिए भी न्याय के, धर्म के आचारादि के स्थान पर शस्त्र का आश्रय लेना अनुचित कहा गया है। यही प्राचीन भारतीय युद्ध परम्परा थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३० में 'न्यधात्' का पाठभेद 'व्यधात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३०. (१) शीलादित्य : प्रतापशील उपनाम शीलादित्य मालवा के राजा शीलादित्य थे। ह्वान्त्साग कहता है कि उसके भारत आगमन के ६० वर्ष पूर्व वह हुआ था। परोक्षरूप से उसे विक्रमादित्य का उत्तराधिकारी बताता है। प्रोफेसर श्री एम. मुल्लर शीलादित्य का अनुमानित समय सन् ५५० से ६०० ई० लगाते हैं।

३३१ (१) सिंहासन : विक्रमादित्य के सिंहासन के सन्दर्भ में यह श्लोक कहा गया है। यह मत सर्व श्री ट्रोयर तथा लास्सेन पाश्चात्य इतिहासविदों का है। वह विक्रमादित्य का वही सिंहासन है जिसके सम्बन्ध में अनेक गाथायें प्रचलित है। 'सिंहासन बत्तीसी' भी इसी सिंहासन से सम्बन्धित की गई है।

बत्तीस पुतलियों अर्थात् अप्सराओं १२ निर्मित सिंहासन के सम्बन्ध में अनेक गाथायें हैं। यह प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य के पश्चात् यह सिंहासन उज्जैन मे नहीं था। किन्तु यह कहा जाता है कि राजा भोज ने उसे पुनः प्राप्त किया था। किन्तु इसका ऐतिहासिक सप्रमाण पता नहीं लगता।

कल्हण ने यहाँ एक विचित्र प्रश्न उपस्थित कर दिया है। उसके अनुसार कश्मीर निर्मित राजसिंहासन विक्रमादित्य के नगर उज्जैन चला गया था। वह किस प्रकार श्रीनगर से अवन्ती पहुँचा इस पर कल्हण ने कहीं नहीं प्रकाश डाला है। विक्रमादित्य अथवा उज्जैन के किसी राजा ने कश्मीर विजय नहीं किया था। किसी राजा के सन्दर्भ में यह भी नहीं कहा गया है कि उसने विक्रमादित्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी। भेंट में सिंहासन विक्रमादित्य अथवा उसके पूर्वजों को दिया था। मातृगुप्त ने भेंट अवश्य विक्रमादित्य को भेजा था परन्तु

हेतूदीर्य्य विविधानमन्वानं पराजयम् ।
सप्त वारान्स तत्याज जित्वा मुम्मुनिभूभुजम् ॥ ३३२ ॥

३३२. विविध हेतुओं को कहकर पराजय न मानने वाले राजा मुम्मुनि[1] को सात बार विजित कर उसने छोड़ दिया ।

उसमें सिंहासन जैसे महत्वपूर्ण वस्तुका उल्लेख नहीं मिलता ।

नादिरशाह भारत का तख्तताऊस उठा ले गया था। वह ऐतिहासिक घटना है। वह ईरान में आज भी मौजूद है।

एक यह सम्भावना हो सकती है। कश्मीर लकड़ी की नक्काशी के काम के लिये प्रसिद्ध है। भारत मे आज भी वहाँ से टेबुल, कुर्सी, मेज, दीपदान, तस्तरी, आदि लकडी के सामान भारत के बडे शहरो मे बिकते है। कश्मीर में भी विक्रमादित्य अथवा उसके पूर्वजों के लिये सिंहासन बनाया गया होगा। वह उज्जैन भेजा गया होगा। किसी देश का सिंहासन विदेश अथवा पर राजा के यहाँ भेजना उसकी पराजय स्वीकार करने के समान है।

प्रवरसेन ने सम्भवतः यह बात सुनी होगी। उसे बुरा लगा होगा अतएव वह सिंहासन उठा लिया होगा।

कश्मीर लकड़ी को कला में प्रवीण समझा जाता था। आज भी उसकी वही ख्याति है। अप्सरा की मूर्ति पत्थरों पर, दीवालों तथा छज्जों के नीचे पत्थरों को सहारा देने के लिये लगायी जाती है। कुर्सियों तथा मेजों के पाया के स्थानपर मछली, सिंह, हरिण, स्त्री की मूर्ति काष्ठ अथवा पत्थर में बना दी जाती है। सिंहासन को दैवी महत्त्व देने के लिये अप्सराओं की काष्ठ मूर्तियाँ सिंहासन के पाया के स्थान पर चारों ओर लगा कर सिंहासन को अत्यन्त सुन्दर बना दिया गया होगा।

३३२ (१) मुम्मुनि : यह अभारतीय शब्द है। किसी वंश, जाति, किंवा कुल का नाम प्रतीत होता है। ललितादित्य की विजय यात्रा के सन्दर्भ में उनका स्थान तुखार और भौट्ट क्षेत्रों के मध्य कहा गया है।

तरंग ४ : १६७ तथा ५१६ में मुम्मुनि का उल्लेख कल्हण ने पुनः किया है। श्लोक ४:१६७ से प्रकट होता है। ललितादित्य ने मुम्मुनि को तीन बार परास्त किया था।

जयापीड़ के सन्दर्भ में मुम्मुनि का पुनः उल्लेख (त०४.५१६) में कल्हण ने किया है। रात्रि में वे चाण्डालो के साथ पहरा देते देखे जाते है।

तुखार किंवा तुखार प्रदेश वर्तमान बदख्शाँ है। भौट्ट स्थान निस्सन्देह लद्दाख है। राजतरंगिणी में भौट्ट शब्द सर्वदा लद्दाख तथा लेह के निवासियों के लिये प्रयुक्त किया गया है।

मुम्मुनि को दरद जातीय समझना भ्रामक होगा। उनका उल्लेख कल्हण ने सर्वदा अलग एक जाति तथा भू अंचल के रूप में किया है। दरदों तथा मुम्मुनो में भेद किया गया है। उन दिनों हूणों के त्रास के कारण जो कतिपय मूल तुर्क वंशीय लोग थे वे कश्मीर राज्य के उत्तरी सिन्धु उपत्यका में आ गये होंगे। इस प्रकार वे कश्मीर के प्रभाव व क्षेत्र में आ गये थे।

कल्हण ने तरंग ८:१०९० तथा ८:२१७९ में मुम्मुनि शब्द का उल्लेख किया है। वहाँ मुम्मुनि संगत का भ्राता कहा गया है। वह पहले विदेशियों की तालिका में राजपुत्र रूप से रखा गया है। वह पर्वतीय राजा था। राजा मुस्सुल की सहायता किया था। यह मुम्मुनि हिन्दू थे। सम्भव है काबुल के शाही वंश के समान मुम्मुनि भी कश्मीर में आकर बस गये थे। समाज में वे शाकों के समान मिल गये—

घाष्टर्यादथाष्टमे वारे हेतुमाख्यातुमुद्यतम् ।
धिक्पशून्बध्यतां सोऽयमित्यूचे नृपतिः क्रुधा ॥ ३३३ ॥

३३३. आठवीं बार घृष्टता पूर्वक जब कोई कारण कहने को उद्यत हुआ तब राजा ने क्रोध पूर्वक कहा—'पशु को धिक्कार है इसे बाँधो।'

अवध्योऽहं पशुत्वेन वीरेत्युक्त्वा भयोत्सुकः ।
मध्येसभ ननर्तास्य सोऽनुकुर्वन्कलापिनम् ॥ ३३४ ॥

३३४. भयभीत वह 'ओ वीर! पशु होने के कारण अवध्य हूँ।' यह कहकर सभा मध्य मयूर सदृश नृत्य करने लगा।

नृत्तं केकां च शिखिनो दृष्ट्वाऽस्मै द्रविणं नृपः ।
अभयेन समं प्रादात्तालार्धचरणोचितम् ॥ ३३५ ॥

३३५. नृप ने मयूर[1] की केका वाणी (सुन) एवं नृत्य देखकर इसे अभय के साथ नर्त्तकोचित द्रव्य प्रदान किया।

वसतोऽस्य दिशो जित्वा नप्तुः पैतामहे पुरे ।
कर्तुं पुरं स्वनामाङ्कं प्रथते स्म मनोरथः ॥ ३३६ ॥

३३६. दिशाओं को विजय कर, पितामह[1] के नगर में निवास करते, इस नृप को स्वनामांकित पुर निर्माण करने की अभिलाषा हुई।

मुम्मुनि के लिये कुछ विद्वानों ने कहा है कि वे मोमिन थे। मोमिन मुसलमान थे वह शब्द खलीफा के समान अमीरुल मोमनीन था। वह तर्क असंगत है। परन्तु राजतरंगिणी में तीन राजाओं के सन्दर्भ में मुम्मिमन का नाम आया है। वे प्रवरसेन (३१८६ लौ० सं०) ललितादित्य (लौ०३७७६सं.) तथा जयापीड (लौ०३८२८सं०) थे। उनके काल में शताब्दियों का अन्तर है। अतएव मुम्मुनि कोई एक व्यक्ति नहीं था।

एक मत है कि यह शाही तथा खाकान के समान कोई रहे हों। ललितादित्य ने उन्हें उत्तर में सोवार तथा भोट्ट के मध्य जीता था।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३३३ में 'पशून्य' का पाठभेद 'पशुर्व' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३३५ में 'तालार्धच' का पाठभेद 'तालावच' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३५ (१) मयूर नृत्य : मुम्मुनि ने मयूर नृत्य किया। यह कुछ विचित्र मालूम होता है। सम्भव है मुम्मुनि वंश किंवा गोत्र अथवा जाति में मयूर नृत्य प्रचलित हो या उसके वश की विशेषता रही हो। दक्षिण के लोगों में भरत नाट्यम् अत्यधिक प्रचलित है जबकि उत्तर भारत में कथक नृत्य। उल्लास काल में मानव अपने मौलिक अकृत्रिम रूप में आ जाता है। संस्कार जन्य कार्य करना, गान एवं नृत्य अनायास वह करने लगता है। यही भाव इस श्लोक का है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३६ में 'प्रथते स्म' का पाठभेद 'पप्रथे स' मिलता है।

रात्रौ क्षेत्रं च लग्नं च दिव्यं ज्ञातुमथैकदा ।
स चोरो वीरचर्यायां निर्ययौ पार्थिवार्यमा ॥ ३३७ ॥

३३७. पार्थिव सूर्य, वह वीर एक बार क्षेत्र एवं दिव्य लग्न ज्ञात करने के लिये रात्रि में वीर चर्या को निकला।

गच्छतः क्ष्मापतेस्तस्य मौलिरत्नाग्रबिम्बितः ।
बभार ताराप्रकरो रक्षासर्षपविभ्रमम् ॥ ३३८ ॥

३३८. गमन करते उस नृपति के मुकुर रत्नों के अग्र भाग में प्रतिविम्बित तारा निकर रक्षा सर्षप[1] तुल्य शोभित हुआ।

अथानन्तचितालोकस्पष्टभीमतटद्रुमाम् ।
श्मशानप्रान्ततटिनीं पर्यटन्नाससाद सः ॥ ३३९ ॥

३३९. पर्यटन करते हुए वह ऐसी सरिता तट पर पहुंचा जहाँ प्रान्त भाग में श्मशान[1] था और अनन्त चिताओं के प्रकाश से तटवर्ती द्रुम स्पष्ट (भयकर) बीभत्स लग रहे थे।

पादटिप्पणियाँ .

३३६ (१) पितामह-नगर—यहाँ पितामह के नगर से अर्थ पुराधिष्ठान है। पुराधिष्ठान के लिये पादटिप्पणी श्रीनगर पृ ठ ११९–१४६ तथा रा० त० १:१०४; १२९, ३०६; ३:९९; ५:२६७ द्रष्टव्य है।

पाठभेद:

श्लोकसंख्या ३३८ में 'रत्नाग्र' का पाठभेद 'रत्नाङ्क' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३८ (१) सर्षप: पीली सरसों भूत, प्रेतादि बाधा तथा सर्पों को दूर भगाने के लिये मन्त्र पढ़कर गृह में अथवा सर्पों के स्थान पर फेंका जाता है। ताकि बाधा दूर हो जाय। और सर्पादि भाग जायँ। जहाँ पीली सरसों नहीं मिलती वहाँ साधारण सरसों का ही प्रयोग किया जाता है।

कश्मीर में रिवाज है कि सरसों बालकों को टोपी के कपड़ों के नीचे रखकर सी दिया जाता है। बच्चों को नजर के साथ ही साथ प्रेत बाधा आदि नहीं लगती। यह पुरानी मान्यता है।

३३९ (१) श्मशान—कल्हण ने इस स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है कि श्मशान कहाँ पर है। श्मशान का स्थान श्रीनगर में बदलता रहा था। किन्तु इतना निश्चय प्रकट होता है कि वह स्थान सरितातट पर था। सरिता के उस पार भूत था। जिसे सरिता के इस पार से राजा श्मशान की चिता-ज्वाला-प्रकाश में देख सकता था।

कल्हण ने तरंग ७ श्लोक ३३९ में राजा उच्चल के दग्ध स्थान का उल्लेख करता है। यह स्थान वितस्ता तथा महासरित के संगम पर एक द्वीप पर था। श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी तरंग १: सर्ग ५ श्लोक ५४ तथा ५६ में मारी नदी तथा मारी वितस्ता संगम का उल्लेख किया है। मारी वितस्ता का जहाँ संगम था वहीं यह श्मशान वर्तमान प्रथम पुल के कुछ नीचे था। इस प्रकार प्राचीन श्मशान के स्थान का निश्चित पता श्रीवर के उल्लेख से मिल जाता है। महासरित वितस्ता संगम, प्रतीत होता है, कालान्तरमें मारी संगम के रूप में व्यवहृत होने लगा था। कुछ विद्वानों का विचार है कि मारी, मर, महासरित,

ततस्तस्य सरित्पारे मुक्तसंरावमग्रतः ।
ऊर्ध्वबाहु महद् भूतं प्रादुरासीन्महौजसः ॥ ३४० ॥

३४०. तदनन्तर उस महौजस के सम्मुख नदी के पार ऊर्ध्व बाहु चीत्कार करता हुआ महान् भूत प्रादुर्भूत हुआ।

नृपतिस्तस्य दृक्पातैर्ज्वलद्भिः कपिशीकृतः ।
उल्काज्योतिःकृताश्लेषः कुलाद्रिरिव दिद्युते ॥ ३४१ ॥

३४१. उसके प्रज्वलित दृष्टिपातों से कपिशीकृत नृपति उल्का ज्योतियों से अलंकृत कुलाद्रि तुल्य प्रदीप्त हुआ।

तमथ प्रतिशब्देन घोरेणापूरयन्दिशः ।
अत्रासं विहसन्नुच्चैरुवाच क्षणदाचरः ॥ ३४२ ॥

३४२. भयंकर प्रतिध्वनि से दिशाओं को व्याप्त करते हुए क्षणदाचर[1] ने उच्चाहास कर निर्भय नृपति से कहा—

संत्यज्य विक्रमादित्यं सत्त्वोद्रिक्तं च शूद्रकम् ।
त्वां च भूपाल पर्याप्तं धैर्यमन्यत्र दुर्लभम् ॥ ३४३ ॥

३४३. 'भूपाल! विक्रमादित्य, सत्त्वशाली शूद्रक[1] एवं आपके अतिरिक्त अन्यत्र पर्याप्त धैर्य दुर्लभ है।

वसुधाधिपते वाञ्छासिद्धिस्तव विधीयते ।
सेतुमेत समुत्तीर्य पार्श्वमागम्यतां मम ॥ ३४४ ॥

३४४. 'वसुधापते! इस सेतु को पार कर मेरे पास आओ तुम्हारी वाञ्छा सिद्ध करता हूँ।

माहुरी एक ही नदी है। परन्तु श्रीस्तीन का मत है कि माहुरी नदी मच्छीपुर परगना को मबुर नदी है। माहुरी का उल्लेख नीलमत (१३२०) में किया गया है।

३४२. (१) क्षणदाचर: क्षणदा का अर्थ रात्रि किंवा निशा होता है। क्षणदाचर का अर्थ रात्रि किंवा निशा में चलने वाला होगा। क्षणदाचर का प्रचलित अर्थ निशाचर है। राक्षस, निशाचर, क्षणदाचरादि तम शक्ति के प्रतीक हैं।

३४३. (१) शूद्रक: विक्रमादित्य के समान शूद्रक भी लोक साहित्यिक नायक है। कथा सरित्सागर (७८:५) द्रष्टव्य है।

रात्रौ क्षेत्रं च लग्नं च दिव्यं ज्ञातुमथैकदा ।
स वीरो वीरचर्यायां निर्ययौ पार्थिवार्यमा ॥ ३३७ ॥

३३७. पार्थिव सूर्य, वह वीर एक बार क्षेत्र एवं दिव्य लग्न ज्ञात करने के लिये रात्रि में वीर चर्या को निकला।

गच्छतः क्ष्मापतेस्तस्य मौलिरत्नाग्रबिम्बितः ।
बभार तारानिकरो रक्षासर्षपविभ्रमम् ॥ ३३८ ॥

३३८. गमन करते उस नृपति के मुकुट रत्नों के अग्र भाग में प्रतिबिम्बित तारा निकर रक्षा सर्षप[1] तुल्य शोभित हुआ।

अथानन्तचितालोकस्पष्टभीमतटद्रुमाम् ।
श्मशानप्रान्ततटिनीं पर्यटन्नाससाद सः ॥ ३३९ ॥

३३९. पर्यटन करते हुए वह ऐसी सरिता तट पर पहुंचा जहाँ प्रान्त भाग में श्मशान[1] था और अनन्त चिताओं के प्रकाश से तटवर्ती द्रुम स्पष्ट (भयंकर) बीभत्स लग रहे थे।

पादटिप्पणियाँ :

३३६ (१) पितामह-नगर—यहाँ पितामह के नगर से अर्थ पुराधिष्ठान है। पुराधिष्ठान के लिये पादटिप्पणी श्रीनगर पृष्ठ ११९–१४६ तथा रा० त० १:१०४; १२९, ३०६; ३:९९; ५:२६७ द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३३८ में 'रत्नाग्र' का पाठभेद 'रत्नाङ्क' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३८ (१) सर्षप : पीली सरसों युत, ग्रहादि बाधा तथा सर्पों को दूर भगाने के लिये मन्त्र पढ़कर गृह में अथवा सर्पों के स्थान पर फेंका जाता है। ताकि बाधा दूर हो जाय। और सर्पादि भाग जायँ। जहाँ पीली सरसों नहीं मिलती वहाँ साधारण सरसों का ही प्रयोग किया जाता है।

३३९ (१) श्मशान—कल्हण ने इस स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है कि श्मशान कहाँ पर है। श्मशान का स्थान श्रीनगर में बदलता रहा था। किन्तु इतना निश्चय प्रकट होता है कि वह स्थान सरितातट पर था। सरिता के उस पार भूत था। जिसे सरिता के इस पार से राजा श्मशान की चिता-ज्वाला-प्रकाश में देख सकता था।

कल्हण ने तरंग ७ श्लोक ३३९ में राजा उच्चल के दाह स्थान का उल्लेख करता है। यह स्थान वितस्ता तथा महासरित के संगम पर एक द्वीप पर था। श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी तरंग १: सर्ग ५ श्लोक ५४ तथा ५६ में मारी नदी तथा मारी वितस्ता संगम का उल्लेख किया है। मारी वितस्ता का जहाँ संगम था वहीं यह श्मशान वर्तमान प्रथम पुल के कुछ नीचे था। इस प्रकार प्राचीन श्मशान के स्थान का निश्चित पता श्रीवर के उल्लेख से मिल जाता है। महासरित वितस्ता संगम, प्रतीत होता है, कालान्तरमें मारी संगम के रूप में व्यवहृत होने लगा था। कुछ विद्वानों का विचार है कि मारी, मर, महासरित,

ततस्तस्य सरित्पारे मुक्तसंरावमग्रतः ।
ऊर्ध्वबाहु महद् भूतं प्रादुरासीन्महौजसः ॥ ३४० ॥

३४०. तदनन्तर उस महौजस के सम्मुख नदी के पार ऊर्ध्व बाहु चीत्कार करता हुआ महान् भूत प्रादुर्भूत हुआ ।

नृपतिस्तस्य दृक्पातैर्ज्वलद्भिः कपिशीकृतः ।
उल्काज्योतिःकृताश्लेपः कुलाद्रिरिव दिद्युते ॥ ३४१ ॥

३४१. उसके प्रज्वलित दृष्टिपातों से कपिशीकृत नृपति उल्का ज्योतियों से अलङ्कृत कुलाद्रि तुल्य प्रदीप्त हुआ ।

तमथ प्रतिशब्देन घोरेणापूरयन्दिशः ।
अत्रासं विहसन्नुच्चैरुवाच क्षणदाचरः ॥ ३४२ ॥

३४२. भयंकर प्रतिध्वनि से दिशाओं को व्याप्त करते हुए क्षणदाचर[1] ने उच्चाहास कर निर्भय नृपति से कहा—

संत्यज्य विक्रमादित्यं सत्त्वोद्रिक्तं च शूद्रकम् ।
त्वां च भूपाल पर्याप्तं धैर्यमन्यत्र दुर्लभम् ॥ ३४३ ॥

३४३. 'भूपाल ! विक्रमादित्य, सत्त्वशाली शूद्रक[1] एवं आपके अतिरिक्त अन्यत्र पर्याप्त धैर्य दुर्लभ है ।

वसुधाधिपते वाञ्छासिद्धिस्तव विधीयते ।
सेतुमेत समुत्तीर्य पार्श्वमागम्यतां मम ॥ ३४४ ॥

३४४. 'वसुधापते ! इस सेतु को पार कर मेरे पास आओ तुम्हारी वाञ्छा सिद्ध करता हूँ ।

माहुरी एक ही नदी है । परन्तु श्रीस्तीन का मत है कि माहुरी नदी मच्छीपुर परगना को मबुर नदी है । माहुरी का उल्लेख नीलमत (१३२०) में किया गया है ।

३४२. (१) क्षणदाचर : क्षणदा का अर्थ रात्रि किंवा निशा होता है। क्षणदाचर का अर्थ रात्रि किंवा निशा में चलने वाला होगा । क्षणदाचर का प्रचलित अर्थ निशाचर है । राक्षस, निशाचर, क्षणदाचरादि तम शक्ति के प्रतीक हैं ।

३४३. (१) शूद्रक : विक्रमादित्य के समान शूद्रक भी लोक साहित्यिक नायक है । कथा सरित्सागर (७८:५) द्रष्टव्य है ।

इत्युदीर्य निजं जानुं रक्षः पारात्प्रसारयत् ।
तन्महासरितो वारि सेतुसीमन्तितं व्यधात् ॥ ३४५ ॥

३४५. ऐसा कहकर राक्षस ने (उस) पार से जानु प्रसारित कर उस महासरित का जल सेतु-विभक्त कर दिया।

अङ्गेन रक्षःकायस्य ज्ञात्वा सेतुं प्रकल्पितम् ।
वीरः प्रवरसेनोऽथ विकोशां क्षुरिकां दधे ॥ ३४६ ॥

३४६. सेतु को राक्षस शरीर से निर्मित जानकर, वीर प्रवरसेन ने नग्न छुरिका[1] धारण कर लिया।

स तयोत्कृत्य तन्मांसं कृतसोपानपद्धतिः ।
अतरद्यत्र तत्स्थानं क्षुरिकाबल उच्यते ॥ ३४७ ॥

३४७. वह उसका मांस उससे काटकर सोपान मार्ग निर्मित कर, जहाँ पार किया, वह स्थान क्षुरिका[1] बल कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४५ में 'यत्' का पाठभेद 'यन्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४६ (१) छुरिका : इसका अर्थ छोटी तलवार तथा छुरी भी होता है। कल्हण ने छुरिका शब्द का बहुत प्रयोग किया है। भारत के क्षत्रिय गण अन्य मध्य कालीन देशों के सैनिक वर्ग के समान दो कृपाण रखते थे। उनमें एक बड़ी तथा दूसरी छोटी होती थी। जापान के वीरकालीन पुरुष भी भारत के क्षत्रियों के समान ही सैनिक संहिता का अनुसरण करते थे। निस्सन्देह जापान में तेरहवीं शताब्दी तक यह प्रथा प्रचलित थी। बड़ी और छोटी तलवार वीरगण धारण करते थे।

मुसलिम काल में छोटी तलवार ने खंजर का स्थान ले लिया था। बड़ी तलवार कमर से बाईं तरफ लटकाते थे और खंजर नाभि के पास पेटी अथवा कमरबन्द में खोंस लेते थे। यह प्रथा अब और परिवर्तित हो गयी है। उत्सवों तथा भोजन के समय सैनिक अधिकारी केवल एक छोटी तलवार अर्थात् छुरिका कमर में अपने वर्दी के ऊपर वामभाग में लटका लेते हैं। मुख्यतः नाविक अधिकारियों में यह प्रथा सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित है। वे अपनी पुरानी परम्परा के अनुसार तलवार साथ रखते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४७ में 'बल' का पाठभेद 'बाल' 'भाल' तथा 'वार' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४७ (१) क्षुरिका बल : वर्तमान खुदबल स्थान है। महासरित के उत्तरी तट पर है। बल स्थान को कहते हैं। कश्मीर के नामों के अन्त में बल स्थान वाचक नामों के अन्त में लगा दिया जाता है जैसे पारबल, मारबल, पोखरबल। मैं समझता हूँ कि हजरत बल का अन्तिम नाम बल स्थानवाचक था परन्तु वहाँ बाल रखा था अतएव कालान्तर में उसका नाम हजरत का बाल रखने के स्थान रूप में हजरत बल एवं बाल रख दिया गया। साधारण लोग कश्मीर में हजरत बल ही कहते हैं न कि हजरत बाल।

पार्श्वस्थं तं लग्नमुक्त्वा प्रातमेंस्सूत्रपातनम् ।
दृष्ट्वा पुरं विधेहीति वदद् भूतं तिरोदधे ॥ ३४८ ॥

३४८. पार्श्वस्थ लग्न कहकर—'प्रातः मेरा सूत्रपान[1] देख कर नगर[2] निर्माण करो।' यह कहते हुए भूत तिरोहित हो गया।

देव्या शारिकयाऽङ्केन यक्षेणाधिष्ठिते च सः ।
ग्रामे शारीटकेऽपश्यत्सूत्रं वेतालपातितम् ॥ ३४९ ॥

३४९. उस (राजा) ने शारीटक ग्राम में वैताल पातित सूत्र[1] देखा जो देवी शारिका[2] एवं यक्ष अट्टा[3] से अधिष्ठित था।

पादटिप्पणियाँ :

३४८. (१) सूत्रपातन : इसे सूत लगाना, सूत बाँधना कहते हैं। इसका प्रयोग विश्व में सर्वत्र इमारतों तथा सड़कों की रचना में चिह्न लगाने के लिये होता है। कल्हण ने इसका पुनः उल्लेख तरंग ५:५९ में किया है।

(२) नगर : यह नगर प्रवरपुर अथवा प्रवरसेनपुर था। प्राचीन श्रीनगर को पुनः मालूम पड़ता है राजा ने और विस्तृत किया। पुराने श्रीनगर से मिला ही उसने अपने नाम पर नगर बनवाया।

प्रायः सभी मुसलिम इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रवरसेन वर्तमान श्रीनगर का संस्थापक था यद्यपि वे यह भी कहते हैं कि श्रीनगर की रचना में अनेक राजाओं द्वारा अनेक बार परिवर्तन किये गये हैं।

मुसलिम शासन काल में श्रीनगर या प्रवरपुर कश्मीर कहा जाता था। कश्मीर जाने का अर्थ श्रीनगर जाना समझा जाता था।

वेरनी के अनुसार नगर चार फर्लांग में विस्तृत था। सन् १८१९ ई० में सिखों ने कश्मीर जीता तो पुराना नाम श्रीनगर रख दिया गया।

मूल श्रीनगर की स्थापना अशोक ने की थी। वर्तमान श्रीनगर का स्थान राजा प्रवरसेन ने चुना था। नाम प्रवरसेनपुर रखा गया था। कश्मीर उपत्यका के मध्य में स्थित है।

वितस्ता नदी का पाट ८० गज है वितस्ता के दक्षिण तटपर पुराना नगर अधिक आबाद था। समुद्र की सतह से ५२५० फिट ऊँचा है। यहाँ का तापमान जनवरी में ३५ डिग्री तथा जुलाई में ८० डिग्री होता है। वर्षा प्रति वर्ष यहाँ २७ इंच होती है। नगर के बाहर प्रायः कबरिस्तान है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४९ में 'शारीटके' का पाठभेद 'हारट्ठ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४९. (१) सूत्र : जिस स्थान पर सूत्र लगा था वहीं पर प्रवरपुर की स्थापना राजा प्रवरसेन ने की। वहीं वर्तमान श्रीनगर है। श्रीनगर टिप्पणी पृष्ठ १९८ पर द्रष्टव्य है।

(२) शारिका देवी के कारण हरिपर्वत का नाम शारिका पर्वत पड़ गया है। यह श्रीनगर में ही एक प्रकार से नगर बढ़ने के कारण आ गया है।

शारिका पर्वत पर सम्राट् अकबर ने दुर्ग निर्माण कराया था। यह किला भी अच्छी अवस्था में स्थित है।

पर्वत की ढाल पर शारिका देवी का तीर्थ स्थान है। मैं जिस समय पहली बार यहाँ पहुँचा उस समय शारिका देवी तक पहुँचने के लिए राज्य सरकार की तरफ से पत्थर की सीढ़ियाँ बनवायी जा रही थीं।

भक्त्या प्रतिष्ठां प्राक्तस्मिन्निनीर्षौ प्रवरेश्वरम् ।
जयस्वामी स्वयं पीठे भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ॥ ३५० ॥

३५०. उसके भक्ति पूर्वक प्रवरेश्वर[1] की प्रतिष्ठा करने के पूर्व जयस्वामी[2] स्वयं यन्त्र भेदन कर पीठ पर आसीन हो गये।

सन् १९६२ में जब मैं दूसरी बार आया तो सीढियाँ बन चुकी थीं।

शिखर पर स्थित शारिका देवी के समीप पहुँचने के लिये जहाँ से सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं वहाँ एक आधुनिक मन्दिर बना है। मन्दिर के बाहर शिवलिंग है। भीतर देवी की मूर्ति है। मन्दिर के नीचे सड़क के समीप पाँच या सात ब्राह्मणों के मकान हैं। यहीं एक ढका हुआ हौज बना है। यहीं से जनता पीने का जल प्राप्त करती है।

शारिका मन्दिर बाहर से देखने पर हरिपर्वत दुर्ग के अन्दर एक दुर्ग अथवा किला मालूम पड़ता है। राजा गुलाब सिंह ने कश्मीर विजय के पश्चात् इसका निर्माण कराया था।

शारिका देवी की यहाँ कोई मूर्ति नहीं है। एक शिला खण्ड खड़ा है। उस पर श्रीचक्र अंकित है। वह सिन्दूर लेपन से इतना ढक गया है कि रेखायें स्पष्ट प्रकट नहीं होतीं।

पुजारियों का कथन है कि श्रीचक्र की रेखायें कभी-कभी स्वतः उभड़ आती हैं। दिखायी पड़ने लगती हैं। मैंने चक्र के कोणों को गिनना चाहा। परन्तु कुछ को छोड़कर अन्य सिन्दूर के मोटे स्तर से ढक गये हैं।

दूर से देखने में शिलाखण्ड का रूप शारिका पक्षी के आकार तुल्य लगता है। उस पर श्रीचक्र अंकित कर देव स्थान तथा मूर्ति का नाम शारिका रख दिया है।

शारिका माहात्म्य में एक कथा कही गयी है। देवी दुर्गा ने मैना का रूप धारण कर लिया था। सुमेरु पर्वत से पर्वत खण्ड देवी अपने चंचु से उठाकर लायी। वह दैत्यों के द्वार को बन्द करना चाहती थी।

दैत्य लोग नरक में निवास करते थे। परन्तु इस स्थान पर नरक जाने का द्वार अर्थात् मार्ग था। उसी द्वार पर पर्वत खण्ड रख दिया। दैत्यों का इस द्वार से निकलना बन्द हो गया। द्वार का मुख भी बन्द हो गया। देवी स्वयं इस पर्वत पर निवास करने लगी। पर्वत का नाम हर पर्वत हो गया।

कथासरित्सागर ७३ : १०९ में इसका उल्लेख है।

(३) अट्टा : इस शब्द का उल्लेख राजतरंगिणी में पुनः नहीं मिलता। नीलमत पुराण में भी मैं इस शब्द को नहीं पा सका। अट्टा का हिन्दी अर्थ मचान होता है। स्तीन ने एक सुझाव दिया है कि अट्टा कवि भाषा में ऊँचे किंवा शृंग, शिखर के लिये यहाँ प्रयोग किया गया है। अट्टालिका ऊँचे कई मंजिले मकान को कहते हैं। अट्टमेलक एक मन्त्री का उल्लेख रा० ८:५७७ में कल्हण ने किया है।

३५० (१) प्रवरेश्वर : हरिपर्वत के मूल तथा जामा मसजिद, जो अब जियारत बहाउद्दीन साहब के नाम से सुप्रसिद्ध, के मध्य होना चाहिये। यह स्थान सम्भवतः श्रीनगर के मध्य में होगा। जियारत बहाउद्दीन साहब के समीप जो घेरा जो पुराना कबरिस्तान है उस में मन्दिरों तथा देवस्थानों के अनेक अलंकृत शिलाखण्ड आज भी लगे दिखायी देते हैं। उस के दीवाल तथा कबरों में वे लगे हैं।

कबरिस्तान के नैर्ऋत्य कोण में एक पुराना फाटक खड़ा है। वह बहुत ऊँचा है। चौड़ा भी काफी है। वह बड़े शिलाखण्ड से बनाया गया है।

वेतालावेदितं लग्नं जाननो जगतीभुजा ।
स्थपतेः स जयाख्यस्य नाम्ना प्रख्यापितोऽभवत् ॥ ३५१ ॥

३५१. नृपति ने वेताल कथित लग्नवेत्ता स्थापित 'जय' के नाम से उसे प्रख्यात किया ।

नगराप्रातिलोम्याय भक्त्या तस्य विनायकः ।
प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखतां भीमस्वामी स्वयं ययौ ॥ ३५२ ॥

३५२. उसकी भक्ति के कारण नगराभिमुख हेतु पश्चिमाभिमुख विनायक भीमस्वामी[१] स्वयं पूर्वाभिमुख हो गये ।

उसकी छत सम्भवतः बहुत दिन पहले गिर चुकी है । ब्राह्मणों के मतानुसार यह फाटक किंवा तोरण द्वार प्रवरसेन मन्दिर का द्वार था । यहीं से प्रवरसेन राजा स्वर्ग गये थे । यह वही द्वार है जिसका उल्लेख रा० ३:७८ तथा विल्हण ने विक्रमांकदेवचरित्र ८:१०९ में किया है । जहाँ कि प्रवरसेन के रंग पथ का उल्लेख किया गया है । यह मन्दिर अथवा इसके पूर्व प्रवरसेन निर्मित मन्दिर का रा० ३:९९ में उल्लेख किया गया है ।

(२) जयस्वामी : यहाँ पर प्रतिष्ठा की जो कथा कही गयी है वह तरंग ३ श्लोक ३५१ की कथा से और स्पष्ट हो जाती है । वहाँ रणेश्वर तथा रण स्वामी की प्रतिष्ठा का घटना वर्णन की गयी है ।

प्रवरसेन प्रारम्भ में शिव का उपासक था । वह शिवलिंग मूर्ति स्थापित करना चाहता था । उसने प्रथम शिव प्रवरेश्वर की प्रतिष्ठा की थी । (रा० ३: ३६४,३७०) अलौकिक घटना के कारण जहाँ शिव स्थापना की बात थी वहीं पर विष्णु भगवान् जयस्वामी की मूर्ति अवतरित हो गयी । प्रतिष्ठा स्थापना के नियमों के अनुसार प्रत्येक देवता की स्थापना पर यन्त्र भी भिन्न होता है । यह यन्त्र भूमिपर बनाया जाता है । इस प्रकार विष्णु की प्रतिष्ठा शिवपीठ पर नहीं हो सकती जबतक कि वह यन्त्र न हटा दिया जाय । (विष्णु धर्मोत्तरपुराण : ३) जयस्वामी नाम प्रवरसेन के शिल्पी जय के नामपर रखा गया था । वह लग्नवेत्ता थे जिसे वैताल ने बताया था ।

जयस्वामी देवस्थान का उल्लेख केवल एक बार और रा० ५:४४८ में जयस्वामी विरोचन रूप से किया गया है । देवस्थान कहाँ था पता नहीं चलता । कल्हण ने इसके सम्भाव्य स्थान के विषय में भी कोई संकेत नहीं किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५१ में 'वेताला' का 'वेताल' तथा 'जयाख्यस्य' का पाठभेद 'जयास्यस्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५२ (१) भीमस्वामी : विनायक की पूजा अभी तक हर पर्वत अर्थात् शारिका पर्वत के दक्षिण मूल के सीमावर्ती चट्टान पर भीमस्वामी गणेश नाम से होती है । यह सम्राट् अकबर के हरिपर्वत पर निर्मित किला के कच्छ दरवाजा के समीप है । कश्मीर के तीर्थों में गणेश स्वामी का उल्लेख मिलता है ।

बडशाह जैनुल आबदीन ने भीमस्वामी गणेश का नवीन देवस्थान श्रीवर के अनुसार निर्माण कराया था । यह जियारत मकदूम शाह के समीप है । (श्रीवर : ३:३०७) पण्डित साहेबराम ने अपने तीर्थों में बड़शाह के गणेश स्थान को मकदूम शाह के जियारत के समीप बताया है ।

भक्त्या प्रतिष्ठां प्राक्तस्मिन्निनीषौ प्रवरेश्वरम् ।
जयस्वामी स्वयं पीठे भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ॥ ३५० ॥

३५०. उसके भक्ति पूर्वक प्रवरेश्वर[1] की प्रतिष्ठा करने के पूर्व जयस्वामी[2] स्वयं यन्त्र भेदन कर पीठ पर आसीन हो गये ।

सन् १९६२ में जब मैं दूसरी बार आया तो सीढ़ियाँ बन चुकी थी ।

शिखर पर स्थित शारिका देवी के समीप पहुँचने के लिये जहाँ से सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं वहाँ एक आधुनिक मन्दिर बना है । मन्दिर के बाहर शिवलिंग है । भीतर देवी की मूर्ति है । मन्दिर के नीचे सड़क के समीप पाँच या सात ब्राह्मणों के मकान हैं । यहाँ एक ढका हुआ हौज बना है । यहाँ से जनता पीने का जल प्राप्त करती है ।

शारिका मन्दिर बाहर से देखने पर हरिपर्वत दुर्ग के अन्दर एक दुर्ग अथवा किला मालूम पड़ता है। राजा गुलाब सिंह ने कश्मीर विजय के पश्चात् इसका निर्माण कराया था ।

शारिका देवी की यहाँ कोई मूर्ति नहीं है । एक शिला खण्ड खड़ा है । उस पर श्रीचक्र अंकित है । वह सिन्दूर लेपन से इतना ढक गया है कि रेखायें स्पष्ट प्रकट नहीं होती ।

पुजारियों का कथन है कि श्रीचक्र की रेखायें कभी-कभी स्वतः उभड़ आती है । दिखायी पड़ने लगती है । मैंने चक्र के कोणों को गिनना चाहा । परन्तु कुछ को छोड़कर अन्य सिन्दूर के मोटे स्तर से ढक गये हैं ।

दूर से देखने में शिलाखण्ड का रूप शारिका पक्षी के आकार तुल्य लगता है । उस पर श्रीचक्र *अंकित कर देव स्थान तथा मूर्ति का नाम शारिका* रख दिया है ।

शारिका माहात्म्य में एक कथा कही गयी है । देवी दुर्गा ने मैना का रूप धारण कर लिया था । सुमेरु पर्वत से पर्वत खण्ड देवी अपने चंचु से उठाकर लायी । वह दैत्यों के द्वार को बन्द करना चाहती थी ।

दैत्य लोग नरक में निवास करते थे । परन्तु इस स्थान पर नरक जाने का द्वार अर्थात् मार्ग था । उसी द्वार पर पर्वत खण्ड रख दिया । दैत्यों का इस द्वार से निकलना बन्द हो गया । द्वार का मुख भी बन्द हो गया । देवी स्वयं इस पर्वत पर निवास करने लगी । पर्वत का नाम हर पर्वत हो गया ।

कथासरित्सागर ७३ : १०९ में इसका उल्लेख है ।

(३) अट्टा : इस शब्द का उल्लेख राज० तरंगिणी में पुनः नहीं मिलता । नीलमत पुराण में भी मैं इस शब्द को नहीं पा सका । अट्टा का हिन्दी अर्थ मचान होता है । स्तीन ने एक सुझाव दिया है कि अट्टा कवि भाषा में ऊँचे किंवा शृंग, शिखर के *लिये यहाँ प्रयोग किया गया है* । अट्टालिका ऊँचे कई मंजिले मकान को कहते हैं । अट्टमेलक एक मन्त्री का उल्लेख रा० ८:५७७ में कल्हण ने किया है ।

३५० (१) प्रवरेश्वर : हरिपर्वत के मूल तथा जामा मसजिद, जो अब जियारत बहाउद्दीन साहब के नाम से सुप्रसिद्ध, के मध्य होना चाहिये । यह स्थान सम्भवतः श्रीनगर के मध्य में होगा । जियारत बहाउद्दीन साहब के समीप को घेरा जो पुराना कब्रिस्तान है उस में मन्दिरों तथा देवस्थानों के अनेक अलंकृत शिलाखण्ड आज भी लगे दिखायी देते हैं । उस के दीवाल तथा कबरों में वे लगे हैं ।

कब्रिस्तान के नैर्ऋत्य कोण में एक पुराना फाटक खड़ा है । वह बहुत ऊँचा है । चौड़ा भी काफी है । वह बड़े शिलाखण्ड से बनाया गया है ।

वेतालावेदितं लग्नं जानतो जगतीभुजा ।
स्थपतेः स जयाख्यस्य नाम्ना प्रख्यापितोऽभवत् ॥ ३५१ ॥

३५१. नृपति ने वेताल कथित लग्नवेत्ता स्थापित 'जय' के नाम से उसे प्रख्यात किया ।

नगराप्रातिलोम्याय भक्त्या तस्य विनायकः ।
प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखतां भीमस्वामी स्वयं ययौ ॥ ३५२ ॥

३५२. उसकी भक्ति के कारण नगराभिमुख हेतु पश्चिमाभिमुख विनायक भीमस्वामी[1] स्वयं पूर्वाभिमुख हो गये ।

उसकी छत सम्भवतः बहुत दिन पहले गिर चुकी है । ब्राह्मणों के मतानुसार यह फाटक किंवा तोरण द्वार प्रवरसेन मन्दिर का द्वार था । यही से प्रवरसेन राजा स्वर्ग गये थे । यह वही द्वार है जिसका उल्लेख त० ३:७८ तथा बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित्र ८:१०९ में किया है । जहाँ कि प्रवरसेन के रण पथ का उल्लेख किया गया है । यह मन्दिर अथवा इसके पूर्व प्रवरसेन निर्मित मन्दिर का त० ३:९९ में उल्लेख किया गया है ।

(२) जयस्वामी : यहाँ पर प्रतिष्ठा की जो कथा कही गयी है वह तरंग ३ ४५१ श्लोक की कथा से और स्पष्ट हो जाती है । वहाँ रणेश्वर तथा रण स्वामी की प्रतिष्ठा का घटना वर्णन की गयी है ।

प्रवरसेन प्रारम्भ मे शिव का उपासक था । वह शिवलिंग मूर्ति स्थापित करना चाहता था । उसने प्रथम शिव प्रवरेश्वर की प्रतिष्ठा की थी । (त० ३: ३६४,३७०) अलौकिक घटना के कारण जहाँ शिव स्थापना की बात थी वहीं पर विष्णु भगवान् जयस्वामी की मूर्ति अवतरित हो गयी । प्रतिष्ठा स्थापना के नियमो के अनुसार प्रत्येक देवता की स्थापना पर यन्त्र भी भिन्न होता है । यह यन्त्र भूमिपर बनाया जाता है । इस प्रकार विष्णु की प्रतिष्ठा शिवपीठ पर नहीं हो सकती जबतक कि वह यन्त्र न हटा दिया जाय । (विष्णु धर्मोत्तरपुराण : ३) जयस्वामी नाम प्रवरसेन के शिल्पी जय के नामपर रखा गया था । वह लग्नवेत्ता थे जिसे वैताल ने बताया था ।

जयस्वामी देवस्थान का उल्लेख केवल एक बार और त० ५:४४८ में जयस्वामी विरोचन रूप से किया गया है । देवस्थान कहाँ था पता नहीं चलता । कल्हण ने इसके सम्भाव्य स्थान के विषय में भी कोई संकेत नहीं किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५१ में 'वेताला' का 'वेताल' तथा 'जयाख्यस्य' का पाठभेद 'जयास्यस्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५२ (१) भीमस्वामी : विनायक की पूजा अभी तक हर पर्वत अर्थात शारिका पर्वत के दक्षिण मूल के सीमावर्ती चट्टान पर भीमस्वामी गणेश नाम से होती है । यह सम्राट् अकबर के हरिपर्वत पर निर्मित किला के बच्छ दरवाजा के समीप है । कश्मीर के तीर्थों में गणेश स्वामी का उल्लेख मिलता है ।

बडशाह जैनुल आबदीन ने भीमस्वामी गणेश का नवीन देवस्थान श्रीवर के अनुसार निर्माण कराया था । यह जियारत मकदूम शाह के समीप है । (श्रीवर : ३:२०७) पण्डित साहेबराम ने अपने तीर्थों में बडशाह के गणेश स्थान को मकदूम शाह के जियारत के समीप बताया है ।

भीमस्वामी का दर्शन मैंने किया है। यह फाटक के ठीक वाम पार्श्व में है। यहाँ तक सड़क चली जाती है।

मन्दिर के अन्दर एक भीमकाय चट्टान सिन्दूर से लिप्त मिलेगी। उसे देखकर मालूम होता है जैसे बड़ा सा सिन्दूर का ढोका रखा है। गर्मी में यह पिघलता सा लगता है। गणेश के आकार की मूर्ति नहीं दिखायी पड़ती। सिन्दूर के अन्दर छिप गयी है।

वह इतनी अधिक सिन्दूर मण्डित है कि यह कहना कठिन है कि मूर्ति का मुख दक्षिण है अथवा पश्चिम।

मुझे प्रतीत होता है कि यहाँ मूर्ति नहीं रही होगी। मुसलमान किसी गढ़ी या बनी मूर्ति को बुत कहते हैं। पुरातन बाइबिल में भी पत्थर, लकड़ी आदि में किसी आकृति को बनाने का नाम ही मूर्ति है। मुस्लिम काल में निश्चय ही प्राचीन मूर्ति खण्डित कर दी गयी होगी। उसके स्थान पर पर्वतीय शिलाखण्ड को गणेश नाम से सिन्दूर पोतकर पूजा होने लगी।

राजस्थान में मैंने अनेक अनगढ़ पत्थरों तथा बड़े टुकड़ों पर सिन्दूर लगा देखा है। भरव आदि की मूर्ति न रखकर एक शिलाखण्ड रखकर उसपर सिन्दूर लगा देते हैं। राजस्थान भी मुसलिम आक्रमणों का निरन्तर स्थान रहा है अतएव वहाँ भी यह प्रथा अपना ली गयी होगी।

मखदूम शाह की जियारत हरिपर्वत पर सबसे भव्य इमारत है। राज्य सरकार की तरफ से आजादी मिलने के पश्चात् ऊपर तक जाने के लिये पत्थर की पक्की सीढ़ियाँ बना दी गयी हैं। मैंने इस स्थान को ध्यानपूर्वक देखा। अतीत के समय से बहुत परिवर्तन हो गया है। मन्दिरों के ध्वंसावशेष या तो हटा दिये गये हैं अथवा तोड़कर उनका गिट्टी अथवा ढोका बनाकर इमारत या फर्श में लगा दिये गये हैं।

इस जियारत के साथ खानगाह है। मैं जब पहुँचा था तो इमारत की बायीं तरफ निर्माण कार्य हो रहा था। कोई इमारत या धार्मिक स्थान बनाया जा रहा था। यह जियारत निस्सन्देह हिन्दू मन्दिर के स्थानपर बनायी गयी है। खानगाह के पास मुझे वही गोमुखीय प्रनाली मिली जिससे मन्दिर के अभिषेक का जल बाहर निकलता था और दर्शक उसमें गिरता चरणामृत लेते थे।

मखदूम शाह के जियारत के दो तरफ एक मंजिला बरामदा बना है। वहाँ से श्रीनगर का दृश्य अच्छा दिखायी देता है। बरामदा के ऊपर मन्दिर कलश का विशाल आमलक पड़ा दिखाया दिया। वहीं कलश का महापद्म देखा। दोनों के मध्य में आरपार छेद था। कलश ऊँचा मूल में मोटा तथा ऊर्ध्व में पतला होता चला जाता है। इसलिये ऊपर से नीचे तक पत्थरों के क्रमों को संघटित रखने के लिये मध्य में लोहा अथवा ताम्बा का मोटा छड़ डाला जाता है और यही क्रम पहले भी था।

सप्तर्षि :

गणेश के उक्त स्थान के वाम भाग से एक मार्ग हरपर्वत पर जाता है। यह सड़क इस समय (शक १९६८) में कच्ची है। उसे कश्मीर राज्य की ओर से पक्की किया जा रहा है।

शारिका देवी के मार्ग में सप्तर्षि का स्थान पड़ता है। यहाँ भी चट्टान पर सिन्दूर लगा है। कथा है। इस स्थानपर सप्तर्षि का आगमन तथा निवास हुआ था।

नीलमत पुराणमें सप्तर्षि का स्थान सुमुख के समीप कहा गया है।

वराहं च नृसिंह च बहुरूप वरप्रदम्।
सप्तर्षीणां तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा ॥

1159 = १२७० १२७१

❀ ❀ ❀

चित्रकूटमथारुह्य स्वर्गलोके महीयते।
तीर्थं सप्तऋषं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥

1263 = १४७६

सद्भावश्र्यादिका देव्यस्तेन श्रीशब्दलाञ्छिताः ।
पञ्च पञ्चजनेन्द्रेण पुरे तस्मिन्निवेशिताः ॥ ३५३ ॥

३५३. उस पंचजनेन्द्र[1] ने श्री शब्द लाञ्छित सद्भावश्री आदि पंच[2] देवियों को उस नगर में स्थापित किया।

अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ।
गवां शतसहस्रस्य श्रेयान् सर्षपः कणः ।
1264 = १४७७

❀ ❀ ❀

श्राद्धं दानं तथा जप्यं स्नानं होमस्तथार्चनम् ।
सर्वमक्षयतां याति यत्कृतं तत्र पार्थिव ॥
1265 = १४७७ १४७८

* * *

विगाह्य पुष्करं तीर्थमतिरात्रफलं लभेत् ।
तीर्थं मत्स्यभवीनां च वह्निष्टोमफलं लभेत् ॥
1343 = १५५८

पादटिप्पणियाँ :

३५३ (१) पचजन : कल्हण ने राजा को यहाँ पचजनों का इन्द्र कहा है। पंचजन शब्द जातियों का भी वाचक है। (क) ब्रह्मसूत्र शारीरक भाष्य के अनुसार चार वर्ण तथा पाँचवाँ बर्बर जाति को मिलाकर पचजन की संज्ञा दी गयी है। (ख) पांच वर्ग, यथा,—देव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग एवं पित्र को मिलाकर पंचजन कहा जाता है। (ग) एक मत है कि पंचजन शब्द पंचायत के लिये प्रयुक्त किया गया है। पंचायत के सभासदों को पंच कहा जाता है। उनके सामूहिक वर्ग को सूचित करने के लिये पचजन की संज्ञा दी गयी है।

(२) श्रीपंचदेवी मन्दिर : श्री स्तीन ने इन मन्दिरों का पता लगाया था परन्तु उन्हें प्रामाणिक ढंग पर कुछ मिल नहीं सका। श्री पण्डित आनन्द कौल ने अपने 'आर्कियोलोजी रिमेन्स इन कश्मीर' के पृष्ठ २२ पर इस विषयपर प्रकाश डाला है।

१ महाश्री : यह मन्दिर वितस्ता के चौथे पुल के अधोभागमें दक्षिण तटपर ईंटों की पाँच गुम्बदों की बनी एक इमारत है। बडशाह जैनुल आबदीन की माता की इसमें कब्र है। वह पूर्व कालीन महाश्री का मन्दिर प्रवरसेन द्वितीय का बनवाया है।

मैं अपने एक कश्मीरी ब्राह्मण मित्र के साथ इस स्थान पर आया। प्रवेश करते ही अहाता के द्वार को दोनों ओर ऊँचाई पर दीवाल में बनी मूर्तियाँ खण्डित लगी थी। द्वार प्राचीन मन्दिर का बिरदावली कह रहा था। भीतर कब्रिस्तान है। जैनुल आबदीन की कब्र एक चौकोर प्राकार के अन्दर है। इसी प्राकार के बाहर उक्त मन्दिर है। पुरातत्व विभाग की तरफ से इसकी मरम्मत की गयी है। मन्दिर में एक सिकड़ी अभी तक लटक रही है। मेरे मित्र ने कहा कि पूर्व मन्दिर का घण्टा इसमें लटकता था। जहाँ जैनुल आबदीन की मा की कब्र है वहींपर देवी का पीठस्थान रहा होगा। अथवा शिवलिंग रहा होगा। लटकती सिकड़ी से घण्टा या जलधारा का पात्र लगाया गया रहा होगा।

उक्त अहाता किंवा मैदान का घेरा तीन ओर से मन्दिरों के भग्नावशेष पत्थरों से निर्माण किया गया है। इस समय वह बृहद् कब्रिस्तान का रूप ले लिया है।

उक्त मन्दिर के गर्भ गृह में केवल एक ही कब्र सिकन्दर बुत शिकन की स्त्री अथवा बादशाह जैनुल आबदीन की माँ की है। इस मन्दिर की प्रणाली आजतक यथावत् कायम है। उससे गर्भ गृह का जल चरणामृतस्वरूप बाहर निकलता था आज सात शताब्दियाँ बीत गयीं इस प्रणाली ने जल-बिन्दुओं का स्पर्श न किया होगा।

२. काली श्री : तीसरे तथा चौथे पुल वितस्ता के मध्य एक भव्य इमारत शाह हमदान की है। इस स्थान पर काली का पवित्र जलस्रोत है। प्रवरसेन द्वितीय ने इस स्रोतस्थान पर मन्दिर निर्माण कराया था। मन्दिर का नाम कालीश्री था।

इस समय इस महाल का नाम कलाशपुर है। यह शब्द कालीश्रीपुर अथवा कैलाशपुर का अपभ्रंश प्रतीत होता है। निस्सन्देह कैलाश अथवा काली का सम्बन्ध शिव से होना है।

यह मन्दिर सुलतान कुतुबुद्दीन (सन् १३७३—९४ ई०) ने नष्ट किया था। इस मन्दिर के ध्वंसावशेष से उसने खनकशाह का शाह हमदान में निर्माण कराया था। यह दो बार अग्नि से जल चुका है। पुन बनाया गया है।

स्थान अपनी प्राचीन गरिमा में भव्य रहा होगा। लकड़ी की बहुत बड़ी इमारत बनी है। शाह हमदान के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रांगण बड़ा है। प्रांगण में पुराने शिलाखण्ड बिखरे तथा कहीं न कहीं लगे आज भी मैंने अपनी आँखों से देखा था।

यह स्थान हिन्दू मुसलमान दोनों द्वारा पूजित है। वितस्ता की तरफ कथा है कि हमदान खनखाह के पृष्ठ भाग से एक नाग अथवा जलस्रोत निकलता था।

जहाँ जलस्रोत का स्थान है वह घेरकर खनग्राह का अंग बना दिया गया है। उसके द्वार पर आज भी कपड़ा पड़ा रहता है। ताकि कोई हिन्दू उसे देख न सके। यहाँ पर एक पीर किंवा मुन्तजिम बैठा रहता है। इस लकड़ी की इमारत तथा वितस्ता के मध्य में चौतरा है। तत्पश्चात् वितस्ता जल तक जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं।

नदी के तट पर शाह हमदान की इमारत के पुश्तापर एक बड़ा सिन्दूर का टीका लगा है। यहीं प्राचीन कालीश्री की स्मृति में हिन्दू पुष्प चढ़ाकर पूजा करते हैं। नदी की धारा तक पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। पुश्ता के नीचे काफी बड़ा स्थान चौतरानुमा बना है। उस पर आज भी हिन्दू खड़े होकर पूजा तथा स्नान करते हैं। मैंने वहाँ स्वयं पुष्प चढ़ाया है। दो एक हिन्दुओं को पूजा करते देखा था।

सिखों ने सन् १८१९ ई० में कश्मीर विजय की। सिख राज्यपाल सरदार हरी सिंह ने शाह हमदान को नष्ट करने की आज्ञा दी। हरी सिंह ने आदेश दिया। मन्दिर के स्थानपर मुसलिम जियारत आदि बनी है अतएव उसे मुसलमान वापस कर दें। उन्होंने श्री फूल सिंह सैनिक अधिकारी को आज्ञा दी कि मसजिद उड़ा दी जाय। वितस्ता के पार पत्थर मसजिद घाट पर तोप लगा दी गयी।

मुसलमान शाह हमदान को नष्ट होते देखकर श्री बीरबल धर के मकान पर गये। उन्हीं के बुलाने पर सिख सेना कश्मीर में आयी थी। श्री बीरबल के निवेदन पर यह ध्वन्स कार्य रोक दिया गया। पुस्ता की दीवाल पर हिन्दुओं ने सिन्दूर लगा दिया। उसी की पूजा उस समय से काली श्री के नाम से होती है।

३. सद्भावश्री : काठी कदल के समीप जामा मसजिद के पश्चिम सद्भावश्री का मन्दिर था। उसे पीर हाजा मुहम्मद सुलतान कुतुबुद्दीन साहब की जियारत में बदल दिया गया है। यहाँ वे दफन किये गये थे।

४. लोकी श्री : श्रीनगर में वितस्ता तटपर लोकीश्री का मन्दिर था। इस मन्दिर का घाट अब भी लोहागी पार कहा जाता है। यह शब्द लोकीश्रीपार का अपभ्रंश है।

५. पांचवां मन्दिर किस स्थान पर था पता नहीं चलता। उक्त मन्दिरों की शृंखला देखते यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उसे भी वितस्ता के दक्षिण तटपर होना चाहिये।

वितस्तायां स भूपालो बृहत्सेतुमकारयत् ।
ख्याता ततः प्रभृत्येव तादृङ्नौसेतुकल्पना ॥ ३५४ ॥

३५४. उस भूपाल ने वितस्ता (नदी) पर बृहत् सेतु[1] का निर्माण कराया उस समय से उस प्रकार का नौका द्वारा सेतु निर्माण ख्यात (प्रचलित) हुआ।

श्रीजयेन्द्रविहारस्य बृहद्बुद्धस्य च व्यधात् ।
मातुलः स नरेन्द्रस्य जयेन्द्रो विनिवेशनम् ॥ ३५५ ॥

३५५. नरेन्द्र के मातुल जयेन्द्र ने जयेन्द्र विहार[1] का निर्माण कराया, और बृहद्[2] बुद्ध की स्थापना की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५४ में 'ततः' का पाठभेद 'तदा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५४ (१) बृहत् सेतु—शाब्दिक अर्थ बड़ा पुल होता है। कल्हण ने इस का पुनः उल्लेख त. ८ : ११७१ में किया है। इस सेतु के स्थान का निश्चयात्मक पता कल्हण नहीं देता। किन्तु पढने से प्रतीत होता है कि मक्षिका स्वामी (मायसुम) के पास इसे होना चाहिये था।

कल्हण राजा हर्ष के समय (रा० त० ७ : १५४८) तथा श्रीवर (१ : ३ : ९६) में एक नाव के पुल का वितस्ता पर उल्लेख करता है।

वितस्ता पर आजादी (सन् १९४७ ई०) के पूर्व केवल लकड़ी के पुल विचित्र शैली के, बने थे। कश्मीर का पर्यटक उनसे अत्यन्त प्रभावित होता था। जैन कदल वितस्ता पर बने श्रीनगर पुल का जैनुल आबदीन बादशाह के समय में होना मिलता है। श्रीवर ने इसका उल्लेख तृतीय रा० त० १:३:१८, १९) में किया है। यह पुल पन्द्रहवीं शताब्दी में वर्तमान था।

प्रतीत होता है कि इसके पूर्व श्रीनगर में नौका पाट कर पुल नहीं बनाया गया था। इसके निर्माण के पश्चात् नाव पाटकर स्थाय पुल बनाने की परम्परा प्रचलित हो गयी। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से इस पद का महत्त्व है।

३५५ (१) जयेन्द्र विहार : ह्वेनसांग चीनी पर्यटक ने इस विहार में दो वर्षो तक (सन् ६३१-६३३ ई०) निवास किया था। उसे 'चे मे इन तो लो' के नाम से लिखा है। यह जयेन्द्र विहार ही है। यहाँ उसने अनेक शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी।

यह विहार श्रीनगर की जामा मसजिद के समीप था। सर वाल्टर लारेन्स का कहना है कि उसके समय में भी श्रीनगर में लद्दाख से आने वाले बौद्ध लद्दाखी इस मसजिद के स्थान का पुराना नाम 'स्ते-रसु त्वक-कांग' कहते थे। वे यहाँ की यात्रा प्राचीन विहार होने के कारण करते थे। यहाँ पूजा करते थे।

(२) बृहद् बुद्ध—सम्भवतः बृहद् बुद्ध का विशाल प्रतिमा ठोस थी, जैसा कि ललितादित्य ने कांस्य ताम्र अथवा अष्ट धातु की परिहासपुर में निर्माण कराकर प्रतिष्ठित किया था। (त.४:२०३)

तरंग ४ । १७१ से प्रकट होता है कि जयेन्द्र विहार भस्म हो गया था। बुद्ध की प्रतिमा राजा क्षेमगुप्त ने गलाकर सिक्का ढलवाया था। उसने पीतल की प्रतिमा से ढले सिक्कों की आमदनी से क्षेम गौरीश्वर का मन्दिर निर्माण कराया था। श्रीनगर की अन्य बुद्ध प्रतिमाओं का उल्लेख राजा हर्ष (त. ७ : १०९७) तथा राजा सुस्सल के काल में मिलता है। बृहद बुद्ध का उल्लेख चौदहवी

बुभोज सिंहलादीन्यो द्वीपान्स सचिवाऽकरात् ।
मोराकनामा मोराकभवनं भुवनाद्भुतम् ॥ ३५६ ॥

३५६. मोराक नामक वह सचिव भुवन में अद्भुत 'मोराक भवन'[1] बनवाया जिसने सिंहलादि द्वीपों का भोग किया था।

षट्त्रिंशद्गृहलक्षाणि पुरं तत्पप्रथे पुरा ।
यस्यास्तां वर्धनस्वामी विश्वकर्मा च सीमयोः ॥ ३५७ ॥

३५७. पूर्व काल में यह ख्याति थी—'इस नगर में छत्तीस लाख गृह हैं।' जिसकी सीमा पर वर्धन स्वामी[1] और विश्वकर्मा[2] हैं।

दक्षिणस्मिन्नेव पारे वितस्तायाः पुरा किल ।
निर्मितं तेन नगरं विभक्तैर्युक्तमापणैः ॥ ३५८ ॥

३५८. वितस्ता के दक्षिण तटपर उसने सुविख्यात बाजारों से युक्त नगर निर्मित कराया।

ते तत्राभ्रंलिहाः सौधा यानध्यारुह्य दृश्यते ।
वृष्टिस्निग्धं निदाघान्ते चैत्रे चोत्कुसुमं जगत् ॥ ३५९ ॥

३५९. वहाँ वे गगनचुम्बी राजप्रासाद थे जिनपर आरूढ़ होकर निदाघ (ग्रीष्म) के अन्त में वृष्टि स्निग्ध एवं चैत्र[1] मास में विकसित कुसुम पूर्ण जगत् देखा जाता था।

शताब्दी तक मिलता है। जोनराज के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है। (*जोन राज० ४३०*)

३५६. (१) मोराक भवन : इस स्थान का पता नहीं चलता। इस पर भी कहीं से प्रकाश नहीं पड़ता कि मन्त्री मोराक का आधिपत्य सिंहल में किस प्रकार हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५७ में 'षट्त्रिंशद्गृह' का 'षट्त्रिंशगृह' तथा 'सीमयोः' का पाठभेद 'सोमयोः' तथा 'स मयः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५७ (१) वर्धन स्वामी : वर्धन स्वामी तथा विश्वकर्मा के मन्दिरों का पता नहीं चलता। वर्धन स्वामी का पुनः उल्लेख कल्हण ने त० ६ : १९१ में किया है।

(२) विश्वकर्मा : यह मन्दिर भी सूत्रपात की सीमा पर वर्धन स्वामी के समान होना चाहिये। *इस मन्दिर का पुनः उल्लेख नहीं मिलता।* स्टीन का मत है कि त० ८ : २४३८ श्लोक से इस मन्दिर की ध्वनि निकलती है।

कश्मीर में विश्वकर्मा को सर्व शिल्प प्रवर्तक माना गया है। उनकी पूजा का विधान भी किया गया है।

विश्वकर्मा तथा पूज्यः सर्वशिल्पप्रवर्तकः ।
नील० *623* ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५८ में 'दक्षिण' का पाठभेद 'दक्षिणे' मिलता है।

श्लोक संख्या ३५९ में 'चोत्कु' का पाठभेद 'चोत्कु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५९. (१) चैत्र : यह चान्द्रमास का एक महीना किंवा मास है। इस मास में चित्रा नक्षत्र पर पूर्णचन्द्र स्थित होता है। यह मास मार्च एवं अप्रैल

तद्विना नगरं कुत्र पवित्राः सुलभा भुवि ।
सुभगाः सिन्धुसंभेदाः क्रीडावसथवीथिषु ॥ ३६० ॥

३६०. पृथ्वी पर उस नगर के अतिरिक्त और कहाँ क्रीड़ागृह[1], पथों के तट तथा पवित्र एवं सुन्दर नहरें सुलभ हो सकती हैं ?

मास में पड़ता है । क्योंकि चान्द्रवर्ष गणना के अनुसार प्रति तीसरे वर्ष मल मास अर्थात् एक मास और वर्ष में जुट जाता है अतएव सौर वर्ष के अनुसार इसका समय अस्थिर रहता है ।

चैत्रमास का कश्मीर में बड़ा महत्त्व है । प्रथम दिन चैत्र से संवत् का आरम्भ होता है । प्रथम दिन चैत्र शुक्लपक्ष को ब्राह्मणों को वस्त्र, अलंकार, मुद्रा, तथा रत्न दान करने का पर्व माना जाता है । चैत्र में श्रीपंचमी के दिन लक्ष्मी पूजन का माहात्म्य है ।
(नी० 644—646)

कश्मीर मण्डल की देवी कश्मीरा की प्रतिमा को स्नान पूजा आदि करने का विधान किया गया है । चैत्र शुक्ल षष्ठी को चैत्र षष्ठी का पर्व मनाया जाता है । इस दिन स्कन्द की पूजा होती है । यह दिन बालकों के स्वास्थ्य के साथ सम्बन्धित किया गया है । चैत्र नवमी को भद्रकाली की पूजा पुष्प, गन्ध एवं नैवेद्य से की जाती है । चैत्र शुक्ल एकादशी को वास्तु देव की पूजा की जाती है । चैत्र द्वादशी को वासुदेव की पूजा का दिन है । चैत्र त्रयोदशी को मदन यात्रा उत्सव मनाया जाता है । कामदेव का छवि चत्र बनाया जाता है । इस दिन पति अपनी पत्नी को स्नान कराता है । चैत्र सुदी पन्द्रह को पिशाच प्रयाण का उत्सव मनाया जाता है । निकुम्भ ने इस दिन बालुकार्णव में अभियान करता पिशाचों के निवास स्थान पर आक्रमण किया था । पिशाच की मृत्तिका प्रतिमा बनायी जाती थी । उसकी पूजा प्रत्येक गृह में मध्याह्न तथा चन्द्रोदय काल में की जाती थी । नीलमत पुराण ने इस प्रकार सम्पूर्ण चैत्र मास में प्रायः प्रत्येक दिन को पूजा तथा उत्सव का दिन निश्चित कर दिया है । (नी० *644-667*)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६० में 'सुभगा:' का पाठभेद 'सुलभा:' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३६० (१) क्रीड़ा गृह एवं नहरें : कल्हण का यहाँ तात्पर्य डल लेक अर्थात् सुरेश्वरी सर तथा अंचर लेक से निकलने वाली अनेक नहरों से है जो श्रीनगर में फैली है । वे श्रीनगर के केन्द्र तक चली गयी है । इन नहरों पर बाजार तथा मकान आदि अब भी बने हैं । हाउस बोट नहरों में लगी रहती हैं । जहाँ बिजली का प्लग तटवर्ती बिजली के खम्भों से लगाकर पूरा हाउस बोट विद्युत्मय कर दिया जाता है । यह नहरें वेनिस की नहरों के समान यातायात तथा परिवहन का काम करती है । शाक-सब्जी तथा अन्य सामान बेचने वाले नावों पर सामान बेचते है । थाईलैण्ड के बैंकाक नगर में भी नहरों में घूमती नावों पर बाजार लगा दिखायी देता है । मुझे दोनों स्थानों की साम्यता देखकर आश्चर्य हुआ ।

कल्हण ने यहाँ 'पवित्र' शब्द का प्रयोग किया है । ये नहरें अब पवित्र नहीं कही जा सकती । आबादी बढ़ जाने के कारण, तथा हाउस बोटों की संख्या अत्यधिक होने और पर्यटकों की संख्या लाखों से ऊपर प्रति वर्ष पहुँचने के कारण नहरें गन्दी रहती हैं । मल मूत्र तथा गन्दगी सब नावों हाउस बोटों तथा तटवर्ती मकानों से निकलकर नहरों में जाती है । अतएव उन्हें आज पवित्र कहना पवित्रता का उपहास करना होगा ।

कल्हण के समय नहरें साफ रही होंगी । पवित्र शब्द स्टीन के मतानुसार वाङ्मय पद बनाने के लिये कल्हण ने प्रयोग किया है । परन्तु मैं समझता

युभोज सिंहलादीन्यो द्वीपान्स सचिवाऽकरात् ।
मोराकनामा मोराकभवनं भुवनाद्भुतम् ॥ ३५६ ॥

३५६. मोराक नामक वह सचिव भुवन में अद्भुत 'मोराक भवन'[1] बनवाया जिसने सिंहलादि द्वीपों का भोग किया था।

षट्त्रिंशद्गृहलक्षाणि पुरं तत्पप्रथे पुरा ।
यस्यास्तां वर्धनस्वामी विश्वकर्मा च सीमयोः ॥ ३५७ ॥

३५७. पूर्व काल में यह ख्याति थी—'इस नगर में छत्तीस लाख गृह हैं।' जिसकी सीमा पर वर्धन स्वामी[1] और विश्वकर्मा[2] हैं।

दक्षिणस्मिन्नेव पारे वितस्तायाः पुरा किल ।
निर्मितं तेन नगरं विभक्तैर्युक्तमापणैः ॥ ३५८ ॥

३५८. वितस्ता के दक्षिण तटपर उसने सुविख्यात बाजारों से युक्त नगर निर्मित कराया।

ते तत्राभ्रंलिहाः सौधा यानध्यारुह्य दृश्यते ।
वृष्टिस्निग्धं निदाघान्ते चैत्रे चोत्कुसुमं जगत् ॥ ३५९ ॥

३५९. वहाँ वे गगनचुम्बी राजप्रासाद थे जिनपर आरूढ़ होकर निदाघ (ग्रीष्म) के अन्त में वृष्टि स्निग्ध एवं चैत्र[1] मास में विकसित कुसुम पूर्ण जगत् देखा जाता था।

शताब्दी तक मिलता है। जोनराज के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है। (जोन राज० ४२०)

३५५. (१) मोराक भवन : इस स्थान का पता नहीं चलता। इस पर भी यहाँ से प्रकाश नहीं पड़ता कि मन्त्री मोराक का आधिपत्य सिंहल में किस प्रकार हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५७ में 'षट्त्रिंशद्गृह' का 'षट्त्रिंशगृह' तथा 'सीमयोः' का पाठभेद 'सोमयो.' तथा 'स मयः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५७ (१) वर्धन स्वामी : वर्धन स्वामी तथा विश्वकर्मा के मन्दिरों का पता नहीं चलता। वर्धन स्वामी का पुनः उल्लेख कल्हण ने त० ६ : १९१ में किया है।

(२) विश्वकर्मा : यह मन्दिर भी सम्भवतः नगर की सीमा पर वर्धन स्वामी के समान होना चाहिये। इस मन्दिर का पुनः उल्लेख नहीं मिलता। श्रीस्तीन का मत है कि त० ८ : २४१८ श्लोक से इस मन्दिर की ध्वनि निकलती है।

कश्मीर मे विश्वकर्मा को सर्व शिल्प प्रवर्तक माना गया है। उनकी पूजा का विधान भी किया गया है।

विश्वकर्मा तथा पूज्यः सर्वशिल्पप्रवर्तकः ।
नील० 623 ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५८ में 'दक्षिण' का पाठभेद 'दक्षिणे' मिलता है।

श्लोक संख्या ३५९ में 'चोत्कु' का पाठभेद 'वोत्कु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५९. (१) चैत्र : यह चान्द्रमास का एक महीना किंवा मास है। इस मास में चित्रा नक्षत्र पर पूर्णचन्द्र स्थित होता है। यह मास मार्च एवं अप्रैल

तद्विना नगरं कुत्र पवित्राः सुलभा भुवि।
सुभगाः सिन्धुसंभेदाः क्रीडावसथवीथिषु ॥ ३६० ॥

३६० पृथ्वी पर उस नगर के अतिरिक्त और कहाँ क्रीड़ागृह[1], पथों के तट तथा पवित्र एवं सुन्दर नहरें सुलभ हो सकती हैं ?

मास में पड़ता है। क्योंकि चान्द्रवर्ष गणना के अनुसार प्रति तीसरे वर्ष मल मास अर्थात् एक मास और वर्ष में जुट जाता है अतएव सौर वर्ष के अनुसार इसका समय अस्थिर रहता है।

चैत्रमास का कश्मीर में बड़ा महत्त्व है। प्रथम दिन चैत्र से संवत् का आरम्भ होता है। प्रथम दिन चैत्र शुक्लपक्ष को ब्राह्मणों को वस्त्र, अलंकार, मुद्रा, तथा रत्न दान करने का पर्व माना जाता है। चैत्र में श्री पंचमी के दिन लक्ष्मी पूजन का माहात्म्य है।
(नी० 641—646)

कश्मीर मण्डल की देवी कश्मीरा का प्रतिमा को स्नान पूजा आदि करने का विधान किया गया है। चैत्र शुक्ल षष्ठी को चैत्र षष्ठी का पर्व मनाया जाता है। इस दिन स्कन्द की पूजा होती है। यह दिन बालकों के स्वास्थ्य के साथ सम्बन्धित किया गया है। चैत्र नवमी को भद्रकाली की पूजा पुष्प, गन्ध एवं नैवेद्य से की जाती है। चैत्र शुक्ल एकादशी को वास्तु देव की पूजा की जाती है। चैत्र द्वादशी को वासुदेव की पूजा का दिन है। चैत्र त्रयोदशी को मदन यात्रा उत्सव मनाया जाता है। कामदेव का छवि वस्त्र बनाया जाता है। इस दिन पति अपनी पत्नी को स्नान कराता है। चैत्र सुदी पन्द्रह को पिशाच प्रयाण का उत्सव मनाया जाता है। निकुम्भ ने इस दिन बालुकार्णव में अभियान करता पिशाचों के निवास स्थान पर आक्रमण किया था। पिशाच की मृत्तिका प्रतिमा बनायी जाती थी। उसकी पूजा प्रत्येक गृह में मध्याह्न तथा चन्द्रोदय काल में की जाती थी। नीलमत पुराण ने इस प्रकार सम्पूर्ण चैत्र मास में प्रायः प्रत्येक दिन को पूजा तथा उत्सव का दिन निश्चित कर दिया है। (नी० 644-667)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६० में 'सुभगाः' का पाठभेद 'सुलभाः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६० (१) क्रीड़ा गृह एवं नहरें : कल्हण का यहाँ तात्पर्य डल लेक अर्थात् सुरेश्वरी सर तथा अंचर लेक से निकलने वाली अनेक नहरों से है जो श्रीनगर में फैली हैं। वे श्रीनगर के केन्द्र तक चली गयी हैं। इन नहरों पर बाजार तथा मकान आदि अब भी बने हैं। हाउस बोट नहरों में लगी रहती हैं। उनमें बिजली का प्लग तटवर्ती बिजली के खम्भों से लगाकर पूरा हाउस बोट विद्युत्मय कर दिया जाता है। यह नहरें वेनिस की नहरों के समान यातायात तथा परिवहन का काम करती हैं। तरकारी तथा अन्य सामान बेचने वाले नावों पर सामान बेचते हैं। थाईलैण्ड के बैंकाक नगर में भी नहरों में घूमती नावों पर बाजार लगा दिखायी देता है। मुझे दोनों स्थानों की साम्यता देखकर आश्चर्य हुआ।

कल्हण ने यहाँ 'पवित्र' शब्द का प्रयोग किया है। ये नहरें अब पवित्र नहीं कही जा सकतीं। आबादी बढ़ जाने के कारण, तथा हाउस बोटों की संख्या अत्यधिक होने और पर्यटकों की संख्या लाखों से ऊपर प्रति वर्ष पहुँचने के कारण नहरें गन्दी रहती हैं। मल मूत्र तथा गन्दगी सब नावों हाउस बोटों तथा तटवर्ती मकानों से निकलकर नहरों में जाती है। अतएव उन्हें आज पवित्र कहना पवित्रता का उपहास करना होगा।

कल्हण के समय नहरें साफ रही होंगी। पवित्र शब्द श्रीस्टीन के मतानुसार काव्यमय पद बनाने के लिये कल्हण ने प्रयोग किया है। परन्तु मैं समझता

दृष्टः क्रीडानगोऽन्यत्र न मध्येनगरं क्वचित् ।
यतः सर्वौकसां लक्ष्मीः संलक्ष्या अपथादि ॥ ३६१ ॥

३६१. कहीं नगर मध्य क्रीड़ा पर्वत[1] नहीं देखा गया, जहाँ से आकाश तुल्य सब गृहों की शोभा लक्ष्य हो।

है कि कुछ नहरें अपने तटों पर स्थित देव मन्दिर विहारों, मठों, घटों, एवं शालाओं, घाटों तथा साधु सन्तों के शिविरों के कारण अवश्य पवित्र मानी जाती रही होंगी। पवित्र स्थानों के सामीप्य के कारण उनके साथ पवित्र विशेषण जोड़ देना अस्वाभाविक नहीं मालूम होता।

३६१ (१) पर्वत: यहाँ पर्वत का अर्थ हरि पर्वत किंवा शारिका पर्वत लगाना चाहिये। इस के शिखर से श्रीनगर तथा काश्मीर उपत्यका का विहंगम दृश्य मिलता है। कल्हण निश्चय ही यह दृश्य अनेक बार देखकर, मुग्ध हो गया होगा। उसका कवि हृदय रह-रह कर इस दृश्य का मनोहर वर्णन करना चाहता है।

शारिका पर्वत एक प्रकार से कश्मीर उपत्यका के मध्य में शिवलिंग स्वरूप स्थित है। काश्मीर उपत्यका को यदि अर्घा मान लें तो यह पर्वत शिवलिंग सुन्दर लगेगा। अर्घा के चंचल जल ही डल, आंचर, उलर लेक तथा अनेक सरोवर हैं। अर्घा से बहता जल वितस्ता, सिन्धु तथा अनेक स्रोतस्विनियों की धाराएँ हैं। हरिपर्वत के ऐतिहासिक महत्त्व के स्थान से मुझे यह दृश्य अच्छा लगा।

इस तरंग के ३३९-३४९ श्लोक इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं। जहाँगीर हरि पर्वत के सम्बन्ध में लिखता है।

"इस्लाम धर्म के प्रकट होने के पूर्व काल के ऐसे मन्दिर अब तक वर्तमान हैं जो सब पत्थर के हैं। और नव से छत तक चालीस चालीस मन के पत्थर काट कर एक दूसरे पर रखकर बनाये गये हैं।

नगर के पास एक पर्वत है। जिसे कोई मारान और कोई हरि पर्वत कहते हैं। पर्वत के पश्चिम तरफ झील है जिसका घेरा ६।। कोश है।

हमारे पिता (अकबर) ने आज्ञा दी थी कि एक दृढ़ दुर्ग पत्थर चूने का बनाया जाय। वह इस प्रार्थी के राजकाल में प्रायः पूरा हो गया। जिससे छोटा पर्वत दुर्ग के अन्दर आ गया है। और इसके चारों ओर नगर दीवारें खींची गयी हैं। झील दुर्ग के पास है। महल में एक छोटा उद्यान है। जिसमें एक छोटी इमारत है। जहाँ हमारे श्रद्धेय पिता बैठा करते थे। इस समय यह स्थान बहुत बुरी हालत में है फिर दिखायी पड़ा। यह हमारे किबला तथा दृश्य देखने का स्थान है। जहाँ वह बैठा करते थे। और इस प्रार्थी के लिये वास्तव में सिजदा करने का स्थान है। इसलिये इस प्रकार इसकी जीर्णता हमें अनुचित ज्ञात हुई। इस लिये मैंने मोतमिद खाँ को जो हमारी प्रकृति को समझने वाला है आज्ञा दी कि इस छोटे बाग को ठीक करने का तथा इमारतों की मरम्मत कराने का पूरा प्रयत्न करे। थोड़े ही समय में उसके विशेष प्रयत्नों से इन सब में नई सुन्दरता आ गयी। उद्यान में ३२ गज चौकोर चबूतरे पर तीन खण्ड का एक ऊँचा मकान बनवाया गया। और इमारत की मरम्मत कराकर उसमें उस्तादों के बनाये चित्र लगाये, जिससे वह चीन की चित्रशाला की ईर्ष्या वस्तु हो गयी। हमने इस उद्यान का नाम नूरे अफ़ज़ा रखा।

वैतस्तं वारि वास्तव्यैर्वंहत्तुहिनशर्करम् ।
ग्रीष्मोग्रेऽह्नि स्ववेश्माग्रात्क ततोऽन्यत्र लभ्यते ॥ ३६२ ॥

३६२. वहाँ के निवासी ग्रीष्म के उग्र दिन में अपने गृह के सामने से प्रवाहित तुहिन खण्ड मय वितस्ता वारि प्राप्त करते थे। वहां के अतिरिक्त और कहां प्राप्त हो सकता है ?

प्रतिदेवगृहं कोशास्ते तस्मिन्नर्पिता नृपैः ।
सहस्रशः शक्यते यैः क्रेतुं भूः सागराम्बरा ॥ ३६३ ॥

३६३. उस नगर में राजाओं ने प्रति मन्दिर उतना कोश प्रदान किया, जिनसे सहस्र बार सागराम्बरा धरा खरीदी जा सकती थी।

पुरे निवसतस्तस्मिंस्तस्य राजप्रजासुजः ।
शनैः साम्राज्यलाभस्य षष्टिः संवत्सरा ययुः ॥ ३६४ ॥

३६४. उस नगर में निवास करते प्रजासृज राजा के साम्राज्य लाभ के साठ वर्ष व्यतीत हो गये।

ललाटे शूलमुद्राङ्के जराशुक्लाः शिरोरुहाः ।
तस्य शम्भुभ्रमासङ्गिगङ्गाम्भोविभ्रमं दधुः ॥ ३६५ ॥

३६५. उसके शूल मुद्रांकित ललाट पर जरा के कारण श्वेत केश शिव के भ्रम से आलिङ्गित गंगा जल की शोभा धारण कर रहे थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६२ में 'वंहत्त्' का 'वृंहत्त्' 'ग्रीष्मोग्रे' का 'ग्रीष्मोष्णो' 'ग्रीष्मोग्रे' तथा 'स्वस्ततों' का पाठभेद 'स्कुतो' मिलता है।

पाददिप्पणियाँ :

३६२ (१) वारि : कल्हण यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में कश्मीरियों के शीतल वारि अर्थात् जल ग्रहण-प्रियता का उल्लेख करता है। ग्रीष्म का पुनः उल्लेख त० ८:१८६३ में किया है।

पाददिप्पणियाँ :

३६५ (१) शूल मुद्रांकित : शिव उपासक ललाट पर त्रिपुण्ड लगाते हैं। दोनों भ्रू के मध्य ललाट पर तिलक के स्थान पर शैव लोग त्रिशूलाकार तिलक चन्दन अथवा भस्म का लगाते हैं। यही यहाँ पर अभीष्ट है।

(२) गंगाजल : इस पद में निदर्शन अलंकार है। गंगा जल की पवित्र धारा उज्ज्वल होती है। श्वेत केश उज्ज्वल होते हैं। गंगा हर के मूर्धा से ललाट पर गिरती है। यहाँ राजा का उज्ज्वल केश भी उसका मूर्धा से ललाट पर गिरता है। दोनों की तुलना कल्हण ने देकर अपनी काव्य व्यंजना का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है।

गंगा का जल उज्ज्वल एवं यमुना का नीला होता है। गंगा जल का सर्वत्र वर्णन उज्ज्वल, धवल आदि विशेषणों से किया गया है। गंगा की उज्ज्वलता एवं यमुना की नीलिमा का भव्य दर्शन प्रयाग पर होता है। वहाँ स्पष्ट दिखायी देता है। दोनों जलों के रंगों में कितना अन्तर है। इन दोनों धाराओं के मध्य एक मलिन उज्ज्वल जल पंक्ति उज्ज्वल तथा नील जल मिल जाने के कारण बनती है। यही त्रिवेणी है।

दृष्टः क्रीडानगाऽन्यत्र न मध्येनगरं क्वचित् ।
यतः सर्वोकसां लक्ष्मीः संलक्ष्या द्युपथादिव ॥ ३६१ ॥

३६१. कहीं नगर मध्य क्रीड़ा पर्वत¹ नहीं देखा गया, जहाँ से आकाश तुल्य सब गृहों की शोभा लक्ष्य हो।

है कि कुछ नहरें अपने तटों पर स्थित देव मन्दिर विहारों, मठों, मठों, एवं शालाओं, घाटों तथा साधु सन्तों के शिविरों के कारण अवश्य पवित्र मानी जाती रही होंगी। पवित्र स्थानों के सामीप्य के कारण उनके साथ पवित्र विशेषण जोड़ देना अस्वाभाविक नहीं मालूम होता।

३६१ (१) पर्वत : यहाँ पर्वत का अर्थ हरि पर्वत किंवा शारिका पर्वत लगाना चाहिये। इस के शिखर से श्रीनगर तथा काश्मीर उपत्यका का विहंगम दृश्य दिखता है। कल्हण निश्चय ही यह दृश्य अनेक बार देखकर, मुग्ध हो गया होगा। उसका कवि हृदय रह-रह कर इस दृश्य का मनोहर वर्णन करना चाहता है।

शारिका पर्वत एक प्रकार से कश्मीर उपत्यका के मध्य में शिवलिंग स्वरूप स्थित है। कश्मीर उपत्यका को यदि अर्घा मान लें तो यह पर्वत शिवलिंग तुल्य लगेगा। अर्घा के चंचल जल ही डल, अंचर वुलर लेक तथा अनेक सरोवर हैं। अर्घा से बहता जल वितस्ता, सिन्धु तथा अनेक स्रोतस्विनियों की धाराएँ हैं। हरपर्वत के ऐतिहासिक महत्व के स्थान से मुझे यह दृश्य अच्छा लगा।

इस तरंग के ३३९-३७९ श्लोक इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं। जहाँगीर हरि पर्वत के सन्दर्भ में लिखता है।

'इस्लाम धर्म के प्रकट होने के पूर्व काल के ऊँचे मन्दिर अभी तक वर्तमान हैं जो सब पत्थर के हैं। और सब में एक एक चालीस चालीस मन के पत्थर काट कर एक दूसरे पर रख कर बनाये गये हैं।

नगर के पास एक पर्वत है। जिसे कोई मारान और कोई हरि पर्वत कहते हैं। पर्वत के पश्चिम तरफ झील है जिसका घेरा १।। कोस है।

हमारे पिता (अकबर) ने आज्ञा दी थी कि एक दृढ़ दुर्ग पत्थर चूने का बनाया जाय। यह इस प्रार्थी के राज्यकाल में प्रायः पूरा हो गया। जिससे छोटा पर्वत दुर्ग के अन्दर आगया है। और इसके चारों ओर मजबूत दीवारें खींची गयी हैं। झील दुर्ग के पास है। महल व एक छोटा उद्यान है। जिसमें एक छोटी इमारत है। जहाँ हमारे श्रद्धेय पिता बैठा करते थे। इस समय यह इमारत बहुत बुरी हालत में है गिरना दिखायी पड़ा। वह हमारे किब्ला तथा दृश्य देखना का स्थान है। जहाँ वह बैठा करते थे। और इस प्रार्थी के लिये वास्तव में सिजदा करने का स्थान है। इसलिये इस प्रकार इसको जीर्णता हमें अनुचित ज्ञात हुई। इस लिये मैंने मोतमिद खाँ को जो हमारी प्रकृति को समझने वाला है आज्ञा दी कि इस छोटे बाग को ठीक करने का तथा इमारतों की मरम्मत कराने का पूरा प्रयत्न करे। थोड़े ही समय में उसके विशेष प्रयत्नों से इन सब में नई सुन्दरता आ गयी। उद्यान में ३२ गज चौकोर चबूतरे पर तीन खण्ड का एक ऊँचा सफः बनवाया गया। और इमारत की मरम्मत कराकर उसमें उस्तादों के बनाये चित्र लगाये, जिससे वह चीन की चित्रशाला की ईर्ष्या वस्तु हो गयी। हमने इस उद्यान का नाम नूरे अफजा रखा।

वैतस्तं वारि वास्तव्यैर्वंहत्तुहिनशर्करम् ।
ग्रीष्मोग्रेऽह्नि स्ववेश्माग्रात्क ततोऽन्यत्र लभ्यते ॥ ३६२ ॥

३६२. वहाँ के निवासी ग्रीष्म के उग्र दिन में अपने गृह के सामने से प्रवाहित तुहिन खण्ड मय वितस्ता वारि प्राप्त करते थे। वहां के अतिरिक्त और कहां प्राप्त हो सकता है ?

प्रतिदेवगृहं कोशास्ते तस्मिन्नर्पिता नृपैः ।
सहस्रशः शक्यते यैः क्रेतुं भूः सागराम्बरा ॥ ३६३ ॥

३६३. उस नगर में राजाओं ने प्रति मन्दिर उतना कोश प्रदान किया, जिनसे सहस्र बार सागराम्बरा धरा खरीदी जा सकती थी।

पुरे निवसतस्तस्मिंस्तस्य राजप्रजासृजः ।
शनैः साम्राज्यलाभस्य षष्टिः संवत्सरा ययुः ॥ ३६४ ॥

३६४. उस नगर में निवास करते प्रजासृज राजा के साम्राज्य लाभ के साठ वर्ष व्यतीत हो गये।

ललाटे शूलमुद्राङ्के जराशुक्लाः शिरोरुहाः ।
तस्य शम्भुभ्रमासङ्गिगङ्गाम्भोविभ्रमं दधुः ॥ ३६५ ॥

३६५. उसके शूल मुद्रांकित ललाट पर जरा के कारण श्वेत केश शिव के भ्रम से आलिङ्गित गंगा जल की शोभा धारण कर रहे थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६२ में 'वंहत्' का 'वृंहत्' 'ग्रीष्मोग्रे' का 'ग्रोष्मोष्णो' 'ग्रोष्मोग्रे' तथा 'स्क्र ततो' का पाठभेद 'स्कृतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६२ (१) वारि : कल्हण यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में काश्मीरियों के शीतल वारि अर्थात् जल ग्रहण-प्रियता का उल्लेख करता है। ग्रीष्म का पुनः उल्लेख त० ८:१८६३ में किया है।

पादटिप्पणियाँ :

३६५ (१) शूल मुद्रांकित : शिव उपासक ललाट पर त्रिपुण्ड लगाते हैं। दोनों भ्रू के मध्य ललाट पर तिलक के स्थान पर शैव लोग त्रिशूलाकार तिलक चन्दन अथवा भस्म का लगाते हैं। यही यहाँ पर अभीष्ट है।

(२) गंगाजल : इस पद में निदर्शन अलंकार है। गंगा जल की पवित्र धारा उज्ज्वल होती है। श्वेत केश उज्ज्वल होते हैं। गंगा हर के मूर्धा से ललाट पर गिरती है। यहाँ राजा का उज्ज्वल केश भी उसका मूर्धा से ललाट पर गिरता है। दोनों की तुलना कल्हण ने देकर अपनी काव्य व्यंजना का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है।

गंगा का जल उज्ज्वल एवं यमुना का नीला होता है। गंगा जल का सर्वत्र वर्णन उज्ज्वल, धवल आदि विशेषणों से किया गया है। गंगा की उज्ज्वलता एवं यमुना की नीलिमा का भव्य दर्शन प्रयाग पर होता है। वहाँ स्पष्ट दिखायी देता है। दोनों जलों के रंगों में कितना अन्तर है। इन दोनों धाराओं के मध्य एक मलिन उज्ज्वल जल पवित उज्ज्वल तथा नील जल मिल जाने के कारण बनती है। यही त्रिवेणी है।

दृष्टः क्रीडानगाऽन्यत्र न मध्येनगरं क्वचित् ।
यतः सर्वौकसां लक्ष्मीः संलक्ष्या द्युपथादि। ॥ ३६१ ॥

३६१. कहीं नगर मध्य क्रीडा पर्वत[1] नहीं देखा गया, जहाँ से आकाश तुल्य सब गृहों की शोभा लक्ष्य हो।

है कि कुछ नहरें अपने तटों पर स्थित शैव मन्दिर विहारों, मठों, घटों, एवं शालाओं, घाटों तथा साधु सन्तों के शिविरों के कारण अवश्य पवित्र मानी जाती रही होंगी। पवित्र स्थानों के सामीप्य के कारण उनके साथ पवित्र विशेषण जोड़ देना अस्वाभाविक नहीं मालूम होता।

३६१ (१) पर्वत : यहाँ पर्वत का अर्थ हरि पर्वत किंवा शारिका पर्वत लगाना चाहिये। इस के शिखर से श्रीनगर तथा काश्मीर उपत्यका का विहंगम दृश्य मिलता है। कल्हण निश्चय ही यह दृश्य अनेक बार देखकर, मुग्ध हो गया होगा। उसका कवि हृदय रह-रह कर इस दृश्य का मनोहर वर्णन करना चाहता है।

शारिका पर्वत एक प्रकार से कश्मीर उपत्यका के मध्य में शिवलिंग स्वरूप स्थित है। कश्मीर उपत्यका को यदि अर्घा मान लें तो यह पर्वत शिवलिंग सदृश लगेगा। अर्घा के चंचल जल ही डल, अंचर वुलर लेक तथा अनेक सरोवर हैं। अर्घा से बहती जल वितस्ता, सिन्धु तथा अनेक स्रोतस्विनियों की धाराएँ हैं। हरपर्वत के ऐतिहासिक महत्त्व के स्थान से मुझे यह दृश्य अच्छा लगा।

इस तरंग के ३३९-३४९ श्लोक इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं। जहाँगीर हरि पर्वत के सन्दर्भ में लिखता है।

'इस्लाम धर्म के प्रकट होने के पूर्व काल के ऊँचे मन्दिर अभी तक वर्तमान हैं जो संग पत्थर के हैं। और मध्य में छत तक बारीक नक्काशीदार संग के पत्थर काट कर एक दूसरे पर रख कर बनाये गये हैं।

नगर के पास एक पर्वत है। जिसे कोई मारान और कोई हरि पर्वत कहते हैं। पर्वत के पश्चिम तरफ झील है जिसका घेरा ६॥ कोस है।

हमारे पिता (अकबर) ने आज्ञा दी थी कि एक दृढ़ दुर्ग पत्थर चूने का बनाया जाय। वह इस प्रार्थी के राजकाल में प्रायः पूरा हो गया। जिससे छोटा पर्वत दुर्ग के अन्दर आगया है। और इसके चारों ओर चहार दीवारी खींची गयी है। झील दुर्ग के पास है। महल व एक छोटा उद्यान है। जिसमें एक छोटी इमारत है। जहाँ हमारे श्रद्धेय पिता बैठा करते थे। इस समय यह स्थल बहुत बुरी हालत में है गिरता दिखायी पड़ा। वह हमारे किबला तथा दृश्य देखने का स्थान है। जहाँ वह बैठा करते थे। और इस प्रार्थी के लिये वास्तव में सिजदा करने का स्थान है। इसलिये इस प्रकार इसकी जीर्णता हमें अनुचित ज्ञात हुई। इस लिये मैंने मोतमिद खाँ को जो हमारी प्रकृति को समझने वाला है आज्ञा दी कि इस छोटे बाग को ठीक करने का तथा इमारतों की मरम्मत कराने का पूरा प्रयत्न करे। थोड़े ही समय में उसके विशेष प्रयत्नों से इन सब में नई सुन्दरता आ गयी। उद्यान में ३२ गज चौकोर चबूतरे पर तीन खण्ड का एक ऊँचा सफः बनवाया गया। और इमारत को मरम्मत कराकर उसमें उस्तादों के बनाये चित्र लगाये, जिससे वह चीन की चित्रशाला की ईर्ष्या वस्तु हो गयी। हमने इस उद्यान का नाम नूरे अफजा रखा।

चैतस्तं वारि वास्तव्यैर्वहत्तुहिनशर्करम् ।
ग्रीष्मोग्रेऽह्नि स्ववेश्माग्रात्क ततोऽन्यत्र लभ्यते ॥ ३६२ ॥

३६२. वहाँ के निवासी ग्रीष्म के उग्र दिन में अपने गृह के सामने से प्रवाहित तुहिन खण्ड मय वितस्ता वारि प्राप्त करते थे। वहाँ के अतिरिक्त और कहाँ प्राप्त हो सकता है ?

प्रतिदेवगृहं कोशास्ते तस्मिन्नर्पिता नृपैः ।
सहस्रशः शक्यते यैः क्रेतुं भूः सागराम्बरा ॥ ३६३ ॥

३६३. उस नगर में राजाओं ने प्रति मन्दिर उतना कोश प्रदान किया, जिनसे सहस्र बार सागराम्बरा धरा खरीदी जा सकती थी।

पुरे निवसतस्तस्मिंस्तस्य राजप्रजासृजः ।
शनैः साम्राज्यलाभस्य षष्टिः संवत्सरा ययुः ॥ ३६४ ॥

३६४. उस नगर में निवास करते प्रजासृज राजा के साम्राज्य लाभ के साठ वर्ष व्यतीत हो गये।

ललाटे शूलमुद्राङ्के जराशुक्लाः शिरोरुहाः ।
तस्य शम्भुभ्रमाश्लिष्टगङ्गाम्भोविभ्रमं दधुः ॥ ३६५ ॥

३६५. उसके शूल मुद्रांकित ललाट पर जरा के कारण श्वेत केश शिव के भ्रम से आलिंङ्गित गंगा जल की शोभा धारण कर रहे थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६२ में 'वहत्त' का 'वृंहत्' 'ग्रीष्मोग्रे' का 'ग्रीष्मोष्णो' 'ग्रीष्मोष्णे' तथा 'स्वत ततो' का पाठभेद 'रक्षुतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६२ (१) वारि : कल्हण यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में काश्मीरियों के शीतल वारि अर्थात् जल ग्रहण-प्रियता का उल्लेख करता है। प्रसंग का पुनः उल्लेख ८० ८:१८६३ में किया है।

पादटिप्पणियाँ :

३६५ (१) शूल मुद्रांकित : शिव उपासक ललाट पर त्रिपुण्ड लगाते हैं। दोनों भ्रू के मध्य ललाट पर तिलक के स्थान पर शैव लोग त्रिशूलाकार तिलक चन्दन अथवा भस्म का लगाते हैं। यही यहाँ पर अभीष्ट है।

(२) गंगाजल : इस पद में निदर्शन अलंकार है। गंगा जल की पवित्र धारा उज्ज्वल होती है। श्वेत केश उज्ज्वल होते हैं। गंगा हर के मूर्धा से ललाट पर गिरती है। यहाँ राजा का उज्ज्वल केश भी उसका मूर्धा से ललाट पर गिरता है। दोनों की तुलना कल्हण ने देकर अपनी काव्य व्यंजना का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है।

गंगा का जल उज्ज्वल एवं यमुना का नीला होता है। गंगा जल का सर्वत्र वर्णन उज्ज्वल, धवल आदि विशेषणों से किया गया है। गंगा की उज्ज्वलता एवं यमुना की नीलता त्रिया का भव्य दर्शन प्रयाग पर होता है। वहाँ स्पष्ट दिखायी देता है। दोनों जलों के रंगों में कितना अन्तर है। इन दोनों धाराओं के मध्य एक मलिन उज्ज्वल जल पंक्ति उज्ज्वल तथा नील जल मिल जाने के कारण बनती है। यही त्रिवेणी है।

अथाश्वपादेनेशाननिदेशात्तत्क्षणागतः ।
काश्मीरिको जयन्ताख्यो द्विजन्माऽयोजि पार्श्वगः ॥ ३६६ ॥

३६६. अश्वपाद ने ईशान निर्देश पर तत्क्षण आये काश्मीरी जयन्त नामक विप्र को जो कि समीप में था नियुक्त किया।

श्रान्तोऽस्यध्वन्य नान्यस्माद्देशात्तेऽभिमत भवेत् ।
राज्ञे प्रवरसेनाय लेख एप प्रदर्श्यताम् ॥ ३६७ ॥

३६७. 'पथिक' तुम श्रान्त हो। अन्य देश (स्थान) से तुम्हारा अभिमत (वाञ्छित) होना सम्भव नहीं है अतएव यह लेख राजा प्रवरसेन को दिखाओ।

इत्युक्त्वाऽर्पितलेखोऽसावसमथः पथः पृथून् ।
गन्तु प्रस्थानखिन्नोऽस्मि सद्यस्तेनेत्यगद्यत ॥ ३६८ ॥

३६८. यह कहकर उसे लेख अर्पित करने पर उस (जयन्त) ने इस प्रकार कहा— "यात्रा से श्रान्त मैं सद्य: अधिक मार्ग चलने में असमर्थ हूँ।"

स्नाहाद्य तावत्त्वं स्पृष्टो द्विजः कापालिना मया ।
उक्त्वेति तेन क्षिप्तोऽस्मावासन्ने दीर्घिकाजले ॥ ३६९ ॥

३६९. 'तुम द्विज, मुझ कापाली द्वारा स्पृष्ट हो, अतएव 'आज अब स्नान करो'— यह कहकर अश्वपाद ने समीपवर्ती दीर्घिका में इसे फेंक दिया।

उन्मीलितेक्षणोऽद्राक्षीत्स्वं स्वदेशादथोत्थितम् ।
तस्थुपश्चार्चने राज्ञा भृत्यान्व्यग्राञ्जलाहृतौ ॥ ३७० ॥

३७०. आँख खुली तो उस (जयन्त) ने अपने को स्वदेश (कश्मीर) में खड़ा (उत्थित) एवं अर्चनारत राजा के भृत्यों को जल लाने में व्यग्र देखा।

स्वमावेदयितु नद्या नीयमाने नृपान्तिकम् ।
अव्याक्षिप्तोऽक्षिपल्लेखं स स्नानकलशे ततः ॥ ३७१ ॥

३७१. तदनन्तर स्व को विदित करने के लिये, नृप के निकट नदी से ले जाते हुए स्नान कलश में लेख अविलम्ब डाल दिया।

प्रवरेशं स्नापयता स्रस्तं तत्कलशात्पुनः ।
राज्ञा लेखं वाचयित्वा जयन्तः प्रापितोऽन्तिकम् ॥ ३७२ ॥

३७२. प्रवरेश (लिंग) का स्नान कराते हुए, राजा ने कलश निपतित, लेख को बाँच कर, जयंत को समीप बुलाया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६६ में 'निदे' का 'निद' तथा 'श्मीरिको' का पाठभेद 'श्मीरको' मिलता है।

श्लोक संख्या ३६७ में 'ध्वन्य' का पाठभेद 'ध्वनि' तथा 'शात्ते' का पाठभेद 'शतो' मिलता है।

कृतं कृत्यं महद्दत्त भोगा भुक्ता वयो गतम् ।
किमन्यत्करणीयं न एहि गच्छ शिवालयम् ॥ ३७३ ॥

३७३. "कृत किये, महान् दान किया, भोगों का सभोग किया, आयु गत हो गयी, तुम्हें और क्या करणीय है ? आओ ! शिवालय (शिवलोक) चलो।"[१]

ततस्तं वृत्तसंकेतः संतोप्याभिमतार्पणात् ।
भित्त्वा तमश्मप्रासाद जगाहे विमलं नभः ॥ ३७४ ॥

३७४. तद् उपरान्त संकेत को जानकर अभिमत (वाञ्छित धन) प्रदान द्वारा उसे (जयन्त को) सन्तुष्ट कर उस पाषाण प्रासाद का भेदन कर, विमल आकाश में प्रवेश किया।

जनैः स ददृशे गच्छन् कैलासतिलकां दिशम् ।
विशदे घटयन् व्योम्नि द्वितीयतपनोदयम् ॥ ३७५ ॥

३७५. कैलास तिलकित[१] (विभूषित) दिशा में जाते एवं निर्मल व्योम में द्वितीय सूर्योदय सम्पादित करते हुए देखा।

जयन्तेनाद्भुतोदन्तहेतुनाऽवाप्य संपदः ।
स्वनामाङ्काग्रहारादिकर्मभिर्निर्मलाः कृताः ॥ ३७६ ॥

३७६. जयन्त ने इस अद्भुत घटना द्वारा प्राप्त सम्पत्तियों का स्वनामांकित अग्रहारादि में सदुपयोग किया।

एव स भुवनैश्वर्यं भुक्त्वा भूमिभृतां वर ।
अनेनैव शरीरेण भेजे भूतपतेः सभाम् ॥ ३७७ ॥

३७७. नृपति श्रेष्ठ उसने इस प्रकार भुवन भोग कर इसी शरीर से भूतपति की सभा को प्राप्त किया।

पादटिप्पणियाँ :

३७३ (१) पत्र का लेख क्या था यह इस पद से स्पष्ट होता है।

३७४ (१) श्री विलसन राजा का स्वर्गारोहण मूल काल सन् १८६ ई० तथा समीकृत काल सन् ४०६ ई० देता है।

श्री एम० पी० पण्डित प्रवरसेन द्वितीय का स्वर्गगमन सन् १८६ ई० देते हैं।

३७५ (१) तिलकित : कैलास पर्वत गोल है। तिलक गोल होता है। कल्हण प्रतीत होता है कैलास यात्रा किया था। कैलास पर्वत सचमुच भूमि पर ललाट पर लगे गोल तिलक तुल्य लगता है। मैंने कैलास यात्रा की है। कल्हण का यह श्लोक पढ़ते ही, जिन्होंने भी कैलास यात्रा की है, उन्हें कैलास का अभिराम दृश्य स्मरण हो जायेगा। कैलास उत्तर दिशा में है। कैलास का शिखर हिमाच्छादित रहता है। पर्वत मूल मटमैले पत्थरों जैसे है। प्रायः हिमविहीन रहता है। ललाटपर भ्रूमध्य कस्तूरी तिलक के ऊपर यदि श्वेत चन्दन का तिलक लगा दिया जाय तो कैलास की उपमा ठीक बैठ जाती है। रक्त चन्दन किंवा केसर तिलक पर श्वेत चन्दन तिलक लगाने की प्रथा आज भी प्रचलित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३७७ में 'भुक्त्वा' का पाठभेद 'त्यक्त्वा' मिलता है।

सर्वरत्नजयस्कन्दगुप्तशब्दाङ्किताभिधाः ।
आसन् विहारचैत्यादिकृत्यैस्तत्सचिवा वराः ॥ ३८० ॥

३८०. सर्वरत्न, जय[1] एवं स्कन्द[2]गुप्त नामक उसके मन्त्रिप्रवरों ने विहार चैत्य आदि कृत्य किये ।

'च द्वात्रिंश' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

३७९ (१) श्री विलसन ने युधिष्ठिर द्वितीय का राज्याभिषेक काल सन् १८६ ईस्वी २ मास और समकृत काल सं० ४८९ ई० दिया है। तथा राज्यकाल १९ वर्ष २ मास देता है।

श्री एस० पी० पण्डित ने यह समय सन् २०४ ई० तथा राज्य काल २१ वर्ष ३ मास दिया है। स्टीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक सम्वत् ३२४६ वर्ष ११ मास १ दिन तथा राज्यकाल ३८ वर्ष ३ मास दिया है।

श्री बाजे ने यह समय संवत् ४०९३ तथा सन् ९९२ ई० दिया है। ट्रायर के मत से यह काल सन् १८२ ई० ८ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४६४ ई० आता है।

पादटिप्पणियाँ :

३८० (१) जयेन्द्रविहार—चीनी पर्यटक ओकुंग ने अपने पर्यटन में जे-जे विहार का उल्लेख किया है। वह सम्भवतः जय का ही निर्माण कराया होगा।

(२) स्कन्द—स्कन्द द्वारा निर्मित विहार तरंग ६ : १३७ में वर्णित स्कन्द भवन विहार है। वह श्रीनगर में वर्तमान खण्डवन स्थान में था।

यह विहार श्रीनगर के वितस्ता झेलम नदी के दक्षिण तटपर नौ कदल अर्थात् छठे पुल और नगर की सीमावर्ती ईदगाह के मध्य स्थित था। कल्हण ने इसका वर्णन स० ८ : १४७२ में किया है। वहाँ उसने स्कन्द भवन ही नाम दिया है।

यहीं राजा सुस्सल की रानी भस्म हुई थी। यह स्थान भक्षिका स्वामी की स्मशान भूमि नाम से प्रसिद्ध हो गया था। इसे मायसुम अर्थात् अरक्षित स्थान भी कहते थे।

कालान्तर में यह स्थान कब्रिस्तान के काम में आने लगा था। मुहम्मद शाह (सन् १४८४-८६) के समय में यह सेना का शिविर (छावनी) के काम में लाया गया था। खण्डवन मुहल्ला के दक्षिण तरफ विहार स्थान रहा होगा। यह स्थान सम्भवतः नव कदल से १५० गज पर रहा होगा।

यहीं पर अब मुल्ला मुहम्मद बासूर की जियारत है। जियारत में यहाँ पर स्थित प्राचीन मन्दिर तथा विहार के टूटे अलंकृत शिलाखण्ड लगे हैं। हिन्दू मन्दिर की शैली पर जियारत का निर्माण किया गया था।

स्कन्द का दूसरा नाम कार्तिकेय है। कुमार कार्तिकेय का एक बार उल्लेख नीलमतपुराण में आया है। कार्तिकेय की पूजा कृत्तिका के साथ करने का निर्देश किया गया है। नीलमत में उस महान् सेनानी अथवा सेनापति के रूप में चित्रित नहीं किया गया है। (नील० 435, 642, 649)

श्री स्टीन ने इस जियारत को सन् १८९१ ई० में देखा था। उन्हें एक स्थान कच्ची दीवाल से घिरा मिला था। इसके केन्द्र में २२ फिट ऊँचा एक बूहा चौकोर पत्थर की दीवाल से वेष्ठित मिला था। वह ३८ फिट वर्गाकार था। उसके दक्षिण पूर्व की ओर एक गड्ढा १० फिट का था। यह सम्भवतः प्राचीन जल कुण्ड अथवा जल स्थान था। उसके कुछ फासले पर लगभग सन् १८८१ ई० में जियारत के मुल्ला ने एक गोल कुँआ खोद लिया था।

स्थानीय ब्राह्मण कहते हैं कि इस स्थान पर कुमार किंवा स्कन्द का मन्दिर था। उसके समीप

भवच्छेदाभिधं ग्रामं स्तुत्यं चैत्यादिसिद्धिभिः ।
यो व्यधात् सोऽस्य वज्रेन्द्रोऽप्यासीन्मन्त्री जयेन्द्रजः ॥ ३८१ ॥

३८१. जिसने चैत्य आदि सिद्धियों (निर्माण) से भवच्छेद[1] नामक ग्राम स्तुत्य बनाया वह जयेन्द्र का पुत्र वज्रेन्द्र भी इसका मंत्री था।

हो एक जलस्रोत था। यह स्रोत मार नहर में तारबल के समीप जाकर मिलता था। किसी ने इस जलस्रोत को चलते हुए नहीं देखा था।

श्री स्तोत्र को श्री साहिबराम के पत्र पं० रामचन्द्र श्रूपी से जिनकी अवस्था ६० वर्ष की थी मालूम हुआ कि उनकी बाल्यावस्था में उनके एक अति वृद्ध सम्बन्धी गोवर्धनदास याजिद यहाँ नित्य पूजा करने आते थे।

यहाँ पर शहतूत का एक पेड़ लगा था। यहाँ के गवर्नर शेख मुहीउद्दीन की आज्ञा से सन् १८४२-१८४५ के बीच काट डाला गया था। वृक्ष के कटने पर वृक्ष के तना से रक्त की धारा निकली थी। श्री गोवर्धन दास यहाँ पर श्रवण के दिन दीपक जलाने आते थे। जियारत के मुल्ला के अनुरोध पर गवर्नर ने वृक्ष कटवाया था क्योंकि हिन्दू यहाँ पूजा करने आते थे।

नीलमत पुराण में स्कन्दतीर्थ, स्कन्दस्यायतन तथा स्कन्देश्वर का उल्लेख मिलता है।

स्कन्दपूजा :

षष्ठं चद्रमुमां स्कन्दं भास्वती मन्दिनं तथा।
पूजयित्वार्घमाल्यादिर्नैवेद्यैश्च पृथक् पृथक् ॥
381 : ४८८

× × ×

शाखो विशाखः स्कन्दश्च नैगमेषस्तथैव च।
मरुतश्च प्रहश्चैव रोगाणामधिपो ज्वरः ॥ 604:७२६

× × ×

स्कन्दस्य तत्र कर्तव्या पूजा माल्यैः सुगन्धिभिः।
647 : ७६९

शच्याः समीपे पौलस्त्य दृष्ट्वा स्कन्दं नराधिप।
पात्रकुण्डे नरः स्नात्वा कौमारं लोकमाप्नुयात् ॥
995 : ११६६

× × ×

स्कन्देश्वर :

स्कन्देश्वरं विशाखेशं पौलास्त्यमपरं तथा।
दृष्ट्वा कुमारमेकैक फलं गोदानज लभेत् ॥
991 : ११६८

× × ×

स्कन्दतीर्थ :

स्नात्वा तु भद्रतीर्थे च स्कन्दतीर्थे च मानवः।
तथा सुरेश्वरी तीर्थे स्वर्गलोके महीयते ॥ 318 : १५३२ ॥

× × ×

स्कन्दस्यायतनम् :

सुवर्णबिन्दुस्तत्रैव हरस्यायतनं शुभम्।
स्कन्दस्यायतनं तत्र सर्वपापनिषूदनम् ॥112 : १५४-१५५

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३८१ में 'भवच्छेदा' का पाठभेद 'भौछो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३८१ (१) भवच्छेद : यह ग्राम ऊलर परगना में है। यह वर्तमान बुत्र ग्राम है। इसे 'भोस्मो' भी कहते है। भोर संगम से एक मील दक्षिण स्थित है। नीलमत में भवच्छेद वर्णन नहीं मिलता। भव, भवोत्स, भवेश का उल्लेख मिलता है। भवच्छेद ग्राम का भव से कोई सम्बन्ध है या नहीं गवेषणा का विषय है। भव कश्मीर के मुख्य नागों में से है :

दिक्कामिनीमुखोत्कीर्णकीर्तिचन्दनचित्रकाः ।
आसन् कुमारसेनाद्याः तस्यान्येऽप्यग्रयमन्त्रिणः ॥ ३८२ ॥

३८२. दिशा रूपी कामिनियों के मुख को कीर्ति रूपी चन्दन[1] से चित्रित[2] करने वाले कुमारसेन आदि अन्य भी उसके अग्र्य मन्त्री थे।

दियश्चक्रधरः श्वभ्रो मवो देहारको गुडः ।
अन्धः पङ्गुस्तथा कुष्टी काणो बधिरघण्ठकौ 900 :
१०६९-१०७०

× × ×

तैत्तिरीयेश्वरं देवं दण्डकस्वामिनं तथा ।
भवस्य च तथा पार्श्वे रामस्वामिजनार्दनम् ॥1157:
१२६८-१२६९ ॥

× × ×

भवेश :

राजेश्वरं नृसिंहेशं भवेशं धनदेश्वरम् ।
सदा सन्निहितो राजन् देवो भूतेश्वरो हर. ॥1026:
११९८-११९९ ॥

× × ×

भवोत्स '

स्नात्वा नारायणस्थाने विष्णुलांके महीयते ।
रामतीर्थे भवोत्से च फलमेतत् प्रकीर्तितम् ॥1312 :
१५२६ ॥

× × ×

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३८२ में 'चित्र' का पाठभेद 'चन्द्र' तथा 'चद्रि' मिलता है।

३८२ (१) चन्दन : मुखार चन्दन लगाने की तत्कालीन प्रथा का कल्हण यहाँ उल्लेख करता है। दक्षिण में महिलायें मुखपर हलदी तथा नेपाल में श्वेतचूर्ण लगाती हैं। चन्दन तीन प्रकार यथा रक्त शीत एवं कालेयक होता है। चन्दन लगाने की प्रथा कश्मीर में अत्यन्त प्राचीन है। नीलमत इसका उल्लेख करता है। (नी० 417, 423, 787)

(२) चित्रित : मुखमण्डलपर चन्दन, रोरी, केसर आदि से चित्र बनाना यह अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। प्रायः संस्कृत के सभी काव्य एवं शृंगार ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।

विवाह के समय बंगाल की स्त्रियों का मुख चन्दन आदि की बिन्दियों से आज भी चित्रित किया जाता है।

मैं सन् १९४६ में कमीशन का सदस्य होकर बृटिश सरकार की तरफ से संविधान सम्बन्धी सलाह देने के लिये नेपाल गया था। उस समय यातायात इतना सुगम नहीं था।

भीम फेडी से काठमाण्डू तक डाँड़ी से या पैदल जाना पड़ता था। इस लम्बे मार्ग में मैंने नेपाली स्त्रियों का चित्रित मुखमण्डल देखा। उज्ज्वल एवं लाल रंग से मुख तथा अधर रंगती थीं। आँखें तथा भौंहें काजल या काले रंग से रंगती थी। कुछ तो इस प्रकार के चित्रण के कारण अत्यन्त फूहड़ लगने लगती थी। उनका नैसर्गिक सौन्दर्य निखरने के स्थान पर दब जाता था। इस दो दिन वाले प्राकृतिक दृश्यों से मनोहर मार्ग में मानव शरीर पर यह कृत्रिमता देखकर जगत् की विषमता पर अनायास ध्यान चला जाता था। अकृत्रिमता में कृत्रिमता की पराकाष्ठा मिलती थी।

पद का तात्पर्य यह है कि कुमारसेन तथा अन्य मन्त्रियों ने राजा का यश दिगंत में फैलाया। यहाँ कल्हण ने मन्त्रियों को नारियों के चित्रित करनेवाले कलाकार के रूप में प्रस्तुत किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३८३ में 'ल:खणा' का पाठभेद 'लक्षणा', 'न.क्षणा', 'लक्खणा' तथा 'नॅखणा' मिलता है।

पद्मावत्यां सुतस्तस्य नरेन्द्रादित्य इत्यभूत् ।
लःखणापरनामा यो नरेन्द्रस्वामिनं व्यधात् ॥ ३८३ ॥

लखन—नरेन्द्रादित्य[1]:

३८३. पद्मावती से उत्पन्न उसका पुत्र नरेन्द्रादित्य अपर नाम लखण[2] था जिसने नरेन्द्रस्वामी[3] की स्थापना की।

वज्रेन्द्रतनयौ वज्रकनकौ यस्य मन्त्रिणौ ।
अभूतां सुकृतोदन्तौ राज्ञी च विमलप्रभा ॥ ३८४ ॥

३८४. सुकृति प्रख्यात वज्रेन्द्रतनय वज्र तथा कनक जिसके मन्त्री हुए और रानी विमलप्रभा थी।

पादटिप्पणियाँ :

३८३ (१) श्री विलसन ने राज्याभिषेक काल सन् २२४ ई० ५ मास तथा समीकृतकाल सन् ५४४ ई० और राज्य काल १३ वर्ष दिया है

श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय सन् २०४ ई० तथा राज्यकाल १३ वर्ष दिया है।

श्री स्टीन राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् ३२८६, मास २ दिन प्रथम तथा राज्यकाल १३ वर्ष देते हैं।

श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि संवत् ४१०६ तथा सन् ३३६ ई० दिया है।

कलिगताब्द ३३१७ वर्ष ११ मास १३ दिन ट्रायर के अनुसार सन् २०४ ई० ११ मास तथा कनिघम के मत से सन् ४८३ ई० आता है।

हसन—राजा नरेन्द्रादित्य संवत् २३४ विक्रमी में बाप की जगह पर सर पर ताज रखकर मुहकमा असनाय अपनी तरफ से जारी किया और तेरह साल हकूमत में मशगूल रहा।

(२) लखण : जनरल कनिंघम ने एक मुद्रा का उल्लेख किया है। जिसपर (रा) आ राखण उदयादित्य टंकित है। उसे कश्मीर की मुद्रा कहा है। (लेटर इण्डोसीथियन पृष्ठ १११, और प्लेट ७ तथा १२) यह 'देव शाही' शिवगेल शैली की मुद्रा से मिलता है। (प्लेट ७ : ११) यह मुद्रा राजतरंगिणी में वर्णित (१ ; ३४७) खिखिल किंवा नरेन्द्रादित्य से मिलता है।

इन दोनों मुद्राओं तथा अन्य मुद्रा मिहिर कुल तथा हिरण्यकुल में अत्यन्त साम्य है। नरेन्द्रादित्य का अपर नाम खिखिल कल्हण ने क्यों लिखा वह विचारणीय है।

(३) नरेन्द्रस्वामी : जनरल कनिंघम ने 'पयार' के मन्दिर को नरेन्द्रस्वामी का मन्दिर माना है। किन्तु यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। पयार शिव मन्दिर है।

मंगलपुर से यह स्थान २ मिल और दूर है। इसमें भैरव; ताण्डवशील शिव तथा पार्वती की मूर्तियाँ बनी है। अतएव यह शैव मन्दिर है। यह वैष्णव मन्दिर नहीं हो सकता। स्वामी शब्द इस बात का प्रमाण है कि नरेन्द्रस्वामी का मन्दिर विष्णु मन्दिर था।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक और मत है। श्री पण्डित आनन्द कौल का मत है कि वितस्ता के द्वितीय तथा तृतीय पुल के मध्य तथा वितस्ता के दक्षिण तट से १०० गज दूर श्रीनगर में नरेन्द्रस्वामी का मन्दिर था। इस समय यह मन्दिर जियारत में परिणत हो गया है। इसका नाम नरपरिस्तान रख दिया गया है (आर्कियोलोजिकल दि रमेन्स इन कश्मीर : २८)।

मैं इस स्थान को खोजता पहुँचा। इस समय

स विधायाधिकरणं लिखितस्थितये निजम् ।
द्यां त्रयोदशभिर्वर्षैरारुरोह महाभुजः ॥ ३८५ ॥

३८५. उस महाभुज ने स्व लेख[1] की सुरक्षा अधिकरण स्थापित कर तेरह वर्ष अनन्तर स्वर्गारोहण किया।

तस्याऽनुजो धरणिभृत् रणादित्यस्ततोऽभवत् ।
तुञ्जीनापरनामानं यं जनाः प्राहुरञ्जसा ॥ ३८६ ॥

रणादित्य—तुंजीन

३८६. तदनन्तर उसका अनुज रणादित्य भूपति हुआ। जिसे अपर नाम से लोग तुंजीन कहते थे।[1]

यह अत्यन्त घनी आबादी के बीच में है। सड़क के किनारे कुछ वृक्ष समूहों का एक छोटा चहार दीवारी से घिरा स्थान है। सड़क की तरफ ईंटों की जालियाँ लगी है। एक द्वार भी है। द्वार बन्द था। हिन्दूलोग सड़क की तरफ लगी एक खुली खिड़की से फूल तथा पूजन सामग्री भीतर डाल देते हैं। मैंने इस खिड़की से झाँक कर देखा। भीतर ईंटों तथा पत्थरों का समूह ऊबड़-खाबड़ पड़ा था। कुछ सूखे फूल तथा बुझे दीपक पड़े थे।

३८५ (१) लेख : कश्मीर में इस समय से राजकीय तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कागजों के रखने की सुव्यवस्थित व्यवस्था आरम्भ होती है। आज कल जैसे प्रचलित 'रिकार्ड' रूम तथा पुरातत्त्वलेखसंग्रहालय स्थापित करने की ध्वनि इस श्लोक से निकलती है। राजा सज्जन नरेन्द्रादित्य ने, प्रतीत होता है, आन्तरिक राज व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने पर विशेष जोर दिया था।

३८६ (१) आइने अकबरी में इसका नाम 'सेन्दुन' तथा राज्य काल ३०० वर्ष दिया गया है। श्री विल्सन ने राज्याभिषेक काल सन् २३७ ई० ५ मास तथा स्वर्गारोहण काल सन् ५४२ दिया है। राज्यकाल ३०० वर्ष दिया है; श्री एस. पी. पण्डित ने सन् २१२ ई० दिया है। राज्यकाल ३०० देते हैं। श्री स्टीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक सवत् ३२९९ मास २ तथा दिन प्रथम दिया है तथा राज्यकाल ३०० वर्ष दिया है। श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि संवत् ४१४६ तथा सन् २७१ ई० दिया है। कलि गताक ३६१७ वर्ष ११ मास ११ दिन, ट्रायर के मत से सन् २१७ ई० ११ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४९० ई० आता है।

हसन लिखता है—राजा तुंजीन पिसर दोयम राजा जविस्तर ने ५४८ विक्रमी में राजगद्दी का ताज सरपर रखकर शारदूल पिसर नरेन्द्र को वजीर बनाया। कुछ अरसा के बाद उनके मा बैन निफाक की आग मुस्तमल हो गयी। और सरदूल मारा गया। उसका बेटा सरबसेन सात साला था। वह राजा के खौफ से अपनी माँ के हमराह नगरकोट में भाग गया। राजा नगरकोट ने उसे दामादी में कबूल करके निकाह रखा। जब सिन तमीज को पहुँचा तो एक भारी लश्कर जमा करके और राजा जम्मू से इमदाद लेकर कश्मीर पर हमलावर हुआ। तुंजीन उसके मुकाबिला में निकला। कोहिस्तान बनिहाल में जंग व जदल की आग रोशन की। तुंजीन मारा गया। उसकी हुकूमत तेंतीस साल थी।

यह श्लोक कल्हण के दूसरे तरंग में वर्णित ९७ श्लोक से मिलता है जिसे उसने श्रेष्ठसेन के सम्बन्ध में लिखा है।

जगद्विलक्षणं यस्य शङ्खमुद्राङ्कितं शिरः ।
अपूर्वशर्वरीशान्तर्लीनभानुश्रियं दधे ॥ ३८७ ॥

३८७. जिसका जगद्विलक्षण शङ्ख[1] मुद्रांकित शिर (भाल) चन्द्रान्तर्लीन सूर्य की अभूत पूर्व शोभा धारण करता था ।

रिपुकण्ठाटवीष्वासीत् यस्य धाराधरः पतन् ।
तद्वधूनेत्रकुण्डैस्तु जलाधिक्यमधार्यत ॥ ३८८ ॥

३८८. जिसका खड्ग शत्रु कण्ठ रूपी अटवी पर पतित होता था और उनकी ललनाओं के नेत्रकुण्ड जल बाहुल्य धारण[1] करते थे (अश्रुपूर्ण होते थे ।)

अपूर्वो यत्प्रतापाग्निः प्रविश्योर्वीं द्विषां न्यधात् ।
नारीनेत्रेषु नीरोर्मीन् मन्दिरेषु तृणाङ्कुरान् ॥ ३८९ ॥

३८९. जिसकी अपूर्व प्रतापाग्नि शत्रु भूमि में प्रवेश कर नारी नेत्रों में जलतरंगें एवं गृहों पर तृणाङ्कुर स्थिर कर देते थे।

यस्य पाणिप्रणयितां कृपाणे समुपागते ।
कबन्धेभ्यः परो नृत्तं न व्यधत्त द्विषद्बले ॥ ३९० ॥

३९०. जिसके पाणि में कृपाण आ जाने पर शत्रु सेना में कबन्धों[1] के अतिरिक्त अन्य नृत्य नहीं करता था ।

---

३८७ (१) शंख की खोल तुल्य मस्तक की उपमा यहाँ सुन्दरता के विचार से दी गयी है । शशि तथा शंख की उपमा उज्ज्वलता के लिये दी गयी है । राजा का दैवी चिन्ह शंख समझा जाता है । प्रत्येक राजा तथा शूर के पास अपना शंख होता था । गीता का प्रथम अध्याय ही विभिन्न प्रकार के शंख घोषों के वर्णन से आरम्भ होता है । विष्णु भगवान् के चार हाथो में से एक हाथ में शंख दिखा कर उसे दैवी विभूतियों तथा गुणों से युक्त किया गया है ।

शंख की गणना सुषिर वाद्य में की गयी है । वाद्यों का वर्गीकरण—घन, वितत, तत, सुषिर में किया गया है । नीलमत पुराण में वाद्य, वादित्र तथा वाद्य भाण्ड शब्दों का प्रयोग वाद्ययन्त्रों के लिये किया गया है । कामसूत्र उन्हें आनद्ध तथा तन्त्री वाद्यों में वर्गीकरण करता है । तन्त्री वाद्य नीलमत के तत तथा आनद्ध वाद्य वितत के वर्गीकरण में आ जाता है ।

शंख का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता । रामायण, महाभारत तथा पुराणों में यह रणवाद्य रूप घोष हेतु प्रयुक्त किया गया है । नीलमत में इसका दो बार उल्लेख कौमुदी महोत्सव तथा राज्याभिषेक के प्रसंग में किया गया है ।

(नी० 386, 816)

३८८ (१) धारण—यह शब्द यहाँ श्लिष्ट है । इसका अर्थ कृपाण तथा मेघ दोनो होता है ।

३९० (१) कबन्ध—दण्डकारण्य का एक राक्षस था । इसका मस्तक इसके वक्षस्थल में था । शिरविरहित होने के कारण इसका नाम कबंध पड़ा था । महाभारत वनपर्व अ० २६३ तथा वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड ६९–६७ में इसकी कथा का

तस्याप्यपोह्यमाहात्म्य देवी दिव्याकृतेः प्रिया ।
विष्णुशक्तिः क्षितिं प्राप्ता रणारम्भाभिधाऽभवत् ॥ ३९१ ॥

३९१. उस दिव्याकृति की प्रिया अनश्वर माहात्म्य वाली देवी रणारम्भा नाम्नी हुई थी, जो पृथ्वी पर उत्पन्न विष्णु शक्ति[1] थी।

स हि जन्मान्तरे पूर्वं द्यूतकारोऽभवत्किल ।
कदाऽपि प्राप निर्वेदं सर्वस्वं कितवैर्जितः ॥ ३९२ ॥

३९२. वह पहले जन्मान्तर में द्यूतकार (जुआड़ी) था। किसी समय कितव (धूर्त जुआड़ी) के सर्वस्व विजित करने पर वह निर्वेद (विरक्ति) प्राप्त किया।

देहत्यागोद्यतोऽप्यासीत् प्राप्य किंचिद्विचिन्तयन् ।
न पर्यन्तेऽप्युपेक्षन्ते कितवाः स्वार्थसाधनम् ॥ ३९३ ॥

३९३. देह त्याग हेतु उद्यत भी प्राप्य (लाभ) का चिन्तन कर रहा था। कितव जन[1] अन्त काल में भी स्वार्थ साधन की उपेक्षा नहीं करते।

अवन्ध्यदर्शनां विन्ध्ये देवीं भ्रमरवासिनीम् ।
द्रष्टुमैच्छद्वराकाङ्क्षी निर्व्यपेक्षः स्वजीविते ॥ ३९४ ॥

३९४. उसने प्राण से निरपेक्ष होकर वर की आकांक्षा से विन्ध्य में अवन्ध्य (सफल) दर्शना देवी भ्रमरवासिनी[1] के दर्शन की इच्छा की।

उल्लेख है। देवी सीता के अन्वेषण में जटायु वध के पश्चात् राम लक्ष्मण वन में घूम रहे थे। क्रौंच वन के पूर्व ओर तीन कोस पर स्थित मातंग मुनि का आश्रम था। वहा उन्होंने भयंकर ध्वनि सुनी। वह ध्वनि कबंध की थी। उसने एक कोस दूर से ही राम लक्ष्मण को देखा। कबन्ध उन्हें भक्षण करने के लिये बढ़ा। रामने बायाँ तथा लक्ष्मण ने दाहिना हाथ कबंध का पकड़कर तोड़ दिया। गतप्राण होकर वह गिर पड़ा। उसके शरीर से देदीप्यमान पुरुष निकला। वह आकाश में स्थित हो गया। राम के प्रश्नपर उत्तर दिया, 'मैं विश्वावसु नामक गन्धर्व हूँ। शाप के कारण राक्षस योनि प्राप्त हुई थी।'

३९१ (१) विष्णु शक्ति—विष्णु की क्रियात्मक शक्ति से यहाँ तात्पर्य है। यह शक्ति स्वयं लक्ष्मी है।

३९३ (१) कितव जन : यह सूक्ति है। कल्हण ने यहाँ जुआड़ियों के विषय में उक्त सूक्ति कही है। मरते दम तक जुआड़ी अपने दाव तथा लाभ की चिन्ता करते रहते हैं।

३९४ (१) भ्रमर वासिनी—यह दुर्गा का ही एक रूप है। इनको विन्ध्यवासिनी भी एक मत मानता है।

कवि वाक्पति ने अपनी प्राकृत कविता में इस भ्रमरवासिनी देवी से मिलता जुलता वर्णन किया है।

दुर्गासप्तशती में भ्रामरी देवी का वर्णन मिलता है। कल्हण ने निस्सन्देह भ्रमरवासिनी देवी का यहाँ उल्लेख उसी के सन्दर्भ में किया है। दुर्गा ने स्वयं तीनों लोकों के हित के लिये ६ पदों वाले

भ्रमरैः शङ्कुपुच्छाद्यैः खण्डयमानस्य देहिनः ।
तदास्पदं हि विशतो दुर्लङ्घ्या पञ्चयोजनी ॥ ३९५ ॥

३९५. भ्रमरों एवं शङ्कुपुच्छ आदि से दंशित होते देहधारियों के लिये जो उस स्थान में प्रवेश कर रहे हों—पाँच योजन मार्ग (नितान्त) दुर्लङ्घ्य था।

स वज्रशङ्कुपुच्छानां धीमांस्तेषां प्रतिक्रियाम् ।
देहेऽवश्यपरित्याज्ये मन्वानोऽभूददुष्कराम् ॥ ३९६ ॥

३९६. उस बुद्धिमान् ने अवश्यमेव त्याज्य देह के लिये, उन वज्र तुल्य शंकु पुच्छ धारियों की प्रतिक्रिया को दुष्कर नहीं माना।

प्रागयोवर्मणा देहं ततो महिषचर्मणा ।
तेन छादयता दत्तो मृल्लेपोऽथ सगोमयः ॥ ३९७ ॥

३९७. सर्व प्रथम उसने लौह वर्म से, तदनन्तर महिष चर्म से, देह को आच्छादित कर गोमय[1] मिश्रित मृत्तिका लेप किया।

अथ भानुकरोच्छुष्कमृल्लेपाम्रेडिताङ्गकः ।
स लोष्ट इव संचारी प्रतस्थे क्रूरनिश्चयः ॥ ३९८ ॥

३९८. अंग पर बारंबार किये मृत्तिका लेपको सूर्य किरणों में सुखाकर संचरणशील लोष्टवत् उस क्रूर निश्चयी ने प्रस्थान किया।

सरलां सरणिं त्यक्त्वा जीवितस्पृहया समम् ।
गुहा तेन ततः सान्द्रतमोभीमा व्यगाह्यत ॥ ३९९ ॥

३९९. तदनन्तर जीवन की आकांक्षा के साथ-साथ सरल सरणि (मार्ग) को त्यागकर उसने घने अन्धकार से भयंकर गुहा में प्रवेश किया।

असंख्य भौंरो का रूप धारण कर महादैत्य का वध किया था।

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥
(११ : ५३)

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥
(११ : ५४)

तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ॐ॥
(११ - ५५)

दुर्गा सप्तशती के पंचम अध्याय का विनियोग भ्रामरी का उल्लेख करता है।

ॐ अस्य श्री उत्तमचरितस्य रुद्र ऋषिः महासरस्वती देवता अनुष्टुप् छन्दः भीमा शक्तिः भ्रामरी बीजम् सूर्यस्तत्त्वं सामवेदः स्वरूपं महासरस्वतीप्रीत्यर्थं उत्तमचरित्र पाठे विनियोगः।

३९७ (१) गोमय—आज भी ग्रामों में भौंरा काटने के स्थान पर गोबर लगा दिया जाता है। उससे दर्द तथा जलन कम हो जाती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९८ में 'म्रेडिताङ्गक' का पाठभेद 'म्रेडिताङ्गकः' तथा 'पीडिताङ्गकः' मिलता है।

अथोदतिष्ठन गर्तेभ्यो घोरा भ्रमरमण्डलाः ।
पक्षशब्दैः श्रुतिं घ्नन्तो मृत्युतूर्यरवैरिव ॥ ४०० ॥

४००. मृत्यु के तूर्य ध्वनि तुल्य पक्ष शब्दों से कान को फाड़ते हुए भयंकर भ्रमर मण्डल गर्तों से निकले।

ते तमुच्छुष्कमृल्लेपरेणुव्रणितलोचनाः ।
सहसा नाक्रमन्ते स्म प्रहरन्तोऽपि बाधितुम् ॥ ४०१ ॥

४०१. सूखे मृत्तिका लेप कणों से व्रणित लोचन (घायल नेत्र) वे भ्रमर सहसा आक्रमण न किये और प्रहार करने पर भी उसे पीड़ित न कर सके।

रेणुभिर्येऽन्धितदृशः ते न्यवर्तन्त षट्पदाः ।
तेऽखण्डयंस्तु मृल्लेपं न्यपतन् ये नवा नवाः ॥ ४०२ ॥

४०२. रेणुओं से अंधित नेत्र भ्रमर निवर्तित हो गये और जो नवीन-नवीन भ्रमर आये, वे मृत्तिका लेप खण्डित किये।

तैः खण्डयमान मुच्चण्डैः व्रजतो योजनत्रयीम् ।
क्रमान्मृत्कवचं तस्य पथि संक्षयमाययौ ॥ ४०३ ॥

४०३. तीन योजन मार्ग तय करते हुए उसका मृत्तिका-कवच प्रचण्ड उन भ्रमरों द्वारा क्रम से खण्डित होकर पथ में ही नष्ट हो गया।

ततो मुहुः प्रहरतां तेषां महिषचर्मणि ।
घोरश्चटचटाघोषः प्रादुरासीद्भयंकरः ॥४०४॥

४०४. तदनन्तर पुनः महिष चर्म पर उनके प्रहार करने पर भयंकर चट चट का घोष प्रादुर्भूत हुआ।

चतुर्थयोजनस्यार्धमतिक्रम्य विवेद सः ।
रणत्कारैर्द्विरेफांस्तान् अयोवर्मणि पातिनः ॥४०५॥

४०५. चौथे योजन का अर्धांश पार करने पर लौह वर्म पर गिरते उन भ्रमरों को झकारों से जाना।

धावंस्ततोऽतिवेगेन खण्ड्यमानेन षट्पदैः ।
स शस्त्रवर्मणामोचि चित्तं धैर्येण नो पुनः ॥४०६॥

४०६. तदनन्तर वह अति वेग से दौड़ने लगा। भ्रमरों से खण्ड्यमान शस्त्र वर्म ने उसे त्याग दिया, परंतु धैर्य ने चित्त को नहीं त्यागा।

श्लोक संख्या ४०२ में 'अंन्धित' का पाठभेद 'बाधित' मिलता है।

श्लोक संख्या ४०६ में 'चित्तं' का पाठभेद 'चित्रं' तथा 'पुनः' का 'पुरः' मिलता है।

गव्यूतिमात्रमासन्ने देवीधामनि धैर्यवान् ।
धुन्वन् कराभ्यां मधुपान् धावति स्म स धीरधीः ॥४०७॥

४०७. देवी मन्दिर के गव्यूति मात्र शेष रह जाने पर धीरधी एवं धैर्यशाली वह हाथों से मधुपों (भ्रमरों) को हटाते हुए दौड़ने लगा।

अथ स्नाय्वस्थिशेषाङ्गो लूनमांसः षडङ्घ्रिभिः ।
कराभ्यामक्षिणी रक्षन् देव्यायतनमामदत् ॥४०८॥

४०८. अनन्तर स्नायु एवं अस्थि मात्र शेष पट्चरणों (भ्रमरों) से खण्डित मांस वाला हाथों से आँखों की रक्षा करते हुए देवी आयतन में पहुँचा।

प्रशान्ते भृङ्गसंपाते प्रकाशमवलोकयत् ।
स देव्याः पादयोरग्रे पपातोद्भ्रान्तजीवितः ॥४०९॥

४०९. भृंग (भ्रमर) संपात (गिरना—आक्रमण) शान्त होने पर उद्भ्रान्त जीवित (प्राण शंकित) प्रकाश देखते हुए वह देवी के चरणों के गिर पड़ा।

स्तोकावशेषप्राणं तं देव्याश्वासयितुं ततः ।
अभिरामं वपुः कृत्वा प्रस्पर्शाङ्गेषु पाणिना ॥४१०॥

४१०. तदनन्तर देवी ने स्वल्प अवशिष्ट प्राण वाले उसे अभिराम शरीर प्रदान कर आश्वासन हेतु, अंगों पर पाणि-स्पर्श किया।

दिव्येन पाणिस्पर्शेन तेन पीयूषवर्षिणा ।
स क्षिप्रासादितस्वास्थ्यो दिक्षु चिक्षेप चक्षुषी ॥४११॥

४११. उस पीयूषवर्षी दिव्य पाणि स्पर्श से वह शीघ्र ही स्वास्थ्य प्राप्त कर दिशाओं में उसने दृष्टिपात किया।

प्रविष्टमात्रः प्रैक्षिष्ट सिंहविष्टरसीम्नि याम् ।
घोराकारां स तां देवीं तदाऽद्राक्षीन्न तां पुनः ॥४१२॥

४१२. उस समय प्रवेश करते ही उसने सिंह विष्टरासीन घोराकृति जिस देवी को देखा, उसे पुनः नहीं देखा।

ददर्श पुनरुद्यानलतावासे विलासिनीम् ।
स्थितां पुष्करिणीतीरे श्यामां पुष्करलोचनाम् ॥४१३॥

४१३. (उसने) पुष्करिणी तट पर उद्यान लता गृह में विलासिनी, पुष्करलोचनी श्यामा स्त्री (षोडश वर्षीया) को स्थित देखा।

गृहीतहारमुक्तार्घां बद्ध्वा पीनस्तनाञ्जलिम् ।
महार्हैः कान्तिकुसुमैः यौवनेनार्चिताङ्गकाम् ॥ ४१४ ॥

४१४. यौवन मुक्ताहार रूपी अर्घ्य से एवं पीन स्तन रूपी कुसुमों से (जिसके) अंगों को पूजित (अर्चित) कर रहा था।

यावकाहारिणौ पादौ दधतीं कृच्छ्रचारिणौ ।
स्तनच्छन्नमुखं द्रष्टुं तपस्यन्ताविवाऽन्वहम् ॥ ४१५ ॥

४१५. दुष्कर आचरणशील[1] उसके चरण जो कि यव के आहारी अथवा यावक[2] (महावर—अलक्तक—अलता) से सुन्दर थे, स्तन की ओट में स्थित मुख को देखने के लिये मानो प्रतिदिन तपस्या कर रहे थे।

श्लोकसंख्या ४१४ में 'गृहीत' का 'गृहीत्वा'; 'क्तार्घां' का 'क्तार्घान्'; 'बद्ध्वा' का 'बद्धा', एवं 'बद्ध' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४१४ (१) यौवन : कल्हण ने अपनी उपमा का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किया है। यौवन को उसने मुक्ताहार बनाया है; दोनों स्तनों को अंजलि के दोनों हाथ तथा दोनों स्तन के मध्य गहरे स्थान को बद्ध अंजलि का गहरा स्थान एवं कान्ति को पुष्प बनाकर उसने अंजलि में रखकर दुर्गा को अद्भुत पूजा का रूपक खींचा है। दुर्गा की पूजा तण्डुल की अपेक्षा मुक्ता से करना उत्तम माना जाता है। दोनों का वर्ण उज्ज्वल है।

४१५ (१) एक तपस्वी का चित्र चित्रित किया गया है। यव का आहार कर किसी इष्ट की प्राप्ति हेतु आचरण पूर्ण तपस्या करता है। उसी प्रकार उस कामिनी के मुख दर्शन हेतु उसके चरण तपस्या कर रहे थे। यह कवि के उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण है।

इसका एक भाव यह भी है कि उत्तुंग पयोधर के बीच में पड़ जाने के कारण मुख के दर्शनाभिलाषी चरण मुख का दर्शन नहीं कर पाते थे।

इसका एक भाव यह भी है—उसके अलता से रंगे सुन्दर चरण जो मालूम पड़ते थे कि कठिनता से चल पाते थे और इस कामना से तपस्या कर रहे थे कि उसका मुख जो उसके स्तनों से छिपाया देखा जा सके।

(२) यावक यह शब्द श्लिष्ट है। इसका दोनों अर्थ होता है। यव का आहार तथा महावर होता है। यव का आहार कुछ व्रतों पर करने की प्रथा कश्मीर में थी।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अर्थ किया है—

Pink like new barley were her two feet which suffered distress and were practising austerities for the sight of her face hidden by breasts' (Page 90.)

श्रीस्तीन निम्नलिखित अनुवाद किया है :

She had feet which were most charmingly (coloured) with red lac (यावकाहारिणौ), which seemed to move with difficulty and which appeared daily to perform austerities in their desire to see her face hidden by her breasts.

(Page 109)

भास्वद्बिम्बाधरां कृष्णकेशीं सितकराननाम् ।
हरिमध्यां शिवाकारां सर्वदेवमयीमिव[1] ॥ ४१६ ॥

४१६. रविबिम्ब अधर, कृष्ण रूप केश, शशि रूप आनन, हरि रूप मध्य, शिव रूप आकृति से मानो वह सर्वदेव मयी थी[2] ।

तां विभाव्यानवद्याङ्गीं निर्जने यौवनोर्जिताम् ।
निन्येऽवारितवामेन स कामेन विधेयताम् ॥ ४१७ ॥

४१७. निर्जन में यौवन पूर्ण उस सर्वांग सुन्दरी को देखकर वह अवारित (प्रतिरोध रहित) कुटिल काम के वशीभूत हो गया।

दधती रूपमाधुर्यपूरच्छन्नामधृष्यताम् ।
अप्सराः प्रत्यभात्तस्य सा हि चित्ते न देवता ॥ ४१८ ॥

४१८. रूप की अत्यधिक माधुरी से पूर्ण एवं असंयत वह, उसके चित्त में (उसे) अप्सरा प्रतीत हुई न कि देवता ।

कृपामृदुरवादीच्च व्यथितोऽसि चिरं पथि ।
मुहुः सौम्य समाश्वस्य प्रार्थ्यतामुचितो वरः ॥ ४१९ ॥

४१९. (देवी ने) उससे कृपापूर्ण मृदुवचन कहा—'सौम्य ! मार्ग में चिरकाल कष्ट प्राप्त किये आश्वस्त होकर उचित वर की प्रार्थना करो ।'

स तां बभाषे शान्तो मे भवत्या दर्शनाच्छ्रमः ।
अदेवी किं तु भवती वरं दातुं कथं क्षमा ॥४२०॥

४२०. वह उस (देवी) से बोला—'आपने दर्शन द्वारा मेरा श्रम शान्त कर दिया । किन्तु आप देवी नहीं है । अतएव वर प्रदान में कैसे समर्थ होंगी ।'

---

४१६ (१) इस पद के तुल्य बाण के हर्ष चरित में पद मिलता है—

'भास्वद् बिम्बाधारेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्र-मुखेन कृष्णवकेशेन, वपुषा सर्वदेवावतारइव ।'

४१६ (२) इसका अर्थ सभी अनुवादकों ने भिन्न भिन्न किया है । उनमें केवल भावार्थ मिलता है । कल्हण कवि के श्लोक से शरीर मात्र का दर्शन होता है । आत्मा का नहीं । उक्त अनुवाद मूल के अत्यन्त निकट है । इसमें कवि ने अद्भुत काव्य व्यञ्जना प्रकट की है । यहाँ कवि ने सूर्य, कृष्ण, राम, हरि तथा शिव सबसे निर्मित शरीर का उल्लेख किया है । उक्त श्लोक का निम्नलिखित अर्थ भी होता है ।

"भास्वद्बिम्बाधरा, कृष्णकेशी, शितकरानना हरिमध्या, शिवाकारा वह मानों सर्वदेवमयी (सर्व देवनिर्मित) थी ।"

श्लोक का भावार्थ निम्न प्रकार से होगा :

उसके अधर बिम्बतुल्य रक्तवर्ण, केश काले, आनन शशीतुल्य सुन्दर, सुन्दर कर एवं आनन, मध्य (कटि) सिंह सदृश कृश एवं आकार सुन्दर था ।"

इसी प्रकार का वर्णण भवभूति के मालतीमाधव नाटक के प्रथम अंक तथा कालिदास के मेघदूत में मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१९ में 'सौम्य' का पाठभेद 'सोम्य' मिलता है ।

देवी जगाद तं भद्र कोऽयं ते मनसि भ्रमः ।
देवी वा स्यामदेवी वा वरीतुं त्वां तु शक्नुयाम् ॥४२१॥

४२१. देवी ने उससे कहा—"भद्र ! तुम्हारे मन में यह कैसा भ्रम हो गया है ? मैं देवी हूं अथवा अदेवी, तुम्हें वर प्रदान में समर्थ हूं ।"

इति सोऽभीष्टसंप्राप्तौ कारयित्वा प्रतिश्रवम् ।
दूरमुत्क्रान्तमर्यादः संगमं तामयाचत ॥ २२॥

४२२. इस प्रकार अभीष्ट सम्प्राप्ति की प्रतिज्ञा कराकर, मर्यादा हीन हो, उस देवी से संगम की याचना की ।

तमभ्यधात्सा दुर्बुद्धे कोऽयं तेऽनुचितो विधिः ।
प्रार्थयस्वेतरद्यस्मात् साऽहं भ्रमरवासिनी ॥४२३॥

४२३. उस देवी ने उससे कहा—'दुर्बुद्धे ! तुम्हारा यह कैसा अनुचित आचरण (विधि) है ? अपना इतर वर माँगो । क्योंकि मैं ही भ्रमरवासिनी देवी हूँ ।'

देवीं तां जानतोऽप्यस्य नाभूदवहितं मनः ।
निरुद्धा वासनाः केन जन्मान्तरनिबन्धनाः ॥४२४॥

४२४. उसे देवी जानकर भी उसका मन विचलित नहीं हुआ । जन्मान्तरीय वासनाओं[1] को कौन दूर कर सकता है ।

स तामुवाच सत्यां चेद्देवि स्वां गिरमिच्छसि ।
प्रमाणीकुरु मद्वाणीमहमन्यन्न कामये ॥४२५॥

४२५. उसने उस देवी से कहा—'देवि ! यदि अपनी वाणी सत्य करना चाहता हो तो मेरी वाणी (याचना) पूरी करो । मैं दूसरी कामना नहीं करता हूँ ।'

पूर्वमेव हि जन्तूनां योऽधिवासो निलीयते ।
तिलानामिव तेषां स पर्यन्तेऽपि न शीर्यते[1] ॥४२६॥

४२६. प्राणियों में जो संस्कार पूर्व मे स्थित हो जाते हैं, वे उनके (शारीरिक) तिलों[2] के सदृश मृत्यु पर्यन्त नष्ट नहीं होते ।

पादटिप्पणियाँ :

४२४ (१) वासना : इस पद मे अधिवासा शब्द पद ४२४ में वासना शब्द को समुद्दिश् करता है ।

४२६ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८२ वाँ श्लोक है ।

(२) तिल : शरीर पर कुछ तिल जन्म-जात होते हैं और कुछ तिल कालान्तर में बन जाते है । यह तिल त्वचा पर मृत्यु काल पर्यंत रहते है । ये नष्ट नही होते । इसी प्रकार प्राणियो का पूर्व संस्कार उनके साथ जैसे तिल शरीर के साथ मिलकर नष्ट नही होता उसी प्रकार सस्कार नष्ट नही होते ।

देवी वा भव कान्ता वा भीमा वा शोभनाऽपि वा।
यादृशीं पूर्वमद्राक्षं तादृश्येवाऽवभासि मे ॥४२७॥

४२७. 'आप देवी हों अथवा कान्ता, भयंकर हों अथवा सुन्दर, जिस प्रकार पहले देखा था, उसी प्रकार अब भी मुझे लग रही हो।'

तमित्थं कथयन्तं सा ज्ञात्वा निश्चलनिश्चयम्।
एवं जन्मान्तरे भावीत्यभ्यधादनुरोधतः ॥४२८॥

४२८. इस प्रकार सानुरोध करते हुए, उसे दृढनिश्चयी जानकर उस (देवी) ने कहा—'ऐसा जन्मान्तर में होगा।'

उत्सहन्ते हि संस्प्रष्टुं न दिव्या मर्त्यधर्मिणः।
तद्गच्छ क्रूरसंकल्पेत्युक्ता साऽन्तर्दधे ततः ॥४२९॥

४२९. 'दिव्य (शरीरी) मरणशील प्राणियों का स्पर्श नहीं करते हैं। अतएव हे क्रूर संकल्प! तुम जाओ।' कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयी।

अशून्यजन्मा भूयासं तया देव्येति चिन्तयन्।
प्रयागवटशाखाग्रादहसीत्स वपुस्ततः ॥४३०॥

४३०. तदनन्तर 'इस देवी के साथ दिव्य जन्म की प्राप्ति होगी' ऐसा सोचते हुए उसने प्रयाग के वट[1] के शाखाग्र से शरीर त्याग कर दिया।

सोऽजायत रणादित्यो रणारम्भा च सा भुवि।
मर्त्यभावेऽपि या नैव जहौ जन्मान्तरस्मृतिम् ॥४३१॥

४३१. वह पृथ्वी पर रणादित्य हुआ। वह (देवी) रणारम्भा हुई जिसने मानव योनि में भी जन्मान्तर की स्मृति नहीं त्यागी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४२९ में 'संस्प्रष्टुं' का पाठभेद 'संस्प्ष्टुं' 'दिव्या' का 'देव्यो' तथा 'धर्मिण.' का पाठभेद 'धर्मिणाम्' मिलता है।

श्लोक संख्या ४३० में 'स' का पाठभेद 'स्व' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४३० (१) वट : 'अक्षय वट' प्रयाग में गंगा-यमुना संगम पर किला में है। स्वर्ग में सुख की प्राप्ति से स्वतः शरीर विसर्जन का उल्लेख हुएन्सांग ने किया है। (रा०त० १:२३२) दक्षिण तथा पश्चिम भारत में इस वृक्ष को वड़ तथा उत्तर भारत में बरगद कहते हैं।

पुराणों में वर्णन मिलता है। प्रलय काल में जब सब कुछ जलमय हो जाता है उस समय वट का एक वृक्ष बच जाता है। उसके एक पत्ता पर भगवान् बाल रूप धारण कर रहते हैं। वहाँ से सृष्टि के अनादि रहस्य का अवलोकन करते हैं। यह वट प्रयाग संगम पर है। कालिदास ने रघुवंश में इसका उल्लेख किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३१ में 'नैव' का पाठभेद 'यन्नैव' मिलता है।

रतिसेनाभिधश्चोलराजः सज्जोऽब्धिपूजने ।
तां तरङ्गान्तराल्लेभे रत्नराजिमिवोज्ज्वलाम् ॥४३२॥

४३२. समुद्र पूजन में लग्न चोलराज[1] रतिसेन ने तरंगमध्य से उज्ज्वल रत्नराशि तुल्य उसे प्राप्त किया था।

आ बाल्याद्व्यक्तदिव्योक्तिं तामलंकृतयौवनाम् ।
दिव्यार्हां पृथिवीशेभ्यो नार्थिभ्योऽपि ददौ नृपः ॥४३३॥

४३३. बाल्यपन से ही दिव्य लक्षणों से युक्त एवं यौवन से अलंकृत करते उस दिव्यार्हां (दिव्य पुरुष के योग्य) को नृपति ने प्रार्थी पृथिवीशों (राजाओं) को भी नहीं प्रदान किया।

रणादित्यनृपामात्ये दूत्यायाते तथैव तम् ।
प्रत्याख्यानेच्छुमाचख्यौ सैव तद्वरणं वरम् ॥४३४॥

४३४. राजा रणादित्य के दूतरूप में आये अमात्य को भी पूर्ववत्-प्रत्याख्यान के लिए इच्छुक (पिता से) उसने (कन्या ने) ही उसी का वरण श्रेष्ठ कहा।

तदर्थमेव कथितस्वोत्पत्तिं तां ततः पिता ।
द्रुतं कुलूतभूभर्तुः सुहृदः प्राहिणोद् गृहान् ॥४३५॥

४३५. उसी के निमित्त अपनी उत्पत्ति कहने पर पिता ने उस (कन्या) को[1] शीघ्र ही सुहृद् कुलूत पति[2] के गृह प्रेषित कर दिया।

प्रहृष्टोऽविप्रकृष्टं तं देशं गत्वा व्यधत्त ताम् ।
परिणीय रणादित्यः शुद्धान्तस्याधिदेवताम् ॥४३६॥

४३६. दूरस्थ उस देश में बिना गये ही प्रसन्न रणादित्य ने उसे परिणीत कर अन्तःपुर में (अधिदेवता) प्रधान रानी बना दिया।

पादटिप्पणियाँ :

४३२ (१) चोल : पाद टिप्पणी सं० १ : ३०० पृष्ठ द्रष्टव्य है।

पादटिप्पणियाँ :

४३५ (१) कन्या : दक्षिण में एक आख्यायिका प्रचलित है। चोलराज तथा कश्मीरराज में वैवाहिक सम्बन्ध था। शशि शेखर तथा राजाधिराज चोल का विवाह कश्मीर की राजकन्याओं से हुआ था।

(२) कुलूत : यह हिमाचल प्रदेश कुल्लू प्रदेश के लिये आया है जो व्यास किंवा विपासा नदी का ऊर्ध्वभाग स्थित भूखण्ड है। बृहद् संहिता से भी यही बात स्पष्ट होती है।

मर्त्यसंस्पर्शभीरुः सा महादेवीभवन्त्यपि ।
तं मायया मोहयन्ती न पस्पर्श कदाचन ॥४३७॥

४३७. मनुष्य स्पर्श से भीरु वह राजपत्नी होती हुई भी, उसे माया मोहित कर, उसका कभी स्पर्श नहीं किया।

व्यधान्मायामयीं राज्ञस्तल्पे स्वसदृशीं स्त्रियम् ।
स्वयं सा भ्रमरीरूपा निर्जगाम बहिर्निशि ॥४३८॥

४३८. राजा के तल्प पर अपनी तरह मायामयी स्त्री बना देती थी और भ्रमर रूपा वह स्वयं रात्रि में बाहर चला जाती थी।

स नाम्ना स्वस्य देव्याश्च कृत्वा सुरगृहद्वयम् ।
माहेश्वरः शैललिङ्गे कारयामास कारुभिः ॥४३९॥

४३९. उसने अपने और देवी (रानी) के नाम से दो देव मन्दिर निर्मित करा, शिल्पियों द्वारा शैल लिंग[1] पर माहेश्वर[2] (शिव) बनवाया।

श्वः प्रतिष्ठाप्रसङ्गेऽथ सज्जे तल्लिङ्गयोर्द्वयम् ।
देशान्तरागतः कश्चित् दूषयामास दैववित् ॥४४०॥

४४०. दूसरे दिन प्रतिष्ठा अवसर पर देशान्तर से आये किसी दैवविद् से (ज्योतिषी) ने उन दोनों लिंगों को दोष पूर्ण कहा—

स दृष्टप्रत्ययः शश्वत् तयोर्घटियलिङ्गयोः ।
अश्मखण्डैः समण्डूकैः बभाषे गर्भमावृतम् ॥४४१॥

४४१. शश्वत् दृष्ट प्रत्यय उसने कहा—'निर्मित उन दोनों लिंगों का गर्भ मण्डूक सहित अश्म खण्डों से आवृत है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३९ में 'स' का 'स्व', 'सुर' का 'स्वर', 'पर' एवं 'माहेश्वरः' का पाठभेद 'माहेश्वरे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४३९ (१) शैल लिंग : इसका अर्थ होता है कि विशाल पाषाण खण्ड पर शिव लिंग का निर्माण कराया।

(२) माहेश्वर : वायुपुराण (अ० २३) तथा लिंग पुराण (अ० २४) में एक कथा वर्णित है। उसके अनुसार माहेश्वर ने ब्रह्म देव से कहा था कि युगों के अठाईसवें प्रत्यावर्तन में कृष्ण द्वैपायन के समय जब वासुदेव जन्म लेंगे तब वे श्मशान में पड़े हुए एक मृत शरीर में प्रविष्ट होकर 'लकुलिन्' नामक ब्रह्मचारी के रूप में अवतार लेंगे। यह घटना कामावतार किंवा कायारोहण में घटित होगी। उनके चार शिष्य (१) कुशिक (२) गर्भ (३) मित्र और (४) कौरूष्य होंगे। अन्त में पाशुपत शरीर में भस्म लगाकर माहेश्वर योग करते रुद्र लोक में जायेंगे। माहेश्वर नाम अति प्राचीन है। विम कदफिसस और वलभी वंश के राजा स्वयं को महेश्वर कहते थे। ह्वेनत्सांग ने माहेश्वर मन्दिरों का उल्लेख किया है। उनमें पाशुपत पूजा करते थे। मध्य भारत में माहेश्वर तीर्थ है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४१ में 'अश्म' का [illegible]

रतिसेनाभिधश्चोलराजः सज्जोऽब्धिपूजने।
तां तरङ्गान्तराल्लेभे रत्नराजिमिवोज्ज्वलाम् ॥४३२॥

४३२. समुद्र पूजन में लग्न चोलराज[1] रतिसेन ने तरंगमध्य से उज्ज्वल रत्नराशि तुल्य उसे प्राप्त किया था।

आ बाल्याद्व्यक्तदिव्योक्तिं तामलंकृतयौवनाम्।
दिव्यार्हां पृथिवीशेभ्यो नार्थिभ्योऽपि ददौ नृपः ॥४३३॥

४३३. बाल्यपन से ही दिव्य लक्षणों से युक्त एवं यौवन से अलंकृत करते उस दिव्यार्हां (दिव्य पुरुष के योग्य) को नृपति ने प्रार्थी पृथिवीशों (राजाओं) को भी नहीं प्रदान किया।

रणादित्यनृपामात्ये दूत्यायाते तथैव तम्।
प्रत्याख्यानेच्छुमाचख्यौ सैव तद्वरणं वरम् ॥४३४॥

४३४. राजा रणादित्य के दूतरूप में आये अमात्य को भी पूर्ववत् प्रत्याख्यान के लिए इच्छुक (पिता से) उसने (कन्या ने) ही उसी का वरण श्रेष्ठ कहा।

तदर्थमेव कथितस्वोत्पत्तिं तां ततः पिता।
द्रुतं कुलूतभूभर्तुः सुहृदः प्राहिणोद् गृहान् ॥४३५॥

४३५. उसी के निमित्त अपनी उत्पत्ति कहने पर पिता ने उस (कन्या) को[1] शीघ्र ही सुहृद् कुलूत पति[2] के गृह प्रेषित कर दिया।

प्रहृष्टोऽविप्रकृष्टं तं देशं गत्वा व्यधत्त ताम्।
परिणीय रणादित्यः शुद्धान्तस्याधिदेवताम् ॥४३६॥

४३६. दूरस्थ उस देश में बिना गये ही प्रसन्न रणादित्य ने उसे परिणीत कर अन्तःपुर में (अधिदेवता) प्रधान रानी बना दिया।

पादटिप्पणियाँ :

४३२ (१) चोल : पाद टिप्पणी सं० १ : ३०० पृष्ठ द्रष्टव्य है।

पादटिप्पणियाँ।

४३५ (१) कन्या : दक्षिण में एक आख्यायिका प्रचलित है। चोलराज तथा कश्मीरराज में वैवाहिक सम्बन्ध था। यदि येलर तथा राजाधिराज चोल का विवाह कश्मीर की राजकन्याओं से हुआ था।

(२) कुलूत : यह हिमांचल प्रदेश कुल्लू प्रदेश के लिये आया है जो व्यास किंवा विपासा नदी का ऊर्ध्वभाग स्थित भूखण्ड है। बृहद् संहिता से भी यही बात स्पष्ट होती है।

मर्त्यसंस्पर्शभीरुः सा महादेवीभवन्त्यपि ।
तं मायया मोहयन्ती न पस्पर्श कदाचन ॥४३७॥

४३७. मनुष्य स्पर्श से भीरु वह राजपत्नी होती हुई भी, उसे माया मोहित कर, उसका कभी स्पर्श नहीं किया।

व्यधान्मायामयीं राज्ञस्तल्पे स्वसदृशीं स्त्रियम् ।
स्वयं सा भ्रमरीरूपा निर्जगाम बहिर्निशि ॥४३८॥

४३८. राजा के तल्प पर अपनी तरह मायामयी स्त्री बना देती थी और भ्रमर रूपा वह स्वयं रात्रि में बाहर चला जाती थी।

स नाम्ना स्वस्य देव्याश्च कृत्वा सुरगृहद्वयम् ।
माहेश्वरः शैललिङ्गे कारयामास कारुभिः ॥४३९॥

४३९. उसने अपने और देवी (रानी) के नाम से दो देव मन्दिर निर्मित करा, शिल्पियों द्वारा शैल लिंग[1] पर माहेश्वर[2] (शिव) बनवाया।

श्वः प्रतिष्ठाप्रसङ्गेऽथ सज्जे तल्लिङ्गयोर्द्वयम् ।
देशान्तरागतः कश्चित् दूषयामास दैववित् ॥४४०॥

४४०. दूसरे दिन प्रतिष्ठा अवसर पर देशान्तर से आये किसी दैवविद् से (ज्योतिषी) ने उन दोनों लिंगों को दोष पूर्ण कहा—

स दृष्टप्रत्ययः शश्वत् तयोर्घटितलिङ्गयोः ।
अश्मखण्डैः समण्डूकैः बभाषे गर्भमावृतम् ॥४४१॥

४४१. शश्वत् दृष्ट प्रत्यय उसने कहा—'निर्मित उन दोनों लिंगों का गर्भ मण्डूक सहित अश्म खण्डों से आवृत है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३९ में 'स' का 'स्व', 'सुर' का 'स्वर', 'पर' एवं 'माहेश्वरः' का पाठभेद 'माहेश्वरे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४३९ (१) शैल लिंग : इसका अर्थ होता है कि विशाल पाषाण खण्ड पर शिव लिंग का निर्माण कराया।

(२) माहेश्वर : वायुपुराण (अ० २३) तथा लिंग पुराण (अ० २४) में एक कथा वर्णित है। उसके अनुसार माहेश्वर ने ब्रह्म देव से कहा था कि युगों के अठाईसवें प्रत्यावर्तन में कृष्ण द्वैपायन के समय जब वासुदेव जन्म लेंगे तब वे श्मशान में पड़े हुए एक मृत शरीर में प्रविष्ट होकर 'लकुलिन्' नामक ब्रह्मचारी के रूप में अवतार लेंगे। यह घटना कामावतार किंवा कायारोहण में घटित होगी। उनके चार शिष्य (१) कुशिक (२) गर्भ (३) मित्र और (४) कौरूष्य होंगे। अन्त में पाशुपत शरीर में भस्म लगाकर माहेश्वर योग करते रुद्र लोक में जायेंगे। माहेश्वर नाम अति प्राचीन है। विम कदफिसस और वलभी वंश के राजा स्वयं को महेश्वर कहते थे। ह्वेनसांग ने माहेश्वर मन्दिरों का उल्लेख किया है। उनमें पाशुपत पूजा करते थे। मध्य भारत में माहेश्वर तीर्थ है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४१ में 'अश्म' का पाठभेद

किंकर्तव्यतया मूढं प्रतिष्ठाविघ्नविह्वलम् ।
दिव्यदृष्टिः स्वयं देवी ततो राजानमब्रवीत् ॥४४२॥

४४२. किंकर्तव्य विमूढ़ एवं प्रतिष्ठा के विघ्न [1]से विह्वल राजा से दिव्य दृष्टि स्वयं देवी ने कहा—

राजन्गिरिसुतोद्वाहे पौरोहित्यं पुरा भजन् ।
स्वमर्चादेवमादत्त पूजाभाण्डात्प्रजापतिः ॥४४३॥

४४३. 'राजन् ! प्राचीन काल में गिरिसुता परिणय में पौरोहित्य कर्म करते प्रजापति ने पूजा पात्र से अपने अर्चा देव को लिया ।

तां विष्णोः प्रतिमां वीक्ष्य पूजितां तेन धूर्जटिः ।
शून्यामिव तदा मेने शक्तिरूपां विना शिवम् ॥४४४॥

४४४. 'उन (ब्रह्मा) से पूजित शक्ति रूपा उस विष्णु[1] प्रतिमा को शिव रहित देख कर धूर्जटी (शिव) ने शून्य (अनुपयोगी) माना ।

निमन्त्रितैर्ढौकितानि रत्नान्यथ सुरासुरैः ।
पिण्डीकृत्य स्वयं चक्रे लिङ्गं भुवनवन्दितम् ॥४४५॥

४४५. 'नियन्त्रित सुरों एवं असुरों द्वारा प्रदत्त रत्नों को एक में (पिण्डी कृत) करके स्वयं भुवन वन्दित लिंग निर्मित किया ।

'मरव' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४४२ (१) विघ्न : किसी प्रकार शुभ, पवित्र, तथा यात्रादि में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न करना, उसमें अड़ंगा लगाना, उसके नष्ट करने की चेष्टा करना विघ्न कहा जाता है । धार्मिक कृत्यों में यदि विघ्न पड़ता है तो समझा जाता है कि क्रिया करने वाले का अनिष्ट होगा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४३ में 'स्वमर्चादेवमादत्त' का 'समर्चाहेश्मादिव' तथा 'दत्त' का पाठभेद 'धत्त' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४४३ (१) गिरिसुता : हिमालय तथा मेना की कन्या पार्वती थीं । नारद के सुझाव पर हिमालय ने पार्वती का विवाह शिव के साथ कर दिया था ।

पूर्वकाल मे पार्वती कृष्ण वर्ण की थी । अमरकेश्वर तीर्थ मे स्नान कर इन्हों ने शिव को दीप दान किया था । उसके पश्चात् वह गौर वर्ण हो गयी थी ।

पर्वत की कन्या होने के कारण नाम पार्वती पड़ा था । पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण भी नाम पार्वती पड़ा था । यह नृत्यों में लास्य नृत्य की प्रवर्तिका मानी जाती है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४४ में 'शून्यामिव' का पाठभेद 'शून्यामेव' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ ;

४४४ (१) शक्तिरूपा विष्णु : वायुपुराण २५ : २३ तथा कूर्म पुराण २ : ४ के अनुसार विष्णु भगवान् शिव शक्ति की मूर्ति माने जाते है ।

तां विष्णुप्रतिमां तच्च लिङ्गमीशानपूजितम् ।
स्वयं प्रजासृजः पूज्यं कालेनादत्त रावणः ॥४४६॥

४४६. 'स्वयं प्रजापति का पूज्य (एवं) ईशान पूजित उस लिंग तथा उस विष्णु प्रतिमा को समय से रावण ने प्राप्त किया।

तेनाप्यभ्यर्च्यमानं तत् लङ्कायामभवच्चिरम् ।
देवद्वयं रावणान्ते नीतमासीच्च वानरैः ॥४४७॥

४४७. 'लंका में वह (लिंग) चिरकाल तक उससे पूजित हुआ। रावण के पश्चात् वानरों ने देव-द्वय (दोनों लिंगों,' को ले लिया।

तिर्यक्तया ते कपयो मुग्धा हिमनगौकसः ।
शान्तौत्सुक्या शनैः देवौ न्यधुरुत्तरमानसे ॥४४८॥

४४८. 'हिमालय निवासी उन मुग्ध कपियों ने (तिर्यक) पशु स्वभाव के कारण उत्सुकता समाप्त हो जाने पर दोनों देवों को उत्तर मानस[1] में रख दिया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४४८ में 'हिमनगौकसः' का 'हिमानसौकसः' तथा 'देवौ' का पाठभेद 'देव्यो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४४८ (१) उत्तरमानस : कश्मीर में उत्तर मानस गंग बल को कहते है। हरमुख पर्वत की पूर्वीय हिमानी के अधोभाग में वह सरोवर स्थित है। हरमुकुट माहात्म्य तथा हरचरित चिन्तामणि (४:८७) से भी वह बात प्रमाणित होती है। नीलमत पुराण (श्लोक ९१०, ९९०, तथा १२६३) में भी इसका उल्लेख है। पृष्ठ १०० भी द्रष्टव्य है।

उत्तर मानस से नीचे एक दूसरा सर है उसमें भी जल हिमानी अर्थात् ग्लेसियर से आता है। इसे नुन्द कोल कहते हैं। प्राचीन नाम कालोदक है। नन्दिसर भी कहा जाता है। हरचरित चिन्तामणि तथा नीलमत पुराण में इसका उल्लेख मिलता है :

नारायणो निरुद्धश्च वासुदेवो जलान्धसः ।
पात्रश्च मानसश्चैव तथैवोत्तरमानसः ॥
890 = १०६०

सर्वपापविनिर्मुक्तो वारुणं लोकमश्नुते ।
मानसस्योत्तरे कूले महापद्मजलाशये ॥
1005 = ११७६

* * *

तत्र संस्थापयन्तिस्म ज्येष्ठेशं ते सदैव तु ।
महान् दिव्येन तोयेन शुभेनोत्तरमानसम् ॥1112
= १३१२-१३१३

* * *

तेषां तपःप्रभावेण भक्त्या च मम पार्षद ।
सोदरस्य च नागस्य स्नानं कृत्वा विधानतः ॥
1113 = १३१३-१३१४

* * *

मृत्युं विसर्जयामास सान्त्वयित्वा सुरारिहा ।
नन्दिनं च समादाय दृष्ट्वा चोत्तरमानसम् ॥
1117 = १३२०

× × ×

उत्तरे मानसे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
पितरस्तर्पितास्तत्र कामान्यच्छन्त्यभीप्सितान् ॥
1241 = १४५४ १४५५

महाभारत अनुशासनपर्व में कालोदक, नन्दिकुण्ड, नन्दीश्वर तीर्थों का इतना सुन्दर वर्णन मिलता है

प्रागेव सरसस्तस्मात्कुशलैः शिल्पिभिर्मया ।
तावुद्धृतौ प्रातरत्र प्राप्तौ द्रक्ष्यस्यसंशयम् ॥४४९॥

४४९. 'मैंने पहले ही उस सरोवर से कुशल शिल्पियों द्वारा उन दोनों को निकलवा लिया है। निश्चय ही प्रातः यहाँ देखोगे।

तयोः प्रतिष्ठा क्रियतामित्युक्त्वा पृथिवीभुजम् ।
देवी प्रयाता शुद्धान्तं सिद्धान्सस्मार खेचरान् ॥४५०॥

४५०. उन दोनों की प्रतिष्ठा करें।' इस प्रकार पृथ्वीपति से कह कर देवी शुद्धान्त (अन्तःपुर) में गयी और सिद्ध खेचरों[1] (आकाशचारी) का स्मरण किया।

ते ध्यातमात्राः संप्राप्ता देव्यादेशेन पाथसः ।
उद्धृत्य नृपतेर्धाम्नि देवौ हरिहरौ न्यधुः ॥४५१॥

४५१. ध्यान करते ही, वे उपस्थित हो गये और देवी के आदेश से जल से निकालकर, हरि-हर दे को नृप धाम में लाये।

दिव्यैः प्रसूनैः संवीतौ हरनारायणौ जनः ।
प्रातर्नृपगृहे दृष्ट्वा परं विस्मयमाययौ ॥४५२॥

४५२. दिव्य प्रसूनों से संवीत (आच्छादित) हर तथा रि को प्रातः राजगृह में देखकर लोग अत्यन्त विस्मित हुए।

सज्जे प्रतिष्ठालग्नेऽथ माहेश्वरतया नृपः ।
रणेश्वरप्रतिष्ठायां पूर्वं यावत्समुद्यतः ॥४५३॥

४५३. माहेश्वर होने के कारण नृप प्रतिष्ठा सज्ज (उपस्थित) होने पर पहले रणेश्वर[1] की प्रतिष्ठा हेतु जबतक उद्यत हो रहा था —

कि प्रतीत होता है कि महाभारतकार ने स्वयं कश्मीर जाकर अपनी आँखों से इन तीर्थों को देखा था।

कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम् ।
अभ्येत योजनशताद् भ्रूणहा विप्रमुच्यते ॥२५:६०

× × ×

नन्दीश्वरस्य मूर्तिं तु दृष्ट्वा मुच्येत किल्बिषैः ।
स्वर्गमार्गे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२५:६०

सौ योजन दूरसे आकर कालोदक, नन्दि कुण्ड तथा उत्तरमानस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य यदि भ्रूण हत्या भी किया हो तो वह पाप मुक्त हो जाते हैं।

वहाँ नन्दीश्वर की मूर्ति का दर्शन करके मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। स्वर्गमार्ग में स्नान करने पर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४९ में 'द्धृतौ' का पाठभेद 'द्धतौ' मिलता है।

श्लोक संख्या ४५१ में 'न्यधुः' का पाठभेद 'यधुः' मिलता है।

श्लोक संख्या ४५३ में 'लग्ने' का पाठभेद 'लिङ्गे' मिलते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित एवं अन्य अनुवादकों ने श्लोक संख्या ४५३ तथा

रणारम्भानुभावेन तावदेवाद्भुतावहः ।
स्वयं पीठे रणस्वामी भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ॥४५४॥

४५४. तब तक रणारम्भा के प्रभाव से विस्मय करने वाले स्वयं रण स्वामी[1] यन्त्र भेदन कर पीठ पर बैठ गये ।

---

४५४ का अनुवाद एक ही साथ किया है। परन्तु दोनो श्लोको को युग्मक श्री कल्हण ने नही लिखा हैं अतएव उसी का अनुकरण कर यहाँ दोनो का अनुवाद अलग अलग दिया गया हैं ।

४५३ (१) रणेश्वर : यह देवस्थान श्रीनगर में अथवा उसके समीप था। रणस्वामी से दूर नहीं था वे एक दूसरे के समीप थे। रणेश किंवा रणेश्वर का पुनः उल्लेख कल्हण ने नहीं किया हैं। यह मन्दिर कहाँ था इसका निश्चयात्मक पता नहीं चलता ।

श्री आनन्द कौल इस मन्दिर के सम्बन्ध में श्री स्तीन के मत का उल्लेख करते है। वह रणेश्वर के मन्दिर के विषय में इतना कहते है कि विचार नाग से दो मिल दक्षिण रणेश्वर का मन्दिर रणादित्य ने निर्माण कराया था। उनके मत से इस मन्दिर के लिये मदनी साहब की जियारत की गवेषणा करनी चाहिए ।

४५४ (१) रणस्वामी : यह मन्दिर श्रीनगर में अथवा उसके और रणेश्वर के समीप स्थित था। रणस्वामी का देवस्थान अधिक प्रसिद्ध मालूम होता हैं। इस स्थान का पता अन्य उल्लेखों से लगाया जा सकता हैं। तरंग ५ : ३९४ में इसका पुनः उल्लेख चक्रवर्मा की रानी का माघ मास में यहां आनेका मिलता है। यह समय कश्मीर उपत्यका में भयंकर तुषारपात होता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस देवस्थान का मार्ग अत्यधिक तुषार पात के समय भी सुगम तथा सरल रहा होगा ।

मंख ने श्रीकंठचरित (३:६८) में वर्णन किया है कि उसके पिता इस मन्दिर में पूजा करने के लिये जाया करते थे। श्री जोनराज ने भी इस के सम्बन्ध में लिखा है—'श्री प्रवरपुर प्रधान देवता' श्रीप्रवरपुर का अर्थ श्रीनगर है। श्रीनगर के प्रधान देवता का श्रीनगर में होना स्वाभाविक प्रतीत होता हैं।

जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है (श्लोक ८७२) कि बड़शाह जैनुल आबदीन ने 'जैन गंगा' नहर को अपने नवीन नगर जैन नगरी में रण स्वामी तक बनवाकर ले आया था।

जोनराज के वर्णन (८७०) से प्रतीत होता है कि जैन नगरी प्रद्युम्न नगरी (हर पर्वत) तथा अमरेशपुर (अम्बुरहर तरंग १:२८७) उसकी अन्तिम सीमा थी। इससे प्रतीत होता है कि जैन गंगा ही वर्तमान नहर लछम कुल अर्थात् लक्ष्मण कुल्या है। यह नहर सिन्धु नदी से जल अम्बरहर से होती नौशहर तथा संगीन दरवाजा तक पानी लाती है। हरपर्वत के पश्चिम तरफ संगीन दरवाजा है। यह नहर दक्षिण दिशा की ओर चलती जामा मसजिद तक जाती है मार नहर में कादी कदल पुल के पास मिल जाती है।

जोनराज ने अपनी तरंगिणी सन् १४४६—१४५९ ई० मे लिखी थी। जैनुल आबदीन के समय लछमकुल यह वही है जिसे जोनराज ने देखा था। श्री स्तीन का मत है कि रणस्वामी का मन्दिर मार तथा लछम कुल नहर के कोने पर टूटा पड़ा मन्दिर है। यह अब तक इसलिये वर्तमान है कि मुसलमानों ने इस मन्दिर को जियारत पीर हाजी मुहम्मद साहेब में परिवर्तित कर लिया है।

कर्तुं प्रभावजिज्ञासां राज्या दत्तधनस्ततः ।
स स्वयंभूः स्वयं भक्तैः तांस्तान्ग्रामानदापयत् ॥४५५॥

४५५. प्रभाव के जिज्ञासा हेतु उन्हें धन अर्पित किया। तदनन्तर स्वयं उन स्वयं-भू[1] ने भक्तों को तत्तत् ग्राम प्रदात कराया।

कुम्भदासतया छन्नः सिद्धो ब्रह्माभिधो वसन् ।
परिज्ञाय तयोर्देव्या प्रतिष्ठाकर्म कारितः ॥४५६॥

४५६. कुम्भदास[1] (जल लाने वाला) के रूप में छिपकर रहते हुए ब्रह्म नामक सिद्ध को जान कर रानी ने उसके द्वारा दोनों (मूर्तियों) का प्रतिष्ठा कर्म कराया।

स वृत्तप्रत्यभिज्ञः सन्प्रतिष्ठाप्य रणेश्वरम् ।
व्योम्ना व्रजन् रणस्वामिप्रतिष्ठां गूढमादधे ॥४५७॥

४५७. रणेश्वर की प्रतिष्ठा करके परिचय ज्ञात हो जाने पर आकाश से जाते हुए रण स्वामी की प्रतिष्ठा गुप्त रूप से की।

दीवालें के अतिरिक्त जो अष्टकोणीय कक्षा पर बनी है तथा दो सीढ़ियाँ जो इसके दोनों द्वारों पर गयी हैं। मन्दिर के प्रांगण के प्राकार की दीवालें भी आज तक खड़ी हैं। किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया है। कश्मीर के पुरातत्व के कागजों में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है। श्री स्तीन ने एक दूसरा विकल्प भी दिया है। वे कहते हैं—स्थान कुल प्राचीन समय में यदि और उत्तर दिशा में उस शाखा में मिली होती जो डल लेक में जाकर वूद कदल के पास जाकर मिल जाती है तो रणस्वामी के मन्दिर का ध्वन्सावशेष संगीन दरवाजा के उत्तरीय भाग में मादिन साहब की मसजिद में बिखरे प्राचीन मन्दिरों के ध्वन्सावशेष में खोजना होगा।

श्री पण्डित साहेबराम ने अपने तीर्थों में केवल इतना ही लिखा है। रणस्वामी का मन्दिर हर पर्वत के पश्चिम में था। उन्होंने कोई निश्चित स्थान नहीं बताया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५५ में 'भक्तैं' का पाठभेद 'भक्ता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४५५ (१) स्वयंभू : यह मानव निर्मित प्रतिमा तथा स्थान नहीं होता था अपितु स्वयं प्रजापति का कर्तृत्व समझा जाता था। रा. त. १ : ३४, पृष्ठ ७३ द्रष्टव्य है।

श्री स्तीन, श्री रणजीत सीताराम पण्डित एवं अन्य अनुवादकों ने श्लोक संख्या ४५६—४५८ का एक ही साथ अनुवाद 'तिलकम्' के रूप में किया है। किन्तु श्री कल्हण ने उन्हें 'तिलकम्' नहीं लिखा है। अतएव उनका अनुवाद अलग अलग किया गया है।

४५६ (१) कुम्भदास : कुम्भकार का अर्थ कुम्हार होता है। अर्थात् घड़ा बनाने वाले का नाम कुम्भकार होता है। कुम्भ दास का अर्थ होगा कुम्भ—घड़ा का दास। यह शब्द यहाँ पर कर्म का बोधक है। कुम्भ की सेवा का तात्पर्य कुम्भ से जल ले जाना ही हो सकता है। वाटर पाइप लगने के पूर्व कश्मीरी हिन्दू ब्राह्मणों के घर में क्षत्रिय तथा उनकी स्त्रियाँ घड़ों अर्थात् कुम्भ से जल भरती थीं। वे मासिक पारिश्रामिक पाती थीं। पुरुष जल भरने वाले को कुम्भदास तथा जल भरने वाली स्त्री को कुम्भदासी कहा जाता था। कल्हण ने कुम्भदासी का पुनः उल्लेख त० ८ : १०२६ में किया है।

जनास्त्वलक्षयन् यत्स स्वयं पीठमवातरत् ।
इति केषामपि हृदि प्रवादोऽद्यापि वर्तते ॥४५८॥

४५८. लोगों ने देखा कि वे स्वयं पीठ पर अवतरित हुए—यह प्रवाद आज भी किसी-किसी के हृदय में (स्थित) है।

सा ब्रह्मप्रतिमं सिद्धं देवी ब्रह्मविदां वरम् ।
अकारयत्तमुद्दिश्य परार्ध्यं ब्रह्ममण्डपम् ॥४५९॥

४५९. ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्मप्रतिम उस सिद्ध को उद्देश्य कर उस देवी ने बहुमूल्य ब्रह्म मण्डप निर्मित कराया।

रणारम्भास्वामिदेवौ दंपतिभ्यां व्यधीयत ।
मठः पाशुपतानां च ताभ्यां प्रद्युम्नमूर्धनि ॥४६०॥

४६०. रणारम्भा स्वामी एवं रणारम्भादेव को दम्पति ने बनवाया। प्रद्युम्न मूर्धा[1] (शिखर) पर पाशुपतों के लिये मठ निर्मित कराया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५८ में 'प्रवादो' का पाठभेद 'प्रवचो' मिलता है।

श्लोकसंख्या ४५९ मे 'परार्ध्यं' का 'परार्द्धं' तथा 'मण्डपम्' का पाठभेद 'सत्तमम्' मिलता है।

श्लोकसंख्या ४६० में 'देवौ' का 'देवो' 'दम्पतिभ्यां' का 'दम्पतीभ्यां' तथा 'प्रद्युनमूर्धनि' का पाठभेद 'शारिकागिरौ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६० (१) **प्रद्युम्न मूर्धाः** प्रद्युम्न मूर्धा किंवा शिखर हर अथवा शारिका पर्वत के लिये प्रयुक्त किया गया है। इसे हर पर्वत भी कहते हैं।

इसका उल्लेख प्रद्युम्न पीठ, प्रद्युम्न गिरि, तथा प्रद्युम्नशिखर नाम से किया गया है (त. ७:१६-१६ ; विक्रमांक देव चरित, विल्हण ; १८।१५ ; जोनराज ; ५८७, ८७० ; श्रीवर १:६३१, २:८८, तथा महादेव माहात्म्य २:७)।

सोमदेव ने कथासरित्सागर (७३:१०९) में इस पर्वत को उषा और अनिरुद्ध की प्रेम कथा से जोड़ा है। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध थे।

इस पर्वत के पूर्वीय ढाल पर बहुत पैमाने में फैली मुसलिम जियारतें मुकद्दम साहिब तथा आखूनमुल्ला शाह की हैं। यह सब प्राचीन मन्दिर मठों तथा विहारों के स्थानों पर बनी हैं। यद्यपि रणस्वामी एवं रणेश्वर के मन्दिरों की तरह यह भी समीप ही स्थित है परन्तु निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे रणस्वामी एवं रणेश्वर के ही स्थान थे। पता नहीं जब मैंने इस स्थानों को देखा तो भावुकतावश यह धारणा हो गयी कि रणस्वामी तथा रणेश्वर के ध्वन्सावशेष यही थे। परन्तु वह मेरे मन का भ्रम ही हो सकता है। इसका कोई प्रमाण नहीं प्रतीत होता। किन्तु न जाने वहाँ जानेपर मुझे क्यों हार्दिक सन्ताप जैसा हुआ। मन रोने लगा। आखों के सम्मुख जैसे मूर्तियां आने लगीं। मुझे अच्छी तरह स्मरण है मूर्तियों के मुख से करुणा जैसे झलक रही थी। वे कह रही थीं—क्या था ? क्या होगया ? मैं उस समय के अपने भाव को व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ पाता हूँ।

आरोग्यशाला निरघाऽप्युन्लाघत्वाय रोगिणाम् ।
तेन सेनामुखीदेवीभयशान्त्यै च कारिता ॥४६१॥

४६१. उसने रोगियों के आरोग्य एवं सेनामुखी देवी के भय शान्ति हेतु सुन्दर आरोग्यशाला[1] स्थापित किया।

नीलमत पुराण में प्रद्युम्न नाग का उल्लेख मिलता है।

सूदनौ द्वौ सुपार्श्वश्च सुनासः पन्नगहस्तकः।
प्रद्युम्नश्चान्धकः शम्भुः साल्वो मूलेश्वरो नृपः॥
888 = १०५८

योग वासिष्ठ रामायण में हरपर्वत शिखर किंवा शारिका पर्वत शिखर को प्रद्युम्न शिखर कहा गया है। (स्थिति प्रकरण : सर्ग : ३२ : श्लोक : १२)

पुराणों में तीन प्रद्युम्न नामक व्यक्तियों का वर्णन मिलता है। भागवत पुराण (४ : १३ : १६) के अनुसार प्रद्युम्न एक राजा था। वह चक्षुर्मनु के बारह पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम नड्वला था। सुद्युम्न भी इसी एक नामान्तर है।

वायुपुराण के अनुसार प्रद्युम्न एक राजा था। वह भानुमत् राजा का पुत्र था।

महाभारत अनुशासन पर्व के अनुसार प्रद्युम्न श्रीकृष्ण का पुत्र था। उसकी माता का नाम रुक्मिणी था। सनत्कुमार का अंश था। यह पूर्व जन्म में मदन था। शंबरासुरका वध करने के लिये अवतार लिया था। शंबरासुर की स्त्री मायावती पूर्व जन्म में प्रद्युम्न की पत्नी रति थी। पूर्व जन्म में मदन को मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री रति को शम्बरासुर हर ले गया था। शम्बरासुर से बदला लेने के लिये प्रद्युम्न का अवतार लिया था। शम्बरासुर तथा प्रद्युम्न की कथा विष्णु, भागवत, हरिवंश तथा ब्रह्मवैवर्त पुराणों में भिन्न भिन्न रूप से दी गयी है। प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध का भागवत १०:९० :३३ तथा महाभारत वनपर्व १६:३०–३२ ; १७:२१ ; १८:३ ; १५, १६ ; २०: ; १० ; ७६ ; १३ में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

यादव वंश संहार के समय भोजों के समय प्रद्युम्न मृत हुआ। (म० मौ० : ४ : ३३ ; भा ११ : ३० : १६ ; गणेश : १ : ४९) मृत्युके अनन्तर वह सनत्कुमार के स्वरूप में प्रविष्ट हो गया।

प्रद्युम्न की मायावती पत्नी के अतिरिक्त रुक्मिन की कन्या रुक्मावती अथवा शुभांगी से इसने विवाह किया था। (भा० १० : ६१ : १८ ; ८० : १६ ;) शुभांगी से इसको अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ था।

४६१ (१) आरोग्यशाला : अस्पताल का अर्थ आरोग्यशाला है। कल्हण प्राचीन काल में सार्वजनिक आरोग्यशाला होने का उल्लेख करता है।

कल्हण के इस वर्णन ने इतिहास को एक टूटी श्रृंखला की कड़ी को जोड़ा है। आयुर्वेद एवं आयुर्विज्ञान भारत में अत्यन्त विकसित था। तक्षशिला तथा काशी इस विद्या के केन्द्र थे। बौद्ध काल में समस्त भारतवर्ष तथा विदेश से विद्यार्थी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति सीखने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये तक्षशिला जाते थे। भगवान् बुद्ध का प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक राजगृह से तक्षशिला में आकर शिक्षा प्राप्त किया था।

उस समय आजकल के समान सार्वजनिक अस्पताल भी होते थे यह बात कल्हण के उक्त उल्लेख से स्पष्ट होती है। राजतरंगिणी में आरोग्यशाला स्थापित करने का यह प्रथम उल्लेख मिलता है।

ख्याति रणपुरस्वामिसंज्ञया सर्वतो गतम् ।
स सिंहरोत्सिकाग्रामे मार्ताण्डं प्रत्यपादयत् ॥४६२॥

४६२. उसने सिंहरोत्सिका ग्राम में रणपुरस्वामी नाम से प्रख्यात मार्तण्ड मन्दिर का निर्माण कराया ।

अमृतप्रभया तस्य राज्ञः पत्न्याऽन्यया कृतः ।
दक्षिणेऽस्मिन् रणेशस्य पार्श्वे देवोऽमृतेश्वरः ॥४६३॥

४६३. उस नृप की अपर पत्नी अमृतप्रभा ने रणेश्वर के दक्षिण पार्श्व में अमृतेश्वर देव की स्थापना की ।

मेघवाहनभूभर्तृपत्न्या भिन्नाऽऽख्यया कृते ।
विहारेऽपि तया बुद्धबिम्बं साधु निवेशितम् ॥४६४॥

४६४. मेघवाहन नृप पत्नी भिन्ना[1] द्वारा निर्मित विहार में भी उसने सुन्दर बुद्ध प्रतिमा निविष्ट किया ।

राज्ञे देव्यनुरक्ताय सानुक्रोशाय सैकदा ।
पातालसिद्धिदं मन्त्रं प्रददौ हाटकेश्वरम् ॥४६५॥

४६५. एक बार उस (रणारम्भा स्वयं) ने देवी में अनुरक्त एवं सहानुभूति पूर्ण नृपति को पाताल[1] (विजय) सिद्धिप्रद हाटकेश्वर मन्त्र प्रदान किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६२ में 'मार्ताण्डं' का पाठभेद 'मार्तण्डं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४६२ (१) सिंहरोत्सिका : इस स्थान का पता नही चलता । कल्हण ने पुनः कहीं नही वर्णन किया है कि विष्णु का मन्दिर सूर्य किंवा मार्तण्ड रूप में कहीं स्थापित किया था । श्री जनरल कनिंघम का यह मत कि मार्तण्ड का मध्यवर्ती मन्दिर ही यह मन्दिर था और ललितादित्य ने केवल चारों ओर का स्तम्भावलीमय प्राकार का निर्माण कराया था । विद्वानों ने, मुख्यतः श्री फरगुसन और श्री स्तीन ने, अमान्य किया है । यदि मार्तण्ड मन्दिर रणादित्य का निर्माण कराया होता तो यह बात कल्हण के काल में लोगों की स्मृति में अवश्य होती । कल्हण ने कही भी इस प्रकार का गौण रूप से संकेत भी नही किया है ।

४६४ (१) अमृतेश्वर : इस मन्दिर के स्थान तथा रूप का पता नहीं चलता ।

(१) भिन्ना विहार : इसका भी पता नही चलता ।

दोनों का पुनः उल्लेख नही आया है जिससे इनके स्थान का पता लगाया जा सके । यह अनुसन्धान का विषय है ।

४६५ (१) पाताल : यूनानी लोग पाताल को 'हेड्स' कहते हैं । वह नागों तथा मांत्रिक देवी प्राणियों का स्थान माना जाता है । धारणा है कि पाताल लोक नीचे था ।

मा भून्मोघाऽस्य मत्प्राप्तिरिति मत्वा तयार्पितम् ।
असाधयत्स तं प्राप्य वशान्तं वत्सरान् बहून् ॥४६६॥

४६६. 'मेरी प्राप्ति इसके लिये निष्फल न हो' यह समझ कर उसके अर्पित उस वशीमन्त्र को प्राप्त (राजा ने) उसे बहुत वर्षों तक सिद्ध किया।

कृत्वेष्टिकापथे कष्टं तपो नन्दिशिलां गतः ।
भूरिभिर्वत्सरैर्मन्त्रसिद्धेः प्रणयितां ययौ ॥४६७॥

४६७. इष्टिका पथ[1] में कष्ट साध्य तपस्या कर नन्द शिला[2] गया और बहुत वर्षों के बाद मन्त्र सिद्धि प्राप्त की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६६ 'वशान्तं' का पाठभेद 'वसन्तं', 'वसन्तु, और 'वंशान्त' मिलता है।

श्लोक संख्या ४६७ में 'कृत्वेष्टि' का 'कृत्वष्टि' तथा 'तपो' का पाठभेद 'ततो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६७ (१) इष्टिका पथ : पवित्र हरमुकुट पर्वत की दिशा में इष्टिका पथ का नाम आता है। यह वह स्थान है जिसका वर्णन नीलमत पुराण (१०८१) में 'पथेश्वर इष्टाः' रूप में किया गया है। यह लार परगना में रामरादन स्थान है। यहीं से हरमुकुट यात्रा की चढ़ान आरम्भ होती है।

नीलमत पुराण में उल्लेख मिलता है :

गुहेश्वरः शतमुखा यष्टिकापथ एव च ।
कदम्बंसरस्तथा पुण्यं क्षेत्रे चैव समन्ततः ॥

118 = १६०-१६१

(२) नन्दशिला : कल्हण से स्पष्ट नहीं होता कि उसका नन्दशिला से क्या तात्पर्य है। श्री स्तीन का मत है कि सम्भवतः नन्द शिला नन्दी की गाथा से सम्बन्धित नन्दिक्षेत्र में हरमुकुट पर्वत पर होना चाहिये। नन्दी की उत्पत्ति शिलाद अर्थात् शिलाचूर्ण से हुई थी। उसने तपस्या नन्दिसर में मूर्धापर शिला रखकर किया था।

हमान परगना में नदहेल ग्राम का पुराना नाम नन्दिशिला था। (वितस्ता माहात्म्य : २४ । ३३) किन्तु स्थान को पुण्य किंवा पवित्र रूप में वर्णन नहीं किया गया है। नीलमत में उल्लेख मिलता है।

तस्य मूलमथासाद्य देव्यै वचनमब्रवीत् ।
इहैव तिष्ठ तावत्त्वमहं यास्याम्यतः परम् ॥

1057 = १२४१

× × ×

वृषेण सहितो देवीपर्वतेऽस्मिन् हि यः पथा ।
करोत्यारोहणं तस्य महत्पुण्यफलं स्मृतम् ॥

1058 = ११४२

× × ×

यथा त्वं न समर्थाऽसि सुकुमाराऽसि देवि यत् ।
आरोढुं तेन यास्येऽहमेक एवाद्य सत्वरः ॥

1069 = १२४३

× × ×

तस्मादेशात् प्रवृत्तस्तु गन्तुं देववरः पथा ।
पार्थाश्वराख्यस्तत्रेष्टो देवस्याग्रतनोऽभवत् ॥

1060 = १२४४-१२४५

× ... ×

आरुरोह यथा शैलं यदा देवो महेश्वरः ।
तदा वृद्धिमगाच्छैलो महतीं भूरिदक्षिणः ॥

1061 = १२४५-१२४६

स्वप्नैश्च सिद्धिलिङ्गैश्च जाताभङ्गुरनिश्चयः।
चन्द्रभागाजलं भित्त्वा नमुचेः प्राविशद्बिलम् ॥४६८॥

४६८. स्वप्नों एवं सिद्धि सूचक चिह्नों से दृढ़ निश्चय हो (वह) चन्द्रभागा[1] जल का भेदन कर नमुचि[2] के बिल में प्रवेश किया।

---

४६८ (१) चन्द्रभागा : काश्मीर तथा पंजाब में प्रवाहित चिनाव नदी। चनाव नदी का संस्कृत नाम चन्द्रभागा है। चन्द्रभागा का ही अपभ्रंश चिनाव तथा चनाव है।

राजतरंगिणी तरंग ४:६३८ में वर्णित चन्द्रभागा स्रोतस्विनी इससे भिन्न है। चन्द्रभागा का वर्णन नीलमत पुराण में ११६, ११७, १२०, १२१, १५४, तथा ११५५ में आता है। कल्हण ने चन्द्रभागा का वर्णन त० ८:५५४ तथा ६२६ में किया है।

नीलमत पुराण में चन्द्रभागा का निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

आपगा च नदी पुण्या तीर्था तोषितभास्करा।
चन्द्रांशुशीतलजला चन्द्रभागा सरिद्वरा॥
116 = १५८-१५९

❀ ❀ ❀

पुण्यं च चन्द्रभागायास्तीर्थं वै वट्टिलामुखम्।
वांसमर्दलनामा च तथा पापनिषूदनः॥
117 = १५९-१६०

❀ * ❀

सर्वत्रैव सदा पुण्या चन्द्रभागा महानदी।
माघशुक्लत्रयोदश्यां पुण्ययोगे विशेषतः॥
120 = १६२-१६२

❀ ❀ ❀

पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यासमुद्रसरांसि च।
चन्द्रभागां गमिष्यन्ति माघशुक्लत्रयोदशीम्॥
121 = १६३ १६४

* * ❀

अश्वारूढा विपाशा च गजारूढा इरावती।
सिंहेन चन्द्रभागा च सिन्धुर्व्याघ्रेण पार्थिव॥
154 = २०६

शतद्रुं च विपाशां च पुण्यतोयामिरावतीम्।
देविकां चन्द्रभागां च तथा विष्णुपदं सरः॥
1155 = १२३९

वितस्ता से सम्बन्धित कुछ नदियों का नाम नीलमत पुराण में आया है। वितस्ता नदी यदि उमा की अवतार अर्थात् उमास्वरूप है तो दैत्य माता दिति कश्यप की पत्नी ने कश्मीर की चन्द्रावती नदी का रूप धारण कर लिया है।

दितिश्चन्द्रवती जाता ऋषेर्वचनानुकारिणी।

इस नदी का अभीतक पता नहीं लग सका है। नीलमत पुराण में इसका वर्णन त्रिकोटि तथा हर्षपथा के साथ आता है। निर्विवाद है कि यह नदी वितस्ता की सहायक नदी थी। द्रष्टव्य नी० २८९ ४८५, १२९७, १३८९, १३००

अनन्त नाग के समीप चार और स्रोतस्विनियाँ आकर वितस्ता में मिल जाती हैं। उनके नाम हैं; सन्द्रन, ब्रिग, अरिपथ तथा लिदर। सन्द्रन नदी दक्षिण में बहती है और शाहिबाबाद क्षेत्र अर्थात् प्राचीन वेर परगना का पानी लेकर वितस्ता में मिलती है। वह अनेक पवित्र स्रोतस्विनियों का जल भी लाती है। इस नदी का प्राचीन नाम क्या था कहना कठिन है।

ब्रिग नदी ब्रिग परगना का जल लाती है। वितस्ता माहात्म्य में इसका नाम भृगो दिया गया है। यह सन्देहात्मक है। इस नदी में प्रसिद्ध त्रिसन्ध्या तथा अर्धनारीश्वर अर्थात् नारू स्रोतस्विनियों का जल आता है। इन्द्र की पत्नी शची देवी ने स्वयं हर्षपथा नदी का रूप धारण किया है। दक्षिण पूर्व से आकर वितस्ता में मिलती है। हर्षपथा नाम से

बिलेऽपावृततां याते दिवसान्येकविंशतिम् ।
प्रवेश्य पौरान्प्राङ्निन्ये दैत्यस्त्रीभोगभागिताम् ॥४६९॥

४६९. इक्कीस दिनों तक बिल के अनावृत रहने पर पुरवासियों को प्रविष्ट करके दैत्य स्त्रियों के भोग का पात्र बनाया।

नीलमत पुराण में इसका वर्णन मिलता है। वर्तमान नाम अरिपथ है। यह कोथर परगना के जल को लाती है। कोथर शब्द कपटेश्वर सर का अपभ्रंश है। कपटेश्वर के पश्चिमी शैलबाहु पर यह तीर्थ स्थित है। यहाँ से अक्षवाल अर्थात् अचवल का भव्य जल-स्रोत निकलता है। जल स्रोतस्विनी का रूप धारण कर हर्षपथा में प्रवाहित हो जाता है। (नी० २३२, २८९, ९९५)

खनवल ग्राम से कुछ अधोभाग जहाँ उक्त तीनों स्रोतस्विनियाँ मिलती है वहाँ उत्तर से लिदर (प्राचीन) लेदरी नदी अपने जल के साथ आकर मिलती है। उसमें सिन्ध उपत्यका के बहुत हिमानियों के जल आकर मिलते हैं। दाचुनपुर तथा खेसुरपुर परगनों के पानी को लाती है। प्राचीन काल लेदरी नदी से एक नहर द्वारा पानी मार्तण्ड अर्थात् मटन पहुँचाया गया था जहाँ कृषा होती थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६९ में 'दिवसान्येक' का 'दिवसानेक' तथा 'भागिताम्' का पाठभेद 'भोगिताम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६९ (१) दैत्य : असुरों में एक दैत्य है। उनकी माता दिति थीं। पिता कश्यप थे। गुरु शुक्राचार्य हैं। उनके देवता वरुण तथा वायु हैं। हिरण्यकश्यप को दैत्यपति कहा गया है। दैत्यों का युग देव मान से १२ हजार वर्षों का होता है। दक्ष प्रजापति की कन्या दैत्यसेना थी। उसका पति केशी दैत्य था। दैत्य का पर्यायवाची नाम असुर—दैत्य, दैतेय, दनुज, इन्द्रारि, दानव, शुक्रशिष्य, दितिसुत, पूर्वदेव, एवं सुरद्विप हैं।

नीलमत पुराण में दैत्यों का उल्लेख निम्नलिखित रूप से किया गया है।

ससुताः पार्थिवश्रेष्ठ तासां नामानि मे शृणु ।
अदितेस्तनया देवा दितेर्दैत्यास्तथैव च ॥
47 = ७०-७१

* * *

लब्धमायस्तु दैत्येन्द्रो भक्षयामास मानवान् ।
समीपे सरसस्तस्य नानादेशेष्ववस्थितान् ॥
70 = १२०-१२१

* * *

भगवन्विदितं सर्वं यथा पूर्वं मया शिशुः ।
पालितः संग्रहसुतो दैत्यो नाम्ना जलोद्भवः ॥
136 = १७९

* * *

देवानुयायानिनदं श्रुत्वा दैत्योऽपि दुर्मतिः ।
जले त्ववध्यमात्मानं विदित्वा न विनिर्गतः ॥
162 = २१४

* * *

ततस्त्वनन्तो गिरिसंनिकाशः
समग्रचन्द्रस्य समानकान्तिः ।
व्यवर्धताभूत्व महीं दिवं च
संत्रासयन्दैत्यगणान्समन्तात् ॥
169 = २१९

* * *

ध्वस्तेऽन्धकारे हरिरप्रमेयो
योगेन गत्वा स्वपरं शरीरम् ।
दैत्येन युद्धं स चकार सार्धं
देहेन चान्येन च युद्धमैश्वरत् ॥
172 = २२४-२२५

स एवं भूपतिर्भुक्त्वा भुवं वर्षशतत्रयम् ।
निर्वाणश्लाघ्यनिर्व्यूढि पातालैश्वर्यमासदत् ॥४७०॥

४७०. इस प्रकार उस नृपति ने तीन सौ वर्षों तक पृथ्वी का भोगकर निर्वाण श्लाघ्य अन्तिम स्थिति (सर्वोच्च पद) प्राप्त किया[१] ।

सानुगे नृपतौ याते दैतेयदयितान्तिकम् ।
देवी सा वैष्णवी शक्तिः श्वेतद्वीपमगाहत ॥४७१॥

४७१. अनुचर सहित नृपति के पाताल प्रचारोपरान्त वह देवी वैष्णवी शक्ति श्वेत द्वीप[१] चली गयी ।

विष्णोश्च दैत्येन बभूव युद्धं
घोरं द्रुमैः पर्वतमस्तकैश्च ।
युद्धं च ते देवगणाः समस्ताः
प्रहृष्टचित्ता ददृशुः समन्तात् ॥
172 = २२५ २२६

ततो हरिः क्रोधविवृत्तनेत्रः
चक्रेण देवप्रवरः समान्ते ।
चिच्छेद दैत्यस्य शिरः प्रसह्य
महा ततस्तोषमुपाजगाम ।
174 = २२६-२२७

* * *

चक्रमर्पय मे देव दैत्यसंघविनाशनम् ।
प्रहसन्तमुवाचाथ हरिं हास्येन शंकरः ।
= 190 = २४६-२४८

* * *

यत्र सन्ति पिशाचा ये दैत्यपक्षाः सुदारुणाः ।
तेषां तु निग्रहार्थाय पिशाचाधिपतिर्बली ॥
204 = २७७-२८८

* * *

ततः दार्वी शाकपर्णी नाम्ना शाकपथा नदी ।
ततश्चन्द्रवती नाम दितिर्दैत्यारणिनृपः ॥
289 = ३८७-३८८

* *

त्वया विनिहता दैत्या देवब्राह्मणकण्टकाः ।
वरदस्त्वं वरेण्यश्च सुरारिबलहा विभो ॥354 = ४५७

* * *

दैत्यदानवयक्षाश्च पिशाचाः राक्षसैः सह ।
वर्जयन्ति तदा मांस मांसादा दिनपञ्चकम् ॥
447 = ५५८

* * *

कुबेरो धर्मलटको दैत्यराजः पडमुखः ।
गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च कुसुमः कुहरः कुदः ॥
903 = १०६९ १०७०

* * *

त्रिपुरारे नमस्तेऽस्तु नमस्त्वन्धकघातिने ।
शूलाग्रभिन्नदैत्यासृग्रुधिरार्द्रं नमोऽस्तु ते ॥
1092 = १२९०

* * *

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४७० में 'स एवं' का 'एवं स'; 'निर्व्यूढि' का 'विर्व्यूढ' तथा 'लैश्वर्य' का पाठभेद 'लेश्वरं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४७० (१) आइने अकबरी में उल्लेख है—राजा न्यायप्रिय था । विजय भी किया । चनाव नदी पर कुरुवार के समीप वह अपने अनेक सम्बन्धियों तथा पार्षदों के साथ एक गुहा में चला गया । उनके विषय में पुनः नहीं सुना गया कि उनका क्या हुआ । उसके वीरतापूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं ।

४७१ (१) श्वेतद्वीप : शाब्दिक अर्थ उज्ज्वल किंवा श्वेतद्वीप होता है । प्राचीन परम्परा के अनु-

राजवंशेष्वनेकेषु राज्ञोर्वंशद्वये परम् ।
द्वयोरेवात्र निर्व्यूढिं प्रजावात्सल्यमागतम् ॥४७२॥

४७२. अनेक राजवंशों में दो राजवंश के दो नृपति उत्कृष्ट हुए। दोनों का ही प्रजा वात्सल्य पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ[1]।

रणादित्यस्य गोनन्दवंशे रामस्य राघवे ।
लोकान्तरसुखस्यापि ययोरंशभुजः प्रजाः ॥४७३॥

४७३. गोनन्द वंश में रणादित्य एवं रघु वंश में राम[1] (उत्कृष्ट) हुए जिनकी प्रजा लोकान्तर सुख की भागी हुई।

विक्रमाक्रान्तविश्वस्य विक्रमेश्वरकृत्सुतः ।
तस्यासीत् विक्रमादित्यः त्रिविक्रमपराक्रमः ॥४७४॥

४७४. त्रिविक्रम[1] तुल्य पराक्रमी विक्रमादित्य[2] उसका पुत्र था। जिसने अपने पराक्रम से विश्वविजय एवं विक्रमेश्वर[3] का निर्माण किया।

सार द्वीप पार्थिव जगत् का विभाजन है। इस विभाजन की गणना में साम्य नहीं है। इसे चार, सात, नव तथा तेरह भी कहा गया है। नैषध चरित में १८ विभाजन किये गये है। पर सब द्वीप मेरु के चारों ओर स्थित कहे गये हैं। मेरु को सुवर्ण पर्वत प्रफुल्लित कमल तुल्य कहा गया है। उसके केन्द्र में जम्बू द्वीप है। इस जम्बूद्वीप में ही भारतवर्ष है। द्वीप का शाब्दिक अर्थ जल से आवृत भूमि होता है। कुछ लेखकों के मतसे प्राचीन काल में श्वेत द्वीप से यूरोप का अर्थ लगाया गया है।

४७२ (१) श्री स्तीन ने श्लोक ४७२ तथा ४७३ का एक साथ अनुवाद किया है। वह श्लोक 'युग्मकम्' नहीं है अतएव मैंने दोनों का अलग अलग अनुवाद किया है

४७३ (१) राम : वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड १०१–११० में रामचन्द्र के अयोध्या में सरयू नदी में शरीर विसर्जन की कथा हृदयस्पर्शी शब्दों में दी गयी है। वहाँ उल्लेख किया गया है कि भगवान् राम की अनुगामिनी उनकी प्रजा हुई थी।

४७४ (१) त्रिविक्रम : यहाँ पर विष्णु किंवा वामन हैं। तीन पग से वामन अवतार में भगवान् ने जगत् को नाप लिया था अतएव उन्हें त्रिविक्रम कहा गया है।

(२) विक्रमादित्य : कतिपय लेखकों ने विक्रमादित्य किसका पुत्र था सन्देह प्रकट किया है। तरंग के श्लोक ३४२१ में स्पष्ट प्रकट होता है कि यह वास्तव में रणादित्य का ही पुत्र था।

श्री विलसन ने विक्रमादित्य के राज्याभिषेक का समय सन् ५२७ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ५६८ ई० और राज्यकाल ४२ वर्ष दिया है।

श्री एस० सी० पण्डित वह समय सन् ५१७ ई. देते है। तथा राज्यकाल ४२ वर्ष देते है।

स्तीन यह समय लौकिक संवत् ३५९९ मास २ तथा एक दिन तथा राज्यकाल ४२ वर्ष देते हैं।

कलि गताब्द ३६५९ वर्ष ११ मास १३ दिन तथा ट्रायर के मत से सन् ५१७ ई० ११ मास और कनिंघम के अनुसार वह समय सन ५५६ ई० ५ मास आता है।

राजा ब्रह्मगलूनाम्यां सचिवाभ्यां समं महीम् ।
सोऽपासीद्वासवसमो द्वाचत्वारिंशतिं समाः ॥४७५॥

४७५. वासव (इन्द्र) समान उस राजा ने ब्रह्मा एवं गलून सचिवों के साथ बयालीस वर्ष पृथ्वी पर व्यतीत किया।

चक्रे ब्रह्ममठं ब्रह्मा गलूनो लूनदुष्कृतः ।
रत्नावल्याख्यया वध्वा विहारं निरमापयत् ॥४७६॥

४७६. ब्रह्मा ने ब्रह्ममठ एवं दुष्कृतच्छेत्ता गलून नें रत्नावली नाम्नी स्त्री के नाम से विहार निर्मित कराया।

राज्ञोऽनन्तरजस्तस्य राजाऽभूत्तदनन्तरम् ।
तापितारातिभूपालो बालादित्यो बलोर्जितः ॥४७७॥

बालादित्य :

४७७. अनन्तर राजा का लघुभ्राता बलशाली बालादित्य राजा हुआ। जिसने शत्रु भूपालों को संतप्त किया।

श्री स्तीन ने श्लोक ३४७५ में 'द्वाचत्वारिंशति' का अर्थ ४२ वर्ष किया है परन्तु श्रीरणजीत सीताराम पण्डित ने ४० वर्ष किया है। पं० रामतेज शास्त्री ने भी ४२ वर्ष अनुवाद किया है। श्री गोपीकृष्ण शास्त्री ने ४० वर्ष अर्थ लगाया है। श्री चन्द्रकान्त काली ने ४२ वर्ष गणना की है। परिशेष में श्री स्तीन ने पुनः ४२ वर्ष दिया है। विक्रमादित्य के पश्चात् बालादित्य के राज्यारोहण काल से गणना करने पर भी ४२ वर्ष ही आता है। अतएव मैंने ४२ वर्ष ही रखा है।

श्री विदेउद्दीन ने एक विचित्र कपोलकल्पना इतिहास को अपने रंग में रंगने के लिये की है। वह कहता है। राजा की आयु १६५ वर्ष की हुई थी। उसने ४० वर्ष से अधिक राज्य किया था।

उसका राज्यकाल प्रथम हिजरी का समकालीन है। उसने पैगम्बर मुहम्मद साहब के पास राजदूत भेजा था। किन्तु कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करता।

आईने अकबरी में अबुल फजल ने नाम बलदुत दिया है।

(३) विक्रमेश्वर : दिद्दा मठ के २ मिल उत्तर विचार नाग के समीप श्री आनन्द कौल के अनुसार विक्रमेश्वर का मन्दिर था। सिकन्दर बुत शिकन ने इसे ध्वस्त किया था। उसने मन्दिर के ध्वन्सावशेष से मसजिद तथा खंनखाह निर्माण कराया था। (पृष्ठ २६)

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४७५ में 'गलूना' का पाठभेद 'गलूरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४७७ (१) श्री विलसन के राज्याभिषेक का समय सन् ५७९ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ५९२ ई० तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया है।

श्री एस. पी. पण्डित ने समय सन् ५५९ ई. तथा राज्य काल ३७ वर्ष ४ मास दिया है।

श्री स्तीन ने यह समय लौकिक संवत् ३६३१ मास २ तथा दिन प्रथम तथा राज्य काल का समय ३६ वर्ष ८ मास दिया है।

लवणार्णवपानेन तर्षोत्कर्षमिवोद्वहत् ।
यत्प्रतापो रिपुस्त्रीणां सनेत्राम्भोऽभजन्मुखम् ॥४७८॥

४७८. जिसका प्रताप लवणसमुद्र जल का पान करने से मानों तृषाधिक्य को धारण करता हुआ, शत्रु स्त्रियों के साश्रु मुख का सेवन करता था।

आसन् येऽरिमनोऽगाधबोधदण्डा इवाहृतः ।
यस्याद्यापि जयस्तम्भाः सन्ति ते पूर्ववारिधौ ॥४७९॥

४७९. पूर्व सागर पर शत्रुमन के अगाध बोध के मापदण्ड स्वरूप लाये गये जो उसके जयस्तम्भ[1] थे, वे आज भी हैं।

प्रभावाङ्केन वङ्कालान् जित्वा येन व्यधीयत ।
काश्मीरिकनिवासाय कालम्ब्याख्यो जनाश्रयः ॥४८०॥

४८०. जिसने प्रभाव से वंकालों को विजित कर काश्मीरियों के निवास हेतु कालम्ब[2] नामक जनाश्रय[3] बनवाया।

श्री बाली यह समय सप्तर्षि संवत् ४२२४ तथा सन् ५५४ ई. देते हैं। कलि गताब्द ३६९६ वर्ष ११ मास १३ दिन, ट्रायर के मत से यह समय सन् ५५६ ई. ११ मास और कनिंघम के अनुसार सन ५७६ ई. ६ मास आता है।

श्री विदेवद्दीन राजा बालादित्य को शाह यज्दे जिर्द का समकालीन बना देता है। उसमें उसने उत्तरी पूर्वीय क्षेत्र जीतकर कश्मीर के राज्य में मिला लिया था।

४७९ (१) *जयस्तम्भ* : जयस्तम्भों की समानता सेसक के स्तम्भों तथा यूनानी तथा रोमनो के जय स्मारक किंवा जय चिन्हों से की जा सकती है। जयस्तम्भ भारत में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। कुतुब मीनार अर्थात् विष्णु पर्वत पर विष्णु मन्दिर का अष्टधातु का जयस्तम्भ इसका ज्वलन्त उदाहरण है। उस पर चन्द्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त की कीर्ति तथा विजय का वर्णन उल्लिखित है। इसी प्रकार का स्तम्भ प्रयाग आदि स्थानों का है। यह जयस्तम्भ यूनानियों के काष्ठ जयस्तम्भ के समान निर्मित भी किये गये होंगे। वे कालान्तर में ऋतुओं की विषम मार से नष्ट हो गये हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८० में 'वङ्कालान्' का पाठभेद 'वकालो' और 'वङ्काला' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४८० (१) वंकाल : वंकालों का स्थान तथा वे किस प्रकार के लोग थे अभी तक कुछ प्रकाश इतिहास नहीं डाल सका है। अनुमान बहुत लगाये गये हैं। इस पर अनुसंधान की आवश्यकता है।

पूर्वीय समुद्र जयस्तम्भ के पश्चात् ही वंकाल का वर्णन मिलता है। यह 'वंग' किंवा 'बंगाल' *शब्द का मूल रूप किंवा अपभ्रंश प्रतीत होता है।* कतिपय अनुवादकों ने इसका अर्थ 'बंगाल' ही लगाया है। 'वंकाल' शब्द 'संस्कृत' अथवा कश्मीरी नहीं प्रतीत होता। बंगाल की संज्ञा सर्वदा गौड़ तथा वंग या बंगाल से दी गयी है।

(२) कालम्ब : इस स्थान का अभी तक पता नहीं चला है।

(३) जनाश्रय : इसका अर्थ सार्वजनिक धर्मशाला अथवा सराय से है।

सराय शब्द आश्रय का अपभ्रंश प्रतीत होता है। दोनों का अर्थ एक ही है।

कश्मीरेषु घनोद्ग्रमग्रहारं द्विजन्मनाम् ।
राजा मडवराज्ये यो भेडराख्यमकारयत् ॥४८१॥

४८१. जिस राजा ने कश्मीर में मडव[1] राज्य गत प्रभूत धन (पूर्ण) भेडर[2] (ग्राम) ब्राह्मणों को अग्रहार में प्रदान किया ।

विशां विपाटितारिष्टमरिष्टोत्सादने व्यधात् ।
वल्लभा यस्य बिम्बोष्ठी बिम्बा विश्वेश्वरं हरम् ॥४८२॥

४८२. जिसकी बिम्बोष्ठी 'बिम्बा' नाम्नी प्रिया ने अरिष्टोत्सादन में मनुष्यों के अनिष्ट नष्ट कर्ता विश्वेश्वर शिव (हर) को स्थापित किया ।

भ्रातरो मन्त्रिणस्तस्य त्रयो मठसुरौकसोः ।
सेतोश्च कारका आसन् खङ्गशत्रुघ्नमालवाः ॥४८३॥

४८३. खङ्ग, शत्रुघ्न एवं मालव नामक उसके तीन मन्त्रिबन्धुओं ने मठ, देवालय एवं सेतु निर्माण कराया ।

विलसन का मत है कि राजा ने विहार मन्दिर आदि का अपनी विदेशी प्रजा के कश्मीर में आकर ठहरने के लिए निर्माण कराया था ।

बिदैउद्दीन इस राजा को ईरान के राजा एज्दजिर्द का समकालीन कहता हैं । उसने उत्तरीय पूर्वीय ईरान के जिलों को जीत लिया था । किन्तु यहाँ पर उसने बालादित्य को भ्रम से प्रतापादित्य समझ लिया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८१ में 'भेडरा' का पाठभेद 'भेरडा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४८१ (१) मडवराज्य : तरंग २ : १५ पाद टिप्पणी द्रष्टव्य हैं ।

(२) भेडर : यह वर्तमान बिडर ग्राम है । ब्रिग परगना में है । सन् १८९१ में श्री स्तीन ने इस ग्राम की यात्रा की थी । ग्राम के मध्य में एक ढूहा है । यह मन्दिर का ध्वन्सावशेष है । उसमें से अलंकृत शिला खण्ड निकाल लिये गये है । समीपस्थ ब्राह्मणों का ग्राम हागल गुण्ड है । वहा दुर्गा की पूजा 'बिदा देवी' नाम से होती हैं । बिदा शब्द भेड का अपभ्रंश है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८२ में 'विपाटि' का पाठभेद 'विपटि' और 'विपति' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४८२ (१) अरिष्टोत्सादन : मच्छहोम परगना में यह वर्तमान ग्राम रतसुन है । श्री स्तीन के सुझाव पर पण्डित काशीराम इस ग्राम में सन् १८९१ में गये थे परन्तु उन्हें यहां कुछ प्राप्त नहीं हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८३ में 'रौकसो:' का पाठभेद 'रौकस:' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४८३ (१) सेतु : यहाँ सेतु का अर्थ कोई बाँध अथवा सेतु अर्थात् पुल लगाया जा सकता है । सेतु का प्रचलित अर्थ पुल ही है । परन्तु बाँध के अर्थ में भी इसका प्रयोग किया गया है

बभूव तस्य भूभर्तुः भुवनाद्भुतविभ्रमा ।
तनयाऽनङ्गलेखाख्या शृङ्गारोदधिकौमुदी ॥४८४॥

४८४. उस नृपति को भुवनाद्भुत विलासवती शृङ्गार रूपी समुद्र के लिये कौमुदी (कार्तिक एवं आश्विन पूर्णिमा) अनंगलेखा नाम्नी कन्या हुई ।

तां वीक्ष्य लक्षणोपेतां मृगाक्षीं पितुरन्तिके ।
अमोघप्रत्ययो व्यक्तं व्याजहारेति दैववित् ॥ ४८५ ॥

४८५. पितृ पार्श्व में लक्षण सम्पन्न उस मृगाक्षी को देखकर अमोघप्रत्ययी ज्योतिषी ने इस प्रकार सुस्पष्ट कहा—

भविता तव जामाता जगतीभोगभाजनम् ।
त्वदन्तमेव साम्राज्यं गोनन्दान्वयजन्मनाम् ॥ ४८६ ॥

४८६. '[१]गोनन्दवंशियों का साम्राज्य तुम्हारे ही तक है—[२]और तुम्हारा जामाता जगत् पृथ्वी का भोग भाजन होगा ।'

सुतासतानसाम्राज्यमनिच्छन्नथ पार्थिवः ।
दैवं पुरुषकारेण जेतुमासीत्कृतोद्यमः ॥ ४८७ ॥

४८७. सुता संतान के साम्राज्य को न चाहते हुए, नृपति ने दैव को पुरुषार्थ पूर्वक विजित करने का प्रयत्न किया ।

अराजान्वयिने दत्ता नेयं साम्राज्यहारिणी ।
मत्वेति प्रददौ कन्यां न कस्मैचन भूभुजे ॥ ४८८ ॥

४८८. 'अराजवंशीय[१] को प्रदत्त यह कन्या राज्यहारिणी नहीं होगी' ऐसा मानकर उसे किसी राजा को नहीं दिया ।

हेतुं सरूपतामात्रं कृत्वा जामातरं नृपः ।
अथाश्वघासकायस्थं चक्रे दुर्लभवर्धनम् ॥ ४८९ ॥

४८९. राजा ने सुन्दरता मात्र को हेतु मानकर अश्वघास कायस्थ दुर्लभ वर्धन को जामाता बनाया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८४ में 'विभ्रमा' का पाठभेद 'विक्रमा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४८८ (१) अराजवंशीय : राजा की इच्छा यह नहीं थी कि गोनन्द वंश से साम्राज्य दूसरे वंश में चला जाय । अतएव वह निस्सन्देह चिन्तित हुआ था । कल्हण प्रथम तरंग में गोनन्दवंश के गोनन्द प्रथम दामोदर यशोवती, तथा गोनन्द तृतीय का वर्णन कर ३५ राज्यों का विवरण लुप्त मानता है ।

पाठभेद ।

श्लोक संख्या ४८९ में 'सरूप' का पाठभेद

मातुः कार्कोटनागेन सुस्नातायाः समीयुषा ।
राज्यायैव हि संजातो राज्ञा नाज्ञायि तेन सः ॥ ४९० ॥

४९०. उस राजा ने यह नहीं जाना कि सुस्नात (इसकी) माता और कर्कोट नाग[1] के सम्भोग से राज्य के लिये ही वह उत्पन्न हुआ है ।

'स्वभूप' तथा 'स रूप' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

(१) अश्वघास कायस्थ : श्रीनगर में घोड़ों के लिये घास समीपवर्ती स्थानो, सरोवरों, घासवाली भूमि, से नावों द्वारा लाई जाती थी । नावें मुख्य यातायात को साधन थी ।

घास व्यर्थ न जाय और वह अश्व जिनका सम्बन्ध उन दिनों अश्वारोही सेना तथा देश की सुरक्षा से था राज्य सम्पत्ति समझा जाता था । उसपर राज्य कर लगता था । डोगरा काल तक यह कर चलता रहा है ।

कायस्थ यहाँ पर जातिवाचक न हो कर कर्मवाचक है । कश्मीर में कर्मणा कायस्थ होते थे । राज्य कर्मचारी को कायस्थ कहते थे । अश्वघास कायस्थ का यहा तात्पर्य घोड़ों के लिये घास लाने वालो का अधिकारी राज्य कर्मचारी है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९० में 'कार्को' का 'कर्को', 'समीयुषा' का 'समेयुषा', 'संजातो' का 'संजाता' तथा 'सः' का पाठभेद 'सा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४९० (१) कार्कोट नाग : कर्कोट नाग के नाम पर कश्मीर का कर्कोट राजवंश चला था । कल्हण ने इस राजवंश के राजाओ का वर्णन समस्त चतुर्थ तरंग मे किया है । उसमें १७ राजा हुए थे । उनका शासन काल लौकिक संवत् ३६७७ से ३९२९ तक रहा है । इस वंश ने कश्मीर पर २५४ वर्ष ५ मास २७ दिन तक शासन किया था ।

नीलमत पुराण में कार्कोट नाग का वर्णन मिलता है । कश्मार के नागाओ की तालिका मे प्रारम्भ में ही उसका नाम नील, वासुकी, तथा तक्षक नाग के साथ आता है । प्रतीत होता है । कार्कोट नाग की पूजा विभिन्न स्थानों में होती थी ।

करकोट द्रग का नाम कार्कोट नाम पर पड़ा था । (रा० ८.१५९६) अनुमान किया जाता है कि वह तोष मैदान पास के समीपस्थ किसी एक सरोवर में निवास करता था । उसका उल्लेख चौथी राजतरंगिणी के श्लोक ११४ तथा तीर्थों में किया गया है । वेगिल परगना में काकोदर पर्वत वाहुभूल का नाम कार्कोट का ही अपभ्रंश है । तीर्थों में एक और कार्कोट नाग का उल्लेख मिलता है । कुथर परगना में यह गांव उत्तरस है । हरचरित चिंतामणि १० में वर्णित स्रोत सम्भवतः यही है ।

नीलमत में कार्कोट नाग का उल्लेख आता है ।

कम्बलाश्वतरो नागो कार्कोटकधनंजयौ ॥ 881 : १०५० ॥

कद्रू का पुत्र कर्कोटक नाग वरुण की सभा में उपस्थित रहता है । (म० स० ९ : ९) नागो की भोगवती नामक नगरी में इसका निवास कहा गया है (म० उ० १०१ : ९) नारद की दावाग्नि में जब यह फँस गया था तो नल ने इसका उद्धार किया था । (म० व० ६३) कार्कोट नामक भारतवर्ष के विभाग के कार्कोटक लोगों को महाभारत में विधर्मी कहा गया है । उनका वर्णन महाभारत कर्ण पर्व (४४ : ४३) में मिलता है । जयपुर राज्य के पूर्व अंचल में कार्कोट नगर नामक स्थान है । वहाँ मालवों के आरम्भिक काल की मुद्रायें

मिलती है। शिव के रथ में रस्सी के रूप में इनका प्रयोग किया गया था। (म० कर्ण : ४ : २९) यह भगवान् बलराम के स्वधाम गमन के समय उपस्थित था। (म० मौ० ४ : १५)

अथर्व वेद में कार्कोट नाग का उल्लेख विषघ्न के रूप मे किया गया है। प्रमुख नागो के वर्णन में नागराज कर्कोट का गौरवपूर्ण स्थान है।

यह राजवंश का संरक्षक माना जाता है। नैपाल मे आज भी कार्कोट नाग की पूजा कहीं-कहीं की जाती है। नैपाली गाथाओ में उसे लोक प्रिय स्थान प्राप्त है।

नैपाल के नागाओ में यह एक प्रमुख नाग माना जाता है। बंगाल के कायस्थो की एक शाखा अपने को नागवंशीय कहती है। अपने नाम के साथ नाग अल्ल धारण करते हैं।

मध्य प्रदेश के गोंड़ लोग अपने को नागवंशीय मानते है। आसाम की सूरमाघाटी मे नाग जाति की आबादी है। उन्ही के नाम पर भारत के एक प्रदेश का नाम 'नागालैण्ड' पड़ा है।

नागवंश सम्बन्धी अनेक गाथायें चीन, दक्षिण पूर्व एशिया, जापान मे प्रचलित है। बौद्ध तथा हिन्दू गाथाओ में नाग गाथाओं का तथा उनसे सम्बन्धित अनेक प्रसंगो का वर्णन मिलता है। अजन्ता की भित्तिचित्र पर उनका अस्तित्व मिलता है।

तक्षक नाग मुख्य नाग रहा है। उसी के नाम पर तक्षशिला नाम पड़ा था। अफगानिस्तान के प्राचीन गान्धार देश में नाग जाति का अस्तित्व था। अफगानिस्तान का एक बहुत बड़ा समाज अपने को पूर्व कालीन नाग वंशीय मानता है।

नाग तथा नागा प्रायः शिव तथा शैवमत से सम्बन्धित किये गये है। शिव का आभूषण ही नाग है। दक्षिण भारत का शैवमत उत्तर भारत मे पहुँचा। उनकी स्मृति नागा तथा नेपाल की नायर जाति में अभी तक अक्षुण्ण है। अनेक नगर नाग के नामपर बसे है—जैसे नागपुर।

उत्तर भारत में नाग पंचमी का पर्व बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। कहा है कि नागपंचमी ब्राह्मणों का, विजय दशमी क्षत्रियों का, दीपावली वैश्यों का और होली शूद्र का पर्व है।

नाग पंचमी के दिन नाग पूजा होती है। सर्पों तथा नागों के रहने की जहाँ सम्भावना होती है वहाँ दूध में धान का लावा डालकर दोना अथवा मिट्टी की दीया में रख दिया जाता है। मैं काशी बाल्यावस्था में अपने शिवनिवासस्थित वाराणसी शहर के बगीचा, तालाब, भीत तथा कुंओं पर रखता रहा। मेरे घर में अब भी नागपंचमी के दिन काशी में कोठरियों तथा पोखर के गृह में कुण्ड में धान का लावा तथा दूध रखा जाता है। काशी में बालक नाग पंचमी के दिन कागज पर छपे नाग के चित्र को बेचते कहते हैं—'बड़े गुरु' का 'छोटे गुरु' का नाग लो।

गुरु शब्द महत्त्वपूर्ण है। काशी में नाग कूपी एक मुहल्ला है। वहाँ हजारों वर्ष पुरानी विशाल बावली है। काशी के ब्राह्मण लोग वहाँ पर एकत्रित होते है। शास्त्रार्थ होता है। गुरु तथा शिष्य सभी शास्त्रार्थ में सम्मिलित होते है। यह स्थान अब मुसलमानी मुहल्ले में पड़ गया है। समय परिवर्तन के कारण अब न तो यहाँ पहले जैसा मेला लगता है और न तो शास्त्रार्थ के लिये उत्साह पूर्वक गुरु शिष्य आते हैं। दो चार ब्राह्मण आ जाते हैं। पुरानी बातें दुहरायी जाती है।

महाभारत के अनुसार शेष नाग सर्व प्रथम उत्पन्न हुए थे। तत्पश्चात् वासुकी, ऐरावत, तक्षक कार्कोटक तथा धनजयादि नाग उत्पन्न हुए थे। कार्कोटक नाग के अर्जुन के जन्म दिवसपर जाने का उल्लेख मिलता है। (म० आ० १२९ : ७१)

शेषस्तु प्रथमो जातो वासुकिस्तदनन्तरम्।
ऐरावतस्तक्षकश्च कार्कोटकधनजयौ ॥

—म० आ० ३५:५

निश्चिन्वते हि ज्ञंमन्या यमेवायोग्यमाग्रहात् ।
जिगीषयेव तत्रैव निदधाति विधिः शुभम्[1] ॥ ४९१ ॥

४९१. अपने को विज्ञ मानने वाले जिसे हठात् अयोग्य सिद्ध करते हैं, उसी में विजय की इच्छा से विधि शुभ रख देता है।

मात्सर्येण जहद् ग्रहान्निरसदृशे धूमध्वजे योग्यतां
ज्ञात्वा स्वां निदधत् त्विषं दिनपतिर्हास्य. प्रशान्त्युन्मुखः ।
दैवं वेत्ति न यः शिखी स परतो नामास्तु तत्संभवाः
स्युर्दीपा अपि यद्वशेन जगतस्तिग्मांशुविस्मारकाः[1] ॥ ४९२ ॥

४९२. मात्सर्य से नक्षत्रों को तिरस्कृत करते एवं अपने को समर्थ जानकर अतुलनीय अग्नि में अपनी कान्ति रखते हुए, अस्तोन्मुख सूर्य[2], उपहास पात्र होता है। जो अग्नि देव को नहीं जानता है, वह तो दूर रहे, उससे उत्पन्न जगत् के दीपक भी जिसके प्रभाव से सूर्य के विस्मारक होते हैं।

धिया भाग्यानुगामिन्या चेष्टमानो नयोचितम् ।
अभूत्सर्वस्य चक्षुष्यः स तु दुर्लभवर्धनः ॥ ४९३ ॥

४९३. और वह दुर्लभवर्धन भाग्यानुगामिनी बुद्धि द्वारा नयोचित चेष्टा करता हुआ सर्वजनप्रिय हो गया।

प्रज्ञया द्योतमानं तं प्रज्ञादित्य इति प्रथाम् ।
कौबेरभाग्यसाम्यं च शनकैः श्वशुरोऽनयत् ॥ ४९४ ॥

४९४. शनैः शनैः श्वशुर ने प्रज्ञा से द्योतमान उसे प्रज्ञादित्य नाम से ख्यात कर कुबेरतुल्य भाग्यशाली बना दिया।

कश्मीर के भ्रमण काल में मैं किस्तवार गया था। भद्रवा पहुँचा। स्थान अत्यन्त सुरम्य है। मुझे वहाँ 'वासुकी पुराण' की बात कही गयी। यह भी नीलमत पुराण की तरह एक उप-पुराण है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९१ में 'निश्चिन्वते' का 'निश्चिन्वाते' तथा 'ज्ञमन्या' का पाठभेद 'ज्ञामन्या', 'ज्ञंमन्या' तथा 'ज्ञंमध्या' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४९१ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ८३वाँ श्लोक है।

४९२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८४वाँ श्लोक है।

(२) सूर्य : सूर्य जब अस्त होता है तो कहा जाता है कि वह अपनी ज्योति अग्नि में संग्रहीत कर देता है जिससे अग्नि प्रज्वलित रहती है।

कहावत है कि चन्द्रमा के समान दीप भी अपना प्रकाश सूर्य से ग्रहण करता है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४९४ में 'कौबेर' का 'कौबीर' तथा 'साम्यं' का पाठभेद 'स्वम्य' मिलता है।

पित्रोः प्रेयस्तयोद्वृत्ता तारुण्यादिमदेन च ।
राजपुत्री यथावत्तु गणयामास नैव तम् ॥ ४९५ ॥

४९५. माता पिता की प्रियता, तारुण्य आदि के मद के कारण प्रमत्त राजपुत्री ने उसे (पति को) यथोचित सम्मान नहीं दिया ।

स्वैरिणीसंगमो भोगा युवानोऽग्रे पितुर्गृहम् ।
पत्युर्मृदुत्वमित्यस्याः किं नाभूच्छीलविघ्नकृत्[1] ॥ ४९६ ॥

४९६. स्वैरिणी-संगम, भोग, युवापुरुष-सहवास, पितृगृह, पति की मृदुता इसे प्राप्त थे । इसमें कौन इसे शीलच्युत करने वाला नहीं थी ?

सा नित्यदर्शनाभ्यासाच्छनकैर्विशता मनः ।
अनङ्गलेखा खङ्खेन संप्रायुज्यत मन्त्रिणा ॥ ४९७ ॥

४९७. नित्यदर्शन अभ्यास से धीरे धीरे (उसके) मनमें प्रविष्ट मन्त्री खङ्ख पर अनंगलेखा आसक्त हो गयी ।

छन्नप्रेमसुखाभ्यासनष्टह्रीभीतिसंभ्रमा ।
धार्ष्ट्यं दिनाद्दिनं यान्ती ततस्तन्मयतां ययौ[1] ॥ ४९८ ॥

४९८. प्रच्छन्न प्रेम, सुख के अभ्यास से लज्जा, भय, सम्भ्रम रहित, वह दिन प्रति दिन धृष्ट होती हुई, तन्मय हो गयी ।

स मन्त्री दानमानाभ्यां वशीकृतपरिच्छदः ।
अन्तःपुरे यथाकामं विजहार तया सह ॥ ४९९ ॥

४९९. उस मन्त्री ने दान-मान, द्वारा परिजनों को स्वाधीन करके अन्तःपुर में उसके साथ स्वेच्छापूर्वक विहार किया ।

उपलेभे च शनकैस्तस्यास्तं शीलविप्लवम् ।
विरागलिङ्गैरुद्यद्भिः धीमान् दुर्लभवर्धनः ॥ ५०० ॥

५००. बुद्धिमान दुर्लभवर्धन ने धीरे-धीरे (स्त्रीके) प्रकट होते विराग आदि चिन्हों से उसके उस शील विप्लव को जान लिया ।

पादटिप्पणियाँ :

४९६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का वह ८५ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४९७ में 'संप्रायु' का पाठभेद 'सम्प्रयु' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४९८ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८६ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४९९ में 'सह' का पाठभेद 'समम्' मिलता है ।

सखीमध्ये रहः स्मेरा विवर्णा भर्तृदर्शने ।
अकाण्ड एव प्रोत्थाय पश्यन्ती सस्मितं पथः ॥ ५०१ ॥

५०१. एकान्त में सखी मध्य सस्मिता वह भर्ता दर्शन से विवर्ण हो जाती थी और अकाण्ड ही उठकर सस्मित पथ को देखती थी[1] ।

पत्युः कोपे कृतावज्ञा भ्रूनेत्रचिबुकाञ्चनैः ।
तदप्रियं भाषमाणे सस्मितं न्यस्तलोचना ॥ ५०२ ॥

५०२. उसके प्रति अप्रियभाषण करने पर पति प्रकोप की भ्रू, नेत्र, चिबुकों के संकोच पूर्वक वह न्यस्त लोचन सस्मित अवज्ञा कर देती थी ।

तत्तुल्यगुणनिर्विण्णा तद्विपक्षस्तुतौ रता ।
रिरंसां तस्य संलक्ष्य सखीभिर्बद्धसंकथा ॥ ५०३ ॥

५०३. तदनुरूप गुणों के प्रति निर्विण्ण और उसके प्रतिकूल पक्ष की स्तुति में रत वह पति की रिरंसा को संलक्षित कर सखियों के साथ वार्ता में लग जाती थी ।

तच्चुम्बने भुग्नकण्ठी तदाश्लेषासहाङ्गका ।
तत्संभोगे त्यक्तहर्षा तत्तल्पे व्याजनिद्रिता ॥ ५०४ ॥

५०४. उसके चुम्बन में तिर्यक् कण्ठ हो जाती, उसके आलिंगन को असह्य अनुभव करती, उसके सम्भोग में सव्याज निद्रित हो जाती ।

भवेद्धि प्रायशो योषित् प्रेमविक्रीतचेतना ।
निवेदयन्ती दौःशील्यपिशाचावेशवैकृतम्[1] ॥ ५०५ ॥

५०५. प्रेम विक्रीत चेतना योषित् प्रायशः दुश्शीलता वश पिशाचावेशवत् वैकृत प्रकट करती है ।

श्लोक संख्या ५०१ में 'प्रोत्थाय' का पाठभेद 'प्रोक्ताय' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५०१ (१) श्लोक संख्या ५०१ से ५०५ तक का अनुवाद श्रोस्तीन, श्री पण्डित आदि प्रायः सभी अनुवादकों ने एक साथ किया है । श्री कल्हण पण्डित ने उन्हें एक साथ युग्मम्, तिलकम्, कुलकम् के समान एक नहीं रखा है । एक प्रति में 'कुलकम्' भी लिखा मिला है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०२ में 'ञ्चनैः' का पाठभेद 'ञ्चलैः' मिलता है ।

श्लोक संख्या ५०३ में 'तत्तुल्य' का पाठभेद 'तत्तुल्य' मिलता है ।

श्लोक संख्या ५०४ में 'श्लेषास' का पाठभेद 'श्लेषे स' तथा 'निद्रिता' का 'निद्रता' मिलता है ।

श्लोक संख्या ५०५ के पश्चात् 'कुलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५०५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८७ वा श्लोक है । यह पद सुभाषित है ।

निगूढदारदौरात्म्यचिन्ताकृशवपुस्ततः ।
शुद्धान्तमविशज्जातु निशि दुर्लभवर्धनः ॥५०६॥

५०६. पत्नी के निगूढ दौरात्म्य की चिन्ता वश कृश शरीर दुर्लभवर्धन कदाचित् रात्रि काल में शुद्धान्तःपुर में प्रवेश किया।

सोऽपश्यत्सुरतक्लान्तिसुलभस्वापनिस्सहाम् ।
दुर्जारभर्तुरङ्गेषु प्रत्युप्तामिव वल्लभाम् ॥ ५०७ ॥

५०७. उसने देखा—सुरति क्रान्ति सुलभ स्वाप (शयन) युक्त (उसकी) वल्लभा दुर्जार भर्ता के अंग से लिपटी है।

श्वासैरगलितावेगैः कम्पयद्भिः कुचाङ्कुरौ ।
निवेदयन्तीं तत्कालमेव निर्वहणं रतेः ॥ ५०८ ॥

५०८. कुचाङ्कुरों को कम्पित करते श्वास प्रश्वासों से तत्काल ही रति समाप्ति का बोध करा रही थी।

अन्यस्यापि क्रोधहेतुं पुनरप्यक्षमावहाम् ।
तां तथाऽवस्थितां वीक्ष्य स प्रजज्वाल मन्युना ॥ ५०९ ॥

५०९. दूसरों के लिये भी क्रोध निमित्त एवं अक्षम्य उसे, उस अवस्था में देखकर, वह क्रोध से प्रज्वलित हो उठा।

प्रजिहीर्षुः स रोषेण विमर्शेन निवारितः ।
प्रहृत्येव प्रहृत्येव निवृत्तं स्वममन्यत ॥ ५१० ॥

५१०. क्रोध से प्रहारेच्छुक, वह विमर्श के कारण निवारित हो, अपने को प्रहार करने से बचा लिया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ५०६ में 'जातु' का पाठभेद 'ज्ञातु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५०६ (१) शुद्धान्त : इसका शाब्दिक अर्थ शुद्ध अन्तरोध होता है। यह रनिवास किंवा अन्तःपुर के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०७ में 'सोऽपश्यत्' का 'योऽपश्यत्' तथा 'दुर्जार' का पाठभेद 'दुर्जात' मिलता है।

श्लोक संख्या ५०८ में 'दयन्तीं' का पाठभेद 'दयन्तो' तथा 'दयन्ती' मिलता है।

श्लोक संख्या ५०९ में 'क्रोध' का पाठभेद 'क्रुधो' तथा सुझाव है कि 'पुनः' का पाठभेद 'मुने' होना चाहिये।

श्लोक संख्या ५१० में 'स' का पाठभेद 'स्म' मिलता है।

ततस्तथाविधः क्षुभ्यन् प्रकोपावेशसागरः ।
विचारवेलया तस्य बलाच्छममनीयत ॥ ५११ ॥

५११. तथाविध उस क्षुब्ध होते प्रकोपावेश सागर का उसकी विचार (वेला तट) ने बलात् शान्त कर दिया।

नमस्तस्मै ततः कोऽन्यो गण्यते वशिनां धुरि ।
जीर्यन्ते येन पर्याप्ता ईर्ष्याविषविषूचिकाः[1] ॥ ५१२ ॥

५१२. उसे नमस्कार है—उसके अतिरिक्त अन्य कौन जितेन्द्रियों में अग्रणी है जो पर्याप्त ईर्ष्याविष विसूचिका को नष्ट कर देता है।

सोऽचिन्तयदहो कष्टाश्चेष्टा रागानुगा इमाः ।
विचारवन्ध्याः क्षिप्यन्ते क्षिप्रं याभिरधो नराः ॥ ५१३ ॥

५१३. उसने चिन्तन किया—'अहो ! रागानुगामी ये चेष्टाएं कष्टकर है, जिनके द्वारा विचार शून्य नर क्षण मात्र में नीचे फेंक दिये जाते हैं—

स्त्रीति नामेन्द्रियार्थोऽयमिन्द्रियार्था यथा परे ।
तथैव सर्वसामान्या वशिनामत्र काः क्रुधः[1] ॥ ५१४ ॥

५१४. 'स्त्रीनाम की वस्तु इन्द्रियार्थ[2] है ; जैसे अन्य वस्तुएँ इन्द्रिय योग्य होती है, उसी प्रकार वे सर्व सामान्य हैं, अतः वहां जितेन्द्रियों के लिये क्रोध का कौन अवसर है ?

निसर्गतरला नारीः को नियन्त्रयितुं क्षमः ।
नियन्त्रणेन किं वा स्याद्यत्सतां स्मरणोचितम्[1] ॥ ५१५ ॥

५१५. 'निसर्ग तरल नारी को नियन्त्रित करने में कौन समर्थ है ? अथवा नियन्त्रण से क्या होगा जो कि सज्जनों के लिये स्मरणीय हो।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५११ में 'क्षुभ्यन्न' का पाठभेद 'क्षुभ्यत्प्र' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५१२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८८ वा श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१३ मे 'कष्टा श्चेष्ठा' का पाठभेद 'कष्टाः' श्रेष्ठा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ:

५१४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८९ वां श्लोक है। यह पद सुभाषित है।

(२) इन्द्रियार्थ : यहाँ पर विषयों के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। न्याय शास्त्र के अनुसार रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श है। 'स्त्री' यहा पर मालूम होता है छठे विषय के रूप में कल्हण ने प्रयोग किया है।

५१५ (१) राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ९० वा श्लोक है। यह पद सुभाषित है।

यः शुनोरिव संघर्ष एकार्थाभिनिविष्टयोः ।
रागिणोर्यदि मानः स कोऽवमानस्ततः परः[1] ॥ ५१६ ॥

५१६. 'किसी एक वस्तु पर अभिनिवेश रखने वाले दो श्वानतुल्य दो रागियों का जो संघर्ष है, वह यदि मान है, तो उससे बढ़कर अपमान क्या हो सकता है ?

ममकारो मृगाक्षीषु क इवायं सचेतसाम् ।
स्वदेहेऽनुपपन्नोऽपि यः सोऽन्यत्र कथं मतः ॥ ५१७ ॥

५१७. 'बुद्धिमान् जनों का मृगाक्षियों में अपनत्व कैसे ठीक हो सकता है, जो कि अपने देह में ही अनुपपन्न है, वह अन्यत्र कैसे संगत हो सकता है ?

उद्वेगोत्पादनादेषा वध्या चेत्प्रतिभाति मे ।
रागस्तद्विस्मृतः कस्मान्मूलमुद्वेगशाखिनः ॥ ५१८ ॥

५१८. 'उद्वेग उत्पन्न करने के कारण यह यदि मुझे वधयोग्य प्रतीत हो रही है तो, वह राग कैसे भूल जाऊँ जो उद्वेग वृक्ष का मूल है ।

सप्तपातालनिक्षिप्तमूलो रागमहीरुहः ।
भूमिभूतमनुत्पाट्य द्वेषमुन्मूल्यते कथम्[1] ॥ ५१९ ॥

५१९. "राग महीरुह का मूल सप्त पाताल यावत् निक्षिप्त है, अतएव भूमिभूत रागोत्पाटन के विना द्वेष का उन्मूलन कैसे सम्भव है ?

द्वेषो नामैष दुर्धर्षो जितो येन विवेकिना ।
क्षणार्धेनैव रागस्य तेन नामापि नाशितम् ॥ ५२० ॥

५२०. 'जिस विवेकी ने इस दुर्धर्ष द्वेष को विजित कर लिया, उसने क्षणार्ध में ही, राग का नाम मिटा दिया ।

वीक्ष्यैतद्दिव्यया दृष्ट्या रागिणां वाच्यमौषधम् ।
ईर्ष्या जेया ततो रागः स्वयमाशाः पलायते ॥ ५२१ ॥

५२१. 'दिव्य दृष्टि पूर्वक देखकर इसे रागियों का औषध कहना चाहिए, ईर्ष्या विजय करो, उससे राग स्वयं दिशाओं में पलायित हो जाता है ।'

---

५१६ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ९१ वाँ श्लोक है ।

५१७ (१) राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ९२ वा श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१९ मे 'नुत्पाट्य' का पाठभेद 'नुत्पाद' मिलता है ।

५१९ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ९३ वा श्लोक है ।

५२० (१) राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ९४ वा श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२१ मे 'वाच्य' का पाठभेद 'वास्य' मिलता है ।

इति ध्यात्वाऽलिखद्वर्णान् खङ्खस्यांशुकपल्लवे ।
'वध्योऽपि न हतो यत्त्वं स्मर्तव्यं तत्तवेत्यसौ' ॥ ५२२ ॥

५२२. इस प्रकार ध्यान कर खंख के अंशुक पल्लव पर इन वर्णों को लिखा—'वध्य भी, जो तुम नहीं वध हुए, यह स्मरण रखना ।'

जनैरलक्ष्यमाणेऽथ याते दुर्लभवर्धने ।
त्यक्तनिद्रः स मन्त्री तान् दृष्ट्वा वर्णानवाचयत् ॥ ५२३ ॥

५२३. बिना किसी के देखे दुर्लभवर्धन के चले जानेपर जागृत उस मंत्री (खंख) उन वर्णों को देखकर पढ़ा ।

दाक्षिण्यात्प्राणदस्यास्य खङ्खः स मनसा तदा ।
विसस्मारानङ्गलेखां दध्यौ तु प्रत्युपक्रियाम् ॥ ५२४ ॥

५२४. उस समय खंख अनंगलेखा को चित्त से विस्मृत कर दिया और दाक्षिण्य से प्राण प्रद उसके प्रति प्रत्युपकार भावना धारण किया ।

तस्योपकर्तुरुचितं प्रतिकारमिच्छोः
चिन्ताऽविशन्न तु मनः स्मरबाणपङ्क्तिः ।
दृग्गोचरे परिचयप्रणयं प्रपेदे
निर्निद्रता न तु कदाचन राजपुत्री ॥ ५२५ ॥

५२५. उस प्रत्युपकारेच्छुक के मन में उपकर्त्ता के योग्य प्रत्युपकार करने की चिन्ता प्रवेश की, न कि स्मरबाण पंक्ति । उसकी दृष्टि में अनिद्रता ने परिचय प्रणय प्राप्त किया, न कि कभ' उस राजपुत्री ने ।

भूत्वा सप्तत्रिंशतिमब्दान्स चतुर्भि-
र्मासैर्वन्द्यां मूर्धनि रत्नं नृपतीनाम् ।
तस्मिन्काले लोकमवापोज्ज्वलकृत्यो
बालादित्यो बालशशाङ्काङ्कितमौलेः ॥ ५२६ ॥

५२६. वह चार मास न्यून सैंतीस वर्ष राजाओं का शिरोरत्न होकर उज्ज्वल कृत्य शील बालादित्य, बाल शशांकांकित मौलि का लोक प्राप्त किया ।

श्लोक संख्या ५२२ में 'तान्' का 'तद' पाठ भेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५२५ (१) स्मर । काम के हाथों में पाच पुष्प बाण होते हैं । समझता हूँ कि पांचो कर्म एवं ज्ञानेन्द्रियों के बाण सूचक हैं । क्योंकि किसी प्रकार का कर्म इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा होता है । काम भावना की जागृति में इन्द्रियां ही सहायक होती हैं । इन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से काम आक्रमण करता है ।

परिशिष्ट 'क'

नीलमत पुराण

(तरंग : १ : १४ : पृष्ठ—१०)

कश्मीर के पुरा कालीन इतिहास पर प्रकाश नीलमत पुराण द्वारा पड़ता है। कल्हण ने राजतरंगिणी की बहुत कुछ सामग्री नीलमत पुराण से प्राप्त की है। कल्हण ने स्वयं इसे स्वीकार किया है।

नीलमत पुराण वास्तव में पुराणों की परिभाषा में पुराण है अथवा नहीं, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है या नहीं ? उसकी गणना पुराणों में की जा सकती है या नहीं ? यह विद्वानों की चर्चा का विषय रहा है। कश्मीर में धार्मिक, ऐतिहासिक एवं काव्य ग्रन्थ लिखने की प्राचीन परम्परा रही है। 'योग वाशिष्ठ' जैसा ग्रन्थ भी या तो कश्मीर में लिखा गया था अथवा उसका प्राप्य वर्तमान संस्करण कश्मीरी है। (योग वाशिष्ठ कथा : भूमिका) एक मत है कि विष्णुधर्मोत्तर पुराण वैष्णव पुराण है। कश्मीर में लिखा गया था (स्मृति तत्त्व : जीवानन्द विद्यासागर : २ : ४६७-४६८)। नीलमत पुराण की रचना कश्मीर उपत्यका में हुई थी। यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है। यह पुराण नहीं उपपुराण है। स्थानीय किंवा लौकिक उपपुराण वर्ग में आता है।

वायु पुराण (१ : १८१) में उल्लेख है : 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' वेद और पुराण साथ स्थित थे। दोनों में निकट सम्बन्ध था। अथर्व वेद के व्रात्य सूक्त में इतिहास पुराण का चारों वेदों के साथ उल्लेख किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार परम पितामह ब्रह्मा वेद और पुराण दोनों के स्रोत हैं। एक मत पुराण को वेद से प्राचीन मानता है। पुराणों को सरलतापूर्वक समझाने के लिए वेदों का अभ्युदय हुआ है। वेद केवल सृष्टि विद्या पर प्रकाश डालता है। पुराणों का क्षेत्र अधिक व्यापक है। उनकी आख्यान शैली वेदों के समान है। वे लगभग चार लाख श्लोकों में लिपिबद्ध हैं। वेद एवं पुराण दोनों पुराकालीन आख्यानों पर आधारित हैं।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिस्सृताः॥

—मत्स्य पुराण ३ : ३–४

पुराण वेद के प्राधिकार का आदर करता है। वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करता है। उसे प्रमाण मानता है।

'सर्ववेदार्थसाराणि पुराणार्थः।'—नारदीय १ : ९ : १००

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥—नारदीय २ : २४ : १७ ; स्कन्द, रेवा, १।२२ पू०

यो न वेद पुराणं हि न स वेदात्र किंचन।—स्कन्द पुराण : रेवा खण्ड

आत्मा पुराणं वेदानाम्।—स्कन्द पुराण रेवाखण्ड १।२२ उ०

पुराणों के लिए निम्नलिखित पाँच लक्षणो का होना आवश्यक माना गया है। इन लक्षणों के आधार पर नीलमत पुराण को तोलना होगा।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच-लक्षणम् ॥
—मार्कण्डेय पुराण १३५ : १३

पुराण मे सृष्टि (सर्ग), प्रलय (प्रतिसर्ग), वंश, मन्वन्तरो तथा वंशानुचरित किंवा पुरातन चरित का वर्णन किया जाता है। कौटिल्य ने इतिहास वर्ग में इतिवृत्त तथा पुराण को माना है। (अर्थशास्त्र १:३) इतिवृत्त में ऐतिहासिक घटनायें अधिक रहती है। परन्तु पुराण में कथा, गाथा आदि का समावेश होता है।

सामाजिक जीवन को एक ओर प्रवृत्त करने के लिए, सर्वसाधारण को अनुप्राणित तथा उन्हें सुपथ पर लाने के लिए पुराण ने अनादि काल से मार्ग दर्शन किया है। पुराण वर्णाश्रम धर्म, सदाचार, व्रत, उपवास, तिथि-कल्प, दान, तीर्थ, श्राद्ध, राजधर्म, देवार्चन पूजा, विनय तथा शील का अद्भुत कोष है।

'नीलमत' पुराण, नील के मत का वर्णन करता है। इसमें भागवत, वायु, गरुड़, ब्रह्म, मार्कण्डेय, स्कन्दादि पुराणो के समान विशाल ज्ञान-भण्डार, आख्यान तथा वस्तु सामग्री नही है। वह लघु ग्रन्थ है। उसका क्षेत्र व्यापक नही है। सीमित है। नीलमत पुराण को महापुराणों की श्रेणी में रखना उचित नही होगा। उसका महत्त्व लौकिक है। प्रादेशिक है। निस्संदेह उसमे अन्य विषयों का भी उल्लेख है। उसकी रचना शैली तथा वस्तु सामग्री उसे स्थानीय अथवा उपपुराणों के वर्ग मे रखने के लिए प्रेरित करती है।

नीलमत पुराणो की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर सकता है। वंशचरित का वर्णन करता है। कल्हण ने उसमे ऐतिहासिक सामग्री ली है। शैली पुराणों जैसी प्राचीन है। उसमे संवाद प्रतिसंवाद रूप से घटनाओं तथा कथा वस्तु का वर्णन किया गया है। उसमें माहात्म्यो का वर्णन है। कपटेश्वर, आश्रम स्वामी, विनस्ता माहात्म्य का विस्तृत उल्लेख है। कुछ विद्वानो ने इसे माहात्म्य की श्रेणी मे रखने का प्रयास किया है। परन्तु कल्हण स्वयं नीलमत को पुराण मानता है न कि माहात्म्य। (अ० १ : १७८–१८३)

इस पुराण का शीर्षक महत्त्वपूर्ण है। 'मत' शब्द का प्रयोग किया गया है। नाम 'नीलमत' है। स्पष्ट करता है। पुराण नील मुनि के मत का संग्रह है। वायु, मार्कण्डेय, गरुड, ब्रह्म पुराण के समान इसे भी नील नाम से सम्बन्धित किया गया है।

मै सन् १९६१ ई० में कश्मीर के मद्रवा स्थान में गया था। जिस समय मै गया था मार्ग दुरूह था। सड़कें बन रही थी। इस समय सड़कें बन गई है। यातायात सुगम हो गया है। बस तथा मोटर वहाँ पहुँच सकती हैं।

मद्रवा में वासुकी नाग का एक मन्दिर है। मुझे मालूम हुआ कि वासुकी पुराण एक समय वहाँ प्रचलित था। अधिक अनुसन्धान पर निष्कर्ष निकला कि वह वासुकी नाम का कोई पुराण नही है। इसी प्रकार एक रत्नाकर पुराण का उल्लेख मिला है। रत्नाकर पुराण का यदि कभी अस्तित्व रहा होगा तो वह भी कश्मीर में प्रचलित उपपुराण ही था। भारतवर्ष मे इस प्रकार के १०० या इससे अधिक पुराण एवं उपपुराण प्रचलित थे। अनेकों का उल्लेख मिलता है। अनेकों के नाम लोप हो गये है। कश्मीर उपत्यका से मद्रवा क्षेत्र कम सुन्दर नहीं है। जिस समय मैं वहाँ गया था शाली अर्थात् धान के खेत लहलहा रहे थे। कटाई निकट होने के कारण धान कुछ कुछ पका था। हरियाली लोप हो रही थी। सुनहलापन आ गया था। मालूम होता था। सुनहले धान

को बालियाँ खेतो में खडी हैं । किंचित् मरुत् स्पर्श से विस्तृत धान क्षेत्र में सुनहली लहरें लहर लेने लगती थी। आधुनिक यन्त्रमय जगत् तथा प्रतिदिन के राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक वैषम्यों से दूर, हिमाद्रि की गोद में यह स्थान साधना तथा अध्यात्म चिन्तन के लिए अनुपम स्थान है।

नीलमत पुराण का नाम—नीलमत, नीलमत पुराण, नील पुराण तथा कहीं-कही कश्मीर माहात्म्य के रूप में मिलता है। स्वर्गीय डा० भण्डारकर ने इस पुराण को 'कश्मीर माहात्म्य' की संज्ञा दी है। यह ठीक नही प्रतीत होता।

कल्हण ने राज तरंगिणी में दो बार नीलमत, दो बार पुराण तथा एक बार नील पुराण नाम से नीलमत पुराण का उल्लेख किया है। [रा० त० १:१४,१६,१७१,१७८,१८३२]

नीलमत पुराण का ऐतिहासिक महत्त्व है। कुछ विद्वानो का मत है : 'नीलमत पुराण' सन् ६००-७०० ई० के मध्य लिखा गया है। पुराणों का रचना-काल विवादास्पद है। पुराणों के रचना, संकलन, संस्करणों का निश्चय नही हो सका है। कुछ विद्वानों का मत है। वायु पुराण ई० पूर्व ५००, ब्रह्माण्ड पुराण ई० पूर्व ४००, विष्णुपुराण ७००-४०० ई० पूर्व, मत्स्य पुराण ३०० ई० पूर्व तथा भागवत पुराण का रचना काल सन् ३०० ई० है। नीलमत पुराण के रचना-काल के विषय में अनेक मत है। यह निर्विवाद है नीलमत की कथावस्तु अत्यन्त प्राचीन है। उसकी अनेक बातें पुराणो के विपरीत प्रतीत होती है। अनेक विषयों में उसका अपना मत है। अपनी मौलिकता है। सहस्रों वर्ष से कश्मीर में प्रचलित जनश्रुतियों, कथाओं, परम्पराओं, स्थानों, वंशावलियों का उल्लेख है। स्वीकार करना होगा। उसका रचना-काल चाहे प्राचीन न हो फिर भी उसमें पुरातन तथ्यो का समावेश है।

कल्हण के उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है। नीलमतपुराण प्राचीन ग्रन्थ था। उसका अस्तित्व बारहवीं शताब्दी के पूर्व था। आभ्यन्तर साक्ष्य से नीलमत की प्राचीनता सिद्ध होती है। क्षेमेन्द्र, जयरथ तथा कल्हण ने बुद्ध भगवान् के सम्बन्ध के जो विचार प्रकट किये है वे नीलमत से सर्वथा भिन्न है—नीलमत के भगवान् बुद्ध को महत्त्वपूर्ण स्थान पूजा, उपासना आदि के प्रसंग में दिया गया है। उसमें बुद्धका प्रादुर्भाव कहा गया है। अवतार शब्द का न होना नीलमत की प्राचीनता प्रमाणित करता है। बुद्ध को अवतार मानने का समय बहुत बाद का है। बुद्ध धर्म नीलमत पुराण में हिन्दू-धर्म का विरोधी मत किंवा धर्म रूप में चित्रित नही किया गया है। नीलमत उस समय की कृति है जब कश्मीर में बुद्धधर्म प्रचलित था। आदर की दृष्टि से देखा जाता था। हिन्दूधर्म में विस्तार से वर्णित कल्किअवतार, कृष्ण राधा, तुलसी आदि का अभाव नीलमत में खटकता है। इस बात की ओर संकेत करता है ग्रन्थ उस समय की रचना है जब कल्कि अवतार, राधा, तथा तुलसी दल की कल्पना नही की गयी थी। हरचरित चिन्तामणि से भी नीलमत पुराण प्राचीन है। उसके समकालीन इसे रखना उचित नही है। हरचरित चिन्तामणि मे शिव को महत्त्वपूर्ण विशेष स्थान दिया गया है। इस बात का प्रमाण है। शैव दर्शन तथा सिद्धान्त का कश्मीर में पर्याप्त विकास हो चुका था। यह काल नीलमत का पूर्ववर्ती काल है। कल्हण का बौद्धों की तुलना यक्षों से करना साबित करता है। कश्मीर में बौद्धधर्म उसके समय प्रायः लोप हो चुका था। आदर खो चुका था। जब कि नीलमत में बुद्ध तथा बौद्धोंका आदर किया गया है।

श्री लक्ष्मीधर ने कृत्य कल्पतरु (नियत काल काण्ड) जो बारहवी शताब्दी के पूर्व अर्धशती की रचना है, उसमें ब्रह्मपुराण के श्लोकों का उद्धरण दिया है। प्रायः वे ही श्लोक नीलमत पुराण में भी है। इस प्रकार के कम से कम साठ पद है। किन्तु प्रकाशित ब्रह्मपुराण में वे पंक्तियाँ नहीं मिलती। इससे

प्रतीत होता है, कोई एक और ब्रह्मपुराण का संस्करण उस समय उपलब्ध था अथवा ब्रह्मपुराण नामका कोई एक और ग्रन्थ था। प्राप्त ब्रह्म पुराण का उल्लेख हेमाद्रि, शूलपाणी, वाचस्पति मिश्र आदि में मिलता है। तथा दूसरे ब्रह्मपुराण का उल्लेख लक्ष्मीधर, जीमूतवाहन, अपरार्क, हरदत्त, अनिरुद्ध भट्ट आदि में मिलता है। निस्सन्देह मानना पडेगा। ब्रह्मपुराण में कश्मीर का जो उद्धरण दिया गया है वह कश्मीरी लोगों की ही रचना है। उसकी रचना कश्मीर में हुई थी। अधिक सम्भावना है। वह नीलमत पुराण में ली गयी है। नीलमत के संस्करण होते रहे हैं। नवी दशवी शताब्दी में कश्मीर के शैवदर्शन का नीलमत पुराण में समावेश करने का प्रयास किया गया है। नीलमत पुराण में विष्णुधर्मोत्तर पुराण के कुछ पद संशोधित किंवा परिवर्तित रूप में मिलते हैं। इस पुराण का काल चौथी से पाँचवीं शताब्दी का मध्यकाल माना गया है। नीलमत में वैष्णव, शैव तथा बौद्धधर्म एक साथ विकसित और रहते दिखायी देते हैं। कनिष्क के समय में बौद्धधर्म का प्राबल्य कश्मीर में हो गया था। अतएव नीलमत का अस्तित्व कश्मीर में चौथी से छठी शताब्दी के पूर्व होना निर्विवाद प्रतीत होता है। ह्वेनसाग (सातवी शताब्दी) नील के मत का उल्लेख करता है। अतएव ह्वेनसाग के पूर्व नील मत पुराण का कश्मीर में अस्तित्व था।

कल्हण ने राजतरंगिणी (त. १६) वर्णित प्रथम चार राजाओं गोनन्द, दामोदर, यशोवती तथा गोनन्द द्वितीय तथा श्लोक संख्या १ : ५०-८२ नीलमत के श्लोको से मिलाया जाय तो यह प्रमाणित होता है कि कल्हण ने उन्हे नीलमत से लिया है। कल्हण ने लुप्त राजाओं का उद्धरण, ज्येष्ठेश की कथा, सोदर तीर्थ वर्णन, पिशाच कथा, तीर्थों तथा सतीसर, नीलजा अर्थात् वितस्ता का वर्णन नील मत पुराण के आधार पर किया है।

पुराणो के समय-समय पर अनेक लेखको तथा सम्पादकों द्वारा संस्करण होते रहे है। कोई भी कागज अथवा भोजपत्र पर लिखी गयी पुस्तक एक सहस्र किंवा दो सहस्रों वर्षों से अधिक काल तक स्थायी नही रह सकती। अतएव उनका पुनर्लेखन अथवा संस्करण समय-समय पर होता रहा हैं। संस्करण किंवा पुनर्लेखन करने वाले के लिये अपने समय की घटना अथवा अपने मतके प्रतिपादन हेतु कुछ न कुछ पुस्तकों में परिवर्धन, परिवर्तन किंवा संशोधन कर देना असंभव नही है। पाठान्तर हो जाना स्वाभाविक है। नीलमत पुराण के पाठ के विषय मे भी यही बात कही जा सकती है।

नीलमत पुराण का ऐतिहासिक महत्त्व निम्नलिखित कारणो से बढ जाता है :

(१) नीलमत पुराण तत्कालीन कश्मीर संस्कृति, तथा सभ्यता का जीता-जागता चित्र उपस्थित करता है।

(२) तत्कालीन धार्मिक कृत्यों, एवं संस्कारो आदि को प्रभावित किया है।

(३) कश्मीर के स्थानो, सरोवरो, जलप्रपातो, संगमो, मन्दिरो, देव स्थानों तथा तीर्थों का तथ्य पूर्ण सच्चा भौगोलिक वर्णन, इन स्थानों से सम्बन्धित प्राचीन तथा तत्कालीन गाथाओ का उल्लेख सत्यता के साथ करता हैं। जिस प्रकार जरुसलम का वास्तविक भूगोल स्वयं बाइबिल हैं, उसी प्रकार कश्मीर का भूगोल स्वयं नीलमत पुराण है।

(४) कश्मीर की जनता का चरित्र चित्रण करता है।

(५) अनेक लुप्त राजाओं के चरित्र तथा उनके वंशो का उल्लेख करता है।

(६) अनेक जातियो, गोत्रों, उनके कश्मीर मे आने, निवास करने, तथा उनके पारस्परिक आन्तरिक एवं बाह्य संघर्षों तथा जीवन पर प्रकाश डालता है।

(७) कश्मीर के भौगोलिक चित्रण के साथ-साथ भूगर्भीय तथ्य का उल्लेख करता है। वे आधुनिक अनुसन्धानों से सत्य प्रमाणित हुए हैं।

(८) कश्मीर की जनता के लिए एक आचार संहिता उपस्थित करता है।

(९) प्राचीन सनातन धर्म को संक्षिप्त रूप से कश्मीरी जनता के सम्मुख रखता है।

नीलमत पुराण मे अन्य पुराणों के श्लोकों का किंचित् रूपान्तर के साथ उल्लेख मिलता है। नीलमत पुराण के रचनाकार को पुराणों, तत्कालीन प्रचलित ग्रन्थो तथा शास्त्रो का ज्ञान था। पुराणो के कुछ श्लोकों का नीलमत पुराण में उल्लेख मिलता है। (ब्रह्म० ४३४,१,२,२९)

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के विषय में मत हैं कि लगभग ४४०-५५० ईस्वीमें लिखा गया था। इस पुराण के श्लोक नीलमत पुराण में मिलते हैं। अनेक स्थानों, घटनाओ तथा प्रसगो का उल्लेख नीलमत तथा इस पुराण में एक जैसे लगते हैं।

राजा मिहिरकुल के लगभग १०० वर्ष पश्चात् तक कश्मीर मे अन्तर्द्रोह चलता रहा है। आन्तरिक द्वेषो के कारण राजा लोग पीड़ित थे। कश्मीर का कोई विकास नही हो सका था। यही काल नीलमत पुराण के प्रस्तुत संस्करण का हो सकता है। नीलमत पुराण का किसी दूसरे रूप में पुरा काल में अस्तित्व होना सम्भव है। किन्तु वर्तमान नीलमत पुराण संस्करण का यही काल है। नीलमत में उल्लेख आया है। नीलमत इस ओर संकेत करता है—स्वभेदेनेह नश्यन्ति बद्धमूला नराधिपा. (नी० 835)

कश्मीर भूमण्डल की किस प्रकार रचना हुई? उसकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति का क्या कारण है? इन प्रश्नों का उत्तर नीलमत पुराण देता है। गाथा रूप में यह सब बातें नीलमत पुराण में कही गयी हैं। कश्मीर के तीर्थो, देव स्थानों तथा देश की रचना आदि का विषय नीलमत पुराण के लगभग दो-तिहाई भागो में वर्णित है (रा० १. १४.)

कल्हण ने राजतरंगिणी मे नीलमत के आधार पर सतीसर तथा जलोद्भव की गाथा का वर्णन किया है। (रा० १ : २५-२८) यही गाथा किंचित् परिवर्तित रूपमें महावश, सर्वास्तिवादी, चीनी विनय सम्प्रदाय तथा हुयेन साग ने दी है। आधुनिक भूगर्भीय अनुसन्धानो से प्रमाणित हो गया है। नीलमत वर्णित गाथा तथ्यपूर्ण है। वह केवल कपोलकल्पना नही है।

नीलमत कश्मीर का भूगोल है। विश्वभूगोल का अन्य पुराणो के समान नीलमत वर्णन करता है। सप्त द्वीप, नव वर्ष, सात कुल पर्वत, आदि का उसमें उल्लेख है। उसमें तीर्थो का भी उल्लेख है। कश्मीर के पवित्र देव स्थानों, तीर्थ स्थानो का वर्णन नीलमत में यथावत् मिलेगा। उसमें नाग, शिव देवस्थान, विष्णु देवस्थान, तीर्थ, वितस्ता के उद्गम स्थान से बारहमूला तक के तीर्थो, देवस्थानो, उसकी सहायक नदियों का उल्लेख है। और कश्मीर के नामकरण पर भी नीलमत प्रकाश डालता है। नदियों तथा उनके स्थलों का विस्तृत उल्लेख करता है। कश्मीर बाहर भारतवर्ष के तीर्थों तथा देवस्थानों का उल्लेख करता है। उससे प्रतीत होता है। कश्मीर के भूगोल के साथ भारत के भूगाल का भी ज्ञान नीलमत रचनाकार को था।

नीलमत में प्राचीन जातियों का वर्णन मिलता है। उनमें मुख्य नाग, पिशाच, दार्व, अभिसार, गान्धार, जुहुन्द्रा, शक, खस, तंगण, माण्डव, मद्र, अन्तर्गिरि तथा बहिर्गिरि का उल्लेख है। नाग तथ पिशाच जातियाँ कश्मीर में निवास करती थी। शेष जातियाँ कश्मीर की सीमावर्ती हैं। यवन मद्र,का नाम के लिये उल्लेख किया गया है।

काश्मीर के तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक संघटन एवं अवस्था पर नीलमत प्रकाश डालता है। वर्ण तथा आश्रम की उत्पत्ति तथा दर्शन पर नीलमत विचार नही करता। किन्तु उनकी मुख्य प्रक्रियाओ तथा अंगों पर प्रकाश डालता है। चारो वर्णों के कर्तव्य का वर्णन करता है (नील० १४-१६ श्लोक)

कर्मकाण्ड, वेदाध्ययन, पुराण पाठ आदि, दान-दक्षिणा, राजनीति, तथा ब्राह्मणों के सम्बन्ध में समाज की साधारण स्थिति क्या थी प्रकाश डालता है। क्षत्रियों की समाज में क्या स्थिति थी क्या कर्तव्य था, ब्राह्मणो से क्या सम्बन्ध था आदि का वर्णन नीलमत में मिलता है। वैश्य तथा शूद्रों के कर्त्तव्य पर प्रकाश डालता है। शूद्रो की निम्नस्थिति उस समय नही थी। जैसी आज है और समझी जाती है। वे राजाओ के अभिषेक में भाग लेते थे। वे अन्त्यज किंवा समाज में निम्नस्तरीय वर्ग नही थे। नीलमत में विभिन्न जातियो का उल्लेख यथा औरमुभ, मल्ल, नट, एवं नर्तक, है। वर्णसंकर का उल्लेख नही मिलता। सूत, मागध, वन्दी का उल्लेख मिलता है।

चारों आश्रमो के धर्म एवं कर्तव्यो के विषय पर नीलमत प्रकाश नही डालता। ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग किया गया है। परन्तु उसका सम्बन्ध आचार से अधिक है, न कि विद्यार्थी जीवन से। नीलमत में बाल विवाह प्रथा का उल्लेख नही है। संन्यास तथा वानप्रस्थ आश्रमो का उल्लेख है। नीलमत गृहस्थाश्रम तथा तत्सम्बन्धी विधियों का विशेष वर्णन करता है।

तत्कालीन महिलाओ की स्थिति तथा समाज में इनका क्या स्थान था नीलमत वर्णन करता है। वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कश्मीर की स्त्रियाँ परदा नही करती थीं। विरक्तों के मतानुसार नरक का साधन नही थी। मनुष्यों के पतन का कारण नही थी। वे पुरुषों के समान समाज के सभी कार्यों में समान भाग लेती थी। वे घरो में बन्द नही थी। उनका स्थान, पर्वों, उत्सवों, धार्मिक कृत्यों मे पुरुष के समान था। वे कौमुदी उत्सव में भाग लेती थी। वे सुयोग्य गृहिणी रूप में चित्रित की गयी हैं। वह खेतो के जोतने के उत्सव में गाती थी, नाचती थी, बाजा बजाती थी, इरामंजरी पूजा में वह वृक्ष देवता के पास पूजन हेतु जाती थी। कश्मीर मे प्रचुर मात्रा में सर्वत्र जल है। नाग, सरोवर, तडाग, ह्रद एवं सरिताओ के तट पर सर्वदा कोई न कोई उत्सव होता रहता था। नर नारी जल क्रीड़ा साथ करते थे। नीलमत आदेश देता है। कुमारी विशेषत. इन जल उत्सवों में अवश्य भाग लें। यह उत्सव श्रावणी के दिन होता था। महिलायें सुसज्जित होती थी। पुरुषो के साथ क्रीडा करती थी। इस उत्सव का नाम महिमान था। विभिन्न वर्ग की स्त्रियो की पूजा के लिये विभिन्न दिन निश्चित थे। माघ शुक्ल चतुर्थी, आश्वयुज, ज्येष्ठ की चौथ, मार्गशीर्ष पूर्णमासी को महिलाओ की विभिन्न रूपो एवं प्रकारों से पूजा की जाती थी। मदन त्रयोदशी के दिन पत्नी पति से पवित्र जल प्राप्तकर स्नान करती थी। दीप मालिका के दिन शय्या गृह सजाया जाता था। महिलायें अकेले भी चन्द्रदेव की पूजा करती थी। नीलमत में देवताओ के साथ ही साथ उनकी देवियों का नाम है। उनकी पूजा का भी विधान किया गया है। कश्मीर की नदियाँ विभिन्न देवियों के रूप है। उनके पूजा का विधान तथा समय निश्चित किया गया है। अन्य पुराणों मे महिलाओ को वह स्थान नहीं दिया गया है, जो नीलमत पुराण में प्राप्त होता है। नीलमत देवदासी प्रथा को मानता है। परन्तु उनका काम मन्दिरों में नृत्य एवं गान करना भी भगवान की सेवा करना था। वह काम की साधन नही मानी जाती थी। अतिथियों की सेवा तथा उनके सुख के लिये कार्य करना पुण्य कर्म माना जाता था।

कश्मीर की आर्थिक समृद्धि केवल कृषि पर ही निर्भर नहीं थी। कश्मीर का व्यापार, तिब्बत, तुर्किस्तान, मध्यएशिया, अफगानिस्तान तथा पंजाब से था। कुशान राजाओ के काल में वह व्यापार बहुत

-मृद्धि कर गया था। हूण आक्रमणों के पश्चात् कश्मीर का बहिर्व्यापार मार्ग प्रायः बन्द हो गया। और आर्थिक ढाँचा का आधार केवल कृषि तथा पंजाब और तिब्बत से व्यापार रह गया था। नीलमत के अनुसार व्यापारी तथा व्यवसायी गणों का समाज में समादर होता था।

नीलमत पुराण कश्मीर के सामाजिक जीवन के उल्लासमय, आह्लादमय, आनन्दमय जीवन का चित्रण करता है। प्रकृति की गोद में काश्मीरी पर्वों, उत्सवों की श्रृंखलाओं में प्रसन्नता पूर्ण जीवन, खेल-कूद, पठन पाठन, आदि में व्यतीत करते थे। उनका समाज प्रगतिशील था। नीलमत सभी उत्सवों की पीठिका में धर्म को स्थित रखता है। संगीत का सम्बन्ध गन्धर्वों से जोड़ा गया है। प्रत्येक पर्व एवं उत्सवों पर संगीत का कार्यक्रम होता था। शास्त्रीय संगीत प्रचलित था।

पेशेवर गायक, सूत, मागध, वन्दी एवं चारण थे। वाद्य, वादित्र एवं वाद्य भाण्ड प्रचलित था। घन, वितत, तत, शुषिर, तन्तु तथा चर्म वाद्य उस समय भारत में प्रचलित थे। नीलमत आनद्धवाद्य तथा तन्त्रि-वाद्य का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त वेणु, शंख, घण्टा का भी उल्लेख मिलता है।

वीणा का नीलमत पुराण तीन बार उल्लेख करता है। कश्मीर का सन्तूर वीणा का ही विकसित रूप है। वेणु का उल्लेख केवल एक बार नीलमत में भगवान् विष्णु के जगाने के सम्बन्ध में किया गया है। शंख का उल्लेख दो बार किया गया है। पटह का उल्लेख नीलमत में दो बार वीणा के प्रसंग में किया गया है। पटह नगाड़ा या डुग्गी की तरह बाजा है। इसका प्रचलन आज भी कश्मीर में है।

नृत्य संगीत के साथ होता था। नीलमत नृत्य के प्रकार का वर्णन नहीं करता परन्तु नृत्य धार्मिक उत्सवों, सामाजिक गोष्ठियों, ऋतुओं के आगमन, कृषि उत्सवों, फलों के पकने के समय होता था। हरवान के पुरातत्व खनन कार्य में एक टाइल मिला है। उसपर खरोष्ठी लिपि अंकित है। मध्यवर्ती मूर्ति झाँझ बजा रही है। वामवर्ती वंशी बजा रही है। और दक्षिणवर्ती एक जोड़ा नगाड़ा अर्थात् दुक्कड़ बजा रहा है। एक में नृत्यशील स्त्री चित्रित की गयी है। एक महिला ढोल बजा रही है। कोटिसर मन्दिर से भी महिला नर्तकी की मूर्ति मिली है। धार्मिक कृत्यों के साथ नृत्य खूब प्रचलित था। कश्मीर के नृत्यों ने सीमावर्ती देशों तथा अंचलों की नृत्य कला को प्रभावित किया था। सावित्री विसर्जन पर्व आज भी काश्मीरी महिलायें मानती है। किसी नदी के तट पर सात बार मूर्धा पर हाथ रख कर जाती और आती है। वह प्राचीन नृत्य का प्रतीकात्मक रूप रह गया है। वसन्त आगमन काल में हरा पुष्प की मालाओ से विभूषित काश्मीरी महिलायें नृत्य एवं गान करती थीं। अशोकाष्टमी पर्व पर भी नृत्य तथा गान होता था।

खेलों का काश्मीरी जीवन में बहुत महत्व था। श्रावणी पर्व पर कुमारियाँ जल क्रीड़ा करती थी। नीलमत में मल्ल विद्या अर्थात् कुश्तीप्रियता का उल्लेख मिलता है। दीपावली पर जूआ खेलने की परिपाटी प्रचलित थी। शिकार खेलने की प्रथा थी। हरवान के टाइल्स पर शिकारी बाण चलाता दिखाया गया है। इसे नीलमत धनुर्घोष शब्द से व्यक्त करता है। नीलमत में स्कन्द पूजा के दिन खिलौना तथा पक्षियों के पैर में सूत बाँधकर उड़ाना प्रचलित था।

नीलमत में भवन, गृह, आलय, वेश्म, आयतन, अट्टालक आदि शब्द विभिन्न शैलियों के मकानों के लिये प्रयुक्त हुए हैं। श्रमणों के निवास स्थान को शाक्यवास तथा पूजा स्थान को चैत्य कहा जाता था। हिन्दू मन्दिरों के बहुत नाम मिलते हैं। परन्तु उनकी रचना शैली पर नीलमत प्रकाश नहीं डालता। हरवान के भग्नावशेष देखने से पता चलता है। मण्डप तथा गर्भ गृह मन्दिरों में होता था। मकानों पर सफेदी की जाती थी। वे पुष्प, माला, फल, पत्तों तथा शालों से सजाये जाते थे। सड़कों तथा चतुष्पथ का उल्लेख मिलता है।

वितस्ता माहात्म्य में सेतु अर्थात् पुल का उल्लेख आता है। परन्तु पुल की शैली तथा प्रकार पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

नीलमत प्रतिमा बनाने का उल्लेख करता है। मूर्तियाँ पाषाण, मृत, स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, दारु, बालुका, ग्रास तथा घृत की बनायी जाती थी। विष्णु की शयन मूर्ति का उल्लेख मिलता है। विष्णु की चतुरानन मूर्ति तथा आयुध पुरुष का वर्णन मिलता है।

चित्रकला का प्रचार था। बुद्ध जन्म के दिन चैत्य सुन्दर चित्रकारियों से सजाये जाते थे। चित्र वस्त्र, भूमि तथा भित्ति पर बनाये जाते थे। भूमिशोभा अर्थात् भूमि पर चित्र बनाना खूब प्रचलित था।

नीलमत में परिधान का उल्लेख—वस्त्र, अम्बर, वास, वसन, सचित्र, चीनांशुक, वल्कल तथा प्रावरण रूप में मिलता है। चीनांशुक चीन से आयात किया रेशमी वस्त्र था। प्रावरण का महाभारत में भी उल्लेख मिलता है। पाणिनि तथा कौटिल्य को भी इसका ज्ञान था। कौटिल्य इसे प्रावरक कहता है। नये वस्त्र के लिये 'अहत' शब्द का प्रयोग किया गया है। श्रमणों के चीवर तथा बिस्तर के चादर का भी वर्णन नीलमत करता है। उद्वर्तन, उत्मादन तथा अनुलेपन का शृंगार के प्रसंग में वर्णन किया गया है।

भोजन में सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों का वर्णन मिलता है। शाक में सभी सब्जियाँ तथा शस्य में सभी अन्न पदार्थों का समावेश हो जाता है। मास भोजन का भी उल्लेख मिलता है। विष्णु के पौष दिन पूजा के अवसर पर मास भोजन निषेध किया गया है। एक स्थान पर विष्णु पूजा के प्रसंग में बलि का उल्लेख किया गया है। पिशाच, चन्द्रदेव तथा भद्र काली को आमिष प्रसाद चढ़ाया जाता था। सुरापान तथा असुरापान दोनों का उल्लेख मिलता है।

राज्य की सात प्रकृति मानी गयी है। नीलमत में स्वामी तथा राष्ट्र की प्रकृति पर ही प्रकाश डाला गया है। राजा के दैवी सिद्धान्त को नीलमत मानता है। उसे धर्म तथा राजशास्त्र के अनुसार व्यवहार करने का आदेश देता है। नीलमत मन्त्रियों का उल्लेख करता है। परन्तु उनके कर्तव्याकर्तव्य पर प्रकाश नहीं डालता।

नीलमतपुराण सेना तथा युद्ध के प्रकार तथा संघटन पर प्रकाश डालता है। चतुरंग बल में, पदातिक, अश्वारोही, गज तथा रथ सेना थी। युद्ध नियम के सम्बन्ध में नीलमत विस्तृत वर्णन उपस्थित करता है। बालक राजा युद्ध में भाग नहीं ले सकता था। युद्ध क्षेत्र में भयभीत तथा भागते हुए शत्रु पर प्रहार वर्जित था। पराजित राजा के राज्य का अपहरण नहीं किया जाता था। उसके उत्तराधिकारी को राज्य वापस कर दिया जाता था। सन्तानहीन गर्भवती रानी अपने पति के सिंहासन को ले सकती थी। कश्मीर में राजतन्त्र था तथापि उसमें लोक तन्त्र का अंश दिखायी देता है। राजाविहीन नगर के यात्रोत्सव में प्रधान सब संस्कार तथा राजोचित कार्यों को करता था। राजा के वार्षिक अभिषेक के समय गणमुख्य, वारमुख्य, पौरमुख्य का उल्लेख आता है। गणमुख्य गणराज्य के मुखिया थे।

नीलमत पुराण कश्मीर के धार्मिक सम्प्रदाय तथा मतों का उल्लेख करता है। यह मत-मतान्तर वैदिक देवताओं को केन्द्र मानकर चलते थे। बौद्ध भी भिन्न धर्म के स्थान पर एक सम्प्रदाय माना जाता था। मुख्य सम्प्रदाय, विष्णु, तथा उसके अवतारों को लेकर चला था। नील मत में मत्स्य, कूर्म, हंस, अश्वशिर अर्थात् हयग्रीव, नरसिंह, वामन, राम, कृष्ण का वर्णन मिलता है। राम नवमी पर ब्राह्मण तथा बुद्ध जन्म पर श्रमणों की पूजा का विधान है किन्तु कृष्ण जन्म तथा तत्सम्बन्धी उत्सव का उल्लेख नीलमत में नहीं है। प्रतीत होता है कि कृष्ण को अवतार प्रारम्भ में नहीं माना गया था। दूसरा सम्प्रदाय शैव था। नीलमत

पुराण शिव को त्रिमूर्ति में एक मानता है। उमा को वह शिव से भी अधिक महत्त्व देता है। वितस्ता का रूप उमा कश्मीर में धारण करती हैं। दुर्गा तथा शारदा की पूजा का भी विशेष महत्त्व था। शिवमत के साथ गणेश, स्कन्द, शाख, विशाख, नैगमेश, की पूजा का भी विधान किया गया है।

विष्णु तथा शिव मत के अतिरिक्त ब्रह्मा, वरुण, अग्नि, रेवत, यम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, बलदेव, चन्दो देव, आदित्य, वसु, साध्य, विश्व देव, एवं मरुत की उपासना तथा पूजा देवता स्वरूप मान कर की गई है। लक्ष्मी, उमा के अतिरिक्त सरिता देवियाँ यथा वितस्ता, विशोका, त्रिकोटि, हर्षपथा, तथा चन्द्रावती क्रमशः उमा, लक्ष्मी, अदिति, शची, एवं दिति की रूप मानी गयी हैं।

नीलमत बुद्ध को विष्णु का अवतार मानता है। वैशाख मास में बुद्ध जन्मोत्सव मनाने का विधान करता है। बुद्ध जन्म के समय चैत्य तथा शाक्यों के स्थानों को चूना पोत कर सफाई कराकर दीवालों को चित्रकारी से सजाना चाहिए। गरीबों को दान, तथा भोज्य पदार्थों को चढ़ाना चाहिये। उस दिन बुद्धप्रतिमा को पवित्र सुगन्धित जल से स्नान कराना चाहिए। अन्य पुराणों तथा नीलमत पुराण के बुद्ध आदि में अन्तर है। अन्य पुराण बुद्ध को अवतार मानकर भी उनके मत से लोगों को विरत होने के लिये प्रेरित करते हैं। परन्तु नीलमत उनके मत का आदर कर उनकी उपासना की विधि प्रस्तुत करता है। कश्मीर में भी कल्हण के काल तक विचारों में अन्तर पड़ गया था। क्षेमेन्द्र, वरदराज, कल्हण एवं जयरथ के लेखों में बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म के विरोधी रूप में चित्रित किया गया है।

नाग पूजा का विशेष स्थान कश्मीर के प्रारम्भिक काल में है। मिश्र, यूनान, रोम, चीन, जापान, फोनीशियन तथा अरबों में इस पूजा का विधान मिलता है। नीलमत शिव को व्याल यज्ञोपवीती कहा है। वैष्णव मत ने भी नाग को भगवान् विष्णु की शय्या बनाकर स्वीकार किया है। विष्णु पुराण में विष्णु को नाग का स्वामी कहा गया है। नीलमत में नाग देवता का अधिकार वर्षा, तूफान, तुषारपात पर था। वे नाग, सरोवर तथा तडागों में निवास करते है। उनकी पूजा का विधान विस्तृत रूप से नीलमत पुराण देता है।

नीलमत पुराण तत्कालीन कश्मीर के व्रत, उत्सव आदि का विस्तृत वर्णन करता है। उनमें अश्वयुज, कौमुदी, सुखसुप्तिका, देवोत्थान, नव संवत्सर महोत्सव, सप्तमी, मार्गशीर्ष पूर्णमासी, नव हिमपातोत्सव, अष्टमी त्रय, पौष पूर्णमासी, उत्तरायण, तिल द्वादशी, तारा रात्रि, श्रावण अमावस्या, चतुर्थयः, माघ पूर्णिमा, महिमान, श्रावण द्वादशी; शिवरात्रि, द्वितीय महिमान, फाल्गुणी, राजनीरस्नापन, कृष्यारम्भ, चन्दो देव पूजा, पिशाच चतुर्दशी, चैत्रामा, नव संवत्सर, श्री पंचमी, चैत्र षष्ठी, चैत्र नवमी, वास्तु पूजा, चैत्र द्वादशी, मदन त्रयोदशी, पिशाच प्रयाण, इरामंजरी पूजा, अक्षय तृतीया, बुद्ध जन्म, वैशाख पूर्णिमा, यवाग्रायण, विनायकाक्ष तपः, स्वाति योग, प्रस्थापन, वैश्वदेव पूजा, दक्षिणायन, रोहिणी संयोग, श्रावणी, कृष्ण जन्म, मघामावसी, भाद्रपद शुक्लकृत्य, श्राद्ध पक्ष, महानवमी, अगस्त्य दर्शन, नवान्नविधान, वरुण पंचमी, अशोकिकाष्टमी, वितस्तोत्सव, चतुर्थीत्रितयं, अश्वदीक्षा, हस्तिदीक्षा, भद्रकाली पूजन, गृहदेव पूजा, श्यामा देवी पूजा यात्रोत्सव हैं।

नीलमत में दर्शन का प्रसंगवश वर्णन मिलता है। उसमें सर्ग, त्रिभुवन, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु, पंच तत्त्व, महाभूत, प्रकृति, अनेक देवता वाद, एकेश्वर वाद, नरपशु रूप देव, आत्मवाद, विश्वदेवैक्य वाद, अद्वैत वाद, पूर्वजन्म, कर्मकाण्ड, भक्ति सम्प्रदाय, आचार, शैव पांचरात्र आदि पर प्रकाश पड़ता है।

नीलमत के १३९६ छन्दों में १३५७ अनुष्टुप् छन्द हैं।

वितस्ता माहात्म्य में सेतु अर्थात् पुल का उल्लेख आता है। परन्तु पुल की शैली तथा प्रकार पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता ।

नीलमत प्रतिमा बनाने का उल्लेख करता है। मूर्तियाँ पाषाण, मृण, स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, दारु, बालुका, ग्रास तथा घृत की बनायी जाती थी । विष्णु की शयन मूर्ति का उल्लेख मिलता है । विष्णु की चतुरानन मूर्ति तथा आयुध पुरुष का वर्णन मिलता है ।

चित्रकला का प्रचार था। बुद्ध जन्म के दिन चैत्य सुन्दर चित्रकारियों से सजाये जाते थे। चित्र वस्त्र, भूमि तथा भित्ति पर बनाये जाते थे । भूमिशोभा अर्थात् भूमि पर चित्र बनाना खूब प्रचलित था ।

नीलमत में परिधान का उल्लेख—वस्त्र, अम्बर, वासा, वसन, संवित, चीनांशुक, कम्बल तथा प्रावरण रूप में मिलता है । चीनांशुक चीन से आयात किया रेशमी वस्त्र था । प्रावरण का महाभारत में भी उल्लेख मिलता है । पाणिनि तथा कौटिल्य को भी इसका ज्ञान था । कौटिल्य इसे प्रावरक कहता है । नये वस्त्र के लिये 'अहत' शब्द का प्रयोग किया गया है । श्रमणों के चीवर तथा बिस्तर के चादर का भी वर्णन नीलमत करता है । उद्वर्तन, उत्सादन तथा अनुलेपन का शृंगार के प्रसंग में वर्णन किया गया है ।

भोजन में सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों का वर्णन मिलता है। शाक में सभी सब्जियों तथा धान्य में सभी अन्न पदार्थों का समावेश हो जाता है । मांस भोजन का भी उल्लेख मिलता है । विष्णु के पाँच दिन पूजा के अवसर पर मांस भोजन निषेध किया गया है । एक स्थान पर विष्णु पूजा के प्रसंग में बलि का उल्लेख किया गया है । पिशाच, चन्द्रदेव तथा भद्र काली को आमिष प्रसाद चढ़ाया जाता था । सुरापान तथा असुरापान दोनों का उल्लेख मिलता है ।

राज्य की सात प्रकृति मानी गयी है । नीलमत में स्वामी तथा राष्ट्र की प्रकृति पर ही प्रकाश डाला गया है। राजा के दैवी सिद्धान्त को नीलमत मानता है। उसे धर्म तथा राजशास्त्र के अनुसार व्यवहार करने का आदेश देता है। नीलमत मन्त्रियों का उल्लेख करता है। परन्तु उनके कर्तव्याकर्तव्य पर प्रकाश नहीं डालता।

नीलमतपुराण सेना तथा युद्ध के प्रकार तथा संघटन पर प्रकाश डालता है । चतुरंग बल में, पदातिक, अश्वारोही, गज तथा रथ सेना थी । युद्ध नियम के सम्बन्ध में नीलमत विस्तृत वर्णन उपस्थित करता है । बालक राजा युद्ध में भाग नहीं ले सकता था । युद्ध क्षेत्र में भयभीत तथा भागते हुए शत्रु पर प्रहार वर्जित था । पराजित राजा के राज्य का अपहरण नहीं किया जाता था । उसके उत्तराधिकारी को राज्य वापस कर दिया जाता था । सन्तानहीन गर्भवती रानी अपने पति के सिंहासन को ले सकती थी । कश्मीर में राजतन्त्र था तथापि उसमें लोक तन्त्र का अंश दिखायी देता है । राजाविहीन नगर के यात्रोत्सव में प्रधान सब संस्कार तथा राजोचित कार्यों को करता था । राजा के वार्षिक अभिषेक के समय गणमुख्य, वारमुख्य, पौरमुख्य का उल्लेख आता है । गणमुख्य गणराज्य के मुखिया थे ।

नीलमत पुराण कश्मीर के धार्मिक सम्प्रदाय तथा मतों का उल्लेख करता है । यह मत-मतान्तर वैदिक देवताओं को केन्द्र मानकर चलते थे। बौद्ध भी भिन्न धर्म के स्थान पर एक सम्प्रदाय माना जाता था । मुख्य सम्प्रदाय, विष्णु, तथा उसके अवतारों को लेकर चला था । नील मत में मत्स्य, कूर्म, हंस, अश्वशिर अर्थात् हयग्रीव, नरसिंह, वामन, राम, कृष्ण का वर्णन मिलता है । राम नवमी पर ब्राह्मण तथा बुद्ध जन्म पर शाक्यों की पूजा का विधान है किन्तु कृष्ण जन्म तथा तत्सम्बन्धी उत्सव का उल्लेख नीलमत में नहीं है । प्रतीत होता है कि कृष्ण को अवतार प्रारम्भ में नहीं माना गया था । दूसरा सम्प्रदाय शैव था । नीलमत

पुराण शिव को त्रिमूर्ति में एक मानता है। उमा को वह शिव से भी अधिक महत्त्व देता है। वितस्ता का रूप उमा कश्मीर में धारण करती हैं। दुर्गा तथा शारदा की पूजा का भी विशेष महत्त्व था। शिवमत के साथ गणेश, स्कन्द, शाख, विशाख, नैगमेश, की पूजा का भी विधान किया गया है।

विष्णु तथा शिव मत केअतिरिक्त ब्रह्मा, वरुण, अग्नि, रेवत, यम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, बलदेव, चन्दो देव, आदित्य, वसु, साध्य, विश्व देव, एवं मरुत की उपासना तथा पूजा देवता स्वरूप मान कर की गई है। लक्ष्मी, उमा के अतिरिक्त सरिता देवियाँ यथा वितस्ता, विशोका, त्रिकोटि, हर्षपथा, तथा चन्द्रावती क्रमशः उमा, लक्ष्मी, अदिति, शची, एवं दिति की रूप मानी गयी हैं।

नीलमत बुद्ध को विष्णु का अवतार मानता है। वैशाख मास में बुद्ध जन्मोत्सव मनाने का विधान करता है। बुद्ध जन्म के समय चैत्य तथा शाक्यों के स्थानों को चूना पोत कर सफाई कराकर दीवालो को चित्रकारी से सजाना चाहिए। गरीबों को दान, तथा भोज्य पदार्थों को चढाना चाहिये। उस दिन बुद्धप्रतिमा को पवित्र सुगन्धित जल से स्नान कराना चाहिए। अन्य पुराणों तथा नीलमत पुराण के बुद्ध आदि में अन्तर है। अन्य पुराण बुद्ध को अवतार मानकर भी उनके मत से लोगों को विरत होने के लिये प्रेरित करते हैं। परन्तु नीलमत उनके मत का आदर कर उनको उपासना की विधि प्रस्तुत करता है। कश्मीर में भी कल्हण के काल तक विचारो में अन्तर पड़ गया था। क्षेमेन्द्र, वरदराज, कल्हण एवं जयरथ के लेखों में बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म के विरोधी रूप में चित्रित किया गया है।

नाग पूजा का विशेष स्थान कश्मीर के प्रारम्भिक काल में है। मिश्र, यूनान, रोम, चीन, जापान, कोनीशियन तथा अरबों में इस पूजा का विधान मिलता है। नीलमत शिव को व्याल यज्ञोपवीती कहा है। वैष्णव मत ने भी नाग को भगवान् विष्णु की शय्या बनाकर स्वीकार किया है। विष्णु पुराण में विष्णु को नाग का स्वामी कहा गया है। नीलमत में नाग देवता का अधिकार वर्षा, तूफान, तुषारपात पर था। वे नाग, सरोवर तथा तड़ागो में निवास करते हैं। उनकी पूजा का विधान विस्तृत रूप से नीलमत पुराण देता है।

नीलमत पुराण तत्कालीन कश्मीर के व्रत, उत्सव आदि का विस्तृत वर्णन करता है। उनमें अश्वयुज, कौमुदी, सुखसुप्तिका, देवोत्थान, नव संवत्सर महोत्सव, सप्तमी, मार्गशीर्ष पूर्णमासी, नव हिमपातोत्सव, अष्टमी त्रय, पौष पूर्णमासी, उत्तरायण, तिल द्वादशी, तारा रात्रि, श्रावण अमावस्या, धनुर्यज्ञः, माघ पूर्णिमा, महिमान, श्रावण द्वादशी; शिवरात्रि, द्वितीय महिमान, फाल्गुणी, राजनीस्नापन, कृष्यारम्भ, चन्दो देव पूजा, पिशाच चतुर्दशी, चैत्रामा, नव संवत्सर, श्री पंचमी, चैत्र षष्ठी, चैत्र नवमी, वास्तु पूजा, चैत्र द्वादशी, मदन त्रयोदशी, पिशाच प्रयाण, इरामंजरी पूजा, अक्षय तृतीया, बुद्ध जन्म, वैशाख पूर्णिमा, यवाग्रायण, [illegible] तप:, स्वाति योग, प्रस्वापन, वैश्वदेव पूजा, दक्षिणायन, रोहिणी संयोग, श्रावणी, कृष्ण जन्म, [illegible], भाद्रपद शुक्लकृत्य, श्राद्ध पक्ष, महानवमी, अगस्त्य दर्शन, नवान्नविधान, वरुण पंचमी, [illegible], वितस्तोत्सव, चतुर्योनित्रयं, अश्वदीक्षा, हस्तिदीक्षा, भद्रकाली पूजन, गृहदेव पूजा, श्यामा देवी पूजा [illegible]त्सव है।

नीलमत में दर्शन का प्रसंगवश वर्णन मिलता है। उनमें सर्ग, त्रिभुवन, सूर्य, चन्द्र, [illegible], ग्रह, ऋतु, पंच तत्त्व, महाभूत, प्रकृति, अनेक देवता वाद, एकेश्वर वाद, [illegible] देव, [illegible], [illegible] वाद, अद्वैत वाद, पूर्वजन्म, कर्मकाण्ड, भक्ति सम्प्रदाय, आचार, तंत्र पांचरात्र आदि पर प्रकाश पड़ता है।

नीलमत के १३९६ छन्दों में १३५७ अनुष्टुप् छन्द हैं।

नीलमत पुराण में मुख्य नागों किंवा जलस्रोतों अथवा चश्मो का वर्णन मिलता है। कश्मीर मण्डल के चतुर्दिशाओ में स्थित दृक्पाल नागो तथा सहस्रो नागों के होने का उल्लेख किया गया है (जो० ९००-९०५)

लगभग ६० नदियो का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है वे कश्मीर तथा मद्रदेश दोनों क्षेत्रों की है :

ज्ञात · अपगा (अयुक) चन्द्रभागा (चिनाव) गोदावरी (गोदर पर्वत के समीप) गोतमी (गोमती ? वाराह पर्वत के समीप) हर्षपथा (आरपथ) अनन्त नाग के समीप वितस्ता में मिलती है। हिरण्या (कनकवाहिनी) इरावती (रावी) कालोदक (नुन्द कोल गंगा सर से उद्‌गमित स्रोतस्विनी) कनक वाहिनी (कनकनी) कया (अमया-गंगोद्भेद समीपस्थ) कौण्डिन्य-कौलिन्य (नौबन्धन समीपस्थ कौण्डिन्य सर से उद्‌गमित स्रोत) कृष्ण (कृष्ण गंगा) क्षीर नदी (वरसकुल) दूसरी मधुवती चन्दपोर का नाला है कुलेस गाँव के समीप उत्तर मे ऊलर लेक में मिलता है। श्वेत गंगा (एकमत में चित्ती नदी) मधुमती (पदुमती अल्बेरूनी कथित) माहुरी (मवुर) श्याला (हमल) सन्ध्या (सुन्दवदार) सरस्वती (कनकतोरी) सिन्धु, तौसी (तोही ?) निलश्रस्या (माहुरी) उद्द (उद्ध पाणिनि तथा उर्व: वि० धर्मोत्तर पुराण) वशोका (विसाऊ) वितस्ता (झेलम)।

अज्ञात· अश्वदुधान, भूर्जला, चन्द्रावती, चतुर्वेदी, चित्रपथा, देवहृत, देवकुल्या, देविका (देघ ?) घन्याधरणी, गगा, (कश्मीर की अनेक नदियों को गंगा कहते हैं) गोश्रन्दी, कुलार्णी, कुमुनारी, भद्वी, मालिनी, मन्दाकिनी, मृग-मृगनन्दा, पालासा, परोष्णि, राहुला, रामह्रद, ऋषिकुल्या, समूला, सरसा, शाण्दिली, शतशिला, शिलामा, सुधा, सुगन्धा, सुखा (सुकंग ? , तेलाला, त्रिकोटि, वैतरनी (एकमत है। सुपियान के अधोभागीय रामव्यार नदी है।) विश्वमित्र।

महापद्म सर अर्थात् उलर लेक का वर्णन नीलमत पुराण में मिलता है। उलर लेक के स्थान पर पूर्व काल में चन्द्रपुर नगर था। उसके जल में लोप अर्थात् जल में डूब जाने के पश्चात् उस स्थान पर उलर लेक बन गया। सम्भव है कि पुरातन चन्द्रपुर का समस्त नगर भूचालादि के कारण भूमिस्थ हो गया हो। भूमि नीचे दब गयी हो। इस प्रकार उस स्थान पर पानी भर कर सर का रूप ले लिया होगा। कश्मीर में भूचाल आना साधारण बात है। दो हजार वर्षों में भौगोलिक परिस्थितियो मे बहुत कुछ परिवर्तन हो जाना सम्भव है।

पुराण में शिव, शंकर किंवा महादेव से सम्बन्धित तीर्थों का वर्णन बहुत मिलता है। अन्य देवताओ से सम्बन्धित तीर्थों का पर्याप्त उल्लेख है। किन्तु कश्मीर में शैव धर्म, शैव तन्त्र एवं दर्शन का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण अत्यधिक तीर्थ तथा देवस्थानो का सम्बन्ध शिव, उनके गण तथा शक्तियों से है।

भूतेश्वर माहात्म्य का उल्लेख नीलमत में आता है। इस माहात्म्य की गाथा में हरमुकुट पर्वत के अनेक सरोवरों, तीर्थों तथा पवित्र स्थानों का वर्णन है। यह पर्वत शिव तथा पार्वती के तीर्थों से सम्बन्धित होने के कारण अत्यन्त पवित्र माना गया है। कश्मीर के धार्मिक जीवन में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व इस पर्वत को दिया गया है।

नीलमत पुराण में कश्मीर के पर्वतों का वर्णन है। हिमालय के अतिरिक्त वहिर्गिरि, (चुरल हिमवन्त), अन्तर्गिरि (महा हिमवन्त) उपगिरि (सेवालिक तराई) उशीरक (द्वार देश समीपस्थ दक्षिण कश्मीर)। यह पर्वत विनय वर्णित उशीरध्वज, दिव्यावदान का उशीर गिरि, पाली साहित्य का उशीनर, कथासरित-

सागर का उशीनर गिरि, तथा नीलमत का उसीरका है। कनखल के उत्तर एक पहाड़ को उशीरगिरि कहते हैं। पंजाब के उत्तर पीरपंचाल पर्वत श्रेणी है। वह दक्षिणी तथा दक्षिणी पश्चिमी कश्मीर की सीमा है। क्षेमेन्द्र उसे पंचाल धारा कहता है। नीलमत मे यह शब्द नहीं है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश शिखर का उल्लेख है। तीनों बनिहाल पास के पश्चिम है। उनमें नौ बन्धन सबसे ऊँचा शिखर है। यहीं मत्स्यावतार में विष्णु ने नाव बाँधा था।

हरमुकुट किंवा हरमुण्डपर्वत हरमुख शिखर उत्तरी कश्मीर का है। वह सत्तरह हजार फिट ऊँचा है। उत्तर मानस काश्मीरी गंगा का स्रोत है। इस पर्वत के उत्तर पूर्व पाद में हिमानी के समीपस्थ है। नन्दि क्षेत्र तथा भूतेश्वर के तीर्थ यही है। नन्दि पर्वत नुन्द लोक (कालोदक) को हिमानी से भरता है। भरत गिरि हरमुकुट के दक्षिण पूर्व है। अमरेश्वर हिमाच्छादित अमरनाथ है। महादेव गिर धुर पश्चिमी अत्यन्त उच्च शिखर है। वह सिन्धु उपत्यका तथा पूर्वीय पर्वत माला के मध्य है। इन्द्र कील तथा गौरी शिखर का नीलमत में वर्णन है। एक मत है। कश्मीर के पश्चिम किसी पर्वत का वह नाम है शारदी के समीप।

नीलमत पुराण तीर्थों तथा पवित्र स्थानों का वर्णन करता है। मुख्य उनमें निम्नलिखित है :

ज्ञात :

एल पत्र नाग (विचार नाग ग्राम समीपस्थ) अक्षपाल नाग (अचवल), अनन्त नाग, बहुरूप (ब्रोरु ग्राम—पोरपंचाल पर्वत की दिशा में) भद्र काली (वदरकल ग्राम क्रमसर से चार मील दूरस्थ) भेडा देवी (बुदब्रार श्रीनगर से पश्चिम, गंगोद्भेद तीर्थ) भीमा देवी (फाक परगना में, डलतट पर ब्रान ग्राम) भूतेश्वर (हरमुकुट पर्वत बुतसर) चक्रधर तीर्थ (तस्कदर उद्र), चोर मोचन=चीर प्रमोचन (प्रंग ग्राम) देवसर (छोटा सर, दक्षिण पूर्व उत्तर परगना) गणेश (गनेश बल लिदर नदी दक्षिण तटस्थ) गौतम नाग (अनन्त नाग के उत्तर) हंसद्वार (मुन्द प्रस्थ गिर केसमीप। एक मत इसे हुंजा मानता है) हस्तिकर्ण नाग (गाँव बाग होम अर्थात् मरहोम के दक्षिण पूर्व दो मील पर) इष्टिका पथ (लार परगना में राम रादन गाँव) ज्येष्ठेश (हरमुकुट पर्वत मूल भूतेश्वर वशिष्ठाश्रम वंगथ समीपस्थ) कपटेश्वर, (कोथर ग्राम) कपिल तीर्थ (कपटेश्वर समीपस्थ ?) कालोदक (नुन्दकोल) कोटि तीर्थ (बारहमूला समीपस्थ कोटिसर) खण्ड पुच्छ नाग (अनन्त नाग समीपस्थ खनबल) लोकपुण्य, (व्रिग परगना में लरिकपुर समीपस्थ नाग) लोवार (लिवर ग्राम—विजब्रोर से १० मिल उत्तर-पूर्व स्थित) महापद्म (वुलर लेक) मानस (मनसा बल) नन्दन नाग। (नन्दन सर—दरहल पास समीपस्थ) नन्दिकुण्ड, नन्दि पर्वत, नन्दीश्वर (नन्दिक्षेत्र—हरमुकुट पर्वत पाद में) नारायण स्थान (नरस्तान ट्राल घाटी में) पंचहस्त (पंजथ ग्राम—दिवसर परगना में) पाण्डव तीर्थ (पाण्ड चक—श्रीनगर से दक्षिण-पूर्व पाच मील स्थित) पुष्कर(पोस्कर-फिरोजपुर तथा कग मध्य, पहाड़ी मूल की पूर्व दिशा में) राम तीर्थ (रामुह ग्राम) स्वयम्भू (मच्छीपुर परगना में सुयम ग्राम) सोदर नाग (सुदर बल) तक्षक नाग (जयवन स्रोत समीपस्थ जेवन स्थान) तारा सर (तर सर सिन्ध उपत्यका ?) त्रिपुरेश (त्रिफर गाँव डल से तीन मील दूरस्थ) वराहमूला (बारह मूला) वशिष्ठाश्रम (वंगथ) वासुकी नाग (एक नाग पंचहस्त उपत्यका के दक्षिण या भद्रव ?) (विजयेश्वर विजब्रार)

अज्ञात :

चन्द्रसर (सम्भवतः सिन्ध नदी तथा कश्मीर के मध्य ऊँचे पर्वत पर है)

भारतवर्ष के निम्न लिखित तीर्थों का उल्लेख नीलमत में प्राप्य है :

गंगा द्वार, कुशावर्त, कुब्जाम्र, नील पर्वत (कनखल), नैमिसार, हयशिरप, प्रयाग, वाराणसी, गंगा सागर संगम, नदी वरुणा, असी, ब्राह्मणी, वैतरणी, महानदी, तमसा, शोण, सरयू, दक्षुमती, शतकुम्भा, वेद-स्मृति, केदार, बदर, भृगुतुंग, यह सब तीर्थ पूर्व, पूर्व दक्षिण, तथा उत्तर पूर्व वर्तमान कनखल के हैं। पंच-नद, कुरुक्षेत्र, पृथूदक, प्रभास, पुष्कर, रैवत, सिन्धु सागर संगम, कनकावल के पश्चिम दिशा में स्थित हैं।

शिप्रा, शाकम्भरी, विशाला, गोकर्ण, अगस्त्याश्रम, सुवर्ण, नर्मदा, रुद्रकोटि, सुगन्धा, गोदावरी, ताम्र-वर्णी, उत्पलावती, तथा कावेरी कनखल के दक्षिण स्थित हैं।

शिवकी वाराणसी से हरमुकुट की यात्रा के प्रसंग में नीलमत पुराण में, प्रयाग, अयोध्या नैमिष, गंगाद्वार, स्थानेश्वर, कुरुक्षेत्र, शतद्रु, विपाशा, तथा इरावती का उल्लेख मिलता है।

कपटेश्वर माहात्म्य के सम्बन्ध में कुछ सामग्री नीलमतपुराण से प्राप्त होती है। कपटेश्वर वर्तमान कोथर ग्राम है।

शिव तथा शैवमत से सम्बन्धित तीर्थों के पश्चात् विष्णु भगवान् से सम्बन्धित तीर्थों तथा देव-स्थानों का वर्णन मिलता है। काश्मीर में शिव माहात्म्य तथा शिव एवं पार्वती के संदर्भ में जितनी अधिक सामग्री, साहित्य तथा लेख मिलते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान् विष्णु के विषय में स्वल्प साहित्य, सामग्री तथा लेख प्राप्य हैं।

नीलमत पुराण के प्राप्य संस्करण के अनुसार प्रकट होता है। उसके रचना अथवा संस्करण के समय कश्मीर में शैव मत तथा शिव पूजा का विशेष प्रचार था। शिव तथा पार्वती सम्बन्धी अनेक व्रत, उपवास, उपासना तथा पूजा का प्रकार कश्मीर में प्रचलित था। विष्णु पूजा का महत्त्व जनता में शिव के पश्चात् था। प्रारम्भ से ही शिव भक्ति तथा उपासना कश्मीर में अधिक लोकप्रिय भी है। इससे प्रकट होता है। शिव उपासना तथा तत्सम्बन्धी गाथाओं का प्रमुख स्थान कश्मीरी जन जीवन में था। उनका जीवन शैव दर्शन तथा तन्त्र द्वारा प्रभावित था। (११६९-१२४८)

कश्मीर के तीर्थों का विस्तृत वर्णन नीलमत पुराण के श्लोक संख्या १२७१-१३७२ में किया गया है। इसका अध्ययन कश्मीर के तत्कालीन भौगोलिक ज्ञानवर्धन निमित्त विशेष महत्त्व रखता है। तीर्थों, उनके स्थानीय महत्त्वों और उनमें सम्बन्धित गाथाओं एवं जनश्रुतियों तथा उनके माहात्म्यों का विशद वर्णन सम्पूर्ण नीलमत पुराण में मिलता है।

नीलमत पुराण के वर्णनों तथा भौगोलिक स्थितियों के कारण तीर्थों तथा उल्लिखित स्थानों का पता विश्वासात्मक ढंग से लगाया जा सकता है। नीलमत पुराण के भौगोलिक वर्णनों के आधार पर आधु-निक विद्वानों ने अनेक स्थानों का सफलतापूर्वक पता लगाया है। तीर्थों तथा देव-स्थानों के मूल नाम तथा उनकी भौगोलिक स्थिति के भूल जाने का कारण कश्मीर की ९० प्रतिशत जनता का हिन्दू धर्म त्याग कर मुस्लिम धर्मावलम्बी हो जाना है। उनकी दृष्टि में इन तीर्थों तथा देव-स्थानों का कोई धार्मिक महत्त्व नहीं रह गया था। इस समय शायद ही कोई प्राचीन देव-स्थान तथा तीर्थ होगा जो मुस्लिम जियारत, मसजिद या कब्रिस्तान में परिवर्तन न कर दिया गया हो अथवा उसके पास जियारतें आदि न बना दी गयी हों। इसमें मुसल्मानों को दोष नहीं दिया जा सकता। उन तीर्थों की कोई खबर लेने वाला नहीं था। उनकी पूजा, उपासना, मरम्मत आदि समाप्त हो गयी। वे काल के थपेड़ों में नष्ट होने लगे। उनका इतिहास लोग भूल

गये। उनसे सम्बन्धित गाथाओं का लोप हो गया। इनके स्थान पर नए धर्म के इतिहास, गाथा तथा कथानकों का प्रचलन हो गया। खण्डित मूर्तियों, मन्दिरों, देवस्थानो, तीर्थों के उपेक्षित ध्वंसावशेषो, उनके पत्थरों तथा ईंटों का महत्त्व उनके इतिहास के इतिवृत्त के साथ खण्डहरों के ईंट पत्थरों से अधिक नही रह गया। इन्हें नवीन धर्म ग्रहण करने वाली जनता अपने नवीन जियारतों, मजारो, मस्जिदों तथा मकानों में लगाने लगी।

सिख तथा डोंगरा काल में पुराने तीर्थों, देवस्थानों आदि को पुनः जानने की इच्छा हुई। इस दिशा में आधुनिक विद्वानों तथा अन्वेषकों ने स्तुत्य प्रयास किया है। प्राचीन पुस्तकें पढ़ी जाने लगी। उनके आधार पर तीर्थों तथा देवस्थानों की खोज होने लगी। ध्वंसावशेषों, खण्डित मूर्तियों, मन्दिरो के खण्डहरो को अन्वेषक विद्वान् खोजने लगे। इस विषय पर साहित्य का निर्माण होने लगा। लोकतन्त्र की स्थापना के पश्चात् तथा उसके पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में खनन कार्य तथा वैज्ञानिक ढंग पर अध्ययन आरम्भ हुआ। इस समय केन्द्रीय तथा राज्य सरकार दोनों द्वारा संचालित पुरातत्त्व विभाग कार्य कर रहा है। कश्मीर के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ा है। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

नीलनाग के जल स्रोत अर्थात् (वीर नाग) के भौगोलिक चित्रण से आरम्भ होकर बारहमूला को गहरी घाटी में नीलमत पुराण का आख्यान समाप्त होता है।

नीलमत पुराण पर डाक्टर वेद कुमारी द्वारा काशी विश्व विद्यालय की थीसिस नीलमत पुराण द्रष्टव्य है। उसमें आलोचना के साथ अंग्रेजी में अनुवाद भी दिया गया है। अनुवाद के अतिरिक्त थीसिस का शेष भाग पुस्तकाकार रूप में जम्बू तथा कश्मीर एकोडेमी आफ आर्ट कलचर एण्ड लैंगवेज श्रीनगर जम्मूसे सन् १९६८ में प्रकाशित हो चुका है।

परिशिष्ट ख

हिमालय

(तरग १ : २५ पृष्ठ २४)

वैदिक साहित्य में हिमालय का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद—१०:१२१:४, अथर्ववेद—१:९४:३, ४.९ ९, ५.५.२-८, ५:२५ ७, ६:२४:१, १२.१.१, १९:३९:१, २४:३०, २५:१२, ऐतरेय ब्राह्मण ८ १४: । तैत्तिरीय संहिता ५.५ ११.१

प्रायः सभी पुराणों में हिमालय का वर्णन प्राप्य है। मुख्यतः निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य हैं : भागवत पुराण १:१३:२९; १:१३.५०; मत्स्य पुराण १२० . कूर्म पुराण; पूर्वभाग अध्याय १२; कालिका पुराण १४ तथा ५१; वाल्मीकि रामायण : किष्किन्धा काण्ड ' ५३ तथा ५६ श्लोक १ ।

नीलमत पुराण में हिमालय, हिमाचल, हिमवान, हिमवन्त तथा हिमकूट शब्दों का उल्लेख कभी कभी समानार्थक और कभी भिन्न अर्थों में किया गया है। उनको यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा।

हिमालय :

कुरुष्व लांगलेन त्वं विदार्याद्य हिमालयम्।
इदं सरोवरं दिव्य निस्तोयं शीघ्रमेव तु ॥ 165-166 = २१८ ।

× × ×

इति तथ्यं सती ज्ञात्वा हलमार्गात्तु सिन्धुगा।
हिमालयाच्च प्रययौ पतितात्मा परं नदी ॥ 299 = ३९८

समुद्ररूपस्य हरस्य भार्यां हिमालयस्याद्रिपतेस्तनूजाम्।
सुरक्रतुतोयां ऋषिवर्यजुष्टां तां त्वं पवित्रां प्रणमस्व राजन् ॥ 1388 = १६०६ ।

× × ×

हिमाचल :

नीलाम्बरः काञ्चनबद्धमौलिः सम्पूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैः।
विदारयामास स लाङ्गलेन हिमाचलं शैलवरं पृथिव्याम् ॥ 168 = २२०

× × ×

—कुटिलैस्तरंगैः। हिमाचलामैर्गगने स्पृशद्भिः
हिमाचले तु षण्मासान् स सदा वसते सुखी।
अद्य प्रभृति षण्मासान्वस्येह वसतिर्मया ॥ 210 = २८३

× × ×

ततो वेगेन महता सीमन्तमिव कुर्वती ।
हिमाचलस्य प्रययौ तोयशैलोपमा नदी ॥ 138 = ४१९

हिमवान् तथा हेमकूट :

एकार्णवं जगत्सर्वं तदा भवति भूपते ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः ॥ 35 = ५५-५६

× × ×

हिमवत् :

तत्र मद्रेषु तीर्थानि सन्ति पुण्यानि मानद ।
तथा च पर्वतश्रेष्ठे हिमवत्यचलोत्तमे । 102 = १४५

× × ×

स्थावरत्वमनुप्राप्ताहिमवत्यचलोत्तमे ।
बहुधा सा विभक्तांगी निकुम्भे निर्गते बहिः ॥ 166 = ७९१

× × ×

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्तानुज्ञास्ततः स्वयम् ।
हरमुक्तमितिविख्यातं शृङ्गं हिमवतः शुभम् ॥
जगाम सहसा नन्दी तपसे कृतनिश्चयः ॥ 1047 = १२३०-१२३१-१२३२

× × ×

रम्ये हिमवतः पृष्ठे एवमेतीति चाब्रवीत् ।
ऋषेर्नियोगं काशाप देव्या राज्या प्रचोदिता ॥ बृहद्देवता ४ : ७५,

हिमवान :

यस्मिंस्तु वासरे विप्र प्रचयं पतते हिमम् ।
तत्र पूज्यस्तु हिमवान् हेमन्तशिशिरावुभौ ॥ 461 = ५७९

हिमवान्-हेमकूट :

हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः ।
श्वेतश्च शृंगवान् मेरुमल्यवान् गंधमादनः ॥ 516 = ७१७ ७१८

× × ×

महाभारत :

सभा पर्व (२८ : ६) में हिमालय, हिमवान, हेमकूट आदि शब्द हिमालय के लिए व्यवहृत किये गये हैं । हिमवान शब्द का वर्णन हिमालय पर्वत के अधिष्ठातृ-देवता के रूप में किया गया है । हेमकूट उत्तर दिशा का एक पर्वत कहा गया है । इसको पार कर अर्जुन ने हरिवर्ष में प्रवेश किया था ।

पाण्डवों के पिता पाण्डु कालकूट तथा हिमालय पर्वत का अतिक्रमण कर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे थे । भगवान् परशुराम द्वारा क्षत्रियों के संहार से रक्षा निमित्त भृगुवंशीय स्त्रियों ने हिमालय पर्वत में

आश्रय ग्रहण किया था। अर्जुन ने हिमवान को जीतकर धवला गिरि पर अपना शिविर स्थापित किया था। (सभा पर्व २७:२९)

कुलिन्द राज सुवाहु का राज्य हिमालय के समीप था। (७८: १४)।

कर्ण ने हिमालय पर्वत के समस्त राजाओं को पराजित किया था। (वन पर्व २५४:४-६)। हिमालय छ वर्षपर्वतों में पूर्व से पश्चिम विस्तृत एक वर्ष पर्वत है। (भीष्म पर्व ६.३-५)। हिमालय पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उपमन्यु के दिव्य आश्रम को देखा था। (अनुशासन पर्व १४:४३-४५)। महाप्रस्थान काल में पाण्डवों को मार्ग में हिमालय मिला था। तत्पश्चात् आगे बढ़ने पर उन्हें बालुकार्णव मिला था (महाप्रस्थानिक पर्व : १-२)।

बहिर्गिरि तथा अन्तर्गिरि का उल्लेख आता है। बहिर्गिरि 'लेसर' हिमालय अर्थात् जहाँ से पहाड़ी आरम्भ होती है, उसे कहते है। इसमें मसूरी, नैनीताल, धर्मशाला, श्रीनगर के भूखण्ड हैं। इसे चूल हिमवन्त भी कहा जाता है। बहिर्गिरि की संज्ञा एक पर्वतीय प्रदेश से भी दी गयी है। इस प्रदेश को उत्तर दिग्विजय काल में अर्जुन ने जीता था। सभा पर्व २७ : ३ इन प्रदेशों की गणना भारतीय जनपदों में की गयी है। भीष्म पर्व ९ : ५०

अन्तर्गिरि मध्यवर्ती हिमालय है। अंग्रेजी में इसे ग्रेट सेन्ट्रल हिमालय कहते है। इसके अन्तर्गत किंचिनगंगा, धवलागिरी, गौरीशंकर, नन्दादेवी तथा नंगा पर्वतादि तथा उनके विभिन्न शिखर है। इनका सम्बोधन महा हिमवन्त नाम से भी किया गया है।

उपगिरी हिमालय के तराई के क्षेत्र को कहते है। महाभारत तथा अष्टाध्यायी में हिमालय की पर्वतीय शाखा का नाम उपगिरि दिया गया है। वह शैवालिक पर्वतमाला है। (अष्टाध्यायी ४ : २ : ११२)

योगिनी तन्त्र (१ : १, १ : १२, १ : १६) में हिमालय का उल्लेख मिलता है। हिमालय तथा कैलास को मेरु पर्वत के दक्षिण कहा गया है। हिमालय तथा पारियात्र पर्वतों के मध्य के देश को 'मध्यदेश' की संज्ञा दी गयी है। वह मध्यदेश पूर्व में आसाम तथा मणिपुर तक चला गया है।

मार्कण्डेय पुराण हिमालय का वर्णन करता है। हिमालय धनुषाकार एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला है। पश्चिम में अरब सागर और सिन्धु तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक फैली भारतीय सीमा पर स्थित अडिग पर्वतमाला को हिमालय कहना होगा। हिंगुल, हिन्दुकुश, कराकोरम, शैवालिक आदि सभी पर्वतमालाएँ हिमालय के अन्तर्गत आ जाती है। इस पुराण के अनुसार कैलास की स्थिति हिमालय के उत्तर तथा उसके पूर्व-पश्चिमीय विस्तार के मध्य स्थान पर पड़ेगा। भारत के मानचित्र द्वारा यह सत्य मालूम होता है। पुराणकारों को भारतीय भूगोल का कितना सच्चा ज्ञान था इसका पता चलता है।

मत्स्य पुराण (१२० : २) में कैलास को एक प्रकार से हिमालय में सम्मिलित किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार हिमालय का विस्तार ७५० कोस कहा गया है। कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी का मानदण्ड बताया है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

कौटिल्य ने हिमालय को चक्रवर्ती क्षेत्र के अन्तर्गत माना है। हिमालय से समुद्र तक के देश पर शासन करने वाले को चक्रवर्ती राजा तथा उसका क्षेत्र कहा गया है (१९ : १) राजशेखर ने काव्य मीमासा में हिमवत से समुद्र तक के देश पर शासन करने वाले को सम्राट् कहा है। हिमालय का वर्णन प्राचीन भारतीय सीमा का निर्धारण करना है।

कुमार सम्भव में कालिदास ने हिमालय को भारत की उत्तरीय सीमा पर रखा है। पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में उसे समुद्र तक विस्तृत होना कहा गया है। भारतवर्ष तथा हरिवर्ष के मध्य हिमालय की स्थिति मानी गयी है। हेमकूट को हिमालय के दक्षिण में भी कहा गया है। एकाध लेखकों ने किंपुरुष वर्ष को हेमकूट माना है।

बौद्ध ग्रन्थों मे हिमालय का वर्णन मिलता है। अंगुत्तर निकाय, संयुक्त निकाय, हिमवंत सुत्त, मक्कट सुत्त, पठम-पब्बत्तुपमा सुत्त में हिमालय को पर्वतराज कहा गया है। मैनाक पर्वत कैलास के समीप हिमालय में स्थित था। दद्दर, धम्मक, चण्डगिरी, कुलिन्द, विस्म पर्वत हिमालय के अन्तर्गत थे। कदम्ब, कुक्कुट, कौशिक, गौतम, पद्म, भारिक, लम्बक, वस्सम, सयंग, शोभित, कैलास, केदार, हिमालय पर्वत के भाग कहे गये हैं।

अलबेरुनी मेरु तथा निषध पर्वतों को हिमालय के अन्तर्गत मानता है। बौद्ध ग्रन्थ अपदान म कदम्ब, कुक्कुट अथवा कुकुट, भूतगण, कौशिक, गौतम, पदुम, भारक, लम्बक, वसभ, सयंग, शोभित को हिमालय में रखा गया है।

हिमालय को तीन हजार योजन वर्ग मिलों में विस्तृत तथा चौरासी हजार शिखरो से मण्डित कहा गया है।

हिमालय के अन्तर्गत महापद्म सर अर्थात् कश्मीर के उलर लेक का वर्णन बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय करता है। क्षुद्र हिमालय मे महापद्म ह्रद तथा महा हिमवन्त मे भी एक सर का होना मिलता है। उलर लेक साढे बारह वर्ग मील विस्तृत है। उलर का संस्कृत मूल शब्द उल्लोल है। उल्लोल का अपभ्रंश उलर हो गया है। उल्लोल का अर्थ लहर होता है। उलर में लहरो का आरोह तथा अवरोह वायु स्पर्श द्वारा सुन्दर लगता है। विशेषतः प्रातः तथा सायंकाल जब गगन में किंचित् अरुणाई सहित नीलिमा रहती है। उस समय किसी शैल श्रृंग पर बैठकर प्रकृति की इस अनुपम शोभा के नैसर्गिक सौन्दर्य को निरखने में विचित्र अनुभूति होती है।

हिमालय का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थो मे निम्नलिखित स्थलो पर विशेष रूप से मिलेगा। पाली साहित्य में हिमवा एवं हिमवन्त हिमालय का नाम दिया गया है।

परमत्थ जोतिका अध्याय १, २; समत्त पासादिका भाग १; विसुद्धि मग्ग ७; जातक भाग, ४, ६; कुणाल जातक ५:५०१, ५०२ हि०; महा विस्सतर जातक ६-३३६, ५३८ हि०; चेतिय जातक, धम्मपदट्ठ कथा भाग १, २, ३, ४; महावंश १:१८ तथा ५:२४ हि०; मिलिन्द प्रश्न पृष्ठ ३४७-६४८ हिन्दी, पवज्जा सुत्त दीघा निकाय पृष्ठ ३६ हि०; अट्ठ सालिनी (देवनागरी) पृष्ठ १४; थेर गाथा २:१३८; जैन ग्रन्थो में उत्तराध्ययन सूत्र ११:२७ पृष्ठ ४९; मनोरथ पुराण २:७५९; द्रष्टव्य है।

हिमालय की दस मुख्य नदियाँ है। वे है—गंगा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही, सिन्धु, सरस्वती, वेत्रवती, वीतंसा (वितस्ता), चन्द्रभागा।

मिलिन्द प्रश्न के अनुसार ५०० नदियाँ हिमालय से और निकलती है। उनमे उक्त दस नदियाँ मुख्य है। पुराणो में कुछ और प्रसिद्ध नदियों का वर्णन है जो हिमालय से निकलती है। यथा—शतद्रु, इरावती, कुहु, गोमती, धूतपापा, वाहुदा, निशचीरा, गण्डकी, कौसकी (मार्कण्डेय पुराण ५७:१६१८)।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार हिमालय मे सात बडे सरोवरो का वर्णन मिलता है—अनतप्त दह (मानसरोवर), कण्ण मुण्ड, रथकार छद्दन्त, कुणाल मन्दाकिनी, तथा सीहप्प पातक। कहा गया है कि उक्त सरोवरों का जल कभी ग्रीष्म ऋतु में भी तप्त नही होता।

बौद्ध ग्रन्थो में मानसरोवर को कैलास तथा त्रिकूट पर्वतों से सम्बन्धित किया गया है। बौद्ध ग्रन्थों में हिमालय की विभिन्न श्रेणियो का उल्लेख मिलता है—अस्सकण्ण गिरि, इसिधर, उदक, रजत, कंचन, करवीक, कालगिरि, चित्तकूट, मणिदस्स, युगन्धर, सुरियपस्स, सुदस्सन। सेत अर्थात् श्वेत पर्वत को हिमालय के शिखरो में श्रेष्ठ कहा गया है। अपदान मे लम्बक, गोतम, वसभ, सोमित, कोसिक, कदम्ब, भरिक आदि को हिमालय का पर्वत शृंग कहा गया है। चित्तकूट पर्वत को चित्रकूट नही समझना चाहिए। चित्तकूट पर्वत हिमालय के अन्तर्गत है। चित्रकूट विन्ध्य पहाडो का एक क्रम है। महावंश मे हिमालय का उल्लेख भगवान् के धातु भरे पात्र के सन्दर्भ मे आया है। हैमवत बौद्धो का एक सम्प्रदाय है। हिमालय की गोद में कश्मीर शिशु की तरह स्थित है इस पर प्रकाश डाल चुका हूँ। आधुनिक अर्थात् बीसवी शती के कश्मीर तथा कल्हण काल के कश्मीर की भौगोलिक सीमा तथा स्थिति में भिन्नता है। आधुनिक कश्मीर तथा हिमालय के साथ क्या सम्बन्ध है इस पर कुछ लिखना आवश्यक है। कालक्रम के अनुसार देशों की भौगोलिक स्थिति उनके राजनीतिक स्थितियो के साथ परिवर्तित होती रही है। हिमालय के पर्वतों में कंचन पर्वत, मणि पर्वत, हिंगुल पर्वत, अंजन पर्वत, सानु पर्वत, फलिक पर्वतो का उल्लेख मिलता है। (कुणाल जातक पृष्ठ ५०१)। हिंगुल पर्वत बलूचिस्तान में समुद्र तट से २० मील दूर अघोर अथवा हिंगुल नदी से आरम्भ होता है। इसे हिंगुल तथा हिंगुला कहते है।

शिखरों मे मुख्य उल्लेख मगन पर्वत, तुमकुम, नन्ददेवी, त्रिशूल, नन्दकोट, द्रूणा गिरि, बद्रीनाथ, केदार नाथ, नील कंठ, गंगोत्तरी, श्रीकन्त प्रन्दर पंथ, गौरीशृंग, काचन जिंगा, नमच पवा, मिलता है। गौरीशृंग किंचिन जिंगा तथा धवलागिर सबसे ऊँचे शिखर नेपाल में है।

●

परिशिष्ट 'ग'

वितस्ता

(तरंग १:२८ पृष्ठ ५७)

वितस्ता नदी को काश्मीरी भाषा में व्यथ कहते हैं। वितस्ता शब्द का अपभ्रंश व्यथ है। पुराकालीन पाश्चात्य लेखकों ने वितस्ता का नाम 'वेदस्ता' भी दिया है। चीन के इतिवृत्त में 'वितस्ता' नाम आता है। 'कश्मीर का एक नाम वितस्ता के आधार पर 'वैतस्तिका' है।

कहा जा चुका है कि ऋग्वेद में वितस्ता का उल्लेख है। प्राचीन यूनानी लेखकों ने ईरानी लेखकों के आधार पर वितस्ता का नाम 'हाइदसपेस' दिया है। पोलेमी ने 'विदसपेस' नाम से वितस्ता का उल्लेख किया है।

पंजाब में वितस्ता को झेलम कहते हैं। काश्मीरी पुरासाहित्य में यह नाम अज्ञात है। इसका मूल स्रोत मुसलिम लेखकों के लेखों में मिलता है। अल्बेरुनी ने वितस्ता का नाम 'जेलम' दिया है। श्रीवर ने सुलतान शाह हैदर के पंजाब के अभियान का वर्णन करते हुए झेलम शब्द को संस्कृत रूप देते हुए 'ज्यलमी' शब्द का प्रयोग किया है।

नीलमत पुराण में श्लोक ३३५-३८१ तक वितस्ता की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण वितस्ता का अपर नाम वैतस्तिका देता है। (१:१६४)

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के सम्बन्ध में धारणा है कि वह कश्मीर में लिखा गया था।

महाभारत सभा पर्व में वितस्ता को कश्मीर तथा पंजाब की नदी कहा गया है। वितस्ता वरुण की सभा मे स्थित रहकर उनकी उपासना करती है। वरुण का स्थान उत्तर मे है। वितस्ता उत्तर की नदी है। (९:१९)

महाभारत वन पर्व में उल्लेख आता है। कश्मीर मण्डल में नागराज तक्षक का वितस्ता नामक प्रसिद्ध सुन्दर भवन है। इस नदी मे स्नान एवं पित्रो के हेतु तर्पण द्वारा मानव को वाजपेय यज्ञ का लाभ होता है। मनुष्य उत्तम गति प्राप्त करता है। (: ८२ : ८९)

वितस्ता का जल सेवन भारत निवासी करते हैं। यहाँ संकेत है कि विनस्ता हिमालय से निकलकर भारत के प्रशस्त भूभाग में प्रवेश करती हैं। भारतीय उसके जल से लाभ उठाते हैं। (महा० : भीष्म पर्व : ९ : १६)

कठिन उपवास, व्रत के पश्चात् तरंगमालिनी वितस्ता में सात दिन स्नान करने वाला मनुष्य मुनि तुल्य निर्मल हो जाता है। (महा० : अनुशासन : २५ : ७)

देवी पार्वती ने भगवान् शंकर के प्रति स्त्री धर्म स्वीकार कर, जिनके विमर्श पर कार्य किया था, उनमें एक 'वितस्ता' भी थी। (महा० : अनुशासन : १४० : १८)

हरचरित चिन्तामणि के लेखक ने नीलमत पुराण की शब्दावली का प्रयोग किया है। वितस्ता को भगवती देवी पार्वती का रूप माना है। कथा है। पिशाचों के सम्पर्क द्वारा काश्मीरियों में उत्पन्न पाप किंवा दोष के मोचनार्थ, भगवती पार्वती ने काश्मीर में वितस्ता का रूप धारण किया है। भगवान् शिव ने नील नाग के स्थान पर शूल द्वारा प्रहार किया। यह स्थान 'नील कुण्ड' है। उसे 'शूल घात' तथा 'वितस्तात्र' कहते है। प्रहार एक 'वितस्ति' अर्थात् एक बालिश्त लगभग १२ अंगुल मिलाकर जितना नाप होता था उतने परिमाण मे था। अतएव 'वितस्ति' के आधार पर वितस्ता नामकरण किया गया। पाणिनि ने 'दिष्टि-वितस्त्योश्च' (६ : ४ : ८६) शब्द का प्रयोग किया है। वितस्ति तथा दिष्टि शब्द पर्यायवाचक हैं। वितस्ति भारत मे तथा दिष्टि शब्द ईरान में प्रचलित था। मध्य एशिया के खरोष्ठी लेखों मे दीष्टि शब्द आया है यह दिष्टि का अपभ्रंश है। वितस्ति और दिष्टि दोनों का अर्थ एक बालिश्त होता है।

'वितस्ताख्य' कश्मीर मे तक्षक नाग का निवास-स्थान माना है। 'वितस्ताद्रि' एक पहाड़ी है। यह कहाँ है। कहना कठिन है। महाभारत (१११ . ८२ . ९०) में वितस्ता का मूल स्रोत तक्षक नाग का स्थान माना गया है। इस स्थान का पता अभी नही लगा है।

देवी पार्वती किंवा उमा वितस्ता रूप से जिस स्थान पर प्रकट हुई थी उसे नील कुण्ड तथा शूल-घात कहते है। नीलनाग वर्तमान वेरी या वीर नाग है। गाथा कहती है। पापी लोगो के स्पर्श द्वारा देवी अपवित्र हो जायेंगी अतएव वे लुप्त हो गयी। काश्यप की प्रार्थना पर भगवती द्वितीय बार पुनः पंचहस्त नाग स्वरूप प्रकट हुई। यह स्थान दिवसर परगना में पाजव ग्राम है। यहाँ एक पवित्र जलस्रोत है। समीपस्थ निवासी इसे पवित्र मानते है। भगवती यहाँ भी लुप्त हो गयी। पुन. तृतीय बार नरसिंहाश्रम में जाकर देवी 'वितस्ता' रूप में प्रकट हुई। काश्यप ऋषि देवी पार्वती स्वरूप वितस्ता के संग के लिए लक्ष्मी को विशोका तथा सिन्धु को गंगा रूप कश्मीर में लाये। अतएव देवी उमा वितस्ता, लक्ष्मी विशोका; अदिति त्रिकोटी, शची हर्षपथा; तथा दिति चन्द्रावती; नदियो का रूप धारण कर कश्मीर की पवित्र भूमि पर निवास करने लगी।

वितस्ता के द्वितीय बार प्रकट होने के सम्बन्ध में एक और गाथा है। कुछ कम प्राचीन है। इस गाथा के अनुसार वितस्ता द्वितीय बार वर्तमान विथवितुर ग्राम में जलस्रोत स्वरूप प्रकट हुई। यह ग्राम वीरनाग से उत्तर-पश्चिम एक मील दूर स्थित है। यह गाथा वितस्ता माहात्म्य में कही गयी है। इससे प्रकट होता है। स्थान का नाम 'वितस्ता वार्तिका' था। कल्हण ने 'वितस्तात्र' का वर्णन किया है। यहाँ अशोक *ने स्तूप निर्माण कराया था। कल्हण ने वितस्ता का मूलस्रोत 'नीलकुण्ड' बताया है। स्पष्ट है। कल्हण के* समय में वेरीनाग वितस्ता का उद्गम माना जाता था। (वितस्ता माहात्म्य २:३७ रा०त०: १ १०२,१०३)

गाथा कहती है। उमा देवी हिमालय की कन्या है। वितस्ता का रूप लेकर कश्मीर में प्रकट हुई है। प्रथम उनका वर्ण नील था। वितस्ता का एक नाम नीलजा भी है। उसने पर्वत शिखर पर तपस्या की। उनका वर्ण गौर हो गया। इसलिये पर्वत का नाम गौरी शिखर पड गया। वितस्ता का जन्मदिन भाद्रपद शुक्लपक्ष त्रयोदशी माना जाता है। वितस्ता उत्सव नीलमत पुराण के अनुसार त्रयोदशी के तीन दिन पूर्व तथा तीन दिन पश्चात् तक मनाया जाता है। इस दिन वितस्ता में स्नान तथा विशेषतया सिन्धु वितस्ता संगम पर पूजा का विधान किया गया है। धूप, गन्ध, माला, नैवेद्य, नाटक खेलने के लिये दान, तथा नाटक 'पात्रों के पूजा का विधान किया गया है। वितस्ता उत्सव की द्वादशी को महाद्वादशी कहते है। यदि द्वादशी बुध पर पड़े तो उस दिन भगवान् का जप, स्नान, दान, श्राद्ध किया जाय। उसका फल द्वादश गुना मिलता

है। यदि बुध श्रवण पर पड़ जाय तो उसे अत्यन्त महती द्वादशी कहते हैं। सन्निहति स्नान का फल प्राप्त होता है। यदि द्वादशी श्रवण को पड जाय तो उस दिन वितस्ता सिन्धु संगम प्राप्त मृत्तिका स्नान का फल उनके संगम स्नान फल के समान होता है। (नीलमत ७६७-७७५)

मार्तण्ड अधित्यका के धुर पश्चिम इसलामावाद अर्थात् अनन्त नाग नगर है। इसका प्राचीन नाम अनन्त नाग है। अनन्त नाग के कारण नगर का नाम अनन्त नाग पडा है। अनन्त नाग जलस्रोत नगर के दक्षिण दिशा में है। हरचरित चिन्तामणि तथा कुछ माहात्म्यों में इसका उल्लेख मिलता है। अनन्त नाग का सरोवर चौखूटा काफी बड़ा है। पृष्ठ भाग से जल निकलता है। सरोवर सर्वदा पूर्ण रहता है। यहाँ लोग स्नान करते है। तैरते हैं। यहाँ का कोलाहल तथा बच्चों की जल क्रीडा मुझे आजन्म स्मरण रहेगी। नी० ८८२, ११६०, ११८० हरचरित चिन्तामणि १०:२५१

नगर के उत्तर और बवन मार्तण्ड के मार्ग में गौतम नाग है। जिसका वर्णन मार्तण्ड माहात्म्य तथा नीलमत में दिया गया है। नी० : १०५

अनन्त नाग के समीप वितस्ता को नदी का वास्तविक रूप प्राप्त होता है। यहाँ सान्द्रन, ब्रिग, आर-पथ तथा लिदर स्रोतस्विनियाँ का संगम वितस्ता में होता है। खनवल के पश्चात् वितस्ता नदी नाव चलते योग्य हो जाती है। समस्त कश्मीर उपत्यका में इस स्थान के पश्चात् नावों द्वारा परिवहन वारहमूला तक होता है। मूलस्रोत अर्थात् नीलकुण्ड किंवा वेरी नाग से डल लेक के समीप तक नदी मे केवल १२० फीट का ढाल है। नदी की धारा मे विशेष परिवर्तन नही हुआ है। वह अपने मूल स्थान अथवा प्रवाह को पकडे प्रवाहित है। उसका प्रवाह कछारो अथवा जलौठ भूमि से होकर होता है। शीत ऋतु में नदी का जल स्तर नीचा हो जाता है। जल घट जाता है। तट नदी के निम्न जलस्तर से १५ फीट ऊँचा उठ जाता है। वसंत ऋतु में हिम के गलने पर नदी में बाढ आती है। कभी-कभी तट से उफनकर वितस्ता बहने लगती है। ग्रीष्म कालीन मूसलाधार वृष्टि से भी नदी मे बाढ आ जाती है। कृषि को बाढ से अपार क्षति उठानी पड़ती है। कल्हण ने इस प्रकार के बाढों का बहुत वर्णन किया है। रा० . ७:१११६, ७.१६१४, ८:२४४६, ८.२७८६, ८:१४१७, ८:१४२३, जोन : ४०३।

जलप्लावन से कश्मीर उपत्यका को बचाने के लिए सेतुओं जिसका अपभ्रंश 'सथ' है प्राचीन समय में निर्माण कराया गया था। उनमें जल प्रवेश तथा निःसृत करने के लिए द्वार बने रहते थे। इन द्वारों को अब कुलावा कहते हैं। उनका विशद उल्लेख कल्हण, जोन तथा श्रीवर की राजतरंगिणियों में निम्नलिखित स्थानों पर मिलेगा—रा० : १ : १५९, ३ : ४८३, ४ : ९१, ५ : १०३, १२०, ८ : २३८०, रा० : जोन ४०४, ८८७ रा० : श्रीवर ३ : १८९।

नीलमत के श्लोक ३००–३०१ से प्रकट होता है कि काश्यप ने वितस्ता से निवेदन किया था। 'सुभगे ! वितस्ता ! तुम हल मार्ग से गमन करो अन्यथा यह देश जलसे सर स्वरूप हो जायगा।' इससे प्रकट होता है कि वितस्ता का मार्ग कश्मीर उपत्यका का जल बहाने के लिये बनाया गया था। हल जोतते समय जिस प्रकार भूमि में गहरी प्रणाली बन जाती है। उसी प्रकार गहरे पात्र को बनाने का संकेत यहाँ किया गया है।

प्राचीन काल में सड़कें बहुत कम थीं। लगभग १०० वर्ष पूर्व सड़कों का अस्तित्व नगण्य था। व्यापार, परिवहन आदि का कार्य नदी द्वारा होता था। सन् १८९१ ई० की जनगणना के अनुसार लगभग ३४०० हाजी अर्थात् नाविक जल परिवहन कार्य में लगे थे। नावें परिवहन की प्रधान साधन थीं। आज उनकी संख्या बहुत कम रह गयी है। रा० ५ : ८४, ७ : १६२८।

हरचरित चिन्तामणि के लेखक ने नीलमत पुराण की शब्दावली का प्रयोग किया है। वितस्ता को भगवती देवी पार्वती का रूप माना है। कथा है। पिशाचों के सम्पर्क द्वारा काश्मीरियों में उत्पन्न पाप किया दोष के मोचनार्थ, भगवती पार्वती ने काश्मीर में वितस्ता का रूप धारण किया है। भगवान् शिव ने नील नाग के स्थान पर शूल द्वारा प्रहार किया। यह स्थान 'नील कुण्ड' है। उसे 'शूल घात' तथा 'वितस्तात्र' कहते हैं। प्रहार एक 'वितस्ति' अर्थात् एक बालिस्त लगभग १२ अंगुल मिलकर जितना नाप होता था उतने परिमाण में था। अतएव 'वितस्ति' के आधार पर वितस्ता नामकरण किया गया। पाणिनि ने 'दिष्टि-वितस्त्योश्च' (६ . ४ ' ८६) शब्द का प्रयोग किया है। वितस्ति तथा दिष्टि शब्द पर्यायवाचक हैं। वितस्ति भारत में तथा दिष्टि शब्द ईरान में प्रचलित था। मध्य एशिया के खरोष्ठी लेखों में दीटि शब्द आया है यह दिष्टि का अपभ्रंश है। वितस्ति और दिष्टि दोनों का अर्थ एक बालिस्त होता है।

'वितस्ताख्य' कश्मीर में तक्षक नाग का निवास-स्थान माना है। 'वितस्ताद्रि' एक पहाड़ी है। वह कहाँ है। कहना कठिन है। महाभारत (१११ : ८२ : ९०) में वितस्ता का मूल स्रोत तक्षक नाग का स्थान माना गया है। इस स्थान का पता अभी नहीं लगा है।

देवी पार्वती किंवा उमा वितस्ता रूप से जिस स्थान पर प्रकट हुई थी उसे नील कुण्ड तथा शूल-घात कहते हैं। नीलनाग वर्तमान वेरी या वीर नाग है। गाथा कहती है। पापी लोगों के स्पर्श द्वारा देवी अपवित्र हो जायेंगी अतएव वे लुप्त हो गयी। काश्यप की प्रार्थना पर भगवती द्वितीय वार पुनः पंचहस्त नाग स्वरूप प्रकट हुई। यह स्थान दिवसर परगना में पाजय ग्राम है। यहाँ एक पवित्र जलस्रोत है। सामीपस्य निवासी इसे पवित्र मानते हैं। भगवती यहाँ भी लुप्त हो गयी। पुनः तृतीय वार नरसिंहाश्रम में जाकर देवी 'वितस्ता' रूप में प्रकट हुई। काश्यप ऋषि देवी पार्वती स्वरूप वितस्ता के संग के लिए लक्ष्मी को विशोका तथा सिन्धु को गंगा रूप कश्मीर में लाये। अतएव देवी उमा वितस्ता; लक्ष्मी विशोका; अदिति त्रिकोटी; शची हर्षपथा; तथा दिति चन्द्रावती, नदियों का रूप धारण कर कश्मीर को पवित्र भूमि पर निवास करने लगी।

वितस्ता के द्वितीय वार प्रकट होने के सम्बन्ध में एक और गाथा है। कुछ कम प्राचीन है। इस गाथा के अनुसार वितस्ता द्वितीय वार वर्तमान वियवितुर ग्राम में जलस्रोत स्वरूप प्रकट हुई। यह ग्राम वीरनाग से उत्तर-पश्चिम एक मील दूर स्थित है। यह गाथा वितस्ता माहात्म्य में कही गयी है। इससे प्रकट होता है। स्थान का नाम 'वितस्ता वातिका' था। कल्हण ने 'वितस्तात्र' का वर्णन किया है। यहाँ अशोक ने स्तूप निर्माण कराया था। कल्हण ने वितस्ता का मूलस्रोत 'नीलकुण्ड' बताया है। स्पष्ट है। कल्हण के समय में वेरीनाग वितस्ता का उद्गम माना जाता था। (वितस्ता माहात्म्य २:३७ रा०त०: १ : १०२, १०३)

गाथा कहती है। उमा देवी हिमालय को कन्या है। वितस्ता का रूप लेकर कश्मीर में प्रकट हुई है। प्रथम उनका वर्ण नील था। वितस्ता का एक नाम नीलजा भी है। उसने पर्वत शिखर पर तपस्या की। उनका वर्ण गौर हो गया। इसलिये पर्वत का नाम गौरी शिखर पड़ गया। वितस्ता का जन्मदिन भाद्रपद शुक्लपक्ष त्रयोदशी माना जाता है। वितस्ता उत्सव नीलमत पुराण के अनुसार त्रयोदशी के तीन दिन पूर्व तथा तीन दिन पश्चात् तक मनाया जाता है। इस दिन वितस्ता में स्नान तथा विशेषतया सिन्धु वितस्ता संगम पर पूजा का विधान किया गया है। धूप, गन्ध, माला, नैवेद्य, नाटक खेलने के लिये दान, तथा नाटक पात्रों के पूजा का विधान किया गया है। वितस्ता उत्सव को द्वादशी को महाद्वादशी कहते हैं। यदि द्वादशी बुध पर पड़े तो उस दिन भगवान् का जप, स्नान, दान, श्राद्ध किया जाय। उसका फल द्वादश गुना मिलता

है। यदि बुध श्रवण पर पड जाय तो उसे अत्यन्त महती द्वादशी कहते हैं। सन्निहति स्नान का फल प्राप्त होता है। यदि द्वादशी श्रवण को पड़ जाय तो उस दिन वितस्ता सिन्धु संगम प्राप्त मृतिका स्नान का फल उनके संगम स्नान फल के समान होता है। (नीलमत ७६७-७७५)

मार्तण्ड अधित्यका के धुर पश्चिम इसलामाबाद अर्थात् अनन्त नाग नगर है। इसका प्राचीन नाम अनन्त नाग है। अनन्त नाग के कारण नगर का नाम अनन्त नाग पड़ा है। अनन्त नाग जलस्रोत नगर के दक्षिण दिशा में है। हरचरित चिन्तामणि तथा कुछ माहात्म्यों में इसका उल्लेख मिलता है। अनन्त नाग का सरोवर चौकूटा काफी बड़ा है। पृष्ठ भाग से जल निकलता है। सरोवर सर्वदा पूर्ण रहता है। यहाँ लोग स्नान करते हैं। तैरते हैं। यहाँ का कोलाहल तथा बच्चों की जल क्रीडा मुझे आजन्म स्मरण रहेगी। नी० ८८२, ११६०, ११८० हरचरित चिन्तामणि १०:२५१

नगर के उत्तर और यवन मार्तण्ड के मार्ग में गौतम नाग है। जिसका वर्णन मार्तण्ड माहात्म्य तथा नीलमत में दिया गया है। नी० : १०५

अनन्त नाग के समीप वितस्ता को नदी का वास्तविक रूप प्राप्त होता है। यहाँ सान्द्रन, ब्रिग, आरपथ तथा लिदर स्रोतस्विनियाँ का संगम वितस्ता में होता है। खानबल के पश्चात् वितस्ता नदी नाव चलने योग्य हो जाती है। समस्त कश्मीर उपत्यका में इस स्थान के पश्चात् नावों द्वारा परिवहन बारहमूला तक होता है। मूलस्रोत अर्थात् नीलकुण्ड किंवा वेरी नाग से डल लेक के समीप तक नदी मे केवल २२० फीट का ढाल है। नदी की धारा मे विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। वह अपने मूल स्थान अथवा प्रवाह को पकड़े प्रवाहित है। उसका प्रवाह कछारी अथवा जलोठ भूमि से होकर होता है। शीत ऋतु में नदी का जल स्तर नीचा हो जाता है। जल घट जाता है। तट नदी के निम्न जलस्तर से १५ फीट ऊँचा उठ जाता है। वसंत ऋतु में हिम के गलने पर नदी में बाढ आती है। कभी-कभी तट से उफनकर वितस्ता बहने लगती है। ग्रीष्म कालीन मूसलाधार वृष्टि से भी नदी में बाढ़ आ जाती है। कृषि को बाढ़ से अपार क्षति उठानी पड़ती है। कल्हण ने इस प्रकार के बाढ़ों का बहुत वर्णन किया है। रा० . ७:१११६, ७:१६१४, ८:२४४६, ८:२७८६, ८:१४१७, ८:१४२३, जोन : ४०३।

जलप्लावन से कश्मीर उपत्यका को बचाने के लिए सेतुओं जिसका अपभ्रंश 'सथ' है प्राचीन समय मे निर्माण कराया गया था। उनमें जल प्रवेश तथा नि:सृत करने के लिए द्वार बने रहते थे। इन द्वारों को अब कुलावा कहते हैं। उनका विशद उल्लेख कल्हण, जोन तथा श्रीवर की राजतरंगिणियों में निम्नलिखित स्थानों पर मिलेगा—रा० : १ : १५९, ३ : ४८३, ५ : ९१, ५ : १०३, १२०, ८ : २३८०, रा० : जोन ४०४, ८८७ रा० : श्रीवर ३ : १८९।

नीलमत के श्लोक ३००–३०१ से प्रकट होता है कि काश्यप ने वितस्ता से निवेदन किया था। 'सुभगे ! वितस्ता ! तुम हल मार्ग से गमन करो अन्यथा यह देश जलसे सर स्वरूप हो जायगा।' इससे प्रकट होता है कि वितस्ता का मार्ग कश्मीर उपत्यका का जल बहाने के लिये बनाया गया था। हल जोतते समय जिस प्रकार भूमि मे गहरी प्रणाली बन जाती है। उसी प्रकार गहरे पात्र को बनाने का संकेत वहाँ किया गया है।

प्राचीन काल में सड़कें बहुत कम थी। लगभग १०० वर्ष पूर्व सड़कों का अस्तित्व नगण्य था। व्यापार, परिवहन आदि का कार्य नदी द्वारा होता था। सन् १८९१ ई० की जनगणना के अनुसार लगभग ३४०० हाजी अर्थात् नाविक जल परिवहन कार्य में लगे थे। नावें परिवहन की प्रधान साधन थीं। आज उनकी संख्या बहुत कम रह गयी है। रा० ५ : ८४, ७ : १६२८।

वितस्ता के तट पर कश्मीर की राजधानियों को होने का गौरव प्राप्त है। श्रीनगर, पुराणाधिष्ठान, परिहासपुर आदि इसके तट पर हैं। प्राय प्राचीन तीर्थ स्थान तथा नगर इसके तट पर बने थे। गाँवों की आबादी नदी के कछार में थी। और आज भी है। नावों द्वारा ग्रामों तथा नगरों का सामान और उद्योग-धन्धों की वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाती हैं। कल्हण के मापुर में वर्णन द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि काश्मीरी जनता में नौविहन का कितना महत्त्व था। (रा० . १ : २०१)

खनबल स्थान अनन्तनाग नगर का बन्दरगाह या पत्तन था। नीलमत पुराण में खनबल को 'नाग पुच्छ नाग' कहते हैं। शा० (नी० १३०, हरचरित चिन्तामणि १५१)

खनबल के पश्चात् वितस्ता विजयेश्वर तीर्थ अर्थात् विजय बेहरा में प्रवेश करती है। यह वर्तमान नगर बिजब्रोर है। नदी के लगभग एक मील अधोभाग में ऊँची कछार अनिश्चयता अर्थात् करेवा पड़ता है। वाम तट पर कश्मीर उपत्यका का अत्यन्त प्राचीन स्थान चक्रधर पड़ता है। उसे आजकल 'चक्रदर उड' कहते हैं।

चक्रधर से ३ मील और उत्तराव की ओर जाने के पश्चात् 'मायवाश्रम' अर्थात् 'मरहोम' पड़ता है। वितस्ता में यहीं विशोका अर्थात् 'विशो' तथा 'रमण्यावती' अर्थात् 'रामब्यार' नदियाँ मिलती हैं। माहात्म्य में इस संगम का नाम गम्भीरा संगम दिया गया है। यहाँ की तीर्थ-यात्रा अभी तक लोग करते हैं। रामब्यार अर्थात् रमण्यावती तथा वैशो नदी का जहाँ संगम है उसे 'गम्भीरा' कहते हैं। कल्हण ने गम्भीरा का वर्णन अनेक स्थानों पर किया है। एक मत है कि विशोका की धारा जो ध्वनोपरा के समीप बहती थी पूर्व काल में ध्वान धारिणी कही जाती थी कालान्तर में इसका नाम गम्भीरा पड़ गया। (नील० १२१४–१२९५ तथा १३०५–१३०८)

गम्भीरा का ऐतिहासिक महत्त्व है। विजयेश्वर से श्रीनगर के मार्ग में पड़ने के कारण सैनिक महत्त्व का स्थान है। राजा सुस्सल की सेना सन् ११२२ ई० में यहीं पीछे हटती हुई पूर्णतया पराजित हो गयी थी। लगभग ६ वर्ष के पश्चात् उसके पुत्र के सेनापति ने विद्रोही सेना पर विजय प्राप्त किया था। (रा० : ८ : १०६३ ८ . १४१७)

गम्भीरा संगम के पश्चात् वितस्ता में दक्षिण तट से प्राचीन 'होलदा' तथा वर्तमान 'उलर' जिला का जल लेकर एक स्रोतस्विनी मिलती है। तत्पश्चात् नदी 'वैथवन' अर्थात् 'वस्तर' वन के शिलाधाद् अवन्तिपुर के प्राचीन नगर से होती हुई प्रवाहित होती है। यहाँ से श्रीनगर तक इसमें कोई नदी नहीं मिलती। एक 'रामुस' नदी मिलती है परन्तु वह नाममात्र की स्रोतस्वनी है।

श्रीनगर के पूर्वीय भाग का जल डल (डल लेक) में गिरता है। यहाँ डल का पानी एक छोटी कुल्या अर्थात् नहर से वितस्ता में गिरता है। इस कुल्या को 'त्सुन्ट कुल' कहते हैं। प्राचीन काल में इसको 'महासरित' कहते थे। इस सरित पर सेतु अर्थात् बाँध बँधा है। उसके कारण डल लेक तथा श्रीनगर दोनों की रक्षा होती है। नदी का जल बाँध के कारण डल लेक में नहीं जा सकता। महासरित में 'दुर्गगलिका' पर जल द्वार लगाया गया था।

डल लेक का जल महासरित में जाता है। डल लेक अपनी अनुपमेय शोभा के लिए प्रसिद्ध है। यह सर ४ मील लम्बा तथा ढाई मील चौड़ा है। इसका जल करीब ३० फिट से अधिक गहरा नहीं है। इसमें उपह्रद तथा तैरते खेत हैं। जल स्वच्छ तथा ताजा रहता है।

दल अर्थात् डल का वर्णन इस नाम से कल्हण ने कहीं नहीं किया है। श्रीवर ने इसे 'डल' नाम से सम्बोधित किया है। वितस्ता माहात्म्य में डल का वर्णन मिलता है (२१ : ३९)

श्रीवर ने डल के दो द्वीपों का वर्णन किया है। एक का नाम 'रूप लाक' (चान्दी की लंका) और दूसरे का नाम 'सुनलांक' (स्वर्ण लंका) है। डल के तटवर्तीय तथा जल के अनेक स्थानों का नाम दिया गया है। 'हस्तवालिक' अर्थात् अस्तवोल का पता चलता है। गोपाद्रि, ज्येष्ठेश्वर, थेदा, सुरेश्वरी आदि स्थान अपने अनेक नागों के साथ डल के पूर्वीय तट पर स्थित हैं। शालीमार, निशात तथा नसीम बाग मुगलों ने निर्माण कराया था। त्रिप्रस्था नदी धुर उत्तर में डल में मिलती है।

वितस्ता श्रीनगर में तीन मिल बहती है। उसके तट पर मकान बने हैं। उनमें लगे शिलाखण्ड प्राचीन काल के ध्वस्मावशेषों से प्राप्त किये गये हैं। वे पूर्व काल में अधिकतर मन्दिरों तथा अन्य देवस्थानों में लगे थे। उनके देखने तथा उन पर हुए नक्काशी के कामों से पता चलता है कि प्राचीन काल में कितनी सुन्दर भवनों की रचना वितस्ता तट पर रही होगी। वह काशी से कम सुन्दर काशी उसके लघुरूप में नहीं रही होगी। नगर में प्रथमतः नदी उत्तर वाहिनी है। चौथे पुल के समीप मोड लेकर दक्षिण-पश्चिम की तरफ घूमती है। यहाँ पर कुतकुल अर्थात् प्राचीन 'क्षितिका कुल्या' है। क्षितिका का वर्णन कल्हण ने किया है। (रा० : ८ : ७३२)

कुछ आगे चलकर वितस्ता में 'दुग्ध गंगा' अर्थात् वत्सकुल मिलती है। श्रीनगर के अधोभाग में वितस्ता के दोनों तरफ कच्छ भूमि अर्थात् दलदलीय भूखण्ड मिलता है। वह कुछ दूर तक चला गया है। वाम तट पर सुखसर तथा पंचनोर नम्बल को पर्वतीय लघु स्रोतस्विनियाँ जल पूरित करती हैं। नदी के उत्तर में दलदल अधिक फैला है। वितस्ता की सहायक नदी सिन्ध का डेल्टा है।

दुदरहोम प्राचीन 'दुग्धाश्रम' के समीप नदी की शाखाएँ हो जाती हैं। उनका डेल्टा बन जाता है। वे उथले दलदल हो जाते हैं। उन्हें अंचार कहते हैं। इसका उत्तरीय भाग ऊँची भूमि के साथ सिन्ध उपत्यका के साथ श्रीनगर को सम्बन्धित करता है। पश्चिमी दिशा का डेल्टा एक कछार अधित्यका है। यह सिन्ध उपत्यका के पश्चिमीय अधोभाग को सम्बन्धित करता हुआ वितस्ता-सिन्धु संगम तक पहुँच जाता है। शादी-पुर के ठीक दूसरी तरफ सिन्धु वितस्ता से मिलती है। वितस्ता सिन्धु संगम प्रयाग तुल्य कश्मीर का पवित्र तीर्थ स्थान है। सुदूर पूर्व काल में वह संगम त्रिगाम के समीप था। कश्मीर के हिन्दू जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी पवित्रता प्रयाग संगम समान मानी गयी है। माहात्म्य में इस तीर्थ की पवित्रता का अत्यधिक गुणगान किया गया है। जहाँ दो नदियों का संगम है वहाँ ईंटों का निर्मित किया एक द्वीप है। उस पर एक चिनार का वृक्ष लगा है। यह चिनार का वृक्ष प्रयाग के वट वृक्ष तुल्य पवित्र माना जाता है। मैं यहाँ वितस्ता के बाढ़ के समय सितम्बर सन् १९६२ में आया था।

वितस्ता-सिन्धु-संगम प्रयाग कहा गया है। त्रिकोटि संगम से रोपेश्वर हर, पावना के संगम और राजो विन्दु विनमंला से चीर मोचन तक का क्षेत्र वाराणसी के समान पवित्र माना गया है। (नील० १३०१, १३२७)

गाँव सम्बल में श्रीनगर से उलर लेक को उत्तर जाने वाला मार्ग आता है। नदी को पार करता त्रागवल दर्रा तक जाता है। इस मार्ग के वाम दिशा में प्राचीन जयपुर है। मध्य आठवीं शताब्दी में जया-पीड ने यहाँ अपनी राजधानी स्थापित की थी। यह सम्बल के दलदल तथा नोर नाला के मध्य एक द्वीप पर स्थित है। इसे अन्दर कोट कहते हैं। (रा० : ४ : ५०६–५११)

सम्बल के समीप वितस्ता नदी अहतुंग पहाडी के मूल से गुजरती है। पहाड़ी एक हजार फिट ऊँची होगी। इस पर्वत के छाया में मनसावल अर्थात् मानस सर सुन्दर झील है। इसका वर्णन नीलमत तथा जोनराज ने किया है। यह सरोवर मीलों लम्बा है। कश्मीर के सब झीलों से अधिक गहरा है। भूगोल के वर्णन के समय इसका वर्णन किया गया है। वितस्ता का सम्बन्ध मनसावल से एक छोटे नहर द्वारा होता है। (रा० : जोन ८६४, नील० 890, 1244, 1247, 1334)

वितस्ता के वाम तट पर 'उच्छकुण्डल' तथा 'मग्कुण्डल' दो ग्राम हैं। प्राचीन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि कभी उलर लेक इन ग्रामो के समीप तक फैला था। कल्हण से मालूम होता है कि उक्त ग्राम रिक्लेम कर बनाए गए थे। जोनराज उन्हें ऊलर लेक के तट पर रखता है। श्रीवर ने इन ग्रामो का उल्लेख करते हुए उन्हें समुद्रकोट (सुन्दर कोट) से द्वारिका के समीप अन्दर कोट तक उलर के तट पर बताता है। इसी प्रकार 'सुय्य कुण्डल' का उल्लेख मिलता है। (रा० ५ : १२० रा० जोन १२३०)

सोपोर के पास वितस्ता की बडी अन्तिम सहायक नदी कश्मीर मे मिलती है। इसका नाम 'पोहुर' है। वह सोपुर के अधोभाग में चार मील पर है। वितस्ता में मिलने के पूर्व उत्तर-पश्चिम कश्मीर उपत्यका का जल लाती है। कल्हण ने काश्मीर के इस क्षेत्र का बहुत कम वर्णन किया है। राजतरंगिणी में पोहुर अथवा और किसी नदी के संगम का वर्णन नही मिलता। इस नदी का प्राचीन नाम क्या था निश्चयात्मक रूप से नही कहा जाता। जोनराज ने इस नदी को 'पहर' कहा है। माहात्म्यो में प्रहर तथा प्रहार दोनों पाठ मिलते है। (रा० जोन ११५०, ११५३, वितस्ता माहात्म्य २७–२, नील० 1322)

हमल स्रोतस्विनी हमल परगना में बहती आती है। हमल ही 'समाला' नदी (रा० : ७ : १५९)

महापद्मसर अर्थात् उलर से लगभग चौदह मील और आगे चलकर बारहमूला के गर्त मे वितस्ता गिरती है। बारहमूला के पश्चात् वितस्ता में नावें नही चल सकती। उसका प्रवाह उत्तरोत्तर वेगमय हो जाता है। जल धारा की भयकर जल वेग ध्वनि द्वारा घाटी निरन्तर गूँजती रहती है।

वितस्ता :

वायु का ब्रह्माण्ड, कूर्म और मत्स्य पुराणों मे स्पष्ट उल्लेख मिलता है। मार्कण्डेय पुराण वितस्ता का स्थान गंगा, सिन्धु तथा सरस्वती के साथ रखता है।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, कूर्म तथा वाम पुराणों के अनुसार :—'हिमवत्पादानि सृता' रूप से वितस्ता का उल्लेख किया गया है। अलबेरूनी ने हिमालय से निकलने वाली नदियों में 'वियत्त' अर्थात् वितस्ता का उल्लेख किया है।

भागवत पुराण (५ : १० . १७) ने वितस्ता की गणना विश्व की महानदियो मे की है।

शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्निनी, विश्वेति महानद्यः।

निम्नलिखित मुख्य नदियो का वर्णन राजतरंगिणी तथा नीलमत पुराण में मिलता है। उनका प्राचीन तथा आधुनिक नाम दे देना ठीक होगा :

इरावती : रावी
वितस्ता : झेलम
विपाशा . व्यास

देविका : रावी की एक सहायक नदी है। उमा का रूप है। रावी और चनाव के मध्य बहती है

कुहू : कुभा अर्थात् काबुल नदी

गोमती : गोमेल (ऋग्वेदीय गोमती) नीलमत में गौतमी है। कहीं कहीं गोमती छप गया है।

शतद्रु : शतलज

चन्द्रभागा : चिनाव

सरस्वती : सरस्वती

सिन्धु : महानद तथा दूसरी इसी नाम की छोटी नदी कश्मीर में है जो शादीपुर के पास वितस्ता में मिलती है। दोनों नदियाँ कश्मीर मण्डल में बहती हैं। सिन्धु नदी लद्दाख, लेह, गिलगिट, चिलास होती पाकिस्तान में निकल जाती है। छोटी सिन्धु सोनमर्ग के पर्वत के किनारे-किनारे बहती वितस्ता में मिलती है। कश्मीर मण्डल की जो नदियाँ सिन्धु में मिलती हैं उनमें तथा सिन्धु में स्नान करने पर मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्गगामी होता है। इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

उत्तरकुरु को ऐतरेय ब्राह्मण (९ : १४) में परेण हिमवन्तं कहा गया है। एक अन्य स्थान पर (८ : २३) में वसिष्ठ सातहव्य ने उत्तरकुरु को देवक्षेत्र कहा है।

सातवीं शताब्दी में चीनी लेखकों के [illegible]र सिन्धु नदी से चेनाव नदी और दक्षिण माल्दरेज तक था। हुएनसांग के अनुसार उरसा क[illegible]या। [illegible]पश्चिम[illegible] तक्षशिला तथा सिंहपुर दक्षिण-पश्चिम पूंछ और राजौरी दक्षिण था। उरसा भूखण्ड कश्मीर त[illegible]क्षशिला के मध्य में था, (कनिंघम) पूर्व तथा पूर्व-दक्षिण की सीमा कहाँ तक विस्तृत थी पता नहीं चलता। परन्तु रावी नदी तक यह सीमा विस्तृत थी यह बात मानी जाने लगी है। उत्तर में सिन्धु नदी की उपत्यका में हिमालय पर्व[illegible] माला में स्थित भूखण्ड था। उस समय जालन्धर हर्षवर्धन के राज्य में था। आठवीं शता[illegible] का नक्शा ठीक [illegible]ता परन्तु शंकर वर्मा ने कांगड़ा उपत्यका विजय किया था। इस प्रकार कश्मीर सिन्धु नदी से [illegible]तलज तक पर्वतीय प्रदेश में था। हुएनसांग के मत से ११६६ मील है।

सम्बल के समीप वितस्ता नदी अहतुंग पहाड़ी के मूल से गुजरती है। पहाड़ी एक हजार फिट ऊँची होगी। इस पर्वत के छाया में मनसावल अर्थात् मानस सर सुन्दर झील है। इसका वर्णन नीलमत तथा जोनराज ने किया है। यह सरोवर मीलों लम्बा है। कश्मीर के सब झीलों से अधिक गहरा है। भूगोल के वर्णन के समय इसका वर्णन किया गया है। वितस्ता का सम्बन्ध मनसावल से एक छोटे नहर द्वारा होता है। (रा० : जोन ८६४, नील० 890, 1244, 1247, 1334)

वितस्ता के वाम तट पर 'उच्छकुण्डल' तथा 'मग्कुण्डल' दो ग्राम हैं। प्राचीन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि कभी उलर लेक इन ग्रामों के समीप तक फैला था। कल्हण से मालूम होता है कि उक्त ग्राम रिक्लेम कर बनाए गए थे। जोनराज उन्हें ऊलर लेक के तट पर रखता है। श्रीवर ने इन ग्रामों का उल्लेख करते हुए उन्हें समुद्रकोट (सुन्दर कोट) से द्वारिका के समीप बन्दर कोट तक उलर के तट पर बताता है। इसी प्रकार 'सुय्य कुण्डल' का उल्लेख मिलता है। (रा० ५ : १२० रा० जोन १२३०)

सोपोर के पास वितस्ता की बड़ी अन्तिम सहायक नदी कश्मीर में मिलती है। इसका नाम 'पोहुर' है। वह सोपुर के अधोभाग में चार मील पर है। वितस्ता में मिलने के पूर्व उत्तर-पश्चिम कश्मीर उपत्यका का जल लाती है। कल्हण ने काश्मीर के इस क्षेत्र का बहुत कम वर्णन किया है। राजतरंगिणी में पोहुर अथवा और किसी नदी के संगम का वर्णन नहीं मिलता। इस नदी का प्राचीन नाम क्या था निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जाता। जोनराज ने इस नदी को 'पहर' कहा है। माहात्म्यों में प्रहर तथा प्रहार दोनों पाठ मिलते हैं। (रा० जोन ११५०, ११५३, वितस्ता माहात्म्य २७–२, नील० 1322)

हमल स्रोतस्विनी हमल परगना में बहती आती है। हमल ही 'समाला' नदी (रा० : ७ : १५९)

महापद्मसर अर्थात् उलर से लगभग चौदह मील और आगे चलकर बारहमूला के गर्त में वितस्ता गिरती है। बारहमूला के पश्चात् वितस्ता में नावें नहीं चल सकतीं। उसका प्रवाह उत्तरोत्तर वेगमय हो जाता है। जल धारा की भयंकर जल वेग ध्वनि द्वारा घाटी निरन्तर गूँजती रहती है।

वितस्ता :

वायु का ब्रह्माण्ड, कूर्म और मत्स्य पुराणों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। मार्कण्डेय पुराण वितस्ता का स्थान गंगा, सिन्धु तथा सरस्वती के साथ रखता है।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, कूर्म तथा वाम पुराणों के अनुसार :—'हिमवत्पादानि.सृता' रूप से वितस्ता का उल्लेख किया गया है। अलबेरूनी ने हिमालय से निकलने वाली नदियों में 'वियत्त' अर्थात् वितस्ता का उल्लेख किया है।

भागवत पुराण (५ : १० . १७) ने वितस्ता की गणना विश्व की महानदियों में की है।

शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्निमी, विश्वेति महानद्यः।

निम्नलिखित मुख्य नदियों का वर्णन राजतरंगिणी तथा नीलमत पुराण में मिलता है। उनका प्राचीन तथा आधुनिक नाम दे देना ठीक होगा -

इरावती : रावी
वितस्ता : झेलम
विपाशा : व्यास

देविका : रावी की एक सहायक नदी है। उमा का रूप है। रावी और चनाव के मध्य बहती है

कुहू : कुभा अर्थात् काबुल नदी

गोमती : गोमेल (ऋग्वेदीय गोमती) नीलमत में गौतमी है। कहीं कहीं गोमती छप गया है।

शतद्रु : शतलज

चन्द्रभागा : चिनाव

सरस्वती : सरस्वती

सिन्धु : महानद तथा दूसरी इसी नाम की छोटी नदी कश्मीर में है जो वान्दीपुर के पास वितस्ता में मिलती है। दोनों नदियाँ कश्मीर मण्डल में बहती है। सिन्धु नदी लद्दाख, लेह, गिलगिट, चिलास होती पाकिस्तान में निकल जाती है। छोटी सिन्धु सोनमर्ग के पर्वत के किनारे-किनारे बहती वितस्ता में मिलती है। कश्मीर मण्डल की जो नदियाँ सिन्धु में मिलती है उनमें तथा सिन्धु में स्नान करने पर मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्गगामी होता है। इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

उत्तरकुरु को ऐतरेय ब्राह्मण (९ : १४) में परेण हिमवन्तं कहा गया है। एक अन्य स्थान पर (८ : २३) में वसिष्ठ सातहव्य ने उत्तरकुरु को देवक्षेत्र कहा है।

सातवीं शताब्दी में चीनी लेखकों के [illegible] ओर सिन्धु नदी से चेनाव नदी और दक्षिण माल्दरेज तक था। हुएनसाग के अनुसार उरसा कश्मीर [illegible] पश्चिम तक्षशिला तथा सिंहपुर दक्षिण-पश्चिम पूछ और राजौरी दक्षिण था। उरसा भूखण्ड कश्मीर तथा तक्षशिला के मध्य में था, (कनिंघम) पूर्व तथा पूर्व-दक्षिण की सीमा कहाँ तक विस्तृत थी पता नहीं चलता। परन्तु रावी नदी तक यह सीमा विस्तृत थी यह बात मानी जाने लगी है। उत्तर में सिन्धु नदी की उपत्यका में हिमालय पर्वत माला में स्थित भूखण्ड था। उस समय जालन्धर हर्षवर्धन के राज्य में था। आठवी शताब्दी का नक्शा ठीक [illegible] परन्तु शंकर वर्मा ने कांगड़ा उपत्यका विजय किया था। इस प्रकार कश्मीर सिन्धु नदी से [illegible] शतलज तक पर्वतीय प्रदेश में था। हुएनसाग के मत से ११६६ मील है।

परिशिष्ट 'घ'

नाग

(तरंग : १ : २ : ९ पृष्ठ—६३)

नाग शब्द तथा नाग जाति पर विवेचन की आवश्यकता है। लगभग १३ जातियों का उल्लेख नीलमत पुराण में आया है। नाग जाति का नाम भी है, १ नाग, २. पिशाच, ३. दर्व, ४. अभिसार, ५. गान्धार, ६ जुहुन्दर, ७ शक, ८. खश, ९ तगण, १०. मण्डव, ११. मद्र, १२. अन्तर्गिरि तथा १३. बहिर्गिरि। द्रविड भाषा में नाग को याम्बू अथवा याऊ कहते हैं।

नाग शब्द पवन अर्थात् वायु के लिए प्रयोग किया जाता है। अर्थ वायु किंवा पवन प्रिय के लिए भी किया गया है। प्रजापति कश्यप की पत्नी कद्रू थी। कद्रू प्रजापति दक्ष की कन्या थीं। देव, दैत्य, दानव, रक्ष, भद्र तथा गरुड प्रजापति कश्यप के पुत्र थे।

अमर कोष (१ : ८ . ४) में नाग के दो नाम 'नागा: काद्रवेया.' 'नाग' और 'काद्रवेय' दिया गया है।

स्युरुत्तरपदे [illegible] ही 'समकुञ्जराः ।
सिंहशार्दूलनागा[illegible]ः पुं[illegible] [illegible]ार्थगोचराः ॥

—अमरकोष ३ : १ : ५९

नीलमत पुराण में ६०३ नागों का उल्लेख किया गया है। (द्रष्टव्य श्लोक 965 = 967, 881—946, 223, 226;)

वेदों में नाग जा[illegible] उल्लेख नहीं मिलता। शतपथ ब्राह्मण (११ : २ : ७ : १२) में महानाग का वर्णन किया गया है। [illegible]का शाब्दिक अर्थ विशाल हाथी अथवा सर्प होता है। वृहदारण्यक उपनिषद् (१ · ३ · २४) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (८ २२) के उद्धरणों में नाग शब्द का प्रयोग हाथी के लिए किया गया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (२ : ४ : १) में देव शास्त्रीय नाग का उल्लेख है।

पुराणों में नाग वंश का वर्णन मिलता है। उनके दो मुख्य राज्य मथुरा तथा चम्पावती में थे। नव नागों ने चम्पावती में राज्य किया तथा सात नागों ने मथुरा में। वायु पुराण में नव नागों के स्थान पर नव 'नाका.' का पाठ मिलता है। (वायु पुराण : ९८ : ४५३ तथा ९९: ३८२, ब्रह्माण्ड पुराण : ३ : ७४, १९४-१९५, २६७)

वृत्र का वर्णन अवश्य वेद में मिलता है, शतपथ ब्राह्मण में उसे दानव कहा गया है। वह दानवों का राजा कहा ग[illegible] है। उसका नाम कालेय रखा गया है। सुरों के शत्रु रूप में चित्रित किया गया है। इन्द्र तथा वृत्र का [illegible] प्रख्यात है। इस प्रकार के आख्यान सुमेर बाइबोलोनिया में 'बेल मददुक' का नियमन के साथ, मिस्र[illegible] का संघर्ष 'एपोप' के साथ, यूनान में, अपोलो' का 'फाइकोन' के साथ, और 'पोइ-

रेस' का 'गोरगोन मेद्रूसा' तथा ईरान में 'फरदियम' का 'अजीदहक' के साथ संघर्ष के दिखाये गये हैं।

अथर्व वेद, तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद्, गृह्य सूत्र में नाग पूजा को उल्लेख मिलता है। वे एक जाति रूप में चित्रित किये गये है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण अन्य जातियों के साथ नाग जाति का उल्लेख करता है। (१ : ६ : ६) मत्स्य पुराण 'बहुतरनागजातय.' अर्थात् नागों की बहुत जातियाँ थी, वर्णन करता है (१५४ .४६२) पद्म पुराण तथा हरिवंश पुराणों में उल्लेख आता है। पृथु के पूर्व नाग पृथ्वी का दोहन करते थे। (पद्मपुराण भूमिखण्ड २८ : ४५ तथा हरिवंश: १ : ७ : २६-२७)।

वृत्र शब्द का प्रयोग वेदों में किया गया है। शाब्दिक अर्थ है—'ध्वान्तारिंदानवा वृत्रा '—अर्थात् वृत्रासुर, अन्धकार, शत्रु। वृत्रासुर इन्द्र संग्राम की कथा प्रसिद्ध है। इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। अपनी रक्षा के लिये वृत्र ने अहि का रूप धारण कर लिया था।

शतपथ ब्राह्मण में वृत्र को सर्प तथा दानव कहा गया है। कश्यप के दनुनाम्नी पत्नी द्वारा उत्पन्न पुत्रों का नाम दानव है। शतपथ ब्राह्मण में वृत्र का नाम सर्प दिया गया है।

मुझे नेपाल यात्रा में सर्प जाति के लोगों से सम्पर्क हुआ था। पहले नाम सुना तो कुछ आश्चर्य हुआ। सर्प जाति के लोग अच्छे, सुन्दर मनुष्य जैसे थे। उनकी जाति का सर्प क्यो पड़ गया, मैंने पूछा वे स्वयं नहीं बता सके। किन्तु उनके पास रहने से मैंने अनुभव किया सर्प किंवा नाग का उनके मन में उच्च भाव है। मै समझता हूँ किसी समय सर्प की उपासना करने के कारण, उन्हें सर्प पूजक कहा गया था। किंवा सर्प विद्या में वह जाति निपुण होगी। अतएव उनका नाम सर्प में दिया गया। सम्भव है वह नाम कालान्तर में कर्मवाचक से जातिवाचक हो गया। नाग शब्द, साप, सर्प, कीरा के सामान्य अर्थ में प्रयोग किया जाता है। एक और सम्भावना हो सकती है। किसी पर्वतीय जाति का प्रतीक किंवा चिन्ह सर्प अथवा नाग रहा था। उस प्रतीक किंवा चिन्ह के कारण नाग शब्द जातिवाचक हो गया। नाग प्राणी है। वे मनुष्य है। और रेंगने वाले जीव भी है ?

फर्गुसन ने नाग जाति को तुरानी अर्थात् तुरान देशीय किंवा तुरान वंशीय कहा है। तुरानी तथा आर्यों की एक ही परम्परा थी। यह तथा द्रविड जाति मूलत. नाग अर्थात् सर्प पूजक नही थे। वे उत्तरी भारत निवासी थे। आर्यों ने उन्हें जीता था। ('ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप' पृष्ठ ६०, ६१)।

कनिंघम ने नाग जाति को ड्रेगन अर्थात् नाग पूजक माना है। उनकी गणना 'शक', 'मीदिया' तथा 'जोहक' की श्रेणी में की है। तीन अत्यन्त प्राचीन मुद्राओं पर सर्प टंकित मिलता है। उस पर पुरानी ब्राह्मी लिपि मे 'काटस' अंकित है। उन्हें पश्चिमी पंजाब मे पाया गया था। वह प्रारम्भिक 'तक्खस' थे। नाग जाति का तक्षक राजा माना जाता है। उन्हीं के उत्तराधिकारी थे। उन्हें 'काद्रवेय; किंवा 'कुद्रव' कहा जाता था। (वे कद्रू की सन्तान थे। कनिंघम ए० एम० आर० भाग २ : पृष्ठ १०)

कर्नल टाड के अनुसार नाग जाति शेषनाग देश से आई थी। यह देश सम्भवतः स्काईथिक अर्थात् स्टार्बो वर्णित तोखरी है। तोखरी शब्द-संज्ञा तुर्कों के लिए व्यवहृत की गयी है। वे शकद्वीप में राज्य करते थे। चीनी उन्हें 'तक ई उवम' कहते थे। वर्तमान ताजिन के ताजिक थे। (एनाल्स एण्ड एण्टो क्विटीज आफ राजस्थान पृ० ४५) श्रीपार्जिटर ने उन्हें मानव, सौद्युम तथा एल (चन्द्रवंश) से भिन्न नही माना है। उन्हें क्षत्रियो की परम्परा में विरोधी तथा पर जाति कहा है। दैत्य, दानव, नाग एवं राक्षस सर्वथा मानव से विरुद्ध थे नही माना है। (पार्जिटर ए० आई० एच० टी० पृ० २९०)

कारल्लेयले (CORLLTALE) का मत है कि असुर तथा नाग जातियाँ संस्कृति तथा सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन जाति थी। वे आर्यवंशीय थे। (कारलेयले : ए. एस. आर. भाग ६ : पृष्ठ ४, ५) नाग भारत में असुर जाति की रीढ़ तथा शक्ति थे। नागों के पतन के पश्चात् भारत में संगठित असुर जाति का पतन हो गया। (बैनर्जी-शास्त्री : असुर इण्डिया पृष्ठ ६६) श्री ए० बी० बैनर्जी ने असुरों की एक शाखा को नाग जाति माना है। डाक्टर ग्रियर्सन का मत है कि नाग जाति अनार्य थी। हुंजा नगर के निवासी थे। हुंजा गिलगिट क्षेत्र कश्मीर में है। यह एक रियासत थी। इस समय पाकिस्तान में है। उनकी मूल भाषा का पता नहीं चल सका है। भारत में विभिन्न नागा किंवा नाग जाति कही जाने वालों की भाषाएँ एक नहीं हैं। उनमें भिन्नता है। उनकी भाषा बुरुशास्की थी। यह भाषा किस वर्ग में आती है। अभी निश्चय नहीं किया जा सका है। (ग्रियर्सन : पैशाची, पिशाच एण्ड माडर्न पिशाच इन. जेड. डी. एम. जी. भाग ६६ . पृष्ठ ७२)

श्री सी० एफ० ओल्धिम का मत है। नाग जाति सूर्य पूजक थी। उनकी भाषा संस्कृत थी। उनकी जाति का चिन्ह किंवा प्रतीक नाग का फण था। इसी प्रतीक अथवा चिन्ह के कारण इस जाति की संज्ञा नाग जाति हो गयी थी। (ओल्धम : सरपेण्ट वरशिप इन इण्डिया इन जे. आर. ए. एस० १८९१ पृष्ठ ३९१)

श्री सी० एस० वेक का मत है। नागा आदिम वासी नाग पूजक थे। (श्री सी० एस० वेक : सरपेण्ट वरशिप एण्ड अदर एसेज : पृष्ठ ९१)

प्रोफेसर हापकिन्स का मत है। गरुड और तार्क्ष्य पश्चिमी घाट के मानव सरदार थे।

(होपकिन्स : इपिक मैथोलोजी पृष्ठ २३)

श्री. एल. बी. केनी ने 'नागाज इन मगध' के लेख में मत प्रकट किया है। वे द्रविड वंशीय जाति के मानव थे। आर्यों के भारत आगमन के पूर्व उत्तरीय भारत में रहते थे। (जे. बी. ओ. आर. एस: भाग २८ . पृष्ठ १६३)

श्री ए. सी. दास का मत है। नाग जाति आर्यों की ही एक शाखा है। (ए सी. दास. ऋग्वैदिक कलचर पृष्ठ १६७) श्री. एन. जे शिन्दे का विचार है। नाग आर्य जाति के नहीं थे। क्योंकि वे प्राय. आर्यों के विरोधी प्रतीत होते हैं। अथर्ववेद में सर्पों का उल्लेख जिस प्रकार किया गया है उससे कोई बात सन्तोषप्रद रूप से स्पष्ट नहीं होती। नागों का नाम अधिकतया अनार्य प्रतीत होता है (श्री एन. जे. शिन्दे, पूना. दि फाउण्डेशन आफ अथर्ववैदिक रिलीजन पृष्ठ ९:२००)

पाश्चात्य विद्वानों के विवेचनात्मक ऐतिहासिक मतों के पश्चात् भारतीय पुरातन साहित्य में नाग जाति का रूप क्या था इस विषय पर प्रकाश डालना उचित होगा। अनेक मतों के बीच नागा जाति स्वयं एक समस्या बन गयी है। उल्लेख कर चुका हूँ। नाग जाति तथा शब्द का प्रयोग वेद में नहीं किया गया है। नाग के स्थान पर दानव वृत्र का उल्लेख मिलता है :

त्वं ताँ इन्द्रो भयां अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥

शतपथ ब्राह्मण में दानव तथा सर्प की संज्ञा वृत्र से दी गयी है। (१६ : ३ : ९ ।)

'तस्माद् वृत्रोऽस्य मद यास्स भभन्त स्यादहिस्तं दनेश्चु दनायूश्च मातेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः।'

महाभारत में दानव राज कलिय का वर्णन मिलता है। कलिय को संज्ञा कालिय नाग से दी गयी है। (महा० : वनपर्व: १०१:७)

कलियं इति विख्यातो गण:।
तैश्च वृत्रं समाश्रित्य जगत्सर्वं ॥ मय ३.१०१.७

अथर्व वेद ५:१३, ५:५, ४.५६ तथा १५.१३ में वृत्र का उल्लेख आता है। तैत्तिरीय संहिता काण्ड ४ प्रपाठक २ अनुवाक २ मे उल्लेख है। छान्दोग्योपनिषद् ८ ' ४ में असुर विरोचन का वर्णन आत्मा के प्रसंग में आता है।

सुर एवं असुर के सिद्धान्तों में मूल भेद यह था कि असुर शरीर को आत्मा मानते थे। सुर अर्थात् देवता लोग आत्मा को शरीर से भिन्न समझते थे। सुर-असुर एक ही आर्य जाति की सन्तान थे। सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक मतभेदों के कारण दो वर्ग कालान्तर में हो गये थे।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३ : कण्डिका १३ तथा पारस्कर गृह्य सूत्र काण्ड २ कण्डिका १४ में इसका उल्लेख मिलता है।

रामायण में नाग जाति का उल्लेख मिलता है। भोगवती नगरी नाग राजाओं की राजधानी थी। उसपर रावण ने विजय प्राप्त किया था।

सर्वदिव्यास्त्रयोक्ता यज्ञविघ्नकर सदा।
पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥
—वा० रा० कि० सर्ग ३२ : १३

सुमहत्तो बलं कस्माद् विषादं भजते भवान्।
त्वया भोगवती गत्वा निर्जिता पन्नगा युधि ॥
—वा० रा० युद्धकाण्ड सर्ग ७ : ८

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥—वा० रा० उ० सर्ग २३ : ५

नागो के रहने का स्थान, पाताल, रसातल तथा समुद्र कहा गया है। समुद्र में रहने का अर्थ यह नही है कि जल के भीतर रहते थे बल्कि समुद्र तटवर्ती किंवा समुद्र आवृत प्रदेश द्वीप अथवा भूखण्ड में निवास करते थे।

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम्।
अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥—वा० रा: कि० सर्ग ४० : ३८ ॥

रावण ने नाग जाति पर विजय किया था। वह जाति सुसभ्य तथा नगरों में भी रहने वाली थी। यदि वे शक्तिशाली नही होते, उनका तत्कालीन राजनीतिक जीवन मे प्रमुख स्थान न होता तो रावण उन पर विजय पाकर गौरवान्वित किस प्रकार होता। निस्सन्देह नाग एक मानव जाति थी। (रामा० : सुन्दर : १२ : २१-२२)

महाभारत मे नाग यज्ञ; नाग द्वारा राजा परीक्षित की मृत्यु एवं खाण्डव वनदाह का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाभारत के अनुसार नाग एक मानव जाति थी। तक्षक नाग इस जाति का राजा था। तक्षक के मित्र इन्द्र ने खाण्डव दाह रोकने का प्रयास किया था किन्तु सफल नहीं हुए। नाग राज

कारल्लेयले (CORLLTALE) का मत है कि असुर तथा नाग जातियाँ संस्कृति तथा सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन जाति थी । वे आर्यवंशीय थे । (कारलेयले : ए. एस. आर. भाग १ : पृष्ठ ४, ५) नाग भारत में असुर जाति की रीढ तथा शक्ति थे । नागो के पतन के पश्चात् भारत मे संगठित असुर जाति का पतन हो गया । (बैनजी-शास्त्री : असुर इण्डिया पृष्ठ ६६) श्री ए० सी० बैनर्जी ने असुरों की एक शाखा को नाग जाति माना है । डाक्टर ग्रियर्सन का मत है कि नाग जाति अनार्य थी । हुंजा नगर के निवासी थे । हुंजा गिलगिट क्षेत्र कश्मीर मे है । यह एक रियासत थी । इस समय पाकिस्तान मे है । उनकी मूल भाषा का पता नही चल सका है । भारत मे विभिन्न नागा किंवा नाग जाति कही जाने वालों की भाषाएँ एक नही है । उनमे भिन्नता है । उनकी भाषा बुरुशस्की थी । यह भाषा किस वर्ग में आती है । अभी निश्चय नही किया जा सका है । (ग्रियर्सन : पैशाची, पिशाच एण्ड माडर्न पिशाच इन. जेड. डी. एम. जी. भाग ६६ : पृष्ठ ७२)

श्री सी० एफ० ओल्थिम का मत है । नाग जाति सूर्य पूजक थी । उनकी भाषा संस्कृत थी । उनकी जाति का चिन्ह किंवा प्रतीक नाग का फण था । इसी प्रतीक अथवा चिन्ह के कारण इस जाति की संज्ञा नाग जाति हो गयी थी । (ओल्थम : सरपेण्ट वरशिप इन इण्डिया इन एन. आर. ए. एस० १८९१ पृष्ठ ३९१)

श्री सी० एस० वेक का मत है । नागा आदिम वासी नाग पूजक थे । (श्री सी० एस० वेक : सरपेण्ट वरशिप एण्ड अदर एसेज : पृष्ठ ९१)

प्रोफेसर हापकिन्स का मत है । गरुड और तार्क्ष्य पश्चिमी घाट के मानव सरदार थे ।

(होपकिन्स : इपिक मैथोलोजी पृष्ठ २१)

श्री. एल. वी. केनी ने 'नागाज इन मगध' के लेख मे मत प्रकट किया है । वे द्रविड़ वंशीय जाति के मानव थे । आर्यों के भारत आगमन के पूर्व उत्तरीय भारत में रहते थे । (जे बी. ओ. आर. एसः भाग २८ पृष्ठ १६३)

श्री ए. सी. दास का मत है । नाग जाति आर्यों की ही एक शाखा है । (ए सी. दासः ऋग्वेदिक कलचर पृष्ठ १६७) श्री. एन. जे शिन्दे का विचार है । नाग आर्य जाति के नही थे । क्योंकि वे प्रायः आर्यों के विरोधी प्रतीत होते हैं । अथर्ववेद मे सर्पों का उल्लेख जिस प्रकार किया गया है उससे कोई बात सन्तोषप्रद रूप से स्पष्ट नही होती । नागों का नाम अधिकतया अनार्य प्रतीत होता है (श्री एन. जे. शिन्दे, पूनाः दि फाउण्डेशन आफ अथर्ववैदिक रिलीजन पृष्ठ ९:२००)

पाश्चात्य विद्वानो के विवेचनात्मक ऐतिहासिक मतों के पश्चात् भारतीय पुरातन साहित्य में नाग जाति का रूप क्या था इस विषय पर प्रकाश डालना उचित होगा । अनेक मतों के बीच नागा जाति स्वयं एक समस्या बन गयी है । उल्लेख कर चुका हूँ । नाग जाति तथा शब्द का प्रयोग वेद मे नही किया गया है । नाग के स्थान पर दानव वृत्र का उल्लेख मिलता है :

त्वं ताँ इन्द्रो भयां अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥

शतपथ ब्राह्मण में दानव तथा सर्प की संज्ञा वृत्र से दी गयी है । (१६ : ३ : ९ ।)

'तस्माद् वृत्रोऽय मद यास्स मभन्त स्यादहिस्तं दनेश्चु दनायूश्च मातेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहु ।'

महाभारत में दानव राज कलिय का वर्णन मिलता है। कलिय को संज्ञा कालिय नाग से दी गयी है। (महा० : वनपर्व: १०१:७)

कलियं इति विख्यातो गण : ।
तैश्च वृत्रं समाश्रित्य जगत्सर्वं ॥ मय .३ १०१.७

अथर्व वेद ५:१३, ५:५, ४:५६ तथा १५.१३ मे वृत्र काउल्लेख आता है। तैत्तिरीय संहिता काण्ड ४ प्रपाठक २ अनुवाक २ में उल्लेख है। छान्दोग्योपनिषद् ८ १.४ में असुर विरोचन का वर्णन आत्मा के प्रसंग में आता है।

सुर एवं असुर के सिद्धान्तो में मूल भेद यह था कि असुर शरीर को आत्मा मानते थे। सुर अर्थात् देवता लोग आत्मा को शरीर से भिन्न समझते थे। सुर-असुर एक ही आर्य जाति की सन्तान थे। सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक मतभेदो के कारण दो वर्ग कालान्तर में हो गये थे।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३ : कण्डिका १३ तथा पारस्कर गृह्य सूत्र काण्ड २ कण्डिका १४ मे इसका उल्लेख मिलता है।

रामायण मे नाग जाति का उल्लेख मिलता है। भोगवती नगरी नाग राजाओ की राजधानी थी। उसपर रावण ने विजय प्राप्त किया था।

सर्वदिव्यास्त्रयोक्ता यज्ञविघ्नकर सदा।
पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥
—वा० रा० कि० सर्ग ३२ : १३

सुमहच्चो बलं कस्मात् विषादं भजते भवान्।
त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिता पन्नगा युधि ॥
—वा० रा० युद्धकाण्ड सर्ग ७ : ८

स ॥ भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥—वा० रा० उ० सर्ग २३ : ५

नागो के रहने का स्थान, पाताल, रसातल तथा समुद्र कहा गया है। समुद्र में रहने का अर्थ यह नही है कि जल के भीतर रहते थे बल्कि समुद्र तटवर्ती किंवा समुद्र आवृत प्रदेश द्वीप अथवा भूखण्ड में निवास करते थे।

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम्।
अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥—वा० रा: कि० सर्ग ४० : ३८ ॥

रावण ने नाग जाति पर विजय किया था। वह जाति सुसभ्य तथा नगरों में भी रहने वाली थी। यदि वे शक्तिशाली नही होते, उनका तत्कालीन राजनीतिक जीवन में प्रमुख स्थान न होता तो रावण उन पर विजय पाकर गौरवान्वित किस प्रकार होता। निस्सन्देह नाग एक मानव जाति थी। (रामा० : सुन्दर। १२ : २१-२२)

महाभारत में नाग यज्ञ; नाग द्वारा राजा परीक्षित की मृत्यु एवं खाण्डव वनदाह का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाभारत के अनुसार नाग एक मानव जाति थी। तक्षक नाग इस जाति का राजा था। तक्षक के मित्र इन्द्र ने खाण्डव दाह रोकने का प्रयास किया था किन्तु सफल नहीं हुए। नाग राज

कारल्लेयले (CORLLTALE) का मत है कि असुर तथा नाग जातियां संस्कृति तथा सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन जाति थी। वे आर्यवंशीय थे। (कारलेयले : ए. एस. आर. भाग ६ : पृष्ठ ४, ५) नाग भारत मे असुर जाति की रीढ तथा शक्ति थे। नागो के पतन के पश्चात् भारत मे संघटित असुर जाति का पतन हो गया। (बैनर्जी-शास्त्री : असुर इण्डिया पृष्ठ ९६) श्री ए० बी० बैनर्जी ने असुरों की एक शाखा को नाग जाति माना है। डाक्टर ग्रियर्सन का मत है कि नाग जाति अनार्य थी। हुंजा नगर के निवासी थे। हुंजा गिलगिट क्षेत्र कश्मीर में है। यह एक रियासत थी। इस समय पाकिस्तान मे है। उनकी मूल भाषा का पता नही चल सका है। भारत मे विभिन्न नागा किंवा नाग जाति कही जाने वालो की भाषाएँ एक नही हैं। उनमें भिन्नता है। उनकी भाषा कुरुशस्की थी। यह भाषा किस वर्ग मे आती है। अभी निश्चय नही किया जा सका है। (ग्रियर्सन . पैशाची, पिशाच एण्ड माडर्न पिशाच इन. जेड. डी. एम. जी. भाग ६६ : पृष्ठ ७२)

श्री सी० एफ० ओल्धिम का मत है। नाग जाति सूर्य पूजक थी। उनकी भाषा संस्कृत थी। उनकी जाति का चिन्ह किंवा प्रतीक नाग का फण था। इसी प्रतीक अथवा चिन्ह के कारण इस जाति की संज्ञा नाग जाति हो गयी थी। (ओल्धम : सरपेण्ट वरशिप इन इण्डिया इन एच. आर. ए. एस० १८९१ पृष्ठ ३९१)

श्री सी० एस० वेक का मत है। नागा आदिम वासी नाग पूजक थे। (श्री सी० एस० वेक : सरपेन्ट वरशिप एण्ड अदर एसेज : पृष्ठ ९१)

प्रोफेसर हापकिन्स का मत है। गरुड और ताक्ष्र्य पश्चिमी घाट के मानव सरदार थे।

(होपकिन्स : इपिक मैथोलौजी पृष्ठ २३)

श्री. एल वी. केनी ने 'नागाज इन मगध' के लेख में मत प्रकट किया है। वे द्रविड़ वंशीय जाति के मानव थे। आर्यों के भारत आगमन के पूर्व उत्तरीय भारत में रहते थे। (जे. बी. ओ. आए. एसः भाग २८ पृष्ठ १६३)

श्री ए. सी. दास का मत है। नाग जाति आर्यो की ही एक शाखा है। (ए सी दासः ऋग्वेदिक कल्चर पृष्ठ १६७) श्री. एन. जे शिन्दे का विचार है। नाग आर्य जाति के नही थे। क्योंकि वे प्रायः आर्यों के विरोधी प्रतीत होते हैं। अथर्ववेद मे सर्पों का उल्लेख जिस प्रकार किया गया है उससे कोई बात सन्तोषप्रद रूप से स्पष्ट नही होती। नागों का नाम अधिकतया अनार्य प्रतीत होता है (श्री एन. जे. शिन्दे, पूनाः दि फाउण्डेशन आफ अथर्ववैदिक रिलीजन पृष्ठ ९:२००)

पाश्चात्य विद्वानों के विवेचनात्मक ऐतिहासिक मतों के पश्चात् भारतीय पुरातन साहित्य में नाग जाति का रूप क्या था इस विषय पर प्रकाश डालना उचित होगा। अनेक मतो के बीच नागा जाति स्वयं एक समस्या बन गयी है। उल्लेख कर चुका हूँ। नाग जाति तथा शब्द का प्रयोग वेद में नही किया गया है। नाग के स्थान पर दानव वृत्र का उल्लेख मिलता है :

त्वं ताँ इन्द्रो भयां अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥

शतपथ ब्राह्मण में दानव तथा सर्प की संज्ञा वृत्र से दी गयी है। (१६ : ३ : ९ ।)

'तस्माद् वृत्रोऽस्य मद याग्य मभन्त स्यार्दह्स्तं दनेदच दनायूश्च मातेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याह.।'

परिशिष्ट घ

महाभारत में दानव राज कलिय का वर्णन मिलता है। कलिय की संज्ञा कालिय नाग से दी गयी है। (महा० : वनपर्व: १०१:७)

कलियं इति विख्यातो गणः।
तैश्च वृत्रं समाश्रित्य जगत्सर्वं ॥ मय :३:१०१:७

अथर्व वेद ५:१३, ५:५, ४:५६ तथा १५:१३ में वृत्र काउल्लेख आता है। तैत्तिरीय संहिता काण्ड ४ प्रपाठक २ अनुवाक २ मे उल्लेख है। छान्दोग्योपनिषद् ८:१:४ में असुर विरोचन का वर्णन आत्मा के प्रसंग में आता है।

सुर एवं असुर के सिद्धान्तो में मूल भेद यह था कि असुर शरीर को आत्मा मानते थे। सुर अर्थात् देवता लोग आत्मा को शरीर से भिन्न समझते थे। सुर-असुर एक ही आर्य जाति की सन्तान थे। सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक मतभेदो के कारण दो वर्ग कालान्तर में हो गये थे।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३ : कण्डिका १३ तथा पारस्कर गृह्य सूत्र काण्ड २ कण्डिका १४ में इसका उल्लेख मिलता है।

रामायण मे नाग जाति का उल्लेख मिलता है। भोगवती नगरी नाग राजाओं की राजधानी थी। उसपर रावण ने विजय प्राप्त किया था।

सर्वद्विध्याख्ययोक्ता यज्ञविघ्नकरं सदा।
पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥
—वा० रा० कि० सर्ग ३३ : १३

सुमहन्नो बलं कस्माद् विषादं भजते भवान्।
त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिता पन्नगा युधि ॥
—वा० रा० युद्धकाण्ड सर्ग ७ : ८

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥—वा० रा० उ० सर्ग २३ : ५

नागों के रहने का स्थान, पाताल, रसातल तथा समुद्र कहा गया है। समुद्र में रहने का अर्थ यह नहीं है कि जल के भीतर रहते थे बल्कि समुद्र तटवर्ती किंवा समुद्र आवृत प्रदेश द्वीप अथवा भूखण्ड में निवास करते थे।

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम्।
अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥—वा० रा. कि० सर्ग ४० : ३८ ॥

रावण ने नाग जाति पर विजय किया था। वह जाति सुसभ्य तथा नगरों में भी रहने वाली थी। यदि वे शक्तिशाली नही होते, उनका तत्कालीन राजनीतिक जीवन में प्रमुख स्थान न होता तो रावण उन पर विजय पाकर गौरवान्वित किस प्रकार होता। निस्सन्देह नाग एक मानव जाति थी। (रामा० : सुन्दर : १२ : २१-२२)

महाभारत में नाग यज्ञ; नाग द्वारा राजा परीक्षित की मृत्यु एवं खाण्डव वनदाह का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाभारत के अनुसार नाग एक मानव जाति थी। तक्षक नाग इस जाति का राजा था। तक्षक के मित्र इन्द्र ने खाण्डव दाह रोकने का प्रयास किया था किन्तु सफल नहीं हुए। नाग राज

कारलेयले (CORLLTALE) का मत है कि असुर तथा नाग जातियां संस्कृति तथा सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन जाति थी । वे आर्यवंशीय थे । (कारलेयले : ए. एस. आर. भाग ६ : पृष्ठ ४, ५) नाग भारत में असुर जाति की रीढ तथा शक्ति थे । नागों के पतन के पश्चात् भारत में संघटित असुर जाति का पतन हो गया । (बैनर्जी-शास्त्री . असुर इण्डिया पृष्ठ ६६) श्री ए० बी० बैनर्जी ने असुरों की एक शाखा को नाग जाति माना है । डाक्टर ग्रियर्सन का मत है कि नाग जाति अनार्य थी । हुंजा नगर के निवासी थे । हुंजा गिलगिट क्षेत्र कश्मीर में है । यह एक रियासत थी । इस समय पाकिस्तान में है । उनकी मूल भाषा का पता नही चल सका है । भारत में विभिन्न नागा किंवा नाग जाति कही जाने वाली की भाषाएँ एक नही हैं । उनमें भिन्नता है । उनकी भाषा कुरुशस्की थी । यह भाषा किस वर्ग में आती है । अभी निश्चय नही किया जा सका है । (ग्रियर्सन : पैशाची, पिशाच एण्ड माडर्न पिशाच इन. जेड. डी. एम. जी. भाग ६६ : पृष्ठ ७२)

श्री सी० एफ० ओल्धिम का मत है । नाग जाति सूर्य पूजक थी । उनकी भाषा संस्कृत थी । उनकी जाति का चिन्ह किंवा प्रतीक नाग का फण था । इसी प्रतीक अथवा चिन्ह के कारण इस जाति की संज्ञा नाग जाति हो गयी थी । (ओल्धम : सरपेण्ट वरशिप इन इण्डिया इन एच. आर. ए. एस० १८९१ पृष्ठ ३९१)

श्री सी० एस० वेक का मत है । नागा आदिम वासी नाग पूजक थे । (श्री सी० एस० वेक : सरपेण्ट वरशिप एण्ड अदर एसेज : पृष्ठ ९१)

प्रोफेसर हापकिन्स का मत है । गरुड और तार्क्ष्य पश्चिमी घाट के मानव सरदार थे ।

(होपकिन्स : इपिक मैथोलौजी पृष्ठ २३)

श्री. एल बी. वेनी ने 'नागाज इन मगध' के लेख में मत प्रकट किया है । वे द्रविड़ वंशीय जाति के मानव थे । आर्यों के भारत आगमन के पूर्व उत्तरीय भारत में रहते थे । (जे. बी. ओ. आर. एस: भाग २८ पृष्ठ १६३)

श्री ए. सी. दास का मत है । नाग जाति आर्यों की ही एक शाखा है । (ए. सी. दास: ऋग्वैदिक कल्चर पृष्ठ १६७) श्री. एन. जे. शिन्दे का विचार है । नाग आर्य जाति के नही थे । क्योंकि वे प्रायः आर्यों के विरोधी प्रतीत होते हैं । अथर्ववेद में सर्पों का उल्लेख जिस प्रकार किया गया है उससे कोई बात सन्तोषप्रद रूप से स्पष्ट नही होती । नागों का नाम अधिकतया अनार्य प्रतीत होता है (श्री एन. जे. शिन्दे, पूना' दि फाउण्डेशन आफ अथर्ववैदिक रिलीजन पृष्ठ ९:२००)

पाश्चात्य विद्वानों के विवेचनात्मक ऐतिहासिक मतों के पश्चात् भारतीय पुरातन साहित्य में नाग जाति का रूप क्या था इस विषय पर प्रकाश डालना उचित होगा । अनेक मतों के बीच नागा जाति स्वयं एक समस्या बन गयी है । उल्लेख कर चुका हूँ । नाग जाति तथा शब्द का प्रयोग वेद में नही किया गया है । नाग के स्थान पर दानव वृत्र का उल्लेख मिलता है :

त्वं तां इन्द्रो मधां अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥

शतपथ ब्राह्मण में दानव तथा सर्प की संज्ञा वृत्र से दी गयी है । (१६ : ३ : ९ ।)

'अस्माद् वृत्रोऽस्य सद यान्न ममन्त स्यादहिस्तं दनेश्च दनायुश्च मातेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः ।'

महाभारत में दानव राज कलिय का वर्णन मिलता है। कलिय की संज्ञा कालिय नाग से दी गयी है। (महा० : वनपर्व: १०१:७)

कलियं इति विख्यातो गण : ।
तैश्च वृत्रंममाश्रित्य जगत्सर्वं ॥ मय :३·१०१·७

अथर्व वेद ५:१३, ५:५, ४:५६ तथा १५.१३ में वृत्र काउल्लेख आता है। तैत्तिरीय संहिता काण्ड ४ प्रपाठक २ अनुवाक २ में उल्लेख है। छान्दोग्योपनिषद् ८.१ ४ में असुर विरोचन का वर्णन आत्मा के प्रसंग में आता है।

सुर एवं असुर के सिद्धान्तों में मूल भेद यह था कि असुर शरीर को आत्मा मानते थे। सुर अर्थात् देवता लोग आत्मा को शरीर से भिन्न समझते थे। सुर-असुर एक ही आर्य जाति की सन्तान थे। सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक मतभेदों के कारण दो वर्ग कालान्तर में हो गये थे।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३ : कण्डिका १३ तथा पारस्कर गृह्य सूत्र काण्ड २ कण्डिका १४ में इसका उल्लेख मिलता है।

रामायण में नाग जाति का उल्लेख मिलता है। भोगवती नगरी नाग राजाओं की राजधानी थी। उसपर रावण ने विजय प्राप्त किया था।

सर्वदिव्यास्त्रयोक्ता यज्ञविघ्नकरं सदा।
पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥
—वा० रा० कि० सर्ग ३२ : १३

सुमहत्सो बलं कस्माद् विषादं भजते भवान्।
त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिता पन्नगा युधि ॥
—वा० रा० युद्धकाण्ड सर्ग ७ : ८

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥—वा० रा० उ० सर्ग २३ : ५

नागों के रहने का स्थान, पाताल, रसातल तथा समुद्र कहा गया है। समुद्र में रहने का अर्थ यह नहीं है कि जल के भीतर रहते थे बल्कि समुद्र तटवर्ती किंवा समुद्र आवृत प्रदेश द्वीप अथवा भूखण्ड में निवास करते थे।

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम्।
अभिगम्य महानादं तीर्थेनैव महोदधिम् ॥—वा० रा. कि० सर्ग ४० : ३८ ॥

रावण ने नाग जाति पर विजय किया था। वह जाति सुसभ्य तथा नगरों में भी रहने वाली थी। यदि वे शक्तिशाली नहीं होते, उनका तत्कालीन राजनीतिक जीवन में प्रमुख स्थान न होता तो रावण उन पर विजय पाकर गौरवान्वित किस प्रकार होता। निस्सन्देह नाग एक मानव जाति थी। (रामा० : सुन्दर : १२ : २१-२२)

महाभारत में नाग यज्ञ; नाग द्वारा राजा परीक्षित की मृत्यु एवं खाण्डव वनदाह का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाभारत के अनुसार नाग एक मानव जाति थी। तक्षक नाग इस जाति का राजा था। तक्षक के मित्र इन्द्र ने खाण्डव दाह रोकने का प्रयास किया था किन्तु सफल नहीं हुए। नाग राज

तक्षक उस समय कुरुक्षेत्र गया था अतएव उसकी प्राण रक्षा हो गयी थी। उसका पुत्र अश्वसेन भी दाह काण्ड से बच गया था। अब असुर अपनी रक्षा होता न देखकर अर्जुन की शरण गया था। (महा० : आदि० : १ . १२५:७ १ . २१८ . ४, ५, १ : २१९ : ९; १ : २२० : ३७)

परीक्षित की हत्या पर तक्षक नाग अपनी राजधानी तक्षशिला भाग गया था। इससे प्रकट होता है। षड्यन्त्र का आश्रय लेकर प्रतिहिंसा के कारण किसी प्रकार परीक्षित के राजभवन में प्रवेश कर उनकी हत्या का कारण हुआ था। परीक्षित पुत्र राजा जनमेजय ने तक्षशिला पर तक्षक नाग को दण्ड देने के लिये आक्रमण किया था। नाग जाति का संहार राजा जनमेजय ने किया था। इसी को पौराणिक भाषा में नाग यज्ञ कहते है। किन्तु आस्तीक मुनि के अनुरोध पर यह संहार बन्द कर दिया गया। (महा० आदि० ४२ २२; ३ १८, १२:४२, १३ ३९)।

आर्य तथा नाग जाति में परस्पर विवाह सम्बन्ध होता था। राजा जनमेजय के पुरोहित सोमश्रव तथा ब्राह्मण ऋषि आस्तीक की माताएँ नाग कन्याएँ थी। चित्रांगद तथा नागराज चित्रवाहन की कन्या का विवाह इसी प्रकार हुआ था। वासुदेव के प्रपितामह आर्यक नाग राजा थे। महा० आदि: १:१४; २२७: ६३;)

महाभारत सभा पर्व में नाग जाति को वरुण के सभासद के रूप में उपस्थित देखा जाता है। वरुण का स्थान सुमेरु किंवा मेरु पर्वत है। अतएव नाग जाति यदि कश्मीर के हुंजा नगर के समीप में रहती थी तो वहाँ उसका वरुण की राजसभा में उपस्थित रहना स्वाभाविक प्रतीत होता है। (महा० सभाः तथा रा०: अरण्य० ३.१३१४)।

भागवत में नाग जाति का वर्णन आता है। कश्यप तथा कद्रू की सन्तान वे कहे गये है। उनका निवास-स्थान मेरु पर्वत के निकट बताया गया है। मेरु पर्वत के दक्षिण हुँजा नगर है अतएव डाक्टर ग्रियर्सन ने इसी प्रमाण पर सम्भवतः नागों का स्थान हुँजा माना होगा। (महा० ५:६-२९)।

कश्यप के द्वारा प्रमुख नागों—अनंत, वासुकी, तक्षक, कर्कोट, पद्म, महापद्म, शंख तथा कुलिक की उत्पत्ति हुई थी। पद्मपुराण सृष्टिखण्ड में उनका वर्णन आता है। पद्म पुराणः सृष्टि० ३१ भविष्य पुराण के ब्राह्म पर्व में उनकी जाति आदि पर विशेष प्रकाश डाला गया है। (भविष्य. ब्राह्म पर्व ३३-३६)

प्रमुख नागों की तालिका निम्नलिखित बनती है :

नाम	वर्ण	रंग	दृष्टि	दिशा	चिन्ह
अनंत	ब्राह्मण	शुक्ल	सम्मुख	पूर्व	पद्म
वासुकी	क्षत्रिय	आरक्त	बायीं ओर	आग्नेय	उत्पल
तक्षक	वैश्य	पीत	दायीं ओर	दक्षिण	स्वस्तिक
कर्कोटक	शूद्र	कृष्ण	पीछे	नैऋर्त्य	कमल
पद्म (नाम)	शूद्र	कृष्ण	चंचल	पश्चिम	पद्म
महापद्म	वैश्य	पीत	नीचे	वायव्य	शूल
शंखपाल	क्षत्रिय	अरुण	निश्चेष्टित	उत्तर	छत्र
कुलिक (कम्बल) ब्राह्मण		शुक्ल	सर्वत्र (कपिल)	ईसान	अर्धचन्द्र

उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि नाग एक जाति थी। उसमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र वर्ण होते थे। उनका चिन्ह भी दिया गया है। यह चिन्ह उनके जाति तथा वर्ण विशेष का प्रतीक था। विशेष द्रष्टव्य (भवि० ब्राह्म० ३३-३६)।

वीरों, महापुरुषों, महात्माओं, श्रेष्ठराजाओं की पूजा तथा उनकी स्मृति में श्राद्धादि करने की प्रथा सनातन काल से चली आई है। नागों की पूजा से सम्बन्धित अनेक व्रतो की कथा मिलती है। नाग जाति के महान् नेताओं तथा राजाओं की स्मृति किंवा सम्मान मे मनाया जाता रहा होगा। श्रेष्ठ नागों की स्मृति में स्मारक भी बने होंगे। प्रत्येक जाति में यह प्रथा प्रचलित थी। इस प्रकार के स्मृति, स्मारक तथा वीर पूजादि कालान्तर में रूढ हो गये। नाग शब्द का मूल अर्थ लोग भूल गये। अनेक जातियों के सम्पर्क, सम्बन्ध तथा विचारों के आदान-प्रदान के कारण नाग जाति मे वर्ण सकरता आ गयी होगी। मूल नागस्थान मे जातियों के इन पारस्परिक मिलनो के कारण पिशाच, आर्यादि जाति निवास करने लगे। नाग जाति के पूजा-स्थान, स्मारक तथा पर्व निरन्तर चलते रहे। इनका स्थानीय लोगों तथा स्थानो से सम्बन्ध रहता था। सभी लोग नाग पूजा, नाग मेला, नाग पर्व, नाग व्रत तथा नागों के उत्सव में भाग लेते रहे। नाग जाति स्वयं अन्य जातियो के रस्म-रीति रवाज से प्रभावित हुई होगी। उसने नवीन जाति के सम्पर्क में नवीन धार्मिक सिद्धान्तो, पर्वो, पूजाओं एवं व्रतो को मान्यता देकर अपना लिया होगा। वह स्वयं दूसरी जातियों में मिलकर नवीन संस्कार तथा परम्पराओं में अपनी पुरानी बातो के साथ ढाल लिया होगा। नाग जाति के चले जाने अथवा लुप्त हो जाने पर भी वे पूजादि चलते रहे। वे एक परम्परा बन गये होंगे। उनका संस्कार पड गया होगा। उन सनातन रूढियों को स्थानीय लोग तोड़ना उचित नही समझे होंगे। अतएव नाग जाति की अनुपस्थिति मे भी यह क्रम जारी रहा। कालान्तर मे लोग नाग पुरुषों आदि को मानव न मानकर सर्प समझ बैठे। वे ही नाग पूजा के रूप में प्रचलित हो गये। वे आज तक चलते आ रहे है। एक जाति है। चम्बा नाग के भाई गरुड़ है। गरुड़ भी पर्वतीय में ब्रह्मचोर स्थान मे गरुड वंश के लोग है। उन्हें इस समय शिगर्ती वंश कहा जाता है।

नाग पूजा कश्मीर में खूब प्रचलित थी। कश्मीर में सर्व प्रथम नाग जाति के निवास का पता चलता है। तत्पश्चात् पिशाच जाति का कश्मीर मण्डल में प्रवेश हुआ। उसके पश्चात् आर्य जाति का आगमन कश्मीर में हुआ। नागों के देश में आकर पिशाच तथा आर्य दोनो ने परस्पर आदान-प्रदान, रक्त मिश्रण तथा वैवाहिक सम्बन्धों के कारण नाग जाति के धार्मिक संस्कारो तथा रीति-रिवाजों को किसी रूप मे मान लिया होगा। उनके द्वारा पूजित उनके नेता, महापुरुष तथा राजाओ की पूजा, स्मृति, पर्व, व्रत, त्यौहार को मानना आरम्भ कर दिया होगा।

आर्यों की आदत थी। वे जिस देश में जाते थे वहाँ वालों से मिल जाते थे। अपनी नैसर्गिक सहिष्णुता के कारण नवीन स्थान तथा देश की परम्परा तथा संस्कार को किसी सीमा तक अपना लेते थे। इस प्रकार आर्यों ने सभी देशों मे प्रवेश कर शान्तमय जीवन आरम्भ किया था। वे सैद्धान्तिक विषयों मे संघर्ष मोल लेना पसन्द नही करते थे। उनमें उदारता होती थी। खुद जीना और दूसरो को जीवित रहने देना चाहते थे। इन व्यवहारों तथा पारम्परिक मिलन के कारण विरोध के स्थान पर जातियों का खूब मिश्रण हुआ।

मिश्रण में धर्म, परम्परा, संस्कार, पूजा-पाठ आदि का भी मिश्रण होना स्वाभाविक था। एक साथ रहने वाली जातियों ने एक दूसरे के पर्व-पूजा, रीति-रिवाजों को मान लिया। अथवा पुराने तथा नवीन मिश्रणो के कारण एक नवीन वातावरण नवीन स्थिति उत्पन्न हुई होगी। उनका मूलाधार पारस्परिक-सहयोग तथा। आदान-प्रदान था परिणाम यह हुआ कि नाग जाति के सत्ताहीन होने पर भी वे चलते रहे। शताब्दियों तक यह पूजा आर्यों तथा अन्य जातियो ने जारी रक्खी। इन पूजाओं तथा पर्वों का मूल स्वरूप लोग भूल गये। उसे अपना ही मानने लगे। नाग शब्द स्मरण रहा। नाग का अर्थ सर्प समझा जाने लगा।

नाग जाति के सत्ताहीन होने पर लोगों ने उन उपासनाओं, पूजाओं, कथाओं को नाग जाति सम्बन्धी पूर्व पुरुषों तथा देवताओं से न सम्बन्धित मानकर उन्हें अपने पूजित देवों के समान वृषभ तथा गो-पूजा, की तरह पशु पूजा तथा अश्वत्थ कदम्ब की तरह वृक्ष पूजा का रूप दे दिया। पशु पूजा के प्रतीक पशुपति महादेव थे अतएव सर्पादि नाग पूजाओं का भी प्रतीक शंकर को बना दिया गया। उनके रूप की जो नवीन कल्पना की गयी उसमे नाग उनका आभूषण बना दिया गया। मूल पूजा, उपासना तथा गाथा का विकृत रूप मात्र रह गया। शंकर की मूर्ति में नाग आभूषण रूप बना था अतएव शंकर के साथ नाग की पूजा अनायास होने लगी।

नीलमत पुराण नाग पूजा का विस्तृत उल्लेख करता है। नागराज तथा पिशाच राज निकुम्भ की मित्रता कश्मीर मण्डल में हो गयी थी। इस गाथा में दोनों जातियों का एक साथ किसी रूप में कश्मीर में मिलकर रहने की ओर संकेत मिलता है। कश्मीर के मूल निवासी नागाओं ने पिशाचों के साथ संघर्ष नहीं कर उनसे सन्धि किंवा मित्रता कर ली।

नाग जाति पिशाच जाति की अपेक्षा आर्य जाति को अधिक प्राथमिकता देती थी। पिशाचों की अपेक्षा आर्यों की तरफ अधिक नाग जाति आकर्षित थी। नाग जाति के साथ प्रारम्भ में रहने के कारण पिशाच जाति ने नागों के पर्व, तीर्थ, पूजा तथा स्मारकों के उपलक्ष्य में होने वाले उत्सवों में सक्रिय भाग लेकर उन्हें अपना लिया। इस प्रकार नाग तथा पिशाच जाति द्वारा एक संकर जाति कश्मीर में उत्पन्न हो गयी। दोनों जातियाँ मिलकर कश्मीर में रहने लगी।

कश्मीर में आर्य आये। उनके पूर्व पिशाच तथा नाग तथा उनके मिश्रण से उत्पन्न वर्ण संकर जातियाँ वहाँ रहती थी। आर्यों ने पिशाच तथा नाग जाति की परम्परा साथ-साथ रहने के कारण कालान्तर में अपनाकर नाग-पूजा को किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लिया। अतएव कश्मीर में नाग पूजा का लोप नहीं हुआ। वह प्रचलित रही। नीलमत पुराण नाग-पूजा को मान्यता देता है। (नी० २२६, २२७)

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नागजाति का द्रविड, कम्बोज, अम्बष्ठ तथा शक के साथ वर्णन किया गया है। (१ : ९ . ६)

नीलमत पुराण में नील नाग का उपदेश है। लगभग दोतिहाई नीलमत पुराण नील नाग के मुख द्वारा उच्चरित किया गया है। उनके वंश के विषय में कहा गया है कि वे कश्यप पिता तथा कद्रू माता की सन्तान थे। कद्रू दक्ष की कन्या थी। देव, दैत्य, दानव, खश, भद्र, गरुड़ आदि सभी कश्यप की सन्तान थे। उनकी गरुड़ से शत्रुता थी। उनके राजा वासुकी के निवेदन पर भगवान् विष्णु ने सतीसर में उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया। उनका राजा नील नाग बना। जलोद्भव असुर का विनाश तथा सतीसर सूख कर भूमि होने पर नील कश्मीर में मानवों को लाना चाहा परन्तु नागों ने विरोध किया। इससे क्रुद्ध होकर कश्यप ने शाप दिया कि वे ■ मास पिशाच तथा ■ मास मनुष्यों के साथ निवास किया करेंगे। पर चार Seans शाप के पश्चात्, उन्हें सर्वदा के लिये मानवों के साथ कश्मीर में रहने के लिये आदेश दिया।

नाग पद्मल मनुष्यों की दाराओं को हर ले जाता था। नागराज नील ने उसके इस अपराध के कारण कश्मीर से निर्वासित कर दिया था। उसे दार्व देश में उशीरक पर्वत पर रहने का आदेश दिया। विष्णु ने उसे नील की प्रार्थना से उस स्थान पर रहने के लिये सुरक्षा का विश्वास दिलाया (नीलमत १६५-६७; ६१) राजा विश्वगाश्व से महापद्म नाग ने चन्द्रपुर नगर चतुराई से दान में प्राप्त किया था। (नील० १७३-४७) नीलमत में लगभग ६०३ नागाओं का उल्लेख मिलता है। नाग पूजा का भी वर्णन किया गया है।

नीलमत पुराण से निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं :

(१) कश्यप नाग, पिशाच, दैत्य, दानव एवं गरुड़ के पूर्व पुरुष थे।

(२) गरुड़ तथा नाग में शत्रुता थी। गरुड़ नागों का विनाश कर देता परन्तु विष्णु के हस्तक्षेप के कारण नागों की रक्षा हुई। गरुड़ विष्णु का वाहन बना और शेष नाग भगवान् की शय्या हुए।

(३) कश्मीर के मूल निवासी नाग थे। उनसे पिशाचों से मेल नहीं था। परन्तु मानव एवं पिशाचों में जब चुनना पड़ा तो वे मानव के साथ रहने के लिये तत्पर हो गये।

(४) प्रारम्भ में नाग तथा पिशाच में शत्रुता थी। कालान्तर में नाग तथा पिशाचों में मेल हो गया था। नागराज नील के यहाँ चन्द्रदेव जब गये थे तो पिशाचराज निकुम्भ ने उनका आदर सत्कार किया था। नील ने निकुम्भ तथा पिशाच पूजा का विधान किया था।

(५) नागराज नील ने काश्मीर उपत्यका में मानवों का स्वागत किया था।

(६) नीलमत के नाग वर्णन में फण के अतिरिक्त और कोई विशेष बात मानवों से नागों में नहीं थी। उनके विष आदि का कहीं वर्णन नहीं किया गया है।

(७) नागाओं का नाम पुराकालीन वीरों के सदृश मिलता है।

(८) नाग पूजा कश्मीर की धर्मप्रथा का मुख्य अंग था।

मत्स्य पुराण में नाग वर्ग में अनेक जातियों का उल्लेख मिलता है :

प्रयुंजते गिरिशयस्रोविसारिर्णं
प्रकीर्णकं बहुतरनागजातयः ।। ६ : ६४२

बौद्ध साहित्य में मुचलिंद नाग का उल्लेख आता है। मुख्यत: जातकों, यथा शंखपाल तथा मणिकण्ठ जातक में नाग जाति का उल्लेख मिलता है। शंखपाल नाग भविष्य पुराण के अनुसार क्षत्रिय था। उसका जाति चिन्ह छत्र था। उल्लेख मिलता है कि शाक्य मुनि ने नागों को दार्शनिक तथा धार्मिक अधिक उपदेश दिया था। उन्होंने भगवान् बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण किया था। (शंखपाल जातक मणि कंठ जातक)

एक तिब्बती वर्णन के आधार पर यह प्रकट होता है कि पर्वतीय स्थानों में निवसित नागा जाति को भगवान् बुद्ध ने उपदेश देने के लिये बुलाया था। उसीसे यह भी प्रकट होता है कि गरीब नाग अमीर हो गये थे। उन्होंने भूसम्पत्ति लिया था। पाली साहित्य से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में भगवान् बुद्ध के अनेक नागराज वंश थे। (श्री आर. एन. मेहता) (प्री बुद्धिस्ट इण्डिया)

भगवान् बुद्ध के जीवन से भी नाग वंशी राजाओं का निकट सम्पर्क महावंश के द्वारा प्रकट होता है। भगवान् बुद्धत्व प्राप्ति के पाँचवें वर्ष जेतवन में विहार करते थे। उस समय महोदर तथा चूणोदर दो मामा भानजा नागों को मणिमय सिंहासन प्राप्ति हेतु संग्राम में सदल उपस्थित देखा। उस समय उन पर अनुकम्पा करने के लिये भगवान् ने नाग द्वीप में प्रवेश किया। उस समय नागराज महोदर समुद्र के नाग भवन में निवास करता था। उसकी कनिष्ठ भगिनी कर्णवर्धमान पर्वत के नागराज से ब्याही गयी थी। चूणोदर उसका पुत्र था। उसका नाना मणिमय सिंहासन देकर मर गया। यह पर्वत निवासी नाग महाऋद्धिमान थे। (महावंश १ : ४५—५१) नागे मनुष्य थे। मानव थे। उनका राज्य था। यह बात महावंश स्पष्ट करता है। वह देवता पूर्व जन्म में इसी नाग द्वीप में मनुष्य था। (महावंश : १ : ५४—५६) एक मत है कि यह नाग द्वीप श्री लंका का उत्तर पश्चिमीय अंचल था।

महावंश में नाग जाति के कश्मीर में रहने का उल्लेख मिलता है—'उस समय कश्मीर-गान्धार देश में बड़ी दिव्य शक्ति वाला अरवाल नाम का एक क्रूर राजा रहता था। वह समस्त पकी फसल ओला और वर्षा कर समुद्र में डाल देता था। उस समय मुज्झन्तिक स्थविर आकाश मार्ग से वहाँ आये—उन्होंने धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् नागराज ने और हिमालय प्रदेश के चौरासी हजार नागों, बहुत गन्धर्वों, यक्षों तथा कूष्माण्डों ने शरण तथा शील धारण किया। कश्मीर और गन्धार के निवासी मनुष्य नागराजा को पूजने के लिये आये—उस समय से लेकर अब भी कश्मीर और गान्धार देश काषाय से प्रकाशित और त्रिरत्न परायण हैं। (महावंश १२ : ९ : २८) जिस स्थान पर भगवान् का नागद्वीप में लंका के उतरना कहा जाता है उस स्थान पर जम्बूकोल विहार तथा तिष्य महाविहार निर्माण किये गये थे। नग्न द्वीप तथा नाग द्वीप विभिन्न द्वीप थे। कहीं कहीं भ्रम में लेखकों ने उन्हें एक समझ लिया है। उक्त उद्धरण से दो बातें प्रकट होती हैं। नागराज की कथा जलोद्भव असुर से मिलती है तथा नाग जाति तथा काश्मीर के मनुष्यों किंवा आर्य वंश वालों से मेल हो गया था।

निष्कर्ष निकलता है। वैदिक आर्यों के पूर्व नाग जाति कश्मीर तथा उत्तर भारत के पर्वतीय भूभाग में निवास करती थी। उनका निवास-स्थान हिमालय पर्वतीय खण्ड किंवा प्रखण्ड थे। यदि वे मैदानों में कभी रहते भी थे तो आर्यों के आने पर वे पर्वतीय क्षेत्रों में चले जाते थे। यह कोई नयी बात नहीं है। मुस्लिम आक्रमण के समय नैपाल में राणा, हिमालय में आबाद महाराष्ट्र तथा राजपूत लोग मुसलमानों के आगमन तथा उनके आक्रमणों से त्रस्त होकर हिमालय के पर्वतीय भागों में सुरक्षा निमित्त चले गये। नाग जाति को आर्यों के आगमन पर एक नवीन बली जाति के धर्म, संस्कृति, सभ्यता तथा विचारों का सामना करना पड़ा। अतएव रक्षा निमित्त वे हिमालय के पर्वतीय भागों में चले गये। हिमालयीय क्षेत्र में नाग जाति के रहने का एक और कारण हो सकता है। असम किंवा नागालैंड में नाग जाति पर्वतीय क्षेत्र में रहती है। शक जाति कश्यप गोत्रीय थी। कास्पियन सागर अर्थात् कश्यप सागर के आस-पास इनका निवास स्थान था। अतएव पुराणों में शक के साथ नाग जाति को रखा गया है। कश्यप की पत्नी कद्रू की जिन सन्तानों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे दानव, खस, मुद्रादि थे। ये जातियाँ पर्वतीय क्षेत्र में निवास करती थी। इस समय भी वे पर्वतीय हैं। मैदान में आकर रहती है परन्तु वे अपवाद कही जायेंगी।

तक्षक नाग की राजधानी तक्षशिला थी। वह पर्वतीय अंचल में पड़ता है। खाण्डव वन दाह का एक सरल अर्थ है। वह इन्द्रप्रस्थ के समीप रहने वाली नाग जाति को उद्वासित कर उसे आर्य स्थान सुरक्षा की दृष्टि से परिणत करना था। महाभारत काल में पाण्डव अपनी राजधानी के समीपस्थ अंचलों में इसी जाति को रखना चाहते थे जो उनके अनुकूल थी।

राजा जनमेजय के नाग यज्ञ का एक और अर्थ है। तक्षक राज के कारण जनमेजय के पिता परीक्षित की मृत्यु हुई थी। प्रतिहिंसा की इस भावना से प्रेरित होकर जनमेजय ने नाग यज्ञ किया था। उन्हें यह भी भय था कि नाग जाति पुनः सर उठाकर राज्य के लिए खतरा उत्पन्न कर सकती थी। एतदर्थ नाग यज्ञ अर्थात् नाग जाति के संहार का निश्चय जनमेजय ने किया था। अतएव नाग मानव थे। मानव प्राणी थे। उनमें और आर्यों में विवाह सम्बन्ध था। उन्हें विषधर सर्प मान लेना मूढ़ता होगी।

नाग कश्मीर के मूल निवासी थे। नाग लोगों ने पिशाच तथा आर्य जातियों के प्रवेश का कश्मीर में स्वागत नहीं किया। प्रश्न उपस्थित होता है। कश्मीर में आर्यों अथवा पिशाचों इन में किसका रहना नाग जाति पसन्द करती थी। नाग जाति पिशाचों को नापसन्द करती थी। पिशाच उनके पड़ोसी

थे। पिशाच उत्तरी पंजाब एवं त्रिगर्त के पर्वतीय क्षेत्रों में रहते थे। अतएव नागों से किसी बात पर पिशाचों का वैमनस्य होना स्वाभाविक था। आर्य अधिक सहिष्णु तथा उदार थे। कश्मीर के लिए नवीन थे। अतएव उन्होंने पिशाचों की अपेक्षा आर्यों के साथ रहना अधिक पसन्द किया। आर्य कश्मीर में आने लगे तो नागों ने उन्हें कश्मीर में बसने की स्वीकृति दे। उनके साथ अपने पड़ोसी पिशाचों की अपेक्षा अधिक हिल-मिल गये। मानवों के उपनिवेशों का स्वागत किया। यहाँ मानव का अर्थ मनुवंशजों किंवा आर्यों से लेना चाहिए। कश्मीर में मूल निवासी नाग थे। कालान्तर में पिशाचों ने कश्मीर में प्रवेश किया। अन्त में मानव लोगों का कश्मीर में प्रवेश हुआ। वे आज भी कश्मीर में आबाद हैं। कश्मीरियों के वेशभूषा, रंग-रूप तथा मानवाकृति में क्षेत्र की भिन्नता के अनुसार भिन्नता मिलने का यही कारण है।

नाग जाति भारत तथा अफगानिस्तान आदि पश्चिमोत्तर क्षेत्रों के निवासी थे। श्री ग्रियर्सन का सुझाव कि वे हुँजा के निवासी थे कहना कठिन है। हुँजा प्राचीन हंस द्वार है इस पर भी अभी विद्वानों में मतभेद है।

महाभारत में नाग तीर्थ का उल्लेख दो स्थलों पर आया है। दोनों का उल्लेख वन पर्व में है। प्रथम नाग तीर्थ कुरुक्षेत्र की सीमा पर स्थित था। द्वितीय गंगद्वार तथा कनखल के समीप नागराज कपिल का स्थान था। इस तीर्थ में स्नान करने पर सहस्र कपिला गोदान का पुण्य प्राप्त होता है। (वन पर्व ८३:१४, ८४,३३) वर्णन मिलता है।

तृतीय शताब्दी तक शक पूर्वोत्तर प्रदेश तक फैल गये थे। वे गंगा के दक्षिण तट से लेकर सरयू की घाटी तक विस्तृत थे। जैन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि पाटलीपुत्र के मुरुण्डों के अधीन था। सिंहासन भिक्षा जैन ग्रन्थ से मालूम होता है कि कान्यकुब्ज मुरुण्डों के अधीन था। मुरुण्ड कौन थे यह प्रश्न उठता है। प्रयाग के समुद्र गुप्त के शिला लेख में मुरुण्ड का उल्लेख मिलता है। मुरुण्डों का स्थान लम्पक किंवा लछमान था। प्रयाग के स्तम्भ से प्रकट होता है। समुद्र गुप्त के प्रभुत्व को शक स्वीकार करते थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शक क्षत्रपों का राज्य समाप्त किया था। मथुरा में शक राजाओं के काल में जैन तथा बौद्ध धर्म विकसित हुआ था। कनखेरा अभिलेख से पता चलता है कि शक जाति कुशानों के समान महासेन अर्थात् कार्तिकेय की पूजा करती थी। कार्तिकेय को स्कन्द भी कहते हैं। समुद्रगुप्त के नाम के साथ देव पुत्र शाही शाहानुशाहीकी उपाधि अभिलेखों में प्रयुक्त की गयी है। इस उपाधि का मूल शक परम्परा है।

नाग पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। नाग पूजक शिवभक्त होते हैं। शिव का आभूषण नाग है। इस रूपक का यह अर्थ निकलता है कि, शिव के नाग भक्त थे। शैव थे। शिव उपासक थे। पुरातन शैवधर्म किंवा मत का भूषण नाग जाति थी। शिव मत की अनुयायी थी। नाग, भूत, प्रेत, पिशाच आदि जातियां शिव उपासक थीं। उन्हें शिव के अनुचरों के रूप में प्रकट किया गया है। कालान्तर में नाग, पिशाच आदि जातियों के मूलरूप को लोग भूल गये होंगे। किसी अतीत गाथा अथवा रूप के आधार पर उन्हें अनुचर मान लिया गया।

इस रूपक को सत्य मानकर शिव की मूर्ति की कल्पना उसी आधार पर की गयी होगी। शिव का मानव आकार किंवा मूर्ति नागादि से मण्डित कर दी गयी। नागेश्वर नाम से शंकर के अवतार की कल्पना की गयी। दारुक राक्षस को शंकर ने मारा था। शिव को नागनाथ कहा जाने लगा। (शिव शतक रुद्र-संहिता ४२।) नागनाथ का उपलिंग भूतेश्वर रूप में पूजा जाने लगा। (शिव कोटि रुद्र संहिता ४ : १)।

नागेश्वर नागनाथ आदि नाम भगवान् शंकर के रखे गये। उनका शाब्दिक अर्थ होता है नागों के ईश्वर अर्थात् राजा। इसी प्रकार नागनाथ का अर्थ होता है नाग जाति के स्वामी। प्रकट होता है कि राक्षस तथा नाग जाति में संघर्ष हुआ था। उस संघर्ष में नागेश्वर अर्थात् नागा के राजा जिन्हें सम्भवतः कालान्तर में शंकर का अवतार मान लिया गया होगा। दक्षिण में बहुत लोग शिवाजी महाराज को शिव का अवतार मानते नहीं हिचकते। कुछ इसी प्रकार की बात पुराकाल में हुई होगी। राक्षस पिशाच तथा नाग तीनो जातियाँ हिमालय की पर्वतीय जातियाँ थी। उनमें युद्ध हुआ होगा। राक्षस तथा नागजाति के युद्ध में नागजाति विजयी हुई थी। उसके नेता नागेश्वर थे। नागेश्वर को उनकी वीरता किंवा अपने जाति के नेता किंवा उद्धारक होने के कारण अनेक गाथाएँ तथा आख्यायिकाएँ उनके सम्बन्ध में बन गयी होंगी। कुछ शताब्दियों पश्चात् विशिष्ट गुणों के कारण नागा जाति ने अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए उन्हें अवतार मान लिया।

नाग देवों की मूर्तियाँ बनायी जाती थी। नाग मूर्तियों किंवा प्रतिमाओं की विशेषता यह होती थी कि कटि से अधोभाग नाग की पूछ का रूप होता था। अर्थात् कटि से नीचे का हिस्सा सर्प तुल्य तथा कटि से ऊपर अर्थात् ऊर्ध्व भाग मनुष्य का होता था। यदि नागिन हुई तो उसमें स्त्री आकार नारी का होता था उसे कंकण, भुजाबन्ध, माला आदि स्त्रीजनोचित आभूषण द्वारा आभूषित किया जाता था। यदि नाग किंवा पुरुष देवता हुए तो यज्ञोपवीत, मुकुट, कण्ठहार आदि से अलंकृत किया जाता था। छत्र के स्थान पर फैला फण होता है। इस प्रकार की पूर्वकालीन पाषाण मूर्तियाँ प्रायः खण्डित बहुत मिलती है। मुसलिम काल में मन्दिरों तथा मूर्तियों के नष्ट करने के उत्साह में उन्हें खण्डित कर फेंक दिया गया। आधुनिक काल की मूर्तियों में केवल नाग किंवा सर्प का रूप बना मिलता है। कालिय नाग की मूर्तियाँ निस्संदेह मध्य तथा वर्तमान युग में अधोभाग नाग तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य रूप में मिलती हैं।

यहीं पर एक दूसरी मूर्ति शयनावस्था में है। मूर्ति का अधोभाग नाग तथा कटि से ऊपर का पुरुष का है। मस्तक के पृष्ठभाग के ७ फण उठे शिरोभाग की रक्षा कर रहे है। कानोंमें कुण्डल हैं, स्कन्ध प्रदेश पर यज्ञोपवीत है। मस्तक पर मुकुट तथा कण्ठ में मुक्तामाला है। कोनार्क मन्दिर भुवनेश्वर (उड़ीसा) में नाग की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ खुदी लगी है। किन्तु सब का कटि से नीचे अधोभाग नाग की पूँछ तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य का है।

महाबलीपुरम में चट्टान पर किरातार्जुन की गाथा मूर्तियों में उत्कीर्ण है। उनमें तपस्वी, यक्ष, गन्धर्व के साथ अनेक देवी देवता दिखाये गये है। वहाँ चट्टानो की बीच में एक गहरा स्थान ऊपर से नीचे तक गया है। वह दोनो चट्टानों को एक प्रकार से अलग करता है। उसी धसे हुए अथवा गलियारे जैसे स्थान में नाग मूर्ति ऊपरसे नीचे तक खोदी गयी है। उसका कटि प्रदेश अधोभाग सर्प तथा ऊपरी मनुष्याकृति है। मस्तक पर फण की छाया है। वह मूर्ति सन् ६४८–६७९ की कृति है। इससे स्पष्ट होता है कि नाग पूजा समस्त भारतवर्ष में कश्मीर से लेकर धुर दक्षिण तक प्रचलित थी।

अफगानिस्तान में एक बहुत बडा वर्ग है वह अपने को पुरातन नाग वंशीय मानता है। इस प्रकार भारत के पश्चिम अफगानिस्तान अर्थात् आर्याना से लेकर पूर्व नाग प्रदेश तक नाग पूजा का महत्त्व था। एक बहुत बडा वर्ग नाग जाति किंवा वंश से अपनी वंशपरम्परा जोड़ता था।

एक काल था जब मनुष्येतर प्राणियों में मनुष्यो की कल्पना की गयी थी। मत्स्य अवतार की कथा तथा भगवान् का मत्स्य रूप इसी प्रकार दिखाया गया है। अधोभाग मत्स्य तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य का है। नरसिंह अवतार में यह कल्पना उलट दी गयी। अधोभाग मनुष्य तथा ऊर्ध्वभाग सिंह का दिखाया गया है।

मत्स्य तथा नरसिंह दोनों अवतार माने गये हैं। उन्हें मान्यता दी गयी है। नाग भगवान् का रूप नहीं हो सकता। उसे भगवान् की शय्या अर्थात् शेषशय्या कहा गया है। नाग को आर्य देवता विष्णु से निम्न स्थान अर्थात् उनकी शय्या के रूप में चित्रित किया गया है। कालान्तर मे इस विषय पर विवाद चला होगा। अतएव मध्य का मार्ग निकालकर नाग तथा मनुष्य दोनों के मिश्रित रूप की कल्पना नरसिंह तथा मत्स्यावतारों की तरह की गयी। अनन्त नाग को मनुष्य तथा नाग का मिश्रित आकार देकर उन्हें भगवान् का रूप दे दिया गया। उनका अधोभाग नाग और ऊर्ध्वभाग मनुष्य का बनाया गया।

सिन्धु सभ्यता काल में नाग पूजा प्रचलित थी। मोहेंजोदारो की सील से प्र॰ट होता है कि फणधर नाग के पृष्ठ भाग में दो उपासक खड़े हैं। उनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सिन्धु-सभ्यता काल में नागों का तथा उनकी पूजा का महत्त्व था। हरप्पा मे प्राप्य संग्रह में नाग के सम्मुख बैठ कर पूजा करते लोगों की आकृतियाँ मिली है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों मे नाग पूजा अत्यन्त प्रचलित थी। ईरान, एशिया माइनर, मिश्र, अबीसीनिया, यूनान, इटली, उत्तरी पश्चिमी यूरोप, मेक्सिको, पेरू, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन, जापान तथा श्री लंका में नाग पूजा प्रचलित थी। अत्यन्त प्राचीन लुप्त जाति कोनोशिया तथा मिश्र का नाग दैवी प्रतीक था।

पेरू तथा मेक्सिको के प्राचीन मन्दिरो पर नाग मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण है। उत्तरी अमेरिका के आदम कन्ट्री तथा ओटियो में १००० लम्बी मिट्टी की बनी नाग मूर्ति मिली है। केल्ट जाति में नाग सम्बन्धित अनेक गाथायें प्रचलित हैं। चीन में नाग पूजा के लिए मन्दिरों का निर्माण किया गया है। जापान में नाग का रूप भगवान् की आत्मा का द्योतक माना जाता रहा है।

बाइबिल वर्णित सिनाई इपिदौरस तथा जरमेशिया लोगों के कुटियो मे नाग स्वास्थ्य तथा सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था।

अरब, यूनान, रोम, यहूदी, अमेरिका, रेड इण्डियन, चोमा तथा एप्रिसेस जाति में सर्पदंश के स्थान पर नाग को मार कर उसकी मज्जा तथा मांस लगाया जाता था। उसका मांस भी खिलाया जाता था। विश्वास था कि सर्पदंश से व्यथित व्यक्ति इस प्रकार आरोग्य प्राप्त करता था।

सीरिया (अमरदेश) तथा मिश्र में नाग Wisdom गुण का देवता माना जाता था। फरोहा के शरीर पर नाग तथा गरुड़ दोनों की देवतुल्य मूर्तियाँ मिलती है। हिब्रो अथवा चाइल्डियन जाति की गाथाओं में नाग के सम्बन्ध की अनेक गाथाएँ मिलती है। नाग को सूर्य का वंशज मानते थे। उसके फण को अपने गोत्र का चिह्न मानते थे।

कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी के विषय में कथा है कि उनमें नाग रक्त का अंश था। महाभारत की कथा के अनुसार वासुकी नाग ने अपने बहिन का विवाह जरत्कारु ऋषि से किया था। विरूपाक्ष गण नाग कहे गये हैं। नहुष देवता के शाप से नाग हो गये थे। अर्थात् उन्हे जाति च्युत कर दिया गया था।

बात यहीं तक नहीं समाप्त होती। मैं लिख चुका हूँ कि मथुरा अर्थात् व्रज मण्डल के समीप नाग जाति का प्रभुत्व था। इस जाति की आबादी थी। भगवान् श्री कृष्ण को भी भारतीय विद्वानों का एक प्रबल मत नाग वंशीय कहता है। कालिय नाग के मारने की गाथा इससे सम्बन्धित की जा सकती है कालिय नाग जो वास्तव में नागवंशीय जाति का शक्तिशाली व्यक्ति था। कृष्ण की स्पर्धा करता था। कृष्ण ने उसे मारकर यमुना उपत्यका को कालिय नाग के अत्याचार से मुक्त किया था। यह कथा पुराणों में तोड़-

मढोर कर लिखी गयी है। कृष्ण के समय जबसे कश्मीर का इतिहास प्रारम्भ होता है नाग जाति का प्रभाव राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में पाया जाता है।

पुराणो से ज्ञात होता है। नाग वंशी नरेश विदिशा, पद्मावती, मथुरा एवं कांतिपुर में राज्य करते थे। गुप्त वंश के उत्थान के पूर्व एवं कुषाण राज्य के अन्तिम चरण में विभिन्न राजवंशों का शासन उत्तर एवं मध्य भारत मे था। दूसरी तथा चौथी शताब्दी के अन्तर्गत नागो का उत्तर भारत में राज्य समृद्धि पर था। वाकाटक एवं गुप्त वंशी अभिलेखों एवं मथुरा के समीपवर्ती भूखण्ड से प्राप्त मुद्राओं के अध्ययन से नाग वंश के राजाओं तथा उनके विभिन्न स्थानों पर प्रकाश पड़ता है। उनमे प्रकट होता है। ईसा पूर्व प्रथम शती से चौथी शताब्दी तक उत्तर भारत मे नाग वंश राज्य करता था। वाकाटक के अभिलेखो मे नाग के लिये भारशिव शब्द प्रयुक्त किया गया है। पूना ताम्र पत्र से ज्ञात होता है कि भारत सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय नागवंश से सम्बन्ध था। चंपक ताम्र पत्र से ज्ञात होता है कि वाकाटक राजा भारशिव महाराज भव नाग का दौहित्र था। उस लेख से ज्ञात है कि नागराजा भवनाग शिवलिंग को मूर्धा पर रखता था। शिव का भार वहन करने के कारण 'भारशिव' नामकरण हो गया था।

नागवंश विदिशा से लेकर कांतिपुर, उत्तरप्रदेश तक शासन करता था। वायु पुराण से प्रकट होता है कि पद्मावती में नव नाग शासन करते थे। मुद्राओ के अभिलेखो से दश नाग राजाओ के काल पर प्रकाश पड़ता है। उनमें विभु नाग, भीम नाग, देव नाग, व्याघ्र नाग आदि का नाम मुद्राओ से ज्ञात होता है। गणपति तथा नागसेन का नाम प्रयाग के स्तम्भ पर अंकित है। हर्षचरित में भी नागसेन का उल्लेख मिलता है। नागसेन को समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। पद्मावती नाग शाखा का वह अंतिम राजा था। पद्मावती के नाग राजाओं में भव नाग का विस्तृत इतिहास ज्ञात है। उसका राज्य काल सन् ३०५–३४० के मध्य था। उसकी कन्या का विवाह वाकाटक युवराज गौतमीपुत्र से हुआ था।

मथुरा में नाग मुद्रायें दो वर्गों की मिली है। राजाओं के नामांत में 'मित्र' शब्द है जैसे गोमित्र, सूर्य्यमित्र, विष्णुमित्रादि। वे मुद्रायें ईसा पूर्व प्रथम शती की है। द्वितीय प्रकार की मुद्राओं पर राजाओं का नामान्त 'दत्त' शब्द से यथा—पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त आदि से होता है। वे मथुरा के शक राजाओं के समकालीन थे। द्वितीय शताब्दी में नाग वंश राजाओं की स्वतन्त्र स्थिति ज्ञात होती है। उनका राज्य बुंदेलखण्ड तथा वाराणसी तक विस्तृत दिखाई देता है। कुषाण राजाओं की अवनति के साथ नाग राजाओं की उन्नति होने लगी थी। प्रथम नाग सम्राट् वीरसेन अन्तिम कुषाण तथा क्षत्री राजाओ को पराजित किया था। उनकी मुद्रायें उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में प्राप्त होती है।

मध्य चौथी शताब्दी में गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत में नाग राज गणपति नाग तथा नागसेन को पराजित किया था। नागो से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिये समुद्रगुप्त ने द्वितीय चन्द्रगुप्त का विवाह नागकन्या कुवेरनाग से किया था। उससे उत्पन्न राजकुमारी प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन से हुआ था।

पाँचवी शताब्दी के एक लेख से पता लगता है कि शर्व नाग सम्राट् स्कन्दगुप्त के काल मे अतर्वेद के किसी अंचल का शासक था। मेरे निवासस्थान दशाश्वमेध-घाट वाराणसी का नामकरण वाकाटक अभिलेख से पता चलता है कि नाग भारशिव ने कुषाणों को नष्टकर वहाँ दश अश्वमेध यज्ञ कराया था।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में नागपूजा का वर्णन मिलता है :

ये दो रोचने दिवो ये वासूर्यं रश्मिषु ।
येषामप्सु सदः कृते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

काण्ड ४ : प्रपाठक २ अनुवाद ८

महाभारत मे नागपूजा के विषय में विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है । (वन: ८२ : १११३; ८३ : १४ द्रोण : २०२ : ७३ ; कर्ण : ५७ : ७०)

नीलमत पुराण में नाग पूजा के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख के अतिरिक्त और भी श्लोक संख्या 16, 182, 400, 670, 845, 849, में मिलते है ।

फणावलीरत्नसहस्रचित्रे शेषस्य भोगे विमले विशेषे ।
लोकस्य सर्वस्य ॥ चिन्तयानः शुभाशुभं रक्ष ममाद्यदेव ॥ 6½ = १०२, १०३

× × ×

भक्ष्यमाणेषु नागेषु गरुडेन महात्मना ।
वासुकिः शरणं प्रायाद् देवदेवं जनार्दनम् । 59 = ९०

× ×

सतोदेशे च ये नागा वसिष्यन्ति महाबलाः ।
तेषां राज्ये महाभाग त्वं नीलमभिषेचय ॥ 69 = १०९

× × ×

भक्तानुकम्पी भक्तश्च देवदेवे जनार्दने ।
तस्यातिदयितश्चासि यथा नाग स वासुकिः = 355 = ४५८

× × ×

नागस्य यस्य ये स्थाने निवसिष्यन्ति मानवाः ।
ते तं संपूजयिष्यन्ति पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ = 216 = २८९

× × ×

मम पूजा च कर्तव्या स्नानं नागस्य चाप्यथ ।
फलपत्रे प्रदातव्ये नगे मेरुद्रुमवे तथा ॥ 462 = ५८१
इरावते तु यः पूजां करोति मम काश्यप ॥
इरापुष्पैर्भृशं तेन तुष्टिर्मेऽपि प्रजायते ॥ 678 = ८०२, ८०३

× × ×

पञ्चमीं द्वादशीं चैव पूर्णमासीं तथैव च ।
सर्वेषामेव नागानां यात्राकर्माणि पूजिता ॥ 845 = १०१६, १०१७

× × ×

चतुर्थेऽहनि कर्तव्यं पिशाचानां च पूजनम्।
पञ्चमेऽहनि कर्तव्यं स्थाननागस्य पूजनम्। ४।१ = १०२०, १०२१

भारत-वर्मा की सीमा पर नागवासुकी मठ था। उस मठमें नाग वासुकी की मूर्ति थी। उसका शरीर मनुष्य किन्तु मुख फणाकार भयंकर सर्प का था। उसके सम्मुख नारी की बलि दी जाती थी।

दक्षिण पूर्व एशिया के इतिहास में नाग जाति का मुख्य स्थान है। कश्मीर के समान आर्यों के प्रवेश के पूर्व वहाँ नाग जाति रहती थी। कम्बुज अर्थात् कम्बोडिया के विषय में चीनी गाथा है—लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व कम्बुज निवासी नंगे रहते थे। शरीर पर गुदना गुदवाते थे। नौकरों तथा दासियों को मार कर मृतक शव के साथ कब्रमें गाड देते थे। स्त्री एवं पुरुषों में लज्जा का अभाव था। उन का जीवन अरण्यवासी था। वहाँ धर्म एवं मानवीय विचार उत्पन्न नहीं हुए थे।

कौण्डिन्य भारतवासी थे। सोम वंशी ब्राह्मण थे। वे जहाज द्वारा कम्बुज नगर आये। वहाँ की रानी का नाम सोमा था। वह नाग कन्या थी। चम्पा चम्पा अर्थात् वीतनाम के आलेखों में उसका नाम नागिन दिया गया है।

कौण्डिन्य का जहाज लूटने सोमा आयी। संघर्ष में सोमा ने आत्म समर्पण कर दिया। कौण्डिन्य की विजय हुई। राजकन्या सोमा के साथ कौण्डिन्य ने विवाह कर लिया। उन्होंने राज्य स्थापित किया। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता फैलायी। उनके नाम पर देश का नाम कम्बुज पडा। भवपुर में अपनी राजधानी स्थापित की। जनता को वस्त्र पहनना सिखाया। अक्षर ज्ञान कराया। उसके वंशजों ने २ शताब्दी तक राज्य किया। उस वंश का अन्तिम राजा वनपण था।

एक दूसरी गाथा है। इन्द्रप्रस्थ के राजा आदित्य थे। अपने एक पुत्र से अप्रसन्न हो गये। उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। वह कम्बुज आया। कम्बुज में उस समय चम्पा का एक राजा राज्य करता था। राजा को उसने मार भगाया। एक दिन समुद्र तट पर 'नागी' अर्थात् एक नाग कन्या से भेंट हुई। दोनों में अनुराग हो गया। नागी का पिता नाग राजा था। उसका नागी से विवाह हो गया। उसने अपने राज्य की राजधानी इन्द्रप्रस्थपुर अर्थात् वर्तमान एंगकोर बनाया।

तामिल काव्य में एक नगर नागपुरम् का वर्णन मिलता है। वह जावा में था। यहाँ के राजा इन्द्रवंशीय भूमिचन्द्र तथा पुण्यराज थे।

नागी गाथा कांची के पल्लवों में प्रचलित है। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने नागी कन्या से विवाह किया था। उनकी सन्तानें स्कन्दशिष्य नाम से विख्यात हुईं। वे पल्लवों के पूर्वज थे। नवीं शताब्दी के शिलालेख से प्रकट होता है। उत्तरी आरकट से इसका शिलालेख मिला है। उसके अनुसार विरूपाक्ष ने एक नागी से विवाह किया था। उसमें उसे राजचिन्ह मिला। तत्पश्चात् स्कन्द शिव आए।

नाग जाति के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। विश्व के आदि काल में केवल नाग (शेषनाग) थे। एक पुरुष तथा स्त्री भी थे। भारतीय गाथा के अनुसार महाप्रलय के पश्चात् शेषशायी विष्णु तथा लक्ष्मी शेष रह जाती हैं।

उक्त पुरुष अम्बर का व्यापार करने के लिए पर्यटन आरम्भ किया। उसकी स्त्री का नाम 'री' था। कन्या का नाम 'एल' था। एकदिन 'री' जंगल में लकड़ी काटने गयी। उसकी कुल्हाड़ी अकस्मात् नाग पर

पड़ी। नाग ने कुल्हाड़ी ले ली। री ने अनुनय विनय किया। नाग इस शर्त पर कुल्हाड़ी वापस करने के लिए तैयार हुआ कि री उसके साथ विहार करेगी। री ने शर्त मान ली। उनकी सन्तान नाग जाति कहलाई।

कम्बुज में विवाह के समय वर तथा कन्या को राजा तथा नागिन का अभिनय करना पड़ता है। चारों ओर बान्धव बैठते हैं। एक तस्तरी में जलती मोमबत्ती आती है। बैठे लोग एक दूसरे को थाली पास करते हैं। नागिन देवी का गीत गान होता है।

दक्षिण तथा मध्य भारत में नाग वंश, नागजाति तथा उनके सबल राज्यों का उल्लेख चौदहवी शताब्दी तक मिलता है। सेन्द्रक वंश का राज्य बम्बई से मैसूर तक मिले भूखण्ड पर पांचवी शताब्दी से ७ वी शताब्दी तक फैला था। प्रथम वे कदम्ब तत्पश्चात् पश्चिमी चालुक्य वातापी के नियन्त्रण में थे। वे अपने को भुजेन्द्र वंशीय कहते थे।

दक्षिण में सिन्द का राज्य १० वीं से १२ वीं शताब्दी तक कायम रहा। उनकी तीन शाखाएँ मगलकोट के सिन्द बेलगवती के सिन्द तथा एलपुरम के सिन्द हो गयी थी। मध्यप्रदेश स्थित बस्तर के राजा कश्यप गोत्रीय छिन्दक वंश के नाग जातीय राजा थे। उनकी राजधानी बारसुरू अर्थात् वर्तमान बरसर स्थान है। इस राज्य का सन् १३२४ ई० तक ऐतिहासिक अस्तित्व मिलता है। इसी प्रकार बेल्लारी का नाग वंश तथा जाति प्रसिद्ध है।

के लिए तैयार नहीं हो रहा था। मुझे धोती चट्टी नंगे सर देखकर कौतूहल के कारण ग्रामीण वहां एकत्र हो गये थे। हाजी साहब तथा गाँव वाले उसे समझाने लगे।

मार्ग में एक घुड़सवार गुलाम मुहम्मद शाह साकिन मशवादा मिले। हम कुछ दूर तक चले थे। वे कभी रुकते और कभी पीछे रुक जाते थे। कभी आगे निकल जाते थे। हमारी कार उनके टट्टू से भी मन्द गति से चल रही थी। वे मेवे के व्यापारी थे।

एक जगह उन्हें हमने रुका देखा। मध्याह्न काल था। व्यवहार पटु थे। तुरन्त अपने लड़कों से नाक मंगाया। वे इतने मीठे तथा रसदार थे कि हाथों से नाक काटते ही रस चूने लगा। निकटवर्ती एक वृक्ष से उनका लड़का नाक तोड़ रहा था। उन्होंने बड़े मुहब्बत तथा आत्मीयता के साथ हमें अपना मेहमान बना लिया। हमें भूख और प्यास दोनों लगी थी। इस समय नाक अमृत फल प्रतीत हुआ। उनको बहुत शुक्रिया अदा किया। हमारा उद्देश्य जानकर उन्होंने अपने पुत्र अली मुहम्मद शाह को साथ कर दिया। वह बिजबरारी तथा 'भेदा देवी' का स्थान जानता था। वह सहर्ष तैयार हो गया। उसमें युवक जन्य उत्साह था। उसमें मानवीय समवेदना की। सड़क बहुत खराब थी। पत्थर के टुकड़े सड़क में पड़े थे। पत्थरों को हटाकर बार-बार चढ़ना-उतरना पड़ता था। अली मुहम्मद पत्थरों को उठाकर रास्ता बनाते पैदल चलने लगा। उसे इस काम में जैसे अद्भुत रस मिलता था।

वेलरमाशपुर में हाजी साहब तथा अली मुहम्मद के प्रयास से काफी किराया देने पर खच्चर ठीक हो गया। शर्त ठहरी। वापसी में केवल एक मील खच्चर हमें पहुँचाकर लौट जायेगा। शेष मार्ग पैदल वापस आना होगा। कोई दूसरा उपाय नहीं था। विवश होकर तैयार होना पड़ा। जंगली सड़क भेदगिर अर्थात् गंगोद्भेद तीर्थ तक जाती है। जिप गाड़ी वहाँ अभी नहीं पहुँच पाती। मार्ग में मीलों दूर पीछे रह जाती है।

विरानो नदी की उपत्यका से चलना पड़ता है। कुछ दूर चलने पर गाँव नहीं मिलते। केवल गूजरों के लकड़ी के बने मकान यत्र-तत्र मिलते हैं। गूजर गाय, भेड़ तथा बकरी पालते हैं। बड़े परिश्रमी होते हैं। उनका जीवन संकट तथा तूफानों के बीच गुजरता है।

गूजरों के मकान नहीं होते। जंगली लकड़ियों की शहतीर काट लेते हैं। उन्हें चारों ओर खड़ाकर द्वार विहीन चौखूटा, तीन तरफ से बन्द स्थान कोठरीनुमा बना लेते हैं। छत लट्ठे से पाटकर उस पर मिट्टी रख देते हैं। मिट्टी पर घास जम जाती है। मिट्टी और घास के कारण वर्षा काल में जल कोठरी में चूता नहीं। इस प्रकार वर्षा से रक्षा कर लेते हैं। एक ही कोठरी में पशु, घास तथा स्वयं रहने की व्यवस्था करते हैं। मक्का की रोटी और दूध अथवा मक्का की रोटी मिर्च लगाकर खाते हैं।

उपत्यका देवदार के वृक्षों से भरी है। सरिता जल कल-कल करता चिर गीत गाता, प्रवाहित रहता है। आदि काल से उपत्यका यह गीत सुनती आई है। प्रलय काल तक सुनती रहेगी। इस गीत को सुनते न तो उपत्यका थकी है और न गाने वाला प्रवाह कभी गतिहीन हुआ है। उपत्यका की हरियाली, शान्त निस्तब्ध वातावरण, उत्तुंग मन्दिराकार देवदार तरुओं का चुपचाप प्रकृतिकी सुन्दरता निरखते-निरखते शताब्दियों तक खड़े रहना। फिर गिर जाना। फिर अपने आप उगना। यह क्रम विश्व के इस कोने में जारी है। जारी रहेगा। मनुष्य इन निरीह वृक्षों का अपने लिए नाश कर उनकी ज्योति में अपना घर उजाला करने का प्रयास करेंगे। अनेक विचार आते-जाते हृदय पर विचित्र प्रभाव डालते थे।

उपत्यका के दोनों पार्श्वों में ऊँचे पहाड़ हैं। उनकी ढालों पर कहीं-कहीं गूजरों के आवास हैं। उपत्यका में जहाँ कहीं खुली समतलभूमि मिल गयी थी उन्होंने कुछ खेती कर ली गयी थी। मेरी यात्रा के समय गूजरों

के प्राय. निवास-स्थान खाली पड़े थे। अक्तूबर मास के पश्चात् शीत एवं तुषार पात आरम्भ हो जाता है। उससे बचने और ढोरों की रक्षा करने के हेतु पूरी गृहस्थी खच्चरों पर लादकर ढोरों के साथ गरम स्थान अर्थात् श्रीनगर की तरफ चल देते हैं। वहाँ से जम्मू प्रदेश की तरफ जहाँ बरफ नहीं गिरती शरण लेते हैं।

मुझे इस नीरव स्थान मे, प्रकृति की इस गम्भीर अभिरामता में, भयंकरता का बोध हो रहा था। कुछ आगे बढ़ने पर ढोल बजने की आवाज सुनाई पड़ने लगी। मन एक बार कबीले वालों का स्मरण कर काँप उठा। कबीलों के सम्बन्ध में अनेक क्रूर गाथाएँ सुन रखा था। उनसे सम्बन्धित अमानुषी कहानियाँ पढ़ चुका था। मैं हिन्दू था। शताब्दियों पूर्व गूजरों की जाति हिन्दू थी। किन्तु आज वह उन्हीं की। सभ्यता की किरण यहाँ तक नहीं पहुँच सकी थी। साहस केवल इसलिए था कि हमारे अली मुहम्मद तथा खच्चर वाले दोनों मुसलमान थे। उन पर अविश्वास करने का मुझे कारण नहीं दिखाई पड़ा। तथापि बस्ती से सहस्रों मील दूर, इस एकाकी स्थान मे, यदि कोई मुझे मार दे, मेरा सामान, रुपया-पैसा छीन ले तो मैं ऐसी अवस्था मे क्या कर सकूँगा ? विचार आते ही सिहर गया। बहुत दुनिया घूम चुका था। प्रायः अकेला ही घूमा था। अपने जीवन में कुछ और करना बाकी नहीं था। मैंने खच्चर को चाबुक लगाया। आगे बढ़ता चला गया।

कुछ दूर चलने पर देखता हूँ कि दो व्यक्ति ढोल बजा रहे थे। और लगभग पचास गूजर एक साथ पंक्तिबद्ध घास काट रहे थे। उनके हाथों में चमकती हँसिया थी। वे इतनी धारदार थीं कि दूर से ही चमक रही थी। वे काटते आगे बढ़ते जाते थे। ढोल वाला व्यक्ति पंक्ति के एक भाग में एक छोर से ढोल बजाता हुआ दूसरे छोर तक आता और पुनः बजाते हुए पहले छोर तक लौट जाता था। वह पंक्ति के पृष्ठ भाग में आता और जाता था। वे हमें देखकर और उत्साह से ढोल बजाने लगे। उपत्यका ढोलों की गम्भीर ध्वनि एवं उसकी प्रतिध्वनि से मुझे भयावनी लगने लगी। किन्तु घास काटने वालों पर उसकी प्रतिक्रिया भिन्न होती थी। उनमें उत्साह उत्पन्न होता था। एक ही काम करते रहने वाली नीरसता दूर होती थी। हाथ तेजी से चलते थे। वे घास काटते पीठ के पीछे जमीन पर थाली की तरह जुट्टों में रखते, खिसकते आगे बढ़ते थे।

जैसे जैसे भेदा देवी का स्थान समीप आता गया जंगल गम्भीर होता गया। देवदार तथा चीड़ के वृक्षों की आवलियाँ घनी होने लगी। भूमि पर वृक्षों की सघनता के कारण सूर्य की किरणें पड़ना कठिन हो रहा था।

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर पुनः घास का एक छोटा मैदान मिला। वहाँ भी गूजर ढोल बजाकर घास काट रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि जिन गूजरों की जीविका उपत्यका मे उपजे मक्का की फसल पर निर्भर थी, वे अपने ढोरों सहित शीत ऋतु में भी खेतों पर रह जाते हैं।

तुषार किंवा हिमपात के समय घास नहीं रह जाती। वृक्षों में हरी पत्ती नहीं दिखाई देती। पतझड़ जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है। गूजर तथा स्थानीय कृषक घासों का बण्डल अपने आवास में रख लेते हैं। एक ही कोठरी में घास, पशु तथा अपने कुटुम्ब के साथ रहते हैं। यह जीवन बड़ा कठिन है। उनके शरीर पर पड़े वस्त्रों से दुर्गन्धि निकलती है। वे मैले रहते हैं। दाढ़ी तथा बाल बड़े हो जाते हैं। इस समय भी मैंने जितने गूजरों को देखा सबकी दाढ़ी लम्बी, बाल लम्बे तथा सर पर कुल्हड़ के ऊपर पगड़ी थी। वे काबुली पठान जैसे लगते थे। केवल रंग कुछ पठानों से साँवरा था। ढोरों के साथ रात-दिन रहते रहते उनके आचार-विचार पर पशु जीवन का प्रभाव दिखाई पड़ता था।

सरिता की धारा के दोनों पार्श्व में पगडण्डी है। वाम तटीय मार्ग से चलना अच्छा होगा। मार्ग में

बहुत घना जंगल है। यहां के वन की लकड़ियाँ किंवा वनों के धन का उपयोग अभी तक नही हो रहा है। कल्हण ने मार्ग को भेदा वनपथ कहा है। यह विरानी उपत्यका कही जाती है। मालूम होता है कि यहां आने का मार्ग उस समय सुगम नहीं था। श्रीवर ने जैनराज तरंगिणी (४ : ४९२) मे भी भेदा वनपथ का उल्लेख किया है।

महाभारत वनपर्व (८४ : ६५) में गंगोद्भेद तीर्थ का उल्लेख है। इस तीर्थ में तीन रात्रि उपवास करने वाले व्यक्तियों को वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वह सदा सर्वदा के लिए ब्रह्मीभूत हो जाता है।

मार्ग में बड़े-बड़े मोटे देवदार के वृक्ष टूटकर गिरे थे। सरिता की धारा के मध्य वृक्ष धराशायी थे। जल, धूप, वायु, वर्षा, ऋतुओं का थपेड़ा खाते शताब्दियों से वे अपनी काया बिखेरते पड़े थे। इतना घना जंगल आस्ट्रेलिया के पश्चात् मैंने यहीं देखा था। वृक्ष स्वत गिरते हैं। स्वतः उगते हैं। सहस्रों वर्षों से निरन्तर यह क्रम अबाधगति से चला आ रहा है।

इन गिरे वृक्षों में कहीं-कहीं गूजर लोग अग्नि लगा देते हैं। जंगल में जहा सलाई नहीं मिलती वहा अग्नि जीवित रखने का यह बड़ा अच्छा तरीका है। एक बार आग बुझ जाने पर पाच-सात मील चलकर दूसरे गाव से अग्नि लानी पडती है। अग्नि धराशायी वृक्ष के मूल मे खोखला बनाकर रख देते हैं। वृक्ष की यह आग वर्षों सुलगती रहती है। अग्नि के लिए वृक्ष का अग्निवाला भाग नीचे कर देते हैं। बुन्दें उनमें पड़ती नहीं। इस प्रकार वर्षा मे अग्नि की रक्षा हो जाती है। शीत से बचने तथा अग्नि के उपयोग का अच्छा तरीका ढूंढ निकाला गया था।

चलते हुए हम अचानक एक पहाड़ी के मूल में पहुँच गये। पृष्ठ भाग मे उत्तुंग हिमाच्छादित शिखर था। तीन तरफ हरित पर्वतमाला थी और सम्मुख विरानी अर्थात् उपत्यका थी।

यहा के गूजर अपनी कोठरी शीत ऋतु प्रारम्भ होने के कारण छोड़कर चले गये थे। दो एक गूजर जलौनी लकड़ी काट रहे थे। वे मक्का की फसल काटकर जाना चाहते थे। इस उपत्यका में शाली की कृषि का अभाव था।

यह उपत्यका कश्मीर की अन्य उपत्यकाओं से सौन्दर्य में कम नहीं है। गुलमर्ग जैसा विशाल मैदान नहीं मिलता। किन्तु मार्ग में छोटे मैदान कई स्थानों पर मिले। उपत्यका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां के पर्वत सूखे नही हैं। हरे भरे वृक्षों से लदे एवं भरे हैं। चारो ओर हरियाली दिखाई देती है। देवदार के वृक्षों का घना वन मीलों छाया करता चला जाता है। सूर्य के दर्शन कठिनता से मिलते हैं।

भेदगिरी पहाड़ी के मूल में पहुँचा। खच्चरवाले ने कहा। हम पहुँच गये। अब लौटना चाहिए। मैंने कहा। यह स्थान वह नहीं है जहां हम आना चाहते थे। उसने सरिता में मिलता एक नाग अर्थात् सोता दिखाकर कहा था। यही नाग था। मैं उस नाग के पास गया जल में गन्धक की गन्ध थी। टट्टू वाला हुज्जत करने लगा। उसने कहा। इसी गन्धक पानी के लिए लोग यहा आते थे। वह क्या जाने। मै देवस्थान देखने आया था। जिसे लोग भूल चुके थे। स्टीन ने इसका वर्णन किया था। उसे मैंने पढा था। अतएव मैं स्वीकार करने के लिए तैयार नही था कि यह वही स्थान था।

मैंने उसे और आगे चलने के लिए कहा। पहाड़ी पर एक गूजर की कोठरी थी। हमलोग ऊपर चढ़ गये। खच्चरवाला उस कोठरी में पहुँचा। हम भी पीछे-पीछे गये। दूध पीने के लिए वहां के गूजर ने कहा। गूजरों की गन्दगी देखकर दूध पीने का साहस नहीं हुआ।

उस गूजर से मालूम हुआ। पहाडी पर एक और नाग है। उसका नाम क्या है। कैसा है। वह बता नही सका। हम लोग खच्चर को छोडकर पहाडी पर चढे। यह पहाडी आसपास की भूमि तल से ७५ फिट से कुछ ऊपर ऊँची है। इसके तीन ओर सरिता की धारा बहती है। एक तरफ ढालुआ भूमि है। उसी ढाल से चढकर भेडा देवी किंवा गंगोद्भेद तीर्थ पर पहुँचे।

कल्हण ने स्थान की संज्ञा भेडगिरि नाम से दी है। तीर्थ का नाम गंगोद्भेद कहा है। भेडगिरी, भेडगिर, भेंद, बाद्, एक ही शब्द के विभिन्न अपभ्रंश हैं। स्तीन इस स्थान पर सन् १८९५ में आये थे। उस समय कश्मीर का ब्राह्मण वर्ग तथा अन्य हिन्दू इस तीर्थ को भूल गये थे। यह तीर्थ लुप्त हो गया था। स्तीन ने इसे पुन शारदा तीर्थ तुल्य खोज निकाला है।

दूसरी भेडा देवी की स्थापना तथा मार्ग दुर्गम होने के कारण यहा की यात्रा बन्द हो गयी है। मार्ग कष्टसाध्य तथा खतरे मे खाली न होने के कारण लोग आना पसन्द नही करते।

यहा के रहने वाले गूजरो से मैंने पूछा। कभी कोई व्यक्ति या पर्यटक उनकी जानकारी मे यहा आया था? उन्होने उत्तर दिया। उनकी जानकारी मे कोई नही आया था। उन्हें लगभग ४० या ५० वर्षो की बातें अच्छी तरह याद थी। हमने शंका की। शायद कोई आया हो। उन्होने विश्वास के साथ कहा। ऐसा हो नही सकता। हम लोग स्थान छोडकर कभी हटे नही। स्तीन को अपनी यात्रा के समय इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। बुदबार में उन्हें खैरा नामक ७५ वर्षीय गूजर से मुलाकात हुई थी। वह यहा पर ४० वर्षो से रहता था। उसने स्तीन को बताया था कि उसकी युवावस्था मे कभी-कभी ब्राह्मण यहा पर आते थे। स्नान करने के पश्चात् श्राद्ध करते थे। कालान्तर में ब्राह्मणो का आना दुर्लभ हो गया।

पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के बीच कश्मीरी संघर्ष के समय सैनिको द्वारा विभिन्न पथो, जंगलों तथा दर्रों की खोज हुई। यहाँ भी कुछ लोग आये थे। कुछ दिन पहले मार्ग साफ करते एक जिप आई थी। शायद सडको की पैमाइश की बात थी। उसे भी हुए तीन वर्ष बीत चुके थे। सम्भव है राज्य सरकार यहाँ तक शीघ्र ही सडक बनवाये।

मोचनी एक सरिता जिसका नाम 'अमया' होगा निकलेगी। वह अनवरत प्रवाहित रहेगी। वह पहाड़ी के ढाल से उछलती नीचे नही बहेगी।

मैंने इसे सत्य देखा। सरोवर से कुछ नीचे जल निकलता दिखायी पड़ता है। वहाँ चरणामृत लिया जाता है। इसी स्थान पर जल पुनः पहाड़ी में समाविष्ट हो जाता है। उसका पता नहीं चलता। नीचे जहाँ जल प्रवाह है वहाँ उपरोक्त गन्धक का स्रोत मिलता है। इस स्रोतस्थान को जल शुद्ध रखने के लिए गूजरों ने शिलाखण्डो मे ढंक दिया था।

देवी सरस्वती ने यह भी भविष्यवाणी की थी कि प्रत्येक मास के तृतीयांश में ही जलधारा प्रवाहित रहेगी। शेष समय में गंगा स्वर्ग में बहती रहेगी। देवी ने ऋषि से वर माँगने के लिए कहा। ऋषि ने वर माँगा। जल सदा सर्वदा एक रूप प्रवाहित होता रहे। देवी ने वर स्वीकार किया। पुलस्त्य के पास जल निरन्तर बहता रहा। गंगोद्भेद तीर्थ प्रकाश में आया।

देवी के दर्शन निमित्त ऋषि पुलस्त्य ने पुन एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की। देवी सरस्वती ने राजहंसी के रूप में ऋषि को दर्शन दिया। ऋषि ने देवी की पूजा चैत्र शुक्ल अष्टमी तथा नवमी को की। देवी ने ६ प्रकृतियों का वर्णन ऋषि से किया। छओ प्रकृतियो के भेदो का वर्णन करने के कारण देवी का नाम ऋषि ने भेद रखा। देवी की पूजा हंस वागीश्वरी भेदा रूप से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तथा पूर्णमासी को होने लगी। *गंगोद्भेद माहात्म्य भेदा देवी का उल्लेख करते हुए गोवर्धन धर विष्णु का वर्णन करता है।* वह एक आश्चर्यजनक प्राकृतिक अलौकिक थान का वर्णन करता है। गोवर्धनधर के १२५ हस्त दूरी तक कभी तुषारपात नही होता (श्लोक० ७५, ८७, ८९, ९९, १०३९)।

इसी स्थान में ऋषि निमित्त औजस यम की मूर्ति स्थापित हुई। यम की पूजा माघ कृष्ण अर्थात् आश्वयुज १४ होने का विधान निर्धारित किया गया।

माहात्म्य यहाँ रामाश्रम, रामुष, सप्त ऋषि आश्रम, वैतरणी नदी आदि तीर्थों का उल्लेख करता है। उनकी यात्रा गंगोद्भेद तीर्थ यात्रा के समय करनी चाहिए।

नीलमत पुराण गंगोद्भेद तीर्थ के संदर्भ में भेदा देवी का उल्लेख करता है। नीलमत पुराण अमावस्या के दिन, आश्वयुज, नारायण अर्थात् गोवर्धनधर से देवस्थान, रामतीर्थ अर्थात् रामाश्रम, सप्तऋषि तथा वैतरणी का उल्लेख करता है। (नील० 1312-1319)

उक्त स्थानो में रामुष स्थान जिसका वर्णन कल्हण ने राजतरंगिणी मे किया है। श्रीनगर सुपियान सड़क पर रामुह ग्राम है (रा० त० २ : ५५; ८ : २८१३)।

आइने अकबरी में अबुलफजल वर्णन करता है कि शुकरोह के पास एक नीची पहाड़ी है। उसके शिखर पर एक जल-स्रोत है। वह पूरे वर्ष भर चलता रहता है। इस पर्वत के बाहु मूल पर तुषारपात नहीं होता। शुकरोह अर्थात् वर्तमान शुकरू रामुह से दक्षिण दिशा में मिलता है। वह नाम भेदा गिरि के लिए आइने अकबरी में आया है। (आइने अकबरी : २ : ३६२)

भेदगिरि पहुँचने पर परिश्रम सार्थक समझा। मार्ग की थकान दूर हो गयी। वहाँ चुपचाप बैठने मे एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा था। उस अनुभव का वर्णन करना कठिन है। उसका सम्बन्ध केवल कायिक किंवा इन्द्रियगम्य सुख से नही अपितु आत्मा से जैसे था।

भेदगिरि शिखर चारों तरफ के स्थानों से ऊँचा है। स्तीन की गणना के अनुसार उत्तर-पूर्व उसे

वर का जल निरन्तर ताजा तथा स्वच्छ बना रहता है। शुद्धता बनी रहती है। यदि सरोवर साफ कर दिया जाय तो जल में और शुद्धता आ जायेगी। मैं समझता हूँ कि सरोवर का जीर्णोद्धार लगभग छह सौ वर्षों से नहीं हुआ होगा। सम्भव है कभी किसी धर्मप्राण व्यक्ति ने सरोवर को साफ करा दिया हो।

सबसे आश्चर्यजनक बात जल के न जमने तथा तुषार के न होने का वर्णन, कल्हण तथा नीलमत पुराण ने नहीं किया है। मालूम होता है। यह बात उस समय लोगों में इतनी प्रचलित तथा साधारण थी कि इसके वर्णन की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया होगा।

यहाँ पर कोई विशाल भग्नावशेष अथवा कोई विशेष चामत्कारिक बात नहीं देखकर मेरे काश्मीरी मित्रों ने मुझसे पूछा। इस स्थान का इतना महत्त्व क्यों दिया गया? यहाँ आते समय मैं श्री स्तीन का वर्णन ध्यानपूर्वक पढकर नहीं आया था। स्तीन द्वारा लिखित सब बातों का मुझे ज्ञान नहीं था। आधुनिक जगत् के लोग सर्वत्र कुछ आकर्षक, कुछ भव्य, कुछ तुरन्त प्रभावकर, वस्तुओं से प्रभावित होते हैं। मैंने तुरन्त उत्तर दिया। यहाँ की सबसे बड़ी विशेषता यह है। यह पहाड़ी इस उपत्यका में तीनों तरफ के भूमि तल से ७० फीट ऊँची है। दक्षिण-पश्चिम की तरफ ढालू जमीन होती कम से कम ५० फीट तक नीची पहुँच गयी है। इसके तीन दिशाओं में सरिता का प्रबल प्रवाह है। सरिता का वेगशाली प्रवाह निरन्तर एक रूप बहता चला जा रहा है। फिर भी जल नदी के जल स्तर से ७० फीट ऊँचाई पर कैसे पहुँचकर निर्झर हो गया, यह वास्तव में प्रकृति की एक विचित्र लीला है। शिखर पर जहाँ सरोवर है, वह स्थान उपत्यका में सबसे ऊँचा है। उससे ऊँचा और कोई स्थान वहाँ पर नहीं है। इसके दक्षिण तथा वाम पार्श्व में ऊँचे पर्वत हैं। वाम पार्श्व का उत्तुंग पर्वत सरिता पार है, तो दूसरी ओर ढालू भूमि के छोर के पश्चात् पुनः ऊँचा पर्वत खड़ा है। इस प्रकार जल का इस शिखर पर पहुँचना उसी प्रकार हो रहा है, जैसे किसी नगर के पानी कल (वाटर वर्क्स) के लिए इंजन तथा पाइप द्वारा जल संग्रह हेतु ऊपर पहुँचाया जाता है।

जहाँ भी शिखरों पर जल मिलता है, वहाँ या तो एकत्रित किया हुआ वर्षा जल रहता है, अथवा किसी उत्तुङ्ग शिखर से जलप्रपात का जल आता संग्रहीत हो जाता है। यहाँ दोनों बातें नहीं हैं। यह जल तो भेदगिर पर्वत के शिखर के मध्य स्थान में केवल ६० फीट वर्गाकार समतल भूमि में निकल रहा है। जैसे किसी शिखर पर किसी नगर के जल पूर्ति निमित्त टैंक का निर्माण कर उसमें जल भरा जा रहा था।

जल सरोवर द्वार देश के नीचे से अभी तक प्रवाहित होता है। वह कुछ ही गजों के पश्चात् उसी पहाड़ी में लोप हो जाता है। पहाड़ी के नीचे जहाँ पुनः निर्झर निकलता है उसके जल में गन्धक की महक होती है। इस जल में गन्धक की गन्ध नहीं है। अतएव माहात्म्य तथा प्राचीन पुस्तकों में वर्णित जल के लुप्त होने की घटना यहाँ सच दिखायी पड़ती है।

इस तीर्थ की यात्रा चैत्र शुक्ल में करने का माहात्म्य है। स्थान दुर्गम होने के कारण, समस्त जनता के मुसलमान हो जाने के कारण, वहा का महत्त्व कम हो गया है। यहाँ के महत्व में अधिक कमी का कारण हालमोगलपुर में नवीन भेदा देवी की स्थापना है। वहाँ दर्शन करने का माहात्म्य मूल भेदादेवी के माहात्म्य

तुल्य समझा जाने लगा है। सोलहवी शताब्दी तक इस तीर्थ का अवश्य महत्व रहा होगा। अन्यथा अबुल फजल इसका वर्णन नही करता।

भेदा तीर्थ के अन्य स्थानों के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। भेदागिरि की पहाड़ी की अग्नि दिशा मे कुछ दूर पर एक पहाड़ी १०० फीट ऊँची है। यहाँ गूजर रहते हैं। इस समय वहाँ कोई नही था। इस स्थान के मध्य में एक ऊँचा ढूहा था। वहां पकाई ईंटें तथा बेडौल इमारत बनाने के पत्थर किनारे स्तीन को मिले थे। यहा एक दीवाल का भग्नावशेष ईशान दिशा से नैऋत्य दिशा तक ८० फीट तक फैला है। इस स्थान का स्तीन के मत से धर्मशाला अथवा यहाँ के रहने वाले पुरोहितों के आवास निमित्त निर्माण किया गया था। मुझे यहाँ केवल दीवाल का सूक्ष्म आभास मात्र मिला। पत्थर ईंटा उठाकर लोग अपने निवास स्थानो में लगा लिये हैं। गोवर्धनधर तथा यम ओजस देवस्थानों का पता स्तीन को लगा था। मेरे पास स्तीन जैसे साधन प्राप्त नही थे। यदि चाहता तो सरकारी मदद से साधन एकत्रित हो जाते, परन्तु अपनी न मांगने वाली दुर्बलता का सर्वदा शिकार होता रहा हूँ। कष्ट उठा लेना मैंने पसन्द किया है। परन्तु मुख किसी के आगे किसी वस्तु के लिए न खुले यही इच्छा तथा कामना रही है। इससे काम में कठिनाई होती है। परन्तु आत्मा सुखी रहती है। जो मेरे लिए सबसे बड़ा सुख है। मैं भी उनका पता लगाना भूल गया। कारण यह था कि सन्ध्या के पूर्व वहाँ से लौट जाना आवश्यक था। अन्यथा खतरा था। वहाँ ठहरने का स्थान नही था। भोजन का महत्त्व मेरे जीवन में कभी नही था परन्तु अपने साथियो का ख्याल रखना आवश्यक था।

इस स्थान से मै एक मील तक खच्चर से आया। वहाँ से पैदल चलकर बेरुलरमाशपुर पहुँचा। वहा पर मोटर और मोटर ड्राइवर छोड़कर आया था। जब गंगोद्‌भेद तीर्थ को लोग भूल गये थे तो छोटे-छोटे स्थानो तथा तीर्थों को स्मरण रखना कठिन था। हमें आशा है। इस दिशा में कुछ प्रयास भविष्य में इतिहास लेखकगण करेंगे।

नारायण नाग से भी मुझे यह स्थान अच्छा लगा। नारायण नाग में किंचित् भय का बोध पर्वत शृंखलाओं के अत्यन्त विशाल तथा ऊँचेपन और कंकनी नदी के धाराप्रवाह के गर्जन से होता है। भेदा देवी का स्थान शान्त है। सुरम्य है। भय का बोध नही होता। प्रकृति की सुषमा में, गम्भीरता नही मनोहरता है। मन में हल्केपन का बोध होता है। शरीर हल्का मालूम पड़ता है। दिमाग का बोझिल पन समाप्त हो जाता है।

सरोवर के पास यदि मनुष्य बैठ जाय, तो पृष्ठभाग की ओर उसे नदी उछलती चौड़ी उपत्यका से आती दिखाई देगी। गंगोद्‌भेद पहाड़ी की जैसे परिक्रमा करती हुई चली जाती है। शिखर एक दीप-सा प्रतीत होता है। चारो ओर से पर्वतों का ढाल आता इस पहाड़ीके मूल में मानो समा जाता है। चारों ओर की पर्वतमालाएँ और नदी की उज्ज्वल जल धाराएँ बहती भेदागिरि की सीमा बना देती है।

भेदादेवी गिरि के पृष्ठभाग में देवदार पूर्ण पर्वत और उसके ऊपर कुछ पीछे उठे दीपक तुल्य तुषार मण्डित शिखर हैं। वह जैसे दीपदान की थाली लिए चिरकाल से भेदादेवी की वन्दना कर रहे है। शिखर के सम्मुख लम्बी उपत्यका देवदार तथा चीड़ के हरे वृक्षों से भरी है। उनके मध्य नदी की धारा चुपचाप बहती चली जा रही है। इस धारा के दोनो ओर चलने की पगडंडिया है। मैं धारा के वाम तट से आया था। उसके दक्षिण तट से लौट चला। दक्षिण तट का मार्ग वाम तट से सुगम है।

इस शिखर के वाम पार्श्व से मार्ग राजौरी जाता है। द्रवगाम को पीर पन्तसाल पास से जोड़ता है। सामरिक दृष्टि से महत्त्व का स्थान है। रामपयार नदी की उपत्यका को यह मार्ग सम्बन्धित करता है। वहाँ चलता मार्ग पीरपन्तसल पास के मुख्य मार्ग से दुबजी के पास मिलता है।

यदि गंगोद्भेद तीर्थ के विरानी उपत्यका का विकास किया जाय तो कश्मीर के सर्वश्रेठ पर्वतीय दृश्यों में से वह एक होगा। यहां का वन मार्ग शोभनीय है। यहाँ आने पर एक प्रकार की शान्ति तथा मन में आध्यात्मिक भावना का उदय होता है। यह देखकर मन गौरव से पुलकित हो जाता है कि हमारे पूर्वज कितने प्रकृति प्रेमी थे। मानव के आध्यात्मिक विकास के लिए किस प्रकार सुरम्य स्थानों का प्रकृति के गोद मे चयन किया था।

●

परिशिष्ट 'छ'

कुरु

(तरंग १:५१: पृष्ठ ९५)

ऋग्वेद मे कुरुओं का उल्लेख एक जाति के रूप में नही किया गया है। कुरुश्रवण नामक एक राजा (१० ३३४) और राजा पात्रस्थामन् कौरयाण का उल्लेख (८:३:२१) में किया गया है। अथर्ववेद (२०:१२७) एव अग्रिम खिल (५ १०) में कुरुओ के राजा परीक्षित का उल्लेख किया गया है। जिनके पुत्र जनमेजय शतपथ ब्राह्मण (१३:५ ४, ११ ५'१.४) मे अश्वमेध सम्पन्न करने वाले एक महान् राजा के रूप में वर्णित है। कुरुश्रवण जो कि नाम से कुरुओं से संबद्ध प्रतीत होता है त्रासदस्यव अर्थात् त्रसदस्यु का वंशज माना गया है। पुरुओ मे प्रसिद्ध राजा। था ब्राह्मण साहित्य में कुरु जाति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कुरु पंचाल का नाम प्राय. एक साथ मिलता है (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३.७:६, ८:७, ४.७:२; कौषितकी उपनिषद् ४ १, काठक संहिता १०-६; वाजसनेयी संहिता ११:३:३)। शतपथ ब्राह्मण (१:७:२ ८) में कुरुपंचाली यज्ञ प्रणाली सर्वश्रेष्ठ कही गयी है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार (३:२:३१५) कुरु-पंचाल वाणी का निवास स्थान था। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१:८:४:१-२) से प्रकट होता है कि उनके राजा हिम काल मे आक्रमण करते थे। ग्रीष्म काल आते ही लौट जाते थे। उपनिषदों में कुरुपंचाल के ब्राह्मणों की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। (जैमिनीय ब्राह्मण २:७८; जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३:३०:६, ४ ६:२)। ब्राह्मण एवं उपनिषद् काल में कुरु-पांचाल प्रसिद्ध थे। इसी क्षेत्र में भारतीय पुरा कालीन ग्रन्थों की रचनायें विशेष रूप से हुई थी। कुरुजनपद के विशद इतिहास का वर्णन पुराणों एवं महाभारत मे मिलता है। उनका प्रारम्भिक इतिहास कौरवो के इतिहास का अंग है। कालान्तर में वे कौरवों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

रामायण मे अयोध्या काण्ड (९१:१९) में कुरु का सर्वप्रथम उल्लेख आया है। भरद्वाज ने भरत के सत्कार निमित्त जिन वस्तुओ का आयोजन किया था, उसमें उत्तर कुरु के विषय में कहते हैं—उत्तर कुरु वर्ष में दिव्य चैत्ररथ वन है। वहाँ दिव्य वस्त्र एवं आभूषण वृक्षो के पत्र-पुष्प है। दिव्य नारियाँ उन वृक्षों के फल है। कुबेर का वह शाश्वत वन यहीं आ जाए।'

रामचन्द्र सीता से चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा की तुलना करते हुए कहते है—उत्तर कुरु की शोभा भी चित्रकूट से आगे तुच्छ है। (अयोध्या काण्ड ९४.२६:) कबन्ध ने सीता के अन्वेषण निमित्त पश्चिम दिशा के वर्णन के समय उत्तर कुरु के वनों की उपमा दी है। (अरण्यकाण्ड ७३:७:)

रामायण किष्किन्धा काण्ड (सर्ग ४३:११, ५९) में कुरु का दो बार उल्लेख आया है। यहीं पर श्लोक ११ में केवल कुरु शब्द तथा ५९ में उत्तर कुरु का उल्लेख है। स्पष्ट है रामायण काल में दो कुरु प्रदेश थे। कुरु, जिसे कालान्तर में कुरुक्षेत्र कहा गया, तथा उत्तर कुरु हिमालय के पास था। उत्तर दिशा में सोम-गिरि के दर्शन था। गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग, विद्याधर, आदि देशों के पश्चात् उत्तर कुरु से आगे जाने का

उल्लेख है। अर्थात् सौमार्गों का मार्ग उत्तर कुरु से होकर जाता था। कुरु शब्द का उल्लेख ११ में श्लोक मे किया गया है। वहां कुरु का उल्लेख शूरसेन, प्रस्मल, कुरु, भरत, मद्र, काम्बोज, यवन, शक, आदि के मध्य आया है। भरत जाति कालान्तर में कुरु में मिल गयी और कुरुक्षेत्र बना। इसका उल्लेख यथास्थान किया गया है।

कुरुओं का निवास-स्थान कुरुक्षेत्र प्रदेश है। उनका निवास देश, कुरुक्षेत्र, कुरुजंगल तथा कुरु में विभाजित था। (आदि पर्व १०९:१) शतपथ ब्राह्मण (१३·५ ४:११) में भरत जाति का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यह देवताओं की यज्ञ भूमि थी। जाबालोपनिषद् में भी इसे देवयज्ञ भूमि माना गया है। महाभारत में इसका एक नाम समंत पंचक दिया गया है। समंत पंचक उत्तर वेदी नाम से भी अभिहित किया गया है। ऋग्वेद (३:२३.४) में उन्हे दृषद्वती, आपया तथा सरस्वती के तटों पर रहना बताया गया है। कालान्तर में यही क्षेत्र कुरुजाति का निवास स्थान हो गया था। प्रतीत होता है। भरत जाति कुरु जाति में आत्मसात् हो गयी।

वाजसनेयी संहिता (११:३:३) में एक स्थान पर भरत और कुरुपंचालो के सम्मिलित रूप में उत्तर कुरु का उल्लेख आया है। उत्तर कुरु शतपथ ब्राह्मण (३ २:·:१५) के अनुसार कुरुपंचाल के समान तथा शुद्ध वर्णित किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार उत्तर कुरु हिमालय पार के निवासी थे। कुरु एवं पंचालों में संघर्ष होता रहता था। कुरुओं ने उत्तर पाचाल विजयकर द्रोणाचार्य को दिया था। प्रायः दोनों देशों में वैवाहिक सम्बन्ध भी होता था। पांचाल नरेश केशिन दाल्भ्य कुरुराज उच्चै श्रवस की भगिनी के पुत्र थे। द्रौपदी पांचाल नरेश द्रुपद की कन्या थी।

ऐतरेय ब्राह्मण (८:१४) में महाभिषेक के अध्याय में उत्तर कुरु का उल्लेख इन्द्र के महाभिषेक के सन्दर्भ में किया गया है। उन्हें परेण हिमवन्त अर्थात् हिमालय के परे किंवा पार रहने वाला माना गया है। वे ऐतिहासिक जाति थे। सत्यहव्य ने उत्तर कुरु को देवक्षेत्र कहा है। एक मत है कि उत्तर कुरु के लोग कश्मीर से आकर आबाद हुए थे। वहाँ से पुनः बढ़ते हुए कुरु क्षेत्र में आकर बस गये। उत्तर बौद्ध साहित्य मे उत्तर कुरु का प्रायः उल्लेख गाथा कालीन लोगों के रूप मे किया गया है। किन्तु यह गाथा ऐतिहासिक उत्तर कुरुओं पर आधारित है।

दीप वंश में कुरु द्वीप तथा शासन वंश में उत्तर द्वीप के निवासियों को कुरु रट्ठ (कुरुराष्ट्र) कहा गया है। ब्राह्मण साहित्य में दक्षिण किंवा मध्य देश के कुरु लोगो को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। एक प्रकार से तत्कालीन साहित्य का केन्द्र कुरुपंचाल माना जाता रहा है। कुरुपंचाल नामो के एक साथ उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। वे पर्वतीय राष्ट्र थे। मालूम होता है। उपनिषद् तथा ब्राह्मण रचना काल मे पूर्वोदय में कुरु तथा पंचालो का विशेष महत्त्व एक राष्ट्र के रूप में था। कुरुपंचाल के ब्राह्मण शास्त्रीय कर्म काण्ड कराने में प्रसिद्ध थे। कुरुक्षेत्र को भगवान् ने गीता में धर्मक्षेत्र कहा है।

मनु ने कुरु, मत्स्य, पंचाल तथा सूरसेन प्रदेश को ब्राह्मणो को स्थान बताया है। वहाँ ऋषि मुनि निवास करते थे। प्रशंसा करते हुए कहा गया है। इनको युद्ध क्षेत्र में सेना के पृष्ठ भाग में रखना चाहिए। (मनु स्मृति २:१७–१९, ७:१९३) मनु ने इसे ब्रह्मर्षियों का देश कहा है।

इस क्षेत्र का नाम महाभारत के अनुसार पहले समन्तपंचक क्षेत्र था। राजा कुरु के समय इसका नाम कुरुक्षेत्र पड़ा। महाभारत में कुरु तथा कुरुक्षेत्र के सम्बन्ध में एक गाथा दी गयी है। ययाति की पत्नी

शर्मिष्ठा थी। उनका पुत्र पुरु था। वह नहुष का पौत्र था। पुरुरवा स्वायंभुव मनु की पुत्री इला का पुत्र था। उसका पिता बुध था। उससे पांचवी पीढ़ी मे था। यह चन्द्रवंशीय क्षत्रियों का आदि पुरुष था। ययाति के पुत्र पुरु के नाम पर पौरव वंश का नामकरण हुआ था। इस वंश में दुष्यंत के पुत्र भरत भारतवर्ष के चक्रवर्ती सम्राट् हुए थे।

पुरु के वंशज पौरव कहलाए। पुरु के दसवी पीढ़ी मे संवरण हुआ। पंचाल ने उस पर आक्रमण किया। अपने कुटुम्ब के साथ सिन्धु नदी के तटवर्ती वन मे उसने आश्रय लिया। पुरोहित वशिष्ठ के कारण पुनः राज्य प्राप्त किया। सूर्य कन्या तपती द्वारा उसे पुत्र कुरु उत्पन्न हुआ। उसके नाम पर उसके राज्य का नाम कुरुक्षेत्र पड़ा। कुरु की पत्नी वाहिनी से अश्ववान, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि एवं जनमेजय का जन्म हुआ। इन्हों के नाम पर कुरु जागल प्रदेश का नामकरण किया गया। (आदि पर्व ९४ : ४८ तथा ९४ : ४९–५०) इसकी द्वितीय कन्या शुभागी से विदुर का जन्म हुआ था (आदि पर्व ९२ : ३९७)। इनका और इन्द्र का सवाद कुरुक्षेत्र की भूमि जोतते समय हुआ था। (शल्य पर्व ५३ : ९–१५) कुरुक्षेत्र में यज्ञ करते समय पवित्र सरस्वती नदी सुरेणु नाम से प्रकट हुई थी। इस नदी का नाम ओघवती भी कहा गया है। (शल्य पर्व ३८ २६–२८।) इसी वंश में शान्तनु हुए थे। शान्तनु के पुत्र चित्रागद एवं विचित्रवीर्य थे। विचित्रवीर्य की रानियों से दो नियोगज पुत्र हुए। उनका नाम धृतराष्ट्र एवं पाण्डु था। धृतराष्ट्र से गान्धारी से दुर्योधनादि एक सौ पुत्र हुए। उनका नाम कौरव हुआ। पाण्डु के पुत्रों का वंश पिता के नाम पर पाण्डव वंश कहलाया। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु था। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित था। परीक्षित का पुत्र जनमेजय था। जनमेजय की तीसरी पीढ़ी में अधिसीम कृष्ण राजा हुए। उसके समय में सर्वप्रथम नैमिषारण्य में महाभारत एवं पुराणों का पाठ हुआ। अधिसीम कृष्ण का पुत्र निचक्षु था। वह हस्तिनापुर का अन्तिम राजा था। गंगा की प्रबल धारा के कारण हस्तिनापुर जलप्लावित हो गया। प्रजा तथा राजा वहाँ से वत्स क्षेत्र में जाकर शरण लिये। कुरुओं के कुरुक्षेत्र से निकलने का वृत्तान्त शाख्यायन श्रौतसूत्र में प्राप्त होता है। वृद्धद्युम्न से एक यज्ञ में भूल हो गयी थी। अतएव एक ब्राह्मण ने उसे शाप दिया कि उन्हें कुरुक्षेत्र त्यागना पड़ेगा।

ऐतिहासिक काल मे कुरुक्षेत्र मगध के साम्राज्य के अन्तर्गत महाराज नंद के समय हो गया था। मौर्यों के राज्य में मौर्य राजाओं के शासन में था। मौर्यों के पश्चात् यह कुछ समय के लिये गुप्तो के साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया था। गुप्तों के पश्चात् थानेश्वर के पुष्पभूति वंशीय राजाओं ने कुरुक्षेत्र पर शासन किया था। तत्पश्चात् गुर्जर प्रतिहारों तथा गाहड़वालों के अन्तर्गत था। महमूद गजनी ने थानेश्वर पर आक्रमण किया। चक्रस्वामी विष्णु मूर्ति नष्ट किया था। अन्त में पृथ्वीराज चौहान ने इसे मुसलमानों से मुक्त किया।

महाभारत के अनुसार सरस्वती तथा दृषद्वती का मध्यवर्ती भाग कुरुक्षेत्र है। इसे ब्रह्मा की यज्ञ वेदी कहा गया है (वन पर्व ८३ : ४, २०४-२०८)। कुरुक्षेत्र के इक्षुमती नदी के तट पर तक्षक नाग रहता था। खाण्डव दाह के पूर्व यहां चला आया था (आदि पर्व ३:१३९-१४२; २२६ ४)। उसने अपनी तपस्या द्वारा कुरुक्षेत्र को पवित्र किया था (आदि पर्व ९४.५०)। सुन्द-उपसुन्द दिशाओं को जीतकर यहां निवास करते थे। कुरुक्षेत्र सीमा में मान्धाता ने यज्ञ किया था (वन १२६-४५)। भीष्म तथा परशुराम का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था (उद्योग पर्व १७८.७२)। कौरव पाण्डव का युद्ध इसी क्षेत्र में हुआ था (भीष्म पर्व अध्याय १६-६२)। भीमसेन ने दुर्योधन से युद्ध तथा उसके बाद का युद्ध इसी क्षेत्र की सीमा में हुआ था (शल्य पर्व ५५-५८ अध्याय)। भीष्म पितामह इस क्षेत्र में शरशैया पर थे (भीष्म पर्व ११९.९२)। कलमाष किरण्य की मृत्यु संजयों के साथ युद्ध कर इसी क्षेत्र में हुई थी। महाभारत वन पर्व के अनुसार कुरु के दक्षिण तथा सरस्वती और दृषद्वती के मध्य का क्षेत्र कुरुक्षेत्र है। इसमें सरस्वती है। दृती तथा

आपगा नदी बहती है। उत्तर कुरु का उल्लेख संस्कृत साहित्य में मिलता है। पुरुरवा एल का पिता वाल्हीक देश से मध्यदेश आया था। पपंच सूदनी में कुरुओं को हिमालय पार से आने वाला बताया गया हैं। भारतीय कुरुओं को उनका उपनिविश कहा गया है। उत्तर कुरु महाभारत के अनुसार कैलास एवं बदरिका आश्रम के मध्य था। (म० भा० १ : १४५) मध्यदेश के बसने वाले कुरुओं को दक्षिण कुरु नाम से अभिहित किया गया है। दक्षिण कुरुओं के राज्य का प्रतिष्ठाता भरत को माना गया है।

दक्षिण कुरु लोगों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में किया गया है। पपंच सूदनी मे दक्षिण कुरुओं का उल्लेख मिलता है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार जम्बू द्वीप के जनपदों में कुरु एक महाजनपद था। ब्राह्मण तथा बौद्ध दोनों साहित्यों में प्रायः कुरु पंचाल का उल्लेख एक साथ किया गया है। शायद ही कहीं कुरु का नाम अकेले लिया गया है। पपंचसूदनी से पता चलता है। कुरु प्रदेश की राजधानी में बुद्ध के निवास निमित्त कोई विहार नहीं था। किन्तु कम्मासदम्य के बाहर एक वन था। उसमें भगवान् निवास करते थे। वहीं यह भी उल्लेख आता है। कुरु देश के लोगों का स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था। उनका मस्तिष्क उर्वर था। वे धर्म्म की किसी बात को समझने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। सब ऋतुओं में वहा की जलवायु बहुत अच्छी रहती थी। खाद्य पदार्थ स्वादिष्ठ और पुष्कर मिलते थे। भगवान् बुद्ध ने कुरुओं को धर्म ज्ञान सिखाया था।

बुद्ध धर्म की कथाओं में कुरुओं का प्रचुर वर्णन कथानक आदि के रूप में आया है। थीर गाथा की रचना में रट्ठपाल का हाथ था। वह कुरु के थुल्लकोठिका मे पैदा हुआ था। उसने कौरव्य राजा को बुद्ध धर्म में दीक्षित किया था। धम्मपद के भाष्य में अग्निदत्त की कथा आती है। बड़कोशल अर्थात् महाकोशल राजा का पुरोहित था। वह कुरु तथा अंग और मगध की सीमा पर निवास करता था। उसके संघ में १० हजार शिष्य थे। कुरु आदि जनता उनके भोजन का प्रबन्ध करती थी। कालान्तर में अग्निदत्त तथा उसके शिष्यों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

थेरगाथा में उल्लेख है। थेरी नन्दुत्तरा का पुनर्जन्म एक ब्राह्मण कुटुम्ब में कम्मासदम्य अर्थात् कम्मासधम्म कुरुदेश में हुआ था। इस नगर का नामकरण कम्मास राजा के नाम पर हुआ था। जयदिस्स पांचाल राजा के पुत्र रूप में ग्रहण किया था। जयदिस्स जातक में इस सम्बन्ध में कथा वर्णित है। बोधिसत्व ने कम्मास पर नियन्त्रण किया था। राजा जयदिस्स का दूसरा पुत्र कम्मास था। एक यक्षिणी द्वारा उठा ले जाया गया था। यक्षिणी ने उसे नरमांस भक्षी बना दिया था। बोधिसत्व ने उसका भी सुधार किया था। उसे कम्मास इसलिए कहते है कि उसके पाद पर काला चिह्न था। यह पौराणिक कथा कल्मापपाद से मिलती है। नन्दुत्तरा पहले जैन हुई। कालान्तर में महा कच्च्यान द्वारा बुद्ध धर्म में प्रव्रजित हुई। परमार्थ दीपनी में इसी प्रकार थेरनी का उल्लेख मिलता है।

पपंचसूदनी में कुरु के जन्म का विचित्र वर्णन किया गया है। महामान्धाता जम्बूद्वीप का चक्रवर्ती राजा था। उसने पूर्व्व विदेह, अपर गोयान, उत्तर कुरु तथा देवलोकदर पर विजय प्राप्त किया था। वह उत्तर कुरु से विजय कर लौट रहा था। एक बहुत बड़ा जन समुदाय उत्तर कुरु से जम्बू द्वीप में उसके साथ आया। वे जहां आबाद हुए, उसका नाम कुरु अर्थात् कुरुराष्ट्र पड़ा।

कुरु की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर गंगा तट पर थी। इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली बाद में उनकी राजधानी हुई। गाथा है। धृतराष्ट्र हस्तिनापुर में राज करते थे। इन्द्रप्रस्थ पाण्डवों को दे दिया था। दिल्ली में पाण्डवों का किला पुराना किला के नाम से प्रख्यात है। वर्तमान किला शेरशाह सूरी का बनवाया हुआ

है। सम्भव है उसी स्थान पर शेरशाह ने नवीन किला बनवाया होगा। यह किला इण्डिया गेट से दिखाई पड़ता है।

हस्तिनापुर कालान्तर में महत्त्वहीन हो गया। इन्द्रप्रस्थ आज भी भारत की राजधानी है। कुरु देश का दूसरा नगर उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार इशुकार, उसुयार किंवा इसुयार था। यह अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। उसकी तुलना स्वर्ग से की गयी है।

बौद्ध साहित्य में कुरु से सम्बन्धित अनेक कथाएं मिलती हैं। कुरुधम्म जातक में बोधिसत्व को कुरु राजा धनंजय का पुत्र इन्द्रप्रस्थ में होना लिखा है। कलिंग में एक बार अवर्षण हुआ। कारण बताया गया। कुरुधम्म का पालन नहीं किया जाता। अतएव अवर्षण हुआ है। कलिंग से ब्राह्मण कुरु देश में धर्म ज्ञान प्राप्ति निमित्त आये। तत्पश्चात् कलिंग में कुरुधर्म का पालन किया जाने लगा। वर्षा हुई। राजा धनंजय कौरव्य का अनेक जातकों में उल्लेख मिलता है। धनंजय को युधिष्ठिर वंशीय कहा गया है। भगवान् बुद्ध उत्तरापथ में आकर शिक्षा दिये थे। कुरु देश में वे विशेष निवास किये थे। एक कथा में कुरु के राजा के मन्त्री का नाम रावरित्र दिया गया है। एक स्थान पर विधुर दिया गया है। कुरु का राज्य ९०० मील विस्तार में बताया गया है।

कुरु में राजतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। परन्तु कौटिल्य काल में वहाँ गणतन्त्र प्रणाली प्रचलित हो गयी थी। उनके लिए उपजीवी शब्द का व्यवहार किया गया है। अर्थात् सभी नागरिक राजा थे। उनका समाज में स्थान समान था। नवीं शताब्दी, में पता चलता है, धर्मपाल ने चक्रायुध को कन्नौज के राज्य पर बैठाया था।

पुराणों में कुरु जाति का वर्णन बहुत मिलता है। वे प्रायः एक जैसे हैं। कुरु क्षत्रिय थे। मगध सम्राट् जरासन्ध के पराजय के पश्चात् उत्तरापथ में कुरु अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे। कुरु राजा शान्तनु के दो पुत्र चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य थे। दोनों पुत्रहीन मर गये। अतएव नियोगद्वारा विचित्रवीर्य की पत्नी से धृतराष्ट्र तथा पाण्डु हुए। धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र दुर्योधनादि हुए। उन्हें कौरव कहा गया। पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि हुए। उन्हें पाण्डव कहा गया। धृतराष्ट्र अन्धा होने के कारण राजसिंहासन पर नहीं बैठ सके। अतएव कनिष्ठ भ्राता पाण्डु राजा हुए। पाण्डु की अकाल मृत्यु के कारण धृतराष्ट्र राजा तथा युधिष्ठिर उपराजा हुए। परन्तु धृतराष्ट्र के पुत्रों को यह बात पसन्द न आई। वे स्वयं अपने पिता के पश्चात् उत्तराधिकारी होना चाहते थे। अतएव एक ही कुरुवंश की दो शाखा कौरव तथा पाण्डवों में महा भयंकर महाभारत युद्ध हुआ।

नीलमत पुराण में कौरव तथा कौरव्य शब्दों का उल्लेख मिलता है। यह कुरु वंश के लिए प्रयुक्त किया गया है।

कौरव :

ततः सा सुषुवे पुत्रं बालगोनन्दसंज्ञितम्।
बालभावात् पाण्डुसुतैर्नानीता कौरवैन वा ॥ १० = २९

कौरव्य :

गन्धसोमस्तथा गर्ग्यः इतिटिर्मिनिटिस्तथा।
ऐरावतः स कौरव्यो मापादः कुमुदप्रभः ॥ १/२ = १०७८

मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है—

तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजांगलाः ।

कुरु पंचाल का एक साथ उल्लेख पुराणों में स्पष्ट दिखाई देता है। मत्स्य पुराण में 'तास्विमे कुरु पाञ्चाला:' तथा विष्णु, कूर्म, वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण में भी 'तास्विमे कुरुपांचाला.' का प्रयोग किया गया है।

पुराणों के अनुसार वर्तमान मेरठ तथा दिल्ली क्षेत्र कुरु प्रदेश में आता है। पांचाल देश में अहिच्छत्र वर्तमान रामनगर, बरेली, बदायूँ जिला तथा कम्पिला अर्थात काम्पिल्य (फरुखाबाद जिला उत्तर प्रदेश) का था। पूर्व में गोमती तथा दक्षिण पश्चिम चम्बल नदी तक क्षेत्र विस्तृत था। पश्चिम में पाचाल की सीमा शूरसेन थी। पांचाल भी उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में विभक्त था। संहितोपनिषद् ब्राह्मण मे एक स्थलपर प्राच्य पांचाल का भी वर्णन है। इसके तीन भाग भी थे। यह अनुमान इसके लिये त्र्यनीक शब्द के उल्लेख से मिलता है। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र तथा दक्षिण पांचाल की कांपिल्य थी। अहिच्छत्र वर्तमान रामनगर जिला बरेली के खनन कार्य से इसकी प्राचीनता स्पष्ट होती है। कुरुओं तथा पाचालो में उत्तर कुरु को अपने राज्य में सम्मिलित रखने के लिये संघर्ष होते थे। कभी-कभी उत्तर पाचाल को कुरुरट्ठ (कुरुराष्ट्र) में सम्मिलित किया गया है। उसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। कभी कंपिल रट्ठ (कंपिल राष्ट्र) मे सम्मिलित हो जाता था।

मार्कण्डेय पुराण में एक स्थान पर 'कुरवस्तंगणा घसा:' का उल्लेख आया है। यहाँ कुरु से उत्तर कुरु समझना चाहिए।

वायु, ब्रह्माण्ड पुराणो में 'कुरून् समस्तानपि' उल्लेख भी किया गया है। मत्स्य में 'कुरून् वै भरतानपि' उल्लेख मिलता है। पुराणों से प्रतीत होता है कि कुरु तथा भरत एक ही जाति के थे।

स्कन्दपुराण के देशों की तालिका में कुरु का स्थान ६३ वीं तथा ग्राम संख्या ४३ हजार दी गयी है। इससे प्रकट होता है। कुरु देश का क्षेत्रफल बहुत बडा नही था। शक्ति संगम तन्त्र (३:७:२३) में कुरु राष्ट्र कश्मीर आदि से छोटा था। कुरु देश हस्तिनापुर से आरम्भ होकर दक्षिण में कुरुक्षेत्र तक और पांचाल पूर्व दिशा तक विस्तृत था।

इसके अनुसार सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के मध्य कुरुक्षेत्र था। अर्थात् दक्षिण में सरस्वती उत्तर दृषद्वती नदियाँ थीं। मनुस्मृति में इस प्रदेश को ब्रह्मावर्त कहा गया है। (मनु० २:१७)

दक्षिण कुरु प्रदेश की सीमा पूर्व में पांचाल, दक्षिण में सरस्वती तथा उत्तर में दृषद्वती नदियाँ हो जाती हैं। वाहीक प्रदेश कुरुक्षेत्र के पश्चिम होना चाहिए। वाहीक अंचल के लिए महाभारत में प्रायः भद्र, यात्तिक, अरट्ट तथा पंचनद शब्दों का प्रयोग किया गया है। वर्तमान सोनपत, अमीन, करनाल, पानीपत के जिले कुरुक्षेत्र में माने जा सकते हैं। कुरुजांगल कुरुक्षेत्र का जंगलीय भाग मालूम होता है। वह उत्तर में काम्यक वन तक फैला था। दक्षिण में कुरुदेश खाण्डव वन तथा सरस्वती के तट तक फैला था। (महाभारत ३:५:३) यह क्षेत्र का पूर्वीय भाग था। यह गंगा तथा उत्तर पांचाल के मध्य विस्तृत था।

कुरुक्षेत्र के विषय में महाभारत में कहा गया है। यह क्षेत्र पवित्र है। वहाँ की रजस्पर्श से भी मनुष्य को स्वर्ग प्राप्ति होती है। कुरुक्षेत्र में जो सरस्वती के दक्षिण तथा दृषद्वती के उत्तर निवास करते हैं, जैसे स्वर्ग में निवास करते हैं।

पाणिनि की अष्टाध्यायी (४:१-१७२-१७६ तथा ४;२:१३०) में इसका वर्णन है। योगिनी तंत्र (२:१, २:७-८) में इसका उल्लेख है।

हुएनसांग वर्णन करता है। थानेश्वर वंश का राज्य था। जिसका दक्षिणी राजपूताना तथा कुछ भाग उत्तर प्रदेश का था। सन् ६४८ ई० में एक चीनी राजदूत हर्षवर्धन की राज्यसभा में भेजा गया था। उसके अनुसार सेनापति अर्जुन ने राज्य पर अधिकार कर लिया था। राजा के वंश का लोप हो गया था। थानेश्वर का महत्त्व कायम रहा। परन्तु सन् १०१४ में महमूद गजनी ने इस पर अधिकार कर लिया था। परन्तु सन् १०४३ में दिल्ली के हिन्दू राज्य के अधीन पुनः चला गया।

कुरुक्षेत्र का सामरिक महत्त्व है। इस क्षेत्र में महाभारत तथा तीनों पानीपत के युद्ध हुए थे। इन चारों युद्धों ने भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया था। चारों युद्धों के कारण भारत के केन्द्रीय राज्य शासन, वंश तथा प्रणालियों में आमूल परिवर्तन हुआ है।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर यहाँ के सरोवर में स्नान करने का महत्त्व है। मैं कुरुक्षेत्र गया हूँ। सरोवर कमल से पूर्ण है। पानी की कमी नहीं है। मैदान है। पैदावार खूब है। प्राचीन काल में घोड़ा, हाथी, ऊँट के लिए चारा तथा पानी की आवश्यकता होती थी। उस समय इसके सुपास के कारण क्षेत्र का सामरिक महत्त्व था।

परिशिष्ट 'ज'

शक

(तरंग : १ : ५२ : पृष्ठ ९६; २ : ६ पृष्ठ ३८० तथा ३ : १२८)

ऋग्वेद (११ : १३२ : ५) में शकपूत शब्द एक राजा के लिए आया है। अथर्ववेद (३ : १४ : ४; २० : १३१ : १६) में गोमय के अर्थ में शकपूत शब्द का प्रयोग किया गया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी (४ : १ : १७५) में शक देश का उल्लेख किया है। वृहद् संहिता में (१४ : २१) में शक-द्वीप को शक जाति का निवास स्थान कहा गया है। मनुस्मृति ने (११ : ४३ , ४४) शकों का यवन के साथ उल्लेख कर उन्हें शूद्रों की श्रेणी में पतित क्षत्री कहकर रखा है। पाणिनि ने (४ : १ : १७५) कम्बो-जादि गणों में शकों का उल्लेख किया है। मनु ने (१० : ४) बर्बरों को शक, शबर, यवन आदि में गिना है।

वायु पुराण में उल्लेख आता है : 'शका हृदा कुलिन्दाश्च', 'शका. हृदाः कुणिन्दाश्च' तथा 'शका-द्रिहा ललिताश्च'। ब्रह्माण्ड पुराण में 'शका हूणाः कुलिन्दाश्च', मत्स्य पुराण में 'शका द्रुहयाः पुलिन्दाश्च' उल्लेख मिलता है।

सिरीन्ध्रान् कुकुरांश्चीनान् वर्वरान् यवनान् शकान्।
रूपाणांश्च कुणिन्दाश्च अंतलोकवरांश्चवान्॥

वायु पुराण में 'वर्वरान्, यवनान् द्रुहान्', ब्रह्माण्ड पुराण मे 'वर्वरान् यवनान् द्रुहान्', मत्स्य पुराण में 'वर्वरान् यवनान् खसान्'; वर्वरान् यवनान् खसान्', 'वर्वरान् यवनांच्छकान्', 'वर्वरान् यवनान् द्रुहान्।' उल्लेख मिलता है।

शकों का मूल निवास स्थान सीर तथा आमू दरिया की उपत्यका माना जाता है।

एक और उल्लेख मिलता है।

अथ चीनमरूश्चैव तंगणान् सर्वशूलिकान्।
साध्रांस्तुपारान् लम्पाकान् पल्हवान् पारदान् शकान्॥

वायु पुराण में—'पल्हवान् दरदान् शकान्', मत्स्य पुराण में—'पल्हवान् पारदान् शकान्; ब्रह्माण्ड पुराण में—'पल्हवान् दरदान् शकान्।'' आदि का उल्लेख मिलता है। इसी पुराण (२ : १६ : ४८) में उसे उदीच्य का एक देश माना गया है।

वायु पुराण (९९ : ३१०-३२४ तथा ३६१) के अनुसार पच्चीस शक राजाओं को शिशुनाग, ऐक्ष्वाक, पांचाल, हैहय, कलिंग राजाओं का समकालीन कहा गया है। उनका राज्यकाल ३८० वर्ष कहा गया है। मत्स्य पुराण (२७२ : १८) अट्ठारह शक राजाओं का उल्लेख करता है। वहाँ पर उनका उल्लेख सात आन्ध्र, दस आभीर तथा ७ गर्दभिलों के पश्चात् किया गया है। विष्णु पुराण (४ : २४ : ५२) में

शकराजाओं की संख्या १६ दी गयी है। इनका उल्लेख (३ : ६३ : १२०–१२४ ; ३ : ७३ : १०८; ३ : ७४ : १३७, १७२–१७५) में आता है। स्कन्दपुराण (१ : २ : ४०) में वर्णन आता है कि कलियुगारम्भ होने पर एक लाख एक सौ वर्ष तक शकराजा होंगे। संस्कृत साहित्य में चतुर्द्वीप, सप्त द्वीप, नव द्वीप, द्वादश द्वीप, त्रयोदश द्वीप, अष्टदश द्वीपों का उल्लेख मिलता है। पुराणों में सातों द्वीपों को समुद्रों से घिरा बताया गया है। वायु तथा अन्य पुराणों में क्रम, जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्करादि द्वीपों की तालिका दी गयी है। मत्स्य पुराण में जम्बू, शक, कुश, क्रौंच, शाल्मली, गोमेद (प्लक्ष) और पुष्कर सात द्वीपों का उल्लेख किया गया है।

क्षीरसागर को क्षीरोद भी कहते हैं। वर्तमान उत्तर अतलान्तिक महासागर के पश्चिमीय भाग तथा आर्कटिक समुद्र को कुछ विद्वान् क्षीर सागर कहते हैं। विद्वान् वहेर क्षीर सागर को कैस्पियन सागर तथा विल्फर्ड उसे जर्मन समुद्र कहते हैं। क्षीर अर्थात् दूध का रंग उज्ज्वल होता है। उत्तर आर्कटिक सागर तुषार पात के कारण श्वेत रूप धारण कर लेता है। कास्पियन सागर भी शिशिर ऋतु में जमकर श्वेत रूप हो जाता है। *यह बात भारतीय महासागर तथा उससे सम्बन्धित सागर एवं खाड़ियों के सम्बन्ध में लागू नहीं* होती। उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध में होने के कारण वे कभी जमते नहीं। कैस्पियन सागर तथा आर्कटिक सागर दूध की तरह जमकर श्वेत रूप शिशिर ऋतु में धारण कर लेते हैं। मालूम होता है कि यहाँ क्षीर सागर नाम कैस्पियन सागर के लिए प्रयोग किया है।

शक द्वीप को क्षीर सागर से घिरा हुआ कहा गया है। प्रत्येक द्वीप में ७ पर्वत, ७वर्ष तथा ७ नदियों का उल्लेख किया गया है। सप्त सिन्धु, सप्त वर्ष, सप्त पर्वत, सप्त ऋषि, सप्त द्वीप, सप्त नदी, सप्तगंगा, सप्त पुरी, सप्त वासर, आदि सप्त संख्या देने की एक शैली किंवा परम्परा प्राचीन काल में चल गयी थी। सम्भव है कि सप्त के आधार पर सम्भवतः लोकप्रिय बनाने तथा स्मृति में चिरस्थायी रखने के लिए एक उपाय निकाला गया होगा।

पर्वतादि के वर्णन में द्विनाम देने की प्रथा थी। एक ही पर्वत के दो नाम होते थे। शक द्वीप के सप्त पर्वत हैं यथा—(१) मेरु-उदय (पामीर), (२) जलधारा–चन्द्र (वोलगा नदी का पठार) (३) दुर्ग-शैल–नारद (कैस्पियन द्वार), (४) श्याम–दुन्दुभी (उत्तरीय पर्वतमाला), (५) अस्तगिरि–सोमक (६) आम्बिकेय–सुमन, (७) विभ्राज–केशव (जगरास पर्वत)। वायु पुराण में केशव का रम्या तथा वैहारी पर्वत नाम से उल्लेख किया गया है।

शक द्वीप के सात वर्ष हैं। उक्त सातों पर्वतों के नाम पर दिये गये हैं अथवा उन पर्वतों के मूल तथा उपत्यका में थे। : (१) उदय वर्ष (उदय पर्वत), (२) सुकुमार-शिशिर (जलधार पर्वत वोलगा नदी की उपत्यका) (३) कौमारः सुखदय (दुर्ग शैल) (४) मणि चक्र-आनन्दक (श्याम पर्वत जरफसा नदी की उपत्यका) (५) कुसुमोत्कर-असित (सोमकपर्वत) यूनानी लेखकों का कोमी दोहि प्रदेश) (६) मैनाक-क्षेमक (आम्बिकेय पर्वत) (७) विभ्राज-ध्रुव (विभ्राज पर्वत)।

शक द्वीप की सप्त नदियाँ हैं : (१) सुकुमारि = मुनितप्ता (२) कुमारी = तप सिद्धा (३) नन्दा पावनी (४) शिविका = द्विविधा (५) इक्षु = कुहु = वक्षु = आमू दरया (६) वेणुका = अमृता (७) सुकृता= गभस्ति। महाभारत में शक द्वीप की सात नदियाँ (१) सुकुमारी = (वोलगा) (२) कुमारी (कुभा) (३) सीता (सीरदरया) (८) कावेरा (५) महानदी (डान नदी) (६) कौरव्य, (७) मणि जला (जरफसा नदी) दिया गया है। यूनानियों के सीथियन शक तथा चीनियों को यू-ये-चि० (ऋषिक) जाति पामीर (मेरु) से कास्पियन (कश्यप) सागर तक फैली थी।

स्कन्द पुराण (१:२:४०) में शकों का उल्लेख आया है। कलियुग आरम्भ में उन्हें एक लाख एक वर्ष राज्य करना लिखा है। राजा सगर ने इन्हें जीता था। इसका उल्लेख भागवत पुराण (९:८:५) में मिलता है। शक यवनों का वशिष्ठ के शरण जाने का उल्लेख पद्मपुराण (६० : २०) में किया गया है। पतंजलि ने इनका निर्देश पातंजलि सूत्र (२.४:१०) में किया है।

महाभारत में शक देश तथा शक जाति का निम्नलिखित स्थानों पर निम्नलिखित संदर्भ के साथ उल्लेख किया गया है।

'एक भारतीय जनपद और जाति। शक जाति के लोग वशिष्ठ की नन्दिनी गाय के मल से प्रकट हुए थे (आदि० १७४-३६)। भीमसेन ने पूर्व-दिग्विजय के समय शकों को परास्त किया था (सभा० ३०:१४)। नकुल ने भी इन पर विजय पायी थी (सभा० ३२ : १७)। शक देश और जाति के राजा राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर के लिए भेंट लाए थे (सभा० ५१:३०)। कलियुग में शक आदि जातियों के लोगों के राजा होने का उल्लेख मिलता है। (वन० १८८ . ३५)। शक देश के राजा के पास पाण्डवों की ओर से रण-निमन्त्रण भेजने का विचार किया गया था (उद्योग० ४.१५)। ये काम्बोज राज सुदक्षिण के साथ दुर्योधन की सेना में सम्मिलित हुए थे (उद्योग १९:२१)। शक एक भारतीय जनपद का नाम है (भी० म० ९:५१)। भगवान् श्रीकृष्ण ने शक देश पर विजय पायी थी (द्रोण० ११:१८)। सात्यकि ने बहुत से शक सैनिकों का संहार किया था (द्रोण० ११९.४५ ११९.४५, ५३)। कर्ण ने भी शक देश को जीता था (कर्ण० ८:१८)। शक पहले क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मणों के दर्शन से वंचित होने के कारण (अपने धर्म-कर्म से भ्रष्ट हो) शूद्र भाव प्राप्त किये थे। (अनु० ३३:२१)। मनु संहिता में उन्हें वृषल क्षत्रिय कहा है।

प्राचीन शकों का मूल स्थान इस समय रूस गणतन्त्र राज्य में है। रूसी इतिहासकारों ने इस पर यथेष्ट अन्वेषण किया है। उन्होंने शक जाति को दुनार अर्थात डैन्यूब नदी से त्वान्शान् अल्ताई के मध्य की भूमि को भारतीय शक द्वीप माना है। प्राचीन ईरानी भाषा में इसकी संज्ञा शकान वेइजा दिया गया है। इसको शकस्थान तथा शीस्तान कहते हैं। हूणों के कारण शक जाति तथा देश विघटित हो गया था। एक मत है ओक्सस तथा जक्सस रोज नदी की उपत्यका से पामीर के मूल तक उनका निवास क्षेत्र था। वह क्षेत्र वर्तमान रूसी तुर्किस्तान चीनी तुर्किस्तान तथा मध्य एशिया है।

यूरोपीय लेखकों ने शकों को शकाई तथा चीनी लेखकों ने 'से' लिखा है। उनके मतानुसार मूल शब्द 'शेक' अथवा 'शोक' था। चीनी लेखक उन्हें पशुपालक जाति कहते हैं। उनका मत है कि वे काशगर के समीपवर्ती भूभाग में विचरण करते थे। सन् १६४ ई० पू० ए-ची-जाति ने उन पर पूर्व दिशा से आक्रमण किया। वे उद्वासित हो गये। उनका एक भाग अफगानिस्तान के पश्चिमी खण्ड में बस गया। उस खण्ड को शीस्तान अथवा शकस्थान कहते हैं। उनका दूसरी शाखा पूर्वी ईरान में जाकर आबाद हुई। शक जाति इस प्रकार दो शाखाओं में विभाजित हो गयी थी। यह भी मत है कि एक शाखा ने तुर्किस्तान से कश्मीर में प्रवेश किया। वे कश्मीर के दक्षिण में आबाद हो गये थे।

दूसरी शाखा जो पूर्वी ईरान में आबाद हो गयी थी उसका सम्बन्ध पल्हव जाति से हुआ। वह शाखा भारतवर्ष में कालान्तर में आयी। यह शाखा भारत में खैबर पास से न आकर बोलन पास किंवा मुल्ला पास द्वारा भारत में प्रवेश की थी।

मलाया प्रायद्वीप के वनों में एक आदिम जाति रहती है। उसका नाम शकाई है। उसकी संज्ञा

शकराजाओं की संख्या १६ दी गयी है। इनका उल्लेख (३ : ६३ : १२०–१२४ ; ३ : ७३ : १०८; ३ : ७४ : १३७; १७२–१७५) में आता है। स्कन्दपुराण (१ : २ : ४०) में वर्णन आता है कि कलियुगारम्भ होने पर एक लाख एक सौ वर्ष तक शकराजा होंगे। संस्कृत साहित्य में चतुर्द्वीप, सप्त द्वीप, नव द्वीप, द्वादश द्वीप, त्रयोदश द्वीप, अष्टदश द्वीपो का उल्लेख मिलता है। पुराणों में सातों द्वीपों को समुद्रों से घिरा बताया गया है। वायु तथा अन्य पुराणों में क्रम, जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्करादि द्वीपों की तालिका दी गयी है। मत्स्य पुराण में जम्बू, शक, कुश, क्रौंच, शाल्मली, गोमेद (प्लक्ष) और पुष्कर सात द्वीपो का उल्लेख किया गया है।

क्षीरसागर को क्षीरोद भी कहते हैं। वर्तमान उत्तर अतलान्तिक महासागर के पश्चिमीय भाग तथा आर्कटिक समुद्र को कुछ विद्वान् क्षीर सागर कहते हैं। विद्वान् वडेर क्षीर सागर को कैस्पियन सागर तथा विल्फर्ड उसे जर्मन समुद्र कहते हैं। क्षीर अर्थात् दूध का रंग उज्ज्वल होता है। उत्तर आर्कटिक सागर तुषार पात के कारण श्वेत रूप धारण कर लेता है। कास्पियन सागर भी शिशिर ऋतु में जमकर श्वेत रूप हो जाता है। यह बात भारतीय महासागर तथा उससे सम्बन्धित सागर एवं अरब सागर के सम्बन्ध में लागू नहीं होती। उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध में होने के कारण वे कभी जमते नहीं। कैस्पियन सागर तथा आर्कटिक सागर दूध की तरह जमकर श्वेत रूप शिशिर ऋतु में धारण कर लेते हैं। मालूम होता है कि यहा क्षीर सागर नाम कैस्पियन सागर के लिए प्रयोग किया है।

शाक द्वीप को क्षीर सागर से घिरा हुआ कहा गया है। प्रत्येक द्वीप में ७ पर्वत, ७वर्ष तथा ७ नदियों का उल्लेख किया गया है। सप्त सिन्धु, सप्त वर्ष, सप्त पर्वत, सप्त ऋषि, सप्त द्वीप, सप्त नदी, सप्तगंगा, सप्त पुरी, सप्त वासर, आदि सप्त संख्या देने की एक शैली किंवा परम्परा प्राचीन काल में चल गयी थी। सम्भव है कि सप्त के आधार पर सम्भवतः लोकप्रिय बनाने तथा स्मृति में चिरस्थायी रखने के लिए एक उपाय निकाला गया होगा।

पर्वतादि के वर्णन में द्विनाम देने की प्रथा थी। एक ही पर्वत के दो नाम होते थे। शाक द्वीप के सप्त पर्वत है यथा—(१) मेरु-उदय (पामीर), (२) जलधारा–चन्द्र (वोलगा नदी का पठार) (३) दुर्ग-शैल–नारद (कैस्पियन द्वार), (४) श्याम–दुन्दुभी (उत्तरीय पर्वतमाला), (५) अस्तगिरि–सोमक (६) आम्बिकेय–सुमन, (७) विभ्राज–केशव (जगरास पर्वत)। वायु पुराण में केशव का रम्या तथा केशरी पर्वत नाम से उल्लेख किया गया है।

शाक द्वीप के सात वर्ष है। उक्त सातों पर्वतो के नाम पर दिये गये है अथवा उन पर्वतो के मूल तथा उपत्यका में थे। : (१) उदय वर्ष (उदय पर्वत), (२) सुकुमार-शिशिर (जलधार पर्वत वोलगा नदी की उपत्यका) (३) कौमारः सुखदय (दुर्ग शैल) (४) मणि चक्र-आनन्दक (श्याम पर्वत जरफसा नदी की उपत्यका) (५) कुसुमोत्कर-असित (सोमकपर्वत) यूनानी लेखकों का कोमी दोहि प्रदेश) (६) मैनाक-क्षेमक (आम्बिकेय पर्वत) (७) विभाज-ध्रुव (विभ्राज पर्वत)।

शाक द्वीप की सप्त नदियाँ है : (१) सुकुमारि = मुनितप्ता (२) कुमारी = तप सिद्धा (३) नन्दा पावनी (४) शिविका = द्विविधा (५) इक्षु = कुहू = वक्षु = आमू दरया (६) वेणुका = अमृता (७) सुकृता= गभस्ति। महाभारत में शाक द्वीप की सात नदियां (१) सुकुमारी = (वोल्गा) (१) कुमारी (कुभा) (३) सीता (शोरदरया) (८) कावेरका (१) महानदी (हान नदी) (६) कौरव्य, (७) मणि जला (जरफसा नदी) दिया गया है। यूनानियों के सोथियन शक तथा चीनियों को यू-ये-चि० (ऋषिक) जाति पामीर (मेरु) से कास्पियन (कस्पर) सागर तक फैली थी।

स्कन्द पुराण (१:२:४०) में शकों का उल्लेख आया है। कलियुग आरम्भ में उन्हें एक लाख एक वर्ष राज्य करना लिखा है। राजा सगर ने इन्हें जीता था। इसका उल्लेख भागवत पुराण (९:८:५) में मिलता है। शक यवनों का वशिष्ठ के शरण जाने का उल्लेख पद्मपुराण (६० : २०) में किया गया है। पतंजलि ने इनका निर्देश पातंजलि सूत्र (२:४:१०) में किया है।

महाभारत में शक देश तथा शक जाति का निम्नलिखित स्थानों पर निम्नलिखित संदर्भ के साथ उल्लेख किया गया है।

'एक भारतीय जनपद और जाति। शक जाति के लोग वशिष्ठ की नन्दिनी गाय के मन से प्रकट हुए थे (आदि० १७४-३६)। भीमसेन ने पूर्व-दिग्विजय के समय शकों को परास्त किया था (सभा० ३०:१४)। नकुल ने भी इन पर विजय पायी थी (सभा० ३२ : १७)। शक देश और जाति के राजा राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर के लिए भेंट लाए थे (सभा० ५१:३०)। कलियुग में शक आदि जातियों के लोगों के राजा होने का उल्लेख मिलता है। (वन० १८८ : ३५)। शक देश के राजा के पास पाण्डवों की ओर से रण-निमन्त्रण भेजने का विचार किया गया था (उद्योग० ४:१५)। ये काम्बोज राज सुदक्षिण के साथ दुर्योधन की सेना में सम्मिलित हुए थे (उद्योग १९:२१)। शक एक भारतीय जनपद का नाम है (भी० म० ९.५१)। भगवान् श्रीकृष्ण ने शक देश पर विजय पायी थी (द्रोण० ११:१८)। सात्यकि ने बहुत से शक सैनिकों का संहार किया था (द्रोण० ११९.४५ ११९:४५, ५३)। कर्ण ने भी शक देश को जीता था (कर्ण० ८:१८)। शक पहले क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मणों के दर्शन से वंचित होने के कारण (अपने धर्म-कर्म से भ्रष्ट हो) शूद्र भाव प्राप्त किये थे। (अनु० ३३:२१)। मनु संहिता में उन्हें वृषल क्षत्रिय कहा है।

प्राचीन शकों का मूल स्थान इस समय रूस गणतन्त्र राज्य में है। रूसी इतिहासकारों ने इस पर यथेष्ट अन्वेषण किया है। उन्होंने शक जाति को दुनार अर्थात डैन्यूब नदी से त्वान्‌सान् अल्ताई के मध्य की भूमि को भारतीय शक द्वीप माना है। प्राचीन ईरानी भाषा में इसकी संज्ञा शकान वेइजा दिया गया है। इसको शास्थान तथा शीस्तान कहते है। हूणों के कारण शक जाति तथा देश विघटित हो गया था। एक मत है ओक्सस तथा जक्सस रीज नदी की उपत्यका से पामीर के मूल तक उनका निवास क्षेत्र था। वह क्षेत्र वर्तमान रूसी तुर्किस्तान चीनी तुर्किस्तान तथा मध्य एशिया है।

यूरोपीय लेखकों ने शकों को शकाई तथा चीनी लेखकों ने 'सी' लिखा है। उनके मतानुसार मूल शब्द 'शीक' अथवा 'शोक' था। चीनी लेखक उन्हें पशुपालक जाति कहते हैं। उनका मत है कि वे काशगर के समीपवर्ती भूभाग में विचरण करते थे। सन् १६४ ई० पू० ए-ची-जाति ने उन पर पूर्व दिशा से आक्रमण किया। वे उद्वासित हो गये। उनका एक भाग अफगानिस्तान के पश्चिमी खण्ड में बस गया। उस खण्ड को शीस्तान अथवा शकस्थान कहते हैं। उनका दूसरी शाखा पूर्वी ईरान में जाकर आबाद हुई। शक जाति इस प्रकार दो शाखाओं में विभाजित हो गयी थी। यह भी मत है कि एक शाखा ने तुर्किस्तान से कश्मीर में प्रवेश किया। वे कश्मीर के दक्षिण में आबाद हो गये थे।

दूसरी शाखा जो पूर्वी ईरान में आबाद हो गयी थी उसका सम्बन्ध पल्हव जाति से हुआ। वह शाखा भारतवर्ष में कालान्तर में आयी। यह शाखा भारत में खैबर पास से न आकर बोलन पास किंवा मुल्ला पास द्वारा भारत में प्रवेश की थी।

मलाया प्रायद्वीप के वनों में एक आदिम जाति रहती है। उसका नाम शकाई है। उसकी संज्ञा

शिनोर्ट भी दी गयी है। मुख्यतः परेक क्षेत्र के दक्षिण पूर्व वे मिलते हैं। अब तक यह पुमन्तू जाति है। आधुनिक काल में ईख तथा धान की खेती करने लगे हैं।

एक मत और है। श्याम अर्थात् थाईलैंड की मीकाम (मातु गंगा) नदी के तट पर बसी हुई शाक अथवा शुक जाति को शक जाति का मूलस्थान मानकर श्यामको शाक द्वीप कुछ विद्वान् मानते हैं।

इसी प्रकार बरमा देश के थेक किंवा शक जाति को शक मानने का प्रयास किया गया है। यह धारणा विष्णु पुराण वर्णित शाक वृक्ष, शक स्थान आदि से होती है। विद्वानों ने विष्णु पुराण वर्णित शाक वृक्ष को मैशक अर्थात् सागवान वृक्ष माना है। बर्मा, श्याम, कम्बोडिया तथा इण्डोनेशिया में सागवान वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। अतएव इस भूखण्ड को शकद्वीप मानने का एक प्रयास किया गया है।

शक द्वीप के साथ क्षीरोद सागर किंवा क्षीरार्णव का वर्णन मिलता है। श्याम कम्बोडिया के दक्षिण तथा मलय प्रायद्वीप के पूर्व जो समुद्रीय जल-खण्ड चीन सागर को मिलाता है उसका प्राचीन नाम केदरेन्दज अथवा करन्देन्दृज है। भाषाविद् विद्वान् केदेरेन्दज को क्षीरोद शब्द का अपभ्रंश मानते हैं। परन्तु यह मत भ्रामक है। भविष्य पुराण में क्षीरोद शब्द आया है उसी के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है।

लवणोदात्परे पारे क्षीरोदेन समावृतः।
जम्बूद्वीपात्परो यस्माच्छाकद्वीप इति स्मृतः ॥

महाभारत (६.१२:९) में क्षीरोद का उल्लेख किया गया है। इन्हीं शब्दों के उल्लेख पर श्याम तथा कम्बोडिया को शक द्वीप प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

आर्य तथा शक जाति के रूप, आकारादि में विभिन्नता नगण्य है। ई० पू० छठीं तथा पांचवी शताब्दी में यूनानी इतिहासकारों ने पारसी सम्राट् 'दारियोस' अर्थात् 'दारियस' की सेना में शकों का उल्लेख किया है। उन्होंने वर्णन किया है कि शकों के देश में लोहा तथा चांदी नहीं होता। उन धातुओं का प्रयोग वे नहीं करते थे। किन्तु स्वर्ण तथा ताम्बा का प्रयोग वे करते दिखायी देते थे। उस समय शकों में सुवर्ण तथा ताम्र दोनों धातुओं का प्रयोग देखा गया था। ई०पू० ५१३ वर्ष में दारयोस ने कृष्ण सागर के तटवर्तीय शकों पर आक्रमण किया था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में उत्तर पश्चिम भारत में तथा उसके सीमान्त पर शासन करने वाले अनेक यूनानी शासकों का शक नाम था।

ईसा पूर्व १२८ वर्ष में एक चीनी सैनिक पर्यटक चाङ्च्वान शकों के नगर वारन्तर में गया था। उसने उन्हें तम्बुओं में निवास करते देखा था। उनका जीवन निर्वाह पशु-पालन पर निर्भर था।

शक परम्परा कहती है। उक्त आक्रमण के १००० वर्ष पूर्व शकों में राजा हुए थे। उनके गणतन्त्र शासन प्रणाली प्रचलित थी। सरमात अथवा सर्वमान उनके गणतन्त्र का नाम था। शकों के सामाजिक जीवन में स्त्रियों का प्रमुख स्थान होता था। युद्ध में पति के दिवंगत होने पर वे विधवा होकर बैठती नहीं थीं। स्वयं सेना का संचालन करती थीं।

शक जाति का मुख्य भोजन मांस तथा दूध था। वे युद्ध भूमि में शत्रु का रक्त पीते थे। वे अपने शत्रु की खोपड़ी का कटोरा बनाते थे। कापालिक की तरह उसे पान तथा भिक्षा पात्र की तरह प्रयोग करते थे।

शकों की स्त्रियों में बहुपति प्रथा प्रचलित थी। शकों में बहु पत्नी प्रथा प्रचलित थी। इसका

उसका मत है कि भारत में जहाँ शक निवास करते थे यह प्रथा प्रचलित की। शकों के भारत में आबाद होने पर शक तथा भारतीयों मे परस्पर विवाह होने लगा था। दक्षिण भारत में भानजी के साथ विवाह करना शक प्रभाव ही प्रतीत होता है।

कनिंघम का मत है कि ओक्सस नदी से चलकर शक किपिन अर्थात् कपिशा में आये। वहाँ से वे देश के अनेक भागों मे और मिश्र में फैल गये। (कनिंघम = क्वाइन्स आफ इण्डोसीथियन ४ : २२९) इसका समर्थन हिरोडोट्स के लेखों से भी होता है। पाण्डवों की तरह अनेक भाइयों की एक पत्नी द्रौपदी तुल्य होती थी। यूथ विवाह अर्थात् स्त्री, पुरुषों के एक वृन्द किवा समूह का विवाह दूसरे वृन्द किंवा समूह अथवा यूथ से हो जाता था। जाति के नेता अथवा राजा की मृत्यु होने पर, उसकी एक पत्नी उसके साथ कब्र में जीवित गाड़ दी जाती थी। भारत में पति के साथ मरने की प्रथा दूसरे प्रकार की थी। राजा की अनेक रानियों में ज्येष्ठा, उसके अभाव में अन्य रानी पति के साथ सती होती थी। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठा रानी युधिष्ठिर की माता कुन्ती नहीं सती हुई। नकुल तथा सहदेव की माता माद्री अर्थात् कनिष्ठा रानी पति पाण्डु के साथ सती हुई थी। नेपाल मे राणाओं तथा राजाओं के साथ एक स्त्री के सती होने का उल्लेख उन्नीसवीं तथा बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण तक मिलता है। उदयपुर मे दिवंगत राणाओं की छतरियाँ बनी है। सती प्रथा के काल तक रानियाँ सती होती थी। छतरियों में एकलिंग के समान मूर्तियाँ स्थापित है। उसके समीप ही दूसरी प्रतिमा एक चौखूंटा लिंगाकार शिला की होती है। उस-पर राणाओं के साथ जितनी रानियाँ सती होती थीं उतनी स्त्री प्रतिमा उत्खनित कर दी गयी है। इससे पता चलता है। किस राणा के साथ कितनी रानियाँ सती हुई थी।

आर्यों में श्राद्ध प्रथा प्रचलित थी। महापात्र को दिवंगत आत्मा की शान्ति तथा सुख के लिए एका-दशाह के दिन दिवंगत द्वारा प्रयुक्त वस्तुएँ तथा प्रसाधन, धन, वाहन सभी कुछ दिया जाता था। मुझे स्मरण है कि हमारे पिता के नाना श्री हरनारायणसिंह काशी में मरे। मैं छोटा था। वे अफीम खाते थे। महा-पात्र की विदाई के दिन उसे अफीम खिलाया गया था।

शकों मे यह प्रथा कुछ दूसरे प्रकार से प्रचलित थी। कब्रों में दिवंगत आत्मा की प्रिय तथा उपयोग की सब सामग्री उसके शव के साथ गाड़ देते थे। शकों की यह प्रथा मिश्र के फरोहा अर्थात् फरमून लोगों में कुछ भिन्नता के साथ प्रचलित थी। फरोहा के पिरामिडों में उनके शव के साथ जीवनोपयोगी अथवा दिवंगत आत्मा की सभी प्रिय वस्तुओं को एकत्रित कर दिया जाता था। मिश्र के राजा आजीवन अपने कब्र में रखने योग्य सामानों का संचय करते रहते थे। इस प्रकार की कब्रें काकेशस के उत्तर में प्राप्त हुई हैं। अनुमान किया जाता है। भारतीय उत्तर-पश्चिम सीमावर्ती पर्वतीय खश जाति शक जाति की एक शाखा से सम्बन्धित थी। उनकी कब्रें लद्दाख से कमायूँ जिलों तक पाई गयी है। उनमें जीवनोपयोगी अर्थात् खान-पान तथा अन्य सामग्रियाँ गडी मिली है।

शकों में मृतकों को समाधि देने अथवा गाड़ने के साथ ही शव शव को वृक्षों पर टांग देने की भी प्रथा थी। पक्षियों के मांसादि खा जाने पर जब केवल अस्थि पंजर शेष रह जाता था तो अस्थि चयन किया जाता था। अस्थियों को एकत्रित कर तत्कालीन संस्कार विधि के साथ उन्हें गाड़ देते थे। हिन्दुओं में यह प्रथा भिन्न प्रकार से प्रचलित है। दाह करने के पश्चात् अस्थियों का चयन किया जाता है। यदि नदी समीप हुई तो उसका प्रवाह किया जाता है। अन्यथा उन्हें ताम्र अथवा मृत्तिका पात्र में प्रवाह के लिए रख देते है। प्रवाह न करने के अभाव में उन्हें गाड़ दिया जाता है।

पारसी लोग शव का संस्कार इसी प्रकार करते हैं यद्यपि इसमें कुछ सुधार हो गया है। पारसी

शव को रख देते हैं। पक्षियाँ मांसादि खा जाती हैं। शेष अस्थि का चयन किया जाता है। उन्हें गाड़ अथवा कूप में डाल दिया जाता है। पारसी जाति ईरान निवासी थी। पह्लव गण तुर्किस्तान से ईरान तक फैले थे। शकों की यह प्रथा पारसियों में उनके सम्पर्क से आयी थी अथवा शकों ने ही पारसियों की प्रथा को स्वीकार किया था। पड़ोसी जाति होने के कारण एक दूसरे पर सामाजिक, धार्मिक आदि रीतियों का पड़ना स्वाभाविक था।

महाभारत में उल्लेख मिलता है। पाण्डवों ने अपना अस्त्र-शस्त्र एक वृक्ष पर रखा था। शस्त्र की रक्षा निमित्त उसी पर एक शव भी टाग दिया गया था। लोग अस्त्र-शस्त्र का पता न पा सकें। समझें कि, शव संस्कार निमित्त वृक्ष पर रखा गया था। यदि यह प्रथा किसी अंश में किसी जाति में प्रचलित न होती तो वृक्ष पर शव टाँगने में कोई हेतु दिखाई नहीं पड़ता। इससे प्रकट होता है। यह प्रथा आर्यों, पारसियों तथा शकों में किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

हिन्दू आर्यों के समान स्त्रियाँ पति के शव के साथ सती होती थी। यह प्रथा रूस में स्लावियों के ईसाई होने के पूर्व तक प्रचलित थी।

शक लोक दाहक्रिया भी करते थे। उनमें गाड़ने, जलाने तथा पक्षियों को खिलाने की तीनों प्रथाएँ प्रचलित थी। आर्यों में प्रचलित चौथी प्रथा जल समाधि भी उनमें प्रचलित थी या नहीं कहना कठिन है।

शकों की नाक लम्बी होती थी। उनके बाल भूरे होते थे। शक नारियाँ रूपवती होती थी। प्राचीन भारतीय शरीर वैज्ञानिकों ने शक नारियों के सुन्दर होने का कारण उनका प्याज खाना लिखा है। वागभट्ट के 'अष्टाग हृदय' में उल्लेख मिलता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में शकों के चित्रांकन सम्बन्ध में कहा गया है कि उनका रंग श्वेत चित्रित करना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि शक लोग मध्य एशिया के लोगों के समान उज्ज्वल वर्ण होते थे।

अल्ताई स्थित शकों के सम्बन्ध में रूस पुरातत्त्ववेत्ताओं ने खोज तथा खनन कार्य किया है। पाजीरिक घाटी में एक पुरुष तथा स्त्री का मसाला से सुरक्षित शव प्राप्त हुआ है। पुरुष की छाती तथा कन्धों पर गुदना गुदा है। पुरुष का रंग श्याम तथा स्त्री का गौर वर्ण था। शक यदि आर्यों की शाखा थे तो उनके वर्ण तथा रूप में परिवर्तन किस प्रकार आ गया? शव के रूप वर्णन से यह शंका उठ सकती है। कारण सरल है। बोधगम्य है। शकों के निवास-स्थान के पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वीय दिशा में मंगोल जाति रहती थी। उनमें उनका सम्पर्क होना सम्भव था। विवाहादि परस्पर होना असम्भव नहीं था अतएव आर्य रंग रूप में सम मिश्रण के कारण अन्तर पड़ जाना स्वाभाविक है। भारत में सम मिश्रण के कारण रंगरूप में अन्तर अधिक हो गया है। आज कहना कठिन है। किसका मूल पुरुष कौन था। जाति क्या थी।

महाभारत में शकद्वीप के लोगों का वर्ण श्याम कहा गया है। यह वर्णन चीनी लेखकों तथा प्राप्त शव के श्याम वर्ण से मिलता है। श्याम वर्ण का अर्थ सर्वथा काला रंग से नहीं लगाना चाहिए। (महाभारत में उल्लेख मिलता है।)

उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः।
यतः श्यामत्वमापन्ना. प्रजा जनपदेश्वर ॥ ६ : ११ : १९

उत्तर के लोगों का वर्ण चीनी लेखकों के अनुसार श्याम मालूम होता है। चीनियों ने उत्तर के रहने वाले शकों के क्षेत्र का नाम एतदर्थ श्याम रख दिया था। आज भी श्याम 'चगलर' तथा श्याम 'उग्रि-

पन' का अर्थ उत्तरीय तथा उत्तरी 'उग्रियन' जाति के लिए प्रयुक्त होता है। महाभारत में (६ : ११ : २६) में शक के लिए श्याम शब्द का प्रयोग किया गया है।

महाभारत में शकों के धर्म के विषय में उल्लेख है। महाभारत (६ : १२ : २६) से प्रकट होता है कि शंकर की पूजा शकद्वीप में होती थी। महाभारत में शंकर शब्द भास्कर के लिए प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ सूर्य होता है। शकों में सूर्य पूजा प्रचलित थी। स्लेव जाति में सूर्य महादेव माना जाता था। इसकी पूजा में लालरोटी मक्खन के साथ अर्थात् पूड़ी खाते थे। यही कारण है कि साम्ब को शक द्वीप से सूर्य पूजक लाने को कहा गया था।

सिकन्दर के अभियान काल में यूनानी लेखकों ने शकों का चरित्र चित्रण किया है। तथा स्वरूप दिया है। वह शकों के आचरण एवं रूप से मिलता है। उनकी आँखें नीली होती थी। उनका बाल लाल होता था। वे खाल पहनते थे। कच्चा मांस खाते थे। मनुष्य का रक्त पीते थे। खेमे में निवास करते थे। अत्यन्त शक्तिशाली थे। संख्या में बहुत थे। भगवान की आपदा तुल्य थे।

शव समाधि स्थान में नमदा पर समृद्धि देवी का रंगीन चित्र बना है। उसके करकमलों में जीवन वृक्ष है। उसके सम्मुख श्यामरंग अश्व पर घुंघराले केशों वाला युवक अश्वारोही है। नमदा के समीप मखमल की एक कालीन मिली है। इस पर अश्वरोही, सिंह, हिरन, श्येन अर्थात् बाज पक्षी तथा अन्य विचित्र पशुओं के चित्र बने हैं। अश्वरोही का रूप प्राचीन ईरानी राजाओं के वेशभूषा तथा रूप से मिलता है। ईरानी राजाओं की मुद्राओं, चित्रों आदि पर अंकित वेशभूषा के तुल्य है। यह काल ईसा पूर्व ४०० या ५०० वर्ष माना जाता है।

यहीं पर एक चीनी का बना दर्पण मिला है। शव समाधि स्थान के पार्श्व में १४ अश्व अपनी पूर्ण रण सज्जा के साथ समाधिस्थ मिले हैं। अश्वों पर जीन है। जीन की लकड़ी पर नक्काशी की गयी है। उस पर सुवर्ण पत्तर लगे हैं। घोड़ों के लबादे तथा चीनी रेशम द्वारा निर्मित ओहार अर्थात् चादर भी मिला है। यह शव लेनिनग्राड के एमीताज संग्रहालय में रखा है। इससे स्पष्ट है। मिश्र तुल्य शक भी मृतक के साथ उसके उपयोग तथा काम की वस्तुएँ गाड़ देते थे।

मससित (महाशक), सकरौका (शकयान), दाहे, खस, कुल्न, पूची, शक जातियों की मुख्य आबादियों का उल्लेख रूसी विद्वानों ने किया है। खश को गिलगित त्रिताल में कसकर, कश्मीर में खस, काशगर में खशगिर तथा कश्मीर तथा नैपाल के मध्य खश कहते हैं।

हूणों द्वारा उद्वासित किये जाने पर शक दक्षिण की ओर चले। आमू अर्थात् वक्षु उपत्यका होते हुए, उन्होंने पार्थिया (पल्हव) तथा बैक्ट्रिया (वाल्हीक) पर आक्रमण किया। शक उन्हें पराजित कर आगे बढते गये। भारत की सीमा बोलन दर्रा तक पहुँच गये। किपिन अर्थात् पंजाब तथा कश्मीर के भागों पर जिसे प्राचीन गान्धार कहा जा सकता है। शकों ने अधिकार कर लिया। कालान्तर में वे तक्षशिला तथा मथुरा में अपनी सत्ता स्थापित करने में समर्थ हुए। एक मत है। भारत में शक ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी में आबाद हो गये थे। चाहे उनकी संख्या कम ही क्यों न रही हो। उनकी यह आबादी धुर उत्तर पश्चिम भारत अर्थात् अफगानिस्तान, सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश पश्चिमी उत्तरी पश्चिम पाकिस्तानी पंजाब तथा दक्षिणी कश्मीर था। प्टोलेमी का उल्लेख है कि शक कश्मीर के वालतिस्तान तक फैले थे। एक मत है कि कश्मीर मार्ग से वे ईसा पूर्व ५७ वर्ष में तथा पूर्वी ईरान से प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व

भारत मे आये थे। शकों का भारत मे विस्तार यूनानियों को हटाकर हुआ था। जहा यूनानी थे वहाँ शकों का प्रभुत्व हो गया। प्रारम्भिक शक यूनानी भाषा भी बोलते थे। वे वाह्लीक भाषा अधिक बोलते थे। वह ईरानी भाषा की एक शाखा थी। कालान्तर मे उन्होने संस्कृत भाषा को अपना लिया। उनकी वही एक प्रकार से राजभाषा हो गयी थी। भारतीय प्रभाव काशगर तक फैल गया था। शक मध्य एशिया को एक मन से कहते थे। विष्णु पुराण शकों के भारतीयकरण के विषय मे प्रकाश डालता है (२ : ४ : ६९) निस्सन्देह शक विदेशी सभ्यता और संस्कृति भारत मे लाये थे। भारतीय तथा शक दोनों सभ्यताएँ एवं संस्कृतियों ने एक दूसरे को प्रभावित किया था।

शकों की एक शाखा ने महाराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा मालवा पर अधिकार कर लिया। शकजातीय राज्यपालों को क्षत्रप नाम से सम्बोधित किया जाता था। उत्तरी तथा पश्चिमी दो प्रकार के क्षत्रपों का उल्लेख मिलता है। तक्षशिला तथा मथुरा के क्षत्रपों को उत्तरीय तथा महाराष्ट्र, उज्जैन, गुजरात, सिन्धादि के क्षत्रपों को पश्चिमीय क्षत्रप कहते थे।

तक्षशिला मे अनेक शकराजाओं के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। प्रथम शक राजा माउज अथवा कौनो था। वह पश्चिमी पंजाब का राजा था। उनकी मुद्राएँ पूर्वीय ईरान तथा काबुल उपत्यका तक मिली हैं। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। उसका राज्यकाल १३५-१८५ ई० पू० कहा जाता है। उसे राजाओं का राजा कहा गया है। कौनो का उत्तराधिकारी अजेस अथवा अजेज प्रथम था। वह शब्द पारसी शब्द अजोज का अपभ्रंश हो सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि माउज के राज्य में कश्मीर राज्य का दक्षिणी अंचल था।

सीस्तान अर्थात् शकस्थान का राजा स्पलिमेस था। दोनों राजाओं की संयुक्त मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। अजोज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अजिलिसेस राजा हुआ। उसके पश्चात् उसका पुत्र अजोज द्वितीय राजा हुआ। तक्षशिला के शक राजाओं में चार राजाओं का वृत्तान्त ज्ञात है। अनेक शक राजाओं का और पता चलता है। उनका पारस्परिक किंवा वंशानुगत सम्बन्ध क्या था, कहना कठिन है।

मथुरा का प्रथम शक राजा राजुल था। उसकी उपाधि महा क्षत्रप थी। राजुल के पश्चात् उसका पुत्र सोदस राजा हुआ। मथुरा के शिलालेख में उसे महाक्षत्रप कहा गया है। सोदस के पश्चात् उसकी बहन का पुत्र खरोस्त राजा हुआ। मथुरा के शकों में एक राजा पतिक भी हुआ है। पतिक और राजुल का क्या सम्बन्ध था अनुसन्धान का विषय है। कतिपय विद्वान् उत्तरी क्षत्रपों को पार्थियन (पल्हव) मानते हैं। किन्तु अधिक झुकाव उन्हें शक मानने की तरफ है।

मथुरा के सिंहस्तम्भ पर शकस्तान किंवा सीस्तान शब्द अंकित है। एक मत है कि सिंहस्तम्भ की कला पर ईरानियन कला का प्रभाव है। राजुल क्षत्रप तथा उसका पुत्र सोदास का समय लगभग ७२ तथा ७८ सन् ईस्वी कहा जाता है। एक मत है। स्तम्भ सोदास के अभिलेख से प्राचीन है। सौरसेनिक मथुरा क्षेत्र के निवासी थे। वात्स्यायन ने (तृतीय शताब्दी) उनकी निन्दा की है।

महाराष्ट्र के सातवाहन राजाओं को शकवंशीय क्षत्रपों ने पराजित कर शक राज्य स्थापित किया। इस वंश का प्रसिद्ध राजा नहपान था। उसका शासन काल ११९-१२४ ई० तक था। उषवदत्त उसका जामाता था। उषवदत्त को ऋषभदत्त कुछ विद्वान् मानते हैं। उषवदत्त के शिलालेखों से प्रमाणित होता है कि महाराष्ट्र, उत्तरी कोंकण, उज्जैन तथा अजमेर पर नहपान का राज्य था। नासिक अभिलेख इस पर

विशेष प्रकाश डालता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि इसी वंश ने शक संवत् ईस्वी सन् ७८ में चलाया था। सातवाहन वंशीय प्रसिद्ध राजा गौतमी पुत्र शातकर्णी ने नहपान को पराजित किया था। सातवाहन का वंश आन्ध्र चला गया। सातवाहन वंश पुनः आन्ध्र पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुआ था। पुराणों में १९ शक राजाओं का उल्लेख मिलता है।

गौतमी पुत्र सातकर्णी का काल सन् ८२-१६० के मध्य माना जाता है। उसके पश्चात् सातवाहन राज्य पतनोन्मुख हो गया। शकों में पुनः नवचेतना जागृत हुई। शकों ने नवीन प्रेरणा के साथ कदम उठाया। शक जाति 'कर्द्मक' वंश ने उज्जैन में राज्य स्थापित किया। इसी वंश के शक राजा को हराने के कारण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का नाम शकारि पड़ा था। कल्हण ने राजतरंगिणी में इसी विक्रमादित्य का उल्लेख किया है। शकारि शब्द प्रथम बार चारुदत्त जो महाकवि भास का नाटक है उसमें प्रयोग किया गया है। मृच्छकटिक नाटक में भी शकारि शब्द का उल्लेख मिलता है। नाट्य शास्त्र में म्लेच्छों के साथ शक का नाम लिया गया है।

प्रथम शक क्षत्रप उज्जैन का चश्तन था। सम्भवतः सन् ७ ई० में उसका उज्जैन के सिंहासन पर अभिषेक हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि वह सन् १३० में राज्य सिंहासन पर बैठा था। उसकी मुद्राएं खरोष्ट्री लिपि में प्राप्त हुई हैं। चश्तन ने शक संवत् का प्रयोग अपनी मुद्राओं आदि पर किया है। शक राजाओं किंवा क्षत्रपों की मुद्रायें सन् १०० से सन् ३१० ई० तक की प्राप्त हुई हैं। चश्तन के वंशज सन् २५५ ई० तक राज्य करते थे। शक की मुद्रायें अफगानिस्तान तथा उत्तर भारत में मिली हैं।

रुद्रदमन (सन् १३०-१५० ई०) उज्जैन का महाक्षत्रप था। उसने मालवा, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध का अधोभाग, उत्तरी कोंकन, मध्यभारत तथा मारवाड़ पर अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने सात-वाहन राजा पुलुमयी को दो बार परास्त किया था। भरतपुर राज्यान्तर्गत यौधेय गणतन्त्र पर विजय प्राप्त किया था। सौराष्ट्र पर रुद्रदमन का एक पार्थियन प्रतिनिधि शासन करता था। रुद्रदमन ने सिन्धु और सौवीर विजय किया था। सिन्धु नदी के दोनों तटों से कारवां मार्ग जाता था। उस मार्ग पर रुद्रदमन का नियन्त्रण था। शकों का सौराष्ट्र शक्तिशाली क्षेत्र था। सौराष्ट्र पर वे लगभग सन् ४०० ई० तक शासन करते रहे। वात्सायन (तृतीय शताब्दी १) ने सौरसेनिकों की निन्दा की है। वे मथुरा क्षेत्र के निवासी थे। इसी प्रकार गार्गी संहिता में मथुरा के शक राजाओं की निन्दा की गयी है। दमन शब्द महत्व पूर्ण है। दमन शब्द राजाओं के नाम के साथ प्रयुक्त किया गया है। जीव दमन, रुद्रदमन आदि शब्द क्षत्रपों किंवा राजाओं के नाम थे। अवस्ता एवं ईरानी भाषा में दम शब्द सर्जक अर्थात् सृजन करने वाले ईश्वर के लिये आता है। कार्दम नदी जरफशां नदी कही जाती है। रामायण में कर्दम शब्द वाल्हीक अर्थात् बलख के साथ ही प्रयुक्त किया गया है। कन्हेरी के अभिलेख में कर्दम जाति का उल्लेख है। रुद्रदमन की कन्या कर्दम वंश की कही गयी है। दम शब्द का प्रयोग नाम के साथ खूब होता रहा है। दामजद प्रथम ही जीवदमन अथवा रुद्रसिंह था। रुद्रसेन शब्द का भी उल्लेख मिलता है। संघदमन, दमसेन, यशोदमन, विजयसेन, दमजद तृतीय तथा रुद्रसेन द्वितीय, विश्वसिंह, भर्तृ दमन। नवीन शकों में रुद्रसिंह द्वितीय, तथा यशोदमन द्वितीय है। इस प्रकार यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि दम किंवा दमन अथवा दामन शब्द शक वाचक राजाओं के शब्द है। इनका मूल शब्द अवेस्ता का 'दम' शब्द है। अवेस्ता तथा पल्हवी भाषा ही शकों की एक प्राचीन भाषा थी। जिसका भारत में आने पर शकों ने त्यागकर संस्कृत भाषा स्वीकार की थी।

राजा ने सौराष्ट्र के सुदर्शन सर पर बाँध निर्माण कराया था। रुद्रदमन की एक कन्या तथा दो पुत्र

थे। कन्या का विवाह सातवाहनवंशीय राजा वशिष्ट पुत्र शातकर्णी (पुलयोमी—१ सन् १०७-१३१ ई०) के साथ हुआ था। शिलालेखो के आधार पर साधिकार कहा जा सकता है कि दूसरी शताब्दी मे गुप्त साम्राज्य का उदयकाल आरंभ होता है। इस समय उज्जैन पर शक वंश का राज्य था। उनका विस्तृत विवरण तथा क्रमानुसार राजाओ का निश्चय करना कठिन है।

सन् ३४० ई० मे रुद्रसेन तृतीय के समय शको का उत्थान होने लगा था। परन्तु गुप्त साम्राज्य के उत्थान के कारण उनकी उन्नति आकस्मिक प्रमाणित हुई। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने मालवा तथा सौराष्ट्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उदयगिरि के शिलालेख तथा हर्ष चरित्र से यह घटना सत्य प्रमाणित होती है।

शक संवत् का व्यापक प्रचार था। मुख्य कारण था। दक्षिण में शक राज्य स्थापित हो गया था। लगभग २०० वर्षो तक वहाँ शक सत्ता स्थापित रही। इस लम्बे काल मे शक राजाओं ने शक संवत् का प्रयोग आरम्भ किया था।

प्राचीन तथा मध्ययुग मे काशी तथा उज्जैन ज्योतिष के मुख्य केन्द्र थे। पंचांग तथा पत्रा यहीं तैयार होता था। उनका प्रचार समस्त भारत में होता था। उत्तर भारत में शक संवत् शक राज्य सत्ता के अभाव के कारण प्रचलित न हो सका। किन्तु दक्षिण तथा मध्यभारत मे शकराज्य तथा उसका प्रभाव के कारण शक संवत् पूर्णतया प्रचलित था। प्राचीन विक्रमीय संवत् का प्रचलन कम हो गया था।

पुराणो के काल तथा उनकी मान्यता के विवाद मे न केवल यह कहना अलम् होगा कि पुराणो में शक जाति, उनके आचरण, व्यवहार तथा व्यवस्था का विशद वर्णन मिलता है।

भविष्य पुराण मे शको को चार वर्णो मे विभाजित किया गया है।

तत्र पुण्या जनपदाश्चतुर्वर्णसमन्विताः।
मगाश्च मगगाश्चैव गानगा मन्दगास्तथा॥
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मगगाः क्षत्रियाः स्मृताः।
वैश्यास्तु गानगा ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः॥

भविष्य पुराण १ : १३९

ब्रह्म पुराण में शकद्वीप निवासियो को चार वर्णो मे विभाजित किया गया है :

मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मगधाः क्षत्रियास्तु ते।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगाः॥
शाकद्वीपे स्थितै विष्णु सर्परूपधरो हरिः।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक् कर्मभिर्नियतात्मभिः॥

ब्रह्म पुराण २० : ७१-७३

शाकद्वीप के ब्राह्मण — मग थे। क्षत्रिय — मगगा थे। वैश्य — मगा तथा शूद्र — मन्दगा थे।

मग शब्द ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त किया गया है। शाकद्वीप के ब्राह्मण किसी समय बहुत उत्तम कहे गये थे। उत्तर प्रदेश तथा अन्य स्थानो पर शाकद्वीपी ब्राह्मणो को काफी आबादी है। उन्हे शाकलदीपी ब्राह्मण कहते हैं।

भारत में शाकद्वीपी ब्राह्मण भगवान श्री कृष्ण के यशस्वी पुत्र श्री साम्ब द्वारा सूर्य पूजा निमित्त बुलाए गये थे। इसका उल्लेख साम्ब पुराण में मिलता है। एक मत है कि मग शकों के पुरोहित थे। ब्राह्मणों

में श्रेष्ठ थे। मग ब्राह्मण दक्षिण भारत तक पहुँच गये थे। कूर्म पुराण (४८:३६) तथा महाभारत (६:२) के अनुसार शकद्वीप के ब्राह्मण मग कहे जाते थे। सदुक्ति कर्णामृत (सन् १२०१ ई०) छह मग ब्राह्मण कवियों का उल्लेख किया गया है।

साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयायास तत्त्ववित्।
उदयाचले च संश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे॥
मध्ये कालप्रियं देवं मध्याह्ने स्थाप्य चोत्तमम्।
मूलस्थानं ततः पश्चाद् अस्तमानाचले रविम्॥
स्थाप्य त्रिमूर्ति साम्बस्तु प्रातर्मध्यापराह्निकम्॥

—साम्ब पुराण २०:३०-३१

कथा है कि साम्ब ने चन्द्रभागा अर्थात् चेनाव के तट पर एक सूर्य मन्दिर स्थापित किया था। नदी के तट पर उनका आश्रम था। मन्दिर बनकर तैयार हो गया। साम्ब ने भगवान् नारद से मन्दिर के पुरोहित किंवा पुजारी के विषय में सलाह ली। किसे पूजा का भार सौंपा जाय। नारद ने कहा। जम्बूद्वीप के ब्राह्मणों में श्रेष्ठता पूर्व जैसी नहीं रह गयी है। शकद्वीप से पूजा निमित्त ब्राह्मण बुलाए जाएं।

गर्हितं मानवं शास्त्रं प्रशंसन्ति ते द्विजा.।

साम्ब पुराण २६:२०

न योग्यं परिचर्यायां जम्बूद्वीपे यमानथ।
मम पूजाकर गत्वा शाकद्वीपादिहानय॥

—भविष्य पुराण १.१३९

नीलमत पुराण में शक जाति का उल्लेख मिलता है। कश्मीर निवासी शक जाति से परिचित थे। यथा :

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डुरशकान् खसान्।
तङ्गणान् माण्डवान् मद्रानन्तर्गिरिबहिर्गिरीन्॥ ८० = २२२—२२१

× × ×

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डुरशकाः खसाः।
तङ्गणा माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिबहिर्गिरिः॥ १३९ – १८२

× × ×

इतिहासज्ञ तर्न का सुझाव है कि कुछ समय तक कश्मीर के दक्षिणी भाग पर देमिट्रियस राज्य करता था। (तर्न : ग्रीक्स इन वेक्ट्रिया एण्ड इण्डिया: १५५) मिनान्दर अर्थात् मिलिन्द के विषय में भी कतिपय विद्वानों ने उल्लेख किया है कि कश्मीर मिलिन्द के राज्य में था। मिलिन्दपन्ह का संवाद राजा मिलिन्द तथा नागार्जुन में केवल कश्मीर से बीस योजन दूर पर हुआ था। कश्मीर के इतिहास के ग्रीक तथा मिलिन्द के कश्मीर भूमि के राज्य करने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। प्रसिद्ध राजा तूरमाण शक था।

असुर देश अर्थात् असीरिया के सन् ८४३ वर्ष ई० पू० के एक आलेख में 'याद' जाति का उल्लेख मिलता है। उनका पार्स जाति के साथ उल्लेख किया गया है। मग ईरानी पुरोहित वाचक शब्द मगुश का अपभ्रंश है। आगे चलकर यह शब्द अपभ्रंश होकर 'मोवज' रूप से प्रयुक्त होने लगा। मगपति अर्थात् प्रधान पुरोहित

के लिए 'मोवजन' 'मोवज' शब्द अभिहित हुआ। निष्कर्ष निकलता है। मग जाति पुराण वर्णित मग ब्राह्मण अर्थात् शाकद्वीपी ब्राह्मण है। 'मगग', जाति शाकद्वीपी क्षत्रिय है। उन्हें महाभारत में 'मेगक' कहा गया है। गानग जाति वैश्यो के निकटवर्ती जाति थी। गोग तथा मगग शब्द का पुरातन बाइबिल मे प्रयोग किया गया है। बाइबिल के गोग के देश को मगोग कहा गया है। (इजकील ३८ : २–९) बाइबिल में उन्हें आक्रामक जाति रूप मे चित्रित किया गया है। उनके सर्वनाश की भविष्यवाणी की गयी है।

अलकसुन्दर अर्थात् सिकन्दर के अभियान काल के वर्णनों में भी गोग तथा मगोग जातियो का उल्लेख मिलता है। उन्हें उत्तर-पूर्व के बारह राज्यों तथा एक दूसरे स्थान पर बाईस राज्यों में से एक राज्य माना गया है।

'गोग' तथा 'मगोग' सम्भवत हिब्रू शब्द है। उसका अर्थ सीमान्त स्थित वर्बर जाति है। उन्हें मध्ययुग में 'चित' 'मचित' कहने लगे थे। उनका पूर्व एशिया में आबाद होना माना गया है। शक को बाइबोलीन में गिमरी कहते थे। इसका अर्थ घूमन्तू जाति होता है। उन्हें कालान्तर में सीथियन अर्थात् शक कहा जाने लगा था।

पाणिनि काल अर्थात् पाँचवी अथवा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व चीन ईरान आदि देशों की ओर से शकों पर आक्रमण होने लगे। आक्रमणों द्वारा त्रस्त होकर रक्षा निमित्त शक भारत की ओर बढ़े।

ईरान मे शक जाति एचमोनियन साम्राज्य स्थापन के समय ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। यूनानी लेखकों ने स्काइथ, शक किंवा शाह शब्द का प्रयोग इन घूमन्तू जातियों के लिए किया है। वे चीन की सीमान्त जातियाँ थी।

हिरोडोटस (४८४–४३१ वर्ष ईसा पूर्व) ने शकों की मुख्य शाखा को राजकीय शक कहा है। वे गिरोम के दूसरी तरफ पूर्व और अजोव सागर तथा क्रीमिया के दक्षिण बसे हुए थे। हिरोडोटस के अनुसार राजकीय शब्द तीन मुख्य वर्गों में विभक्त थे। उनके राजा स्कोपसिस इदन्थ्राइसस और तक्षासिस थे। हिरोडोटस ने शकों में चार वर्ण अथवा वर्ग का वर्णन किया है। मगग राजकीय शक थे। उनके अतिरिक्त और का उल्लेख किया है। गाणग उनमें कृषक थे। मण्डोस शूद्र अर्थात् दास थे। भारतीय पुराणों तथा महाभारत में वर्णित शकों के चार वर्ण इस प्रकार हिरोडोटस के वर्णन से मिल जाते हैं। अर्थात् मग ब्राह्मण थे। राजकीय शकों में क्षत्रिय, कृषक, शिल्पी, वैश्य तथा शूद्र थे।

लगभग सन् १२० ईसा पूर्व सरमेटिन जाति ने शकों को पराजित किया था। यह जाति ईरानी थी। शकों से उनकी वेशभूषा तथा भाषा मिलती थी। इस जाति के लोग चतुर अश्वारोही थे। उनके अश्वों की जीन में धातु के पदाधान अर्थात् रकाब थे। अश्वारोही आक्रामक रण कौशल तथा चातुरी के कारण शकों पर हावी हो गये थे। उनकी स्त्रियों का स्थान घर तथा कुटुम्ब के साथ ही साथ युद्धस्थल भी था। सेमरियन जाति की कन्या का विवाह तब तक नहीं हो सकता था, जब तक कि वह अपने किसी शत्रु की हत्या नहीं करती थी। सम्भव है कि इसी जाति की स्त्रियों की शक्ति के कारण स्त्री राज्य अथवा अमजोन्स की कल्पना की गयी थी। कल्हण ने राजतरंगिणी में राजा ललितादित्य के दिग्विजय के प्रसंग में स्त्रीराज्य का वर्णन किया है।

ईसी-अयचल में इसी प्रकार के स्त्री सैनिक की एक समाधि मिली है। यह स्थान निफालेस से १० मील दूर होगा। जहाँ तक उनके शस्त्र तथा वेशभूषा का सम्बन्ध है कुषाण जाति से मिलता है। उन्होंने रणनीति में एक प्रकार से आमूल परिवर्तन किया था। धनुष के स्थान पर बर्छा, लम्बी कृपाण तथा चक्र

तुल्य आयुध वाण धारी थे। इस प्रकार के शस्त्र भारत में कनिष्क तथा विमकद फिसेस की मूर्तियों पर बने मिलते हैं। अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय कुशान, यू-ची, यू-शून-अलन तथा सरमेतीयास एक ही ईरानी जाति थी। कालान्तर में स्थान भेद के कारण उन्हें अन्य संज्ञाएँ दे दी गयी थी। यू ची शक जाति का एक नाम था। शक जाति प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व में कान्दास प्रदेश तथा कीमिया के मध्य में घूमती रहती थी। शकों की राजकीय समाधि जिसे स्थानीय भाषा में कुरगन कहते हैं पजिरिक कतन्द, शैव, साइबेरिया के करतोल से लेकर मैंकोप, कलरमिस, कुव ओब, सेमी ब्रत्तनी प्रन्सकाकेशिया, दारतोम्लाहक मलशनोव वोरोनेज आदि रूस तक एक सूत्र में मिलती हैं।

प्टालेमी मध्य एशिया के सिनीरिया को सीथिया कहता है। उन्हें अश्वभोजी मानता है। (हयमेध-अश्वमेध)। शक जाति सरल स्वभाव की थी। उनके जीवनोपयोगी सामान हलके होते थे। वे चतुर अश्वारोही होते थे। उनका निशाना अचूक बैठता था। वे विलक्षण आक्रामक होते थे।

अलकसुन्दर (सिकन्दर) ने उत्तरी शको पर डैन्यूब नदी पार कर आक्रमण किया था। अपना ससस्त्र अभियान सीर दरिया पर एक दुर्ग बनाकर समाप्त किया था।

निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। गोग तथा मगाग जाति का आक्रमण रोकने के लिये उसने लोहे तथा पीतल का द्वार निर्माण कराया था। सिकन्दर की यह योजना उसी प्रकार विदेशी आक्रमण रोकने की थी जिस प्रकार चीन ने अपनी विशाल दीवाल का निर्माण विदेशी आक्रमण को रोकने के लिए किया था। भविष्य पुराण वर्णित गणग तथा गग शब्दों का इन्हीं गोग तथा मगाग जातियों के लिए प्रयोग किया गया है।

शकद्वीप के तीन जातियों मग अथवा मक, मगग अर्थात् महाभारत के मशक, गणग अर्थात् भारतीय गणक का वर्णन किया जा चुका है। शकों की चौथी जाति मंदग है। इसे ननदक, मदक, मनक कहते हैं। यह ईरानी जाति 'मद' है। बेबलोन के अतिरिक्त अन्य मध्य एशिया के साहित्य में इसे मंड नाम की संज्ञा दी गयी है। हिताइत संहिता धारा ५४ में 'उमान मण्ड' शब्द का उल्लेख आया है। उरमियाह झील के दक्षिण-पूर्व के भूखण्ड को 'मन' कहते थे। इसी मूल शब्द से किंवा अपभ्रंश रूप यूनानी शब्द मानिपेनी किंवा मीर्त्तनी है।

'मद' अथवा 'मीड्स' जाति को सीरिया किंवा असीरिया (असुर) के लोगों ने महान् शक्तिशाली, पूर्वीय दूर देशीय जाति कहा है। कालान्तर में हमदान, निहवन्द, इस्फहान, राय तथा अजरबैजान भूखण्डों का नाम मीड्स देश और साम्राज्य का नाम मीडियन साम्राज्य पड़ गया।

भारतीय पुरा साहित्य में शकद्वीप के चार वर्णों का वर्णन किया गया है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। उक्त उदाहरणों से प्रमाणित हुआ है। वे शक जाति की और उपजातिया थी।

मार्कोपोलो ने शीर वान (क्षीरवान) का उल्लेख किया है। आधुनिक अन्वेषणों से सिद्ध होता है कि शीरवान शब्द कास्पियन सी अर्थात् कश्यप सागर के लिए प्रयुक्त किया गया है। मुस्लिम भौगोलिक विद्वान् हुद्द-अल-आलमे ने कैस्पियन सागर के पश्चिमीय तटीय क्षेत्र का नाम शीरवान दिया है।

हमदुल्लाह कम विनी कहता है। कुरु से देमन्द का भूभाग शीरवान में सम्मिलित था। इस्तखरी कहता है—वर्ध से सड़क शीरवान तथा शमाखिया से देलन्द जाती है। कुर्दिस्तान की एक नदी का नाम शीरवान है। ईरान की एक नदी का नाम शीरोन है। वह बज़रंग पहाड़ी से निकल कर कुश रूक जिला

में अर्टजन के दक्षिण-पूर्व बहती है। रूस में एक नदी का नाम मोलोच्च है। मोलोनो इसी भाषा में दूध को कहते हैं। पूर्व मुस्लिम काल में यहा के राजाओ की उपाधि शोरखान शाह थी।

सोलहवी शताब्दी के पूर्व वक्षु अर्थात् आमू दरया कैस्पियन सागर में मिलती थी। प्राकृतिक कारणों से धारा बदल गयी। इस समय वह अरल सागर में गिरती है। कैस्पियन सागर तथा अरल सागर पूर्व काल में मिले थे। इस समय दोनों सागरो के बीच विस्तृत भूखण्ड है। कैस्पियन सागर का वर्तमान रूप पूर्व रूप से भिन्न है। कैस्पियन सागर शताब्दियों पहले पूर्व दिशा में बहुत दूर तक फैला था। आज वहां सूखा भूभाग है। उत्तर में इसी प्रकार बहुत दूर तक चला गया था। अरल सागर कैस्पियन सागर का एक भाग है। कैस्पियन सागर तथा अरल सागर के मध्य का भूखण्ड कैस्पियन सागर में जलमग्न था। अतएव आमू (वक्षु) तथा सीर दरया दोनों कैस्पियन सागर में मिलती थी।

अरसीद तथा सस्सनीट काल में आर्यो तथा पारसियों का गाथाकालीन मूलस्थान आमू तथा सीर दरया के अन्तर्वेदी (दोआब) में था। उसे स्वर्णयुग का देश कहते थे। कालान्तर में जैसा वेन्दीदद से प्रतीत होता है यम शीत तथा प्राकृतिक उपद्रवो से बचने और आबादी अधिक होने के कारण दक्षिण दिशा की ओर जनता को ले गया। यह स्थान आर्यो के पूर्व उस समय था। आर्यो का ज्ञातव्य जगत् कहा जाता था।

आर्यो के देश त्याग देने पर अनार्य जातिया वहा बस गयी। तूर्य शब्द अनार्य जातियों के लिए अभिहित किया गया है। अतएव पारसी ग्रन्थो में शको का उल्लेख होना अनिवार्य प्रतीत होता है। उसका कारण है। शको द्वारा आबाद भूभाग के साथ पारसी जाति के धर्म तथा इतिहास का निकट सम्बन्ध हो जाता है। पारसियों के ग्रन्थो में आर्य, तूर्य, क्षरिय, सैन तथा दाह जाति का उल्लेख मिलता है। पश्चिमीय विद्वानों का मत है तूर्य तथा सरीमा शब्द शको के लिए आया है। ईरानी गाथा पुस्तकों में सरीमा, तूर्य तथा आर्य थ्रीतोना के तीन पुत्र कहे गये हैं। कालान्तर मे थ्रीतोना का रूप अखमीनियन काल में यह क्षेत्र शक तथा शकतिग्रखौदा जातियो द्वारा आबाद था। कुछ समय पश्चात् शको ने इस क्षेत्र को त्याग दिया। सीस्तान में चरभूमि तथा कालक्षेत्र की सुविधाओ के कारण आकर बस गये। एक मत है कि पामीर के गलचा तथा बालती जाति पूर्वकालीन शक वशज है। यह दोनो जातिया इस समय पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर में है। उनका नाम फरीदून शब्द में बदल गया है। उस समय आर्य, तूर्य, तुर्क तथा सरिय एक ही थे। फिरदौसी की गाथा मे फरीदून के पुत्रो का नाम सम, जल, तथा रुदवाह मिलता है। कालान्तर में तूर्य सज्ञा शक जाति के लिए दी जाने लगी। तोखरि, कुशान, खिपोनाइत, सकरौताह, तथा तुर्क जाति की मूल जाति तूर्य है।

ऋग्वेद में तुर्वसु का उल्लेख है। भागवत पुराण के अनुसार जनमेजय के पुरोहित तुर्कविशेष तुर्वसु जाति के वंशज थे। म्लेच्छ तथा यवन तुर्वसु की सन्तान माने जाते हैं। (वायु पुराण ९९ : ३; भागवत १० : २२, २५, २७)

त्वर शब्द का अर्थ शीघ्रगामी अथवा जल्दी होता है। तुर्ग शब्द अश्व का भी वाचक है। तुर्य अथवा शक लोग अश्वारोही थे। शीघ्रगामी थे। तुर्य शब्द वैदिक शब्द तुर्वसु अथवा त्वर का अपभ्रंश हो सकता है।

फिरदौसी तूरान क्षेत्र को तूर, तुर्क तथा चीनियो का निवास स्थान मानता है। आमू दरया को

तूरान तथा ईरान की मध्यवर्ती सीमा लिखता हैं। पारसी लोग आमू दरया के पारवर्ती देश के निवासी थे। उसे मर्ज-ए-तूरान कहते थे। अरब भौगोलिक तुर्कों का मूलस्थान सीर दरया के पूर्वीय क्षेत्र को मानते हैं।

वोल्गा नदी को रूस में एक समय नहर तूरान कहते थे। वोल्गा तक का क्षेत्र रूसियों की दृष्टि में तुर्कों का निवास-स्थान था। तूरान, राजाओं की ग्रीष्मकालीन राजधानी अर्क-तप थी। इसे यूराल पर्वत कहा जाता है। तूरान देश को कैस्पियन सागर, ईरान अधित्यका, सीर दरया का उद्गम स्थान तथा उसकी पर्वतमाला, इरतिश एवं अकमोलिस्स की अधित्यका के मध्यवर्ती क्षेत्र को शकदेश मानते हैं। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि ईरानी तूर अर्थात् जिसे शक कहते थे, वे कैस्पियन सागर के चारों तरफ सीर तथा आमू दरया से लेकर कैस्पियन सागर और वलगा तथा डान नदी तक फैले थे।

प्रश्न उपस्थित होता है। उक्त नदियों का वर्तमान नाम क्या है। उन्हें कैसे पहचाना जा सकता है। यदि उक्त नदियां शकद्वीप में मिल जांय तो शकद्वीप के मानचित्र का वास्तविक पता महाभारत के अनुसार प्राप्त हो सकता है। साथ ही महाभारत वर्णित शक देश की सत्यता सिद्ध हो जाती है। शकद्वीप स्थान क्षेत्र निर्विवाद हो जाता है।

सीता नदी चीनी सीतो नदी है। उसे इस समय सीर दरया कहते हैं। इस्क, कुलसर, थटनशाह के दक्षिणी अधित्यका से निकलती है। यह पश्चिम वहती हैं।

मणिजला नदी वर्तमान जरफशा नदी है। जरफशान का अर्थ होता है जर अर्थात् सोना फैलाने वाली। वह नदी जवल अलवुत्तम पर्वतमाला से निकलती है। पर्वतमाला की ढाल पर सोना, चांदी, लोहा, ताम्बा, आदि की खानें हैं। यह नदी एक जप अथवा जलसर से निकलती है। पजीकंथ, समरकन्द, बोखारा बहती ह्वारिजम के समीप पश्चिमीय मरुभूमि के उथली दलदलीय सर में गिरती है। यह महाभारत वर्णित नदी मणिजल है। क्योंकि इसके जल में स्वर्ण, रजतादि के साथ मणि मिलते हैं। इसीलिए इसका नाम मणिजल रखना पड़ा है। इसके दक्षिण में वक्षु अथवा आमू दरया है। इस नदी की अनेक शाखा नदियां हैं। वकशाव इसकी एक शाखा नदी है। यह पामीर पर्वत से निकलती है। यह हजारों मील की यात्रा करती पूर्वकाल में कैस्पियन सागर तथा इस समय अरल सागर में गिरती है। चीनी भाषा में इसे पोत्सू तथा अलइद्रीसी इसे वकशाव कहता है। वक्षु नदी के दक्षिण सघनियन जिला है। यह वर्तमान शर-एर-अशया है। सघनियन नदी के ऊर्ध्व भाग पर यह आबाद था। यह आमू की एक शाखा नदी है। इसे नहर जमील कहते हैं। कैस्पियन सागर में पश्चिम तथा उत्तर से गिरने वाली नदियों में वोल्गा है। प्टोलमी ने 'र' नदी कहा है। ईरानियन इसे 'रन्हा' कहते है। यूनानी अरस्तू इसे 'अर्स' या 'अरस' कहते हैं। हिरो-डोटस ने इसके लिए 'अर्जेस' शब्द का प्रयोग किया है। मूल शक शब्दावली में 'अरस' या 'अर्स' का अर्थ महान् होता हैं। अरब भौगोलिक विद्वानों ने वोल्गा को 'इतिल' कहा है। वलगर जाति इसके तट पर आबाद हो गयी। अतएव इसे वोल्गा कहा जाने लगा। पश्चिमी विद्वानों का मत है। वोल्गा का अर्थ आर्य स्लेवोनिक भाषा में महान् अथवा बड़ा होता है। एक और मत है। वोल्गा शब्द संस्कृत शब्द व्रकू का अप-भ्रंश है। रूसी लोग इसे वोल्गा न कहकर वोल्का कहते हैं। 'व्रक' किंवा 'वृक' का अर्थ भेड़िया होता है। इसकी मुख्य शाखा नदी 'कम' है। अनुमान लगाया गया है। कम तथा 'र' मिलाकर इसका नाम कुमारी रखा गया था। कुमारी नदी का सप्त नदियों में उल्लेख है। शक भाषा के शब्द 'अर' का अर्थ कुमारी होता है। 'अर' का अपभ्रंश किंवा समानार्थक शब्द 'अर्स' अथवा 'अरस' है। यह वोल्गा का प्राचीन नाम कहा जाता है।

कैशियन सागर में गिरने वाली कुम एक और नदी है। सम्भवतः यह नदी कुमारी है। महाभारत में सुकुमारी तथा कुमारी नाम आता है। सभी लोग वोल्गा को क्रमविन सी पढ़ते हैं, जिसका अर्थ सुकुमारी होता है। पश्चिम से काश्यप सागर में मिलने वाली नदी 'कुर' है।

महानदी वर्तमान नदी 'डान' है। इसका ईरानी नाम दन है। दन नाम ही डोन है। 'दन' तथा 'दोन' का अर्थ जल होता है। 'दन' का अर्थ नदी है। यह विशाल नदी है। अतएव उसे महानदी की संज्ञा दी गयी है। 'अजोव' सागर में गिरती है। ईरानी घुमन्तू जातियां यथा सेमोरियन, सीथियन, सरमोनियन आदि प्राचीन काल में इस नदी की उपत्यका में रहती चली आई हैं। हिरोडोटस डान नदी को शक द्वीप की पूर्वीय सीमा मानता है।

शकद्वीप में सात वर्ष है। शकद्वीप के वर्णित सात वर्षों में सुकुमार तथा कुमार किंवा सुकुमारी तथा कुमारी अर्थात् वोल्गा तथा कुम नदी की उपत्यकाएँ हैं। मणिकांचन, मणिजला नदी की उपत्यका है। मौदाकी ऐतिहासिक मोडिया का क्षेत्र है। कुमुदोत्तर, यूनानी लेखकों का कोमोडोई प्रदेश है। यह प्रदेश आमूदरया तक विस्तृत है। 'महाकाश' किंवा 'महाकोप' 'अरवस' अर्थात् 'गोथिया' है। 'महापुरुष' शब्द लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले लोगों के लिए प्रयोग किया जाता है।

शकद्वीप का प्रारम्भिक भारतीय ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इस काल में पृथ्वी चार भागों में विभाजित की गयी थी। मौर्य तथा कुशान काल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष का बोध होने लगा। जम्बूद्वीप वृहत्तर भारतवर्ष के लिए प्रयुक्त किया जाता था। जम्बूद्वीप में उत्तर कुरु अर्थात् तरिम उपत्यका तथा तुर्किस्तान सम्मिलित था। कालान्तर में पृथ्वी सात वर्षों में विभाजित की गयी।

कर्नल टाड का मत है कि शक जाति तक्षक थी। वे असरमा अर्थात् शकद्वीप में शासन करते थे। (टाड एनाल्स एण्ड एण्टिक्वेरी आफ राजस्थान ४५) श्री वी० वी० आयर का मत है कि शक द्वीप आक्सस नदी के मूल, जक्सरटीज तथा वक्षु जलीय सिंचित क्षेत्र, और सिन्धु नदी में पानी जिन क्षेत्रों से बहकर उत्तर-पश्चिम भारत में आता है वही शक देश है।

शक तथा कुश द्वीपों का अस्तित्व भिन्न है। कुशद्वीप का उल्लेख लेखों में मिलता है। कुश अथवा कुशिया शब्द परसियन के बहुत से लेखों में मिलता है। हमदान लेख में (सम्राट् दारयुह ईसापूर्व ५२२-४८६ वर्ष) राज्य का विस्तार दिया गया है।

कुमारा क्षेत्र वक्षु तथा सीर दरया के मध्य था। कुछ विद्वान् कुशद्वीप को मध्य मिश्र और कुछ अबीसीनिया मानते हैं। मुश नाम मिश्र का था। मुश तथा कुश परसियन सम्राटों के क्षत्रपोंके क्षेत्र में वर्णित किये गये हैं। मिश्र कुशद्वीप नहीं हो सकता। कुशद्वीप का अफ्रीका के उत्तर-पश्चिम होना सम्भव प्रतीत होता है। मिश्र के परे और भारत के पश्चिमी समुद्र के ठीक पश्चिमीय छोर पर अबीसीनिया इस समय भी स्थित है। इसका कुशद्वीप होना सम्भव है।

शकद्वीप का शाब्दिक अर्थ समुद्र या नदियों से घिरा भूखण्ड है। सात द्वीपों से वसुमती अर्थात् पृथ्वी बनी है। सप्त द्वीपों में—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शक, तथा पुष्कर द्वीप हैं। शकद्वीप का नाम शाकद्वीप भी है। शक लोग शकद्वीप में रहते थे। यूनानियों ने इनका नाम सीथियन रखा है। पश्चिमी विद्वानों ने यही नाम शकों के लिए दिया है। प्राचीन पारसी लेखों में शकों के तीन निवास-स्थानों का उल्लेख मिलता है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि शक लोग ईरान के पूर्वीय भाग हेलमण्ड अंचल में रहते थे। शकों का पुराना तथा नवीन सभी स्थान सीथिया नाम से सम्बोधित होता है। पूर्वी ईरान को शकस्तान कहते थे। वर्तमान नाम सीस्तान है। मध्यकालीन समय में इसे सिजिस्तान ईरानी तथा भारतीय शकद्वीप कहते थे।

भारतवर्ष की आजादी के पश्चात् भारतीय ऐतिहासिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। नवीन अन्वेषणों अनुसन्धानों से भारतीय इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ रहा है। रूसी विद्वानों के मध्यएशिया की खोज करने, खनन कार्यों तथा प्राप्त अभिलेखों आदि के कारण भारतीय इतिहास की अनेक गुत्थियाँ जो अभी तक उलझी पड़ी है, उनके सुलझने की आशा हो गयी है। मध्यएशिया, अफगानिस्तान में अभी बहुत कुछ खोज तथा खनन कार्य करना बाकी पड़ा है। उनमें जितनी शीघ्रता से प्रगति होगी उतनी ही शीघ्रता पूर्वक भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ेगा। भारतीय संस्कृति के विकास तथा उसके इतिहास पर भी मध्य-एशिया मुख्यतः शकों के इतिहास का वास्तविक ज्ञान होने पर नवीन दृष्टि से विवेकात्मक नवीन इतिहास रचना की आशा अनेक विद्वानों को होने लगी है।

छांदोग्योपनिषद् में उद्दालक आरुणि ने सद्गुरुवाले शिष्य को अपने अंतिम लक्ष्य पर पहुँचने के उदाहरण के सम्बन्ध में गान्धार का उल्लेख किया है। शतपथ ब्राह्मण के (११ : ४ : १) तथा अनुवर्ती वाक्यों में उद्दालक आरुणि का उदीच्यों किंवा उत्तरी देश (गंधार) के निवासियों से सम्बन्ध बताया गया है।

छान्दोग्य उपनिषद् (६ : १४) में गान्धार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसका उल्लेख उपनिषद् तथा ब्राह्मण काल के पश्चात् सूत्र काल तक किया गया है। बौधायन श्रौत सूत्र में गान्धार का उल्लेख मिलता है। (२१ : १३) आपस्तम्ब श्रौत सूत्र (२२ : ६ : १८) में तथा हिरण्यकेशी श्रौत सूत्र (१७ : ६) में गान्धार का स्पष्ट उल्लेख है।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में गान्धार शब्द का उल्लेख एक जन के सम्बन्ध में किया गया है। वहाँ के निवासियों को गांधारी कहा गया है। (ऋ० १ : १२६ : १८) छान्दोग्योपनिषद् (६ : १४ : १२) तथा वैदिक साहित्य के अनुसार भारत के उत्तर-पश्चिम गान्धार एक जनपद था। राजा भाव्य अथवा भाव्य यव्य की स्त्री लोमसा ने गान्धार के वस्त्रों की बहुत प्रशंसा की है। भाव्य सिन्धु तटीय देश पर राज्य करता था। ऋग्वेद में गान्धार के भेंडों के ऊन की प्रशंसा की गयी है। (ऋग्वेद १ : १२६ : १८) अथर्ववेद में अंगों तथा मगधों के साथ मूजवन्त तक गन्धार लोगों का उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद का काल ऋग्वेद से बहुत पश्चात् का है। उस काल में भी जगत् को गान्धारों का यथेष्ठ ज्ञान था (अथर्ववेद ५ : २२ : १४)। अथर्ववेद में गंधारियों किंवा गान्धारों का उल्लेख मूजवंतो के साथ किया गया है। उनकी गणना अवमानित जातियों में की गयी है। श्रौत सूत्रों में गान्धार जनपद तथा वहाँ के निवासियों का वर्णन मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है। गान्धार निवासी कुभा अर्थात् काबुल नदी के तट, सिन्धु कुभा संगम, तथा सिन्धु के पूर्वीय तट पर कुछ दूर तक आबाद थे। कालान्तर में वे पारसी राज्य के अंग हो गये थे। पारसी राज कंबोज ने गान्धारों की सेना के साथ यूनान पर आक्रमण किया था। गान्धारराज नग्नजित का नाम वैदिक साहित्य सोम के स्थान पर अन्य वस्तु के उपयोग का मत दिया था। (शतपथ ब्राह्मण ८ : १ : ४ : १०; ऐतरेय ब्राह्मण ७ : ३४)।

शतपथ ब्राह्मण (११ : ४ : १) में उद्दालक आरुणि का उदीच्यों अथवा उत्तरी देश गंधार के निवासियों के साथ संबन्ध बताया गया है।

पुराणों में गान्धार का उल्लेख प्रचुर रूप से मिलता है। गान्धार का एक चन्द्र पौरववंशीय राजा था। उसके पिता का नाम आरद्वान किंवा अनुरुद्ध था। द्रुह्यु की चौथी पीढ़ी में हुआ था। उसने उत्तर-पश्चिम में गान्धार देश आबाद किया था। (वायु पुराण ९९ : ७ : १० तथा विष्णु पुराण ४ : १७ : १)। गान्धार के नरेश को वायु तथा मत्स्य पुराणों ने द्रुह्युवंशी बताया है। (मत्स्य ४८ : ६; वायु ९९ : ९७)

ब्रह्माण्ड पुराण के मत से गान्धार की चौथी पीढ़ी में प्रचेतस के एक शत पुत्र हुए थे। उन सबको म्लेच्छाधिप कहा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ : ७४ : ११)।

मत्स्य तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में गान्धार का उल्लेख यवन, सिन्धु, सौवीर के साथ किया गया है। मत्स्य, वायु तथा विष्णु पुराणों में वर्णन है। द्रुह्यु के वंश में एक गान्धार उत्पन्न हुए थे। द्रुह्यु राजा ययाति के पुत्र थे। उन्हीं के नाम पर गान्धार देश का नामकरण किया गया था। (मत्स्य पुराण ४८; वायु पुराण; विष्णु पुराण ४ : १७) भागवत तथा ब्रह्म पुराण के अनुसार गान्धार द्रुह्यु को चौथी पीढ़ी में हुआ था। गान्धार के चार पुत्र धर्म, धृति, दुर्गम तथा प्रचेता थे। भागवत (९-२३-१५) ब्रह्म (१३) मत्स्य पुराण के अनुसार गान्धार को केवल धर्म, विदुस तथा प्रचेता तीन ही पुत्र थे। विष्णु पुराण तथा वाराह मिहिर के

धर्म स्थान खण्डहर हो गये थे। उसके अनुसार उत्तर दिशा में गान्धार का विस्तार १००० ली पूर्व में सिन्धु नदी तक था। राजधानी पुरुषपुर अर्थात् पेशावर ४० ली के क्षेत्र में फैला था। गान्धार राजवंश का लोप हो गया। कपिशा राज्य के अन्तर्गत उसका शासन होता था। नगर तथा ग्राम उजड़ गये थे। परन्तु देश धनधान्य पूर्ण था। उपज खूब होती थी। भूमि उर्वरा थी। अनेक प्रकार के अन्न, फल तथा फूल होते थे। लोग लज्जालु तथा कोमल हृदय थे। लोगों में साहित्य के प्रति रुचि थी। कुछ ही बौद्ध धर्मानुयायी बच गये थे। शेष मूर्तिपूजक तथा धर्म भ्रष्ट हो गये थे।

पाणिनि का गान्धार प्रदेश में जन्म हुआ था। गान्धार की राजधानी पुष्कलावती किंवा पुष्करावती सिन्धु के पश्चिम तथा तक्षशिला के पूर्व की ओर थी। गान्धार पहले सिन्धु के दोनों ओर फैला था किन्तु कालान्तर में सिन्धु नदी के पश्चिम ओर ही रह गया। पुष्करावती नगर की नींव भरत के पुत्र पुष्कर ने डाली थी। (विष्णु पुराण ४ . ५)।

आठवीं तथा नवीं शताब्दी में मुसलमानों के उत्कर्ष के साथ ही साथ यह देश शनैः शनैः उनके राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव में आ गया। सन् ८७० ई० में अरब सरदार याकूब ने अफगानिस्तान पर आंशिक विजय प्राप्त की थी। अलप्तगीन तथा सुबुक्तगीन के आक्रमणों का वहाँ के हिन्दू नरेशों ने सामना किया था। सन् ९९० में लम्पक (लमगान) का दुर्ग हिन्दुओं के हाथों से निकल गया। काफिरिस्तान के अतिरिक्त समस्त अफगानिस्तान को इसलाम स्वीकार करना पड़ा।

ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में हिन्दु शाही वंशजों के हाथ में गान्धार प्रदेश का शासन-सूत्र आ गया था। सन् १०२१ ई० में सुलतान महमूद गजनी ने गान्धारराज त्रिलोचन पाल पर आक्रमण किया। राजा तोसी तट पर पराजित हो गया। गान्धार के हिन्दू धर्म तथा स्वतंत्रता दोनों का ही लोप हो गया। तत्पश्चात् केवल ५ वर्ष के लिए उसके पुत्र भीमपाल ने पुन: स्वतंत्रता प्राप्त की। परन्तु मुस्लिम शक्ति के सम्मुख गान्धार मुस्लिम धर्म तथा संस्कृति में लोप हो गया। मुस्लिम इतिहासकारों ने गान्धार की राजधानी तक्षशिला का वर्णन नहीं किया है। तक्षशिला अपना पूर्व गौरव खो चुका था। खंडहरों का ढेर मात्र रह गया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने उसका उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा।

इस वैदिक काल से अठारहवीं शताब्दी तक गान्धार भारतीय राज्य का अंग होता और निकलता रहा है। उसका इतिहास भारतीय इतिहास में गुंथा है। उसे अलग रखना कठिन है। वहां भारतीय संस्कृति फली-फूली। वहाँ से बाहर गयी। ललित कलाएँ विकसित हुईं। गान्धार का पुराना नाम, धर्मादि का लोप हो गया। उत्तर-पश्चिमीय सीमान्त प्रदेश के रूप में उसका अधिक क्षेत्र पाकिस्तान बनने के पूर्व भारत का अंग था।

तक्षशिला का वर्णन करते हुए प्लिनी लिखता है कि नगर पर्वत मूल के उस स्थान पर आबाद था, जहाँ पर्वत भूमि में मिल जाता था। नगर समतल भूमि में बसा था। वह नगर की बड़ी प्रशंसा करता है कनिंघम ने तक्षशिला में ५५ स्तूप, २८ विहार तथा ९ मन्दिरों का ध्वन्सावशेष देखा था।

नागार्जुनी कोण्डा के वीरपुरुष दत्त के अभिलेख में गान्धारका उल्लेख आया है। गान्धार में १००० से अधिक बौद्ध विहार थे। युवानच्वांग के समय में उनकी बुरी अवस्था थी। अनेक स्तूपों के शिखर गिरकर थे। लगभग १०० देव मन्दिर गान्धार में थे। पुष्करावती गान्धार की राजधानी थी। उसकी राजधानियाँ विभिन्न समयों में बदलती रही हैं। पुष्करावती किंवा पुष्कलावती तथा कभी तक्षशिला ही

जाती थी। पुष्करावती सिन्धु के पश्चिम तथा तक्षशिला के पूर्व ओर आबाद थी। अभिधर्म कोष शास्त्र एवं सुमंगल विलासिनी का रचयिता वसुबन्धु पुष्करावती का निवासी था।

गान्धार जातक में गान्धार कश्मीर का उल्लेख मिलता है। दरायुह के बेहिस्तुत अभिलेख (ईसा पूर्व पाँच सौ बाईस से चार सौ छियासी वर्ष) गान्धार का उल्लेख है। दरायुह (दारियस) के सूसा प्रासाद के भग्नावशेष के एक अभिलेख में गान्धार का उल्लेख मिला है।

जम्बूद्वीप की सीमा वर्णन में उत्तर-पश्चिम गान्धार तथा कश्मीर का उल्लेख किया गया है। सोलह जनपदों में कम्बोज तथा गान्धार को उत्तरापथ में सम्मिलित किया गया है। खुद्दक निकाय के उत्तरखण्ड चुल्ह निद्देम में गान्धार जनपद के स्थान पर योन अर्थात् यवन जनपद का उल्लेख किया गया है। मज्झिम निकाय की अट्ठ कथा तथा पपंचसूदनी में गान्धार राष्ट्र सीमान्त पर स्थित जनपद बताया गया है। यहाँ पर कश्मीर गान्धार का नाम साथ-साथ लिया गया है। (जातक भाग २ : ३६५)। अनेक विद्वानों ने इसके आधार पर कश्मीर को गान्धार के अन्तर्गत बताया है। यह अप्रमाणित है। ठीक नहीं है।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा वामन पुराणों में 'गान्धारा यवनाश्चैव' का उल्लेख मिलता है। गान्धार, यवन शब्द एक साथ प्रयुक्त किया गया। उनसे यवन देश तथा गान्धार का समीप होना प्रतीत होता है। सिन्धु अर्थात् आधुनिक सिन्ध प्रदेश सिन्धु नदी के पश्चिम तथा पूर्व में सिन्धु नदी के अधोभाग के पूर्व था। सौवीर क्षेत्र झेलम-चनाब संगम से ५० मील अधोभाग में था। भद्र देश वर्तमान सियालकोट तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र है।

कुणिन्द लोगों के विषय में ,कहा जाता है कि कुलू अंचल के आधुनिक कुलेरस हैं। प्राचीन काल में यह अंचल सहारनपुर तथा अम्बाला जिले तक विस्तृत था। इस क्षेत्र से तत्कालीन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। पारद लोग खुरासान क्षेत्र के निवासी थे। यवन अफगानिस्तान में थे। यूनानी जाति अफगानिस्तान में आबाद हो गयी थी। राज्य वहीं स्थापित कर लिया था। कुहून शब्द काबुल नदी जिसका प्राचीन नाम कुभा किंवा कुहू था उसकी उपत्यका के निवासियों के लिए आया है। 'गान्धारान् वरयान् हुन्दान्,' 'गान्धारान् औरसान् कुहून्,' 'गान्धारान् रुरसान् (औरसान्) कुह्न्' आदि उल्लेख वायु, ब्रह्माण्ड तथा मार्कण्डेय पुराणों में मिलते हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है। गान्धार कुभा अर्थात् काबुल नदी की उपत्यका तक विस्तृत था। 'शिवपौरान् इन्द्रहासान्', 'शिवपौरान् इन्द्रमरून्' का उल्लेख वायु, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराणों में मिलता है। शिव पौरान् से अर्थ शिव नगर के पौरगण से है। शिवपुर अर्थात् वर्तमान शोरकोट जिला पश्चिमी पाकिस्तान के लिए व्यवहृत किया गया है।

संम्मोह तन्त्र की तालिका (२ : ४) में गान्धार देश का उल्लेख किया गया है।'हूण कौरव गान्धार' अर्थात् हूणों के समीप देश की ओर संकेत किया गया है।

गान्धार का दूसरा नाम दिहन्दास दिया गया है। दोनों शब्द समानार्थक माने गये है। दिहन्दास वास्तव में उदभाण्डपुर प्रतीत होता है। गान्धार को कन्धार से मिलाने का प्रयास किया गया है परन्तु यह खीचातानी तर्कसम्मत नहीं मालूम होती। गान्धार की जो स्थिति तथा सीमा बतायी गयी है उससे वर्तमान कन्धार का मेल नहीं खाता। सम्भव है। गान्धार के नाम पर अफगानिस्तान के दक्षिण में गान्धार नगर बसाया गया होगा। हो सकता है गान्धार का अपभ्रंश वर्तमान कन्धार हो गया। भारत में काशी नाम के कितने ही स्थान हैं। परन्तु वाराणसी को ही काशी वास्तविक काशी राज्य रही। अन्यथा, दक्षिण काशी, उत्तर काशी अनेक स्थान काशी के नाम पर हैं।

धर्म स्थान खण्डहर हो गये थे। उसके अनुसार उत्तर दिशा में गान्धार का विस्तार १००० ली पूर्व में सिन्धु नदी तक था। राजधानी पुरुषपुर अर्थात् पेशावर ४० ली के घेरे में फैला था। गान्धार राजवंश का लोप हो गया। कपिशा राज्य के अन्तर्गत उसका शासन होता था। नगर तथा ग्राम उजड़ गये थे। परन्तु देश धनधान्य पूर्ण था। उपज खूब होती थी। भूमि उर्वरा थी। अनेक प्रकार के अन्न, फल तथा फूल होते थे। लोग लज्जालु तथा कोमल हृदय थे। लोगों में साहित्य के प्रति रुचि थी। कुछ ही बौद्ध धर्मानुयायी बच गये थे। शेष मूर्तिपूजक तथा धर्म भ्रष्ट हो गये थे।

पाणिनि का गान्धार प्रदेश में जन्म हुआ था। गान्धार की राजधानी पुष्करावती किंवा पुष्कलावती सिन्धु के पश्चिम तथा तक्षशिला के पूर्व की ओर था। गान्धार पहले सिन्धु के दोनों ओर फैला था किन्तु कालान्तर में सिन्धु नदी के पश्चिम ओर ही रह गया। पुष्करावती नगर की नींव भरत के पुत्र पुष्कर ने डाली थी। (विष्णु पुराण ४ . ५)।

आठवीं तथा नवीं शताब्दी में मुसलमानों के उत्कर्ष के साथ ही साथ यह देश शनैः शनैः उनके राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव में आ गया। सन् ८७० ई० में अरब सरदार याकूब ने अफगानिस्तान पर आंशिक विजय प्राप्त की थी। अलप्तगीन तथा सुबुक्तगीन के आक्रमणों का यहाँ के हिन्दू नरेशों ने सामना किया था। सन् ९९० में लम्पक (लमगान) का दुर्ग हिन्दुओं के हाथों से निकल गया। काफिरिस्तान के अतिरिक्त समस्त अफगानिस्तान को इसलाम स्वीकार करना पड़ा।

ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में हिन्दु शाही वंशजों के हाथ में गान्धार प्रदेश का शासन-सूत्र आ गया था। सन् १०२१ ई० में सुलतान महमूद गजनी ने गान्धारराज त्रिलोचन पाल पर आक्रमण किया। राजा तौसी तट पर पराजित हो गया। गान्धार के हिन्दू धर्म तथा स्वतंत्रता दोनों का ही लोप हो गया। तत्पश्चात् केवल ५ वर्ष के लिए उसके पुत्र भीमपाल ने पुनः स्वतंत्रता प्राप्त की। परन्तु मुस्लिम शक्ति के सम्मुख गान्धार मुस्लिम धर्म तथा संस्कृति में लोप हो गया। मुस्लिम इतिहासकारों ने गान्धार की राजधानी तक्षशिला का वर्णन नहीं किया है। तक्षशिला अपना पूर्व गौरव खो चुका था। खंडहरों का ढेर मात्र रह गया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने उसका उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा।

इस वैदिक काल से अठारहवीं शताब्दी तक गान्धार भारतीय राज्य का अंग होता और निकलता रहा है। उसका इतिहास भारतीय इतिहास से गुंथा है। उसे अलग रखना कठिन है। यहाँ भारतीय संस्कृति फली-फूली। वहाँ से बाहर गयी। ललित कलाएँ विकसित हुईं। गान्धार का पुराना नाम, धर्मादि का लोप हो गया। उत्तर-पश्चिमीय सीमान्त प्रदेश के रूप में उसका अधिक क्षेत्र पाकिस्तान बनने के पूर्व भारत का अंग था।

तक्षशिला का वर्णन करते हुए प्लिनी लिखता है कि नगर पर्वत मूल के उस स्थान पर आबाद था, जहाँ पर्वत भूमि में मिल जाता था। नगर समतल भूमि में बसा था। वह नगर की बड़ी प्रशंसा करता है। कनिंघम ने तक्षशिला में ५५ स्तूप, २८ विहार तथा ९ मन्दिरों का ध्वन्सावशेष देखा था।

नागार्जुनी कोण्डा के वीरपुरुष दत्त के अभिलेख में गान्धारका उल्लेख आया है। गान्धार में १००० से अधिक बौद्ध विहार थे। युवानच्वांग के समय में उनकी बुरी अवस्था थी। अनेक स्तूपों के शिखर खंडहर थे। लगभग १०० देव मन्दिर गान्धार में थे। पुष्करावती गान्धार की राजधानी थी। उसकी राजधानियाँ विभिन्न समयों में बदलती रही हैं। पुष्करावती किंवा पुष्कलावती तथा कभी तक्षशिला ही

जाती थी। पुष्करावती सिन्धु के पश्चिम तथा तक्षशिला के पूर्व ओर आबाद थी। अभिधर्म कोष शास्त्र एवं सुमंगल विलासिनी का रचयिता वसुवन्धु पुष्करावती का निवासी था।

गान्धार जातक में गान्धार कश्मीर का उल्लेख मिलता है। दरायुह के वेहिस्तुत अभिलेख (ईसा पूर्व पाँच सौ बाईस से चार सौ छियासी वर्ष) गान्धार का उल्लेख है। दरायुह (दारियस) के सूसा प्रासाद के भग्नावशेष के एक अभिलेख में गान्धार का उल्लेख मिला है।

जम्बूद्वीप की सीमा वर्णन में उत्तर-पश्चिम गान्धार तथा कश्मीर का उल्लेख किया गया है। सोलह जनपदों में कम्बोज तथा गान्धार को उत्तरापथ में सम्मिलित किया गया है। खुद्दक निकाय के उत्तरखण्ड चुल्ह निद्देस में गान्धार जनपद के स्थान पर योन अर्थात् यवन जनपद का उल्लेख किया गया है। मज्झिम निकाय की अट्ठ कथा तथा पपंचसूदनी में गान्धार राष्ट्र सीमान्त पर स्थित जनपद बताया गया है। यहाँ पर कश्मीर गान्धार का नाम साथ-साथ लिया गया है। (जातक भाग २ : ३६५)। अनेक विद्वानों ने इसके आधार पर कश्मीर को गान्धार के अन्तर्गत बताया है। यह अप्रमाणित है। ठीक नहीं है।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा वामन पुराणों में 'गान्धारा यवनाश्चैव' का उल्लेख मिलता है। गान्धार, यवन शब्द एक साथ प्रयुक्त किया गया। उनसे यवन देश तथा गान्धार का समीप होना प्रतीत होता है। सिन्धु अर्थात् आधुनिक सिन्ध प्रदेश सिन्धु नदी के पश्चिम तथा पूर्व में सिन्धु नदी के अधोभाग के पूर्व था। सौवीर क्षेत्र झेलम-चनाब संगम से ५० मील अधोभाग में था। भद्र देश वर्तमान सियालकोट तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र है।

कुणिन्द लोगों के विषय में ,कहा जाता है कि कुलू अंचल के आधुनिक कुलैरस हैं। प्राचीन काल में यह अंचल सहारनपुर तथा अम्बाला जिले तक विस्तृत था। इस क्षेत्र से तत्कालीन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। पारद लोग खुरासान क्षेत्र के निवासी थे। यवन अफगानिस्तान में थे। यूनानी जाति अफगानिस्तान में आबाद हो गयी थी। राज्य वहीं स्थापित कर लिया था। कुहून शब्द काबुल नदी जिसका प्राचीन नाम कुभा किंवा कुहू था उसकी उपत्यका के निवासियों के लिए आया है। 'गान्धारान् वरयान् हुन्दान्,' 'गान्धारान् औरसान् कुहून्,' 'गान्धारान् रुरसान् (औरसान्) कुल्न्' आदि उल्लेख वायु, ब्रह्माण्ड तथा मार्कण्डेय पुराणों मे मिलते हैं। इसमें निष्कर्ष निकलता है। गान्धार कुभा अर्थात् काबुल नदी की उपत्यका तक विस्तृत था। 'शिवपौरान् इन्द्रहासान्', 'शिवपौरान् इन्द्रमरुन्' का उल्लेख वायु, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराणों में मिलता है। शिव पौरान् से अर्थ शिव नगर के पौरागण से है। शिवपुर अर्थात् वर्तमान शोरकोट जिला पश्चिमी पाकिस्तान के लिए व्यवहृत किया गया है।

संम्मोह तन्त्र की तालिका (२ : ४) में गान्धार देश का उल्लेख किया गया है।'हूण कौरव गान्धार' अर्थात् हूणों के समीप देश की ओर संकेत किया गया है।

गान्धार का दूसरा नाम दिहन्दास दिया गया है। दोनों शब्द समानार्थक माने गये हैं। दिहन्दास वास्तव में उदभाण्डपुर प्रतीत होता है। गान्धार को कन्धार से मिलाने का प्रयास किया गया है परन्तु यह खीचातानी तर्कसम्मत नहीं मालूम होती। गान्धार की जो स्थिति तथा सीमा बतायी गयी है उसमे वर्तमान कन्धार का मेल नहीं खाता। सम्भव है। गान्धार के नाम पर अफगानिस्तान के दक्षिण में गान्धार नगर बसाया गया होगा! हो सकता है गान्धार का अपभ्रंश वर्तमान कन्धार हो गया। भारत मे काशी नाम के कितने ही स्थान हैं। परन्तु वाराणसी को ही काशी वास्तविक काशी राज्य रही। अन्यथा, दक्षिण काशी, उत्तर काशी अनेक स्थान काशी के नाम पर हैं।

पौराणिक परम्परा के अनुसार गान्धार में सिन्धु नदी के दोनों तटों पर दो नगर तक्षशिला तथा पुष्कलावती आबाद थे। तक्षशिला सराय कला रेल जंक्शन से रावलपिण्डी के उत्तर-पश्चिम २० मील पर हुरो नदी की उपत्यका में आबाद है। यहाँ ३ नगरों के ध्वन्सावशेष हैं। धुर दक्षिणी ध्वन्सावशेष का स्थान उठती अधित्यका मीर टीला पर है। पुष्कलावती किंवा पुष्करावती नगर स्वात प्रदेश में परगना चरसद्दा मील जयारत अंचल में १७ मील उत्तर-पूर्व पेशावर में स्थित है। स्वात उपत्यका को प्राचीन काल में उद्यान देश कहते थे। स्कन्द पुराण की तालिका में उसकी क्रम संख्या १३ तथा ग्राम-संख्या ९ लाख दी गयी है।

सातवीं शताब्दी में हुएनसांग जिस समय उत्तरापथ में प्रवेश किया उस समय उदभाण्डपुर कपिशा के राजा की द्वितीय राजधानी थी। उस राज्य में लम्पक (लगमान) नगर, नग्रहार (जलालाबाद), वर्ण (बन्नू) तथा जागद अर्थात् दक्षिणी अफगानिस्तान गजनी पड़ता था। गजनी का नाम स्कन्द पुराण में गाजनक आता है। उसके ग्रामों की संख्या ७२ हजार दी गयी है। देशों की तालिका में उसकी क्रम-संख्या ७ है।

गान्धार देश के विषय में हुएनसांग लिखता है। गान्धार की राजधानी पुरुषपुर थी। राजवंश लुप्त हो गया था। कपिशा राज्य के अन्तर्गत था। नगर तथा ग्राम उजड़ गये थे। बहुत थोड़े लोग वहाँ निवास करते थे। श्री लक्ष्मीधर ग्यारह पिशाच देशों में गान्धार को भी मानते हैं। यहाँ अर्थ यह लगाना चाहिए कि वहाँ के लोग पैशाची भाषा मानते थे। (कम्परेटिव ग्रामर आफ प्राकृत लेगुंवेज पैरा-२७)

स्कन्द पुराण के देशों में तथा महावस्तु के जनपदों में गान्धार और कम्बोज जनपद का नाम नहीं है। किन्तु अंगुत्तर निकाय में १६ जनपदों में गान्धार, कम्बोज का नाम दिया गया है। महावंश में शिवि तथा दशार्ण दो अन्य जनपदों का उल्लेख किया गया है। महावस्तु में बुद्ध ज्ञान प्रचारार्थ दिये गये नामों में शिवि देश सम्मिलित है। शिवि स्कन्द पुराण के देशों की तालिका में ४५वाँ नाम है। उसके ग्रामों की संख्या १० हजार दी गयी है। कम्बोज जनपद का भी उल्लेख है। स्कन्द पुराण की तालिका में क्रमसंख्या १९ तथा ग्रामों की संख्या १० लाख दी गयी है। गान्धार जनपद स्कन्द पुराण तथा महावंश के रचनाकाल में अपना महत्त्व खो चुका था। उसका महत्त्व शिवि एवं दशार्ण जनपदों को जो उसी क्षेत्र के थे मिल गया था। बौद्ध काल में शिवि देश अपने सुन्दर दुशालों के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। चण्डप्रद्योत अवन्ती के राजा ने जीवक को पाण्डु रोग से मुक्त होने पर शिवि का बना दुशाला दिया था। जीवक तक्षशिला का स्नातक था। वहीं उसने आयुर्वेद तथा चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। तक्षशिला में उन दिनों भारतवर्ष के कोने-कोने से यथा लाट देश, कुरु देश तथा शिवि देश से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति निमित्त जाया करते थे। विनय पिटक में स्पष्ट उल्लेख है। जीवक ने इन दुशालों (सिवेय्यक दुस्स) को भगवान् बुद्ध को अर्पित किया था। शिवि जातक में कोशल के राजा प्रसेनजित ने भगवान् बुद्ध को १ लाख मूल्य के शिवि राज्य में बने वस्त्र अर्थात् सिवेय्यक वस्त्र दिया था। मालूम होता है कि गान्धार क्षेत्र उन दिनों शिवि तथा दशार्ण देशों में मिल गया था।

स्वात (मार्दगैन्ड) के उत्तर स्थित यूनान प्रान्त का प्राचीन भारतीय नाम गान्धार था। ईसा की शताब्दी पूर्व यहाँ भारतीय आबाद हो गये थे। तेरहवीं शताब्दी तक यूनान का नाम गान्धार ही प्रचलित था। भारतीय गान्धार पश्चिमी पाकिस्तान का पेशावर तथा रावलपिण्डी का जिला था।

परिशिष्ट 'ट'

गुह्यक

(तरंग १ : १५६ पृष्ठ : २१३)

गुह्यक दस देवयोनियों में यक्षों तुल्य एक योनि हैं। अमर कोश के अनुसार दस निम्नलिखित देवयोनियाँ हैं :

विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥ १:१:११

कुबेर को गुह्यकेश्वर तथा वैश्रवण भी कहा गया है। गुह्यक उस वर्ग के लिए प्रयुक्त किया गया है जो कुबेर के कोष की रक्षा करते थे। उनके स्वामी गुह्यकेश्वर थे।

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः । १:२:७१
मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः ।
किन्नरेशो वैश्रवणः पौलस्त्यो नरवाहनः ॥ १:२:७२

बौद्ध भास्कर्य किंवा मूर्तिकला में कुबेर तथा यक्षों का प्रमुख स्थान है। कुबेर की अलकापुरी का बड़ा सुन्दर वर्णन मेघदूत मे कालिदास ने किया है। यक्ष का स्वामी कुबेर है। बौद्ध मूर्तियों में कुबेर तथा यक्ष भगवान् की पूजा करते दिखाये गये हैं।

गुह्यक शब्द का एक जाति के रूप में प्रयोग मिलता है। उन्हें देवयोनि के अन्तर्गत एक जाति महाभारत ने माना है। (आदि पर्व १८६ : ७) इस जाति के लोग द्रौपदी के स्वयंवर के समय उपस्थित थे। गुह्यकेश्वर अर्थात् कुबेर की सभा में गुह्यकों का स्थान था। (सभा पर्व १० : ३) गन्धमादन पर्वत पर उनका निवास कहा गया है। भीमसेन ने उन्हें वहीं गदा से प्रहार किया था। (शल्य पर्व ११ : ५५–५६) गुह्यक को यक्ष भी कहा गया है (सभा पर्व १० : १५)।

पुराणों में कुबेर के अनुयायी तथा दानव गुह्यक कहे गये है। (भागवत पुराण १ : ९ : ३, १० : ३४ : २८, २ : १० : ३७, ४ : ४ : ३४) गुह्यक जाति हिमालय में निवास करती थी। (भागवत ४ : ५ : २६, ४ : १० : ५) वे माया विद्या में निपुण थे। (भागवत पुराण १० : ५५ : २३) गुह्यकों के देवता शिव थे। वे शिव के अनुयायी थे। (भागवत पुराण ६३ : १०) गुह्यको ने पुण्यात्माओं के संसर्ग से स्वर्ग प्राप्त किया था। (भागवत पुराण ११ : १२ : ३, ११-१४ : ५,) गुह्यकों को यक्षों तथा राक्षसों की श्रेणी में रखा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ : ७ : १६७-१६८, ४ : २ : २६, मत्स्य पुराण १३ : १७, १२१, २) गुह्यको के आचरण तथा कर्तव्यो का विशद वर्णन मत्स्य पुराण (१८० : ९०, २४६ : ५३,) तथा वायु पुराण (अध्याय ६९ : तथा १०१) मे मिलता है। गुह्यक वर्ग को वायु पुराण (अध्याय ३०) में हिमालयवासी कहा गया है। वे 'शंकर पार्वती के साथ विराजमान थे।' उस समय आदित्यगण, वसुगण, अश्विनीकुमार, गुह्यकों को साथ लेकर वैश्रवण अर्थात् कुबेर, सनत्कुमार, अंगिरादि देवर्षि, विश्वावसु, गन्धर्व, नारद, कैलास निवासी यक्षराज महामुनि उशना तथा अप्सराएँ आदि उमा, शंकर की उपासना करने लगीं।

हरिवंश पुराण में कैलाश शिखर पर गुह्यकों के साथ कुबेर के आगमन का वर्णन मिलता है। (८५:१०) यक्ष जाति की गुह्यक एक शाखा किंवा उपवर्ग थे। उनमें तथा यक्षों में बहु मित्रता थी। गुह्यक गणों की सम्पत्ति की रक्षा करते थे। उनका सैनिक धर्म था। वे प्रतिहारी थे। काम साधारणतया शस्त्रोपजीवी किंवा पहरा, चौकी, रक्षादि करना और शस्त्रादि चलाना था। उन्होंने महाभारत युद्ध में भाग लिया था। यक्ष जाति के होते हुए भी उन्हें अलग गुह्यक संज्ञा उसी प्रकार दी गयी है जैसे हिन्दू होने पर भी क्षत्रियों की अपनी अलग जाति शस्त्राश्रयी होने के कारण हो गयी।

वायु पुराण (अध्याय १०१) से प्रकट होता है कि गुह्यक लोग सत्य अर्थात् ब्रह्म लोक में देवताओं के साथ रहते थे। सत्य लोक सातवाँ किंवा अन्तिम लोक है। उसमें समस्त देवगण गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों तथा गुह्यकों के साथ निवास करते हैं। वायु पुराण के (अध्याय ६९) में गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष तथा पिशाचों को असुरदेव की श्रेणी में रखा गया है। यहाँ पर सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यों को पृथ्वी लोक का निवासी बताया गया है।

गुह्यकों की उत्पत्ति के विषय में वायु पुराण (अध्याय ९ ३५, ३४) में कहा है—'ब्रह्मा ने रजस्तम प्रधान दूसरा शरीर धारण किया। उस अन्धकार में क्षुधाकुल होकर उन्होंने दूसरी प्रजा उत्पन्न की। वह प्रजा जल को भक्षण करने के लिए कटिबद्ध हो गयी। हम जल की रक्षा करते हैं। कहते हुए जो उत्पन्न हुए वे क्रोधी निशाचर राक्षस हुए। जिन लोगों ने कहा कि हम जल को खा जायेंगे, नष्ट कर देंगे वे क्रूरकर्मा गुह्यक यक्ष कहलाये।

भागवत (१ ९ ३) में श्रीकृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि के रथारूढ़ गमन करने की शोभा की तुलना गुह्यकों सहित कुबेर से की गयी है। गुह्यकों को कुबेर का साथी कहा गया है।

भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों का वर्णन करते हुए सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सराएं, नाग, सर्प किंपुरुष, उरग, मातृकाएं, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वैताल, यातुधान के वर्ग में गुह्यकों को रखा गया है (स्कन्द० २.१०.६७ ११:१२:३, तथा १४.५)।

दक्ष यज्ञ में सती के प्राण विसर्जन काल में गुह्यक तथा प्रमथ गण उपस्थित थे। शिव के पार्षद गुह्यक तथा प्रमथगण सती के साथ दक्ष यज्ञ में गये थे। सती के प्राण विसर्जन के साथ ही गुह्यकों तथा प्रमथों ने क्रुद्ध होकर दक्ष यज्ञ मे विघ्न उपस्थित किया। अस्त्र-शस्त्रों से आक्रमण किया। उनके भयंकर आक्रमण वेग को देखकर भृगु ने यज्ञ द्वारा सहस्रों ऋभु नामक देवों को उत्पन्न किया। उन्होंने जलती लकड़ियों द्वारा प्रमथगण तथा गुह्यकों पर आक्रमण किया। उन्हें भगाने में समर्थ हुए।

दक्ष यज्ञ के प्रसंग में गुह्यकालय अर्थात् गुह्यकों के निवास स्थान का उल्लेख किया गया है। सती के प्राणाहुति से क्रुद्ध होकर वीरभद्र ने दक्ष के मस्तक को यज्ञ की दक्षिणाग्नि में डाल दिया। यज्ञ को विध्वंस कर गुह्यक गण गुह्यकालय लौट गये। यहाँ पर गुह्यकालय हिमालय स्थित कैलास के समीपस्थ स्थान होना चाहिए। वायु पुराण ने हिमालय का यही अंचल गुह्यकों का निवास-स्थान बताया है।

उत्तम हिमालय मृगया निमित्त गया था। वहा उसकी हत्या कर दी गयी थी। ध्रुव अत्यन्त क्रुद्ध होकर रुद्रों के अनुचरों से सेवित उत्तर दिशा में हिमालय की द्रोणी अर्थात् घाटी में गये। वहाँ नगर गुह्यकों से जनाकीर्ण थे। (भागवत ४:१०:५) यहा पर भी निर्देश किया गया है। गुह्यक गण उत्तर दिशा में हिमा-की घाटी किंवा द्रोणी में रहते थे।

श्रीकृष्ण द्वारा गुह्यक शंखचूड़ के वध की कथा भागवत (१०:३४;२८) में दी गयी है। एक समय शंखचूड़ गुह्यक गोपियों को लेकर उत्तर दिशा की ओर भाग गया। श्रीकृष्ण उस अधम गुह्यक के पास पहुँचे। गुह्यक गोपियों को छोड़कर भाग गया। श्रीकृष्ण ने उसका पीछा किया। वध कर मणि लेकर वापस आये। इससे दो बातें स्पष्ट होती है। गुह्यक दस्यु आदि अनुचित कार्य करते थे। उनका निवास स्थान उत्तर दिशा में था। मथुरा से उत्तर दिशा पंजाब, कश्मीर, हिमाचल की ओर पड़ता है। उत्तर दिशा का अर्थ प्रायः हिमालय का उत्तरीय पर्वतीय अंचल माना जाता रहा है।

प्रद्युम्न तथा शम्बरासुर वधके प्रसंग में गुह्यकों का पुनः उल्लेख भागवत (१०:५५:२३) में किया गया है। तदनन्तर शम्बरासुर ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसों की सैकड़ों माया का प्रयोग किया। गुह्यक मायावी थे। युद्ध में माया का प्रयोग करते थे। यह बात अन्य पुराणो में भी कही गयी है। शम्बर ने गुह्यकों की माया का प्रयोग किया। गुह्यकों ने युद्ध में भाग नही लिया था परन्तु उनकी युद्ध नीति का प्रयोग शम्बर ने प्रद्युम्न के विरुद्ध किया था।

भागवत (११:१२:३) में पुनः दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक को एक ही वर्ग में रखा गया है। गुह्यकों के पूर्वज ब्रह्मर्षि थे। देव योनि वर्ग में थे। इसका उल्लेख भागवत (११-१४:५) में किया गया है। इन ब्रह्मर्षियों की संतान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, राक्षस, और किम्पुरुष आदि थे।

रामायण में कैलास के समीप गुह्यकों के रहने की बात कही गयी है। सुग्रीव ने उत्तर दिशा में माता सीता को खोजने के लिए जिन देशों तथा जातियो का नाम लिया है उनमें गुह्यक थे। वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३ श्लोक ३ मे उल्लेख आता है—'वहाँ यक्षों के स्वामी विश्रवाकुमार श्रीमान् राजा कुबेर, जो समस्त विश्व के लिए वन्दनीय हैं, धनदाता हैं, यक्षराज गुह्यकों के साथ निवास करते है।

गुह्यकों का उल्लेख यक्षो के साथ नीलमत पुराण में किया गया है :

आश्रमानि तथा नद्यश्चकुस्तीर्थान्येनकशः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः शैलेन्द्राश्च सगुह्यकाः ॥ 186 = २४९—२५०

× × ×

गुह्यकेश्वर का भी उल्लेख नीलमत में मिलता है :

गुह्येश्वरः शतमुखा यष्टिकापथ एव च।
कदम्बेशस्तथा पुण्यः क्षेत्रं चैव समन्ततः ॥ 118 = १६०-१६१
यावच्छत मुखं तीर्थं पावत्तीर्थं गुह्येश्वरम्।
तावत् क्षेत्रं समं पुण्यं वाराणस्याथवाधिकम् ॥ 119 = १६१-१६२

कल्हण के गुह्यक शब्द के व्यवहार से गुह्यक जाति की सत्यता तथा वास्तविकता पर विशेष प्रकाश पड़ता है। पुराणो में गुह्यकों को यक्षों की एक उपजाति माना है। कल्हण के इस वाक्य से कि राजा ने गुह्यकों से सहायता ली (रा० १:१५६) इसका अर्थ है पुल निर्माण का कार्य उनसे लिया। इससे मालूम होता है। उस समय गुह्यक नाम की जाति कश्मीर में रहती थी। वह जाति परिश्रमी तथा निपुण थी। पुल

बनाने का काम आज भी शिल्पिक कार्य समझा जाता है। किसी कश्मीरी कलाकार की सहायता न लेकर गुह्यकों की सहायता पुल बनाने के लिए ली गयी। इसका अर्थ है कि यह जाति इस कला में निपुण थी। यक्ष नाम की भी एक जाति थी, जो कश्मीर में रहती थी। यक्षों को कालान्तर में मानव विशेष समझा लिया गया था। इसी प्रकार गुह्यकों को भी मानव विशेष समझा गया। परन्तु कल्हण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है गुह्यक एक जाति थी। उस जाति के लोग कश्मीर में आबाद थे। निर्माण कला में निपुण थे। कल्हण ने (१:५९,१८४,३ ३४९) में यक्ष का उल्लेख किया है। यक्षों के सन्दर्भ में कहा जाता है। उनका उपयोग सेतु अर्थात् पुल बनाने में किया गया था। पुराण, महाभारत में यक्ष के अन्तर्गत गुह्यक जाति मानी गयी है। अतएव राजा दामोदर (रा० १:१५९) के काल तक यक्ष और गुह्यक दोनों जातियाँ कश्मीर में थीं वे परिश्रमी थी। शिल्प उनका मुख्य कार्य था।

परिशिष्ट 'ठ'

यक्ष

(तरंग १ : १५९–पृष्ठ २१८)

कल्हण कश्मीर में प्रचलित किंवदन्ती की ओर संकेत करता है। प्राचीन विशाल इमारतों का निर्माण विशाल शिलाखण्डों से किया गया है। उन्हें यक्षों ने किया था। वे मानवीय शक्ति के परे की बात है। कल्हण ने जिन भव्य भवनों तथा निर्माणों का वर्णन किया है उनमें बहुतों के ध्वन्सावशेष वर्तमान हैं। कश्मीरी मुसलमान उक्त निर्माणों को जिन तथा परियों का बनाया मानते हैं। किसी ग्रामीण से पूछने पर उत्तर मिलता है। पाण्डवों ने बनाया था।

यक्ष शब्द ऋग् तथा अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर आया है।

(ऋग्वेद १:१९०:४, ४:३:१३, ५:१०:४, ७:५६:१६, १०:८८:१३, ७:६१:५, अथर्ववेद ८:९:२५ १०:२:३२, १०:७:३८, १०:८:४३ ११:२:४)

वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड पुराणों में यक्ष शब्द प्रायः गन्धर्व तथा किन्नर के साथ आया है। यह सब हिमालय प्रदेश की पर्वतीय जातियाँ थी। अलबेरुनी ने गन्धर्वों को गायक जाति में गिना है। उनका संगीत तथा नृत्य पेशा माना है। (मत्स्य : ११४:८२; ब्रह्माण्ड : २:१८:३३)

गन्धर्वान किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् खसान्॥

हरिवंश पुराण, भविष्य पर्व (१३:११) में महर्षि, वसु, अप्सरा, गन्धर्व के साथ यक्ष का उल्लेख किया गया है। उन्हें कुबेर के भवन में निवास करना दिखाया गया है। (वायु : ३९:५७) (नीलमत : 1007–8)

अग्नि पुराण (१९ : १८) में उन्हें 'कश्यपपत्नीखसाजाता :' अर्थात् कश्यप की पत्नी खसा से यक्षों की उत्पत्ति हुई थी।

यक्षों का वर्णन महाभारत में प्रचुर रूप से मिलता है। गुह्यकों के सन्दर्भ में यक्षों का उल्लेख किया गया है। महाभारत में उन्हें देव योनि में रखा है। विराट अण्ड द्वारा ब्रह्मादि के उत्पन्न होने के पश्चात् यक्षों की उत्पत्ति बताई गयी है। महाभारत आदि पर्व (१ : ३५) में यक्षों को पुलस्त्य मुनि की सन्तान कहा गया है (आदि पर्व ६६ : ७)। राक्षस रावण पुलस्त्य का नाती था। अतएव यक्षों का सम्बन्ध राक्षसों से माना गया है। यक्ष मानव थे। श्री शुकदेवजी ने यक्षों को महाभारत की कथा सुनायी थी। (आदि पर्व १ : १०८)। यक्षों ने कुबेर का राजपद पर अभिषेक किया था। (वन पर्व १ : १०-११) पाण्डव भीम ने यक्षों तथा राक्षसों को पराजित किया था। (वन पर्व १६० : ५७-५८।) सुन्द उपसुन्द ने यक्षों को पराजित और पीड़ित किया था। (वन पर्व २०८ : ७)।

यम ने यक्ष का रूप धारण कर युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर किया। यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर धर्म-राज युधिष्ठिर ने चारों भाइयों को यम से जीवित कराया था। (वन पर्व ३१४ : १७)।

प्रायः देवताओं की मूर्तियों पर यक्षगण नभोपथ से उन्हें माला पहनाते, उनपर पुष्प वर्षा करते दिखाये जाते हैं। भगवान् बुद्ध की मूर्ति में भी शिरोभाग दोनों पार्श्वों में उड़ते यक्ष माला सहित उत्कीर्ण किये मिलते हैं।

ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराणों के अनुसार वे राक्षस तथा रासा की सन्तान थे। वे अपनी माता को खा जाना चाहते थे। अतएव उनका नाम यक्ष पड़ा। उनके आकार का वर्णन किया है। उन्हें चार हाथ तथा चार पैर होते हैं। रात्रि में आहार निमित्त विचरण करते हैं। वसु रुचि का रूप धारण कर अप्सरा क्रतुस्थला के साथ नन्दन में निवास किया था। उससे रजत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यक्ष अपने पुत्र के साथ हिमालय में निवास निमित्त आया।

ब्रह्माण्ड पुराण (२ : १८ : ३३२ : ३ : ७ : ६०, १००-१७, २२ : १४, ४१ : ३०, ७१ : १:१) तथा भागवत आदि पुराणों में यक्षों की उत्पत्ति की एक और कथा है। कश्यप पिता तथा विश्वा माता का पुत्र यक्ष था। (भागवत २ : ६ : १३, ६ : ८ : २४, १० : ६ : ७७, ६२ : १९, ८५ : ४१; ब्रह्माण्ड पुराण २ : ३२ : १-२, ३५ . १९१, ३६ : ११८।)

पुराणों में उन्हें रुद्र के अनुयायी रूप से चित्रित किया गया है। उनके स्वामी का नाम कुबेर है। (भागवत पुराण ११ १६ . १६)। मत्स्य पुराण (८ . ५) के अनुसार ब्रह्मा ने यक्षों का अधिनायकत्व शूलपाणि को दिया था। यक्षों ने कच्चे पात्र में वसुधा का दोहन किया था। मत्स्य पुराण (१० : २२,) के अनुसार वृत्र की सहायता इन्द्र के विरोध में यक्षों ने की थी। दक्ष के यज्ञ में सती के साथ गये थे। यक्ष वृत्र के पक्ष से देवताओं से युद्ध कर रहे थे। (भागवत ६ : १० : २० ४ : ४ : ४) उनके खेलों का वर्णन भागवत पुराण (१० : ९० : ९) में किया गया है। हरि की भक्ति के कारण यक्षों का मंगल होता है। (भागवत ७ : ७ : ५०)। यक्ष देवों के साथ भगवान् कृष्ण को देखने आये थे। (भागवत ७ . ८ : ३८,) रावण ने यक्षों को परास्त किया था। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ : ७ : २१४,) यक्ष पित्रों की पूजा करते थे। (भागवत पुराण ३ : १० : २८,)

मत्स्य पुराण (अध्याय २३) में वर्णन मिलता है। देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण शंकर तथा चन्द्रमा में युद्ध हुआ। उसमें यक्षों के स्वामी कुबेर ने वैताल, यक्ष, नाग तथा किन्नरों की सेना के साथ शंकर की ओर से युद्ध में भाग लिया था।

मत्स्य पुराण (अ० १८०) में यक्षों के विषय में एक रोचक कथा दी गयी है। उससे यक्षों के व्यवहार, आचरण तथा धर्म पर प्रकाश पड़ता है। इसका सम्बन्ध हरिकेश यक्षसे है।

पूर्णभद्र यक्षों का राजा था। उसका पुत्र हरिकेश था। हरिकेश शिव का उपासक था। पूर्णभद्र ने अपनी पुरातन परम्परा पर पुत्र का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—रुद्र की उपासना उचित नहीं है। हमारा काम मानवों से भिन्न है। यक्ष स्वभाव से क्रूर होते हैं। कच्चा मांस खाते हैं। कुत्सित जीवों का भक्षण करते हैं। हिंसक होते हैं।

न हि यक्षकुलीनानां मूढ वृत्तं भवत्युत।
गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात्क्रूरचेतसः॥
क्रव्यादाश्चैव किंभक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक।
मैवं कार्षीर्न ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना॥

पिता की बात न मानकर, हरिकेश काशी आकर, तपस्या करने लगा। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने हरिकेश से वर मांगने के लिए कहा। हरिकेश ने शिव भक्ति का वर मांगा। शिव ने प्रसन्न होकर यक्ष को वरदान दिया—'यक्ष, तुम पूज्यगणों के स्वामी तथा धनपति होगे। प्राणियों से अजेय होगे। अन्नदाता होगे। क्षेत्रपाल होगे। उद्भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे सेवक होंगे। तुम दण्डपाणि होगे।'

काशी तथा मथुरा दोनों स्थानों पर यक्ष लोग अपने पुरातन धार्मिक परम्परा के स्थान पर शिव उपासना करने लगे। यक्षों ने लौकिक किंवा जातीय धर्म तथा रीतियों के स्थान पर शैव मत स्वीकार कर लिया। उन्हें कालान्तर में शिव के गणो में सम्मिलित कर लिया गया। वे शिव के भक्त तथा अनुयायी हो गये।

भागवत (२ : ६ : १३) में विराट पुरुष के वर्णन के प्रसंग में देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, यक्ष, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, भूत, प्रेत, विद्याधर सर्पादि कोएक वर्ग में रखकर उन्हें विराट पुरुष माना है।

भागवत (६ : ८ २४) में नारायण कवच के वर्णन में—कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि को कौमोदकी गदा से नष्ट करने की प्रार्थना की गयी है।

देवराज इन्द्र के विरुद्ध आते हुए यक्षों का वर्णन मिलता है। दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस सुवर्ण के साज सामान से सुसज्जित होकर देवराज इन्द्र की सेना की बाढ़ रोकने के लिए आ गये थे। (भा० : १० : २० ।)

नृसिंह अवतार के समय भगवान् के समीप जय-जयकार करने आने वालों में—सिद्ध विद्याधर महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किंपुरुष, वैताल, सिद्ध, किन्नर और सुनन्द तथा कुमुद आदि विष्णु के सभी पार्षद वहाँ आये। (भागवत ७ : ८ : ३८) यहाँ पर विष्णु के पार्षद रूप में यक्षों का वर्णन किया गया है।

रेवत ने कुशस्थली नामक नगर बसाया था। वहाँ से वे आनर्तादि देशों पर राज्य करते थे। उनके पुत्र ककुद्मी थे। शरपाणि के पुत्र अनर्त थे। अनर्त के पुत्र रेवत थे। रेवत के एक शत पुत्र थे। उनमें ककुद्मी ज्येष्ठ था। ककुद्मी की कन्या रेवती थी। रेवती का विवाह शेषावतार स्वरूप बलदेव के साथ किया गया था। वे ब्रह्मा से भेंट करने गये थे। लौटकर अपने नगर में आये। देखा कि उनके वंशजों ने यक्षों के भय से नगर त्याग कर दिया था। (भागवत पुराण ९ : ३ : ३५ ।)

भागवत (१० : ६ : २७) में यक्षों को भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस और विनायक के वर्ग में रखा गया है। भागवत पुराण (१० : ३२ : १६) में यक्षो को पुनः देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर तथा मनुष्य के साथ वर्णन किया गया है। भागवत पुराण (१० : ९० : ९) में भगवान् अपनी पत्नियों के साथ विहार करने की उपमा यक्षराज कुबेर का यक्षिणियों के साथ विहार करने से दी गयी है।

उद्धव के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कृष्ण ने अपने विराट स्वरूप का वर्णन किया है। 'मैं दैत्यों में दैत्यराज प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा, औषधियों में सोमरस एवं यक्ष राक्षस में कुबेर हूँ।' (भागवत ११ : १६ : १६)

यक्षों को धनकृपण कहा गया है ? 'जो मनुष्य, देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, जाति, भाई, कुटुम्बी और धन के भागीदारों को उनका भाग देकर सन्तुष्ट नहीं रखता और न स्वयं ही उपभोग करता है वह यक्ष के समान धन की रखवाली करने वाला कृपण है।' (भा० ११ : २३ : २४)।

रामायण में सुग्रीव ने वन्दरों को सीता के खोजने के लिए जिन देशों तथा जातियों का नाम लिया था उनमें यक्ष का भी नाम है। वह जाति कैलास के समीप उत्तर में निवास करती थी। (वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३ श्लोक २१–२३।)

मत्स्य पुराण (अध्याय १२१) में यक्षों के निवासस्थान के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है—'कैलास पर्वत के पूर्व और उत्तर दिशा में दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला रत्नों की तरह जाज्वल्यमान चन्द्रप्रभ गिरि है। उसके समीप अच्छोद सरोवर है। उस सर से अच्छोद नदी निकली है। नदी के तट पर चैत्र-रथ वन है। उसके समीपस्थ पर्वत पर मणिभद्र क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति गुह्यकों से रक्षित निवास करता है।'

'कैलास के दक्षिण और पूर्व दिशा में हेमशृङ्ग किंवा लोहित नामक एक महान् पर्वत है। उसके तट पर विशोक वन है। वहाँ मणिधर यक्ष परम धार्मिक एवं सौम्य गुह्यकों द्वारा रक्षित निवास करता है।

ककुद्मी कैलास के पश्चिम ककुद्मान पर्वत पर रुद्र के वृष (नन्दिकेश्वर) की उत्पत्ति हुई थी। त्रिककुद के सम्मुख त्रैककुद कज्जल तुल्य शैल है। वहाँ वैद्युत पर्वत है। उसके पाद में दिव्य मानस सरोवर है। उससे सरयू नदी निकली है। उसके तट पर वैभाज दिव्य वन है। यहा प्रहेति का पुत्र कुबेर का सेवक ब्रह्मघाती पौरुषशाली राक्षस निवास करता है।

वायु पुराण अध्याय ३९ में यक्षों का निवास स्थान दिया गया है। शतशृंग पर्वत पर अरयन्त यक्षो यक्षो के सौ पुर हैं। वायु पुराण अध्याय ६९ में यक्षों के विषय में उल्लेख है—

'पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष, एवं देवजन नामक यक्षादि गुह्यको के अन्तर्गत है। अगस्त्य, पौलस्त्य तथा विश्वामित्र के गोत्रों में उत्पन्न होने वाले राक्षस तथा यक्षों के राजा कुबेर हैं। अलका नगरी के कुबेर अधीश्वर हैं। यक्ष केवल आँखों से देखकर रक्त मास एवं चर्बी पी जाते हैं। राक्षस शरीर के भीतर प्रवेश कर पी जाते हैं। पिशाच पीड़ित कर पीते हैं। सभी लक्षणों से सम्पन्न देवताओं के समान अधिकारी, तेजस्वी, बलवान, ऐश्वर्यशाली, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, शक्तिशाली, विक्रमी, लोकों द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करने वाले, तेजस्वी, यक्षादि के योग्य वरदान देने वाले, यज्ञ परा-यण एव देवताओ के समान धर्मात्मा होते है, उन्हें असुर कहा जाता है।

गन्धर्वों का प्रभाव देवताओ की अपेक्षा तीन-चौथाई हीन होता है। अर्थात् गन्धर्वों में देवताओं का चतुर्थांश प्रभाव है। गुह्यक का प्रभाव गन्धर्वो के प्रभाव का चतुर्थांश होता है। अर्थात् गुह्यकों में केवल सोलहवां भाग देवताओ का प्रभाव शेष रहता है। राक्षसों का प्रभाव गुह्यकों अर्थात् यक्षों तुल्य होता है। पिशाचों का प्रभाव यक्षों से तीन गुना हीन होता है। रूप, आयु, बल, धर्म, ऐश्वर्य, बुद्धि, तपस्या, शास्त्र, बल एवं पराक्रम में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच चार देवयोनियों में उत्पन्न होने वाले वर्ग सुर तथा असुरों की अपेक्षा हीन होते हैं।

उक्त उद्धरणों से यक्षों के सम्बन्ध में कुछ बातें स्पष्ट होती है। (१) यक्ष देवयोनि मे थे। वे मानव थे। (२) उन्हें गन्धर्व, राक्षस तथा पिशाचों के वर्ग मे रखा गया है। (३) सुरों की अपेक्षा असुरों के वर्ग मे उन्हें रखा गया है। (४) वे हिमालय निवासी थे। (५) उनका आवास कैलास के समीप था। (६) उनका आसुरी आचरण मांसादि खाने तथा रक्तपात करने का था। (७) किन्तु कालान्तर में वे शिव के अनुयायी होकर शैवमतावलम्बी हो गये थे। (८) कुबेर उनका राजा था। (९) वे युद्ध में भाग लेते थे। (१०) क्रूरकर्मा थे। (११) मत परिवर्तन के कारण शिव के गण बन गये

थे। (१२) गुह्यक लोग यक्षों की एक शाखा थे। (१३) उनका सम्बन्ध भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा तथा पर्वतीय भागों में रहने के कारण असुरो से होना स्वाभाविक था। उनका आचार-विचार प्रारम्भ से ही असुरों से मिलता था। (१४) यक्ष कश्मीर के सीमान्त मेरु के दक्षिण तथा कैलास के पश्चिम अर्थात् कश्मीर की उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर रहते थे।

कल्हण ने यक्षो का विवेचन यहा शिल्पी के रूप में किया है। वे सेतु निर्माण करने में निपुण थे। पुराणों में यक्षों को वस्तुपरक माना गया है। कहीं-कही उन्हें इतर योनि भी माना गया है। उन्हें आंखों में पड़नेवालों के रूप में भी चित्रित किया गया है। कल्हण ने इन सब कपोल कल्पनाओं को न मानते हुए वास्तविकता का परिचय दिया है। उसने यक्षों को एक जाति के रूप में चित्रित किया है। जिनका मुख्य काम शिल्प था। राज्य में जलाभाव को दूर करने के लिए राजा ने यक्षों द्वारा शासन स्थिर बनाने की योजना बनायी थी। उसका अर्थ बांध बनाना भी माना जाता है। यक्ष राजा दामोदर के समय गुह्यकों के साथ कश्मीर में आबाद थे। गुह्यक और यक्ष दोनों शिल्पी थे। कल्हण ने गुह्यकों का विवरण केवल सेतु निर्माण के सम्बन्ध में किया है और यक्षों का बांध बनाने के सम्बन्ध में किया है। अतएव गुह्यक यदि सेतु बनाने में प्रवीण थे तो यक्ष जलाभाव दूर करने के लिए बांध बनाने में चतुर थे।

नीलमत पुराण में यक्षों का उल्लेख निम्न श्लोकों में मिलता है—

दनायुशाया वृत्रस्तु भद्रास्तु सुरभेः सुताः।
यक्षश्च राक्षसाश्चैव खसायास्तनयाः स्मृताः ॥ 48 = ७१-७२

× × ×

देवपत्न्यस्तथा सर्वा देवानां याश्च मातरः।
विद्याधरगणा यक्षाः सागरा सरितस्तथा ॥ 152 = १०४

× × ×

आश्रयानि तथा नद्यश्वकस्तीर्थान्यनेकशः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः शैलेन्द्राश्च सगुह्यकाः ॥ 106 = २३९ २४०

× × ×

दैत्यदानवयक्षाश्च पिशाचाः राक्षसैः सह।
वर्जयन्ति च ते मांसं मांसादा दिनपञ्चकम् ॥ 447 = ५५८

× × ×

वेदोपवेदवेदाङ्गविद्यास्थानानि कृत्स्नशः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च तथैव गरुडारुणौ ॥ 586 = ७०७

× × ×

विद्याधरश्च यक्षश्च विरमः मत्स्यवर्धनः।
मङ्काशो गजनेत्रश्च कणारः कुमुदस्तथा ॥ 922 = १०८८-१०८९

तीर्थैर्देवैश्च ऋषिभिगन्धर्वैर्यक्षराक्षसैः ।
अभिगच्छेत मेधावी जन्मसाफल्यकारणात् ॥ 1380 = १५९८

वात्स्यायन कामसूत्र में यक्षरात्रि का उल्लेख करता है। यशोधर उस पर भाष्य करते यक्षरात्रि को सुख रात्रि कहता है। वर्ष क्रिया कौमुदी, कृत्य तत्त्व, तथा धर्म सिन्धु दीपमाला नाम सुखरात्रि देते हैं। हेमचन्द्र देशि नाममाला में जक्खरत्ति को दीपावली का समानार्थक मानता है। दीवाली ही दीपावली है। दीपमाला है। यह नीलमत में वर्णित यक्षरात्रि है। नीलमत दीपमाला अर्थात् दीपावली को यक्षरात्रि अभिहित कर उस दिन यक्षों की पूजा का विधान किया है। वाराणसी क्षेत्र में नगर से दस मील दूर जखिनी ग्राम है। मैंने उसपर पहले ध्यान नहीं दिया। कुछ चलने पर एक मन्दिर मिला। उसमें जखिनी देवी स्थापित थी। जखिनी शब्द यक्षिणी का अपभ्रंश है। कालान्तर में यक्ष लोगों के मूल स्वरूप को लोग भूलकर उन्हें गाथाकालीन देवता मानने लगे।

परिशिष्ट 'ड'

पिशाच

(तरंग १ : १८४ पृष्ठ १२५)

नीलमतपुराण पिशाचों का कश्मीर में निवास बताता है। आज कल पिशाच का अर्थ भूत, प्रेत तथा राक्षस लगाया जाता है। पिशाच शब्द का यह अर्थ भ्रामक है।

नीलमत बालुकार्णव में पिशाचों के निवास का वर्णन करता है। उनके राजा का नाम निकुम्भ था।

× × × ×

निकुम्भो नाम धर्मात्मा कुबेरेण तु योजितः।
चैत्र्यां याति सदा योद्धं पिशाचैर्बहुभिः सह ॥ 205 = २७८

× × × ×

पञ्चकोट्यः पिशाचानां निकुम्भस्यानुयायिनाम्।
गत्वा निकुम्भस्तैः सार्धं षण्मासान् योध्यते सदा ॥ 207 = २७८

× × × ×

तत्रापि कोट्यः पञ्चैव पिशाचानां दुरात्मनाम् ॥ 207 = २८०

× × × ×

निकुम्भः पुनरायाति पञ्चकोटिवृतो बली।
शुक्लाश्वयुक्पञ्चदश्यां नित्यं देवप्रसादतः ॥ 201 = २८२

× × × ×

दृत्तेति सहितस्तेन ससैन्येनेह यस्त्यथ।
षण्मासान् मानवैः सार्धं निकुम्भो निर्गते सदा ॥211 = २८४

× × × ×

रज्जुबद्धेन यथा पक्षिणा नृपदारकाः।
कल्पमानाः पिशाचैस्तु निर्वेदं परमं ययौ ॥ 327 = ४२७-४२८

× × × ×

एतस्मिन्नेव काले तु नीलो नागपतिर्विभुः।
सेव्यमानो निकुम्भेन पिशाचेन महात्मना ॥ 330 = ४३१

× × × ×

अश्वयुज्यां निकुम्भस्तु नित्यमायाति काश्यप।
हत्वा पिशाचान् संग्रामे बालुकार्णवगान् बहून् ॥ 376 = ४८३ ४८४

× × ×

ततः पूजा निकुम्भस्य कर्तव्या तु तारेण तु ।
आदित्यपुत्रो रेवन्तः सादवैः पूज्यस्य मानवैः ॥ 382 = ४८९

× × × ×

तस्मिन्नहनि पूर्वाह्णे निकुम्भस्यानुयायिनः ।
आविशन्ति नरान् सर्वान् पिशाचा घोरदर्शनाः ॥ 392 = ४९९-५००

× × × ×

तस्यां विप्र चतुर्दश्यां निकुम्भः शंकरं सदा ।
संपूजयति धर्मात्मा सानुयात्रो महाबलः ॥ 553 = १०५-१०६

× × × ×

पूजनीयो निकुम्भस्तु पिशाचाधिपतिर्बली ।
पिशाचानां च दातव्या बलयश्च सुसंस्कृताः ॥ 355 = १०७-१०८

× × × ×

चैत्रमासि सिते पक्षे पञ्चदश्यां द्विजोत्तम ।
योद्धुं याति निकुम्भस्तु पिशाचान्वालुकार्णवे ॥ 659 = ७८१

× × × ×

पिशाचं मृण्मयं कृत्वा काष्ठं च द्विजसत्तम :
गन्धैर्माल्यैस्तथा वस्त्रैरलंकारैश्च पूजयेत् ॥
भक्ष्यैश्च लोपिकापूपैर्मांसैः पानैस्तथैव च ॥ 66 = ७८३-७८४

× × × ×

निकुम्भे निर्गते ब्रह्मन् तथा चैवाप्यनागते ।
षण्मासमध्ये कर्तव्या यात्रा देवगृहे नृपैः ॥ 810 = १०१२-१०१३

× × × ×

कर्कोटनागपट्टकश्च श्येनो वहिलकाध्वरौ ।
क्षीरकुम्भो निकुम्भश्च विकुम्भः समरप्रियः ॥ 953 = ११०१-११०२

वर्णन आता है कि वे ६ मास हिमालय तथा ६ मास शाद्वल अर्थात् हरित भूमि में रहते थे ।

पिशाच का दैत्यों से सहयोग था । वे ६ योजन लम्बे बालुकार्णव के ओसिस में रहते थे । वर्णन किया गया है कि कुबेर ने पिशाचराज निकुम्भ को उक्त पिशाचों को नियन्त्रण में रखने के लिये आदेश दिया । निकुम्भ अपने पाँच कोटि पिशाचों के साथ उनसे युद्ध करता था । शेष समय वह हिमालय पर निवास करता था । कश्यप के शाप के कारण पिशाच ६ मास तक कश्मीर उपत्यका में निवास करते थे । चारों युगों के बीत जाने के पश्चात् वे कश्मीर उपत्यका से उत्पाटित हो गये और वहाँ नाग तथा मानव निवास करने लगे ।

हिमाचले तु षण्मासान् स सदा वसते सुखी । नी० ११० = २८३
नानादेशसमुत्थैस्तु ततः प्रभृति मानवैः ।
षण्मासान् वसते देशः षण्मासान् पिशिताशनैः । नी० २२७ = ३०२-३०३

राजतरंगिणी (४ : ७१०) में अश्वयुज का उल्लेख कल्हण ने किया है । पूर्णमासी के दिन करता

है। नीलमत में इस दिन के सम्बन्ध में एक प्रथा मिलती है। इस दिन लोग एक दूसरे पर कीचड़ फेंककर परिहास उत्सव मनाते थे कि पिशाच भय से भाग जाय। क्योंकि पिशाच इस दिन मानव घर में प्रवेश करना चाहता है। यह प्रथा लोग भूल गये है। लोप हो गयी है। कल्हण ने अश्वज वाली प्रथा का उल्लेख (७ : १५५१) में किया है। अलवेरुनी ने एक प्रथा का उल्लेख किया है। इसको 'पुहपी' कहते थे। उस दिन लोग परस्पर परिहास करते थे। पशुओं से खेलते थे। श्री स्तीन ने प्रकट किया है। 'पुहपी' शायद पिशाच का अपभ्रंश बन गया है। ऋग्वेद में पिशाची शब्द का उल्लेख एक बार किया गया है। अथर्व वेद में पिशाच शब्द का उल्लेख प्रेत के अर्थ में किया गया है। उसे मानव शत्रु रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। (२ : १८ : १–५; २ : १८ : ४; ४ २० : ६–९; ४ : ३६ : ४; ४ : ३७ : १०; ५ : २९: ४, ५, १४; ६ : ३२: २; ८ : २ : १२; १२ : १ : ५०)

अथर्व वेद (५ : २५ : ९) में पिशाचों को मांस भोजी बताया गया है। गोपाद ब्राह्मण (: १ : १ : १०) में पिशाचो के सम्बन्ध में पिशाच वेद तथा आश्वालायन श्रौत सूत्र (१० : ७ : ६) में पिशाच विद्या का उल्लेख है। उन्हें किमिदिन तथा यातुधान अथर्व वेद में कहा गया है।

तैत्तिरीय संहिता में वर्णन मिलता है। पिशाचों का उल्लेख असुरों तथा राक्षसों के साथ किया गया है। काठक संहिता (२७ : २४) में भी इसी प्रकार उल्लेख मिलता है। उन्हें देवों, मनुष्यों तथा पितरों का विरोधी बताया गया है।

देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्न सुर।
रक्षांसि पिशाचास्तेऽन्यतः।

—तैत्तिरीय संहिता काण्ड २ प्रपाठक ४ अनुवाक १

जैमिनी ब्राह्मण में पिशाच को स्पष्ट मानव रूप की संज्ञा दी गयी है। इक्ष्वाकु राजा त्रयारुण की माता पिशाच कन्या थी।

पिशाची वा इयं त्र्यारुणस्य जाया।

यही बात पंचविंश ब्राह्मण तथा शातायन ब्राह्मण में मिलती है।

बृहद्देवता में उन्हें मानव माना गया है। वे आर्यों के साथ विवाह सम्बन्ध करते थे :

अविदन्त पिशाची तां जाया तस्य च भूपतेः। ५ : १०
पिशाचीमदहत्वं स यत्र चोपविवेश ॥ ५ : २२

पुराणों में पिशाच वर्णन मिलता है। उन्हे राक्षस गन्धर्व और नाग जाति के साथ रखा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में उनके रूप तथा चरित्र का वर्णन किया गया है :

कपिशायाञ्च कूष्माण्डाञ्जज्ञिरे च पुनः पुनः।
मिथुनेन पिशाचांश्च वर्णेन कपिशेन तु ॥
कपिशत्वात् पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशना.।
युग्मानि षोडशाद्यानि वर्तमानस्तदन्यः ॥ (ब्रह्माण्डपुराण : ३ : ७ : ३, ४५)

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामन पुराण में नदियों के उल्लेख के समय एक 'पिशाचिका' नदी का भी उल्लेख आया है। यह नदी कहां थी अभी निश्चय नहीं हो सका है। राक्षस, गन्धर्व, दैत्य एवं

पिशाच एक वर्ग के माने जाते थे। उनमें तथा आर्य मानव में मुख्य भेद उनके रहन-सहन तथा व्यवहार में था। पिशाच जाति घुमन्तू जाति थी। उसका कोई निश्चित स्थान नही था। वे पशुओ के खाल पहनते थे। उनके केश लम्बे होते थे। वे खानाबदोश पर्वतीय जाति थे। उनके आचरण के विषय में ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लेख मिलता है।

> हीना देवैस्त्रिभिः पादैर्गन्धर्वाप्सरसः स्मृताः।
> गन्धर्वैस्यस्त्रिभिः पादैर्हीना गुह्यकराक्षसः।
> ऐश्वर्यहीना रक्षोभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः।
> एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च॥ (३ : ७ : १६७-१६८)

पिशाचों ने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था।

> पिशाचा दरदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह।
> मडका लडकाश्चैव तगणाः परतंगणाः।
> बाह्लिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत।
> एते जनपदा राजन् दक्षिणं पक्षमाश्रिता॥ ६ : ४६ : ४९-५०।

राजा दुर्योधन के पक्ष में पिशाच थे।

> त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः।
> शकाः कम्बोजबाह्लीका यवनाः पारदास्तथा।
> कुणिन्दास्तंगणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च समन्दराः।
> अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा।
> युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम्।
> शूरा पञ्चशतं राजा शैनेयं समुपाद्रवन्॥ ८ : ९० : १३ : १५।
> द्वितीये दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि।
> आसुरानकरोद् व्यूहान् पैशाचानथ राक्षसान्॥ ६ : १०४-११८।

प्रश्न उत्पन्न होता है। पिशाचों का जन्म स्थान तथा उनका प्रदेश कहाँ था। उनके निवास स्थान और जन्म भूमि के विषय में यथेष्ट प्रमाण प्राप्त हैं। उनसे उनके देश किंवा प्रदेश का निश्चित रूप प्रकट हो जाता है।

वायु पुराण पिशाचों का स्थान मेरु पर्वत के दक्षिण पिशाचक निश्चित करता है : उनका सम्बन्ध कुबेर से स्थापित किया गया है। दार्वरक, काश्मीरक औरसिक के साथ पिशाचों का उल्लेख इसे प्रमाणित करता है कि वे इन्हीं क्षेत्रों के समीप के रहने वाले थे।

> एकशृंगो महा[illegible] गजशैलपिशाचकाः।
> पञ्चशैलोऽथ [illegible]।
> [illegible] देवर्षिताः [illegible]।
> [illegible] दक्षिणे [illegible]॥ वायु पुराण

पिशाचके गिरिवरे हर्म्यप्रासादमण्डितम्।
यक्षगन्धर्वचरितं कुबेरभवनं महत् ॥ वायु० ३९ : ५७

मत्स्य पुराण भी महाभारत के समान पिशाचों का स्थान हिमवत् अर्थात् हिमालय मानता है। महाभारत उन्हें पंजाब तथा उत्तरीय हिमालय का निवासी मानता है।

रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतस्तु ते। ११४ : ८२

मत्स्य पुराण पिशाचों को कश्यप एवं कद्रू की सन्तान मानता है। (मत्स्य १७१ : ६१)

पाणिनि सूत्र के परिशिष्ट गण पाठ में अन्य ग्यारह जातियों के साथ पिशाचों का उल्लेख किया गया है। एक मत है कि राक्षस लोग उत्तरी बलूचिस्तान के चगायी जिला के रहने वाले राक्षनीस हैं। मरुत जाति इसी प्रकार बन्नू जिले को तहसील मरावत के निवासी थे। अवानी तथा कर्पपाण जातियाँ शिनिवारी तथा करदावुन पूर्वीय हिन्दुकुश क्षेत्र की रहने वाली कही गयी हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण तथा वायु पुराण क्रोधा को कन्या कपिशा का उल्लेख करता है। उसका अपर नाम क्रोधवशा है। वह पुलह की पत्नी थी। उसी की सन्तान पिशाच हैं। पिशाचों का स्थान ब्रह्माण्ड पुराण भी हैमवत मानता है।

पिशाचों के सोलह गणों का वर्णन मिलता है। किन्तु उनका वर्णन काल्पनिक प्रतीत होता है। (ब्रह्माण्ड ३ ७:३८१) उनके आकृति वर्णन से वे पर्वतीय प्रतीत होते हैं। (वायु : ४९ : २९२-९९) पुराणों में राक्षस, दैत्य, गन्धर्व, नाग जातियों के साथ उनका उल्लेख किया गया है (मत्स्यः १५२ : ८) वे राक्षसों से हीन श्रेणी के धन, सौन्दर्य, आदि में कहे गये हैं। (ब्रह्माण्ड : ३ ७ १६७–१६८)

महाभारत उनके स्थान के विषय में कहता है कि पिशाच लोग सरस्वती तट पर तपस्या निमित्त ठहर गये।

यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशांपते।
एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः।
तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये वत्तिपः।

महाभारत युद्ध में पिशाच कौरव तथा पाण्डव दोनों के पक्षों से युद्ध किये थे। उनके एक युद्ध का नामकरण उन्हीं के नामपर हुआ था। उनके विवाह प्रथा की महाभारत ने निन्दा की है। उनके धार्मिक कर्म काण्ड की भी निन्दा की गयी है जिसमें जीवित प्राणियों का वध किया जाता था। कुछ पिशाचों ने सरस्वती के तटपर तपस्या कर हिंसक प्रवृत्ति का त्याग किया था। महाभारत से प्रतीत होता है कि वे पंजाब तथा उत्तरी हिमालय क्षेत्र में रहते थे।

पिशाचों के साथ महाभारत में वर्णित सभी जातियों का ऐतिहासिक अस्तित्व ऐतिहासिकों ने मान लिया है। कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि पिशाचों को भी क्यों न ऐतिहासिक जाति माना जाय। पिशाचों के साथ दरद, पुण्ड्र, तंगण, परतंगण, वाह्लीक, चोल, पाण्ड्य, शक, कम्बोज, यवन, पारद, कुणिन्द, अम्बष्ठ आदि जातियों का उल्लेख मिलता है।

राजतरंगिणी (५ : ४६९) में उल्लेख मिलता है कि उनके नाम पर पिशाचपुर स्थान था निस्सन्देह उक्त स्थान पर पिशाचों की प्रचुर आबादी रही होगी।

उक्त प्रमाणों से निश्चय होता है कि वे मेरु पर्वत के दक्षिण में रहते थे। उनका निवास स्थान हिमालय पर्वतीय खण्ड था। ब्रह्माण्ड पुराणसे पता चलता है कि पिशाचक पर्वत मेरु के दक्षिण में है। मेरु वर्तमान पामीर

है। कश्मीर का पुराण इस दिशा का नीलमत है। अतएव उसमें यहां के रहने वाले पिशाचों का अत्यधिक मौलिक वर्णन होना स्वाभाविक है। इसलिये नीलमत के पिशाच मानव थे।' अन्य प्रमाणों ने उन्हें गाथा कालीन तथा काल्पनिक व्यक्ति अनभिज्ञता के कारण बना दिया है।

मेरु पर्वत के विषय मे तीन पर्वतों का नाम लिया जाता है। वर्तमान पामीर पर्वत, अफगानिस्तान का मरव पहाड़ी प्रदेश तथा उत्तरी ध्रुव।

मरुत को मरवत कहते हैं। यह जिला बन्नू मे मरवत तहसील है। हिन्दुकुश के पूर्वीय भाग में मरुत जाति का रहना कहा जाता है। मरवत तहसील को मरवत जाति प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित मरुत जाति है।

राक्षसों का निवास स्थान चघ्फो जिला बलूचिस्तान को उत्तर दिशा में था। उत्तरी बलूचिस्तान में रक्षानी एक बड़ा कबीला है। प्राचीन राक्षस वंश को संतानें हैं।

कपिशा पिशाचो की मातृ-भूमि कही जाती है। काफरिस्तान तथा उसके समीपवर्ती देश में उनके निवास का वर्णन मिलता है।

यशाई काफरिस्तान का एक कबीला है। यशाई शब्द पिशाच का अपभ्रंश मालूम होता है।

पंजाब के वाहीक पिशाचो के वंशज माने जाते है।

मिलिन्द पञ्ह से भी प्रकट होता है कि पिशाचों का निवास स्थान गान्धार कश्मीर उत्तर-पश्चिम भारत था।

उनके निवास स्थान के विषय में इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उत्तर कुरु, हिमवन्त, काश्मीर, पंजाब, काफिरिस्तान, पामीर पर्वत के दक्षिण तथा पूर्वीय हिन्दूकुश पर्वत माला मे रहते थे।

पिशाच मानव थे। सुर तथा असुर योनियो में पिशाच जाति को 'देवयोनयः' अमर कोशकार ने माना है।

> विद्याधराप्सरो - यक्ष – रक्षो – गन्धर्व – किन्नराः।
> पिशाचो गुह्यको सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।

अमरकोश १ : १ : ११

देवताओं को जाति के १० भेद माने गये है। वे है—(१) विद्याधर, (२) अप्सरस्, (३) यक्ष, (४) रक्षस्, (५) गन्धर्व, (६) किन्नर, (७) पिशाच, (८) गुह्यक, (९) सिद्ध, (१०) भूत। असुरो के १० भेद माने गये है :

> असुरा दैत्य-दैतेय-दनुजेन्द्रारि-दानवाः।
> शुक्रशिष्या दितिसुताः पूर्वदेवाः सुरद्विषः।

अमरकोश १:१:१२

(१) असुर, (२) दैत्य, (३) दैतेय, (४) दनुज, (५) इन्द्रारि, (६) दानव, (७) शुक्रशिष्य, (८) दितिसुत, पूर्व देव, (१०) सुरद्विप।

पिशाचों को असुर वर्ग में नही मानकर उन्हें देव वर्ग में रखा गया है। प्रश्न उपस्थित होता है। मानव ने पिशाच लोग हीन क्यों माने जाने लगे।

(१) पिशाच लोगो को विवाह प्रथा तिरस्कृत मानी गयी है। उसे दूषित कहा गया है। आठ प्रकार के विवाह—ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, तथा पिशाच—स्मृतियों ने माना

हैं। प्रथम चार प्रकार के विवाह विहित तथा शेष चार अविहित माने गये हैं। पिशाच विवाह अत्यन्त हीन तथा निकृष्ट कहा गया है। पति धोखा द्वारा कन्या को प्राप्त कर लेता है। कन्या को धोखा देकर विवाह करना सभी अवस्थाओं में अनुचित माना गया है। पिशाच विवाह की परिभाषा महाभारत आदि पर्व (७३:९-१२) में दी गयी है। कन्या को चुरा कर विवाह कर लेना पिशाच विवाह कहा गया है।

स्कन्द पुराण के विवाह संस्कार अध्याय बलपूर्वक कन्या का अपहरण कर विवाह करना पिशाच विवाह माना गया है।

ब्रह्माण्ड पुराण कहता है :

हीना देवा स्त्रिभिः पादै गन्धर्वाप्सरसः स्मृता ।
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिः पादैर्हीना गुह्यकाराक्षसाः ;
ऐश्वर्यैर्हीना रक्षोभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः ।
एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च ॥

३·७·१६७-१६८

आधुनिक लमगान प्राचीन लम्पक के पड़ोसी पशाई काफिर रहते थे। पिशाच भूमि कफरिस्तान में कुछ समय पूर्व तक कन्या भगा ले जाकर विवाह करना प्रचलित था। वे विवाह में अश्लील शब्दों का प्रयोग करते थे। तोरणों को तोड़ देते थे। उनके इन चरित्रों के कारण आर्य होते हुए भी शेष आर्यों ने उन्हें पिशाच की संज्ञा दी। मैंने पर्यटकों द्वारा लिखित उन्नीसवीं तथा बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक की सचित्र पुस्तकें देखी हैं। उनमें काफरिस्तान तथा चितराल के रहने वालों की तस्वीरें हैं। उनके रूप विचित्र हैं। लम्बे-लम्बे बाल हैं। वस्त्र मैला है। निस्संदेह यह लोग प्राचीन पिशाचों की संतान हैं। श्री एम. सी. दास का कहना है कि तिब्बत में अनेक स्थानों पर लड़कियों को पकड़कर विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। (एम. सी. दास जे. एम. एस. बी ४२.९ (२) पैशाची भाषा में पुत्र वधू को 'हनेवे' कहते हैं। उसका शाब्दिक अर्थ होता है मारखाने वाली औरत। महाभारत उन्हें न करने योग्य कामों को करने वाला कहता है। विहित कर्म यज्ञ पिशाच नहीं करते थे।

पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन। १३:२४१२; १:२९९५

(३) पिशाचों को पितरों का विरोधी बताया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वे पितरों का श्राद्धादि कर्म नहीं करते थे। अपितु श्राद्धों को नष्ट करते थे।

(४) पिशाच लोग युद्ध में शत्रुओं का रक्त पीते थे। उन्हें नरमास भक्षी कहा गया है। शत्रुओं के रक्त पीने की प्रथा तिब्बत में भी किसी समय प्रचलित थी। पिशाचों का देश तिब्बत की सीमा पर था अतएव यह प्रथा तिब्बत के प्रभाव के कारण पिशाचों अथवा पिशाचों के प्रभाव के कारण तिब्बत में प्रचलित हो गयी थी। भारतीय आर्य इस प्रथा को अत्यन्त घृणित मानते थे। पिशाच कच्चा मास खाते थे। सीमान्त प्रदेश के दरदिस्तान तथा चितराल पिशाचों का स्थान थे। वे कच्चा मांस खाते थे। डाक्टर लीतनर का कहना है। दो क़ाफिरिस्तान के काफिरों ने स्वीकार किया था कि उनके वहां यह रिवाज था कि शत्रु को मारकर उनका वे रक्त पीते थे। (जी. डब्लू. लीतनर : लैंगुवेज एण्ड रेसेस आफ दर्दिस्त।)

(५) उनका यौन सम्बन्ध अनुचित होता था।

(६) पिशाच भाषा आर्य भाषा थी। महाकवि गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में बृहत्कथा की रचना की थी। कश्मीरी महाकवि सोमदेव भट्ट ने उसे संस्कृत में कथासरित्सागर के नाम से लिखा है।

है। काश्मीर का पुराण इस दिशा का नीलमत है। अतएव उसमें वहाँ के रहने वाले पिशाचों का वास्तविक मौलिक वर्णन होना स्वाभाविक है। इसलिये नीलमत में पिशाच मानव थे। अन्य ग्रन्थों ने उन्हें गाथा कालीन तथा काल्पनिक व्यक्ति अनभिज्ञता के कारण बना दिया है।

मेरु पर्वत के विषय में तीन पर्वतों का नाम लिया जाता है। वर्तमान पामीर पर्वत, अफगानिस्तान का मरव पहाड़ी प्रदेश तथा उत्तरी ध्रुव।

मरुत् को मरवत कहते हैं। यह जिला बन्नू में मरवत तहसील है। हिन्दुकुश के पूर्वीय भाग में मरुत जाति का रहना कहा जाता है। मरवत तहसील को मरवत जाति प्राचीन समय से बसाये हुए है।

राक्षसों का निवास स्थान पख्तो जिला बलूचिस्तान की उत्तर दिशा में था। वस्तुतः बलूचिस्तान में रक्षानी एक बड़ा कबीला है। प्राचीन राक्षस वंश की संतानें हैं।

कपिशा पिशाचों की मातृ-भूमि कही जाती है। काफरिस्तान तथा उसके समीपवर्ती देश में उनके निवास का वर्णन मिलता है।

पशाई काफरिस्तान का एक कबीला है। पशाई शब्द पिशाच का अपभ्रंश मालूम होता है।

पंजाब के वाहीक पिशाचों के वंशज माने जाते हैं।

मिलिन्द पन्ह से भी प्रकट होता है कि पिशाचों का निवास स्थान गान्धार काश्मीर उत्तर-पश्चिम भारत था।

उनके निवास स्थान के विषय में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर कुरु, हिमवन्त, काश्मीर, पंजाब, काफिरिस्तान, पामीर पर्वत के दक्षिण तथा पूर्वीय हिन्दूकुश पर्वत माला में रहते थे।

पिशाच मानव थे। सुर तथा असुर योनियों में पिशाच जाति को 'देवयोनय:' अमर कोशकार ने माना है।

विद्याधराप्सरो - यक्ष – रक्षो – गन्धर्व – किन्नराः।
पिशाचो गुह्यको सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।

अमरकोश १ : १ : ११

देवताओं की जाति के १० भेद माने गये हैं। वे हैं—(१) विद्याधर, (२) अप्सरस्, (३) यक्ष, (४) रक्षस्, (५) गन्धर्व, (६) किन्नर, (७) पिशाच, (८) गुह्यक, (९) सिद्ध, (१०) भूत। असुरों के १० भेद माने गये हैं :

असुरा दैत्य-दैतेय-दनुजेन्द्रारि-दानवाः।
शुक्रशिष्या दितिसुताः पूर्वदेवा. सुरद्विषः।

अमरकोश १:१:१२

(१) असुर, (२) दैत्य, (३) दैतेय, (४) दनुज, (५) इन्द्रारि, (६) दानव, (७) शुक्रशिष्य, (८) दितिसुत, पूर्व देव, (१०) सुरद्विप।

पिशाचों को असुर वर्ग में नहीं मानकर उन्हें देव वर्ग में रखा गया है। प्रश्न उपस्थित होता है। मानव से पिशाच लोग हीन क्यों माने जाने लगे।

(१) पिशाच लोगों की विवाह प्रथा तिरस्कृत मानी गयी है। उसे दूषित कहा गया है। आठ प्रकार के विवाह—ब्रह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, तथा पिशाच—स्मृतियों ने माना

है। प्रथम चार प्रकार के विवाह विहित तथा शेष चार अविहित माने गये हैं। पिशाच विवाह अत्यन्त हीन तथा निकृष्ट कहा गया है। पति धोखा द्वारा कन्या को प्राप्त कर लेता है। कन्या को धोखा देकर विवाह करना सभी अवस्थाओं में अनुचित माना गया है। पिशाच विवाह की परिभाषा महाभारत आदि पर्व (७३:९-१२) में दी गयी है। कन्या को चुरा कर विवाह कर लेना पिशाच विवाह कहा गया है।

स्कन्द पुराण के विवाह संस्कार अध्याय बलपूर्वक कन्या का अपहरण कर विवाह करना पिशाच विवाह माना गया है।

ब्रह्माण्ड पुराण कहता है :

हीना देवा स्त्रिभिः पादै गन्धर्वाप्सरसः स्मृताः।
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिः पादैर्हीना गुह्यकराक्षसाः।
ऐश्वर्यहीना रक्षोभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः।
एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च॥

३:७:१६७-१६८

आधुनिक लमगान प्राचीन लम्पक के पड़ोसी पसाई काफिर रहते थे। पिशाच भूमि कफरिस्तान में कुछ समय पूर्व तक कन्या भगा ले जाकर विवाह करना प्रचलित था। वे विवाह में अश्लील शब्दों का प्रयोग करते थे। तोरणों को तोड़ देते थे। उनके इन चरित्रों के कारण आर्य होते हुए भी शेष आर्यो ने उन्हें पिशाच की संज्ञा दी। मैंने पर्यटकों द्वारा लिखित उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की सचित्र पुस्तकें देखी हैं। उनमे काफरिस्तान तथा चितराल के रहने वालों की तस्वीरें हैं। उनके रूप विचित्र हैं। लम्बे-लम्बे बाल हैं। वस्त्र मैला है। निस्संदेह यह लोग प्राचीन पिशाचों की संतान हैं। श्री एम. सी. दास का कहना है कि तिब्बत में अनेक स्थानों पर लड़कियों को पकड़कर विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। (एम. सी. दास जे. एम. एस. बी ४२ १ (२) पैशाची भाषा में पुत्र वधू को 'हनेवे' कहते हैं। उसका शाब्दिक अर्थ होता है मारखाने वाली औरत। महाभारत उन्हें न करने योग्य कामों को करने वाला कहता है। विहित कर्म यज्ञ पिशाच नहीं करते थे।

पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन। १३:२४१२; १:२९९५

(३) पिशाचों को पितरों का विरोधी बताया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वे पितरों का श्राद्धादि कर्म नही करते थे। अपितु श्राद्धो को नष्ट करते थे।

(४) पिशाच लोग युद्ध में शत्रुओं का रक्त पीते थे। उन्हें नरमांस भक्षी कहा गया है। शत्रुओं के रक्त पीने की प्रथा तिब्बत में भी किसी समय प्रचलित थी। पिशाचो का देश तिब्बत की सीमा पर था अतएव यह प्रथा तिब्बत के प्रभाव के कारण पिशाचों अथवा पिशाचों के प्रभाव के कारण तिब्बत में प्रचलित हो गयी थी। भारतीय आर्य इस प्रथा को अत्यन्त घृणित मानते थे। पिशाच कच्चा मांस खाते थे। [illegible] प्रदेश के दरदिस्तान तथा चितराल पिशाचों का स्थान थे। वे कच्चा मांस खाते थे। [illegible] का कहना है। दो काफिरिस्तान के काफिरों ने स्वीकार किया था कि उनके यहां [illegible] को मारकर उनका वे रक्त पीते थे। (जो. डब्लू. लीतनर : लेंगुवेज एण्ड रेसेज आफ [illegible]।)

(५) उनका यौन सम्बन्ध अनुचित होता था।

(६) पिशाच भाषा आर्य भाषा थी। महाकवि गुणाढ्य ने पैशाची [illegible] की थी। कश्मीरी महाकवि सोमदेव भट्ट ने उसे संस्कृत में [illegible] है।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार ११ भाषाओं की मूल पैशाची भाषा थी।

प्राकृत भाषा के वैयाकरणो ने पैशाची को भूत भाषा कहा है। पैशाची भाषा की समता संस्कृत तथा पाली भाषाओं से किया है। षड् भाषा चन्द्रिका तथा दोषकृष्ण की प्राकृत चन्द्रिका में एकादश भेद बताये गये है। प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा तुल्य पैशाची भाषा की कवियों ने प्रशंसा की है।

राजशेखर ने सास्वतेय पुरुष का वर्णन काव्य मोमांसा में किया है और शरीर की तुलना निम्नलिखित रूपक के साथ किया है :

शब्दार्थ—शरीर
संस्कृत—मुख
प्राकृत—बाहु
अपभ्रंश—जघन
पैशाची—पाद

चातुर्वर्ण का वर्णन करते हुए उपमा दिया है कि ब्राह्मण मुख, क्षत्री बाहु, वैश्य उदर तथा शूद्र पाद है उसी प्रकार राजशेखर ने संस्कृत की ब्राह्मण, प्राकृत को क्षत्री, अपभ्रंश की वैश्य तथा पैशाची की शूद्र से उपमा दी है। संस्कृत को सर्वश्रेष्ठ तथा पैशाची को निम्नकोटि की भाषा में रखा है। उक्त चारों भाषाओं को एक ही शरीर का विभिन्न अंग माना है। इस शरीर की आत्मा मूल आर्य वैदिक भाषा है।

अहो श्लाघनीयासि शब्दार्थौ ते शरीरं संस्कृत मुखं।
प्राकृत बाहु, जघन अपभ्रंशः पैशाचं पादौ ॥

भाषा का प्रयोजन अन्तर भावना को अभिव्यक्ति करना है। भाषा विचार का यान मात्र है। भाषा प्रयोजन मानव विचार को समझना है। एक ही अर्थ विभिन्न भाषाओं में विभिन्न उच्चारणों द्वारा प्रकट किये जाते हैं। उनका कार्य मानसिक भावना, विचार तथा प्रयोजन को प्रकट करना है। शरीर की उपमा शब्दार्थ से इसीलिए दी गयी है। शब्द किसी भाषा किसी लिपि में लिखा जाकर अर्थ का द्योतक होता है। अतएव राजशेखर ने शब्दार्थ को शरीर माना है। पैशाची भाषा को सरल भाषा की कोटि में रखा है।

'सुभव्योऽपभ्रंशः सरलरचनं भूतवचनम्।' इसी प्रकार गुणाढ्य कृत बृहत्कथा की भाषा के विषय में कहा गया है—भूतभाषामयी प्राहुरद्भुता ता बृहत्कथाम्।' मूलग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। इसकी निकटवर्ती पश्तो तथा दरद भाषायें है।

अपभ्रंश कवि 'अब्दुररहमान' ने 'संदेह रासक' में पैशाची भाषा की कविता का आदर पूर्ण शब्दों में उल्लेख किया है।

अवहट्टय सक्कय पाइअम्मि पेसाइ अम्मिभासाए लक्खणछन्दाहरणो सुकइत्तं भूतियं जेहि—।
भूत शब्द राक्षस तथा पिशाच के साथ जोड़ा गया है। 'भूत वचन' 'भूतभाषित' 'भौतिकी' आदि शब्द पैशाची भाषा के पर्याय स्वरूप वर्णन किये गये है।

भोजदेव ने उत्तम पात्रों को पैशाची भाषा बोलने का निषेध किया है—'नात्युत्तमपात्रप्रयोज्या पैशाची।

धनिक धनंजय ने 'दशरूपक' में पैशाची को नीच पात्रों द्वारा बोली जाने वाली भाषा कहा है।

पिशेल द्वारा पिशाच भाषा को जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा कहा गया है। मालूम होता है। पठित तथा सुसंस्कृत सभ्य समाज की भाषा संस्कृत मानी जाती थी। पश्चिम उत्तर हिमालय पर्वताश्रयी

प्रदेशों में बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली ग्रामीण भाषा पैशाची थी। आजकल राष्ट्रभाषा हिन्दी का रूप वह नहीं है जो भोजपुरी, मगधी, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश के ग्रामों में बोली जाती है। देश के अनुसार भाषा स्थानीय रूप ले लेती है। यह अवस्था मूल वैदिक भाषा की कालान्तर में हो गयी। वह विभिन्न स्थानों में विविध रूप लेकर स्थानीय रंग के साथ रंग पकड़ने लगी।

पैशाची भाषा को दरद भाषा भी कहा जाता है। यह उचित ही मालूम पड़ता है। नाग लोग कश्मीर के मूल निवासी थे। पिशाच कश्मीर के उत्तर-पश्चिम से आये थे। दरदिस्तान इस दिशा में पड़ता है। अतएव भाषा का पैशाची से साम्य,होना स्वाभाविक है।

पैशाची रूप चूलिका पैशाची है। पांचाल पैशाची तथा शौरसेनी पैशाची है। वररुचि ने प्राकृत प्रकाश में 'प्रकृतिः शौरसेनी' कहा है। शौरसेनी को पैशाची भाषा का आधार माना है। शौरसेनी भाषा व्रज मण्डल अर्थात् मथुरा के समीपस्थ प्रदेश में बोली जाती थी। आधुनिक खड़ी बोली की एक प्रकार से जनक मानी जाती है। शौरसेन में प्रचलित प्राकृत भाषा संस्कृत की अपभ्रंश के अतिरिक्त और क्या हो सकती है।

पैशाची भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुलता है। पुरुषोत्तम कहते है संस्कृत शौरसेन्यो विकृति :— (१९ : ३)। संस्कृत और शौरसेनी भाषा का प्रकृत रूप पैशाची भाषा है।

पैशाची भाषा के अक्षरों के उच्चारण में किंचित् अन्तर हो जाता है। पैशाची भाषा में 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग करते हैं। गुण को गुन, गणना को गनना कहते हैं। शुद्ध संस्कृत [illegible] पैशाची प्रचलित हिन्दी के बहुत समीप आ जाती है। संस्कृत के 'ह्व' के स्थान पर 'यिव' हो जाता है। 'व' का 'य', 'क' का 'ग', 'च' का 'ज', 'ज्ञ' का 'ञ्ज', उच्चारण होने लगता है।

चण्ड ने प्राकृतिक लक्षण में 'ण' के स्थान पर 'न' तथा 'र' के स्थान पर 'ल' होने का प्रयोग किया है। 'अरे' का 'अले', 'र्म' के स्थान पर 'म्म' प्रयुक्त होता है। जैसे 'धर्म' के स्थान पर 'धम्म'। 'गत्वा' के स्थान पर 'गन्तू' पंडित्व के स्थान पर 'पंडितून'। इसी प्रकार 'श' के स्थान पर 'ख' हो जाता है। 'फल' का 'फर' हो जाता है।

पिशाचराज निकुम्भ का वर्णन नीलमत पुराण में आता है। उसे कश्मीर के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में हाथ बँटाते देखते हैं। पिशाचराज निकुंभ से तथा चन्द्रदेव ब्राह्मण से सम्बन्ध अच्छा था।

मम वाक्यमनादृत्य यस्मादुष्टं प्रभाषथ।
तस्मात्पिशाचैः सहिता वरस्यध्वं नात्र संशयं ॥ 201 = २६७ २६८

× × ×

तत्र सन्ति पिशाचा ये दैत्यपक्षाः सदारुणाः।
तेषां [illegible] निग्रहार्थाय पिशाचाधिपतिर्बली ॥ 204 = २७७ २७८

× × ×

तत्र कोटयश्च पञ्चैव पिशाचानां दुरात्मनाम्। 207 = २८०

× × ×

न पिशाचैस्तु वत्स्यामो दारुणैर्दोहग्रिंयैः।
एवं ब्रुवति नागेन्द्रे नीलं विष्णुरमाषत ॥ 213 = २८६

× × ×

अल्पवीर्या पिशाचाश्च भविष्यन्तीह सर्वदा।
वीर्यापिता गमिष्यन्ति षण्मासं वालुकार्णवम् ॥ 215 = २८८

× × ×

पिशाचैः सह संपर्कस्तत्र नित्यं यदा नृणाम्।
सदा तेषां मतिः पापात्सततं नापसर्पति ॥ 244 = ३३१

× × ×

राजुपदेन तु यथा पक्षिणा नृपदारकाः।
वध्यमानाः पिशाचैस्तु निर्वेदं परमं ययौ ॥ 327 = ४२८

× × ×

हिमेन शीतेन तथा पिशाचैः संपीड्यमानो द्विजपुङ्गवर्यः।
यत्राम तत्रैव विमूढचेता भ्रमन्ययौ यत्र स नागराजः ॥ 328 = ४२९

× × ×

दैत्यदानवयक्षाश्च पिशाचाः राक्षसैः सह।
वर्जनीय तदा मांसं प्रयत्नादपि काश्यप ॥ 447 = ५५८, ५५७

× × ×

वेदोपवेदवेदाङ्गविद्यास्थानानि कृत्स्नशः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च तथैव गुह्यकासणी ॥ 586 = ७०७

× × ×

पूज्याः पिशाचाश्च तथा बलिपूर्वेण कर्मणाः।
देशानुसारः कर्तव्यो जनः कार्यैः स्वधिष्ठितः ॥ 837 = १००९-१०१०

पुराणों में निकुम्भ को इक्ष्वाकुवंशीय हर्यश्व राजा का पुत्र माना गया है।

विष्णु पुराण ४ : २ : १३; वायु पुराण ८८ : ६२; भागवतपुराण ९ :९ :२४–२५; मत्स्य पुराण १२ : ३३; पद्म पुराण : ८।

महाभारत निकुम्भ को प्रह्लाद का तृतीय पुत्र (आदि पर्व ६५ : १९) तथा एक विख्यात दानव (आदि पर्व ६५ : २६) और हिरण्यकश्यप के कुल में उत्पन्न सुन्द उपसुन्द के पिता रूप में चित्रित करता है। (आदि पर्व २०८ : २–३), शल्य पर्व (४५ : ५६) के अनुसार यह स्कन्द का एक सैनिक था। रामायण में निकुम्भ एक राक्षस योद्धा था। इसका वध नील ने किया था। (वाल्मीकीय रामायण युद्ध काण्ड ७७)। निकुम्भ नाम के अनेक व्यक्तियों का उल्लेख पुराणों में आया है। परन्तु इक्ष्वाकुवंशीय

निकुम्भ के स्थलों के अतिरिक्त सभी राक्षसादि वर्ग में रखे गये हैं। कश्मीर के नीलमत पुराण ने उसे पिशाचवंशीय माना है।

पिशाच आर्य जाति की एक शाखा है। पर्वतीय प्रदेशों में निवास करती थी। हिन्दूकुश, कपिशा, कफरिस्तान, गान्धार, चितराल, कश्मीर के उत्तर तथा पामीर के दक्षिण बिखरे हुए थे। उनके रूप का वर्णन तथा उनका चित्र पर्यटकों ने उक्त क्षेत्रों के लोगों का उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लिया है। उसे देखने से स्पष्ट होता है कि वे प्राचीनकालीन पिशाच जाति के वंशज हैं। उनका लम्बा बाल रखना, धर्म के प्रति कम आस्था, स्नानादि से दूर रहना, अश्लील शब्दों का विवाह काल में प्रयोग, कन्या को भगा ले जाकर विवाह कर लेना यह सब बातें कुछ दिन पूर्व तक प्रचलित थी। वे खाल के नमस्तीन आदि पहनते हैं। पोस्तीन अर्थात् भेंड़ों के कोमल बाल वाले खालों के वस्त्र तथा टोपी साधारणतया प्रयोग करते हैं। कच्चा मास पूर्वकाल में खाते थे। घुमन्तू जाति थे। जानवरों को पालना मुख्य उद्यम था।

मैं अक्टूबर मास मे कश्मीर दो बार इसका अध्ययन करने के लिए गया। मैंने देखा कि नीलमत में वर्णित प्रथा अभी तक चली आती है। बकरियों, भेंड़ों, जानवरों और टट्टुओं पर समस्त गृहस्थी रखे वे शीत ऋतु मे पर्वतों से नीचे मैदान में उतरते हैं। उनके बाल लम्बे होते हैं। मुसलमान धर्म स्वीकार कर लेने के कारण उनके पूर्व जीवन में विशेष परिवर्तन हो गया है। परन्तु उनका रहन-सहन, उनका व्यवहार, उनकी भाषा पैशाची से मिलती है।

पिशाच जाति आर्यों की शाखा होने पर भी अपने कर्मों के कारण, सभ्य समाज से दूर होने के कारण, शेष भारत से कालान्तर में सम्बन्ध न होने के कारण, दुर्गम शीत प्रधान उपत्यकाओं में रहने के कारण आर्य धर्म पालन में तथा युग के साथ चलने में असमर्थ हो गयी। उनके कर्मों के कारण उनका नाम पिशाच रख दिया गया।

वायु पुराण (अ० ९७ : ५५) के अनुसार—ब्रह्मा ने सर्व प्रथम देव, असुर, पित्र तथा प्रजा नामक चार प्रकार की सृष्टि की। स्थावर-चरादि अन्यान्य भूतों को उत्पन्न किया। यक्ष, पिशाच, नर, किन्नर, अप्सरा, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थावर, जंगम आदि समस्त पदार्थों को बनाया।

भगवान् शंकर देवी पार्वती के साथ कैलास पर थे। वहां विविध रूप धारण करने वाले नाना प्रकार के भूत, भयंकर मायावी पिशाच, अनेक प्रकार के अस्त्रों से सुसज्जित अग्नि तुल्य दीप्त भगवान् की सेवा कर रहे थे।

वायु पुराण (अ० ३१) में देव वंश का वर्णन है। उसमें असुर, सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस, पित्र तथा नासत्य आठों को देव योनि माना गया है। वायु पुराण (३९ : ५७) में पिशाच नामक गिरि का वर्णन किया गया है। उस पर कुबेर का भवन है। उसने कोठे तथा छत थे। यक्ष तथा गन्धर्व विचरण करते थे। अध्याय ४२ : ३१ में पिशाचक पर्वत का वर्णन पुनः अलखनन्दा नदी के प्रसंग मे किया गया है। अलखनन्दा समुद्र की ओर हिमालय से गिरती, बहती जाती है। नदी का रंग इस यात्रा में स्थान भेद से परिवर्तित हो जाता है। वह ताम्राभ से श्वेतोहर, सुमूल, वसुधा, हेमकूट, देवशृंग, शैलश्रेष्ठ पिशाचक, पंचकूट, देव निवास, कैलास के शिखर कन्दरामय पार्श्व देश से बहती; अचलोत्तम हिमालय पर गिरती; शैलों, स्थलों को सींचती, वनों एवं कन्दराओं को आर्द्र करती, दक्षिण समुद्र में गिरती है।

पिशाचो के रंग रूप तथा आचरणों पर वायु पुराण (६९ : २५७–२७९) प्रकाश डालता है—'पिशाचो का जन्म कपिशा कूष्माण्डी तथा कूष्माण्ड के संयोग से हुआ था। पिशाचों का रंग कपिश अर्थात् भूरा था। कपिश वर्ण होने के कारण उन्हें पिशाच कहा गया। वे मांसाहारी थे। अन्य सोलह पिशाच दम्पति हैं। उनके वंश वर्तमान हैं। वे सब कूष्माण्ड के कुल के हैं। इन कुलों में उत्पन्न होने वाले पिशाच जाति के हैं।

'उनकी आकृति वीभत्स है। निंद्य कर्म करने वाले हैं। उनके शरीर पर बाल होता है। नेत्र गोल होते हैं। दांत तथा नख कड़े होते हैं। अंग टेढ़े-मेढ़े होते हैं। मनुष्य का भक्षण करते हैं। उनका मुख झुका रहता है।

'कूष्माण्डिक जाति के पिशाच को केश नहीं होता। उनके शरीर पर रोमावलियाँ नहीं दिखाई पड़ती। चमड़ा, पत्तों आदि वस्त्र की जगह लपेटे रहते हैं। मांस तथा तिल का आहार करते हैं।

वक्र जाति के पिशाचो के अंग, हाथ, पैर टेढ़े होते हैं। चलते समय वह टेढ़ीमेढ़ी चाल चलते हैं। वक्रगामी हैं। इच्छानुसार रूप धारण करते हैं।

निःकुन्दक जाति के पिशाचो की नासिका उठी रहती है। पेट लम्बा होता है। शरीर छोटा होता है। सर छोटा होता है। हाथ छोटा होता है। तिल भक्षण करते हैं। उनके कान सुन्दर होते हैं।

अनर्क पिशाच बौने होते हैं। बहुत बोलते हैं। उछल-उछलकर चलते हैं। वृक्षों पर निवास करते हैं। वृक्षों पर ही आहार करते हैं।

पांशु पिशाच ऊर्ध्व बाहुधारी होते हैं। रोम ऊपर उठे होते हैं। आवास ऊपर उठे होते हैं। अंगों से धूल गिराते चलते हैं।

उपवीर पिशाच सूखे होते हैं। मूँछ-दाढ़ी रखते हैं। चीर धारण करते हैं। श्मशानो में निवास करते हैं।

उलूखल पिशाचों की आँखें निश्चल होती हैं। उनकी जिह्वा लम्बी होती है। जीभ से ओठ चाटते रहते हैं। हाथी तथा ऊँट की तरह उनका सिर मोटा होता है। विरत तथा समूह बांधकर झुण्ड में चलते हैं।

कुम्भपात्र पिशाच बिना देखे अन्न का भोजन करते हैं। सूक्ष्म आकृति वाले होते हैं। शरीर पर रोमावली होती है। पीत वर्ण होते हैं।

निपुण पिशाचो के मुख कानों तक फैले होते हैं। भौंहे लम्बी होती हैं। नाक मोटी होती है।

पूरण पिशाच शून्य भवनो में निवास करते हैं। शरीर मोटा होता है। हाथ-पैर बहुत छोटे होते हैं। आँखें पृथ्वी पर लगी रहती हैं। बालको का भक्षण करते हैं। सूतिका गृहो का सेवन करते हैं।

मांसभक्षी पिशाचगण के हाथ-पैर पीछे की ओर झुके रहते हैं। कद छोटा होता है। वायु के समान वेगशाली होते हैं। युद्ध भूमि में रक्त का पान करते हैं।

स्कन्दी पिशाच नग्न रहते हैं। खानाबदोश होते हैं। उनके केश लम्बे होते हैं। पिण्डाकार प्रतीत होते हैं।

अन्य पिशाचगण उच्छेदनकारी होते हैं।

पिशाचों के रहन-सहन तथा जीविका का उल्लेख वायु पुराण (६९ : २८० २८८) करता है—'विभिन्न आकृति एवं गुण-दोष युक्त पिशाचगण अल्प बुद्धि तथा दीन थे। वे प्रातः तथा सायंकाल विचरण किया करते थे। गिरे पड़े, खण्डहरो, जहाँ बहुत कम लोग रहते हैं, जहाँ दुष्ट निवास करते हैं, जो मकान लीपा पोता नहीं जाता, बेमरम्मत रहता है, वहाँ वे निवास करते हैं।

वायु पुराण (१०१–२८) में सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यों को पृथ्वी लोक का निवासी बताया गया है।

राजमार्ग, वीथियों, गृह समीपस्थ उपवन, चौराहा, चबूतरा, द्वारदेश, निर्भय अट्टालक, एकान्त आवास, पथ, नदी, तीर्थ, देवो तथा देवताओं के कल्पित निवास, वृक्ष, महापथ अर्थात् स्मशान मार्ग आदि पिशाचो के निवास स्थान है। अधार्मिक, वर्णाश्रम, मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, वर्णसंकर, शिल्पी है। देवताओं ने इनके कर्मों की आजीविका पिशाचों के हेतु बनाया है। चोरी, विश्वासघात, कुत्सित साधनों द्वारा धनोपार्जनादि कर्म पिशाचों के कहे गये है। मधु, मास, दही, तिल, चूर्ण, मदिरा, आसव, धूप, हरिद्रा, खिचड़ी, तेल, मोथा, गुड़, भात, काला वस्त्र, धूम तथा पुष्पों द्वारा पर्वो की संधियो के अवसर पर पिशाचों को बलि देना चाहिए अर्थात् उक्त खाद्य पदार्थ पिशाचों के प्रिय हैं।

पिशाचों का प्रलय काल मे किस प्रकार नाश होगा इसका वर्णन वायु पुराण (११ : १५९) में किया गया है। प्रलय काल मे महान् संवर्तक की ज्वालाएं सहस्रों, अरबों योजन ऊपर उठती है। गन्धर्वो, पिशाचों एवं राक्षसो के आश्रमों को सर्वांशतः भस्म करने के उपरान्त गोलोक को भी वह भस्म कर देती है।

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार पिशाच राक्षसो से तीन स्थान निम्न थे अर्थात् राक्षस पिशाचो से तीन स्थान ऊँचे थे। राक्षसों में उतनी आचरण तथा आचारहीनता नही थी जितनी पिशाचों मे थी। (३ : ७ : ३७६–४११; २ : ३२ : १–२; ३५ : १९१)

पिशाच श्राद्ध तथा पितृ पूजन विरोधी थे। ब्रह्माण्ड पुराण (३ : ११ : ८१) में वर्णन मिलता है कि वे श्राद्धों को नष्ट करते थे। इसी पुराण (३ : ७ : २ : ५६) में वर्णन है कि रावण ने पिशाचों को पराजित किया था।

पिशाचों के स्वामी शिव कहे गये है। ब्रह्माण्ड पुराण (२ : ३२ : १–२, ३५, १९१) में इसका उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण (८ : ५) कहता है कि जगत् पितामह ब्रह्मा ने जिस समय सृष्टि की रचना समाप्त की तो पृथ्वी मण्डल राजा पृथु को दिया। उन्होने किसी न किसी को सबका अधिनायक किंवा स्वामी बनाया। पिशाच, राक्षस, भूत, प्रेत, वैताल तथा यक्षों का अधिनायक किंवा स्वामी शूलपाणि को बनाया।

भागवत पुराण (१ : १५ : ४३) में चीर वस्त्र धारण, मौन, केश खोलकर बिखेर लेने की उपमा जड़, उन्मत्त पिशाच से दी गयी है। भागवत मे विराट रूप का वर्णन (: ६ : ४३) करते हुए प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड का उल्लेख एक साथ कर उन्हें एक वर्ग में रखा गया है। कूष्माण्ड पिशाचो से अलग नही किन्तु वायु पुराण की तरह पिशाचों की एक शाखा है। (६ : ८ : २५)। यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस को एक ही वर्ग में रखा गया है तथा उन्हें भयावना कहा गया हैं। (१० : ६ : २७) डाकिनी, राक्षसी, कूष्माण्ड को बालग्रह कहा गया हैं। वायु पुराण में पिशाचो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे शिशुओ के शत्रु होते हैं। उसी के लिये भागवत ने 'बालग्रह' शब्द का व्यवहार किया हैं। यहाँ भी भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक एक ही वर्ग मे रखे गये है। भागवत पुराण (१० : ८५ : ४१) में दैत्यराज बलि ने कृष्ण को कहा हैं—'हम और हमारे समान अन्य दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथनायक आदि आपसे प्रेम करना दूर रहा सर्व दृढ वैर भाव रखते हैं।' यहाँ पर बलि ने स्पष्ट कहा है कि पिशाच कृष्ण किंवा विष्णु भक्त नही थे।

इस मत की पुष्टि भागवत पुराण (१० : ६३ : १०–११) से होती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने धनुष के तीखे नोकवाले बाणों से शंकर जी के अनुचरों—भूत, प्रेत प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, बेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड एवं ब्रह्मराक्षसों को मार कर [illegible] दिया था। पिशाच शंकर के अनुचर थे। शंकर की सेना मे थे। श्रीकृष्ण तथा शंकर के युद्ध मे शंकर के पक्ष से श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया था।

भागवत पुराण (१२ ३ :४०) में कलियुग काल की समानता पिशाचों से करते हुए कहा गया है—'कलियुग मे प्रजा शरीर ढँकने के लिए वस्त्र, पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए रोटी, तृष्णा तृप्त करने के लिए जल, शयन निमित्त २ हाथ भूमि से भी वंचित हो जाती है। उन्हें दाम्पत्य जीवन, स्नान, आभूषण, पहनने तक की सुविधा नहीं रहती। लोगों की आकृति प्रकृति तथा चेष्टाएँ पिशाचों के समान हो जाती है।'

स्कन्द पुराण काशी खण्ड के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। उत्तरार्द्ध में पिशाच का वर्णन आता है। काशी मे पिशाच मोचन तीर्थ है। इसमें पिशाच के सम्बन्ध में एक कथा दी गयी है। यह स्कन्द, कुम्भज तथा पिशाच के प्रश्नोत्तर रूप मे है। कपर्दीश्वर में एक तपस्वी थे। वे हेमन्त ऋतु मे एक समय कपर्दीश्वर लिंग के समीप पूजा कर रहे थे। उन्हें विमलोदक कपर्दीश्वर सरोवर के तट पर एक भयंकर मूर्ति का दर्शन हुआ। भयंकर मूर्तिधारी पिशाच ने सानुनय तपस्वी से कहा—प्रतिष्ठान नामक एक देश है। मैं वहाँ का तीर्थ पुरोहित था। वृक्ष-जलहीन मरुस्थल मे बहुत समय व्यतीत किया। तीर्थो मे दान लेने के कारण पिशाच योनि में जन्म हुआ। मैंने मरुभूमि में एक बालक को देखा। मैं उसके शौचहीन, सन्ध्या कर्मविहीन देह में भोगेच्छा के कारण प्रविष्ट हो गया। वही बालक कनकाशा से काशी आया। काशी मे पिशाच का प्रवेश नहीं हो सकता था। मुझे बालक का शरीर त्यागना पड़ा। मैं उस बालक की प्रतीक्षा में काशी के बाहर बैठा था। मैंने एक काषायधारी संन्यासी देखा। इच्छा हुई। उसे मारकर अपनी क्षुधा शान्त करूँ। उसने शिव का नामोच्चारण किया। शिव का नाम कान में पड़ते ही मेरे पूर्व संचित पाप धुल गये। मैं काशीपुरी में प्रवेश करने योग्य हो गया। संन्यासी के साथ अन्तर्गृहो की सीमा में पहुँचा। संन्यासी ने भी भीतर प्रवेश किया। मैं यहाँ रुका। तपस्वी ने पिशाच को कपर्दीश्वर तीर्थ म स्नान करने के लिए कहा। उत्तर दिया जलाधिष्ठाता देव उसकी सर्वदा रक्षा करते थे। अतएव वह स्नान करने में असमर्थ हुआ। तपस्वी ने उसे भस्म लगाकर स्नान करने के लिए कहा। भस्म धारण कर पिशाच ने स्नान किया। वह दिव्य देहधारी हो गया।

'उस दिन से उस तीर्थ का नाम पिशाच मोचन तीर्थ हो गया। उसने कहा। यहाँ स्नान करने से पिशाच योनि छूट जायगी। यहा श्राद्ध करने से पितर उत्तम योनि को प्राप्त होंगे। अगहन सुदी चतुर्दशी के दिन पिशाच मोचन में स्नान करने वाले कभी पिशाच योनि को प्राप्त नहीं होंगे।

इस कथा से दो बातें सिद्ध होती है। पिशाच से दिव्य मनुष्य हुआ जा सकता है। उसके लिए शिव की आराधना तथा भक्ति आवश्यक है। भस्म धारण करना शैव धर्म का सबसे बड़ा चिह्न है। भस्म धारण करने के पश्चात् अर्थात् शैवमत ग्रहण करते ही पिशाच पापों से मुक्त हो जाता है। उसके लिए अपना आचरण बदलना आवश्यक होता है। यहा स्नान, नरमांस भक्षण तथा पितृ श्राद्ध तीन बातो पर जोर दिया गया है। पिशाच अफ्रीका की अनेक मानव जातियों की तरह मांस भक्षण करते थे। स्नान न करने के कारण गन्दे रहते थे। तथा पितृ श्राद्ध को नहीं मानते थे। इन तीनों कर्मों के त्याग पर पुनः दिव्य मनुष्य योनि प्राप्त कर

सकते थे। उनका योनि सम्बन्ध भी दूषित था। वे विपरीत मिथुन करने के कारण भी पिशाच माने गये थे जिसका निषेध शास्त्र करता था। यही कारण है कि पिशाच काशी में प्रवेश अपने आचरण के कारण नहीं कर सका।

अग्नि पुराण (५१ : १८) पिशाचों की प्रतिमा-लक्षण का वर्णन करता है। हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व अध्याय ७९ तथा ८० में पिशाचो के आचार व्यवहार, भाषा तथा जाति का वर्णन है। हरिवंश पुराण में वर्णन मिलता है—

पिशाच विकृतानन थे। उनके रोम पिंगल वर्ण थे। जिह्वा दीर्घ थी। महा हनु थे। लम्बा केश थे। विरूपाक्ष थे। ही-ही-ही कहकर बात करते थे। मांस पिटक खाते थे। बहुत रुधिर पीते थे। विशालकाय थे। कृशोदर थे। शूलों में मुण्ड धारण किये हुए थे। अपने भुजाओं से यत्र-तत्र शव खींच लाते थे। वे प्राकृत बोलते थे। दांत कटकटाते थे। कुत्तों का झुण्ड उनके साथ रहता था। प्राणियों की हत्या पर तुले रहते थे। (हरिवंश पुराण भविष्य पर्व ७८ : १-६ तथा १७-१९)

'भगवान् श्रीकृष्ण हिमालय स्थित बद्री नारायण के पुण्य क्षेत्र में थे। उनके सम्मुख मांसभक्षी दीपिकाधारी, महाघोर पिशाच आया। भगवान् ने उसका परिचय पूछा। घण्टाकर्ण ने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं घण्टाकर्ण नामक पिशाच हूँ। मैं हिंसक हूँ। मैं मांसभक्षी हूँ। मैं विकृतास्य हूँ। रुद्र के सखा कुबेर का अनुचर हूँ। मेरे साथ मेरा अनुज है। पिशाचो की सेना मेरी है। कुत्तों का समूह मेरा है। भूतसेवित कैलास है। मैं यहाँ आया हूँ। मेरे कर्णों में घण्टा है। उससे ध्वनि होती रहती है। इसी कारण मेरा नाम घण्टाकर्ण पड़ गया है। मैं शंकर की आराधना करता हूँ।'

(हरिवंश : भविष्य खण्ड ८० : १, २४-२७)

'कृष्ण के प्रश्नों का उत्तर देकर घोर रूप विकृतानन पिशाच ने बहुत रुधिर पीकर इच्छानुसार मांसादि भोजन किया। अपने पार्श्व में अतड़ियों का विशाल मांस रख लिया। कृष्ण आसन पर जल छिड़कर शुद्ध किया। समीपवर्ती कुत्तापालक वह पिशाच वहा से कुत्तों को दूर हटाकर समाधि लगाने का प्रयास करने लगा।

(हरिवंश पुराण : भविष्य खण्ड ८० : ५४-५७)

सर्व श्री अल्डेन वर्ग, मेकडोनेल, कीथ, लकोटे, तथा स्टेन कोनो पिशाच शब्द का अर्थ असुर, दैत्य तथा राक्षस लगाते हैं। मेकडोनेल तथा कीथ का मत है कि कालान्तर में पिशाच शब्द विरोधी जाति के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा था। श्री ए० हिले ब्राट का मत है कि वह शत्रु जाति थी जो आगे चलकर परम्परागत भूत हो गयी थी। पारजिटर का मत है कि उनको असुर तथा पैशाची किंवा राक्षसी प्रकृति उनके वास्तविक रूप का विपर्यय है। श्री ग्रीयर्सन का मत है कि वे एक जाति थे जो उत्तर पश्चिम में निवास करते थे।

किन्नर

परिशिष्ट 'ढ'

(तरंग १ : १९९ : पृष्ठ २५९)

हिमाचल प्रदेश में किन्नर क्षेत्र है। कन्नौरी, गलचा, लाहौली, भाषा है। इन्हें देव एवं मनुष्यों के मध्यवर्ती या एक प्राणी बनाकर प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक जाति का रूप दे दिया गया है। पुराण तथा महाभारत में उनका वर्णन मिलता है। महाभारत में उन्हें गन्धर्व विशेष कहा गया है अतएव किन्नर जाति गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धादि वर्ग की है। 'किन्नर' शब्द के अर्थ से स्पष्ट होता है। उनकी योनि तथा आकृति पूर्णतया मनुष्य सदृश नहीं होती थी। उन्हें अश्वमुख तथा तुरंगवक्त्र कहा गया है।

कादम्बरी आदि में उनके चरित्र निवास, क्रिया कलाप का वर्णन मिलता है। मंगोल तथा आर्य रक्त मिश्रण के कारण कालान्तर में उनके रंग रूप में अन्तर पड़ता गया है। मंगोल जाति के मुखपर बाल प्रायः नहीं होते। तिब्बत के स्त्री तथा पुरुषों में आकृति से पहिचान लेना कि कौन पुरुष तथा स्त्री है कठिन हो जाता है। दलाई लामा के तिब्बत से चीन द्वारा निष्कासित किये जाने पर तिब्बती शरणार्थी भारत में आने लगे। उनके प्रबन्ध से मैं सम्बन्धित था। उनमें स्त्री पुरुष दोनों चोटी रखते थे। उनका पहनावा एक सा था। उन्हें पहिचानने में कठिनता होती थी। कौन पुरुष और कौन स्त्री है। लद्दाख प्रदेश की प्रथम यात्रा में सन् १९५३ में मुझे इसी प्रकार का अनुभव हुआ। वहाँ पर स्त्री पुरुष एक प्रकार का वस्त्र पहनते हैं। चोटी रखते हैं। अतएव पहचानना कठिन हो जाता है। परन्तु अपनी दूसरी सन् १९६३ की यात्रा में देखा कि आधुनिक जगत् की हवा लद्दाख क्षेत्र तक पहुँच गयी है। पुराने वस्त्रों के स्थान पर नवीन वस्त्र स्त्री तथा पुरुष पहनने लगे हैं। पुरुष प्रायः चोटी नहीं रखते। अतएव स्त्री पुरुष का भेद आसानी से अब किया जा सकता है।

पुराणों के आख्यान में सत्यता प्रकट होती है कि मनुकी पुत्री इला किम्पुरुष रूप में परिवर्तित हो गयी थी। इस पौराणिक गाथा का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इला का रूप किन्नरी जैसा था। वह दिन में पुरुषों की वेश भूषा में पुरुष तथा रात्रि में स्त्रियों की वेशभूषा में स्त्री लगने लगती थी। आज कल योनि परिवर्तन अर्थात् पुरुष को स्त्री तथा स्त्री पुरुष हो जाने के समाचार मिलते हैं। परन्तु इला के आख्यान में उसका रूप नित्य बदलना मिलता है। यह सम्भव नहीं मालूम होता।

किन्नरों की उत्पत्ति के विषय में दो मत है। एक मत है कि वे ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पाद अंगुष्ठ से उत्पन्न हुए थे। दूसरा मत है वे ऋषि कश्यप तथा अरिष्टा की सन्तान थे।

अमरकोषकार उन्हें दशदेव योनियों में रखता है—

विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

स्वर्ग वर्ग :१: ११

अमरकोषकार इन्हें उत्तरीय भारत वर्णित पर्वतीय जातियों के साथ रखता है। वे हिमालय तथा हेमकूट में निवास करते थे।

उन्हें—'किन्नरा अश्वादिमुखा नराकृतयः' कहा गया है। यहाँ अश्व तथा नर शब्द का अर्थ लगाना चाहिए कि उनकी मुखाकृति अश्व के समान लम्बी तथा शरीर मनुष्याकृति था। उन्हें अलौकिक प्राणी मानना उचित नहीं है। वे मनुष्य जैसे प्राणी हैं। आर्यों को आकृति में तथा उनकी मुखाकृति मे उसी प्रकार अन्तर है जैसे मंगोल तथा आर्यों में होता है। तिब्बतियों तथा लद्दाखियो के मुख लम्बे होते हैं। परन्तु अब अत्यधिक रक्त रक्षण तथा मिश्रण के कारण इसमें भी अन्तर पड़ता जाता है।

(१) किन्नर (२) किम्पुरुष (३) तुरगवदन तथा (४) मयु चार नामों से किन्नरों का वर्ग किया है। वे कभी पर्यायवाची शब्द थे यथा :

'स्यात् किन्नरः किम्पुरुषस्तुरंगवदनो मयुः।

अमरकोषः व्योम वर्ग :२:७४:

किम्पुरुष पुराणों के अनुसार एक वर्ष था। यह हिमालय प्रदेश के उत्तरी भाग में था। तुरग वदन अर्थात् अश्वमुख का अर्थ बड़ा लम्बा मुख लगाना चाहिए। जिसकी मुख-आकृति अश्व तुल्य लम्बी थी। मयु नामक एक जाति आज भी भारत में मिलती है। वह अमरकोषकार की परिभाषानुसार किन्नर वर्ग की उपजाति थी।

किम्पुरुष वर्ष लद्दाख, हिमाचल के उत्तरीय आचल से तिब्बत तक का सीमावर्ती क्षेत्र था। तिब्बत का प्राचीन नाम किम्पुरुष वर्ष तथा कालान्तर में त्रिविष्टक पड गया था। वर्षों, देशों तथा प्रदेशों की सीमाएं बनती और बिगड़ती रही हैं। परन्तु उनकी जो दिशा पुराणो महाभारत तथा रामायण में दी गई है वह कुछ हेर-फेर के साथ मूलतः ठीक मिलती हैं।

धवलागिरी से और आगे हिमालय की उत्तर दिशा में यह वर्ष था। महाभारत सभा पर्व में उल्लेख मिलता है। देश द्रुमपुत्र से सुरक्षित था। इसका विजय अर्जुन ने किया था। इससे वह स्थान तिब्बत प्रमाणित होता है। क्योंकि तिब्बत हिमालय के उत्तर मे है।

॥ श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान्।
देशः किम्पुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम् ॥ सभा पर्व २८:१-२

शान्ति पर्व में उल्लेख मिलता है। वह जम्बू द्वीप का एक खण्ड था। भारतवर्ष के समान जम्बू द्वीप का किम्पुरुष एक वर्ष था। इसे हैमवत भी कहते थे। हैमवत इस लिए कहा गया है कि यहाँ की नदी में पिपीलिका अर्थात् हेम (स्वर्ण) कण मिलते थे। आज भी मिलते हैं।

कुबेर लंकापुरी त्याग कर किम्पुरुषों के साथ आकर गन्धमादन पर्वत पर निवास करने लगे थे। गन्धमादन पुराणों में वर्णित एक पर्वत है इसकी स्थिति इलावर्त तथा भद्राश्व खण्ड के मध्य कही गयी है। वर्णन मिलता है कि पर्वत पर सुगन्धित पादपों को अवलियाँ लगी थी। गन्धमादन का नाम सप्त पर्वतों में एक है।

हिमवान्निषधो विन्ध्यो माल्यवान्पारियात्रकः।
गन्धमादनमन्ये च हेमकूटादयो नगाः ॥ ३:३ अमरकोष, शैल वर्ग

(१) हिमालय (२) निषध, (३) विन्ध्य, (४) माल्यवान् (५) पारियात्र (६) गन्धमादन तथा (७) हेमकूट सप्त पर्वत कहे गये हैं। गन्धमादन को हेमकूट के साथ रखा गया है। गन्धमादन पर्वत

तिब्बत के दक्षिण में स्थित है। इस प्रकार निश्चय पर पहुँच सकते है। तिब्बत की पश्चिमी सीमापर इसे होना चाहिए। यह स्थान लद्दाख का पर्वीय तथा हिमाचल प्रदेश का उत्तरीय अंचल होता है। हिमालय में स्थान का होना निश्चय हो जाता है। बद्रीनाथ से लेकर लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती स्थान तक इस पर्वत का होना बैठता है। तिब्बत का उत्तरीय पश्चिमी सीमावर्तीय प्रदेश प्रतीत होता है

हित्वा सभ्रातॄंल्लंकामाविशद् गन्धमादनम्।
गन्धर्वयक्षानुगतो रक्षःकिम्पुरुषैः सह ॥ वनपर्व: २७५:३३

महाभारत में और वर्णन मिलता है। कुबेर के क्रीडास्थल सरोवर की रक्षा में किम्पुरुष गण तत्पर रहते थे। यह सरोवर निःसन्देह तिब्बत प्रदेश में था। किम्पुरुष तथा किन्नर दो वर्ग थे। उनका स्पष्टीकरण महाभारत करता है।

सेविताम्रृषिभिर्दिव्यैर्यक्षैः किम्पुरुषैस्तथा।
राक्षसैः किन्नरैश्चापि गुप्तां वैश्रवणेन च ॥ वनपर्व :५३:९

किम्पुरुषों का भारत आगमन तथा भ्रमण सिद्ध होता है। किम्पुरुषगण अगस्त्य ऋषि के समुद्रपान का दृश्य देखने के लिए उनका अनुसरण किये थे। वे उत्तर से दक्षिण गये थे।

मनुष्योरगगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषास्तथा।
अनुजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ वनपर्व : १०५:२१

किम्पुरुषों तथा तिब्बत का सम्बन्ध महाभारत काल में घनिष्ठ था। महाराज युधिष्ठिर के राजयज्ञ में किम्पुरुष गण सम्मिलित हुए थे। महाभारत में किम्पुरुष तथा किन्नर दो शब्दों का प्रयोग सिद्ध करता है कि, एक जाति होने पर भी वे एक ही पूर्व जाति की दो उपजातियाँ हो गयी थी।

स किम्पुरुषसंकीर्णैः किन्नरैश्चोपशोभितः।
सिद्धचारणनिर्यासैश्च समन्तादभिसंवृतः ॥ आश्वमेधिक पर्व ८८ : ३७९

पुराणों से प्रकट होता है। वे श्रीकृष्ण का दर्शन करने द्वारका जी तक गये थे। उनके जाति के सम्बन्ध में कहा गया है। वे पुलह की सन्तान है। और दक्ष कन्या की सन्तति है। पुलह एक मनु है। ब्रह्मा ने उन्हें उत्पन्न किया था।

पुलहस्य सुता राजन् शरभाश्च प्रकीर्तिताः।
सिंहाः किम्पुरुषा व्याघ्रा ऋक्षा ईहामृगास्तथा ॥ आदिपर्व : ६६:८
इत्येतानुपयुज्यन्ते गन्धर्वांप्सरसान् द्विजान्।
नागाश्च किम्पुरुषा तथानुद्भिजजांश्च गवश्वमीन् ॥ शान्तिपर्व : २०७ : २२
दश मरीचिमत्रिं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम् ॥ हरिवंश पुराण अ० १४

मयस्य भवनं तत्र दानवस्य स्वयं कृतम् ।
मैनाकस्तु विचेतव्यः समानुप्रस्थकन्दरः । ॥३०॥
स्त्रीणामश्वमुखीनां तु निकेतस्तत्र तत्र तु ।
तं देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ॥३१॥

'यहाँ से वैखानस सर के पश्चात् सूना आकाश दिखाई देगा । मेघों की घटा नहीं दिखाई देगी । तत्पश्चात् शीतोदा नामक नदी मिलेगी । शीतोदा के तटपर उत्तर कुरु प्रदेश है । यहां पर गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग और विद्याधर सर्वदा नारियों के साथ विहार करते हैं ।

गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा ।
रमन्ते सततं तत्र नारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥५०॥

पुराणों के अनुसार किम्पुरुष वर्ष हिमालय के पश्चात् माना गया है । विष्णु पुराण (२ : १ : १७ : १९) के अनुसार किम्पुरुष एक राजा था । वह अग्नीध्र का पुत्र तथा प्रियव्रत का पौत्र था । उसके पिता ने १० : ५२ : ११ के अनुसार किम्पुरुष को हेमकूट दिया था । भागवत में किम्पुरुष देश के राजा द्युम्न का उल्लेख है । उसने कृष्ण के विरुद्ध जरासन्ध के पक्ष से युद्ध किया था । जिस समय जरासन्ध ने गोमन्त पर आक्रमण किया था उस समय वह पर्वत के पश्चिम दिशा मे अपनी सेना के साथ था । भागवत (१ : ६ : १२) के अनुसार राजा परीक्षित ने किम्पुरुष वर्ष को जीता था ।

किन्नर जाति शंकर पूजक मानी गयी है । गुह्यक, यक्ष आदि पर्वतीय जातियाँ शिवपूजक थीं । उनके विषय में कहा गया है कि वे शिव की सेवा करते थे । कैलास तथा उसका समीपस्थ क्षेत्र किन्नरों का मुख्य निवास स्थान था । यक्षों, गन्धर्वों के समान गायक तथा नृत्यशील जाति थी । विराट पुरुष, इन्द्र तथा हरि उनके मुख्य उपास्य देव थे । सप्तर्पियों से उन्हें धर्म ज्ञान प्राप्त हुआ था । महाभारत के अनुसार अमरकोप की दी गयी उनकी परिभाषा सत्य प्रतीत होती है । किम्पुरुष तथा किन्नर एक ही जाति की दो उपजातियां अलग अलग थीं ।

किन्नर भाषा में संस्कृत तथा तिब्बती दोनों भाषाओं के शब्दों का मिश्रण है । कुछ उर्दू शब्दों का भी मिश्रण मिलता है । वह अत्यन्त स्वल्प है । भारत की स्वाधीनता के पश्चात् हिन्दी तथा संस्कृत शब्दों का प्रयोग बढ रहा है । तिब्बती शब्दों का प्रयोग घटने का मुख्य कारण है कि तिब्बत से आवागमन, यातायात तथा व्यापार समाप्त हो गया है । चीन में तिब्बत के सम्मिलित हो जाने के कारण सम्बन्ध पूर्णतया विच्छिन्न हो गया है ।

कुछ विद्वान् लेखक किन्नर जाति को गन्धर्व तथा किरात वर्ग की श्रेणी में रखते हैं । यह गलत है । किन्नर जाति का अपना मौलिक अस्तित्व रहा है । महाभारत, रामायण तथा पुराण इसके साक्षी हैं ।

किन्नरों का एक निश्चित अंचल हिमालय प्रदेश में है । उनकी भाषा में शू–सू–देवता वाचक शब्द हैं । उसमें संस्कृत शब्द महा लगाकर महासू बनाया गया है । इसी प्रकार ग्रामों के साथ भी शू या सू शब्द लगाते हैं ।

परिशिष्ट 'त'

कर्णाट

(तरंग : १ : ३०० : पृष्ठ ३१२)

कर्णाट किंवा कर्णाटक का उल्लेख सुदूर प्राचीन काल से पुराकालीन ग्रन्थों में उल्लिखित होता आया है। यह भारतवर्ष का एक सुनिश्चित भूखण्ड था। यहाँ की भाषा अलग थी। आजकल के कन्नड भाषा-भाषी इस भूखण्ड के निवासी हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् कन्नड भाषा-भाषियों की एक इकाई मैसूर राज्य के रूप मे बन गयी है।

महाभारत भीष्म पर्व (९ : ५९) में कर्णाटक को एक जनपद की संज्ञा दी गई है। कर्णाटक का उल्लेख द्रविड, केरल, प्राच्य, मूषिक, वनवासिक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभ कानन, कौकुट्टक, चोलादि के साथ प्राय किया गया है।

भागवत पुराण (५ : ६ : ७) में कर्णाटक का उल्लेख किया गया है। वहाँ उसे [illegible] कहा गया है। स्कन्द पुराण में देशों की तालिका में कर्णाट का स्थान ४४ तथा ग्राम संख्या १२५०० दी गयी है। बृहद् संहिता में गोनर्द, केरल के साथ कर्णाट का उल्लेख किया गया है। उक्त उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है। कर्णाटक का नाम कल्हण ने ठीक कर्णाट दिया है। कर्णाट किंवा कर्णाटक प्राचीन मूल नाम नहीं है। कन्नड भी प्राचीन मूल नाम नहीं है। यह सब कर्णाट के अपभ्रंश किंवा उसके बिगड़े रूप हैं। कर्णाटक देश वासियों की भाषा कन्नड है। उसका साहित्य कन्नड साहित्य कहा जाता है। वर्तमान मैसूर राज्य कन्नड भाषियों का राज्य है। कन्नड शब्द निःसन्देह कर्णाट का अपभ्रंश है।

सम्मोह तन्त्र की रचना सन् १४५० ई० के पूर्व हुई थी। उसमें सौराष्ट्र, द्रविड, तैलंग, मलय विदर्भ तथा मालवा आदि के साथ की गयी है (४)। शक्ति संगम तन्त्र (३ : ७ : १) में महाराष्ट्र के साथ कर्णाटक का उल्लेख किया गया। आज भी कर्णाटक अर्थात् कन्नड भाषी मैसूर महाराष्ट्र की पूर्वी तथा दक्षिणी सीमा पर स्थित है।

इसी ग्रन्थ मे कर्णाटक की सीमा दी गयी है। शक्ति संगम तन्त्र के पूर्व में बैरजनाथ, उत्तर में अमरकंटक और दक्षिण में काचीपुरम के मध्य में कर्णाटक देश था। इसका विस्तार रामनाथ से आरम्भ होकर श्रीरंग तक दिया गया है। (३ : ८ : १३)

उक्त तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार प्राचीन कर्णाटक प्रदेश रामनाथ से श्रीरंग तक विस्तृत था। श्रीरंग वर्तमान श्रीरंगपत्तन के लिये व्यवहृत किया गया है। रामनाथ स्थान रामनाथपुरम् अर्थात् पूर्व रामनद जिला अथवा रामनाथ मठ मदुरा जिला अथवा तुंग और भद्रा नदियों के संगम पर रामेश्वर तीर्थ हो सकता है।

प्राचीनकाल मे यह राज्य पाण्डय तथा चोल राज्यों में विभाजित था। पाण्डय राज्य मदुरा तथा तिन्ने वली अंचल तक विस्तृत था। चोल राज्य कारोमण्डल तट पर पदुकोट्टाधो तक विस्तृत था। चौथी शताब्दी में यहाँ पल्लवों का राज्य स्थापित हुआ था। उनकी राजधानी कांची थी। वह आठवीं शताब्दी

तक स्थित थी। तत्पश्चात् यह चोलों तथा पाण्ड्यों के अधिकार सीमा में चला गया। पन्द्रहवीं शताब्दी में विजय नगर साम्राज्य के अन्तर्गत कर्णाटक का भूखण्ड आ गया था।

विजय नगर साम्राज्य के शक्तिहीन होने पर सत्तरहवीं शताब्दी में यह प्रदेश तीन छोटे हिन्दू राज्यो में विभक्त हो गया था। उनकी राजधानी क्रम से मदुरा, तंजौर तथा कांची थी। आरंगजेब की सेना ने सत्तरहवी शताब्दी के अन्त में इस प्रदेश पर आक्रमण किया था। जुलफिकार अली कर्णाटक का नवाब बनाया गया। तत्पश्चात् यह प्रदेश मुसलमानों, मराठों, फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों के संघर्ष का क्षेत्र बन गया।

कर्णाटक का ज्ञान काश्मीरी लेखकों को था। प्राचीनकाल में कर्णाटक एवं कश्मीर में विचारों का आदान-प्रदान होता रहा है। कश्मीर निवासी ब्राह्मण कर्णाटक में आकर निवास करते थे। इसी प्रकार कर्णाट देशीय ब्राह्मण कश्मीर में पहुँचते थे। दोनों का एक दूसरे स्थान पर सम्मान तथा आदर होता रहा।

कल्हण ने राज तरंगिणी में कर्णाटक का उल्लेख (१ : ३००; ४ : १५१, १५२; ७ : ६७५, ९३५, ९३६, १११९, ११२४ में किया है। सर्वप्रथम कल्हण ने मिहिरकुल के प्रसंग में कर्णाटक का उल्लेख किया है। उसने श्री लंका आक्रमण से लौटते समय चोल, कर्णाट एवं लाट के राजाओं को व्यदारित किया था। (त० १ : ३००)।

'कल्हण कर्णाट निवासियों के वेश भूषा तथा केश रखने की प्रथा का उल्लेख राजा ललितादित्य के दक्षिण विजय के सन्दर्भ (४ : १५१) में करता है। इसी प्रसंग में वह कर्णाटक की रानी देवी रट्टा का भी उल्लेख करता है। उस समय रट्टा नाम्नी चंचललोचना कर्णाट कामिनी विशाल दक्षिणापथ पर राज्य करती थी। असीमित प्रभावशालिनी इस देवी ने दुर्गा के समान विन्ध्याद्रि मार्ग को पर्याप्त किंवा विस्तृत एवं निष्कंटक बना दिया था। वह प्रणाम करते समय ललितादित्य के पाद कमल के नख दर्पण मण्डल में अपनी मूर्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसके ताल वृक्षतले नारिकेल के रसोर्मि पान कर कावेरी तटवर्ती समीर से श्रान्ति दूर कर दिया। उस मलयाचल पर उसके आक्रमण भय से सरकते हुए सर्पों के व्याज भय से चन्दन वृक्ष के बाहु मण्डल से निपतित असि तुल्य लग रहे थे। वह उत्तरण प्रस्तर तुल्य द्वीप पुंजों पर निर्विघ्न चरण पाद रखकर कुल्या सदृश समुद्र का शीघ्र ही अनायास गतागत करने लगा। विजेताग्रणी सागर तरंग के निर्घोषों से जयमंगल गान श्रवण कर वहाँ से पश्चिम दिशा प्रस्थान किया।' (रा. त० : १५२–१५८)

कश्मीर राजा कलश (सन् १०६३–१०८१) के सन्दर्भ में कल्हण पुनः कर्णाट का उल्लेख कलश तथा हर्ष के संघर्ष के सन्दर्भ में करता है। कर्णाटक निवासी केशी उस संघर्ष में युद्ध करता राजविरोधी सैनिकों द्वारा कश्मीर में मारा गया था। (रा० ७ : ६७५) इस उद्धरण से यह प्रकट होता है कि कश्मीर की सेना में अथवा राजा के प्रश्रय में कर्णाटक निवासी थे। उनका वहाँ उचित स्थान तथा सम्मान था।

कवि विल्हण के प्रसंग में पुनः कल्हण कर्णाटक का उल्लेख करता है। कश्मीरी राजा हर्ष (सन् १०८९-११०१ ई०) के समय में विल्हण कर्णाटक चला आया था। कल्हण कहता है—विल्हण कवि राजा कलश के शासन काल में कश्मीर देश त्याग कर कर्णाटक देश के राजा परमार्डि के पास चला गया था। राजा परमार्डि ने कवि विल्हण को अपनी राज सभा में विद्यापति पदपर नियुक्त किया था। विल्हण हाथी पर आरूढ़ होकर कर्णाटक देश के पर्वतीय प्रदेशों में भ्रमण करते समय समस्त कर्णाटक प्रदेश में केवल

विल्हण को ही यह पद गौरव प्राप्त था कि वह राजा के सम्मुख छत्र धारण करता था।' (रा० ७ : ८३५-८३७)

विल्हण की प्रसिद्ध रचना विक्रमांक देव चरित्र तत्कालीन कर्णाटक के इतिहास तथा वहाँ के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। विल्हण, राजा अलूप का उल्लेख इसी सन्दर्भ में करता है। विल्हण कोंकण के राजा जयकेशिन का भी उल्लेख नाटक में करता है। कवि विल्हण ने कुन्तल देश को कर्णाटक देश का समानवाची माना है। विक्रमादित्य षष्ठ को कुन्तलेश तथा कर्णाटेन्द्र कहा है। राजा हरिहर (सन १३०७ ई०) के एक शिलालेख से पता चलता है कि कुन्तल विशय कर्णाट देश में था।

कल्हण ने कर्णाटक का पुन. उल्लेख राजा हर्ष के सन्दर्भ में किया है—'किसी समय वह राजा (हर्ष) कर्णाटक देश के राजा परमाडि की चन्दला नामक सर्वांग सुन्दरी पत्नी को चित्र में देखकर उस पर मोहित हो गया। धूर्त विटगण विचार शून्य एवं मन्दमति राजाओं को मजाक मजाक में कुत्तों के समान छू-छू करके प्रोत्साहित एवं संघर्ष के लिये उत्तेजित कर देते हैं। उस निर्लज्ज राजा ने विटों के प्रोत्साहन से उत्तेजित होकर अपनी राजसभा में कर्णाटक सुन्दरी चन्दला की प्राप्ति हेतु परमाडि को पराजित करने की प्रतिज्ञा की। चन्दला न प्राप्ति काल तक कच्चे कपूर का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की।''''''कर्णाटक देश के राजा परमाडि का वध कर चन्दला की प्राप्ति द्वारा उसके आलिंगन का सुख भोग करना, कल्याणपुर में प्रविष्ट होकर पिप्पला देवी का दर्शन करना, और उस राजा के उपवन में एकत्रित कर गुप्त रूप से रखी गयी अपरिमित सम्पत्ति को अपने आधीन करना इन सब कार्यों के पूर्ण होने तक परम प्रतापशाली महाराज हर्षदेव ने बोतास कपूर चर्वण त्याग दिया।' (रा० त० ७ :१११९-११२४ तथा ११२५—११३३)

कल्हण काश्मीर राजा हर्ष के कर्णाटक के समान ही मुद्रा टंकणित कर चलाने का उल्लेख करता है—'राजा हर्ष को दाक्षिणात्यों की पद्धति अधिक रुचिकर थी अतएव उसने कर्णाटक शैली पर मुद्रा टंकणित करवायी। (रा० त० ७ : ९२६)

यदि कर्णाटक के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डाली जाय तो कश्मीर का सम्बन्ध अति निकट का प्रकट होता है। केवल कश्मीर में ही कर्णाटकवासियों का आदर नहीं होता था। कर्णाटक के राजाओं ने भी कश्मीर के ब्राह्मणों का सम्मान, तथा दान द्वारा आदर प्रदर्शन किया था। पाण्डय महादेवी ने बारहवीं शताब्दी में कश्मीर के प्रवरपुर (श्रीनगर) निवासी शारदा देवी के उपासकों को भूमि दान की थी। (एनसिएण्ट कोंकन' भास्कर, आनन्द सलतोरे : पृष्ठ १६१)

पन्द्रहवीं शताब्दी में कर्णाटक विजयनगरम् राज्य के अन्तर्गत आ गया। विजय नगर राज्य विस्तार के साथ कर्णाटक प्रदेश की सीमा दक्षिण में विस्तृत हो गयी थी। तल्ली कोट के युद्ध (सन् १६६५ ई०) के पश्चात् विजयनगर के राजा चन्द्रगिरी अर्थात् चितूर जिला तत्पश्चात् वेल्लोर जिला उत्तरीय अरकाट तक चले आये थे। उनकी राज्य सीमा सीमित हो गयी थी। लघु राज्य होने पर भी उन्हें कर्णाटक का राय कहा जाता था।

परिशिष्ट 'थ'

लाट

(तरंग १:३००: पृष्ठ ३१३)

महाभारत अनुशासन पर्व (३५:१७-१२) में वर्णन आता है। लाट क्षत्रिय जाति थी। परन्तु ब्राह्मणों के साथ ईर्ष्या करने के कारण नीच हो गयी थी।

संमोह तन्त्र में (२:३) देशों की तालिका में लाट देश का नाम चोल, कर्णाटक आदि के साथ दिया गया है। इसी प्रकार शक्ति संगम तन्त्र (३:७:५५) में लाट देश की सीमा दी गई है। उससे निश्चय किया जा सकता है कि लाट देश प्राचीन काल में वहां तक विस्तृत था।

लाट देश उक्त उद्धरण के आधार पर अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ (बरार) के उत्तर-पश्चिम ठहरता है। लाट देश माही तथा ताप्ती के मध्य में पश्चिमी क्षेत्र में था। राजाओं की शक्ति एवं राज्य विस्तार के कारण यह सीमा कभी-कभी माही के और परे तक जाती थी। उसमें भृगुकच्छ (भड़ौच) तथा नवसारिका (नवसारी) के अंचल सम्मिलित हो जाते थे। वात्स्यायन कामसूत्र (६ ५'२६) तृतीय शताब्दी की रचना के अनुसार लाट देश की स्थिति मालवा के पश्चिम दिशा में बतायी गयी है।

विनयचन्द्र की काव्य शिक्षा में लाट देश के ग्रामों की संख्या २१ हजार तथा गुर्जर देश की ७० हजार दी गयी है। स्कन्द पुराण में देशों की तालिका में लाड किंवा लाट देश की क्रमसंख्या ३८ तथा उसके ग्रामों की संख्या भी २१ हजार दी गयी है। उसमें कच्छ की ग्राम-संख्या १४ हजार, सौराष्ट्र की ५५ हजार तथा गुजरात की ग्रामसंख्या ७० हजार दी गयी है। इससे स्पष्ट है कि लाट देश का अस्तित्व प्राचीन काल में गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ से स्वतन्त्र तथा भिन्न था। लाट प्रदेश गुजरात तथा सौराष्ट्र से छोटा और कच्छ से बड़ा था।

लाट तथा लाटविषय का उल्लेख प्रथम शताब्दी से सातवी तथा आठवी शताब्दी तक भारतीय वाङ्मय में मिलता है। इस प्रदेश का नाम पुराण तथा महाभारत और रामायण में नहीं मिल सका है। प्लोल्मी ने इसका उल्लेख किया है। उसके अनुसार लारिक भारतीय समुद्र तट पर था। वह मोफी (माही) नदी के मुहाने पर था। माही अन्तरीप का नर्वदा तथा माही के मध्य कहीं होना लिखता है। कालान्तर में लाट देश का प्राकृत रूप लार देश हो गया था। इसमें गुजरात तथा उत्तरीय कोंकन का अंचल आ जाता था। मुगल काल में लार समुद्र भाषा और मसूदी लारो का उल्लेख मिलता है। लाट देश के अन्तर्गत बरयगजा (भड़ौच भरुकच्छ) तथा ओजेन (उज्जैन) नगर थे। नौसारिद भी उसमें सम्मिलित था। वह नौसारिका किंवा वर्तमान नौसारी है।

लाट प्रदेश को अक्षाश इक्कीस तथा बारस अर्थात् ताप्ती और माही नदियों के मध्य कतिपय विद्वानों ने माना है। वह सम्भावना प्रकट की गयी है कि आदित्य वर्धन के पुत्र प्रभाकर वर्धन के संघर्ष में देवगुप्त ने यथेष्ट सहायता राजा शंकरगण के अन्य अधीनस्थ राजाओं से ली थी जिनमें निरिहुल तथा गुर्जर थे। उनके मध्य उस समय लाट देश विभाजित हो गया था। लाट देश के कुछ सैनिक मालवा के पक्ष

से युद्ध में भाग लिये थे। वह युद्ध सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हुआ था। वाण ने प्रभाकर वर्धन को अराजक लाटजनों के लुटेरा रूप में चित्रित किया है। निस्सन्देह लाट जाति जब स्वतन्त्र अस्तित्व रखती थी तो वह भारत की एक प्रसिद्ध गौरवशालिनी जाति थी।

पुलिकेशिन द्वितीय की एओह प्रशस्ति (शक संवत् प्रसिद्ध ५५६ में लाट का उल्लेख किया गया है। उसमें उल्लेख है। उस शक्ति से लाट, मालव गुर्जर को उसने किस प्रकार अधीनस्थ राजा सदृश आचरण करने के लिये बाध्य किया। गुजरात राज नशोद तथा राष्ट्रकूट के दानपत्रों से प्रतीत होता है कि शासकीय विभाजन केवल सौराष्ट्र में ही नहीं अपितु आनर्त देश में भी थे। वे लाट देश में भी पाये जाते थे। (एनसियण्ट हिस्टोरी आफ सौराष्ट्र डॉ० के० जे० काजी) श्री जे० ध. फ्लीट का मत है कि लाट देश की संज्ञा पुरा काल में बड़ोदा तथा सूरत क्षेत्र से दी जाती थी।

परिशिष्ट 'द'

चोल

(तरंग १ : ३०० : पृष्ठ ३११)

कर्नल जेरिनी ने 'चोल' शब्द को संस्कृत शब्द 'काल' तथा 'कोल' से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है। उसे कृष्ण वर्ण आर्य समुदाय का सूचक माना है। संस्कृत शब्द 'चोर' तथा तामिल शब्द 'चोलम्' से भी सम्बद्ध किया जाता है। बात कुछ तथ्यहीन मालूम पड़ती है। चोल शब्द प्राचीन काल से चोल वंश तथा भूखण्ड के लिए प्रयुक्त होता रहा है। एक मत है कि वे 'शिवि' वंशीय है। बारहवीं शताब्दी के अनेक राजवंशों ने करिकाल से उद्भूत अपने को कश्यप गोत्रीय माना है। कात्यायन ने उन्हें चोड लिखा है। संगम युग काल मे चोलों ने दक्षिणी भारतीय इतिहास को सर्वप्रथम प्रभावित किया था। तत्पश्चात् उनका इतिहास लुप्त हो जाता है।

नवीं शताब्दी में चोलों का पुनः पुनरुत्थान हुआ। इस वंश का संस्थापक विजयपाल (स० ८५०–८७०–७१ ई०) पल्लव राजा के शासन में उरैपुर प्रदेश का शासक था। उसकी वंश परम्परा में २० राजा हुए। जिन्होंने लगभग ४०० वर्षों तक शासन किया था। इस वंश का प्रतिभाशाली राजा राजराज का पुत्र राजेन्द्र प्रथम (सन् १०१२ से १०४४ ई०) था। उसने चेर पाडय तथा सिंहल विजय किया था। कलिंग जीतता हुआ यह दक्षिण बंगाल और दक्षिण कोशल तक पहुँचा था। वह गंगाजल लाना चाहता था। उसने पराजित राजाओं से अपने लिए गंगाजल ढुलवाया।

चोल राज्य पूर्वीय सागर तट, पेन्नर नदी से वेल्लारू तथा पश्चिम में कुर्ग तक विस्तृत था। यह भी मत है। वेल्लारू नदी के उत्तर-दक्षिण (एक ही नाम की दो नदियां है) पूर्व में समुद्र तथा पश्चिम में कोट्टाईक्करा़य तक चोल क्षेत्र फैला था। वर्तमान त्रिचनापल्ली, तंजोर तथा पदुकोटाह का उसमें कुछ भाग सम्मिलित था। राजधानी उरगपुर किंवा उरैपुर अर्थात् प्राचीन त्रिचनापल्ली थी। कवि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में चोल देश का उल्लेख किया है। कावेरी पट्टन कावेरी नदी के उत्तर इस राज्य का बड़ा बन्दरगाह था। कांची अर्थात् वर्तमान काजीवरम चोल प्रदेश का विशाल नगर था। नागपटम अर्थात् नागीपत्तनम भी इसका एक बन्दरगाह था। नागीपत्तनम बन्दरगाह आज भी चलता है। मैं यहां दो बार आ चुका हूँ। समुद्र उथला होने के कारण जहाज २ मील दूर समुद्र में ठहरते है।

तंजोर, त्रिचनापल्ली, कुम्भकोनम पूर्वकालीन चोल राज्य के प्रसिद्ध नगर थे। और आज भी है। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में गगाई कोण्डा, चोलपुरम चोल राज की राजधानी थी। दक्षिण भारत के अभिलेखों में कावेरी नदी का नाम चोल दिया गया है। चोल शब्द देश तथा देशवासी दोनों के लिए प्रयुक्त किया है। (सभा पर्व ५२ : ३५)।

मार्कण्डेय (५७:५:४५), वायु (४५:५:१२४) तथा मत्स्य पुराणों (११२:५:४६) में चोल राज्य का नाम पाण्डय तथा केरल के साथ मिलता है। पद्म पुराण (३०, १०८, १०९); तथा स्कन्द पुराण (२:४:२६-२७) में भी उल्लेख मिलता है।

रामायण किष्किन्धा काण्ड (४१:१३) में चोल का उल्लेख आन्ध्र, पुण्ड, पाण्ड्य, केरल के साथ किया गया है। उसकी दिशा दक्षिण बतायी गयी है। कावेरी नदी का उल्लेख इसी स्थल पर किया गया है।

महाभारत सभा पर्व (२७:२१) में उल्लेख है। अर्जुन ने चोल सेना पर विजय प्राप्त किया था। भीष्म पर्व (९:६० तथा ५०:५१) में उल्लेख मिलता है कि धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित क्रौंच व्यूह के दक्षिण पार्श्व में चोल सैनिक रक्षा निमित्त तत्पर थे। कर्ण पर्व (१२:१५) में उल्लेख आता है। पाण्डवों का पक्ष चोल ने महाभारत युद्ध में लिया था। द्रोण पर्व (११:१७) में वर्णन मिलता है। भगवान् कृष्ण ने इस देश को जीता था।

कात्यायन ने पाणिनि के वार्तिक में चोल तथा पांड्य का उल्लेख किया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी (४.१:१७५'७) में कांचीपुरम का उल्लेख किया है। अशोक ने द्वितीय और तेरहवें शिलालेख में चोल, पाण्ड्य, केलल पुत्तो (केरल) तथा सतियपुत्तो (सत्यपुत्र) का उल्लेख किया है।

तिब्बतीय बौद्ध ग्रन्थों से मालूम होता है। मौर्यों ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। इसका समर्थन आधुनिक अनुसन्धानों से मिलता है। महावंश में चोल तथा कावेरी पत्तनम का उल्लेख है। जातक में कावेरी पत्तनम का उल्लेख मिलता है। चोल का इतिहास उतार-चढ़ाव से भरा है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में चोल का उल्लेख किया है। (४:१:१७५) बौद्ध ग्रन्थों में समन्त पसा-दिका तथा जातक में कोल जनपद का अर्थ चोलजनपद लगाना चाहिए। चीनियों ने चोल देश का नाम चुल्ली-ए रखा है। उसका क्षेत्र २४०० ली बताते हैं। यहा संघाराम तथा देव मन्दिरों की प्रचुरता थी।

परमार राज लक्ष्मणदेव की प्रशस्ति में चोल विजय का वर्णन है। यह कल्पना मात्र प्रतीत होती है। पोल ने चाल का उल्लेख 'सोर' शब्द से किया है। उस पर अरकाट का शासन होना बताता है।

मार्कण्डेय पुराण (५७'८५), वायु पुराण (४५ १२४), मत्स्य पुराण (१२१:४६) में चोल देश का उल्लेख है।

मार्कण्डेय पुराण में—'चोलाः कुल्यास्तथैव च'

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में—चौल्याः कुल्यास्तथैव च'

शैलेन्द्र साम्राज्य के विरुद्ध राजेन्द्र चोल ने मलय, जावा, सुमात्रा पर जहाजी बेड़े से आक्रमण कर, विजय प्राप्त किया था। भारत का यह अभूत पूर्व नाविक अभियान एवं नौशक्ति प्रदर्शन भारतीय इतिहास के लिये गौरव की बात है। इस वंश में राजाधिराज प्रथम, कुलोत्तुंग तथा विक्रम चोल आदि शक्ति सम्पन्न और प्रतिभाशाली राजा हुए थे। चोल वंश का अंतिम राजा राजेन्द्र तृतीय था। तत्पश्चात् चोल राज्य पाण्ड्य के आधीन हो गया। सन् १३१० ई० में अलाउद्दीन खिलजी के समय मलिक काफूर ने आक्रमण कर चोल सत्ता उसी प्रकार नष्ट कर दी जिस प्रकार सन् १३३९ ई० में शाहमीर ने कोटारानी को राज्यच्युत कर दिया था।

चोलों के आम लेखों से ज्ञात होता है। उनकी राज्य व्यवस्था सुसंपादित थी। राज्य अनेक मण्डलों में विभाजित था। मण्डल को कोट्टम् किंवा वलनाडु कहते थे। तत्पश्चात् नाडु अर्थात् जिला और उसके पश्चात् कुर्रम तथा ग्राम थे। चोल राज्य में जन सभाओं द्वारा कार्य संचालन होता था। इन सभाओं का नाम 'उर' था। उन्हें सभा भी कहते थे। सभा की कार्यकारिणी अर्थात् आडुग्णम् का निर्वाचन सभासद परस्पर मिलकर करते थे। मैमूर से प्राप्त लेख से ग्राम सभा के कार्यों पर प्रकाश पड़ता है। ग्राम शासन

पाँच उपसमितियों द्वारा होता था। कार्य काल एक वर्ष तथा सदस्यता अवैतनिक होती थी। उनके कार्यों में राजा किंवा सम्राट् भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे।

चोल राजा निर्माण प्रिय थे। उन्होंने विशाल भवनो, मन्दिरो का निर्माण कराया है। तंजौर का राजेश्वर मन्दिर राजा राजराज ने निर्माण कराया था। उसको भित्तियों पर चित्र महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। राजेन्द्र प्रथम ने इसी प्रकार का मन्दिर त्रिचनापल्ली में निर्माण कराया था। तत्कालीन धातु एवं पाषाण मूर्ति कलापूर्ण एवं सजीव है।

कश्मीर के समान चोल राज्य में भी साहित्य की विशेष प्रगति तथा उन्नति हुई थी। शक्तिशाली राजाओं के विजय प्रसंग को लेकर अनेकानेक प्रशस्ति पूर्ण ग्रन्थों की रचना की गयी थी। कुलोत्तुंग तृतीय के शासन काल में कंबन कवि ने कम्बु रामायण की रचना की थी। व्याकरण, कोश, काव्यशास्त्र तथा छंद आदि विषयों की रचना का यह गौरवमय काल था।

सम्राट् किंवा राजा अपने जीवन काल में ही युवराज का चयन कर लेता था। सामंतो पर कठोर नियन्त्रण रखता था। उडनकुट्टम अधिकारी गण राजा को सर्वदा सलाह देते थे। उसके सम्पर्क में रहते थे। सम्राट् के निकट एक संघटित विभाग था। उसे ओले कहते थे। अधिकारियों के निम्न शिरुदनम् तथा उच्च पेरुंदनम् वर्ग थे। केन्द्रीय तथा स्थानीय अधिकारियों से सम्पर्क एवं नियन्त्रण रखने के लिये कणकगणी अधिकारी होते थे।

भूमि व्यवस्था सुचारु थी। समस्त भूमि नापी हुई थी। उनको करमुक्त तथा करयुक्त दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया था। कर के लिये समग्र ग्राम उत्तरदायी होता था। भूमिकर के अतिरिक्त चुंगी, व्यवसाय तथा भवनों पर भी कर लगते थे। स्थानीय संस्थाएँ सुसंगठित थी। स्थानीय जीवन के विभिन्न अंगों के लिये विभिन्न संस्थायें थी।

सेना भी गठित थी। राज्यों के विभिन्न भागों में उसके शिविर या कडगम थे। न्याय, सामाजिक व्यवस्थाओं, लेखपत्र, साक्षी आदि प्रमाणों के आधार पर होता था। नगरम् उन स्थानों की संस्थायें थी जहाँ व्यापारी किंवा व्यवसायी वर्ग प्रमुख था। उर ग्रामीणों की सभा थी जिनके पास भूमि होती थी। ब्रह्मदेय ग्रामों में ब्राह्मणों की सभा थी। सभायें कार्य के लिये स्वतन्त्र थीं। किन्तु ग्रामों के आय व्यय का निरीक्षण राज्य के अधिकारी करते थे। कार्यों के संचालन के लिये समितियां थी। उन्हें वारियम् कहते थे। उनकी सभा द्वारा उनके विधान में संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन किया जाता था।

कश्मीर के समान चोल नरेशों ने सिंचाई तथा कृषि समृद्धि को सुनियोजित व्यवस्था की थी। वे बाँध बँधवाते थे। नदियों का प्रवाह रोका था। कूप तथा सरो की शृंखलायें बनवायी थीं। कावेरी जैसी बड़ी नदी पर बाँध बँधवाया था। गंगैकोंड-चोलपुरम् के समीप राजेन्द्र प्रथम ने एक सर खुदवाया था। उसपर सोलह मील लम्बा बाँध था। इसमें दो नदियों से जल लाया गया था। उससे पाषाण प्रणालियाँ तथा नहरें सिंचाई के लिये निकाली गयी थीं। सरोवरों, वापियों तथा नदियों पर कश्मीर के वितस्तादि तट तुल्य घाट बने थे। प्रशस्त राजपथों से नगर शोभित था।

सामाजिक व्यवस्था कश्मीर के समान धर्मशास्त्र पर आधारित थी। नारियाँ कश्मीर के समान स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकती थीं। उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। वे सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकती थी। बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। सती का प्रचलन था। मन्दिरों में देवदासियाँ होती थीं।

आर्थिक ढाँचा कृषि पर आधारित था। तथापि गृह शिल्प, व्यवसाय तथा व्यापार खूब होता था। व्यापारियों को एक विशाल श्रेणी थी। उसे नाना देश-तिसैयायिरत्तु-ऐंजूर्रुवर कहते थे। वह जावा, सुमात्रा तथा दक्षिण पूर्व एशिया से व्यापार करती थी। वह वलंगै तथा इडंगै वर्गों मे विभाजित था।

कश्मीर के समान चोल शिव उपासक थे। परन्तु बुद्ध, जैन तथा अन्य सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता एवं समानता का व्यवहार किया जाता था। पुराकालीन तामिल धार्मिक पद वेदों के समान आदर पाते थे। उनके रचयिता वेद ऋचाओं के ऋचाकार ऋषियों तुल्य पूजे जाने लगे। नंबि आंडार नंबि ने शैव ग्रन्थों का संकलन सर्व प्रथम किया था। इसी प्रकार नाथ मुनि ने वैष्णव ग्रन्थों का संकलन किया था। भक्ति मार्ग का दार्शनिक स्वरूप जगत् के सम्मुख रखा था। उनके पौत्र यामुनाचार्य किंवा आलवदार वैष्णव आचार्य थे। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया। मन्दिरों की विधि मे परिवर्तन किया। वर्ष में एक दिन मन्दिरों में हरिजन प्रवेश की व्यवस्था की।

पाशुपत, कापालिक, तथा कालामुख जैसे सम्प्रदाय थे। उनमें कुछ स्त्रीत्व की आराधना करते थे। देवी के उपासक अपना मस्तक भी काटकर देवी के चरणों में अर्पित करते थे। कश्मीर राजा ललितादित्य का वृत्तान्त इस प्रथा की ओर संकेत करता है। मन्दिर सामाजिक जीवन के केन्द्र थे। कश्मीर के समान चोल राज्य था। प्रत्येक ग्राम मन्दिर शृंखलाओं से पूर्ण था। मन्दिर शिक्षा के केन्द्र थे। वहाँ नृत्य, गान, नाट्य, मनोरंजन, आमोद प्रमोद के आयोजन होते थे। कश्मीर के अग्रहारों के समान चोल राज्य में भी मन्दिरों पर भूमि चढायी जाती थी। मन्दिर भूसम्पत्ति का स्वामी होता था। मन्दिर की सम्पत्ति से बैंकिंग का कारबार चलता था।

चोल राज काल में कांस्य मूर्तियों का प्रचलन बहुत हो गया था। नटराज की मूर्ति विश्वविख्यात है। तामिल साहित्य में चोल शासन काल स्वर्णिम युग कहा जाता है। प्रबन्ध साहित्य की प्रचुरता थी। चोल वंश के अभिलेखों से प्रकट होता है कि कश्मीर के समान चोल राजाओं ने संस्कृत, साहित्य एवं भाषा अध्ययन के लिये ब्रह्मपुरी, घटिका तथा पाठशालाएँ स्थापित करायी थी। उनकी व्यवस्था हेतु समुचित दान दिया था। ऋग् वेद का भाष्य वेंकट माधव ने किया था। केशव स्वामिन् ने नानार्थार्णव संक्षेप कोश की रचना की थी।

जैन एवं बौद्ध साहित्य ने भी चोल राज में प्रगति की थी। जैन कवि तिरुत्तक् कदेवर ने तामिल महाकाव्य जीवकचिंतामणि की रचना दसवीं शताब्दी में की थी। जैन विद्वान् अमित सागर ने छंदशास्त्र पर यप्प रुंगलम नामक ग्रन्थ तथा उसके संक्षिप्त संस्करण करिगै की रचना की थी। व्याकरण ग्रन्थों की भी रचना की गयी थी। वैष्णव आचार्य नाथ मुनि, यामुनाचार्य एवं रामानुजाचार्य ने संस्कृत में ग्रन्थों की रचना की थी। कश्मीर के समान चोल राज्य में संस्कृत खूब फलती और फूलती रही है।

मत्स्य पुराण में 'चोलाः कुल्यास्तथैव च।'

वामन पुराण में 'चोलकुल्याश्च राक्षस' का उल्लेख आया है।

शक्ति संगम तंत्र (३ : ७ : २२) में उल्लेख किया गया है :

> द्राविड़तैलंगयोर्मध्ये चोलदेशः प्रकीर्तितः।
> लम्बकर्णाश्च ते प्रोक्ता भेद्रोऽस्यावान्तरो भवेद्॥ २२

इससे प्रकट होता है कि चोल देश द्रविड़ तथा तैलंग देश के मध्य स्थित था।

●

परिशिष्ट 'ध'

दरद

(तरंग १ : ३१२ पृष्ठ १२८, ३२२)

पुराणों में उल्लेख आता है :

काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा ह्यङ्गलौकिकाः ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुला बाह्यतोदराः ॥ (वामन० पु० १३.४०)

× × ×

दरदाश्च स काश्मीरान् गान्धारान् औरसान् कुहून् ।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामन पुराणों में 'काम्बोजा दरदाश्चैव' एक साथ प्रयुक्त किया गया है। कृष्णगंगा के ऊर्ध्वभागीय उपत्यका के उत्तरीय कश्मीर में दरदों का स्थान है। उसे आज भी दरदिस्तान कहते हैं। दरदापुर किंवा दरतपुरी वहाँ का नगर है। दरद क्षेत्र को दरस भी कहते हैं (वायु० : ४५ : ११९, मत्स्य १२१ : ४६ विष्णुधर्मोत्तर १ : १० : ९, मार्कण्डेय ५७ : ४०) वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'दरदांश्च सकाश्मीरान्', वायु पुराण में 'दरदांश्च सकाश्मीरान', 'मत्स्य पुराण में', 'दरदोर्ज्ज-गुडाश्चैव' का उल्लेख मिलता है। स्पष्ट है कि दर्दिस्तान को कश्मीर के साथ रखा गया है। कुबेर का स्थान सुमेरु पर्वत है। वर्तमान पामीर है। दरद देश पामीर के दक्षिण में है। दर्दुर पर्वत का उल्लेख सभा पर्व (१० : ३२) में आया है। उसके अधिष्ठाता कौरवों की सभा में रहते थे। प्रायः दरद जाति का उल्लेख पिशाच, पुण्ड्र, तंगण, परितंगण, बाह्लिक आदि के साथ मिलता है। दारदिक तथा पैशाची भाषा को आर्य भाषा को एक शाखा माना गया है। एक मत है कि वह ईरानी तथा भारतीय भाषा के मध्य की भाषा थी। (ग्रीयर्सन पैशाच आफ नार्थ वेस्ट द्रविड ३)

जातकों में दद्दर पर्वत का उल्लेख मिलता है। इसे हिमालय के अन्तर्गत माना गया है। मार्कण्डेय पुराण में वर्णित दुर्दर पर्वत यही दद्दर पर्वत है। यूनानी इतिहासकारों ने दरदाई जाति का वर्णन किया है। यह जाति दद्दर पर्वत माला में निवास करती थी। कश्मीर उपत्यका के उत्तर में स्थित है। चेतिय जातक की गाथा है। दद्दरपुर के उपचर के पाँचों पुत्रों ने पाँच नगर हत्थिपुर (हस्तिनापुर) अस्सपुर (अंग में) सीहपुर (लालराष्ट्र उत्तरीय पंजाब) उत्तर पंचाल (सम्भवतः अहिच्छत्र) तथा दद्दरपुर बसाया था। दद्दरपुर नाम रखने का कारण दिया गया है। वहाँ दो पर्वतों के मध्य रगड़ द्वारा दद्दर ध्वनियाँ उठती रहती थीं। मनुस्मृति में मनु ने (१० : ४४) दरद जाति का उल्लेख किया है।

हरिवंश पुराण में वर्णन है—कश्मीर राज गोनर्द के साथ दरद राज ने भी जरासंध का पक्ष लेकर कृष्ण के विरुद्ध मथुरा में युद्ध किया था।

अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान् ।
दक्षिणं शैलनिचयं दारयिष्यामि देशिताः ॥

हरिवंश विष्णु पर्व ४२ : ३७

दरद राज ने जरासन्ध के पक्ष में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी।

एवमुक्ते तु नृपतिर्दरदो नाम वीर्यवान्।
रामं हलाग्रोग्रभुजं प्रत्ययात् सैन्यमध्यगम्॥ ५५॥

× × ×

तद् युद्धमभवत् ताभ्यां रामस्य दरदस्य च।
मृधे लोकवरिष्ठाभ्यां कुञ्जराभ्यामिनौजसा॥ ५७॥
योजयित्वा ततः स्कन्धे रामो दरदमाहवे।
हलेन बलिनां श्रेष्ठो मुसलेनावपोथयत्॥ ५८॥
स्वकायगतमूर्धा वै मुसलेनावपोथितः।
पपात दरदो भूमौ दारिताद्रं इवाकलः॥ ५९॥
रामेण निहते तस्मिन् दरदे राजसत्तमे।
जरासंधस्य राज्ञस्तु रामेणासीत् समागमः॥ ६०॥

स्कन्द पुराण के देशों की तालिका में दरद का स्थान १० वां तथा ग्राम-संख्या ३ लाख ५० हजार दी गयी है।

महाभारत सभा पर्व (४४ : ८) में उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने उत्तर दिशा दिग्विजय काल में दरद देश पर विजय प्राप्त किया था। इसी (५२ : १३) में उल्लेख है। वनवास काल में सुबाहु को राजधानी जाते समय पाण्डव लोग दरद देश द्वारा गमन किये थे।

हिमालय पर्वतीय जातियां तथा प्रदेश भारतीय राजनीति तथा युद्धों में भाग लेती रही हैं। इस अंचल के लोग वीर माने जाते रहे हैं। महाभारत उद्योग पर्व (४ : १५) में उल्लेख मिलता है कि पाण्डवों ने अपने पक्ष से युद्ध करने के लिए दरद लोगों को आमन्त्रित किया था। इस देश की जो भौगोलिक स्थिति महाभारत में दी गयी है वह आज भी मिलती है। इसे पूर्वोत्तर दिशा का देश माना है। कश्मीर के पूर्वोत्तर इसका क्षेत्र इस समय कम विस्तृत है। परन्तु महाभारत काल में प्रतीत होता है कि इसका विस्तार आज की अपेक्षा पूर्व दिशा की ओर अधिक था। (भीष्म पर्व ९ : ६७)। दरद देश के योधा दुर्योधन की सेना में थे। उनकी ओर से युद्ध में भाग लिया था (भीष्म पर्व ५१ : १६)।

कथा है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने इस देश को जीता था (द्रोण पर्व ७० : ११)। श्रीकृष्ण के विरुद्ध दरद लोगों ने जरासन्ध के पक्ष से युद्ध किया था। वहां का राजा उस युद्ध में मारा गया था। दरद देश के लोगों ने सात्यकि पर आक्रमण किया था। सात्यकि ने इन लोगों का संहार किया था। अनुशासन पर्व में इनके जाति के विषय में कहा गया है कि यह लोग क्षत्रिय थे परन्तु ब्राह्मणों के प्रति ईर्ष्या एवं द्वेष रखने के कारण शूद्र हो गये थे।

दरद लोग उत्तरीय पश्चिमी भारत के अंचल में रहते थे। उत्तर-पश्चिमीय भारतीय क्षेत्र द्वारा विदेशी लोग भारत में आते थे। विदेशी लोग भारतीय आर्य परम्परा से भिन्न होते थे। विदेशियों के संसर्ग के कारण उत्तर-पश्चिम सीमान्त स्थित हिन्दुओं की परम्परा पर प्रभाव पड़ता था। वह प्रभाव उनके जीवन तथा आचरण को प्रभावित करता था। शीतल जलवायु तथा परिश्रमी जीवन के कारण शरीर गठन पुष्ट एवं स्वस्थ होता था। वे सुन्दर होते थे।

प्रकृति के साथ दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करते रहने के कारण उनका स्वभाव लड़ाकू हो जाता था। अच्छे सैनिक समझे जाते थे। परस्पर संघर्ष करते रहते हैं। गोत्रीय प्रवृत्ति विदेशी तथा अन्य जातियो के आक्रमण तथा उनके भय के कारण जागृत रहती थी। इस प्रकार वे अपनी स्थिति और व्यक्तित्व रखने में सफल रहे। पुराकाल में यातायात तथा परिवहन सुगम नही था। कम सम्पर्क होने के कारण उत्तर-पश्चिम की जातियों के विषय में समय-समय पर विभिन्न धारणाएँ बनती और बिगड़ती रही है। उनकी भौगोलिक स्थिति के विषय में भी परस्पर विरोधी उल्लेख मिलते हैं। परन्तु एक बात में सभी एक मत हैं। वे पर्वतीय जाति थे। उनका निवास भारत के उत्तर-पश्चिम सीमान्त पर था। दरदों के प्रदेश, सीमा तथा क्षेत्र के सम्बन्ध में यदि कही अन्तर अथवा भिन्नता पुराकालीन ग्रन्थों में दिखाई पड़ती है तो उसका एकमात्र कारण ग्रन्थों का रचना-काल तथा तत्कालीन परिस्थितियो में इन पर्वतीय जातियों के विभिन्न राजनीतिक, भौगोलिक स्थिति दी थी।

उत्साही, कर्मठ तथा वीर राजाओं अथवा नेताओं के काल में राज्य का विस्तार होता था। गौरव तथा महत्त्व बढता था। उसके अभाव में राज्य की सीमा संकुचित होती थी। प्रदेश पतनोन्मुख होता था। अतएव दरदों की राज्य-सीमा के विषय में विभिन्न उल्लेख मिलते हैं। एक बात में सब एक मत हैं। वे कश्मीर के उत्तर पश्चिम सिन्धु घाटी में निवास करते थे। उनके राज्य की सीमा उन्नति काल में वर्तमान लेक साल्ट तक पहुँच जाती थी। अतएव उनके उत्तर-पूर्व में रहने का भी उल्लेख मिलता है। यह बात सर्वत्र मानी गयी है। इस समय जहां र्दादिस्तान अर्थात् कश्मीर का उत्तरीय पूर्वीय पर्वतीय भूभाग जो सिन्धु घाटी को छेंके हैं, वही उनका स्थान था।

महाभारत तथा पुराणो में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वे भगवान् श्री कृष्ण के विरुद्ध जरासन्ध का पक्ष ले करके युद्ध करते थे। मथुरा नगर के घेरे में सम्मिलित हुए थे। बलराम ने युद्ध में दरदराज को मारा था। कौरव की ओर से खस, शक, यवन, त्रिगर्त तथा मालव के साथ महाभारत युद्ध में दरद भाग लिये थे। (द्रोण पर्व १०:१८) मत्स्य पुराण में उल्लेख आता है। उनका देश गान्धार, शिवपुर, उसमा आदि औरस लोगों की तरह सिन्धु उपत्यका का एक भाग था (२:१८४)। विष्णु पुराण उन्हें आभीर तथा कश्मीर से सम्बन्धित करता है (१११:४५-५१) वे दरद किंवा दर्दुर पर्वत माला में रहते थे। अतएव उनका नाम दरद पड़ा। उनके इस अंचल में रहने के कारण पर्वतमालाओं का नाम दरद पर्वत पड़ सकता है।

पाश्चात्य लेखक श्री स्टार्वो उन्हें दरदाई नाम से अभिहित करता है। श्री प्लेनी ने उन्हें दरदेई भी कहा है। श्री पिरोज उन्हें दरदाई नाम से सम्बोधित करता है। वह लम्पक (लगमान) तथा सेनिस्टेन (स्वात) उपत्यका तथा सिन्धु उपत्यका के अधो भाग में उनका स्थान बताते है। वह कहता है। दरद देश की पर्वतमालाएँ विचित्र रूप से ऊँची है। यह पर्वत वर्तमान जिला दरदो है। पाक-कश्मीर युद्ध की विराम रेखा के कारण अधिकांश भाग पाकिस्तान के अनधिकृत अधिकार में हैं। राजतरंगिणी में दरदों का प्रायः उल्लेख किया गया है। उन्होंने कश्मीर के जीवन को प्रभावित किया था।

दरद शब्द कई अर्थो में प्रयुक्त किया गया है। महाभारत आदिपर्व में वाल्हीक देश के एक राजा का वर्णन है। वह सूर्य नामक असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था। (आदि पर्व ६७:५८)

इनके कारण पृथ्वी भार से दब-सी गयी। (सभा पर्व ४४:८)

दरद की संज्ञा महाभारत में एक देश से भी दी गयी है। उत्तर दिग्विजय काल में अर्जुन ने इसे जीता था। (सभा पर्व २७:२७)

राजा युधिष्ठिर को दरद देश निवासियों ने उपहार दिया था। (सभा पर्व ५२:१३)

वनवास काल में सुबाहु की राजधानी में जाते समय पाण्डव लोग दरद देश होकर गये थे। (वन पर्व १७७:१२)

दरदराजको पाण्डवों ने महाभारत युद्ध में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया था। (उद्योग पर्व ४:१५)

दुर्योधन के पक्ष में महाभारत युद्ध में दरद देश के योद्धाओं ने भाग लिया था। (भीष्म पर्व ५१:१६)

भगवान् श्रीकृष्ण ने दरद देश पर आक्रमण किया था। (द्रोण पर्व ७०:११)

महाभारत में दरद को एक जाति माना गया है। पूर्वकाल में क्षत्रिय थे कालान्तर में ब्राह्मणों के कोप के कारण शूद्र हो गये थे। (अनुशासन पर्व ३५:१७-१८)

एक भारतीय जनपद दरद का वर्णन शल्य पर्व में किया गया है। (शल्य पर्व ५०:५०)

परिशिष्ट 'न'

खस

(तरंग : १ : ३१७ : पृष्ठ ३२०)

आजकल की खश जाति ही कल्हण वर्णित खश जाति है। खश का अपभ्रंश खश जाति-वाचक शब्द है। यह जाति पीर पंजाल पर्वतमाला के दक्षिण और पश्चिम रहती थी। ये सीमित क्षेत्र में रहते हैं। पीरपन्तशल उपत्यका के दक्षिण-पश्चिम में वितस्ता की मध्य धारा और किश्तवार पूर्व के पर्वत के एक भाग में ये अपने को मुस्लिम राजपूत कहते हैं। हिन्दू खश जाति हिमालय के अन्य क्षेत्रों में रहती है। कमायूं की पहाड़ियों में बहुत लोग अपने को खश कहते हैं। राजपूत होने का दावा करते हैं। राजपुरी का खश सरदार राजपूतों में विवाह-शादी करता था। लोहर के खश सरदार सिंहराज ने काबुल के शाही राजाओं से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था (रा० त० ६:१७५, १७७)। सिंहराज की कन्या दिद्दा रानी थी। उसने काश्मीर पर राज्य किया था।

मनु ने (१० : २२) में खशों को दूसरा नामकरण दिया है। उन्हें मनुस्मृति में (१०.४ -४४) क्षत्रिय माना है। खश तथा खस दोनों पाठ मिलता है। नीलमत पुराण खश जाति का उल्लेख निम्न स्थानों पर करता है।

गन्धर्व्वा वाजिनः पुत्रा मद्राश्च सुरभेः सुताः।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव खशायास्तनयाः स्मृताः ॥ 48 = ७२

× × ×

कद्रूः क्रोधा इरा खाथा विनता सुरभिः खशा।
घृपाश्वाश्च तथा पूज्याः सुप्रभा च तथा जरा ॥ 583 = ७०१-७०४

× × ×

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डरशकान् खशान्।
तंगणान् पाण्डवान् मद्रायन्तर्गिरिवहिर्गिरीन् ॥ 80 = १२२

× × ×

दार्वाभिसारगांधारजालन्धरशकाः खसाः।
तंगणा माण्डवाश्चैव आन्तर्गिरिवहिर्गिरिः ॥ 139 = १८२

नीलमत में 'खशा' तथा 'खस' एक ही शब्द एवं अर्थवाचक है। कल्हण ने खशों का प्रचुर वर्णन किया है। इस समय उन्हें खक्खा कहते हैं। खक्ख मुसलमान भी हैं। वे राजपूत मुसलमान भी कहे जाते हैं।

नीलमत में वर्णन किया गया है कि ब्रह्मा से वर मिलने पर जलोद्भव असुर दार्वाभिसार, गान्धार, जुहुण्डुर, शक तथा खसों का नाश करने लगा। यह सब कश्मीर के सीमावर्ती जातियां एवं क्षेत्र हैं। एक मत है कि 'कस' शब्द से कश्मीर शब्द बना है यह ठीक नहीं है। 'कस' शब्द खश जाति के लिये व्यवहृत

किया गया है। खश तथा कश्मीर जाति जिसे 'कश्मीराह' कहा गया है सर्वथा भिन्न है। नीलमत मत जाति का अलग तथा स्वतन्त्र रूप से उल्लेख करता है (नी० ४०)

राजतरंगिणी में अनेक स्थानों पर राजौरी अर्थात् राजपुरी के शासक रूप में खशों का वर्णन किया गया है। उन्हें राजा नाम से सम्बोधित किया गया है। उसकी सेना खशा कही जाती थी। (रा० त० ७:९७६, १२७१, १२७६, ८:८८७, १४६६ १८६८, १८९५)। राजपुरी के पूर्व अंचल के आन्श नदी की ऊर्ध्व उपत्यका मिलती है। इस नदी को आजकल पंजगब्बर कहते हैं। श्रीवर ने इसका उल्लेख (४.२१३) किया है। उसने इस नदी को पंचगह्वर लिखा है। उसे खशों का निवास-स्थान भी माना है। उसके पूर्व के अंचल को वाणशाल कहते थे। यह वही आजकल का बनिहाल है। इसी के नीचे बनिहाल पास है। यहीं पर भिक्षाचर ने खश राजा भागिक के दुर्ग में शरण ली थी (रा० त० ८.१६६५)। राजतरंगिणी (८.१७७ तथा १०७४) के वर्णन से प्रतीत होता है। वह उपत्यका जो बनिहाल और चन्द्रभागा नदी के मध्य है, उसे इस समय 'विचलारी' कहते हैं। पुरावृत्तकारों ने उसे विशालटा कहा है। यह क्षेत्र खशों से आबाद था।

खशालय का भी वर्णन कल्हण ने (रा० त० ४:९६, ५८, २८४, २९०, २९९) किया है। यहाँ खश जाति रहती थी। खशालय ही खँशाल उपत्यका है। इसे कथोर भी कहते हैं। वह दक्षिण-पूर्व में मारबल पास से कश्मीर के एक कोने से होती किश्तवार तक चली जाती है। खशालय का पुराना नाम खशाली (रा० त० ७:३०९ तथा श्रीवर ४:४५६) प्रतीत होता है।

राजपुरी से पश्चिम घूमने पर पर्णोत्स अथवा राजतरंगिणी (६:३१२) में वर्णित प्रुन्त है। उसमें एक व्यक्ति तुंग खश था। वह चरवाहा था। रानी दिद्दा के समय अत्यन्त शक्तिशाली मन्त्री बन गया था। (रा० त० ७:७७३) तुंग के वंशज रानी दिद्दा के पश्चात् कश्मीर के राजा हुए थे। उन्हें निम्न खश समझा जाता था।

आधुनिक खक्ख जाति और खश एक ही है। काश्मीर में वितस्ता उपत्यका के अधोभागीय सरदार प्रायः इसी जाति के थे। खक्ख शब्द खश का अपभ्रंश है।

वितस्ता उपत्यका के खखा सरदार कश्मीर में सिख राज के पूर्व अर्ध स्वतंत्र हैसियत रखते थे। अपने पड़ोसी बोमव कबीले के साथ वे कश्मीर के लिए समस्या हो गये थे। उनका भयंकर क्रूर कर्म जो शेख इमामुद्दीन के समय (१८४६) में उन्होंने किया था अभी तक लोगों को याद है। खश लोगों ने मध्ययुग में लूटपाट में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। (रा० त० ४.३२६ और ८:१८९५, २३८९) से यह बात सिद्ध होती है। श्रीवर ने जैनराज तरंगिणी ४:४४३, ४५२, ४६४, ५६६, ६३३, ६४, में इसी बात की क्रुपुष्टि की है।

कश्मीर की मर्दुमशुमारी १८९१ के रिपोर्ट पृष्ठ १४१ पर खखों की आबादी ४१४६ लिखी है। उनकी जाति मुस्लिम पर्वतीय राजपूतों की एक उपजाति मानी गयी है। पृष्ठ २०१।

खश जाति को मार्कण्डेय पुराण में पर्वताश्रयी जाति कहा गया है। यह जाति पर्वत में रहती थी।

अथो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहाराः हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्मणाः खशाः॥

x x x

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् खसान्॥ नी० ५७:५६

खसों की उत्पत्ति के विषय में महाभारत में कथा मिलती है। नन्दिनी गऊ ने अपनी रक्षा निमित्त उन्हें अपने अंग से उत्पन्न किया था।

मूत्रतश्चासृजत् कांश्चिच्छबरांश्चैव पार्श्वतः।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्बरान् खसान्॥

आदिपर्व : १७४ : ३७

× × ×

असृजत् पल्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद् द्रविडान् शकान्।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शबरान् बहून्॥ ३५॥
मूत्रतश्चासृजन् कांश्चित् शबरांश्चैव पार्श्वतः।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्बरान् खसान्॥ ३६॥
चिबुकांश्च पुलिंदांश्च चीनान् हूणान् सकेरलान्।
ससर्ज फेनतः सा गौः म्लेच्छान् बहुविधानपि॥ ३७॥

महाभारत आदिपर्व १७६ : ३६-३७

इस रूपक का यह अर्थ भी लगाया जा सकता है। खस गोरक्षक थे। क्षत्रियों का कार्य गो ब्राह्मण की रक्षा करना था। उन्हें युद्ध किंवा रक्षा हेतु नन्दिनी गाय ने उत्पन्न किया था। वे क्षत्री थे। उनके क्षत्री तथा क्षात्रधर्म व्रती होने में सन्देह नहीं रह जाता।

वितस्ता उपत्यका के अधोभाग में बारहमूला के आगे खश रहते थे। वीरांका खशों का केन्द्र कहा गया है। राजतरंगिणी (रा० त० ८:४०९) के वर्णन से मालूम होता है। यह स्थान प्राचीन द्वारावती के समीप था। द्वारावती को इस समय द्वारविडो कहते हैं। वह संस्कृत द्वारविद्या का अपभ्रंश है। वितस्ता उपत्यका का यह भाग कथाई तथा मुजफ्फराबाद के मध्य है। एक मत है। खश पीर पंतशाल के दक्षिण पश्चिम के निवासी हैं।

महाभारत सभा पर्व में भी खश जाति का उल्लेख आता है। उन्हें शकों तथा दरद जातियों तुल्य अर्ध सभ्य जाति में परिगणित किया गया है। (सभापर्व ५२ : २–४) सभा पर्व में पुनः एक स्थान पर उल्लेख आता है कि वे मरु तथा मन्दर पर्वत के मध्य शैलोदा नदी की उपत्यका में रहते थे।

मेरुमन्दरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम्।
ये ते कीचकवेणूनां छाया रम्यामुपासते॥ १॥
खसा एकासना ह्यर्हा प्रदरा दीर्घवेणवः।
पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः॥ ३॥
तद् वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः।
जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पुञ्जशो नृपाः॥ ४॥

महाभारत वन पर्व ५२:२-४

खसों की वीरता की प्रशंसा के लिए दुर्योधन ने शकुनीपुत्र उलूक को अपना दूत बना कर पाण्डवों के के पास भेजा था। और खसों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बात कहने का आदेश दिया था।

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां,
न बुध्यसे राजचमूं समेताम्।
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां,
गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम्॥ १०२॥
प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च॥ १०३॥

महाभारतः उद्योग पर्वः १६०:१०२-१०३

शैलदा नदी पश्चिमी पर्वत के वरुण पर्वत से निकलती है और पश्चिम सागर में गिरती है। (मत्स्य पुराण : १२० : ३३)। मनु ने उन्हें क्षत्री माना है। ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा न होने के कारण वे पतित हो गये थे। (मनुस्मृति १० : ४३ : ४) मनु ने स्पष्ट कहा है कि खश जाति क्षत्रिय थी। परन्तु क्रिया भ्रष्ट एवं ब्राह्मणों का दर्शन न पाने के कारण धीरे-धीरे स्थान च्युत हो गयी। निस्सन्देह खश जाति के क्षत्री होने में सन्देह नहीं किया जा सकता।

शनकैस्तु क्रियाकाललोपात् क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥

मनुस्मृति १० : ४३

× × ×

पौण्ड्रकाश्चौड्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाः चीनाः किराता दरदाः खशाः॥

मनुस्मृति १० : ४४

उन्हें काशगर से कुछ विद्वान् सम्बन्धित करते हैं। खशगिरि का अपभ्रंश काशगर कहा जाता है। मार्कण्डेय पुराण (३४६ : ३५०) में उन्हें शाल्व, शक और शूरसेन आदि जातियों के साथ रखा गया है। सेन तथा पाल वंश के शिलालेखों में इनका उल्लेख आता है।

वृहद् संहिता खसों का कुलूत (कुलू निवासी) तंगणा, तथा काश्मीरा के साथ वर्गीकरण करती है (१० : १२)।

ऋग्वेद संहिता (१ : ३१७) में खश जाति का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेदकाल में गिलगित से करली नदी तथा कालान्तर में नेपाल की पूर्वी सीमा तक खश जाति फैल गयी थी। खशा प्राचीनतम दक्ष प्रजापति तथा असिन्की की कन्या थी। कश्यप प्रजापति को दी गयी थी। उससे यक्ष राक्षसादि हुए। मार्कण्डेय पुराण में 'कुरवो गुर्गणाः खशाः', 'वायु पुराण में 'क्षुपणास्तङ्गणाः खशाः', 'कुणपास्तंगणाः खशाः', 'शुपणास्तङ्गणाः खसाः' 'क्षुपणास्तङ्गणाः खासाः'। ब्रह्माण्ड पुराण में 'कुपथास्तङ्गणाः खशाः', मत्स्य पुराण में 'कुपथा अपथास्तथा', वामन पुराण में 'कुपथास्तङ्गणा खशाः', उल्लेख आता है। कुपथ किंवा अपथ हिमालय में कोई स्थान था। खश देश का उल्लेख द्रोण पर्व में किया गया है। मत्स्य पुराण में वर्बर तथा

यवनों के साथ खशों का उल्लेख किया गया है। 'वर्वरान् यवनान् खशान्' वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदान्, खसान्' 'पारदास्तङ्गणखशान्', 'किम्पुरुषान् खशान्' का उल्लेख अर्थात् 'पारद, तङ्गण तथा किम्पुरुष' के साथ आया है।

महाभारत द्रोण पर्व में खश जाति का उल्लेख आया है कि उन्होंने कुरु क्षेत्र के युद्ध में अयोहस्ता तथा शूलहस्ता खश गणों ने सात्यकि पर अश्म वर्षा की थी।

ततः पुनर्व्यास्तमुखस्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः ॥ उद्योग पर्व = १६० : १०३

अयोहस्ता शूलहस्ता दरदास्तङ्गणा खशाः ॥ द्रोणपर्व १२१ : ४२

खाशीर जनपद का उल्लेख भीष्म पर्व में पूर्वोत्तर भारत के एक जनपद के लिए किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में खश जाति स्थान मगध तथा लौहित्य के साथ पूर्व दिशा में रखी गयी है। परन्तु यह कश्मीर साहित्य में वर्णित जाति खस नहीं है। आसाम के खासी पर्वत में रहने वाली खासी जाति हो सकती है।

खश एवं खस दोनों एक ही जाति के वाचक है। भागवत पुराण (२:४:१८) के अनुसार खस जाति पतित हो गयी थी। भगवत भक्ति के कारण शुद्ध हो गयी। ब्रह्माण्ड पुराण (२:३६:१४५ तथा ३:६६:१२०) के अनुसार विन्ध्य पर्वत में निवास करने वाली खस एक निम्न कोटि की क्षत्री जाति थी। उसे निषाद भी कहते थे। हरिवंश पुराण के अनुसार सगर ने उन्हें जीता था। उन्हें निम्न श्रेणी में रख दिया। वे म्लेच्छ माने गये। हरिवंश पुराण (१४:७८४) ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण ने उन्हें पूर्व का एक जनपद माना है। जिसमें होकर चक्षु नदी बहती है। ब्रह्माण्ड पुराण तथा मत्स्य पुराण (१२०:४३, १४४:५७) वायु पुराण में खश पर्वतीय खश जनपद कहा गया है। यहां खश के स्थान पर खस शब्द का प्रयोग किया गया है। वायु पुराण (४५:१३५ तथा ४७:४७) में दरद जाति को खस जाति का पड़ोसी माना गया है। बंगाल के पाल राजाओं के शिलालेख में हूण तथा खस जाति का उल्लेख मिलता है। निष्कर्ष निकाला जा सकता है। खस लोग बंगाल तक आते जाते थे। पूर्वीय भारत का उनको ज्ञान था। वहां वे किसी न किसी रूप में आबाद थे।

हरिवंश पुराण (१३:२३-३४) में उल्लेख आता है कि रघुवंशी राजा बाहु और उसके राज्य को हैहय तथा तालजंघ वंशीय राजाओं ने शक, यवन, कम्बोज, पारद तथा पल्हव की सहायता से नष्ट कर (१४:४) दिया था। यवन, पारद, काम्बोज, पल्हव तथा खस पांचगणो ने हैहय राजाओं के विजय निमित्त पराक्रम किया था। यहां स्पष्ट उल्लेख मिलता है। खसों की राज्य-व्यवस्था गणतन्त्रीय थी। खसो ने बाहु राजा तथा उसके राज्य को नष्ट करने में सम्भवतः प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया था क्योंकि श्लोक (१३:३०) में खस का उल्लेख नही आता। हैहय तथा तालजंघ राजा के साथ शकों का उल्लेख है। उसने बाहु के राज्य को छीन लिया था। केवल यह उल्लेख आता है (१४:४) कि पाँच गणराज्य जिनमें खस भी एक गण राज्य था, हैहयों के लिए पराक्रम किया था। खस लोग शकों की तरह बाहु के राज्य को लेते हुए दिखाई नही देते।

एक मत है कि 'केदारे खसमण्डले' की उक्ति के अनुसार केदार खण्ड खस मण्डल का पर्याय है। यह मत उचित नहीं मालूम होता। केदार खण्ड में ही नहो हिमालय के दक्षिणवर्ती पर्वतमाला में खस जाति फैली थी। अतएव खस जाति केदार खण्ड में भी आबाद थी। परन्तु इसके कारण खसमण्डल का पर्याय केदार खण्ड मान लिया जाय यह युक्ति पूर्ण दलील नहीं मालूम होती।

कल्कि पुराण में भी खसों का उल्लेख मिलता है :

> खश काम्बोजकान् सर्वान् शबरान् बर्बरानपि ॥ १२ ॥
> मरुः खशैश्च काम्बोजैः युयुधे भीमाविक्रमैः ।
> देवापिः समरे चोनैर्बर्बरैः संतणैरपि ॥ ४१ ॥

कल्कि पुराणः तृतीयांशः ६: १२ तथा ४१

प्लीनी (सन् ७९ ई०) का मत है । सिन्धु तथा जमुना की मध्यवर्ती पर्वतीय जातियां खस अर्थात् केसी है । वे क्षत्री कैट्रीबोनी कही जाती थी । अरण्यवासी थे । अटकिन्सन का मत है—प्लीनी के अनुसार उस समय खस कमायूँ तथा नैपाल के सुर पश्चिम में निवास करते थे । तालमी (८७–१६५ ई०) का उद्धरण देते हुए वह पुनः लिखता है—दरद जाति सिन्धु उद्गम के समीप कस्पेरोई झेलम, रावी, चनाब के समीप रहते थे । उनके देश को कुलिन्द कहते थे । इस समय दरद अस्तोर तथा गिलगिट में रहते हैं । कस्पेरोई कश्मीर उपत्यका तथा सतलज के मध्य निवासी थे। कुलिन्द सतलज तथा गंगा के बीच में रहते थे।

गिलगित से लेकर जोजिला पास का कश्मीरी भूखण्ड जिसका अधिक भाग अनधिकृत रूप से के इस समय पाकिस्तान आधीन है, दरद जाति आज भी रहती है । उसे दरदिस्तान कहते हैं ।

नेपाल से कश्मीर तथा पामीर तक खस जाति बिखरी थी । एक समय था जब तिब्बतवासी कश्मीरियों को खद्दे कहते थे । इस समय तिब्बती खद्दे लोगों को मुसलमान कहते थे । कश्मीर के लोग मुसलमान हो गये तो खद्दे शब्द मुसलमानों के लिये तिब्बतियों द्वारा प्रयुक्त होने लगा । तिब्बत सीमा मुसलिम देश कश्मीर है । चित्राल कश्कर, परसन मस्तूज के इलाकों के निवासी खो कहे जाते हैं । खसों में मुसलमान तथा बौद्ध हो गये और शेष हिन्दू धर्म के रीति रिवाजों को मानते हुए पूर्ववत् खत्री रह गये ।

•

परिशिष्ट 'प'

३५ लुप्त राजा (रा० त० १ : ८३ : पृष्ठ ११७)

हसन ने ३५ लुप्त राजाओं की निम्नलिखित तालिका दी है। यह तालिका वह किस ऐतिहासिक आधार पर देता है, इस पर प्रकाश नही डालता। इस तालिका का ऐतिहासिक महत्त्व नगण्य है। रत्नाकर पुराण की बात प्रमाण तुला पर सत्य नहीं उतरती।

(१) हरण देव ३०३४-३००५ ईसा पूर्व
(पुत्र राजा परीक्षित)

(२) रामदेव	३००५-२९३६	(१३) चन्द्रदेव	२५०६-२४५७
(३) व्यासदेव	२९३६-२८८०	(१४) आनन्द	२४५७-२४२६
(४) द्रुण	२८८०-२८२२	(१५) द्रुपद देव	२४२६-२३७८
(५) सिंहदेव	२८२२-२७६८	(१६) हरनाम देव	२३७८-२३२६
(६) गोपालदेव	२७६८-२७५५	(१७) शुक्लन देव	२३२९-२३११
(७) विजयानन्द	२७५५-२७३०	(१८) सिनादित्य	२३११-२२६४
(८) सुखदेव	२७३०-२६८६	(१९) मंगलादित्य	२२९४-२२५५
(९) रामानन्द	२६८६-२६२९	(२०) क्षेमेन्द्र	२२५५-२१८९
(१०) सन्धिमान	२६२६-२५६४	(२१) भीमसेन	२१८९-२१२८
(११) (क) मरहणदेव	२५६४-२५०६	(२२) इन्द्रसेन	२१२८-२०८२
(१२) (ख) कामनदेव		(२३) सुन्दरसेन	२०८२-२०४१

दो मास काश्मीर मण्डल राजा विहीन था। शेष १२ राजा शचीनर के पश्चात् हुए थे। उनकी तालिका निम्नलिखित है—

(२४) जलगेन्द्र	१७५७-१७१२	(३०) प्रतापशील	१५८९-१५५३
(२५) बलदेव	१७१२-१६६६	(३१) संग्रामचन्द्र	१५५३-१५५२
(२६) नलसेन	१६६९-१६४४	(३२) लारिकचन्द्र	१५५२-१५२१
(२७) गोकर्ण	१६४४-१६०८	(३३) बीरमचन्द्र	१५२०-१४७६
(२८) प्रह्लाद	१६०८-१५९७	(३४) बभीखन	१४७६-१४५९
(२९) बम्बरू	१५९७-१५८९	(३५) भगवन्त	१४५९-१४५५

इतिहासकार बैउद्दीन कश्मीर का विचित्र इतिहास उपस्थित करता है :—

"महात्मन् आदम सरन द्वीप (सिंहल या लंका) से कश्मीर आये। सेथ के वंश में कश्मीर का राज्य ११९० वर्ष तक रहा।

"महात्मन् सुलेमान ने कश्मीर को आबाद किया। अपने भतीजा इसौन को उसने कश्मीर का राजा बनाया। उसने कश्मीर पर २५ वर्ष तक शासन किया। तत्पश्चात् उसका पुत्र कस्सलघन इसलाबाद में राजधानी बनाकर १९ वर्ष राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र महेरकज राजा हुआ। उसने ३० वर्ष राज्य किया।

'वह सन्तानहीन था। उसने पण्डू खा अथवा यन्दू खा को गोद लिया। इस राजा का विचित्र जन्म हुआ था। उसकी एक माता एक सरोवर में स्नान कर रही थी। सहसा गर्भवती हो गयी। उसकी मृत्यु भी उस सरोवर में स्नान करते समय हो गयी। उसका शरीर पानी में घुल गया। उससे १५ हजार सन्तानें हुईं। उन्ही के वंशज भारतीय इतिहास वर्णित पाण्डव हैं। पण्डू खा का लड़का लादी खां हुआ।'

इस इतिहासकार के अनुसार वंशावली निम्नलिखित होती है। महारमन् सुलेमान ने अपने भतीजा इसीन को राजा बनाया उसके पश्चात् निम्नलिखित कश्मीर के राजा क्रमानुसार हुए।

१. सुलेमान २ इसीन ३. कस्सलघन ४. महरकज ५. पेण्डू खां ६ लदी खां ७. लिदर खां ८. सुन्दर खा ९. कुन्दर खां १०. सुन्दर खा (द्वितीय) ११. तुन्दू खा १२. वेंदू खा १३. महन्द खां १४. दरविनद खा १५. देवसिर खा १६. तेहव खा १७. कलजू खा १८. सुरखव १९ धर्म बरम खा २० नौरंग खां २१ वरिध खा २२. गवशेहर खा २३. पण्डू खा (द्वितीय) २४. हरशिर खां २५ सजिल खां २६. अकबर खा २७. जवर खा २८. नौदर खा २९. शंकर खा ३०. वक्रराज।

वक्रराज के वंशजो का नाम नही मालूम हैं। औगनन्द पहला राजा हुआ जिसके समय से इतिहास क्रमबद्ध चलता है।

बैउद्दीन के अनुसार राजाओं का संक्षिप्त विवरण :

८. सुन्दर खा—इस राजा के समय कश्मीर के हिन्दुओं में बुतपरस्ती अर्थात् मूर्ति पूजा आरम्भ हुई। बुतपरस्ती रोकने के कारण राजा मार डाला गया।

९. कुन्दर खा—३५ वर्षों तक राज्य किया।

१०. सुन्दर खा—इस राजा के समय में बुतपरस्ती पुन: जोर पकड़ गयी। इस राजा ने सदा शिव का मन्दिर निर्माण कराया।

१२ वेंदू खा—११५ वर्ष शासन किया।

१६ तेहव खा—यह राजा अपने पड़ोसी तथा सम्बन्धी काबुल के राजा द्वारा मार डाला गया। काबुल का राजा कश्मीर की गद्दी पर कलजू खा के नाम से बैठा।

१७. कलजू खा—सात वर्ष राज्य कर लेने पर कलजू खा को पाण्डवों ने गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन गये।

१८. सुरखव—१९१ वर्ष राज्य किया।

२०. नौरंग खा—महान् विजेता राजा था। इसका राज्य चीन की सीमा तक पहुँच गया था।

औगनन्द—[मैं समझता हूँ गोनन्द के लिए औगनन्द नाम का प्रयोग किया गया है।]

२३. पण्डू खा—उसने कश्मीर राज्य के उन सब स्थानों पर कब्जा कर लिया जो कभी कश्मीर राज्य के अन्तर्गत थे। उसने राज्य भारतीय समुद्र की सीमा तक पहुँचा दिया।

२४ हरशिर खा—२३ वर्ष राज्य किया।

२८. नौदर खा—काश्मीर में इन्होने आतिशपरस्ती अर्थात् अग्निपूजा का प्रचार किया। (यह जरदस्तु अर्थात् पारसियो का धर्म था।)

२९. शंकर खां—वक्रराज ने इस पर आक्रमण कर मार डाला। वह एक पड़ोसी सरदार था।

शंकर खां का लड़का कुछ घन्टों के लिए गद्दी पर बैठा।

३०. वक्रराज—वक्रराज राजा हुआ। उसने अपने वंशजों को राज्य दिया।

श्री वैंडहीन ने कश्मीर के इतिहास, वहाँ की परंपरा तथा धर्मादि को पुरातन बाइबिल एवं कुरान शरीफ में वर्णित महात्मन् सुलेमान से जोड़ा है। कश्मीर को भारतीय परंपरा, इतिहास एवं धर्म से सर्वथा अलग रखा है। उसने राजाओं की जो तालिका उपस्थित की है, वह कुछ विचित्र ध्वनि करती है। उसने संस्कृत नामों के आगे 'खां' पद जोड़ दिया है। यह 'खां' शब्द भारत में मंगोल मुसलिम आक्रमण के पश्चात् प्रचलित हुआ था। इसका सम्बन्ध मंगोल से फिलस्तीन की अपेक्षा अधिक है। सुन्दर खां के पहले कश्मीर में मूर्ति पूजा नहीं थी। उसके समय में आरम्भ हुई और वह अपने इस कार्य के लिए जनता द्वारा मारा गया था। किन्तु सुन्दर खां द्वितीय के समय सदा शिव की पूजा आरम्भ हो गयी। वैंडहीन पारसी धर्म आतिशपरस्तों का कश्मीर में आना कहता है। कश्मीर का सम्बन्ध, फिलस्तीन, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा इस समय के मुसलिम जन बाहुल्य देशों से जोड़ने का प्रयत्न करता है।



अनुक्रमणिका

[अ]

अकरोत्स महाहर्म्यैः 2, 133
अकृच्छ्रलङ्घ्या. पन्थानो 3, 224
अग्रहाराञ्जगृहिरे 1, 307
अङ्गेन रक्ष कायस्य 3, 346
अचिन्तयच्च धिङ्मां 3, 183
अचिन्तयच्च नाश्यं 3, 148
अचिन्तयच्च शास्त्रज्ञो 3, 222
अचिन्तयच्च सत्यं मे 2, 153
अचिन्तयच्च सभ्रान्त. 2, 92
अटवीषु श्मशानेसु 2, 29
अत एव विवेकतृणा 1, 229
अत एवाऽग्रहाराणा 1, 314
अतः परुपमप्यद्य 3, 310
अतिकारुण्यमिपत 3, 42
अतिक्रान्तप्रभावेयं 2, 35
अतिक्रामति कालेऽथ 3, 82
अतिसन्तापदाज्जातः 1, 327
अत्यद्भुतमति षाड्गुण्य. 2, 67
अत्युदात्तगुणेष्वेषा 3, 304
अत्यद्भुतं राज्यलाभम् 2, 142
अथ कृत्याश्रमं कृत्वा 1, 147
अथ कृत्वा क्षणाच्छ्लोकम् 3, 180
अथ क्ष्माभृद्रक्षा क्ष्मा 3, 97
अथ ग्रथयितुं तस्मिन् 3, 261
अथ ग्राहयितुं भूपान् 3, 27
अथ तं कृशमर्वाङ्गं 3, 160
अथ दूतेषु यातेषु 3, 190
अथ दीपोज्ज्वले धाम्नि 3, 371
अथ निरुन्धुस्ते संनद्धा 1, 366
अथ निर्भर्त्सना तस्माद् 1, 256
अथ निष्कष्टको राजा 1, 174
अथ पवन्तु भूपालः 3, 178
अथ पुर्याष्टकग्राम्य° 2, 105
अथ प्रतापादित्याख्यः 2, 5
अथ शाङ्मुरसौवर्ण° 3, 239
अथ भानुकरोच्छून° 3, 398
अथ भाग्यर्य माहात्म्यान् 2, 72
अथ म्लेच्छगणाकीर्णे 1, 289
अथ योगेश्वरी काचिद् 1, 331
अथ रक्ष. पतिर्लङ्का 3, 75
अथ राजाज्ञया क्रूरं 2, 79
अथ राजाऽभ्यधात् येन 3, 292
अथ वनसरसीतट° 2, 166
अथ वाक्पुष्ट्या सार्धं 2, 11
अथवा रचनानिर्वि° 3, 95
अथ वाराणसी गत्वा 3, 320
अथ वार्ता विदित्वेमा 2, 114
अथवा विद्यतेऽमुष्य 3, 195
अथवाऽस्यैव सूक्तेन 3, 186
अथ विगलिता गोनन्दोर्वी° 3, 530
अथ वेलावनोपान्तात् 3, 31
अथ वैजनने मासि 1, 74
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् 1, 26
अथवाऽनादृतोऽन्येन 3, 201
अथ शस्त्रक्षतैरङ्गैः 1, 63
अथ शिथिलितमुख्यामात्य° 3, 528
अथ सधिमति बुद्ध्वा 2, 82
अथ स्नातानुलिप्ताङ्गं 3, 241
अथ स्नाय्वस्थिशेषाङ्गो 3, 408
अथाक्लेशोचितं क्षेम° 3, 211
अथानन्तचितालोक° 3, 339
अथापश्यत्तथाभूतः 3, 52
अथाऽपश्यत्तरुच्छन्नः 2, 102
अथाभवत् लवो नाम 1, 84

अथाभवस्त्वनामाङ्क° 1, 168
अथाम्यधान्महात्मा स 3, 38
अथार्धरात्र निनिद्रः 2, 94
अथाऽर्यराजो विज्ञाय 2, 152
अथाऽशोककुलोत्पन्नो 1, 153
अथाऽसूयत वाक्ताशां 2, 109
अथाश्वपादेनेशान° 3, 366
अथाऽऽसीत्क्षुत्परिक्षाम° 2, 20
अथाहूयापरान्भृत्यान् 3, 250
अथेन्द्रदेवीभवनम् 3, 13
अथोत्पन्नभयो राजा 1, 363
अथोदतिष्ठन् गर्तेभ्यो 3, 400
अथोपसिन्धु गान्धारैः 1, 66
अथोल्लसत्पृथुश्लाघ° 3, 2
अद्यापि तत्पुरं दग्धं 1, 270
अनन्तरज्ञः कोऽन्योऽस्माद् 3, 217
अनयद्विनयोदात्तः 2, 3
अनर्घमहिमा दीर्घ° 1, 91
अनात्मज्ञ किमेतत्ते 3, 34
अनाप्नुवद्भिः सावद्य° 3, 135
अनेन सह संजातः 3, 142
अन्तरज्ञतया तस्य 3, 262
अन्तरज्ञतया श्लाघ्यः 3, 301
अन्तर्वंध्यौ च कर्तव्य 3, 192
अन्तर्मे सततं लुठन्त्य° 3, 202
अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नी 1, 70
अन्यस्यापि क्रोधहेतुं 3, 509
अन्यांश्चानीय देशेभ्यः 1, 343
अन्याभिः खादनासम्भा° 3, 14
अन्येद्युर्विस्मयस्मेरैः 3, 71
अन्येद्युर्भुवमुत्सृज्य 3, 287
अन्येद्युर्विधिवदुपास्य 2, 169
अन्येद्युः प्रकृतीः सर्वाः 2, 159
अन्योत्कर्षानपि वदन् 3, 158
अन्योन्यं साभिमानानाम् 3, 323
अन्वैप्यत नृपस्ताभिः 2, 144
अपश्यत्स फणाकोटौ 3, 221
अपश्यदथ केनापि 3, 33
अपश्यन्निर्जलात्स्थानाद् 1, 126
अपि च स्पृहयालुः स्यां 3, 315
अपूर्वो यत्प्रतापाग्निः 3, 389
अप्यल्पकालसंदृष्ट° 1, 274
अप्रियैरपि निष्पिष्टं 3, 283
अबुध्वाऽननुतिष्ठन्त 1, 79
अभवन्निर्मलं व्योम 2, 54
अभिमानवतां यत्र° 1, 226
अभुक्ते मान्त्रिकैरन्ने 1, 234
अभूदभीतजनता° 3, 28
अमात्यमादिदेशाथ 3, 256
अमृतप्रभया तस्य 3, 463
अयमेतद्गृहीतेषु 3, 216
अरण्यगहनाल्लब्धम् 3, 37
अराजान्वयिने दत्ता 3, 488
अर्चालिङ्गमुपादाय 2, 161
अर्थिनां शासितुं राष्ट्रं 2, 116
अर्पितेन स्वयं त्रातुं 3, 242
अर्घे यद्भिक्षवः शिक्षा° 3, 12
अर्वाक्कालोद्भवस्यापि 3, 15
अलोलकीर्तिकल्लोल° [illegible] 64
अवतारस्ततस्तस्य 1, 318
अवध्योऽहं पशुत्वेन 3, 334
अवन्ध्यदर्शनो विन्ध्ये 3, 394
अवालम्ब्यत छत्रं 3, 65
अविज्ञाताशयो राज्ञ 3, 209
अव्याजौदार्यचर्यस्य 3, 308
अशून्यजन्मा भूयासं 4, 430
अशेषमेकेनैवाह्ना 1, 166
अश्लीलालापिनोऽन्योन्यं 3, 140
अष्टषष्ट्यधिकाम्बद° 1, 48
असंतापार्हतां जानन् 1, 41
असपूर्वाऽपि तेनोर्वी 2, 8
असाधारणमौदार्य° 3, 314

अनुक्रमणिका

[अ]

अकरोत्स महाहर्म्ये. 2, 133
अकृच्छ्रलङ्घ्याः पन्थानो 3, 224
अग्रहाराञ्जगृहिरे 1, 307
अङ्गेन रक्ष कायस्य 3, 346
अचिन्तयच्च धिङ्मां 3, 183
अचिन्तयच्च नाऽयं 3, 148
अचिन्तयच्च शास्त्रज्ञो 3, 222
अचिन्तयच्च सत्यं मे 2, 153
अचिन्तयच्च सम्भ्रान्त 2, 92
अटवीषु श्मशानेषु 2, 29
अत एव विवेक्तॄणा 1, 229
अत एवाऽग्रहाराणा 1, 314
अतः परुषमन्यद्य 3, 310
अतिकारुण्यमिपतः 3, 42
अतिक्रान्तप्रभावेयं 2, 35
अतिक्रामति कालेऽथ 3, 82
अतिसन्तापदाञ्जात. 1, 327
अत्यद्भुतमति शङ्क्य 2, 67
अत्युदात्तगुणोऽवैषा 3, 304
अत्यद्भुतं राज्यलाभम् 2, 142
अथ कृत्याश्रमं कृत्वा 1, 147
अथ कृत्वा क्षणाच्छ्लोकम् 3, 180
अथ क्ष्माभृद्वरस्तं क्ष्मां 3, 97
अथ ग्रथयितुं तस्मिन् 3, 261
अथ ग्राहयितुं भूपान् 3, 27
अथ तं कृशसर्वाङ्गं 3, 160
अथ दूतेषु यातेषु 3, 190
अथ दीपोज्ज्वले धाम्नि 3, 371
अथ निर्घृणस्त्वे संनद्धा 1, 366
अथ निर्भर्त्सनां तस्माद् 1, 256
अथ निश्चस्तो राजा 1, 174
अथ पप्रच्छ भूपालः 3, 178
अथ पुर्यष्टिकग्राम्य° 2, 105
अथ प्रतापादित्याख्यः 2, 5
अथ प्राङ्मुखसौवर्ण° 3, 239
अथ भानुकरोच्छुर° 3, 398
अथ भाश्चर्य माहात्म्यात् 2, 72
अथ म्लेच्छगणाकीर्णे 1, 289
अथ योगेश्वरी काचिद् 1, 331
अथ रक्षःपतिर्लङ्का 3, 75
अथ राजाज्ञया क्रूरं 2, 79
अथ राजाऽभ्यधात् केन 3, 292
अथ वनसरसीतट° 2, 166
अथ वाक्पुष्ट्या सार्धं 2, 11
अथवा रचनानिर्वि° 3, 95
अथ वाराणसी गत्वा 3, 320
अथ वार्ता विदित्वेमां 2, 114
अथवा विद्यतेऽमुष्य 3, 195
अथवाऽस्यैव सूक्तेन 3, 186
अथ विगलिता गोनन्दोर्वी° 3, 530
अथ वेलावनोपान्तात् 3, 31
अथ वैजनने मासि 1, 74
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् 1, 26
अथवाऽन्नादृतोऽन्येन 3, 201
अथ शस्त्रक्षतैरङ्गे 1, 63
अथ शिथिलितमुख्यामात्य° 3, 528
अथ संधिमतिं बुद्ध्वा 2, 82
अथ स्नातानुलिप्ताङ्ग 3, 241
अथ स्नाय्वस्थिशेषाङ्गो 3, 408
अथाक्लेशोचितं क्षेम° 3, 211
अथानन्तचितालोक° 3, 339
अथापश्यत्तथाभूतः 3, 52
अथाऽपश्यत्तरुच्छन्न. 2, 102
अथाभवत् लवो नाम 1, 84

अथाभवत्स्वनामाङ्क°	1, 168	अपश्यत्स फणाकोटौ	3, 321
अथाम्यधान्महात्मा स	3, 38	अपश्यदथ केनापि	3, 33
अथार्धरात्र निर्निद्रः	2, 94	अपश्यन्निर्जलात्स्थानाद्	1, 126
अथाऽऽर्यराजो विज्ञाय	2, 152	अपि च स्पृहयालुः स्या	3, 315
अथाऽशोककुलोत्पन्नो	1, 153	अपूर्वो यत्प्रतापाग्नि·	3, 389
अथाऽश्रूयत वार्त्तासां	2, 109	अप्यल्पकालसंदृष्ट°	1, 274
अथाश्वपादेनेशान°	3, 366	अप्रियैरपि निष्पिष्टै·	3, 283
अथाऽऽसीत्क्षुत्परिक्षाम°	2, 20	अबुध्वाऽनुतिष्ठन्त·	1, 79
अथाहूयापरान्भृत्यान्	3, 250	अभवन्निर्मलं व्योम	2, 54
अथेन्द्रदेवीभवनम्	3, 13	अभिमानवतां प्रह्व°	1, 226
अथोत्पन्नभयो राजा	1, 363	अभुक्ते मान्त्रिकैरन्ने	1, 234
अथोदतिष्ठन् गर्तेभ्यो	3, 400	अभूदभीतजनता°	3, 28
अथोपसिन्धु गान्धारैः	1, 66	अमारमादिदेशाथ	3, 256
अथोल्लसत्पृथुवलाघ°	3, 2	अमृतप्रभया तस्य	3, 463
अद्यापि तत्पुरं दग्धं	1, 270	अयमेतद्गृहीतेषु	3, 216
अनन्तरज्ञः कोऽन्योऽस्माद्	3, 217	अरण्यगहनाल्लब्धम्	3, 37
अनयद्विनयोदात्तः	2, 3	अराजान्वयिने दत्ता	3, 488
अनर्घमहिमा दीर्घ°	1, 91	अर्चालिङ्गमुपादाय	2, 161
अनारमज्ञ किमेतत्ते	3, 34	अर्थनां शासितुं राष्ट्रं	2, 116
अनाप्नुवद्भिः सावद्य°	3, 135	अर्थितेन स्वयं त्रातुं	3, 242
अनेन सह संजातः	3, 142	अर्धे यद्भिक्षव· शिक्षा°	3, 12
अन्तरज्ञतया तस्य	3, 262	अर्वाक्कालोद्भवस्यापि	3, 15
अन्तरज्ञतया श्लाघ्यः	3, 301	अलोलकीर्तिकल्लोल°	2 64
अन्तर्दध्यौ च कर्तव्यं	3, 192	अवतारयतस्तस्य	1, 318
अन्तर्ये सततं लुठत्य°	3, 202	अवध्योऽहं पशुत्वेन	3, 334
अन्तर्वत्नी तस्य पत्नी	1, 70	अवन्यदर्शनां विन्ध्ये	3, 394
अन्यस्यापि क्रोधहेतुं	3, 509	अवालम्बिप्यत छत्रं	3, 65
अन्यांश्चानीय देशेभ्यः	1, 343	अविज्ञाताशयो राज्ञः	3, 209
अन्याभिः खादनासम्भा°	3, 14	अव्याजौदार्यचर्यस्य	3, 308
अन्येद्युर्विस्मयस्मेरैः	3, 71	अशून्यजन्मा भूयासं	4, 430
अन्येद्युर्भुवमुत्सृज्य	3, 287	अशेषमेनेनैवाह्वा	1, 166
अन्येद्युर्विधिवदुपास्य	2, 169	अश्लीलालापिनोऽन्योन्यं	3, 140
अन्येद्युः प्रकृतीः सर्वाः	2, 159	अष्टपष्टयधिकाब्द°	1, 48
अन्योत्कर्पानपि वदन्	3, 158	असंतापार्हतां जानन्	1, 41
अन्योन्यं साभिमानानाम्	3, 323	असपूर्वाऽपि तेनौवी	2, 8
अन्वैष्यत नृपस्ताभिः	2, 144	असाधारणमौदार्य°	3, 314

असामान्यान्गुणांस्तस्य 3, 251
असारं च विचित्रं च 2, 113
अस्मद्गिरा प्रेरणीयो 1, 142
अस्मद्वराद्दिव्यवपु. 2, 110
अस्य ग्लानस्य भैषज्यं 3, 164
अस्य वैकल्यकैवल्य° 3, 277
अहंपूर्विकयोच्चद्भि 3, 220
अहरन्हृदयं तस्य 2, 121
अहो नरेश्वरस्येयं 3, 212

[आ]

आकृतेर्हा धिगीदृश्या 1, 212
आक्रान्ते शारदेभौट्टै. 1, 312
आगच्छत प्रविशतै° 3, 232
आचान्ते शुचिता प्राप्ते 1, 214
आदिदेश च तान्यो वो 3, 189
आद्येन चन्द्रदेवेन 1, 184
आ बाल्याद्व्यक्तदिव्योक्ति 3, 433
आन्यामभ्यधिकं कर्तुं 2, 59
आम्नायभङ्गान्निर्नष्ट° 1 83
आरोग्यशाला निरपा° 3, 461
आर्यदेश्यान्स संस्थाप्य 1, 313
आलोक्य शारदा देवी 1, 37
आवेद्यमानं शिशुभिस्तं 3, 116
आशाः काञ्चन पुष्प° 2, 40
आऽशोकादभिमन्योर्ये 1, 20
आसन्नप्रसवा भर्त्री 3, 106
आसन्मघासु मुनय. 1, 56
आसन् येऽस्मिनोऽगाध° 3, 479
आस्ता बालस्य संनद्धे 1, 77

[इ]

इति काश्मीरको राजा 1, 82
इति चिन्तयतस्तस्य 3, 167
इति तैस्तम्प्रमुक्तोऽपि 2, 246
इति ध्यात्वाऽलिलद्वर्णान् 3, 522
इति निश्चित्य चतुरं 3, 188
इति ब्रुवति साक्षेपं 3, 87
इतिवृत्तं महाश्चर्यं 1, 277
इति संचिन्तयन्नन्तः 2, 158
इति संचिन्त्य राज्ञाऽपि 3, 119
इति संचिन्त्य मुनिरं 3, 92
इति संचिन्त्य सुदृढं 3, 146
इति संरम्भतः प्रोक्ते 2, 50
इति सोऽभीष्टमंत्राप्तो 3, 422
इत्यमाराक्षसकुलं 3, 79
इत्थं विलङ्घ्यनाख्या स 3, 225
इत्थं दिवने परं कंचिन् 3, 245
इत्यर्थ्यमानोऽकथयद् 3, 69
इत्याद्यपतनस्यापि 3, 94
इत्यासादितराज्यस्य 3, 264
इत्युक्त्वा चरणाविष्टो 2, 43
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवे 3, 280
इत्युक्त्वा भाविनोऽर्थस्य 2, 97
इत्युक्त्वाऽर्पितलेखोऽसौ 3, 368
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् 3, 319
इत्युक्त्वा स स्वयं देहम् 3, 50
इत्युदीर्य निजं जानुं 3, 345
इत्यूचुर्ये मते तेषा 1, 311
इत्येतत्प्रतिवृत्तान्तं 1, 189
इत्येतस्मिन् जनाम्नाये 1, 316
इत्यौचित्यनिषेस्तस्य 3, 299
इदं संचिन्तयन्सोऽभूत् 3, 203
इदं स्वभेदविधुरं 2, 7
इन्द्रजिद्रावणावास्ता 1, 193
इयं चान्यमते ख्यातिः 1, 323
इयं नृपाणामुल्लासे 1, 21

[ई]

ईशानस्तस्य देवीनां 2, 107
ईशानोऽपि तमालिङ्ग्य 2, 112
ईशो नृपाणां निश्शेष° 3, 101

[उ]

उचिता सत्क्रियां कर्तुं 2, 89
उच्चण्डलाडनादण्डो° 2, 99
उज्झितं स्वेच्छया तच्च 2, 160

उत्तमो लोकपालोऽयम् 1, 314
उत्तानफललुब्धानां 3, 198
उत्तिष्ठ प्रतिनामस्य 2, 49
उत्पलाक्ष इति ख्याति 1, 286
उत्पिञ्जोत्पादनासज्जे 3, 122
उत्सहन्ते हि संस्रष्टुं 3, 429
उद्गर्जज्जिह्मजीमूत° 1, 259
उद्घाटितलमोरिः 2, 100
उद्वर्तितस्तनिष्यन्द° 1, 28
उद्वेगोत्पादनादेषा 3, 518
उन्मीलितेक्षणोऽप्राक्षीत् 3, 370
उपकारं स्मरन्तस्तु 3, 295
उपनिन्ये च संगृह्य 1, 213
उपलेभे च दानकैः 3, 500
उपहारनिरोधेन 3, 36
उपहारीकरोम्येष 3, 46
उपायं यं पुरस्कृत्य 3, 214
उपेक्षितस्य निर्व्रीडैः 1, 360
उपेक्ष्यमोक्षं किं क्ष्माभुद् 3, 274
उल्लसद्वरसंभोग° 2, 203

[ऊ]

ऊष्मायमाणो विद्वेष° 2, 76

[ऋ]

ऋद्धादृक्षं शतेनाब्दैः 1, 55
ऋद्धापणं राजपथैः 1, 201
ऋद्धया जाज्वलितस्यो° 1, 154

[ए]

एकदा सर्वतो भग्नाः 1, 61
एकमेकं स्वमङ्गं च 2, 104
एकस्तु तनयस्तस्य 1, 275
एकहस्तधृतावेग° 1, 248
एका तमूचे विद्धचावा° 1, 217
एतावत्येव कर्तव्ये 3, 318
एवं क्षुद्रोऽपि यद्राजा 1, 324
एवं नागवराश्वाम° 1, 244
एवं स भुवनैश्वर्यं 3, 377
एवं स सेवमानस्तम् 3, 159

[क]

कचं भस्मीकृतं दैत्यैः 2, 96
कथादैर्घ्यानुरोधेन 1, 6
कदाचितस्य दूराध्व° 1, 204
करम्भके कीर्यमाणे 3, 257
कर्णिकापद्मरागाब्ज° 1, 208
कर्तुं प्रभावजिज्ञासां 3, 455
कर्मणा तेन सिद्धाया 1, 334
कर्मभिः स्वैरवासस्य 3, 246
कर्मस्थानि मर्माणि 1, 120
कल्पद्रुमाश्च सन्तश्च 3, 64
कल्याणिना प्राणिवधे 3, 6
कल्याणिनीभ्यां कतमा 1, 216
कश्मीराः पार्वती तत्र 1, 72
कश्मीरेन्द्रः स गोनन्दो 1, 57
कश्मीरेषु धनोदग्रम् 3, 481
कश्यपेन सदन्तःस्थं 1, 27
कः कोऽत्र वध्यतां चौर 3, 17
कः कोऽत्र संनिधातॄणाम् 3, 237
कः शाकः कतमः स्रष्टा 2, 47
कः स्वभावगभीराणां 1, 230
कार्कोटभवः प्रभुः स 3, 529
काले काले प्रजापुण्यैः 1, 187
काले कियत्यपि ततो 1, 352
कालेन सर्वानामन्त्र्य 1, 242
किं कर्तव्यतया मूढं 3, 442
किन्नरापरनामाख्य 1, 197
किरात कातरो मा भूः 3, 89
कुबेर इव यो राज्ञाम् 1, 156
कुम्भदासतया छन्नः 3, 456
कुलाल्या दारको मातः 3, 120
कुशेशयाक्षस्तत्पुत्रः 1, 88
कृतप्रतिश्रवे राज्ञि 1, 146

कृतं कृत्यं महद्वृत्तं	3, 373
कृतार्थता तीर्थतीर्थै.	3, 265
कृतार्हणं सुखासीनं	3, 289
कृतार्हणैरथामात्यै	3, 234
कृत्ये बहूनि निर्व्यार्थे	2, 154
कृत्वा सन्धीश्वरं देह°	2, 134
कृत्वेष्टिकापथे कष्टं	3, 467
कृपामृदुरवादीत्तं	3, 419
केनाऽप्यनवधानेन	1, 13
कैश्चिन्निर्वासितो मा स्वित्	3, 288
कोटिश्रयं नरपति	1, 322
कोटिवेधिनि सिद्धे हि	1, 110
कोऽन्य: कालमतिक्रान्तं	1, 4
को वेत्त्यद्भुतचेष्टात्मा	1, 305
कोऽस्याश्रयः किमशनं	3, 162
क्रमवर्ताभिधाने स	3, 227
क्रमात्प्रवृत्ते सोऽथ	1, 222
क्रमोपचीयमानेन	3, 151
क्रुद्धैर्वैरिरनुध्याता	1, 144
क्लमाप्यायक्रियाभाजो	3, 60
क्वचिन्मडवराज्यान्तः	2, 15
क्षणभङ्गिनि जन्तून्	1, 23
क्षपाया क्ष्मापतिमथ	3, 93
क्षामं कण्ठगतप्राणं	2, 21
क्षुत्तापाद् भस्मरल्लज्जाम्	2, 22
क्षुद्रैः क्रोशिभिर्नाप्सु	3, 81
क्षुरप्रभ्रागिन्धेवादि°	1, 315
क्षेत्राणि रक्षत्येतस्मिन्	1, 235
[ख]	
खिन्नेन्द्रियजलालाने	3, 134
ख्यातिं रक्षतु रक्षामि'	3, 462
[ग]	
गच्छन् क्ष्मातलेऽभ्यस्य	3, 338
गच्छतो मातुलस्य	3, 219
गर्जितं दुर्दिना तेन	1, 280
गणोऽयं मामकः सिद्धो	3, 270
गतानुगतिकत्वेन	3, 193
गतिं प्रवीरसुलभां	1, 64
गम्भीरश्च गुणज्ञश्च	3, 144
गव्यूतिमात्रमासन्ने	3, 407
गिरं गभीरो गृह्णाति	2, 70
गुणरत्नाकरः शैलं	3; 72
गुणी च दृष्टकष्टश्च	3, 258
गुहोन्मुखो नागमुखा°	1, 29
गूढं तस्य बहिःक्षेत्र°	1, 238
गृहाङ्गनमिव क्षोणी	3, 100
गृहीतहारमुक्तार्घां	3, 414
गृह्णन्यथागुणं स्वान्तम्	3, 137
गोधर्णस्तत्सुतः क्षोणी	1, 346
गोधराहस्तिशालाख्यम्	1, 96
गोविन्दान्वयिनामाद्यः	1, 191
ग्रामे ग्रामे स्थितैरश्वैः	1, 114
[घ]	
घोरं जनक्षयं कृता	1, 266
[च]	
चक्रभृद्विजयेशादि°	1, 38
चकारे च महाभागो	2, 14
चक्रे नडवने राज्ञो	3, 11
चक्रे पर्यस्तमर्यादः	1, 253
चक्रे ब्रह्ममठं ब्रह्मा	3, 476
चतुर्थयोजनस्यार्धम्	3, 405
चतुःशालामठस्यान्तः	1, 195
चत्वारिंशतमब्दान्स	1, 273
चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वा°	1, 176
[छ]	
छन्दानुवर्तिनामेष	3, 141
छत्रप्रेमसुखाभ्यास°	3, 494
[ज]	
जगत्परिवृढः प्रौढ°	3, 278
जगद्विलक्षणं यस्य	3, 387

जनयिन्याः कुलाल्याश्च 3, 108
जनास्त्वलक्षयन् यस्य 3, 458
जनैरलक्ष्यमाणेऽथ 3, 523
जनैः स ददृशे गच्छन् 3, 375
जन्मान्तरे लब्धसिद्धिः 3, 268
जयन्तेनाद्भुतोदन्त° 3, 376
जातः पद्मश्रियो देव्याः 2, 731
जित्वोर्वी कान्यकुब्जाद्या 1, 117
जीर्णं श्रीविजयेशस्य 1, 105
जुगोप गोपादित्याख्यं 2, 145
जुगोप गोपादित्योऽथ 1, 339
ज्येष्ठेऽत्र कृष्णद्वादश्यां 1, 220
ज्येष्ठेश्वरं प्रतिष्ठाप्य 1, 341

[त]

तच्चुम्बने भुग्नकण्ठी 3, 504
ततस्तथाविधःक्षुभ्यन् 3, 511
ततस्तं वृत्तसंकेतः 3, 374
ततस्तस्य सुतः प्राप 1, 89
ततस्तस्यातिसंरम्भात् 1, 67
ततः कथान्तरे क्वाऽपि 1, 225
ततः कलकलोत्ताल° 3, 238
ततः कृततपाः स्वप्ने 1, 319
ततः प्रधावितानेक° 3, 205
ततः प्रभृति तस्याज्ञा 3, 80
ततः प्रविश्य नगरं 3, 253
ततः प्रहर्तुकामस्य 3, 51
ततः प्रावर्तत स्फार° 3, 168
ततः सुप्तोत्थित इव 2, 106
ततो दिव्याम्बरः स्रग्वी 2, 111
ततो निश्शोषितधनः 2, 30
ततोऽन्यकुलजो राजा 2, 62
तोऽपनीतप्राग्वेषः 3, 229
ततो भूभृदुवाचैनं 3, 179
ततो महान्प्रसादोऽयम् 3, 70
ततो मुहुः प्रहरता 3, 404
ततो विदितवृत्तान्तो 3, 281
तत्कालप्रबलप्रेङ्ख° 1, 112
तत्तत्कर्म व्यतिकरकृतः 2, 93
तत्तुल्यगुणनिर्विण्णा 3, 503
तत्त्वं गुणवतामग्र्यः 3, 305
तत्प्रसीद प्रजानाथ 3, 45
तत्र कौरवकौन्तेय° 1, 44
तत्र तं वारुणं छत्रं 2, 148
तत्र तस्योग्रनिगडैः 2, 74
तत्र तालीतरुवन° 3, 73
तत्र तालीवनच्छाया 3, 30
तत्र त्रिपष्टिवर्षाणां 1, 330
तत्रानेहस्युज्जयिन्यां 3, 125
तत्रापि पूर्वसंस्कारात् 1, 326
तत्रैकस्मिन्किलोद्याने 1, 203
तत्सूनुर्जनको नाम 1, 98
तत्सेनाकुम्भिदानाम्भो° 1, 296
तत्स्वदेहोपहारेण 3, 91
तथा कुरु यथा भ्रश्येत् 1, 236
तथा साश्चर्यचर्यः स 3, 115
तदद्भुतमहासत्त्व° 3, 41
तदनुप्राणिताः सर्वे 1, 362
तदमन्दरसस्पन्द° 1, 24
तदमुष्य गुणित्वस्य 3, 166
तदर्थमेव कथितस्वो° 3, 435
तदस्मिन्नेतयोर्बाल्याद् 1, 231
तदाकर्णनसंरम्भे 1, 303
तदाकर्ण्य महीपालः 3, 182
तदाकर्ण्याऽवदद्राजा 3, 25
तदाऽऽक्रान्तासुहृच्चक्रः 1, 69
तदा त्वदाज्ञामात्रेण 3, 24
तदानीं तोयदा भूत्वा 3, 21
तदा प्रभावः कोऽप्यासीद् 1, 181
तदा भगवतः शाक्य° 1, 172
तदाहवे विवाहोत्का 1, 68
तदिदं प्राप्तुकामेन 3, 56

तदेवं विहितोदात्त°	3, 67	तस्मिन्महामये घोरे	2, 26
तदेव गलितोपायो	2, 41	तस्मिन्विरजसि प्राज्यम्	2, 120
तद्विना नगरं कुत्र	3, 360	तस्मिन्विश्वक्षयोद्युक्तं	2, 19
तन्मतं पद्ममिहिरो	1, 18	तस्मै कृतप्रणामाय	3, 206
तपःस्थानपि ये जघ्नुः	3, 86	तस्य धावन्तमुन्मत्तम्	1, 251
तपोविभूतयोऽचिन्त्या	1, 160	तस्य पादार्पितदृशो	2, 162
तत्राय.शङ्कुनेवान्त°	3, 32	तस्य प्रत्यक्षता यातो	1, 183
तमय प्रतिशब्देन	3, 342	तस्य भूपतिविद्वेष°	2, 69
तमन्तिकं पितुः प्राप्तं	2, 151	तस्य रत्नप्रभादेव्या	3, 379
तमभ्यधात्सा दुर्बुद्धे	3, 423	तस्य राज्याभिषेकादि°	1, 75
तम'प्रकाशावहयो.	3, 59	तस्य राज्ये जिनस्येव	3, 7
तमित्यं कथयन्तं सा	3, 428	तस्य विन्ध्यतटव्यूढ°	3, 240
तं कुलीनैश्च शूरैश्च	3, 111	तस्य सूनुर्हिरण्याक्षः	1, 287
तं च व्युत्क्रान्तदारिद्र्यः	1, 240	तस्य सूनु सुवर्णाख्यः	1, 97
तं च स प्रतिगृह्णन्तं	3, 63	तस्याऽनुजो धरणिभृत्	3, 386
तं चामरमरुल्लोल°	1, 81	तस्याभिषेक एवाज्ञा	3, 5
तं चाऽस्थिशेषमद्राक्षीत्	2, 85	तस्याभूदद्भुतोदन्तो	2, 65
तं प्रयान्तं समुद्यद्भि.	3, 530	तस्यां कदाचित्सौधाग्र°	1, 246
तं वारयितुमाहूता	1, 247	तस्यावन्ध्यप्रसादत्वं	1, 78
तया तस्याज्ञया राज्ञो	3, 26	तस्याप्यपोह्यमाहात्म्या°	3, 391
तया मनोहरैस्तैस्तैः	1, 332	तस्योपकर्तुरुचितं	3, 525
तयोस्तुल्यौजसोर्युद्धे	1, 62	तादृशां नहि निर्व्याज°	2, 53
तयो. प्रतिष्ठा क्रियताम्	3, 450	तानुज्ज्वलयितुं भृत्यान्	3, 173
तयो. प्रभावमाहात्म्य°	2, 17	तान्पाणौ गृह्णतैवाथ	1, 206
तस्मात्सत्त्वातिरेकान्मे	1, 145	तापसैर्भस्मरुद्राक्ष°	2, 127
तस्मादनुगृहाणास्मान्	3, 306	ताभ्यामभ्येत्य वृत्तान्ते	1, 258
तस्मिन्काले नरो राजा	1, 250	ता विभाव्यानवद्याङ्गी	3, 417
तस्मिन् काले ध्रुवं तेषा	1, 45	ता विष्णुप्रतिमां तत्त्व	3, 446
तस्मिन्काले स्वसचिवान्	1, 71	ता विष्णोः प्रतिमा वीक्ष्य	3, 444
तस्मिन्नूने न जायेत	1, 143	ता वीक्ष्य लक्षणोपेतां	3, 485
तस्मिन्नगरे पीडा	1, 177	तामा संभ्रममालक्ष्य	2, 101
तस्मिन्नन्यं गते भुक्त्वा	3, 96	तासु तासु कुलस्त्रीषु	1, 321
तस्मिन्नहनि भूभर्ता	3, 286	तासु तासु स वापीषु	2, 130
तस्मिन्निरगमत्तो राज्ञि	1, 95	ता. संश्रुतेप्सितास्तेन	3, 19
तस्मिन्नुद्गुणरागाग्नि°	1, 252	तिर्यञ्च्या ते नृपयो	3, 448
तस्मिन्नवाते प्रासेभ्यः	1, 301	तिष्ठन्ति ये पशुपते.	3, 199

ते तत्राभ्रंलिहाः सौधा	3, 359	दम्पतिभ्यामियं ताभ्याम्	2, 12
ते तमुच्छुष्कमृल्लेप	3, 401	दरद्देशान्तिके कृत्वा	1, 93
ते तुरुष्कान्वयोद्भूता	2, 170	दर्पज्वरोष्णभूपाल°	1, 279
ते ध्यातमात्राः संप्राप्ता	3, 451	दाक्षिण्यात्प्राणदस्यास्य	3, 524
तेन क्रमागतं राज्यं	1, 351	दार्ढ्यं कियदिदं तस्माद्	1, 10
तेन जातु परीक्षार्थं	1, 128	दानेन सुदिनं कुर्वन्	3, 247
तेन तस्य निमित्तेन	2, 149	क्षायादादिवलैर्नष्टा	1, 161
तेन षोडशभिर्लक्षैः	1, 86	दिग्जयोपार्जितैर्वित्तैः	1, 202
तेन स्वमण्डलेऽखण्ड°	1, 94	दिनद्वयेन सार्धेन	1, 129
तेनाप्यभ्यर्थ्यमानं तत्	3, 447	दिवारात्रं हतप्राणि°	1, 292
तेनोपकूलं कालिन्द्याः	1, 60	दिव्यानुग्रहभागुग्रा°	1, 348
तेऽभिवन्द्य प्रभोर्लेखम्	3, 235	दिव्येन पाणिस्पर्शेन	2, 411
ते मन्त्रोज्झटितास्तेन	1, 116	दिव्यैः प्रसूनैः संवीतौ	3, 452
ते वादिनः पराजित्य	1, 178	दिष्ट्या सदैव वैमुख्यम्	2, 157
ते शाशाङ्काननं दृष्ट्वा	1, 210	दीपानुज्ज्वलयेत्युक्तो	3, 176
तेऽस्माकं पतयश्चौरः	3, 23	दीर्घदुर्दिनशाकं	2, 61
तैर्गन्तुं स्वभुवो निवारित°	1, 367	दुग्धाब्धिधवलं तेन	1, 267
तैर्गृहाग्रे कृतास्कन्दो	1, 257	दुराशया धृतक्लेशं	3, 213
तैः खण्ड्यमानमुच्चण्डैः	3, 403	दुर्गया प्रार्थितं राजन्	3, 83
त्यागिनो निष्कलङ्कस्य	3, 196	दुर्विदग्धपर्षदा सार्कं	1, 354
त्यागे वा पौरुषे वाऽपि	3, 254	दूरात्तत्सैन्यमालोक्य	1, 298
त्रिगर्तानां भुवं जित्वा	3, 285	दृग्गोचरं पूर्वसूरि°	1, 14
त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या	1, 43	दृष्टदोषान्स्थितिं प्राप्तो	1, 365
त्रैलोक्यजीवितेनापि	3, 43	दृष्टं दृष्टं नृपोदन्तं	1, 9
त्वदादिर्यो व्यधाज्जन्तून्	3, 57	दृष्टः क्रीडानगोऽप्यत्र	3, 3[illegible]1
त्वयाऽप्यस्मद्धितार्थाय	1, 232	दृष्टैश्च पूर्वभूभर्तृ°	1, 15
[थ]		देव दिव्यप्रभावेन	3, 20
थेदां च भीमादेवीं च	2, 135	देवः शतकपालेशो	1, 335
[द]		देवी जगाद तं भद्र	3, 421
दक्षिणस्मिन्नेव पारे	3, 358	देवी भेडगिरेः शृङ्गे	1, 35
दक्षिणां सान्तकामाशा	1, 290	देवी तां जानतोऽप्यस्य	3, 424
दग्धप्राण्यङ्गविगलद्°	1, 260	देवी वा भव कान्ता वा	3, 427
दग्धाङ्गारकदम्बके	2, 78	देव्यस्मदपचारेण	2, 31
दत्त्वाऽग्रहारं लेदर्यां	1, 87	देव्या कुलतरोः कन्दः	1, 336
ददर्श पुनरुद्यान°	3, 413	देव्या शारिकयाऽष्टेन	3, 349
दधती रूपमाधुर्य°	3, 418	देयोत्तरस्यानुसारेण	3, 249

[प]

पक्वशालिवनस्फीति* 3, 22
पञ्चत्रिंशतमब्दानां 1, 196
पत्नीप्रीतिं सुतस्नेहं 2, 21
पत्युः कोपे कृतावज्ञा 3, 502
पत्यौ भक्तिर्व्रतं स्त्रीणाम् 2, 48
पथि शिखरिणां मूले मूले [illegible], 164
पद्मवत्यां सुतस्तस्य 3, 383
परदु रं समाकर्ण्य 1, 227
पर्यन्ताद्रितटाद्विलोक्य 1, 371
पाकश्चेन्न शुभस्य मेऽद्य तदसौ 3, 303
पाकोन्मुखशरच्छालि* 2, 18
पात्रायास्मै मही तस्मात् 3, 187
पादत्रयस्य दृष्टार्थः 2, 91
पाराद्वारिनिधेः प्राप्ताः 3, 78
पार्श्वस्थं तं लग्नमुक्त्वा 3, 348
पार्श्वस्थिताभ्यां कन्याभ्यां 1, 224
पितुरेव समं कालं 2, 10
पितुर्बन्धेन सक्रोधं 3, 121
पितुः सिंहासनं तेन 1, 80
पितृशोकार्द्रता तस्य 3, 266
पित्रा विद्याधरेन्द्राय 1, 218
पित्रोः प्रेयस्तयोर्वृत्ता 3, 495
पीताब्धिर्लङ्घितोर्वीभृत् 3, 325
पुण्यां वराणसीं गत्वा 3, 297
पुत्रपौत्रशतोपेतः 1, 333
पुनर्द्विजोऽभ्यधादेवं 1, 219
पुनर्द्वित्रैर्दिनैस्तस्य 3, 18
पुनर्वभाषे सा भूपं 1, 136
पुंसां निर्गौरवा भोज्य 1, 73
पुरप्रवेशायान्येद्युः 3, 248
पुरा सतीसरः कल्पा° 1, 25
पुरे निवसतस्तस्मिन् 3, 364
पुरो मिथ्या गुणग्राही 1, 358
पूर्वपूजापनयने 2, 125
पूर्वमेव हि जन्तूना 3, 426
पूर्वं तेनाथ चरमं 3, 307
पूर्वं विपन्नतनयेऽभिजनस्य 3, 527
पूर्वाकृतिविसंवादाद् 2, 115
पूर्वावस्था मदीया ते 3, 312
पूर्वबद्धं कथावस्तु 1, 8
पौत्र. प्रवरसेनस्य 3, 109
प्रजानां पालनव्याजात् 1, 269
प्रजा निरशरणा एता 2, 33
प्रजापुण्योदयैस्तीव्रैः 1, 325
प्रजिहीर्षुः स रोषेण 3, 510
प्रज्ञया द्योतमानं तं 3, 494
प्रतिदेवगृहं कोशाः 3, 363
प्रतिलिङ्गं महाग्रामाः 2, 132
प्रतिष्ठां ज्येष्ठरुद्रस्य 1, 124
प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य 1, 101
प्रभातायां विभावर्यां 3, 204
प्रभावविजितान्कृत्वा 3, 29
प्रभावाङ्केन वङ्कालात् 3, 480
प्रभोः संकोचिताशैस्तैः 1, 361
प्रमादात्तदनिष्पत्तौ 2, 129
प्रवरेशं स्नापयता 3, 372
प्रविशेति स्वयं राज्ञा 3, 175
प्रविष्टमात्रः प्रैक्षिष्ट 3, 412
प्रशान्ते भृङ्गसंपाते 3, 409
प्रसन्नालापसंप्राप्तौ 3, 154
प्रासादे प्रवरेशस्य 3, 378
प्रहृष्टोऽविप्रकृष्टं तं 3, 436
प्रागयोवर्मणा देहं 3, 397
प्रागेव सरसस्तस्मात् 3, 449
प्राज्ये राज्यक्षणे तेषा 1, 171
प्रातस्तन्नृपतिर्वीक्ष्य 2, 51
प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन् 1, 127
प्रापय्योपवनोपान्ते 2, 117
प्रायस्तृतीयगोनन्दाद् 1, 53
प्रीतिस्थैर्यैरुचितवचना* 1, 373
प्रोतशूले श्रुते तस्मिन् 2, 80

[प]

पक्वशालिवनस्फीति°	3, 22
पञ्चत्रिंशतमब्दानां	1, 196
पत्नीप्रीतिं सुतस्नेहं	2, 21
पत्युः कोपे कृतावज्ञा	3, 502
पत्यौ भक्तिव्रतं स्त्रीणाम्	2, 48
पथि शिखरिणां मूले मूले	2, 164
पद्मवत्यां सुतस्तस्य	3, 383
परदुःखं समाकर्ण्य	1, 227
पर्यन्ताद्रितटाद्विलोक्य	1, 371
पाकश्चेन्न शुभस्य मेऽद्य तदसौ	3, 303
पाकोन्मुखशरच्छालि°	2, 18
पात्रायास्मै मही तस्मात्	3, 187
पादत्रयस्य दृष्टार्थः	2, 91
पाराद्वारिनिधेः प्राप्ताः	3, 78
पाश्वस्थं तं लग्नमुक्त्वा	3, 348
पार्श्वस्थिताभ्यां कन्याभ्यां	1, 224
पितुरेव समं कालं	2, 10
पितुर्वन्धेन सक्रोधं	3, 121
पितुः सिंहासनं तेन	1, 80
पितृशोकार्द्रता तस्य	3, 266
पित्रा विद्याधरेन्द्राय	1, 218
पित्रोः प्रेयस्तयोद्वृत्ता	3, 495
पीताब्धिर्लङ्घितोर्वीभृत्	3, 325
पुण्यां वराणसीं गत्वा	3, 297
पुत्रपौत्रशतोपेतः	1, 333
पुनर्द्विजोऽभ्यधादेवं	1, 219
पुनर्द्वित्रैर्दिनैस्तस्य	3, 18
पुनर्वभाषे सा भूपं	1, 136
पुंसां निर्गौरवा भोज्य	1, 73
पुरप्रवेशायान्येद्युः	3, 248
पुरा सतीसरः कल्पा°	1, 25
पुरे निवसतस्तस्मिन्	3, 364
पुरो मिथ्या गुणग्राही	1, 358
पूर्वपूजापनयने	2, 125
पूर्वमेव हि जन्तूना	3, 426
पूर्वं तेनाथ चरमं	3, 307
पूर्वं विपन्नतनयेऽभिजनस्य	3, 527
पूर्वाकृतिविसंवादाद्	2, 115
पूर्वावस्था मदीया ते	3, 312
पूर्वैर्बद्धं कथावस्तु	1, 8
पौत्र. प्रवरसेनस्य	3, 109
प्रजानां पालनव्याजात्	1, 269
प्रजा निश्शरणा एता	2, 33
प्रजापुण्योदयैस्तीर्वैः	1, 325
प्रजिहीर्षुः स रोपेण	3, 510
प्रज्ञया द्योतमानं तं	3, 494
प्रतिदेवगृहं कोश.	3, 363
प्रतिलिङ्गं महाग्रामाः	2, 132
प्रतिष्ठां ज्येष्ठरुद्रस्य	1, 124
प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य	1, 101
प्रभातायां विभावर्यां	3, 204
प्रभावविजितान्कृत्वा	3, 29
प्रभावाङ्केन वङ्कालान्	3, 480
प्रभोः संकोचिताज्ञस्तैः	1, 361
प्रमादात्तत्क्षनिष्पत्तौ	2, 129
प्रवरेशं स्नापयता	3, 372
प्रविशेति स्वयं राज्ञा	3, 175
प्रविष्टमात्र. प्रैक्षिष्ट	3, 412
प्रशान्ते भृङ्गसंपाते	3, 409
प्रसङ्गालापसंप्राप्तौ	3, 151
प्रासादे प्रवरेशस्य	3, 378
प्रहृष्टोऽविप्रकृष्टं तं	3, 436
प्रागयोवर्मणा देहं	3, 397
प्रागेव सरसस्तस्मात्	3, 449
प्राज्ये राज्यक्षणे तेषां	1, 171
प्रातस्तन्नृपतिर्वीक्ष्य	2, 51
प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्	1, 127
प्राप्योपवनोपान्तं	2, 117
प्रायस्तृतीयगोनन्दाद्	1, 53
प्रीतिस्थैर्यैरचितवचना°	1, 373
प्रोतमूले श्रुते तस्मिन्	2, 80

देश्यैकदेशाल्लोर्नाम्नः 3, 10
देहत्यागोद्यतोऽप्यासीत् 3, 393
दोःस्तम्भसंभृतासक्तो 3, 98
द्रक्ष्यस्यावामपि तदा 1, 221
द्रोणपुत्रास्त्रनिर्दग्धं 2, 95
द्वयोरालोकितं चित्रं 3, 61
द्वापञ्चाशतमब्दान्स्मा 1, 337
द्वापञ्चाशतमाम्नाय' 1, 16
द्वारादिषु प्रदेशेषु 1, 122
द्विजोऽपि कौतुकाकृष्टः 1, 223
द्वेषो नामैष दुर्धर्षो 3, 520

[ध]

धन्यास्ते पृथिवीपाला. 2, 42
धर्माध्यक्षो धनाध्यक्ष. 1, 119
धर्मारण्यविहारान्त' 1, 103
धार्ष्ट्याद्यष्टमे वारे 3, 333
धावन्राजेच्छया दुर्गं' 2, 4
धावंस्ततोऽतिवेगेन 3, 406
धिङ्नामधन्यं यस्याग्रे 2, 32
धिया भाग्यानुगामिन्या 3, 493
ध्रुवापायेन कायेन 3, 48

[न]

नगराप्रातिलोम्याय 3, 352
न चास्माद्धनमादाय 3, 145
नदंस्तद्रक्षया धीरः 2, 108
नन्दिक्षेत्रे त्रिभुवनगुरोः 2, 170
नन्दिक्षेत्रे हरावास' 1, 36
न परेषस्वर्वसंवेद्यान् 1, 5
नमस्तस्मै तत. कोऽन्य 3, 512
न मानं न यशो मार्थान् 3, 44
नम्रः सम्राडयेवं स 3, 62
नयता गम्यतामस्मान् 3, 294
नयद्भिर्गुणतां दोषान् 1, 356
नरः पश्चि तस्य सूनुः 1, 388
नर्मभिर्मर्मभेदानां 3, 153
न यस्या प्राणिन दृ[illegible] 3, 98
नरराजोऽपि गान्धारे 2, 118
नवोद्गतनयो देशं 1, 190
नानारमुराहृमि नीर 3, 252
नानोदिता वाक्पत्नी° 2, 73
नात्र्य सर्वजनप्रेम्य 2, 16
नातीव [illegible] 3, 159
नानाजनसमाकीर्णं 3, 228
नानादिग्भ्यस्तदायातं 3, 129
नानावीरत्वगर्विष्ठैः 1, 370
नान्यद्वीपेषु [illegible] 1, 353
नास्त्युपायः स संसारे 2, 66
नास्मै चिन्तामणि दत्तं 3, 165
निगृह्य[illegible]राज्य° 3, 506
निमन्त्रितैर्द्विजाति 3, 445
निमित्तीकृत्य मामय 3, 89
निरर्थकान्याप्युदारान् 3, 184
निरालोका हि लोकोऽयं 2, 37
निर्गते मञ्जरीपुञ्जात् 1, 207
निर्णयो वर्णगुरुता 3, 85
निर्वाणमनु निर्वाति 3, 296
निवातस्तिमितैर्दीपै° 2, 44
निवारितप्रतीहार 2, 27
निवारितप्रवेशोऽस्य 2, 68
निवार्य मरणोद्योगं 3, 123
निश्चिन्वते हि शंसन्या 3, 491
निश्शेषं निकटासन्न लोक° 2, 165
निष्पुत्र. स महीपालो 2, 75
निसर्गतरला नारी. 3, 515
नीलमुद्दिश्य देशस्य 1, 182
नीलोत्पलवतीवापी: 2, 140
नूनं नन्दीश एवासौ 1, 130
नृत्तं केका च शिखिनो 3, 335
नृपतिस्तस्य दुष्पातं. 3, 341
नेति मे संशयभ्रान्त्वम् 3, 90

[प]

पक्वशालिवनस्फीति° 3, 22
पञ्चत्रिंशतमब्दानां 1, 196
पत्नीप्रीतिं सुतस्नेहं 2, 21
पत्युः कोपे कृतावज्ञा 3, 502
पत्यौ भक्तिर्व्रतं स्त्रीणाम् ■, 48
पथि शिखरिणां मूले मूले 2, 164
पद्मवर्त्यां सुतस्तस्य 3, 383
परदुःखं समाकर्ण्य 1, 227
पर्यन्ताद्रितटाद्विलोक्य 1, 371
पाकश्चेन्न शुभस्य मेऽद्य तदसौ 3, 303
पाकोन्मुखशरच्छालि° ■, 18
पात्रायास्मै मही तस्मात् 3, 187
पादत्रयस्य दृष्टार्थः 2, 91
पाराद्वारिनिधेः प्रासाः 3, 78
पार्श्वस्थं तं लग्नमुक्त्वा 3, 348
पार्श्वस्थिताभ्यां कन्याभ्यां 1, 224
पितुरेव समं कालं 2, 10
पितुर्वन्ध्येन सक्रोधं 3, 121
पितुः सिंहासनं तेन 1, 80
पितृशोकार्द्रता तस्य 3, 266
पित्रा विद्याधरेन्द्राय 1, 218
पित्रोः प्रेयस्तयोद्वृत्ता 3, 495
पीताब्धिर्लङ्घितोर्वीभृत् 3, 325
पुण्यां वराणसीं गत्वा 3, 297
पुत्रपौत्रशतोपेतः 1, 333
पुनर्द्विजोऽभ्यधादेवं 1, 219
पुनर्द्वित्रैर्दिनैस्तस्य 3, 18
पुनर्बभाषे सा भूपं 1, 136
पुंसां निर्गौरवा भोज्य 1, 73
पुरप्रवेशायान्येद्युः 3, 248
पुरा सतीसरः कल्पा° 1, 25
पुरे निवसतस्तस्मिन् 3, 364
पुरो मिथ्या गुणग्राही 1, 358
पूर्वपूजापनयनं 2, 125
पूर्वमेव हि जन्तूनां 3, 426
पूर्वं तेनाथ चरमं 3, 307
पूर्वं विपन्नतनयेऽभिजनस्य 3, 527
पूर्वाकृतिविसंवादाद् 2, 115
पूर्वावस्था मदीया ते 3, 312
पूर्ववद्धं कथावस्तु 1, 8
पौत्र- प्रवरसेनस्य 3, 109
प्रजानां पालनव्याजात् 1, 269
प्रजा निःशरणा एता 2, 33
प्रजापुण्योदयैस्तीर्वैः 1, 325
प्रजिहीर्षुः स रोषेण 3, 510
प्रज्ञया द्योतमानं तं 3, 494
प्रतिदेवगृहं कोशाः 3, 363
प्रतिलिङ्गं महाग्रामाः 2, 132
प्रतिष्ठां ज्येष्ठरुद्रस्य 1, 124
प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य 1, 101
प्रभातायां विभावर्यां 3, 204
प्रभावविजितान्कृत्वा 3, 29
प्रभावाङ्केन वङ्कालान् 3, 480
प्रभोः संकोचितान्नैस्तैः 1, 361
प्रमादात्तदनिष्पत्तौ 2, 129
प्रवरेशं स्नापयता 3, 372
प्रविशेति स्वयं राजा 3, 175
प्रविष्टमात्रः प्रैक्षिष्ट 3, 412
प्रयान्ते भृङ्गसंपाते 3, 409
प्रसन्नालापसंप्राप्तौ 3, 151
प्रासादे प्रवरेशस्य 3, 378
प्रहृष्टोऽविप्रकृष्टं तं 3, 436
प्राग्ययोवर्मणा देहं 3, 397
प्रागेव सरसस्तस्मात् 3, 449
प्राज्ये राज्यग्रहणे तेषां 1, 171
प्रातस्तन्नृपतिर्वाच्य 2, 51
प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन् 1, 127
प्राप्योपवनोपान्तं 2, 117
प्रायस्तृतीयगोनन्दाद् 1, 53
प्रीतिस्यूतैरचितवचना° 1, 373
प्रोतमूले धृते तस्मिन् 2, 80

[फ]

फलं मम तनीयोऽपि 3, 223
फुल्लाब्जषण्डरुद्धाशा 2, 139

[ब]

बद्धा द्वादशभिर्ग्रन्थ° 1, 17
बभाषे तं क्षणं स्थित्वा 3, 290
बभूव तस्य भूभर्तु 3, 484
बालेषु करुणा स्त्रीषु 1, 293
बिन्दुरेखाच्छविर्यस्य 1, 194
बिलेऽप्यावृतता याते 3, 469
बुभोज सिंहलादीन् यो 3, 356
बोधिसत्त्वश्च देशेऽस्मिन् 1, 173
बोधिसत्त्वोऽसि भूपाल 1, 134
बौद्धभाषामजानानो 1, 135

[भ]

भक्त्या प्रतिष्ठां प्राप्तेऽस्मिन् 3, 350
भङ्गपाऽम्बुम्भिविदधती 3, 133
भयस्पृहाजनकयो 3, 58
भवच्छेदाभिधं ग्रामं 3, 381
भवत्यो पूर्वमुद्दतं 1, 215
भविना तव जामाता 3, 486
भवेद्धि प्रायशो योषित् 3, 505
भाण्डादि वर्तुं मृत्पिण्डं 3, 114
भारते द्वापरान्तेऽभूद् 1, 49
भालं वह्निशिखाङ्कितं दध° 1, 2
भारं भवम्नद्रवनो 3, 271
भान्वर्पस्यानुगा धुरं 2, 77
भान्वद्रिग्यायरा कृत्य° 3, 416
भुक्तिमुक्तिफलप्राप्ति 1, 32
भुक्त्वा द्वात्रिंशतं वर्षान् 2, 9
भुक्त्वैश्वर्यं स पर्यन्ते 1, 152
भुजगेन्द्रतनुप्राप्ति 1, 245
भुवनत्रयरक्षाया देवा 1, 46
भुञ्जान एव तस्मिन् 1, 239
भुञ्जता पवनं गरीयस° 3, 194
भुञ्जाने कच्छगुच्छानां 1, 211
भूर्जीरवाटिकाया यो 1, 342
भूतेशवर्धमानेश° 2, 123
भूत्वा षट्त्रिंशत वर्षान् 1, 319
भूत्वा सप्तत्रिंशतिमब्दान् 3, 526
भूपमद्भुतसौभाग्य 3, 126
भूयो राज्यार्जनोद्योग. 2, 2
भूपाभोगिफणारत्नं 1, 1
भूत्या नर समाश्रित्य 1, 283
भोगयोगेन मालिन्यं 1, 278
भोगयोगोर्जितं राज्यं 1, 65
भोगाय देवभिक्षूणां 3, 9
भोज्यमुत्सृज्य यातस्य 1, 249
भोज्यं ददामि नाश्नातो 1, 165
भ्रमरैः शङ्कुपुच्छाग्रै 3, 395
भ्रातरो मन्त्रिणस्तस्य 3, 483
भ्राभाहतानां प्राचुर्यं 3, 103
भ्राम्यच्छ्रीकण्ठदत्तव्रत° 2, 171

[म]

मज्जतो राज्यसौख्येषु 3, 279
मणिदीपनिवेशं तम् 3, 298
मणिपूरपुरे पार्थ 2, 94
मण्डलं साध्वसात्ता तौ 2, 13
मण्डलानि विलम्पन्ते 3, 243
मण्डले विप्लुताचारे 1, 179
मधुकैटभयोर्मेद 1, 262
मनागनवधानेन 1, 359
ममकारो मृगाक्षीषु 3, 517
मर्त्यसंस्पर्शभीरु सा 3, 437
महान्तो ह्यर्थिताः स्वल्पं 3, 276
महामात्यः स नृपति. 1, 141
मातु· कार्कोटनागेन 3, 490
मातृगुप्त इति श्लाघ्यं 3, 236
मातृगुप्तस्ततोऽवादीत् 3, 293
मातृगुप्तस्तु नृपते 3, 191
मात्सर्येण जहद् ग्रहान् 3, 492

मा भूमोघाऽस्य मत्प्रासिः 3, 466
मामवज्ञाय राज्ञेव 3, 104
मा वोचः किंचिदपरं 3, 49
मिथ्याख्यातगुणो नासो 3, 139
मुञ्चेभाजिनमस्य कुम्भ° 3, 1
मृदुपूर्वं गुणानेव 3, 147
मेघवाहनभूभर्तृ° 3, 464
मेघागमः फणिभुजं प्रथि° 1, 308
म्लेच्छैः संछादिते देशो 1, 107
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां 3, 128

[य]

यत्ताक्ष्यभीत्या ग्रामानां 1, 31
यथाकथञ्चिल्लोकोऽयं 2, 34
यथादेशस्तथेत्युक्त्वा 3, 210
यथाप्रधानं सचिवैः 3, 233
यथावद् वृद्धिमप्राप्त 1, 118
यथेष्टमशनं दातुं 1, 132
यदासीरिपिशिताशा इ° 3, 76
यदेतत्त्वामुपास्तेऽद्य 3, 54
यदसाध्यानि दुःखानि 2, 46
यद्यहिंसाऽऽग्रहेणेमं 3, 84
यन्ममोपकृतं तेन 3, 316
यशोर्थिनः पार्थिवेषु 3, 329
यः शान्तवृजिनो राजा 1, 102
यः शत्रोरिव संघर्षः 3, 516
यच्छुं यज्ञाग्घृतोद्योगः 3, 255
यस्मिन्राजनि तत्त्वज्ञैः 3, 132
यस्य दिव्यप्रभावस्य 1, 109
यस्य पाणिप्रणयितां 3, 390
यस्य सेनानिनादेन 1, 85
या गतिर्भूभुजोऽमुष्य 3, 317
यात्याश्रितः किल समाश्रय 1, 284
यान्यदाराण्यन्तरेण 3, 309
यान्यज्जान्युदयं द्विपन्ति 3, 284
या प्रथमगमन्नीति 1, 12
यावत्ताहारिणो पादौ 3, 415
यावज्जीवं दरिद्रत्वं 2, 90
यावन्मूर्ध्नि रवेः पादाः 3, 291
यियासुना वितस्तान्तः 1, 163
युधिष्ठिराऽभिधानोऽभूद् 1, 350
ये नागेन रुषा प्लुष्टे 1, 317
येऽप्यशोकादयः पञ्च 4, 19
मेऽप्यासन्निभकुम्भशायित° 1, 47
ये प्रजापीडनपरा 1, 188
योजनानि ततः पञ्च 1, 265
यो नानाद्युतिमत्पदार्थ° 3, 218
योऽयं तरुतले मुण्डः 1, 233

[र]

रक्तप्रजस्य भूभर्तुः 3, 3
रक्तशिरः प्रतिच्छन्दैः 3, 77
रक्षित्वा दशमासोना: 3, 124
रणादित्यनृपामात्ये 3, 434
रणादित्यस्य गोनन्द° 3, 473
रणारम्भानुभावेन 3, 454
रणारम्भास्वामिदेवौ 3, 460
रतिसेनाभिधश्चोल° 3, 432
रत्नोज्ज्वलाः प्रविकिरन् 3, 197
रम्यैः शैलपथैर्व्रजन्थम° 1, 369
रसातलैकतिलकं 3, 55
राजन्गिरिसुतोद्वाहे 3, 443
राजन्प्रजानां कुकृतैः 2, 45
राजवंशेष्वनेकेषु 3, 472
राजाग्रहारयोः कर्ता 1, 100
राजा तृतीयगोनन्दः 1, 185
राजा प्रवरसेनोऽथ 3, 324
राजा प्रवरसेनोऽपि 3, 321
राजा ब्रह्मगलूनाभ्यां 3, 475
राजा भूत्वा कथं मादृक् 3, 313
राजा सिद्धाभिधः सोऽथ 1, 276
राज्ञस्तस्य कदाचित्तु 1, 131
राज्ञस्तस्यैव राजश्रीः 1, 281
राज्ञा कनकवाहिन्याः 1, 150

[फ]

फलं मम तनीयोऽपि 3, 223
फुल्लाब्जषण्डच्छाया° 2, 139

[ब]

बद्धा द्वादशभिर्वर्षै° 1, 17
बभाषे तं क्षणं स्थित्वा 3, 290
बभूव तस्य भूभर्तु 3, 484
बालेषु करुणा स्त्रीषु 1, 293
बिन्दुरेखाच्छविर्यस्य 1, 194
बिलेशयावृतता याते 3, 469
बुभोज सिहलादीन् यो 3, 356
बोधिसत्त्वश्च देशेऽस्मिन् 1, 173
बोधिसत्त्वोऽसि भूपाल 1, 134
बौद्धभाषामजानानो 1, 135

[भ]

भवन्त्या प्रतिष्ठां प्राप्तस्मिन् 3, 350
भङ्गपाङ्मुष्मिन्विदधती 3, 133
भयस्पृहाजनस्यो 3, 58
भवच्छेदाभिधं ग्रामं 3, 381
भवन्तो पूर्वमुक्तं 1, 215
भविता तव जामाता 3, 486
भवेद्धि प्रायशो योगिन् 3, 505
भाण्डादि वस्तु मृत्पिण्ड 3, 114
भारते द्वापरान्तेऽभूद् 1, 49
भालं वह्निनिगाङ्कितं दध° 1, 2
भारं भवस्तद्वशो 3, 271
भान्त्यंम्यानुगा कुर्दं 2, 77
भास्वद्बिम्बाधरा कृष्ण° 3, 416
भुक्तिमुक्ति[illegible] 1, 32
भुक्त्वा द्वाविंशतं वर्षान् 2, 9
भुजवंशस्य न पदं 1, 152
भुजङ्गानुसारि[illegible] 1, 245
भुज[illegible]च्छाया देश 1, 46
भुक्त एव [illegible] 1, 239
भुक्त्वा वसनं [illegible]° 3, 194
भुञ्जाने कच्छगुच्छाना 1, 211
भूक्षीरवाटिकाया यो 1, 342
भूतेशवर्धमानेश° 2, 123
भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् 1, 319
भूत्वा सप्तनिशतिमब्दान् 3, 526
भूपमद्भुतसौभाग्य 3, 126
भूयो राज्यार्जनोद्योग. 2, 2
भूपाभोगिफणारत्नं 1, 1
भृत्या नरं समाश्रित्य 1, 283
भोगयोगेन मालिन्यं 1, 278
भोगयोगोर्जितं राज्यं 1, 65
भोगाय देशभिक्षुणा 3, 9
भोज्यमुत्सृज्य यातस्य 1, 249
भोज्यं ददामि नास्नातो 1, 165
भ्रमरै शङ्कुपुच्छाद्यै. 3, 395
भ्रातरो मन्त्रिणस्तस्य 3, 483
भ्रात्राहताना प्राचुर्यं 3, 103
भ्राम्यञ्श्रीकण्ठदत्तव्रत° 2, 171

[म]

मज्जतो राज्यसौख्येषु 3, 279
मणिदीपमिवेशं तम् 3, 298
मणिपूरपुरे पार्थ 2, 94
मण्डलं साश्वघत्ता तौ 2, 13
मण्डलानि विलम्ब्यन्ते 3, 243
मण्डले विप्लुताचारे 1, 179
मधुकैटभयोर्भेद. 1, 262
मनागनवधानेन 1, 359
ममकारो मृगाक्षीषु 3, 517
मर्त्यसंस्पर्शभीरुः सा 3, 437
महान्तो ह्यर्थिता· स्वल्पं 3, 276
महामात्य· स नृपति. 1, 141
मातुः कार्कोटनागेन 3, 490
मातृगुप्त इति श्लाघ्यं 3, 236
मातृगुप्तस्ततोऽवादीत् 3, 293
मातृगुप्तस्तु नृपते 3, 191
मात्सर्येण जहद् ग्रहान् 3, 492

मा भूमोयाऽस्य पत्राणि: 3, 466
मामवनाय राजेव 3, 104
मा वोचः किंचिदपरं 3, 49
मिथ्याख्यातगुणो नासो [illegible], 139
मुञ्चेशाजिनमस्य कुम्भ॰ 3, 1
मृदुपूर्वं गुणानेव 3, 147
मेघवाहनभूभर्तुं॰ 3, 464
मेघागमः फणिभुजं प्रयि॰ 1, 308
म्लेच्छैः संच्छादिते देशे 1, 107
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां 3, 128

[य]

यत्ताक्ष्यभीत्या प्रासानां 1, 31
यथाकथञ्चिल्लोकोऽयं 2, 34
यथादेशस्तथेत्युक्त्वा 3, 210
यथाप्रधानं सचिवैः 3, 233
यथावद् वृद्धिमप्राप्तं 1, 118
यथेष्टमशनं दातुं 1, 132
यदासीत्पिहिताशा इ॰ 3, 76
यदेतस्यामुपास्तेऽय 3, 54
यद्यसाध्यानि दुःखानि 2, 46
यद्यहिंसाऽग्रहेणेमं 3, 84
यन्ममोपकृतं तेन 3, 316
यशोऽर्थिनः पार्थिवेषु 3, 329
यः शान्तवृजिनो राजा 1, 102
यः सुनोरिव संघर्षः 3, 516
यस्तु मन्नान्धृतोद्योगः 3, 255
यस्मिन्राजनि तत्त्वज्ञैः 3, 132
यस्य दिव्यप्रभावस्य 1, 109
यस्य पाणिप्रणयितां 3, 390
यस्य सेनानिनादेन 1, 85
या गतिर्भूभुजोऽमुष्य [illegible], 317
यात्याश्रितः क्विन समाश्रय 1, 284
यान्यन्तराण्यन्तरेण 3, 309
यान्यन्जान्युदयं द्विषन्ति 3, 284
या प्रयामगमर्शनि 1, 12
यावकाहारिणो पादौ [illegible], 415
यावज्जीवं दरिद्रत्वं 2, 90
यावन्मूर्ध्नि रवेः पादाः [illegible], [illegible]91
यियामुना वितस्तान्त- 1, 163
युधिष्ठिराऽभिधानोऽभूद् 1, 3[illegible]0
ये नागेन रुषा प्लुष्टे 1, 317
येऽप्यशोकादयः पञ्च 4, 1[illegible]
येऽप्यासन्निमकुम्भशायित॰ 1, 47
ये प्रजापीडनपरा- 1, 188
योजनानि ततः पञ्च 1, [illegible]65
यो नानाद्युतिमत्पदार्थ॰ 3, 218
योऽयं तरुतले मुण्डः 1, 23[illegible]

[र]

रक्तप्रजस्य भूभर्तुः 3, 3
रक्षशिरः प्रतिच्छन्दैः 3, 77
रक्षित्वा दशमासोनाः 3, 124
रणादित्यनृपामात्ये 3, 434
रणादित्यस्य गोनन्द॰ 3, 473
रणारम्भानुभावेन 3, 454
रणारम्भास्वामिदेवौ 3, 460
रतिसेनाभिधश्चोल॰ 3, 432
रत्नोज्ज्वलाः प्रविकिरन् 3, 197
रम्यैः शैलपथैर्व्रजन्भ्रम॰ 1, 369
रसातलैकतिलकं 3, 55
राजन्गिरिसुतोद्वाहे 3, 443
राजन्प्रजानां कुरुतैः 2, 45
राजवंशेष्वनेकेषु 3, 472
राजाग्रहारयोः कर्ता 1, 100
राजा तृतीयगोनन्दः 1, 185
राजा प्रवरसेनोऽथ 3, 324
राजा प्रवरसेनोऽपि 3, 321
राजा ब्रह्मगलूनाम्यां 3, 475
राजा भूत्वा कथं मादृक् 3, 313
राजा सिद्धाभिधः सोऽथ 1, 276
राज्ञस्तस्य कदाचित्तु 1, 131
राज्ञस्तस्यैव राजश्रीः 1, 281
राज्ञा कनकवाहिन्याः 1, 1[illegible]0

1, 186	वसुधाधिपते वाञ्छा°	3, 344
1, 271	वस्त्वन्तरं किमपि तत्	2, 52
2, 150	वाक् मर्मच्छेदिनी दीर्घं	1, 357
3, 465	विक्रमाक्रान्तविश्वस्य	3, 474
3, 477	विक्रमादित्यमुत्सिक्तम्	3, 282
1, 368	विजयेश्वरनन्दीश°	1, 113
3, 337	विजीयते पुण्यबलै.	1, 39
3, 388	वितस्ताया स भूपालो	3, 354
2, 25	विद्यावेश्मानि तुङ्गानि	1, 42
3, 402	विधाय सोऽद्भप्रासादं	1, 148
3, 328	विवेचकतया तस्य	3, 259
]	विशा विपाटितारिष्टम्	3, 482
3, 127	विस्तीर्णाः प्रथमे ग्रन्थाः	1, 11
1, 50	विस्मारितो नित्यकृत्यं	1, 125
3, 365	विहाय देहं शेपाहे:	1, 58
3, 478	विहारस्तूर्यनिर्घोषैः	1, 140
2, 126	विहाराणां सहस्राणि	1, 200
1, 328	विहारे निवसन्नेकः	1, 199
1, 137	विह्नितमजगोष्ठ्रतापाभ्या	2, 1
1, 138	वीक्षणं राजदासीना	3, 155
1, 52	वीक्ष्यैनद्दिम्भया दृष्ट्या	3, 521
]	वृत्ति स्या यद्द मन्यते हृदि	1, 228
3, 381	वेतालावेदितं लग्नं	3, 351
3, 157	वेधाः परां पुरमुपैति	2, 60
3, 66	वेष्टिताद्भिः शिरस्तीर्णः	2, 88
2, 168	वैतस्तं वारि वास्तव्यं.	3, 362
2, 122	वैरिणो निस्त्राणो	3, 161
1, 3	वैरिनिर्भोगिनं [illegible]	3, 330
3, 110	व्यधान्मायामयीं गात्र°	3, 438
1, 192	व्यापृत्य [illegible]°	1, 300
1, 34	व्रजितैर्न समादिष्ट°	3, 273
2, 56	व्रीडानिगडनिर्मुक्तो	1, 254
	[श]	
3, 65	शकारिविक्रमादित्य.	2, 6
3, 316	[illegible]	1 30
3, 163	[illegible] गुरु-	1, 99
2, 116	[illegible]	1, 92

शतेषु पट्सु सार्धेषु 1, 51
शमव्यमनिनस्तस्य 2, 143
शिरीष इव संसारे 2, 83
शिवलिङ्गसहस्रस्य 2, 128
शिशुर्मूर्धमे राजन् 3, 35
शीतार्त्यां द्युमणावोर्वं° 3, 170
शीतेनोद्धूपितस्य माघ° 3, 181
शुष्यत्तमालपत्राणि 3, 326
शूराश्च मतिमन्तश्च 2, 39
शैडादिगणनास्थान° 4, 691
शैलूषस्यैव मे राज्य° 2, 156
श्राद्धार्थमुत्थितः स्नातुं 1, 162
श्रान्तोऽस्यस्य नान्यस्माद् 3, 367
श्रीजयेन्द्रविहारस्य 3, 355
श्रीनगर्यां हि दुर्बुद्धिः 1, 306
श्रीपर्वते पाशुपत° 3, 267
श्रुतनन्दिपुराणः स 1, 123
श्रुत्वाऽथ विक्रमादित्य° 3, 231
श्लाघ्यः स एव गुणवान् 1, 7
श्वशुरानुग्रहाभागी° 1, 268
श्व. प्रतिष्ठाप्रसङ्गेऽथ 3, 440
श्वासैरगलिताबेगैः 3, 508

[ष]

षट्त्रिंशद्गृहलक्षाणि 3, 357
षष्टिमब्दान्प्रशास्योर्वीम् 1, 282

[स]

स एवं भूपतिर्भुक्त्वा 3, 470
स कुम्भकारगेहिन्या 3, 107
स खारिखोनमुपयो. 1, 90
सखीमध्ये रहः स्मेरा 3, 501
सखोलखागिकाहाडि° 1, 340
स गङ्गाऽऽलिङ्गिताङ्गस्य 3, 327
स गम्भीरस्य भूभर्तुः 3, 130
संक्रान्तप्राक्तनानन्त° 1, 22
सचातिरम्यः काश्मीरो 2, 138
सच्छायपादपतले 1, 205
स जातु देवो संवीत° 1, 294
सज्जे प्रतिष्ठालग्नेऽथ 3, 453
स तत्र पितुरादेशात् 1, 241
स तत्रान्यं नृपं दत्त्वा 1, 299
स तथेति ततो नागम् 1, 237
स तं दिव्यस्तदाऽब्रवीत् 3, 53
स तं बभाषे धर्मं त्वां 3, 275
स तयोस्कृत्य तन्मासं 3, 347
स तामुवाच सरया चेद् 3, 425
स तां बभाषे शान्तो मे 3, 420
सतीदैवतविप्राणाम् 1, 272
स तु राजविरुद्धत्व° 2, 71
स तेनानुपचारेण 3, 150
सत्यं विश्वंभरा देवी 3, 300
सत्वरस्तत्त्वजिज्ञासा° 3, 118
सदाचारसुधास्वादे 3, 47
सदाचारोऽपि स नृप. 1, 198
स दामोदरसूदान्त° 1, 167
स दृष्टप्रत्ययः शत्रवत् 3, 441
सद्भावश्र्यादिका देव्यः 3, 353
स नरेन्द्रश्रिया सार्धं 1, 76
स नाम्ना स्वस्य देव्याश्च 3, 439
संततध्वान्तमिषत. 3, 169
संत्यज्य विक्रमादित्यं 3, 343
सपत्नीको निजैः कोशैः 2, 28
स पुनर्बोधिसत्त्वानाम् 3, 4
सप्तत्रिंशतिवर्षेषु 2, 81
सप्तपातालनिक्षिप्तं 3, 519
स वक्रेशं वक्रश्वभ्रे 1, 329
स वहिर्विहरन्जातु 3, 16
स मर्यादीगुणीभूत° 3, 177
सभाया विजयेशस्य 1, 106
स मन्त्री दानमानाभ्यां [illegible], 499
समागमः स शुशुभे 3, 74

स मातृगुप्तस्वाम्याख्यं 3, 263
समातृचक्रं निर्माय 3, 99
समीरणसमीकीर्ण॰ 2, 86
स मेघवननामानम् 3, 8
संबन्धाऽयोग्यमपि तं 1, 243
संभावनानुसारेण 3, 136
संभाव्य सत्त्वावष्टम्भात् 3, 117
संविभेजेऽनुजग्राह 3, 113
संस्तम्भ्याम्भः प्रविष्टेन 1, 111
सयत्नं तव कर्तुं तत् 3, 269
स युवा पितुरादेशाद् 2, 147
सरलस्यन्दसुभगा 3, 226
सरला सरणिं त्यक्त्वा 3, 399
स राजोचितनेपथ्यः 2, 119
स रुद्रवसुधाम्लेच्छात् 1, 115
सर्वत्र समदृष्टित्वं 1, 355
सर्वदोषोज्झितं सेव्यं 3, 143
सर्वरत्नजयस्कन्द॰ 3, 380
सर्वः स्मरति सर्वस्य 3, 311
सर्वोपायैरसाध्यां च 1, 255
स वज्रशङ्कुपुच्छाना 3, 396
स वर्षसप्तति भुक्त्वा 1, 309
स विक्रमप्रभावाभ्या 1, 121
स विद्याधिकरणं 3, 385
स विलङ्घितगव्यूतिः 2, 163
सविहारस्य निर्माता 1, 169
स वृत्तप्रत्यभिज्ञ. सन् 3, 457
स शापितोऽस्मेद्दहेन 3, 208
स श्मशानभुवं प्रायाद् 2, 84
सषड्दिना वर्षषष्टि 1, 345
स षण्णवत्या गेहाना 1, 104
स सत्त्वहिंसाविरतः 1, 133
स सिंहलेन्द्रेण समं 1, 297
स हठापतितां लक्ष्मी 3, 322
स हि कारयितुं यशः 1, 159
स हेमन्तानिलैर्भूरि॰ 3, 172
सागरोऽपि न कुप्यन्ति 1, 1[illegible]9
साध्वी स्पृशति चेदेना 1, 320
सा नित्यदर्शनाभ्यास॰ 3, 497
सानुगे नृपतौ याते 3, 471
सान्निध्यं यस्य संप्राप्ताः 1, 291
सा प्रत्यग्रप्रतिमं सिद्धं 3, 459
सा भूतिविभवोदग्र॰ 2, 55
साम्राज्येच्छोः समागेश 3, 272
सा यत्र शुचिचारित्रा 2, 57
सा योजनाधिके देशे 1, 264
सार्धं तपोधनैस्तैः 2, 141
सा स चान्योन्यमुन्मन्यू 3, 119
साहाय्यकार्यमाहूतो 1, 59
सिद्धः सिद्धः सदेहोऽयम् 1, 285
सिंहलेषु नरेन्द्राङ्घ्रि॰ 1, 295
सिंहासनं स्ववंश्याना 3, 331
सुखसुप्तेषु सर्वेषु 3, 174
सुखार्थी नागारिप्रतिभय॰ 3, 215
सुतासंतानसाम्राज्यम् 3, 487
सुतो महीमहेन्द्रस्य 2, 63
सूदे दामोदरीये यत् 1, 157
सूनुर्नरेन्द्रादित्योऽस्य 1, 347
सेयं वितस्ता दृष्ट्वैना 1, 164
सेवया दुष्कृतस्य 3, 138
सोऽचिन्तयदहो कष्टा. 3, 513
सोऽजायत रणादित्यो 3, 431
सोऽथ भूभृज्जलौकोऽभूद् 1, 108
सोऽपश्यत्सुरतक्लान्ति॰ 3, 507
सोऽयं त्रिकोटिहा मुक्तो 1, 310
सोऽयमासादित. पुण्यैः 3, 131
सोष्मस्नानगृहाः शीते 1, 40
स्तनयुगतलनद्धस्रस्त॰ 1, 372
स्तोकावशेषप्राणं तं 3, 410
स्त्रीति नामेन्द्रियार्थोऽयम् 3, 514
स्थाने स्थाने जलान्तश्च 2, 131
स्नातस्य निर्झराम्भोभिः 2, 137

स्नाय्वस्थिशेषे बीभत्से 2, 2445
स्नाह्य तावत्त्वं स्पृष्टो 3, 369
स्पर्शोऽङ्गानि यथा वाचं 1, 304
स्वकाले त्यजता लक्ष्मीं 2, 155
स्वनामाङ्कं शशाङ्काङ्क° 1, 175
स्वप्नैश्च सिद्धिलिङ्गैश्च 3, 477
स्वभावाद्राजपुरुषैः 3, 156
स्वमावेदयितुं नया 3, 371
स्वयं च तमुवाचाङ्ग 3, 207
स्वयंभूभिश्च तीर्थैश्च 2, 136
स्वयम्भूर्यत्र हुतभुक् 1, 34
स्ववृन्दस्यात्युदारौजा 3, 112
स्वसा सुश्रवसो नागी 1, 263
स्वैरिणीसंगमो भोगा 3, 496

[ह]

हयग्रीववधं मेण्ठः 3, 260
हरप्रसादपात्रेण 1, 155
हरायतनसोपान° 2, 124
हारिनेत्राञ्चलैर्मन्द° 1, 209
हा वत्स दृष्टुमीदृक्ते 2, 87
हितं लोकोत्तरं किंचित् 1, 158
हिमसंघातदुर्लङ्घ्य° 2, 38
हिमान्यां बौद्धवाधाय 1, 180
हिरण्यकुल इत्यस्य 1, 288
हिरण्यतोरमाणाख्यौ 3, 102
हेतुं सरूपतामात्रं 3, 489
हेतूनुदीर्य विविधान् 3, 332
अत्युदात्तगुणेष्वेपा 3, 303
खिलीकृतखलालापे 3, 134
ह्लादोदयान्नृत्तगीत° 1, 151
ततस्तथाविध· क्षुभ्यन् 3, 511
तेन तस्य निमित्तेन 2, 149
येदा च भीमादेवी च 2, 135

स मातृगुप्तस्वाम्याख्यं	3, 263	सागरेऽपि न शुष्यन्ति	1, 139
समातृचक्रं निर्माय	3, 99	साध्वी स्मरति चेदेनां	1, 320
समीरणसमीकीर्ण°	2, 86	सा नित्यदर्शनाभ्यास°	3, 497
स मेघवननामानम्	3, 8	सानुगे नृपतौ याते	3, 471
संबन्धाऽयोग्यमपि तं	1, 243	सान्निध्यं यस्य सैन्यान्तः	1, 291
संभावनानुसारेण	3, 136	सा यत्नप्रतिमं सिद्धं	3, 459
संभाव्य सत्त्वावष्टम्भात्	3, 117	सा भूतिविभवोदग्र°	2, 55
संविमेजेऽनुजग्राह	3, 113	साम्राज्येच्छोः समामेरा	3, 272
संस्तम्भ्यात्म. प्रविष्टेन	1, 111	सा यत्र शुचिचारित्रा	2, 57
सयत्नं तव कर्तुं तत्	3, 269	सा योजनाधिके दीपे	1, 364
स युवा पितुरादेशाद्	2, 147	सार्धं तपोधनैस्तैः	2, 141
सरलस्यन्दसुभगा	3, 226	सा स चान्योन्यमुन्मन्यू	3, 119
सरलां सरणिं त्यक्त्वा	3, 399	साहायकार्यमाहूतो	1, 59
स राजोचितनेपथ्यः	2, 119	सिद्धः सिद्धः सदेहोऽयम्	1, 285
स रुद्रवसुधाम्लेच्छात्	1, 115	सिंहलेषु नरेन्द्राङ्घ्रि°	1, 295
सर्वत्र समदृष्टित्वं	1, 355	सिंहासनं स्ववंश्यानां	3, 331
सर्वदोषोज्झितं सैन्यं	3, 143	सुखसुप्तेषु सर्वेषु	3, 174
सर्वरत्नजयस्कन्द°	3, 380	सुखार्थी नागारिप्रतिभय°	3, 215
सर्वः स्मरति सर्वस्य	3, 311	सुतासंतालसाम्राज्यम्	3, 487
सर्वोपायैरसाध्या च	1, 255	सुतो महीमहेन्द्रस्य	2, 63
स वज्रशङ्कुपुच्छाना	3, 396	सूदे दामोदरीये यत्	1, 157
स वर्षसन्ततिं भुक्त्वा	1, 309	सूनुर्नरेन्द्रादित्योऽस्य	1, 347
स विक्रमप्रभावाभ्या	1, 121	सेयं वितस्ता दृष्ट्वैनां	1, 164
स विधाधाधिकरणं	3, 385	सेवया दुष्टकष्टस्य	3, 138
स विलङ्घितगव्यूतिः	2, 163	सोऽचिन्तयदहो कष्टाः	3, 513
सविहारस्य निर्माता	1, 169	सोऽजायत रणादित्यो	3, 431
स वृत्तप्रत्यभिज्ञः सन्	3, 457	सोऽथ भूभुजगलोकोऽभूद्	1, 108
स शापितोऽस्मेद्दहेन	3, 208	सोऽपश्यत्सुरतक्लान्ति°	3, 507
स श्मशानभुवं प्रायाद्	2, 84	सोऽयं त्रिकोटिहा मुक्तो	1, 310
सषड्दिनां वर्षषष्टिं	1, 345	सोऽयमासादित. पुण्यैः	3, 131
स षण्णवत्या गेहानां	1, 104	सोष्मस्नानगृहाः शीते	1, 40
स सर्वाह्निमाविरत.	1, 133	स्तनयुगतलन्धसस्त°	1, 372
स सिंहलेन्द्रेण समं	1, 297	स्तोकावशेषप्राणं तं	3, 410
स हठापहितां लक्ष्मी	3, 322	स्त्रीति नामेन्द्रियार्थोऽयम्	3, 514
स हि कारयितुं यशः	1, 159	स्थाने स्थाने जलान्तश्च	2, 131
स हेमन्तानिलैर्भूरि°	3, 172	स्नातस्य निर्झराम्भोभिः	2, 137

स्नाय्वस्थिशेषे बीभत्से 2, 2445
स्नाहय तावस्त्वं स्पृष्टो 3, 369
स्पर्शोऽङ्गानि यथा वाचं 1, 304
स्वकाले त्यजता लक्ष्मीं 2, 155
स्वनामाङ्कं नगाङ्काङ्क° 1, 175
स्वप्नैश्च सिद्धिलिङ्गैश्च 3, 477
स्वभावाद्राजपुरुषैः 3, 156
स्वमावेदयितुं मया 3, 371
स्वयं च क्षमुवाचाङ्ग 3, 207
स्वयंभूभिश्च तीर्थैश्च 2, 136
स्वयम्भूर्यत्र हुतभुक् 1, 34
स्ववृन्दस्याऽप्युदारौजा 3, 112
स्वसा सुश्रवसो नागी 1, 263
स्वैरिणीसंगमो भोगा 3, 496

[ह]

हयग्रीववधं मेण्ठः 3, 260
हरप्रसादपात्रेण 1, 155
हरायतनसोपान° 2, 124
हारिनेत्राश्रलैर्मन्द° 1, 209
हा वत्स दृष्टुमीदृक्ते 2, 87
हितं लोकोत्तरं किंचित् 1, 158
हिमसंघातदुर्लङ्घ्य° 2, [illegible]8
हिमान्या बौद्धबाधाय 1, 180
हिरण्यकुल इत्यस्य 1, 288
हिरण्यतोरमाणाख्यौ 3, 102
हेतुं सरूपतामात्रं 3, 489
हेतूनुदीर्य विविधान् 3, 332
अत्युदात्तगुणेष्वेषा 3, 303
खिलीकृतखलालापे 3, 134
ह्लादोदयाम्नृत्तगीत° 1, 151
ततस्तथाविधः क्षुभ्यन् 3, 511
तेन तस्य निमित्तेन 2, 149
येदां च भोमादेवी च 2, 135

आधार ग्रन्थ

(उल्लिखित)

वैदिक साहित्य :

अथर्ववेद—सातवलेकर, पारडी
ऋग्वेद—चौखम्बा सं० काशी
यजुर्वेद— ,, ,,
सामवेद—श्रीराम शर्मा संस्कृत संस्थान, बरेली

संहिता :

काठक संहिता—श्रेडर, लेपजिग
जैमिनीय संहिता सामवेद—डा० रघुवीर स०
तैत्तिरीय संहिता—आनन्दाश्रम, पूना
मैत्रायणी संहिता—श्रेडर, लेपजिग
वाजसनेयि संहिता—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

उपनिषद् :

कठोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर
छान्दोग्योपनिषद्— ,, ,,
मैत्र्युपनिषद्—स० श्रीराम शर्मा संस्कृत संस्थान, बरेली
बृहदारण्यकोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर
श्वेताश्वतरोपनिषद्—आनन्दाश्रम, पूना

ब्राह्मण :

ऐतरेय ब्राह्मण—आनन्दाश्रम, पूना
शतपथ ब्राह्मण—
जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण—लाहौर
जैमिनीय ब्राह्मण—पंजाब संस्कृत सीरीज
तैत्तिरीय ब्राह्मण—आनन्दाश्रम पूना
षड्विंश ब्राह्मण—आनन्दाश्रम, पूना
ताण्ड्य ब्राह्मण—वैदिक संस्करण
मन्त्र ब्राह्मण—स० दुर्गामोहन भट्टाचार्य, कलकत्ता

आरण्यक :

ऐतरेय आरण्यक—आनन्दाश्रम, पूना

सूत्र :

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र—क्रिस्टल संस्करण
आश्वलायन गृह सूत्र—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
गोभिल गृह सूत्र—चन्द्रकान्त तर्कालंकार, कलकत्ता
पारस्कर गृह सूत्र—काशी संस्कृत सीरीज
बौधायन श्रौत सूत्र—कैलेन्ड, कलकत्ता
सांखायन गृह सूत्र—ओल्डेन बर्ग
हिरण्य केशी श्रौत सूत्र

सूक्त :

नासदीय सूक्त

अन्य :

निरुक्त—संस्कृत पुस्तकालय, दिल्ली
बृहद्देवता—स० रामकुमार राय, चौ०, काशी
सुभाषितावली—वल्लभदेव

संस्कृत :

अग्निपुराण—आनन्दाश्रम, पूना
अर्थशास्त्र—कौटिल्य वाचस्पति शास्त्री गैरोला
अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास
अमरनाथ माहात्म्य
अष्टाध्यायी—पाणिनि
काव्यमाला—निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९३३
अमरकोश—मास्टर खेलाडीलाल प्रकाशक, काशी
अर्धनारीश्वर स्तोत्र—कल्हण
अलंकार चूडामणि—हेमचन्द्र
अलंकार सार संग्रह—उद्भट्
अवदान कल्पलता—क्षेमेन्द्र
आनन्द रामायण—पंडित पुस्तकालय, काशी
ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृत्ति विमर्शिनी—अभिनव गुप्त
उत्तराध्ययन सूत्र (जैन)

औचित्य विचार चर्चा—क्षेमेन्द्र
कथा कौतक—श्रीवर (शिवदत्त काशी नाथ पान्डुरंग पर्व)
कथा सरित्सागर—सोमदेव
कला विलास—क्षेमेन्द्र
कल्कि पुराण—कला प्रसन्न विद्यारत्न, कलकत्ता
कामसूत्र—वात्स्यायन संस्कृत सीरीज, काशी
कालिका पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
काव्य प्रकाश—मम्मट–चौखम्बा सं० सी०, काशी
काव्य मीमांसा—राजशेखर–बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
काव्यादर्श—दंडी
काशिका वृत्ति—जयदेव वामन
किरातार्जुनीय—भारवि
कुट्टनीमतं—दामोदर गुप्त–अ० अत्रिदेव विद्यालंकार इन्डोलाजिकल बुक हाउस, काशी
कुमार सम्भव—कालिदास
कूर्म पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
कोदन्ड मंडन—ब्रह्म पुराण का एक भाग
कृत्य कल्पतरु—लक्ष्मीधर, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बड़ोदा
खंडनखंड खाद्य—ब्रह्म गुप्त (ज्योतिष ग्रन्थ)
गणेश पुराण—मोदवृत्त मुद्रणालय
गरुड़ पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
गीत गोविन्द—जयदेव
गीता—राजानक अभिनव गुप्त व्याख्या–संस्करण राजानक लक्ष्मण ब्रह्मचारी ईशावर, काश्मीर
गोदावरी माहात्म्य
गोभिल स्मृति
चतुर्वर्ग संग्रह—क्षेमेन्द्र
चरकसंहिता
चक्रपूजा
चान्द्र व्याकरण—चन्द्रगोमिन
जद्विनोद
जैन राजतरंगिणी—श्रीवर, नीलकण्ठ कौल, होशियारपुर
जैमिनीय संहिता
तीर्थ संग्रह—साहिब राम
दशकुमार चरित—दण्डी
दशावतार चरित्र—क्षेमेन्द्र
दुर्गा सप्तशती—गीता प्रेस
देवी भागवत—पंडित पुस्तकालय, काशी
देवी माहात्म्य—स० अविनाश चन्द्र मुखरोपाध्याय, कलकत्ता
देश-व्यवस्था
देशोपदेश—क्षेमेन्द्र
ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धनाचार्य । रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास
नन्दि क्षेत्र माहात्म्य
नन्दि पुराण
नर्ममाला—क्षेमेन्द्र
नाट्यशास्त्र—भरत–टी० रघुवंश–मोतीलाल बनारसीदास तथा काशी संस्कृत सीरीज
नारद पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।
नारायण कवच
निर्णय सिन्धु—कमलाकर भट्ट–चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
नीति प्रकाशिका—वैशम्पायन
नीति सार—कामन्दक
नीलमत पुराण—रामलाल कांजीलाल तथा जगधर जाडू, लाहौर
नीलमत पुराण—ब्रिजे के० डी० लीडेन
नृपावली—क्षेमेन्द्र
नृसिंह पुराण—गोपाल नारायण प्रेस
पद्म पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
पंचतन्त्र—विष्णु शर्मा, पंडित पुस्तकालय, काशी
पृथ्वीराज विजय-जयानक–टिप्पणी–जोनराज सं० भाष्य श्रीगौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अजमेर
बाराही तंत्र
बाल रामायण

ब्रह्म पुराण—आनन्दाश्रम, पूना
ब्रह्माण्ड पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वृद्ध यम स्मृति
वृहद् कथा मंजरी—क्षेमेन्द्र
वृहद् संहिता—वराहमिहिर
भर्तृहरि शतक—भर्तृहरि
भविष्य पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
भागवत पुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर
भारत मंजरी—क्षेमेन्द्र (अप्राप्य)
भाव प्रकाश
मत्स्य पुराण—आनन्दाश्रम, पूना
मनुस्मृति—पंडित पुस्तकालय, काशी
महानिर्वाण तन्त्र—हरिहरानन्द शास्त्री संस्कृत व्याख्या
महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर
महाभाष्य—पतंजलि—कील हार्न संस्करण
मातृचक्र विवेक
मार्कण्डेय पुराण—जीवानन्द, कलकत्ता
मालती माधव—भवभूति
मालविकाग्निमित्र—कालिदास
मिताक्षरा—विज्ञानेश्वर स्वयं प्रकाशानन्द सरस्वती काशी संस्कृत सीरीज
मुद्राराक्षस—विशाखदत्त
मेघदूत—कालिदास
यमगीता
याज्ञवल्क्य स्मृति—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
योगवाशिष्ठ रामायण—अच्युत ग्रन्थमाला, काशी
योगिनी तन्त्र
रघुवंश—कालिदास
राजतरंगिणी-कल्हण सं० विश्वबन्धु, होशियारपुर
राजतरंगिणी (दि रीवर ऑफ किंग्स)—पंडित रणजीत सीताराम (अं० अ) (१९३५,१९३८)
राज तरंगिणी
(क्रॉनिकल ऑफ दी किंग्स आफ् काश्मीर—स्टीन० एम० ए० (अं० अ०) (१९००,१९६१)
राजतरंगिणी—ट्रोयर. एम० ए० अ० फ्रेंच
राजतरंगिणी राम तेज शास्त्री, काशी—
राजतरंगिणी—जोन राज, श्रीकंठ कौल, होशियारपुर
राजतरंगिणी—श्रीवर, शुक ,, ,,
रामायण वाल्मीकि—गीता प्रेस, गोरखपुर
रामायण मंजरी—क्षेमेन्द्र
लघु (स्वल्प) यम स्मृति
लोक प्रकाश—क्षेमेन्द्र—पं० जगधर जाडू शास्त्री श्रीनगर, काश्मीर
लिंग पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वाक्यपदी भर्तृहरि—व्याख्या हेलाराज—प्र० वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
वराह पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वामन पुराण—सर्व भारती काशिराज न्यास, काशी
वायु पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
विक्रमांकदेव चरित—विल्हण
विक्रमोर्वशीय—कालिदास-चौखम्बा सं० सीरीज, काशी
विजयेश्वर माहात्म्य
वितस्ता माहात्म्य
विष्णुपुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर
विष्णुधर्मोत्तर पुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वेणीसंहार—चौखम्बा सं० सी०, काशी
शक्ति संगमतन्त्र
शिवकोटि रुद्र संहिता
शिवपुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
शिशुपाल वध—माघ, काशी संस्कृत सीरीज
शुक्रनीति
शैव आगम
शंख स्मृति
श्रीकंठ चरित—मेख
समय मातृका—क्षेमेन्द्र
सन्दोह तन्त्र
साम्ब पुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
साहित्य दर्पण—विश्वनाथ चौखम्बा सं० सीरीज काशी

सुवृत्त तिलक—क्षेमेन्द्र
सूक्ति संग्रह—राक्षस कविकृत
संकल्प सूर्योदय—वेंकटनाथ कृतम्
स्कन्दपुराण—मोर, कलकत्ता प्रथम पाँच खंड, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई शेष दो खण्ड
स्तुति कुसुमांजलि—जगधर भट्ट
स्मृति तत्त्व—रघुनन्दन भट्टाचार्य
स्मृति रत्नाकर
हयग्रीव वध—भर्तृमेंठ
हर चरित चिन्तामणि—राजानक जयद्रथ
हरिवंश पुराण—चित्रशाला प्रेस पूना, काव्य-माला स० ६१, निर्णयसागर प्रेस बम्बई
हर्ष चरित—बाणभट्ट
बौद्ध साहित्य
अंगुत्तर निकाय—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
खुद्दक निकाय
खुद्दक पाठ—भिक्षु धर्मरत्न
गान्धार जातक
चुल्ल निद्देश—पी० टी० एस० संस्करण
चेतिय जातक— " "
जातक कथा—भदन्त आनन्द कौशल्यायन ६ भाग
दिव्यावदान—पी० टी० एस०
दीघ निकाय—राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन
दीप वंश—ओल्डेन बर्ग एच० केम्ब्रिज
धम्म पद—भिक्षु धर्म रक्षित
धम्म पद अट्ठ कथा—पी० टी० एस० (पाली टेक्स्ट सोसाइटी, सीलोन)
प्रपंच सदनी—ओल्ड विहार सोरीज, कोलम्बो
बुद्ध चरित—अश्वघोष
भूरिदत्त जातक
मक्कट सुत्त
बोधिसत्वावदान—कल्पलताक्षेमेन्द्र
महावंश—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
माध्यमिक कारिका—नागार्जुन
मिलिन्द प्रश्न—जगदीश काश्यप, कलकत्ता
वंगीस सुत्त
विनय पिटक—राहुल सांकृत्यायन
शासन वंश—पी० टी० एस०
सुत्त निपात—भिक्षु धर्मरत्न
सुपारक जातक
संयुक्तनिकाय—जगदीश काश्यप, भिक्षु धर्म रक्षित

अन्य भाषा :

अबू रेटा अल्बे मूनी—सखाऊ हे० सी० लंदन
आइने अकबरी—जरेट कर्नल : एच० एम०
कुरान मजीद—अ० मेहदी हसन
गुलजार काश्मीर
गौहरे आलम तोहफेन उल शाही—विर्द उद्दीन
जहाँगीर नामा—अनु० ब्रजरत्नदास ना० प्र० सभा, काशी
तबक्कात—ए–अकबरी–बी० दे० तथा हिदायत हुसेन, कलकत्ता
तारीख काश्मीर—नारायण कौल
तारीख फिरिस्ता—मुहम्मद कासिम
तारीख रशीदी—अ० डेनिसन रोस्स डी०, लखनऊ
तारीख हसन—पीर गुलाम हसन खुरहमो।
वाकयाते काश्मीर—नवदीरुल अखबार–रफी उद्दीन मुहम्मद
नूर नामा—नुरुद्दीन वाली
वकाअ काश्मीर
वहसल असमर
वाकये काश्मीर—मुल्ला अहमद
वाकियत—ए–कश्मीर–ख्वाजा मुहम्मद आजम ददमरी

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत—कर्ण सुन्दरी–विल्हण
काश्मीर राजवंश—साहिबराम निपोजेमी ममट्टकृतः
काश्मीर सन्धान समुच्चमः
काश्मीर शब्दामृत–ईश्वर कौल

गट्ट वहो—वाक्पति
घटकर्परा—अभिनव गुप्त
चित्रभानुरासक
चौर पञ्चाशिका—बिल्हण
तीर्थ संग्रह—साहिब राम
तन्त्रसार—अभिनव गुप्त—काशी संस्कृत सीरीज
देश-व्यवस्था पुस्तिका काश्मीर
पुराण विषयानुक्रमणी—राजबली
पञ्चस्तवी—धर्माचार्य—श्रीराम दाँव (त्रिक)
आश्रमफतेह कदल, श्रीनगर
प्राकृत चन्द्रिका—शेष कृष्ण शास्त्री
बोध पंच दशिका—परमार्थ चर्चा—अभिनव गुप्त
परमार्थसार—अभिनव गुप्त
प्रत्याभिज्ञ हृदय—क्षेमराज
देवीस्तोत्र—यशस्कर
महानय प्रकाश—राजानक शितिकंठ
महार्थ
मातृ उपासना
मातृका विलास
मातृका भेद तन्त्र
मालिनी विजय वार्तिक—अभिनव गुप्त, काशी संस्कृत सीरीज
माहेश्वर तन्त्र
योग सूत्र—पतंजलि—काशी संस्कृत सीरीज
युधिष्ठिर विजय काव्य—वासुदेव
योगिनी तन्त्र
राजतरंगिणी संग्रह—साहिबराम
रामायण मंजरी—क्षेमेन्द्र
लल्लेश्वरी वाक्यानि—राजानक भास्कर
लघु पंजिका
वामकेश्वरी मत विवरण—जयरथ
विज्ञान भैरव—क्षेमराज—काशी सीरीज आफ् टेक्स्ट एण्ड स्टडीज
शिवसूत्र विमर्शिनी—वसुगुप्त
शिव सूत्र वार्तिक—वरदराज
शिव स्तोत्रावली—उत्पल देवाचार्य
सुवृत तिलक—क्षेमेन्द्र स्तुति कुसुमांजलि—जगधर भट्ट
स्तव चिन्तामणि—नारायण भट्ट, काशी संस्कृत सीरीज
स्पन्द कारिका—वसुगुप्त राम, रामकंठाचार्य कृत वृत्ति
स्पन्द निर्णय—क्षेमराज
स्पन्द वृत्ति—कल्लट
सन्दोह
हलायुध कोश—जयशंकर जोशी सम्पादित
सहायक ग्रन्थ
सन्दर्भ ग्रन्थ
पालि ग्रन्थ—नालन्द देव नागरी पालि ग्रन्थ
मालाप विहार राजकीय पालि प्रकाशन मंडल विहार
अभिधर्म कोश—आचार्य नरेन्द्र देव
कथा वत्थु—पी० टी० एस०
गिलगिल बौद्ध ग्रन्थावली—डा० रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र
गन्धवंश—पी० टी० एस० जनरल सन् १८८६
थेर गाथा—पी० टी० एस०
थेरी गाथायें—भरत सिंह उपाध्याय
बुद्ध वंश—राहुल सांकृत्यायन भदन्त आनन्द कौशल्यायन
मज्झिम निकाय—राहुल सांकृत्यायन
विमान वत्थु—पेत वत्थु थेरगाथा—भिक्षु धर्म रत्न।
शासन वंश दीप—विमल सार थेरा—कोलम्बो
सारत्थप्प कासिनी
सुमंगल विलासिनी
सौन्दर नन्द—सूर्य नारायण चौधरी
हिन्दी :
अकबरी दरबार—अ—रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
अपभ्रंश कोश—अशोक के अभिलेख—राजपृथ्वी पाण्डेय, काशी

आचार्य क्षेमेन्द्र—मनोहरलाल गौड़
इतिहास तिमिर नाशक—राजा शिव प्रसाद
काश्मीर कीर्ति कलश—रघुनाथ सिंह
किन्नौर—राहुल सांकृत्यायन
गिलगित—मैनुस्क्रप्ट—देवनागरी
जागृत नैपाल—रघुनाथ सिंह
दक्षिण पूर्व एशिया—रघुनाथ सिंह
पाणिनि कालीन भारतवर्ष—वासुदेव शरण अग्रवाल
पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय
बुद्ध कथा—रघुनाथ सिंह
भारत का भाषा सर्वेक्षण—ग्रियर्सन अनु० डॉ० उदयगिरि तिवारी
मत्स्य पुराण—वासुदेव शरण अग्रवाल
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य—शिवशंकर अवस्थी
मुगल दरबार—अनु० व्रजरत्नदास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
योगवासिष्ठ कथा—रघुनाथ सिंह
राजतरंगिणी कोश— रामकुमार राय
विक्रमादित्य—डॉ० राजबली पाण्डेय
विश्व के धर्मप्रवर्तक—रघुनाथ सिंह
वेद कथा—रघुनाथ सिंह
शैव मत—डॉ यदुवंशी
संस्कृत काव्यकार—हरिदत्त शास्त्री
संस्कृत सा० का० इतिहास—बलदेव उपाध्याय

अंग्रेजी उल्लिखित ग्रन्थ—नामानुक्रमणिका :

अकबर एण्ड जेसुइस्ट—विनोइस्ट डी० गोइस
आर्कियोलोजिकल रिमेन्स इन काश्मीर—आनन्द कौल, लाहौर
एनाल्स आफ ऐन्टी क्विटी आफ राजस्थान—टाड कर्नल
ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट—कुमार स्वामी
एन्शेन्ट कोकन—भास्कर आनन्द सलतोरे
इन्डिया ऐज डिसक्राइब्ड
मेगस्थनीज—मैक्रिंडिल
एन्शेन्ट ज्योग्राफी ऑफ इन्डिया—कनिंघम एण्ड इन्डोलाजिकल बुक हाउस, काशी
एन्शेन्ट विल्डिंग—कोल एच० ए०
एन्शेन्ट हिस्ट्री आफ सौराष्ट्र—विर्जी, के० जी०
किंग्स ऑफ काश्मीर—दत्त, योगेशचन्द्र (१८७९)
कैटलाग ऑफ दि क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम
क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया—कनिंघम जनरल
कैटलाग एन्ड केटलोगम—थियोडोर ए० लिपजिग
ट्रेवेल इन मोगल इम्पायर—अनु० कान्स्टेवल—आर्चबाल
ट्रेवेल इन काश्मीर—वेकफील्ड डब्लू
ट्रेवेल्स इन काश्मीर एंड पंजाब—कार्ल, ए० ए० हुगेन, लन्दन
ट्रेवेल्स—मूरक्राफ्ट डब्लू
ट्रेवेल्स इन काश्मीर लद्दाख एंड स्कर्दू—वाइन जी० टी०
डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया—राय एच० सी०
डायरी आफ ए पेडिस्ट्रियन इन काश्मीर एंड तिब्बत—नाइट व्हाॅन, लन्डन
नोट्स आन कल्हणाज राजतरंगिणी – आर० सी० दत्त, कलकत्ता रिव्यू भाग १
नीलमत पुराण—डा० वेद कुमारी
नोट्स आन ओ कुंग—स्तीन एम० ए०
नोट्स—ऑन पीर पंजाल—,, ,,
नोट्स ऑन सम आफ टेम्पुल्स आफ काश्मीर—कोवी डब्लू जी.
पिक्चरस्क् कश्मीर—नीव डाक्टर आर्थर, लन्डन
प्रि हिस्टोरिक इंडिया—पिगट स्टुअर्ट
फाहियान—अ-गाइल्स
बाइबिल :
बियोन्ड दी पीर पंजाल—नीव, इरनेस्ट, एफ
मार्को पोलो—यूल, हेनरी
मैन एंड टेकनीक—स्पेंगलर

गउड वहो—वाक्पति
घटकर्परा—अभिनव गुप्त
चित्रभानुशतक
चोर पंचाशिका—बिल्हण
तीर्थ संग्रह—साहिब राम
तन्त्रसार—अभिनव गुप्त—काशी संस्कृत सीरीज
दस-व्यवस्था पुस्तिका काश्मीर
पुराण विषयानुक्रमणी—राजवली
पंचस्तवी—धर्माचार्य—श्रीराम शैव (त्रिक) आश्रम फतेह कदल, श्रीनगर
प्राकृत चन्द्रिका—शेष कृष्ण शास्त्री
बोध पंच दशिका—परमार्थ चर्चा—अभिनव गुप्त
परमार्थसार—अभिनव गुप्त
प्रत्यभिज्ञा हृदय—क्षेमराज
देवीस्तोत्र—यशस्कर
महानय प्रकाश—राजानक शितिकंठ
महार्थ
मातृ उपासना
मातृका विलास
मातृका भेद तन्त्र
मालिनी विजय वार्तिक—अभिनव गुप्त, काशी संस्कृत सीरीज
माहेश्वर तन्त्र
योग सूत्र—पतंजलि—काशी संस्कृत सीरीज
युधिष्ठिर विजय काव्य—वासुदेव
योगिनी तन्त्र
राजतरंगिणी संग्रह—साहिबराम
रामायण मंजरी—क्षेमेन्द्र
[illegible]—राजानक भास्कर
लघु वर्तिका
वामकेश्वरी मत विवरण—जयरथ
शिव सूत्र—क्षेमराज—काशी सीरीज आफ् टेक्स्ट एण्ड स्टडीज
सुवृत तिलक—क्षेमेन्द्र स्तुति कुसुमांजलि—जगधर भट्ट
स्तव चिन्तामणि—नारायण भट्ट, काशी संस्कृत सीरीज
स्पन्द कारिका—वसुगुप्त राम, रामकंठाचार्य कृत वृत्ति
स्पन्द निर्णय—क्षेमराज
स्पन्द वृत्ति—कल्लट
सन्दोह
हलायुध कोश—जयशंकर जोशी सम्पादित
सहायक ग्रन्थ
सन्दर्भ ग्रन्थ
पालि ग्रन्थ—नालन्द देव नागरी पालि ग्रन्थ मालाप विहार राजकीय पालि प्रकाशन मंडल बिहार
अभिधर्म कोश—आचार्य नरेन्द्र देव
कथा वत्थु—पी० टी० एस०
गिलगिल बौद्ध ग्रन्थावली—डा० रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र
गन्धवंश—पी० टी० एस० जनरल सन् १८८६
थर गाथा—पी० टी० एस०
थेरी गाथायें—भरत सिंह उपाध्याय
बुद्ध वंश—राहुल सांकृत्यायन भदन्त आनन्द कौशल्यायन
मज्झिम निकाय—राहुल सांकृत्यायन
विमान वत्थु—पेत वत्थु थेरगाथा-भिक्षु धर्म रत्न।
शासन वंश दीप—विमल शार थेरा-कोलम्बो
सारत्थप्प कासिनी
सुमंगल विलासिनी
सौन्दर नन्द—सूर्य नारायण चौधरी
हिन्दी :
अकबरी दरबार—अ-रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
अपभ्रंश योग—अशोक के अभिलेख-राजपृथ्वी पाण्डेय, काशी

आचार्य क्षेमेन्द्र—मनोहरलाल गौड़
इतिहास तिमिर नाशक—राजा शिव प्रसाद
काश्मीर कीर्ति कलश—रघुनाथ सिंह
किशोर—राहुल सांकृत्यायन
गिलगित—मैनुस्क्रिप्ट—देवनागरी
जागृत नेपाल—रघुनाथ सिंह
दक्षिण पूर्व एशिया—रघुनाथ सिंह
पाणिनि कालीन भारतवर्ष—वासुदेव शरण अग्रवाल
पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय
बुद्ध कथा—रघुनाथ सिंह
भारत का भाषा सर्वेक्षण—ग्रियर्सन अनु० डॉ० उदयगिरि तिवारी
मत्स्य पुराण—वासुदेव शरण अग्रवाल
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य—शिवशंकर अवस्थी
मुगल दरबार—अनु० ब्रजरत्नदास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
योगवासिष्ठ कथा—रघुनाथ सिंह
राजतरंगिणी कोश—रामकुमार राय
विक्रमादित्य—डॉ० राजबली पाण्डेय
विश्व के धर्मप्रवर्तक—रघुनाथ सिंह
वेद कथा—रघुनाथ सिंह
शैव मत—डॉ यदुवंशी
संस्कृत काव्यकार—हरिदत्त शास्त्री
संस्कृत सा० का० इतिहास—बलदेव उपाध्याय

अंग्रेजी उल्लिखित ग्रन्थ—नामानुक्रमणिका :

अकबर एण्ड जेसुइट्स—विनोइस्ट डी० गोइस
आर्कियोलोजिकल रिमेन्स इन काश्मीर—आनन्द कौल, लाहौर
एनाल्स आफ ऐन्टी क्विटी आफ राजस्थान—टाड कर्नल
ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट—कुमार स्वामी
एन्शेन्ट कोवन—भास्कर आनन्द सलतोरे
इन्डिया ऐज डिसक्राइब्ड
मेगस्थनीज—मैक्रिंडिल
एन्शेन्ट ज्योग्राफी ऑफ इन्डिया—कनिंघम ए इन्डोलाजिकल बुक हाउस, काशी
एन्शेन्ट विल्डिंग—कोल एच० ए०
एन्शेन्ट हिस्ट्री आफ सौराष्ट्र—विर्जी, के० जी०
किंग्स ऑफ काश्मीर—दत्त, योगेशचन्द्र (१८७९)
कैटलाग ऑफ दि क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम
क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया—कनिंघम जनरल
कैटलाग एन्ड केटलोगम—थियोडोर ए० लिपजिग
ट्रेवेल इन मोगल इम्पायर—अनु० कान्स्टेबल—आर्चबाल
ट्रेवेल इन काश्मीर—वेकफील्ड डब्लू
ट्रेवेल्स इन काश्मीर एंड पंजाब—कार्ल, ए० ए० हुगेल, लन्दन
ट्रेवेल्स—मूरक्राफ्ट डब्लू
ट्रेवेल्स इन काश्मीर लद्दाख एंड स्कर्दू—वाइन जी० टी०
डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया—राय एच० सी०
डायरी आफ ए पेडेस्ट्रियन इन काश्मीर एंड तिब्बत—नाइट व्हॉन, लन्डन
नोट्स आन कल्हणाज राजतरंगिणी—आर० सी० दत्त, कलकत्ता रिव्यू भाग १
नीलमत पुराण—डा० वेद कुमारी
नोट्स आन ओ कुंग—स्तीन एम० ए०
नोट्स—ऑन पीर पंजाल—,, ,,
नोट्स ऑन सम आफ टेम्पुल्स आफ काश्मीर—कोवी डब्लू जी.
पिक्चरस्क् कश्मीर—नीव डाक्टर आर्थर, लन्दन
प्रि हिस्टोरिक इंडिया—पिगट स्टुअर्ट
फाहियान—अ-गाइल्स

वाइबिल :

वियोन्ड दी पीर पंजाल—नीव, इरनेस्ट, एफ
मार्कोपोलो—यूल, हेनरी
मैन एंड टेकनीक—स्पेंगलर

राजतरंगिणी—ब्हूलर्स रिपोर्ट आफ ए टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैन्सक्रुप्ट मेड इन काश्मीर राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इंडिया
वैली आफ काश्मीर—लारेंस वाल्टर
सी-यू-की—ह्वेनसांग अनु० बील सेमुएल
सुंगयुन
स्टडीज इन इंडियन एन्टीक्वेरी—राय चौधरी, एच० सी०
सिक्रेन स्पीक्स—डॉ० ज्वालाप्रसाद सिंहल, न्यू दिल्ली
हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर—विलसन होरेस हेमन, कलकत्ता
हिस्ट्री आफ इंडियन आर्किटेक्चर—फरगुसन
लाइफ आफ हुएनत्सांग—बील सेमुएल
हैपी वैली दी—वेकफील्ड डब्लू
एंटीक्विटी—जोसीफस फ्लेवियस, लन्डन

सहायक अंग्रेजी ग्रन्थ नामानुक्रमणिका :

अभिनव गुप्तः पाण्डेय के० सी
अर्ली हिस्ट्री एण्ड कलचर आफ काश्मीर—राय सुनील चन्द्र
अर्ली हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया—चट्टोपाध्याय, एस.
अशोक—मुकर्जी राधाकुमुद
अशोक एण्ड डिक्लाइन आफ दी मौर्याज—थापर रोमिला, लन्डन
असुर इंडिया - बनर्जी शास्त्री ए०
आर्ली टेरर आफ काश्मीर—कैम्पे टी एस. लन्डन
इंडिया एज डिस्क्राइब्ड बाई अर्ली ग्रीक राइटर्स —पुरी. बी. एन
इन दी लैंड आफ लल्ला दद—वाडिया ए० एम० एल०, लन्डन
इंडियन एन्सेन्ट लोर—योगेन्द्र एच.
एंटीक्विटीज आफ इंडिया एंड तिब्बत—फ्रेन्की एच. एच.
एंटीक्विटीज आफ चम्बा स्टेट—योगेल-एच.
एन्शेन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया—कनिंघम ए० जनरल
एक्रोस दी रूफस आफ दी वर्ल्ड—एस०के० रेड, विल्फ्रड
ए क्लासिकल डिक्शनरी आफ हिन्दू माइथोलोजी एण्ड रिलीजन-डोसोन, जान
एन इन्ट्रोडक्शन टू काश्मीर इट्स जियोलोजी एन्ड ज्योग्राफी—पिट्ठावाला एम० बी०
ए पर्सनल नरेटिव आफ ए विजिट टु गजनी काबुल इन अफगानिस्तान—वाइन जी० टी०
ए पीप यू दी काश्मीर—मोरिसन
ए रैसियल हिस्ट्री आफ इंडिया—चक्रवर्ती
ए लोनली समर इन काश्मीर —मोरिसन, मार्गरेट कोल्टर
एंशेन्ट इंडिया—मजूमदार आर० सी०
एंशेन्ट मानुमेंट इन काश्मीर—काक आर० सी०
कल्हण पोयेट हिस्टोरियन आफ काश्मीर–धर सोमनाथ
ओन एंश्येन्ट सेन्ट्रल एशियन ट्रेक्ट्स—स्तीन–एम० ए०
ओनयुवाग च्वाग्स ट्रेवेल्स इन इंडिया—वार्स टमस
कम्परेटिव ग्रामर आफ प्राकृत लैंगवेजेज—लक्ष्मीधर
कशीर—सूफी जी० डी० एम०
काफिर्स आफ हिन्दू कुश-रोबर्टसन जी० एस०
काश्मीर थ्रू दी एजेज—कौल जी० एल०
काश्मीर इन सन लाइट एंड शेड्स—विसकोई इ० टाइंडेल
काश्मीर इन स्टोरीज—धर सोमनाथ
काश्मीर इट्स कलचरल हेरिटेज—कौमुदी
काश्मीर एंड काशगर—विल्यू एच० वालर १८७३
काश्मीर एंटीक्विटीज— काक रामचन्द्र
काश्मीर-सर यंग फ्रान्सिस हसबैंड
काश्मीर क्रोनिकल—बेंग्रम (लिख हि० इ० प० पृष्ठ ५५
काश्मीर पास्ट एंड प्रेजेन्ट—प्रसन्नलाल कौल

काश्मीर शैविज्म—चैटर्जी जे० सी०
कैटलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट रघुनाथ टेम्पुल—स्तीन एम० ए०
क्रानोलाजी आफ एन्शेन्ट इंडिया—अय्यर वी० जी०
क्वाइन्स आफ इन्डो सीथियन—कनिंघम ए० जनरल
क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया „ „
क्वाइन्स आफ मीडीवल इंडिया „ „
गजेटियर काश्मीर, किश्तवार, भद्रवा, जम्मू, नौशेरा, पूछ एंड वैली आफ कृष्ण गंगा—बेट्स सी० ई० कैप्टन
ग्रामर आफ काश्मीरी लैंग्वेजेज़—ग्रेड० टी० आर०
छविल्लाकर—साहनी एस० वी० जरनल विहार रिसर्च सोसाइटी
जोसफ (ईशामसीह) इन काश्मीर—हजरत मिरजा गुलाम अहमद, कादियान
ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एन्शेन्ट एंड मीडिवल इंडिया, दे० एन० एल०
ज्योग्राफिकल डेटा इन दी रघुवंश एंड दी दश कुमार चरित—मार्क कालिन्स
ज्योग्राफी आफ जम्मू एण्ड काश्मीर आनन्द कौल
ज्योग्राफी आफ हिरो डोटस
ट्राइब्स इन एन्शेन्ट इंडिया—ला० वी० सी०
टूरिस्ट्स गाइड टू काश्मीर—नव आर्थर—लाहौर
ट्री एंड सरपेन्ट वर्शिप—फरगुसन जेम्स
ट्रेविल्स इन इंडिया एंड काश्मीर—स्कोन वर्ग वी० ई०, लन्दन
ट्रेविल्स इन हिमालयन प्रोविन्सेज़—मूरक्राफ्ट डब्लू, लंदन
ट्रेविल्स इन वलूचिस्तान
टेम्पुल्स—कनिंघम ए० जनरल
ट्रेड एंड कामर्स इन एन्शेन्ट इंडिया : डा० श्रीवास्तव वलराम
डाइनेस्टिक क्रानालाजी आफ काश्मीर घोषाल यू० एन० इंडियन हिस्टारिकल क्वाटरली १८ तथा १९ भाग
डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया -- राय० एच० सी०
डिक्शनरी आफ काश्मीरी प्रापर नेम्स—नोल्स जे० एच०, लन्डन
तिब्बत तारतारी एंड मंगोलिया—प्रिंसेज एच० टी०
तुर्किस्तान—वर्ट होल
थर्टी इयर्स इन काश्मीर—नीव ए०
दी इंडो ग्रीक्स—नारायण ए० के०
दी इन्वेजन आफ इंडिया—वाई अलेक्जेंडर मेक क्रिन्डल
दी काश्मीर पण्डित—आनन्द कौल
दी गार्डेन्स आफ ग्रेट मुगल्स—स्टुअर्ट, मिसेज विल्लीयर्स (लन्डन)
दी ग्रीक्स आफ वैक्ट्रिया एंड इंडिया—हार्न डब्लू, डब्लू
दी चोल्ज़—शास्त्री के० एन० एन०
दी चार्म आफ काश्मीर—ओ काग्नार वी० सी० स्काट, लन्दन
दी जम्मू एंड काश्मीर टेरी टोरीज़—ड्रयू फेड्रिक
दी डिक्लाइन आफ बुद्धिज्म इन इंडिया—मित्र आर० सी०
दी मिस्ट्री आफ दि एजेज—मोनीर विलियम एम० सर
दि रोड टू काश्मीर—मिलने जेम्स, लन्दन
दी लैंगुएजेज एण्ड रेसेज आफ दर्दिस्तान—लीनर जी० डब्लू
दी वर्ड आफ लल्ला टेम्पुल आर० सर
नार्दर्न वैरियर आफ इंडिया ड्रयु फेडरिक
नरेटिव आफ ए मिशन टुवुखारा (१८४३-१८-४५) खेरेन्ड जोसेफ वाल्फ, लन्दन

नोट्स आन टूर इन दी फेरिस्ट आफ जम्मू एण्ड काश्मीर वर्डले—विलमौट एस, कलकत्ता

पिशाच लैंगुएजेज आफ नार्थ वेस्टर्न इंडिया—ग्रियर्सन जी० ए०

पोयम्स आफ काश्मीर ब्राउन परसी

फाक टेल्स आफ काश्मीर—नौल्स जे० एच०, लन्दन

फेमिली एण्ड किनशिप—मदन त्रिलोक नाथ एशिया, बम्बई

फोर स्टडीज—मिनोरस्की वी० एण्ड टी०

फ्लड लिजेन्ड इन संस्कृत लिटरेचर—सूर्यकान्त।

बर्थ प्लेस आफ कालिदास—कल्ला, लक्ष्मीधर

बिटवीन दी ऑक्सस एड दी इंड्स—स्कोम बर्ग आर० सी० एफ०

बुद्धिज्म इन काश्मीर एण्ड लद्दाख—गनहर जे० एन० एण्ड पी० एन०

बुद्धि रिकार्ड आफ दी ईस्टर्न वर्ल्ड—बील एस०

मार्को पोलो—हेनरी यू० ल०

युअन चाओ—पी० टी—अ० वी० चत्री सुन। अलीगढ़।

रिलीजियन एड फोक लोर आफ—नार्दर्न इंडिया—क्रूक० डब्लू०

रेसेज आफ अफगानिस्तान० एच० डब्लू बेल्यूज सी० एस० आई

[illegible] वाक्यानि—ग्रियर्सन जी० ए०

[illegible] ट्राइब्स—ज्योर्ज मूर

[illegible] इन्डो[illegible]—[illegible] ए० जनरल

लेटर्स आन ए जरनी फ्राम बंगाल टू सेन्ट पीटर्स वर्ग ज्योर्ज फास्टर, लन्दन

लेटर्स फ्राम इंडिया—जैकू मान्ट विक्टर, लन्दन

[illegible] एंड [illegible] इन कश्मीर—राय फील ओट्टो

[illegible] रिपोर्ट आफ ए टूर इन सर्च आफ संस्कृत [illegible] मेड इन कश्मीर राजपूताना एंड [illegible] इंडिया (१८७७ ई०)

सोशल इंस्टीट्यूशन इन एन्शेन्ट इंडिया—दफ्तरी के० एल०

सती कुमार स्वामी ए० आर

सती—टामसन० ई०

सन एंड सरपेन्ट—ओल्धम

सम क्षत्रिय ट्राइब्स आफ एन्शेंट इंडिया—ला० बी० सी०

सरपेन्ट वर्शिप एंड अदर एसेज—वेक० सी० एच०

सर्वे आफ मिनरल डिपोसिट्स इन जम्मू एंड काश्मीर मिडल—मिस्स सी० एस०

स्टडीज इन इंडियन एंटीक्वेरी—राय चौधरी एच० सी०

स्टडीज इन इपिक्स एंड पुराण—पुसलकर ए० डी०

स्टडीज इन क्रानिकल आफ लद्दाख—पिटैच लुसियानो

स्टडीज इन ज्योग्राफी—सरकार डी० सी०

स्टडीज इन पुराणिक रिकार्ड्स आफ हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स—हाजरा आर० सी०

स्टडीज इन दी हिस्टॉरिकल एण्ड कलचरल ज्योग्राफी एंड टापोग्राफी आफ गुजरात—साकलिया एच० डी०

स्पोर्ट एंड फाकलोर इन हिमालय—है फटन एच. एल. लन्दन

हिन्दू मैथो लाजी—विल्किन्स डब्लू० जे०

हिन्दूहालीडेज एंड सेरिमोनियल्स—गुप्त० बी० ए०

हिन्ट्स आन हिल्ट्रेवेलिंग इन काश्मीर—मैकडोनेल्ड जे० सी०

हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान—कर्नल जी मेल्ली सान सी० एम० आई०, लन्दन

हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान—एल० पी० फेरियर अ० डब्लू० एम० जेसी

हिस्टोरियन आफ इंडिया पाकिस्तान एंड सीलोन (सं०) सी० एच० फिलिप

हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एन्शेन्ट इंडिया—ला-बी० सी०

हिस्टारिकल वैल्यू आफ इंडियन वारडिक लिटरेचर
हिस्ट्री आफ काश्मीर—कौल पृथ्वीनाथ बमजापी
हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र—कर पी० वी०
हिस्ट्री आफ पंजाब हिल स्टेट्स—हचिसन जे० तथा वोगेल जे० एफ०
हिस्ट्री आफ मंगोल—हावर्थ एच० एच०
हिस्ट्री आफ वेस्टर्न तिब्बत—फ्रेन्की ए० एच.
हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया—शास्त्री के० ए० एन०
हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—कीथ ए० बी०
" " " दास गुप्ता एंड एस० के० दे०
" " " सी० वी० वैद्य

नोट्स आन टूर इन दी फेरिस्ट आफ जम्मू एण्ड काश्मीर अड्ले—विलमोट एस, कलकत्ता

पिशाच लैंगुएजेज आफ नार्थ वेस्टर्न इंडिया—ग्रियर्सन जी० ए०

पोयम्स आफ काश्मीर ब्राउन परसी

फाक टेल्स आफ काश्मीर—नोल्स जे० एच०, लन्दन

फेमिली एण्ड किनशिप-मदन त्रिलोक नाथ एशिया, बम्बई

फोर स्टडीज—मिनोरस्की वी० एन्ड टी०

फ्लड लिजेन्ड इन संस्कृत लिटरेचर—सूर्यकान्त।

बर्थ प्लेस आफ कालिदास—कल्ला, लक्ष्मीधर

बिटवीन दी ऑक्सस एंड दी इंडस—स्कीम बर्ग आर० सी० एफ०

बुद्धिज्म इन काश्मीर एण्ड लद्दाख—गनहर जे० एन० एण्ड पी० एन०

बुद्धि रिकार्ड आफ दी ईस्टर्न वर्ल्ड—बील एस०

मार्को पोलो—हेनरी यू० ल०

मुअन चाओ—पी० सी—अ० वी० चवी सुन। अलीगढ।

रिलीजियन एंड फॉक लोर आफ—नार्दर्न इंडिया—क्रूक० डब्लू०

रेगेज आफ अफगानिस्तान० एच० डब्लू बेल्यूज सी० एस० आई

[illegible] वाक्यानि—ग्रियर्सन जी. सर

[illegible] ट्राइब्स—ज्योर्ज मूर

[illegible] इन्टोमीपियन—कनिंघम ए० जनरल

[illegible] आन ए जर्नी फ्राम बंगाल टू सेन्ट पीटर्स बर्ग ज्योर्ज फास्टर, लन्दन

[illegible] इंडिया—जेकू मान्ट विक्टर, लन्दन

[illegible] एंड [illegible] इन काश्मीर—राय फील ओट्टो

[illegible] रिपोर्ट आफ ए टूर इन सर्च आफ संस्कृत [illegible] इन काश्मीर राज पूताना एंड [illegible] इंडिया (१८७७ ई०)

सोशल इंस्टीट्यूशन इन एन्शेन्ट इंडिया—दफ्तरी के० एल०

सतो कुमार स्वामी ए० आर

सती—टामसन० ई०

सन एंड सरपेन्ट—ऑल्थम

सम क्षत्रिय ट्राइब्स आफ एन्शेंट इंडिया—ला० बी० सी०

सरपेन्ट वर्शिप एंड अदर एसेज—वेक० सी० एच०

सर्वे आफ मिनरल डिपोसिट्स इन जम्मू एंड काश्मीर मिडल—मिस्त्रा सी० एस०

स्टडीज इन इंडियन एंटीक्वेरी—राय चौधरी एच० सी०

स्टडीज इन इपिक्स एंड पुराण—पुसलकर ए० डी०

स्टडीज इन क्रानिकल आफ लद्दाख—पिटैच लुसियानो

स्टडीज इन ज्योग्राफी—सरकार डी० सी०

स्टडीज इन पुराणिक रिकार्ड्स आफ हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स—हाजरा आर० सी०

स्टडीज इन दी हिस्टॉरिकल एण्ड कलचरल ज्योग्राफी एंड टापोग्राफी आफ गुजरात—सांकलिया एच० डी०

स्पोर्ट एंड फाकलोर इन हिमालय—हैं फटन एच. एल. लन्दन

हिन्दू मैथो लाजी—विल्किन्स डब्लू० जे०

हिन्दूहालीडेज एंड सेरिमोनियल्स—गुप्त० बी० ए०

हिन्ट्स आन हिलट्रेवेलिंग इन काश्मीर—मेकडोनेल्ड जे० सी०

हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान—कर्नल जी मेल्ली सान सी० एस० आई०, लन्दन

हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान—एल० पी० केरियर अ० डब्लू० एम० जेसी

हिस्टोरियन आफ इंडिया पाकिस्तान एंड सीलोन (सं०) सी० एच० फिलिप

हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एन्शेन्ट इंडिया—ला—बी० सी०

हिस्टारिकल वैल्यू आफ इंडियन वारडिक लिटरेचर
हिस्ट्री आफ काश्मीर—कौल पृथ्वीनाथ बमजापी
हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र—कर पी० वी०
हिस्ट्री आफ पंजाब हिल स्टेट्स—हचिसन जे० तथा वोगेल जे० एफ०
हिस्ट्री आफ मंगोल—हावर्थ एच० एच०
हिस्ट्री आफ वेस्टर्न तिब्बत—फ्रेन्की ए० एच.
हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया—शास्त्री के० ए० एन०
हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—कीथ ए० बी०
" " " दास गुप्ता एंड एस० के० दे०
" " " सी० वी० वैद्य